वर्ष ७, संख्या १ | मई १९३६

—तुम्हारा यदि किसी से मतभेद है—जिसका होना अनिवार्य्य है—तो तुम उसे अपनी बात धैर्य्य से, नम्रता पूर्वक समझाओ। एक बार नहीं—हजार बार! और उस के विरुद्ध में वह भी जो दलीलें दे, उन पर भी शान्त चित्त से विचार करो। यदि उसकी दलीलें न्याय-सगत प्रतीत हों तो तुरन्त अपनी जिद छोड़ कर उन्हें स्वीकार कर लो। और यदि तुम्हारा मन तुम्हारी ही बात की सचाई की साक्षी दे और तुम्हारा विरोधी फिर भी उसे स्वीकार न करे तो तुम उससे बिगड़ कर उसे अपना शत्रु न बनाओ, किन्तु अपने पावन ध्येय पर अटल रह कर चुपचाप अपना काम करते जाओ। "सिद्धि" का यही सच्चा मार्ग है।

—रामलाल दूगड़ 'प्रफुल्ल'।

वार्षिक मूल्य ३) | एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— सिद्धराज ढड्ढा, एम० ए०, एल-एल० बी०
गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए०, बी० एल०

'सत्यान्नाऽस्ति परोधर्मः'

ओसवाल नवयुवक

विशाल युवक-हृदय का स्फूर्तिप्रद संदेश-वाहक पत्र

समाज और राष्ट्र की गम्भीर समस्याओं पर प्रकाश
डालनेवाला विविध भाव-शैलियों के विवेचनात्मक
लेखों और भावमयी कविताओं से परिपूर्ण

सचित्र मासिक

सम्पादक
विजय सिंह नाहर बी० ए०
भँवरमल सिंघी बी० ए०, साहित्यरत्न

सप्तम वर्ष
[मई सन् १९३६ से अप्रेल सन् १९३७]

वार्षिक मूल्य रु० ३)
एक प्रति का मूल्य ।=)

२८, स्ट्राण्ड रोड,
कलकत्ता

संस्थाओं और पुस्तकालयों
के लिये रु० २॥)

विषय-सूची

[सप्तम वर्ष के १ से १२ अङ्क तक]

कविताएँ

गद्य-काव्य

कहानियाँ

लेख

धारावाहिक उपन्यास

जैन-साहित्य-चर्चा

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

सम्पादकीय

चित्र-सूची

लेख-सूची

[एप्रिल, १९३७]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१-- 'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२ पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३--पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४--पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफ़ी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५--लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६--अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७--लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता-परिवर्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक--'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८--यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:--

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	५०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	१३)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक--ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

लेख-सूची

[मई १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१ —'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२— पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २ ।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।≈) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिएँ। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५— लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फार या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६— अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन—प्रकाशन, पता—परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कोभर का द्वितीय पृष्ठ	रु० १८)
,, ,, तृतीय ,,	१५)
,, ,, चतुर्थ ,,	२५)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	१०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	७)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	४)
,, चौथाई कालम	२॥)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

श्री डाक्टर जेठमलजी भन्साली, एम० बी०

आपने इसी साल कलकत्ते विश्व विद्यालय की डाक्टरी की एम० बी० परीक्षा पास की है और हाल ही में नं० १०९, सागरापट्टी कलकत्ते में आपने अपना दवाखाना खोला है। कलकत्ते में आप ही एक ओसवाल डाक्टर हैं। आप होनहार और तेजस्वी युवक हैं। आप ओसवाल नवयुवक समिति के उत्साही सदस्य हैं। आपके लेख 'ओ० नवयुवक'में बराबर निकला करते थे। आप के लेख भावपूर्ण और मनोरंजक होते हैं। इस अंक में भी आप का 'स्वास्थ्य के सुनहले नियम' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है।

न्यू राजस्थान प्रेस।

शुभ कामनाएँ

ओसवाल-नवयुवक का फिर पुनर्जन्म हो रहा है यह बड़े हर्ष की बात है। 'नवयुवक' नाम जैसा ही काम करके दिखावेगा ऐसी मुझे पूरी आशा है। समाज भी 'नवयुवक' को योग्य सहकार देकर, अधिक-से-अधिक संख्या में ग्राहक बनकर, उछलते हुए युवकों के उत्साह को बढ़ायगा और उसके द्वारा समाज की सेवा करवा लेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। परमेश्वर 'नवयुवक' की उन्नति करे व उसके हाथों समाज की सेवा करावे।

राजमल ललवाणी, सभापति, अखिल भारतवर्षीय
ओसवाल महासम्मेलन, जामनेर।

ओसवाल समाज में ऐसा कोई न होगा जो 'ओसवाल नवयुवक' के लिये शुभेच्छा प्रगट न करे। पत्र ने वर्षों तक जो कुछ सेवा की है वह किसी से छिपी नहीं है। ओसवाल नवयुवको! उठो! यदि अब भी आलस्य को ठुकरा कर तत्परता न दिखाओगे तो यह अवसर हाथ से जाता रहेगा और अपने गौरव को धक्का पहुंचेगा। अतः प्रत्येक ओसवाल युवक से मेरा नम्र निवेदन है कि यदि समाज की सच्ची सेवा करनी हो तो इस पत्र को शीघ्र अपनाइए और अपनी तथा समाज की लाज रखिए। पत्र को जीवित रखना स्वयं समाज को ही जीवित रखना है।

पूरणचन्द नाहर, एम० ए०, बी एल०,
कलकत्ता।

The resuscitation of the "Oswal Navayuvak" is welcome. After an useful career it ceased publication two years ago, but it was ordained to rise again with renewed youth and vigour. Let us hope that with the Co-operation and Sympathetic attitude of those for whom it has taken its birth again and by adopting a cautious and constructive policy the 'Oswal Navayuvak' will now have a very long and healthy life and will be able to serve the Community to its best capacity under the able guidance of the two young and energetic lawyer-editors-Messrs. Siddha Raj Dhadda. M A L. L. B and Gopichand Chopra, B. A., B L. I wish them and the Journal a long and useful career of service.

Gulabchand Dhadda. M. A.

यह निर्विवाद है कि जीवित समाज में समाचार पत्र का होना अनिवार्य है। यह पत्र भी उसके जीवित होने का प्रमाण है। 'ओसवाल-नवयुवक' चिरायु हो और आपके सम्पादकत्व में दिनोंदिन तरक्की करे यह वांछा है। विशेष क्या लिखूं।

कस्तूरमल बांठिया, बी० काम

ओसवाल-नवयुवक के पुनर्जन्म से हार्दिक प्रसन्नता हुई। ईश्वर इस बार उसे चिरायु करे।

कन्हैयालाल जैन,
आनरेरी मजिस्ट्रेट
(कस्तला)

'ओसवाल-नवयुवक' का भार आपने लिया है यह बहुत ही आनन्द की बात है। मुझे आशा है आपकी देख-भाल में यह मासिक समाज की बहुत सेवा करेगा।

गोपीचन्द धाड़ीवाल,
बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] मई १९३६ [संख्या १

लक्ष्य

[श्री दुर्गाप्रसाद झुंझुनवाला बी० ए० 'व्यथित']

जीवन सुमन सुरभिमय हो !
दे चिर संचित मधु जग को निज,
यह जग जीवन मधुमय हो !

पा दुख को मत विचलित हो रे,
हृदय बिधा जग को मधु दे, रे,
कर सुरभित जग के उपवन को
तेरा पन्थ धूलिमय हो !

खोकर तुझे व्यथित जग डाली,
रो, रो, आह ! मरेगा माली,
सींचेगा जग अश्रु कणों से,
फिर यह हृदय शान्तिमय हो !

निष्ठुर से जग के जीवन में,
पा दुख का उपहार अनिल में,
हँस हँस कर अपना ले करुणा,
जीवन सजल शूलमय हो !

गूंज उठे सौरभ अम्बर में,
जग में, वन में, गिरि गह्वर में,
बने विश्व, रे, यह चिर सुन्दर,
जीवन अमर कीर्तिमय हो !
जीवन सुमन सुरभिमय हो !

प्रश्न ?

[श्री दिलीप सिंघी]

ऐ संगीत की मधुर स्वर-लहरी ! क्या कह सकती हो कि सीधे हृदय-देश में प्रवेश कर उसको उत्पीड़न और आहों से भर देने में, उसके ज़र्रे २ को विचलित कर देने में और अश्रुओं से मैत्री का नाता जोड़ बरबस उन्हें भी साथ-साथ बाह्य जगत में लाने में तुम्हें किस अपूर्व आनन्द का आभास होता है ?

ऐ पूर्णिमा की रजत ज्योत्स्ना ! क्या कह सकती हो कि कहीं जन समूह से सुदूर नीरव शान्तिमय भूतल पर किसी व्यथित नवयौवना को आकृष्ट कर अपनी मादकता से मतवाला बनाने में सान्त्वना के लिए उसे तेरे हृदय देव की ओर संकेत कर उसे प्रवंचना में डाल देने में और उसके दर्द को द्विगुणित कर उन निर्दोष नयनों के अमूल्य बिन्दुओं पर अपनी रश्मियों का नृत्य कराने में तुझे किस सुख का अनुभव होता है ?

ऐ निर्जन प्रान्त की सरिता धारा ! क्या इतना बता सकती हो कि अपने कलकल नाद से किसी अपरिचित को आह्वान कर अपने किस मनोगत भाव को व्यक्त करना चाहती हो ? क्या यह तेरे हृदय देव से मिलने की उत्कण्ठा है या तुझे अपने निर्दिष्ट स्थान पर ले जानेवाले पथ पर अविश्वास हो आया है कि जिसमें विह्वल हो तूने अपने कलकल-निनाद से उस अपरिचित को अपने पास आमन्त्रित किया है ? या तेरी मूक-व्यथा इतनी असह्य हो गई है कि तू किसीसे अपने अस्फुट शब्दों में ही दर्देदिल का कुछ इतिहास कह कर हृदय के भार को हल्का करे ? पर इतनी आतुरता क्यों ? शीघ्र ही तू अपने स्वामी देव के पास जायगी जहाँ हृदय खोल कर सारे आवेग को ढा देना, उनमें तुझे अपने अङ्क में छिपा कर प्यार की मीठी थपकियों से सान्त्वना और विश्राम देने की अपूर्व शक्ति है ! क्या यह तो नहीं है कि आशा और निराशा में ग़ोते खाते हुए मानवी की दुर्बलता पर दया खाकर तू ने अपनी हृदय-ज्वाला को विशालता से उसे ढाढ़स देना चाहा हो ? सच कहना इस आह्वान का यह तो अर्थ नहीं कि असफल प्रयासों से निराश होकर ध्येयपूर्ति को दैव पर छोड़ देने के लिये तू उसका उपहास करे ?

ऐ संगीत की मधुर स्वर लहरी ! ऐ पूर्णिमा की रजत-ज्योत्स्ना !! ऐ निर्जन प्रान्त की सरिता धारा !!! जब कभी तुम्हारा समागम हो जाता है और कोई आहत हृदय लालायित होकर शान्ति की खोज में तुम्हारे शरण में आ पड़ता है, क्या यह कह सकती हो कि उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच कर उसे बहका कर घंटों तक अपने पास ही कैद करने में, उसके नयनों को रुला-रुला कर थका देने में, किसी अपरिचित वस्तु का अभाव बता कर हृदय की श्वास-प्रक्रिया को बढ़ा देने में तुम्हारा क्या हेतु है—आनन्द, सुख या उपहास ?

हमारा व्यापारिक भविष्य

[श्री मानिकचन्द सेठिया]

प्रत्येक समाज का आर्थिक भविष्य मुख्यतः इन चार साधनों पर निर्भर करता है—(१) खेती (२) व्यापार। (३) नौकरी और (४) बुद्धि पेशा। इन चारों में से हमारे समाज के साथ व्यापार ही का खास सम्बन्ध है। इसलिए मैं अपने विचार अपनी व्यापार प्रणाली एवं उसमें अनिवार्य परिवर्तनों की आवश्यकता पर ही विशेष रूप से प्रकट करूंगा।

प्रत्येक समाज का दिग्दर्शन इतिहास से होता है। समाज का ख़ास किसी काम में रुख़ इतिहास के पढ़ने से साफ़-साफ़ प्रतीत हो सकता है। जल, वायु, देश, कला, एवं शिक्षा तो समाज पर असर करते ही हैं परन्तु इतिहास का असर इन सबसे कहीं अधिक होता है। जैन समाज का ख़ास कार्य व्यापार ही रहा है। अंग्रेजी में तो इसके लिये कहावत है कि Jains are the jews of India (जैनी भारतवर्ष के यहूदी हैं) यूरोप में सर्व प्रथम व्यापार करने में (यहूदी) जाति दक्ष थी तथा उसीके पास धन था, जैन समाज की भी यही हालत है। हमारे समाज की रुख़ जैन-धर्म को अङ्गीकार करने के साथ-साथ व्यापार की तरफ हो गई हम लोग खेती आदि का कार्य छोड़ कर व्यापार क्षेत्र में आ गए।

हमारा प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, जो हमें अपनी पूर्व गौरव-गाथा का पूरा परिचय दे सके। जो कुछ संग्रह है वह इधर-उधर से मिलता है, किन्तु हमारे बङ्गाल में आने का प्रारम्भ शायद राजा मानसिंहजी के साथ बादशाह अकबर के राज्य काल में १६ वीं शताब्दी में हुआ है। प्रायः एक शताब्दी तक हमें अपने पूर्वजों के इस प्रयास की कोई विशेष उज्ज्वल झलक दिखाई नहीं दी। पर १७ वीं शताब्दी में तो हमारे व्यापार ने हमें समूचे भारत का भाग्य विधायक बनाने के लिये भी काफ़ी सबल बना दिया था। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ का जीता-जागता उदाहरण है—शहर मुर्शिदाबाद के जगत-सेठजी का परिवार। केवल यही नहीं वरन क्रमशः उस समय शहर के अन्य ओसवाल भी प्रौढ़ धनपति हो गये थे। यहाँ पर यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि उस समय शहर मुर्शिदाबाद में ओसवाल आबादी बड़ी सबल थी, वे सब लोग लगभग उसी शताब्दी में राजपूताने से आये थे।

इसके पश्चात् तो हम लोग सुदूर २ प्रान्तों में फैल गये तथा खूब जोर से व्यापार करने लगे—यहाँ तक कि महायुद्ध ने तो हमारे समाज के प्रत्येक आदमी को माला-माल बना दिया। बस यहीं हमारी व्यापारिक उन्नति

की समाप्ति हो गई। हमारे व्यापार पर उल्टा असर होना शुरू हो गया और उसके फलस्वरूप हमारी आज यह हालत हो गई। यही हमारे व्यापार का संक्षेप में इतिहास है।

व्यापार में इतनी उन्नति करते हुए भी हमारा व्यापार कभी उच्च-श्रेणी का व्यापार नहीं हो सका, हमने शुरू से लेकर अबतक लेवा-बेची (Middleman) का काम किया। वस्तुओं को पैदा करनेवाले तो कोई और ही थे, हमने तो केवल उन वस्तुओं को खपत करनेवालों के पास पहुंचाया। परन्तु वास्तविक व्यापार तो खुद ही पैदा करके खपत करनेवालों की मांग की पूर्ति करना है। मध्यवर्ती व्यापारी (Middleman) बनना तो वास्तविक व्यापार से कहीं दूर है। आज कल व्यापार के अन्दर दलाल (Middleman) तो एक अनावश्यक सी चीज़ समझी जाने लगी है, तथा इसे निकाल दूर करने का काफ़ी आन्दोलन चल रहा है। दलाल (Middleman) तथा वस्तु उत्पादन करनेवाले (Manufacturers) के मुनाफे में भी ज़मीन आसमान का अन्तर रहता है। हाँ, समाज का एक अङ्ग यदि दलाल (Middleman) का काम करे तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु तमाम समाज ही यह काम करने लगे यह किसी तरह से उपयुक्त बात नहीं। दलाल (Middleman) होना तो व्यापार को पहली सीढ़ी है परन्तु आवश्यक पूंजी होने पर तथा यह जानते हुए कि मुनाफे का बड़ा हिस्सा तो और ही कहीं जाता है, दलाल (Middleman) ही बना रहना बड़ी भारी भूल है। वास्तव में देखा जाय तो हमारा व्यापार ख़ास तौर पर कपड़ा तथा पाट का ही है। हमारा कपड़े का व्यापार शुरू से लेकर आज तक विदेशों से तैयार कपड़ा मँगा कर भारतवर्ष में बेच देने ही में परिमित रहा है। यदि सच कहा जाय तो आज हम इस कपड़े के व्यवसाय के लिये अपने देशवासियों की नज़रों में गिर गये हैं तथा देश का धन दूसरे मुल्कों में भेजनेवाले, देश के व्यवसाय को धक्का पहुंचानेवाले एवं मज़दूरों के गले को रेतनेवाले कहलाते हैं। यह सब हमारी ना-समझ का फल है। अरबों रुपयों का विदेशी कपड़ा हमने बेच डाला परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आता कि हम यहाँ अपने घर ही, यह कपड़ा बना सकते हैं तथा मुनाफे का सब भाग अपने हाथ में रख सकते हैं। यहाँ तक कि जब देश में विलायती कपड़े का ज़ोर से बहिष्कार हो रहा था तो भी हमने अपनी नीति नहीं बदली। व्यापार की नीति हमेशा देश की नीति के साथ चला करती है। दक्ष व्यापारी अपने ग्राहकों की मांग के अनुसार वस्तुएँ रखता है। तथा समय का उपयुक्त प्रयोग करता है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमने इन दोनों में से एक भी नहीं किया। यदि उस समय ज़रूरत को समझते हुए कपड़े की मीलें खोल देते तो कितने बड़े भारी नुकसान से बच जाते। हमारे पास ग्राहक तो थे ही और समय की इतनी भारी सहायता होने के कारण आज हमारी कपड़े की मीलें खूब मुनाफ़ा करतीं। विदेशों से आनेवाले कपड़ों की आमदनी दिनों दिन घट रही है पर भारतवर्ष की खपत कम नहीं हुई है, अतः आमदनी में जो कमी हुई है उतना ही काम भारतवर्ष की मिलों को अधिक मिलने लगा है। विदेश से आनेवाले माल पर चुंगी अधिक है, इसलिए यहाँ का बना हुआ कपड़ा मुनाफे से बिक्री होता है। जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है, उसको देखते हुए विदेशों से माल दिनों दिन कम आने

लगेगा और जो समाज यहाँ पर वस्तुएँ तैयार करेगी उन्हीं के हाथ में व्यापार रहेगा, दुलाल (Middleman) भी उसी जाति के अधिक रहेंगे और यह तो मानी हुई बात है कि जिनके हाथ में व्यापार रहेगा उन्हीं के पास धन रहेगा। "व्यापारे बसति लक्ष्मी"। इस समय भी हम नहीं सम्हले तो हमें बहुत ही नुक़सान उठाना पड़ेगा।

अब मैं पाट (Jute) के व्यापार पर आता हूं। पाट का व्यापार भी तो व्यापार की दृष्टि से अपने हाथ में नहीं है। कहने को तो हम अपने को पाट का कीड़ा या पाट के व्यापार के पूरे अनुभवी कहते हैं, परन्तु अपने साथ तो यही कहावत चरितार्थ होती है कि कोई अच्छी से अच्छी वस्तु को भी ख़ाक कर देते हैं। हमने इतने वर्षों तक पाट का काम किया परन्तु रहे हमेशा दलाल (Middleman) ही! मुक़ामों से पाट ख़रीद कर यहाँ मालवालों को बेच दिया या ज्यादा किया तो यूरोप को भेज दिया। हमने यह नहीं सोचा कि हम खुद ही मिलें खड़ी करें और मिलों का मुनाफ़ा अपने घर ही में रख लें। क्या हम लोग मिलें नहीं खोल सकते थे? ऐसी तो कोई बात नहीं कि हम लोगों के पास पर्याप्त पूंजी नहीं थी। विशेष खेद की बात तो यह है कि हमारी आज पाट की एक भी मील नहीं है, यद्यपि हम इतने आदमी पाट के कार्य में लगे हुए हैं। आज हमारे हाथों में मिलें होती तो हमारी यह दशा नहीं होती। प्रति वर्ष हम घाटा देते हैं। फिर भी हम अपने को समय के अनुसार नहीं बदलते। यदि हमारा व्यापार चीज़ों को यहीं तैयार कर के खपाने का होता तो आज भारतवर्ष के व्यापार में हमारा ख़ास स्थान होता एवं हमें यह बेकारी एवं परेशानी के दिन नहीं देखने पड़ते। हमारी परेशानी की बात कहाँ तक कहूं, हमारे युवक अपने ग्राम से व्यापार के लिये सुदूर बङ्गाल में आते हैं परन्तु बेकारी के कारण वापस अपने घर लौट जाते हैं, और वहाँ पर बेकार बैठे-बैठे फाटके-जुए-के आंकों का काम चालू कर अपने दिन बिताते हैं।

हमने इन सब बातों पर पहिले विचार नहीं किया और विचार किया वह भी केवल विचारों में ही रक्खा। किन्तु अब तो हमें सावधान होकर सब तरह का व्यापार करना चाहिये। अपने समाज के उत्पादन कर्त्ता (manufacturers), अपने ही समाज के दलाल (Middleman), अपनी बीमा कम्पनी (Insurance Company), बैंक तथा जहाज़ी कम्पनियां (Shipping Co.) हों तो कितना अच्छा सङ्गठन हो और व्यापार को कितनी सुविधा एवं सहायता मिले। हमें समय के साथ २ चलना चाहिये अब व्यापार एक देशीय नहीं रहा है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय (International) हो गया है। यदि इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आनेवाली ख़ास गुत्थियों को समझ कर हम काम नहीं करेंगे तो दूसरे समाजों से हमारा समाज कहीं पीछे रह जायगा। कभी एक्सचेञ्ज और करेन्सी (Exchange and currencies) में अदल बदल होती है, तो कभी गोल्ड स्टैण्डर्ड (Gold Standard) हटता है; कहीं सोने के निकास और सोने के संचय (Gold flight and gold concentration) के प्रश्न खड़े होते हैं तो कहीं बे-रोक-टोक या सुरक्षित व्यापार (Free Trade and protection) की नीति की समस्या! यदि हम इन सब बातों से अनभिज्ञ रहेंगे तो हमारी दशा इस क्षेत्र में बिलकुल ही शोचनीय हो जायगी, और दूसरे किसी क्षेत्र में

तो हमारे लिए स्थान है ही नहीं। अपने दूसरे मारवाड़ी भाई बड़ी २ मिलें खोल रहे हैं। अपनी रक्षा के लिए एवं संगठन के लिये व्यापार-सभाएँ (Chambers of Commerce) खोल रहे हैं। अपनी व्यापारिक नीति में यदि कहीं परिवर्तन की जरूरत हुई तो सब भाई मिल कर सामूहिक कार्य करते हैं, एक दूसरे को सहायता करते हैं। परन्तु हम इससे बिल्कुल ही विपरीत जा रहे है। बङ्गाल में १९ वीं शताब्दी तक व्यापार में हमारे सफलता पाने का कारण हमारी जाति-वत्सलता थी जिसका आजकल हम में पूर्ण अभाव है। ऐसे दृष्टान्तों की कमी नहीं जिनमें हमारे यहां के बड़े व्यवसायी भाई पीछे आने वाले भाईयों का आदर सत्कार कर उन्हें कार्य में लगा देते थे। इस से, आप सोच सकते हैं कि, नये आनेवाले भाईयों के व्यापार में कितना सहारा मिलता था। आज उस जातीय सङ्गठन और जातीय-वात्सल्य का नामो-निशान नहीं है। भाई भाई में प्रेम नहीं। क्या हमने अपने पूर्वजों की बनाई हुई नीति का यही अनुसरण किया? हमें यह चाहिये था कि उसी नीति को आज नये ढाँचे में काम में लाते। उस समय इस तरह प्रोत्साहन देने की आवश्यकता थी तो इस समय एक साथ मिल कर संयुक्त व्यापारी कम्पनियां (Joint Stock Companies) एवं परिमित साझेदारी के काम (Limited Partnerships) खोलने की आवश्यकता है। यदि इस नवीन नीति का अनुसरण करते तो हमारे भाई आज सब व्यापार में लगे हुए होते और बड़े २ शहरों में हमारी कई एक मिलें, बीमा कम्पनियां एवं बेंक होते।

आज यदि हम उसी पूर्वजों के बताये हुए रास्ते पर चलते तो समयानुकूल हमारा ओसवाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स (Oswal Chamber of Commerce) होता जिसमें सब भाई बैठ कर अपनी समाज की व्यापारिक दशा, नीति. एवं जरूरतों पर विचार करते*। आज हम भी अखिल भारतवर्षीय व्यापारिक संस्थाओं में अपने प्रतिनिधि भेजते। आप छोटी सी पारसी समाज का उदाहरण लीजिये। उन्हों ने अपनी बुद्धि, सङ्गठन एवं जाति-वत्सलता से आज क्या स्थान पा लिया है वह किसी से छिपा नहीं है। इतनी छोटी सी जाति में से Round Table Conference में ४।५ प्रतिनिधियों का जाना क्या कम बात है‡?

---

*नोट—हम लेखक के इस मत से बिल्कुल सहमत नहीं हैं, बल्कि इस विचार-धारा को देश और समाज दोनों के लिए हानिकारक समझते हैं। जातीय-सगठन यों ही हमारे देश में एक काफी बदनाम वस्तु है—क्योंकि देखने के साथ ही वह राष्ट्रीय भावना की विरोधी जान पड़ती है। फिर भी जो जातियां काफी विस्तृत और सुस्पष्ट दायरे वाली हैं उनका जातीय संगठन भी अच्छी वस्तु हो सकती है—हाला कि उसी हालत में जब उस संगठन का ध्येय केवल जाति को राष्ट्र और मानवजाति के विस्तृत जीवन में सहयोग देने के योग्य बनाना ही हो। किन्तु जातीय भावना को उसके इस स्वाभाविक क्षेत्र के बाहर घसीट कर प्रत्येक वस्तु में—आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि में काम में लाना उसके साथ व्यभिचार करना है और राष्ट्र के जीवन को कलुषित और संकुचित दायरों मे विभक्त करना है। इस टिप्पणी में अधिक विस्तार से लिखने की गुञ्जाइश नहीं है पर इस विषय में हमारे विचार हम विस्तृत रूप से अगले अङ्क में पाठकों के सामने रक्खेंगे। अभी तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि व्यापारिक या राजनैतिक क्षेत्र में जातीयता को घुसाना अत्यन्त हानिकर और अदूरदर्शिता-पूर्ण है। —सम्पादक।

‡ पारसी जाति का उदाहरण ऐसे स्थानों पर देने की कुछ

हमारे समाज के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि हम लोग शुरू से राजाओं के मन्त्री, बड़े २ रजवाड़ों के साहूकार(Bankers) एवं खास अहलकार रहते आए हैं। हमारी राजनैतिक कुशलता ठौर ठौर पर झलकती रही है। परन्तु आज हममें से बहुत से आदमियों को तो यह भी मालूम नहीं कि भारतवर्ष में क्या २ राजनैतिक हलचलें हैं। तमाम संसार में आज राजनैतिक परिवर्तन हो रहे हैं। कहीं साम्यवाद है तो कहीं प्रजातन्त्र। इन सबों के क्या कारण हैं, उन को समझने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है।

अब बिना शिक्षा के काम चलना अत्यन्त ही कठिन है। कई महानुभावों की यह धारणा है कि हमने अशिक्षित रहते हुए भी लाखों रुपये कमाये एवं अब भी मजे में अपना व्यापार करते हैं। परन्तु वह दिन अब जा रहे हैं। समाज के लिए शिक्षा एक उत्तम धन है अतएव शिक्षा के लिये हम जितना अधिक धन खर्च करेंगे उतना ही ज्यादा हमारे पास अधिक धन होगा। शिक्षा का विषय मेरा नहीं है अतएव इस पर अधिक नहीं लिखूगा परन्तु यह तो अवश्य ही कहूंगा कि बिना शिक्षा के आधुनिक व्यापार चलाना मुश्किल है। लेवा बेची के व्यापार में उच्च शिक्षा की आवश्यकता न हो, अनुभव ही पर्याप्त है, परन्तु हम यदि ऐसा ही व्यापार करते रहेंगे तो शायद हमें एक दिन व्यापार क्षेत्र से बिल्कुल ही निकलना पड़ेगा।

प्रायः देखा जाता है कि सब का सब समाज मुख्यतः पाट या कपड़े के काम में लगा हुआ है। एकही व्यापार में सब समाज का पड़ जाना और गला-काट प्रतिद्वन्दिता करना क्या समाज के लिये हानिकर नहीं है? कई नए २ व्यापारों में विस्तृत क्षेत्र होते हुए भी हम उनमें नहीं गये और उसी पाट या कपड़े में चिपटे रहे। हम किसी तरह का परिवर्तन तो करते ही नहीं, करते भी हैं तो उस समय जब सब पूंजी खो चुकते हैं। यदि आज हमारा व्यापार चौतरफ़ा होता तो इतना नुकसान हमारी समाज को नहीं सहना पड़ता। इन दो वस्तुओं की तरफ व्यापारिक झुकाव के अलावा एक अमुक जगह ही की ओर के झुकाव ने भी हमारे व्यापार पर बुरा असर किया। हम क़रीब ८० प्रतिशत थली प्रान्त के ओसवाल बङ्गाल में हो हैं। हिन्दुस्थान में और भी तो कई व्यापारिक क्षेत्र हैं। यदि हम ठौर २ पर फैले होते तो हमारे व्यापार का यह रूप नहीं होता। और एक बात यह भी है कि सब समाज का केवल व्यापार में ही लग जाना भी अच्छा नहीं है। इसमें सामाजिक जीवन में नीरसता आ जाती है। यदि समाज सब तरह के पेशों में ठीक ठीक आवश्यकतानुसार बंटी हो तो समाज के सङ्गठन, उत्थान एवं अन्दरूनी शान्ति में बहुत सहायता मिलती है। जैसे, उदाहरण के लिए, यदि हमारे नवयुवकों को शिक्षा देने के लिए स्वजातीय ही शिक्षक हों तो हमें बहुत लाभ हो सकता है। उनकी शिक्षा प्रणाली

प्रथा सी पड़ गई है और इसमें खास कर हमारे जैसे अशिक्षित समाज में बहुत भ्रम फैलने की सम्भावना है। हम फौरन यह कह बैठते हैं कि अमुक कान्फरेन्स, अमुक कौंसिल या अमुक कमिटी में इतने पारसी हैं—पर यह कहते वक्त हम इस बात को बिल्कुल भूल जाते हैं कि वे पारसी भाई 'पारसी' होने के नाते उन जगहों पर कभी नहीं पहुचे हैं, बल्कि जीवन के भिन्न २ सभी क्षेत्रों में आगे होने के कारण किसी भी सार्वजनिक कार्य में उनका काफ़ी संख्या में आना अनिवार्य सा है। हमारा भी यही ध्येय होना चाहिये कि हम योग्यता के बल पर—न कि अमुक जाति के होने के बल पर आगे आवें।

अपनी संस्कृति, अपनी ज़रूरतों और अपने धार्मिक विचारानुसार होगी। यदि अपने समाज के विद्वान एवं अनुभवी व्यक्तियों को प्रोत्साहन देकर म्युनिसिपैलिटियों, कौंसिलों एवं ऊँचे २ ओहदों पर भेजे जावें तो हमारे व्यापार पर इसका उत्तम ही असर पड़ेगा। परन्तु यह सब बातें शिक्षा एवं सङ्गठन पर ही निर्भर करती हैं। अब समय आ गया है जब इन सब की अत्यन्त ही आवश्यकता है और समाज को चाहिये कि इस भूल को सुधारने की चेष्टा ज़रूर करे।

इसके अलावा हमारी व्यापारिक प्रणाली तो बहुत ही ग़लत है। ठीक सुबह ६ बजे दुकान या गद्दी खोलते हैं और रात के ११ बजे तक चाहे कोई काम हो या न हो गद्दी पर, सिवाय दो दफ़े भोजन या बहुत ही आवश्यक कार्य के, बैठे ही रहते हैं। इसका फल आज हम अपनी आंखों देख रहे हैं। हमारे पेट आगे निकले हुए हैं। कोई बदहजमी से बीमार है तो किसी को बाड़ी लगी हुई है। क्या हम इस परिपाटी में परिवर्त्तन नहीं कर सकते? आप अंग्रेजों या बङ्गालियों को देखिये, ठीक समय पर अपना दुकान या आफ़िस खोलते हैं। क्या वे आप से किसी अंश में कम कारबार करते हैं? प्रातः काल अपना समय नित्यकर्म में बिताते हैं, स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के लिये घूमने जाते हैं, कसरत करते हैं और जीवन का सच्चा आनन्द उपभोग करते हैं। शाम को अपने मित्रों से मिलने जाते हैं, सलाह मशवरा करते हैं, एक दूसरे की राय पूछते हैं, अपनी व्यापारिक समस्याओं को हल करते हैं। एक दूसरे से मिल कर कितना लाभ उठाते हैं यह बात वही जानते हैं। दूसरी ओर हम हैं, नहीं धर्म नहीं सफाई। स्वास्थ्य की तरफ़ तो कोई विचार ही नहीं करते, तमाम दिन गद्दी पर बैठे रहते हैं। कहीं मिलने भी नहीं जाते क्योंकि सभी समय असमय अपने-अपने काम में व्यस्त रहते हैं। यदि हमारा समाज इस परिपाटी को बदल दे तो हमें कितना फ़ायदा हो सकता है। हमारी सब बीमारियाँ मिट जायँ—समय का सदुपयोग और नियमित समय पर कार्य करने की आदत से हमें लाभ ही होगा।

अब अन्त में हुण्डी के बारे में कुछ लिख कर इस लेख को समाप्त करूंगा— हुण्डी का चलन खातों को चूकती करने के लिये एवं सिक्के को इधर उधर भेजने के लिये हुआ था। इससे दूसरा फ़ायदा जो आज अंग्रेज लोग उठा रहे हैं वह यह है कि हुण्डियों की सहायता से असली सिक्कों की मांग को कम कर व्यापार को सुविधा पहुंचाने के लिए व्यापार में लगी मौजूदा रक़म को बढ़ाना। हाँ अन्त में तो खातों को चूकती करने के लिये असली सिक्के की आवश्यकता होती है। परन्तु आवश्यकता के अनुसार रक़म का हेर फेर भिन्न-भिन्न धन्धों में होता रहता है। परन्तु यह सब मुद्दती हुण्डियों से ही सम्भव है।

हमारे अन्दर दर्शनी हुण्डियों का चलन है. हमें मुद्दती हुण्डियों के चलन को वापस शुरु करके इसका पूरा लाभ उठाना चाहिये। इसी सिद्धान्त पर बैंकों की उत्पत्ति हुई थी। मुद्दती हुण्डी का चलन करने से आज जैसी रक़म की तङ्गी है उतनी तङ्गी रक़म की नहीं रहेगी। और रक़म का हेर फेर भी व्यापार की मांग के अनुसार ठीक-ठीक होता रहेगा। परन्तु यह सब विश्वास पर ही निर्भर है। हमें अपने व्यापार में सच्चाई एवं विश्वास से काम लेना चाहिये। ईमानदारी ही व्यापार के लिये सबसे अच्छी नीति है। प्रत्येक भाई का यह कर्तव्य होना चाहिये कि समाज का मुंह ऊंचा रखने के लिए व्यापारिक विश्वास की मर्यादा को अटल क़ायम रखें।

हिंसा

[श्री 'धूमकेतु']

—प्रत्येक प्रकार की असमानतामें हिंसा का वास है।

—जब २ मनुष्य अपने विशिष्ट गुणों का—जिनको वह 'व्यक्तित्व' कहता है उनका—गर्व करता है तब २ वह सत्य-दृष्टि से दूर हो जाता है, उसके हृदय में से सहानुभूतिका भाव उसी मात्रा में कम हो जाता है और वह हिंसा के मार्ग पर प्रवृत्त हुआ है यह कहा जा सकता है।

—मारना, यही हिंसा नहीं है ! शिकार करना, यही हिंसा नहीं है ! परन्तु, शिकारी के जैसी वृत्तिमें मनुष्य जिस वस्तु का अपने नित्यके जीवन में आचरण करता है—किसी को नीचा दिखानेका, किसीको कटु वचन कहनेका, नौकर को तुच्छ समझने का, दूसरे की परिस्थिति को न समझ कर उदारता न दिखाने का—वह प्रत्येक वस्तु हिंसक वृत्ति का ही परिणाम है।

—यह हिंसकवृत्ति सुखमें से उत्पन्न होती है और समृद्धि में पलती है। इसीलिये, अनुचित संग्रह—अनावश्यक परिग्रह-एक आदमीके पास हो जाना यह बड़ी से बड़ी सामाजिक हिंसा है।

—किसी को अपना झूठा अन्न देनेकी वृत्ति, भंगी को भी खराब वस्तु देकर छूट जानेकी वृत्ति—यह सब हिंसा के ही भिन्न २ प्रकार हैं ! इनमें मानवता का द्रोह है। सच्चा अहिंसक किसी पर जुल्म, अत्याचार नहीं करता यही बस नहीं है, उसको चाहिये कि वह हिंसा के भिन्न २ प्रकार जिन कारणों को लेकर समाज में प्रचलित हों—धर्म, व्यवहार या रूढ़ि—उन सब कारणों को नाश करने का प्रयत्न करे।

— सच्चा अहिंसावादी जिस प्रकार स्वयं अत्याचार नहीं करता, उसी तरह किसी पर अत्याचार हो यह सहन भी नहीं करता, क्योंकि, अहिंसा तो सच्चे शौर्य्य-रूपी ढाल की दूसरी बाजू ही है। ऐसा न हो तो उस अहिंसा को अनर्थरूप समझना चाहिये।

[—"जैन" से अनूदित]

मेरी यूरोप-यात्रा

[श्री इन्दरचन्द सुचन्ती, बी० ए०, बी० एल०]

अन्तमें मेरे यूरोप जानेका दिन निश्चित हो ही गया और इटालियन जहाज़ "कौन्टि रोसो" में, जो बम्बईसे २० सितम्बर १९३५ को जानेवाला था, स्थान नियत कर लिया गया। हमारे साथ हमारे मित्र डॉक्टर महेश्वरी प्रसाद सिन्हा थे। वे डाक्टरी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने वीयना जा रहे थे। इसी बीच में इटली और अबिसीनिया का युद्ध छिड़ गया और कई मित्रों की राय यह हुई कि मैं इटालियन जहाज़से न जाऊं। मुझे तो किसी प्रकार का भय का कोई कारण नज़र नहीं आया, इसलिये मैं मौन धारण किए रहा, परन्तु एकाएक डाक्टर साहब का तार मिला कि इटालियन जहाज़ मे न जाकर वह पी० एन्ड ओ० स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके जहाज़ से ता० २८ सितम्बर को जायंगे और उसी दिन मुझे भी चलना पड़ेगा। हम लोगों ने यथा समय बम्बई पहुंच कर टिकट इत्यादि का समस्त प्रबन्ध कर लिया।

२८ सितम्बर को हमारा जहाज़ 'स्ट्रेथर्ड' (Straithard), जो २२५०० टन का था, बम्बई से १ बजे दिन को रवाना हुआ। उस समय का बम्बईका दृश्य, जब कि जहाज़ भारतवर्ष का किनारा छोड़ता है, वर्णनातीत है। हज़ारों आदमियों की भीड़, प्रेम के आंसू, वियोग की आहें, सुन्दर-सुन्दर फूलों की मालाओं और गुल-दस्तों से शुभाशीर्वाद और फिर अन्तिम बिदा! हमारे हृदय में भी थी उमड़ती हुई उमङ्ग—नवीन स्थानों को देखने की; चिन्ता भी थी, क्योंकि एक गुरुतर कार्य का भार सिर पर था; उदासी भी थी, क्योंकि इतने काल तक प्रियजनों से अलग रहना था और हिचकिचाहट भी थी, क्योंकि यात्रा लम्बी थी और हमारे परिवार में यह प्रथम ही विदेश-यात्रा थी।

पी० एण्ड ओ० कम्पनी की जहाज़ों में प्रायः दो क्लास रहते हैं। किसी-किसी में प्रथम और टूरिस्ट (Tourist) क्लास रहते हैं। द्वितीय और टूरिस्ट श्रेणी के किराये में काफ़ी फ़र्क रहता है, लेकिन देख-रेख, व्यवस्था और आराम प्रायः एक सा होता है।

स्ट्रेथर्ड जहाज़ में प्रथम और टूरिस्ट श्रेणी हैं और हमारा टिकट टूरिस्ट क्लास का था। जहाज़ से बम्बई का दृश्य बड़ा मनोरम और सुन्दर प्रतीत होता है। ताजमहल होटल की विशालता और भारत-द्वार (Gateway of India) की बनावट तथा झूलता हुआ बगीचा, (Hanging Garden) ये सब बड़े ही आकर्षक हैं।

जहाज़ों में प्रायः एक केबिन (कमरे) में ३ या ४ यात्रियों के रहने का प्रबन्ध रहता है। सब सामान बड़ी सावधानी से अलग-अलग यात्रियों के कमरे में रख दिया जाता है जिससे कुछ भी असुविधा नहीं

होती है। दीवाल में नक्शा लगा रहता है जिससे सुगमता से स्थान का पता चल जाता है। स्नान करने का भी प्रबन्ध बहुत ही उत्तम है। बराबर गर्म और ठंढा पानी नल में जारी रहता है।

खाने का भी समय बिल्कुल नियत रहता है। सवेरे आठ बजे जलपान, १ बजे खाना, ४ बजे चाय और कॉफी और रात में ७-३० बजे भोजन। लड़कों का खाना सुबह, दोपहर, और रात में वयस्कों के खाने के समय से आध घंटा पहिले ही प्रारम्भ हो जाता है। समय होने पर घंटी बजती है और यात्री अपने-अपने स्थान पर, जो भोजनालय में नियत कर दिया जाता है, पहुंच जाते हैं। नित्य खाद्य-पदार्थों की छपी हुई सूची टेबल पर आ जाती है जिससे यह पता लग जाता है कि उस दिन क्या-क्या सामान तैयार है। ६ यात्रियों पर एक नौकर भोजन परोसने को रहता है जो आज्ञानुसार भोजन लाता रहता है। हर जहाज़ में एक छोटा छापाखाना भी रहता है।

यात्रियों में विशेषतर मांसाहारी ही रहते हैं, फलाहारियों की संख्या तो बहुत कम रहती है। हमारी जहाज़ में फलाहारियों की संख्या क़रीब एक दर्जन थी और इसलिए हम लोगों का भी कार्ड अलग छपने लगा तथा हम लोगों के खाने का विशेष प्रबन्ध किया गया। सच बात तो यह है कि खाने की सामग्री काफ़ी रहती है जिससे यात्रियों को कोई कष्ट नहीं होता। सुनते हैं कि इटालियन जहाज़ों में फलाहारियों को बहुत ही उत्तम भोजन मिलता है।

खेलने का भी सामान जहाज़ पर रहता है। टेबल टेनिस व रिंग का खेल प्रायः होता रहता है। ड्राफ्टस और शतरञ्ज का भी इन्तज़ाम रहता है लेकिन पढ़ने-लिखने से यात्रियों का जो समय बचताहै वह प्रायः ताश खेलने में ही व्यतीत होता है। रात के भोजन के बाद नित्य नाच होता है और मनोरञ्जनार्थ एक या दो बार Dog-race (कुत्तों की रेस) भी हो जाती है। नाम तो 'कुत्तों की रेस' है, लेकिन वास्तव में युवतियाँ नम्बर के अनुसार आगे बढ़ती हैं और पीछे हटती हैं और कुछ रुपयों की हार-जीत हो जाती है।

एक छोटा सा पुस्तकालय भी रहता है और प्रतिदिन दो घंटे तक पुस्तकाध्यक्ष से पुस्तकें मिल सकती हैं। लड़कों के खेलने का एक पृथक् गृह रहता है। हजामत की दूकान, स्नान करने के लिए एक छोटा सा तालाब, दवाखाना जिसमें सुयोग्य डॉक्टर रहता है, प्रतिदिन के व्यवहार की भिन्न-भिन्न चीज़ों की दूकान और कपड़े धोने आदि के सभी इन्तज़ाम रहते हैं। बेतार का तार (Wireless) भी लगा रहता है जिससे संसार के समाचार नित्य मिल जाते हैं और बोर्ड पर यात्रियों की सूचना के लिए छाप कर टांग दिये जाते हैं। इससे पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि जहाज़ एक छोटे से नगर के समान होता है जिसमें सब तरह का प्रबन्ध रहता है और सब काम सुचारु-रूप से चलता है।

जाने के समय कुछ मित्रों ने कहा था कि समुद्र का रोग (Sea-Sickness) होना अनिवार्य है। मुझे भी भय था, क्योंकि इससे कष्ट काफ़ी होता है। सिर में चक्कर, और उल्टी ३-४ दिन तक जारी रहती है जिससे यात्री दुर्बल हो जाता है। भाग्य से समुद्र बड़ा ही शान्त था जिससे हम लोगों को एक दिन भी तकलीफ़ नहीं हुई। इङ्गलिश चैनल और हुक ऑफ हौलेण्ड (English Channel & Hook of Hoeland) इस रोग के लिए बहुत बदनाम हैं, परन्तु यहां भी हम लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ।

बम्बईसे रवाना होनेके पांचवें दिन हम लोग अदन पहुंचे। यहां की आबहवा, रहन-सहन हिन्दुस्थान ही जैसा है। इस बन्दरका दृश्य बड़ा सुहावना है। सिक्का भी यहां हिन्दुस्थानी ही चलता है। इस बन्दर में किसी प्रकार का कर नहीं लगता है जिससे चीज़ें बड़ी सस्ती मिलती हैं। यहाँ जहाज़ों में तेल भरा जाता है। नमक बनाने के यहाँ कईएक कारखाने हैं। यह बन्दर भौगोलिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व रखता है। लोग हिन्दुस्थानी और अरबी भाषाएं बोलते हैं। यहां जहाज़ प्रायः ५ घण्टे ठहरा और हम लोगों ने सारे शहर को मोटरमें २-३ घण्टे में घूम-घूम कर देखा और फिर जहाज़ पर वापिस आ गए।

अदन से तीसरे दिन सूदान के बन्दरगाह में पहुंचे। थोड़े ही दिनों में यह बन्दरगाह अत्यन्त ही सुन्दर हो गया है। हम लोगों का जहाज़ करीब ३ घंटे यहां ठहरा और इसी बीच में हम लोगों ने यहां के सब प्रधान स्थानों का निरीक्षण किया। अरबों की बस्ती, जो खुले स्थान में थी, बड़ी आकर्षक थी। यहां हड्डी की चीज़ें, जिनमें खुदाई का काम रहता है, कसरत से तैयार की जाती हैं। उसके बाद हम लोगोंने स्वेज़ नहर (Suez Canal) को पार किया। इटली और अबिसीनिया का युद्ध छिड़ जाने से इसकी रक्षा के लिये आजकल विशेष प्रबन्ध है। स्वेज़ नहर के एक ओर रेगिस्तान है और दूसरी ओर कर्मचारियों के रहने के छोटे-छोटे बंगले। उसी ओर मिश्र की रेलगाड़ी भी चलती है। चार दिन के बाद हम लोग सईद बन्दर में पहुंचे। सईद का बन्दरगाह एक छोटा किन्तु सुन्दर स्थान है और बहुत ही साफ़-सुथरा है। यहां के मनुष्य बड़े सुन्दर होते हैं। स्त्रियों का बुर्का एक विचित्र ढङ्ग का होता है। यहां अंग्रेज़ी सिक्का चलता है। हम लोगों के साथ मिश्र के १६ वर्षीय राजकुमार फ़ारूक़ * भी उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिये यूरोप जा रहे थे। बड़ी चहल-पहल थी। समूचा बन्दर बिजली की बत्तियों से जगमगा रहा था। सैकड़ों मोटरें इधर-उधर दौड़ रही थीं। सजी धजी नौकाएं हमारे जहाज़ के चारों ओर मंडरा रही थीं। किसी में सुन्दर गान हो रहा था; किसी में भिन्न-भिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे; किसी में स्त्रियां बैठी हुई रुमाल हिलाहिला-कर अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन कर रही थीं; किसी में स्कूल-कालेज के विद्यार्थी करतलध्वनि कर अपने परम-प्रिय राजकुमार को अभिनन्दन कर यह शुभेच्छा प्रकट कर रहे थे कि उनकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो। बड़ा ही विचित्र दृश्य था।

तीसरे दिन हम लोग माल्टा पहुंचे। यहाँ भी जहाज़ प्रायः ४ घंटे ठहरा। बहुत पुराना और सुन्दर टापू है। यहां के निवासी बड़े हृष्ट-पुष्ट नज़र आये। यहां की भाषा माल्टीज़ है, लेकिन अधिकांश मनुष्य अंग्रेज़ी भाषा भी जानते हैं। यहां बहुत ही सुन्दर गिरजाघर हैं और रोमन-कैथलिक धर्म का यह बड़ा केन्द्र है। यहां भी अंग्रेज़ी सिक्का चलता है। फल यहां बहुत स्वादिष्ट होते हैं और सस्ते भी मिलते हैं।

हमारी समुद्र-यात्रा मार्सेल में समाप्त हो गई। हम लोग यहां सवेरे ८ बजे उतरे और करीब २ घंटे का समय चुङ्गीघर में सामान की जांच करवाने में व्यतीत हो गया। मार्सेल फ़ान्स का द्वितीय नगर है और व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र है। यहां बहुत बड़े

* अभी गत मास मिश्र के राजा फ़आद की मृत्यु हो गयी है और कालचक्र ने 'राजकुमार फ़ारूक़' को अब 'राजा फ़ारूक़' बना दिया है।

बड़े कारखाने हैं और सारे नगर में बड़ी चहल-पहल रहती है। यहाँ ही हम लोगों को पहिले पहल पश्चिमीय जातियों का रहन-सहन, तथा आचार-व्यवहार देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अधिकांश यात्री यहाँ ही उतर जाते हैं। ऐसा करने से वे दूसरे ही दिन लन्दन पहुंच जाते हैं। नहीं तो मार्सेल से जहाज़ में जाने में ७ दिन और लगते हैं। हमने दिनभर घूमकर शहर को देखा और सन्ध्या समय पेरिस के लिये प्रस्थान किया। यहाँ की रेल के डब्बों में हिन्दुस्थान की रेल के डब्बों से बहुत अन्तर रहता है। सब डब्बों में गैस का इन्तज़ाम रहता है जिससे गाड़ी गर्म रहे। यों तो यूरोप की रेलगाड़ियों का इन्तज़ाम भारत से कहीं अच्छा है; लेकिन जैसी सुविधा भारत में है वैसी सुविधा वहां मिलना बहुत कठिन है। सेकेन्ड क्लास का टिकट रहने पर भी सोने का इन्तज़ाम नहीं था क्योंकि उसके लिये अलग प्रबन्ध करना पड़ता है और भाड़ा भी एक रात्रि के लिए करीब यहाँ के १०) के बराबर देना पड़ता है।

सुबह सात बजे हम लोग पेरिस जा पहुंचे और सीधे ही लंदन के लिए दूसरी गाड़ी में सवार हो गये। इंगलिश चैनल पार कर करीब ४॥ बजे जगद्विख्यात विक्टोरिया स्टेशन पर पहुंचे। बम्बई का स्टेशन भी इसी नाम का है। वह भी सुन्दर और विशाल है, लेकिन यहां की सुन्दरता अद्वितीय है। हमने मार्सेल से ही अपने स्वजातीय भाई सेठियाजी को तार दे दिया था। वे स्टेशन पर उपस्थित थे और हम को अपने निवासस्थान पर ले गये। उनके यहां दो दिन ठहर कर हम ८ नम्बर वेलसाइज़ एवेन्यू में जाकर रहने लगे। वहां जाने का प्रधान कारण आर्य-भवन के निकट रहना था। दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला को कौन नहीं जानता? फलाहारी हिन्दुस्थानियों के कष्ट निवारणार्थ आपने एक विशाल भवन, ३० नं० वेलसाइज़ पार्क, खरीदा है। इस सुन्दर भवन में १५ मनुष्यों के ठहरने का प्रबन्ध है। आजकल इसके प्रबन्धकर्त्ता श्री मगो भाई पटेल हैं। मुझे यहां स्थान नहीं मिला, परन्तु भोजन का मैंने यहीं इन्तज़ाम कर लिया जिससे मुझे बड़ी सुविधा हो गई।

यहां के पुरुष बड़े परिश्रमी और देशप्रेमी हैं। समस्त कार्य नियत समय पर होता है। हज़ारों आदमियों की भीड़ रहने पर भी शोर और गड़बड़ का नामोनिशान नहीं! अंग्रेज़ों की कर्त्तव्यपरायणता और संगठन-शक्ति ने ही आज उनको संसार की जातियों में ऊंचा स्थान दिया है।

लंदन जनसंख्या के विचार से संसार में सब से बड़ा नगर है। यहाँ की ज़मीन के अन्दर चलनेवाली गाड़ी (Tube-Railway) अत्यन्त ही आश्चर्यजनक चीज़ है। प्रायः समूचे लंदन में यह गाड़ी दौड़ती है और किराया भी काफ़ी सस्ता है। प्रबन्ध भी बहुत अच्छा है। हर दो मिनट पर गाड़ी छूटती है और उसका सब काम बिजली से होता है। कहा जाता है कि जब से यह रेल खुली है—जिसे प्रायः ३५ वर्ष हुए—तबसे आज तक एक भी दुर्घटना नहीं हुई है। मुझे जर्मनी और फ्रांस की भी रेलों पर घूमने का अवसर मिला था, लेकिन यहां की रेल निःसन्देह सबसे सुरक्षित और सुखप्रद प्रतीत हुई।

लन्दन की पुलिस की भी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। यों तो उनकी प्रशंसा पहले भी काफ़ी सुन चुका था, लेकिन मेरे अनुभव ने इस विचार को और भी दृढ़ कर दिया। सिपाही बड़े ही नम्र होते हैं और किसी प्रकार की सेवा करने में उनको तिलमात्र भी

हिचकिचाहट नहीं होती। यहां प्रतिदिन समाचारपत्र तीन बार निकलता है। प्रायः सभी मनुष्य समाचार पत्र पढ़ते नजर आये। शिक्षित-समाज का यह था—एक मनोरम दृश्य !

मुझे छोटे राजकुमार, ड्यूक आफ़ ग्लाउसेस्टर (Duke of Gloucaster) का विवाहोत्सव देखने का सुअवसर मिला। नववधू के पिता का देहान्त हो जाने के कारण विशेष आडम्बर का त्याग कर दिया गया था, तब भी लाखों मनुष्यों की भीड़ बकिंघम राज-महल के सामने विवाहोत्सव देखने के लिये लालायित थी। १५ मिनट तक समस्त राजपरिवार को राज-महल के बरामदे से एकत्रित जनता को अभिवादन करते हुए देखने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भाग्यवश जिस मुक़दमें को लेकर मैं लन्दन गया था वह प्रिवी कौंसिल (Privy Council) में लन्दन पहुंचने के १५ दिन के भीतर ही समाप्त हो गया और हमारे पक्ष की जीत हो गयी। इससे मुझे भ्रमण करने का काफ़ी समय और काफ़ी उत्साह भी मिल गया।

पार्लियामेन्ट (Parliament) की ईमारतों, बरमिंघम के बड़े कारखानों और ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज के जगत-प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों (Oxford & Cambridge Universities) का वर्णन कर मैं पाठकों का समय लेना नहीं चाहता। मुझे एक बात जो विलायत में बड़ी अच्छी मालूम हुई वह थी वहां का सद्व्यवहार जो विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच में है। आजकल भारत में इसकी बड़ी कमी है।

इङ्गलैण्ड का ग्राम जीवन भी बड़ा सुन्दर और शिक्षाप्रद है। सैंकड़ों मील तक अलकतरे की सड़कें बनी हुई हैं जिसमें धूल और गन्दगी का नामोनिशान नहीं। वहां के जानवर भी बड़े मज़बूत नज़र आये। ग्रामवासियों में सफ़ाई का ज्ञान काफ़ी है और वर्तमान जीवन के सब सुख और सामग्री ग्रामों में मिलते हैं।

लन्दन में हम क़रीब १॥ महीने ठहरे। इसी बीच भारत के वीर नेता और वर्तमान युग के महा-पुरुष, पं० जवाहरलाल नेहरू का जर्मनी से आगमन हुआ। लन्दनमें उपस्थित भारतवासियों ने उनका और उनकी कन्या, कुमारी इन्दिरा का स्वागत स्टेशन पर किया और उन्हें एक चाय-पार्टी Quadrant Restaurant में दी। पंडित नेहरू का बड़ा ओजस्वी और सारगर्भित भाषण हुआ। बहुत से अंग्रेज़ भाई भी इस जलसे में सम्मिलित थे।

हमको हिन्दुस्थान जल्दी लौटना था इसलिये जर्मनी देखने के लिये प्रस्थान किया। साथ में हमारे मित्र श्रीयुत सेठियाजी भी थे। हमने अपना टिकट Thomas Cook & Co. के मार्फ़त लिया था इससे घूमने फिरने का समस्त प्रबन्ध बड़ी सुगमता से हो गया। यह कम्पनी एक बहुत बड़ी संस्था है और संसार में कोई भी प्रसिद्ध स्थान ऐसा नहीं है जहां इसकी २ या ३ शाखाएं न हों। सच तो यह है कि इस कम्पनी ने यात्रा को बहुत सुगम और आकर्षक बना दिया है।

लन्दन से रवाना होकर हम लोग हैम्बर्ग (Hamburg) पहुंचे। यह सुन्दर नगर अल्स्टर नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यह बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र है, क्योंकि यहां किसी प्रकार का कर नहीं लगता। जगत्-प्रसिद्ध हेज़नबेक की सर्कस कम्पनी यहां स्थायी रूप से वर्तमान है। यहां हवाई जहाज़ों का Hansa Line नामक कारखाना बहुत बड़ा है। ३ दिन यहां ठहर कर बर्लिन के लिये प्रस्थान किया। हैम्बर्ग से बर्लिन Hamburg Express से गये जो दो घंटे में प्रायः

१५० मील चलती है। सबसे अश्चर्यजनक चीज़ इसमें यह है कि जब गाड़ी चलती रहती है तब भी यात्री संसार के किसी कोने से टेलीफोन द्वारा बात-चीत कर सकता है।

बर्लिन जर्मनी की राजधानी है। यहां की सड़कें अद्वितीय हैं और संसार में अपना सानी नहीं रखतीं। बहुत ही साफ़ सुथरा नगर है। पोस्टदम, जो बर्लिन से २४ मील पर है, एक दर्शनीय स्थान है। यहां कैसर का राजमहल है जो किसी समय पूर्ण ऐश्वर्य का केन्द्र था। आजकल यहां पर कुछ प्राचीन कला-सामग्री का संग्रह है, क्योंकि महायुद्ध के बाद जर्मनी से राजतन्त्र ही उठ गया अतः यह प्राचीन राजमहल इसी उपयोग में ले लिया गया। यह राजमहल जर्मन कला का एक उज्ज्वल नमूना है।

बर्लिन में दो दिन ठहर कर हम म्यूनिक पहुंचे। म्यूनिक एक बहुत पुराना नगर है और यहां की ईमारतें, विशेषतः यहां का विश्वविद्यालय, संसार प्रसिद्ध हैं। हिटलर के समय में इस नगर ने यथेष्ट उन्नति की है। अनेक भारतीय विद्यार्थी यहां उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते हैं।

जर्मनी में दर्शकों के लिये बहुत सुविधाएं है। ७ दिन जर्मनी में ठहरने से रेलगाड़ी का किराया आधा लगता है। जर्मन मार्क (सिक्का) भी दर्शकों को आधे दाम में मिलता है। लेकिन प्रतिदिन ५० मार्क—जो अपने यहां के २५) के बराबर है—से ज्यादा नहीं। जर्मनी की सरहद पर जर्मन आफ़ीसर नज़र आये। उन्होंने 'मनी-सर्टिफिकेट' मांगा और सब रुपयों की तलाशी ली। जर्मनी के वर्तमान नियम के अनुसार हर मनुष्य को जर्मनी की सरहद में प्रवेश करने के पहिले अपने पास के रुपयों और उधार की चिट्ठी चुंगी के ऑफ़ीसर को बतानी पड़ती है। उसे जांच कर वह एक दूसरा सर्टिफिकेट देता है जिसे मनी-सर्टिफिकेट कहते हैं। जर्मनी से बाहर निकलने पर सरहद पर यह सर्टिफिकेट दिखलाना पड़ता है और रुपयों की तलाशी ली जाती है, जिससे आप जितना रुपया लेकर जर्मनी आये हों उतना या उससे कम ले जा सकते हैं, ज्यादा नहीं। आज कल हिटलर जर्मनी का सर्वेसर्वा है और ४।५ वर्ष के अल्प समय में ही उसने जर्मनी की काया-पलट कर दी है। आज हम जर्मन राष्ट्र को स्वाभिमान तथा स्वावलम्बन के भावों से दीक्षित पाते है।

जर्मनी से हम स्विटज़रलैंड में आये और यहां के कईएक नगरों इत्यादि में, Lugern, Interlaken, Basel, और Zurich इत्यादि में, खूब घूमे। आल्प्स पहाड़ का बना दृश्य देखने ही योग्य है। जगह-जगह रङ्ग-बिरंगे जल के अनोखे चित्र, झरनों की झरझराहट, नयनों को चकाचौंध कर देती हैं। मालूम होता है कि प्रकृति देवी ने यहां अपने रचना—कौशल का विशेष परिचय दिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ साथ अन्य सुख की सामग्री भी मनुष्य ने एक ही जगह एकत्रित कर दी है। Pilatus kulm को, जो Lugern से ६८०० फ़ीट ऊंचे पहाड़ पर है, हम देखने गये थे। छोटी-छोटी रेलगाड़ियों के डब्बे दार्जिलिंग-यात्रा की याद दिला रहे थे। वहां पहाड़ के ऊपर हिम गिरने का अपूर्व दृश्य ३ घंटे तक देखते रहे।

लौटते समय ४ दिन के लिये पेरिस मे ठहरे। पेरिस की चर्चा क्या करूं, फ़ैशन की आखिरी सीमा बस यहीं है। क़दम—क़दम पर शराब की दूकानें और

भोग-विलास की समस्त आकर्षक सामग्री। यहां के मनुष्य भी जर्मनी की नाईं अच्छे हृष्ट-पुष्ट नज़र आये। फ्रांस का जीवन इंगलैण्ड की अपेक्षा दुगना महंगा है।

दिसम्बर में फिर प्रिय भारतवर्ष का दर्शन हुआ। कहाँ तो यूरोपियन देशों का स्वतन्त्र वातावरण और कहाँ फिर वही पराधीनता की मज़बूत ज़ञ्जीर! मुझे तो यह भ्रम होता है कि एक सुन्दर स्वप्न देख रहा था जो शीघ्र ही समाप्त हो गया।

राजस्थान

अतीत— व —वर्तमान

[श्री मोतीलाल नाहटा, 'विश्वेश']

हे प्रताप के अमर धवल यश, मेवाड़ी वीरों की शान !
हे आज़ादी के मन्दिर, हे स्वतन्त्रता के यज्ञ महान !!

देश-प्रेम-मतवालों के बलिदानों के सजीव इतिहास !
तेरी तीक्ष्ण कृपाणों से चमका था भारत का आकाश ॥

तेरे शैल शिखर, तेरे सूने औ' जीर्ण-शीर्ण प्रासाद ।
अरे मनस्वी ! आज दिला देते तव उन्नत युग की याद ॥

सदियों तेरी बलिवेदी पर जली महा विप्लव की आग ।
जौहर की ज्वाला में हँस-हँस खेली बालाओं ने फाग ॥

तेरी मिट्टी के कण-कण से प्रगटे बप्पा दुर्गादास ।
तेरा बच्चा-बच्चा निकला होरेसस औ' ल्योनीडास ॥

हल्दी घाटी के प्राङ्गण में कर अपना सर्वस बलिदान ।
आज़ादी के दीवानों ने तुम्हें बनाया तीर्थस्थान ॥

क्या न व्यर्थ ही जग करता उस थर्मापोली का अभिमान ?
थर्मापोली बनो तुम्हारी घाटी-घाटी राजस्थान !!

अरे ! विष भरे उस प्याले की वह कठोर पर पावन याद ।
राज महीषी मीरा ने अपनाया था जिसको साह्लाद ॥

किरण देवि का भुला सकेगा कैसे जग रणचण्डी-ठाठ ।
"क्षमा करो मा!" कह, चरणोंमें झुका अखिल भारत सम्राट् ॥

बणिक वंश भूषण भामाशा सदृश हुए अर्थ-दानी ।
सब कुछ देकर भी रक्खा था तेरा संकट में पानी ॥

गये प्राण, हाँ गये, हुआ नहिं लेकिन वह हमीर-हठ-त्याग ।
जीवन रहते बुझने दिया न आज़ादी का दिव्य चिराग ॥

राजपूत-गौरव-प्रतिमा वह अरावली का पुण्य-प्रदेश ।
नित्य यहाँ सजता था वीरों का बाना केशरिया वेष ॥

अरे पहाड़ी नदियों का कल-कल के मिस वह भैरव नाद ।
श्रान्त सैनिकों में भरता था स्फूर्ति, दूर कर विषम विषाद ॥

राजपूत-जीवन-सन्ध्या का वह बुझता प्रदीप चित्तौड़ ।
शिखा ज्वलित रक्खी वीरों ने लगा-लगा प्राणों की होड़ ॥

वज्र हृदय राणा भी विचलित हुए देख जिसका अवसान ।
स्वामि भक्त चेतक! तू सचमुच धन्य, धन्य तव जीवन दान ॥

× × ×

था अतीत उन्नत ऐसा उसकी स्मृति भी भरती उत्साह ।
तेरा वह उत्कर्ष और वैभव लख जग करता था डाह ॥

पर अतीत औ' वर्त्तमान में दिखलाई पड़ता क्यों भेद ?
जिसने जानी नहीं निराशा, उसके मुख पर कैसा खेद ??

त्याग, वीरता, स्वाभिमान सब बने स्वप्न की बात समान !
देश, धर्म्म, नारी-मर्य्यादा रक्षा हित न आत्म बलिदान !!

तेरे दुर्गों पर दिखलाई पड़ते हैं नहिं लाल निशान ।
आज वीरता बिधवा, उसके नष्ट हुए सारे अरमान ॥

तेरी नदियों के पानी का, अरे शान्त क्यों आज उफान !
गूंजा जय-नादों से जो क्यों वह पर्वत प्रदेश सुनसान !!

वर्षों रिपु दल का कर शोणित पान, बुझी थी जिनकी प्यास।
एक बार, हाँ, एक बार वे आज बनी हैं पुनः उदास ॥

समराङ्गण में जो वीरों के पार्श्व देश में थी सोतीं।
पड़ म्यानों में आज बिचारी फूटी किस्मत को रोतीं ॥

युद्धस्थल में पीठ दिखाना रहे समझते मृत्यु समान।
तलवारों की धारों पर सो जाना जिनको था आसान ॥

सिंह शावकों के सँग खेला करते थे जो तेरे लाल।
सुन अपमान भरे शब्दों को लेते थे जो जीभ निकाल ॥

बने भीरु कायर, वे, चूहों से भी बदतर उनका हाल।
जगह-जगह पद दलित हो रहे, चूं करने की भी न मजाल ॥

जहाँ चारणों के मुख से सुन पड़ता वीरों का यश गान।
'मदिरा, मदिराक्षी' के गीतों से अब होते कलुषित कान ॥

भूतकाल औ' वर्त्तमान, ये तव जीवन के दो अध्याय।
देखो, कितना एक चमकता, कितना म्लान दूसरा हाय !!

जागो ! जागो ! सुप्त सिंह, अब गूंज उठे तेरा स्थान।
उसमें डोल न पावें क्षण भी वे गर्दभ, शृगाल औ' श्वान ॥

शान्त उदधि में फिर से आए, अरे, प्रलयकारी तूफ़ान।
जले महाविप्लव की ज्वाला, मिले न जिसका फिर उपमान ॥

एक बार, बस एक बार, कर दो उस नवयुग का निर्माण।
गूंज उठे 'विश्वेश' विश्व में, जय जय जय जय राजस्थान !!

—:o:—

स्वास्थ्य के सुनहले नियम

[डा० जेठमल भन्साली, एम० बी०]

प्रकृति ने कुछ कानून बनाये हैं, और उन कानूनों के पालन के लिये कुछ कठोर नियम। यदि हम उन कानूनों के विरुद्ध जाते हैं तो उसका हमें कठिन दण्ड भी भोगना ही पड़ता है।

चूंकि हमें संसार में रहना है अतएव प्रकृति के कानूनों का पालन करना ही होगा। वे कानून क्या हैं, उनको जानना हमारे लिये बहुत जरूरी है।

परन्तु आजकल नियमों की अवहेलना करना तो मनुष्य जातिका स्वभाव-सा हो गया है, और उसका नतीजा भी आपके सामने है। बीमारियाँ दिन-प्रति-दिन बढ़ रही हैं और छोटी-सी उम्र में ही मनुष्य इस लोक से विदा हो जाता है। और यदि रहता भी है तो एक रोगी की नाँईं, जिसको संसार में कोई आनन्द नहीं—कोई सुख नहीं।

इन प्रकृति के नियमों को पूर्ण रूपसे पालन करने के लिये हमें आदतें डालनी होंगी। सब से उत्तम तो यही है कि ये आदतें बचपन ही से डाली जाँय क्योंकि जो छाप बच्चों के दिमाग पर जम जाती है वह जन्म-भर नहीं हट सकती।

स्वास्थ्य के नियमों को हम इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं:—

(क) खान पान सम्बन्धी—

(१) बिना अच्छी तरह चबाये कोई चीज़ न खावें।

(२) धीरे-धीरे एवं प्रसन्न चित्त से भोजन करें।

(३) खाते समय दिमागी काम न करें और न मानसिक चिन्ता करें।

(४) बिना अच्छी तेज़ भूख लगे न खाँय। जिस चीज़ को खाने की तबियत न हो उसे बिल्कुल न खावें।

(५) खाने के समय अपने पास खूब अच्छी सोसाइटी-मण्डली होनी चाहिये। भोजन के स्थानका वातावरण स्वच्छ होना चाहिए।

(६) तम्बाकू पीना भी आजकल के नवयुवकों में एक फैशन हो गया है। जिसे देखो, जिधर देखो, धुआँ निकाल रहा है। सब से अच्छा तो यही है कि इसे तुरन्त छोड़ दिया जाय। यदि किसी तरह भी इस आदत को न छोड़ सकें तो हुक्का काम में लायें। तम्बाकू में निकोटीन (Nicotine) नामक ज़हर होता है, वह हुक्के के पानी में घुल जाता है अतएव आप पर पूरा असर नहीं कर सकता। तम्बाकू पीनेवालों को बहुत

सी ऐसी शिकायतें हो जाती हैं जो जन्म भर उनका पीछा नहीं छोड़तीं, जैसे: —

—खांसी आदि;

--पेट की शिकायतें:

—आंख की तकलीफ;

—हाथ पैरों में कम्पन;

—माथा दुखना आदि।

'निकोटीन' रक्त वाहिनी नलियों को मोटा कर देता है; फल यह होता है कि वे अपना काम उचित रूप से नहीं कर सकतीं एवं रक्त दबाव तथा अन्य कई प्रकार की बीमारियां होने की बहुत सम्भावना रहती है।

तम्बाकू खाना तो और भी बुरा है। जीभ का या होठों का 'कैन्सर' (Cancer of lip or tongue) तम्बाकू खाने वालों के हो ही जाता है।

बच्चों को तो कभी तम्बाकू पीना ही न चाहिये। २१ वर्ष के पहले तो तम्बाकू पीना बहुत ही खराब है।

प्रायः देखने में आता है कि लोग टट्टी जाते समय तम्बाकू जरूर पीते हैं। उनका कहना है कि बिना तम्बाकू पिए उनको टट्टी उतरती ही नहीं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि तम्बाकू ही तो उनके कब्ज़ का कारण है। सुबह में तो कभी तम्बाकू पीनी ही न चाहिए। खाने के बाद तम्बाकू पीने में कम नुक़सान होता है।

(ख) नींद सम्बन्धी।

हरएक प्राणी के लिये सोना ज़रूरी है। काम करते-करते दिमाग एवं शरीर दोनों थक जाते है। एवं उस थकावट को दूर करने के लिये सोना बहुत ही ज़रूरी है।

बच्चों एवं बूढ़ों को ज्यादा सोना चाहिये। जवानों के लिये ६।७ घण्टे की नींद काफ़ी है। नींद के सम्बन्ध में हमें कई बातें जान रखनी चाहिये—

(१) सिर के नीचे तकिया ज़रूर होना चाहिये;

(२) एक कमरे में अधिक आदमियों को न सोना चाहिये, क्योंकि इससे कमरे की हवा गन्दी हो जाती है एवं गन्दी हवा में श्वास लेना बहुत ही बुरा है।

(३) एक ही बिछौने पर दो आदमियों को न सोना चाहिये। इससे एक के मुंह की गन्दी हवा दूसरे के मुंह में जाती है। स्वच्छ हवा का होना बहुत ज़रूरी है। हवा ही तो फेफड़े के अन्दर जाकर खून को साफ़ करती है;

(४) दिन में सोना अच्छा नहीं। हां, गरमी के दिनों में थोड़ी देर के लिये दिन में भी सो सकते हैं;

(५) खाने के बाद तुरन्त ही सोना अच्छा नहीं।

(ग) उपवास सम्बन्धी।

उपवास करना शारीरिक स्वास्थ्य को क़ायम रखने के लिये बहुत ही ज़रूरी है। दूषित खान पान आदि के कारण जो ज़हर हमारे शरीर के अन्दर घुस जाते हैं, उपवास करने से वे दूर हो जाते हैं। इसलिये महीने में एक दो उपवास करना हरएक के लिये ज़रूरी है परन्तु बच्चों और बूढ़ों के लिये नहीं। उपवास २४ घण्टे का ही होना चाहिये। उपवास करने के पहले दिन, रात को केलोमेल (Calomel) की पुड़िया खा लेनी चाहिये, जिससे पेट साफ़ रहे। सुबह को दस्त साफ़ लग जाय। प्यास लगने से पानी पी सकते हैं। उपवास के समय शरीर को ज्यादा मेहनत—शारीरिक या मानसिक-द्वारा

कष्ट न देना चाहिए। प्रमेह (Diabetes) के लिये तो उपवास बहुत ही फ़ायदा करता है। लम्बे उपवास अठाई (आठ दिन) या उससे भी ज्यादा-ख़तरे से ख़ाली नहीं। इन लम्बे उपवासों को खूब सोच विचार कर करना उचित है। आजकल यह भी देखा गया है धार्मिक प्रवृति की बहुत सी गर्भवती स्त्रियां इन लम्बे उपवासों को कर डालती हैं। उनका ऐसा करना स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही बुरा है।

(घ) पेट की सफ़ाई।

हम रोज़ खाते हैं। उसका सार तो रक्त में मिल जाता है एवं कुड़ा करकट मल हो कर गुदा के रास्ते बाहर निकल जाता है। हम रोज़ खाते हैं इसलिये यह भी ज़रूरी है कि पेट की सफ़ाई भी रोज़ हो। परन्तु हमारा खान पान इतना दूषित हो गया है कि क़ब्ज़ की शिकायत साधारण सी बात हो गयी है। इसका मतलब यह हुआ कि कुड़ा करकट बाहर तो नहीं निकल रहा है परन्तु हमारी अंतड़ियों के अन्दर पड़ा पड़ा सड़ रहा है। नतीजा यह होता है कि पेट सम्बन्धी बीमारियां हमारे शरीर में अपना अड्डा जमा लेती हैं। इसलिये यह ज़रूरी है कि पेट की सफाई पर हम पूरा ध्यान दें। जहां ज़रा सी भी शिकायत हो हम तुरन्त उचित इलाज करवायें। दिन भर गद्दी के सहारे पड़े रहना, न कभी घूमना न कभी कसरत करना—तब बताईये क़ब्ज़ी कैसे न हो?

(ङ) दांतों की सफ़ाई।

हम पान एवं "किरचें" तो दिन भर खाते रहते हैं, परन्तु दांतों की सफ़ाई कभी नहीं करते और करते भी है तो सिर्फ एक दो बार अंगुली फेर लेते हैं। नतीजा यह होता है कि दांतों की जड़ों में पीप पड़ जाती है (Pyorrhœa) और वहा पीप खाने के वक्त पेट में जाती है या खून में मिल जाती है।

बस रोग का सूत्रपात हो गया। नाना प्रकार की बीमारियां धीरे-धीरे अपना घर बना लेंगी। दांत साफ़ करने की आदत बचपन ही से डालनी चाहिये। चाहे आप नीम या बबूल के दातुन से साफ़ करें चाहे ब्रश से, दांत साफ होने चाहियें।

प्रकृति के नियम अनेक हैं। हम प्रायः उनको जानते हैं परन्तु उनकी परवाह नहीं करते। पर क़ानून भङ्ग करने के अभियोग में जब प्रकृति हमें दण्ड देना शुरू करती है तब हमारी आंखें खुलती हैं। परन्तु, "का वर्षा जब कृषि सुखाने"। आज ही से यह निश्चय कर लीजिये कि आप प्रकृति के नियमों के विरुद्ध न जायेंगे फिर आप देखेंगे कि प्रकृति किस तरह आपकी मदद करती है।

श्री इन्द्रचन्द सुचन्ती बी० एल० एडव्होकेट

आप बिहार शरीफ में सन १९२६ से वकालत कर रहे हैं। हालही में आप एक मुकद्दमे में इंगलैण्ड प्रिवीकौंसिल में गये थे। आप अच्छे स्पोर्टसमैन (खिलाड़ी) भी हैं और कई बार स्थानीय टेनिस चेम्पियन भी हुए हैं। आपके पिता राय साहब लक्ष्मी चन्दजी सुचन्ती, बिहार लोकल बोर्ड के चेयरमैन और डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मैम्बर भी हैं।

न्यू राजस्थान प्रेस।

जीवन बीमा और मारवाड़ी समाज

[*श्री शिवसिंह कोठारी, बी० कॉम०*]

हमारी अवनति का एक सबसे बड़ा कारण तो यह है कि हम समय के साथ नहीं चलते। कोई नवीन बात चाहे वह हमारे लाभ की ही क्यों न हो हम उसको उस समय तक ग्रहण नहीं करते जबतक कि हमको बाध्य होकर उसे ग्रहण न करना पड़े। प्रथम तो हम अपने मस्तिष्क को किसी नवीन वस्तु के लाभ व हानि समझने के लिये लगाते ही नहीं और यदि हम चेष्टा भी करें तो यह हमारी आदत हो गई है कि हम उसमें बुराई ढूंढने की फिक्र में लग जायं।

जीवन बीमा कोई नवीन वस्तु नहीं है। भारतवर्ष में भी बहुत समय से इसका प्रचार हो रहा है, और पिछले कुछ वर्षों से तो इसका प्रचार बहुत ही ज़ोरों से बढ़ रहा है। यूरोप और अमेरिका में तो प्रत्येक मनुष्य चाहे वह धनवान हो या गरीब जीवन बीमा कराना अपना कर्त्तव्य समझता है। जिस प्रकार रोटी खाना और पानी पीना मनुष्य के शरीर के लिए आवश्यक है ठीक उसी प्रकार संसार क्षेत्र में सफलता पूर्वक कार्य करने के लिए वे जीवन बीमा को आवश्यक समझते हैं *।

यदि जीवन बीमा कराना आवश्यक न होता तो उसको संसार में लोग इतना नहीं अपनाते। किन्तु शोक है कि हमारे मारवाड़ी भाइयों को इसमें कुछ भी लाभ नहीं दिखाई देता, जब कभी कोई कम्पनी का एजेण्ट उनके पास जाता है तो वे उसकी बात को पूरी तौर से सुनने को भी तैय्यार नहीं होते।

संसार में जीवन बीमे के सिवा समृद्धि स्थापन करने और कुटुम्ब तथा वृद्ध मनुष्यों के निर्वाह के लिए दूसरा कोई उत्तम ज़रिया नहीं है। अपने आप को, अपने कुटुम्ब को और अपने व्यापार-व्यवसाय को संरक्षित रखने की किस मनुष्य की इच्छा न होगी? जीवन बीमा ही एक ऐसा मार्ग है जिसके अवलम्बन से इन तीनों ही की रक्षा भली प्रकार से हो सकती है। जो मनुष्य अपना बीमा कराये बिना रहता है वह समझता है कि मानों मृत्यु आवेगी ही नहीं या अगले तीस चालीस वर्ष तक नहीं मरने का ठेका किसी ने ले लिया है। किन्तु मौत की गारण्टी एक दिन के लिये भी कोई नहीं ले सकता। वृद्धावस्था भी मनुष्य को आती ही है जो उसको अपने कारबार से अलग होने को बाध्य करती है और कई बीमारियाँ भी अकस्मात ही ऐसी लग जाती हैं जो मनुष्य को बेकार कर देती हैं। इसके

* विद्वान् लेखक ने यहां तथा इस लेख में अन्य कुछ और स्थानों में भी किंचित् अत्युक्ति से काम लिया है—सम्पादक

सिवा आधुनिक समय में जीवन इतना पेचीदा हो गया है कि मौत कब आ जाय यह कोई नहीं कह सकता। सड़क पर मोटर, ट्राम व बसों की भीड़ जीवन के लिये एक बहुत बड़ा ख़तरा है। जिस प्रकार एक भयानक जङ्गल में बिना हथियार और साथियों के जाना या समुद्र को एक छोटी नाव पर बैठ कर पार करने की इच्छा रखना दूरदर्शिता नहीं है ठीक उसी प्रकार बिना जीवन बीमा कराये ही आधुनिक समय में रहना बुद्धिमानी नहीं है।

एक समय वह भी था जब लोग आग तथा पानी का बीमा भी नहीं कराया करते थे- किन्तु जब देखा कि आधुनिक समय में तक़दीर के भरोसे बैठे रहने से ही काम नहीं चलता और आग का बीमा नहीं कराने के कारण अपनी आँखों के सामने कई आद-मियों को चौपट होते हुए देखा तो प्रायः आदमी अपने माल का बीमा कराने लगे। यदि माल का बीमा कराना आवश्यक है तो शरीर का बीमा कराना उससे भी अधिक आवश्यक है क्योंकि किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु हो जाने से उसके व्यापार को ही हानि नहीं होती किन्तु उसके बाल बच्चे भी कभी २ निराश्रयी हो जाते है। यदि किसी कारण से उसकी स्थिति बिगड़ गई और उसने एक ऐसी रक़म इकट्ठी नहीं की जो कि उसको वृद्धावस्था में एक-मुश्त हाज़िर मिल जाय या आकस्मिक मृत्यु हो जाने से वही रक़म उसके परिवार को मिल जाय तो उसने एक वह ज़बरदस्त भूल की है जो कि इस युग में किसी दूरदर्शी मनुष्य को नहीं करनी चाहिये। हमारे धनी मारवाड़ी भाई समझते हैं कि जीवन बीमा ग़रीबों के लिये है धनवानों के लिये नहीं। यह उनकी बड़ी भूल है। जिस प्रकार समुद्र का तूफ़ान और लहरें बड़ी बड़ी जहाज़ों पर ही पहले हाथ साफ करती है और भूकम्प में बड़ी २ ईमारतों के गिरने का ही अधिक डर रहता है उसी प्रकार बड़े २ व्यवसाइयों को ही अकस्मात धक्का लगने का अधिक डर रहता है। ग़रीबों को धक्के कम लगते हैं। कई लोग जो कल बड़े २ लखपति और करोड़पति थे वे अपने ही जीवन में अपने आपको विपरीत स्थिति में पाते हुए देखे गये हैं। बड़े २ व्यवसाईयों के गिरनेका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि वे अपना ही सारा रुपया व्यापार में नहीं लगा देते बल्कि दूसरों से उधार लेकर भी व्यवसाय में लगा देते हैं और अपने आपे से बाहर काम कर बैठते हैं। वे अलग धीरे २ एक ऐसी रक़म जमा नहीं करते हैं जो कि समय पड़ने पर काम आ सके।

आधुनिक समय में व्यापार का संचालन करने के लिये जिस प्रकार धन की आवश्यकता है उससे भी कहीं ज्यादा व्यापार-कुशलता की आवश्यकता है। व्यापार का सफलतापूर्वक संचालन करने का गुण बहुत कम आदमियों में पाया जाता है। और यही कारण है कि आज भारतवर्ष में सौ वर्ष से अधिक पुरानी फर्में इनी गिनी ही मिलेंगी। जो आदमी व्यापार को भली प्रकार से चला रहा है वह उस व्यापार का जीवन है। यदि उसकी अकस्मात ही मृत्यु हो जाय या वृद्धावस्था के कारण उसको काम छोड़ना पड़े तो यह एक बहुत कठिन बात है कि उसका लड़का भी उस व्यापार को चलाने में उतना ही सफल हो। अगर लड़के में व्यापार-कुशलता न हुई तो न केवल वह अपना ही रुपया खोता है किन्तु वह बहुधा दूसरों का क़र्जदार भी हो जाता है। ऐसे व्यापार संचालकों की क्षति यदि किसी प्रकार पूरी हो सकती है तो केवल जीवन बीमे से ही। क्योंकि, जब तक व्यापार

अच्छी तरह चल रहा हो उस समय कुछ रुपया हर साल जीवन बीमे के लिये अलग निकाल कर जमा करते जाना कुछ भी कठिन नहीं है। जिस प्रकार आग या पानी का बीमा कराने में लगे हुऐ प्रीमियम को खर्चे के रूप में गिन लेते हैं उसी प्रकार जीवन बीमे के प्रीमियम को भी एक प्रकार का खर्चा ही समझ लिया जाय तो भी कुछ हानि नहीं क्योंकि इसके ज़रिये धीरे २ एक ऐसी रक़म इकट्ठी हो जाती है जो न मालूम किस समय काम में आवे। पर सच तो यह है कि जीवन बीमे का दिया हुआ प्रीमियम आग और पानी के प्रीमियम के समान खर्चा नहीं है किन्तु इसमें तो ब्याज सहित रक़म वापस मिल जाती है।

हमारे मारवाड़ी भाइयों की सबसे बड़ी शिकायत यह है कि जीवन बीमे में रुपया लगाने से ब्याज कम मिलता है किन्तु यदि इस प्रश्न को वे विचार कर देखें तो उनको मालूम हो जायगा कि उनकी यह धारणा सही नहीं है। मान लीजिये कि एक ३० साल के सज्जन ने पांच हज़ार का २५ साल के लिये जीवन बीमा कराया। उनको २५ वर्ष तक क़रीब २१५) रुपया प्रति वर्ष देना पड़ेगा और २५ वर्ष के बाद उनको मय मुनाफे के क़रीब ७५००) मिल जावेंगे। लोग कहते हैं कि २५ वर्ष में ५०००) रुपये का ७५००) रु० मिल जाने से तो ब्याज का बहुत घाटा हो गया परन्तु प्रथम तो उनको यह विचारना चाहिये कि जीवन बीमे में एक मुश्त ५०००) रु० नहीं लगाया गया है किन्तु प्रत्येक साल २१५) रुपयों की किस्त ही दी गई है और उसी पर ब्याज फैलाना चाहिये। इससे हमको मालूम हो जायगा कि जीवन बीमें में जितना ब्याज बैंक देती है उतना तो मिल ही जाता है। दूसरी बात यह है कि यदि एक किस्त देने के बाद ही अकस्मात् मृत्यु हो जाय तो उसके परिवार को सारी रक़म, जितने का कि बीमा कराया गया हो मय मुनाफे के मिल जाती है।

जीवन बीमे के सिवा दूसरा ऐसा कोई रुपया लगाने का ज़रिया नहीं है जिससे कि मृत्यु हो जाने से इतनी बड़ी रक़म मिल सके। यदि बीमेदार की मृत्यु न हो तो बीमे की अवधि समाप्त होते ही बीमे की रक़म मय मुनाफे के मिल जाती है। वृद्धावस्था में जब प्रत्येक आदमी को कामकाज छोड़ना पड़ता है तब जीवन बीमे से एक-मुश्त इतनी बड़ी रक़म मिल जाती है जिससे वह बुढ़ापे को आनन्द से बिता दे और उसे किसी का मुंह नहीं ताकना पड़े। यदि कभी बीमे की अवधि समाप्त होनेके पहले ही रुपये की ज़रूरत पड़ जाय तो बीमे की पॉलसी पर उधार भी मिल सकता है। सारांश में बीमे की पॉलसी रुपया उस समय मंगाती है जब बीमेदार के लिये रुपये का मूल्य कम होता है और उस समय फिरती कर देती है जब रुपये का मूल्य उसके या उसके परिवार के लिये बहुत अधिक होता है।

जीवन बीमा समृद्धि के समय में बीमेदार के हृदय में शांति व प्रसन्नता का श्रोत बहाता है, वृद्धावस्था में वह एक लकड़ीके समान सहारा है और संकट के काले बादल आ घिरने पर वह सूर्य के समान जीवन में प्रकाश का संचार करता है।

एक सज्जन लिखते हैं कि मेरी तो यही इच्छा होती है कि हरएक घर के दरवाजे पर यही लिख दूं कि जीवन का बीमा कराओ क्योंकि कितने ही अवसरों पर थोड़ी सी बचत की असुविधा के फलस्वरुप कई कुटुम्बों के मान और मर्यादा की रक्षा होती देखी जाती है। ... हम अपने हाथ से किए हुए खर्चे का

हिसाब देखें तो हमें आश्चर्य होगा कि हमने कितना रुपया व्यर्थ ही ख़राब किया है। शादी विवाह ओसर मोसर पर पानी के समान रुपया बहाते समय तो ब्याज का प्रश्न बिल्कुल ही भुला दिया जाता है। यदि थोड़ा सा भी ख़र्चे की ओर ध्यान रक्खा जाय तो इसी फ़ालतू ख़र्चे की बचत से जीवन बीमे के रूप में एक बहुत अच्छी रक़म इकट्ठी हो सकती है। यदि हम अपने ब्याज की कमाई की ओर ध्यान दें तो हमें आश्चर्य होगा कि जहां से हमको ।।) आना ।।।) आ० सैंकड़े का ब्याज मिलता है वहाँ पर कई अवसरों पर ब्याज तो दूर रहा मूल भी ग़ायब हो जाता है। हज़ारों रुपये का जेवर बनाते समय या रहने के मकान में आवश्यकता से अधिक रुपया लगाते समय यह विचार नहीं आता कि उसमें ब्याज की हानि होती है किन्तु जीवन बीमा कराते समय यह प्रश्न पहले ही पैदा हो जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि हम जीवन बीमे से होनेवाले सब फ़ायदों को अच्छी तरह नहीं समझे हैं और इसको भाररूप मानते हैं। जेवर बनाने में घड़ाई लगती है घिसाई का भी नुक़सान होता है, सोनीजी खोट भी मिला देते हैं और चोर तीसरे तल्ले पर रक्खी हुई तिजोरियों में से भी जेवर को ग़ायब कर देते हैं। मकान ज्यों २ पुराना पड़ता है क़ीमत घटती जाती है और मरम्मत भी करानी पड़ती है।

आधुनिक समय में जीवन बीमे की पॉलीसी किसी भी मनुष्य की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने का सबसे बड़ा पाया है। क्योंकि न इसमें घड़ाई लगती है और न घिसाई—और न इसको चोर चुरा सकते हैं, यह तो वह संचय किया हुआ ख़ज़ाना है जिसमें दुःख के समय सुख का भंडार मिलता है।

बीमा सदा देशी कम्पनियों में ही कराना चाहिये क्योंकि देशी कम्पनियों में बीमा करने की योजनाएँ हमारी ख़ास आवश्यकताओं को समझ कर ही रक्खी जाती हैं। इधर में कुछ मारवाड़ी सज्जनों ने भी बीमा कम्पनीयां खोल दी हैं जहाँ बीमा कराने के, बीमा चालू रखने के और क्लेम चुकाने के ख़ास सुभीते रक्खे गये हैं जिससे प्रत्येक मनुष्य आसानी से जीवन बीमे का लाभ उठा सके।

बीमा कम्पनियां देश के व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योग धन्धों में सबसे अधिक आर्थिक सहायता देती हैं; क्योंकि ये बैङ्कों से कहीं अधिक समय तक के लिये क़र्ज़ दे सकती हैं। हमारे देश में करोड़ों रुपये जो प्रतिवर्ष विदेशी बीमा कम्पनियां ले जाती हैं उससे विदेशी व्यवसायों को कितना लाभ पहुंचता होगा यह पाठक स्वतः समझ सकते हैं। यदि यही रुपया हमारी देशी बीमा कम्पनियों में जमा रहे तो देश की आर्थिक अवस्था बहुत कुछ सुधर जायगी, जिससे प्रत्येक देशवासी को लाभ पहुंचेगा। भारत की कम्पनियां भारतवासियों से ही मदद की आशा रख सकती हैं। हमें आशा है कि देशवासी अपनी ही कम्पनियों को अपनायेंगे, जिससे वे मज़बूत पाये पर खड़ी होकर बीमा संसार में भारत का नाम ऊँचा रख सकें।

चाह की राह पर

[श्री जनार्दन प्रसाद झा द्विज एम० ए०]

मैं अनजान पथिक क्या
जानूँ, कौन कहाँ की राह !
चल पड़ता, जिस ओर
लिये चलती अन्तर की चाह !
चाह, हाय, किस भाँति कहूँ,
है कितनी यह सुकुमार !
प्यार—हार बन रहा
आज इसके जीवन का भार !

विरह, विराग खोजती वन-वन,
लिये मुझे यह संग !
यह मधु-वेणु, और मैं
व्याधा का बन रहा कुरंग !
हँसो, अश्रु पर हँसनेवालो,
कहो मुझे गुमराह !
हँसो, उफनता हुआ देख
दुख-पारावार अथाह !

करो विकल करुणा पर
चाहो जितने निठुर प्रहार !
हँसो, मसलते चलो हृदय की
शिशु कलियाँ सुकुमार !
मुड़ न सकूँगा किन्तु, छोड़
अब मैं यह मीठी राह;
छोड़ नहीं सकता मधुमाती
प्यास-भरी यह चाह !

धर्म और धर्मभ्रम

[*श्री शान्तिलाल वनमाली शेठ, जैन गुरुकुल, ब्यावर*]

सुवर्ण और मिट्टी का संमिश्रण जैसे स्वाभाविक है वैसे ही धर्म और धर्मभ्रम का संमिश्रण हो जाना भी स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य है।

धर्म मिट्टी के ढेर में छिपा हुआ वह सुवर्ण है जो 'ताप-कष-छेद' आदि अनेक कसौटियों में से निकल कर अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त होता है और अपने मूल्य को बढ़ाता है।

धर्मभ्रम उस मिट्टी के समान है जो अपने अञ्चल में सोने को रखने का गौरव लेती है और सुवर्णमयी होने का दावा करती है। धर्मभ्रम अपने अंचल में धर्म को रख बैठा है किन्तु विवेकशील सुवर्णकार के लिए तो मिट्टी आखिर मिट्टी ही है और सुवर्ण सुवर्ण ही। सुवर्ण को मिट्टी और मिट्टी को सुवर्ण माननेवाले समाज और देश में कोई नहीं हैं, ऐसा नहीं है-प्रत्युत विवेकशील सुवर्णकार तो इनेगिने हैं—विरल है।

[श्री० शान्तिलाल वनमाली शेठ जैन समाज के उदीयमान युवकों में से हैं। साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता का भाव उन्हें छू भी नहीं गया है। उनकी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपनी साहित्यिक भाषा के तौर पर हिन्दी को कितनी अच्छी तरह अपनाया है—यह पाठक प्रस्तुत लेख से समझ सकेंगे। कविवर टैगोर के शान्तिनिकेतन-विश्वभारती-आश्रम में प० जिनविजयजी के नीचे तथा अन्य ऐसे ही उदार वातावरण में उन्होंने जैन दर्शन का अच्छा अध्ययन किया है। भाषा के लालित्य और भावों की गहराई दोनों से ही हिन्दी पर उनका पूरा काबू मालूम होता है। हमारी हार्दिक मनोकामना है कि श्री० शान्तिलाल को उत्तरोत्तर जैन समाज और जैन-साहित्य की सेवा करने का अवसर मिलता रहे।—सं०]

× × ×

धर्मरूपी सुवर्ण को पैसे-टके द्वारा सस्ते में खरीदने वालों को समझना चाहिए कि वे धर्म सुवर्ण को नहीं किन्तु धर्म भ्रमरूप मिट्टी को खरीद रहे हैं।

अपनी प्रसिद्धि ('प्रतिष्ठा' नहीं) का प्रोपेगेण्डा-प्रसार, करने के लिए और प्राप्त की हुई प्रसिद्धि के प्रभाव से और बल से जन-समाज पर रोब जमाने वाले आज के कहलाने वाले धर्माचार्य धर्म के आचार्य नहीं किन्तु धर्मभ्रम के प्रचारक हैं, सुवर्ण के नाम पर मिट्टी का व्यापार करने वाले हैं। ऐसे धर्मभ्रम के आचार्य न धर्म की रक्षा कर सकते हैं न जनसमाज की ही।

धर्म वह चीज़ है जो अपना मूल्य अपने आप बतलाता है। धर्म का स्वभाव ही अन्तर्दर्शन करना कराना है और यह भी निश्चित है कि धर्म अन्तर्दर्शन करा के ही जनसमाज का कल्याण कर सकता है।

एक कुलोत्पन्न जैन जो सुबह-सायं उपाश्रय वा मन्दिर में जाकर धर्मध्यान का ढोंग बनाता है और फिर बाज़ार में जाकर अनीतिपूर्ण व्यापार करता है, उस 'धर्मात्मा-पुरुष' को समझ लेना चाहिये कि वह धर्म का नहीं किन्तु उस धर्मभ्रम को अपना रहा है जो धर्मभ्रम उसे खुद को धर्मिष्ठ मानने मनाने के लिए बाध्य करता है।

फिर इसमें क्या आश्चर्य है कि ऐसी अनीतिपूर्ण प्रवृत्ति करने पर भी वह बड़े गौरव के साथ अपने को 'धर्मात्मा' कहने कहलाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता ?

सच्चा धर्मिष्ठ बहिर्दृष्टि की परवाह भी नहीं करता। एक उपासक जो सारे दिन अपने सम्प्रदाय के साधुओं की सेवा-सुश्रूषा करने में संलग्न रहता है, वही धर्मोपासक सज्जन-यदि कभी दूसरे सम्प्रदाय के साधु उसके यहां आते हैं तो न उनका आदर-सत्कार करता है, न उनके पास से धर्मश्रवण। किन्तु, ऐसा कहकर मुंह मोड़ लेता है कि 'ये हमारे धर्मगुरु नहीं है, क्योंकि मैंने इनके सम्प्रदाय के साधुओं के पास 'सम्यक्त्व' धारण नहीं किया है'। ऐसे उपासक बन्धुओं को समझ लेना चाहिये कि उन्हें धर्मभ्रम का सम्यक्त्व मिला है, न कि धर्मका।

× × ×

धर्म का सच्चा स्वरूप अपने वास्तविक कर्त्तव्य-पालन में ही प्रतीत होता है।

आप सत्कर्म—अपना कर्त्तव्य-पालन करते जाइए, धर्म आपके पीछे चुपचाप चलता आयगा।

धर्मभ्रम आपको अपने पंथ में, अपने सम्प्रदाय में, लाने के लिये अनेक लुभावने प्रलोभन देगा। यदि आप प्रलोभनों से चलित हुए तो आप यह बात निश्चित मान लीजिए कि आपके धार्मिक-जीवन का अधःपतन शुरू हो गया है।

× × ×

आज राष्ट्र और समाज पर जहां दृष्टि फेंकते हैं एक ही वस्तु दृष्टिगोचर होती है, और वह है धर्म के स्थान पर धर्मभ्रम की स्थापना और प्रतिष्ठा।

हमारे समाज में आज धर्मभ्रम का साम्राज्य साधु और श्रावक दोनों के हृदय-तल तक छाया हुआ है। इस धर्मभ्रम ने राष्ट्र और समाज में ऐसा भयङ्कर भ्रम फैला रक्खा है कि यदि इस भ्रम का निवारण न किया गया तो यह निश्चित है कि धर्मभ्रम के इस भ्रमजाल में फंस कर हम अपना स्वत्व भी खो बैठें।

आज हममें धर्म का थोड़ा सा अंश भी होता तो हमारे देश, समाज और धर्म की ऐसी हीनावस्था कभी भी न होती।

आज सच्चे धर्म का प्रचार करनेवाले सच्चे साधु, और सच्चे साधु के सच्चे धर्मोपदेश को श्रवण करने वाले सच्चे श्रावक, समाज में नहीं के समान हैं।

जहां देखो वहीं पर धर्म के नाम पर धर्मभ्रम के आचार्य अपने मायाजाल के द्वारा राष्ट्र और समाज को मुग्ध कर रहे हैं।

× × ×

जब हम धर्मभ्रम और धर्मभ्रमाचार्य को छोड़कर

सच्चे धर्म और सच्चे धर्माचाय के पदानुयायी बनेंगे तब धर्म हमारा सेव्य बनेगा और हम उसके सेवक। जब ऐसा होगा तब ही 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' यह लोकोक्ति सार्थक होगी। उस दिन हमारे जीवन में नूतन धर्मप्राण का संचार होगा और उसी दिन से हमारे धार्मिक-जीवन का 'ॐविजय' होगा।

दो पहलू

[*श्री रामलाल दूगड़ 'प्रफुल्ल'*]

—वह शिक्षा किस काम की—जिससे मानस-मंदिर में सद्‌विचार सरिता की पावन धारा प्रवाहित न हो? वह विद्या व्यर्थ है—जो भरपेट अन्न-प्राप्ति तक की राह न बता सके। वह उपदेश केवल थोथी बकवाद है—जिसे श्रवण करके भी हृदय प्रेम-पीयूष से शून्य रह जाय! वह ज्ञान भी कैसा ज्ञान है—जो चित्त को धैर्य्य सिंहासन पर आरूढ़ करके भगवद्-भक्ति में न लगा दे?

× × ×

—शिक्षा वही है—जिससे उद्दण्डता, क्रोध, लोभ, अभिमान और स्वार्थपरता का काला चिन्ह मिट कर मुख पर सौम्य भाव प्रदर्शित हो जाय। विद्या वही लाभदायक है—जो स्वभाव को नम्रता-नीर से ओत-प्रोत कर दे। उपदेश ऐसा होना चाहिये—जिससे सेवा, परोपकार, मर्यादा, और भक्ति मुक्ति का आदर्श ज्ञात हो! एवं—ज्ञान वही सच्चा है—जो हित अहित, शत्रु मित्र और कर्त्तव्याकर्त्तव्य की पहिचान कराए।

शारीरिक ज्ञान

[डाक्टर बी० एम० कोठारी, एम० बी०, बी० एस०]

[यों तो जोधपुर का ओसवाल-समाज 'पढ़े-लिखों' की—ग्रेज्युएटों की—गिनती में शायद अन्य किसी नगर के समाज से पीछे नहीं है, पर इस लेख के लेखक डा० बख्तावर मल कोठारी उन इने-गिने 'पढे-लिखों' में से हैं जिनके लिये शिक्षा केवल कालेज में पढ़ कर डिग्री ले लेने को ही वस्तु नही रही वरन् शिक्षा ने जिन को वास्तव में विचार करने की, भविष्य के अज्ञात् गर्भ को भेद कर आगे देखने की, शक्ति दी है। पेशे और पढाई से डाक्टर होते हुए भी श्री कोठारीजी को सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों की अच्छी जानकारी और उनमें दिलचस्पी भी है।

हमारे समाज में शरीर और शारीरिक स्वास्थ्य के नियमों की ओर कितनी भयङ्कर उदासीनता है यह किसो से छिपा नहीं है। 'ओसवाल नवयुवक' के परिवार को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि डा० कोठारी तथा हमारे सुपरिचित डा० जेठमलजी भन्साली ने शरीर विज्ञान तथा स्वास्थ्य के साधारण नियमों के विषय में इस पत्र में नियमित रूपसे लिखते रहने का हमें आश्वासन दिया है। डा० "जेठा" का लेख अन्यत्र प्रकाशित है। आशा है इन दोनों सज्जनों के तथा अन्य लेखकों के भी जो लेख इस विषयपर समय २ पर प्रकाशित हों वे ध्यान से पढ़े जांयगे और इस विषय में समाज की उदासीनता के पाप को दूर करने में, यत्किंचित् ही सही, पर सफल होंगे।—सं०]

मनुष्य को सफल और सुखी जीवन के लिए एक निरोगी शरीर की जितनी आवश्यकता है उतनी पृथ्वी के अन्य किसी भी पदार्थ की नहीं। किसी ने उपयुक्त ही कहा है कि स्वस्थ शरीर में ही निर्मल बुद्धि का निवास हो सकता है। वह पुरुष कितना भाग्यवान है जिसके हिस्से में एक सुडौल, सुन्दर और निरोगी शरीर आया है। परन्तु इस बँटवारे को भाग्य का फैसला समझ कर निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि सुडौल और निरोगी शरीर कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जो मनुष्य को परिश्रम और प्रयत्न से भी प्राप्त न हो सके। पर यह मानना पड़ेगा कि इसकी सिद्धि के लिये देह का—शरीर का—ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। ठीक तो है, जिसको अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं, वह उसे पा ही कैसे सकता है, और पाने के योग्य भी नहीं है। और सच तो यह है कि वही इस शरीर को सम्मान की दृष्टि से देख सकता है, अथवा इसको सुरक्षित रख सकता है. जो इस देहरूपी यन्त्र के अद्भुत भागों के गुण और पारस्परिक सम्बन्ध को

समझता है। "Know thyself" यह कितना भावपूर्ण वाक्य है। ऐसे उदाहरण किस की जान में नहीं होंगे कि अपनी ही अज्ञानता के कारण अमुक व्यक्ति ने अपने देह का असाध्य नाश कर लिया हो। और प्रकृति के नियमों के भंग का फल तो गरीब या अमीर, राजा अथवा रंक, पापी या धर्मी—सभी को बराबर मिलता है।

मनुष्य देह एक ऐसे रहस्यमय भवन के समान है जिसकी प्रत्येक ईंट सजीव और सदा जागृत है। अगर पृथ्वी पर कोई अपने आप चलनेवाली (automatic) मशीन है, तो वह है यह मनुष्य-देह। जिन वर्गों (Cells) से यह शरीर संघटित है, उनमें से प्रत्येक शारीरिक सम्पूर्णता के लिए उतना ही अनिवार्य और आवश्यक है जितना कि जीवित मनुष्य के लिए उसका हृदय (Heart)। यह वर्ग इतने चतुर, और विचारशील हैं कि अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखते हुए, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए पारस्परिक सहयोग की नीति का मूल्य समझते हैं। इनका कार्यक्रम बड़ा अनुपम है। यह स्वयं ही अपने नियम बनाते हैं और उनका पालन करते हैं। अपने में से ही एकको शासन करने के लिए चुन लेते हैं और सब काम उसके आदेशानुसार ही होते हैं। कार्य-विभाग (Division of labour) तो मानों मनुष्य-जाति ने इन्हीं से सीखा है। प्रत्येक गति के लिए भिन्न-भिन्न वर्ग नियुक्त हैं पर भिन्न-भिन्न कार्य करते हुए भी सबका उद्देश्य शारीरिक सम्पूर्णता और सुखमय जीवन है। देखने का भार किसी पर है, तो सुनने का काम किसी और का; पर काम दोनों मिल कर करते हैं। रक्त का नलियों का बनाना, मरम्मत करना और साफ़ रखना भिन्न-भिन्न वर्गों (Cells) का काम है, परन्तु इन सब कारीगरों के सहयोग का फल है खून की सकुशल गति। इनका राज्य इतना सविस्तर और घटनामय है कि उसके संचालन के लिए पुलिस और जासूस तथा शत्रुओं को पराजित करने के लिए सेना तक है। यह सब क्या आश्चर्यजनक नहीं है?

शरीर-विज्ञान की कई शाखाएँ हैं। पहली शाखा "शरीर-रचना" सम्बन्धी है जिससे शरीररूपी इस अट्टालिका के विभिन्न भागों का अध्ययन किया जाता है। इस विद्या को Anatomy (एनेटामी) कहते हैं। इस विद्या से इस भवन के विषय में यह पता लगता है कि इसके मुख्य-मुख्य कमरे कहां हैं, उनका पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार है, बिजली के तार, जिनके द्वारा अङ्ग के प्रत्येक भाग की गति का संचालन किया जाता है वे, किस पदार्थ के बने हुए हैं, कहां २ लगे हुए हैं इत्यादि। खून की नलियां कितनी हैं और उनका हृदय से क्या सम्बन्ध है? हाड़, मांस और सांधों की घनिष्ठता का परिचय भी इसी ज्ञान से होता है।

यह तो हुई शरीर की रचना। अब प्रश्न यह होता है कि शरीर का यह सब काम किस प्रकार किया जाता है। इसका उत्तर Physiology (फ़िज़ियालॉजी) से मिलता है। पेट की पाचन-क्रिया किस तरह होती है, खून किस प्रकार बनता है, खाद्य-पदार्थ का अन्त क्या होता है, मस्तिष्क (Brain) दूसरे अंगों पर किस प्रकार शासन करता है, चक्षु में देखने की शक्ति कैसे उत्पन्न होती है, इत्यादि विषयों का ज्ञान क्या मनोरंजक नहीं है?

शरीर की रचना और उसकी कार्य-प्रणाली का ज्ञान तो स्वाभाविक (normal) वस्तुस्थिति का ज्ञान है। पर जीवन-संग्राम में आये दिन शरीर में

टूट-फूट या परिवर्तन होते रहते हैं अथवा बुढ़ापे की वजह से शक्तिहीनता आ जाती है तो उसकी प्रारंभिक बनावट में जो भेद उत्पन्न हो गया है—उसका ज्ञान Pathology से होता है। मरम्मत किस प्रकार होती है, नये Cells कहां से और कैसे बनकर आते हैं, और आपस में मिलकर किस प्रकार वह नई रचना करते हैं, इन सब बातों का ज्ञान दिलचस्प होने के साथ ही साथ आवश्यक भी है।

इस प्रकार शरीर-विज्ञान के उपरोक्त तीन मुख्य विभाग हैं और इन तीनों से हमें क्रमशः शरीर की, और शरीर जिनसे बना है उन वर्गों (Cells) की, रचना, कार्य-प्रणाली और उनमें परिवर्तन के नियमों का ज्ञान होता है। वास्तव में जितना ही अधिक इन Cells का अध्ययन किया जाता है, उतना ही रहस्य-मय इनका जीवन और इनकी अद्भुत कार्य-प्रणाली प्रगट होती है। अगले अङ्कों में इन दिलचस्प रहस्यों के उद्‌घाटन का यत्किंचित् प्रयत्न किया जायगा।*

* Sir Wilfred Grenfell के 'Yourself and your body' के आधार पर।

—लेखक।

गृहस्थ धर्म

१—गृहस्थ-आश्रम में रहनेवाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है।

२—गृहस्थ अनाथों का नाथ और निराश्रितों का आश्रय है।

३—अगर मनुष्य गृहस्थ के धर्मों का उचित रूप से पालन करे, तब उसे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की क्या ज़रूरत है?

४—देखो; वह गृहस्थ, जो दूसरे लोगों को कर्त्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।

५—सदाचार और धर्म का विशेषतः विवाहित जीवन से सम्बन्ध है, और सुयश उसका आभूषण है।

६—जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है कि जिस तरह उसे करना चाहिए, वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

—अछूत ऋषि तिरुवल्लुवर

स्त्री-शिक्षा

[श्री स्वरूपकुमारी धाड़ीवाल]

किसी भी समाज की उन्नति के लिये और बातों के साथ २ स्त्री-शिक्षा भी एक ज़रूरी चीज़ है। अशिक्षित स्त्रियों से समाज को बड़ी हानि पहुंचती है क्योंकि वे न तो स्वयं अपनी सारी शक्तियाँ काम में ला सकती हैं न अपनी सन्तान को अच्छी तरह शिक्षा दे सकतीं जिससे उनका भावी जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो और वे अपने कल्याण के साथ २ समाज का भी हित कर सकें।

इसके विपरीत, शिक्षित माताएँ अपनी सन्तान को सदैव वीर और साहसी बनाने का प्रयत्न करती रहेंगी वह अपनी सन्तान को वीरों की और कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुषों की कहानियां सुना २ कर उन्हें भी वैसा ही बनाने का प्रयत्न करेंगी। वीरवर शिवाजी एक बड़े साम्राज्य की स्थापना करने में समर्थ हुए यह उनकी माता जीजीबाई द्वारा दी गई शिक्षा का ही प्रभाव था।

समाजरूपी रथ के स्त्री और पुरुष दो पहिये हैं। यदि दोनों समान रूपसे शिक्षित होंगे तो वे न केवल अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत कर सकेंगे वरन देश व समाज का हित करके संसार में अपना आदर्श स्थापित कर सकेंगे।

शिक्षित स्त्रियां किसी के बीमार पड़ने पर धैर्य पूर्वक उसकी सेवा सुश्रूषा करेंगी, अपना हिसाब इत्यादि अपने आप सम्हाल लेंगी, और प्रत्येक वस्तु के हानि लाभ को देख कर उसका उपयोग करेंगी।

स्त्री गृहदेवी मानी जाती है उसे शिक्षा देनी आवश्यक है। उनको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि जिससे वे संसार में अपना वास्तविक स्थान प्राप्त कर सकें और समाज व देश में उनका एक आदर्श स्थापित हो जिससे दूसरी स्त्रियाँ भी उनका अनुकरण करके वैसी ही बनने का प्रयत्न करें और अपना भविष्य सुधारें।

उचित शिक्षा से स्त्रियों में स्वाभाविक लज्जा और विनय की विशेषता उत्पन्न होती है। अनपढ़ स्त्रियां न तो

> हमें श्रीमती स्वरूपकुमारी धाड़ीवाल का यह लेख प्रकाशित करते हुए हर्ष होता है। कुमारी धाड़ीवाल हमारे सुपरिचित श्रीयुत् गोपीचन्दजी धाड़ीवाल बी० एससी० एल-एल० बी० की सुपुत्री हैं। वह प्रयाग (अलाहाबाद) महिला विद्यापीठ की प्रवेशिका परीक्षा में चतुर्थ आई थीं और इसबार 'हिन्दी रत्न' की परीक्षा की तैयारी कर रही हैं। हमें आशा है समाज की अन्य शिक्षित बालिकाएं व स्त्रियां भी 'स्त्री-शिक्षा' पर अपने २ विचार हमें भेजने की कृपा करेंगी।
>
> —सम्पादक

आदर्श माताएँ ही बन सकती हैं न आदर्श पत्नियां।

कुछ मनुष्यों का कहना है कि पढ़ाने से लड़कियों में फ़ैशन आ जाता है, और वे बड़ों की अवहेलना करने लगती हैं। किन्तु उनका यह कथन सर्वथा निस्सार है। यह तो उनके माता पिता और शिक्षकों की भूल है जो उनको आदर्श शिक्षा नहीं देते।

यह बात किसी अंश तक अवश्य सच है कि आज-कल जो शिक्षा लड़कियों को दी जाती है वह अधिकतर पाश्चात्य ढङ्ग की है, और उससे उनमें फ़ैशन की वृद्धि भी हुई है। पर यह शिक्षा का दोष नहीं—शिक्षा की प्रणाली का दोष है। और फिर अशिक्षित स्त्रियों में ही फ़ैशन की कौन कमी है? वास्तव में फ़ैशन का शिक्षा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है—फ़ैशन तो एक विशेष मनोवृत्ति का परिणाम है और जिस प्रकार दूषित शिक्षा द्वारा यह मनोवृत्ति बढ़ सकती है उसी प्रकार योग्य शिक्षा द्वारा यह कम भी की जा सकती है।

आजकल भारतवर्ष में तो स्त्री-शिक्षा का काफ़ी प्रचार हो गया है पर खेद है कि हमारे समाज का इस ओर अभी पूरा ध्यान नहीं गया है। आशा है समाज की उन्नति चाहने वाले इस ओर पूरा ध्यान देंगे।

—o—

सहधर्मिणी

—वही नेक सहधर्मिणी है, जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति के सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती।

—यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो और सब नियामतों (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है।

—यदि किसीकी स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन-सी चीज़ है जो उसके पास मौजूद नहीं? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर उसके पास है ही क्या चीज़?

—स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो दुनिया में उससे बढ़कर शानदार चीज़ और क्या है?

—चहारदीवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने से क्या लाभ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय-निग्रह है।

—ऋषि तिरुवल्लुवर

समाज के जीवन मरण के प्रश्न

आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक, क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं; प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है; जब कि बड़े २ साम्राज्य और बड़े २ धर्मपन्थ भी जड़ से हिल गये हैं - तब, हम कहां खड़े हैं ?—किस ओर जा रहे हैं ? - जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये ! इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेजकर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये ।—सम्पादक ।

---

(१)

हमारा समाज एक व्यापार-जीवी समाज है—ऐसा आप मानते हैं ; कहते भी हैं !! और ऐसा कहने में गौरव भी अनुभव करते हैं !!!

पर आपने कभी शान्तिपूर्वक विचार किया है ?—कौनसा व्यापार–किस वस्तु का व्यापार आप के हाथ में है ? क्या किसी वस्तु को एक से लेकर दूसरे को बेच देना, केवल बीच की दलाली खा लेना, यही व्यापार है ? क्या ऐसे व्यापार में आप दूसरों के मोहताज नहीं हैं ? और क्या यह सच नहीं है कि यह दलाली का व्यापार भी अब आपके हाथ से निकला जा रहा है ? आपके समाज के कितने युवक आज बेकार हैं ? आप भी उनकी सहायता करने में असमर्थ हैं। क्यों ? और यही बेकार युवक अन्य कोई धन्धा नहीं होने से सट्टे, फाटके, नीलाम और फ़ीचर के गर्त में डूबे जा रहे हैं ! यह किधर का रास्ता है ? जीवन का या मृत्यु का ?

इस दशा का कारण ?

आप अपने को व्यापारी कहते हैं। व्यापार क्या है? दुनिया में आजकल व्यापार के पीछे क्या २ शक्तियां–क्या २ मनोवृत्तियां–काम कर रही हैं, यह आप जानते हैं? आज व्यापार आप के घर के कोने में बैठकर रुपये आने पाई की गिनती कर लेने में ही सीमित नहीं है! इसके पीछे साम्राज्यों की उथल पुथल सेनाओं की शक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय हलचलें हैं यह आपको मालूम है? हज़ारों कोस दूर, दुनिया के दूसरे सिरे पर 'कुछ' होता है और यहां हज़ारों का जीवन मरण हो जाता है यह तो आप प्रतिदिन देखते हैं। फिर? अब केवल 'तार बाँचना' आने से आज आप अपना व्यापार कैसे चला सकते हैं? कभी विचार किया है?

याद हैं वे दिन जब आप ही के पूर्वज बड़े २ क़ाफ़िले लेकर देश देशांनरों में और बड़ी २ जहाज़ें लेकर समुद्र पार के देशों में व्यापार और व्यवसाय के लिये, और साथ ही में भारत की सभ्यता का संदेश लेकर, पहुंचते थे? वह जीवन था! आज......?

भूतकाल गया। वर्तमान की यह दशा है! अब भी कुछ उपाय करना है भविष्य के लिये? अपने व्यापारी होने के और अपने समाज के व्यापारजीवी होने के गौरव की रक्षा करना है?

यदि, 'हां', तो इसका उपाय?

भारत के सार्वजनिक जीवन में गान्धीजी का दान

['विशाल भारत' से—श्री पी० नरसिंहम्]

अबसे छब्बीस वर्ष पहले जब गान्धीजी भारत के सार्वजनिक जीवन में एकदम अज्ञात थे और दक्षिण-अफ्रिका में ट्रान्सवाल का झगड़ा चल रहा था, उस समय कांग्रेस के चौबीसवें अधिवेशन में ट्रान्सवाल की समस्या पर भाषण करते हुए स्वर्गीय गोखले ने कहा था—

'Fellow Delegates, After the immortal part which Mr. Gandhi had played in this affair, I must say it will not be possible for any Indian at any time here, or in any other assembly of Indians to mention his name without deep emotion and pride. I can tell you that a purer, a nobler, a braver and a more exalted spirit has never moved on this earth...... a man among men, a hero amongst heroes, a patriot among patriots, in whom Indian humanity at the present time has really reached its high water mark.'

—"प्रतिनिधि सज्जनो, इस सम्बन्ध में मिस्टर गांधी ने जो अमर काम किया है, उसके बाद मैं कह सकता हूं कि किसी भारतीय के लिए—इस सभा में या भारतीयों की किसी भी दूसरी सभा में—यह सम्भव नहीं कि वह मिस्टर गांधी का नाम बिना गहरे प्रेम और गर्व के ले सके। मैं आपसे कह सकता हूं कि गांधीजी से अधिक पवित्र, गांधीजी से अधिक उदार और सुसंस्कृत, गांधीजी से अधिक वीर और उनसे अधिक उच्च आत्मा-वाला कोई दूसरा व्यक्ति इस धरती पर अवतीर्ण नहीं हुआ। वे मनुष्यों में मनुष्य, वीरों में वीर और देशभक्तों में देशभक्त हैं। उनमें वर्तमान भारतीय मानवता सचमुच अपने सर्वोच्च शिखर को प्राप्त हुई है।"

गोखले के कथन का एक-एक शब्द भविष्यवाणी बन कर सत्य हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता के इस महान उपासक ने देश के सार्वजनिक जीवन में क्या-क्या परिवर्त्तन किये हैं, क्या-क्या वस्तुएँ प्रदान की हैं, इसी पर इस लेख में कुछ विचार किया जायगा।

किसी भी दर्शक को महात्मा गांधी का सबसे पहला दान यह दीख पड़ेगा कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन को आध्यात्मिकता का जामा पहनाने की कोशिश की है, और उसमें उन्हें अनोखी और अभूत-पूर्व सफलता भी मिली है। अब सार्वजनिक नेता बनने के लिए केवल असाधारण बौद्धिक योग्यता, आँकड़ों और तथ्यों का पूरा ज्ञान, लेखनी और जिह्वा में आग बरसाने की ताक़त, बहस करने और दलीलें देने की

क़ाबलियत, या तरह-तरह के शब्द या वाक्य गढ़ने की योग्यता ही ज़रूरी या काफ़ी नहीं है, अब इनके साथ-साथ नेता में निष्कलङ्क चरित्र भी होना चाहिए—ऐसा साफ़ और ऊँचा चरित्र, जिस पर दाग़ न हो और जिस पर कोई उँगली न उठा सके। जैसा स्वयं गांधीजी ने कहा है, सार्वजनिक जीवन प्राइवेट जीवन की प्रतिध्वनि होनी चाहिए। प्राइवेट जीवन से सार्वजनिक जीवन पृथक् नहीं किया जा सकता। गांधीजी ने साबरमती-आश्रम खोला था, और वे उसके सदस्यों से, ईश्वर और देश की सेवा के लिए चरित्र उच्च बनानेवाले नियमों और संयम का कठोरता से पालन कराते थे। वे सदा दीनातिदीन जनता के साथ बराबरी से रहते आये हैं। उन्होंने अपना समूचा जीवन खुली हुई पुस्तक की भाँति सर्वसाधारण के सामने रख दिया है, जिसे जो कोई भी चाहे, देख सकता है और उससे शिक्षा और प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। वे अपने विचारों को बड़ी स्वतन्त्रता और dignity के साथ जनता और शासकों के सामने रखते आये हैं, और बड़ी निष्ठा के साथ उनका समर्थन और प्रतिपादन करते रहे हैं। जिस बात को वे न्यायपूर्ण और उचित समझते हैं, उसे वे बड़े बेलौस और खरे ढंग से प्रकट करते हैं। मालूम हो जाने पर वे अपनी ग़लती और कमज़ोरी को भी खुल्लमखुल्ला स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने अपने जीवन को विचारों में ही नहीं, वरन कार्यों द्वारा भी निष्कलङ्क बना लिया है।

उन्होंने देश में और देश के बाहर भारतीयों का सम्मान बढ़ाया है। इन सारी बातों में उन्होंने जितना किया है, उतना आज तक अन्य कोई भी सार्वजनिक नेता नहीं कर पाया। गांधी-इर्विन समझौते के द्वारा इंग्लैण्ड को भारत की नवीन राष्ट्रीय जाग्रति को स्वीकार करना पड़ा, और पूना के समझौते ने दुनिया को यह दिखा दिया कि इस क्षीणकाय व्यक्ति के आत्म-बल के सामने बड़े-से-बड़े साम्राज्य के सुनिश्चित निर्णय और सदा के लिए निर्णीत ऐतिहासिक तथ्य भी उल्टे जा सकते हैं।

वास्तव में सारे इतिहास में कौन-सा ऐसा उदाहरण मिलता है, जिसमें किसी पददलित राष्ट्र के प्रतिनिधि ने देश के शासकों के साथ बराबरी से वार्तालाप किया हो, और भारतीय जनता की बात इतनी गहरी देश-भक्ति, धार्मिक लगन, सही-सही विवरण और दृढ़ता तथा अधिकार के साथ उपस्थित की हो?

भारत के सार्वजनिक जीवन को महात्मा गांधी की दूसरी देन है निर्भयता। महात्मा ने भारत की राज-नैतिक संस्थाओं को ही नहीं, समूचे राष्ट्र को निर्भयता का पाठ सिखाया है। उनका कथन है कि 'कोई भी वास्त-विक और स्थायी सफलता प्राप्त करने के लिए सबसे पहली अनिवार्य वस्तु है निर्भयता।' वे कहते हैं—"हम लोग यदि केवल ईश्वर का भय करें, तो हम मनुष्य का भय करना छोड़ देंगे। यदि हम यह तथ्य जान लें कि हमारे भीतर ईश्वर का अंश है, जो हमारी सब बातों को—जो कुछ हम करते या सोचते हैं, उन्हें—देखता रहता है, और जो हमारी रक्षा करके हमारा मार्ग-प्रदर्शन करता रहता है, तो हमें केवल ईश्वरीय डर के सिवा संसार में किसी भी प्रकार का डर न रह जायगा।" उनके सामने संसार का कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, और उसके लिए उनके हृदय में कितना ही सम्मान क्यों न हो, पर वे अपने मन की बात साफ़-साफ़ कहने में कभी नहीं हिचके।

महात्माजी की तीसरी देन है सहिष्णुता। वे अपने से विभिन्न मत रखनेवाले की इज़्ज़त करना भी

खूब जानते हैं। वे विरोधियों का उचित सम्मान करने में आगा-पीछा नहीं करते। उन्होंने अपने देशवासी विरोधियों की ही नहीं, वरन विदेशी विरोधियों की भी प्रशंसा की है।

अविचलितता (Consistancy) महात्मा का एक अन्य महान गुण है। अपने चालीस वर्ष लम्बे सार्वजनिक जीवन में 'सत्य' उनका लगातार अविचलित ध्येय रहा है। अपने मौलिक विश्वासों और सिद्धान्तों पर वे बराबर अटल रहे हैं। उनमें कोई बड़ा परिवर्त्तन नहीं हुआ। उन्होंने भारतीय जनता को सिखाया है कि अपने सिद्धान्तों पर कैसे अटल रहा जा सकता है।

भारत के सार्वजनिक जीवन को उनकी एक बड़ी देन है स्वावलम्बन। स्वदेशी और चर्खे का प्रचार इसका बाह्य रूप है। उनकी स्वराज्य-प्राप्ति का सिद्धान्त हमेशा से यह रहा है कि स्वराज्य अपने ही बूते पर लिया जा सकता है, किसी बाहरी शक्ति द्वारा नहीं दिया जा सकता, और हम जितने अंश तक अपने को स्वराज्य के योग्य बना सकेंगे, उतनी ही दूर तक हमें सफलता मिलेगी। महात्माजी के कथनानुसार स्वराज्य तक पहुंचने का सबसे छोटा मार्ग आत्म-प्रभाव, आत्म-प्रकाश और आत्म-निर्भरता से—दोनों प्रकार की सामूहिक और व्यक्तिगत—होकर ही है। यह स्वावलम्बन का ही पाठ था, जिसके अनुसार सत्याग्रह-आश्रमवालों ने ही सबसे पहले सत्याग्रह-संग्राम में अपनी आहुति दी थी। आत्म-निर्भरता की शिक्षा की बदौलत ही आश्रमवालों ने राजनैतिक स्वतन्त्रता के युद्ध में अपना काम वीरता के साथ निबाहा था। महात्मा का कथन है, जब तक हममें भीतरी शक्ति न होगी, तब तक हम अपने हाथ में शासन पा लेने के बाद भी अपना प्रबन्ध सुव्यवस्था के साथ नहीं कर सकते। संसार के किसी भी राष्ट्र ने आन्तरिक बल के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की।

महात्मा की सबसे बड़ी देन है आशावाद और भारत के जनसाधारण में आशावादिता उत्पन्न करना। आज केवल पढ़े-लिखे लोग ही स्वराज्य के लिए उत्सुक नहीं हैं, वरन आज स्वराज्य का सन्देश भारत के अपढ़ जनसाधारण तक पहुंच चुका है, वे भी उसके लिए उतने ही उत्सुक हैं। उन्होंने स्वदेशी का अर्थ भी समझा है। सार्वजनिक जीवन में जनसाधारण का स्थान कितना महत्वपूर्ण है, इसका ज्ञान हमें महात्मा ने ही कराया है। उन्होंने हमारे दृष्टिकोण को बदल कर बतला दिया है कि भारतीयों को कुछ अधिक नौकरियाँ मिलना ही हमारा उद्देश्य नहीं, बल्कि हमारा उद्देश्य जनसाधारण के लिए स्वराज्य प्राप्त करना है, और हमें ऐसे साधनों को ढूंढ़ना है, जिससे जनसाधारण को पीसनेवाली दरिद्रता कम हो सके। चर्खे ने सैकड़ों गरीब घरों में फैले हुए दरिद्रता के अन्धकार में आशा का क्षीण प्रकाश उत्पन्न किया है।

जीवन में सादगी का पाठ पढ़ा कर महात्मा ने हज़ारों परिवारों के खर्च में बचत कराई है, और इस प्रकार हमें किफ़ायत से स्वराज्य-शासन चलाने की व्यावहारिक शिक्षा दी है। महात्माजी के दृष्टिकोण में जो आशा भरी दीखती है, उसका कारण यह है कि उन्हें इस बात का गहरा विश्वास है कि हमारी सभ्यता समूचे संसार को एक नवीन सन्देश प्रदान कर सकती है, और वह सन्देश है अहिंसा, स्वदेशी और अन्याय के साथ असहयोग।

और उनकी एक देन है समझौते की भावना। वे दूसरों के साथ समझौता करने को तत्पर रहते हैं; किन्तु यह समझौता किसी मूल सिद्धान्त, या किसी स्थायी विश्वास की हत्या करके नहीं होता, हाँ, जितनी भी अनावश्यक बातें हैं, उन सब पर समझौता करने का पाठ उन्होंने हमें पढ़ाया है।
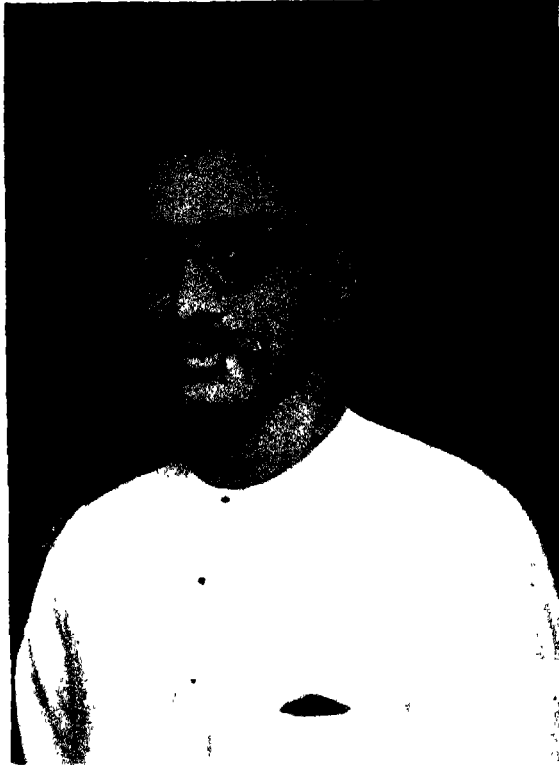
श्री विजयसिंहजी नाहर बी० ए०

आप हमारे समाज के अग्रगण्य विद्वान् श्री पूरणचन्दजी नाहर एम० ए०, बी० एल० के सुपुत्र—सुयोग्य पिता का सुयोग्य सन्तान—हैं। आप अपने पिता श्री की तरह विद्या-व्यसनी होने के साथ-साथ अन्य सार्वजनिक कार्यों में भी खूब दिलचस्पी लेते हैं। आप इस साल के चुनाव में दूसरी बार कलकत्ता कारपोरेशन के कौंसिलर चुने गये हैं।

न्यू राजस्थान प्रेस।

ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता के नवम वार्षिकोत्सव के अवसर पर सभापति के स्थान से दिया हुआ भाषण

माननीय सज्जनो—

हमारे यहां कुछ प्रथा सी पड़ गई है कि इस प्रकार के उत्सव या अधिवेशनों के अवसर पर सभापति के स्थान से जो भाषण होते हैं उनमें यह कोशिश की जाती है कि जितने हो सकें उतने अधिक से अधिक विषयों पर सैद्धान्तिक रूप से चर्चा की जाय और जनता भी इस बात की आदी हो जाने से सभापति से यही आशा रखती है। उदाहरणार्थ, ओसवाल समाज एक व्यापार-जीवी समाज होने से तथा मेरा सम्बन्ध इस नगर के एक प्रमुख व्यापारी संघ से होने से बहुतों को यह स्वाभाविक मालूम हो, बल्कि कुछ को यह आशा भी हो, कि मैं आज के अपने भाषण में व्यापार के सम्बन्ध में भी कुछ कहूं। पर मुझे तो यह असम्बद्ध सा मालूम होता है कि समिति के वार्षिकोत्सव को, जो उसके पिछले साल के कार्यों का लेखा करने और भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा जनता के सामने रखने के लिये किया जाता है—एक व्यापार विषयक वादविवाद सभा (debating Society) का रूप दिया जाय। इस प्रथा के मूल मे मुझे तो वास्तव में स्पष्ट, सरल और सुसम्बन्धित विचारों का अभाव ही मालूम होता है। कितने भी व्यापक और विस्तृत उद्देश्य या अवसर को लेकर कोई उत्सव या सभा क्यों न की जा रही हो, आखिर यह तो असम्भव है कि जीवन के या संसार के सभी विषयों और प्रश्नों पर उस एक सभा में ही विवेचन हो जाय। इसका परिणाम तो सच पूछिये तो यह होता है कि सुनने वालों को कोई भी स्पष्ट विचार या कार्यक्रम नज़र नहीं आता और वे जैसे आते हैं वैसे ही कोरे, या उल्टे अधिक असमञ्जस में पड़कर, घर चले जाते हैं। और यही एक बहुत बड़ा कारण इस बात का है कि जहां अन्य देशों में सारा काम सभा और उत्सवों में हो जाता है, हमारे देश में ऐसी सभाओं का परिणाम शून्य में या कभी २ तो विपरीत दिशा में भी होता है। अतः मेरा प्रयत्न तो यही होगा कि मैं आज अपने भाषण को समिति की कार्ययोजना तक ही सीमित रक्खूं—हालां कि यह हो सकता है कि समाज के सामने इस समय अन्य बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्न हों—और हैं भी जैसे कलकत्ता कारपोरेशन का आगामी चुनाव और उसमें हमारे नागरिक अधिकारों का बुद्धिमानी से उपयोग। पर इन सब स्वतन्त्र विषयों के लिये

स्वतन्त्र विचार और स्वतन्त्र सभाओं की आवश्यकता है।

आज ओसवाल नवयुवक समिति अपना नवाँ वार्षिकोत्सव मना रही है। समिति ने अपने नौ वर्ष के जीवन में क्या २ कार्य किया है यह तो मुझ से कहीं अधिक आप लोगों को मालूम है जो लगातार इन वर्षों में इसके कार्यों में निकट से भाग लेते रहे हैं—या उन्हें देखते रहे हैं। 'ओसवाल-नवयुवक' जैसे सुन्दर मासिक-पत्र का प्रकाशन, इस विशाल नगरी में ओसवालों की एक मात्र व्यायामशाला का सञ्चालन, छात्रों में बौद्धिक और खेलकूद विषयक प्रतिस्पर्द्धा का प्रोत्साहन, सन १९३४ के प्रलयंकारी बिहार भूकम्प में पीड़ितों की सेवा और सहायता आदि समिति के कार्यों से आप लोग भलीभाँति परिचित हैं। पर इन सब के उपरान्त समिति को समाज में सामूहिक जीवन की भावना जागृत करने में जो कुछ सफलता मिली है उसका सब से स्थूल और प्रत्यक्ष प्रमाण तो आज इस स्थान पर आप लोगों की इतनी अच्छी संख्या में उपस्थिति है। अतः इस अवसर पर समिति के भूत-काल के जीवन का अधिक विस्तृत उल्लेख करके आप का समय नष्ट करने की मेरी इच्छा नहीं है।

आगामी वर्ष के कार्यक्रम की योजना आपके सामने रख दी गई है। प्रति वर्ष वार्षिकोत्सव के अवसर पर समिति अपने आगामी वर्ष के कार्य की योजना समाज के सामने रखती है, पर उस योजना की सफलता तो आप ही लोगों के, समाज के प्रत्येक व्यक्ति के, हाथ में है। किसी भी संस्था और उसके कार्यकर्त्ताओं की शक्ति परिमित होती है और जबतक जनता का सहयोग उसमें प्राप्त न हो तबतक कार्य का सुचारु रूप से चलना असम्भव है। यों तो समिति ने अपने नौ वर्ष के जीवन में जो कुछ किया है वह नगण्य नहीं है पर मुझे सचमुच इस बात का दुःख है कि कलकत्ता जैसे शहर में जहाँ ओसवालों की काफ़ी बस्ती है वहां भी समाज के सार्वजनिक जीवन की प्रतिनिधि स्वरूप जो एक मात्र संस्था है उसमें भी लोगों ने अधिक दिलचस्पी नहीं ली। यह और कुछ नहीं केवल इस बात का प्रमाण है कि हम लोगों में सामाजिक जीवन की महत्ता और उपयोगिता का लेशमात्र भी विचार नहीं है। क्षमा कीजिये, पर सच पूछिये तो हम में से अधिकांश चलते फिरते मुर्दे ही हैं। मैं जानता हूं और मानता हूं, कि इस शोचनीय दशा के कारण देश-व्यापी और गूढ़ हैं, पर फिर भी यह तो सम्भव है ही कि हम लोग हमारा सारा समय और शक्ति हमारे निजी और कुटम्ब के कामों में ही खर्च न कर उनका कुछ अंश समाज, नगर और राष्ट्र के कार्यों में भी दें। चाहे इन सब का कोई प्रत्यक्ष (direct) असर हमारे प्रति दिन के कार्यों में पड़ता हुआ हमें न दिखाई दे पर फिर भी, क्या आपने कभी विचार किया है कि समाज, वर्ग या राष्ट्र के न होने से आप का सांसारिक जीवन एक दिन के लिये भी चलना असम्भव हो जायगा ?

यह सब बातें आप को अनेक बार कही गई होंगी पर वास्तव में इतना ही कह कर रह जाने से, केवल रोग का निर्देश कर देने से ही कुछ नहीं होता। अधिक लम्बी चौड़ी बातें न करके मैं तो आज जो योजना आपके सामने रक्खी गई है उसीके सम्बन्ध में नम्रतापूर्वक आप लोगों से केवल तीन बातों की याचना करता हूँ। सबसे प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो समिति ने इस वर्ष निश्चित किया है वह है 'ओसवाल-नवयुवक' का फिर से प्रकाशन। आप सब लोगों को मालूम है कि समिति ने लगातार ६ वर्ष तक बड़ी सफलता से पहले

भी इस मासिक पत्र का प्रकाशन किया है और अतः इस कार्य में जहांतक समिति के कार्यकर्त्ताओं का संबंध है वहां तक, असफलता और सन्देह को कोई स्थान नहीं है। अब आवश्यकता केवल इस बात की है कि प्रत्येक ओसवाल कुटुम्ब में कम से कम एक ग्राहक तो 'ओसवाल नवयुवक' का बने ही! इस प्रजातन्त्रवाद के युग में—बीसवीं सदी में इस बात को दिखाने के लिये बहुत लम्बी चौड़ी वक्तृता की आवश्यकता नहीं है कि किसी भी समाज के हितों की रक्षा और उसके सामूहिक जीवन के विकास के लिये एक मुखपत्र (organ) का होना अत्यन्त आवश्यक है। मुझे सम्पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य के लिये जब समिति के कार्य कर्त्ता आप की सेवा में आयंगे तब न केवल आप स्वयं ही ग्राहक बनेंगे बल्कि अपने मित्रों को भी, जो आज यहां उपस्थित न हों, इस बात की प्रेरणा करेंगे।

समिति का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य व्यायामशाला तथा खेलकूद सम्बन्धी है। दुःख है कि हमारे समाज में शारीरिक विकास और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। इसके विपरीत, हमारा जीवन इतना अनियमित और हमारा खान पान इतना दूषित हो गया है कि हमारे समाज की शारीरिक सम्पत्ति दिनोंदिन घटती जा रही है। समिति ने इस क्षेत्र में सराहनीय प्रयत्न किया है और समिति की ओर से एक व्यायामशाला भी चलती है जिसके सदस्यों के खेलों का सुन्दर प्रदर्शन अभी थोड़ी देर बाद ही आप लोग देखेंगे और कितनी ही बार देख भी चुके होंगे। इस विषय में मेरा आप से यह विनयपूर्वक अनुरोध है कि आप स्वयं भी नियमित रूप से प्रतिदिन कुछ न कुछ व्यायाम करने की प्रतिज्ञा करके यहां से जांय और अपने बच्चों को भी, बिना किसी अपवाद के, व्यायाम तथा खेलकूद के लिये भेजें। हम लोग बच्चों की पढ़ाई के लिये तो अपने को जिम्मेदार समझते हैं पर यह अभी तक हमारी समझ में नहीं आया है कि उससे भी अधिक जवाबदारी हमारी उनको स्वस्थ, स्वच्छ और सुन्दर बनाये रखने की है। याद रखिये अनपढ़ मनुष्य की सन्तान सभ्य और स्वस्थ हो सकती है पर रोगी और निर्बल माता पिताओं की सन्तान सदा रोगी और निर्बल ही होगी। अतः मेरी आप से विनम्र प्रार्थना है कि आप अपने बच्चों के प्रति अपने इस कर्त्तव्य को न भूलियेगा। और मुझे आशा है समिति भी इस विषय में पत्र द्वारा तथा हैण्डबिल और लेन्टर्न लेक्चरों द्वारा समाज में ज़ोरों से आन्दोलन करेगी।

तीसरी बात जो मुझे आप से कहनी है वह एक साधारण (General) बात है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि समिति के एक दो विशेष अधिवेशनों को छोड़ कर समिति द्वारा बुलाई हुई अन्य सभाओं में उपस्थिति बड़ी ही असन्तोषजनक होती है। समिति के कार्यों में क्रियात्मक सहयोग की बात तो एक ओर रहने दीजिये पर क्या आप इतना भी नहीं कर सकते कि समिति की ओर से जिन सभाओं की सूचना आप को मिले उनमें जाकर अपनी उपस्थिति मात्र से कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को बढ़ावें? इस विषय में मैंने समिति के कार्यकर्त्ताओं से भी यह अनुरोध किया है कि समिति का वर्तमान स्थान ओसवाल समाज की बस्ती के बीच में न होने से कभी २ सभाएं क्रमवार अन्य स्थानों में भी किया करें। मैं आशा करता हूं कि भविष्य में आप भी समिति द्वारा बुलाई हुई सभाओं में उपस्थित होना अपना कर्त्तव्य समझेंगे।

संक्षेप में जैसा मैंने पहले कहा था, मैं आप से केवल तीन बातों की प्रतिज्ञा नम्रतापूर्वक चाहता हूँ-- वह है आप के तन, मन और धन तीनों का थोड़ा २ सहयोग--व्यायामशाला और स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य में आप के तन का, समिति की सभाओं में तथा अन्य सामान्य कार्यों में आप के मन का और 'ओसवाल-नवयुवक' मासिक के लिये केवल चार आने महीने जितना आप के धन का ! बस ! इससे अधिक देना या न देना आप की इच्छा पर निर्भर है पर यदि आप इतना भी करेंगे तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि शीघ्र ही समिति को आप देश की प्रगतिशील संस्थाओं में से एक पायँगे।

समाज के विद्वान लेखक यह न समझें कि 'ओसवाल-नवयुवक' के सम्बन्ध में उन्हें मैं बिल्कुल ही भूल गया हूँ। उनका सहयोग तो पत्र के नियमित रूप से चलने की पहली शर्त है इसी में वे सब कुछ समझ लें और मुझे उनकी उदारता पर पूरा भरोसा भी है।

अब दो शब्द मेरे नवयुवक मित्रों और कार्य-कर्त्ताओं से भी ! बहुधा यह देखा गया है कि सभा समितियों में भाग लेने वाले कार्यकर्त्ता अपने को झटपट सुधारक मान बैठते हैं--पर उनका सुधार अधिकतर दूसरों की टीका-टिप्पणी करने तक ही परिमित रहता है। सच पूछिये तो अब सुधार वास्तव में सुधार न रह कर केवल व्यक्तिगत द्वेष का, समाज में एक दूसरे को नीचा दीखाने का और व्यर्थ ही किसी कार्य में रोड़ा अटकाने का साधन रह गया है। सुधार और सुधारक शब्दों के नाम पर इतने स्वार्थ, छल, दम्भ और ईर्ष्या के खेल खेले गये हैं और खेले जाते हैं कि मुझे तो अब इन शब्दों से ही घृणा हो गई है। सुधार की भावना को विकृत करके लोगों ने सदा उससे दूसरों के, समाज के ही सुधार का अर्थ लिया है न कि अपने निज के सुधार का और अतः सुधारवाद में अहङ्कार और ऊँचनीच का भाव प्रवेश कर गया है। सुधारक अपने को ऊँचा समझता है और अन्य जो उसकी श्रेणी में नहीं आते उन्हें नीचा और असभ्य। अतः मेरे नवयुवक भाईयों से यही प्रार्थना है कि वे सुधारक--कम से कम समाज-सुधारक--बनने का प्रयत्न न करें। युवकों का कार्य क्षेत्र तो समाज की सेवा है न कि उसका सुधार करने की धृष्टतापूर्ण भावना। सेवा में ही सुधार और प्रगति के बीज मौजूद हैं। समाज की सेवा करने का अर्थ यही है कि अपने पास जो भी हो, चाहे विद्या या धन, उसका कुछ अंश समाज को देते रहना। इससे समाज शीघ्र ही सम्पन्न और शिक्षित बन सकता है। चाहे मेरे विचारों से आप लोग सहमत न हों पर मैं तो एक क़दम और आगे बढ़ूंगा और कहूँगा कि बालविवाह, वृद्धविवाह, विधवाविवाह नुकता या जीमण जैसे तुच्छ प्रश्नों पर साधारणतया नवयुवकों को ध्यान भी न देना चाहिये। यह काम समय अपने आप करा लेगा। मुख्य काम तो समाज की आनेवाली पीढ़ियों की उचित शिक्षा का- उनको सुन्दर स्वास्थ्य, सभ्य और कर्त्तव्यशील नागरिक बनाने का है। इसका उचित प्रबन्ध हो जाने से उपरोक्त सारे प्रश्न अपने आप हल हो जायगे। मैं तो कभी २ आश्चर्य करता हूं कि गत तीस तीस वर्षों में जितनी शक्ति कहे जाने वाले समाज-सुधारकों ने इन विवाह और जीमण जैसे तुच्छ प्रश्नों के पीछे खर्च की है उसकी शतांश भी यदि वह शिक्षा के प्रचार में करते तो क्या आज समाज की हालत वर्तमान से कहीं अधिक अच्छी न होती और समाज में जो सुधारकों

और पुराणपन्थियों के घृणास्पद भेद दिखाई देने लगे हैं, वे होते ?

सेवा का क्षेत्र विशाल और कार्य महान है-इसमें न निन्दा का भय है न विरोध की आशंका ! आवश्यकता है केवल आत्म बलिदान, साहस और स्वार्थ त्याग की जो नवयुवकों में पर्याप्त मात्रा में होने चाहियें। पर, दुर्भाग्यवश पीढ़ियों से चली आती हुई हमारी गुलामी ने, परतन्त्रता ने, इस देश का सारा वातावरण दूषित कर दिया है। समाजसेवा और त्याग- अपने से भिन्न किसी भी दूसरी वस्तु, आदर्श या व्यक्ति के लिये निज का बलिदान करने की उच्च भावनाएँ—किसी स्वतन्त्र भूमि में ही पनप सकती हैं। गुलामी और विशेष कर आर्थिक गुलामी स्वार्थ-बुद्धि को उत्पन्न करनेवाली होती है, और जिस देश में सदियों तक यही क्रम रहा हो उस देश में यदि प्रत्येक अवसर (opportunity) को मनुष्य अपने स्वार्थ साधन का ज़रिया बनाये तो इसमें आश्चर्य क्या है ? और जो इनेगिने सेवा-भावी युवक हैं भी उन्हें भी इन सब कटु अनुभवों के कारण शुद्ध राष्ट्रीय संस्था के सिवा उससे कम व्यापक सामाजिक, धार्मिक, वर्गिक, आर्थिक या अन्य किसी भी प्रकार की संस्था में भाग लेना रुचिकर नहीं होता। पर दोष संस्थाओं में नहीं होता—दोष तो हमारी मनोवृत्तियों का है। किसी भी जड़ वस्तु में स्वतन्त्र रूप से हानिलाभ पहुंचाने का माद्दा नहीं होता—हानिलाभ की शक्ति तो उसमें चेतन के संसर्ग से ही उत्पन्न होती है। अतः यदि किसी संस्था को स्वार्थ का या किसी सङ्कुचित वर्गीय हित की रक्षा का साधन न बना कर विशुद्ध सेवा का—व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सर्वाङ्गीण विकास का—साधन बनाया जाय तो ऐसी कम व्यापक, एक-देशीय या वर्गीय सँस्थाएँ भी चाहने लायक ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी, हो जाती हैं—क्योंकि ऐसे छोटे छोटे वर्ग प्रत्येक मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण शक्ति के उपयोग का अवसर देते हैं। क्योंकि, कुटुम्ब वर्ग या समाज सभी राष्ट्र के भाग है—और इनमें से प्रत्येक की उन्नति तथा विकास के लिये किया हुआ प्रयत्न राष्ट्रीय उन्नति के पुनीत यज्ञ का ही एक अंश है—और आवश्यक अंश है, क्योंकि राष्ट्ररूपी शरीर का कोई भी अंग निर्बल रह जानेसे सारा राष्ट्र ही निर्बल रहता है। वास्तव में अपने निकट आसपास की, अपने से अधिक सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के विकास की, अवहेलना करके हम स्वदेशी की सच्ची भावना के मूल में ही कुठाराघात करते हैं। इस विषय पर इतना विस्तार करने का कारण केवल यही है कि आजकल राष्ट्रीय विचारों की दुहाई दे कर बहुत से व्यक्ति सामाजिक कार्यों से—और ऐसी संस्थाओं से दूर रहते हैं। पर अधिकतर तो यह उन की अकर्मण्यता को छिपाने का और सामाजिक उत्तरदायित्व से अलग रहने का एक बहाना मात्र ही होता है—हाँ वह व्यक्ति अपवाद स्वरूप हैं जो अपना क्षेत्र इतना विस्तृत कर चुके हैं कि उनकी सारी शक्तियाँ सीधे तौर से (directly) राष्ट्र की सामूहिक उन्नति में काम में आ सकती हैं। अतः मैं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को, विशेषकर सहृदय नवयुवकों को, नम्रतापूर्वक, सामाजिक कार्यों में—समाज के वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के विकास में—सम्पूर्ण सहयोग देने के लिये आह्वान करता हूं और आशा करता हूँ कि वे अपने कर्तव्य से विमुख न होंगे।

जैन--साहित्य--चर्चा

प्रारम्भिक

भारतीय धर्मों की अर्थात् भारतवर्ष में जिन धर्मों की उत्पत्ति हुई उनकी यह विशेषता है कि सभी में ज्ञान को बहुत ऊँचा स्थान मिला है। भारतवर्ष के किसी भी धर्म के प्रवर्तकों या उनके अनुयायियों ने 'डंडे के ज़ोर पर' अपने धर्म के प्रचार करने का प्रयत्न कभी नहीं किया। उन्होंने सदा बुद्धि को प्रधानता दी और सामने वाले को समझा कर उसकी तर्क बुद्धि में उचित जँचे ऐसे विधान उसके सामने रख कर ही उसे अपने धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न किया। इस प्रवृत्ति का एक परिणाम यह हुआ कि भारत में दर्शन शास्त्र और अध्यात्म सम्बन्धी जितना साहित्य लिखा गया उतना शायद संसार में कहीं भी नहीं लिखा गया। यहाँ के भिन्न-भिन्न मतों, धर्मों और सम्प्रदायों में से प्रत्येक का इतना साहित्य है जितना किसी भी सभ्य देश के गौरव का विषय हो सकता है। और मुख्य : धर्मों के विषय में तो यह भी है कि उनका साहित्य आध्यात्मिक विषयों तक ही सीमित रहा हो सो बात भी नहीं है—वरन् जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी हो ऐसा साहित्य भिन्न-भिन्न धर्मों की परम्परा में विस्तृत रूप से बनता चला गया और इस प्रकार भारतीय ज्ञान-विज्ञान के इस वृक्ष ने थोड़े ही दिनों में विशाल रूप धारण कर लिया। इसकी प्रत्येक शाखा में - प्रत्येक धर्म के साहित्य में— मुमुक्षु के लिये, विश्व के लिये, कोई-न-कोई सन्देश छिपा पड़ा ही है।

जैन परम्परा का साहित्य भी बहुत विस्तृत और उच्च कोटि का है— इसमें किसी निष्पक्ष विद्वान को इन्कार नहीं है। जैनाचार्यों ने ज्ञान के कितने ही क्षेत्रों में तो मौलिक सिद्धान्तों की रचना की है और संसार के इतिहास में वे अपना नाम अमर कर गये हैं। सिद्धसेन दिवाकर और हेमचन्द्राचार्य ने संस्कृत-साहित्य की जो सेवा की उसके कारण आज प्रत्येक विद्वान उनका नाम आदर के साथ लेता है। परन्तु यह सब सम्पत्ति परम्परा के उत्तराधिकार से आज ऐसे हाथों में आ पड़ी है जो उसका उपभोग करने की भी योग्यता नहीं रखते—उसमें वृद्धि करने की बात तो दूर रही। इतना ही नहीं वे इस सम्पत्ति को मखमल के सुन्दर आवरणों में लपेट कर तालों में बन्द रखने में ही उसका

उचित सत्कार और रक्षा समझते हैं। नतीज़ा यह हुआ है कि जैन-साहित्य के रत्न आज केवल भण्डारों की शोभा बढ़ा रहे हैं और लोग उनको भूलते जा रहे हैं। विश्व के ज्ञान-कोष में उन्होंने जो अपनी भेंट रक्खी थी वह भी आज लोगों की नज़रों से ओझल हो गई है। आज कितने विद्वान् ऐसे हैं जो जैन-साहित्य से परिचित हैं? पर यह दोष हमारा ही है।

इस स्तम्भ में जैन-साहित्य का यथा सम्भव परिचय कराते रहने की हमारी इच्छा है। आज प्राचीन साहित्य के उद्धार की, आधुनिक ढंग पर टीका-टिप्पणी सहित उसके नये-नये संस्करण निकालने की और भिन्न-भिन्न भाषाओं में उसको उपलब्ध करने की हम बड़ी आवश्यकता समझते हैं—यह केवल इसीलिये नहीं कि हम प्राचीनता के बड़े भक्त हों या जो लिखा जा चुका है उसी में ज्ञान का अन्त आ चुका यह समझते हों, पर इसलिये कि नूतन साहित्य की रचना भी तभी सम्भव हो सकती है, जब जितना मार्ग पहले तै हो चुका है उसका हमें पूरा ज्ञान हो। हमारे जैसे कितनों ही के जीवन तो पुराने रत्नों की खोज में ही अभी व्यतीत हो सकते हैं।

तीव्र मनोकामना से प्रेरित होकर हमने इस अङ्क से यह स्तम्भ आरम्भ तो कर दिया है, पर, हम स्वयं तो इस योग्य हैं नहीं कि इसको चला सकें। जैन-साहित्य का हमारा ज्ञान नहीं के बराबर है। पर हमने यह भार उन्हीं विद्वान मित्रों के सहयोग की आशा पर उठाया है जो इन विषयों में दख़ल रखते हैं—यही सोच कर कि आरम्भ तो कर दें फिर तो उन्हें निभाना ही पड़ेगा। हमें विश्वास है कि हमारी आशा निराशा में परिणत नहीं होगी और जैन-साहित्य की थोड़ी बहुत भी जो सेवा करने की हमारी तीव्र अभिलाषा है वह पार पड़ेगी। हमारे इस प्रयत्न के फलस्वरूप यदि किसी के हृदय में भी आगे बढ़ कर इस साहित्य के अध्ययन करने की कुछ जिज्ञासा पैदा हुई तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे।

---सम्पादक

आध्यात्मिक शोध

[पण्डित बेचरदासजी]

[श्री सुधर्म स्वामि प्रणीत भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति) का एक संस्करण श्री पूंजा भाई जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद से निकला है। उसकी भूमिका में जैन-साहित्य के सुपरिचित विद्वान पं० बेचरदासजी ने ग्रन्थ का संक्षेप में और सुन्दर परिचय दिया है। उसी भूमिका को (चतुर्थ खण्ड में से) हम क्रमशः अंशों में इन पृष्ठों में उसका अनुवाद उद्धृत करते हैं जिससे पाठकों को उस ग्रन्थरत्न का कुछ परिचय मिल सके—सं०।]

जीवन तन्त्र के रहस्य को समझने की इच्छा में से आध्यात्मिक खोज का झरना फूट निकलता है। यह जिज्ञासा ही आध्यात्मिक शोध की जड़ है। हमारे देश में जो-जो भी महान आत्मशोधक हुए हैं, जिन्हें हम सन्त कहते हैं, उन्होंने जिज्ञासा से प्रेरित होकर ही जीवन और जगत के रहस्य को समझने की जो

प्रवृत्ति की उसका अपना-अपना अलग वृतान्त वे अपनी-अपनी शैली में हमारे लिये छोड़ गये हैं।

जिनके बुद्धि और मन ठीक-ठीक विकसित हो गये हैं ऐसे संस्कार-सम्पन्न, आरोग्य-सम्पन्न, तेजस्वी और आत्मशोधक मुमुक्षु लोगों के हृदयों में उपरोक्त जिज्ञासा के कारण नीचे दिये हुए कितने ही प्रश्न उठें यह स्वाभाविक है।

यह जगत क्या है? यह सब मोहमाया क्या चीज़ है? जगत में दुःख और असन्तोष के कारण कौन से हैं? वह टल सकते हैं या नहीं? और टलें तो कैसे? मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से, क्यों, कब और किस तरह इस संसार में आया हूँ? जो मैं कोई भिन्न पदार्थ हूँ तो कभी सदा के लिये भी इस विश्व से मेरा छुटकारा होगा या नहीं? इस जगत की उत्पत्ति कब, किस तरह, क्यों और किस के लिये किसने की? क्या इस विश्व का भी कभी नाश होगा या नहीं? यदि नाश होगा तो यह सब पदार्थ—नदी, समुद्र, पहाड़, जङ्गल और प्राणी, यह सब कहाँ जायेंगे? मैं खुद कहाँ जाऊँगा? क्या विश्व के प्रलय के बाद भी मैं रहूँगा? जो रहूँगा तो किस आकार में और किस वस्तु के आधार पर? और नहीं रहूँगा तो उसका कारण? क्या ऐसी कोई विशिष्ट शक्ति है जो इस विश्व की फिर से रचना कर सके?

यह प्रश्न कोई आजकल के नये नहीं हैं परन्तु वेद-काल के आरम्भ से ही अर्थात् जब आर्य जाति संस्कार सम्पन्न और बुद्धि-सम्पन्न थी तभी से इनकी चर्चा होती आई है। इन प्रश्नों के साथ आध्यात्मिक शोध का गाढ़ सम्बन्ध है।

वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण और आरण्यक इत्यादि में आध्यात्मिक शोध करने वाले उन-उन दिव्य पुरुषों ने ऊपर कहे हुए तथा ऐसे कितने ही और प्रश्नों की चर्चा की है। और ज्यों-ज्यों बुद्धि बल और आत्मशोध अधिक गहरे होते गये त्यों-त्यों और भी बहुत से शोधकों ने इन प्रश्नों पर भिन्न-भिन्न दृष्टि से अपने अलग-अलग विचार प्रदर्शित किये हैं।

फिर सांख्याचार्य कपिल, न्याय प्रवर्तक अक्षपाद, विशेषवादी महर्षि कणाद इत्यादि अनेक पुरुषों ने इन प्रश्नों पर और भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध ने भी जीवन के इस रहस्य को सुलझाने के लिये जो आध्यात्मिक प्रयत्न किये उनमें भी इन सब प्रश्नों पर अपनी-अपनी दृष्टि से योग्य प्रकाश डाला है।

भगवान बुद्ध के लिये यह कहा जाता है कि बचपन से ही वे चिन्तनशील प्रकृति के थे और उनका मन इस संसार की बाह्य प्रवृत्तियों में नहीं लगता था। इसीलिये उनके पिता राजा शुद्धोधन ने उनके रहने की ऐसी व्यवस्था की कि जहाँ सदा गान-तान, राग-रङ्ग, विषय-विलास और अखंड स्वर्गीय सुख उन्हें मिले जिससे उनका मन सँसार मे लग जाय। पर अन्त में राजा शुद्धोधन के यह सब प्रयास निष्फल गये और सिद्धार्थ (बुद्ध) अपनी स्त्री और पुत्र को छोड़ आधी रात में अपने चित्त में जो ऊँडी-ऊँडी उदासीनता और असन्तोष था उसके कारण ढूंढ़ने के लिये निकल पड़े। उनको ऐसी राजशाही में रक्खा गया था कि बीमारी क्या, बुढ़ापा क्या और मौत क्या इस तक की भी उनको खबर नहीं थी। जब उन्होंने बीमारी, बुढ़ापा और मौत देखे तब वे और भी ज्यादा विकल हुए और इन दुःखों का अन्त करने के लिये प्रयत्न करने का उन्होंने निश्चय किया।

त्रिशला और सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर भी

जिनका नाम वर्धमान था, बचपन से चिंतनशील और संस्कार-सम्पन्न थे। जैन साहित्य में उनके विषय में जो दन्तकथाएँ और परम्पराएँ मिलती हैं उनपर से इतना तो मालूम होता है कि उनका मन बचपन से ही आत्मशोध की तरफ़ झुका हुआ था। पर साथ ही में माता-पिता के प्रति उनके हृदय में अधिक सद्भाव था जिससे उनके आग्रह से ही उन्होंने गृहस्थाश्रम को स्वीकार किया और एक पुत्री के पिता भी हुए। माता पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपनी, बचपन-से-प्रिय आध्यात्मिक शोध का प्रयत्न चालू करने का विचार किया परन्तु फिर भी अपने बड़े भाई के प्रेम भरे आग्रह से एक वर्ष और राजधानी में रुक गये; किन्तु इसी बीच उन्होंने आध्यात्मिक शोध के साधन रूप परंपूर्व से चले आते हुए संयम मार्ग का अपने जीवन में प्रवेश किया। उनके पहले श्रमणों की परम्परा में पार्श्वनाथ नाम के एक प्रख्यात युग-प्रवर्त्तक हुए थे और वैदिक परम्परा में भी आत्मशोध के लिये कितनी ही तरह के कर्मकांड और देहदंड का रिवाज था।

जो साहित्य भगवान महावीर के अनुयायिओं ने रचा है उसको देखने से उस समय की सब श्रमण ब्राह्मण परम्परा का ज्ञान हमें हो सकता है। अब महावीर ने उन परम्पराओं से प्रेरणा पाकर अपने जीवन की समस्या को हल करने और विश्व में रहते हुए उसके दुःखों से मुक्त रहने का मार्ग ढूंढ़ निकालने का अखण्ड प्रयत्न शुरू किया। वे तीस बरस की उम्र में अर्थात् भर जवानी में साधना करने को निकल पड़े, इसी से यह मालूम होता है कि वे इसके लिये कितने अधीर थे। वे राजपाट, समृद्धि और भोग-विलास का त्याग करके कड़ाके की सर्दी में घर से बाहर निकल पड़े-वस्त्र से देह ढंकने की इच्छा भी नहीं की।

घर से निकलने के बाद बारह बरस तक उन्होंने कड़ी साधना की जिस साधना में उनको शारीरिक और मानसिक अनेक कष्ट सहने पड़े जिसका सविस्तर वर्णन अकृत्रिम भाषा में जैन आगमों में* मौजूद है। 'मज्झिम निकाय' के 'सिहनादसुत्त' में जिस तरह की रोमाञ्चकारी साधना का वर्णन स्वयं भगवान बुद्ध ने किया है उसी प्रकार की साधना भगवान महावीर की थी। इस साधना के फलस्वरूप वे अब सब तरह की स्थिरता रख कर, मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तिओं पर निरन्तर अङ्कुश रखने के योग्य हो गये और इस साधना द्वारा सब प्रकार की आसक्ति और तृष्णा उन्होंने उखाड़ फेंकी। इस प्रकार 'स्थितप्रज्ञ'पन और वीतराग भाव प्राप्त कर लेने के बाद और संसार के विषय में बहुत गहरा मनन करने के बाद वह मगध देश में घूम-घम कर उस ज़माने के लोगों का, जो आर्य-आदर्शों से च्युत हो गये थे और जिनकी यह भ्रमणा थी कि कर्मकाण्ड और देहदंड में ही सिद्धि है तथा कर्मकांड मे हर तरह की हिंसा और असत्य को स्थान है और वह भी धर्म, वेद और ईश्वर के नाम पर- उन लोगों का भ्रम दूर करने के लिये तथा फिर से आर्यों के खोज निकाले हुए अहिंसा, सत्य, सर्वभूत मैत्री और गुण की प्रधानता के सिद्धान्तों को प्रचलित करने के लिये समय और जनता की ग्रहण करने की शक्ति के अनुसार उपदेश करने लगे।

इस व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में उनके इन कितनेक प्रवचनों की नोंधों का संग्रह उनके समकालीन या परवर्ती अनुयायिओं ने किया है।

---

* देखिये, आचारांगसूत्र, उपधानश्रुत, अध्ययन ९।

इस ग्रन्थ में जीवनशुद्धि की मीमांसा और विश्व-विचार इन दोनों विषयों पर जो कुछ भी कहने में आया है वह आज से ढाई हज़ार वर्ष पहले के सत्य और जीवनशुद्धि के उपासकों की अगाध बुद्धि और शुद्धि की गहराई बतलाने को काफ़ी है।

जो कि इस ग्रन्थ में चर्चा तो दोनों विषयों की है पर मुख्य विषय तो जीवनशुद्धि की मीमांसा का ही है। विश्वविचार का जो विषय साथ में चर्चा गया है वह तो जीवनशुद्धि का सहायक समझा जाने के कारण ही। जीवनशुद्धि बिना के उस विषय के कोरे ज्ञान से ही श्रेय प्राप्ति नहीं होती ऐसा भगवान महावीर ने पग पग पर कहा है। जीवनशुद्धि के विषय की चर्चा करते हुए भी कितनी ही ऐसी चर्चा करने में आई है जो उस समय की रूढ़ियों को तोड़ कर नया मार्ग बताने वाली है।

(क्रमशः)

हमारी सभा-संस्थाएँ

१—ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता

ओसवाल-नवयुवक समिति का गत दिसम्बर से दसवाँ वर्ष चालू है। दिसम्बर से अप्रेल—इन पाँच महीनों में समिति ने जो कुछ किया उसका विवरण संक्षेप में नीचे दिया जाता है:—

(१) शारीरिक-कला प्रदर्शन—

गत ता० २६ दिसम्बर १९३५ को संध्या के ७ बजे श्रीमान बहादुरसिंहजी सिंघी के सभापतित्व में समिति की ओर से समिति के सदस्यों द्वारा शारीरिक कला प्रदर्शन का आयोजन किया गया था। जनता बहुत अच्छी संख्या में उपस्थित थी। प्रदर्शन टिकट लगा कर किया गया था।

व्यायाम में ग्राउण्ड फ़ीगर, रोमन रिंग, पिरेमिड, परललबार, स्विंग बैलेन्स, चेयर बैलेन्स, दाँतों से वज़न उठाने तथा लैडर बैलेन्स आदि के मुग्ध करने वाले कौशल दिखाये गये। इस बार शारीरिक कला प्रदर्शन में अभूतपूर्व सफलता मिली। उपस्थित सभी गणमान्य सज्जनों ने समिति की ओर से होते हुए व्यायाम प्रचार के कार्य की सराहना की। इस प्रदर्शन में व्यायामशाला के निम्नलिखित सदस्यों के लिये पारितोषिक घोषित हुए थे।

झूलेके कौशल के लिये श्री मदनचन्दजी शामसुखा को श्री माणिकचन्दजी भण्डारी, वकील जोधपुर की ओर से २५) का स्वर्ण पदक, श्री तिलोकचन्दजी सुराणा की ओर से एक स्वर्ण पदक, श्री मांगीलालजी लूणिया की ओर से एक रजत पदक, श्री नथमलजी सुराणा की ओर से एक रजत पदक। शरीर सङ्गठन और दाँतों से वज़न उठाने के लिए श्री ताराचन्दजी मणोत को श्री बहादुरसिंहजी सिंघी की ओर से एक स्वर्ण पदक, श्री पूरणचन्द जी चोपड़ा की ओर से एक स्वर्ण पदक। चेयर बैलेन्स के कौशल के लिए श्री मोहनलालजी दूगड़ को श्री खेतारामजी मोहता की ओर से रजत-पदक, श्री धर्मचन्दजी सरावगी की ओर से एक रजत पदक और लैडर बैलेन्स के कौशल के लिये श्री राजेन्द्रसिंहजी सिंघी की ओर से एक

रजत पदक। श्री मोहनलालजी दूगड़ को श्री नरेन्द्र सिंहजी दूगड़ की ओर से एक रजत पदक तथा श्री भोजराजजी दूगड़ और मोहनलालजी दूगड़ को एक गुप्त-नाम सज्जन की ओर से एक एक रजत पदक।

शारीरिक-कला प्रदर्शन के बाद 'अर्जुन प्रतिज्ञा' नाटक का अभिनय किया गया। नाटक के लिये यद्यपि विशेष तैयारी की गई थी तथापि उसमें उतनी सफलता न मिली जितनी कि मिलनी चाहिए थी। नाटक के बाद उपस्थित जनता एवं सभापति महोदय को धन्यवाद देकर आयोजन समाप्त हुआ।

समिति के इस आयोजन को सफल बनाने के लिए श्री रिधकरणजी नाहटा तथा श्री मोतीलालजी नाहटा ने विशेष परिश्रम किया था, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

(२) अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन में स्वयसेवक—

गत ता० ३० तथा ३१ दिसम्बर ३५ को कलकत्ते में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन हुआ था, उसमें समिति की ओर से स्वयंसेवक भेजे गये थे। निम्नलिखित युवकों ने उत्साहपूर्वक स्वयंसेवक रूप से कार्य किया था—(१) श्री० सागरमलजी सेठिया (कप्तान) (२) नेमचन्दजी बरड़िया (३) सोहनलालजी सेठिया (४) केशरीचन्दजी सेठिया (५) केशरीचन्दजी बंगाणी (६) नेमचन्दजी बोठिया (७) गणेशमलजी सेठिया (८) डालचन्दजी धाड़ीवाल (९) मांगीलालजी लूणिया (१०) चम्पालालजी सेठिया (११) भँवरलालजी सेठिया।

हम उपरोक्त सदस्यों को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि समाज सेवा का यह भाव हम में दिनोंदिन बढ़ता जायगा।

(३) समिति का नवम वार्षिकोत्सव एवं प्रीति-सम्मेलन

समिति का नवम वार्षिकोत्सव एवं प्रीति सम्मेलन दोनों एक साथ गत ता० १५ मार्च १९३६ मिति चैत्र बदी ७ को दिन के दो बजे से श्री दादाजी के बगीचे में श्री० सिद्धराजजी ढड्ढा—एम० ए०, एल-एल० बी० के सभापतित्व में हुआ था। वार्षिकोत्सव तो प्रतिवर्ष होता ही है परन्तु इस बार प्रीति-सम्मेलन एक नई चीज़ थी। यह हर्ष की बात है कि लोगों ने इस प्रीति सम्मेलन के आयोजन को बहुत पसन्द किया और अच्छी संख्या में भाग लिया। लगभग ३०० गण्य-मान्य सज्जन उपस्थित थे जिनमें सर्व श्री सोहनलालजी दूगड़, सागरमलजी दूगड़, तगतमलजी नाहटा, हुलासमलजी रामपुरिया, शुभकरणजी सुराणा, मदनचन्दजी गोठी, रा० बा० रामदेवजी चोखाणी, सीतारामजी सेखसरिया भागीरथमलजी कानोड़िया, महालचन्दजी वेद, छोगमलजी चोपड़ा बी० ए०, बी० एल०, गणेशमलजी नाहटा एम-एस-सी, बी० एल०, वीरेन्द्रसिंहजी सिंघी, अमोलकचन्दजी बोथरा, कुन्दनमलजी सेठिया, खूबचन्दजी सेठिया, भीमराजजी सेठिया, नेमचन्दजी पूगलिया, चन्दराजजी सुराणा, मोहनलालजी बंगाणी, फकीरचन्दजी कोठारी, गोपीचन्दजी चोपड़ा बी० ए० बी० एल०, डालिमचन्दजी सेठिया बार-एट-ला०, सागरमलजी सेठिया बी० कौम०, तिलोकचन्दजी रामपुरिया बी० ए०, बी० एल०, सन्तोषचन्दजी बरड़िया बी० ए० ऑनर्स०, मानिकचन्दजी सेठिया, सोहनलालजी कोठारी, घेवरचन्दजी बोथरा आदि सज्जनों के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री घेवरचन्दजी बोथरा द्वारा स्वागत गान होने के बाद मंत्री ने प्रीति-सम्मेलन की उपयोगिता बतला कर

समिति के कार्यों में सहयोग देने के लिए वृद्धों एवं युवकों का आह्वान किया और श्री० नेमचन्दजी चोरड़िया ने समिति की दसवें वर्ष की कार्य-योजना पर प्रकाश डाला। इसके बाद आगत सज्जनों में से—सर्व श्री खूबचन्दजी सेठिया, भंवरलालजी बख्शी, छोगमलजी चोपड़ा, गणेशमलजी नाहटा, कन्हैयालालजी नाहटा, सन्तोषचन्दजी बरड़िया सीतारामजी सेखसरिया, रामदेवजी चोखाणी, भागीरथमलजी कानोड़िया आदि के भाषण हुए।

इन महानुभावों के भाषणों के बाद मदनलालजी शर्मा द्वारा मारवाड़ी गायन हुआ जो स्वदेशानुराग के भावों से भरा था। मारवाड़ी छात्र सङ्घ के सदस्यों द्वारा भी गायन वाद्य हुआ। इसके बाद श्री मोतीलालजी नाहटाने विनोदात्मक कविता पढ़ी जिसको लोगों ने बहुत ही पसन्द किया। अन्त में सभापति जी का ओजस्वी और सार गर्भित भाषण हुआ। वह भाषण अन्यत्र प्रकाशित है।*

भाषणादि के बाद व्यायाम प्रदर्शन का कार्यक्रम था। श्री० मोहनलाल जी गोलेछा लाड़नू निवासी ने अपनी छाती पर से मोटर को निकाला। जनता ने इसे बड़ी उत्सुकता से देखा। समय अधिक हो जाने के कारण अन्य व्यायाम नहीं दिखाये जा सके।

उपरोक्त कार्यक्रम के बाद जनता को प्रीति-भोज (refreshment) कराया गया। रिफ्रेशमेन्ट का प्रबन्ध श्री माणिकचन्दजी सेठिया ने जिस सुन्दरता से किया उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रीति भोज में बहुत कम खर्च हुआ फिर भी उपस्थित जनता ने अच्छी सराहना की। वार्षिकोत्सव एवं प्रीति सम्मेलन दोनों में मिलकर लगभग १२५) रु० खर्च हुए इनमें से क़रीब १००) रुपये सदस्यों के विशेष चन्दे से आये।

इस प्रीति सम्मेलन में लोगों ने जिस प्रसन्नता और प्रेम से भाग लिया उससे ऐसे आयोजन की आवश्यकता विशेष रूप से मालूम होती है। आगे कलकत्ते में होली के दिनों में 'सहलें' हुआ करती थीं—उन सहलों का हट जाना जनता को एक बहुत बड़ा अभाव मालूम होता है। ये सहलें खर्चीली अवश्य होती थीं। जूठन आदि भी बेशुमार पड़ती थी। यदि हम वैसी सहलों के स्थान में ऐसे रिफ्रेशमेन्ट रक्खें और समूचे समाज का होली के दिनों में बृहत् प्रीति-सम्मेलन करें तो वह समाज-सङ्गठन की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक हो।

(४) कलकत्ता कारपोरेशन का चुनाव

कलकत्ता कारपोरेशन का पञ्चम साधारण चुनाव गत ता० २६ मार्च १९३६ को था। नागरिक अधिकारों का उपयोग करना हमारी समाज बहुत ही कम जानती है। जिन वार्डों में हमारी बस्ती बहुत अधिक है उन वार्डों से भी अपनी समाज में से कोई उम्मेदवार खड़ा नहीं होता। इस बार समिति का विचार था कि अपनी समाज में से भी किसी को खड़ा किया जाय परन्तु समय न रहने से उस दिशा में प्रयत्न नहीं किया जा सका, फिर भी समिति ने इतना प्रबन्ध अवश्य किया कि जिससे समाज अपने मत योग्य उम्मीदवारों को दे सके। वोट देने के सम्बन्ध में अपना कर्तव्य स्थिर करने के लिए ता० १४-३-३६ को ओसवालों की एक सार्वजनिक सभा की गयी। इसके बाद एक हैण्डबिल द्वारा जनता के सामने उन उम्मीदवारों के नाम रक्खे गये जिनसे सच्ची सेवाओं की आशा की जा सकती थी।

---

* देखिये पृ० ४१

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि हमारे समाज के वयोवृद्ध सज्जन श्रीमान पूरणचन्दजी नाहर के योग्य सुपुत्र श्री विजयसिंहजी नाहर वार्ड नं० १४ से दूसरी बार काउन्सिलर चुने गये हैं। आप को इस सफलता के लिए हार्दिक बधाई है।

समिति के दसवें बरस का कार्यक्रम

समिति के इस चालू वर्ष के कार्यक्रम में सर्वप्रथम 'ओसवाल-नवयुवक' मासिक के पुनः प्रकाशनका item था। इस बात की प्रसन्नता है कि वह इस अङ्क के साथ कार्यरूप मे परिणत हो सका है। इस बार पत्र के सम्पादक श्री० सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए०, एल० एल० बी० तथा श्री० गोपीचन्दजी चोपड़ा बी० ए०, बी० एल० बनाये गये है। दोनों ही सज्जन उत्साही एवं विद्वान है। श्री० सिद्धराजजी ढड्ढा इस समय स्थानीय इण्डियन चेम्बर ऑफ़ कामर्स और इण्डियन शूगर मिल्स एशोसियेशन के सहकारी मन्त्री के पद पर काम कर रहे हैं। आपके विचारों से तो पाठक भलीभांति परिचित हैं ही। आप एक कुशल और विचारशील लेखक हैं। आपके लेख पत्र में बराबर प्रकाशित हुआ करते थे। हम आशा करते है कि इन विद्वान और कार्यशील युवक बन्धुओं के सम्पादकत्व में पत्र दिनोंदिन उन्नति करता हुआ समाज की उत्तरोत्तर अधिक सेवा करने में सफल होगा।

युवक और वृद्धों से अपील

समिति के इस समय दो काम चालू हैं (१) व्यायामशाला और (२) पत्र। हम युवक और वृद्ध सभी से आशा करते हैं कि इन दोनों कामों में अपना पूर्ण सहयोग देंगे। शारीरिक उन्नति के लिए ही समिति ने व्यायामशाला खोली थी। इस व्यायामशाला द्वारा काफ़ी युवकों ने लाभ उठाया है। व्यायाम शाला में व्यायाम के आधुनिक सामानों का अच्छा संग्रह है। व्यायाम सिखाने के लिए एक अध्यापक भी है। इन सुविधाओं से लाभ उठा कर सब को अपनी शारीरिक उन्नति करने का प्रयत्न करना चाहिये। अभी क़रीब ३०।३५ व्यक्ति व्यायामशाला में प्रातःकाल व्यायाम करते हैं—यदि संख्या में वृद्धि हो जाय तो हम व्यायामशाला को और भी अधिक बढ़ा सकेंगे।

पत्रोन्नति के लिए भी आवश्यक है कि हमें समाज का पूर्ण सहयोग मिले। हमें इस बात का पूरा विश्वास है कि हर एक ओसवाल सज्जन इस पत्र के ग्राहक बनने और बनाने की चेष्टा करेंगे।

श्रीचन्द रामपुरिया
मंत्री
ओसवाल नवयुवक समिति।
कलकत्ता

२ भारत जैन महामण्डल

All-India Jain Association के नाम से इस मण्डल की स्थापना सन १८९९ में हुई थी। इस मण्डल का उद्देश्य सब सम्प्रदायों के जैनों को एकत्रित, और आपस के साम्प्रदायिक झगड़ों को दूर करके जैन-धर्म का प्रचार करना है। भगवान महावीर को ही आदिस्रोत माननेवाले जैन आज कितने ही भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में -श्वेताम्बर, दिगम्बर, तथा इन दोनों में भी भीतर ही भीतर कितने ही वर्गों में—बँट गये हैं और दिनोंदिन यह भेद की दीवारें स्वार्थी और स्वनिर्मित नेताओं के घृणित कार्यों से और भी ऊँची और मज़बूत होती जा रही हैं। ऐसे समय में एक

ऐसी संस्था की आवश्यकता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता जो इन दीवारों को तोड़ने का प्रयत्न करके जैन कहलानेवाले सारे समूह को एक झण्डे के नीचे लाने का प्रयत्न करे।

इस मण्डल का कार्य बीच में कुछ वर्षों से शिथिल हो गया था। इसका कारण भी यही था कि मनुष्य की सद्भावनाओं पर स्वार्थ और अनुदारता ने विजय पा ली थी। इस वर्ष मण्डल का बीसवाँ वार्षिक जलसा नये उत्साह से ११ अप्रेल १९३६ को लखनऊ में श्री गुलाबचन्दजी श्रीमाल, सब-जज की अध्यक्षता में हुआ। उपस्थित सज्जनों में सर्वश्री कीर्त्तिप्रसादजी जैन बी० ए० एल-एल बी०, हापुड़; सेठ अचलसिंहजी व दयालचन्दजी चोरड़िया, आगरा; अजितप्रसादजी जैन एम० ए०, एल-एल बी, व पदमचन्दजी श्रीमाल, लखनऊ; जैनेन्द्रकुमारजी जैन, देहली; मानमलजी मुकीम, जयपुर; चेतनदासजी बी० ए० सहारनपुर; सरदार सिंहजी मोणोत, सज्जन देवीजी मोणोत व सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए०, एल-एल० बी, कलकत्ता; अतरसेनजी जैन, मेरठ आदि थे। इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए:—

१—पाठशालाओं को प्रारम्भिक चार कक्षाओं के लिये जैन-धर्म सम्बन्धी ऐसी सर्वमान्य पुस्तकें तैयार की जाँय जो सब सम्प्रदायों के जैन विद्यार्थियों के लिये उपयोगी हों।

२—महामण्डल के प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह तीर्थस्थान सम्बन्धी झगड़ों में भाग न ले पर यथाशक्ति ऐसे झगड़ों को पंचायत (Arbitration Board) द्वारा तै कराने का प्रयत्न करे।

३—महामण्डल का प्रत्येक सदस्य जैनों की भिन्न-भिन्न शाखाओं में आपस में विवाह तथा अन्य प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की भरसक चेष्टा करेगा।

४- प्रत्येक सदस्य अपने से भिन्न सम्प्रदायों के उत्सवों में यथासम्भव भाग लेगा।

५— प्रत्येक सदस्य इस बात का खयाल रक्खे कि सामाजिक और धार्मिक सभी उत्सव सादगी से मनाए जाँय, और दान का रुपया विद्या प्रचार में लगाया जाय।

६ महामण्डल एक सेण्ट्रल जैन कालेज के स्थापित किये जाने को आवश्यक समझता है, जिसमें जैन-धर्म की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध हो।

७ महामण्डल का साधारण अधिवेशन बरस में एक बार अवश्य हो।

इसके बाद मण्डल की प्रबन्धकारिणी-समिति (Executive Committee) और कार्यकारिणी-समिति (Working Committee) के चुनाव हुए। इस वर्ष की कार्यकारिणी में नीचे लिखे हुए सदस्य चुने गये:—

सभापति — सेठ अचलसिंहजी, आगरा।

उप-सभापति—पं० अजितप्रसादजी जैन एम० ए०, एल-एल० बी०, लखनऊ।

„— श्री कीर्त्तिप्रसादजी जैन बी० ए० एल-एल० बी०, हापुड़।

जनरल सेक्रेटरी—श्री पदमचन्दजी श्रीमाल, बी० ए०, एल-एल० बी०, लखनऊ।

संयुक्त जनरल सेक्रेटरी — श्री सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए०, एल-एल० बी०, कलकत्ता।

सदस्य—श्री मानिकचन्दजी जैन, एडवोकेट।

„— श्री चेतनदासजी बी० ए०।

ता० १२ अप्रेल को मण्डल की नई कार्यकारिणी की बैठक लखनऊ में श्री गुलाबचन्दजी श्रीमाल, सबजज के स्थान पर हुई। सदस्यों के अतिरिक्त बा० दयालचन्दजी चोरड़िया और श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन भी उपस्थित थे। श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने गत मास पाली (मारवाड़) में एक 'अखण्ड-जैन-मण्डल'की स्थापना के सम्बन्ध में निवेदन किया। इस मण्डल की स्थापना भी मूल में इन्हीं उद्देश्यों को लेकर हुई है जो उद्देश्य भारत जैन महामण्डल के हैं। अतः यह उचित समझा गया कि दोनों संस्थाओं को अलग-अलग न रख कर एक ही कर लेने का प्रयत्न किया जाय। इसके लिये दोनों संस्थाओं के सभापति सेठ अचलसिंहजी और श्री जैनेन्द्रकुमारजी को आपस में मिल कर तै करने का भार दिया गया।

भारत जैन महामण्डल की सदस्य-फीस साधारण एक रुपया वार्षिक है। प्रत्येक जैन इस मण्डल का सदस्य हो सकता है।

सिद्धराज ढड्ढा

कलकत्ता १५-५-३६ संयुक्त जनरल सेक्रेटरी

३—अखण्ड जैन मण्डल।

अभी कुछ दिन हुए पाली (मारवाड़) में जैन-विद्वानों का अच्छा समारोह हुआ था। अवसर था, जैन-शिक्षण परिषद् के द्वितीय वार्षिकोत्सव का, तथा और भी कुछ संस्थाओं के वार्षिक जलसों का। महात्मा भगवानदीनजी, श्री जैनेन्द्रकुमारजी, पं० बेचरदासजी, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री शान्तिलाल वनमाली शेठ आदि सज्जन उपस्थित थे। इसी अवसर पर सब सम्प्रदायों के जैनों की एक Common संस्था के रूप में 'अखण्ड जैन मण्डल' की स्थापना हुई। और कुछ नहीं तो कम से कम ऐसे मण्डलों की स्थापना इस बात का तो प्रमाण है ही कि समय की गति किस ओर को है। हिन्दी भाषा के ख्यातनामा लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन इस मण्डल के सभापति चुने गये हैं और इस मण्डल के संगठन का भार उन्हीं पर रक्खा गया है। श्री जैनेन्द्रकुमारजी लखनऊ में भारत जैन महामण्डल के अधिवेशन में भी उपस्थित थे और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—दोनों मण्डलों को अलग न रख कर एक कर लेने का भार उन पर तथा सेठ अचलसिंहजी पर छोड़ा गया है। आशा है दोनों सज्जन शीघ्र ही इस ओर प्रयत्न करेंगे क्योंकि दोनों संस्थाओं का उद्देश्य एक ही है।

अखण्ड जैन मण्डल का उद्देश्य और सदस्यता के नियम इस प्रकार हैः—

उद्देश्यः—जैन संस्कृति और साहित्य का प्रचार करना और उसके निर्माण में सहायक होना।

सदस्यताः—हर एक वह स्त्री-पुरुष इसका सदस्य हो सकेगा, जो

(१) १८ वर्ष से कम आयु का न हो।

(२) जो मण्डल के उद्देश्य के प्रति वफ़ादारी उठावे।

(३) जो कम से कम वर्ष में ५ दिन बिना शर्त्त सेवार्थ देने का संकल्प ले।

(४) जिसका प्रार्थना-पत्र परिषद् अस्वीकार न करे।

पत्र व्यवहार का पता—
श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, देहली

श्री मोहनलालजी गोलेछा

आप लाडनूं निवासी श्री रूबचन्दजी गोलेछा के सुपुत्र हैं। आपने व्यायाम द्वारा अपने शरीर को अच्छा संगठित कर लिया है। ओसवाल नवयुवक समिति के गत ता० १५।३।३६ के नवम वार्षिकोत्सव एवं प्रीति सम्मेलन के अवसर पर आपने अपने सीने पर से मोटर गाड़ी को निकाला था। आप चलती हुई मोटर को रोक सकते हैं और आदमियों से भरी गाड़ी भी अपनी छातीपर से निकाल सकते हैं। आप ओसवाल नवयुक समिति की व्यायामशाला के एक उत्साही सदस्य हैं।

न्यू राजस्थान प्रेस।

(१)

सीहोरा (यू० पी०) से श्रीयुत् गोपीचन्दजी धाड़ीवाल
बी० एस्सी०, एल-एल० बी० लिखते हैं:—

"मैं देखता हूं कि सामाजिक पत्र या तो पारस्परिक झगड़ों और टीका-टिप्पणी में पड़ जाते हैं या कुछ निरर्थक विषयों में अपनी शक्ति नष्ट कर देते है। मेरी समझ में सबसे बड़ी आवश्यकता समाज की और विशेष कर नवयुवकों की moral tone बढ़ाने की है। सब सुधारों की जड़ यही है और बिना इसके सुधार कहलाने वाले कई विषय बजाय सुधार के बिगाड़ कर देते हैं। दूसरी बात हम यह देखते है कि ओसवाल समाज में कुछ Separatist भावना अधिक दिखती है, अन्य समाजों के साथ सावसाधारण कार्यों में जो प्रमुख स्थान लेना चाहिये वह नहीं लेते हैं। सार्वजनिक कार्यों में हमारी समाज द्रव्य देती है पर उन कार्यों के सम्पादन में पूरा भाग नहीं लेती इस कारण अक्सर अनुचित टिप्पणियों की शिकार बनती है कलकत्ते में ही इतनी व्यापारिक और सामाजिक हलचल रहती है पर हमारी समाज उनमें अग्र भाग नहीं लेती। यह अनुचित है। इस ज़माने में बिना Self-assertion के कोई नहीं पूछता। 'ओसवाल-नवयुवक' को समाज की यह कमज़ोरी दूर करने की चेष्टा करनी चाहिये। हमारे नवयुवकों को अन्य समाजों के साथ प्रत्येक कार्य में आगे बढ़ना चाहिए।

"व्यापार में यदि हम देखें तो मालूम होगा कि जो नई नई Opportunities पैदा होती हैं हमारी समाज उनका लाभ नहीं उठाती। पिछले तीन वर्षों में कितनी चीनी की मीलें हुई, पर हमारे धनिकों ने कितनी मीलें खोली ? आगे भी कई मौके आवेंगे, यदि हमारे धनिक इसी प्रकार बैठे रहे तो शीघ्र ही पिछड़ी हुई जातियों में गिने जांयगे। हमें या तो धन, ऐश्वर्य, आबरू, शक्ति, सुख इत्यादि सांसारिक वासनाओं को बिल्कुल तिलाञ्जली ही दे देना चाहिये और यदि हम

ऐसा नहीं कर सकते हैं तो फिर उनको प्राप्त करने की पूरी चेष्टा करना चाहिए। 'न इधर के, न उधर के' की नीति हमें न घर का रखेगी न घाट का।

(२)

हवा के रुख का एक दूसरा नमूना नीचे दिया जाता है। श्री० प्रवीणचन्द्रजी जैन की हृद्गत भावनाओं का हम स्वागत करते हैं। जयपुर हो या, पाली हो, या लखनऊ, सब जगह हवा एक सी ही चल रही है। वातावरण में, विचारों में, भावनाओं में सभी जगह समानता मालूम होती है। पर अलग अलग रह कर यह विचार पानी के बुदबुदों की तरह उठते और वहीं शान्त हो जाते हैं। क्या यह सब बुदबुदे एक प्रबल धारा के रूप में परिणत नहीं किये जा सकते? इन सब हृदयों के स्पष्ट भावों को कोई कुशल माली एक सुन्दर हार के रूप में नहीं गूंथ सकता? इस विषय पर जो भी योजनाएँ और सम्मतियाँ हमारे पास आयगी उन्हें हम सहर्ष छापेंगे। श्री प्रवीणचन्द्रजी लिखते हैं:—

"संसार की प्रगतिशील जातियों में जैन समाज ने अच्छा नाम कमा लिया है। आज वह अवस्था नहीं है, यह ठीक है, उसकी युवाशक्ति अधिकतर कुण्ठित पड़ी है, पर फिर भी उसमें अभी वह चमक अवशिष्ट है जिससे वह शीघ्र से शीघ्र अपनी पुरानी गति को प्राप्त कर सकती है। केवल उत्साह, शक्ति और उत्तेजना की आवश्यकता है। 'ओसवाल-नवयुवक' यही काम करेगा, ऐसी आशा है।

हम में सब तरह के लोग हैं। वे भिन्न-भिन्न विशेषताओं को लिये हुए हैं, विशेषताएँ भी ऐसी कि जिनकी न केवल जैनियों को ही आवश्यकता है, वरन् वे देश भर के लिये आवश्यक हैं। फिर भी वे ठीक तरह से काम इसलिये नहीं कर पातीं कि उन व्यक्तियों का सङ्गठन नहीं है। सङ्गठन के अभाव में उन्हें पूरी उत्तेजना नहीं मिलती। एक सूत्र से सब को सङ्गठित करना यही हमारी साधना होनी चाहिये। 'ओसवाल-नवयुवक' यह भी करेगा।

हम चाहते हैं कि भारतवर्षीय जैन समाज को अज्ञान निद्रा से हटा कर उसे ज्ञान सूर्य का दर्शन करा कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त कर दें। इसके लिये सब से पहले हम सब को यह जानना चाहिये कि किस योग्यता का कौन व्यक्ति कहां है? फिर हम आपस में 'भ्रातृभाव' को और भी दृढ़ करने का प्रयत्न करेंगे और अपने उद्देश्य को पूरा करेंगे। 'ओसवाल-नवयुवक' हम सबों का केन्द्रीय सूत्र बन कर काम करेगा!

'ओसवाल-नवयुवक' ने अपने लिये न जाने क्या-क्या सोचा है, पर मैं उससे इस दिशा में सहायता लेना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि भारतीय जैन विद्वानों का और कलाकारों का एक दृढ़ सङ्गठन हो और जैन बालक और बालिकाओं को उत्तेजना और सहायता के अभाव से निराश होकर अपने उच्च कार्यों से मुंह न मोड़ लेना पड़े। इस सम्बन्ध की आवश्यक चर्चा 'ओसवाल-नवयुवक' में आगे से हुआ करेगी। इस विचार से सहानुभूति रखने वाले महाशय इस तरह का साहित्य 'ओसवाल-नवयुवक' में प्रकाशित करायें और सङ्गठन में क्रियात्मक योग देने वाले सज्जन निम्न पते से पत्र-व्यवहार करें।

मुझे आशा है कि योग्य सज्जन इस शुभ कार्य में शीघ्र से शीघ्र योग देंगे। कार्य-प्रणाली की रूप रेखा तभी निर्धारित की जा सकेगी जब लोगों का इस तरह का सहयोग प्राप्त होगा।

सरस्वती सदन अजमेरी दरवाज़ा, जयपुर। — प्रवीणचन्द्र जैन

सम्पादकीय

पुनर्जीवन

आज से दो वर्ष पहिले की बात है, कितने ही प्रतिकूल संयोगों के कारण विवश होकर स्थानीय ओसवाल नवयुवक समिति को 'ओसवाल नवयुवक' मासिक पत्र का प्रकाशन बन्द करना पड़ा था। छः वर्ष तक निरन्तर उत्साह और आशा से जिस पौधे को पाला था उसको मुरझाने देना वास्तव में विवशता का--निराशा की सीमा का—ही सूचक था। पत्र का प्रकाशन बन्द करने से बढ़कर अनुताप और वेदना का विषय समिति के लिये और कोई नहीं हो सकता था, और इस वेदना की प्रतिध्वनि आज भी तत्कालीन 'अन्तिम' अङ्क में प्रकाशित 'आत्मनिवेदन' शीर्षक सम्पादकीय वक्तव्य से प्रकट हो रही है। युवक हृदय के साहस और उत्साह पर उस समय निराशा ने विजय प्राप्त कर ली थी। पर उस विवशता की लम्बी कहानी हम यहीं छोड़ते हैं।

आज तो फिर हमारे सामने आशा का प्रभात है। दो वर्ष बाद फिर 'ओसवाल नवयुवक' को लेकर समाज के सामने आने में हमें हर्ष हो यह स्वाभाविक ही है। पर इस हर्ष का एक विशेष कारण भी है। जिस वस्तु को हम मुर्दा समझ चुके थे उसका पुनर्जीवन हमें क्योंकर खुशी न पहुंचाये? उस वस्तु से हमारा मतलब 'पत्र' रूपी स्थूल वस्तु से नहीं है पर, हमारे समाज के नौजवानों की आशा और उनके उत्साह से है। दो वर्ष पहिले मालूम होता था कि युवक हृदय ने अपनी निधि, अपनी सम्पत्ति—आशा—को खो दिया है। पर हर्ष इसी बात का है कि वह अवस्था अल्प-कालीन ही सिद्ध हुई। हमारी अकर्मण्यता और उदासीनता का विषमय असर हमारी हड्डियों तक नहीं पहुंचा था, और आज फिर हमारी सुप्त भावनाएं-आकांक्षाएं जागृत हो उठीं। आज जब हम हमारे पुराने उत्साह और आशा को फिर से प्राप्त कर चुके हैं तो हमें हमारी दो वर्ष पहिले की दशा पर पश्चाताप करने का भी कोई कारण नहीं दिखाई देता। उस

अनुभव ने तो हमें ऊँचा ही उठाया है, हमारे उत्साह और उमंग में गम्भीरता का रस भरा है और हमारे मार्ग की बाधाओं से हमें आगाह किया है।

गत एक महीने में—जब से हमने 'ओसवाल-नवयुवक' को फिर से प्रकाशित करने की बात प्रगट की है—हमारे पास कितने ही मित्रों के—शुभचिन्तकों के, सन्देश और बुजुर्गों के आशीर्वाद आये हैं। कुछ मित्रों ने पिछली बार पत्र बंद हो जाने की याद दिला कर उसके भविष्य के विषय में आशङ्का भी प्रकट की है। हम जानते हैं कि उन मित्रों की आशङ्काएँ भी हमारे हित के लिये ही की गई हैं और अतः हम समान रूप से सभी के ऋणी हैं। पर, पिछली श्रेणी वाले मित्रों से हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि आशा ही युवक हृदय की सबसे बड़ी विभूति है, सबसे बड़ा धन है। युवक पिछली असफलताओं को याद कर चुप नहीं बैठ सकता। वह बार-बार तोड़ता है, बार-बार निर्माण करता है। पिछली सब असफलताएँ उसके लिये अन्तिम सफलता की ओर बढ़ने वाली सीढ़ी के समान ही होती हैं। हो सकता है हम फिर लड़खड़ायें - ठोकर खायें - गिर भी पड़ें—पर एक सच्चे योद्धा को तो विषम परिस्थितियों में ही आनन्द आता है। भूतकाल से हमें इतना ही काम है कि हम उससे सबक़ सीखें और, भविष्य के गर्भ में घुस कर अधिक आगे की सोचने की हमें आवश्यकता नहीं मालूम होती। हम तो केवल वर्तमान में रहकर ही समाज की जो कुछ सेवा हम से बन आयगी वह करते रहना अपना कर्तव्य समझेंगे। उसका परिणाम—सफलता, या असफलता - हमारे हाथ की बात नहीं है। अतः हमें उसकी अधिक चिन्ता भी नहीं है।

× × ×

हमारी नीति और उद्देश्य—

छः वर्ष तक पत्र जिस नीति से और जिस उद्देश्य को लेकर चल चुका है, वह समाज के सामने है। सङ्कुचित साम्प्रदायिक भेदभावों से अलग रहकर सीधे और साफ़ रास्ते पर चलते हुए ही पत्र ने पहले भी समाज के सब प्रकार के विकास में सहायता देना अपने अस्तित्व का आशय रक्खा है, और आज हम भी हमारे पूर्वकालीन सहयोगियों के क़दमों पर चलने में हमारा गौरव समझते हैं। अतः हमारी नीति और उद्देश्य के विषय में इससे विशेष तो हमे कुछ नहीं कहना है, पर फिर भी दो—एक बातों की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

हम किसी भी समाज के अङ्ग क्यों न हों, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम हमारे छोटे दायरे के अलावा किसी और भी बड़ी चीज़ के अंश हैं। मनुष्य होने के नाते सारे मानव-समाज के प्रति और जिस देश के जल, वायु और अन्न से हम पलते हैं उसके प्रति भी हमारे कर्त्तव्य है। इतना ही नहीं—हमें यह भी याद रखना चाहिये कि हमारा जीवन—हमारा अस्तित्व बहुत कुछ अंश में राष्ट्र के जीवन के साथ, मानव-जाति के हितों और अधिकारों के साथ संलग्न है। कुटुम्ब, जाति, राष्ट्र और मानव-समाज—यह हमारे जीवनरूपी दुर्ग के चारों ओर एक के बाद दूसरी दीवारें हैं—जिनके भीतर सुरक्षित रह कर हम स्वतन्त्र और सुखी रह सकते हैं। अगर दुर्ग का अधिपति केवल अपने सबसे निकट वाली दीवार का ही ख़याल रक्खे और बाहर की दीवारों को टूटने फूटने दे - तो उसका परिणाम क्या होगा—यह आप सभी जानते हैं।

आज हमारा समाज इस सत्य को भूल गया है। वह अपने ही सङ्कुचित दायरे में बन्द रह कर अपने

को सुरक्षित समझ रहा है। उसके जीवन की गति रुँध गई है। अब उसमें भामाशाह और कालिकाचार्य पैदा नहीं होते। 'ओसवाल-नवयुवक' की यह नम्र किन्तु दृढ़ आकांक्षा है कि वह समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दे जिससे समाज का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के विस्तृत जीवन में भाग लेने के योग्य हो जाय, समाज अपने सङ्कुचित दायरे से निकल आये और राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने कर्त्तव्यों का पालन करके राष्ट्र का एक उपयोगी अङ्ग बन सके। आकांक्षा बहुत उच्च है—पर साथ ही सत्य और स्वाभाविक भी है, इसीलिये हमें उसकी अन्तिम सिद्धि पर अटल विश्वास है।

इसो सिक्के का दूसरा पहलू—आजकल यह कुछ प्रथा-सी पड़ गई है कि बहुत से नवयुवक 'सङ्कुचित क्षेत्र' का बहाना करके अपने जातीय उत्तरदायित्व से दूर भागते हैं। अधिकतर तो उनके लिये यह केवल अपनी अकर्मण्यता को छिपानेका एक हल्का साधन ही होता है। हाँ, उन थोड़े से लोगों की बात अलग है जिनकी सेवा का क्षेत्र इतना विशाल हो गया है कि उनका समय जातीय कार्यों की अपेक्षा अन्य विस्तृत कार्य में अधिक उपयोगी हो सकता है। पर किसी भी जाति में सभी व्यक्ति ऐसे नहीं होते और इसीलिये ऐसे सङ्गठनों की आवश्यकता है जो प्रत्येक आदमी की शक्ति का उपयोग कर सकें। राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये उसके प्रत्येक अंश के विकास की आवश्यकता है, और यदि किसी भी जाति का सङ्गठन करके इस विकास को सरल-साध्य बनाया जा सके और निकट लाया जा सके तो वह सङ्गठन वाञ्छनीय ही है। हाँ, इस विषय में सदा जागरूक रहना चाहिये कि यह संगठन संकुचित और राष्ट्रीय हितों के विरोधी न हो जाँय। 'ओसवाल-नवयुवक' सदा उन लोगों की सेवा में तत्पर रहेगा जो सच्चे हृदय से समाज के विकास में, उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति में, और उसको राष्ट्र का एक उपयोगी अंश बनाने में प्रयत्नशील होंगे।

एक बात और !—यह तो निर्विवाद है कि किसी भी सार्वजनिक कार्य का या संस्था का चलना जनता की सहानुभूति पर निर्भर है। उसी अंशतक 'ओसवाल-नवयुवक' भी समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सहायता, सहानुभूति और सहयोग का प्रार्थी है। पर हम साथ में यह भी जानते हैं कि केवल 'समाज का पत्र' होने के कारण ही यदि हम आपकी सहानुभूति और सहायता की आशा करें तो यह आप के प्रति अन्याय होगा। व्यक्तिगत या सार्वजनिक किसी भी क्षेत्र में लोगों की दानवृत्ति (Charity) पर निर्भर रहने को हम पाप समझते हैं, पर हम इस बात को भी मानते हैं कि जितनी हम से बन पड़े उतनी सेवा यदि हम सच्चे हृदय से करते रहें तो हमें जीने का अधिकार है आप से सहानुभूति की आशा रखने का हक़ है। हमें आशा ही नहीं—पूरा विश्वास भी है कि समाज पत्र को अपनाकर हमें सेवा का अवसर देगा।

टिप्पणियाँ

हमारी क्षति

शोक है कि गत मास में समाज के कुछ अच्छे सेवक हम लोगों से छिन गये। नीमच से श्री० नथमलजी चोरड़िया के देहावसान का और आगरे से श्री० चान्दमलजी चोरड़िया बी० ए० एल-एल० बी० का पटना में, जहाँ वे किसी कार्य से गये थे, एकाएक देहान्त हो जाने

का - यह दोनों दुःखद समाचार दो चार-दिन के अन्तर से ही मिले। दोनों ही सज्जन समाज के उन थोड़े-से व्यक्तियों में से थे जिन्होंने देश के प्रति अपनी जिम्मेवारी को समझा था और देश की स्वाधीनता के संग्राम में भाग लिया था और यह होते हुए भी सामाजिक कार्यों से जिन्होंने हाथ नहीं हटाया था। श्री० नथमलजी चोरड़िया अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी (A. I. C. C.) के सदस्य भी रह चुके थे। सुना है उन्होंने अपनी सम्पत्ति का ट्रस्ट नीमच में एक कन्या—गुरुकुल की स्थापना के लिये कर दिया है और विशेष हर्ष की बात तो यह है कि उसका संचालन उनकी पुत्री और पुत्रवधु ही करेंगी। इन पंक्तियों का लेखक दोनों ही सज्जनों के परिचय में आया था। जहाँ श्री० नथमलजी का व्यक्तित्व aggresive—गतिशील था, वहाँ श्री० चान्दमलजी का शान्त, और अधिक गम्भीर। श्री० चान्दमलजी ने सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन से ही वकालत छोड़ दी थी और उसके बाद अन्त तक बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते रहे। इन चोरड़ियाद्वय के अवसान से वास्तव में समाज के दो अच्छे और विशिष्ट व्यक्ति उठ गये।

इन दोनों के अलावा—अभी गत सप्ताह ही जयपुर से एक अन्य सज्जन की मृत्यु के शोक-समाचार मिले, जो बाहर की दुनिया में इतने अधिक परिचित न होते हुए भी उन व्यक्तियों में से थे जिनकी मृत्यु से खाली हुआ स्थान मुश्किल से भरता है। श्री० घांसीलालजी गोलेछा, जयपुर के ओसवाल समाज में ही नहीं वरन वहां के नागरिक और सार्वजनिक जीवन में भी अपना एक विशेष स्थान रखते थे। श्री० घांसीलालजी एक सुसंस्कृत और राष्ट्रीय बिचारों के सौम्य व्यक्ति थे तथा स्थानीय समाज के एक स्तम्भ! संगीत का भी उनको अच्छा ज्ञान था और बहीखातों की जाँच (audit) के लिये तो वे मशहूर थे। कितनी ही बार जयपुर राज्य से भी उनको हिसाब की जाँच करने का कार्य खास तौर पर सौंपा गया था। वास्तव में उनकी मृत्यु से जयपुर समाज को जो क्षति पहुँची है वह जल्दी पूरी नहीं होने की। हम तीनों आत्माओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि और उनके परिवारों से समवेदना प्रगट करते हैं।

सभ्यता का ताण्डव

अदीस अबाबा के पतन के साथ एफ्रीका महाद्वीप के अन्तिम स्वतन्त्र राज्य का खात्मा हो गया। यों तो साढ़े चार सौ वर्ष से - जब से कोलम्बस नाम के एक पुर्तगाली नाविक ने अमेरीका महाद्वीप का पता लगाया था तभी से—यूरोपियन जातियाँ संसार के सभी देशों और महाद्वीपों में अपने साम्राज्यों को फैलाने और वहाँ की जातियों को नष्ट करके अपनी बस्तियाँ बसाने या जहाँ यह सम्भव न हुआ वहाँ अपने देश की आर्थिक उन्नति के लिये उस देश के लोगों को पद-दलित रख कर अपना मतलब निकालने में—लगी हुई है। पर गत डेढ़ सौ वर्षों से तो, जब से मशीनों का और भाप के इञ्जिन का आविष्कार हुआ, उनकी यह साम्राज्य-लिप्सा बहुत ही तीव्र हो गई है, क्योंकि उनके यहाँ के बड़े-बड़े कारखानों में बने हुए माल को खपाने के लिये ऐसे देशों की आवश्यकता अनिवार्य है, जहाँ राजसत्ता के बल पर वह माल चलाया जा सके। यूरोपियन—गोरी जातियों के इस साम्राज्य विस्तार की कहानी संसार के इतिहास का एक आश्चर्यजनक और अद्भुत अंश होने के साथ-ही-साथ उसका सबसे अधिक काला क्रूर और बर्बरतापूर्ण भाग भी है।

स्वार्थ के वश इन गोरी-जातियों ने अमेरीका और एफ्रीका के हब्शियों पर जो अत्याचार किये हैं- और अब भी कर रही हैं—उनका हाल सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

गत महायुद्ध के कारण यूरोप के बड़े-बड़े साम्राज्य-वादी देशों में से दो —जर्मनी और इटली—के पास इस प्रकार के कोई अधीन देश नहीं रहे जो उनके गुलाम रहकर उनके साम्राज्य का भार वहन कर सकें। और पृथ्वी पर अब ऐसे देश बचे भी नहीं थे जो या तो पहिले से ही किसी-न-किसी बड़े साम्राज्य के अधीन न हों, या खुद शक्तिशाली और स्वतन्त्र न हों। एबीसीनिया ही संसार में, एक ऐसा देश बचा था जो न तो किसी गोरी-जाति के अधीन था न खुद जापान की तरह शक्तिशाली ही था। बस मुसोलिनी ने गत अक्तूबर मास में इस देश पर चढ़ाई कर ही तो दी। सात महीने तक अबीसीनिया का वीर सम्राट् और उसकी वीर प्रजा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये जिस बहादुरी से लड़े है, और वह भी ऐसी दशा में, जब, न उनके पास आधुनिक ढंग के राक्षसी अस्त्र-शस्त्र थे न किसी प्रकार की मदद—वह वास्तव में संसार के स्वतन्त्रता के युद्धों में एक अद्वितीय घटना है, और मुसोलिनी, जो 'एबीसीनिया को सभ्य बनाने के लिये यह सब किया जा रहा है' ऐसा कहने की धृष्टता करता है, यदि विषैली गैसों और तरल अग्नि जैसे भयङ्कर साधनों के उपयोग करने की कायरता न करता—जिनका उपयोग स्वयं उसी मुसोलिनी के 'भाई बन्ध'—गोरी जातियाँ—वर्जित समझती हैं—और निराधार और बे-क़सूर स्त्री बच्चों और अस्पतालों में पड़े हुए ज़ख्मियों पर आकाश से गोले बरसाने की बर्बरता न करता, तो इसमें भी शंका है कि वह कभी उस वीर जाति को हरा सकता। एबीसीनिया के सम्राट् हेलसिलासी ने स्वयं कहा है कि इस प्रकार निराधार और बे-क़सूर लोगों को मारे जाने से बचाने के लिये ही उसे अपना देश छोड़ना पड़ा है।

मुसोलिनी और उसके भाई-बन्ध अन्य यूरोपियन जातियाँ चाहे वे ऊपर से कुछ भी कहें, इस विजय पर अवश्य खुश होंगी, क्योंकि उनको भी अपनी लूट में से हिस्सा देने का वादा मुसोलिनी ने कर लिया है। उनके पास पशुबल की सत्ता है। उसके बूते पर आज वे खुश हो सकते है—अपनी विजय पर गर्व कर सकते हैं—पर उन्हें याद रखना चाहिये कि समय सदा एक सा नहीं रहता। वास्तव में इस इटली-एबीसीनिया के युद्ध ने यह बतला दिया कि न्याय और शान्ति की बड़ी-बड़ी डींगे मारने वाले—अपने आपको सभ्य कहने वाले—यूरोप के यह सभी साम्राज्यवादी देश कितने नीच, कितने स्वार्थी और कितने कायर हैं, और उनका ईसाईपन भी कितना खोखला है जो एक जाति पर दूसरी जाति द्वारा ऐसे अमानुषिक अत्याचार और बलात्कार को चुपचाप सहन कर सकता है। इटली को आज युद्ध में चाहे विजय मिली हो पर अब संसार के सामने इन साम्राज्यवादी यूरोपियन जातियों के नैतिक पतन का नंगा चित्र आ गया है। पाप का घड़ा भर चुका है—कौन कह सकता है कि इटली की यह विजय कहीं इन यूरोपियन जातियों के साम्राज्यवाद के नाश का श्रीगणेश न हो ?

तीन महत्वपूर्ण अधिवेशन—

अभी गत एप्रिल के महीने में भारतवर्ष के सार्व-जनिक जीवन के तीन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाली तीन प्रमुख संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशन

हुए। सबसे प्रथम देहली में ता० ४।५ एप्रिल को भारत की प्रमुख व्यापारिक संस्था Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry 'भारतीय व्यवसाय और उद्योग समितियों के अखिल भारतवर्षीय सङ्घ' का नवाँ वार्षिक अधिवेशन हुआ। यह सङ्घ सारे हिन्दुस्थान के व्यापारियों, व्यवसायियों और उद्योग-धन्धों में लगे हुए व्यक्तियों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है और व्यापार-व्यवसाय सम्बन्धी सभी मामलों में जिनमें भारत सरकार को भारतीय व्यापारियों का रुख़ जानना होता है या सलाह लेनी होती है, यही संस्था भारतीय व्यवसायियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस संस्था के भूतपूर्व सभापतियों में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्री घनश्यामदास बिड़ला, श्री कस्तूरभाई लालभाई, श्री वालचन्द हीराचन्द आदि भारतीय व्यवसाय जगत् के महारथियों के नाम उल्लेखनीय हैं। यह हर्ष का विषय है कि चालू वर्ष के लिये सङ्घ के अध्यक्ष कलकत्ते के प्रमुख व्यवसायी और मारवाड़ी समाज के एक विशिष्ट सज्जन श्री देवी प्रसादजी खेतान मनोनीत हुए हैं। बी० ए० की डिग्री और सॉलीसीटर का प्रमाण पत्र लेने के बाद श्री खेतानजी ने कलकत्ते में ही आठ वर्ष तक प्रैक्टिस की और शीघ्रही कलकत्ते के प्रमुख सालीसीटरों में गिने जाने लगे। सन् १९१९ में क़ानून का क्षेत्र छोड़ कर श्री देवीप्रसादजी भारत विख्यात बिड़ला बन्धुओं के साथ व्यापार में संलग्न हो गये और तब से आजतक उत्तरोत्तर सफलता के साथ इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। खेतानजी सदा से सार्वजनिक कार्यों में और संस्थाओं में दिलचस्पी लेते रहे हैं और कितने ही सरकारी कमीशनों और समितियों के सदस्य भी रह चुके हैं। सन् १९२९ में जिनेवा में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद् (International Labour Conference) में श्री खेतानजी भारतीय व्यवसायियों के प्रतिनिधि होकर गये थे और अपने व्यापार के सिलसिले में यूरोप और अमेरीका का भी भ्रमण कर चुके हैं। वास्तव में भारतीय व्यापार-जगत ने अपने अध्यक्ष-पद का सर्वोच्च सम्मान श्रीयुत् खेतान को देकर उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और उनके असाधारण व्यक्तित्व का उचित सत्कार किया है।

दूसरा महत्वपूर्ण अधिवेशन एप्रिल के दूसरे सप्ताह में लखनऊ में हुआ। यह था, भारतवर्ष और भारतीयों की सबसे महान राजनैतिक संस्था—भारत के सार्वजनिक जीवन में प्राण फूंकने वाली और भारत की स्वतन्त्रता के लिये सच्चे हृदय से लड़ने वाली एक मात्र संस्था--कांग्रेस—राष्ट्रीय महासभा का ४९ वां अधिवेशन। ५० वर्ष से वह संस्था हमारे देश की स्वतन्त्रता के लिये लड़ रही है और आज भारत के राजनैतिक भविष्य की बागडोर बहुत कुछ अंश में इसी के हाथों में है। जो इससे सहमत नहीं हैं वे भी, और भारत की विदेशी सरकार भी, इस संस्था के निश्चयों और प्रस्तावों की उत्कण्ठा और आशङ्का से प्रतीक्षा करती है। भारत के हृदय-सम्राट पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का यह अधिवेशन बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ और भावी—कार्यक्रम—आनेवाली घटनाओं की कुछ-कुछ झलक इस अधिवेशन से मिली। इस अधिवेशन में कितने ही महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए जिनका सब का उल्लेख यहाँ स्थानाभाव से असम्भव है। पर एक बात की ओर हम जनता का ध्यान विशेष रूप से खींचना चाहते हैं।

पं० जवाहरलाल ने अपने भाषण में साफ़-साफ़

तौर पर यह बतलाया था कि किस प्रकार आज संसार भर में सम्पन्न और दरिद्र, ज़ालिम और मज़लूम, आततायी और पददलित लोगों और देशों का आपस में सङ्घर्ष हो रहा है। ज्यों-ज्यों जन समाज में चेतना आती जाती है और प्रजा अपने ऊपर अत्याचार करनेवालों के विरुद्ध, फिर चाहे वह विदेशी सरकार हो या देशी, धनवान हों या धर्माचार्य—अपने जन्म सिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने की आवाज़ उठाती है, त्यों-त्यों सम्पन्न और सत्ताधारी वर्ग भी अपनी शक्ति को संगठित करता जाता है; पर उसकी पाशविक सत्ता के ऊपर की सभ्यता की पतली झिल्ली धीरे-धीरे हटती जा रही है और उस पशुबल का, दमन का और अत्याचार का नंगा और वीभत्स रूप प्रगट होता जाता है। जर्मनी में हिटलरशाही (नाज़ी-वाद) और इटली का फ़ासिस्टवाद (Fascism) जिसकी पशुता का दृश्य हम लोग अभी देख चुके हैं—और इधर भारत में विदेशी सरकार की दमन नीति—सब इसी एक प्रवृत्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि समय उसे बुरी-से-बुरी बातों का भी आदी कर देता है और इस कारण बरसों के दमन और अत्याचार के कारण चाहे हम उसे महसूस न करें, पर वास्तव में जैसा कि पं० जवाहरलाल ने कहा था और जैसा कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में दोहराया है, सन् १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति के बाद आज तक हम पर—भारत की प्रजा पर—इतना कठोर शासन कभी नहीं हुआ जितना आज हो रहा है। आज हम चारों ओर से तरह-तरह के कानूनों से बँधे हुए हैं और कितनी ही बातों में तो हमारे मौलिक अधिकारों—मनुष्य होने के नाते अमुक कार्यों के करने की स्वतन्त्रता को भी छीन लिया गया है। इस दमन नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने को—जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि जो केवल अपने मनुष्यता के अधिकारों की मांग है—एक 'नागरिक स्वतन्त्रता सङ्घ' Civil Liberties Union की स्थापना की घोषणा भी हो चुकी है। आशा है जनता उत्साह से इसका स्वागत करेगी।

तीसरा, नागपुर में हमारे श्रद्धेय नेता बाबू राजेन्द्र प्रसादजी की अध्यक्षता में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २५ वां अधिवेशन था। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य कालेलकर, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि भी मौजूद थे। विदेशी शासन का एक फल यह हुआ है कि हमारे देश में अंग्रेज़ी भाषा को बहुत सम्मान मिला। पूरे सौ वर्ष हो गये तब से अंग्रेज़ी ही हमारे पढ़े-लिखे लोगों की भाषा रही है। अंग्रेज़ी भाषा से हमें कोई द्वेष नहीं है—इसके पढ़ने को कोई बुरा भी नहीं कह सकता—पर बिल्कुल सीधी-सादी बात तो यह है कि अबतक जो हमने इस भाषा को अनुचित गौरव और सम्मान का स्थान दे रक्खा था और हमारे ही देश की—हमारे करोड़ों निवासियों की—जो मातृभाषा हिन्दी है उसकी उपेक्षा करते थे—यह तरीक़ा—यह वर्तन अब हमें बदल देना चाहिये। बिना एक राष्ट्र भाषा के किसी भी देश की उन्नति सम्भव नहीं है और हमारे देश में बहुत सी भाषाएँ होते हुए भी हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो अधिकांश लोग बोलते हैं और लगभग सभी समझते हैं। सम्मेलन हिन्दी भाषा के साहित्यों की एक मात्र संस्था है और इसने हिन्दी के प्रचार में सुन्दर कार्य किया है। आशा है देश के सभी व्यक्ति अपने सब कामों में हिन्दी का उत्तरोत्तर अधिक उपयोग करेंगे।

Reg. No C 1668.

भगवतीप्रसाद सिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं धेवरचन्द बोथरा द्वारा २८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

वर्ष ७, संख्या २ | जून १९३६

—अहिंसा-धर्म का अर्थ इतना ही नहीं है कि दूसरे के शरीर या मन को दुःख या चोट न पहुँचाना; यह तो अहिंसा धर्म का एक दृश्य परिणाम कहा जा सकता है। स्थूल दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत हो सकता है कि किसी के शरीर और मन को तो दुःख या हानि पहुँच रही है, परन्तु वास्तव में वह शुद्ध अहिंसा धर्म का पालन हो। इसके विपरीत ऐसा भी हो सकता है कि वास्तव में हिंसा तो की गई है परन्तु वह इस तरह से कि जिससे शरीर या मन को दुःख अथवा हानि पहुँचाने का आरोप न किया जा सके। अतएव अहिंसा का भाव दृश्य परिणाम में नहीं, बल्कि अन्तःकरण की राग-द्वेष हीन स्थिति में है।

—महात्मा गांधी

वार्षिक मूल्य ३) | एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०

लेख-सूची

[जून १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः।≥) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता तथा विज्ञापन—प्रकाशन, पता—परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कोभर का द्वितीय पृष्ठ	रु० १८)
,, ,, तृतीय ,,	१५)
,, ,, चतुर्थ ,,	२५)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	१०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	७)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	४)
,, चौथाई कालम	२।।)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियां और शुभ कामनाएं

'ओसवाल—नवयुवक' का प्रथम अंक मिला। अच्छा निकला। सम्पादक द्वय ने जिस उत्साह से यह कार्य नवीन ढंग से आरम्भ किया है यदि यही सिलसिला बना रहेगा तो पत्र बहुत शीघ्र ही समाज में अपनाया जाकर स्वावलंबी हो सकेगा। मैंने समूचे अंक को ध्यानपूर्वक पढ़ा है—मुझे इसके सम्पादन का ढंग बहुत पसन्द आया है। ओसवाल-नवयुवक समिति कलकत्ता के दृष्टिकोण में, शिक्षा और व्यायाम को जो प्रधानत्व दिया गया है—इसके लिए मैं संस्था के उज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

श्रीनाथजी मोदी, जोधपुर

'ओसवाल-नवयुवक को पुनः देख कर मुझे केवल आनन्द ही नहीं हुआ है पर उत्साह भी। मुझे यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि अन्य जैन पत्रों की अपेक्षा ओसवाल-नवयुवक के लेखक वास्तव में उच्चकोटि के हैं। आप लोगों का प्रयत्न तथा कार्य दक्षता वास्तव में प्रशंसनीय है।

छोटेलालजी जैन कलकत्ता

आशा है आप दोनों कानुन्दों के हाथों पत्र अच्छी तरह फूले-फलेगा और शीघ्र ही उच्चकोटि के मासिक पत्रों में इसकी गणना हो जायगी। प्रत्येक के जीवन में उतार-चढ़ाव आता है और उसही तरह 'ओसवाल—नवयुवक' के जीवन में भी आए हैं-यहां तक कि मित्रों को पत्र के बंध करने के सिवाय और कोई रास्ता नज़र ही नहीं आया। अब समिति ने पुनः संचालन का भार लिया है यह बड़े ही आनन्द की बात है। हमारी ओसवाल समाज पत्रों के प्रति कितना प्रेम और सहानुभूति रखती है इसके दोहराने की आवश्यकता नहीं।

यह पत्र अपने ध्येय को बहुत शीघ्र पहुंचे यही हार्दिक इच्छा है।

वर्धमानजी बांठिया, अजमेर

ओसवाल-नवयुवक का पुनर्जीवन हुआ देख कर मुझे अत्यन्त ही हर्ष होता है। नवयुवक ने पिछले छः वर्षों तक समाज की जो सेवा की है सो विदित ही है। सिद्धराजी साहब जैसे विद्वान, उत्साही व कर्मी सम्पादक के संचालन में पत्र विशेषतया उन्नति व समाज सेवा करेगा ऐसी आशा रखते हैं।

पूरणचन्द शामसुखा

Allow me to send to you and to my friend Gopichandji Sahib, my heartiest congralulations for again bringing out the "Oswal-Navayuvak" essential to root out the evils of our community and to guide the young generation in a right way.

I wish the paper every success.

Daya chand Parekh

ओसवाल-नवयुवक का पहिला अङ्क प्राप्त हुआ। पत्र का सम्पादन आप कर रहे हैं—यह जानकर बड़ी खुशी हुई। इस बार ही पत्र आशातीत सजधज से निकला है।

'नवयुवक' नवयुवकों की प्रगति के लिए केन्द्रिय पत्र बनकर कार्य करेगा ऐसी आशा है। समाज के विद्वान लेखकों को अपनी कृतियों द्वारा पत्र की सेवा करनी चाहिए जिससे 'ओसवाल-नवयुवक' को भी उच्च कोटि के साहित्यिक पत्रों में स्थान मिल सके।

मैं हृदय से पत्र की उन्नति चाहता हूँ।

—'सौभाग्य'

It was a delight to see the frist number of the 7th year of the 'Oswal Navayuvak'.

The matter and the manner are both excellent. The poem of Mr. Vishwesh on Rajasthan, past and present is stirring and well-expressed. The printing, the paper, the illustrations and the general get-up leaves little to be desired.

Ajit Prasad, Secretary

All India Jain Association

'ओसवाल-नवयुवक' की प्रति मिली। पढ़ कर बहुत हर्ष हुआ। पत्र अपने ढंग का निराला एवं अनूठा है। यहाँ सब लोगोंने इसकी प्रशंसा की है यदि इसी प्रकार ही भविष्य में निकलता रहेगा तो शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर पहुँच जावेगा।

राजरूपजी टांक जौहरी, जयपुर

आपका पत्र व नवयुवक का पहिला अंक मिला। अंक की सजावट व लेखों को पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। ओसवाल-नवयुवक के पुनर्जन्म के लिए हार्दिक बधाई है। आपके संपादन में पत्र चिरायु हो यही आशा है।

ओसवाल समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह "ओसवाल-नवयुवक" अवश्य पढ़े और उसकी ग्राहक संख्या बढ़ाकर सहायता करे।

हिरालालजी कोठारी

अ० मंत्री मध्य प्रांत व वराड़ प्रांतिक सभा, कामठी।

ओसवाल-नवयुवक (मासिक)—सम्पादक—श्रीयुत सिद्धराजजी ढड्ढा, एम० ए०, एल-एल० बी० और श्रीयुत गोपीचन्द्रजी चोपड़ा, बी० ए०, बी० एल०; आकार—२०x३० अठपेजी; पृष्ठ-(इस अङ्क के) ६५; कागज़-अच्छा; छपाई अच्छी, वार्षिक मूल्य-तीन रुपया है, जो कुछ अधिक प्रतीत होता है।

मई सन् १९३६ का अंक हमारे सामने है। इसमें छोटे-बड़े कुल बाईस लेख, दो सम्पादकीय टिप्पणियां और चार चित्र हैं। कई लेख पठनीय हैं। 'राजस्थान' कविता आकर्षक है। मासिक-पत्र होने के कारण इसमें स्थायी साहित्य अधिक मात्रा में प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है। ओसवाल समाज को पत्र का समादर करना चाहिए।

ओसवाल-सुधारक

ओसवाल नवयुवकः—यह उपयोगी मासिक फिर प्रगट होना शुरू हो गया है—यह हर्ष की बात है। इस अङ्क में (१ म में) विद्वत्तापूर्ण और अभ्यासपूर्ण लेख नज़र पड़ते हैं। उठाव और छपाई सुन्दर है। चित्र भी अच्छी संख्या में दिये गये हैं। सुशिक्षित सम्पादकों के हाथ में यह पत्र उत्तरोत्तर प्रगति पावेगा यह निःशंक है।

—कच्छ दशा ओसवाल (गुज० मासिक)

मेरे नाम पर 'ओसवाल-नवयुवक' का ७ वें वर्ष का १ ला अङ्क आपने भेजा सो मिला है, युवक की तरक्की चाहता हूँ।

प्रतापमलजी कोचर

मंत्री, श्री महावीर जैन वाचनालय, पालखेड (नासिक)

अति हर्ष का विषय है कि ओसवाल-नवयुवक' का पुनः प्रकाशन हो रहा है। शासनदेव से प्रार्थना है कि इसे अब चिरायु बनावे। मेरे नवयुवक बन्धुओं से प्रार्थना है कि इसके ग्राहक बन समाज सेवा के कार्य में हाथ बटावें।

ईश्वरलालजी लूनीया, मुगेली (सी० पी०)

जयजिनेन्द्र के साथ विदित हो कि आपने ओसवाल समाज के मासिक पत्र 'ओसवाल-नवयुवक' को जो आपने वापिस प्रकाशित करना शुरू किया है उसके लिए आप बार-बार धन्यवाद के पात्र हैं। और हमें पूर्ण आशा है कि आप जैसे सुशिक्षित और सुधारक महानुभावों के प्रयत्न से यह थोड़े ही अरसे में ओसवाल-समाज का एक मुख्य पत्र हो जायगा।

सी० जी० कोठारी

'ओसवाल-नवयुवक' जैन समाज का एक मात्र मासिक पत्र बने और सत्य धर्म का अन्वेषण कर समाज को अमृतपान करावे यही भावना है।

शान्तिलाल बी० शेठ

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] जून १९३६ [संख्या २

मंगल धर्म

[श्री शान्तिलाल वनमाली शेठ]

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो ॥"

दशवैकालिक सूत्र १-१।

—"अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है. जिसका मन ऐसे मंगलमय सदा अनुरक्त है, उसे देव भी नमस्कार करते है ।

संसार के सब विचारकों और महापुरुषों ने धर्म को सदा मंगलमय और उपादेय माना है, पर आज की उदीयमान प्रजा में से कितने ही नवयुवक धर्म को 'धतींग' (Humbug), भयावह और हेय मानते हैं। इस मान्यता की पुष्टि में वे नीचे लिखे कारण बतलाते हैं:—

'आजकल जो धर्म प्रचलित है वह राष्ट्र और समाज में अशान्ति का बीज बोता है, मानवीय प्रेम का विध्वंस करता है, जाति भेद की दीवार खड़ी करता है, विषमता का विष फैलाता है साम्प्रदायिक व्यामोह की वृद्धि करता है और इस प्रकार राष्ट्र और समाज की सुखशान्ति में बाधा पहुंचाता है इसलिए वर्तमान धर्म भयावह है और धर्म के नाम पर अधर्म फैलाता है—अतः हेय है'।

धर्म के सम्बन्ध में इन विरोधी मान्यताओं को सुनकर जनसमाज थोड़ी देर के लिए चक्कर में पड़ जाता है और सोचने लगता है कि वास्तव में सत्य क्या है ? इस सत्य की शोध करते करते उसकी नजरों के सामने एक जटिल समस्या खड़ी हो जाती

है और इस समस्या को सुलझाने के लिए वह एक प्रश्नावलि भी तैयार कर लेता है:—

'क्या वास्तव में धर्म इतना अधिक विकृत है? क्या धर्म आचार-विचार का विषय न होकर वाद-विवाद और तर्क का ही विषय है? क्या धर्म जन-समाज की सुख शान्ति में बाधा पहुंचाता है? क्या धर्म राष्ट्र और समाज में विषमता का विष फैलाता है? संक्षेप में, क्या धर्म, धर्म के नाम पर अत्याचार और अनाचार का व्यापार करता है?'

जन-समाज धर्म की ऐसी दुविधा में पड़कर तर्क-वितर्क के बल पर ऐसे अनेक प्रश्न तो तैयार कर लेता है किन्तु जब उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता तब उसकी धर्म-श्रद्धा विचलित हो उठती है। उसके सब तर्क-वितर्क कुण्ठित-से हो जाते हैं तब वह 'अतोभ्रष्ट-स्ततो भ्रष्टः' होकर धर्म-विचार के भँवर में फँस जाता है और रही-सही धर्मश्रद्धा भी उसी में खो देता है और उसके लिये धर्म श्रद्धागम्य ही नहीं पर तर्कगम्य भी नहीं रहता।

जनसमाज जब इस प्रकार असमञ्जस में पड़ जाता है तब मानसिक स्थिति को समतौल करने की आशा में वह धीरे-धीरे साधु-सन्तों के समागम में आता है और धर्मविषयक अपनी मान्यता की विशुद्धि के लिए वह धर्मगुरुओं के साथ विचार विनिमय करता है।

धर्मगुरुओं की ओर से उसे यही स्पष्ट उत्तर मिलता है कि धर्म सदा-सर्वदा मंगलमय है, उपादेय है, आदरणीय है। धर्म के आचरण में ही समस्त संसार की सुखशान्ति सुरक्षित है। 'धर्म के नाश में हमारा नाश और उसके रक्षण में ही हमारा रक्षण है'*। मानों मनु भगवान के इस वाक्य की हज़ारों कण्ठों से प्रतिध्वनि होती है।

आजकल सब जगह धर्म के नाम पर अधर्म दिखाई दे रहा है यह ठीक ही है। पर वास्तव में वह धर्म नहीं है, धर्माभास है। जहां वास्तविक धर्म है वहाँ वैर-विष, साम्प्रदायिक व्यामोह, सामाजिक वैषम्य, जातिभेद, मानवीय विद्वेष, अशान्ति, अत्याचार, अनाचार आदि दुर्गुण नहीं रह सकते। वहाँ तो वास्तविक संस्कारिता, नागरिकता, राष्ट्रीयता, धर्मदृढ़ता, सामूहिकता, एकता, कुलीनता, समानता, मैत्री भावना, अहिंसा, ज्ञानशुद्धि, चारित्रशुद्धि, और आत्मशुद्धि आदि धर्मगुणों का पारस्परिक सुन्दर समन्वय ही होता है।

धर्म सदा सर्वतोभद्र—मंगलमय है। प्राणीसमाज में सुखशान्ति स्थापित करना ही इस मंगलधर्म का ध्येय है। मंगलधर्म की इस ध्येयसिद्धि के लिए धर्मशास्त्रकारों ने अहिंसा, संयम और तप ये त्रिविध धर्मसाधन स्वीकार किये हैं। संयम और तप ये दोनों अहिंसा के अभिन्न तत्त्व हैं। संयम यह अहिंसा का विधेय रूप† है, और तप अहिंसा का सक्रिय रूप।

मंगलधर्म का वास्तविक स्वरूप अहिंसा है। "अहिंसा परमो धर्मः*" इस सनातन सूत्र का सिद्धान्त भी मंगलधर्म की व्याख्या में स्पष्ट भासित होता है। इस तरह धर्म—अहिंसा, संयम और तप मूलक है और

* 'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः'—मनुस्मृति

† अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो—

—दशवैकालिक-सूत्र

* अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥

महाभारत—अनुशासनपर्व अ० ११, श्लो० ३७

ऐसा स्व-परदया रूप धर्म ही उत्कृष्ट मङ्गलरूप है। इतना ही नहीं किन्तु जो मङ्गलधर्म का यथातथ्य स्वरूप जानकर धर्मानुकूल धर्म-प्रवृत्ति करता है ऐसे धर्मपुरुष को देव भी नमस्कार करते हैं।

भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध* ने 'धम्मो मङ्गल मुक्किट्ठं'— धर्म उत्कृष्ट मङ्गल है, ऐसा धर्मोपदेश लोक समाज को दिया था और जिस धर्म के कारण दूसरे को पीड़ा हो, आत्मसंयम में शिथिलता बढ़े या संयमस्थित होने पर भी आत्मदमन न हो सके, उसमें धर्मत्व नहीं है ऐसा स्पष्ट समझाया था।

भगवान महावीर ने धर्म की साधना के लिए ग्राम-धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, व्रत-धर्म, गण-धर्म, कुल-धर्म, संघ धर्म, सूत्र-धर्म, चारित्र-धर्म, अस्तिकाय-धर्म आदि लौकिक-लोकोत्तर धर्म का और इनको सुव्यवस्थित करने के लिए दस धर्मनायकों का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़कर जो युगधर्म का आदर्श जनसमाज के समक्ष उपस्थित किया था वह निस्संदेह मानवसमाज के लिए कल्याणकारी है। और उसमें भी युग-धर्म की साधना के लिए अहिंसा, संयम और तपरूप जो तीन धर्म साधन बतलाये हैं वे अनुपम हैं।

महावीर के समकालीन भगवान् बुद्ध ने भी जो मङ्गलधर्म प्ररूपित किया है वह भी महावीर के मङ्गल-धर्म को ठीक-ठीक समझने में सहायक हो सकता है:—

"मूर्खों के सहवास से अलग रहना, सुज्ञजनों का समागम और पूज्यजनों का आदर-सत्कार करना—ये उत्तम मंगल हैं।

* आरति विरति पापा मज्जपाना च संजमो।
अप्पमादो च धम्मेसु एतं मंगलमुत्तमं॥
सुत्तनिपात श्लो० २६४

"विद्या-सम्पादन, कला-सम्पादन, सदाचार-सेवन और समयोचित सम्भाषण— ये उत्तम मंगल हैं।

"माता-पिता की सेवा, स्त्री-पुत्रों की सम्हाल, शुभकर्मों का आचरण—ये उत्तम मंगल हैं।

"दानधर्म, धार्मिक आचरण, सहधर्मियों की सेवा-सुश्रुषा—ये उत्तम मंगल हैं।

"पापकर्मों से पूर्ण निवृत्ति, मद्यपान का त्याग और धार्मिक कार्यों में दक्षता—ये उत्तम मंगल हैं।

"आदर, नम्रता, सन्तोष, कृतज्ञता और बारबार सद्धर्म-श्रवण – ये उत्तम मंगल हैं।

"क्षमा, मधुर सम्भाषण, साधुजनों का समागम, समय-समय पर धर्म-चर्चा—ये उत्तम मंगल हैं।

"तप, ब्रह्मचर्य, आर्य सत्य का ज्ञान और मोक्ष का साक्षात्कार—ये उत्तम मंगल हैं"१

हिन्दूधर्म शास्त्रकारों ने मंगल-धर्म को जो सर्वोच्च स्थान दिया है उससे भी मंगल-धर्म की महत्ता विदित होती है।

"जहां धर्म, वहां जय"२

"धर्म का आचरण करो, अधर्म का नहीं, सत्य बोलो, असत्य नहीं विशाल दृष्टि रखो, संकुचित नहीं। उच्च दृष्टि रखो नीच नहीं।"३

"सत्य बोलो, धर्माचरण करो, अभ्यास में प्रमाद मत करो।"४

१ सुत्तनिपात– महामंगलसुत्त श्लोक– २६०-२६८
२ यतो धर्मस्ततो जयः— महाभारत
३ धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वद माऽनृतम्।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम्॥
४ सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यान्मा प्रमदः।— उपनिषद्

"हिंसा न करना. झूठ न बोलना, चोरी न करना, काम क्रोध लोभादि का त्याग करना और प्राणी मात्र का प्रिय और हित चाहना—यह सभी वर्णों का सामुदायिक धर्म है।"[५]

इस प्रकार भारत की प्राचीन धर्म-संस्कृति के प्रतिनिधिरूप जैन, बौद्ध और हिन्दू सभी धर्म-शास्त्रों ने मंगलधर्म का जो माहात्म्य गाया है और ईसाई इस्लाम आदि अर्वाचीन धर्मशास्त्रों ने उसका जो प्रतिपादन किया है उस पर से यह कथन कि "मंगल-धर्म सुख शान्ति का मूलस्रोत है," अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है।

ऐसे मंगल-धर्मों का अनासक्ति भाव से आचरण करने पर शास्वत सुख मिलता है। जो स्वार्थ-सिद्धि के लिए, पारलौकिक सुख की कामना से या विषय वासना की पूर्ति के लिए इन मंगल-धर्मो का आसक्ति-भाव से आचरण करने का ढोंग करता है वह मङ्गलमय धर्म को अमङ्गल बनाता है।

धर्म जीवन की आदरणीय वस्तु है। बाह्याडम्बर करके लोगों को दिखाने की नहीं। अन्तर्दर्शन करने वाला ही धर्म-दर्शन कर सकता है किन्तु बाह्यदर्शन करनेवाला धर्म दर्शन नहीं मत-दर्शन करता है। धर्म और मत में यही बड़ा अन्तर है। धर्म में विवेक-बुद्धि और मत में आग्रह-बुद्धि होती है। धर्म धर्म है और मत धर्माभास है। धर्म मंगल है. मत अमंगल। धर्म जातिवाद की उपेक्षा करके गुणवाद को मुख्य स्थान देता है जब कि धर्माभास गुणवाद का अपलाप कर जातिवाद को प्रधान स्थान देता है। एक प्रेमभाव को और दूसरा द्वेषभाव को पुष्ट करता है।

धर्म अनेकान्त-धर्म के दृष्टिकोण से सभी धर्माङ्गों का समन्वय करता है जब कि धर्माभास-मत, धर्माङ्गों में से किसी एक धर्माङ्ग को महत्व देकर दूसरों का अपलाप करता है, और इस तरह राष्ट्र और समाज में समानता के अमृत की बजाय विषमता का विष फैलाता है।

संक्षेप में, जो धर्म को मत और मत को धर्म मानता है और मनाता है वह मंगल-धर्म के अन्तस्तल तक पहुंच नहीं सकता।

जो आर्य-पुरुष धर्म और धर्माभास को अपनी विवेक-बुद्धि द्वारा, श्रद्धा और तर्क की कसौटी पर कसता है वह सहज ही इस बात का विवेक कर सकता है कि मंगल-धर्म सच्चा सुवर्ण है और धर्माभास चमकता हुआ और लोगों को चकाचौंध करनेवाला पालिश किया हुआ पीतल ही है।

धर्म सदा के लिए मङ्गलमय और उपादेय है। आज के उदीयमान नवयुवक धर्माभास के भ्रम में जिस धर्म को धर्म समझ कर 'धतींग, भयावह और हेय' मान रहे हैं वह धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है। जब वे धर्माभास को छोड़ कर मंगल-धर्म का आचरण करने में तत्पर होंगे तब धर्म उनके लिए मंगलकारी सिद्ध होगा और 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्' इस कवि-वाक्य को अनुमोदन करनेवाले सज्जन भी 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं दयायाम्' अर्थात् धर्म का तत्त्व गुफा में नहीं किन्तु दया, अर्थात् सक्रिय अहिंसा, में रहा हुआ है ऐसा कहे बिना नहीं रहेंगे क्योंकि 'धम्मो 'मङ्गलं' 'धम्मो सरणं' अर्थात् धर्म ही राष्ट्र और समाज का मङ्गल कर सकता है अतः धर्म ही हमारा शरण है।

आजकल संसार में जो अशान्ति की लहरें उठ

---

५ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥— मनुस्मृति

रही हैं और अत्याचार और अनाचार की आँधी चारों ओर चल रही है उसे शान्त करने का एकमात्र साधन मङ्गल-धर्म का आचरण है।

जीवन में अन्न और वस्त्र का जो महत्त्व का स्थान है उससे भी विशेष महत्त्व का स्थान मङ्गल-धर्म का है क्योंकि मङ्गल-धर्म ही हमें जीवन को मङ्गलमय बनाने का मार्ग बतलाता है।

व्यक्तिगत या समष्टिगत सुख-शान्ति स्थापित करने के लिए या युद्ध से होनेवाले रक्तपात को रोकने के लिए और भाई-भाई के बीच में, कुटुम्ब-कुटुम्ब के बीच में, समाज-समाज के बीच में, ग्राम-ग्राम के बीच में, नगर-नगर के बीच में और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच में प्रेमपूर्ण और मैत्रीपूर्ण मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मङ्गलधर्म का शरण ग्रहण करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, क्योंकि मङ्गल—धर्म के शरण ग्रहण करने में ही राष्ट्र और समाज की भयमुक्ति और सुख-शान्ति रही हुई है।—

'धम्मो मङ्गलं'—धर्म मङ्गलमय है।
'धम्मो सरणं'—धर्म ही शरण है।

"धिक् ऐसे मन को"

(कवित्त)

एरे अभिमानी! यों कहत है 'सुजान' बानी
पाई प्रभुताई दीन दण्ड दीनजन को॥
आणी नहीं दया त्यों पाप तें पलायो नांहि
भूखन बसन तें सजायो नित्य तन को॥
तृष्णा को बधाय मोहजाल फस्यो मीन मन
सुध ना निकरबे की छोरत ना पन को।
देखत हैं जात चले हाट के बटाऊ जिम
मूढ़ चख मूंदि बैठो धिक् ऐसे मन को॥ १॥

सुजाणमल बांठिया, सीतामऊ।

कवि की कविता

[श्री पूर्णचन्द्र टुँकलिया 'पूर्ण' एम० ए०, विशारद]

वह अबोध शिशु तीन वर्ष का ही तो था।

उसने निकट आकर, कवि के ललाट को छोटे-छोटे हाथों से उठाने का प्रयत्न करते हुए कहा था—"पि··ता···जी !"

वह यह थोड़े ही जानता था कि उसके पिताजी कल्पनारूढ़ हो, वेदनापूर्ण हृदय की अनुभूतियों के आंगन में, काव्य खेल खेल रहे हैं और उसका चापल्य उनकी विचार-शृङ्खला को भग्न कर देगा !

कवि ने नन्हे हाथ को धीरे से झिड़कते हुए, कुछ कठोर स्वर में कहा, "भाग जा !" शिशु ने फिर हठ किया था और अन्त में अधिक डांट पड़ने पर उसने रोने का शस्त्र सँभाला था।

आंसुओं का उपहार ले, थके हुए पाँवों से वह वहां से चला गया था।

× × ×

न जाने कब कवि अपने आसन से उठा और हाथ में कविता के कागज़ को लिये ही बरामदे में आकर टहलने लगा।

एक कोने की ओर उसकी नज़र गई।

छोटा शिशु ज़मीन पर ही सो गया था और पास में मिट्टी पड़ी थी। उसमें उसने सरकण्डे के टुकड़े से—कलाविद् की तूलिका से नहीं ! टेढ़ी मेढ़ी लकीरें खेंच दी थीं।

शिशु के गालों पर और आंखों की बरौनियों में आंसू की बूंदें चमक रही थीं।

कवि अपनी कविता में असन्तोष की छाया देखता था।

पर, उस शिशु कलाकार के निरर्थक चित्रण में वह देखता था – अपूर्व आनन्द का स्रोत और कविता का उद्गम-स्थल !

कवि ने झुक कर शिशु के कपोलों को चूमा। नींद में ही मानो शिशु मुस्करा उठा।

कवितावाला कागज़ हवा में उड़ रहा था।

और कवि ?—वह न मालूम किस कल्पना में उलझ कर ठगा हुआ-सा खड़ा था।

मुद्दती हुंडी का चलन

[श्री भँवरलाल वैद]

व्यापारी-समाज का प्राण व उसके कारोबार की नौका हुण्डी ही है। व्यापारी-समाज की उन्नति व उसकी इज्जत इसी पर निर्भर करती है।

हुण्डी 'दर्शनी' एवं 'मुद्दती' दो प्रकार की होती है। दर्शनी हुण्डी वह है, जो पहुंचते ही जिस पर लिखी गई हो उसे सिकारनी पड़े और भुगतान देना पड़े। मुद्दती वह है जिसे सिकार तो उसी दिन देनी पड़ती है जिस दिन वह दिखाई जाय पर जिसका भुगतान अमुक मियाद बीत जाने पर ही होता है। व्यापारी-समाज के लिये मुद्दती हुण्डियाँ क्योंकर विशेष लाभदायक हैं यह पाठकों को इस लेख से मालूम होगा।

किसी ज़माने में इन मुद्दती हुण्डियों का काफी प्रचार था और लोग लाखों करोड़ों की हुण्डियां लेते-देते थे। ये हुण्डियाँ पन्द्रह दिन, महीना, तीन महीना, यहां तक कि छ महीनों तक की मियादी होने के कारण लिखनेवालों की स्थिति-साख-देख कर ली दी जाती थीं। इससे हुण्डी करनेवाले को तो ज़रूरत पर रक़म मिल जाती थी जिससे वह मजे में अपना काम कर सके और रुपयेवालों को अपना रुपया लगाने का अच्छा मौक़ा मिल जाता था, अच्छा ब्याज उपज जाता था। आज भी यदि व्यापारिक दृष्टि से देखा जाय तो पता लगेगा कि इससे दोनों ही पार्टियों को पूर्ण लाभ होता है। मुद्दती हुण्डी करनेवाले को तो यह फ़ायदा है कि ब्याज की दर बहुत कम होने से, दर्शनी हुण्डी के बारबार के हुण्डावन खर्चे के बनिस्बत मुद्दती हुण्डी में कम से कम ≡) वा ।) सैकड़े का फ़ायदा रहेगा। ऐसी हुण्डी लेनेवाले को डिस्काउण्ट की नीति से ।।) से ।।≡) सैकड़े ब्याज तक की हुण्डी लेने पर १०,०००) रुपया लगा कर महीने में आठ से दस पल्टा करके उस डिस्काउण्ट का ब्याज व रुपया मंगाने इत्यादि का खर्चा बाद देकर भी महीने में कम से कम २५०) रुपये के क़रीब लाभ होगा। इस प्रकार बैंक के 'करेंट एकाउण्ट' (चालू खाता) के १% के बदले में कम से कम ३ या ४ रुपये सैकड़े का ब्याज उपज जायगा।

मुद्दती हुण्डियें लिखने का खास मतलब यही होता था कि समझिये एक साहूकार के पास दो लाख रुपये हैं लेकिन वे सब कारबार में लगे हुए हैं, उसी समय नई फ़सल हुई, दो एक चीज़ बहुत ही सस्ती बिकने लगी उनको खरीदने के लिये उसे रुपयों की सख्त ज़रूरत हुई उस समय ऐसी हुण्डियां लिखी जातीं थीं। दूसरे, जिनके पास रुपये फ़ालतू पड़े रहते थे वे इन हुण्डियों को खरीदते थे। लेकिन धीरे-धीरे गत यूरोपियन महायुद्ध के समय में जब रुपयों की बहुतायत हुई तो व्यापारिक सुविधा का प्रधान अंग यह मुद्दती हुण्डी का चलन घटने लगा एवं धीरे-धीरे यह बिल्कुल बन्द सा ही हो गया। साधारण जनता इसे हेय समझने लगी तथा उसकी यह धारणा हो गयी कि इस काम से

हमारी साख (क्रेडिट) व पोजीशन घटती है। लेकिन थोड़े ही समय पीछे व्यापार में संसार व्यापी मन्दी आई। 'साख' नाम की जो वस्तु थी वह उठ गयी, या यों कहिये कि व्यापार में जो जीवन-शक्ति थी वह धीरे-धीरे लोप होने लगी और आखिर आज यह परिस्थिति हो गयी कि मामूली हैसियत के व्यापारी को अपना काम चलाना असम्भव-सा हो गया।

मुद्दती हुण्डी के बन्द हो जाने से रुपये का पर्याप्त उलट-फेर (Circulation) नहीं हो रहा है, क्योंकि पुर्जे को लेनेवाले को कम से कम एक महीने तक उसे रखना ही होगा कारण कि उसका डिस्काउण्ट नहीं हो सकता और बदली में पुर्जे काटने से पहले तो ब्याज शायद ऊंचा-नीचा हो फिर दूसरे पुर्जे लिखने की योग्यता ही साहुकारी पर निर्भर करती है जब कि हुण्डी में प्रायः तीन-तीन या उससे भी ज्यादा पांच-पांच आसामी तक दाई रहते हैं। हुण्डी की तरह हम पुर्जे को डिस्काउण्ट नहीं कर सकते, जिससे पुर्जे पर जो रुपया दिया जाता है वह देनेवाले के लिये एक प्रकार से बन्द हो जाता है पुर्जे की अवधि के पहले वह रुपये प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये १५ या २० दिन के लिये ही जिसके पास रुपये फ़ालतू पड़े रहते है वह पुर्जा नहीं ले सकता और इस तरह बिना मुद्दती हुण्डी के चलन के वे रुपये उसके पास ऐसे ही बिना ब्याज पड़े रह जाते हैं।

इन मुद्दती हुण्डियों को हर समय लेते-देते रहने से हर व्यापारी को कई प्रकार के लाभ हैं। पहले तो हर समय, व कम रकमवाले भी, इन्हें वक्त-ब-वक्त लेते बेचते रहने से रकम की काफी उथल-पुथल कर सकते है व इससे उनकी क्रेडिट अच्छी जम सकती है जिसकी मदद से वे अपनी ज़रूरत के माफ़िक सुविधा से रुपये पा सकते हैं व बीच-बीच में ब्याज का लाभ भी उठा सकते हैं। दूसरे जिनका काम ब्याज उपजाना व इन्हें लेना बेचना ही हो वे एक लाख की जगह पांच लाख का काम कर सकते हैं व ब्याज का तिगुना चोगुना फ़ायदा उठा सकते हैं।

मुद्दती हुंडी के चलन की आवश्यकता इस वजह से भी है कि साधारण व्यापारी जो ऊंचे ब्याज पर रुपये लेने वाले हैं, साख घट जाने के कारण रुपये नहीं पा सकते, और जिनको रुपये की ज़रूरत नहीं या बहुत कम है और जिनके पास रुपये बहुत है वे यदि रुपया ब्याज पर देना चाहें तो उन्हें पुर्जे पर रुपये देने पड़ते है जिसकी दर २ या २॥ सैंकड़ा या इससे भी कम होती है या बंक के कागज़ या शेयर लेने पड़ते है या मकानों में खर्च करके ब्याज उपजाने की चेष्टा करनी पड़ती है। लेकिन यदि मुद्दती हुंडी का चलन हो जाय तो ब्याज की दर ऊंची हो जाने से ब्याज उपजाने वाले बाज़ार में ही रुपया लगाने लग जावें और बंकों के शेयरों इत्यादि में न फँसें जिससे बाज़ार में उन रुपयों का काफी उलट-फेर (Circulation) हो सकता है।

दर्शनी हुंडियों पर से स्टाम्प उठ जाने पर भी मुद्दती हुंडियों पर स्टाम्प बने हुये है जो बहुत ही अधिक होने के कारण ब्याज पर रुपये लेने वाले कारबारियों को अखरने लगे। इसी कारण से उन्होंने पुर्जे ही पर रुपये लेने का तरीका निकाल लिया। इससे सभी बातें मुद्दती हुंडी के माफ़िक ही होने से आरम्भ में तो इसका काफ़ी प्रचार हुआ लेकिन फिर इसका डिसकाउन्ट न हो सकने से व्यापारियों को काफ़ी असुविधा मालूम होने लगी व धीरे धीरे इसका प्रचार भी घटने लगा। आज यह दशा हो गई है कि

बाज़ार में एक भी ऐसी हुंडी नहीं दिखाई देती। थोड़े दिन और यदि यही दशा रही तो इस प्रथा का अन्त हो जायगा।

मुद्दती हुंडी के चलन में जो प्रधान अड़चन है वह यह है कि किसी को किसी पर विश्वास नहीं। रुपये वाले यही कहते हैं कि विश्वास न होने से रुपये जैसी चीज़ कैसे किसी को दी जा सकती है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। देखने से पता लगता है कि आज भी थोड़ा बहुत लेन देन होता है पुर्जे होते हैं, खाते होते है लेकिन इन सब का आगे Circulation नहीं होता है। यदि इनकी जगह पर ज्यादा नहीं तो कम से कम आधी भी हुण्डियां हो जायँ तो बाज़ार में रुपयों का उलट-फेर आज से दूना हो सकता है जिससे व्यापार में काफ़ी मदद मिल सकती है। दूसरी अड़चन जो इसमें है वह यह है कि हर शख्स जिसकी बाज़ार में कुछ भी साख है, वह इस काम को पहले पहल करते हुए हिचकिचाता है व सोचता है कि यदि मैं यह काम करूंगा तो लोग मुझे कमज़ोर समझने लगेंगे व मेरी यह साख ख़राब न हो जायगी। लेकिन मेरे विचार से उनकी यह धारणा भी ग़लत ही मालूम देती है क्योंकि यदि सब कोई खुले आम ऐसा करने लग जायं तो कोई कारण नहीं कि किसी की साख में किसी तरह का बट्टा लगे या पोज़ीशन में फ़रक़ पड़े। इस प्रकार रुपया लेकर व्यापार में लगा कर उसे विस्तृत करने से उनकी साख घटेगी नहीं बल्कि धीरे-धीरे बढ़ेगी ही। आज असली स्थिति सब के सामने आ गयी है एवं इसका निवारण करना बहुत ज़रूरी हो गया है। सब इसे समझने लग गये हैं व इसे मिटा कर साख बढ़ाने और व्यापारिक स्थिति ठीक करने के लिये लालायित हो रहे हैं। इसलिये व्यापारी समाज से मेरी प्रार्थना है कि वे आज की परिस्थिति पर विचार करके मुद्दती हुंडी को पुनः प्रचलित करके कारोबार में जान डालने की चेष्टा करने के लिये शीघ्र ही प्रयत्न करें।

न्याय ?

[श्री दिलीप सिंघी]

१

रमेश बाबू अभी घूम कर लौटे थे, प्यास से गला सूख रहा था, रात का रक्खा हुआ नये मटकों का जल अब शेष हो गया था। लाचार हो गरमी की अधीर तृषा को कुछ तो ताजे पानी के एक गिलास से शान्त किया, पर जब उससे संतोष न हुआ तो आवाज़ दी– "रज्जु ! जाओ पास वाले बब्बन तंबोली के यहां से एक आइस्ड (बरफ़ में रख कर ठंडा किया हुआ) लेमन ले आओ, बड़ी प्यास लग रही है"—और कोट की जेब में से एक आना निकाल कर उसके हाथ में रख दिया।

राजेश्वर रमेश बाबू का दस वर्षीय पुत्र है उससे छोटे उसके एक भाई और एक बहिन और हैं विनय और पूर्णिमा। तीनों बालक रूप के टुकड़े हैं, किसी का भी मन उन्हें देख कर प्यार करने को लालायित हो उठे। अपनी इस ईश्वरदत्त सुन्दरता के कारण बिचारा विनय तो हैरान है। रमेश बाबू के यहां आने वाला कोई ही मित्र या सगा सम्बन्धी ऐसा होगा जो विनय को एक दो चुम्बन का लाभ दिये बिना छुट्टी लेता हो, और जिस दिन उसके लम्बी मूंछ वाले चाचा या पीनस रोग से ग्रसित मामा का पदार्पण हो जाता है उस रोज़ तो उसके बेचारे के देवता कूच कर जाते हैं। मामा या चाचा के दीर्घजीवी चुम्बनों की भरमार से जब उसका मुलायम गाल छिलने लगता है या उनके मुह की सड़ी हुई गन्ध उसकी प्राणेन्द्रि को कुपित कर देती है तो बिचारा चिल्ला उठता है और आख़िर रुदन का शरण ले अपनी मुक्ति पाता है शायद मन ही मन सोचता हो कि ये बाल-प्रेमी अपने प्रेम का प्रदर्शन दो चार जापानी गुड़ियों पर करें तो क्या ही अच्छा हो ?—वे तो उससे भी सुन्दर हैं !

२

अस्तु, पांच सात मिनट में ही राजेश्वर ने एक बर्फवाली काच की गिलास और एक लैमन की बोतल लाकर टेबल पर रख दी। विनय और पूर्णिमा भी अपना हिस्सा बँटाने को आ पहुंचे। देखते देखते भप् की आवाज़ हुई और गिलास छलाछल भर गया। पूर्णिमा ने शुरुआत की "चाचाजी, मैं बी पिऊँडी" विनय ने मुस्करा कर डरते डरते कहा "मैं बी, चाचाजी"। राजेश्वर चुपचाप खड़ा था, वह सब से बड़ा था। विनय और पूर्णिमा तो छोटे हैं, नासमझ हैं, वह उनकी तरह नासमझ और बदतमीज़ नहीं बन सकता, यह बात उसे कई बार डंडे के बल सिखाई गई थी। बात की बात में रमेश बाबू ने उस शीतल पेय को उदरस्थ कर दिया, दो तीन घूट पूर्णिमा और विनय को समझाने के लिये, या नंगे शब्दों में कहें तो, ठगने के लिए रहने दिया, जिसे उन दोनों ने लड़ झगड़ कर पूर्ण किया। राजेश्वर सोचने लगा, 'न्याय और आवश्यकता की दृष्टि से फुटबॉल के खेल की दौड़ादौड़ के बाद इस लैमन के गिलास का अधिकार मेरा या आधे मील का चक्कर मार कर लौटे हुए पिताजी का ?' विनय और पूर्णिमा सोचने लगे, 'बाबूजी तो सारा गिलास पी गये और हम दोनों के लिए दो तीन घूट ही ?' घर में रमेश बाबू की श्रीमतीजी ने मन को मना लिया, 'ये चीजें स्त्रियों के काम की नहीं !'

३

हां तो, खाली गिलास और बोतल को लौटा देने का हुकम होते ही राजेश्वर ने उन्हें उठा लिया और चलता हुआ। अप्रसन्न मन कुछ विचारता हुआ चल रहा था, घर के बाहर ही पहुंचा होगा कि ठोकर खाकर गिर पड़ा। कुछ टूटने की आवाज़ सुन कर रमेश बाबू जल्दी-जल्दी बाहर आये और मानों घुटने फूटने की सज़ा को काफ़ी न समझ कर रज्जू के मुलायम गालों को क्रोधाग्नि से तेज़ बने हुए अपने हाथों से लाल कर दिया।

दूसरे ही दिन सवेरे रमेश बाबू घड़ी के चाबी लगा रहे थे, एकाएक घड़ी हाथ से गिर पड़ी, कांच टूट गया और घड़ी की टिकटिक भी बन्द हो गई। और थोड़ी ही देर के बाद नया लाया हुआ इलेक्ट्रिक बल्ब क्लोटिंग लेते वक्त टेबल से गिर कर चूर-चूर हो गया। रज्जू सोचने लगा, 'काश, आज दादा ज़िन्दा होते! या तो चाचाजी की भी वही दशा होती जो उनके हाथ मेरी हो रही है या फिर उनके ही हाथ मेरी सेवा करने को इतने लालायित नहीं रहते!'

४

आज रविवार है, रमेश बाबू अपनी फैमीली का ग्रूप उतरवाने को दयाराम फोटोग्राफ़र के स्टूडियो में सवेरे ही सवेरे पहुंच गये। ग्रूप फ़ोटो हो जाने के बाद रमेश बाबू ने पांच सात पोज़ में अपने अलग फ़ोटो उतरवाये। रज्जू और विनय की भी फ़ोटो, हँसते हुए, रोने का ढौल करते हुए, एक दूसरे को आंखें फाड़ कर डराते हुए, उबासी खाते हुए—इन चार पांच पोज़ में ली गई। यह कार्य हो ही रहा था कि रमेश बाबू के मस्तिष्क में एक विचार आया—पूर्णिमा रोती हो एक दो अश्रुबिन्दु गालों पर बिखरे हुए हों, मुंह फटा हुआ हो—ऐसा एक फ़ोटो अवश्य उतरवाना चाहिये, मित्रों को दिखाने के लिए एक चीज़ होगी। बस फिर क्या था फ़ोटोग्राफर को अपनी इच्छा से वाकिफ़ किया। पर पूर्णिमा कब रोए और कब फोटो लिया जाय? उसे धमकाया हाऊ से डराया, उसकी तरफ आंखें निकाली, पर सब व्यर्थ। पूर्णिमा को आज नये कपड़े पहनने को मिले थे, वह आज खुश थी, वह तो और भी ज्यादा हंसने लगी। सब प्रयास निष्फल जाते देख रमेश बाबू न रह सके, एक थप्पड़ जमा ही तो दिया, लगी बिचारी चिल्लाने, आंखों से टपाटप मोती गिरने लगे। फ़ोटोग्राफ़र साहब तो तैयार ही थे, दो तीन 'स्नेप शॉट' ले लिए, और लगे हँसने। नौकर के हाथ पीपरमिन्ट की गोली मंगा कर पूर्णिमा को शान्त किया।

× × ×

यह सारे दृश्य किसी ख़ास रमेश बाबू के घर ही होते हों सो बात नहीं है। संसार में आप और हम सभी—लगभग निन्न्यानवें सैकड़ा गृहस्थों—के घर यही दृश्य देखने को मिलते हैं। हम सभी हमारे बचपन में 'रमेश बाबुओं' के बाबूपन के शिकार रहे होंगे और वक्त आने पर स्वयं भी 'रमेश बाबू' बन जाते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी—आज यही क्रम चल रहा है। इसे मनुष्य की लापरवाही कहिये या स्वार्थान्धता! पर अधिकतर मनुष्यों के लिये यह सब बातें स्वाभाविक हैं।

और दूसरी ओर,- यही सब मनुष्य शायद रोज़ ईश्वर से न्याय और दया की प्रार्थना करते हैं। वास्तव में कितने ही इस बात का विश्वास भी कर लेते हैं कि उन्होंने ईश्वर की पूजा-स्तुति द्वारा अपने प्रति उसकी दया होने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया है। और यह उस समय जब प्रति दिन वे अपने घर में अपने ही बालकों के लिये 'रमेश बाबू' बने रहते हैं।

मानवी! तू इस छोटे से सरल सत्य को कब समझेगा? जब तू प्रभुसम शिशु के साथ न्याय का बर्ताव नहीं कर सकता तो तुझे जगदीश के पास न्याय-प्रार्थना करने का क्या अधिकार?

हमारी शिक्षा-प्रणाली

[श्री निरंजन लाल भगानिया]

"हमारी सम्पूर्ण शिक्षाविधि सड़ी हुई है। इसकी फिर नये सिरे से रचना करने की ज़रूरत है। यदि मेरा वश चले तो आजकल पाठशालाओं में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनमें से अधिकांश को मैं नष्ट कर दूं और ऐसी पुस्तकें लिखवाऊं जिनसे जीवन का निकट सम्बन्ध हो। इससे पढ़ाई का उपयोग उनके (छात्रोंके) गृह जीवन में हो सकेगा—" महात्मा गांधी।

सभ्यता के क्रम-विकास ने मनुष्य के सामने शिक्षा का प्रश्न रक्खा। मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने ही इसका बीज बोया था, इसीने उसकी परिपुष्टि की। सभ्यता के कितने ही परिवर्तनों का अनुभव लेकर मनुष्य अपनी आज की परिस्थिति में है। 'शिक्षा' का अर्थ समय समय पर बदलता रहा। एक समय के शिक्षित दूसरे समय में अशिक्षित से दीख पड़े। आज भी बहुतों का यह ख्याल है कि बिना अंग्रेज़ी सीखे मनुष्य शिक्षित नहीं हो सकता। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शिक्षा के दो पहलू हैं। पहला मानसिक या बौद्धिक दूसरा लौकिक। पहली शिक्षा का सम्बन्ध बुद्धि के विकास और मानसिक उन्नति से है; दूसरी का सम्बन्ध किसी विशेष भाषा या विषय में, किसी विशेष परिस्थिति में योग्यता प्राप्त करने से है। प्रधानता की दृष्टि से पहली शिक्षा ही हमारे सामने आती है, यद्यपि इस बात को भी हम अस्वीकार नहीं करते कि व्यावहारिक और भौतिक सफलता के लिहाज़ से दूसरे प्रकार की शिक्षा का ही मनुष्य के जीवनमें प्राधान्य-सा रहता है। अस्तु।

मेरा तात्पर्य उस शिक्षा से है जो मनुष्य की ज्ञान पिपासा को प्रोत्साहन दे; उसकी मानसिक शक्तियों का सुखद विकास भी करे जिससे मनुष्य अपना लक्ष्य पहचान सके और विवेक के सहारे वहां तक पहुंचने की योग्यता भी प्राप्त कर सके; सामाजिक, राजनैतिक अथवा किसी भी प्रश्न पर स्वतन्त्रता से विचार कर सके और आवश्यकता पड़ने पर अपनी व्यक्तिगत राय को जिसे वह ठीक समझता है, निडर होकर प्रकट कर सके चाहे सारा विश्व ही उसके विरुद्ध क्यों न हो। परिपाटी का वह गुलाम न हो और अपनी प्रत्येक कार्यवाही को वह बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखे। उसकी विचारधारा अथवा मनोभावों और उसके दैनिक कार्य्यकलाप के बीच एक गहरी खाई न हो। वह विचारों में साम्यवादी, और व्यवहार में पूंजीपति न हो। मेरे 'शिक्षित' का यही संक्षिप्त परिचय है।

अब प्रश्न यह उठता है कि—वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली सन्तोषप्रद है या नहीं? इसका उत्तर देने के पहले हमें स्वतः ही यह जिज्ञासा होती है कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली क्या है और इसके फलस्वरूप देश का कौन सा उपकार हुआ? यदि हमारी छानबीन से

इसकी व्यर्थता ही सामने आई तो फिर साथ ही दो प्रश्न और भी उठते हैं और वे ये - (१) यदि वर्त्तमान प्रणाली असफल है तो क्यों ? (२) समाज और देश की मौजूदा परिस्थितियों में कैसी शिक्षा प्रणाली और क्यों सफल हो सकेगी ? प्रश्नों की गम्भीरता का ध्यान रखते हुए हमें इन्हीं पर आज विचार-विमर्ष करना है। पहले वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली के स्वरूप और प्रगति के इतिहास की ओर सरसरी निगाह से देख जाना अप्रासंगिक न होगा।

इतिहास इस कथन की पुष्टि करता है कि भारत का शिक्षा और सभ्यता से बहुत पुराना सम्बन्ध है, यह दूसरी बात है कि हिन्दू-राजत्व काल में शिक्षा का स्वरूप मुसलमानी शासन काल से उतना ही भिन्न था जितना मुसलमानी शासन काल की शिक्षा का स्वरूप वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली से। जहां पहले, समाज में शिक्षा के प्रसार के लिये राजा की अपेक्षा समाज के ही एक अंग (ब्राह्मण समाज) पर दायित्व था, वहाँ आजकल समाज के किसी अंग विशेष की अपेक्षा शासन-व्यवस्था पर ही विशेष दायित्व है।

ईस्ट इंडिया कम्पनीके राजत्व कालमें यहाँ वालों को एक कमी जान पड़ी। भारतीयों ने देश के विदेशी शासकों की भाषा सीखने की आवश्यकता समझी। पर उस समय तक भी मुगल साम्राज्य में पायी गई अरबी और फ़ारसी की शिक्षा का रंग गाढ़ा था। इसलिये सन् १८३५ में लार्ड विलियम बैन्टिङ्क के शासन काल में जब लार्ड मेकाले ने शिक्षा प्रणाली में अंग्रेज़ी भाषा को स्थान देकर कुछ परिवर्तन करना चाहा तब केवल स्वर्गीय राजा राम मोहन राय सरीखे इने गिने विद्वानों ने ही उनका समर्थन किया था, हालां कि विरोधियों का बहुमत उनके सामने टिक न सका। शिक्षा प्रणाली में अँग्रेज़ी भाषा को स्थान देने से लार्ड मेकाले का दर असल क्या उद्देश्य था यह तो हम नहीं कह सकते, पर उनके एक कथन के बल पर हमें यह कहने में कोई आनाकानी न होनी चाहिये कि उनके अन्य उद्देश्यों के पीछे एक राजनैतिक उद्देश्य भी था। किसी जाति को निर्जीव और अवनत बनाने के लिये इतना ही पर्याप्त होगा कि हम उसे उसकी भाषा और उसके प्राचीन ऐतिह्यों (Traditions) को भुला दें। भारत के विषय में यह सिद्धान्त कहाँ तक लागू है और इसे कहाँतक सफलता मिली है यह हम अभी भी ठीक तौर से नहीं बता सकते। फिर भी हमारे प्राचीन ऐतिह्यों (Traditions) को और अपने प्राचीन साहित्य को हम जिस द्रुत गति से भूल रहे हैं उससे तो यह कहना शायद ठीक ही होगा कि यह सिद्धान्त भारत के लिये विफल नहीं हुआ।

हमें अपनी २६०० स्कूलों और ३०० से कुछ अधिक कालेजों और कितनी ही (२ लाख से अधिक) छोटी-छोटी पाठशालाओं पर नाज़ है। शासन व्यवस्था के बजट में जब हम देखते हैं कि करीब १३ करोड़ रुपये भारत को शिक्षित बनाने के लिये रख छोड़े गये हैं तब शायद मन में आशा और आनन्द का सुखद समावेश होता है। पर जब हम भारत की शिक्षा प्रगति की ओर निगाह करते हैं तो हमें रुलाई आती है। शिक्षा और सभ्यता के पुजारी भारत में शिक्षितों की संख्या फ़ी सदी ७·२ है और महिलाओं में शिक्षिताओं की संख्या फ़ी सदी १·८ है, विशेषता यह है कि इनमें वे शिक्षित भी मिला लिये गये हैं जो केवल अपना नाम ही लिख सकते है। शिक्षा की इस द्रुत गति (?) की तुलना जब हम अन्य देशों से करते है

तो शर्म से सिर झुकाना पड़ता है। यह तो हुआ शिक्षा का प्रसार। अब आप स्वरूप की ओर ध्यान दें। भारत में शिक्षण संस्थायें तीन मुख्य भागों में बांटी जा सकती हैं—(१) प्राथमिक विद्यालय (Primary schools) (२) मध्य या उच्च श्रेणी के विद्यालय (Secondary, Middle or High-schools) (३) कालेज (colleges)। ये शिक्षणालय किसी न किसी विश्वविद्यालय अथवा बोर्ड के अधीन हैं। विश्वविद्यालयों और बोर्डों द्वारा निर्द्धारित पुस्तकें ही पढ़ाई जाती हैं। समय-समय पर परीक्षायें होती है और उत्तीर्ण होनेवाले छात्रों को सनदें (Certifi-cates) दी जाती हैं। प्रायः सभी विद्यालयों और कालेजों की पढ़ाई दिन के १० बजे से ४ बजे के भीतर ही हो जाती है। विभिन्न विषयों के विभिन्न विभिन्न अध्यापक एक निर्धारित समय के लिये आते हैं। वार्षिक परीक्षाओं के फलाफल पर बच्चों को एक श्रेणी से दूसरी ऊंची श्रेणी में जाने का आदेश दिया जाता है। बच्चों की योग्यता की परीक्षा प्रत्येक विषय में प्राप्त अङ्कों से होती है। बच्चों का ध्यान यह रहता है कि किसी तरह परीक्षा में उत्तीर्ण हों। शारीरिक शिक्षा की ओर या तो ध्यान ही नहीं दिया जाता या जो कुछ दिया जाता है वह नहीं के बराबर है। फलस्वरूप लड़के अस्वस्थ और रट्टू होते हैं। संक्षेप में यही इस शिक्षा का स्वरूप है, आगे चलकर इस पर और ज्यादा विचार किया जायगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि भारत को इस शिक्षा से क्या फ़ायदा हुआ?

प्रारम्भ में ही पू० महात्मा गान्धी के वक्तव्य का उद्धरण दिया गया है वह इस कथन का समर्थन करता है कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली देश के लिये घातक है। देश में जो शिक्षित कहे जानेवाले सज्जन हैं उनमें से इनेगिने ही शिक्षित कहलाने के योग्य हैं। क्रियात्मक शक्ति और उत्साह, विवेचना शक्ति और आत्मबल का आधुनिक शिक्षा की बलिवेदी पर बलि-दान कर आजकल के शिक्षित आधुनिक वेशभूषा में सज्ज और पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगे जाकर जैसा जीवन व्यतीत करते हैं उसे देख कर प्रत्येक समझदार के मन में दुःख होगा। वे भूल बैठते हैं कि जो भारत आज अशिक्षित और अर्द्ध सभ्यों का देश गिना जाता है उसमें पहले एक ऐसी शिक्षा और एक ऐसी सभ्यता थी कि विदेशी उससे सभ्यता का पाठ सीखने में अपनी हेठी नहीं समझते थे। जहां आज फ़ी सदी ७·२ मनुष्य शिक्षित हैं वहां पहले इने-गिने ही अशि-क्षित थे। वैज्ञानिक आविष्कारों में पिछड़ा हुआ भारत पहले विश्व के उन्नत देशों का अगुआ था। जहाँ आज प्रायः प्रत्येक शिक्षित मनुष्य वेतनभोगी की हैसियत से जीवन बिताना चाहता है वहाँ पहले के शिक्षितों का कुछ दूसरा और ऊंचा ही लक्ष्य था। बेकारी की बढ़ती हुई इस समस्या को देख कर आज जब की शिक्षितों की आंखों में निराशा दीख पड़ती है वहाँ पहले के शिक्षितों में उत्साह, साहस और दृढ़ विश्वास की झलक रहती थी। आज मनुष्यत्व की परिभाषा ही बदल देनी पड़ी है और प्रत्येक ऐसे कुकृत्य को जिसे आज से कुछ दिनों पहले भी लोग करते हुए हिचकिचाते थे आज Changing morality (परिव-र्तनशील नैतिकता) के नाम पर किया जा रहा है। शिक्षा-प्रणाली का इससे बढ़ कर और क्या दुष्परिणाम होगा कि भारतीय एतिह्यों (traditions), साहित्य और कलाओं के जीर्णोद्धार करने में जहाँ विदेशी इतना परिश्रम करते हैं वहाँ देश के शिक्षित चुपचाप बैठे

देखते रहते हैं। वास्तव में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने भारत का जितना अहित किया है उसकी तुलना में हित हित नगण्य है।

अब प्रश्न यह है कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली भारत में क्यों असफल हुई? यदि हम धीरता से इसके प्रत्येक अंगों की जाँच करें तो सहजबुद्धि के सहारे ही हम कई-एक दोष देख पायेंगे, जिनमें मुख्य ये हैः—

(१) आधुनिक शिक्षणालयों में प्रत्येक श्रेणी में ४० के लगभग छात्र शिक्षा पाते हैं। विद्यालयों के शिक्षक प्रायः अल्प वेतन भोगी और मनस्तत्त्व एवं शिक्षण विज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। प्रत्येक बालक की मानसिक शक्ति और रूचि एक दूसरे से विभिन्न होती है इसे वे भुला देते है। श्रेणी में वे एक ही ढङ्ग से पढ़ाते हैं उसका परिणाम यह होता है कि कुछ बालक जो बुद्धि में कमज़ोर हैं किसी विशेष विषय को समझ नहीं पाते और कुछ मेधावी छात्र अपनी अपनी जिज्ञासाओं का उचित समाधान नहीं कर पाते क्योंकि शिक्षकों को अवकाश ही नहीं मिलता कि उनकी सहायता करें। उनका सारा समय केवल पाठ्य पुस्तकों को पढ़कर कुछ समझाने में ही बीत जाता है। बच्चों की भिन्न-भिन्न विषयों में भिन्न-भिन्न अभिरुचियों के अध्ययन करने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। फलस्वरूप बालकों की मानसिक शक्तियाँ प्रोत्साहन के अभाव में नष्ट हो जाती हैं। बालक देखता है परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही उसके छात्र जीवन का लक्ष्य है। इसलिये मेधावी और परिश्रमी लड़के तो परीक्षोत्तीर्ण होने की फ़िकर में दिन रात पाठ्य पुस्तकें पढ़ा करते हैं, स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देने के कारण समय के पहले ही उनकी आँखें कमज़ोर हो जाती हैं और वे अस्वस्थ दिखाई पड़ते हैं। दूसरे, खिलाड़ी लड़के सारा समय खेलने में ही बिताते हैं पर जब परीक्षा नज़दीक आती है तब गृह-शिक्षकों की सहायता से किताबें किसी तरह से रट कर परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—मानसिक शक्तियों का विकास—इसीलिये सफल नहीं हो पाता।

(२) शिक्षणालयों में ऊँची श्रेणियों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। इससे छात्रों को पाठ्य पुस्तकों को समझने में काफ़ी दिक्कत होता है। कई एक सज्जनों का यह कहना है कि अँग्रेज़ी भाषा का ज्ञान इन दिनों होना ज़रूरी है और इसलिये सभी विषयों का अँग्रेज़ी में होना ठीक ही है। पर सच पूछिये तो जब हम किसी बच्चे को भूगोल और इतिहास पढ़ाना चाहते हैं तो हमारा मुख्य उद्देश्य उसे इतिहास और भूगोल की बातें समझाना ही रहता है न कि कोई विशेष भाषा। ऐसी अवस्था में उचित तो यह होगा कि इतिहास और भूगोल ऐसी भाषा में लिखी और समझायीं जाँय जिसे बच्चा सुगमता से समझ सके। और मातृ भाषा अथवा उससे अधिक मिलती जुलती भाषा में बालक एक विषय को जल्दी समझ सकेगा यह स्वाभाविक ही है। शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी होने के कारण बहुत से छात्र अध्ययन नहीं कर पाते।

(३) छात्रों की योग्यता की परीक्षा वर्ष में प्रायः तीन बार की जाती है। योग्यता का निरूपण छात्र के द्वारा विभिन्न विषयों में पाये गये अङ्कों पर होना है। छात्र श्रेणी में कैसा व्यवहार करता है और कैसा पढ़ता है इस बात को एकदम भुला दिया जाता है। फल यह होता है कि वे लड़के भी जो श्रेणी में पढ़ने में पर्य्याप्त ध्यान नहीं देते और सारा समय खेलकूद में बिताते हैं. कुछ दिन मेहनत कर उत्तीर्ण हो जाते हैं। परीक्षा करने का ढङ्ग भी बड़ा रद्दी है।

ऐसे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके एक से अधिक प्रकार के उत्तर होते हैं। छात्रों में से किसका प्रयास कैसा रहा इसके निरूपण का भार परीक्षक पर है। पर यह बहुधा देखा गया है कि विभिन्न अवसरों पर एक ही परीक्षक एक ही से उत्तर का विभिन्न मूल्य आँकता है। दूसरे बदमाश लड़के तो अच्छे लड़कों की नक़ल करने में भी नहीं हिचकते और वे इस सफ़ाई से नक़ल करते हैं कि दूसरों को पता भी नहीं लगता। ऐसी हालत में परीक्षा का मुख्य उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। शिक्षण विज्ञान और मनस्तत्व के पंडितों का कहना है कि आजकल की परीक्षायें छात्रों को रट्टू बना डालती है। परीक्षा के डर से बालक जब अपनी अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़ते हैं और बे-समझे ही पुस्तक की मुख्य बातों को रटते हैं तभी उनकी मौलिकता नष्ट हो जाती है। स्वतन्त्र विचार-धारा के बल पर न तो वे किसी सिद्धान्त का समर्थन ही कर सकते हैं और न उसका खण्डन। उनका मस्तिष्क सदा के लिये सङ्कुचित रह जाता है।

(४) विषयों के निर्वाचन में भी छात्रों को बहुत ही कम स्वतन्त्रता दी जाती है। यह मानी हुई बात है जिस विषय में छात्र दिलचस्पी रखता है उसमें वह अधिक सफलता पा सकता है। पर न जाने क्यों यह बात भी भुला दी जाती है। पाठ्य-पुस्तकें जीवन को और समाज की समस्याओं का जैसा चित्र सामने रखती है वास्तविकता उससे कोसों दूर रहती है। इसी लिये छात्र जीवन की समाप्ति पर जब एक गृहस्थ का जीवन बिताना चाहता है तब वह वास्तविक जगत और जीवन, सङ्घर्षमय जीवन की पेचीदा समस्याओं और पुस्तकों के आधार पर कल्पित जगत और जीवन में एक गहरा अन्तर पाता है। कल्पना और सुखद कल्पना का नशा समय के थपेड़े खाकर छूट जाता है। निदान निराशा में हीं ऊंची आकांक्षायें विलीन हो जाती है। रोटी के सवाल को हल करना भी असम्भव सा हो उठता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि शिक्षा केवल किताबी होती है, लौकिक या व्यावहारिक ज्ञान का जिस पर जीवन की सफलता निर्भर है, समावेश नहीं होता। दर्शन, इतिहास, विज्ञान और अंकशास्त्र की युक्तियां तो उन्हें बतायी जाती है पर यह बताया ही नहीं जाता कि रोटी के प्रश्न को हल करने के लिये भी किसी व्यावहारिक विषय का ज्ञान आवश्यक है।

(५) छात्रों की नैतिक या शारीरिक उन्नति के लिये भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। फलस्वरूप छात्रों में नैतिक कमज़ोरियां अधिक पाई जाती हैं और स्वास्थ्य भी सुधरा हुआ नहीं मिलता। ईश्वर-सत्ता में विश्वास पैदा करने एवं अन्यान्य मनुष्योचित गुणों की परिपुष्टि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इसीलिये छात्रों मे नास्तिकता और, नियन्त्रण के अभाव में, उच्छृङ्खलता आ जाती है। ये गुण बच्चों में उसी समय पैदा किये जा सकते है जब कि सच्चरित्र अध्यापक की देखरेख में बच्चों को शिक्षा का श्री गणेश हो।

(६) पाठ्यपुस्तकों में देश का इतिहास जिस रूप में मिलता है उसे पढ़ कर हमें कहना पड़ता है कि हम बच्चों को देश के इतिहास के बदले और कुछ पढ़ा रहे हैं। अँग्रेज़ी लेखकों की कई एक पाठ्य पुस्तकों में भारत के प्राचीन इतिहास का बड़ा भद्दा चित्र खींचा गया है। शिवाजी जैसे वीर को पहाड़ी चूहा (mountain rat) बताया गया है। इतिहास पढ़ाने का एक मात्र उद्देश्य है बच्चों के सामने देश के उज्वल प्राचीन काल को उसके वास्तविकरूप में रखना ताकि बच्चों

के हृदय में देश के प्रति गौरव के भाव दृढ़ और देश को उन्नति बनाने की आकांक्षा प्रबल हो। किसी भी देश के ऐतिह्य उसकी थाती हैं। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के फेर में पड़ कर बच्चे अपने प्राचीन गौरव और प्राचीन साहित्य एवं कलाओं को भूल रहे हैं। इससे अधिक शोचनीय और क्या होगा जब कि पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाई गई कहानियों में यह दिखाया जाता है कि दूसरी जातियां भारतीयों से सभी तरह अच्छी और भारतीय निरे असभ्य हैं। आत्मसम्मान की भावना इसीलिये हमारे छात्र-समाज में लुप्त हो गई है और भारतीय छात्रों में वह जोश, स्फूर्ति, जिज्ञासा और निर्भयता नहीं दीख पड़ती जो दूसरे स्वतन्त्र देशों के छात्रों में पायी जाती है।

(७) वर्तमान शिक्षा-प्रणाली इतनी दूषित होते हुए भी खर्चीली है। यही कारण है कि इसका प्रसार सन्तोषप्रद नहीं है। —[क्रमशः]

अभिलाषा

[श्री भँवरलाल बख्शी]

(आयु १४ वर्ष)

मातृभूमि हित खेलें फाग !
गा-गा बलिवेदी की राग !!
मातृभूमि हित खेलें फाग !

स्नेह, सुहृदता हो मानस धन !
अन्ध नीड़ से रूढ़ि-रीति छन !!
गावें नवयुग की हम राग !
देश हित करदें सर्वस त्याग !

देश-प्रेम हो हार गले का !
राह कठिन हो मम जीवन का !!
पर 'भँवर' करूं मैं उसको पार !
नवयुग के होवें हम भाग !

शोक-समाचार

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी—ता० ३१ मई सन् १९३६, को सन्ध्या समय ओसवाल समाज का एक चमकता हुआ सितारा अस्त हो गया। हालां कि गत कुछ समय से श्रीमान् पूरणचन्द्रजी नाहर अस्वस्थ रहा करते थे—अस्वस्थ दशा में ही चार वर्ष पहले अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर कलकत्ते से अजमेर की लम्बी यात्रा तै करके उन्होंने सफलता-पूर्वक सम्मेलन का सभापतित्व भी किया था पर, अन्त इतना निकट है यह कल्पना भी नहीं हो सकती थी। श्री० नाहरजी जैन-साहित्य की खोज करनेवाले विद्वानों में अग्रणी थे—इतना नहीं वे एक उच्च-कोटि के कला-प्रेमी और विद्याव्यसनी भी थे। उनका संग्रहालय और पुस्तकालय कलकत्ते में आनेवाले सभी देशी और विदेशी विद्वान् और कला प्रेमियों के लिये एक तीर्थ-स्थान था—और वे स्वयं एक जंगम तीर्थ। उनके चले जाने से समाज की कितनी भारी क्षति हुई है उसका अनुमान इस समय, जब कि अभी तो हमारे सामने बारबार उनकी सजीव मूर्ति का ही चित्र आता है, लगाना मुश्किल है। अभी तो हम इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते कि उनकी आत्मा को शान्ति मिले!

श्री० नाहरजी के वियोग से संतप्त उनके परिवार को इससे अधिक हम और क्या सान्त्वना दे सकते हैं कि उनके दुःख में हम सभी दुःखी हैं!!

—सम्पादक।

पर्दा !

[श्री 'सुमन', ज्ञानभण्डार जोधपुर]

आजकल का युग नवचेतन का युग है। चारों ओर से क्रान्ति की आवाज़ आ रही है। कहीं राजनैतिक क्रान्ति है, तो कहीं आर्थिक; कहीं सामाजिक क्रान्ति है तो कहीं धार्मिक। इस लेख का विषय तो केवल सामाजिक क्रान्ति और उसमें भी पर्दे की प्रथा तक ही सीमित है।

पर्दे का शब्द मुंह पर आते ही, पुराने ज़माने की सभ्यता का दृश्य हमारे सामने आ खड़ा होता है। उस समय का स्वतन्त्र जीवन और आजकल की 'ढांक-ढूंप' देखकर दिल भर आता है। प्रत्येक बात में प्राचीनता की दुहाई देने वाले हमारे भाई ज़रा सीता, द्रौपदी और दमयन्ती आदि के चरित्रों की ओर तो आंख उठा कर देखें! दूर की बात जाने दीजिये संयोगिता का स्वयंवर, शङ्कराचार्य और मन्डन-मिश्र के वाद-विवाद में मंडन-मिश्र की स्त्री का निर्णायक बनना, कालिदास और विद्वत्तमा का वाद-विवाद—यह सब बातें क्या पर्दे के निषेध में कुछ सिद्ध नहीं करती हैं? कौन कह सकता है, कि शत्रुओं के दांत खट्टे करने वाली, पापियों का जोश ठंडा करने वाली द्रौपदी, सीता, दुर्गा, लक्ष्मीबाई, रज़िया और चांद-बीबी पर्दे में पलीं थीं? पर्दे में न रहने वाली शकुन्तला सावित्री, देवयानी और शर्मिष्ठा से कौन हिन्दू परिचित नहीं?

पर खैर, अब देखना यह है कि फिर इस निशाचरी प्रथा का हमारे देश में आगमन कैसे हुआ? वास्तव में, मुसलमानी काल से पहले, अर्थात इस देश में मुसलमानों के आने से पहले, एक आमरिवाज़ के रूप में इस प्रथा का हमारे इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं है, अतः तह तो निर्विवाद है कि मुसलमानों के साथ ही साथ इस प्रथा ने भी हिन्दुस्तान में प्रवेश किया। और दक्षिण में इस प्रथा का न होना हमारी इस धारणा को और भी दृढ़ करता है, क्योंकि दक्षिण में मुसलमानों का दौरदौरा अधिक नहीं रहा।

पर आरम्भ किसी भी तरह क्यों न हुआ हो—और समाज का सारा रूप ही बदल देने वाली ऐसी बड़ी चीज़ का आरम्भ भी अवश्य बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही हुआ होगा—हमें तो उसके वर्त्तमान रूप और उपयोगिता से ही काम है, और वह भी हमारी जाति में जो इसका भयङ्कर रूप प्रचलित है उससे। प्रश्न उठ सकता है कि भारत में अनेक जातियां थीं, फिर ओसवाल जाति ने ही इसको इतना अधिक और ऐसे विकृत रूप में क्यों अपनाया? इसके समाधान में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह जाति प्राचीन काल से ही राज्यप्रबन्ध में भाग लेने के कारण राज्य के सम्पर्क में अधिक आई, इसलिये जब मुसलमानी काल में पर्दे का ज़ोर बढ़ा—और स्वाभाविक तौर से यह राज-घरानों और राज-कर्मचारियों के परिवारों से ही चला तो राज्य के

निकटतम कर्मचारियों के साथ इस प्रथा का घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाना अनिवार्य ही था। यह एक प्रकार से राजकीय सभ्यता का एक अङ्ग बन गया और इस कारण ओसवाल जाति ने भी इसको विशेष रूप से अपना लिया। यों तो उत्तर भारत की सभी जातियों में किसी न किसी रूप में सर्वत्र पर्दे का साम्राज्य है और प्रत्येक जाति में इसका रूप भिन्न-भिन्न पाया जाता है, पर सब ओर दृष्टि डालने पर यही कहना पड़ता है, कि वह रूप जो कि इसने हमारे यहां प्राप्त किया है वह अत्यन्त कष्टकर, हानिकर और खर्चीला है। हमारे यहां तो जबतक पचीस तीस गज़ कपड़ा और दो एक दासियां, जो कि इधर उधर से पर्दे को पकड़े चलती हैं, न हों, तब तक पूरा पर्दा नहीं कहला सकता *। मेरे एक मित्र ने एक बार इस प्रकार के पर्दे की परिभाषा करते हुए कहा था—"यह तो बिना द्वार का वह चलता फिरता तम्बू है जो चारों ओर जीवित मेखों द्वारा पृथ्वी से सटा दिया गया है और जिसे न अपने उखड़ने के स्थान का पता है न गड़ने का!' कैसा सजीव चित्र है हमारी पर्दानशीनी का और हमारी बुद्धिमानी का? पर इस पर भी उसकी पूर्णता तभी है जब कि चलनेवाली के पैर का अंगूठा तक दिखाई न दे। यदि पैर की उंगली भी दीख गई तो बस ग़ज़ब हो गया! पर्दे में चलने वाली रमणी चाहे भले ही सड़कों पर ठोकर खा खा कर गिरती, और चारों ओर से वायुद्वार बन्द होने से पसीने में तर होने के कारण अपनी विवशता और गुलामी पर पश्चाताप करती हो, पर हमारी अक्ल पर पड़ा हुआ पर्दा नहीं हट सकता! हम स्वच्छ वायु में विचरण करने वाले मानसपिंड उन अबलाओं की यम-यातना को क्यों अनुभव करने लगे?

यह प्रथा प्रत्येक दृष्टि से समाज के लिए अहितकारी और हानिकारक है। कौन सी बात है जो पर्दे में नहीं हो सकती? वास्तव में शुद्ध, सात्विक हृदय को तो पर्दे की आवश्यकता ही नहीं। यदि पर्दे की आवश्यकता है तो चोर, उचक्कों तथा बदमाश, बेशरम और इन्द्रिय लोलुप स्त्री पुरुषों को है। बड़ी मजेदार बात तो इसमें यह है कि घर के सगे सम्बन्धियों से तो पर्दा होता है और बाहर वालों से बेपर्दगी! यह बुद्धि का उपहास नहीं तो और क्या है?

बात यहीं तक नहीं है। प्रत्येक प्रान्त की Health Report (स्वास्थ्य सम्बन्धी सरकारी रिपोर्ट) से पता चलता है कि स्त्रियों की दशा उत्तरोत्तर गिरती जा रही है। इसका मूल कारण पर्दा ही है। इसीके कारण स्त्री-जाति की मानसिक और शारीरिक शक्तियों का दिन प्रति दिन ह्रास और पतन हो रहा है। प्रति दिन नये-नये रोग और नई-नई बीमारियां उनमें घर कर रही हैं। हमलोग—पुरुष—सुबह से शाम तक घर से बाहर स्वच्छ वायु और धूप में घूमते और सैर करते हैं, पर उन अबलाओं को यह सब सुलभ कहां? धूप और स्वच्छ जल-वायु ही स्फूर्तिदायक और आरोग्य-वर्धक है, पर उन्हें तो इन्हीं दोनों के लाले हैं। गावों को छोड़ कर नगरों में तो अधिकतर गृहस्थ ऐसे है जिनकी स्त्रियां 'कलकत्ते की कालकोठरी' में ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। तभी तो उन बहिनों के मुंह पीले-पीले और कान्तिहीन दिखाई पड़ते हैं। बहिनों को जाने दीजिये अपने नवयुवकों पर ही ज़रा दृष्टि डालिये। वही रोनी और पिलपिली सूरत के, नारंगी

* पर्दे का यह स्वरूप जोधपुर, अजमेर आदि स्थानों में अधिक प्रचलित है। —सम्पादक।

के रंग को मात करनेवाले, पाव सेर हड्डी के, आंखों पर चश्मा लगाये अपने आप अपनी खिल्ली उड़ाते हुए दिखाई देंगे। पर इनका क्या क़सूर ? सिंह तो सिंहनी से ही पैदा हो सकता है, और किसी से नहीं। "मां पर पूत पिता पर घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा" वाली कहावत तो जगत प्रसिद्ध है। और रोगी सन्तान जाति और देश दोनों के लिये हानिकारक है। रोगी न जाति की सेवा कर सकता है न देश की। हां देश में रोग की वृद्धि करने में खूब सहयोग दे सकता है ?

अब सोचिये कि जिसकी शारीरिक स्थिति ही ठीक नहीं उसकी मानसिक शक्ति क्या खाक काम देगी ? मन तभी दृढ़ता से कार्य करता है, जब शरीर का प्रत्येक अङ्ग स्वच्छ, शुद्ध और स्वस्थ हो। शरीर में ज़रासा भी विकार उत्पन्न होने से मन चिन्तित और उद्वेलित हो उठता है। इसलिये मानसिक शक्ति को ठीक रखने के लिये शारीरिक शक्ति को बनाये रखना बहुत ज़रूरी है। पर, इस पर्दे से दोनों एक साथ ही स्वाहा हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त शिक्षा-अभाव, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह और वृद्ध-विवाह भी इसी पर्दे की बरकतें हैं। कल्पना कीजिये, एक पांच वर्ष की कन्या प्रति दिन पाठशाला जाती है, कन्या एक निर्धन ओसवाल की है। दस वर्ष की होते हो कन्या के पिता को प्राचीन प्रथा के अनुसार, 'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी' के नियम से, उसके विवाह आदि की चिन्ता हो जाती है ऐसी दशा में उसकी शिक्षा किस प्रकार सम्भव है ? ज्यों ज्यों कन्या युवावस्था को प्राप्त होती जाती है त्यों त्यों बाप को उसके पर्दे के लिये सेविकाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, पर धन इतना है नहीं। बस उसको एकदम पढ़ने से रोक लिया जाता है। यह अधूरी शिक्षा उसे दोनों ओर से खो देती है। न तो वह अपने प्रति अपना उत्तरदायित्व समझती है न दूसरों के प्रति। ऐसी ही बहिनें दूषित साहित्य को पढ़ कर सत्यपथ से भ्रष्ट होती देखी गई हैं। यदि उन्हें पूर्ण शिक्षा मिली होती, तो वह हमारे देश की अन्य वीर नारियों की तरह अपनी माँ का मुंह उज्ज्वल करती हुई दिखाई देतीं और पर्दे की इन कष्टकर बेड़ियों को कभी की तोड़ डालतीं।

पर्दे की प्रथा को अपनाने का कोई भी कारण क्यों न रहा हो— आज तो यह प्रथा सर्वथा निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी है। यों तो हम किसी भी परिस्थिति में पर्दे को उचित नहीं समझते—यदि रक्षा के निमित्त ही इसको अपनाया गया हो तो भी यह हमारी कायरता का ही सूचक है- पर खैर, इस बात पर बहस न करके हम तो इतना ही कहना चाहते हैं कि आज तो यह प्रथा समाज के लिये घातक हो गई है। व्यावहारिकता की दृष्टि से देखें तो भी प्रत्येक काम देश काल के अनुसार हो शोभा देता है। कल हमें पर्दे की आवश्यकता हुई होगी—आज तो नहीं है ! इस नियम से भी इसका बहिष्कार आवश्यक है।

महानुभावो ! अब स्त्री-समाज कब तक आपका यह अत्याचार सहन करता रहेगा ? संसार भर में जाग्रति हो रही है पर आप कबतक अन्धकार में भटकते फिरेंगे ? उचित तो यह है कि आप समय रहते चेत जायँ और अपनी इस कलंक-कालिमा को उदारता और सहृदयता के पानी से धो डालें। और नवयुवको ! और बहिनो ! ऐ उच्चता की उत्ताल तरङ्गों में तरंगित होनेवाले कर्णधारो ! तोड़ डालो इन रूढ़ियों को। कुचल डालो इन बन्धनों को। नाश कर दो इस विनाशकारी अन्धे गुरुडम का। मातृ ऋण से मुक्त हो जाओ। परन्तु ध्यान रहे, यह व्रत साधारण नहीं है। क्षुद्रवृत्तिवाले दुर्बुद्धि और दुराग्रही मनुष्य आप पर हंसेंगे, ताने कसेंगे, आपकी निन्दा करेंगे, आपका उपहास करेंगे, पर आप इन सबको सहन करते हुए अपने सिद्धान्त पर अटल रहेंगे, और चुपचाप बढ़े चलेंगे तो अन्त में विजय आपकी ही है।

सुन्दरता या अभिशाप

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत बी० कॉम०,]

—"जा भूल मुझे अब तू उदार"

सदा की तरह आज भी हम दोनों खा पी कर घूमने निकले। लेकिन शरद बड़ा अन्यमनस्क हो रहा था। मैंने उससे कई प्रश्न पूछे, लेकिन वह मेरी ओर केवल शून्य दृष्टि से ताकता रह गया। मैंने उससे उसकी इस अन्यमनस्कता का कारण पूछा। लेकिन मेरा आश्चर्य उस समय और भी बढ़ गया, जब वह मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बजाय धीरे-धीरे मनोयोग से गुनगुनाने लगा,

"जा भूल मुझे अब तू उदार"

मुझ से न रहा गया। चपत जमा कर बोला,—

"मुझ से भी कहोगे या अपनी ही धुन में मस्त रहोगे।"

चपत लगने से उसके होश हवास ठिकाने आये। वह बोला,—

"दिलीप, कुछ न पूछो। बहुत पुरानी बात याद आ रही है। जब कभी मुझे उसकी याद आ जाती है, अन्य-मनस्क हो जाता हूं। उसके पवित्र प्रेम और निःस्वार्थ व्यवहार की याद कर हृदय आंसू ढालने लगता है। हाय, भावुकता ने उसका नाश कर डाला।"

मैं आश्चर्य चकित होकर बोला, "तुम किसकी बात कह रहे हो शरद? मैंने तो आजतक तुमसे इस विषय में कभी कुछ न सुना।"

शरद ने एक निश्वास छोड़ कर उत्तर दिया,

"भाई उसकी एकान्त इच्छा थी कि मैं उसकी कहानी संसार के सामने न रक्खूं। किन्तु बिना किसी से कहे मेरे हृदय पर जैसे एक बोझ सा पड़ा हुआ है। तुमसे बढ़ कर एक दुःखी और भावुक हृदय की भावनाओं की महत्ता समझने वाला मुझे और कहां मिलेगा? चलो कम्पनी बागान की बेंच पर बैठकर आज मैं अपने हृदय को कुछ हल्का कर लूं। तुम्हें आज अपने स्मृति-पटल पर अङ्कित उस दर्द भरी कहानी को सुना कर अपने उस मित्र के प्रति शायद अन्याय तो करूंगा?"

इस समय संध्या के ७ बजे थे। एक निर्जन स्थान ढूंढ़ कर हम दोनों वहीं बैठ गये। कुछ सुस्ताने के बाद एक लम्बी सांस खींच कर शरद कहने लगा,—

"दिलीप, तेरी ही तरह वह भी मेरा एक अनन्य मित्र था। उसकी मित्रता बड़ी पवित्र, निःस्वार्थ और आदर्श थी।"

मैंने बीच ही में टोक कर पूछा, "किन्तु वह कौन?"

शरद बोला, "सब कह रहा हूं। जल्दी न करो। इतने दिनों तक जिस रहस्य को हृदय में कृपण के धन की तरह छिपाये रहा, आज उसे एकाएक प्रकट करते समय कितनी वेदना, कितनी भावों की उथल पुथल हो रही है, इसका अनु-मान तुम नहीं कर सकते। हां, तो वह मेरा अनन्य मित्र था। वह और मैं कलकत्ते में कई वर्षों तक साथ रहे। लेकिन उसने किसी दिन भी अतीत की चर्चा न छेड़ी, और न मैंने ही इसकी कोई आवश्यकता समझी। एक बार मैं छुट्टी में घर जा रहा था। रेल में ही उससे भेंट हुई। यही साधारण भेंट अनन्य मित्रता में परिणत हो गई। न मैं ही यह जानता था कि वह कौन है और न वह ही यह जानना चाहता था कि मैं कौन हूं। उसका नाम गिरीश

था। शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुडौल एवं भव्य था। वह सदा नियमित रूप से व्यायाम किया करता। दूसरों के दुःख से वह अति दुखित होता और उनकी सहायता कर वह परम प्रसन्न होता। बड़े आदमियों के सामने जाने में वह झेंपता था। दुखियों, दीन कृषकों, बेचारे मज़दूरों और पीड़ितों के सहवास में ही उसे सच्चा सुख प्राप्त होता था। मुझ में उसकी बड़े भाई के समान श्रद्धा थी। वह सदा मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता रखता और मुझे सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा किया करता। लेकिन मैं उस हीरे के मूल्य को न कूंत सका। उसका महत्त्व पहचानने के पहले ही मैंने उसे खो दिया। एक दिन सबेरे उठ कर देखा बिस्तर खाली था। मैंने समझा कहीं इधर उधर गया होगा। किन्तु बहुत देर हो जाने पर भी जब वह न आया, तब मैं चिन्तातुर हो उठा। बाहर उसे ढूंढ़ने जाने का विचार किया ही था कि मेरी नज़र उसके सिरहाने पड़े एक पुर्जे की ओर गई। मैंने लपक कर उसे उठा लिया। उसमें केवल यही लिखा था,—

"जा भूल मुझे अब तू उदार"

दिलीप, यह पढ़ कर मेरे हृदय की जो दशा हुई, वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। मैं कितनी ही बार उसकी याद में रोया। उसकी निष्ठुरता पर क्रोध भी आता किन्तु उससे क्या होता?"

(२)

शरद कहता गया,

"इस घटना को एक एक कर पांच वर्ष बीत गये। मानव स्वभाव के अनुसार समय के प्रवाह के साथ साथ मैं भी धीरे धीरे उसे भूलने लगा।

मेरी मां बहुत बीमार थी। तार पाकर मैं घर गया। कई दिन बाद मां की दशा कुछ कुछ सुधरी। लेकिन कई रातें अनिद्रितावस्था में काटने के कारण और अत्यधिक परिश्रम करने के कारण मैं बीमार पड़ गया। डाक्टर ने प्रति दिन सुबह शाम वायु सेवन को जाना बहुत आवश्यक बतलाया। मैं तीन-तीन चार-चार मील तक घूम आता।

उस दिन श्रावणी पूर्णिमा थी। सबेरे से ही बादल घिर आये थे। बूंदाबूंदी भी होने लगी। मैं इन सब की परवाह न कर उस दिन शाम को कुछ जल्दी ही घूमने चल दिया। कोई दो मील गया होऊंगा कि मूसलाधार वृष्टि होने लगी। मैंने आश्रय की खोज में इधर उधर देखा, किन्तु कोई भी जगह दिखाई न पड़ी, जहां कुछ आश्रय ले सकता। हां, कोई दो फर्लाङ्ग पर एक छोटी सी कुटिया थी। मैं आश्रय की आशा में उसी ओर दौड़ा। फूस से छाई हुई कुटिया थी। उसके द्वार पर एक बोर्ड पर सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था,—

"जा भूल मुझे अब तू उदार"

मेरे मन में हुआ कि मैंने यह कहीं पढ़ा है। लेकिन मूसलाधार वृष्टि से बौखलाता हुआ मैं उस समय याद न कर सका कि मैंने यह कहां पढ़ा था। मैंने धीरे से द्वार खटखटाया। "कौन है रे" कहते हुए एक अधेड़ किन्तु भयावह और विकृत सूरत के आदमी ने द्वार खोल दिया। मैं उसकी सूरत देख कर कुछ सहम सा गया और मन में कुछ ग्लानि भी हुई। उसने कहा,

'भीतर चले आओ भाई। मेरी सूरत देख कर घृणा करते हो? लेकिन सभी तो सुन्दर नहीं होते। फिर मैं तो सुन्दरता को अभिशाप समझता हूं।'

मैं कुछ लज्जित होता हुआ उसके साथ भीतर चला गया। वहां एक छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा था। दीपक की धुंधली रोशनी में मुझे कुछ देर तक गौर से देख कर वह व्यक्ति चिल्ला उठा—

'शरद! तुम यहां कहां?'

मैं चकित होकर उसका मुंह देखने लगा। किन्तु

कुछ निश्चय न कर सका कि उसे कहां और कब देखा था। मुझे दुबिधा में पड़ा देख कर वह फिर बोला,

'मुझे न पहचान सके शरद ? मैं हूं तुम्हारा प्यारा गिरीश !'

मैंने अवाक् होकर उसकी ओर गौर से देखा। वह मेरे दोनों हाथ पकड़ कर फिर बोला,

'शरद, तुमने मुझे भुला दिया, इसके लिये मैं तुम्हारा आभारी हूं। लेकिन मैं लाख चेष्टा करने पर भी तुम्हें न भूल सका। हा, तुम आज फिर सब स्मृतियों को नवीन रूप देने के लिये क्यों चले आये ?'

अब मेरे धैर्य का बांध टूट गया। मैं रोता हुआ बोला, 'गिरीश, मेरे प्यारे, तुम्हारी यह क्या दशा है ? तुम सारे संसार को तिलाञ्जली देकर इस निर्जन स्थान में क्यों पड़े हुए हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने इतनी निष्ठुरता पूर्वक मुझे छोड़ दिया ? हाय, तुम्हारे शरीर की क्या हाल्त हो गई ? तुम्हारी सुन्दर सूरत की यह क्या दशा है ?'

गिरीश बोला, 'बड़ी लम्बी कहानी है, शरद। लेकिन मैं किसी से नहीं कहना चाहता। अपने दुःखों के लिये मुझे किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं। यदि कोई सहानुभूति प्रदर्शित करता है तो मुझे अत्यन्त बुरा लगता है। मुझे इस संसार से घृणा सी हो गई है। इसी तरह अपनों से दूर रहने में मुझे सन्तोष है।'

मैं आंसू पोंछ कर बोला, 'लेकिन गिरीश, तुम अनुमान कर सकते हो कि इस समय मेरे दिल की क्या हाल्त हो रही होगी ? तुम्हें इस दशा में देख कर मुझ पर क्या बीत रही होगी ? तुम्हारी दर्दभरी कहानी सुन कर तुम्हारे कष्टों को अपने हृदय में छिपाने को मैं कितना उत्सुक हो रहा हूं, इसको तुम नहीं जान सकते। मेरे प्रति अन्याय न करो गिरीश। मुझे सब कुछ बतलाना ही होगा।'

गिरीश लम्बी सांस खींच कर बोला, 'शरद, यदि तुम हठ करोगे तो मुझे सब कुछ कहना ही होगा। मैं सदा से तुम पर बड़े भाईकी तरह श्रद्धा करता आया हूं। किन्तु मेरी इच्छा इस कहानी को संसार के सामने रखने की नहीं है। तुमसे मेरी एकान्त प्रार्थना है कि इस रहस्य का उद्‌घाटन संसार के किसी भी प्राणी के सामने न करना। अपने अन्तर में कृपण के धन की तरह इसे छिपाये रखना। एक बात और है। तुम सहानुभूति दिखाने की चेष्टा मत करना, और अबसे आगे कभी मुझसे मिलने का प्रयत्न भी मत करना। अच्छा, तुम अभी गीले कपड़े उतार डालो। बदन पोंछ कर निश्चिन्त होकर बैठो तो मैं सुनाऊं'।

(३)

शरद कहता ही गया,

"एक दर्दभरी 'आह' छोड़ कर गिरीश ने कहना आरम्भ किया—

'उससे परिचय हुये केवल दो वर्ष व्यतीत हुये थे। लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि उसका और मेरा जन्मान्तरों का साथ रहा है। अपने जीवन में कभी कभी हम किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं, जिसे हम अपना पूर्व परिचित सा पाते हैं, चाहे पहले हमने उस व्यक्ति को कहीं और कभी न देखा हो। जब मैंने उसे देखा, चौंक उठा। ठीक उसी तरह जिस तरह कोई अपना वह खोया हुआ धन पाकर चौंक उठे, जिसके पाने की उसने बिल्कुल आशा छोड़ दी हो। मेरा उसके साथ जो आन्तरिक सम्बन्ध था, उसे मैं "अभिन्न-हृदय" कह कर शायद व्यक्त कर सकता हूं। लेकिन उसे मैं कहता था 'बहिन" और वह मुझे 'दादाभाई' कहती थी। उसका नाम कमला था।

असहयोग आन्दोलन में पड़ कर मैं जेल गया था। जेल से छूट कर आने के बाद ही उसका और मेरा परिचय हुआ। वह भी दो तीन बार जेल हो आई थी। उसका विवाह हो चुका था। कुछ दिन ससुराल रह कर वह लौट आयी

थी। उसके पिता और मेरे पिता एक ही जाति के थे। मैं तो जाति बन्धन को मानता नहीं।

आज ही का दिन था शरद। ठीक आज ही की तरह उस दिन भी बहनें राखियाँ लिये बड़ी उत्सुकता से भाइयों के समागम की प्रतीक्षा कर रही थीं। मैं संयोग ही से कमला के घर गया था। उसी दिन उसे देखा और अच्छी तरह देखा। शिष्टाचार के नाते उसने मेरे भी राखी बांधी। किन्तु उस सरला को क्या पता कि कितना बड़ा उत्तरदायित्व उसने मुझ पर लाद दिया था। यह मेरा सिद्धान्त है शरद, कि मैं स्त्री जाति का अत्यधिक आदर करते हुए भी सब किसी को मां और बहन नहीं कह सकता। मैं उसी को मां कहता हूं, जिसकी गोद में आकर मेरा हृदय शिशुत्व का बोध करे। मैं उसी को बहन कह सकता हूं भाई, जिसके साथ रह कर मुझे अपने हृदय में एक ही मां के दूध सा कुछ खलबल होता हुआ प्रतीत हो। 'मां', 'बहन' कहते हुये मुझे बहुत बड़े उत्तरदायित्व का बोध होता है। मैं जिसे मां कहता हूं उसका पुत्र ही हूं और जिसे बहन कहता हूं, उसका वफ़ादार भाई हो। उनके पसीने की जगह अपना खून बहाना फिर मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। यही उत्तरदायित्व का बोध था कि राखी बँधवाते समय मेरा हृदय सिहर उठा। मेरा हाथ कुछ कांपने लगा। कमला ने हाथ कांपते हुए देख कर मेरी ओर आंख उठा कर देखा। मेरी आंखों ही में मानो उसने सब कुछ पढ़ लिया। मेरे सिर पर रोली अक्षत लगा कर उसने प्रणाम किया और धीरे से बोली,

"दादाभाई, जिम्मेदारी को निबाहते जाना।"

मैंने उसे आशीष दी और दिये उत्तरदायित्व के ज़मानत स्वरूप दो बूंद आंसू।

मेरे कोई अपनी बहन नहीं थी। कभी कभी यह अभाव मुझे बहुत खलता। "भैया दूज" के दिन मैं सोचा करता कि यदि मेरे बहन होती तो मैं बहुत कुछ देता। उस दिन राखी बंधवा कर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मेरी सहोदरा बहुत दिनों बाद कहीं से लौट आई है। अपना बहुत दिनों का मधुर स्वप्न सफल हुआ देख कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ। इस दुर्लभ धन को हृदय में बन्द कर रखने की प्रबल उत्कण्ठा हुई। लेकिन अफ़सोस, वह दूसरे ही दिन अपने श्वसुर की बीमारी का तार पाकर रवाना हो गई।

मैंने पत्र दिया। उसका उत्तर मिला। मैंने देखा कि उसके अक्षर अक्षर में निराशा की छाप थी। मेरा हृदय रो उठा। मैंने कई पत्र दिये और उसके कई उत्तर आये। पर अन्तर इतना ही था कि मेरे पत्रों में धैर्य था, आश्वासन था, उसके पत्रों में निराशा थी, कम्पन था!

मैं लिखता, "कमले, मेरी लाड़ली बहन, मनुष्य वही है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी दृढ़ता और धैर्य से काम ले।"

वह लिखती, "दादाभाई, सहनशीलता की भी हद होती है"।

(४)

शरद थोड़ा रुक कर फिर कहने लगा,—

"गिरीश ने कहना जारी रखा,

'मेरे पिता—सुनते हो शरद—वृद्ध समाज में अग्रगण्य थे। हमारी सुधार प्रियता पर वे बड़े बिगड़ा करते। कहा करते कि ज़माने और जवानी का जोश तुम्हारी तरह सबों को होता है, पर उसमें पड़कर रास्ता न बहकने वाले ही सच्चे मनुष्य हैं। मेरे लाख मना करने पर भी मेरा विवाह निश्चित हो गया। मैंने पत्र द्वारा कमला को विवाह में आने के लिये आग्रह किया। उसने लिख भेजा, "दादाभाई, परवश हूं। यदि आज्ञा मिली तो आऊंगी।" इधर पिताजी ने सुन कर मुझे धमकाया,

"वैसी बेपर्द औरत को यहां बुलाया तो तुम्हारी खैर नहीं है।"

मैं मन मसोस कर रह गया।

मेरा विवाह हो गया। लेकिन मेरी अर्द्धाङ्गिनी से मेरी कभी पटरी न बैठी। वह बड़ी भावुक किन्तु साथ ही बड़ी ईर्ष्यालु थी। मुझे कमला को लम्बे लम्बे पत्र लिखते देख कर वह उदास हो जाती। कमला का एक चित्र ठीक मेरी मेज़ के सामने लटका करता था। कभी कभी मैं उसे देख कर कुछ सोचा करता। मेरी सहधर्मिणी इस चित्र की ओर ईर्ष्यापूर्ण नेत्रों से देखती। मैं उसे समझाता,

"प्रिये, यह मेरी कमला का चित्र है। यह मेरी बहन है।"

इस प्रकार की बातों से उसकी ईर्ष्या शान्त होती थी या बढ़ती थी, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन मेरे समझाने पर वह कहती,

"यह इतनी सुन्दर तो नहीं है।"

मैं और समझाता, "मन सदा सुन्दरता नहीं ढूंढा करता प्रिये। सुन्दरता तो अनित्य है। आन्तरिक सुन्दरता कुछ और ही है। उसे समझने की चेष्टा करो।"

धीरे धीरे करके मेरा विवाह हुए दो वर्ष बीत गये। लेकिन किसी दिन मैंने अपनी पत्नी को हँसते न देखा। न जाने उसे ऐसा क्या दुःख था? मेरी थोड़ी सी बात पर वह जल जाती। सदा मेरी बातों के उल्टे उल्टे अर्थ लगाती। तुम्हीं बताओ शरद, आखिर मैं कबतक सहनशील बना रहता? हमेशा ही चख चख चलने लगी। छोटी छोटी बातों पर मरने की इच्छा प्रकट की जाती। एक दिन न जाने किस बात पर झगड़ा हो गया। मेरी पत्नी चिल्ला कर बोल उठी,

"हे भगवन्! अब तो उठाले, नहीं सहा जाता।"

मैंने भी आवेश में आकर कह दिया,—

"तुम किसी तरह मर भी जातीं"।

दूसरे दिन सबेरे उठ कर देखा कि वह कमरे में न थी। उसके बिछौने पर एक पत्र पड़ा था। मैंने उठा कर पढ़ा। पत्र में लिखा थाः—

नाथ,

देखती हूं कि मेरी आप के साथ नहीं पट सकती। मैं स्पष्ट समझती हू कि आपकी इस अप्रसन्नता का मूल कारण मेरी कुरूपता ही है। पर इस बीमारी का इस जीवन में कोई इलाज नहीं है। इसलिये मेरे मरने में ही आपकी भलाई है, जैसा आपके कल के उद्‌गारों से भी प्रकट होता है। अतः मैं मां जाह्नवी की शरण जाती हूं। भगवान् आपका भला करे।

आपकी दासी

कहना व्यर्थ है शरद, कि हज़ार दौड़ धूप करने पर उस बिचारी की लाश पाई गई।

मैं न समझ सका कि यह सुन्दरता-सुन्दरता है या अभिशाप!"

(५)

शरद कहता ही रहा,

"गिरीश एक लम्बी सांस लेकर फिर बोला,—

'शरद, एकाएक मुझे मालूम हुआ कि मेरी कमला अपने पीहर आ रही है। यह जान कर तो मेरी प्रसन्नता का पारा और भी चढ़ गया कि मेरी भोली भाली बहन अब शीघ्र ही मातृत्व के पद को ग्रहण करेगी। क्षण भर में मेरे मन में कितने ही मीठे स्वप्न आये और गुज़र गये।

मैं भी उसे स्टेशन पर लेने गया। उसने मुझे प्रणाम किया। मैं स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे दृढ़ आलिंगन पाश में बांधने को आगे बढ़ा। पर हाय रे संकुचित शिष्टाचार! आस पास कितने ही व्यक्ति खड़े हों और मैं एक नवयुवती

विवाहिता को हृदय से लगालूं ! लाख वह मेरी बहन थी, किन्तु संसार की दृष्टि में तो मैं पराया ही था। उसने मेरी ओर देखा और मैंने उसकी ओर। मेरे नेत्रों में मिलन का उल्लास उछला पड़ता था, लेकिन उसके नेत्रों में घोर निराशा का साम्राज्य था।

कितनी बार उसने और मैंने अकेले बैठे नाना विषयों पर घंटों बातें की थी। पर हमारे मन सदा सशङ्कित रहते कि कोई क्या समझे। तुम जानते हो शरद, अपना समाज कैसा है ? किसी भी स्त्री का कोई पुरुष मित्र हो और फिर अभिन्न—तो उसको समाज क्या कहेगा ? और यदि औसत पति भी कदाचित मनुष्य सुलभ ईर्ष्या का भोग बन जाय और अपने तथा पत्नी के जीवन को दुःखमय बनादे तो क्या आश्चर्य है। किन्तु जो हृदय निःसीम प्रेम का, सच्चे वात्सल्य का भंडार हो, उसको रोकना भी तो कठिन है। हां, तो खुली छत पर धवल ज्योत्सना में हम लेटे हुए बातें करते पर ज़रा भी खटका होने पर वह चौंक कर उठ बैठती। मैं एक दिन पूछ बैठा,

"तुम्हें इतनी शंका किस बात की रहती है बहन ?" वह बोली, "दादाभाई, तुम भोले हो। हृदय का वास्तविक रूप कोई समझता नहीं। संसार हंसता है। देखते नहीं चारों ओर कितने सभ्य कहलाने वाले निवास करते हैं।"

मैं बोला, "लेकिन बहन, जिसका हृदय सच्चा है, उसे संसार के हंसने का क्या डर ?"

वह बोली, "भाई, हमकों समाज में रहना है। अतः उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।"

मैं चुप हो गया। लेकिन आखिर हुआ वही जिसके होने का भय था। चारों तरफ़ मेरे चरित्र पर सन्देह किया जाने लगा। शरद, कहते छाती फटती है भाई, कि उसी स्नेहशील मेरी प्यारी बहन कमला के साथ मेरा अनुचित सम्बन्ध होने की धारणा लोगों के मन में घर कर रही थी। मुझे इस संसार से, इस संकुचित समाज से उसी समय से घृणा हो गई।

थोड़े दिनों बाद अपने पति से तार पाकर कमला चली गई। हां, यह कहना तो भूल ही गया कि कमला के एक सुन्दर सा लड़का हुआ और उसका नाम विनय रक्खा गया।

मैंने कमला से कई बार पूछा था कि वह इतनी निराश और इतनी चिन्तित क्यों रहती है। लेकिन उससे केवल यही उत्तर मिला कि कितनी ही दुःखपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों के रहने से और असहयोगपूर्ण दाम्पत्यजीवन के कारण ही वैसा होता है, लेकिन उन सब की दुःखपूर्ण बातें कर वह हमारे पवित्र मिलन के थोड़े और सुन्दर समय को नष्ट करना नहीं चाहती। मैंने भी यह सोच कर इस विषय में उससे अधिक पूछताछ करना उचित न समझा कि शायद इससे उसे कष्ट हो।

इस बार कमला के जाते ही मैंने भी वह स्थान और समाज छोड़ देने का इरादा कर लिया, जहां के निवासी इतने संकीर्ण विचारों वाले, शक्की और नीच हों। ट्रेन में मैंने तुम्हें पाया शरद। तुम्हीं एक ऐसे व्यक्ति थे, जिसे मैंने विशाल हृदय वाला और सच्चे प्यार का घर पाया। वही प्यार आज मुझ से अपनी इस दर्दभरी कहानी को भी कहला रहा है, जिसे मैंने कभी अन्तर से बाहर न निकालने की प्रतिज्ञा की थी।

जितने दिन तुम्हारे साथ रहा, उतने दिन कमला के पत्र आते जाते रहे। जिस रात को मैंने तुम्हें छोड़ा, उसके एक दिन पहले मुझे कमला का वह पत्र मिला, जिसने मेरे उस दर्दभरे और अशान्त जीवन में यह सुखद और शान्तिमय परिवर्तन कर दिया।'

'ज़रा ठहरो शरद' यह कह कर गिरीश उठा और कुटिया के एक कोने में पड़ी हुई एक हंडिया में से एक जीर्ण शीर्ण पत्र निकाल कर लाया और मुझे पढ़ कर सुनाया। पत्र अधिक

लंबा नहीं था। मेरे हृदय पर उस पत्र का इतना प्रभाव पड़ा दिलीप, कि आज भी मुझे वह ज्यों का त्यों याद है। पत्र इस आशय का थाः—

मेरे दादाभाई,

तुम्हें आज यह अन्तिम पत्र लिखते कितना कष्ट हो रहा है, इसे मैं ही अनुभव कर रही हूं। तुमने मुझ से अनेक बार पूछा कि मेरी उस स्थायी निराशा का क्या कारण था। लेकिन प्यारे भाई, मैंने सत्य को छिपाने का सदा प्रयत्न किया और बातें बना कर तुम्हारे साथ विश्वासघात किया। किन्तु अब जब जा रही हूं तो क्यों इस पाप का बोझ अपने हृदय पर लादे जाऊं ? भाई, जबसे मेरा विवाह हुआ स्वामी के साथ मेरी पटरी न बैठी। इसके कारण थे, कुछ तो पिता के घरके स्वतन्त्र वातावरण में पली हुई होने से मेरी स्वतन्त्र प्रवृत्ति और कुछ पतिदेव के संकीर्ण और ईर्ष्यापूर्ण भाव। रात दिन छोटी छोटी बातों पर चखचख चलने लगी। अब उस चखचख ने दूसरा ही रूप धारण कर लिया है। मेरे पतिदेव, मेरे आराध्यदेव, का संदेह है कि उनकी कुरूपता के कारण मुझ सौन्दर्य-लोलुप रमणी का अपने प्राणप्यारे भाई गिरीश के साथ अनुचित सम्बन्ध है। भाई, संसार में और मुख्य कर इस हमारे संकीर्ण समाज में स्त्री के लिये उसकी चरित्र-रक्षा ही सर्वस्व है। समाज की बात छोड़ दो, जब पतिदेव ही पत्नी के चरित्र पर सदेह करने लगें, तो उस स्त्री के अस्तित्व का कोई मूल्य नहीं। गिरीश, मेरे प्राणप्रिय वीर, अब मैं अपना जीना व्यर्थ समझ कर इस संसार से प्रयाण कर रही हूं। यदि सम्भव हो तो कभी कभी विनय की खोज लेते रहना। अधिक क्या लिखूं ? यही प्रार्थना है कि —"जा भूल मुझे अब तू उदार।"

तुम्हारी अभागिनी कमला।'

दिलीप, यह पत्र सुन कर मेरे आंसू बह चले। गिरीश की पत्नी और कमला के पति के अपूर्व साहस्य पर मैं तो अवाक् रह गया। हम लोगों की संकीर्ण मनोवृत्ति और वर-वधू चुनने की अविचारपूर्ण पद्धति पर मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ। सबसे अधिक दुःख तो मुझे हमारे समाज की अधिकारहीन स्त्रियों की दशा पर हुआ। चाहे दोष पति का हो या पत्नी का, दोनों ही अवस्थाओं में पराजय पत्नी की ही होती है।

गिरीश बोला, 'शरद, यही पत्र पाकर मैं कमला से मिलने दौड़ पड़ा और कमला के पत्र में लिखी हुई अन्तिम पंक्ति को लिख कर मैं तुम्हारे यहां छोड़ गया। तीसरे दिन मैं सूरत पहुंचा तो क्या देखा ? हृदय थाम कर सुनो शरद, मैंने देखा कि मेरी प्राणप्यारी बहन कमला की लाश अर्थी पर जा रही थी। मैं चुपचाप उस अभागिनी के अन्तिम दर्शन कर लौट आया।

मुझे 'सुन्दरता' से ही घृणा हो गई। मुझे विश्वास हो गया कि हमारे देश में और हमारी संस्कृति में यह निरा अभिशाप है। कमला के पति को अगर मेरी सुन्दरता पर ईर्ष्या हुई तो उसे मेरी सुन्दरता से बदला लेना चाहिये था। हाय, मेरे ही कारण दो प्राणियों ने, एक मेरी स्त्री और दूसरी मेरी बहन ने, आत्महत्या की ! हा ! भगवान् इसका प्रायश्चित्त क्या होगा ?

हां तो शरद, मुझे 'सुन्दरता' से इतनी घृणा हुई कि मैंने तेजाब डाल कर अपना चेहरा विकृत कर डाला और संसार से इतनी घृणा हुई कि बस.......।'

इतना कह कर गिरीश चुप हो गया। मैंने बाहर झांक कर देखा कि पानी बन्द हो चुका था और बादलों का कहीं नाम निशान भी न था। आकाश में तारिकाओं के साथ चन्द्र क्रीड़ा कर रहा था।

मैंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर पूछा, 'तो गिरीश, अब तुम क्या.......।'

बात काट कर गिरीश बोल उठा, 'ठहरो, शरद, बस करो। न मुझे सहानुभूति की आवश्यकता है और न किसी

की मदद और परामर्श की। मैं जैसे हूं, उसी अवस्था में मुझे छोड़ दो।'

दिलीप, मैंने नज़र उठा कर गिरीश के विकृत चेहरे की ओर देखा और फिर कुटिया में चारों ओर नज़र दौड़ाई। इसके बाद सहानुभूति या दुःख प्रकाश करने में स्वयं मुझे एक बहुत बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ। मेरी दृष्टि झुक गई और ज़बान अपने आप बन्द हो गई।

गिरीश कुटिया का द्वार खोलता हुआ बोला,

'जाओ! लेकिन शरद, पापी और संकीर्ण समाज के सामने इन पवित्रात्माओं की पवित्रता को सिद्ध करने की व्यर्थ चेष्टा न करना।'

दिलीप, मैं बिना कुछ बोले बाहर चला आया। मैंने देखा बहुत रात हो गई थी।"

इतना कह कर शरद चुप हो गया। मैंने उसे हिला कर कहा, "घर चलो, बहुत रात हो गई है।"

शरद रास्ते भर गुनगुनाता ही गया—

"जा भूल मुझे अब तू उदार।"

'तुम्हारे प्रति'

[श्री भँवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न]

जब मेरी स्मृतियों के दीपक रच रच, जल जल स्वयं प्रकाशित होते हैं—जब उनका प्रकाश भर भर, चमक चमक कर आत्मा के उस पथ पर गिरता है, जिस पर से चल-चल कर वह इस ओर मुड़ी, जिसमें से उठ-उठ कर वह इन स्वप्नों में पहुंची, जिसमें रंग-रंग कर वह इस चित्रव्योम में उड़ती—तो एक ज्योति दिखती, एक गायन होता और एक सपना उठता जिसके रचने-रचने ही में वह चित्रित-सी हो जाती।

हे उस पथ के चित्रकार! मुझे तेरी उस तूलिका की पूजा करने दे।

जो कसक-कसक-सी जाती वेदना, वह अब झन-झन करती। जो उठ-उठ कर गिरती कामना—वह अब भर-भर कर रचती साधना। जीवन भरता, जीवन उठता, जीवन रंगता जीवन की कामना! इसी जीवन को ले ले मैं तुम्हारे स्नेह-व्योम में बादल बन-बन उड़ता—अपने पतझड़ में पत्र बन कर गिरता—किन्तु तुम्हारे वसन्त में कोंपल बन आता। अपने जीवन-उपवन के इन छोटे पुष्पों से कैसे तुम्हारी चित्र-सामग्री सजाऊँ?—

हे मेरे सच्चे चित्रकार, रँग दे मुझको नवरंग से—रँग ले मुझ से अपनी करुणा को!

राजस्थान

(रचयिता—श्री 'सागर')

वीरभूमि तू, कर्मभूमि तू, धर्मभूमि तू परम महान्।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू, राजस्थान ॥१॥

सुन सुन जिसके यश निनाद को अरि निशदिन होते थे म्लान।
तोप तीर तलवारों में ही जिसके जीवन की थी तान॥
विजयप्राप्ति या मरमिटना बस एक यही थी जिसकी आन।
जीवन से भी जिसे अधिक प्रिय इच्छित था रखना निज मान॥
रोम रोम था जिसका करता शुचिस्वतन्त्रता का आह्वान।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥ २ ॥

मीरा की वह प्रेम भक्ति भी जिसके गीतों की मृदु तान।
क्या न प्रसारित हुई यहीं थी मिले न उसको थे भगवान्?
ओस-विभूषण 'भामाशा' का राष्ट्रहितैषी वह शुभदान।
मिला यहीं था, मिले न जिसका ढूंढे भी दृष्टांत समान॥
भूमण्डल की गौरवगरिमा के हो प्रतीक प्रिय राजस्थान।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥ ३ ॥

हो उत्पन्न अङ्क में तेरे खेल खेल अगणित सन्तान।
त्याग-धर्म का सीखा उनने तुझसेही वह मन्त्र महान॥
धन जन राज पाट सब देकर देकर, के अपने प्रिय प्राण।
किसी तरह तव स्वतन्त्रता का बस करना था केवल त्राण॥
यही कर्म था, यही धर्म था, यही ज्ञान या उनका ध्यान।
विश्व-वन्द्य तू परम पूज्य तू, धन्य धन्य तू, राजस्थान ॥ ४ ॥

सांगा, लाखा, कुम्भा, दुर्गा, थे प्रताप तेरी सन्तान।
दिग दिगन्त में सुन पड़ता है आज विमल जिनका यशगान॥
'पद्मा' के 'जौहर' का भी तो तव वक्षस्थल ही पुण्यस्थान।
सतीत्व रक्षा हित हुईं हजारों राजपूतरमणी बलिदान॥
ओ स्वतन्त्रता की प्रतिमा, प्रिय! शूरवीर रत्नों की खान।
विश्व-वन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥ ५ ॥

हल्दी घाटी का विराट् वह युद्ध हुआ भीषण घमसान।
वीर सपूत हजारों बढ़ बढ़ हुए जहां पर थे कुर्बान॥
वह चित्तौड़, रणस्थल जिसका अणु अणु भी है लहू-लुहान।
ईंट ईंट पर क्रूर प्रहारों के अङ्कित हैं अमिट निशान॥
ओ वीरों की वनस्थली के अति रमणीय सरस उद्यान।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥ ६ ॥

क्या गिरि गह्वर नदी वृक्षतव दुर्ग ग्राम नगरी वीरान।
किसने अनुदिन किया नहीं है वीर-वृक्ष का शोणित पान?
है भूपर भूखण्ड कौनसा जिसका हो तुझसा सम्मान?
इन्द्रपुरी क्या अमरपुरी क्या अधिक तुम्हारी सबसे शान॥
वीर विरुद के अगणित अनुपम जयस्तूप गौरव गान।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥ ७ ॥

शौर्य्य शक्ति के, देश-भक्ति के क्या न तुम्हीं हो उद्गम स्थान?
कायरता का क्या न एकदिन हुआ यहीं पर था मुखम्लान?
"सागर" तेरी विनय वन्दना करूं कहां तक मैं अज्ञान।
एक बार बस फिर आजावे वह अतीत का स्वर्ण-विहान॥
ओ गौरव, ओ गर्व देशके, ओ जीवन-धन जीवन प्राण।
विश्ववन्द्य तू, परमपूज्य तू, धन्य धन्य तू राजस्थान ॥८॥

देशोन्नति में फ़िल्मों की उपयोगिता

[श्री मूलचन्द बैद]

आजकल जिस रूप में हमारे देश में फ़िल्मों* के बनाने का कार्य किया जा रहा है उसमें सिवाय धन के अपव्यय के कुछ नहीं है। देश में फ़िल्म बनाने की शालाओं (Studios) की बाढ़ सी आ गई है। जो चाहता है वही थोड़ी-सी पूंजी के सहारे भाड़े के स्टूडियो में फ़िल्म बनाने का कार्य प्रारम्भ कर देता है। अनुभवहीन और उतावले सञ्चालकों के अधिनायकत्व में, थोड़े समय में अधिक धन प्राप्त करने की इच्छा से, जल्दी-जल्दी में निर्माण किये हुये चित्रपटों (फ़िल्मों) से कला की जो हत्या की जा रही है वह शोचनीय है। मेरी समझ में देश मे ऐसी बहुत ही कम फ़िल्म कम्पनियां होंगी जिनके बनाये हुए चित्रपटों में कला का स्वाभाविक स्वरूप, यदि पूर्णतया नहीं तो कुछ अंशों में भी, झलकता हो। निम्न श्रेणी के चित्रपट, जिनमें गानों की भरमार और थोड़े से उद्देश्य विहीन कथानक के कुछ नहीं होता, जनता को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा सकते। इन्हीं निम्न श्रेणी के चित्रपटों की अधिकता के कारण कई सज्जन सिनेमा देखने के कट्टर विरोधी भी बन गये हैं। पर मेरी समझ में सिनेमा देखने के विषय में इन सज्जनों का विरोधाभाव विशेष कर उनके शीघ्रतापूर्ण एवं आवेशजनक निर्णय का ही फल कहा जा सकता है। सिनेमा देखना ही वास्तव में हानिकर नहीं है किन्तु हानिकर है उन निम्न श्रेणी के फ़िल्मों को देखना जो उद्देश्य विहीन या अशिक्षा प्रद हैं। हमारे देश में कृषि, उद्योग-धन्धे, वाणिज्य-व्यवसाय, विज्ञान, कला-कौशल इत्यादि, जो उन्नति के मुख्य साधन हैं उनका क्रियात्मक प्रचार करने में बोलती हुई फ़िल्में कितनी बहुमूल्य सहायता प्रदान कर सकती हैं इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने की मैं चेष्टा करूंगा।

फ़िल्म जब किसी भी शिक्षाप्रद विषय के प्रचार करने के काम में लाई जाती हैं तो वह विज्ञान और प्रकृति की अतुलनीय संयोजक हो जाती है। सर्व प्रथम खेती को ही लीजिये—हमारे देश में नई प्रणाली से खेती करने की शिक्षा का बिल्कुल अभाव है। हमारे किसान, जो अधिकांश में अपढ़ ही होते हैं, कृषि सम्बन्धी आधुनिक उन्नत योजनाओं से अनभिज्ञ रहने के कारण, अपने व्यवसाय को उन्नत करने के लिये जो साधन उपलब्ध हो सकते हैं उन्हें भी काम मे नहीं ला सकते। ऐसी परिस्थिति में फ़िल्मों द्वारा इस दिशा में आशातीत कार्य किया जा सकता है। उदाहरणार्थ– खेती के योग्य ज़मीन का चुनाव; खाद तैयार करने के उपाय; बोवनी का तरीक़ा, पौदों की बीमारियों का ज्ञान और उनकी चिकित्सा; पैदावार को सुरक्षित रखने के उपाय; सामूहिक कृषि की उपयोगिता; माल की खपत (Consumption) के लिये उपयुक्त बाज़ारों का चुनाव; ढोरों का आदर्श पालन; अधिक दूध देने देनेवाली गौओं की नस्ल तैयार करने के उपाय; वैज्ञानिक एवं यांत्रिक अवलम्बनों का उचित उपयोग इत्यादि आवश्यक विषयों की शिक्षा फ़िल्मों द्वारा सफलतापूर्वक दी जा सकती है।

* फ़िल्मों से इस लेखमें अधिकतर बोलती हुई (सवाक्) फ़िल्मों सेही तात्पर्य्य है।

उद्योग-धन्धों और वाणिज्य-व्यवसाय में भी इसकी उपयोगिता कुछ कम नहीं है—मैशीनों का सञ्चालन और उनकी उपयोगिता; कारखाना बनाने के लिये उचित जगह का चुनाव और वैज्ञानिक ढंग से उनका निर्माण; नवीन उद्योग-धन्धों की, जैसे जहाज़, मोटर, वायुयान, रेल्वे-इञ्जिन, इत्यादि के बनाने के कार्य, जिनका देश में एकदम अभाव है, उन्नत योजनाओं का दिग्दर्शन; सफल रोज़गारियों जैसे—हैनरी फ़ोर्ड (Henry ford) बाटा (Bata) जे० एन० ताता (J. N. Tata) इत्यादि महान् व्यक्तियों के व्यावसायिक जीवन का चित्रण; बड़े-बड़े व्यवसायों के संचालन करने की प्रणालियां; विज्ञापन की कला का रहस्य इत्यादि बहुत से ऐसे ही विषयों की शिक्षा फ़िल्मों से दी जा सकती है।

वैज्ञानिक विषय, जैसे भौतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, शरीर-विज्ञान, जन्तु-विज्ञान, ज्योतिष, वनस्पति-शास्त्र इत्यादि, जिनका क्रियात्मक ज्ञान (Practical knowledge) प्राप्त करना विशेष आवश्यक है, फ़िल्मों द्वारा सुन्दर ढंग से सिखाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ज्योतिष के ये सिद्वान्त, कि पृथ्वी गोल है; अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती है; अन्य ग्रह जैसे बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून इत्यादि सूर्य के चारों ओर अपनी २ कक्षाओं में घूमते हैं; इन ग्रहों के अलग २ उपग्रह हैं जो इनके चारों ओर चक्कर काटते हैं; इत्यादि, चित्रपटों द्वारा trick scenes के रूप में अद्भुत कौशल के साथ प्रदर्शित किये जा सकते हैं। साधारण जनता को प्रकृति की इस अद्भुत सत्ता का ज्ञान जितनी शीघ्रता और सफलतापूर्वक फ़िल्मों द्वारा कराया जा सकता है उतना और किसी साधन से नहीं।

सवाक् चित्रपट इन विषयों में एक साथ ही शिक्षक, वक्ता और मनोरञ्जक का काम करता है। यह वैज्ञानिक प्रयोगों के लम्बे और विषम कार्यक्रम को कम और सरल कर देता है! इन क्षेत्रों में, फ़िल्मों को मनोविनोद-युक्त-शिक्षक इसीलिये कहा जाता है कि वे दर्शकों के मनोरञ्जन के साथ-साथ उनकी मनन और खोज करने की शक्ति को प्रोत्साहित करतीं व बढ़ातीं हैं और उनकी प्रेरणाशक्ति को भी जाग्रत करतीं हैं। इस तरह हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं कि फ़िल्मों द्वारा ऊपर बताये हुए सब विषयों का कलापूर्ण प्रदर्शन देश की आर्थिक स्थिति (जिस पर अन्य सब तरह की प्रगति निर्भर है) को ऊँची उठाने में आशातीत सहायता पहुंचा सकता है। इस लेख में मैंने केवल फ़िल्मों की शिक्षा-सम्बन्धी उपयोगिता पर ही प्रकाश डाला है। इससे पाठक यह न समझ लें कि मनोरञ्जक या सामाजिक फ़िल्मों की मैं आवश्यकता ही नहीं समझता। सामाजिक और मनोरञ्जक चित्रपट भी, यदि वह कलापूर्ण, वास्तविक एवं मौलिक हों तो वास्तव में आदरणीय हैं।

शारीरिक ज्ञान

(२)*

[डाक्टर बी० एम० कोठारी एम० बी०, बी० एस०]

मनुष्य की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति अर्थात् मनुष्य-देह, के विभिन्न भागों का परिचय कराये जाने से पहले, सम्पूर्ण देह जिन २ प्राकृतिक नियमों से बाधित है उनका वर्णन करना आवश्यक है। सबसे पहले यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य की आत्मा और देह में पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी यह दोनों भिन्न २ तत्त्व हैं, ठीक उसी प्रकार भिन्न हैं, जिस प्रकार शरीर और कपड़े; घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी अलग २ किये जा सकते हैं। कपड़ों का काम है शरीर को ढकना, देहका काम है आत्मा को निवास देना। अगर देह के किसी अंग को पृथक कर लिया जाय, तो आत्मा की संपूर्णता पर आघात नहीं माना जायगा। 'मोहन' के पैर कट जाने पर भी मोहन अपने आपको शपथपूर्वक 'मोहन' ही बतायगा। व्यक्तित्व का सम्बन्ध है आत्मा से। यह मनुष्य-देह 'हमारा' है, न कि 'हम' ही है!

प्रकृति का दूसरा मुख्य नियम है कि प्रत्येक वस्तु संसार में गतिशील होनी चाहिये। जिस प्रकार पृथ्वी, चन्द्रमा, तारे इत्यादि घूम रहे हैं, उसी प्रकार Electrons (परमाणु), जिनसे प्रत्येक वस्तु बनी है, सदा चलते फिरते रहते हैं। पुलिसवाले ट्रैफिक (Traffic) को सदा आदेश करते रहते हैं—'Keep moving-चलते रहो' ठीक उसी प्रकार हमारा मस्तिष्क (Brain centres) अंगके प्रत्येक भाग, दिल फेफड़े इत्यादि, को चलायमान रखता है। इस motion-गति से ही जीवन-शक्ति उत्पन्न होती है और इसी सिद्धान्त पर विद्युत (Electricity)-विज्ञान आश्रित है। जागृति अथवा गति ही जीवित अवस्था का सच्चा प्रमाण है। "Change is an expression of life; 'move on' is the Law of life."

अब आप यह कहेंगे कि इस अदल-बदल से हमारा कितना अहित हो रहा है, कितनी शक्ति व्यर्थ में नष्ट हो रही है! परन्तु यह विचार असंगत है। 'nothing is ever lost' अर्थात् पृथ्वी पर नष्ट तो कुछ होता ही नहीं है—यह है Law of conservation of Energy अर्थात् शक्ति की अनित्यता का नियम। पहाड़ों पर बड़े ज़ोर की हवाएं चलती हैं, गर्मी और सरदी भी अपना प्रभाव दिखाते हैं, समुद्र की लहरें टकराती हैं—यह सब हैं तो Destructive Forces के उदाहरण। पर फल यह होता है कि इनसे धूल के अच्छे कण बनते हैं, हवा के साथ उड़ कर घाटियों में जम जाते हैं, नये पौधों को उनसे जीवन मिलता है जो सूर्य की शक्ति का उपयोग करके खाद्य पदार्थ बन जाते हैं और मनुष्य के काम आते हैं। आज हम हैं, कल मृत्यु होने पर हमारा देह जला दिया जायगा—धूल ही से बना था धूल ही में मिल जायगा। पर कौन जानता है कि उसके पश्चात् क्या होगा?—कदाचित् पहाड़ बन जाये; घास में परिणित होकर गाय के पेट में पहुंचे, और दूध बन कर मनुष्य के काम आये।

* इस लेख का पहला अंश मईके अंक में प्रकाशित हो चुका है।—सम्पादक।

किसीने मज़ाक में कितना ठीक कहा है:—Imperial Ceasar dead, and turned to clay, might stop a hole to keep the wind away,—अर्थात् मरने के बाद तो बादशाह का शरीर भी मिट्टी बन कर हवा रोकने के लिये किसी छेद को बन्द करने के काम ही आ सकता है। सूर्य की शक्ति धूपमें नष्ट नहीं होती। वह समुद्र के पानी को गरम करके बादल बनाती है, जिससे वर्षा होती है, नदियें बहती हैं, अनाज पैदा होता है जिस पर मनुष्य का जीवन निर्भर है।

अन्त में, यह प्रश्न उठता है कि यह जीवन-नैया चलाता कौन है? इन परमाणुओं की गति को कौन नियमित करता है; पानी को बादल में और बादल को पानी में कौन बदलता रहता है? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने का प्रयत्न आदिकाल से हो रहा है, परन्तु अभीतक वास्तविकता को कोई पहुंच नहीं पाया है। उस अज्ञात शक्ति को Nature, God, Superhuman इत्यादि कई नामों से विभूषित किया जाता है। वास्तव में भिन्न २ नाम होते हुए भी इन सबका संकेत उस एक ही 'शक्ति' की ओर है! (क्रमशः)

कन्या गुरुकुल और ओसवाल समाज

[श्री वर्द्धमान बाँठिया]

अब इस बात को बतलाने की आवश्यकता तो नहीं रही है कि समाज, देश व राष्ट्र का उत्थान केवल पुरुषों के उत्थान पर ही निर्भर नहीं है पर उसके लिए महिलाओं के उत्थान की भी बहुत आवश्यकता है। जब तक सारे समाज और देशमें उन्नति की हवा नहीं बहती तब तक समाज और राष्ट्र कदापि आगे नहीं बढ़ सकते। जब तक हमारा पूरा शरीर स्वस्थ नहीं होता तबतक हम अपने आपको स्वस्थ नहीं कह सकते, और इसी तरह जबतक संसार का आधा अंग अर्थात् महिला-समाज उन्नत नहीं होता तबतक समाज की दशा भी नहीं सुधर सकती। जिस समाज की महिलाएं जितनी अशिक्षित होंगी वह समाज उतना ही अवनत दशामें रहेगा। और महिलाओं के उच्च आदर्श की रक्षा और उनका उत्थान उपयुक्त शिक्षा पर ही निर्भर है।

आज स्थान स्थान पर पाठशालायें, स्कूल, कालेज आदि बने हुए हैं और वहां स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध भी है पर विचार यह करना है कि क्या यह शिक्षा-प्रणाली हमारी कन्याओं के लिये उपयुक्त है। आज सभी विचारशील व्यक्ति यह समझते हैं और कहते भी हैं कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पुरुष समाज के लिये भी अहित-कर है क्योंकि इस शिक्षा से निडरता और स्वाभि-मान के बजाय कायरता और अपने आप को किसी लायक न समझने की मनोवृत्ति ही पैदा होती है; केवल नौकरी के कोई दूसरा आजीविका का मार्ग ही नहीं सूझता। इस शिक्षा के फलस्वरूप बेकारी दिनों दिन बढ़ रही है और एक स्थान के लिये आठ आठ सौ अर्जियां आती हैं। यदि यही शिक्षा हमने हमारी बालि-काओं को दी और जैसा पुरुषों ने शिक्षा का आदर्श

नौकरी ही मान लिया वैसाही उन्होंने भी किया तो फिर आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा का रूप कितना भीषण होगा यह सहज ही विचारा जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में हमारा गार्हस्थ्य जीवन कहां पर आकर ठहरेगा यह कहना कठिन है।

जब ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है तो अब सभी यह कहते नज़र आते हैं कि उच्च शिक्षा का ध्येय यह नहीं है कि नौकरी के लिये चिल-पों मचाई जाय पर उसका ध्येय तो मनुष्य को स्वावलम्बी बनाने का है। पर वास्तवमें यह बिना संकोच के कहा जायगा कि यह शिक्षा हमारे मनमें थोथे बड़प्पन का और आरामतलबी का भाव पैदा कर देती है जिससे हम हम उसी काम को करना अच्छा समझते हैं जिसमें विशेष चिन्ता को स्थान न हो, और यह बात विशेषकर नौकरी में ही हो सकती है। जब हमारे पढ़े लिखे युवकों की यह मनोवृत्ति है तो कोई कारण नहीं दिखता कि हमारी पढ़ी-लिखी बहिनों की मनोवृत्ति इससे विपरीत होगी। यदि उन्होंने भी गृहस्थी के झंझट से घृणा कर अपनी शिक्षा के फलस्वरूप नौकरी को ही अपना क्षेत्र बनाया तो फिर आर्थिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष का भारी सघर्ष खड़ा होगा जैसा कि अन्य पाश्चात्य देशों में हुआ है और उसके फलस्वरूप गृहस्थी के प्राकृतिक कोमल वातावरण में भी प्रतिहिसा का भाव जागृत हो जायगा।

हम इस बात को भुला नहीं सकते कि भारतवर्ष का महिला समाज एक गौरव की वस्तु है और यदि हमें उस गौरव को अक्षुण्ण रखना है तो हमें अभी से चेत जाना होगा और हमारी महिलाओं को इस प्रकार की शिक्षा देनी होगी जिससे वे अपने पूर्व के गौरव को याद रखती हुई समाज और देश के प्रति अपना कर्तव्य समझें। हम अब बालिकाओं को विद्या से वंचित नहीं रख सकते और इस लिये यह आवश्यक है कि उनके पढ़न लिखने का प्रबन्ध हम हमारे हाथों से करें। पाठशालाओं, विद्यालयों वगैरा का वातावरण कितना दूषित है यह हम सब जानते हैं इस लिये पुरुषों के लिये हो या न हो पर स्त्रियों के लिये तो ऐसे गुरुकुलों की सबसे पहिले आवश्यकता है जहां वे भारतीय संस्कृति के वातावरण में रह कर, भारतीय सभ्यतानुसार शिक्षा पाकर, आदर्श भारतीय रमणियाँ बनें और अपना, अपनी गृहस्थी, अपने समाज और अपने देश का कल्याण करें।

वर्तमान समय में कन्याओं के शिक्षण के लिये ऐसे गुरुकुलों की व्यवस्था नहीं के बराबर है जहां महिलाओं की देख रेख में गुरुकुल का कार्य चलता हो और पाठ्यक्रम भी ऐसा हो जिसमें भारतीय संस्कृति का ही आभास हो और उसमें पाश्चात्य सभ्यता और शैली का पुट न हो। इस कमी को दृष्टि में रख कर ही स्वर्गीय सेठ नथमलजी चोरड़िया ने नीमच में श्री चोरड़िया जैन कन्या गुरुकुल की स्थापना की योजना की थी और उसके लिये उन्होंने रु० ७००००) का एक ट्रस्ट भी कर दिया था। उनकी यह धारणा थी कि स्त्रियों में वह शक्ति है कि यदि वे चाहें और उन्हें उचित संयोग मिले तो वे देश और समाज की काया पलट कर सकती हैं।

आशा है समाज का प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार से इस कार्य में सहायता देकर स्वर्गीय नथमलजी की इस संस्था को एक आदर्श संस्था बनाने की इच्छा को पूरी करेगा, और समाज की कन्याओं की उचित शिक्षा जैसे पुनीत कार्य में सहयोग देगा।

समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक, क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं; प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है; जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपन्थ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ?—किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये ! इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेजकर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये ।— सम्पादक ।]

(१)

हमारी व्यापारिक स्थिति

आप अपने समाज को व्यापार-जीवी समाज कहते हैं ? व्यापार पर निर्भर रहनेवाला समाज तो सदा समय के साथ चला करता है ! व्यापार शब्द हीसे गति (motion) का बोध होता है । जिस व्यापार में गति नहीं वह व्यापार व्यापार कभी नहीं हो सकता और जिससमाज में समय को पहचान कर उसके साथ-साथ चलने की—उसमें बह जाने की नहीं—शक्ति न हो वह समाज क्या खाक व्यापार करेगा ? आपके पूर्वजों ने समुद्र पार किये थे, साहस के साथ बीहड़ जंगलों और निर्जल रेगिस्तानों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नापा था । वे अपने समय के नेता थे, संचालक थे, अगुआ थे ! और आप ?—आपने अपनेही हाथों अपने पतन का रास्ता साफ़ कर लिया ! चारों ओर के रास्ते अपने लिये बन्द कर लिये । इतनाही नहीं, कहीं बाहर की हवा न लग जाय इस डर से अपने को एक घिरौंदे में बन्द करके चारों ओर के द्वार भी बन्द कर लिये ! न आपको दीन की खबर, न दुनिया की । नतीजा यह हुआ है कि आप ऊँघते ही रह गये और संसार मालूम नहीं कहाँ का कहाँ आगे निकल गया । और किसी के लिये आया हो या नहीं कम से कम आप के लिये तो 'कलजुग' आ ही गया !

जो हुआ हो चुका ! परन्तु अब ? कुछ सोचना है, विचारना है, करना है ?

कलचर मोती

[श्री फ़तेहचन्द ढड्ढा]

जवाहरात में मोती का स्थान कुछ अनुपम ही है। हीरा अगर जवाहरातों में राजा है तो मोती उस समाज का एक सौम्य और सुशील सद्गृहस्थ। हीरा तथा अन्य पथरीले जवाहरात जहां चकाचौंध उत्पन्न करनेवाले होते हैं वहां मोती आंखों को सुख देनेवाला, अपनी गोलाई में विश्व को प्रतिबिम्बित करनेवाला और कोमलता की सजीव मूर्त्ति-सा मालूम होता है। इसी कारण शायद स्त्री-वर्ग को मोती ही अधिक पसन्द होता है—और उनके शरीर की प्राकृतिक कोमलता और कान्ति उसकी कोमलता और कान्ति में मिल कर मानों एक रस हो जाती है।

मोती अधिकतर मात्रा में फ़ारस (ईरान) की खाड़ी में ही पाया जाता है। यह अमुक जाति की समुद्री सीपों के पेट से निकलता है। बम्बई नगर ईरान की खाड़ी के निकट के शहरों में सबसे बड़ा होने से तथा हिन्दुस्तानी व्यापारियों का पुरातन काल से ही इस व्यापार में हाथ होने से वहीं पर मोती की दुनिया की सबसे बड़ी मण्डी है। पर जैसा कि और सब बातों में हुआ इस बात में भी हम हिन्दुस्तानी तो जहां थे वहां के वहां ही पड़े रहे पर अन्य देश के लोग विज्ञान के सहारे उसके प्रकाश में हमसे बहुत आगे निकल गये। पश्चिमवालों ने देखा कि लोग मोती को बड़े चाव से पहनते हैं और क़ीमत भी इस चीज़ की ऊँची मिलती है—बस उन्होंने इस क्षेत्र में भी अपनी व्यापारी बुद्धि दौड़ाई और जिस प्रकार हीरे, पन्ने, लाल, नीलम आदि नक़ली बनने लगे-जो 'इमीटेशन' के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये—उसी तरह मोती भी नक़ली बन कर आने लगा। अबतक तो मोती मोती ही था- पर अब नक़ली मोती के आने से मोती—'सच्चा मोती' कहलाने लगा, और इस प्रकार बाज़ार में दो प्रकार के मोती चलने लगे।

पर नक़ली मोती और असली में बड़ा अन्तर रहा। कोशिश करने पर भी उनमें असली मोतियों की सी आब (चमक) नहीं आई और उनका टिकाऊपन पानी न लगने तक ही सीमित रहा। इसलिये वास्तव में यह नक़ली मोती कभी भी असली का स्थान नहीं ले सके और केवल एक अलग चीज़ के रूप में ही बाजार में बिकते रहे।

पर उधर प्रगतिशील देश जापान में एक विद्वान के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि प्राकृतिक मोती सीप में कुछ पदार्थों के संसर्ग से पैदा होता है, परन्तु सब सीपों में समानरूप से वह पदार्थ नहीं पहुंच सकने से सैकड़ों सीपों में से एकाध—में ही मोती निकलता है, और यह दुर्लभता ही उसके इतना क़ीमती होने का एक कारण भी है, तो फिर विज्ञान द्वारा ऐसा प्रयोग क्यों न किया जाय जिसमें प्रत्येक सीप में इच्छानुसार वह पदार्थ पहुंचाया जा सके और जिससे मोतियों की उपज बढ़ा कर उनको सस्ता तथा जन-साधारण के लेने योग्य बनाया जा सके।

मि० मिकिमोटो उनका नाम था। उन्होंने

विचार किया कि जब सीप में कोई विजातीय द्रव्य पहुंचता है, तो उसके पेट में खुजली चलती है, जिससे उसके शरीर के भीतर एक तरल पदार्थ उत्पन्न होकर उस विजातीय द्रव्य को चारों ओर से ढक लेता है। वही द्रव्य प्राकृतिक मोती होता है। उस विजातीय द्रव्य का उन्होंने विश्लेषण किया और फिर वैसा ही एक रासायनिक (Chemical) द्रव्य तैयार करके इंजेक्शन द्वारा उसकी छोटी-छोटी गोलियाँ सीपों के भीतर छोड़ीं। उनका यह प्रयोग सफल हुआ और कुछ समय के बाद वह गोलियां भी प्राकृतिक मोती के तुल्य ही बन गईं। वही मोती 'कलचर्ड' मोती के नाम से प्रसिद्ध हुआ और शीघ्र ही जापान का यह एक प्रमुख व्यवसाय हो गया।

इस मोती को बनाने के लिये विशेष प्रकार की सीपों की आवश्यकता होती है। वे सीपें कम से कम तीन साल की तथा स्वस्थ्य होनी चाहिये। ऐसी सीपों को समुद्र में से निकालने के लिये जापानी लड़कियां सारे शरीर को विशेष प्रकार के कोट से ढांक कर, जिसमें देखने के लिये आंखों के आगे काच लगा रहता है, समुद्र की तह में गोते लगाती हैं, और सीपें एकत्रित करके समुद्र से बाहर लाती है। उन सीपों में से योग्य सीपों को चुन कर वैज्ञानिक रीति से उनमें छोटी बड़ी गोलियां इंजेक्शन द्वारा डाली जाती हैं।

इसके बाद उन सीपों को जालदार लोहे के पिंजड़ों में रक्खा जाता है। हर एक पिंजड़े में १०० सीपें तक रक्खी जाती है। इन पिंजड़ों को समुद्र-तल से ~ फ़ीट ऊंचा रख कर लटका दिया जाता है। समुद्र में हर समय अमुक प्रकार की लहरें (Discoloured and cold currents) चला करती है जिससे इन सीपों को बहुत नुक्सान पहुंचता है। इस लिये हर दो साल में सीपों के पिंजड़े समुद्र से बाहर निकाले जाते हैं और सीपें साफ़ की जाती हैं जिससे सीपें स्वस्थ रहें। ६ वर्ष के बाद इन पिंजड़ों को समुद्र से बाहर निकाला जाता है। इतने समय में बहुत सी सीपें तो मर भी जाती हैं, बहुतों में मोती उत्पन्न नहीं होता परन्तु लग भग साठ प्रतिशत सीपों में से मोती निकलता है। इन मोतियों को फिर वैज्ञानिक रीति से साफ़ कर लिया जाता है और देश देशान्तरों में भेज दिया जाता है।

इस प्रकार प्राकृतिक और नक़ली मोतियों के अलावा यह तीसरी प्रकार के, कलचर्ड (cultured) मोती बाज़ार में आये। ऊपर के वर्णन से पाठकों को यह साफ़ तौर से मालूम हो गया होगा कि यह 'कलचर्ड' (जो साधारण तौर पर अब 'कलचर' कहलाते हैं) मोती नक़ली मोतियों की तरह मैशीनों से बनाये हुए अप्राकृतिक मोती नहीं है पर असली मोतियों की तरह ही सीप के पेट में बनते है और उसीमें से निकाले जाते हैं— अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ प्राकृतिक मोती सीप में अपने आप किसी विजातीय द्रव्य के पहुंचने से बनते हैं वहां 'कलचर' मोती वैज्ञानिक रीति से सीप के पेट में वैसा ही रासायनिक द्रव्य पहुंचाने से बनते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जहाँ प्राकृतिक मोती सैकड़ों सीपों में से किसी एकाध में ही पाये जाते है-- कलचर मोती सौ में से साठ सीपों में से निकाले जा सकते है और इसी लिये वे प्राकृतिक मोती के मुक़ाबले में अधिक सस्ते भी होते हैं। पर सीप के पेट में ही पके होनेके कारण यह कलचर मोती आब और सुन्दरता में 'बसराई' ('बसरा' ईरान की खाड़ी का प्रमुख बन्दरगाह है) मोती के समान ही होते हैं और प्राकृतिक में और इनमें भेद

बताना कभी २ तो बड़े २ जौहरियों के लिये भी मुश्किल हो जाता है। कलचर मोती पर तेल, पानी या साबुन का भी कुछ असर नहीं होता और न समय जानेसे उसकी आबमें ही कुछ अन्तर पड़ता है। वास्तव में प्राकृतिक और कलचर मोती में कोई मौलिक भेद नहीं है जैसा कि इन दोनों और नक़ली मोतियों में है। नक़ली मोती के तो पानी और साबुन लगने से ऊपर की उसकी चमकदार झिल्ली काग़ज की तरह उड़ जाती है और अन्दर से पत्थर की गोली दिखाई देने लगती है। कलचर मोती तो प्रकृति के साथ मनुष्य की बुद्धि के संयोग का--विज्ञान और प्रकृति के संयोग का-सुन्दर फल है। इन पिछले पाँच सात वर्षों में इनका उपयोग बहुत बढ़ गया है। इनकी सुन्दरता और सस्तेपनसे मुग्ध होकर अमीर ग़रीब सभी में इनका व्यवहार दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। हालांकि जैसा सभी नई वस्तुओं के विषय में होता है कुछ लोगों में अभी तक इस बात का भ्रम है कि यह मोती नक़ली होते हैं, पर ज्यों २ कलचर मोती के उत्पन्न होने का रहस्य लोगों को मालूम होता जा रहा है त्यों २ जनता में से यह भ्रम भी दूर होता जा रहा है और इन मोतियों का प्रचार दिनों दिन सभी देशों में बढ़ रहा है। वास्तवमें 'कलचर' मोती बीसवीं सदी के विज्ञान-युग का एक अद्भुत चमत्कार है।

पावन विचार !

[श्री रामलाल दूगड़ 'प्रफुल्ल']

(१)

...काम कितना है, यह मत देखो। काम करते जाओ—चूंकि काम देखने से नहीं करने से होगा।

(२)

...जीवन अल्प और काम अधिक है अस्तु एक क्षण भी व्यर्थ न गुमाओ। तुम्हारा काम तुम्हीं पूरा करोगे—तभी तुम्हारा जीवन सार्थक समझा जायगा।

(३)

सुनो—समझो—और सोचो, फिर किसी काम में हाथ डालो।

(४)

भूल का पश्चात्ताप तो अत्यावश्यक है ही, पर उससे पहले उसका सुधार विशेष ज़रूरी है।

(५)

'आज्ञा-पालक' बनना सबसे दुष्कर है—क्योंकि इसका अर्थ है अपनी इच्छाओं का दमन करके दूसरों के मनानुसार चलना।

(६)

पूर्वजों के आदर्श का अभिमान नहीं—अनुकरण करो।

(७)

तुम्हारे विद्यमान अवगुण से दूसरों को तुम बचने का उपदेश कर सकते हो किन्तु उसी दोष के कारण तुम्हें अन्य की निन्दा करने या दण्ड देने का अधिकार कतई नहीं है।

(८)

गरीब भिखारी को तुम अन्न-वस्त्र या धन नहीं देना चाहते तो न सही—पर उसके गरीबी से दग्ध हृदय को कटु बचनों द्वारा और अधिक तो न जलाओ।

(९)

सत्य-तत्त्वान्वेषण के लिये भिन्न विचार बहुत ही ज़रूरी हैं पर वे द्वेष, कपट और उच्छृङ्खलता रहित होने चाहियें।

(१०)

पढ़ना सबसे सरल, लिखना उससे कुछ कठिन एवं समझना उससे भी मुश्किल है पर समझ कर तदनुसार चलना तो सबसे दुष्कर है !

जैन—साहित्य—चर्चा

भगवान का विहार

[श्री श्रीचन्द रामपुरिया बी० कॉम०, बी० एल०]

आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नवें अध्ययन में, दीक्षा के बाद साधक-जीवन के बारह वर्षों में श्रमण भगवान महावीर ने जो उग्र तपश्चर्या, पुरुषार्थ और समभावपूर्वक परिषह सहन किया उसका प्रभावशाली वर्णन है। दीक्षा के बाद भगवान के विहार, उनके रहन-सहन, तपश्चर्या और उन पर आनेवाले दारुण,- पर मनुष्य, पशुपक्षी तथा प्रकृतिजन्य ही - विपदाओं परिषहों का, जो वर्णन है वह जितना ही हृदयग्राही है उतना ही स्वाभाविक भी है। आचाराङ्ग के इस वर्णन में उपसर्गों के सम्बन्ध में देव-दानव इत्यादि का नामोल्लेख भी नहीं है, केवल सहज घटनाओं का विश्वासोत्पादक वर्णन है। भगवान महावीर की असाधारण उदारता, अतुल पुरुषार्थ, परम कष्टसहिष्णुता तथा अपनी ध्येयसिद्धि के लिये सर्वस्व त्याग—आदि महान् गुणों का पता पाठकों को इस नीचे दिये हुए वर्णन से मिल सकेगा:—

"श्रमण भगवान महावीर ने दीक्षा लेकर हेमन्त ऋतु में उसी समय विहार किया। भगवान ने प्रतिज्ञा की कि मैं इस वस्त्र को शीत में भी नहीं पहनूंगा। वे भगवान तो जीवन पर्यन्त परिषह को सहनेवाले थे। यह कार्य उनके योग्य ही था।

चार महीने तक बहु भ्रमरादि जन्तु उनके शरीर पर मंड़राते रहे और उनके मांस तथा लोही का शोषण करते रहे।

भगवान ने कोई तेरह महीनों तक उस वस्त्र को कन्धों पर धारण कर रक्खा। उसके बाद वस्त्र त्याग कर वे वस्त्र रहित अणगार हुए।

भगवान पूर्ण सावधानी के साथ पुरुष-प्रमाण मार्ग को ईर्यापूर्वक देख कर विहार करते थे। इस समय छोटे बालक उनको देख कर भयभ्रान्त होकर इकट्ठे हो जाते और उनको लकड़ी तथा घूसों से मारते हुए रोने लगते।

भगवान गृहस्थों के साथ हिलना-मिलना छोड़ कर ध्यानस्थ रहते। गृहस्थ उनसे कोई बात कहते तो उसका उत्तर दिये बिना वे आत्महित को दृष्टि में रख कर वहां से चले जाते। भगवान मोक्ष मार्ग का अनु-

वर्णन करते रहते।

भगवान की कोई प्रशंसा करता तो उसके साथ भी वे नहीं बोलते और न किसी पुण्यहीन अनार्य के दण्डादि से प्रहार करने या केश खींच कर दुःख देने पर वे उस पर कुपित होते थे।

फिर भगवान, नहीं सहन हो सकें ऐसे कठिन व्यंगों को भी सहन करते, लोगों की बस्ती में रह कर भी उनके नृत्य गीत में राग नहीं करते और न द्वन्द्वयुद्ध और मुष्टियुद्ध की बातों से उत्सुक होते थे।

कभी भगवान स्त्रियों को परस्पर काम-कथा में रत देखते तो उसमें रागद्वेष रहित मध्यस्थ रहते। इस प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल परिषहों—संकटों की उपेक्षा करते हुए ज्ञातपुत्र भगवान संयम—साधुत्व पालन करते जाते थे।

भगवान ने दीक्षा लेने के दो वर्ष पहिले से ही कच्चा (बिना उबाला हुआ) पानी पीना छोड़ रक्खा था। इस प्रकार दो वर्ष तक अचित (निर्जीव) जल पीते, एकत्व भावना भाते, कषायरूप अग्नि को उपशम कर शान्त हुए और सम्यक्त्व भाव से भावित होते हुए भगवान ने दीक्षा ली।

भगवान पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा पशुपक्षी मनुष्यादि सबको सत्तावान और सजीव मानते थे और उन्होंने उनकी हिंसा का सम्पूर्ण परित्याग किया।

स्थावर (निश्चल) जीव कर्मानुसार भवान्तर में पशुपक्षी आदि रूप हो सकते हैं और पशुपक्षी चलने फिरनेवाले जीव स्थावर रूप भी उत्पन्न हो सकते हैं। रागद्वेष के संग से जीव कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में जन्मा करते है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने विचार कर मालूम किया कि उपाधि संयुक्त अज्ञानी जीव ही कर्मों से लिप्त होकर नाना कष्ट भोगता है। इसलिये सर्व प्रकार से कर्मों को जान कर उनके कारणभूत पापों का भगवान परिहार करते थे।

भगवान स्वयं निर्मल अहिंसा का पालन करते थे। वे खुद जीवहिंसा नहीं करते थे दूसरों से करवाते भी नहीं थे। स्त्री-संग को पापों की जड़ समझ कर उसका त्याग करते थे। भगवान पूर्ण परमार्थ-दर्शी थे।

सदोष आहार को कर्मबन्धका कारण समझ कर पाप से बचने के लिये भगवान निर्दोष आहार की ही भिक्षा लेते।

भगवान अन्य के वस्त्र नहीं पहिनते थे न अन्य के पात्र में भोजन करते थे। अपमान की परवाह न कर बिना दीनवृत्ति के भगवान भिक्षा याचना करते। रसों में भगवान को आसक्ति न थी, न वे रसयुक्त पदार्थों की चाह करते थे। वे खान-पान में बहुत संयमी थे।

आंख में किरकिरी पड़ने पर भी भगवान उसे मसलते न थे, खाज आने पर भी खुजलाते न थे।

भगवान इधर-उधर नहीं देखा करते थे और न पीछे की ओर ही ताकते थे। बुलाने पर भी बोलते न थे और इर्यापूर्वक मार्ग देखते हुए सावधानीपूर्वक विहार करते थे।

दूसरे वर्ष आधी वर्षा निकल जाने पर भगवान ने उस वस्त्र को भी त्याग किया और हाथों को सीधा फैला कर विहार करना शुरू किया। भगवान ने बाहु संकोच कर कभी कन्धों का नहीं समेटा।

प्रबल पुरुषार्थी श्रमण भगवान महावीर ने इसी

प्रकार फल की कामना न करते हुए कर्म-क्षय का प्रयत्न किया।

भगवान की वसति

कभी भगवान निर्जन झोंपड़ों में, कभी झोंपड़ियों में कभी जल पीने की पोहों में, कभी दुकानों में, कभी लोहारों की शालाओं में और कभी भगवान घास की गंजियों के नीचे वास करते।

कभी धर्मशाला में, कभी मालियों के घर में, कभी शहर में, कभी स्मशान में, कभी सूने घर में और कभी भगवाव वृक्षों के नीचे वास करते।

इसी प्रकार ऐसे स्थानों में भगवान ने लगभग १३ वर्ष तक का दीर्घ प्रवास किया। निश्चल, आलस्य रहित होकर भगवान रातदिन ध्यानस्थ रहते।

भगवान कभी पैर पसार कर सुखपूर्वक नहीं सोये, भगवान कम सोते हुए हमेशा अपने को जागृत रखते थे।

कभी नींद सताती तो बाहर जाकर शीत में ध्यान मग्न होकर निद्रा को दूर करते।

उपरोक्त स्थानों में वास करते समय भगवान पर नाना प्रकार के दुःसह कष्ट पड़े। अनेक प्रकार के जीव जन्तु भगवान को काटते।

दुष्ट जन या ग्राम के रखवाले अपने अस्त्रों से भगवान को कष्ट देते विषयातुर स्त्री-पुरुष भी भगवान को सताते।

इस प्रकार भगवान ने मनुष्य और पशुपक्षियों के, नाना प्रकार की सुगन्ध और दुर्गन्ध के तथा अनेक प्रकार के शब्दों के विचलित करनेवाले उपसर्ग समभाव से सहन किए।

पूर्ण संयमी भगवान सुख-दुख को समान भाव से सहन करते। वे बहुत कम बोलते।

जब उनसे कोई पूछता 'अरे तू कौन खड़ा है ?' तो भगवान निरुत्तर रहते। भगवान के उत्तर न देने के कारण चिढ़ कर उन्हें कोई पीटता भी तो भगवान उसे सहते हुए ध्यान में लीन रहते।

जब उनसे कोई पूछता 'अरे यहाँ अन्दर तू कौन खड़ा है ?' तो कभी-कभी भगवान उत्तर देते 'मैं एक भिक्षुक खड़ा हूं'। इस प्रकार दुर्व्यवहार पाकर भी सच्चे साधु की तरह भगवान ध्यान में तल्लीन रहते।

जब शिशिर ऋतु में पवन जोर से फुंफकार मारता रहता, जब लोक थर-थर कांपने रहते, जब दूसरे साधु किसी छाये हुए स्थान की खोज करते—वस्त्र पहिनने की इच्छा करते और जब तापस लकड़ियाँ जला कर सर्दी दूर करते—ऐसे सिहरा देनेवाले शीत में भी संयमी भगवान इन सब की इच्छा नहीं करते थे और निरीह बन खुले स्थान में शीत सहन किया करते। जब कभी शीत सहन अत्यन्त विकट होता तो भी कुछ समय के लिए तो बाहर ही रहते और फिर भीतर आकर शान्तिपूर्वक शीत सहन करते।

ऐसे अनेक शीत भगवान ने प्रसन्नता पूर्वक सहन किए।

भगवान के परिषह

इस प्रकार कोमल-कर्कश स्पर्श के, शीत-गर्मी के, दंश-मच्छर के अनेक रोमाञ्चकारी कष्ट-उपसर्ग, भगवान ने समभाव पूर्वक निरन्तर सहन किए।

भगवान ने लाट देश के वज्रभूमि और शुभ्रभूमि-दोनों प्रदेशों में विचरण किया था। वहाँ उन्हें ठहरने के लिए बहुत तुच्छ स्थान मिले और शयनासन के सामान भी बहुत हल्के मिले थे। लाट देश में भगवान पर अनेक विपदाएँ आईं। वहाँ के लोग भगवान को

मारते। उन्हें खाने को लूखा भोजन मिलता। कुत्ते भगवान को घेर लेते और उन्हें काटते।

ऐसी विपदाओं के समय, बहुत थोड़े ही लोग होते जो भगवान की कुत्तों से रक्षा करते नहीं तो अधिकांश तो ऐसे होते जो उल्टे भगवान को पीटते और उपर से कुत्ते भी उनके पीछे लगा देते।

न मालूम कितनी बार ऐसे लोगों में भगवान विचरे होंगे ! लाट देश का विहार इतना विकट था फिर भी भगवान दूसरे साधुओं की तरह दण्डादि का उपयोग नहीं करते थे। शरीर तक की माया को ठुकरा कर भोगावलि कर्मों के क्षय करने के लिए इन नीच लोगों के दुर्वचनों को भी सहर्ष सहन किया।

जैसे बलवान हाथी युद्ध क्षेत्र के अग्र भाग मे जा कर विजय प्राप्त कर अपने पराक्रम को दिखलाता है उसी प्रकार इन दारुण विपदाओं में से पार होने में भगवान ने हाथी का-सा पुरुषार्थ दिखलाया।

कभी २ तो ऐसा होता कि भटकते रहने पर भी भगवान ग्राम के निकट न पहुंच सकते। जब ग्राम के नज़दीक पहुंचते तो अनार्य लोग उन्हें रोक कर कहते- 'तू यहाँ से चला जा'।

अनेक समय इस देश में लोग भगवान को लक-ड़ियों से मुट्ठियों से, भाले की नोक, पत्थर तथा हड्डियों के खप्पड़ से मार मार कर उनके शरीर में घाव डाल देते।

अनेक समय भगवान को पकड़ कर लोग उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देते, जब वे ध्यान में होते तो उनके मांस को नोच लेते, उनके केशों को खींच लेते, उन पर धूल बरसाते, उन्हें ऊंचा उठाकर नीचे गिरा देते, आसन से धकेल देते परन्तु निरीह भगवान ने तो इन सब दुःखों को प्रसन्न चित्त से सहन किया मानो उन्होंने शरीर की सार सम्हाल ही छोड़ दी हो—उसे त्याग ही दिया हो।

जिस प्रकार वीर योद्धा संग्राम में अग्रसर होकर वारों को सहन करता है उसी प्रकार प्रबल पुरुषार्थी भगवान महावीर भी उपसर्गों से विचलित न हुए। विघ्न बाधाओं को समचित्त से सहन करते हुए भगवान अभीष्ट मार्ग पर बढ़ते ही जाते थे।

भगवान ने ऐसा ही जीवन यापन किया।

भगवान की तपश्चर्या

नीरोग शरीर में भी भगवान मिताहारी थे, रोग होने पर भगवान चिकित्सा नहीं कराते थे।

जब सारा शरीर ही अशुचिमय समझते तो जुल्लाब, वमन, तेल-मालिश, स्नान, चम्पी तथा दांतुन आदि सब की भगवान क्या आवश्यकता रखते ?

इन्द्रियों के विषयों से भगवान पूर्ण विरागी थे। मौन रख कर ही भगवान विचरण करते।

शीत के दिनों में भगवान छाया में बैठकर ध्यान करते, गर्मी के दिनों में कठोर आसन लगा कर धूप में बैठकर ताप सहन करते।

शरीर निर्वाह के लिए भगवान रूखे भात, मथु और उड़द का आहार करते। आठ महीनों तक भग-वान इन तीन चीज़ों पर ही रहे।

फिर भगवान पन्द्रह-पन्द्रह दिन, महीने-महीने, दो-दो महीने, ६: ६: महीने तक जल नहीं पीते थे और दिन रात विहार करते। अन्न भी ठण्डा और वह भी तीन-तीन, चार-चार, पांच-पांच दिन के बाद लेते।

तत्वदर्शी भगवान किसी भी प्रकार का पापाचरण नहीं करते थे, करवाते भी नहीं थे, करने की अनुमति भी नहीं देते थे।

भगवान शहर या ग्राम में जाकर खुद के लिए

नहीं बनाए गये आहार की गोचरी करते, निर्दोष आहार मिलने पर उपयोग पूर्वक ग्रहण करते।

भगवान भिक्षा के लिए जाते होते और रास्ते में भूखे पक्षियों को ज़मीन पर आहार चुगते देखते तो बिना बाधा पहुंचाए दूर से निकल जाते।

किसी ब्राह्मण, श्रमण, भिखारी, विदेशी, चाण्डाल, बिल्ली या कबूतरों को कुछ दिया जाता देखते तो बिना बाधा पहुंचाए और मन में द्वेष न लाते हुए धीरे से दूर से निकल जाते।

फिर आहार भी भींगा, सूखा, ठण्डा, बहुत दिनों के रांधे हुए उड़द अथवा पुराने धान्य या जुआरादि नीरस धान्य का—जो भी मिलता उसे शान्त भाव से ग्रहण करते। न मिलने पर भी वैसे ही संतोषी रहते।

फिर भगवान निर्विकार चित्त से ध्यान किया करते, अंत:करण की पवित्रता की रक्षा करते हुए लोक के स्वरूप का गंभीर चिन्तन करते।

इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ के विकारों से रहित हो कर, सर्व प्रकार की आसक्ति को दूर कर, शब्दादि विषयों में निर्विकार होकर भगवान ध्यानस्थ रहते। इस प्रकार, एक मनुष्य (छद्मस्थ) होने पर भी भगवान ने कभी असावधानी या प्रमाद नहीं दिखाया।

सत्यदर्शी भगवान ने आत्मिक पवित्रता के लिए सब कुछ छोड़ दिया। मन वचन काया पर पूर्ण विजय प्राप्त की और जीवन पर्यंत पूर्ण संयमी रहे।"

जीवन शुद्धि

[पं० बेचरदासजी]

इस ग्रन्थ* में भगवान ने कहा है कि संवर दु:ख मात्र का नाश करता है; संवर, अर्थात् इन्द्रियों पर जय, मन पर जय, वासना पर जय, संक्षेप में अंतरायभूत सभी वृत्तिओं का निरोध।

भगवानने कहा है कि कोई व्यक्ति अणगार—त्यागी—बने अर्थात् लोग उसे श्रमण (साधु) समझे ऐसा वेश पहने, और वह वेषधारी व्यक्ति जो संवररहित का हो तो उसका संसार घटने के बदले बढ़ा ही करता है और वह भारीकर्मी बन इस अनादि अनंत संसार में लम्बे काल तक भ्रमण करता ही रहता है। (भा० १ पा० ८१) भगवान के इस कथन का तात्पर्य यह है कि मात्र वेष से जीवन शुद्धि नहीं होती, न हुई है और न होगी भी। जीवन शुद्धि में मुख्य कारण संवर है यह भूलना न चाहिए।

इसी प्रकार जो प्राणी असंयत हैं जिनमें त्यागवृत्ति ज़रा भी जागृत नहीं हुई है वैसे प्राणियों का निस्तार नहीं है। पर इस कोटि के प्रणियों में जो परतन्त्रता में भी इन्द्रियों पर अंकुश रखते हैं शरीर पर अंकुश रखते हैं और भाषा पर अंकुश रखते हैं वे इस परतन्त्रता में विकसित की हुई सहन शक्ति के कारण भविष्य में अच्छी स्थिति प्राप्त करते हैं। (भा० १ पा० ८४)

* श्री भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)। प्रस्तुत लेख इस ग्रन्थकी भूमिका का दूसरा अंश है। पहला अंश मई के अंक में प्रकाशित हो चुका है। —सम्पादक।

इसमें भगवान के कथन का तात्पर्य यह है कि परतंत्रता में भी रक्खा हुआ संयम जीवन विकासमें थोड़ी-बहुत मदद कर सकता है तो जो मनुष्य इस संयम को स्वेच्छा से अंगीकार करता है उसका विकास सरलता-पूर्वक हो इसमें तो कहना ही क्या है ?

एक स्थल पर भगवान ने जीवन शुद्धि को लक्ष्य में रखकर मनकी स्थितियों का वर्णन किया है। इन स्थितियों को उन्होंने छः नाम दिये हैं जो जैन सम्प्रदाय में लेश्याके नामसे प्रसिद्ध हैं। मनुष्य की अत्यन्त क्रूर से क्रूर वृत्ति को कृष्ण लेश्या कहा गया है। जैसे-जैसे यह क्रूरता कम होती जाती है और उसमें सात्विक वृत्तिका भाव मिलता जाता है वैसे-वैसे मानव जीवन का विकास बढ़ता जाता है। उस विकास के प्रमाण से चित्त वृत्तियों के नाम भी जुदे-जुदे बतलाये हुए हैं। कृष्ण लेश्या[1] की अपेक्षा जिसमें थोड़ा अधिक विकास है उस वृत्ति को नील लेश्या कहा गया है। उसके बाद जैसे-जैसे अधिक विकास होता जाता है वैसे-वैसे अनुक्रमसे उन उन वृत्तियों को क्रमशः कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या के नामसे पहचाना जाता है। नीचे के उदाहरणों से इन वृत्तियों का मर्म सहज ही समझ में आ सकेगा : —

जैसे कोई एक व्यक्ति अपनी ही सुख सुविधा के लिए हज़ारों प्राणियों को लाचारी में रक्खे अर्थात् जिन प्राणियों द्वारा अपनी अंगत सुख-सुविधा प्राप्त करता है उन प्राणियों के सुख की उसे ज़रा भी परवाह न हो, वह प्राणी जीयें या मरें पहिले निज के सुख भोगों की सुविधा तो प्राप्त करनी ही चाहिए—ऐसे मनुष्य की वृत्ति को कृष्ण लेश्या का नाम दिया जा सकता है।

जो मनुष्य अपनी सुख-सुविधा में ज़रा भी कमी नहीं आने देता परन्तु वह सुविधा जिन प्राणियों के द्वारा प्राप्त होती है उनके पोषण के लिए भी थोड़ी बहुत सम्हाल लेता है—उस की वृत्ति को नील लेश्या कहा जाता है।

सुख-सुविधा पहुंचानेवाले प्राणियों की जो पूर्वोक्त प्रकार से थोड़ी अधिक सम्हाल रक्खे ऐसे मनुष्य को सुख भोग की वृत्ति को कापोत लेश्या कहा जा सकता है। इन तीनों लेश्याओंमें वर्नन करनेवाले मनुष्य को स्वयं क्या है इसका ज़रा भी भान नहीं होता और इसी से उसमें दूसरे के प्रति अकारण मैत्रीवृत्ति रखनेका विचार भी नहीं आता।

जो मनुष्य अपनी अंगत सुख-सुविधा को कम करे और सुख-सुविधा पहुंचानेवाले सहायकों की ठीक-ठीक सम्हाल ले उसे तेजोलेश्यावाला कहा जा सकता है।

जो मनुष्य अपनी सुख-सगवड ज़रा और अधिक कम करके, अपने आश्रितों की तथा सम्बन्ध में आने-वाले हरएक प्राणी की, खेद, मोह और भय रहित होकर अच्छी तरह से सम्हाल रक्खे उसकी वृत्ति को पद्म-लेश्या कहा जा सकता है।

जो अपनी सुख-सुविधा को एकदम कम कर डालता है और अपने शरीर-निर्वाह के लिये ज़रूरी आवश्यकताओं के लिए भी किसी प्राणी को लेशमात्र भी त्रास नहीं पहुंचाता, इसी तरह किसी पदार्थ पर लोलुपता नहीं रखता, सतत समभाव जागृत रहे ऐसा व्यवहार रखता है और मात्र आत्मभान से ही तुष्ट रहता है उसकी वृत्ति को शुक्ललेश्या कहा जा सकता है।

जीवन-शुद्धि की हिमायत करने वाले के लिए इनमें

---

१ कृष्ण और नील लेश्या अर्थात् तामसी वृत्ति, कापोत और तेजोलेश्या अर्थात् राजसीवृत्ति पद्म और शुक्ल लेश्या अर्थात् सात्विक वृत्ति—ऐसा सांख्यपरिभाषा के अनुसार कहा जा सकता है।

श्रीयुक्त राजेन्द्र सिंह सिंघी

आपको पोलैण्ड की सरकार ने अपना भारतीय राजदूत नियत किया है। आप कलकत्ता के सुप्रसिद्ध जूट व्यवसायी और मुर्शिदाबाद के प्रतिष्ठित जमीन्दार बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी के सुपुत्र हैं। आप पहले ही जैन हैं जिनको ऐसा सम्मान प्राप्त हुआ है।

न्यू राजस्थान प्रेस कलकत्ता।

से पहली तीन वृत्तियाँ त्याज्य हैं और पिछली तीन वृत्तियाँ ग्राह्य, उनमें भी अन्तिम वृत्ति प्राप्त किए बिना पूर्ण विकास सर्वथा असम्भव है ऐसा भगवान ने अपनी वाणी में स्थान-स्थान पर कहा है।

भगवान ने कहा है कि उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है, पराक्रम है; यह शरीर जीव के कारण चलता-फिरता है, शरीर की शक्ति शरीर की पुष्टि के कारण है, पुष्ट शरीर अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ करता है और इनसे प्रमाद उत्पन्न होता है; इस प्रमाद के कारण जीव अनेक प्रकार के मोहजाल में फसता है और अन्धकार में भटका करता है, इसलिए प्रमाद के मूल कारण शरीर को यदि संयम में रक्खा जाय तो इस मोहजाल में से जीव सहज ही छूट सके। (भा० १ पा० १२०)

एक जगह भगवान कहते हैं कि मात्र संयम, मात्र संवर, मात्र ब्रह्मचर्य और मात्र प्रवचनमाता के पालन से ही किसी प्राणी का निस्तार नहीं होता। जब प्राणी राग-द्वेष पर पूर्ण जय प्राप्त करता है तभी वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है और निर्वाण पद को पाता है (भा० १ पा० १३७)। यहाँ भगवान ने जो कहा है कि केवल संयम, केवल संवर और केवल ब्रह्मचर्य से जीव का निस्तार नहीं है—इसका मर्म यह है कि संयम, संवर और ब्रह्मचर्य नाममात्र हों—वास्तविक न हों, अर्थात् संयम, संवर और ब्रह्मचर्य मात्र दिखावटी हों पर वासना का जय, इन्द्रियों का निरोध, विषयवृत्ति का त्याग और मानसिक, वाचिक और शारीरिक प्रवृत्ति की एकवाक्यता—यह सब न हों ऐसे कोरे संयम, संवर तथा ब्रह्मचर्य प्राणी के जीवन का विकास कर सकने में समर्थ नहीं है।

भगवान मनुष्यों के तीन विभाग करते हैं। कितनों की एकान्त बालकोटि में रखते हैं, कितनों को एकान्त पण्डित की कोटि में और कितनों को बाल-पण्डित की कोटि में बतलाते हैं। आत्मभान बिना के एकान्त बालक हैं, आत्मभानवाले एकान्त पण्डित हैं और मध्यम वृत्ति के बाल-पण्डित कोटि में हैं (भा० १ पा० १८६)।

बुद्ध भगवान जिनको पृथग्जन* कहते हैं वे एकान्त बालकोटि के हैं और जिनको आर्यजन कहते हैं वे एकान्त पण्डित कोटि के हैं।

लोक में कही जानेवाली ऊँची जाति का, ऊँची प्रतिष्ठा या ऐसे ही कोई दूसरे ऐश्वर्यवाला व्यक्ति आत्मभान बिना का हो तो भगवान की दृष्टि में वह एकान्त बाल है और जाति से हलका गिना जानेवाला भी जो आत्मभानवाला हो तो वह एकान्त पण्डित है।

भगवान कहते हैं कि हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन, परिग्रह तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष, कलह अभ्याख्यान, पैशुन, निंदा, कपटपूर्वक व्यवहार और अज्ञान इन सब दोषों से जीव संसार में भटकता ही रहता है। जो प्राणी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, सरलता, सन्तोष अवैरवृत्ति, स्व-स्वभाव की स्मृति आदि गुणों को प्राप्त करता है, वह अपना संसार घटाता है और निर्वाण को प्राप्त करता है। (भा० १ पा० १९८)

भगवान कहते हैं कि गृहवास छोड़ कर श्रमण निर्ग्रन्थ होने पर भी मनुष्य विवेक की खामी के कारण व्यर्थ के कलह करके मिथ्या मोहके पाश में फँसता है। परस्पर के भिन्न वेष के कारण, जुदे-जुदे नियमों के कारण, जुदे-जुदे मार्गों के कारण, जुदे-जुदे बाह्याचार के कारण, अपने-अपने आचार्यों के जुदे-जुदे मत के कारण, शास्त्र के जुदे-जुदे पाठ के कारण, इस प्रकार अनेक बाह्य कारणों को लेकर लड़ते-झगड़ते श्रमण

* पुथुज्जनो (मूल पाली)

निर्ग्रन्थ अपने संयम को दूषित करते हैं (भा० १ पा० १२५)।

भगवान की कही हुई यह हकीकत उनके अपने ज़माने में भी थी और इस ज़माने में भी वह अपने को प्रत्यक्ष ही है। इस प्रकार के झूठे कलह मिथ्यामोह को बढ़ानेवाले हैं ऐसा भगवान बार-बार कहते हैं।

एक स्थल पर * भगवान को उनके मुख्य शिष्य इन्द्रभूति गौतम ने पूछा कि गुणवान श्रमण या ब्राह्मण की सेवा से क्या लाभ होता है? भगवान ने बताया कि "हे गौतम! उनकी सेवा करने से आर्य पुरुषों के कहे हुए वचन सुनने का लाभ होता है और इससे उसको—सुननेवाले को— अपनी स्थिति का भान होता है. भान होने से विवेक प्राप्त होता है विवेक होने से स्वार्थपरता कम हो त्याग-भावना फैलती है और उसके द्वारा संयम खिलता है और संयम के खिलने से आत्मा दिन-दिन शुद्ध तथा तपश्चर्यापरायण होता जाता है, तपश्चर्या से मोहमल दूर होता है और मोहमल दूर होने से व्यक्ति अजन्मा दशा को पाता है।

भगवान के उपर्युक्त कथनमें गुणवंत श्रमण और ब्राह्मण के प्रति उनकी दृष्टि का मर्म समझने के लिए हम लोगों को प्रयत्नशील होना चाहिए।

एक स्थल पर मंडितपुत्र के उत्तर में भगवान कहते हैं कि अनात्मभाव में रहता हुआ आत्मा हमेशा कंपा करता है, फड़ फड़ाया करता है, क्षोभ पाया करता है और वैसा करता हुआ वह हिंसा वगैरह अनेक प्रकार के आरम्भ में पड़ता है, उसके वे आरंभ जीव मात्र को त्रास उपजानेवाले होते हैं इस लिए हे मंडितपुत्र! आत्मा को आत्मभाव में स्थिर रहना चाहिए और अनात्मभावकी तरफ़ कभी भी न जाना चाहिए (भा० २ पा० ७६)।

सातवें शतक के दूसरे उद्देशक में भगवान, इंद्रभूति गौतम को कहते हैं कि जो प्राणी सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसाके त्याग करने की बात करता है परन्तु प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को जानने का प्रयत्न नहीं करता—वह उन प्राणभूतों की परिस्थिति समझ कर उनके साथ मित्रवत बर्ताव करनेका प्रयास नहीं करता इस लिए उसका, उन-उन प्राणियों की हिंसा का त्याग यह अहिंसा नहीं हिंसा है, असत्य है और आश्रवरूप है। और जो, जैसा मैं प्राणी हूं वैसे ही ये दूसरे प्राणी हैं, जैसी सुख-दुख की भावना (लागणी) मुझको है ऐसी ही सुख दुःख की भावना (लागणी) दूसरों को भी है ऐसा समझ कर हिंसा का त्याग करता है वही सच्चा अहिंसक है, सत्यवादी है और आस्रव रहित है।

इसी प्रकार आठवें शतकके दशवें उद्देशक में भगवान कहते हैं कि कोई मनुष्य, मात्र श्रुतसंपन्न हो पर शीलसम्पन्न न हो तो वह देशतः अंशतः विराधक है। जो मात्र शीलसम्पन्न हो पर श्रुतसम्पन्न न हो वह देशतः आराधक है, जो श्रुत और शील दोनों से संपन्न हो वह सर्वतः आराधक है और जो दोनों से ही रहित है वह सर्वथा विराधक है (भा० ३ पा० ११८)।

इन दोनों कथनों में, प्रज्ञा और आचार दोनों जीवन शुद्धि में एक समान उपयोगी हैं, ऐसा भगवान बतलाते हैं। प्रज्ञा विना आचार बंधनरूप हो पड़ता है और आचार विना प्रज्ञा उच्छृङ्खलता का पोषण करती है। इसी कारण से बुद्ध भगवान ने भी बुद्ध पद पाने के पहले प्रज्ञापारमिता, सत्यपारमिता, और शीलपारमिता प्राप्त की थी।

* "तहा रूवं णं भंते! समण वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा"—प्रस्तुत ग्रन्थ भाग १ पृ० २८३।

कहना यह है कि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध इन दोनों द्वारा अपने प्रवचनों में ज्ञान और क्रिया को एक समान स्थान दिया गया है।

भगवान, गौतम को कहते है कि हे गौतम! हाथी और चींटी इन दोनों का आत्मा एक सरीखा है (भा० २ पा० २७)। इनके इस कथन में छोटे-बड़े हरएक प्राणियों के प्रति समानभाव रखने का सन्देश हमलोगों को मिलता है।

जिन–जिन कारणों से आत्मा अनात्मभाव में फँसता है, उनको समझाते हुए भगवान कहते हैं कि इस जगत में अनात्मभाव को पोषण करनेवाली दस संज्ञाएँ हैं। पहली आहार, फिर भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ (भा० ३ पा० २७)।

भगवान की कही हुई ये संज्ञाएँ कितनी दुःखकर हैं यह तो सब कोई अपने अनुभव पर से जानते हैं। इन संज्ञाओं में भगवान ने अनात्मभाव पोषण करने-वाली लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा को बतलाकर उनसे दूर रहना अपने को बतलाया है।

आहार से लेकर लोभ तक की संज्ञाएँ दुःखकर हैं--इसमें किसी को शक नहीं है, पर लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा का दुःखदायीपन साधारण मनुष्य के ख़याल में जल्दी से आ सके ऐसा नहीं है। लोकसंज्ञा अर्थात् बिना समझे प्राकृत लोक प्रवाह को अनुसरण करने की वृत्ति और ओघसंज्ञा अर्थात् कुल परम्परा अनुसार या चले आते प्रवाहानुसार बिना विचारे चलते रहने की प्रवृत्ति। इन दोनों वृत्तियों से प्रेरित मनुष्य सत्य को शोध नहीं सकता, निर्भयतापूर्वक सत्य को बता नहीं सकता। इसीलिए ये दोनों वृत्तियाँ जीवन शुद्धि का घात करनेवाली हैं। ऐसा होने से भगवान ने इनको हेय कोटि में रक्खा है। वर्त्तमान में अपने राष्ट्र, और समाज के जीवन का विकास, अपने में इन वृत्तियों का प्राधान्य होने के कारण ही, अटका हुआ है। ये दोनों वृत्तियाँ अपने में इतनी अधिक जड़ जमा बैठी हैं कि जिनको निकालने के लिए अनेक महारथियों ने प्रयत्न किया। कृष्ण ने गीता में और भगवान महावीर तथा बुद्ध ने अपने प्रवचनों में जुदी-जुदी रीति से इन दो वृत्तिओं में रही हुई जीवन की घातकता अपने को प्रत्यक्ष हो जाय उस प्रकार से वर्णन किया है। वर्त्तमान में अपने इस युग के राष्ट्रीय सूत्रधार भी अपने में रही हुई इन संज्ञाओं को निकालने का बहुत प्रयत्न कर रहे है।

इस प्रकार भगवान द्वारा इस सूत्र में अनेक जगह अनेक प्रकार से जीवन शुद्धि की पद्धति समझायी गयी है। भगवान का सारा जीवन ही जीवनशुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है इसलिए उनके प्रवचनों में स्थल-स्थल पर इस विषय में उनके मुख से उद्गार निकले यह बिल्कुल स्वाभाविक ही है।

महावीर के कितने ही उद्गार आधुनिक वाचक को पुनरुक्ति जैसे लगते हैं फिर भी जीवन शुद्धि के एक ही ध्येय को पकड़ कर रहनेवाले के मुख से अपने ध्येय के अनुसार ही उद्गार बार-बार निकले यह एकदम स्वाभाविक है। कितनीही बार इन उद्गारों की पुनरुक्ति ही साधक को अपनी वृत्ति में दृढ़ करती है इसलिये ऐसी पुनरुक्ति भी अत्यन्त उपयोगी है।

समाज के कर्णधारों का कर्तव्य

[सेठ अचलसिंह, आगरा]

समझ में नहीं आता कि हमारे समाज की क्या दशा होनेवाली है ! समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए अक़्ल हैरान है, तबियत परेशान है !! जब समाज में बढ़ता हुआ कलह, द्वेष व फूट देखी जाती है उस समय समाज के प्रति घृणा व ग्लानि-सी हो आती है और जी चाहता है कि बिलकुल खामोश होकर बैठो और दूसरे काम की ओर ध्यान दो। लेकिन साथ-साथ ख़याल आता है कि जिस समाज में तुम पैदा हुए हो उसके प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य है।

पिछले कुछ वर्षों का मेरा अनुभव तो यह है कि अपने समाज में जितने भी झगड़े, मनमुटाव, कलह, द्वेष मुक़दमेबाज़ी, हो रही है उसका मुख्य कारण हमारी ग़लत "धार्मिक" भावना है। हमारे ज्यादातर भाई यह समझ बैठे हैं कि संसार में यदि कोई भी धर्म सच्चा और अच्छा है, तो वह हमारा साम्प्रदायिक धर्म ही है। यहाँ तक भी ठीक है कि वे अपने साम्प्रदायिक धर्म को उच्च और सच्चा मानें, पर दुःख और खेद तो इस बात का है कि वे अपने साम्प्रदायिक धर्म के मुकाबिले दूसरे साम्प्रदायिक धर्मों को हेय, नीच व मिथ्यात्वी मानते हैं जब कि मूलधर्म सबका एक जैन धर्म ही है। इस समय अगर ज़रा दीर्घ दृष्टि करके समस्त सम्प्रदाय-वालों की वर्तमान अवस्था तथा व्यवस्था को देखा जाय, तो ऐसा मालूम होता है कि मानों 'कुंए भांग' पड़ी है। एक दूसरे के साथ मिल कर नहीं बैठ सकते हैं, यहाँ तक ही नहीं, पर आपस में इस प्रकार द्वेष और कलह रखते हैं कि सदा इस बात का ख़याल रखा जाता है कि किस प्रकार अपने ही भाई को नीचा दिखाया जाय। जब कभी आपस में प्रेमपूर्वक मिल कर रहने की बात कही जाती है उस समय तो अनक़रीब सब उसे स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन थोड़े समय बाद ही यह बात काफूर हो जाती है और वही पुरानी चाल बेढंगी चलने लगती है। बन्धुओ व मित्रो ! अगर हम लोगों को संसार में जीवित और एक जीता-जागता समाज होकर रहना है, तो हमको ये छोटे ख़याल और संकुचित दृष्टि निकाल देनी पड़ेगी, वरना बाद में समय निकलने पर पछताने से कुछ न बन पड़ेगा।

मुझे पिछले वर्ष में भारतवर्ष के कुछ स्थानों में दौरा करने का मौका मिला था। उस समय यह देखने में आया कि कोई भी ऐसा स्थान मुश्किल से था जहाँ 'धड़े' व पार्टी-बन्दी न हो। एक-दो पार्टी ही नहीं बल्कि दो-दो, चार-चार और इनसे भी कहीं ज्यादा पार्टियाँ देखने में आई, ज्यादातर ये पार्टियां धार्मिकता के ख़याल को लिये हुए थीं।

बन्धुओ ! मैं आपकी सेवा में निवेदन करूंगा कि असली धार्मिकता क्या है। धर्म की संसार में इस कारण उत्पत्ति हुई है कि वह मनुष्य-स्वभाव के कारण उत्पन्न

हुई विषमताओं से मनुष्य जाति की रक्षा करे और सदा मनुष्य को न्याय मार्ग पर ले चले। बन्धुओ! अगर हम लोगों की यह हार्दिक इच्छा हो कि हमारे समाज की उन्नति हो और भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का घर-घर में प्रचार हो, हम सच्चे जैन-धर्म के अनुयायी बन कर अपनी आत्मा का उद्धार करें, संसार में जीवित जातियों में गिने जायं, हमारा नाम हो और हमें इहलौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो, तो हमें चाहिये कि हम साम्प्रदायिकता को छोड़ कर भगवान महावीर के सच्चे अनुयायी बनें। जब हम भगवान् महावीर के अनुयायी जैन-समाज की स्थिति को देखते हैं तो बड़ा दुःख व परिताप मालूम होता है। अफ़सोस! कहाँ तो भगवान् महावीर का उदार, महान और दिव्य उपदेश और कहाँ वर्तमान जैन-समाज! जिन महावीर का उपदेश आकाश से भी अधिक उदार और सागर से भी अधिक गंभीर था उन्हीं का अनुयायी जैन-समाज आज कितनी संकीर्णता के दल-दल में फँसा हुआ है।

जिस महावीर ने प्राणीमात्र से मैत्री-भाव, उदार हृदय व प्रेम रखने का अनुपम संदेश दिया था उन्हीं की सन्तान आज आपस में इस बुरी तरह से रागद्वेष रखकर और लड़-झगड़ कर दुनिया के पर्दे से अपने अस्तित्व को मिटाने की तैयारियाँ कर रही है, जिस प्रकार वह मूर्ख लकड़हारा जिस डाल पर बैठा हुआ था उसीको काट रहा था। आज हमारा समाज संसार की निगाह में अपने को हास्यास्पद बना रहा है।

जो मनुष्य समाज-शास्त्र के ज्ञाता हैं वे उन तत्वों को भलीभाँति जानते हैं जिनके कारण जातियों और धर्मों का पतन होता है। किसी भी धर्म और समाज के पतन का प्रारंभ उसी दिन से हो जाता है जिस दिन से किसी न किसी छिद्र से उसके अन्तर्गत स्वार्थ का कीड़ा घुस जाता है—जिस दिन से लोग व्यक्तिगत स्वार्थ या ममत्व के फेर में पड़ कर अपने जीवन की नैतिकता को नष्ट करना प्रारम्भ कर देते हैं। फलस्वरूप समाज व धर्म अवनति की ओर जाने लगता है। हमारे समाज का और मुख्यतया समाज के समझदार, अनुभवी और पढ़े-लिखे व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे संसार के अन्य समाजों व धर्मों की गति-विधि को देख कर अपने समाज की उन्नति के कुछ उपाय करें।

हमारी सभा-संस्थाएँ

१-ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता

शोक-सभा - ओसवाल नवयुवक समिति ने अपने गत ता० ३-६-३६ की साधारण सभा के अधिवेशन में निम्नलिखित शोक प्रस्ताव पास किया था:—

"ओसवाल नवयुवक समिति की यह सभा ओसवाल समाज के उज्वल रत्न, प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और जैन पुरातत्व के अद्वितीय गवेषक तथा इस समिति के अकृत्रिम बन्धु श्रीमान् पूरणचन्दजी नाहर एम० ए०, बी० एल०, एम० आर० ए० एस० की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रगट करती है, तथा आपके वियोग से संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करती है" ।

श्रीचन्द रामपुरीया
मंत्री

२—भारत जैन महामण्डल

शोक-सभा—दिगांबर सर्व जैन समाज लखनऊ की यह सम्मिलित सभा माननीय बाबू पूरनचन्दजी नाहर एम० ए०, बी० एल०, एम० आर० ए० एस० कलकत्ता निवासी की असामयिक मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रगट करती है। स्वर्गीय नाहरजी कविता और इतिहास के प्रेमी, प्राचीन कलाओं और लेखों के संरक्षक, धर्म और धार्मिक संस्थाओं के हितैशी, जाति के सच्चे नेता, देश प्रेमी, सदाचारी, आदर्श जैन गृहस्थ और उदार पुरुष थे। जैन समाज लखनऊ उनके सुपुत्रों तथा कुटुम्बियों से हार्दिक सहानुभूति प्रगट करती है।

पदमचन्द श्रीमाल
मंत्री

३-श्री समाजभूषण सेठ नथमलजी हेमराजजी चोरड़िया फ़ीमेल एज्यूकेशन ट्रस्ट फंड

उपरोक्त ट्रस्ट की प्रथम साधारण सभा गत ता० २०-२१ जून को श्रीमान् सेठ जमनालालजी बजाज की अध्यक्षता में नीमचकी छावणी में हुई जिसमें निम्नलिखित ट्रस्टी सम्मिलित हुए:—

सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा,
,, त्रिभुवनदास गोविन्दजी शाह, बम्बई,
,, ऊंकारलालजी बफणा, मन्दसौर,
,, सौभाग्यसिंहजी चोरड़िया, नीमच छावणी,
श्रीमती फूलकुमारी देवी चोरडिया, एवं

श्रीयुत वर्धमान बाँठिया, अजमेर।

सेठ वेलजी लखमसी नप्पू बम्बई स्वास्थ्य ठीक न होने से सम्मिलित न हो सके।

अन्य कार्यवाही प्रारम्भ होने के पहिले निम्नलिखित शोक प्रस्ताव रखा गया जिसे ट्रस्टियों एवं निमंत्रित बन्धुओं ने शोक-विह्वल हृदय से पास कियाः—

ट्रस्ट की यह प्रथम साधारण सभा ट्रस्ट के संस्थापक और अध्यक्ष समाज भूषण सेठ नथमलजी चोरड़िया के आकस्मिक हृदय-भेदक अवसान पर शोक प्रकट करती है और उनके कुटुम्बियों के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है और आशा करती है कि उनके अधूरे छोड़े हुए कार्य को पूरी लगन के साथ पूर्ण करेंगे।'

इसके पश्चात् ट्रस्टियों में से निम्नलिखित पदाधिकारी निर्वाचित हुएः—

सेठ जमनालालजी बजाज—अध्यक्ष

श्री वर्धमानजी बाँठिया—अ० मन्त्री

श्रीमती फूलकुमारी चोरड़िया—उपमन्त्री

इसके अतिरिक्त सेठ कुन्दनजी कालूराम, मन्दसौर कोषाध्यक्ष चुने गये।

योग्य संचालिका का प्रबन्ध होते ही गुरुकुल का कार्य प्रारम्भ करना निश्चिय हुआ।

गुरुकुल के कार्य को समय-समय पर निरीक्षण करने एवं संचालन-सम्बन्धी नियमादि में फेरफार करने में सम्मति प्रदान करने के लिये एक सलाहकार मण्डल की योजना की गई जिसमें निम्नलिखित सज्जन सम्मिलित किये गयेः—

डाक्टर मोहनसिंहजी मेहता, उदयपुर

प्रोफ़ेसर केसरीलालजी बोरड़िया, इन्दौर

श्री त्रयम्बक दामोदर पुस्तके वकील, उज्जैन

श्री हीरालालजी शास्त्री, वनस्थली (जैपुर)

श्री भैरूँलालजी गैलड़ा, उदयपुर

सम्पादकीय

सुधार बनाम सेवा

ओसवाल नवयुवक को फिर से आरम्भ करने की बात बाहर पड़ते ही मित्रों और शुभचिन्तकों की ओर से प्रश्नोंकी झड़ियाँ शुरू हुईं—पत्र की नीति क्या होगी ? गरम या नरम ? समाजिक कुरीतियों का सामना करने में पत्र का क्या रुख होगा ? कुछ मित्रों ने सीधे प्रश्न भी किये—'विधवा-विवाह' के बारे में पत्र की क्या नीति होगी—वह इसका समर्थक रहेगा या विरोधी ? बाल-वृद्ध विवाह जैसे प्रश्नों पर पत्र उग्र पन्थी होगा या नरमी से काम लेगा ? कुछ लेखकों ने भी अपनी कृतियाँ भेजने के पहले ऐसे ही प्रश्न किये। हमने इन प्रश्नों पर पहले तो कोई विशेष विचार नहीं किया। पहले अङ्क में पत्र की नीति और उद्देश्य के बारे में एक छोटा-सा नोट अवश्य दे दिया था। हमने समझा था कि इससे मित्रों की प्यास बुझ जायगी और उन्हें हमारी मनोवृत्ति का और हम क्या नीति धारण करेंगे इसका पता लग जायगा। पर फिर भी प्रश्न जारी रहे और थे भी उसी प्रकार के जैसे कि ऊपर बताये जा चुके हैं। नब्बे फ़ी-सदी प्रश्नों का विषय एक ही था—'समाज सुधार और उसकी और पत्र की नीति'।

प्रश्न इतने से और इस ढंग के किये गये थे—जिससे मालूम होता था कि समाज के अधिकांश व्यक्तियों के लिये—'सुधार' और 'सुधारक' कोई व्यवसाय की वस्तु है। अमुक नियत प्रश्नों पर इधर या उधर कुछ विचार बस यही मानों सार्वजनिक जीवन का एक माप दण्ड है। आजकल संसार में वणिक बुद्धि का—व्यापार का साम्राज्य है और हरएक चीज को चाहे वह कुछ भी हो व्यवसाय का ही रूप दिया जाता है। राजनीति, धर्माचार्यपन, नेतागिरी इत्यादि सभी वस्तुएँ आज किसी-न-किसी रूपमें व्यवसाय का - कमा खाने और अपनी व्यक्तिगत प्रसिद्धि और लाभ का साधन बन गई हैं। 'सुधार' भी इस तरह आजकल एक व्यवसाय हो गया है। अमुक श्रेणी के लोगों में सुधारक बनकर जनता पर अमुक तरह की छाप डालने की अच्छी कला होती है। लम्बे चौड़े भाषण, विचित्र सी वेष-भूषा, सभा-संस्थाओं में मंचपर बैठना—समाचार पत्रों में अपने नाम और तस्वीरें देते रहना वह सब इस व्यवसायके अंग हैं। इनके जरिये 'सुधारक' जनता में प्रसिद्धि प्राप्त कर अपना काम

निकालते रहते हैं। इन पँक्तियों के लेखक को कितने ही सुधारकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है और जब प्राईवेट में उन्हें जनता को उल्लू' बनाने के अपने गुणों की प्रशंसा करते और शेखी बघारते या अमुक प्रसंग को अपने व्यक्तिगत लाभ में काम में लाते देखा तो मालूम हुआ कि 'सुधार' आजकल इतनी प्रिय वस्तु क्यों है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी ऐसे होते है—कुछ सच्ची लगन वाले युवक भी हैं पर वे भी ऊपरी बातें देख कर इस प्रवाह में पड़ जाते है और आजकल के कहे जानेव ले 'सुधार' करने की चेष्टा भी करते रहते हैं। इन मे से अधिकांश को इस व्यापार का चस्का लग जाता है और इस प्रकार समाज में 'सुधारकों' की सेवा बढ़ती जाती है। इस संसार में सदा से लोक प्रसिद्धि की बड़ी महिमा रही है। लोक प्रसिद्धि से आर्थिक लाभ भी होता ही है। सत्ताधारी वर्ग सदा से ऐसे लोक प्रसिद्ध आदमियों को रुपये से खरीदने के प्रयत्न में रहता ही है, बस आगे का रास्ता अपने आप साफ हो जाता है।

'सुधार' का आन्दोलन गत कितने वर्षों से चल रहा है। इस क्षेत्र में कितने ही सच्चे सुधारक हो गये पर आज तो अधिकांश में 'सुधारवाद' एक व्यवसाय हो गया है। वास्तव में 'समाज-सुधार की मनोवृत्ति में ही खामी है। 'सुधार' से सदा तात्पर्य अपने सिवाय और सबके सुधार का लिया जाता है। सुधार की भावना में ही अहङ्कार और ऊँच-नीच का समावेश है। सुधारक अपने को सुधरा हुआ और अतः ऊँचा और दूसरों को असभ्य अर्थात् नीचा गिनता है। स्वयं मनुष्य में चाहे कितने ही ऐब हो पर जहाँ दो-चार सभाओं में भाषण देने के बाद जनता उसे नत मस्तक हो प्रणाम करने लगती है कि वह अपने आपको भूल जाता है और धीरे-धीरे एक Insolence धृष्टता की भावना उसके हृदय में घर करती जाती है। समाज-सुधार के नाम पर अधिकतर तो आजकल व्यक्तिगत वैरभाव और बदला लेने की नीति को ही पोषण मिलता है। आपके मेरे कुछ व्यक्तिगत द्वेष है और आपके कुटुम्ब में कोई विवाह हो रहा है—बस मुझे सुधारक बन कर उस विवाह को वृद्ध विवाह बाल विवाह या और कुछ नहीं तो 'खर्चीला', 'समय के प्रतिकूल' या व्यर्थ का आडम्बर' कह कर बिगाड़ देने में—उसमें कुछ-न-कुछ विघ्न खड़ा कर देने में क्या देर लगती है। और उसी प्रकार मेरे यहाँ काम पड़ने पर आप भी वही नीति काम में ला सकते हैं। वास्तव मे जब हम इस बात पर विचार करते है कि इन तुच्छ प्रश्नों पर समाज के नवयुवकों की कितनी शक्ति खर्च हो चुकी है और हो रही है तो अफसोस होता है। सुधारक का जामा वानप्रस्थियों के लिए कितना भी उचित क्यों न हो—नवयुवकों के लिये तो सर्वथा घातक है - यह हमारा अनुभव है। नवयुवकों का क्षेत्र सुधार नहीं सेवा है। उनके सामने सारा जीवन पड़ा है - उन्हें अनुभव नहीं है जीवन की कठिनाइयों का और ऐसे अनुभवहीन व्यक्ति का दूसरों को उपदेश देने की धृष्टता करना समाज के लिये ही नहीं स्वयं निज के लिये भी घातक है। नवयुवकों को प्रकृति ने शारीरिक और बौद्धिक संपत्ति दी है—उसका उपयोग करके समाज की कुछ भी सेवा करते रहना यही उनका कर्तव्य है। सेवा निर्माण का क्षेत्र है, जहाँ आजकल का सुधार अधिकतर विनाश (Destruction) का। सुधार में दूसरों को सुधार करने की अहङ्कारयुक्त भावना है तो सेवा में दूसरों की सेवा करने की विनयभरी उमंग। सुधारक अपने को ऊँचा समझ कर धृष्ट बन जाता है—वहाँ सेवक विशुद्ध हृदय से सेवा करते हुए नम्र रहता है।

पुराने अनेक सिक्कों का आपने जो संग्रह छोड़ा है वह आपकी अथक परिश्रमशीलता का, ललित कला और वस्तु शिल्प के आपके ज्ञान और भारतीय इतिहास और पुरातत्व की खोज में आपकी दत्तचित्तता और व्ययशीलता का जीता जागता उदाहरण है। आपके संग्रहालय में ललित कला, साहित्य, अनेक ऐतिहासिक तथा धार्मिक विषय की पुस्तकें हैं उनमें से बहुत-सी दुष्प्राप्य हैं और प्रचुर धन-व्यय से प्राप्त हुई हैं।

नाहरजी में संग्रह की प्रवृत्ति एक जन्म जात संस्कार ही था। छोटी-छोटी चीजों का भी वे ऐसा संग्रह करते थे कि जो कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण और दर्शनीय हो जाता था। आपके यहाँ मासिक पत्रों के कोभर का जो संग्रह है वह इस बात का प्रमाण है। इन कोभर को एकत्रित करने में नाहरजी ने जो परिश्रम और समय-व्यय किया उसकी सार्थकता एक साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता फिर भी इतिहास और कलाप्रेमी के लिए वह संग्रह कम कीमत नहीं रखता। इसी प्रकार विवाह की कुंकुम पत्रिकाओं का संग्रह भी आपने किया था और इससे यह बतला दिया था कि छोटी-छोटी वस्तुएँ भी अपना महत्व रखती हैं—उनका भी ऐसा उपयोग हो सकता है जो दर्शनीय होने के साथ-साथ उपयोगी भी हो। उनके यहाँ जब-जब जाने का काम पड़ा तब-तब उनका यह गुण प्रत्यक्ष देखने में आया। एक बार उनके यहाँ कई पुस्तकें लाने के लिए गया था। पुस्तकें निकलवाने के बाद आपने एक कागज निकाला और उन पुस्तकों को लपेट दिया। पुस्तकों को बांधते समय आपने मुझ से कहा यह कागज वी० पी० से पुस्तक आई थीं उनके साथ आया था, मैंने इसे समेट कर रख दिया था और आज उसका उपयोग भी हो रहा है। शायद आप लोग इस कागजको वी० पी० खोलते समय ही फाड़ देते या खोल कर यों ही फेंक देते परन्तु मैं ऐसी ऐसी चीजों का उपयोग करना जानता हूँ"। यह घटना मामूली है फिर भी उनके चरित्र की विशेषता को बहुत स्पष्ट रूप

स्वर्गीय पूरणचन्दजी नाहर

में हृदयांकित करती है।

श्रद्धेय नाहरजी का सारा जीवन ही इतिहास और पुरातत्व की खोज जैसे महत्वपूर्ण कार्य में बीता था फिर भी आप सार्वजनिक और जातीय हित के कार्यों में विशेष दिलचस्पी से भाग लेते थे। आप कई सार्वजनिक और जातीय संस्थाओं के प्रमुख और सदस्य थे। आप अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महा-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति रह चुके थे। आप एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल एण्ड उड़ीसा, रिसर्च सोसाइटी भण्डार कर इस्टीट्यूट पूना बंगीय साहित्य परिषद, नागरी प्रचारिणी सभा आदि लोकोपयोगी, प्रसिद्ध साहित्यिक संस्थाओं के सदस्य थे। इस प्रकार आप का सारा जीवन लोकोपयोगी कार्यों में व्यतीत हुआ था।

नाहरजी ने साहित्यिक क्षेत्र में भी बहुत सम्मान का स्थान प्राप्त किया था। आपकी 'इपीटोम आफ जैनिज्म', 'जैन लेख संग्रह' तीन भाग, और 'जैन अनुशासन लिपि' आदि पुस्तकें साहित्य क्षेत्र की स्थायी सम्पत्ति हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आप के फुटकर लेख भी हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला आदि मासिक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुआ करते थे और उनमें से अकसर अच्छी विद्वता और खोज शोध को लिए हुए होते थे। 'कुंए भौंग' शीर्षक आपका 'विशाल-भारत' में प्रकाशित लेख उसका नमूना है।

नाहरजी इतिहास और पुरातत्व के असाधारण विद्वान और गवेषक थे और इन क्षेत्रों में आपकी ख्याति भारत में ही नहीं परन्तु विदेशों तक में फैल गई थी— फिर भी आपकी यह ख्याति आपमें थोड़ा-सा भी अभिमान न ला सकी थी। आपकी सौजन्यता असरकारक थी और जो आपके परिचय में आता था वह आपके इस गुण से प्रभावित होता था। ऐसा तो कभी नहीं होता था कि आपके पास कार्य से जाय और निराश होकर लौटे। जो आपके पास जाता उसकी बात पर आप पूरा ध्यान देते थे और घण्टों आपसे बातचीत करते रहने और आपके बहुमूल्य समय को लेते रहने पर भी ऐसा नहीं होता था कि आप कभी अघाये हों और बातचीत करने में बेरुख दिखायी हो। और यह एक बार नहीं परन्तु जितनी बार उनके पास जाना हुआ अनुभव में आया। 'ओसवाल नवयुवक' का एक विशेषाङ्क (महावीराङ्क) निकालने की तैयारियाँ हो रही थीं। आपके पास विद्वान लेखकों की सूची के लिए गया था। कई पुस्तकें भी आपके यहाँ से लानी थीं। आपने कोई एक दर्जन लेखकों के नाम मुझे दिए तथा खास-खास ५-७ व्यक्तियों के नाम से तो पत्र भी लिख दिये। मैंने पुस्तकें माँगी। उस समय आपके पास अन्य कोई ऐसा व्यक्ति न था जो मुझे पुस्तकें निकाल कर देता। आप खुद मेरे साथ पुस्तकालय में गये, मुझे बैठने के लिए कुर्सी दी और आप खुद पुस्तकें निकालने लगे। मैंने कहा आप यह कष्ट क्यों करते हैं, पुस्तकें मैं खुद निकाल लूंगा अथवा और एक दिन आकर ले जाऊंगा। परन्तु आपने कहा ऐसा नहीं हो सकता। आप पुस्तकों का अवलोकन कीजिए मैं निकाल-निकाल कर देता हूँ। कोई २०।२५ पुस्तकें भिन्न भिन्न अलमारियों से आपने मुझे निकाल कर दीं। इस एक बार ही नहीं परन्तु अनेकों बार आपकी इस हृदयग्राही सौजन्यता का अनुभव मुझे हुआ था।

नाहरजी में जितनी सौजन्यता और अपने विषय की लग्न थी उतना परिश्रम भी था। नाहरजी सुबह से लेकर रात को १०।११ बजे तक निरन्तर कार्य करते

रहते। वृद्धावस्था में भी आराम करते हुए उन्हें कभी नहीं देखा। निष्काम रहना उन्हें पसन्द न था और रुग्णावस्था में भी वे यथासाध्य परिश्रम करते थे।

युवकों के लिए तो नाहरजी एक मूर्त्तिमान प्रेरणा थे। आपने न मालूम कितनी बार मुझसे जातीय युवकों की अकर्मण्यता की शिकायत की थी और इस बात के लिए उलहना दिया था कि उनके संग्रह से हम युवकों में से कोई लाभ उठानेवाला नहीं। आपकी हार्दिक इच्छा थी कि युवक इतिहास और पुरातत्व के खोज के कार्य में भाग लें और इस दिशा में वे बार-बार प्रोत्साहन देते और सब समय आवश्यक सहायता करने की उत्कण्ठा दिखाया करते।

अभी-अभी कुछ महीनों पूर्व ही आप तीर्थ-यात्रा कर लौटे थे और इस बात का पूरा आत्म-सन्तोष अनुभव करते थे कि उन्होंने सभी तीर्थों के दर्शन कर लिए हैं। आपने अपनी यात्रा के कई शिक्षाप्रद अनुभव सुनाये थे और उन्हें लिपिबद्ध करने का भी आपका विचार था।

'ओसवाल नवयुवक' तो आपके उपकार का चिर ऋणी रहेगा। अन्तिम रुग्णावस्था में भी आपने इसको विस्मरण न किया था और उसके प्रथम अङ्क की प्रति मंगा कर उसका अवलोकन किया था। इस बार आपसे हमें पत्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी सामग्री मिलने की आशा थी आपका आशीर्वाद मय हाथ तो पत्र पर सदा था ही परन्तु प्रबल भावी को कौन देख सकता है? इधर ३।४ वर्षों में आपका स्वास्थ्य काफी गिर गया था फिर भी ऐसा तो मन में भी न आता था कि आपका प्रस्थान इतना शीघ्र ही हो जायगा। आपके स्वर्गवास से जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी शीघ्र पूर्त्ति होने की नहीं है। आज केवल जैन-समाज ही नहीं परन्तु सारा भारतीय विद्वान-समाज आपके निधन होने से शोक अभिभूत है।

ऐसे महान विद्वान, समाज के अनन्य हितैषी, इतिहास और पुरातत्व के अक्लान्त गवेषक को खोकर कौन दुःखी न होगा! समाज का कर्त्तव्य है कि ऐसे महान व्यक्ति की स्मृति को चिरस्थायी बनाये और उनकी यादगार में एक ऐसा स्मारक खड़ा करे जो भावी पीढ़ियों को इस स्वर्गीय आत्मा के गुणों का स्मरण कराता रहे।

स्व० सेठ गोविन्दरामजी नाहटा—

गत बैशाख मास में हमारे एक और विशिष्ट आदरणीय महानुभाव छापरनिवासी श्रीमान गोविन्दरामजी नाहटा का वियोग हो गया। आप कलकत्ता के प्रसिद्ध फार्म हुकमचन्द हुलासचन्द के मालिक थे और थली के ओसवाल समाज में आपका स्थान बहुत ऊँचा था। आप अपनी बात के जितने दृढ़ थे उतने ही विचारशील और दूरदर्शी भी थे। धनियों में पाई जाने वाली उल्टी पकड़ और झूठा जिद आप में न था—इन्हीं बातों के कारण आपका प्रभाव जन-साधारण पर बहुत अधिक था और जनता के आप पूरे सम्मान और विश्वास भाजन थे।

आप छापर के प्रमुख पँच थे और लोगों के आपसी मामलों को बड़ी निष्पक्षता और समझदारी पूर्वक सलटा दिया करते। गरीब और धनी दोनों के आप समान रूप से हितकारी थे। आपने अनेक मामलों को आपसी तौर से सलटाया था और अदालतों में जाने से होनेवाली बर्बादी से कईयों की रक्षा की थी।

श्री० गोविन्दरामजी पुरानी पीढ़ी के थे फिर भी नई पीढ़ी के युवकों के साथ आप की सहानुभूति यथेष्ठ

मात्रा में थी। आजकल की तरह युवकों का अनुचित विरोध करते रहने या आए मौके उनको बदनाम करते रहने की प्रवृत्ति आप में नहीं देखी गयी।

आपका जीवन धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत था फिर भी सार्वजनिक कार्यों से आप पूर्ण सहानुभूति रक्खा करते थे। छापर में स्कूल भवन बनाने में आपने काफी आर्थिक सहायता दी थी। इसी प्रकार अन्य सार्वजनिक कार्यों में आप समय-समय पर आर्थिक सहायता दिया करते थे।

इस प्रकार सेठ गोविन्दरामजी एक उदार विचारों के दूरदर्शी व्यक्ति थे। आपकी सादगी और धार्मिक प्रेम प्रशंसनीय था। सार्वजनिक सामाजिक कार्यों में आपका सदा सहयोग रहा करता था। आपसी झगड़े निपटाने में आपके निर्णय एक विचारशील न्यायाधीशसे कम न होते थे। यद्यपि आप थली के बाहर उतने प्रसिद्ध न थे फिर भी आप में हृदय और बुद्धि के ऐसे असाधारण गुण थे जिनके कारण आप सारे युवक समाज के लिए अनुकरणीय कहे जा सकते हैं। आपके वियोग से समाज की जो क्षति हुई है उसकी सहज में पूर्ति होने की नहीं है। आपके शोक संतप्त परिवार के प्रति हमारी हार्दिक समवेदना है।

समाज के जीवन मरण के प्रश्न:—

पत्र के प्रथम अङ्क से ही हमने एक स्तम्भ रक्खा था 'समाज के जीवन मरण के प्रश्न'। इस स्तम्भ के रखने का उद्देश्य था ऐसे प्रश्नों की चर्चा और उन पर लोकमत तैयार करना जो प्रश्न हमारे उत्थान और पतन से गाढ़ सम्बन्ध रखते हों। यों तो जो समूचे भारतवर्ष के सामने समस्याएँ हैं वे ही समस्याएँ हमारी भी हैं फिर भी इनके अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से प्रश्न हैं जिनका खास सम्बन्ध हमारे समाज के साथ है। इन प्रश्नों पर विचार करना और अपने को भारतीय समाज का एक अङ्ग समझते हुए और विशाल दृष्टिकोण को सामने रखते हुए उनको हल करना हमारा कर्तव्य है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह विवाह के अवसरोंपर वेश्यानृत्य ओसर मोसर आदि कुरीतियाँ तो ऐसी है जिन पर काफी विचार हो चुका है और उनके विरुद्ध लोकमत भी काफी तैयार हो चुका है। अब उन पर चर्चा करना समय और शक्ति बर्बाद करना है। इन कुरीतियों को दूर करने का काम तो अब खुद जनता पर भी छोड़ा जा सकता है अब हम लोगों को तो ऐसी नितान्त आवश्यक समस्याओं (Vital Problems) की ओर ध्यान देना चाहिए जिनको सुलझाए बिना हमारे जीवन के विकास और उसकी उन्नति में ही रुकावट आती हो। जिन आवश्यक परिवर्तनों के किए बिना उपरोक्त सुधार के कार्य अग्रसर नहीं हो सकते उन्हीं अनिवार्य परिवर्तन और सुधारों की ओर अब ध्यान देनेकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, शिक्षा का प्रश्न। दर असल बाल-विवाह वृद्ध-विवाहादि कुरीतियाँ हमारा उतना बिगाड नहीं कर सकतीं जितना बिगाड़ हमारी अज्ञानता, हमारी जड़ता करती है।

वास्तव में हमारा समाज शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत कम आगे बढ़ा है। अब आवश्यकता इस बात की है कि वह उस ओर द्रुतगति से आगे बढ़े। जो थोड़े शिक्षित हमारी समाज में हैं उनकी बेकारी के कारण शिक्षा के प्रति समाज की कुछ उपेक्षा—सी हो गयी है। परन्तु हम इस बात को भी नहीं भुला सकते कि शिक्षित युवकों की बेकारी उनकी शिक्षाके कारण नहीं परन्तु ऐसे कारणों से है जो वर्तमान विषम परिस्थिति से उत्पन्न

हुए हैं। साथही यह भी विचारने की बात है कि बहुत से शिक्षित युवकों ने अपने जीवन में यथेष्ठ उन्नति भी की है और शिक्षा पाने की सार्थकता सिद्ध कर दिखायी है। शिक्षित युवकों की बेकारी के कारण भी बहुत हद तक वे ही हैं जो अशिक्षित युवकों की बेकारी के हैं। शिक्षा के प्रचार के विषय में मतभेद की गुञ्जायश नहीं है। हाँ यह अवश्य विचारणीय है कि शिक्षा कैसी हो। हम जब शिक्षा प्रचार की बात कर रहे हैं तो हमारा मतलब उस शिक्षा से है जो जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति कर सके। जहाँ कमा खाने की योग्यता उससे आये वहाँ वह ऐसी भी हो जो हमें सबसे पहले मनुष्य बनावे। यदि शिक्षा केवल कमा खाने के साधनरूप ही हो तो वह निरर्थक है। शिक्षा का सच्चा अर्थ जीवन का विकास है जो जीवन को विकसित न कर सके वह शिक्षा ही कैसी। समाज के जीवन-मरण से सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रश्न हुआ। इसी प्रकार और भी बहुत से ऐसे प्रश्न हैं जो समाज के गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता रखते है।

गतांक में और इस अङ्क में भी हमने एक प्रश्न उठाया है—और वह हमारे व्यापारिक जीवन सम्बन्धी। हमारे व्यापारिक-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली खास विचारणीय बातें ये हैं:—

१—हमारे हाथ में बहुत कम व्यवसाय हैं ऐसे कौन से व्यापार है जिनमें हम प्रवेश कर सकते हैं?

२—जो व्यापार हमारे हाथ में है उनमें हमारे पैर उखड़ रहे है। सालोसाल घाटे का सामना करना पड़ रहा है। इसका उपाय क्या है?

३—फाटके का प्रचार घटने के स्थान में बढ़ रहा है। जहाँ पहिले यह बड़े-बड़े नगरों में हो था वहाँ अब छोटे-छोटे गावों में भी फाटके हो रहे है और उनसे हमारी जड़ें हिल रही है। आर्थिक संकट के साथ-साथ भयानक नैतिक पतन हो रहा है। इससे हमारी रक्षा कैसे हो? फाटके का व्यापार कैसे जड़मूल से उखड़े? हमारा रोमाञ्चकारी आर्थिक पतन कैसे रुके?

४—ऐसे कौन से व्यवसाय हैं जो हम अपने घर—राजस्थान में भी कर सकें।

५—हमारी पद्धति केवल खुद ही की पूंजी से व्यवसाय करने की है। हमारी आर्थिक दुरवस्था का यह भी एक कारण है। थोड़ा-सा घाटा हो जाने पर हमें अपने सर्वस्व तक को होम देना पड़ता है—यहाँ तक कि खाने के लिये भी मुहताज़ हो जाना पड़ता है। व्यापार करने की ऐसी कौनसी पद्धतियाँ हम अपनावें जिनमें सचाई की पूरी रक्षा करते हुए भी इस अधःपतन से हम बच सकें?

६-हमारा पारस्परिक विश्वास कम होने का कारण क्या है—हम फिर से उस पारस्परिक विश्वास को कैसे उत्पन्न कर सकते हैं?

इन सब प्रश्नों पर विचार करना और ऐसे मार्ग को अपनाना जो हमारे लिये लाभदायक हो परमावश्यक है। हमें आशा थी कि हमारे उठाये हुए प्रश्न पर काफी विचार होगा और वे विचार प्रकाशनार्थ भेजे जायंगे। परन्तु वैसा नहीं हुआ। हम व्यापारी-समाज से इन विषयों पर विचार करने का तथा अपने विचार पत्र में प्रकाशनार्थ भेजने का अनुरोध करते है। हम भी समय-समय पर इन प्रश्नों पर अपने विचार पाठकों के सम्मुख रखते रहेंगे। 'समाज के जीवन-मरण के प्रश्न' स्तम्भ में ऐसे प्रश्नों की चर्चा बराबर रहा करेगी। आशा है पाठक इन चर्चाओं में भाग लेकर हमारी योजना को सफल बनावेंगे।

एक परिवर्तनः—

इस अङ्क के मुख पृष्ठ पर पाठकों को एक परिवर्तन नज़र आया होगा—सम्पादकों में श्री सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए की जगह श्री विजयसिंहजी नाहर बी० ए० का नाम। इस आकस्मिक परिवर्तन से पाठकों के हृदय में शंका उठना स्वाभाविक है कि ऐसा क्यों हुआ और इसका कारण क्या है ? प्रश्न उठना स्वाभाविक है फिर भी हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि इस परिवर्तन का ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे किसी प्रकार की शंका उपस्थित हो। पत्र का सम्पादन और संचालन तो पूर्ववत् होता ही रहेगा पर यह परिवर्तन तो केवल कुछ Formal (व्यावहारिक) और technical (टैक्नीकल) कारणों और परिस्थितियों के वश करना पड़ा है। पाठक इससे और किसी प्रकार का अर्थ न निकालें।

श्री सिद्धराजजी का सहयोग तो हमें सदा पूर्ववत् प्राप्त है ही परन्तु यहां पर हम इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि--ढड्ढाजी जिस परिश्रम और लगन से पत्रका सम्पादन करते रहे हैं उसके लिए वे अनेक धन्यवाद के पात्र हैं।

Reg. No. C 1668

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं घेवरचन्द बोथरा द्वारा
२८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

वर्ष ७, संख्या ३ जुलाई १९३६

यह खयाल कि गृहस्थाश्रम तो भोग-विलास के लिए है, भ्रम पूर्ण है। हिन्दू धर्म की सारी व्यवस्था ही संयम की पुष्टि के लिए है। इसका अर्थ यह हुआ कि भोग-विलास हिन्दूधर्म में कभी अनिवार्य हो ही नहीं सकता। गृहस्थाश्रम में भी सादगी और संयम दूषण नहीं, बल्कि भूषण ही समझे गये हैं।

परन्तु, संयम के आदर्श का पोषण करते हुए भी, मनुष्य कितने ही भोगों के प्रति होने वाले आकर्षण को रोक नहीं सकता। इसलिए गृहस्थाश्रम का धर्म उन भोगों की मर्यादा बना देता और उनके सेवन की विधि बता देता है।

—महात्मा गान्धी

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— { गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए० }

लेख-सूची

[जुलाई १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१ —'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता तथा विज्ञापन—प्रकाशन, पता—परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैः—

कोभर का द्वितीय पृष्ठ	रु० १८)
,, ,, तृतीय ,,	१५)
,, ,, चतुर्थ ,,	२५)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	१०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	७)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	४)
,, चौथाई कालम	२।।)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता

श्रीयुक्त "राजभूषण" 'रायबहादुर' सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी, इन्दौर

आप ओसवाल समाज में एक बहुत बड़े इण्डस्ट्रीयलिस्ट हैं। आप उन्नत विचारों के शिक्षित व्यक्ति हैं। आप सन् १९३३ में होनेवाले नासिक जिला ओसवाल सम्मेलन के सभापति भी चुने गये थे। आप अपनी उदारता और व्यापारिक कुशलता के लिए प्रसिद्ध हैं। आप 'भण्डारी विद्यालय', 'भण्डारी प्रसूति गृह' तथा 'भण्डारी बोर्डिङ्ग' आदि लोकोपकारी संस्थाओं के संस्थापक हैं।

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियाँ और शुभ कामनाएँ

ओसवाल नवयुवक का दूसरा अंक मिला। ओसवाल समाज को अपने एक ऐसे मासिक पत्र की नितांत आवश्यकता है जिसमें कि सभी विषयों पर काफी मशाला पढ़ने को मिल सके। हर्ष है कि सुयोग्य संपादकों के नेतृत्व में इसने पुनर्जन्म लिया। शासन देव की कृपा से अवश्यमेव उन्नति होगी।

रतनचंद गोलेछा

उप सभापति

श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन

जबलपुर सी० पी०

ओसवाल नवयुवक का पहला व दूसरा अंक मिले। सच-मुच दोनों अंक आशा से अधिक सुन्दर निकले हैं। लेखों का चयन अच्छा हुआ है। दोनों ही अंकों की 'राजस्थान' कविता बहुत बढ़िया बन पड़ी है। दूसरे अंक की 'न्याय ?' कहानी मुझे बहुत पसन्द आई। 'कवि की कविता' गद्य काव्य भी मधुर है! मेरी हार्दिक कामना है कि ओ० नवयुवक अपनी समाज का प्रिय पात्र होकर अपने उद्देश्य में सफल हो!

रामलाल दूगड़।

स्नेह सदन, कस्तला

हापुर, ता० ६—७—३६

श्रीयुत सम्पादक प्रवर,

आपके 'नवयुवक' के दोनों अङ्कों को देख कर हृदय हर्ष विभोर हो उठा। आज इस बात की आशा हो गई कि अब हम भी निकट भविष्य में सुधा, माधुरी अथवा सरस्वती की टक्कर का साहित्य अपने समाज में प्रकट कर सकेंगे। नये-नये उच्च कोटि के विद्वानों को आपने साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण किया है, जिन्होंने परिष्कृत और परिमार्जित शैली की रचनाओं से हमारे सामाजिक पत्र को सुशोभित किया है। वास्तव में आप धन्यवाद के पात्र हैं। यदि आप मेरे पास होते तो इस सफलता पर आप को हृदय से लगा लेता।

लेख और लेखकों के विषय में जितना लिखा जाय थोड़ा है। लेखों का चुनाव अत्यन्त सामयिक हुआ है।.... सम्पादक द्वय का यह लक्ष्य में रखना सर्वथा स्तुत्य है।....

अधिक क्या लिखू, आपने जैसा उत्तम, रुचिर, मनोरंजक और उच्च श्रेणी के लेखों का चुनाव किया है, उसे देख कर यही कहना पड़ता है कि सम्पादन सर्वाङ्गीण सुन्दर हुआ है।

कन्हैयालाल जैन।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] जुलाई १९३६ [संख्या ३

अमर स्वर

[श्री पूर्णचन्द्र दुंकलिया एम० ए०, विशारद]

बाल रवि ! आलोक दे तू ।
गहन-तम-पर्यङ्क-सुप्ता,
अलस-प्राणा वेदना, फिर,
सजग हो । तम दूर कर तू ॥

वेदने ! ले हृदय-वीणा,
उँगलियों में नृत्य भर री !
कल्पना के तार झूमें,
झंकरित हो हृदय-वीणा ॥

एक निर्जन नीर निर्झर
सतत बहता, फेंकता जो
विमल सीकर शून्य की दिशि ;
नाद उसका जो मनोहर ;

उच्चतम नभ-प्रांत में, है—
विहग-रव जो एक अभिनव ;
दूर-दक्षिण-प्रान्त-आगत
पवन की जो सरस ध्वनि है ;

—और भी, जो हैं छिड़े स्वर,
हृदय-वीणा-जनित स्वर में
होंय लय सब । मात्र गूंजे—
एक मेरा ही अमर स्वर ॥

नाहरजी के साथ परिचय

[श्री वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, एल-एल० बी० अध्यक्ष, मथुरा म्यूजियम]

यों तो अपनी छात्रावस्था में ही मैं श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर का नाम पढ़ और सुन चुका था। वे कलकत्ते के प्रसिद्ध विद्वान् और पुरातत्त्व के प्रेमी अन्वेषक थे यह मुझे मालूम था।

सन् १९३१ में मुझे मथुरा के पुरातत्व विषयक संग्रहालय (Archaeological Museum) के अध्यक्ष पद को स्वीकार करने का अवसर मिला। उसके एक वर्ष बाद मई १९३२ में पहली बार श्री नाहरजी का एक पत्र मुझे मिला जिसमें उन्होंने अपने जीवन-कार्य का परिचय देते हुए लिखा था—

"I am engaged in preparing a volume on Mathura Inscriptions and am in urgent need of rubbings of the Jain Inscriptions on sculptures and other objects, that are now deposited in your Museum......I have also published 3 volumes of Jaina Inscriptions and am preparing the fourth one containing early inscriptions."

अर्थात्—"मैं मथुरा के शिलालेखों के सम्बन्ध में एक पुस्तक तैय्यार कर रहा हूं और उसके लिये मुझे आपके संग्रहालय में रक्खे हुए पत्थर तथा अन्य वस्तुओं पर खुदे हुए जैन लेखों की छाप की आवश्यकता है।...मैं जैन शिला लेखों के विषय में तीन जिल्द तो प्रकाशित कर चुका हूं और प्रारम्भिक काल के शिला लेखों से सम्बन्ध रखनेवाली यह चौथी जिल्द तैयार कर रहा हूं।"

इसी के साथ नाहरजी ने डायरेक्टर जनरल आफ आरकियोलोजी को लिखे हुऐ एक पत्र की नक़ल भी भिजवाई थी जिसका आशय यह था कि हमारा परिचय मथुरा के नये क्यूरेटर (संग्रहालय के अध्यक्ष) से नहीं है अतएव आप कृपा कर उनको लिख दें कि वे हमारे कार्य में सहायता करें।

नाहरजी जैसे कर्मनिष्ठ विद्वान् का पत्र पाकर किसे आनन्द न होता और मैंने शीघ्र ही जैन-लेख-संग्रह ग्रन्थ के लिए आवश्यक छाप और सामग्री भेज दी। इसके उत्तर में नाहरजी ने जो लिखा था वह सौजन्यता से पूर्ण होने के साथही-साथ भावी का सूचक भी था—

"I need hardly mention that if I am spared to publish the volume on Mathura, it will be my pleasant duty to acknowledge all your help which you have ungrudgingly given to me whenever required."

अर्थात् "यदि दैव कृपा से मैं अपने मथुरा-लेख-संग्रह को प्रकाशित करने के लिये जिन्दा रहा तो

उसमें आपकी सहायता का उल्लेख करके आभार मानने में मुझे आनन्द होगा।"

आज यह वाक्य हृदय में एक शूल उत्पन्न करता है। नाहरजी इस लोक में नहीं हैं और उनका संकल्पित कार्य भी अधूरा ही रह गया। पिछले वर्ष २६ नवम्बर के पत्र में मेरे एक पत्र का उत्तर देते हुए उनकी लेखनी से कुछ और भी ऐसे ही आशंकापूर्ण शब्द निकले थे:—

"Regarding the publication of the Mathura Inscriptions, I am myself anxious for it. There are still several rubbings wanting. About one fourth the number of inscriptions require inspection before their descriptions can be given. I am also anxious that the work may be out before I breathe my last."

"मथुरा के लेखों के प्रकाशन के लिए मैं स्वयं बहुत चिन्तित हूं। पर अभी उस सम्बन्ध में कई छापें लेना बाक़ी है और क़रीब चौथाई लेखों को फिर से मिलाना भी है। मेरी अभिलाषा है कि मेरे अन्तिम श्वास लेने के पहले ही ग्रन्थ प्रकाशित हो जाय।" इसके १५ ही दिन बाद ९ दिसम्बर १९३५ को उनका एक दूसरा पत्र मिला जिसे देख कर मुझे आनन्द हुआ। उसमें लिखा था—"इस पत्र के साथ मैं चौथी जिल्द के पहले लेख का प्रूफ भेज रहा हूँ। आप उसका संशोधन करके अपनी सम्मति के साथ मेरे पास भेज दीजिएगा। मैं अब कुछ महीनों के लिए माईसोर ओरियंटल कान्फ्रेन्स, और दक्षिण यात्रा के लिए जा रहा हूँ और लौट कर पुस्तक को छपने के लिए प्रेस में भेज दूंगा"।

परन्तु भावी प्रबल है। नाहरजी दक्षीण यात्रा को गए, वहां से लगभग चार मास बाद सकुशल लौट भी आए, परन्तु जिस कार्य को पूर्ण करने और देखने की उनकी बहुत दिनों की अभिलाषा थी, उसके पूर्ण होने से पहले ही उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

नाहरजी अत्यन्त सौम्य और सात्त्विक प्रकृति के पुरुष थे। उनके चिरञ्जीव पुत्र श्री विजयसिंहजी से हमें मालूम हुआ कि अन्त समय तक उन्हें पूर्ण ज्ञान था और बड़े आनन्द से भगवद् ध्यान करते करते समाधि के साथ उन्होंने मृत्यु का सामना किया। वस्तुतः नाहरजी बड़ी अगम्य-धीर-प्रकृति के पुरुष थे। उनका इस प्रकार का शान्त पर्यवसान स्वाभाविक ही था।

नाहरजी के साथ मेरा विशेष घनिष्ट परिचय तो मार्च १९३५ में हुआ। इससे पहले भी वे एक बार मथुरा आये थे, पर मैं उन दिनों छुट्टी पर लखनऊ गया था। इधर लौटते हुए नाहरजी ने मेरे स्थान को पवित्र करने की कृपा की, तभी से उनके सौजन्य ने मुझे आकृष्ट किया। यद्यपि वे धनी और सम्भ्रान्त थे पर अभिमान उनको छू भी नहीं गया था। साहित्यानुरागी व्यक्ति को जैसा मिलनसार होना चाहिए, नाहरजी वैसे ही थे।

मार्च में मैं कलकत्ते गया। रात को ८ बजे नाहरजी से फोन पर बातचीत की। मैं होटल में ठहरा था। उत्तर मिला—"अभी कार भेजता हूं आप यहीं आकर ठहरिए।" तुरन्त ही दस मिनट बाद उनकी मोटर आकर खड़ी हो गई। मैं तो उनकी विद्वत्प्रियता और सौजन्य को देखकर मुग्ध हो गया। प्रथम बार ही इस प्रकार खुल कर मिले मानों जन्मान्तर का परिचय हो। फिर तो मैं दो दिन उनके यहां ठहरा। दूसरे दिन वे अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के यहां

मुझे ले गये और उनसे परिचय कराया। कला के अनन्य पुजारी अवनी बाबू और पुरातत्व के अनन्य भक्त नाहरजी का सम्मिलन और मित्रवद् व्यवहार दर्शनीय था। उस प्रातःकाल की स्मृति मेरे मन पर अभी तक अंकित है। अवनी बाबू से लोमश ऋषि के पौराणिक स्वरूप की कलात्मक अभिव्यक्ति पर बात-चीत हुई। उन्होंने कहा—हां भाव तो श्रेष्ठ है, पर इसका चित्रण कठिन है। तदनन्तर उनके अचिर प्रकाशित पत्र के लिए लेख भेजने का निमन्त्रण लेकर मैं नाहरजी के साथ महाबोधि सोसाइटी देखते हुए स्थान को वापिस आया।

नाहरजी के उत्साह को देख कर मुझे उस समय भी आश्चर्य हुआ था, और आज भी उसका स्मरण करके मेरे मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। दो दिन तक बराबर मेरे साथ खड़े रह कर उन्होंने मुझे अपना पुरातत्व वस्तुओं का संग्रह और अपना पुस्तकालय दिखलाया। कला और इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों के सम्बन्ध में मैं यह अपने अनुभव से कह सकता हूं कि Director General of Archaeology का देहली वाला पुस्तकालय भी इतना पूर्ण नहीं मिला जितना नाहरजी का। यहां मुझे परास्त हो जाना पड़ा, जो ग्रन्थ मैं मांगता वही मुझे मिल जाता। पुराने सचित्र ग्रथों को नाहरजी किस प्रेम से दिखलाते थे ? कई ग्रन्थ तो मैंने ऐसे देखे जो अन्यत्र कहीं न मिलते। नाहरजी का हिन्दी साहित्य का पुस्तकालय भी पूर्ण था। सबसे नया उपन्यास साहित्य भी उनके संग्रह से नहीं बच पाया था।

नाहरजी पुरातत्व की मूर्त्ति थे। उनको संग्रह का कितना शौक़ था इसके उदाहरण के लिए मैं केवल तीन अल्बमों का जिक्र करता हूं जो मैंने उनके पास देखे:—

(१) विवाह की निमन्त्रण पत्रिकाओं का संग्रह—इसमें एक से एक विचित्र छपे हुए रंगीन पत्र हमें देखने को मिले। स्वयं नाहरजी के विवाह का पत्र भी था। रवीन्द्र बाबू के परिवार के भी कुछ पत्र थे।

(२) हिन्दी मासिक पत्रों के मुख पृष्ठों (covers) का अल्बम।

(३) बिहार-भूकम्पके सम्बन्ध में दैनिक—साप्ताहिक और मासिक पत्रों में प्रकाशित कविताओं का संग्रह।

नाहरजी मासिक पत्रों में प्रकाशित चित्रों का संग्रह भी बड़े यत्न से करते थे। पर इसके लिए वे अपने फ़ाइल के मासिक पत्र की काट-छांट नहीं करते थे, वरन् उसी प्रेस से उस चित्र की एक दूसरी प्रति मंगा कर चित्रावली में पृथक् रखते थे। इसमें उनको पर्याप्त परिश्रम और धन व्यय करना पड़ता था।

उनके सुखी परिवार को देखकर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ था। उन्होंने एक आदर्श पिता या आर्य गृहस्थ (Pater Familias) की तरह अपने चारों पुत्रों के लिए अलग-अलग भवन बनवा दिये थे और वे सब स्वतन्त्र व्यवसाय में संलग्न होकर प्रीतिपूर्वक रहते थे। किसी प्रकार का मालिन्य वहां न था। नाहरजी का एक आश्रम प्राचीन तपःपूत राजगिरी की उपत्यकाओं में बना हुआ था। वर्ष में कुछ मास वे वहां अवश्य व्यतीत करते थे। मुझे भी उन्होंने वहां निवास करने और गरम जल के सोतों का आनन्द उठाने का निमन्त्रण दे रक्खा था, पर इसके पूर्व ही कि मैं उसका उपयोग कर सकता, आज मैं नाहरजी की स्मृति का भार लेकर इस लेख के लिखने को बाधित हुआ हूं। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।

स्याद्वाद का मूल-मन्त्र

[श्री शान्तिलाल व० शेठ]

हमारे तीर्थनायक भ० महावीर के जीवन में से हमें कोई अनोखी जीवनोपयोगी चीज़ यदि मिलती है तो वह है समन्वय। इस समन्वय-शक्ति के द्वारा ही भ० महावीर ने जन-समाज के हृदय में अपना प्रभुत्व जमा लिया था और सामाजिक व धार्मिक भिन्नता को भिन्न कर मानव-समाज को अभिन्न बना दिया था। जातिवाद के भेद भाव से जिन्होंने मानव-समाज की अभिन्न भित्ति को तोड़ फोड़ दी थी भ० महावीर ने गुणवाद के समन्वय-चूने से उसे पुनः चुन दी और इस प्रकार छिन्न भिन्न हुए मानव-संघ को अखण्ड-अभिन्न बना दिया था।

मानव मानवता के लिहाज़ से एक ही है। उसकी मानवता को कोई अपनी धार्मिक व आर्थिक सत्ता के द्वारा लूट नहीं सकता—लूटने का किसी को अधिकार भी नहीं है—यह अखण्डता एकता का आदर्श भगवान महावीर ने निर्भीक होकर संसार के सामने उपस्थित किया था। यह आदर्श सब जीव मात्र को 'सब जीव करूं शासन रसी" शासन में समानाधिकार देने वाला था। भ० महावीर ने इस आदर्श को जीवन में परिणत करने के लिए अनेक योजनाएँ जन-समाज के समक्ष उपस्थित की थीं। उनमें सङ्घ-व्यवस्था और स्याद्वाद की नीति का स्थान मुख्य था। सङ्घ-व्यवस्था द्वारा धर्मविमुख जीव धर्मोन्मुख कर सङ्घ-शासन में सम्मिलित किए जाते थे और स्याद्वाद के सिद्धान्तों के द्वारा सङ्घ-शासन की व्यवस्था की जाती थी। जैन सङ्घ जब तक इन दोनों व्यवस्थाओं को अपनाये रहा तब तक वह अखण्ड-शक्ति-सम्पन्न भी रहा अपना स्वत्व गौरव निभा सका और एक व्यवस्थित सङ्घ के नाम से टिका रहा। किन्तु ज्यों-ज्यों सङ्घ-व्यवस्था और स्याद्वाद के सिद्धांत का लक्ष्य विस्मृत और विकृत होने लगा त्यों-त्यों जैन-सङ्घ के प्रति जन समाज की अभिरुचि कम होने लगी इतना ही नहीं किन्तु उसी अखण्ड जैन-सङ्घ में अनेक प्रकार के विचार भेद पैदा हो गये और अन्त में इन विचार भेदों ने ऐसा उग्ररूप पकड़ लिया कि जैन-सङ्घ अनेक सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों में विभक्त हो गया। अखण्ड जैन-सङ्घ अनेक खंडों में बँट गया और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि यदि जैनसङ्घ ऐसा ही खंडित बना रहा तो उसका भविष्य बहुत करुणाजनक होगा। जैनसङ्घ की जो दर्दनाक दशा दृष्टिगोचर हो रही है, इसके जिम्मेदार वे ही लोग हैं जिन्होंने सङ्घ-व्यवस्था और स्याद्वाद की नीति की परवाह तक नहीं की है।

जो जैन-सङ्घ मानव-समाज का एकीकरण करना चाहता है आज वही जैनसंघ कितने सम्प्रदाय— उप-सम्प्रदायों में विभक्त हो गया है? आज हमारे इन सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों ने जैन-शासन शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं। यदि हम अपने जैन शासन शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं तो सङ्घ-व्यवस्था और स्याद्वाद के सिद्धांतरूप अन्न-जल पर पूरा ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

जैन-सङ्घ में जो साम्प्रदायिकता की विषबेल दिन प्रति दिन विकसित होती जा रही है उसे अब उखाड़ फेंक देने का समय आ पहुंचा है। सभी सम्प्रदायों उपसम्प्रदायों को स्याद्वाद सिद्धान्त का आश्रय लेकर परस्पर समन्वय कर लेने का समय धर्म आदेश दे रहा है। समय-धर्म के इस सन्देश को यदि हम नहीं सुनेंगे तो समय-धर्म हमें सुनाने के लिये बाध्य करेगा। हमें यह न भूलना चाहिये कि ज्यों-ज्यों हम स्याद्वाद को अपने जीवन में मूर्त रूप देते रहेंगे त्यों-त्यों हमारा जैन सङ्घ अखण्ड बनता जायगा। इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं है। स्याद्वाद का स्वरूप नहीं समझने के कारण ही आज हममें 'मेरा तेरा' की अनिष्ट भावना पैदा हुई है। वास्तव में स्याद्वाद का सिद्धान्त यह केवल तर्क का या वादविवाद करने का ही विषय नहीं है। यह तो जीवनसाध्य एक तत्त्व है, बिखरे हुए धर्म तत्त्वों को समन्वय करने वाला अमोघ साधन है।

स्याद्वाद का धर्म अखण्डता का धर्म—एकता का धर्म—समन्वय करने वाला धर्म है। इस महान धर्म को भूल कर जो सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय 'सच्चा वह मेरा' इस सिद्धांत की उपेक्षा कर 'मेरा वह सच्चा' ऐसी भ्रमणा में भटक रहे हैं—उन्हें सद्धर्म सुनाने वाला स्याद्वाद धर्म है।

'धर्म की ऐक्यभावना को जीवनध्येय मान कर व्यवहार करो' यही स्याद्वाद का मूलमन्त्र है। अमुक दृष्टिबिन्दु से प्रत्येक का मन्तव्य ठीक है किन्तु उसे अन्तिम सत्य न मान बैठो। मन्तव्य सत्य प्राप्ति का साधन हो सकता है साध्य नहीं। हमारा साध्य तो सत्य प्राप्ति है और उस सत्य की शोध स्याद्वाद के द्वारा की जा सकती है। जो व्यक्ति या सम्प्रदाय "मैं कहता हूँ वही सत्य है" मानता है और उसे ही मानने के लिए दूसरों को बाध्य करता है वह सत्यधर्म से कोसों दूर है, स्याद्वाद-सिद्धांत के 'अ-आ' को भी नहीं समझ सका है। जब इस मताग्रह बुद्धि को एक बाजू रख कर स्याद्वाद की शैली से सत्य समझने का प्रयास किया जायगा तब सत्यार्थ की प्राप्ति हो सकेगी, अन्यथा नहीं। मताग्रहबुद्धि सत्य का स्वरूप समझने में महान् बाधक है।

भगवान महावीर की उपदेशशैली स्याद्वादात्मक है। यदि हम महावीर के धर्मपुत्र होने का दावा करते है तब महावीर के धर्म-बोध को समझने के लिये स्याद्वाद के सिद्धान्त को जीवन में मूर्त रूप देना आवश्यक है।

भगवान् महावीर के प्रत्येक उपदेशवाक्य में स्याद्वाद का सिद्धान्त टपक रहा है। प्रतिदिन महावीर की वाणी सुनने पर भी अभी तक मेरा तेरा' की अनिष्ट भावना जैन-सङ्घ के स्तंभरूप साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका सभी में दृष्टिगोचर होती है यह वास्तव में जैनसङ्घ के लिए खतरनाक है। इस भावी अनिष्ट को दूर करने के लिए श्रमण-सङ्घ और श्रावक-सङ्घ को स्याद्वाद के मूल-मन्त्रऐक्य धर्म—अखण्ड धर्म को जीवन में स्थान देने के लिये संकल्प कर लेना चाहिये, उसीमें खुद का और जैनसङ्घ का कल्याण रहा हुआ है। राष्ट्र, समाज और धर्म के हित की खातिर एक दूसरे को परस्पर हाथ से हाथ मिला कर खड़े होने की आवश्यकता है। और जब अनेक में से एक, खण्डों में से अखण्ड बनेंगे तभी जैन-सङ्घ और जैनधर्म का कल्याण होगा—यह सुनिश्चित है। स्याद्वाद के मूल मन्त्र अखंडता—एकता धर्म को समझने की वर्तमान समय में अनिवार्य आवश्यकता है।

'एक बनो! अखण्ड बनो! अविभक्त रहो!' यह

स्याद्वाद का मूल मन्त्र है—इस मूल मन्त्र को समझने समझाने और आचरण करने में ही भ० महावीर का आज्ञा पालन रहा हुआ है।

जैनसंघ को एक, अखण्ड और अविभक्त बनाने के लिए प्रत्येक जैन को मोहजन्य साम्प्रदायिकता को छोड़ कर जैनत्व का उद्योत करने कराने में प्रयत्नशील रहना चाहिये उसीमें उसकी जैनसंघ की सेवा और भ० महावीर की पूजा रही हुई है।

याचना

[श्री दिलीप सिंघी]

प्रिय ! उड़लेने दो एक बार, मन भर कर। क्यों कुचल डालते हो इस तड़फ को ? मनके इस उफान की भी एक बार तो रंगरेली हो जाने दो। देखते नहीं चारों ओर आशा मेरे साथ अठखेलियाँ करती नज़र आती है ? उसकी सुन्दर मादकता में एक बार तो बह लेने दो !

ऐसा लगता है, हृदय का ज़र्रा २ बेताब हो रहा है। प्रिय ! तुम तो मेरे सब हितेच्छु हो समझ में नहीं आता कि किस आशंका ने तुम्हें मेरे प्रति इतना सशंक बना दिया है। तुम्हें शायद यह डर हो कि यह पागल परवाना अपनी अतृप्त तृषा को शान्त करने की उमंग में दावानल में अपने अपूर्ण दिव्य जीवन की आहुति दे दे, या शायद यह हो कि यह तोता एक बार उड़ लेने पर फिर सदा के लिए हाथ से निकल जाय ? मैं क्या करूंगा यह तो मैं नहीं जानता पर एक बार ही सही मुझे मुक्त कर दो।

मैं रोऊँ मुझे रो लेने दो, मैं हसूँ मुझे हँस लेने दो। बस मेरी किसी क्रिया पर कोई प्रतिबन्ध न हो। आह ! तुम्हें भय है मैं स्वेच्छाचारी होकर अपने कर्तव्यपथ को भूल जाऊँ ? तुम्हें डर है निखिल विश्व के प्रेम पाश में पड़ कर मुझे तुम्हारे मोह की याद ही न आए ? शायद मेरी नज़रों में तुम्हारा महत्व कम हो जाय ? पर, प्रिय ! यह अनुदारता क्यों ? अपने सरोवर पर जितना तुम्हें पीना हो पीलो पर बचे हुए तुम्हारे विमल नीर पर यह मोनोपली (monopoly) क्यों ? ?

हमारी पंचायतें

[श्री पन्नालाल भण्डारी बी० ए० (आनर्स), बी० काम०, एल-एल० बी०,]

पंचायतें भारतवर्ष की प्राचीन प्रजा-तन्त्र शासन-प्रणाली की संस्थाएँ हैं। काल के प्रवाह में जैसे २ प्रजा-तन्त्र राज्य-प्रणाली का ढांचा जर्जरित होता गया वैसे ये सामाजिक और साम्प्रदायिक संस्थाएं भी अपनी व्यवस्था में निर्बल होती गई। एक-तन्त्र शासन-प्रणाली के प्रादुर्भाव के कारण पञ्चायतों की न्याय-शक्ति उनके संचालकों के व्यक्तिगत चरित्र पर ही अवलम्बित हो गई। उधर संचालक या सरपञ्च योग्यता के अनुसार न चुने जा कर नसलन (heriditary) होने लगे। बस, यही इस सस्ते और सरल न्याय-मन्दिर के अधःपतन का श्रीगणेश हुआ।

पंचायतों की शक्ति व हक़ कम हो गये। जो संस्थाएं मानव-जीवन के प्रत्येक सामूहिक झगड़े का निपटारा करने का हक़ रखती थीं उनका कार्यक्रम अब केवल अमुक सामाजिक मामलों तक ही सीमित हो गया। और आज तो इस छोटे दायरे के रहते हुए भी संचालकों के चरित्र-बल के अभाव में हमारी कई पञ्चायतें अनीति, स्वार्थ, और वैमनस्य का अखाड़ा बन रही हैं। आज यही पंचायतें अनेक तिलकधारी और लक्ष्मीपुत्र सरपन्चों के अपना उल्लू सीधा करने का हथियार बन रही हैं, और ग़रीबों पर इनके द्वारा अत्याचार हो रहे हैं। इन पञ्चायतों के कट्टर नियम धनवानों के लिये नहीं केवल ग़रीबों के लिये ही रहे हैं! जाति-बहिष्कार अत्याचार का साधन बन गया और उधर अनाचार के पुतले धनवान अपने धन के बल पर गुलछर्रे उड़ाने लगे। इन पंचायतों द्वारा जाति बहिष्कार का चक्र समाज-सुधारकों पर भी चलाया जाने लगा क्योंकि उन्हों ने इन सरपञ्चों की पोल खोलना शुरू कर दिया और उनके अशिक्षित अनुयायियों को सचेत कर दिया कि इन तिलकधारियों के विषैले जाल से मुक्त हों। समाज का सस्ता धन अब इन अग्रगणों की थैलियों में जाना कम हो गया। आज हमारे समाज में कई ऐसी संस्थाएं हैं जिनका कई वर्षों का हिसाब समाज को नहीं बताया जा रहा है। इस तरह समाज के धन का बहुत बड़ा हिस्सा तिलकधारियों की निजी पूंजी बन गया है। दूसरी और कई ग़रीब भाई पूञ्जी के अभाव में बेरोज़गार घूम रहे हैं। इस संस्था की आधुनिक व्यवस्था को जितना खोल कर देखा जाय उतने ही पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं।

पंचायत संस्था का यह चित्र-देख कर हम दो आंसु बहाकर बैठ जांय तो कुछ न होगा। ठहर कर शान्त चित्त से हम इस संस्था के पुनरुद्धार का मार्ग ढूंढें और उसके लिये समाज में जागृति पैदा करें। हमारे समाज के सुधार का यह सुगम और सरल मार्ग होगा।

लेखक की राय में इस संस्था को सुधारने की निम्नलिखित रूप रेखा है:—

पंचायती बखेड़ों की बुनियाद उसके संचालकों में ही छिपी है। सरपञ्च का चुनाव आज कल बजाय योग्यता के वंश-परम्परा (Heridity) पर निर्धारित

है। सरपञ्चों में सेवा, उदारता और परोपकार के गुणों का होना आवश्यक है उसके स्थान पर हम पशु-बल, निष्ठुरता और स्वार्थ देखते हैं। सच यही है कि सरपञ्चों का चुनाव योग्यता पर नहीं होता है। अतएव पञ्चायत-सुधार की पहली सीढ़ी संचालकों की योग्यता होनी चाहिये। इस कसौटी को कार्यरूप में परिणत करने के लिए प्रति वर्ष सरपञ्चों का चुनाव होता रहे। अमुक स्थान के सब बालिग़ स्त्री और पुरुष मताधिकारी हों। सरपञ्च कम से कम ३ हों पर आबादी के मुताबिक़ संख्या बढ़ाई भी जा सकती है। सरपञ्च समिति अपने कार्य संचालन के लिये अपना सभापति चुन ले।

पञ्चायती प्रश्नों पर सरपञ्च-सभा का निर्णय अन्तिम और सर्व-मान्य होना चाहिये। अगर कोई महत्त्व का प्रश्न हो तो सरपञ्च-सभा विवेचन के लिये सब सद्-गणों को निमन्त्रित करके उनके विचार जानने का प्रयत्न करे और फिर अपना निर्णय दे।

चुनाव-प्रणाली का फल यह होगा कि सरपञ्चों का स्थान वे ही प्राप्त कर सकेंगे जो योग्य, चरित्रशील व सेवा-भाव से प्रेरित हों।

आर्थिक योजना—जातीय कार्य-सञ्चालन के लिये अमुक खर्च की आवश्यकता होती है अतएव, विवाह-मृत्यु इत्यादि अवसरों पर पञ्च-कर लिया जाता है। यह धन आजकल तिलकधारी पञ्च पचा जाते हैं व अनेक स्थानों पर यह बखेड़े की नींव पैदा करता है। सरपञ्च-समिति इस धन की उचित योजना करने का ज़िम्मा लेगी। परिस्थिति के अनुसार कर की दर नियुक्त की जायगी और एकत्रित धन बैंक की पूंजी का रूप धारण करेगा। जो ग़रीब भाई व्यापारार्थ पूंजी की आवश्यकता महसूस करते हों उनको इस रक़म में से उचित भाग साधारण सूद पर बतौर ऋण दिया जाय। इस प्रकार जो धन हमारे बीच में बखेड़ा पैदा करता है वही समाज के आर्थिक उत्थान में सहायता देगा।

उपरोक्त सुधार पञ्चायतों को पुनर्व्यवस्था के उदा-हरण हैं पर समय और स्थिति के अनुसार इनमें परि-वर्तन भी किया जा सकता है और सुधार की गति और व्यापकता में भी फेरफार किया जा सकता है। आशा है समाज के विचारशील नेता इस सुधार की ओर ध्यान देंगे और हमारी सदियों की पुरानी व्यवस्था को पुनर्जीवन प्रदान करेंगे।

धूम्रपान

[श्री सुजानमल बांठिया]

देखो धूम्रपान की सु चली है यों कैसी प्रथा, सिगरेट सिगार आदि बीड़ी पीजियतु हैं।
ताम्रकूट + चिलमों में डारिके लगाय साफ़ी, धधक धकाय अग्नि कैसे रीझियतु हैं॥
खांसी दम ऊपजे तब खें-खें खखार थूकें, मुख में कुवास, तो न लेश खीजियतु हैं।
रूढी यों 'सुजान' हा प्रचलित है हिंद बीच, मुद्रा करोरन की सु राख कीजियतु हैं॥

+ ज़रदा-तम्बाकू

हमारी शिक्षा-प्रणाली

[श्री निरंजनलाल भगानिया]

(गताङ्क से आगे)

भारत की शिक्षा-प्रणाली इतनी दूषित क्यों है ? यही प्रश्न हमारे मन में उठा करता है। उत्तर मिलता है---यहां की शासन-व्यवस्था जिनके हाथों में है वे कई एक कारणों से भारत के सच्चे हितैषी नहीं हैं। वे केवल शिक्षा की परिपाटी ही निभाना चाहते हैं— गहराई में पैठ कर उसके फलाफल पर विचार करना उन्होंने अपना कर्त्तव्य नहीं समझा है। वे भारत में वास्तविक शिक्षित नहीं केवल नाम के शिक्षितों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं और वह भी इतनी तेज़ रफ्तार (?) से ! यह उत्तर ठीक है, पर हमें इससे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये।

वस्तुतः हमने एक बड़ी भारी भूल की है। 'शिक्षा' को हम लोगोंने जिस दृष्टकोण से देखा है वह किसी भी स्वतन्त्र देश में लागू हो सकता है पर भारत जैसे परतन्त्र देश में नहीं जहां के शासक विदेशी हों। किसी स्वतन्त्र देश में वहां की सरकार पर ही वहां के बच्चों को शिक्षित और सच्चे नागरिक बनाने का पूरा दायित्व है पर भारत में मौजूदा परिस्थितियों में यह दायित्व समाज पर ही है— क्योंकि देश की उन्नति की चिन्ता समाज को ही है, सरकार को नहीं। नवीन शिक्षा पद्धति कैसी हो और किस उपाय से हम भारत में शिक्षा की प्रगति और उसके स्वरूप एवं योग्यता के मापदंड में उन्नति कर सकते हैं इन प्रश्नों के समीचीन समाधान के लिये हमें यहां की सरकार की बाट न जोहनी चाहिये। अस्तु।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि—मारवाड़ी समाज में (उसकी उन्नति को ध्यान में रखते हुए) कैसी शिक्षा पद्धति सफल हो सकेगी ?

योजना के स्वरूप का निरूपण करने के पहले हमें कई एक स्वयं-सिद्ध सत्य (Axiomatic truths) को मानना पड़ेगा और वे येः—

(१) शिक्षापद्धति पर उस समाज की भौतिक या बाह्य परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है जिसमें वह प्रचलित की जाती है। अतः सफल शिक्षापद्धति के निरूपण में समाज की आर्थिक अवस्था, समाज के सदस्यों में फैली हुई विचारधारा और उसके ऐतिह्यों (traditions) एवं सामाजिक प्रथाओं का भी ध्यान रखना उचित और आवश्यक ही है।

(२) शिक्षा के दोनों पहलुओं—(१) बौद्धिक विकास और (२) व्यावहारिक ज्ञान—पर समुचित ध्यान देना वांछनीय है।

(३) शिक्षा का चरम लक्ष्य मनुष्य को 'पूर्ण' बनाना है। यह तभी हो सकता है जब कि शिक्षार्थियों की विभिन्न अभिरुचियों को ध्यान में रखते हुए सुयोग्य अध्यापकों की देखरेख में उन्हें योग्य नागरिक, योग्य गृही और योग्य आस्तिक, बनाया जाय। शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक हित के दृष्टिकोण से 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की अभिनव सृष्टि ही हो।

मारवाड़ी समाज भारत के वाणिज्य-प्रधान समाजों

में से एक है। व्यापार के क्षेत्र में इसके सदस्यों ने जिस योग्यता का परिचय दिया था या दे रहे हैं उसकी काफ़ी प्रशंसा हो चुकी है। समाज में आधुनिक शिक्षा का प्रसार नहीं के बराबर हैं। समाज की सम्पत्ति का भी सम-विभाजन नहीं है। समाज में अन्य समाजों की नाईं तीन अंग है—पूंजीपति, मध्यवित्त और दरिद्र। फिर भी इस समाज की आर्थिक स्थिति अन्य समाजों की तुलना में अधिक सुधरी हुई है। समाज का वर्णविभाग कोई विशेषता नहीं रखता। आधुनिक सभ्यता के चाकचिक्य में रह कर भी समाज अपनी प्राचीन प्रथाओं और कई एक रूढ़ियों को छोड़ नहीं सका है। रक्षणशील होने के नाते उसमें अपनी वेषभूषा के प्रति काफ़ी ममत्व है। समाज के सदस्यों ने साधारणतः परिश्रमशीलता, सादगी सचाई निर्भयता और व्यापार कुशलता आदि गुण विरासत में पाये हैं। समाज की महिलाएँ अभी बाह्य वातावरण से अनभिज्ञ हैं और स्वास्थ्य-विज्ञान के मुख्य सिद्धान्तों की भी पूरी जानकारी नहीं रखतीं। इसका मुख्य कारण है शिक्षा का अभाव। समाज के सदस्य राजनैतिक प्रश्न और शिक्षा योजनाओं की अपेक्षा व्यापारिक प्रश्नों को अधिक महत्त्व देते हैं। फलस्वरूप समाज बच्चों को शिक्षा-दीक्षा से पूरा उदासीन है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मेरी राय में निम्नलिखित योजना सफल हो सकेगी:—

समाज के बच्चों को सुरक्षित बनाने के लिये आवश्यक स्थानों में विद्यालयों की स्थापना करनी होगी। विद्यालयों के नव-निर्माण में जिस पूंजी की आवश्यकता होगी उसकी पूर्ति शिक्षा कोष' से की जायगी। समाज के धनाढ्य और शिक्षाप्रेमी सज्जनों एवं मध्यवित्त सदस्यों की आर्थिक सहायता से इस कोष की स्थापना होगी। गत वर्षों में समाज के शिक्षाप्रेमी पूंजिपतियों ने जिस आंशिक सहानुभूति का परिचय दिया है उसके बल पर हमें आशा है कि समाज की उन्नति के लिये शिक्षा की आवश्यकता को अगर उन्हें ढंग से सुझाया जाय तो शायद वे और भी उदारता से काम लेंगे जो कि उनका स्वाभाविक गुण है।

समाज के विद्यालयों में समाज के छात्रों को विशेषता दी जायगी। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बच्चों पर बचपन की आदतों और बाह्य वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, विद्यालय के अधिकारियों की ओर से समाज में इस भावना का प्रचार किया जायगा कि बच्चे समाज के रत्न हैं—उसकी थाती हैं—उन्हें योग्य समाज-सेवी सदस्य बनाना ही माता पिता या अभिभावकों का कर्त्तव्य है। यह तभी हो सकता है जब कि वे प्रारम्भ में ही बच्चों की कार्यवाहियों पर कड़ा नज़र रखें और बुरे प्रभावों से बचायें और स्वास्थ्य-विज्ञान के मुख्य सिद्धान्तों के अनुकूल ही उनका पोषण करें।

समाज के विद्यालयों को तीन विभागों में विभाजित करना होगा—(१) शिशुविद्यालय (२) मध्यश्रेणी के विद्यालय और (३) उच्च श्रेणी के विद्यालय। पहली श्रेणी के विद्यालयों का उद्देश्य ५ से ८ वर्ष की उम्र के बच्चों को शिक्षित बनाना होगा। दूसरी श्रेणी के विद्यालयों में ६ से १६ वर्ष की उम्र के बच्चों को शिक्षा मिलेगी। तीसरी श्रेणी के विद्यालयों में उन्हीं छात्रों को प्रविष्ट किया जायगा जिनकी रुचि साहित्य, कला या विज्ञान में अधिक है और वे गम्भीर अध्ययन के बल पर उसकी वृद्धि कर सकते हैं और पहली एवं दूसरी श्रेणी के विद्यालयों में उनकी

प्रगति ऐसी रही हो कि उससे उनकी होनहारता का परिचय मिले।

पहली श्रेणी के विद्यालयों में समाज के बच्चों को ऐसे कुशल अध्यापकों की देखरेख में रखा जायगा जिन्होंने मनस्तत्व का सम्यग् अध्ययन किया है और कोमलमति शिशु-छात्रों की विभिन्न अभिरूचियों का कुशलतापूर्वक अध्ययन कर सकते हैं। इन विद्यालयों में Kindergarten की शिक्षण शैली के आधार पर मातृभाषा एवं हिन्दी का यथेष्ट प्रारम्भिक ज्ञान कराया जायगा साथ ही साथ कहानियों के रूप में उनके भीतर जातीय गौरव, मानवोचित गुण—सत्य प्रियता, निर्भीकता, दया, स्वाभिमान, दृढ़ विश्वास, धर्मप्रियता आदि—और आस्तिकता के भावों की पुष्टि की जायगी। बच्चों की सहज जिज्ञासु प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले- ठेंस न लगे— इसका भी पूरा ध्यान रखा जायगा। बच्चों के मन में शिक्षा के प्रति भय नहीं, अनुराग का भाव भरा जायगा, यह तभी हो सकता है जब कि सुकुमार बच्चों के अविकसित मनस्तन्तुओं का ध्यान रख उन्हें सभी पठनीय बातें मनोरञ्जक से मनोरञ्जक ढग में सिखलाई जाय। बच्चों में कलाप्रियता और क्रियात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उन्हें चित्रकला और निर्माण कला की प्रारम्भिक शिक्षा दी जायगी। बच्चों को स्वतन्त्र वातावरण रखते हुए भी उनमें नियमितता और स्वावलम्बन की भावनाओं का परिपोषण किया जायगा। इन विद्यालयों में श्रेणी विभाजन होगा पर उसे केवल अध्यापक ही जानेंगे और अपनी सहूलियत के लिये वे विशेष श्रेणियों में बच्चों को विभाजित भी कर सकते है पर एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में प्रवेश कराने का क्रम किसी परीक्षा विशेष पर नहीं बल्कि बालक के सम्पूर्ण कार्य्यकलाप पर निर्भर होगा।

दूसरी श्रेणी के विद्यालयों में सात वर्ष का पाठ्य क्रम होगा। पहली श्रेणी के विद्यालयों के अधिकारो अध्यापकों की रिपोर्ट पर बालक की विभिन्न रुचियों का ध्यान रख कर उसे उन्हीं विषयों की शिक्षा दी जायगी जिसमें वह विशेष योग्यता और दिलचस्पी रखता है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा। विदेशीय भाषायें (अंग्रेजी को छोड़ कर) ऐच्छिक विषयों के रूप में होंगी पर इच्छुक शिक्षार्थियों को उनकी पूरी योग्यता करायी जायगी। संस्कृत भाषा, अंग्रेजी अङ्क शास्त्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य विज्ञान और वाणिज्य में छात्रों को पूरी तौर से शिक्षित किया जायगा और इन विषयों में उनकी रुचि जागृत की जायगी। चित्रकला की शिक्षा का भी प्राधान्य रहेगा। बच्चों को पाठ्य पुस्तकों में ही न फंसे रहने का उपदेश दिया जायगा। क्योंकि एक श्रेणी में उत्तीर्ण होकर दूसरी श्रेणी में जाने का सुगम उपाय पाठ्य पुस्तकों का रटना नहीं बल्कि कार्य्यवाहियों और मौलिक विचार-धाराओं द्वारा अध्यापक को प्रभावित करना होगा। अध्यापक भी निष्पक्ष हो कर उनकी गतिविधि—अध्ययन, नैतिक आचार व्यवहार सम्बन्धी बातों पर निगाह रखेंगे और समय-समय पर छात्रों को उन्नत बनने के साधनों का ज्ञान कराते रहेंगे। अध्यापकों का व्यवहार इतना सदय और मित्रतापूर्ण होगा कि बच्चों की उनके प्रति भक्ति हो—वे उनके निकट पहुंचें—डर कर दूर न भागें। वक्तृत्व शक्ति लेखन शक्ति के विकास पर ध्यान रखते हुए छात्रों को इस ओर प्रोत्साहित किया जायगा। मानसिक विकास की जहाँ इतनी व्यवस्था होगी वहाँ शारीरिक विकास भुला नहीं दिया जायगा, अपितु बालकों के हृदय पर स्वस्थ मेधावी नागरिक की सफल कार्य्यावलि का चित्र

सींचा जायगा। समय-समय पर उन्हें समाज की समस्याओं पर विचारने का मौका दिया जायगा और उन्हें समाज की रूढ़ियों के उन्मूलन और सुधारों के प्रचार की ओर प्रोत्साहन दिया जायगा। समाज की व्यापारिक उन्नति और साहित्यिक या बौद्धिक विकास में उनका भी हाथ रहे इसकी भावना परिपुष्ट की जायगी। मेल और मिल्लत में रह कर जीवन की बाधा एवं विपत्तियों को हंसते हुए झेल कर विश्वरचयिता की असीम शक्तियों में विश्वास रख कर अपनी, अपने परिवार, समाज और देश की उन्नति के लिये अविरत चेष्टा करने का उन्हें पाठ पढ़ाया जायगा। प्रत्येक विषय पर निडर होकर अपनी निष्पक्ष और मौलिक राय को सर्वसाधारण के सामने रखने का उनमें जोश भरा जायगा। इस विद्यालय में से उत्तीर्ण होकर निकलनेवाले छात्रों की योग्यता इतनी अच्छी होगी कि वे जीवन में अपनी इच्छाओं के अनुसार उन्नति कर सकें। बाधाओं और विपत्तियों में वे निराश नहीं आशावादी होंगे और निराशा को वे एक नैतिक पाप और कायरता समझेंगे।

तीसरी श्रेणी के विद्यालयों का प्रवेश द्वार उन्हीं मेधावी छात्रों के लिये खुला रहेगा जिनके हृदय में साहित्य, विज्ञान या कला के पुजारी होकर जीवन व्यतीत करने का भाव अन्यान्य भावों से अधिक महत्त्व रखता हो। उन्हें किसी विशेष साहित्य, कला, या विज्ञान के अध्ययन करने में सुगमता हो इसका यथेष्ट ध्यान रखा जायगा। साहित्य, कला, या विज्ञान विशारद उनके हृदय की जिज्ञासु प्रवृत्ति को और भी अधिक प्रोत्साहन देंगे और उस विशेष विषय में पूर्णता प्राप्त करने के साधन बताते रहेंगे। जब छात्र अपने अध्ययन और संगृहित ज्ञान के बल पर अपने अध्यापकों को मुग्ध कर सकेंगे तभी उन्हें उस विषय के पण्डित होने का प्रमाण-पत्र मिलेगा। पर पण्डित कहलाने के पहले प्रत्येक छात्र के लिये यह आवश्यक होगा कि वह अपने मौलिक विचारप्रवाह के बल पर साहित्य, कला, या विज्ञान के किसी अंग विशेष की पूर्त्ति अथवा वृद्धि करे।

समाज के बच्चों से मेरा तात्पर्य्य समाज की बालिकाओं को उनमें से निकाल देना नहीं है। उनके लिये भी ठीक वैसे ही विद्यालय रहेंगे जहां उनको सफल माता, योग्य गृहिणी और समाज की सफल सदस्या बनने का पाठ पढ़ाया जायगा। उनके सहज ज्ञान और साहित्यिक अभिरुचियों को विकसित करने के लिये उचित व्यवस्था की जायगी।

विद्यालय में शिक्षा पानेवाले छात्रों से फ़ीस के रूप में तो कुछ नहीं लिया जायगा। पर अगर अभिभावक चाहें तो अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विद्यालय में दान के रूप में एक निर्धारित रक़म मासिक या वार्षिक दे सकते हैं। शिक्षण में जो व्यय होगा उसे विद्यालय अपने ऊपर लेगा। निर्धन छात्रोंको पुस्तकों और छात्रवृत्तियों से सहायता दी जायगी। उत्तीर्ण छात्रों को अपनी योग्यता के प्रदर्शन और परिमार्जन का क्षेत्र मिले इस उद्देश्य से समाज के उद्योग-धन्धों में उन्हें विशेषता दी जायगी। समाज में शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिये प्रचार और शिक्षा की सुगमता की नितान्त आवश्यकता है।

मेरी राय में ऊपर की योजनानुसार अगर किसी शिक्षापद्धति का समाज में प्रचलन हो तो सफलता की आशा अधिक है।

"मातृ जाति का आह्वान"

[श्री कन्हैयालाल जैन, कस्तला]

१ नील गगन में सघन श्याम घन, घन में ज्यों शीतल जल-धार,
जल-धारा में निहित शक्ति-ज्यों करती नव-जीवन सञ्चार।
त्यों साहस, उत्साह, स्फूर्ति से हृदय तुम्हारे ओतप्रोत
उनसे बहे कर्म्म की धारा खुले अमर कृतियों का स्रोत॥
रण-भेरी बज उठी, क्षेत्र में आओ, गाओ जागृति-गान।
युवको! वीरो! मातृ जाति का उठो सुनो विह्वल आह्वान॥

२ पतन गर्त में पड़े हुए हो भूल पूर्व गौरव अभिमान,
अनृत, कलह में किया सभी उज्ज्वल आशाओं का अवसान।
न वह वीर्य्य है, न वह शौर्य्य है, भूले सर्व आत्म-सम्मान
न वह परस्पर-प्रेम कहा जाता जो 'उन्नति-मन्त्र-महान'॥
तुम क्यों हो कर स्वर्ग-च्युत से भूले बैठे अपना भान
युवको! वीरो! मातृ जाति का उठो सुनो विह्वल आह्वान॥

३ सुता बेच खाते हैं नर पशु, तुम करते हो धारण मौन;
विधवा हैं रुधिराश्रु बहातीं, तुम न पूछते कारण कौन।
कोमल शिशु नवजात पङ्क में करता पड़ा करुण चित्कार,
हुआ हृदय स्पन्दन न आपका सुन कर बैठ रहे मनमार॥
ये सब अत्याचार मिटा दो अपना चाहे मिटे निशान
युवको! वीरो! मातृ जाति का उठो! सुनो! विह्वल आह्वान

४ सुरभित रम्य वाटिका तज क्यों करते कण्टक-विपिन-विहार?
कर्कश काग हुआ प्रिय तज कर कल कोकिल की स्वर-झङ्कार?
लवणोदधि की ओर चले तज मानस-सलिल-सुधा-भाण्डार?
स्वार्थ-लिप्त हो रहे, परार्थ बजा न हृदय-तन्त्री का तार?
जिस वसुधा पर सुधा-कोष है वहाँ गरल क्यों करते पान?
युवको! वीरो! मातृ जाति का उठो, सुनो! विह्वल आह्वान।

हिसाब में जालसाज़ी

[श्री कस्तूरमल बांठिया बी० काम]

[ओसवाल नवयुवक के पाठकों को श्री कस्तूरमलजी बांठिया का परिचय कराना हास्यास्पद होगा फिर भी हम विद्वान् लेखक के प्रति अपने आभार को व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। श्री बांठियाजी आज कितने ही वर्षों से व्यापारी समाज में जितने प्रसिद्ध रहे हैं, उतने ही साहित्यिक क्षेत्र में भी। वे भारत-विख्यात बिड़ला बन्धुओं की फ़र्म में वर्षों सफलता से काम कर चुके हैं और ५ वर्ष तक बिलायत में उनकी शाखा के डाइरेक्टर (संचालक) भी रह चुके हैं। इस समय वे सिन्ध में पायोनियर शूगर मिल्स कम्पनी के मैनेजर हैं। पर गौरव का विषय तो यह है कि श्री बांठियाजी व्यापार के सक्रिय (Practical) क्षेत्र में जितने सफल रहे हैं उतने ही वह उसके सैद्धान्तिक (Theoritical) पक्ष में भी। श्री बांठियाजी शायद हिन्दी में पहले ही लेखक थे जिन्होंने व्यापारी-हिसाब तथा बहीखातों पर पुस्तक लिखी। उनका 'हिन्दी बही-खाता' हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिये पाठ्य पुस्तक है। व्यापार के सक्रिय क्षेत्र में अपने बढ़ते हुए अनुभव का श्री बांठियाजी ने बहुत अच्छा सदुपयोग किया है—इस बात का प्रमाण अभी हाल में ही प्रकाशित उनकी हिन्दी के व्यापार-साहित्य में युगान्तर करनेवाली पुस्तक "नामा लेखा और मुनीबी" है। यह ग्रन्थ वास्तव में हिन्दीसाहित्य के खजाने का एक रत्न है और व्यापारियों के लिये एक अनिवार्य काम की चीज़। हमें विद्वान् लेखक का यह लेख प्रकाशित करते हुए हर्ष होता है। आशा है हमारे व्यापार-प्रधान समाज के लिये यह मनोरंजक और साथ ही साथ शिक्षाप्रद भी होगा। —सम्पादक]

जिन पाठकों को दैनिक समाचार पढ़ने की आदत सी है उन्हें याद होगा कि सन् १६३१ में लंदन में रायल मेल स्टीम पैकेट कम्पनी का हिसाबफ़रेबी का एक बड़ा दिलचस्प और मार्के का मामला चला था। इस मुक़दमे में कम्पनी के चेयरमैन लार्ड किलसैन्ट और उसके आडिटर मि० मोरलैण्ड दोनों ही हिसाब-फ़रेबी के मामले में चलान किये गये थे। तहकीक़ात के बाद मि० मोरलैण्ड तो बरी हो गये परन्तु लार्ड किलसैण्ट को कम्पनी के प्रास्पेक्टस में झूठी बातें छापने के अपराध में सज़ा हो गई।

इससे पाठक यह सहज ही समझ सकते हैं कि हिसाब की जालसाज़ी की ठीक-ठीक परिभाषा करना सरल नहीं है, साधारणतया वे हिसाब जाली माने जाते हैं जिनमें उनके तैयार करने वालों की जानकारी में ऐसे लेन-देनों का समावेश हो जो कभी हुए ही न हों, अथवा जिनमें से हो चुके हुए लेनदेनों का जमा-ख़र्च ही निकाल दिया गया हो अथवा जिनका बहियों में ग़लत या अधूरा जमाख़र्च किया गया हो। जाल कैसे ही किया जाय परन्तु सबका परिणाम एक ही होता है और वह यह कि ऐसे हिसाब तब आसामी की सच्ची स्थिति नहीं बताते। इस प्रकार लिखी गई बहियों से जब हानिलाभ का पत्रक यानी वृद्धि खाता, और आंकड़ा यानी देनलेन का चिट्ठा तैयार किया जाता है तो वह किये गये जाल जितना ही झूठा होता है। जितने भी झूठे हिसाबों के मामले मुक़दमे चले हैं उन सब में एक यही बात समान पाई जाती है। परिणाम

एक होते हुए भी हिसाब-फ़रेब के तरीक़े और उद्देश्य इतने भिन्न देखे गये हैं कि उन सबका इस छोटे से लेख में विचार करना बड़ा कठिन है। फिर भी हम यहां संक्षेप में पाठकों को इसका दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करेंगे।

हिसाब फ़रेबी का उद्देश्य

हिसाब में जालसाज़ी मुख्यतया दो उद्देश्यों से की जाती है—

१ साधारणतया हिसाब में जालसाज़ी या अदला-बदली माल की या रुपये की चोरी अथवा अमानत में ख़यानत को छिपाने के उद्देश्य से की जाती है।

२ कभी-कभी अनेक कारणों से व्यापार की सच्ची हालत छिपाना वांछनीय समझ कर उसके हिसाब में फेर-बदल कर दिया जाता है।

इस पिछली जात के हिसाब फ़रेबी का पता लगाना बड़ा ही कठिन होता है क्योंकि यह फ़रेब बहुधा ऐसे आदमियों द्वारा किया जाता है कि जिनके हाथ में उस व्यापार के संचालन की सारी बागडोर होती है। मातहतों के काम की जांच तो संचालक कर सकते हैं, परन्तु संचालकों के काम की जांच मातहत नहीं कर सकते। और यदि करें भी तो उनकी ज़िम्मेदारी अफ़सर को इत्तिला देने पर समाप्त हो जाती है। यदि वे उसे ठीक न करें तो मातहत उसे दुरुस्त नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि ऐसे संचालकगण हिसाब के सिद्धान्तों को तोड़ मरोड़ कर उलटे सुलटे जमाख़र्च द्वारा व्यापार की स्थिति है उससे अधिक अच्छी बताने की चेष्टा करते हैं न कि लेनदेन बिल्कुल ही छिपा कर। व्यापार के लेनदेन बहियों में सब बराबर लिखे रहते हैं, सिर्फ़ उनका हानिलाभ छिपाने की चेष्टा की जाती है, और इसलिए ऐसे जाल का भंडाफोड़ करना आसान काम नहीं होता। इसके विपरीत पहली जात का जाल ऐसा है जो दूसरे की अपेक्षा बड़ी आसानी से मालूम किया जा सकता है। जैसे, यदि किसीने तहवील यानी पोते में से नक़द उठा ली हो अथवा किसी की आई हुई रक़म बही में जमा न कर ऊपर की ऊपर हज़म कर ली हो तो इसको छिपाने के लिये ऐसे व्यक्ति को या तो कोई फ़र्जी अदायगी बताना होगी अथवा रक़म जमा नहीं बताना होगी और यह बात तहवील के जांचते ही मालूम हो जायगी। इसी तरह कभी-कभी माल की भी चोरी की जाती है जिसके परिणाम स्वरूप माल पोते कमती होते हुए भी अधिक बता दिया जाता है और माल को बेच कर रुपये हज़म कर लिये जाते हैं। नक़द की अपेक्षा माल की चोरी का पता लगाना ज़रा कठिन होता है, क्योंकि माल को झड़ती का हिसाब इतने एतिहात से शायद ही रक्खा जाता है कि जितना नकद का हिसाब हरेक व्यापारी रक्खा करते हैं। माल की थोक ख़रीद और ख़ुदरा बिक्री में स्वभावत: ही छीजत होती है, इसलिये इसकी छोटी-छोटी चोरियों का तो सामान्यतया पता लगता ही नहीं। हां जब ऐसी चोरियां निरन्तर होती रहती हैं तो वे तहक़ीक़ात करने पर ज़ाहिर हो जाती हैं।

हिसाब में जाल कैसे किया जाता है

यद्यपि जाल के तरीकों की तालिका देना प्राय: असम्भव है परन्तु बहुधा जाल नीचे लिखे तरीकों एवम् उद्देश्यों से किया जाता है:—

१ कर्मचारी लोग अमानत में की गई ख़यानत को छिपाने के लिये हिसाब में जाल कर दिया करते हैं।

२ जब कर्मचारी माल की चोरी करते हैं तो इसे

छिपाने के लिये वे हिसाब में फ़रेब कर देते हैं।

३ कभी-कभी कर्मचारीगण इस ग़र्ज़ से कि मालिक प्रसन्न होकर उन्हें तरक्की दे देगा या और किसी तरह का इनाम इकराम बख़्श देगा, व्यापार का मुनाफ़ा हो उससे अधिक ही नहीं, अपितु हानि के स्थान में लाभ तक बता देते हैं।

४ जहां व्यापार में साझी हों, वहां काम-कर्ता साझी दूसरे साझियों को अथवा साझे के देनदारों को धोखा देने की ग़रज़ से भी हिसाब में जाल कर दिया करते हैं।

५ लिमिटेड कम्पनियों के संचालक यानि डाइरेक्टर-गण कम्पनी की बहियों में जाली फेरफार नीचे लिखे उद्देश्यों से किया करते हैं।

(अ) कम्पनी की संकटावस्था छिपाने के लिये।

(ब) धारा हुआ डिवीडेन्ड यानी मुनाफ़ा बांटने और इस प्रकार कम्पनी के शेयरों का बाज़ार में भाव टिकाने के लिये।

(स) अपना स्थान और आमद सुरक्षित रखने के लिये।

(ड) कम्पनी के शेयरों का बाज़ार भाव बढ़ा-घटा कर शेयरों के लेनदेन के व्यापार से लाभ कमाने के लिये।

उपर्युक्त जाल करने के लिए व्यापार की बहियों में दोहरा फेरफार करना आवश्यक होता है, क्योंकि यदि मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए कोई रक़म उस खाते में जमा की जाती है तो हिसाब का आंकड़ा मिलाने के लिए उतनी ही रक़म किसी दूसरे खाते में नामे मांडना भी आवश्यक होता है। इसलिए कितनों ही का यह कहना है कि जहां हिसाब "डबल एन्ट्री" पद्धति पर रक्खे जाते हों, वहां जाल कठिनाई से किया जा सकता है। यद्यपि यह बात किसी अंश में ठीक भी कही जा सकती है, परन्तु आधुनिक संसार के प्रायः सारे ही व्यापारों में हिसाब डबल एन्ट्री पद्धति पर रक्खा जाता है फिर भी हिसाब फ़रेब होता ही है। फिर भी इस प्रकार की बहियों में जाल का पता लगाना इतना कठिन नहीं होता जितना उन अधूरी बहियों के जाल का होता है जो "सिंगल एन्ट्री" पद्धति पर रखी हुई होती हैं।

जाल का बचाव कैसे किया जा सकता है

सबसे पहले ऐसे ही हिसाब के जाल का आप विचार कीजिए जिनमें किसी रक़म का ग़बन किया जाता है। जिसके पास रोकड़ रहती है अथवा जो बिलों की वसूली और अदायगी करता है वही ऐसा जाल कर सकता है। उसे ही इस तरह के ग़बन करने के सबसे अधिक मौके मिलते हैं। कभी-कभी इसकी साज़िश से दूसरे आदमी भी जाल कर देते हैं। परन्तु यहां पर हम उसीके जाल का विचार करना चाहते हैं। पाश्चात्य देशों में, रोकड़िये अथवा वसूली और अदायगी का काम करनेवाले को ऐसा मौक़ा हो न मिले इस ख़याल से, चैक द्वारा व्यापार की भुगतान का रिवाज उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा है। परन्तु अभी वहां भी वह दिन बहुत दूर है जबकि हरेक प्रकार का भुगतान चैक द्वारा भुगताया जा सके। चैक के प्रयोग के लिए प्रायः सारे व्यापारी अपना हिसाब किसी एक बैंक में अवश्य रखते हैं। और अपने ग्राहकों को प्रत्येक बिल पर नोट छपवा कर यह प्रार्थना करते रहते हैं कि उनका भुगतान सदा क्रास्ड चेक द्वारा किया जाय; कोई कोई तो यहां तक प्रार्थना करते हैं कि चैक उनके बैंक के नाम हो रेखाङ्कित कर अवि-

क्रोस (not negotiable) भी कर दिये जांय ताकि चैक खो जाने पर भी उनका रुपया न मारा जा सके।

हमारे देश में चैक का प्रयोग अभी इतना प्रचार में नहीं आया है परन्तु जो इसका प्रयोग करते हैं उन्हें यह भली भाँति विदित है कि क्रास्ड चैक का भुगतान बैंक द्वारा ही वसूल किया जा सकता है और वह भी नक़द में नहीं परन्तु अपने खाते में जमा दे कर। हम पाठकों का समय चैक के क्रासिंग आदि का विस्तृत विवेचन कर यहां नष्ट नहीं करेंगे, परन्तु जो इस विषय में जिज्ञासा रखने हों वे 'हिन्दी बही खाता' व नामालेखा और मुनीबी' नामक किताबों में उदाहरण सहित विशद विवेचन पा सकेंगे।

जहां सब लेनदेन चैक से होता हो वहां न तो किसी को ग़बन करने का इतना मौका ही मिल पाता है और न उसकी तपास में दिक्कत होती है। क्योंकि हरेक अदायगी के लिए प्रथमतः फ़र्म के काटे हुए चैक की फ़र्म में प्रतिलिपि मौजूद रहती है, दूसरे जब तक चैक सकारा नहीं जाता, बैंक न तो अपनी बहियों में वह रकम व्यापारी के नामे लिखता है और उसको पासबुक में दर्ज करता है। बैंक की पासबुक प्रत्येक खातेदार को समय-समय पर मीलान करने के लिए लिख कर बैंक द्वारा भेज दी जाती है। पासबुक के नियमों में यह लिखा रहता है कि पासबुक की किसी भी कलम में यदि अन्तर हो, या वह ग़लत नामे लिख दी या जमा कर दी गई हो तो दुरुस्ती के लिए फ़ौरन बैंक में लौटा दी जाय। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर चैक का भुगतान किसको और किसके मार्फत दिया गया है यह भी बैंक से मालूम किया जा सकता है।

इसी तरह जब वसूली भी चैक से होती हो तो ऐसा चैक बैंक में जमा देना होता है जिसके लिए बैंक की जमा देने की चिट्ठी यानि 'पे स्लिप' भर कर चैक के साथ बैंक में देनी होती है जिसकी प्रतिलिपी बैंक खातेदार अथवा जमा कराने वाले को हस्ताक्षर कर बतौर रसीद के उसी समय वापिस लौटा देता है। दूसरे वह रक़म वसूल होने पर खातेदार की पासबुक में दर्ज कर दी जाती है जिसका रोकड़ बही से मीलान करते हो यदि कोई रकम जमा न हो अथवा अधिक नामे लिख दी गई हो तो फ़ौरन पता लग जाता है। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कहीं भी किसी व्यापारी का सिर्फ चैक से भुगतान करना नहीं चल सकता। प्रत्येक व्यापार में खुदरा खर्च की दैनिक इतनी क़लमें होती हैं कि जिनके लिए हरएक को नक़द लेना और देना ही पड़ता है और यहीं अनीतिप्रिय कर्मचारियों को ग़बन के अधिक अवसर उपस्थित हो जाते हैं।

ऐसे ग़बन के अवसर थोड़े से थोड़े दिये जायँ इसके लिए बड़े व्यापारालयों में सबसे पहले तो भुगतान लेनेवाला और देनेवाला रोकड़िया अलाहदा अलाहदा रखा जाता है। इससे रोकड़ पोते बाकी मिलाने में भी बड़ा सुभीता रहता है। परन्तु छोटे व्यापारी इस तरह दो रोकड़िये नहीं रख सकते। यह तो वहां ही सम्भव हो सकता है जहां रोज़ाना हज़ारों का ही नहीं अपितु लाखों का नक़द का लेनदेन जैसा कि बैंकों में हुआ करता है होता हो। फिर केवल पृथक पृथक रोकड़िये रख देने से ही तो ग़बन बच नहीं जाता। भुगतान लेनेवाला रोकड़िया यदि चालाक और बददयानत हो तो वह भुगतान ले कर अपनी रोकड़ बही में जमा ही न करेगा और ऊपर की ऊपर हज़म कर जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है

कि प्रत्येक भुगतान रोकड़िये के पास आने के पहले कहीं अन्यत्र भी दर्ज हुआ करे। ऐसा करने पर भुगतान की चोरी स्पष्ट और शीघ्र मालूम हो सकती है। प्रत्येक वसूली के लिए रसीद देने की प्रथा से यह उद्देश्य भली भांति सिद्ध हो जाता है, परन्तु रसीद देने के काम भुगतान लेनेवाले रोकड़िये के हाथ में नहीं दिया जाना चाहिए नहीं तो वह यदि रसीद नहीं काटे अथवा काट कर फाड़ फेंके तो फिर रसीद का लाभ ही क्या हुआ। रसीद काटने का काम एक और कर्मचारी, जैसे 'बिल क्लर्क', के ज़िम्मे रखना चाहिए।

रसीद का बददयानती उपयोग बचाने के लिए प्रथम तो रसीदों पर अनुक्रम से संख्या पहले ही से छाप दी जाती है दूसरे उनकी प्रतिलिपि रक्खी जाती है। प्रतिलिपि और रसीद दोनों पर एक ही अनुक्रम संख्या होनी चाहिए। ऐसी रसीद बुक दो तरह की बनाई जा सकती है। एक तो जिसकी 'कार्बन कापी' रक्खी जा सके और दूसरीजिसमें उसकी हुबहू नक़ल की जा सके। पहली जात की रसीद बुक में रसीद पेन्सिल से लिखी जाती है इसलिए कितने ही इसे ठीक नहीं समझते क्योंकि पेन्सिल के अक्षर सहज ही रबर से मिटाये जा सकते हैं। यह बात यद्यपि सच है परन्तु इस प्रकार की रसीदों का जाल कापी से असली रसीद का मीलान करते ही प्रकट हो जाता है। कापिङ्ग पेन्सिल के अक्षर सादी काली पेन्सिल की अपेक्षा पुराने पड़ने पर पक्के होते जाते हैं, और इससे ज़ोर दे कर भी लिखना होता है। इसके विपरीत जहां नक़ल अलग-अलग लिखी जाती है वहां नक़ल में असावधानी से भी कितनी ही दफ़े भूल रह जाती है और कभी-कभी ख़ास बात भूल से लिखने से ही रह जाती है। रसीद बुक किसी तरह की भी छपाई जाय, परन्तु यह निर्विवाद है कि इससे ग़बन का पता लगाने में सुविधा रहती है।

रसीद काटने के अतिरिक्त ग़बन के मौके कम करने का एक यह भी तरीक़ा है कि रोज़ाना जितनी रक़म प्राप्त हो उतनी वैसी की वैसी बैंक में जमा दे दी जाय। और खर्च के लिए आवश्यक चैक अलाहदा काट लिया जाय। जहां ऐसा किया जाता है वहां रोज़ की आमद दर-आमद बैंक की पासबुक द्वारा मीलान कर ली जा सकती है और जहां इन दोनों में अन्तर पड़ा कि ग़बन ज़ाहिर हो जाता है।

कभी-कभी रोकड़िया भुगतान जहां की तहां जमा न कर उसे उचन्त रख लेता है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि उसे बिल क्लर्क से वह रक़म किस खाते जमा की जाय इसका पूरा विवरण उसी समय न मिले, और दूसरे, जब उसमें से कुछ रक़म वह अपने निजी उपयोग में ले ले। अमानत में ख़यानत के मामलों में साधारणतया यही पता लगा है कि रोकड़िये ने अपने निजी ऋण की अदायगी में लाचार होकर कुछ रक़म इस ख़याल से उपयोग में ले ली है कि उसकी स्थिति शीघ्र सुधर जायगी और तब वह आसानी से यह कमी पूरी कर देगा। दुर्भाग्य से ऐसा समय आता ही नहीं और यह लालच दिन-दिन बढ़ता जाता है और स्थिति यहां तक बढ़ जाती है कि फिर वह ग़बन प्रकट हो ही जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर रोकड़ बही का रसीद बुक से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मीलान करा लिया जाय, और जिस रक़म की रसीद काटी जा कर वह रोकड़ बही में जमा न मिले तो उसकी शीघ्र तहक़ीक़ात की जाय।

कभी-कभी रसीदें प्रमाद-वश अशुद्ध लिख दी जाती हैं तो उन्हें रद्द कर भुगतान देनेवाले के लिए दूसरी रसीद काट दी जाती है। जब कोई रसीद इस तरह रद्द हो जाय तो उसे काट कर न फेंक दी जाय अपितु वह अपनी कापी के साथ ज्यों की त्यों लगी रहे ताकि उससे यह पता लग जाय कि रसीद के फ़ार्म का अनधिकारित उपयोग नहीं किया गया है। क्लर्क लोग मालिक से डरते हुए अक्सर ऐसा कर दिया करते हैं इसलिये यह सावधानी रखना आवश्यक है।

तीसरी सावधानी जो इस विषय में रक्खी जा सकती है, वह यह है कि रोकड़िये को कभी खाते का चार्ज नहीं दिया जाय। यही नहीं परन्तु उसको माल-वापिसी बही आदि अन्य सहायक बहियों में किसी तरह का जमाखर्च न करने दिया जाय। इसका कारण यह है कि जो रक़म उसने ग़बन की है उसको उचित खाते में जमा कर अपना ग़बन छिपाने का उसे इससे मौक़ा मिल जाता है। खाते बही के कच्चे आंकड़े में किसी तरह का अन्तर न पड़े इसके लिए वह किसी ऐसे खाते में उस रकम को नामे मांड़ दे सकता है जो हर समय निगाह में न आया करे और जहां रोकड़िया माल-वापिसी अथवा नकल बही में जमाखर्च कर सकता है वहां वह माल वापिस आया है अथवा गाहक को किसी तरह का अलाउन्स दिया गया है इस तरह जमाखर्च कर दूसरों की निगाह से अपनी रक्षा कर सकता है।

रोकड़ बही की खतौनी का खाता बही से हर समय टकराते रहना इसलिए अत्यन्त ज़रूरी है। जहां खाता बही की किसी रक़म का जमाखर्च रोकड़ बही अथवा अन्य सहायक बही में न हो, जाल का पता लग जाता है। ऐसा जाल खाता बही से कच्चा आंकड़ा उतारने पर व्यक्त नहीं होता, क्योंकि चतुर जालसाज़ यह बात अच्छी तरह जानता है और वह इसका बचाव एक खाते में जमा और दूसरे में नामे लिख कर पहले ही से कर लेता है।

ऊपर रोकड़िये द्वारा रक़म का जहां का तहां जमा न किये जाने से होनेवाले जाल का विचार किया गया है। ऐसा जाल नक़द ही लेनदेन में हो सो बात नहीं है। जिस व्यापार में चैक उचित रीति से रेखाङ्कित (crossed) हो कर नहीं आते वहां भी यह जाल करना आसान होता है। ऐसे जालों में दो बातें ख़ास तौर से पाई जाती हैं। एक तो यह कि रोज़ाना बैंक में जमा दी जानेवाली रक़म दिन दिन घटती जाती है और दूसरे बैंक में जमा देने की 'पे स्लिप' रोकड़ बही से क़लम दर क़लम नहीं टकराती।

जहां रोकड़िये की ऐसी आदत हो वहां यह भी देखा गया है कि वह सदा एक न एक बहाना बता कर रोकड़ बही का मेल चढ़ाता रहता है और उसे कभी 'अपटूडेट' नहीं रखता। ऐसी स्थिति में यह मान लेने से कि रोकड़िये के पास उतनी नक़द अवश्य होनी चाहिए जितनी उसके पास जमा दी गई है अथवा उसने बैंक में वह रक़म जमा दे दी है भारी धोखा होता है। इसलिए समय-समय पर असली पोते बाकी गिन कर भी यह जांच लेना अच्छा रहता है कि वह आमद से मिलती है या नहीं। इस तरह की जांच रोकड़िये के दिल में हर समय एक शंका पैदा कर रखती है कि न जाने कब उसकी तहवील की जांच पड़ताल कर ली जाय।

अब भुगतान देने का विचार कीजिए। वहां भी यह आवश्यक है कि जहां तक हो भुगतान क्रास्ड और आर्डर चैक से किया जाय। रसीद देने में सुस्ती

करना यह मामूली बात है और ख़ास कर हमारे इस देश में तो व्यापारी रसीद इसलिए नहीं देना चाहते कि उस पर क़ानूनन एक आने का टिकट भी लगाना पड़ता है। बड़ी कम्पनियों में एक यह भी रिवाज है कि वे अपने ही छपे फ़ार्म पर भुगतान की रसीद लेना अच्छा समझते हैं ताकि फ़ाइलें अच्छी तरह रक्खी जा सकें। रसीद का फ़ार्म कितना लम्बा चौड़ा हो इसका कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रत्येक व्यापारी अपनी इच्छा मुताबिक छोटा मोटा फ़ार्म रख लेता है। परन्तु इस प्रकार की निज के छपे फ़ार्म में रसीद लेना जोखिम भरा होता है। रोकड़िया ऐसा फ़ार्म भर कर किसी से भी सही करवा कर उसका असली रसीद की तरह उपयोग कर सकता है और अपना ग़बन छिपा सकता है। इसलिए सावधान व्यापारी यह भी अपने प्रत्येक बिल पर ज़ाहिर कर देते हैं कि हमारी छपी आफ़ीशियल रसीद ही, इस बिल का भुगतान हो चुका है इसका पक्का सबूत मानी जायगी।

ग़बन सदा एक से अधिक आदमी की साज़िश से किया जाता है। इससे सदा यह चेष्टा की जानी चाहिये कि यह साज़िश हो ही न सके। कितने ही व्यापारियों में यह भी चाल है कि वे माल ख़रीदने और बेचनेवाले व्यापारियों का अपनी बही में उसके नाम से हिसाब ही नहीं रखते। इस दशा में न तो यह पता चल सकता है कि किसका कितना देना है और कितना लेना, और न यही सहज मालूम हो सकता है कि अमुक व्यापारी का बिल चुकता हो गया है या नहीं। जहां ऐसे ढंग से हिसाब रक्खा जाता है वहां रोकड़िया और खाता रखनेवाला दोनों की साज़िश से बहुत ग़बन किया जा सकता है। इसी भांति स्टोर-क्लर्क (गोदाम-क्लर्क) की साजिश से, माल प्राप्त हुए बिना भी जाली इनवाइस बना कर ग़बन हुआ देखा गया है।

कहीं कहीं यह भी चाल होती है कि छोटे-छोटे व्यापारियों के माल के बीजकों की भुगतान के लिए इकट्ठी रक़म खातेवाले क्लर्क को दे दी जाती है और वह, जैसे व्यापारी आवें, रक़म अदा करता जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि बही में ख़ुदरा रक़में रोज़ ब रोज़ नहीं लिखी जायं। परन्तु जहां ऐसा किया जाता है वहां बेईमानी की काफ़ी गुञ्जाइश मिल जाती है।

कारख़ानों में सब से अधिक मौक़ा बेईमानी का नौकर व मज़दूरों की रोज़ी चुकाने में मिलता है। यह मज़दूरी, जैसा कि सब लोग जानते हैं, हजारों रुपये की नक़द चुकाई जाती है। दूसरी बात यह है कि ऐसे बड़े कारख़ानों में मजदूरों की संख्या इतनी अधिक होती है कि सबको पहचानना आसान नहीं होता, और न यही मालूम करना सम्भव होता कि प्रत्येक मज़दूर का कितना काम हुआ है। यह बात सच है कि जितना ही बड़ा कारख़ाना हो, इस तरह की जांच के उतने ही अधिक साधन रक्खे जा सकते हैं और हरएक आदमी के रक़म की जांच ऐसे आदमियों से कराई जा सकती है जिनका काम से ताल्लुक़ न रहा हो, जैसे,— मज़दूरों की मज़दूरी दिनों से अथवा काम से कितनी होती है यह दो विभागों में बांटा जा सकता है, एक तो वह जो दिनों का और काम का तख़मीना लगाए और दूसरा वह जो इन दिनों और काम की मज़दूरी को नियत दर से फैलावे।

जमाख़र्च में फ़रेबी

अब तक हमने ऐसे ही जालों का विचार किया है जिनमें नक़द का ग़बन किया जा सके। अब कुछ

ऐसे भी जालों का विचार करें जिनका असर मालिक को हानि पहुंचाने का नहीं होता, और जिनमें न तो नक़द का ही ग़बन होता है और न माल का। यह जाल व्यापार का कच्चा आंकड़ा तैयार कर लेने के बाद किया जाता है, जैसे 'श्री' अथवा खर्च खातों में रक़म जमा कर माल मिल्कियत आदि खातों में इसलिए नामे मांड दी जाती है कि जिससे व्यापार का मुनाफ़ा बढ़ जाय। इस प्रकार का फेर-बदल चतुर व अनुभवी हिसाब निरीक्षकों की निगाह से बच नहीं सकता परन्तु जहां साधारण हिसाब निरीक्षकों से हिसाब निरीक्षण कराया जाता हो अथवा कोई निरीक्षक रखा ही न जाता हो, वहां यह जाल बड़ी आसानी से चल सकता है।

हमारे देशी व्यापारियों में एक यह भी रिवाज है कि वे अपने व्यापार का आंकड़ा पाई पाई नहीं मिलाते। इसे वे अपशकुन गिनते हैं। चाहे ऐसा करना अपशकुन हो या नहीं, परन्तु ऐसे हिसाबों के विषय में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि वहां मुनाफ़ा हो उससे कितनाही अधिक दिखाया जा सकता है। एक मामूली तरीक़ा जो ऐसे जाल में देखा गया है वह है माल के बीजकों का समय से बहियों में जमा खर्च न करना, हालांकि उनके माल का फड़ती में समावेश कर लिया जाता है। कितने ही व्यापारियों में यह चाल होती है कि अपने ग्राहकों को उधार की कुछ दिनों की सहूलियत देने के लिए वे अपने बीजक ही आगे की तारीख़ के बना देते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उनका रुपया माल पहुंचते ही देना नहीं होता।

दूसरा तरीक़ा है माल की क़ीमत अधिक कूंत कर लेना। इस विषय में मान्य सिद्धान्त तो यह है कि फड़ती के माल की क़ीमत लागत की अथवा बज़ार भाव दोनों में से जो कम हो लगाई जाय। ऐसा न कर व्यापार का मुनाफ़ा बताने के लिए फड़ती की क़ीमत उस भाव से आंक ली जाती है जिससे मुनाफ़ा बनाया जा सके। कम्पनी की मिल्कियत के ह्रास आदि प्राकृतिक कारणों से क़ीमत के कम हो जाने पर भी वह बहियों में ज्यों की त्यों बताई जाती है। यह बात सच है कि इस प्रकार का जाल वे ही लोग कर सकते हैं जो व्यापार सञ्चालन में सर्वे-सर्वा होते हैं।

कम्पनी की डायरेक्टर कितनी ही दफ़ा कम्पनी की मिल्कियत अपने निजी काम के लिए बंधक रख देते हैं, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिसाब निरीक्षक जब तक कम्पनी की मिल्कियत की स्वयम् जांच न करले अपनी जांच का प्रमाण पत्र न दे। यदि किसी कारणवश कम्पनी की मिल्कियत की तपास उसके लिए सम्भव न हो तो कम से कम यह तो वह ज़रूर जांच करे कि ऐसी मिल्कियत से आया हुआ मुनाफ़ा कहां से आया है। कभी-कभी ऐसे डायरेक्टर लोग जितने मिल्कियत का अपने निजी काम में उपयोग कर लिया है, यह जाल गुप्त रखने के लिए नियत समय पर मिल्कयत से प्राप्त मुनाफ़ा स्वयम् ही जमा कराते रहते हैं। बेईमान सञ्चालकगण इसी तरह व्यापार की उगाही भी, हो उससे अधिक दिखाते रहते हैं। उगाही वसूल होने लायक़ है अथवा डूब चुकी इसका निर्णय यद्यपि सञ्चालकों पर रहता है, परन्तु चतुर हिसाब निरीक्षक प्रत्येक उगाही की जांच कर यह सहज ही जान सकता है कि उसकी दृष्टि में उसका कितना अंश वसूल होने के योग्य है।

गुप्त-कोष और सहायक यानी सब्सीडियरी कम्पनीयों द्वारा चतुर डायरेक्टरों ने कम्पनी के शेयर-होल्डरों व जनसाधारण पर कितनी ही तरह से जाल

किये हैं और आये दिन करते रहते हैं उन सबका यदि यहां विवरण किया जाय तो यह लेख और भी लम्बा हो जायगा।

संक्षेप में प्रत्येक व्यापारी को जिसे अपने व्यापार का सञ्चालन वेतन-भोगी कर्मचारियों की सहायता से करना पड़े, यह चाहिए कि वह हिसाब की निरन्तर जांच का उचित आयोजन करे। साल में एक अथवा दो बार जांच कराते रहने से यह मान लेना कि हिसाब बिलकुल ठीक है सदा उचित नहीं होता। इसका यह भी कारण है कि ऐसे हिसाब निरीक्षक एक एक चीज़ की जांच नहीं करते और न वे ऐसा कर ही सकते हैं। हमारे प्राचीन आचार्यों ने भी हिसाब में ग़बन के कोई ४० तरीकों का विवरण दिया है, जिस पर आज कल तो यह वैज्ञानिक युग है जहां नित्य अच्छी और बुरी सारी ही तरह की विद्याओं का आविष्कार हो रहा है। इसलिये हिसाबके जाल के तरीकों का अनुमान करना बड़ा कठिन है। इनसे बचने का सब से अच्छा उपाय यही है कि हिसाब की निरन्तर जांच होती रहे।

पोल-महिमा

[श्री मोतीलाल नाहटा बी० ए०]

१

गगन और क्षिति बीच है, भरी पोल ही पोल।
जग का है आधार यह, पोल बड़ी अनमोल॥

२

गुब्बारा भू पर पड़ा है सुदूर आकाश।
पोल बिना यह पहुँचता कैसे उसके पास॥

३

उदधि-वक्ष पर तैर कर नौका जाती पार।
मूल्य समझले 'पोल' का ऐ पगले संसार॥

४

होती पोल न तो भला कैसे बजता ढोल
महिमा अपरम्पार, नहिं व्यर्थ "ढोल की पोल"॥

महंगी-क्षमा

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत बी० काम]

चन्द्रराज के पिता जगतपुर रियासत में एक बड़े जागीरदार और रियासत के स्तम्भ थे। उन्हें अपने प्राण से भी मान की अधिक परवा थी। वे स्वभाव के बहुत कड़े, किन्तु साथ ही प्रेमालु व्यक्ति थे। अगर उन्हें कोई बात असह्य थी, तो वह थी— अपने आश्रितों द्वारा अपनी आज्ञा की अवहेलना। इस अपराध पर वे इतना कड़ा दण्ड देने को तैयार रहते थे, कि उनके आश्रित सदा यही मनाते रहते कि कभी ऐसा अवसर भूल से भी न उपस्थित हो।

चन्द्रराज की माता सुशीलादेवी हिन्दू घराने की टिपिकल गृहिणी थीं—सरल, शान्त और भोली। हृदय ममता से इतना लबालब भरा हुआ कि थोड़ी सी ठेस लगने से भी छलक जाय। इतनी ममतामय होते हुए भी न जाने कैसे उन्होंने अपने दुखिया भाई के अनुरोध पर केवल दो साल के चन्द्रराज को अपने हृदय को कड़ा कर अपने भाई के पास छोड़ दिया था।

चन्द्रराज के मामा अर्थाभाव से दुःखी हों यह बात नहीं थी। वे एक बड़े भारी ज़िले के हाकिम थे, आलीशान मकान था, बीसों नौकर-चाकर हुक्म पर हाजिर रहते थे। पर वे दुःखी इसलिये थे कि उनके चार बड़े-बड़े पुत्र पिता के दुःख की जरा भी परवा न कर जहां से आये थे वहीं चले गये। अब घर में केवल एक विधवा पुत्रवधू और वे थे। उनकी स्त्री तो चौथे पुत्र को प्रसव कर ही चल बसीं थीं।

हंसराज—चन्द्रराज के पिता का यह नाम था—ने भी चन्द्रराज को उसके मामा के यहां रखने का शायद यह सोच कर विरोध न किया कि निःसन्तान धनी मामा के यहां अगर चन्द्रराज रहे तो क्या बुराई है। चन्द्रराज के मामा उसको बहुत अधिक प्यार करते थे, उनका सारा स्नेह, सारी ममता मानों उसीपर केन्द्रीभूत हो गई थी। उनकी दुखिया पुत्रवधू भी चन्द्रराज को ही देखकर जीती थी, उसे वह पुत्रवत् प्यार करती थी, चन्द्रराज ही जैसे उसकी सारी दुनिया थी, इसी स्नेह और ममतामय वातावरण में चन्द्रराज सत्रह वर्ष का हुआ।

चन्द्रराज के माता-पिता कभी-कभी आते और उसे देखकर अपना हृदय शीतल कर जाते। मामा और भोजाई के प्रेम और वात्सल्य का एक मात्र अधिकारी बनकर बालक चन्द्रराज अपने माता-पिता को भूल सा गया। इस वैभवशील घर में उसको किसी बात का अभाव न था। चन्द्रराज के मामा ने अपने एक मित्र की नवजात कन्या के साथ उसका ब्याह भी पक्का कर दिया था।

चन्द्रराज के मामा जहां उसे हृदय से ज्यादा प्यार करते थे, वहां उन्होंने उसे मनुष्य बनाने में भी कोई कसर न रखी। सुबह-शाम वे स्वयं उसे प्यार के साथ अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों की शिक्षा देते। वे कहते,—

"बेटा, संसार में धैर्य्य ही सबसे बड़ी वस्तु है जो धैर्य्य रखता है वह सदा सुख पाता है, दूसरों की समृद्धि और बढ़ती को देख कर कभी ईर्ष्या

नहीं करनी चाहिये, अपना जीवन सदा दूसरों के काम में लगाना चाहिये जो केवल अपना ही पेट भरता है और दूसरों की परवाह नहीं करता वह पशु है। अपना पेट तो कुत्ते भी भर लेते हैं, अतएव सदा नम्र बनकर दूसरों की सेवा करना ही सच्चा धर्म है।"

इस प्रकार की बातें सुनकर सरल हृदय बालक चन्द्रराज क्या सोचता था, यह तो नहीं कह सकते, लेकिन कई बार यह अवश्य देखा गया था कि वह अपनी पुस्तकें और पहनने के कपड़े तक अपने दरिद्र सहपाठियों को दे देता था। चन्द्रराज के मामा उसकी यह प्रवृत्ति देखकर फूले न समाते थे, वे उसे छाती से लगाकर कहते—

"बेटा चन्द्र, तू किसी दिन अपने कुल का मुख उज्वल करेगा, मेरा आशीर्वाद है कि तू इसी तरह दीन दुखियों की सेवा करने को दीर्घजीवी हो।"

(२)

एक दिन अचानक वह दिन आया जो और सब दिनों से भिन्न होता है—जिस दिन बरसों का साथ एक क्षण में छूट जाता है—सदा के लिये! हृदय की गति बन्द हो जाने से चन्द्रराज के मामा इस दुनिया से चल बसे। उस दिन पहले-पहल चन्द्रराज को अपने माता-पिता का ध्यान आया। मामा के स्नेह से वंचित होकर उसे पिता के आश्रय की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इस वर्ष चन्द्रराज ने स्थानीय स्कूल में मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली थी अब एकाएक मामा के चल बसने से उसे अपने पिता के पास चला जाना पड़ा। उसके पिताने उसे आगरा के एक कालेज में भरती करा दिया।

चन्द्रराज न अपने आदर्श चरित्र और तीक्ष्ण बुद्धि की छाप केवल अपने सहपाठियों पर ही नहीं बल्कि अपने अध्यापकों पर भी बैठा दी शीघ्र ही उसने छात्रों में अपना एक प्रमुख स्थान बना लिया। प्रत्येक सभा सोसाइटियों में वह भाग लेता और हर-एक सामाजिक कार्य्यों में बड़े उत्साह से सम्मिलित होता। धीरे धीरे चन्द्रराज का जीवन एक सार्वजनिक जीवन हो गया, किसी सभा का वह मंत्री था तो किसी का सभापति। अपने भाषणों में वह कहा करता—

"देश के नवयुवकों पर ही नवीन भारत की सारी आशायें अवलम्बित हैं। नवयुवक ही समाज और देश के भावी स्तम्भ हैं। नवयुवको! समाज में क्रान्ति मचा दो, रूढ़िवाद के विरुद्ध कमर कसकर खड़े हो जाओ; भयंकर पर्दा प्रथा, भीषण दहेज प्रथा और बालविवाह, वृद्ध-विवाह, मृतक भोज आदि अमानुषिक रूढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दो। प्रतिज्ञा करो कि हम किसी भी ऐसे मजमे में शामिल न होंगे जिसमें उपरोक्त रूढ़ियों का पूर्ण रूप से बहिष्कार न किया गया हो।"

इसी प्रकार चन्द्रराज ने सामाजिक जीवन बिताते हुए बी० ए० पास किया और अपने पिता की इच्छा के अनुसार उसने आगे एल-एल० बी० पढ़ना आरम्भ किया।

सन् १६३० का ज़माना था, भद्रअवज्ञा आन्दोलन ज़ोरों पर था। आगरा के उस कालेज में भी राष्ट्रीय भावना में पगे हुए छात्रों ने चन्द्रराज को अगुआ करके कालेज युद्ध-समिति (College war council) की स्थापना की। दूसरे ही दिन यह वार-कौंसिल ग़ैरकानूनी क़रार दी गई और उसको भंग करने का सरकारी आज्ञा पत्र चन्द्रराज के पास पहुंचा। उसने उसे फाड़ कर फेंक दिया और सरकारी आज्ञा मानने से अस्वीकार

कर दिया। परिणाम जो होना था वही हुआ। चन्द्रराज को १८ महीने सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला।

चन्द्रराज के पिता ने जब यह समाचार सुना, आग हो गये। लड़के की 'बेवकूफी' पर हद से ज्यादा क्रोध चढ़ आया। अगर उस वक्त चन्द्रराज सामने होता तो शायद वे उसे पीटते-पीटते अधमरा कर देते। चन्द्रराज की माता ने जब पुत्र के जेल जाने की खबर सुनी तो उसके दिल की वही हालत हुई जो दुनिया की बातों से बेखबर एक वात्सल्यपूर्ण मातृ-हृदय की हो सकती है। बेचारी के आंसू भी न निकल पाये, और इस 'दुःख' से उसने जो खाट पकड़ी, फिर कभी न उठा।

चन्द्रराज के पिता ने निश्चय किया कि इस बार छोकरे के जेल से छूटते ही वे बिना उसकी शादी किये न मानेंगे। शादी करने से लड़के का बिगड़ा हुआ दिमाग़ ठीक हो जायगा और उसका मन दाम्पत्य-जीवन की सुनहली पहेलियों में पड़ कर फिर ऐसा पागलपन करने की ग़लती न करेगा।

(३)

वह १८ महीने भी और कितने ही १८ महीनों की तरह बीत गये। चन्द्रराज के सामने जब विवाह का प्रश्न उपस्थित किया गया तो उसने विवाह करने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसके पिता बड़े बिगड़े उन्होंने उसे फ़ौरन घर आने को लिख भेजा। चन्द्रराज ने तत्काल आज्ञा का पालन किया। घर आकर उसने पिता के पैर छुए। उन्होंने बिना आशीर्वाद दिये कहना आरम्भ किया --

"अब तुम नादान नहीं हो इस तरह का छिछोरपन तुम्हें शोभा नहीं देता। 'विवाह' कोई गुड़ियों का खेल नहीं है यह जीवन मरण का प्रश्न है जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है केवल तुम्हारी आधी छटाक की ज़बान हिला देने भर ही से काम नहीं चल सकता। जिस लड़की के साथ आज आठ वर्ष से तुम्हारे विवाह की बात पक्की हो चुकी है, उसके साथ विवाह करना ही पड़ेगा। जाओ नहाओ धोओ। अब और आगरा जाने की ज़रूरत नहीं, आगे पढ़ना व्यर्थ है !"

चन्द्रराज के जीवन में यह पहिला ही अवसर था जब उसे इस प्रकार की झिड़की खानी पड़ी हो। इस प्रकार ज़बरदस्ती सिर पर किसी बात का लादा जाना उसे बिल्कुल पसन्द न था, पर पिता की रूद्रमूर्त्ति और गरम धमकी के आगे उसके होश हवास गुम हो गये। भीतर माता के पास गया। खटिया पर पड़ी हुई रुग्णा माता को देख कर चन्द्रराज की आंखें भर आईं। सुशीलादेवी चन्द्रराज के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली,

"बेटा, विवाह न करोगे क्यों? मेरी तो इस जन्म की एक मात्र साध यही है कि मरने से पहले एक बार बहू का मुख देख लूं। क्या मेरी यह छोटी सी साध भी तुम पूरा नहीं कर सकते ?"

अब चन्द्रराज का दृढ़ निश्चय न टिक सका, उसने इस शर्त पर विवाह करना मंज़ूर किया कि विवाह पर्दाप्रथा, दहेजप्रथा आदि पुरानी रूढ़ियों को ठुकरा कर हो। हंसराज साम, दाम, दंड, भेद से काम लेने वाले व्यक्ति थे, उन्होंने स्वीकार किया कि सब कार्य चन्द्रराज की इच्छानुसार ही होगा। किन्तु जब विवाह का समय आया तब वे बोले,

"विवाह तो हम लोगों की प्रतिष्ठा के अनुसार, पुरानी रस्मों के साथ, जिन्हें तुम रूढ़ियां कहते हो, होगा। अगर तुमने ज़रा भी मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन किया या मेरी प्रतिष्ठा में धब्बा लगाया तो मुझे आत्म-

हत्या कर लेने के सिवा और कोई चारा नहीं रहेगा। हां जब विवाह हो जाय तब तुम तुम्हारी स्त्री को इच्छानुसार रखने को स्वतंत्र हो।"

चन्द्रराज अवाक् रह गया, अपने पिता के इस दुरुखे व्यवहार पर उसे अत्यंत कष्ट हुआ। वह सोचने लगा,—

"मेरे मित्रों में मैं कैसे मुंह दिखाउंगा, जिन सभा संस्थाओं में खड़े होकर मैंने बड़े जोश के साथ अपने साथियों से, इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की और विशेष कर इस पर्दाप्रथा को ठुकराने की अपील की है, उनमें मैं कौन मुंह लेकर जाऊंगा।"

लेकिन इस जगह चन्द्रराज की बुद्धि कुछ काम न आई। चन्द्रराज का विवाह हो गया। घूघटवाली वधू घर आ गई। सुशीलादेवी को बीमारी जैसे कुछ दिनों के लिए कहीं चली गई। वे बड़े उत्साह के साथ इधर-उधर फिरतीं और आने जाने वालियों से अपनी चन्द्रवदना वधू की तारीफ़ करते नहीं थकती।

एकाएक चन्द्रराज ने निश्चय किया कि उसकी पत्नी मनोरमा को घूंघट नहीं रखना चाहिये। जब उसके पिता को मालूम हुआ तो उन्होंने अपना निश्चय जताया कि बिना घूंघट के मनोरमा को लेकर चन्द्रराज उनके घर में नहीं रह सकता।

चन्द्रराज इस अपमान को न सह सका और मनोरमा को लेकर आगरे चला आया। यहां एक प्रसिद्ध फ़र्म में एक क्लर्क की जगह प्राप्त कर वह किसी तरह रहने लगा।

कई महीने बीत गये एक दिन एकाएक उसे तार मिला कि उसकी ननिहाल में उसकी भोजाई सख्त बीमार है और वे दम्पत्ति को देखा चाहती हैं। चन्द्रराज का दिल अपनी मातृस्वरूपा भोजाई को देखने के लिए अधीर हो उठा। बड़ी कठिनाई से दो दिन की छुट्टी मिली। वे मनोरमा को लेकर गये और भोजाई का आशीर्वाद लेकर और मनोरमा को उनकी सेवा करने को वहीं छोड़ कर दूसरे दिन लौट आये। मनोरमा की अथक और अविरल सुश्रुषा से भोजाई की तबियत सुधरने लगी। थोड़े दिनों बाद वे कुछ चलने फिरने लगीं। एक दिन उन्होंने मनोरमा को पास बैठा कर कहा,

"बहू, माता-पिता चाहे बुरे हों फिर भी उनकी सेवा करना, उनकी आज्ञा पालन करना सन्तान का कर्तव्य है। सुधार के ढकोसले में पड़कर अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा से मुख मोड़ना मैं तो बुद्धिमानी नहीं समझती। मेरा चन्द्र तो ऐसा न था फिर क्या कारण है कि वह दुखी पिता और रुग्णा माता की परवाह न कर तुम्हें लेकर आगरे बैठा है ? क्या तुम्हें गांव में अच्छा नहीं लगता ?"

मनोरमा शान्त और अत्यन्त नम्र स्वर से बोली।

'भाभी, क्या आप समझती हैं कि मैं आगरे रहना पसन्द करती हूं ? कदापि नहीं, केवल उनके साथ रहती हूं, उनके दर्शन करती हूं, यही एक सन्तोष है अन्यथा मैं तो उनसे रोज़ कहती हूं कि गांव चलकर रहें घर तो मेरा साम्राज्य है। भाभी, मैं उस साम्राज्य की युवा-राज्ञी हूं। वहां जिस आदर प्रतिष्ठा और प्रेम के साथ मैं रहूंगी वह क्या और कहीं प्राप्त हो सकते हैं ? सास-श्वसुर की सेवा करना मेरे जीवन का एक सुखद स्वप्न है उनके पास रहने से हमें वह अनुभव प्राप्त होते हैं जो जीवन की बड़ी-बड़ी गुत्थियों को सुलझाने में काम आते हैं। पर भाभी, पुरुष स्त्री के भावों और विचारों का मूल्य क्या जानें ? और वह जानने की परवाह भी नहीं करते। वे भी केवल अपने युवक

सुलभ क्षणिक जोश में आकर भ्रम में पड़े हैं। पर भाभी यह जानती हुई भी मैं उनसे कुछ नहीं कहना चाहती क्योंकि यह वह अवस्था है जब शान्त उपदेश, और वे भी अपने आश्रितों द्वारा, दिल में घर नहीं करते उल्टे परस्पर वैमनस्य बढ़ने की सम्भावना रहती है। समय अपने आप जो शिक्षा देगा वह अधिक टिकाऊ और प्रभावोत्पादक होगी।"

कुछ दिन बाद चन्द्रराज आकर मनोरमा को अपने साथ ले गया।

(४)

घर छोड़े बाद आज चन्द्रराज को अपने पिता का पहिला पत्र मिला है। उसमें भी उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि केवल चन्द्रराज की माता के लगातार अनुरोध करने से उन्होंने उसे यह पत्र लिखा है नहीं तो उन्हें इसकी कोई विशेष आवश्यकता न थी। उन्होंने लिखा है कि चन्द्रराज की माता बहुत अधिक बीमार है और मरने के पहिले एक बार बधू के साथ पुत्र को देखना चाहती हैं। आगे चलकर उसके पिताने यह भी लिख दिया है कि अगर वह घर आना चाहे तो कुछ दिनों के लिए अपनी घूंघट-विहीन पत्नि के साथ आ सकता है।

चन्द्रराज ने पत्र पढ़कर मनोरमा की गोद में डाल दिया मनोरमा पढ़कर बोली।

'कब चलने का इरादा है ?"

चन्द्रराज ने मुंह फेर कर उत्तर दिया।

"मैं नहीं जाता।"

मनोरमा अब अपने को न रोक सकी। आंखों में आंसू भर कर बोली।

"माता पिता से इतना अभिमान !"

चन्द्रराज बोले—

"जिस घर में अपमान होता हो मैं वहां नहीं जाना चाहता।"

मनोरमा रोते हुए भी हंस पड़ी, कुछ मुस्करा कर बोली—

"मां बाप द्वारा अपमान ! वाहरे मानरक्षा ! जब मां की गोद में तुम टट्टी फिरते थे, जब पिता की गोद में बैठ कर तुम उनकी मूछे उखाड़ते थे, तब क्या तुम उनका कम अपमान करते थे ? जब चोरी कर मिठाई खाने के अपराध में तुम्हारे चपतें पड़ी थीं तब तुम्हारी मानरक्षा कहां गयी थी ? तुम अब भी उनके लिए वही शिशु हो अन्तर केवल इतना ही है कि उस समय तुम्हारे अपराध क्षम्य होते थे अब उनकी सज़ा मिलती है।"

चन्द्रराज कुछ न बोले चुप रहे।

थोड़ी देर ठहर कर मनोरमा फिर बोली,

"अच्छा तुम न जाओ मुझ ही भेज दो।"

चन्द्रराज ने अत्यन्त गम्भीर होकर उत्तर दिया।

"शाम की ट्रेन से चलेंगे।

\+ + ÷ +

जिस समय चन्द्रराज घर पहुंचे, मां की हालत बहुत चिन्ताजनक थी। हंसराज रोगिणी के सिरहाने बैठे थ, पलंग के पास एक कुर्सी पर [illegible]गलपुर के एक-मात्र डाक्टर कमलाचरण बैठे रोगिणी की नाड़ी परीक्षा कर रहे थे।

चन्द्रराज ने आकर पिता के पैर छुए उन्होंने धीमें किन्तु अत्यन्त पीड़ाजनक स्वर में कहा, "सुखी रहो" मनोरमा भी घूंघट निकाल कर धीरे-धीरे आकर सुशीलादेवी के पैताने खड़ी रही।

रोगिणी ने धीरे-धीरे आंखें खोली अत्यन्त शिथिलता से पूछा, "चन्द्रराज नहीं आया ?"

पैर छूकर चन्द्रराज रोते हुए बोले।

"आ गया हूं मां!"

रोगिणी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली। "सुखी रहो बेटा बहू को नहीं लाया तू?"

मनोरमा पैर पकड़ कर बोली, "आयी हूं मां।"

"सौभाग्यवती हो बेटी, अब मैं तो चली, परन्तु मेरे चन्द्र का ध्यान रखना।"

फिर अत्यन्त शिथिल स्वर में चन्द्रराज की ओर देखकर सुशीलादेवी ने रुक-रुक कर कहना आरम्भ किया।

"बेटा अब अपने वृद्ध दुखी पिता को छोड कर कहीं मत जाना। चन्द्र, जवानी मे जोश होता ही है, पर अनुभव नहीं होता। तुम इस बिगड़े हुए समाज का सुधार करना चाहते हो पर समाज से दूर भाग कर तुम सुधार नहीं कर सकते। सुधरे हुए के बीच रह कर तुम क्या सुधार करोगे? बताओ, आगरे में तुमने कितनों को सुधारा? अगर यहां रहते तो शायद हम भी तुमसे कुछ सीखते।"

इतना कहते-कहते सुशीलादेवी बहुत शिथिल पड गईं!

डाक्टर ने उन्हें कोई दवा पिलाना चाहा, पर हाथ के इशारे से मना करती हुई वे बड़े कष्ट से फिर बोलीं, "अब दवा क्या होगी डाक्टर साहब? मेरा समय हो गया है।"

फिर चन्द्रराज की ओर देख कर बोलीं—

"बेटा, मरने से पहले तुझे एक बात और कह देना चाहती हू कि सुधारक बनने का ख्याल छोड़ दे। सदा सेवक बनने का ध्यान रख। सुधार की भावना मे अहकार है और वह भी मिथ्या। सेवा की भावना मे एक आत्मशुद्धि है और वह भी सत्यदर्शन के साथ।"

अत्यंत परिश्रम के कारण सुशीलादेवी को मूर्छा आ गयी। क़रीब आधे घंटे पश्चात आखें खोल कर अपने पति की ओर देखा। रूंधे हुए गले से बोलीं,

"नाथ, बिदा! जीवन··· की···भूलों के ···· लिए·· क्षमा··· "

फिर सब शांत! रोगिणी, पति पुत्र, घर-द्वार सब छोड़ कर जहां से आई थी वहीं चली गई।

× × ×

चन्द्रराज पिता का पैर पकड़ कर बोले "पिता क्षमा करो।"

हंसराज कुछ न बोले, केवल दो बूद आंसू चन्द्रराज के सिर पर टपक पड़े।

चन्द्रराज अपने आंसुओं से पिता के पैर धोते हुए बोले,

"पिता क्षमा करो"

वृद्ध ने पुत्र को उठा कर गले से लगा लिया और रूंधे हुए कंठ से वे बोले,

"चन्द्र, यह क्षमा बड़ी महंगी पड़ी है।"

ओसवाल-कुलभूषण

सेठ अचलसिंहजी

[श्री मनोहरसिंह डांगी, शाहपुरा स्टेट]

विद्या, धन बल और यश इन चारों दुर्लभ बातों में से एक एक का पाना भी मुश्किल है फिर चारों तो एक जगह बिरले भाग्यशाली को ही मिलती हैं। सेठ अचलसिंहजी बहुत अंश में ऐसे ही बिरले भाग्यशालियों में हैं। आज उन्हीं के जीवन का कुछ परिचय पाठकों को इस लेख द्वारा कराने का प्रयत्न कर रहा हूं। आप बोहरा गोत्रीय ओसवाल सज्जन हैं। आपके पूर्वज सेठ सवाईरामजी थे। उनके कोई पुत्र न होने से उन्होंने श्री० पीतमचन्दजी चोरड़िया को दत्तक लिया था। सेठ पीतमचन्दजी आगरे के ओसवाल-समाज में एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न गृहस्थ थे। उन्होंने अपने बाहुबल से तथा अपनी व्यापार कुशलता से धौलपुर में अपनी फ़र्म स्थापित कर बहुत रुपया पैदा किया था। वे बड़े साहसी और अग्रसोची व्यक्ति थे। धौलपुर रियासत में उनका अच्छा सम्मान था तथा वहां से उन्हें "सेठ" की पदवी भी प्राप्त थी। सेठ पीतमचन्दजी के तीन पुत्र हुए। पहली स्त्री से सेठ जसवन्तरायजी और दूसरी स्त्री से सेठ बलवन्तरायजी और सेठ अचलसिंहजी।

सेठ जसवन्तरायजी आगरे के सार्वजनिक जीवन में बड़े प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। अपने जीवन के अन्तिम २८ वर्ष तक आप आगरा म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य रहे। इसके अतिरिक्त आप स्थानीय आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी रहे। इन्हें इमारतें बनवाने का बड़ा शौक़ था। इन्होंने आगरे में लाखों रुपयों की इमारतें बनवाईं, उनमें से पीतम मार्केट तथा जसवन्त होस्टल विशेष प्रसिद्ध हैं। पिता के स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात सेठ अचलसिंहजी की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध इन्हीं की संरक्षता में हुआ था।

बचपन से ही सेठ अचलसिंहजी का झुकाव पढ़ने की ओर इतना अधिक न रहा, जितना व्यायाम और स्वास्थ्य की ओर। व्यायाम की ओर आपकी बहुत अधिक रुचि रही। आपने अपनी निज की एक व्यायामशाला खोली और उसमें सम्मिलित होकर सैकड़ों नौजवानों ने अपना स्वास्थ्य सुधारा। स्वास्थ्य ही नहीं सुधारा, बल्कि सेठजी के संसर्ग में उन्होंने अपना जीवन भी सुधार लिया। इस व्यायामशाला में आने वाले और दूसरे प्रकार से सेठजी से सम्पर्क रखनेवाले सैकड़ों नवयुवकों ने सदाचार और संयम का सेठजी से वह सबक़ सीखा जो उन्हें आजन्म सुपथ पर चलाता रहेगा। व्यायाम का इतना प्रेम होने का प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि शारीरिक शक्ति में सेठजी का नाम सबसे पहले लिया जाने लगा। आपकी गणना आगरे के पहलवानों में होने लगी और इस दृष्टि से आगरे का बच्चा-बच्चा आपको आदर की दृष्टि से देखने और आदर्श मानने लगा।

स्वास्थ्य की ओर इतना अधिक ध्यान देने का एक फल यह भी हुआ कि शिक्षा में सेठ जी अधिक उन्नति

नहीं कर सके। जैसी सुविधाएं आपको प्राप्त थीं उसमें आपके लिए कालेज की शिक्षा प्राप्त करना कठिन न था। किन्तु इतना ही नहीं हुआ, आप मैट्रिक से आगे नहीं बढ़ सके। परन्तु शिक्षा का जो असली उद्देश्य है, उसे बिना परीक्षा पास किए ही सेठजी ने प्राप्त कर लिया। शिक्षा का असली उद्देश्य मनुष्य को संस्कृत बनाना है और सेठजी इस दृष्टि से पूर्ण रूप में शिक्षित है।

शिक्षा समाप्त करके सेठजी ने व्यापार की ओर कदम बढ़ाया और उसमें निपुणता भी प्राप्त की किन्तु जिस प्रकार विद्यार्थी अवस्था में आपका अधिक ध्यान व्यायाम के प्रचार में लगा उसी प्रकार व्यापारी अवस्था में आपका अधिकतर समय सार्वजनिक कार्यों में व्यय हुआ। बचपन से ही आपका जीवन सभा-संस्थाओं में व्यतीत होता रहा है। प्रारम्भ में आपने एथलेटिक क्लब और एक सार्वजनिक वाचनालय की स्थापना की। सन १६२० में आपने मृत प्रायः आगरा व्यापार समिति (Agra Trade Association) का पुनर्सङ्गठन किया और आप उसके अवैतनिक मन्त्री बनाये गये। और भी कितनी ही सार्वजनिक-संस्थाएं आपकी देख-रेख में चलती रही है। उदाहरणार्थ, ओसवाल व्यायामशाला और ओसवाल बोर्डिङ्ग हाउस के आप जन्मदाता हैं। श्री वीर विजयजी जैन श्वेताम्बर पाठशाला के आप उपसभापति है। बाल हितकारिणी सभा, रोशन मुहल्ला के संरक्षक तथा श्री सनातन जैन पाठशाला मानपाड़ा के आधार स्तम्भ है। जैन संगठन सभा का भी ४५ साल तक आपने मन्त्री पद पर प्रशंसनीय कार्य किया है। श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरानवाला (पंजाब) के ईस्वी सन १६३० में होने वाले वार्षिकोत्सव के सभापति के पद को भी आपने सुशोभित किया था। इसी प्रकार श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन के आप सभापति चुने गये एवं बड़ी लगन से लगभग १॥ वर्ष तक उस पद पर रह कर आपने ओसवाल-समाज के लिए बड़ा कार्य किया। "ओसवाल-सुधारक" जो अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन का मुख्य-पत्र है, के जन्मदाता भी आप ही हैं तथा दो वर्ष से आप स्वयं ही उसके प्रधान संचालक का कार्य कर रहे है। इस समय आप 'अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी ओसवाल नवयुवक कान्फ्रेन्स" एवं "भारत जैन महामण्डल" के सभापति भी है। कई वर्ष तक आप आगरा म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य और उसके वाइस चेयरमैन रहे। आगरेकी प्रसिद्ध 'स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड' के खोलने में आपने बड़ा सह-

(सेठ अचल सिंहजी, आगरा)

योग दिया। उसको इतना उन्नत बनाने में आपका भी हाथ है। आप एक साल तक उक्त कम्पनी के बोर्ड आफ़ डायरेक्टर्स के चेयरमैन भी रह चुके हैं। अब भी आप उसके डायरेक्टर हैं। आपके ही प्रयत्न से आगरे में पीपल्स बैंक की शाखा भी स्थापित हुई थी। उसके भी आप प्रेसिडेण्ट और डायरेक्टर बनाए गये थे। इस प्रकार व्यापार-क्षेत्र में भी आपका बड़ा मान है। आपकी निष्पक्षता में जनता का अटल विश्वास होने के कारण आप बहुधा पंच नियुक्त किए जाते हैं। पचासों मामलों में पंच बन कर आपने लोगों के झगड़ों को निपटाया है। सभी लोग आपकी इज्ज़त करते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन और कांग्रेस से आपका सम्बन्ध ई० स० १९२० के आन्दोलन से हुआ। उस आन्दोलन में आप जेल तो नहीं गए, पर उसके सञ्चालन में आपका हाथ बहुत रहा। ई० स० १९३० के आन्दोलन में तो एक प्रकार से आपने अपनी सारी सेवाएं देश को अर्पित कर दी थीं। इस आन्दोलन में रुपये का प्रबन्ध तो आपके हाथ में था ही और भी सब काम आपकी देख-रेख में होते थे। फलतः ता० २० सितम्बर १९३० को सेठजी अपनी देश-सेवा के पुरस्कार स्वरूप गिरफ्तार कर लिए गये और ६ मास की सख्त कैद और ५००) रु० जुर्माने की आपको सजा मिली। इसको आपने सहर्ष स्वीकार किया। इस समय जेल में आपको कुछ पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। इन पुस्तकों के आधार पर अपने अनुभव के अनुसार आपने "सफल-साधना" नाम की एक छोटी सी ६० पृष्ठ की पुस्तक लिखने का प्रयत्न किया। पर "गांधी-इरविन पेक्ट" के होने पर अन्य राजनैतिक कैदियों के साथ आप भी राय बरेली जेल से छूट कर १० मार्च १९३१ को आगरे आ गये। इस तरह जेल से जल्दी छूट जाने के कारण आप अपने अनुभवों को पूर्ण तौर से नहीं लिख सके। इसलिए आपने यह निश्चय किया कि भविष्य में यदि कभी और अवकाश मिला तो अपने विचारों को पूर्णतया लिखने की चेष्टा की जायगी। मुश्किल से एक वर्ष भी नहीं निकल पाया था कि युद्ध के बादल फिर मंडराने लगे और महात्माजी के इङ्गलेंड से वापिस आने के ६ दिन बाद ही ता० ४ जनवरी १९३२ ई० को फिर राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गया। इस समय भी आपने अपनी सेवाएं देश को अर्पित कीं। फलतः ता० २२ फरवरी १९३२ ई० को आप फिर गिरफ्तार कर लिए गये और इसबार आपको १८ महीने की सख्त सज़ा और ५००) रु० जुर्माने का दंड दिया गया। यह अवसर आपके लिए एक स्वर्ण अवसर था, किन्तु मनुष्य का कर्म उससे आगे चलता है, अर्थात मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। अभाग्यवश इस बार जेल में आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आपके कूल्हे में निरन्तर दर्द रहने लगा, जिसके कारण आपको चलने फिरने, बैठने, सोने आदि में अधिक कष्ट होने लगा। इसके अतिरिक्त आपके पूज्य भाईसाहब बलवन्तरायजी बीमार हो गये, जिस कारण आपका चित्त सदा चिन्ताग्रस्त रहने लगा। आखिर ११ जनवरी १९३३ ई० को उनका भी स्वर्गवास हो गया। श्री० बलवन्तरायजी और श्री० अचलसिंहजी में अद्वितीय भ्रातृ-प्रेम था। भाई की मृत्यु का जेल में आपके स्वास्थ्य और मन पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा। आर्थिक दृष्टि से भी आपको बहुत हानि हुई। इस समय अगर किसी वस्तु ने आपको सन्तोष और सहायता पहुंचाई तो

वह केवल धार्मिक ग्रन्थों का आश्वासन ही था। सर्व प्रथम इस बार आपने "सफल-साधना" का संशोधित और सम्वर्द्धित संस्करण निकाल कर अपना पहला कार्य पूरा किया। इस जेल यात्रा के समय आपको जैन धर्म के दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी आदि सम्प्रदायों की अनेक पुस्तकों के पढ़ने का अवसर मिला। फलतः आपका यह विचार हुआ कि कोई छोटा-सा जैन-धर्म के विषय में ऐसा ग्रन्थ तैयार किया जाय, जिसको पढ़कर जैन और अजैन बन्धु जैनधर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों और विषयों का अनुमान लगा सकें। फलस्वरूप आपने "जेल में मेरा जैनाभ्यास" नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लगभग ४५० पृष्ठ का तैयार किया और उसे लिखते समय आपने इस बात का पूर्ण ध्यान रखा कि किसी सम्प्रदाय विशेष का खंडन-मंडन न किया जाय। आपका हृदय साम्प्रदायिक संकीर्णता और पक्षपात से रहित है और समष्टिरूप से जैन-समाज के उद्धार की भावना से ओत प्रोत है।

जेल से लौट कर आपने व्यापार-धन्धों से पूरी तरह से मन को हटालिया। अब आप घर पर रहकर सार्वजनिक कार्य ही अधिकतर करते रहते हैं। जब ई० स० १९२५ में अति वर्षा के कारण आगरा तहसील में बाढ़ आ गई थी उस समय भी आपने जनता की रक्षा के लिए काफ़ी प्रयत्न किया था तथा धन वस्त्र की सहायता पहुंचाई थी। बिहार-भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए पांच हजार रुपया आगरे से इकट्ठा करके भिजवाया था। राष्ट्रीय-कार्य के लिए जब-जब रुपया इकट्ठा किया गया, तब-तब उसके एकत्र करने में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आपने अपने पास से भी हज़ारों रुपया ऐसे कार्य्यों में व्यय किया है।

ग्रामीण जनता के लिए आपने एक बड़ी रक़म देने का संकल्प किया था। उसके लिए 'अचल-ग्राम सेवा-संघ" की स्थापना हुई थी। इस संघ के द्वारा ग्रामीण जनता में औषधि-वितरण, ग़रीबों को कपड़े और कम्बल बांटने तथा पुस्तकालय व पाठशाला खोलने का काम होने लगा। शुरु-शुरु में यह काम आगरा ज़िले की फ़िरोज़ाबाद और ऐत्मादपुर तहसीलों में ही जारी किया गया था। आप निरन्तर यही सोचते रहते थे कि किस प्रकार आप अपने पैसे का सदुपयोग करें। आप यही सोच रहे थे कि ता० १५ मार्च १९३१ ई० को आगरे में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। उसे प्रारम्भ में ही रोकने के लिए सैकड़ों आदमियों के मना करने पर भी आप अकेले ही मुसलमानों की बस्ती में रवाना हो गये। सेठजी हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के बड़े हिमायती हैं। आपके समझाने से लोग रुक भी गये थे, पर ज़रा आगे बढ़ने पर कुछ गुंडों ने आप पर भी आक्रमण कर दिया जिससे आपके सिर में गहरी चोट आई। इस घटना ने आपके उपरोक्त विचार को और भी पुष्ट कर दिया कि जो कुछ करना हो वह शीघ्र से शीघ्र कर देना चाहिये। फलतः आपने ता० २८ जुलाई १९३१ ई० को एक वसीयतनामा लिखा और उसमें तै कर दिया कि आपकी मृत्यु के बाद अमुक-अमुक व्यवस्था होगी। लेकिन इस पर भी आप को कोई विशेष सन्तोष नहीं हुआ और आप की आत्मा ने आपको प्रेरित किया कि जो काम अपनी मृत्यु के बाद कराना चाहते हो उसे अपने जीवन काल में ही क्यों न शुरू कर दो। इसलिए आपने अपनी सम्पत्ति में से एक लाख रुपये अलग निकाल कर दो ट्रस्ट "अचल ट्रस्ट" व " अचल जैन सेवा-ट्रस्ट" कायम कर दिए।

कोई व्यक्ति या संस्था आप से किसी भी प्रकार

की सहायता लेने आते हैं तो वह आपके यहां से सर्वथा निराश या विमुख होकर वापिस नहीं जाते। संस्था-साहाय्य या व्यक्ति-साहाय्य का कार्य सेठजी के यहाँ इतना बढ़ा हुआ दिखाई देता है कि कोई नहीं कह सकता कि सेठजी किसी दूसरे भी काम में अपना समय देते हैं या नहीं। ऐसा मालूम होता है मानों सार्वजनिक सेवा ही सेठजी के दिन-रात का कार्य है।

दया मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है और वह अनेक गुणों का जनक भी है। लोकमान्य तिलक ने अपने "गीता-रहस्य" में इस "दया" के भाव का खूब समर्थन किया है और इसे आत्मा का एक स्वाभाविक गुण मान कर कर्माकर्म की सारी व्यवस्था का भार इसी पर रक्खा है। आत्मा के इस गुण को आप किसी भी तरह अलग नहीं कर सके हैं। "दया" सेठजी की आत्मा में विशेष रूप से जागृत हुई मालूम देती है और उसकी सूचना आपके दिन-रात के कार्य करते रहते हैं। सचमुच सेठजी की आत्मा वह आत्मा है, जिसमें दया का अंकुर वास्तव मे प्रस्फुटित हुआ है, आत्म-कल्याण की प्रबल भावना ने जिसके दिल में घर बना लिया है, सम्पत्ति-सुलभ-व्यसन जिससे कोसों दूर हैं और जिसमें साधु-सेवा-समागम की सद्भावना सदैव निवास करती है।

सेठजी स्वभाव से बड़े ही सीधे और सरल हैं। छल, कपट और चालबाज़ी आपके पास होकर भी नहीं निकली है। आप निर्भय और निस्पृह भी एक ही हैं। अनुशासन में चलना तो मानों आपने जन्म से ही सीखा है। आगरा म्युनिसिपल कमेटी के वाइस चेयरमैन के पद पर रह कर जो उत्साह पूर्वक सार्वजनिक सेवाएं आपने कीं, उनसे सन्तुष्ट होकर जनता ने ई० स० १९२२ में आपको प्रान्तीय कौंसिल के लिए खड़ा किया। काफ़ी प्रयत्न कर चुकने, खर्च हो जाने और सफलता की पूरी आशा होने पर भी जब आपके प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवार पं० गोविन्दसहाय शर्मा ने स्वराज्य पार्टी का सदस्य होना स्वीकार कर लिया और पं० मोतीलाल नेहरू ने आपकी सदस्यता को मान लिया, तो सेठजी स्वयं उम्मेदवारी से हट गये। इतना ही नहीं आपने पूरी कोशिश करके शर्माजी को सफल बनाया। शर्माजी की मृत्यु के बाद आप कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए और वहां आपने स्वराज्य-पार्टी का पूरा साथ दिया। आपका रहन-सहन बहुत सादा है। मित-व्ययता के आप बड़े पक्ष-पाती हैं। एक पैसा भी व्यर्थ व्यय करना आपके लिए सम्भव नहीं। आपका चरित्र तो बड़े-बड़ों के लिए आदर्श है।

वास्तव में सेठ अचलसिंहजी का जीवन आदरणीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। उनका जीवन उनकी व्यापक शुद्ध-हृदयता और सरलता का पूरा परिचायक है। जहां भी सेवा का ज़रा सा मौक़ा देखा कि सेठजी अपना तन मन धन आदि सभी उसमें लगा देते हैं। ऐसे सरल, शुद्ध-हृदय वाले व्यक्ति को जन्म देकर कौन समाज गौरव का अनुभव न करेगा?

गांव की ओर

(धारावाही मौलिक उपन्यास)

[लेखक—श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत बी० काम०]

'ओसवाल नवयुवक' के पाठकों को यह जानकर आनन्द होगा कि इस अङ्क से हम उनकी सेवायें एक मौलिक उपन्यास प्रस्तुत कर रहे हैं जो अब प्रत्येक अङ्क में क्रमशः प्रकाशित हुआ करेगा। लेख, कविता, ग्रन्थ आदि अन्य प्रकार के साहित्य की तरह उपन्यास भी विचारों के प्रोत्साहन का एक साधन है और सभी साधनों की तरह यह अच्छा और बुरा दोनों ही हो सकता है। इस उपन्यास के रचयिता हमारे समाज के नवयुवक-लेखक श्री गोवर्द्धन सिंह महनोत हैं— जिनकी 'सुन्दरता या अभिशाप' शीर्षक कहानी पाठक पिछले अङ्क में पढ़ चुके होंगे और इस अङ्क में भी अन्यत्र जिनकी लिखी हुई 'महगी क्षमा' प्रकाशित है। इन कहानियों पर से ही पाठक श्री गोवर्द्धनसिंह की लेखनी, उनके भावों की उड़ान और भाषा पर के उनके काबू का पता पा लेंगे। पर उपन्यास-रचना में भी यह श्रीयुत महनोत का पहला ही प्रयास नहीं है। इसके पहले उनका लिखा हुआ "ऊर्मिला" नाम का एक उपन्यास पुस्तक रूप में छप चुका है। आशा है उपन्यास मनोरञ्जक होने के साथ पाठकों के लिये शिक्षाप्रद भी होगा। हम श्री महनोतजी के आभारी हैं जिन्होंने अपनी कृति छापने का हमें अवसर दिया है। यह उपन्यास अब प्रत्येक अङ्क में क्रमशः प्रकाशित होता रहेगा इसलिये पाठकों के लाभ में होगा कि वे 'ओसवाल नवयुवक' के सब अङ्कों की फाइल पूरी रक्खें। —सम्पादक)

(लेखक)

(१)

सुशील ने कमरे में प्रवेश किया उस समय बारह बजे थे पर प्रकाश अब भी न सोया था। आरामकुर्सी पर बैठा हुआ वह खिड़की से दिखाई देने वाले चन्द्रमा की ओर एकटक देख रहा था। उसके नेत्र चन्द्रमा और बादल के टुकड़ों की क्रीड़ा देखने में लगे थे, परन्तु उसका मन किसी गहरे विचार सागर में डुबकियां लगा रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानों उसके मन और नेत्र परस्पर की बहुत दिनों की मित्रता से हाथ धोकर एक दूसरे को भूलने का प्रयत्न कर रहे हैं। वह अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि सुशील का आना भी उसे न जान पड़ा। आज कई दिनों से सुशील अपने अन्यतम बन्धु की यह एकाग्र-प्रियता और विचार-तल्लीनता देख कर हैरान था। वह इसका कारण जानना चाहता था। इसीलिये उसने कई

बार प्रकाश को पूछा भी; लेकिन प्रकाश ने उसे बातों में ही टाल दिया। आज सुशील ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि किसी तरह भी हो प्रकाश से बिना कुछ स्पष्ट सुने वह न मानेगा। चुपके से कुर्सी के पीछे पहुंच कर हल्की मीठी चपत जमाते हुए सुशील पास ही पड़ी हुई मेज़ पर बैठता हुआ बोला, "आज फिर किस उधेड़बुन में पड़े हो भाई ? मैंने तो समझा था कि अब बारह बजे तक तुम सो गये होओगे।"

प्रकाश ने अपने को सम्हालते हुए उत्तर दिया, "चांदनी रात मुझे बड़ी भली मालूम होती है सुशील ! इच्छा होती है कि घण्टों बैठा चन्द्रमा को देखा करूं।"

सुशील ने देखा कि प्रकाश उससे बन रहा है। वह भी सोने का बहाना करने लगा। उसे सोता देख कर प्रकाश बोला, "सुशील, नाराज हो गये क्या ? मुझे तुम से कुछ कहना है।"

सुशील बोला, "कहो ! मैं सुन रहा हूं।"

प्रकाश, "मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूं भाई। क्या तुम इस समस्या को सुलझाने में मेरी सहायता न करोगे ?"

सुशील पलंग पर बैठता हुआ बोला: "मैं देवता तो हूं नहीं प्रकाश, कि बिना तुम्हारे कहे हुए ही तुम्हारी समस्या को समझ सकूं। मैंने कितनी ही बार तुम से इस विषय में पूछा भी, लेकिन तुम्हारा टालमटूल करना देख कर मुझे दुःख हुआ और मैंने समझा कि शायद तुम मुझे अपना भेद नहीं बतलाना चाहते।"

प्रकाश आंखों में आंसू भर कर बोला, "क्षमा करो मेरे अन्तरङ्ग मित्र ! यदि तुम्हें अपने हृदय की व्यथा नहीं कहूंगा तो किससे कहूंगा ? मैंने इतने दिन भरसक इस समस्या को टाल देने की चेष्टा की, किन्तु आज पिताजी के पत्र ने उसे और भी जटिल बना दिया। सुशील, तुम गत छुट्टियों में मेरे साथ मेरे घर गये थे, याद है न ?"

सुशील ने हंसते हुए उत्तर दिया, "हां, याद है और खूब अच्छी तरह याद है। गौरीपुर के ज़मीन्दार विजयशंकरजी को तो मैं इस जीवन में किसी तरह नहीं भूल सकूंगा। कितने हँसमुख ! कितने मिलनसार !! जिस समय वीणा हाथ में ले लेते हैं बस, समा बंध जाता है। वे शायद उन दिनों तुम्हारे यहां सपरिवार निमन्त्रित थे।"

प्रकाश बोला, "हां, और उनके उस सपरिवार निमन्त्रण ने ही मेरे लिये यह समस्या उपस्थित कर दी है। उनकी कन्या अनुपमा की मेरे साथ विवाह की बातचीत यों तो गत ५ वर्षों पहले से ही पक्की हो चुकी थी, लेकिन जब तक मैंने उसे नहीं देखा था तब तक कुछ भावना भी नहीं थी। सोचा करता था कि इस सम्बन्ध का उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं है, पिताजी पर है। लेकिन जब से उसे देखा, मेरा मन न जाने क्यों उस कल्पना-जगत में विचरण किया करता है, जहां भौतिक मिलन का सुख है, शारीरिक वियोग का दुःख है, वासनामय प्रेम का हर्ष और शोक से पूर्ण साम्राज्य है और है मृत्यु का ताण्डव नृत्य। दाम्पत्य-जीवन के स्वप्न देखा करता हूं। बहुत प्रयास करने पर भी इन विचारों को हटा नहीं सका हूं। पहले 'विवाह' शब्द ही मेरे लिये हास्य की वस्तु के सिवाय और कुछ नहीं था, अब उसमें एक प्रबल आकर्षण का अनुभव करता हूं।"

सुशील ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "तो विवाह कर क्यों नहीं लेते ? इसमें इतना व्यग्र होने की क्या आवश्यकता है ? हमें भी कुछ दिनों मिठाइयां, राग, रंग आदि का आनंद प्राप्त होगा ही।"

प्रकाश एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोला, "व्यङ्ग न करो सुशील। क्या इस समय मुझे विवाह करना उचित है ? क्या इस समय विवाह करने से तुम मुझे रोकोगे नहीं ? जननी जन्मभूमि विदेशियों द्वारा पददलित हो रही है। चारों तरफ भयानक बवंडर, भीषण अव्यवस्थितता छाई हुई है। प्रचण्ड दरिद्रता और भूख की आंधी में सारा देश तबाह हो रहा

है। स्वाधीनता के युद्ध के लिए देश को जगाया जा रहा है। माताएँ अपने पुत्रों को, बहनें अपने भाईयों को और पत्नियां अपने पतियों को ही सहर्ष स्वतन्त्रता संग्राम में नहीं भेजतीं बल्कि स्वयं भी अग्रसर हो रही हैं। ऐसे समय में क्या मुझे विवाह कर पैरों में बेड़ी डाल लेना उचित है? मां की बलिवेदी पर जब युवकगण अपने जीवन का बलिदान देने के लिए होड़ लगा रहे हों, मैं किस तरह दाम्पत्य जीवन के सुख का उपभोग कर सकता हूं ?"

सुशील ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "अगर यह बात है तो मेरी समझ में तुम्हारी समस्या कोई कठिन समस्या नहीं। मैं ऐसे समय में अवश्य ही तुम्हें विवाह करने से रोकूंगा। अनुपमा के प्रति तुम्हारा यह प्रेम-प्रेम नहीं किन्तु मोह है। सच्चा प्रेम वही है, जिससे तुम्हें सत्य मार्ग में जाने का प्रोत्साहन मिले, नहीं कि पथ भ्रष्ट होने का अवसर। प्रेमज्वाला में जलते रहना विशेष मधुर है प्रेम की शीतल छाया में विश्राम करने की अपेक्षा। इस ज्वाला से जो प्रेरणा तुम्हें मिलेगी, वह उस शीतलता से नहीं मिल सकती। शीतलता से केवल शिथिलता हाथ लगेगी और ज्वाला से जोश। मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि मैं विवाह को, - दाम्पत्य-जीवन को—हेय समझ रहा हूं। नहीं, किन्तु मेरे कहने का अर्थ यह है कि इस समय इसकी देश में कोई आवश्यकता नहीं। जनसंख्या ज़रूरत से ज्यादा बढ़ गई है। इस समय तो ऐसे त्यागियों की, मां की वेदी पर मर मिटने वालों की आवश्यकता है, जो स्वतन्त्रता युद्ध में प्राण तक देने में आगा पीछा न करे। प्रकाश, मित्र होने के नाते मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने विचारों को, अपनी भावनाओं को तुम्हारे सामने वास्तविक रूप में रखूं। क्षमा करना, मैं तुम्हारे इस कल्पना-साम्राज्य के भ्रमण की कभी तारीफ नहीं कर सकता। इस समय तुम्हें उचित है कि तुम अपने विचारों पर, अपनी इच्छाओं पर, अपने सुख-स्वप्नों पर नियन्त्रण रक्खो। केवल इसलिये कि अनुपमा को तुम बहुत चाहते हो, तुम्हारा विवाह कर लेना कोई ज़रूरी बात नहीं है। विवाह ही प्रेम की अन्तिम सीढ़ी नहीं है। सच्चा प्रेम इस तरह के किसी भी नियन्त्रण में सीमाबद्ध होकर नहीं रह सकता। देश प्रेम की विस्तृत और पवित्र वेदी पर इस व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान करने में ही गौरव है!"

प्रकाश बोला, "भाई तुम्हारे इन अमूल्य उपदेशों का मैं आभारी हूं। अपनी इच्छाओं को, अपनी लालसाओं को दबाने का मैंने सदा से प्रयत्न किया है और करता रहूंगा। हो सकता है कि अनुपमा को—अपने स्वप्न साम्राज्य को एक मात्र अधिष्ठात्री को मैं भूल सकने में समर्थ हो सकूं, किन्तु इससे भी बड़ी और कठिन एक समस्या और है। उस समस्या पर विचार करने मात्र से ही मैं सिहर उठता हूं। पता नहीं कार्यरूप में परिणत करने पर मेरी क्या दशा होगी?

सुशील पलग से उठकर कुर्सीपर बैठता हुआ बोला, "वह कठिनाई क्या है?"

प्रकाश बोला, "घबड़ाते क्यों हो? कह रहा हूं। मान लो मैंने विवाह करना अस्वीकार कर दिया तो इसका परिणाम बड़ा बुरा होगा। पिताजी की समाज में मानहानि होगी। चार पांच वर्ष से जिस बालिका के साथ मेरा विवाह निश्चित हुआ, उसके साथ यदि मैं विवाह करना अस्वीकार करूं तो समाज में बहुत गोलमाल होने की सम्भावना है। मैं स्वयं अपनी आत्मा की आज्ञा के आगे समाज की तनिक भी परवाह नहीं करता, किन्तु पिताजी समाज के एक स्तम्भ होकर किस प्रकार उसकी अवहेलना कर सकते हैं? जब कि उनके सिद्धांत केवल उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा तक ही सीमित हैं, चाहे फिर समाज के नियम, उसकी रूढ़ियाँ कितनी ही विकृत क्यों न हों। मैं सारे समाज के कोप से नहीं डरता, लेकिन पिताजी की कोपाग्नि में पड़ने से डरता हूं। जिन्होंने मेरे लिये बिना किसी संकोच के अच्छे बुरे सब कष्ट सहे, उन्हें दुविधा में

किस प्रकार डालूं ? माताजी के जीवन का भी सबसे बड़ा मनोरथ शायद यही है कि पतोहू घर में आये। वे वर्षों से वधू का मुख देखने को अधीर हो रही हैं। मेरा विवाह के लिये अस्वीकार करना ही उनके लिये बज्रपात के समान होगा। मैं क्या करूं और क्या न करूं समझ में नहीं आता। यही वह समस्या है, जिससे मैं इतना डरता हूं।"

सुशील बोला, "प्रकाश, मैं तुम्हारी कठिनाई का अनुभव करता हूं। मैं तुम्हें किसी कार्य को करने के लिए बाध्य नहीं करता, केवल अपने विचार तुम्हारे आगे रख रहा हूं। जहां आत्मा से प्रेरणा मिलती है, सत्यनिष्ठा जिस कार्य को करने के लिए उत्साहित करती है, उस स्थान पर बड़ी से बड़ी सांसारिक शक्ति की भी कोई हस्ती नहीं कि हमें उस कार्य के करने से रोक सके। माता की महत्वहीन प्रसन्नता के लिए अपने सबसे प्यारे सिद्धान्त की हत्या कर देना मेरी समझ में तो पूरी बेवकूफी है। मान लो कि तुमने विवाह करना स्वीकार कर भी लिया, तो भी तुम—जैसी कि आशा की जा सकती है—अपने समाज की उन प्राचीन निरर्थक रूढ़ियों को अवश्य ही ठुकराओगे, जो किसी समय न जाने किस अभिप्राय से प्रचलित की गयी थीं। उदाहरण के लिये दहेज और परदा प्रथा को तुम दूर रखना चाहोगे। पर इतनाही तुम्हारे पिता के लिये समाज की नज़रों में गिर जाने के लिये काफी होगा। अब तुम्हीं बतलाओ कि कहां तक उनके आग्रहों की पूर्ति के लिये हम अपने सर्वप्रिय सिद्धान्तों की हत्या कर सकते हैं ? क्षमा करना, मेरी राय में तो यदि माता पिता क्या ईश्वर भी देश-कार्य में बाधक हों तो उन्हें भी केवल त्याग ही नहीं देना, बल्कि मिटा देना होगा। समाज के लिये क्या सोचते हो ? अगर हमने इस अन्धे समाज में विद्रोह कर इसकी आंखें नहीं खोल दीं तो हमारा सत्य-प्रियता, हमारा जीवन व्यर्थ है। क्या तुम यही चाहते हो कि यह समाज लगातार अन्धकूप में गिरता चला जाये ? अगर नहीं, तो विद्रोह करना होगा। माता पिता को अपने विचार बतला दो। उन्हें यह मालूम हो जाने दो कि तुम अपनी आत्मा की उच्च प्रेरणा से काम करते हो। अनुपमा को भी अपने विचार स्पष्टतया बतला दो। मैं एक बार फिर कह देना चाहता हूं प्रकाश, कि सच्चा प्रेम वही है कि जिससे सत्य मार्ग में जाने का प्रकाश मिले। रात बीतने आई। अभी सो रहो। कल पिताजी को अपने दृढ़ निश्चय की सूचना लिख भेजना।"

दूसरे दिन प्रकाश ने उठ कर देखा कि दिन बहुत चढ़ आया है। पर आज उसके हृदय में एक उत्साहप्रद शान्ति थी। उसे महसूस होता था, जैसे उसके हृदय पर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया है।

(२)

बाबू विजयशंकर मधुपुर राज्य के अन्तर्गत एक छोटे से गांव गौरीपुर के ज़मींदार हैं। सुनते हैं, इनके पूर्वजों ने मधुपुर महाराजा की प्राण रक्षा के लिये किसी युद्ध में प्राण विसर्जन किये थे इसी कारण महाराजा ने प्रसन्न होकर ज़मींदारी प्रदान की थी। इनकी वार्षिक आय इस समय लगभग पांच हज़ार रुपये के लगभग हो जाती है। इनका स्वभाव बड़ा मिलनसार है। इनके सब आसामी इनसे खुश रहते हैं और कहते हैं कि यदि स्वामी मिले तो ऐसा। अपने मानकी रक्षा के लिये बाबू विजयशंकर प्राण देने को भी तैयार रहते हैं, चाहे इसे उनका दोष समझा जाय अथवा गुण।

इनकी स्त्री रमादेवी स्वभाव की कुछ कड़ी किन्तु आज्ञाकारिणी हैं। परमात्मा की कृपा से इनके दिन बहुत आनन्द से कटते हैं। अगर किसी बात की कमी थी तो केवल यही कि उनके बाद इस ज़मींदारी का उपभोग करनेवाला कोई न था। अनेक अनुष्ठान और यन्त्र, मन्त्र करने पर भी जब एक कन्या के सिवाय और कोई सन्तान न हुई तो यह दम्पति अब इस तरफ़ से एक प्रकार से निराश हो चुके थे। अनुपमा इनको इकलौती

कन्या है। इसलिये जैसा स्वभाविक है—वह पुत्र के समान लाड़ प्यार में बड़ी हुई है। रमादेवी की सन्तान-लिप्सा ने अनुपमा को जहां वात्सल्य और लाड़ प्यार के प्रवाह में डुबाये रक्खा, वहां उनके बड़ेपन ने उस पर आवश्यक नियन्त्रण भी रक्खा और कभी उसे नियमों की अवहेलना करने का अवसर न दिया। विजयशंकर स्वयं विद्वान हैं, स्त्री शिक्षा के हिमायती हैं। अनुपमा को उन्होंने बचपन ही से कन्या पाठशाला में शिक्षा दिलाई थी। अंग्रेजी की शिक्षा घर पर वे स्वयं ही दिया करते थे। इसी कारण अब अनुपमा कुछ-कुछ अंग्रेज़ी भी बोलने लगी है।

❀　　　❀　　　❀

बाबू राधाकान्त विजयशंकर के स्कूल के मित्र हैं। इन दोनों में अत्यन्त घनिष्ठता है। राधाकान्त पास ही के गांव शिवपुरी के तहसीलदार हैं। मासिक वेतन दो सौ रुपया है। प्रकाशचन्द्र इनका इकलौता पुत्र है। इनके एक छोटे भाई गोपालचन्द्र कलकत्ते में कपड़े का व्यवसाय करते हैं। मैट्रिक की परीक्षा स्थानीय स्कूल से देने के बाद प्रकाश कलकत्ते जाकर अपने चाचा गोपालचन्द्र के पास रहने लगा था। थोड़े दिनों बाद जब सुशील-कुमार भी कलकत्ते आकर होस्टल में रहने लगा तो प्रकाश ने भी अपने पिता व चाचा की अनुमति प्राप्त कर होस्टल में रहना आरम्भ किया। यहां पर सुशील कुमार का भी कुछ परिचय दे देना होगा। उसके पिता जगदीशप्रसाद मधुपुर कालेज में प्रोफेसर हैं एवं बाबू विजयशंकर और बाबू राधाकान्त मे उनका अच्छा खासा घरौपा है। वे इस सिद्धान्तवाले व्यक्ति हैं कि लड़के लड़की मां बाप के पास नहीं पढ़ सकते; जैसे कोई डाक्टर बीमार पड़ने पर अपनी दवा आप नहीं कर सकता, उसी प्रकार पिता अपने पुत्र को स्वयं गुरू बन कर उचित शिक्षा नहीं दे सकता। उनके लिये एक अलग गुरू चाहिये। इसी विचार से उन्होंने राधाकान्त और विजयशंकर से सलाह करके सुशील को कलकत्ते पढ़ने भेज दिया था और राधाकांत के छोटे भाई गोपालचन्द्र को लिख दिया था कि वे समय-समय पर उसकी खोज लेते रहें। सुशीला की माता उसके बचपन में ही मर चुकी थी, इसलिये जगदीशप्रसाद को सुशील को कलकत्ते भेजने में किसी प्रकार की दिक्कत का सामना न करना पड़ा।

गत वर्ष जब प्रकाश छुट्टियों में घर गया था, तब अत्यन्त आग्रह—यहां तक कि वह 'आग्रह' दुराग्रह कहा जा सकता है- करके अपने अन्यतम बन्धु सुशील को भी अपने घर ले गया था। उन्ही दिनों बाबू विजयशंकर भी राधाकान्त के घर सपरिवार निमन्त्रित होकर आये हुए थे। यहीं प्रकाश तथा सुशील ने अनुपमा को देखा था।

चार पांच वर्ष पहले से ही प्रकाश और अनुपमा की विवाह सम्बन्धी बात-चीत निश्चित हो गयी थी। इस वर्ष अनुपमा ने सोलहवें वर्ष में पदार्पण किया है। रमादेवी सदा इस बात की शिकायत किया करतीं कि कहीं एक प्रतिष्ठित हिन्दू घराने में भी इतनी बड़ी कन्या अविवाहिता रहती है? आज भी जैसे ही विजयशंकर बाबू खाने बैठे, वह कहने लगीं, 'पता नहीं, आपने क्या सोच रखा है? क्या अनुपमा को अविवाहित ही रखना चाहते हैं? इतनी बड़ी कन्या और अविवाहित! मैंने तो किसी हिन्दू घराने में ऐसा नहीं देखा! शास्त्रानुसार तो इतनी बड़ी कन्या को अविवाहित रखने से कन्या के माता पिता को भारी पातक लगता है। मैं यह कब कहती हूं कि आप समाज सुधार न करें या बाल-विवाह कर दें। परन्तु इन सब की भी तो कोई सीमा होती है? हमारे माता पिता भी तो मनुष्य थे। आप ही का विवाह इतना जल्दी क्यों हो गया था? गत वर्ष जब समधिन के यहां गये थे, तब बिचारी कितनी अनुनय विनय करती थीं। कहती थी कि अब बुड्ढी हो चली है, इस जिन्दगी का क्या ठिकाना? न जाने किस दिन बुलावा आ जाय तो सारा

सरञ्जाम यों ही पड़ा रह जाय। अगर इकलौते लड़के का विवाह हो गया तो फिर कोई मनोरथ दिल में न रह जायगा और सुख से मर सकूँगी। जब प्रकाश ने मेट्रिक की परीक्षा दी थी तब आपने दो साल और ठहरने को कहा था। अब तो दो को छोड़ कर तीन साल होने को आये। अब आपका क्या विचार है? हम लोगों की भी ऊमर ढल चुकी है; चिता में पैर लटकाये बैठे हैं। अपने रहते ही यदि कन्या के पीले हाथ कर दिये जांय तो क्या हानि है? इस समय प्रकाश की आयु भी २२-२३ वर्ष की होने आई, यदि इस समय भी इनका विवाह न करेंगे तो क्या इनके बुड्ढे हो जाने पर? जल्दी ही इन लोगों का विवाह-दिन निश्चित कीजिये।"

विजयशंकर हाथ धोते-धोते बोले, "तुम ठीक कहती हो। धर्म तथा मरने जीने के डर से तो मैं डिगना जानता ही नहीं। लेकिन आज राधाकान्त बाबू का जो पत्र मिला है, उसे देखते हुए मैं भी अब अधिक देरी करना उचित नहीं समझता। वे लिखते हैं कि आजकल देश भर में और विशेषतया बंगाल में स्वाधीनता की लहरें उठ रही हैं। नवीन भारत के युवक आँखें मूंद कर बिना परिणाम पर दृष्टि-पात किये इस संग्राम सागर में कूद रहे हैं। प्रकाश भी युवक है। गर्म खून है। स्वतन्त्रता के पुजारियों की संगति में रहता है। क्या जाने क्या कर बैठे? इसलिये अगर विवाह हो जाय और उसका मन दाम्पत्य जीवन की गलियों में भटकने लगे तो वे निश्चिन्त हो जांय। मैं भी उनके इस विचार से सहमत हूँ और अब शीघ्र ही विवाह का बन्दोबस्त किया जायगा।"

रमादेवी अपनी एकमात्र पुत्री अनुपमा को इस समय अपने कल्पना-जगत में दुल्हिन बनी हुई देख रही थी।

(३)

गोपालचन्द्र उन व्यक्तियों में से हैं, जो सदुत्साह और अखिल लग्न से कार्य करके इस संसार में उन्नति प्राप्त करते हैं। गोपालचन्द्र के पिता और राधाकान्त के पिता दोनों सगे भाई थे, उनमें अत्यन्त स्नेह था। लेकिन उनकी स्त्रियां तो सगी बहनें न थीं। वे कब उस प्रेम को टिकने देतीं। रात दिन चख चख चलने लगी। अन्त में दोनों अलग हुए। वे भाई जो किसी समय एक जान दो कालिब थे, अब इस संसार में परस्पर सबसे बड़े शत्रु थे। गोपालचन्द्र के पिता उन्हें पांच वर्ष का छोड़ कर ही चल दिये थे और मां भी थोड़े दिनों बाद चल बसी थी। भाई के पुराने प्रेम से प्रभावित होकर या दया के वशीभूत होकर या लोकलाज से डरकर, कुछ भी कहिये, राधाकान्त के पिता को गोपालचन्द्र का भार ग्रहण करना पड़ा। पर राधाकान्त की मां इन बातों से क्यों डरने लगी? उसे गोपालचन्द्र फूटी आंखों भी न सुहाता था। अपने बच्चे को मिठाइयां देती और जब गोपाल ललचाई आंखों से उस तरफ देखता तो आंखें निकाल कर हाथ नचा कर कहती, "यों क्या देखता है? आराम से बच्चे को खाने भी देगा या नहीं? जब देखो लार टपकाये छाती पर मौजूद रहता है। निगोड़े के पेट में सारे दिन ठूंसा करो फिर भी नियत नहीं भरती। तेरे बाप यहां कोई पूंजी थोड़े ही गाड़ गये हैं।' गोपालचन्द्र फिर कभी इस तरफ नहीं देखने की मन ही मन प्रतिज्ञा करते। अकेले में जा कर रोते। राधाकान्त को अपनी मां का गोपालचन्द्र के प्रति व्यवहार बड़ा बुरा लगता। वे चुपके से मिठाइयाँ चुराते और गोपाल-चन्द्र को देते। राधाकान्त के पिता यह सब देखते थे और समझते थे। लेकिन वे शान्ति-प्रिय व्यक्ति थे। घर में शान्ति भंग हो जाने के भय से वे कुछ न बोलते। इसी प्रकार गोपालचन्द्र पन्द्रह वर्ष के हुए।

राधाकान्त के पिता के एक मित्र कलकत्ते में कपड़े का व्यावसाय करते थे। उन्हीं से कह सुन कर उन्होंने गोपालचन्द्र को उनके पास कलकत्ते भेज दिया और इस प्रकार रात दिन की चख चख से छुट्टी पाकर बड़े प्रसन्न हुए। इधर जिनके

यहां गोपालचन्द्र आये, उनका नाम मोतीचन्द्र था। स्वभाव के बड़े सरल और बच्चों के बहुत प्रेमी थे। गोपालचन्द्र को वे अपने ही बच्चे की तरह मानते और बड़े प्रेम से उसे कपड़े के व्यवसाय में होशियार करने लगे। गोपालचन्द्र ने भी कभी सुख और प्रेम के दर्शन न किये थे। सदा भीगी बिल्ली की तरह रहना पड़ा था। अब यहां जो प्रेम और दुलार के दर्शन हुए, हौंसला बढ़ने लगा। सच्ची लगन से कार्य करता। उसके अध्यव्यवसाय और लगन को देख कर मोतीचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और थोड़े ही वर्षों में उसे अपने यहा मुनीम बना लिया। अपने एक मित्र की लड़की से विवाह भी पक्का कर दिया। लेकिन गोपालचन्द्र की सदा से यह इच्छा थी किसी तरह अपने पैरों पर आप खड़ा हो सके। नौकरी करने को वह अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य न समझता था। मुर्शिदाबाद और बिष्णुपुर आदि जिलों में रेशम के कपड़ों का काम बड़े जोरों से चलता है। मोतीचन्द्र से कह सुन कर उसने अपने नाम से उन कपड़ों की एजेन्सी ले ली। समय के प्रभाव से बहुत मुनाफ़ा रहा। हौंसला ज्यादा बढ़ा। लाल इमली और धारीवाल की ऊन के कपड़ों की एजेन्सी भी ले ली। जब अच्छे दिन आते हैं, सब तरफ मुनाफ़ा ही मुनाफ़ा रहता है। गोपालचन्द्र भी थोड़े ही समय में कलकत्ते के गण्यमान्य कपड़े के व्यवसाइयों में से एक हो गये।

गोपालचन्द्र विवाह कर कलकत्ते ही में रहने लगे। इस समय उनके पास लाखों की ज़ायदाद और एक आलीशान मकान है। कमला उनकी बड़ी कन्या है और विमला छोटी। पुत्र नहीं है। उनकी स्त्री सरलादेवी वास्तव में सरलता का अवतार हैं। कमला और विमला दोनों में केवल एक ही वर्ष का अन्तर है। कमला इस समय सत्रह वर्ष की और विमला सोलह की है। दोनों बेथून कालेज में फर्स्ट इयर में पढ़ती हैं।

यहां आने के बाद गोपालचन्द्र केवल एक बार घर गये थे। राधाकान्त के पिता की मृत्यु के अवसर पर। राधाकान्त की माता ने जब गोपालचन्द्र को देखा तो वर्षों का सञ्चित प्रेम उमड़ पड़ा। उनके माथे पर हाथ फेरती हुई पड़ोसिनों को सुना कर कहने लगी, "यही मेरा गोपाल है। इसके मां बाप छोटे से को मेरे सुपुर्द कर गये थे। बिचारे ने मां बाप का कुछ भी सुख न देखा। मैंने भी भगवान् को साक्षी कर इसे पाला। इसे पहले समझा और राधा को पीछे। उनकी तो बात ही मत पूछो। इसे देखे बिना नींद हराम थी। आज वे नहीं हैं, नहीं तो इसे देख कर कितने खुशी होते। एक दिन मैंने इसे किसी बात पर एक थप्पड़ मार दी थी। यह रोने लगा। इतने में वे आ गये। इसे रोता देख कर पूछने लगे, "क्यों रोता है रे?" मैंने कहा, "बड़ा दुष्ट हो गया है। केवल हल्की सी चपत मारने से ही सारा मोहल्ला सिर पर उठाये हुए है।" बस यह सुनना था कि आग हो गये। बोले, "खबरदार है जो कभी मेरे गोपाल पर हाथ उठाया तो। यह मेरे प्राणों के समान है। इसके लिये मुझे भाई और भौजाई को परलोक में जबाब देना है।" वही मेरा छोटासा गोपाल अब इतना बड़ा हो गया है। तुम्हे क्या बताऊ रमिया की दादी! मेरा मन सदा इसे देखने को छटपटाया करता है। यह तो भूल कर भी अपनी इस मां को याद नही करता होगा।"

मानव स्वभाव भी विचित्र है। जब विपत्ति और दुखों के फेर मे पड़ जाता है, भूतकाल के सुखों को याद करके रोता है, आत्महत्या करने की इच्छा करता है। लेकिन जब सुख और समृद्धि प्राप्त करता है, भूतकाल के कष्टों को भूल सा जाता है। दूसरे विपत्ति-ग्रस्तों को, आत्महत्या करने की इच्छा रखने वालों को समझाता है, "धैर्य रखना चाहिये। संसार में किसी की दशा एक सी नहीं रहती। छोटी-छोटी बातों में धैय खो देना बुद्धिमानी नहीं है। ससार में सुख अधिक है और दुख कम, क्योंकि मनुष्य स्वभाव ही से सुख

चाहता है।" यही कारण था कि गोपालचन्द्र भी सुख और समृद्धि के प्रवाह में बहकर अपने बचपन के दुःख और कष्टों को भुला बैठे हों। उनके मन की बात तो हम नहीं जानते, लेकिन वृद्धा के कह चुकने पर वे बोले, "मा क्षमा करो। मैं तो आप को रोज़ ही याद करता हू। मन ही मन आपकी पूजा करता हूं। आप मुझे पाले न होती तो मैं आज इस संसार में दिखाई ही न देता। अगर मेरी चमड़ी के जूते बना कर भी आप को पहनाऊं तो उऋण नहीं हो सकता। बाबूजी को अन्तिम समय मे न देख सका, यह मेरा दुर्भाग्य है। अब आप आशीर्वाद दीजिये कि हम सब सुखी रहें "

वृद्धा सिसकियां भर रही थी।

(क्रमशः)

शारीरिक ज्ञान

(३)

[डाक्टर बी० एम० कोठारी एम० बी०, बी० एस०]

इस सृष्टि में प्रकृति की सबसे सुन्दर रचना मनुष्य-देह है। इसको बनाने में उस शिल्पी ने यथार्थ में कमाल ही किया है। इस पृथ्वी के जीवों में मनुष्य को सर्वोपरि रखा है, और इस हेतु उसके देह को भी उसकी स्थिति के अनुसार ही बनाया है। प्रत्येक वस्तु की उम्र (Durability) उसके Framework (ढांचे) पर निर्भर है। यह तो बालक को भी ज्ञात है कि उसके खिलौनों में लोहे का खिलौना काच व मिट्टी के खिलौनों से अधिक मज़बूत है। पर मनुष्य-देह का ढांचा इन खिलौनों से एक बात में ऊँचा है। यह ढांचा जीवित—प्राणयुक्त—है और आयु के अनुसार स्वयं बढ़ता रहता है (grows)। मनुष्य पृथ्वी के अन्य जीवों पर शासन करने के योग्य है, इसलिये उसका ढांचा upright (सीधा-खड़ा) बनाया गया है। इस शासन की सफल-सिद्धि के लिए मनुष्य को सदा सचेत रहना पड़ता है, और चारों ओर का ज्ञान होना भी आवश्यक है, इसलिए उसके देह में लचीलापन (Elasticity) भी बहुत भर दी गई है, क्योंकि उसकी गति सुलभ और बाधा-रहित होनी आवश्यक है। नित्यप्रति की क्रिया में मनुष्य को कई धक्के (Shocks) सहने पड़ते हैं, इसी हेतु हड्डियों के साथ-साथ मांस (muscles), ligaments, Caitilages इत्यादि तत्त्वों का भी आविष्कार किया गया है। शरीर में इन Buffers का होना अनिवार्य है।

इस ढांचे को घड़ने का काम उन्हीं सर्वगुण-सम्पन्न

cells का है जिनका वर्णन अगले अंश में किया जा चुका है। सबसे पहले हड्डी की घड़न (Structure) के ज्ञान की आवश्यकता है। हड्डी, चूना (chalk) पानी और gristle मिल कर बनती है। आरम्भ में हड्डी बड़ी कोमल होती है—यहां तक कि उसमें गांठ लगाई जा सकती है। परन्तु यही हड्डी धीरे-धीरे चूने का अधिक संग्रह होने पर कड़ी हो जाती है और सदा की चोटों को सहन करने योग्य बन जाती है। इस देह में क़रीब २०६ हड्डियां हैं और उनमें सब ही प्रकार की हैं--गोल, चपटी, टेढ़ी, सीधी इत्यादि। कोई भारी है तो कोई हल्का। किसी में लाल, किसी में पीला marrow (गुदेली हड्डी) है, जहां cells मरम्मत का काम करते हैं और नये खून के Corpuscles (लाल या सफेद सिपाही) उत्पन्न करते हैं।

इस देह में Skull (खोपड़ी) का पद श्रेष्ठ है क्योंकि मनुष्य-देह रूपी मशीन का सञ्चालक Brain (मस्तिष्क) यहीं पर सुरक्षित है। Command-हुकूमत-करने के लिये स्थान (Situation) भी कितना उत्तम दिया गया है - सबसे ऊपर। इसको २२ हड्डियों ने मिल कर बनाया है और यह उनके सहयोग का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। सबसे पहले, इसकी गोलाई की ओर ध्यान आकर्षित होता है। Mechanics (यन्त्र-विज्ञान) के सिद्धान्त से यह साबित किया जा चुका है कि गोल चीज़ Square (चौकौर) वस्तु से अधिक मज़बूत होती है क्योंकि उसमें चोट खाने पर Rebound करने की शक्ति है। खोपड़ी के इस ढांचे में कई छेद हैं, जैसे आंख, नाक, कान इत्यादि जिनका सम्बन्ध Brain (मस्तिष्क) से nerve-cords (ज्ञान-तन्तुओं) के द्वारा बड़ी घनिष्ठता के साथ बना हुआ है। इन ज्ञान-तन्तुओं-के लिए भी सूराख रक्खे गये हैं जिनके द्वारा बाहरी (External) दशाओं का ज्ञान होता है और नये हुक्म भी यहीं से जारी होते हैं। यहीं से हृदय को pump करने के लिए, फेफड़ों (Lungs) को शुद्ध हवा लेने के लिए और Kidneys (गुर्दों) को कूड़ाकरकट (waste) बाहर फेंकने (eliminate) के लिए प्रत्येक क्षण आदेश मिलता रहता है और Brain (मस्तिष्क) को समयानुसार उनकी गति को बदलने के लिए सदा जागृत रहना पड़ता है। अगर इन organs (अंगों) में से कोई भी एक कुछ समय के लिए बन्द हो जाय, तो शारीरिक सम्पूर्णता और स्वस्थता की कितनी क्षति हो सकती है? परन्तु उस जगन्नियन्तृ शक्ति के काम में ऐसी त्रुटि कहां?

(क्रमशः)

—०—

समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक, क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं; प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है; जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपन्थ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ?—किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये ! इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेजकर इनको सुलझाने में, अन्धकर में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये ।—सम्पादक ।]

(३)

बेकारी

"आज हमारे सामने सबसे भीषण प्रश्न बेकारी का है। इसका मुक़ाबला करना होगा । स्वदेशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने से, स्वदेशी उद्योग-धन्धों के लिये संरक्षण प्राप्त करने से यह बेकारी दूर होगी ।" आपने इस ओर कितना ध्यान दिया है ? आपकी सूत, पाट, रेशम आदि की कितनी मिलें हैं ? आप में से कितनों ने सिनेमा, चीनी, कांच, काग़ज़ सीमेंन्ट आदि उन्नत धंधों में हाथ लगाया है ? क्या अन्य समाजों की तरह आपने भी अपने समाज के होनहार युवकों को उद्योग, व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करने के हेतु अन्य प्रगतिशील देशों में भेजने का कष्ट उठाया है ? आप अपने समाज को व्यापार-जीवी समाज कह कर भी उन्नत उद्योग-धंधों के प्रति इस प्रकार उदासीन रह कर किस तरह इस बेकारी के अभिशाप से हमारे समाज के भावी सूत्रधार नवयुवकों की रक्षा करना चाहते हैं ?

आगे आइये, कुछ सोचिये और अपने विचारों को कार्य रूपमें परिणत कीजिये !

जैन—साहित्य—चर्चा

विश्व विचार

[पं० बेचरदास दोशी]

(गताङ्क से आगे)

भगवान महावीर ने ध्येयरूप जीवनशुद्धि को ध्यान में रख कर ही इस सूत्र में सृष्टि-विज्ञान की चर्चा अनेक प्रकार से की है। ये सारी चर्चाएँ भी परम्परा से जीवनशुद्धि की पोषक हैं इसमें शक नहीं, यदि समझने वाला भगवान के मर्म को समझ सके तो।

भगवान ने इस सूत्र में अनेक जगह बताए हैं कि पृथ्वी, * पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति इन सब में मानव जैसा चैतन्य है। वे सब आहार करते हैं और उन सब के हमारी तरह आयुष्यमर्यादा भी होती है। ये सब एक इन्द्रियवाले जीव हैं, अर्थात् वे मात्र एक स्पर्श इन्द्रिय द्वारा ही अपना सारा व्यवहार चलाते हैं। जो पृथ्वी—मिट्टी, पत्थर धातु वगैरह-पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति किसी प्रकार से उपघात नहीं पाये हुए होते हैं, वे चैतन्यवाले हैं। उनमें से पहले चार के शरीर का कद अधिक-से-अधिक और कम-से-कम अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना है, और वनस्पति के शरीर का क़द कम-से-कम तो उतना ही है, पर अधिक-से-अधिक एक हज़ार योजन से कुछ अधिक है। उन सब के शरीर का आकार एक सरीखा व्यवस्थित नहीं होता। मिट्टी तथा पत्थर आदि पृथ्वी के शरीर का आकार मसूर की दाल के जैसा या चन्द्र के जैसा होता है। पानी के शरीर का आकार बुदबुद जैसा, अग्नि के शरीर का आकार सुई के भारे जैसा, वायु के शरीर का आकार ध्वज के जैसा और वनस्पति के शरीर का आकार अनेक प्रकार का होता है। उन सब के, आहार, निद्रा, भय, मैथुन और परिग्रह की संज्ञाएँ होती हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये

*—'पृथिवी देवता', 'आपो देवता' इत्यादि मंत्र वैदिक परम्परा में प्रसिद्ध हैं। यज्ञ आदि में जब पृथ्वी, जल, वनस्पति या अग्नि इत्यादि का उपयोग किया जाता है तब आरम्भ में उक्त मंत्र कहे जाते हैं। मन्त्र बोलनेवाले या यज्ञ करनेवाले के खयाल में ऐसा शायद ही आता है कि वे पृथ्वी, पानी अग्नि या वनस्पति आदि का जो उपयोग करते हैं वह हिंसा-जनक प्रवृति है। कारण कि उन में भी अर्थात् पृथ्वी आदि में भी अपने जैसा ही चैतन्य है। धर्म समझ कर ऐसी हिंसा प्रवृति करने वाले लोगों के ख्याल में आय इस दृष्टि से इस प्रसिद्ध बात को भी सूत्र में जगह-जगह दोहराया गया है।

चारों कषाय होते हैं। वे सब स्पर्शेन्द्रिय द्वारा खूराक एकत्रित करते हैं। चैतन्यवान पृथ्वी के एक जीव की आयु कम-से-कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक-से-अधिक २२००० वर्ष की है। पानी वगैरह की आयु कम-से-कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक-से-अधिक ७००० वर्ष; अग्नि की तीन दिवारात्रि; वायु की ३००० वर्ष और वनस्पति की १०००० वर्ष की होती है। वे सब जब मरण प्राप्त होते है तब पांच योनियों में से किसी भी एक योनि में आने की योग्यता रखते हैं—अर्थात् शंख कौड़ी वगैरह दो इन्द्रियवाले जीवों की; जूं, मकोड़, घनेड़े इत्यादि तीन इन्द्रियवाले जीवों की; पतंगिये, भौंरे, बिच्छु वगैरह चार इन्द्रिय-वाले जीवों की; पशुपक्षी वगैरह पाँच इन्द्रियवाले तिर्यंच जीवों की या मनुष्य की योनि में आने की योग्यता रखते हैं। मात्र अग्नि और वायु, मनुष्य की योनि में आने की योग्यता नहीं रखते। सब के चार प्राण हैं—स्पर्श इन्द्रिय, शरीरबल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य प्राण।

जिस प्रकार पृथ्वी इत्यादि के चैतन्य वगैरह पर विचार किया गया है उसी प्रकार द्विइन्द्रिय स्पर्श और जिह्वावाले, त्रिण-इन्द्रिय-स्पर्श, जिह्वा और घ्राण-वाले, चार-इन्द्रिय-स्पर्श, जिह्वा घ्राण और चक्षुवाले और पंच-इन्द्रिय-स्पर्श, जिह्वा, घ्राण, चक्षु और कान वाले जीवों पर भी विचार किया है।

पांच इन्द्रियवाले जीवों के चार विभाग किए गये है। पशुपक्षी, मनुष्य, देव और नारक। देवों के भी मुख्य चार भेद बताये गये हैं। वैमानिक—विमान में रहनेवाले, भवनपति-भवन में रहनेवाले, वाणव्यन्तर—पहाड़, गुफा और वन के अन्तरों में रहनेवाले और ज्योतिषी—ज्योतिर्लोक में रहनेवाले सूर्य, चन्द्र वगैरह। उनके आहार, रहन-सहन, आयुष्य, वैभव-विलास उत्तरोत्तर संतोष, शास्त्राध्ययन, देवपूजन वगैरह भी बहुत विस्तार के साथ इस सूत्र में वर्णित हैं।

उदाहरण के तौर पर पहले स्वर्ग के देव कम-से-कम दो से नौ दिन पीछे आहार करते हैं अर्थात् जिस तरह मनुष्य या पशुपक्षियों को रोज-की-रोज (प्रति दिन) आहार की जरूरत रहती है वैसे देवों को नहीं रहती। परन्तु कोई देव दो दिन से लेता है, कोई तीन दिन से, कोई चार दिन से और इस तरह कोई नौ-नौ दिन से आहार लेता है और अधिक-से-अधिक वे २००० वर्ष तक भी आहार बिना चला लेते हैं। और अन्तिम स्वर्ग के देव ३३००० वर्ष तक आहार बिना चला सकते हैं। इसी प्रकार नरक में रहे हुए जीवों की स्थिति के सम्बन्ध में भी वर्णन दिया गया है।

इस सारे सूत्र (भगवती) का अधिकांश भाग देव और नरक के वर्णन से भरा हुआ है।

उपर्युक्त प्रकार के सिवा दूसरी तरह से भी जीव जन्तुओं का विभाग किया हुआ है, जैसे कि—जरा-युज, अण्डज, पोतज, स्वेदज उद्भिज और उपपादुक। यह विभाग शास्त्रों की सब परम्पराओं में प्रसिद्ध है।

सारे जीव जीवत्व की दृष्टि से एक सरीखे हैं। यह तथ्य भगवान ने 'एगे आया' * इस सूत्र में समझाया है। इसमें भगवान का हेतु लोगों में समभाव को जगाना था। जीव एक सरीखे होते हुए उनकी ऊपर बताई हुई जो जुदी-जुदी दशाएँ होती हैं वे उनके शुभ या अशुभ संस्कार के कारण है। अर्थात् मनुष्यों को संस्कार-शुद्धि के प्रयत्न की ओर झुकना चाहिये ऐसा भगवान ने इसपर से सूचित किया

---

* देखो स्थानांगसूत्र के मूल का आरम्भ पृ० १०

है। यदि हम इन सब वर्णनों पर से मैत्रीवृत्ति फैलाने की ओर तथा संस्कार-शुद्धि के प्रयत्न की तरफ न झुकें और मात्र ये वर्णन ही पढ़ा करें और खोजा करें तो हम भगवान महावीर के सन्देश को समझने की योग्यता नहीं रखते हैं—ऐसा कहना चाहिए।

भगवान महावीर ने जो यह सब कहा है उसमें उनकी आध्यात्मिक शुद्धि और परापूर्व से चली आती आर्यों की परम्परा ये दो मुख्य कारण हैं। इसलिए इस सूत्र में या अन्य सूत्रों में जहां जहां ऐसे जीव-सम्बन्धी वर्णन आते है उनका सच्चा साक्षात्कार हमको करना हो तो हमारे लिये केवल चर्चा या शास्त्रश्रद्धा ही बस नहीं है पर अपने खुद की आत्मशुद्धि और प्रज्ञा-शुद्धि को अधिक-से-अधिक विकसित करना चाहिए प्रज्ञाशुद्धि, अर्थात् जहां ये वर्णन आते हों उन सब शास्त्रों का तटस्थ दृष्टि से अभ्यास तथा आधुनिक विज्ञान शास्त्र का भी इस प्रकार सूक्ष्म अभ्यास। ऐसा करने पर भी जो शास्त्रवचन और तटस्थ अनुभव में भेद मालूम हो तो विकल नहीं होना चाहिये। कारण कि शास्त्र में वर्णन की हुई स्थिति देशकाल की मर्यादा को नहीं उलांघ सकती। अत: देशकाल का फेर बदल होने से जो स्थिति २५०० वर्ष पहले भगवान महावीर ने बतलाई हो वैसा अब न हो तो उसमें कोई असंगति नहीं है। और ऐसी चर्चाएँ केवल भेद बढ़ाने या शास्त्रार्थ के झगड़े कराने के लिए नहीं रची गई उनकी रचना तो पहले कहे अनुसार मात्र मैत्रीवृत्ति और संस्कार शुद्धि के लिए है।

इसलिए कोई सम्प्रदाय बारह स्वर्गों से अधिक या कम स्वर्ग कहें अथवा नारकों की हकीकत के विषय में कुछ भिन्न बात बतावें तो उससे क्षोभ पाने की आवश्यकता नहीं है।

हमलोग जानते हैं कि इस प्रकार के विचार भगवान महावीर के जमाने में कोई नये न थे। कारण कि इस सम्बन्ध में वैदिक परम्परा में, बुद्ध के पिटकों में और अवेस्ता ग्रन्थों में कितनी ही हकीकतें आज भी उपलब्ध हैं। यद्यपि ये हकीकतें अपने यहां लिखी हुई हैं उतनी सूक्ष्म नहीं है फिर भी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त को समझने जितनी तो ये अपने सिवाय अन्य सब परम्पराओं में भी लिखी हुई हैं और उनका सच्चा उपयोग भी वही है।

वनस्पति विद्या के विषय में चरक और सुश्रुत में अपने यहां वर्णित है उतनी ही सूक्ष्म. पर दूसरे प्रकार की, अनेक हकीकतें लिखी हुई है जो आज भी उपलब्ध हैं और व्यवहार में भी सत्य सिद्ध हुई है। जिनको हम एकेन्द्रिय कहते है उन जन्तुओं की स्थिति के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान ने बहुत ऊंडी खोज की है। इसी तरह बाकी के सूक्ष्म और स्थूल जीव जन्तुओं की स्थिति के विषय में भी आज कल बहुत नई शोधें हुई हैं।

जिस भौंरे को हम असंज्ञी कहते हैं, उस भौंरे की कुशलता के विषय में प्रत्यक्ष प्रयोग हम लोग देख सकते है। जिसको हम दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले कहते है उन सबके किसी अपेक्षा से पांच इन्द्रियां है, यह हम लोग सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देख सकते हैं। तदुपरान्त इन सब प्राणियों के स्वभाव, प्रवृत्ति, आवश्यकताएँ वगैरह अनेक प्रकार की हकीकतों के विषय में आज बहुत नया ज्ञान हम को मिल सकता है। उन सबकी ओर हम लोग उपेक्षा रक्खें और मात्र शास्त्रवाक्य ही रटा करें तो हमारी प्रज्ञाशुद्धि हो सकने की नहीं।

कदाचित् किसीको ऐसा मालूम हो कि विज्ञान के

अभ्यास से शास्त्रश्रद्धा मंद होकर नास्तिकता का प्रचार होगा। परन्तु यह कल्पना या भय उचित नहीं। विज्ञान से तो शास्त्रश्रद्धा और अधिक दृढ़ होनेका अनुभव है और हम को यह कहने को अभिमान रहता है कि प्राचीन लोगों ने भी अपने ज़माने में कितने अधिक वैज्ञानिक विचार किये थे।

कदाचित् शास्त्रवचनों के साथ विज्ञान का भेद मालूम हो भी तो उसके समन्वय की चाबी हमारे पास है। वह है एक तो देशकाल और दूसरी कहने की शैली। देशकाल अर्थात् भगवान महावीर के ज़माने की या पूर्व परम्परा से जो हकीकतें चली आ रही थीं वे शास्त्रोंमें लिखी गई हैं अतः इस ज़माने और उस ज़माने के बीच के बहुत लम्बे काल में विश्व का अर्थात् मानव स्वभाव का, मानवी रहन-सहन का और मानव के आस-पास की परिस्थितियों का तथा वनस्पति और जन्तु जगत का जो परिवर्तन आज तक होता आया है वह परिवर्तन ही भेद के समाधान के लिए काफी है।

कहने की शैलीका उदाहरण इस प्रकार बताया जा सकता है। अपने यहां यह बात प्रसिद्ध है कि ईली (ईयल) में से भौंरा होता है। जैन परिभाषा के अनुसार ईयल से भौंरा अधिक इन्द्रियवाला प्राणी है अर्थात् चार इन्द्रियवाला है। तो फिर एक ही जन्म में दो जन्म किस प्रकार हो सकते हैं। परन्तु जो लोग यह कहते हैं कि ईयलमें से भौंरा होता है, उन लोगों का यह भी देखा हुआ है कि भौंरा ईयल को लाकर अपने (दर) घर में रखता है और उसमें से कालान्तर में भौंरा निकलता है। केवल इतना ही देखनेवाला ईयल में से भौंरा निकलता है यह ज़रूर कहेगा परन्तु ईयल में से भौंरा कैसे आया इसका खुलासा नहीं कर सकता। अतः उसका वह कथन स्थूल दृष्टि से है यह समझ कर सच्चा समझा जा सकता है। परन्तु अगर जन्तु-शास्त्र की सहायता से इस विषय पर विचार किया जाय तो इससे भिन्न ही कुछ मालूम पड़ता है। वे शास्त्र कहते हैं कि ईयलमें से भौंरा नहीं होता परन्तु भौंरा जिस ईयल को दर (घर) में लाता है उस ईयल में डंक मारकर अण्डे देता है। और वे अण्डे कालान्तर में ईयल द्वारा पोषित होकर दर में से बाहर आते हैं। ईयल तो मात्र उन अण्डों की पोषक ही है। इस प्रकार बारीकी से देखने से भ्रमरी के अण्डोंमें से ही भ्रमरी होती है परन्तु ईयलमें से भ्रमरी नहीं होती। फिर भी ईयलमें से भ्रमरी होने की हकीकत असत्य है ऐसा स्थूल दृष्टि से नहीं कहा जा सकता।

जैन परिभाषा में कहना हो तो, ईयल से भ्रमरी होने की हकीकत उपचार-प्रधान व्यवहाररूप से ठीक कही जा सकती है। जन्तुशास्त्र से सिद्ध हुई हकीकत निश्चय नय से ठीक कही जा सकती है।

इस प्रकार शास्त्रों में जो-जो हकीकतें लिखी हुई मिलती हैं उनका निपटारा नयवाद की दृष्टि से ज़रूर किया जा सकता है। और इसलिये विज्ञान और शास्त्रीय विचार में विरोध होना संभव नहीं है।

देव और नरक के अस्तित्वों के सम्बन्ध में तो सभी प्राचीन परम्पराएँ एक सरीखा ही मत रखती हैं। परन्तु इस विषय में जब तक वनस्पति विद्या की तरह ऊंडी शोध होकर निर्णय न हो जाय तब तक हम इस विषय की किसी भी प्राचीन परम्परा को झूठी कहने का साहस नहीं कर सकते। प्रत्येक परम्परा के मूल पुरुष ने इस विषय में विचार प्रदर्शित किये हैं। उन विचारों के विषय में उन-उन परम्पराओं के अनुयायियों ने कोई शोध खोल नहीं की है परन्तु अधि-

श्रीयुक्त मोतीलाल नाहटा, बी० ए०

आप छापर निवासी श्री तखतमलजी नाहटा के सुपुत्र हैं। आप पहले ओ० न० के सम्पादक रह चुके हैं। आप समाज के थोड़े से उदीयमान कवियों में से एक हैं। आपकी कविताएं भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि की होती है। 'राजस्थान तब और अब' शीर्षक आपकी रचना, जो मई के अङ्क में प्रकाशित हुई थी—उसकी अच्छी प्रशंसा हुई है। इस अङ्क में भी 'पोल की महिमा' शीर्षक आपकी एक रचना प्रकाशित हो रही है। आशा है श्रीयुक्त नाहटा अपनी इस कवित्व शक्तिका अधिकाधिक विकाश करते हुए साहित्य सेवामें उत्तरोत्तर अग्रसर होंगे।

काश भाग में उनके उन विचारों का पिष्ट-पोषण ही करते आए हैं। परन्तु अब इस विषय में शोध करने का युग आ गया है। यद्यपि यास्क * जैसे महर्षि ने इस विषय में अर्थात् देव, इन्द्र, सुर, असुर वगैरह के सम्बन्ध में कुछ नया प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है परन्तु यह लोक प्रवाह के सामने ठीक-ठीक पहुंच न सका और मात्र पौराणिक परम्परा में वर्णन किए हुए रूपकों को ही सभी परम्परावालों ने स्वीकार किया है—ऐसा यास्क की दृष्टि से कहा जा सकता है।

वैदिक आर्यों की देव वगैरह के विषय में क्या मान्यता थी उस सम्बन्ध में यास्क को पढ़ने से थोड़ी-बहुत जानकारी आज भी हम को मिल सकती है।

इस सूत्र में और दूसरे सूत्रों में भगवान महावीर ने विश्वविज्ञान के सम्बन्ध में जो-जो वर्णन किया है उसका उद्देश्य विश्ववैचित्र्य की जानकारी के अतिरिक्त उसके द्वारा विश्व के साथ समभाव स्थापित करना था। ऐसा होने पर भी ऐसी बातें भी उसमें बतायी गयी हैं जिनमें मात्र क्षेपकी दृष्टि मुख्य है। उनका जीवन शुद्धि में सीधा उपयोग हो सकता हो ऐसा मालूम नहीं देता। उदाहरण के लिए –

लोक की स्थिति को समझाते हुए भगवान महावीर ने गौतम को बतलाया है कि, आकाश पर वायु रहा हुआ है। वायु के ऊपर उदधि है। उदधि के ऊपर यह पृथ्वी रही हुई है और इस पृथ्वी पर यह सारा विश्व रहा हुआ है। यह हक़ीकत समझाने के लिए भगवान ने एक सुन्दर उदाहरण भी दिया है। वे कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष मशक को फुला कर उसका मुख बंद कर दे, फिर मशक के मध्य भाग में गांठ लगा दे; गांठ लगा देने के बाद मशक का मुंह खोल कर उसका पवन निकाल कर जल भर दे, फिर गांठ खोल दे तो जिस प्रकार उस पवन के आधार से ऊपर का जल नीचे न आकर ऊपर ही रहता है उसी प्रकार यह पृथ्वी पवन के आधार पर रहे हुए समुद्र पर टिकी हुई है। (भा० १ पा० १७)

एक जगह अपने शिष्य रोहक अणगार को समझाते हुए भगवान कहते हैं कि जैसे मुर्गी और अण्डा इन दोनों में कौन कार्य है और कौन कारण है ऐसा क्रम वाला विभाग नहीं हो सकता परन्तु दोनों को शाश्वत मानना पड़ता है, उसी प्रकार लोक, अलोक, जीव, अजीव वगैरह भावों को शाश्वत मानने चाहिएं। इनमें कोई कार्य-कारण का क्रम नहीं है। (भा० १ पा० १६७)

एक जगह गर्भस्थ जीव की स्थिति की चर्चा करते हुए गर्भस्थित जीव क्या खाता है, उसको शौच, मूत्र, श्लेष वगैरह होता है या नहीं, गर्भस्थ जीव के द्वारा किए हुए आहार का क्या-क्या परिणाम होता है, वे जीव मुख से खा सकते हैं या नहीं, वे किस प्रकार आहार लेते हैं, उन जीवों में कितना माता का और कितना पिता का अंश होता है, उसका निस्सरण शिर से होता है या पैर से आदि बातें जिस प्रकार महर्षि चरक समझाते हैं, उसी प्रकार पर संक्षेप में समझायी गयी हैं। (भा० १ पा० १८१)

एक दूसरे स्थल पर जल के गर्भ के सम्बन्ध में विचार किया गया है। उसमें कहा हुआ है कि जल का बंधा हुआ गर्भ अधिक-से-अधिक ६ महीने तक टिक

*—श्री यास्क के उल्लेखों के लिए देखो प्रस्तुत ग्रन्थ भा० २ पृष्ठ ४२, ४८, ४९, १२२, १३०

सकता है। फिर वह जल जाता है। (भा० १ पा० २७३) इस विषय में कुछ अधिक चर्चा ठाणांग * सूत्र में भी आती है। इसकी सविस्तर चर्चा देखनी हो तो वाराही संहिता में उदकगर्भ सम्बन्धी समूचा प्रकरण देख लेना चाहिए। गर्भ कब बंधता है, किस महीने में इसकी कैसी स्थिति होती है, कब गलता है, यह सब इसमें विस्तार से वर्णन किया हुआ है। वाराहीसंहिता वैदिक परम्परा के विश्वकोष जैसा एक बड़ा ग्रन्थ है यह नहीं भूलना चाहिए।

भाषा-शब्द के स्वरूप की चर्चा करते हुए शब्दों की उत्पत्ति, शब्दों के आकार, बोला हुआ शब्द जहां पर्यवसान पाता है और उस शब्द के परमाणुओं आदि के विषय में विस्तार से बताया हुआ है (भा० १ पा० २९१) पन्नवणा सूत्र में भाषा के स्वरूप सम्बन्धी भाषापद नामक एक ११ वां प्रकरण है। विशेषार्थी को यह सब वहां से देख लेना चाहिए।

समुद्र में जुआर और भाटा होते हैं—यह सब कोई जानते हैं। इस जुआर--भाटे होने के कारणों की चर्चा करते हुए समुद्र की चारों दिशा में चार बड़े पाताल कलश होने का और उनके उपरान्त दूसरे अनेक छोटे कलश होने का वर्णन किया है। उन पाताल कलशों के नीचे के भाग में वायु रहती है, मध्य भाग में वायु और जल साथ रहते हैं और ऊपर के भाग में केवल जल रहता है। जब यह वायु कंपित होता है, क्षुब्ध होता है, तब समुद्र का जल भी उछलता है और जब ऐसा नहीं होता तो समुद्र का जल भी नहीं उछलता। इस प्रकार जुआर भाटे के प्रश्न के सम्बन्ध में समाधान किया हुआ है। (भा० २ पा० ८२) इस समाधान पर से हम इतना निष्कर्ष तो ज़रूर निकाल सकते हैं कि कदाचित् वायु के कारण से समुद्र में जुआर भाटा आता हो।

इनके अतिरिक्त सूर्य के और ऋतु के सम्बन्ध में भी कितनीक चर्चा इस सूत्र में आई हुई है। इन चर्चाओं में बतायी हुई हक़ीकतों का खुलासा तो तभी हो सकता है जब हम लोगों ने खगोल और ऋतु के विज्ञान-शास्त्र का गम्भीरतापूर्वक परिशीलन किया हो।

कानमें जो शब्द आते हैं उन शब्दों का ग्रहण कर्णेन्द्रिय और शब्द के स्पर्श से होता है या ऐसे ही होता है ? उसके उत्तर में कर्णेन्द्रिय से शब्द का स्पर्श होने पर ही शब्द का ग्रहण होता है यह स्वीकार किया गया है। (भा० २ पा० १७१)

इस विषय में अधिक विस्तृत वर्णन पन्नवणा सूत्र के पन्द्रहवें इन्द्रिय पद में है। उसमें इन्द्रिय के प्रकार, आकार, प्रत्येक इन्द्रिय की मोटाई, चौड़ाई, कद, इन्द्रिय द्वारा होती पदग्रहण की रीति, इन्द्रिय कितनी अधिक दूर या नज़दीक से पदार्थों का ग्रहण कर सकती है उस अन्तर का माप —यह सब विस्तार सहित चर्चा हुआ है।

अन्धकार और प्रकाश कैसे होता है उसका भी खुलासा भगवान ने अपने ढंग से बतलाया है। (भा० २ पा० २४६)

वनस्पति के सम्बन्ध में विचार करते हुए एक जगह वह सबसे कम आहार कब लेती है और सबसे अधिक कब—इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने बतलाया है कि प्रावृट् ऋतु में अर्थात् श्रावण और भाद्रपद में, और वर्षा ऋतु में अर्थात् आसोज और कार्तिक में वनस्पति अधिक-से-अधिक आहार लेती है। और बाद

* देखो प्रस्तुत ग्रन्थ भा० १ पृ० २७३ तथा टिप्पणी । पृ० [illegible]।

में शरद्, हेमन्त और वसन्तऋतु में घटता-घटता आहार लेती है; और सबसे कम आहार ग्रीष्मऋतु में लेती है। यह उत्तर सुन कर गौतम ने फिर से पूछा कि हे भगवन! जो ग्रीष्मऋतु में वनस्पति सब से कम आहार लेती है तो उस समय वह पत्तोंवाली, पुष्पोंवाली, फलवाली हरीसधन और अत्यन्त शोभावाली क्यों दिखती है? उत्तर में भगवान ने कहा है कि कुछ उष्णयोनिक जीव तथा पुद्गल वनस्पति-कायरूप में उनमें उत्पन्न होते हैं, इकट्ठे होते हैं, अधिक वृद्धि पाते हैं, इस कारण से हे गौतम! ग्रीष्म में अल्पाहार करते हुए भी वनस्पति पत्रवाली, पुष्प-वाली, फलवाली और आंखों को आकर्षित करे ऐसी शोभावाली होती है।

इसी प्रकरण में आगे जाकर वनस्पति के मूल, वनस्पति की कद, वनस्पति की शाखाएँ, वनस्पति के बीज, वनस्पति के फल वनस्पति के पत्र वगैरह को आहार पहुंचाने की पद्धति भी बताई हुई है। (भा० ३ पा० १२) इन हकीकतों के विषय में शास्त्रोक्त वनस्पति-विद्या को जाननेवाला कोई पण्डित यदि वनस्पति-विद्याविशारद श्री जगदीशचन्द्र बसु के साथ बातचीत करे तो बहुत अधिक प्रकाश डाला जा सके और भगवान महावीर द्वारा बतलायी गयी हकीकतों की भी कसौटी हो।

आठवें शतक के दूसरे उद्देशक में आशीविष का उल्लेख किया हुआ है। आशी अर्थात् दाढ़। जिसके दाढ़ में विष है उसको आशीविष कहा गया है। उसके दो प्रकार हैं। जन्म से आशीविष और कर्म से आशीविष। जन्मसे आशीविष चार प्रकार के हैं। बिच्छू की जाति के, डंक (मेंढ़क) की जाति के, मनुष्य की जाति के और सर्प की जाति के आशीविष। इन चार प्रकार के ज़हरी प्राणियों के विष की सामर्थ्य बत-लाते हुए भगवान कहते हैं कि बिच्छू की जाति के ज़हरी जन्तु अर्ध-भारत जितने शरीर को, मेंढ़क की जाति के ज़हरी जन्तु भरतक्षेत्र जितने शरीर को, सर्प की जाति के ज़हरी जन्तु जम्बूद्वीप जितने बड़े शरीर को और मनुष्य की जाति के ज़हरी प्राणी मनुष्यलोक जितने विशाल शरीर को ज़हर से व्याप्त करने में समर्थ हैं। इतना कहने के बाद भगवान कहते हैं कि इन चारों प्रकार के प्राणियों के ज़हर का सामर्थ्य जैसा ऊपर बतलाया गया है उतना उन ज़हरी प्राणियों ने कभी नहीं दिखलाया, दिखलाते भी नहीं हैं और दिखावेंगे भी नहीं (भा० ३ पा० ५६), भगवान ने तो मात्र उन-उन प्राणियों के विष की शक्ति को बतलाने के लिए उपरोक्त हकीकतें बतलायी हैं। इस विषय में सर्पशास्त्र के अभ्यासी द्वारा कोई जिन-प्रवचन का भक्त प्रकाश डलवावे तो ज़रूर भगवान के प्रवचन की महिमा बढ़े इसमें शङ्का नहीं।

'स्वार्थी मनुष्य-प्राणी कैसा ज़हरी है, उसके ज़हर का सामर्थ्य कितना प्रबल है और कितना अधिक संहारक है'—यह सब बातें आध्यात्मिक दृष्टि से तो समझ में आ सकती हैं। विषकन्या और जीवित डाकिनों की बात मनुष्य के सर्प की तरह ही ज़हरी होने की बात को सिद्ध करने के लिए कही जा सकती है तो भी यहां पर मनुष्य को जिस तरह से ज़हरी बताया गया है वह बात तो अवश्य शोध के लायक है।

छट्ठे शतक के सातवें उद्देशक में भगवान को गौतम पूछते हैं कि 'हे भगवान! कोठे में और डाले में भरे हुए और ऊपर से गोबर से लीपे हुए, माटी आदि से चांदे हुए शाल, चावल, गेहूं तथा जौ की उगने की शक्ति कब तक टिकी रह सकती

है ?' उत्तर देते हुए भगवान कहते हैं कि 'हे गौतम ! कम-से-कम अंतर्मुहूर्त और अधिक-से-अधिक तीन वर्ष तक इन सब अनाजों की उगने की शक्ति क़ायम रह सकती है'।

इसी प्रकार कलाई, मसूर, तिल, मूग, उड़द, वाल, कुलथी, अमुक जाति के चावल, तूवर और चने इनके विषय में उपरोक्त प्रश्न के जवाब में भगवान कहते हैं कि कलाई आदि की ऊगने की शक्ति अधिक-से-अधिक पांच वर्ष तक रहती है और कम-से-कम अंतर्मुहूर्त तक रहती है। और अलसी, कुसुंभ, कोद्रव, कांग, बंटी, दूसरी जाति की कांग, दूसरे प्रकार के कोद्रव, शण सरसव, मूले के बीज—इन सब के ऊगने की शक्ति अधिक-से-अधिक सात वर्ष तक क़ायम रहती है और कम-से-कम अंतर्मुहूर्त तक।

यह चर्चा भी अपने लिए बहुत मनोरञ्जक है। परन्तु इस सम्बन्ध में भी कोई वनस्पति शास्त्र के अभ्यासी द्वारा ऊहापोहपूर्वक प्रकाश डाला जा सके तभी वह और भी अधिक रस-पूर्ण हो सकता है।

इस ग्रन्थ में जिस तरह आत्मा से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुओं पर विचार किया गया है उसी प्रकार पुद्गल—जड़ द्रव्य के विषय में भी वैसा ही स्फुट विचार अनेक जगह किया गया है।

भगवान महावीर, मूर्तिमंत जड़द्रव्य के प्रयोग से परिणाम प्राप्त, प्रयोग और अप्रयोग दोनों से परिणाम प्राप्त, और अप्रयोग से परिणाम प्राप्त—ऐसे तीन विभाग बतलाते हैं और कहते हैं कि अप्रयोग से परिणाम पाये हुए मूर्तिमंत जड़द्रव्य विश्व में अधिक-से-अधिक हैं। इससे कम, प्रयोग और अप्रयोग से परिणाम पाये हुए और सब से कम प्रयोग से परिणाम पाये हुए हैं। उनकी यह गणना अखिल विश्व को लक्ष्य में रख कर है। यहाँ प्रयोग का अर्थ जीव-व्यापार और अप्रयोग का अर्थ स्वभाव समझना चाहिए।

एक स्थल पर पदार्थों के पारस्परिक बंध के विषय में कहते हुए भगवान महावीर ने गौतम को कहा है कि बंध दो प्रकार के हैं। जो बंध जीव के प्रयत्न से होता दिखाई देता है वह प्रयोग बंध कहलाता है। जो बंध जीव के प्रयत्न बिना यों ही होता दिखाई देता है वह वीससाबंध कहलाता है।

बाद का वीससाबंध अनादि भी होता है। आकाश-द्रव्य के प्रदेशों का जो परस्पर सम्बन्ध है वह अनादि वीससाबंध है। परमाणु परमाणुओं का, द्रव्य द्रव्य का और बादल बादल आदि का जो परस्पर सम्बन्ध वह सादि वीससाबंध कहलाता है। यह बंध तीन प्रकार का कहा गया है। परमाणु परमाणु के अर्थात् रूक्ष और स्निग्ध परमाणुओं के बन्ध को बंधन निमित्तक कहा गया है, वह कम-से-कम एक समय तक और अधिक-से-अधिक असंख्य काल तक ठहरता है। द्रव्य-द्रव्य के अर्थात् गुड़, चावल, दाल आदि ये सब जिस भाजन में रखे जाते हैं उसके साथ कुछ समय बाद चिपक जाते हैं —यह उनका पारस्परिक सम्बन्ध भाजन-निमित्तक बंध कहलाता है। यह कम-से-कम अंतर्मुहूर्त और अधिक-से-अधिक संख्येय काल तक रहता है और बादल आदि के परस्पर के बंध को परिणाम निमित्तक बंध कहा गया है और वह कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक ६ महीने तक ठहर सकता है।

जो बंध जीव के प्रयत्न से होता है उसके काल-अपेक्षा से मुख्य तीन प्रकार बतलाए हैं, अनादिअनंत, आदिअनंत और सादिसांत। इनमें से अन्तिम सादि-

सातवाला प्रकार व्यवहार में खूब प्रचलित है। उसके भी मुख्य चार प्रकार बताए गये हैं। आलम्बण बंध अल्लिआवण बंध शरीर बंध और शरीर प्रयोग बंध। (भा० ३ पा० १०१)

इस विषय की विगतवार उदाहरण सहित हक़ीकत उपर्युक्त पृष्ठ पर बंध के प्रकरण में बताई गई है- वह पाठकों के लिए बहुत ही रसप्रद होगी।

दूसरे स्थान पर परमाणु के कंपन, परमाणु के परिणाम, परमाणु की अछेद्यता परमाणु के मध्य होता है या नहीं, परमाणु के परस्पर स्पर्श, परमाणु की परमाणु दशा की स्थिति, परमाणु के कंपन का समय, शब्द परमाणु की शब्द रूप की स्थिति का समय आदि अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्मतम बातें बतलायी गई हैं (भा० २ पा० २१६)। ऐसी अन्य भी अनेक चर्चाएँ जिनको हम लोग वैज्ञानिक कह सकते है इस सूत्र में और अन्य सूत्रों में अनेक स्थल पर आयीं है परन्तु विज्ञान शास्त्र की मदद बिना ये चर्चाएँ अधिक समझ में नहीं आ सकतीं इसलिए जिन-प्रवचन को अधिक समझने के लिए विज्ञान का अभ्यास अधिक उपयोगी और वाञ्छनीय है—इसमें सन्देह नहीं।

भगवान ने ये जितनी चर्चाएँ की हैं वे सब उनकी आत्मशोध में से जन्मी हैं---ऐसा कहना ज़रा भी ग़लत नहीं है। जीव और उसके भेद और उनकी अनेक प्रकार की स्थिति की चर्चा जीव मात्र की समानता और भिन्न-भिन्न संस्कारों से उत्पन्न उनकी विचित्रता को बतलाने के लिए है। एकंदर देखने से यह सब चर्चाएँ सब किसी को समभाव की ओर प्रेरित करनेवाली हैं। जड़ द्रव्य के परिणाम और स्थिति आदि की चर्चा हम लोगों को विश्व की विविधता और वैचित्र्य बतला कर निर्वेद की ओर ले जाने में साधन रूप होनेवाली है। आत्मशोधक मनुष्य एक ही पुद्गल के संयोग-वश भिन्न-भिन्न परिणाम जान किस परिणाम में राग करे और किससे घृणा करे? यह सब देखते हुए भगवान के प्रवचनों में जो-जो चर्चाएँ की गई है वे सब आत्मशोधन में से उत्पन्न हुई है और आत्मशोध को पोषण करनेवाली है—यह बात बार-बार कहने की आवश्यकता नहीं है।

और जैसा कि ऊपर कहा गया है कतिपय चर्चाएँ मात्र ज्ञान की दृष्टि से भी की गई है यह भी ठीक बात है।

चिट्ठी-पत्री

(१)

वर्धा, सी० पी० ता० ४-७-३६

बन्धुवर !

आपके दोनों पत्र मुझे प्रवास में मिले थे। ओसवाल नवयुवक के पुनरुद्धार से मुझे प्रसन्नता हुई है परन्तु उस समय मैं कभी-कभी जैसी टूटी फूटी सेवा कर देता था वैसी अब नहीं कर सकता। इन दो सालों में मेरे जीवन में काफ़ी क्रान्ति हो चुकी है। अब मेरे सामने सत्यसमाज की स्कीम है उसके प्रचार के लिये मैं नौकरी आदि छोड़कर अर्धसन्यासी सा हो गया हूं। इस प्रकार कहने को तो मेरे पास बहुत समय है परन्तु कार्य का बोझ जितना बढ़ा है उतना समय नहीं बढ़ा। इसलिए क्षमा चाहता हूं।

यद्यपि ओसवाल अग्रवाल आदि जातीय पक्ष और दिगम्बर श्वेताम्बर या जैन आदि साम्प्रदायिक पक्ष मैं पसन्द नहीं करता फिर भी मुझे इन नामों से चिड़ नहीं है, चिड़ है इन नामों के पीछे रहनेवाली कट्टरता से, और पारस्परिक सहयोग को रोकनेवाली संकुचितता से। मै समझता हूं कि ओसवाल नवयुवक में यह संकुचितता नहीं है। 'हमारा व्यापारिक भविष्य' शीर्षक लेख के नीचे जो सम्पादकीय दो नोट हैं उनसे उदार मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इस प्रकार ओसवाल नाम की छाप होने पर भी जातीय और साम्प्रदायिक कट्टरता का विष आपके पत्र में नहीं है यह कहा जा सकता है। और यह निःसन्देह प्रसन्नता की बात है।

आजकल साम्प्रदायिकता, जातीय कट्टरता, अन्धविश्वास, वेषपूजा आदि के कारण मानव समाज, खासकर भारतीय समाज, बुरी तरह से तहस-नहस हो रहा है। जिन युवकों से इनके मुक़ाबले खड़े होने की आशा की जाती है वे समाज के भय से सामना नहीं कर पाते हैं और कुछ समय बाद तो वे नवयुवक स्वयं वृद्ध हो जाते हैं। इसलिये युवकों में सम्प्रदायातीत जात्पातीत विचार भरकर उनका एक सुदृढ़ संगठन करना चाहिये --जिनकी जाति मनुष्य हो, जिनका धर्म सत्य और अहिंसा या सम्यक्ज्ञान और सम्यक्-चरित्र या ज्ञान और कर्म हो। जो रूढ़ियों के गुलाम न हों किन्तु सत्य के भक्त हों। आशा है इस दिशा में आपका पत्र अधिकाधिक प्रयत्न करेगा।

'सत्यसंदेश' में जैन-चर्चा भी निकलती है और वह कुछ गम्भीर विचारों का फल होती है जैसे अंक ११ में सप्तभंगी का संशोधन किया गया है। और भी बातें निकलती है, निकलेंगी, आप उन्हें उद्धृत कर सकते है।

काम चाहे छोटे क्षेत्र में किया जाय या बड़े क्षेत्र में परन्तु जो कुछ किया जाय वह विश्व-हित की नीति के अनुसार किया जाय। आपसे एक यही आशा है।

आपका
दरबारीलाल सत्यभक्त

(२)

पुरोहित-भवन लाडनूं
ता० १७-७-३६

श्रीयुक्त सम्पादकजी,

ओसवाल-नवयुवक का दूसरा अंक स्थानीय ओसवाल हितकारिणी सभा में देखा। सामग्री प्रशंस-नीय एवं पठनीय है। पत्र में लेखों का क्रम अच्छा है।

पत्र मे एक कविता "राजस्थान" शीर्षक के रच-यिता का नाम "श्री सागर" देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। क्योंकि यही कविता जून सन् १९३४ में सुकवि में स्वामी मंगलदास "दास" के नाम से प्रका-शित हो चुकी है। सुकवि का वह पृष्ठ जिसमें यह कविता स्वामी मगलदास "दास" के नाम से छपी है साथ में भेज रहा हूं।

देखने पर आपको मालूम होगा कि यह रचना वास्तव में किसकी है। कवि महाशय ने प्रसिद्धि के लिए ही कविता की चोरी की है। ये महाशय हमारे शहर के ही हैं। जिस दिन से पत्र आया है उसी दिन से उस अंक को दिखाने तथा अपने को कवि घोषित करने की नियत से भटक रहे है। जहां जाते हैं उक्त कविता दिखाते हैं और उसे स्वरचित बत-लाते हैं

कवि महाशय से पूछा गया तो बतलाया कि "मंगल दास मेरे एक दोस्त हैं। मैंने यही कविता १९३४ में उनके पास भेजी थी। उन्होंने अपने नामसे सुकवि में छपा दी। इस पर मेरा अधिकार था इसलिए मैंने अपने नाम से फिर 'नवयुवक' में प्रकाशित करा दी।" यह है सफ़ाई का आदर्श दृष्टान्त! कलियुगी मित्रता का एक आदर्श नमूना!! आप तो कविताओं की चोरी करते ही हैं पर बेचारे मित्र महाशय को और चोर ठहराया। यह सब झूठी और थोथी बातें हैं।

मैं आशा करता हूं आप ऐसे कवियों से सावधान रहेंगे। इस तरह के कवियों की कविता अपने उच्च-कोटि के पत्र में न छापेंगे।

मेरी चिट्ठी अवश्य छाप दें जिससे भविष्य में इन महाशय को फिर साहित्यचोरी का साहस न हो।

भवदीय
मुन्नालाल पुरोहित

[नोटः— 'ओसवाल-नवयुवक' के गताङ्क में 'राज-स्थान' शीर्षक एक कविता 'श्री सागर' के नाम से छपी थी। उसके सम्बन्ध में लाडनूं के एक सज्जन ने हमारे पास उपरोक्त पत्र भेजा है। पत्र के साथ उन्होंने 'सुकवि' के जून १९३४ के उस अंक का वह पृष्ठ भी जिसमें उक्त कविता श्री स्वामी मंगलदास 'दास' के नाम से छपी है भेजा है। उसको देखते हुए तो जो कुछ श्री मुन्नालालजी ने अपने पत्र में लिखा है उसको झूठ समझने का कोई कारण हमें नहीं दिखाई देता। हम श्री सागरजी से अनुरोध करते हैं कि वे इस बातका खुलासा करें और यदि किसी प्रकार इसका प्रतिवाद करना चाहते हों तो सप्रमाण हमें लिखें हम सहर्ष उसे छापेंगे। अगर यह वास्तव में सच है कि श्री सागरजी ने इस कविता की चोरी की है—जिसको झूठ मानने का हमारे पास तबतक कोई

कारण नहीं है जब तक श्री सागरजी इसका सप्रमाण प्रतिवाद न करें—तो हम इस कविता के रचयिता से और पाठकों से सबसे क्षमा मांगते हैं—हालां कि हमारा इस विषय में कोई दोष नहीं है। चोरी—चाहे वह कैसी भी और किसी भी चीज़ की हो—एक बड़ा घृणित कार्य है। हम इसकी हृदय से निन्दा करते हैं। अगर क़ानून (Law) में ऐसा कोई विधान हो—हमारी समझ में तो नहीं है जिससे ऐसी चोरी के विरुद्ध कुछ किया जा सके तो हम तो उन लेखकों से जिनके लेखों की इस प्रकार चोरी होती हो यह अनुरोध करेंगे कि वे क़ानून का आश्रय लें।

—सम्पादक

साहित्य-संसार

ओसवाल सुधारकः—वर्ष ३, अंक १ ता० ५ जुलाई १९३६, प्रधान संचालक—श्रीयुत सेठ अचलसिंहजी, संपादकः-अक्षयसिंहजी डांगी एम० ए०, एल-एल० बी० (एडवोकेट) तथा सूर्य वर्मा एम० ए० (प्रीवि-); रोशन मुहल्ला, आगरा; पृष्ठ संख्या २४; वार्षिक मूल्य २॥) एक प्रति का मूल्य =)।

यह पाक्षिक पत्र अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन का मुख पत्र है। लेख-सामग्री सामयिक है, किन्तु विचारों में क्रान्ति लानेवाले और सुधार सम्बन्धी लेखों की और भी आवश्यकता है। 'ओसवाल जगत' और 'वाणिज्य-व्यवसाय' के स्तम्भ काम की चीज़ें हैं। 'ओसवाल चित्रावली' भी सुन्दर है, पर साथ ही संक्षिप्त परिचय भी रहना आवश्यक था।

पत्र के सम्पादकों में श्री सूर्यवर्माजी के नाम के आगे 'एम० ए० (प्रीवि)" का अर्थ कुछ समझ में नहीं आया। यदि यह महाशय केवल एम० ए० प्रीवियस तक पढ़े हैं तो ऐसे ज़िम्मेवार पत्र पर इस प्रकार "एम० ए० प्रीवि" नहीं छपना चाहिये केवल "बी० ए०" ही काफ़ी है। हम प्रधान संचालक महोदय का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं।

"ओसवाल-सुधारक" ने २ वर्ष तक समाज की अच्छी सेवा की है और एक विशाल जाति के मुख-पत्र की हैसियत से अच्छा कार्य किया है। खेद है कि समाज ने जितना चाहिये, इसको नहीं अपनाया। फिर भी प्रधान संचालक महोदय ने जिस लगन और धैर्य्य से इस कार्य को चालू रक्खा है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। आशा है समाज इस पत्र को अपनावेगा।

मृत्यु भोज कैसे रुकेंः—लेखक, श्रीनाथ मोदी विशारद; प्रकाशक, ज्ञानभंडार, जोधपुर; पृष्ठ १६; मूल्य तीन पैसे।

इस पैम्फ़लेट का विषय सामयिक और महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस पुस्तिका में इस कुप्रथा के विरुद्ध अनेक सुन्दर दलीलें दी हैं। किन्तु कई जगह लेखक के विचार परस्पर टक्कर खा गये हैं और लेखन शैली भी कुछ रूखी है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में ऐसी ऐसी छोटी और सस्ती पुस्तकों की बहुत आवश्यकता है।

सम्पादकीय

हमारी गुलाम मनोवृत्ति

कितने ही व्यक्ति कहा करते हैं 'अमुक बात सिद्धान्त रूपसे ही सत्य है लेकिन वास्तविकता में ऐसा नहीं है' लेकिन हम उनके इस कथन को स्वीकार नहीं कर सकते। जो बात कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकती, वह सिद्धान्त रूप में भी नहीं रह सकती। सिद्धान्त असम्भव नहीं हुआ करते। सिद्धान्त सदा सरल सत्य हैं। उनको कार्यरूप में परिणत करने के लिये, या यों कहिये कि उनको अपने जीवन का अंग बनाने के लिये साधना की आवश्यकता है। वे सुविधावादी हैं और परिस्थितियों के दास हैं जो सिद्धान्त और वास्तविकता में भेद बना कर केवल बात को टाल देना चाहते है। उनका यह सुविधावाद और इस संसार-सिन्धु में परिस्थितियों के रुख पर डूबना उतराना केवल उन व्यक्तियों की गुलाम मनोवृत्ति के ही परिचायक हैं। उदाहरणार्थ गुलाम मनोवृत्तिवाले ये व्यक्ति 'संसार परिवर्त्तनशील है' इस सर्वसम्मत सत्य को मानते भी हैं और नहीं भी मानते। मानते तब है जब उनको अपने सिद्धान्तों से हटने के लिये इसी सत्य की दुहाई देनी पड़ती है, हालां कि वे हटे हैं केवल अपनी सुविधाजनक परिस्थितियों के प्रवाह में बहकर। नहीं मानते हैं उस समय जब इसी सत्य को सामने रखकर पक्के सिद्धान्तवादी व्यक्ति समाज के खोखले ढांचे को क्रान्ति मचा कर तोड़ देना चाहते हैं **और** उसकी जगह चाहते हैं वह नूतन निर्माण, जिसमें सुविधावादियों को कोई स्थान नहीं।

गुलाम मनोवृत्ति क्या है, इसे हम यहां ज़रा स्पष्ट कर देना चाहते हैं। कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनकी सत्यता को आपकी आत्मा मंजूर करती है, पर फिर भी आप उसे मंजूर करने में हिचकते है, क्योंकि ऐसा करने से आपकी जीवन-सरिता के सरल प्रवाह में एक बाधा उपस्थित हो जाती है, जिसे आपका सुविधावादी मन अवांछनीय समझता है। यही मनोवृत्ति जो सत्य को जानते हुए भी आपको उसे मंजूर नहीं करने देती और आपकी सुविधा के लिये परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है गुलाम मनोवृत्ति है। इसका एक दृष्टान्त लीजिये। मोहनलाल एक जोशीले युवक हैं। खद्दर पहिनने की प्रतिज्ञा है। देशकी स्वतन्त्रता के आन्दोलन के पक्के हिमायती हैं। लेकिन कुछ दिन बाद वे डाक्टर हो जाते हैं। इस चतुर्मुखी प्रतिद्वन्दिता के ज़माने में उन्हें अपनी प्रेक्टिस करनी है। प्रेक्टिस भी उन लोगों में करनी है जो दक़ियानूसी विचारों के है। ये लोग स्वतन्त्रा के आन्दोलन को एक हौवा समझते हैं और खद्दर को सन्देहजनक दृष्टि से देखते हैं। ऐसी अवस्था में बेचारे मोहनलाल खद्दर छोड़कर, स्वदेशी तो दूर रहा, विदेशी धारण करते हैं और गांधीवाद के हिमायती न रह कर उसे भारत की संस्कृति को-उसके धर्म-को नष्ट करनेवाला समझना शुरू कर देते हैं! यह है गुलाम मनोवृत्ति।

इस गुलाम मनोवृत्ति ने हममें इतना घर कर लिया है कि आज जीवन की छोटी-छोटी बातों में भी इसीकी व्यापकता है। हम किसी भी नई किन्तु सच्ची

बात को करने में अपने सुविधावाद में ख़लल पड़ने के सिवा इस बात से भी डरते हैं कि "लोग क्या कहेंगे ?" हमारे पास भूंजी भांग के लिये भी पैसा नहीं पर लड़के के नामकरण में, लड़कीके विवाह में, दादा के औसर पर उधार लेकर भी इस डर से ख़र्च करेंगे कि "लोग क्या कहेंगे ?" इस "लोग क्या कहेंगे ?" का डर छोड़ दीजिये और हिम्मत करके समयानुकूल कार्य कीजिये और देखिये कि आपकी बहुत सी मुसीबतें स्वयं हल हो जायगी और समाज में भी किसी क़दर सुव्यवस्थितता छा जायगी। "लोग क्या कहेंगे ?" यह ख़याल ही आज़ादी को भगा कर परतन्त्र कर देता है। यह हमारी गुलाम मनोवृत्ति की ही उपज है।

इस मनोवृत्ति ने हमको कितना गिराया है, यह इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि हम अपनी छोटी-मोटी नगण्य सुविधाओं के लिये भी अपनी आत्मा की हत्या करने में नहीं सकुचाते! हमें किसी जगह रेल में बैठ कर जाना है। जगह मिलती तो है पर इतनी नहीं कि हम पैर फैला कर सो सकें। हमें केवल यही उपाय सूझता है कि रेलवे के किसी वर्दीधारी बाबू को रुपया, आठ आना घूस देकर कुछ व्यक्तियों को– जो अधिकांश में बेचारे ग़रीब और अशिक्षित ही होते हैं—उनकी तंग जगहों से उठवा कर स्वयं पैर फैला कर लेटें। ऐसी छोटी- मोटी बातों में घूस देना हमारे जीवन की एक साधारण घटना है, पर इसमें कितना बड़ा अधःपतन छिपा है ? ख़ास कर हमारे मारवाड़ी समाज में तो घूस देने का एक रोग ही है।

एक रेल ही में इस तरह होता हो, यह बात नहीं है। लगभग सभी जगहों पर ऐसा किया जाता है। हमारे मकान के आंगन में बरसात में पानी इकट्ठा हो जाता है। उसके लिये एक नाली का निकालना आवश्यक है। लेकिन पश्चिम तरफ़ जिधर मैदान है, नाली निकालने में हमें कुछ अधिक ख़र्चा उठाना पड़ता है। पूरब की ओर आसानी से नाली निकल सकती है, लेकिन कठिनाई यह है कि म्युनिसिपैलिटी वाले उस ओर नाली निकालने की आज्ञा नहीं देते क्योंकि अन्य नागरिकों को उस ओर नाली निकालने से कष्ट उठाना पड़ता है। बस हमारी कुशाग्र बुद्धि (?) फ़ौरन एक उपाय ढूंढ निकालती है कि किसी म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारी को घूस देकर अन्य नागरिकों के कष्टों की परवा न कर उधर नाली निकलवा दें। इसी प्रकार चुंगीघर, डाकख़ाने, कचहरियाँ तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानों पर हम अपनी इस गुलाम मनोवृत्ति के कारण अपनी क्षणिक और पैसे दो पैसे की सुविधाओं के लिये पतित होते रहते हैं।

जीवन यात्रा में पग-पग पर हम इसी गुलाम मनोवृत्ति से संचालित होने लगे हैं सामजिक उत्थान— स्वदेश की स्वतन्त्रता आदि जीवन मरण के प्रश्न तो दूर की बात है। हमारी अज्ञानता, हमारा क़ानून-क़ायदों से अपरिचितहोना, हमारीसुविधा प्रिय मनोवृत्ति, ज़रा सा भी कष्ट उठाने के ख़याल मात्र से डर जाने की हमारीनिन्दनीय मनोदशा-इन सबने हमारे समाज को अत्यन्त डरपोक और कायर बना दिया है। संसार इन पिछले सौ वर्षों में कितने ही बड़े-बड़े परिवर्तनोंमें से गुज़रा है, जीवन और जीवन की क्रियाओं के मूल्य ही बदल गये, सामूहिक और सार्वजनिक जीवन में बहुत परिवर्तन हो गया, पर हमारे अज्ञान के कारण हम जहां थे वहां के वहीं रह गये। नतीजा यह हुआ है कि आज हम इस दुनिया में हमारा कोई स्थान ही नहीं पाते। हमारी दशा उस गँवार की सी है जो

अपने जीवन में पहले-पहल अपने छोटे से गांव से किसी बड़े शहर की विशालकाय इमारतों के सामने लाकर खड़ा कर दिया गया हो और भौंचक्का होकर चारों ओर देख रहा हो। उसकी समझ में ही नहीं आता कि यह सब बात है क्या ? आदमी की ही करामात है—या देवों की ? ठीक यही दशा हमारे समाज के अधिकांश आदमियों की है। आधुनिक युग की रचना—बड़ी-बड़ी सार्वजनिक संस्थाएँ—जैसे—रेल, तार, डाकखाना, कचहरियाँ आदि के Working (कार्यप्रणाली) को हम समझ ही नहीं पाते हैं- और हमारी अज्ञानता के कारण हम ज़रा-ज़रा सी बातों से घबड़ा कर वहां के अधिकारियों को घूस देने का तैयार हो जाते है। हमारी इस घृणित मनोवृत्ति से हमारी सारी जाति ही बदनाम हो गई है—और कहीं हमारा सम्मान नहीं रह गया है। हमारी गुलामी की हद तो यहां तक हो गई है कि हम इन बातों में हमारा कोई अपमान भी नहीं समझते और यदि कोई इन बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है तो भी यही कह कर टाल देते हैं कि दुनिया में ऐसा होता ही आया है। हमारे इतना लिखने का तात्पर्य केवल यही है कि हम अपने आप को पहचानें। इस मनोवृत्ति से उद्धार पाने की कोशिश करें। समाज और देश हमसे ज़बर्दस्त आशायें रखता है। लेकिन इस अधःपतित दशा में हम क्या करने योग्य हैं ?

हमारे कितने ही नवयुवक, जिन पर हमारे समाज की उज्वल आशायें अवलम्बित हैं, सुविधावाद के वशवर्त्ती होकर समाजसेवा के कार्य में आगे नहीं आते। कितने ही नवयुवक, जो समाज की सैद्धान्तिक रूप से सच्ची सेवा कर रहे थे, अपनी परिस्थितियों के प्रवाह में बह कर उस सेवा से विमुख हो जाते हैं। और बुजुर्ग नये ज़माने की पुकार को नहीं सुनते 'लोग क्या कहेंगे ?' से डर कर। इसी गुलाम मनोवृत्ति के कारण तो आज हमारा समाज इतना पिछड़ा हुआ और रूढ़ियों और कुरीतियों का शिकार हो रहा है। इस गुलाम मनोवृत्ति के पंजे से छूटिये तभी आप स्वतन्त्र और सुखी हो सकते हैं।

हम समाज सुधार के लिये, धार्मिक उत्थान के लिये इतना सिर तोड़ परिश्रम करते है, पर सफल नहीं हो पाते, क्योंकि हम में इस गुलाम मनोवृत्ति का प्राधान्य है। बड़े-बड़े सुधारक भी अवसर उपस्थित होने पर इसी के शिकार हो जाते हैं। जब तक हमारी मनोवृत्ति गुलाम रहेगी, हम कभी आज़ाद नहीं हो सकते। मनोवृत्ति के स्वतन्त्र होते ही हम भी आज़ाद हो जायेंगे।

टिप्पणियाँ

शोक-समाचार—

बिहार के प्रसिद्ध रईस श्री धन्नुलालजी सुचन्ती का गत गुरुवार ता० १६ जुलाई को स्वर्गवास हो गया। आप श्री पावापुरी तीर्थ के अवैतनिक मैनेजर थे। आपके समय में इस तीर्थ की बहुत कुछ उन्नति हुई है। आप हमेशा तीर्थ-सेवा के लिये तन-मन-धन

से कटिबद्ध रहते थे। आपकी मृत्यु से जैन समाज का एक सच्चा सेवक उठ गया। हम आपकी आत्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि और आपके शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

अग्रवाल-महासभा—

गत १८-१९ और २० जुलाई को श्रीयुत रामकृष्णजी डालमियां के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय अग्रवाल महासभा का १७ वां वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते में सम्पन्न हुआ। इधर कई वर्षों में अग्रवाल समाज ने जो उन्नति की है वह प्रशंसनीय है और साथ ही अन्य समाजों के लिये अनुकरणीय है। अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए, जिनमें बेकारी को दूर करने की दृष्टि से एक व्यापारिक और औद्योगिक शिक्षालय की स्थापना करना, कला-कौशल सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिये सजातीय बालकों को छात्रवृत्ति या अन्य रूप में आर्थिक सहायता देकर जापान, अमेरिका आदि विदेशों में भेजना मुनीमी और गुमाश्तागिरी का काम करनेवाले भाइयों को सुविधा देना, पर्दा हटा देना आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सबमें विचारणीय प्रस्ताव मुनीमी और गुमाश्तागिरी का काम करनेवाले भाईयों को निम्नलिखित सुविधायें देने का था: —

(१) उन लोगों के काम करने का समय उचित रूप से नियन्त्रित कर दिया जाय।

(२) जिस समय उन लोगों को देश जाने की छुट्टी दी जाती है, उस समय अनुपस्थिति की अवधि में उन्हें मासिक वेतन अवश्य दिया जाय।

(३) स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से प्रत्येक सप्ताह में उन्हें कम से कम एक दिन की छुट्टी अवश्य दी जाय।

उपरोक्त प्रस्ताव केवल अग्रवाल समाज के ही हित का हो यह बात नहीं है। ओसवाल समाज के लिये भी यह उतना ही हितकर और आवश्यक है। अतः हम अपने समाज के धनियों से प्रार्थना करते हैं कि वे उक्त प्रस्ताव पर अमल करें।

हम श्रीयुत रामकृष्णजी डालमियां की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने बढ़ती हुई बेकारी से अग्रवाल समाज को बचाने के लिये अपनी जाति के कम से कम पांच सौ युवकों को उद्योग-धन्धों में कार्य देने का अपने समाज को आश्वासन दिया है। क्या हम उम्मीद करें कि हमारे ओसवाल धनिक भी डालमियांजी की इस प्रशंसनीय योजना का अनुकरण करेंगे ?

इसी अवसर पर एक विराट् महिला सम्मेलन की भी आयोजना की गई थी। यह सम्मेलन गत २१ जुलाई को कलकत्ते के ओसवाल समाज की एक मात्र राष्ट्रीय कार्य-कर्त्री श्रीमती सज्जनदेवी महनोत की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में महिलाओं ने खूब जोश दिखाया और अपनी बहनों से इस बातकी अपील की कि पुरुष समाज पर निर्भर न रह कर वे स्वयं आगे आवें और अपने अधिकार प्राप्त करें। हमें महिलाओं के इस प्रयत्न के प्रति पूरी सहानुभूति है।

व्यापार चर्चा—

हमारा समाज एक व्यापारजीवी समाज है। व्यापारिक उन्नति ही उसकी सच्ची उन्नति है। यहीसोच कर इस अङ्क से हमने वर्त्तमान व्यापारिक स्थिति का पाठकों को किंचित ज्ञान कराते रहने के लिये 'व्यापार-चर्चा' का स्तम्भ आरम्भ किया है। इस 'चर्चा' से हमारा आशय बाज़ार की तेज़ी-मंदी से पाठकों को अवगत करना नहीं है। हमारा आशय पाठकों को—व्यापार का

स्व किधर है—व्यापारिक संसार में क्या क्रान्तिकारी उथल-पुथल हो रही है—इन व्यापक प्रश्नों से अवगत कराना है। हमारा अनुरोध है कि पाठक इस स्तम्भ को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे।

मारवाड़ में शिक्षा पर फ़ीस —

आज तक मारवाड़ (जोधपुर रियासत) में स्कूलों और कालेजों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी, लेकिन गत १ जुलाई से जोधपुर नरेश की आज्ञा से फ़ीस लगा दी गई है। हम इस कार्य की हृदय से निन्दा करते हैं। मारवाड़ में, जहां शिक्षितों की संख्या एक प्रतिशत भी कठिनाई से है, शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग में यह फ़ीस एक ज़बर्दस्त रोड़ा है। मारवाड़ की प्रजा अधिकांश में दरिद्र है। वह इस फ़ीस का भार नहीं वहन कर सकती। हम महाराजा साहब से अनुरोध करते हैं कि वे फिर एक बार अपने इस निश्चय पर विचार करें। उस हालत में जब कि अन्य रियासतें शिक्षा-प्रचार के लिये सराहनीय प्रयत्न कर रही हैं, जोधपुर रियासत का यह शिक्षा-विरोधी कार्य शोभाप्रद नहीं है।

व्यापार-चर्चा

(१)

सस्ता रुपया

गत ८ जुलाई को ट्रावन्कोर की सरकार ने पचास लाख रुपये का लोन तीन प्रतिशत व्याज का निकाला था। इस लोन को खरीदनेवालों की मांग एक मिनिट में पौने तीन करोड़ की आई। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कारबार में रुपये की लाग कम है और इसलिये सस्ते व्याज पर भी रुपये की बहुतायत है। कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट भी पचास लाख का लोन निकालने वाला है। हबड़ा ब्रिज कमिश्नर्स भी शीघ्र ही डेढ़ करोड़ का लोन निकाल रहे हैं और कलकत्ता कारपोरेशन भी लोन लेने का विचार कर रहा है। उपरोक्त तीनों संस्थायें प्रायः ढाई करोड़ का लोन कुछ ही महीनों में लेनेवाली हैं। लेकिन बीमा कम्पनियों के फ़ालतू पड़े हुये रुपयों को देखते हुए तथा वर्त्तमान कारोबार की मन्दी को देखते हुए ये लोन भी बाज़ार के निरन्तर गिरते हुए व्याज को ज्यों का त्यों रखते हुए खरीद लिये जायंगे। सराफ़े का बाज़ार बहुत मंदा है। इस मंदी का एक मात्र कारण वर्तमान संसार-व्यापी आर्थिक संकट (Trade depression) है। कारोबार में रुपया लगाते हुये लोग हिचकते हैं। गवर्नमेण्ट के कागज़ों का भाव इस रुपये की बहुतायत और बेकारी को देखते हुए अच्छा ही रहना चाहिये।

(२)

भारतीय-जापानी व्यापारिक समझौता

सन १९३३ में जो भारतीय-जापानी व्यापारिक समझौता हुआ था, वह ३१ मार्च सन् १९३७ को समाप्त हो जायगा। उक्त समझौता उस समय हुआ था जब जापान ने भारतीय रूई का संपूर्ण रूप से बहिष्कार कर रखा था। उस समय भारत सरकार ने

भारत की रुई के व्यवसाय को बचाने के लिये अपनी कमज़ोरी प्रकट करते हुए भी समझौता किया था। अब नवीन समझौता होने जा रहा है। परन्तु समझौता करते समय भारत सरकार को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि अब वह समय नहीं रहा है। अब भारत की रुई की खपत भारत में भी बहुत है। जापान को अधिक सुविधा देना भारत के वस्त्र-व्यवसाय के लिये घातक होगा। इसलिये भारत सरकार को केवल रुई का हित देख कर ही नहीं, बल्कि अन्य वस्तुओं पर भी ध्यान रखते हुए समझौता करना चाहिये।

(३)

हवड़े का नया पुल

हवड़े का जो वर्त्तमान पुल है, उसके पुराना होने और उस पर खर्चा अधिक बैठने के कारण अब उसकी जगह एक नया पुल बनने जा रहा है। इस नये पुल का ठेका देने के लिये टेण्डर मांगे गये थे। तीन जगहों से टेण्डर आये। (१) तीन भारतीय कम्पनियों ने मिलकर दिया हुआ टेण्डर। (२) विलायत की कम्पनी Cle elands का दिया हुआ और (३) जर्मन कम्पनी Krup का टेन्डर। प्रायः सभी विचारशील व्यक्तियों का मत था कि यह ठेका भारतीय कम्पनी को ही मिलना चाहिये, लेकिन हवड़ा ब्रिज के पंचों ने विलायती कम्पनी Clevelands का टेण्डर मंजूर करने की सिफारिश की है। सर्वसाधारण के मत को इस तरह ठुकरा देना सर्वथा अनुचित है। भारत के इतने बड़े काम को अगर भारतीयों ही के हाथों में दिया जाता तो अच्छा होता।

(४)

काशीपुर रोड़ बाज़ार

आजकल काशीपुर रोड़ पाट बिक्री का प्रधान बाज़ार हो रहा है। 'काशीपुर रोड़ जूट ब्रोकर्स एसोसियेसन' नामक दलालों की एक संस्था के तत्वावधान में यह व्यापार चल रहा है। इस संस्था की ज़िम्मेवारी बेचवालों के हितों की रक्षा की दृष्टि से बहुत बढ़ गई है। लेकिन प्रायः यह सुनने में आता है कि बेचवालों के हितों की जैसी रक्षा होनी चाहिये, वैसी नहीं होती है। 'वज़न' के लिये प्रधान शिकायत है, जिसको दूर करने के लिये इस संस्था को उचित प्रबन्ध करना चाहिये। इसके लिये यह उचित होगा कि संस्था सब प्रेस मालिकों को लिखे कि प्रत्येक प्रेस में गाड़ी तोलनेवाला कांटा (Weigh-bridge) लगाया जाय। इस कांटे से पूरी गाड़ी प्रेस में प्रवेश करते ही तोल ली जा सकेगी। इससे 'वज़न' की शिकायत दूर हो सकेगी।

काशीपुर रोड़ के बेचवालों से भी हम अनुरोध करेंगे कि वे निश्चेष्ट होकर एकमात्र दलालों के भरोसे ही नहीं रहें, क्योंकि समय-समय पर दलालों की एसोसियेशन में भारी फूट पड़ जाया करती है, उस समय बेचवालों के हितों को बड़ी भारी ठेस लगती है। अतः बेचवाल भी इस प्रश्न को विचार कर अपने हितों की रक्षा करने के लिये अपनी एक संस्था क़ायम करें।

(५)

बेकारी

हमारे समाज में बेकारी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। यह प्रश्न बड़ा भीषण होता जा रहा है। ऐसी

अवस्था को देखते हुए हम अपने समाज के धनवानों से अनुरोध करेंगे कि वे उन्नत उद्योग धन्धों में लगें, जिसमें हमारे बेकार बन्धुओं को कार्य मिले और हमारा समाज वही व्यापार-जीवी समाज बना रहे, जिसका हमको इस गये-गुज़रे ज़माने में भी नाज़ है। अगर हमारे धनी व्यक्ति आगे न आये तो हमारे बेकार युवक पथभ्रष्ट होकर या अन्य कोई उपाय न देखकर ऐसे महत्वहीन ओछे धन्धों में आ पड़ेंगे, जो कभी हमारे गौरव के बाइस नहीं हो सकते। इस चर्चा में हम नीचे लिखे कई उन्नत धन्धों की एक सूची देते हैं। ये ऐसे काम हैं, जिनमें ६) रुपया प्रतिशत से लेकर ४०) रुपया प्रतिशत तक का नफा है।

(१) बैंक का व्यवसाय; (२) बीमा का व्यवसाय; (३) मकान बनवा कर देने का व्यवसाय; (४) पाट मिल; (५) चावल मिल; (६) कागज़ की मिल; (७) चीनी की मिल; (८) कपड़े की मिल; (९) सीमेण्ट का कारखाना; (१०) लोहे का कारखाना; (११) फ़ारमेसी; (१२) डेयरी फ़ार्म; (१३) बिजली सप्लाई आदि।

गत १८,१९,२० जुलाई को अग्रवाल महासभा का १७ वां वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते में हो गया है। उसके सभापति के आसन से भाषण करते हुए श्रीयुत् रामकृष्णजी डालमियां ने कहा कि वे अपनी जाति के पांच सौ युवकों को काम दे सकेंगे। अपने समाज से बेकारी को दूर करने के लिये यह उनका एक सराहनीय प्रयत्न होगा। क्या हम किसी ओसवाल सज्जन से ऐसे वचन की आशा कर सकते हैं ?
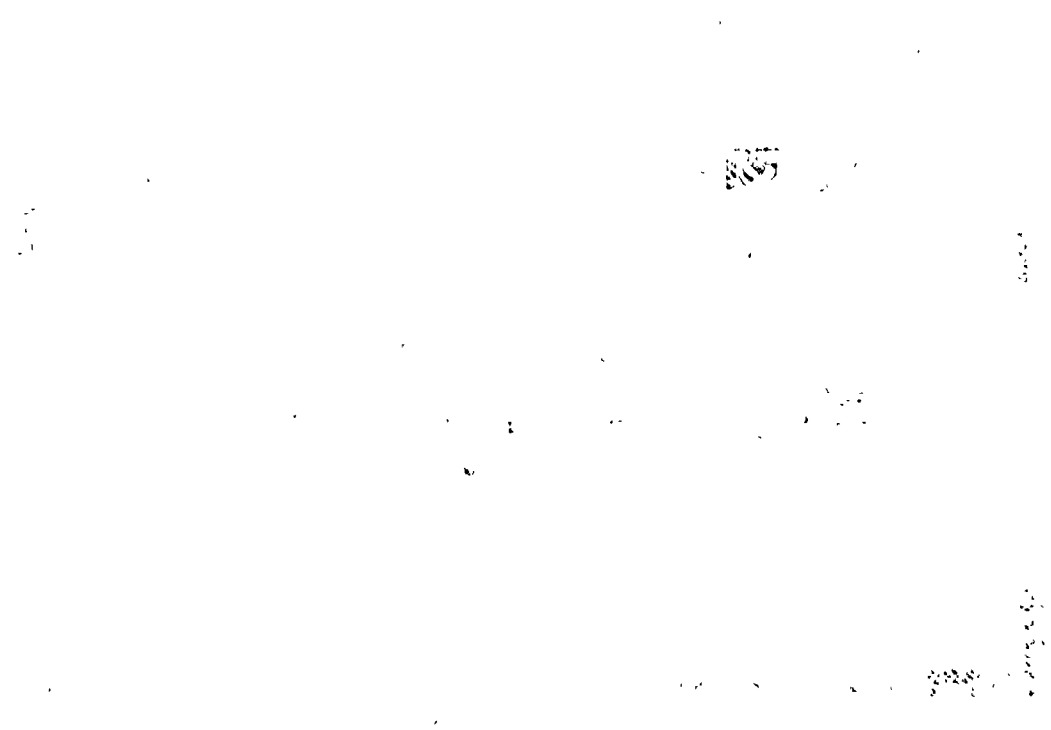
वर्ष ७, संख्या ४ अगस्त १९३६

तमोगुण का अर्थ है---जड़ता प्रमाद, आलस्य, अकर्मण्यता। रजोगुण का लक्षण है---क्रियाशीलता। सतोगुण का सार है---विवेक-युक्त क्रिया, कार्याकार्य का सम्यक् ज्ञान।

जहाँ जड़ता, प्रमाद, आलस्य और अकर्मण्यता का राज्य है वहाँ मनुष्यता नहीं। मनुष्यता का आरम्भ, मेरी राय में, क्रियाशीलता से होता है। क्रियाशीलता में विवेक का योग हो जाने से मनुष्यता सार्थक और सफल हो जाती है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादक:—
गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०

अखिल ओसवाल-समाज
के
एक मात्र मासिक पत्र
'ओसवाल नवयुवक'
के
ग्राहक बनिये
(उच्च कोटि के साहित्यिक, व्यवसायिक
और मामाजिक लेखों तथा सुन्दर
चित्रों से युक्त पत्र, वार्षिक
मूल्य केवल ३) मात्र)

लेख-सूची

[अगस्त १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिएँ। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन—प्रकाशन, पता—परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये है। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैः—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अंक के लिए	रु० १८)
„ „ तृतीय „	„ „ „	१५)
„ „ चतुर्थ „	„ „ „	२५)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	„ „ „	१०)
„ आधा पृष्ठ या एक कालम	„ „	७)
„ चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	„	४)
„ चौथाई कालम	„ „	२॥)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक
२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

श्री पुखराजजी हींगड़

आप स्थानीय ओसवाल समाज में पहले ही युवक है जो व्यापार के सिलसिले मे जापान गये थे। अभी इसी महीने की १८ तारीख को आप दूसरी बार जापान गये है। पहली बार की जापान यात्रा के आपके अनुभव इसी अङ्क मे अन्यत्र छपे है। आशा है श्री हींगड़जी समय समय पर जापानी व्यापार और उद्योग धन्धे सम्बन्धी अपना अनुभव प्रकाशित करते रहेंगे जिससे समाज के अन्य व्यक्ति भी नवीन उद्योग धन्धों की ओर अग्रसर हों।

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] अगस्त १९३६ [संख्या ४

धर्म और बुद्धि

[पं० सुखलालजी]

आज तक किसी भी विचारक ने यह नहीं कहा कि धर्म की उत्पत्ति और विकास बुद्धि के सिवाय और भी किसी तत्त्व से हो सकता है। प्रत्येक धर्म-संप्रदाय का इतिहास यही कहता है कि अमुक बुद्धिमान पुरुष के द्वारा ही उस धर्म की उत्पत्ति या शुद्धि हुई है। हरेक धर्म-सम्प्रदाय के पोषक धर्मगुरु और विद्वान इसी एक बात का स्थापन करने में गौरव समझते हैं कि उनका धर्म बुद्धि, तर्क, विचार और अनुभव-सिद्ध है। इस तरह धर्म के इतिहास और उसके संचालन के व्यावहारिक जीवन को देख कर हम केवल एक ही नतीजा निकाल सकते हैं कि बुद्धितत्त्व ही धर्म का उत्पादक, उसका संशोधक, पोषक और प्रचारक रहा है और रह सकता है।

ऐसा होते हुए भी हम धर्म-इतिहासों में बराबर धर्म और बुद्धितत्त्व का विरोध और पारस्परिक संघर्ष देखते हैं। केवल हिन्दुस्तान में आर्य धर्म की शाखाओं में ही नहीं, बल्कि यूरोप आदि अन्य देशों में तथा ईसाई, इस्लाम आदि अन्य धर्मों में भी हम भूतकालीन इतिहास तथा वर्तमान घटनाओं में देखते हैं कि जहां बुद्धितत्त्व ने अपना काम करना शुरू किया कि धर्म के विषय में अनेक शंका-प्रतिशंका और तर्क वितर्क पूर्ण प्रश्नावली उत्पन्न हो जाती है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म-गुरु और धर्म-विद्वान जहां तक हो

सकता है उस प्रश्नावली का, उस तर्कपूर्ण विचारणा का आदर करने के बजाय विरोध ही नहीं सख्त विरोध करते हैं। उनके ऐसे विरोधी और संकुचित व्यवहार से तो यह ज़ाहिर होता है कि अगर तर्क, शंका या विचार को जगह दी जायगी तो धर्म का अस्तित्व ही नहीं रह सकेगा अथवा वह विकृत होकर ही रहेगा। इस तरह जब हम चारों तरफ़ धर्म और विचारणा के बीच विरोध सा देखते हैं तब हमारे मनमें यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या धर्म और बुद्धि में विरोध है ? इसके उत्तर में संक्षेप में इतना तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि उनके बीच कोई विरोध न है और न हो सकता है। यदि सच-मुच ही किसी धर्म मे इनका विरोध माना जाय तो हम तो यही कहेंगे कि उस बुद्धि-विरोधी धर्म से हमें कोई मतलब नहीं ऐसे धर्म को अंगीकार करने की अपेक्षा उसको अंगीकार न करने में ही जीवन सुखी और विकसित रह सकता है।

धर्म के दो रूप हैं। एक तो जीवनशुद्धि और दूसरा कुछ बाह्य व्यवहार। क्षमा, नम्रता, सत्य, संतोष आदि जीवन-गत गुण पहिले रूपमें आते हैं। स्नान, तिलक, मूर्तिपूजन, यात्रा, गुरु सत्कार, देह दमन आदि बाह्य व्यवहार दूसरे रूपमें आते हैं। सात्विक धर्म का इच्छुक मनुष्य जब अहिंसा का महत्त्व गाता हुआ भी पूर्व संस्कारवश कभी-कभी उसी धर्म की रक्षा के लिये हिंसा, पारस्परिक पक्षपात तथा विरोधी पर प्रहार करना भी आवश्यक बताता है सत्य का हिमायती मनुष्य भी ऐन मौके पर जब सत्य की रक्षा के लिये असत्य की शरण लेता है—सब को 'सन्तुष्ट' रहने का उपदेश देनेवाला मनुष्य, भी जब धर्म समर्थन के लिये परिग्रह की आवश्यकता बतलाता है तब बुद्धिमानों के दिल में प्रश्न होता है कि अधर्मरूप समझे जानेवाले हिंसा, असत्य आदि दोषों से जीवनशुद्धि रूप धर्म की रक्षा या पुष्टि कैसे हो सकती है ? फिर वही बुद्धि-शाली वर्ग अपनी शंका को उन विपरीतगामी गुरु या पंडितों के सामने रखता है। इसी तरह जब बुद्धिमान वर्ग देखता है कि जीवनशुद्धि का विचार किए बिना ही धर्म गुरु और पंडित बाह्य क्रिया –काण्डों को ही धर्म कह कर उनके ऊपर एकान्तिक भार दे रहे हैं और उन क्रिया काण्डों एवं नियत भाषा तथा वेश के बिना धर्म का चला जाना, नष्ट हो जाना बतलाते हैं, तब वह अपनी शंका उन धर्म-गुरुओं, पण्डितों आदि के सामने रखता है कि वे लोग जिन अस्थायी और परस्पर असंगत ऐसे बाह्य व्यवहारों पर धर्म के नाम से पूरा भार देते हैं उनका सच्चे धर्म से क्या और कहां तक सम्बन्ध है ? ऐसा देखा जाता है कि जीवनशुद्धि न होने पर बल्कि अशुद्ध जीवन होने पर भी ऐसे बाह्य व्यवहार अज्ञान, वहम, स्वार्थ एवं भोलेपन के कारण कोई मनुष्य धर्मात्मा समझ लिया जाता है। ऐसे ही बाह्य व्यवहारों के कम होते हुए या दूसरे प्रकार के बाह्य व्यवहार होने पर भी सात्त्विक धर्म का होना सम्भव हो सकता है। ऐसे प्रश्नों के सुनते ही उन धर्म-गुरुओं और धर्म-पण्डितों के मन में एक तरह की भीति पैदा होती है। वे समझने लगते हैं कि ये प्रश्न करनेवाले वास्तव में तात्त्विक धर्म वाले तो हैं नहीं, केवल निरी तर्क शक्ति से हम लोगों के द्वारा धर्मरूप से मनाये जाने वाले व्यवहारों को भी अधर्म बतलाते हैं ऐसी दशा में धर्म का व्यवहारिक बाह्य रूप भी कैसे टिक सकेगा ? इन धर्म-गुरुओं की दृष्टि में ये लोग अवश्य ही धर्मद्रोही या धर्म-विरोधी हैं क्योंकि वे ऐसी स्थिति के प्रेरक हैं जिसमें न तो जीवनशुद्धि रूपी असली

धर्म ही रहेगा -और न झूठा-सच्चा व्यवहारिक धर्म ही। धर्म-गुरु और धर्म-पण्डितों के उक्त भय और तज्जन्य उलटी विचारणा में से एक प्रकार का द्वन्द्व शुरू होता है। वे सदा स्थायी जीवनशुद्धि रूप तात्त्विक धर्म को पूरे विश्लेषण के साथ समझाने के बदले बाह्य व्यवहारों को त्रिकालाबाधित कह कर उनके ऊपर यहां तक जोर देते हैं कि जिससे बुद्धिमान वर्ग उनकी दलीलों से ऊब कर – असन्तुष्ट होकर यही कह बैठता है कि गुरु और पण्डितों का धर्म सिर्फ ढकोसला है— धोखे की टट्टी है। इस तरह धर्मोपदेशक और तर्कवादी बुद्धिमान वर्ग के बीच प्रतिक्षण अन्तर और विरोध बढ़ता ही जाता है। उस दशा में धर्म का आधार विवेक शून्य श्रद्धा, अज्ञान या वहम ही रह जाता है और बुद्धि एवं तज्जन्य गुणों के साथ धर्म का एक प्रकार से विरोध दिखाई देता है।

यूरोप का इतिहास बतलाता है कि विज्ञान का जन्म होते ही उसका सबसे पहला प्रतिरोध इसाई धर्म की ओर से हुआ। अन्त में इस प्रतिरोध से धर्म का ही सर्वथा नाश देख कर उसके उपदेशकों ने विज्ञान के मार्ग में प्रतिपक्षी भाव से आना ही छोड़ दिया। उन्होंने अपना क्षेत्र ऐसा बना लिया कि वे वैज्ञानिकों के मार्ग में बिना बाधा डाले ही कुछ धर्म कार्य कर सकें। उधर वैज्ञानिकों का भी क्षेत्र ऐसा निष्कण्टक हो गया कि जिससे वे विज्ञान का विकास और सम्वर्धन निर्बाध रूप से करते ही गये। इसका एक सुन्दर और महत्त्व का परिणाम यह हुआ कि सामाजिक और अन्त में राजकीय क्षेत्र से धर्म का स्थान हट ही गया। और फलतः वहां की सामाजिक और राजकीय संस्थाएं अपने गुण दोष पर बनने बिगड़ने लगीं।

इस्लाम और हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं की दशा इसके विपरीत है। इस्लामी दीन और धर्मों की अपेक्षा बुद्धि और तर्कवाद से अधिक घबड़ाता है और शायद इसी लिये वह धर्म अभी तक किसी अन्यतम महात्मा को पैदा नहीं कर सका और स्वयं स्वतन्त्रता के लिये उत्पन्न होकर भी अपने अनुयायिओं को अनेक सामाजिक राजकीय बन्धनों से जकड़ दिया है। हिन्दू धर्म की सब शाखाओं का भी यही हाल है। वैदिक हो, बौद्ध हो या जैन, सभी धर्म स्वतन्त्रताका दावा तो बहुत करते है, फिर भी उनके अनुयायी जीवन के हरेक क्षेत्र में अधिक से अधिक गुलाम हैं। यह स्थिति अब विचारकों के दिल में खटकने लगी है। वे सोचते हैं कि जब तक बुद्धि, विचार, और तर्क के साथ धर्म का विरोध समझा जायगा तब तक उस धर्म से किसी का भला हो ही नहीं सकता। यही विचार आज कल युवकों की मानसिक क्रान्ति का एक प्रधान लक्षण है।

राजनीति, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, तर्क-शास्त्र इतिहास और विज्ञान आदि का अभ्यास तथा चिन्तन इतना अधिक होने लगा है कि जिससे युवकों के विचारों में स्वतंत्रता तथा उनके प्रकाशनमें निर्भयता दिखाई देने लगी है। इन धर्मगुरु और धर्म-पंडितों का उन नवीन विद्याओं से परिचय न होने के कारण वे अपने अपने पुराने वहमी, संकुचित और भीरु खयालोंमें ही राज्य करते है। ज्यों ही युवक वर्ग अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने लगता है कि धर्मजीवी महात्मा घबड़ाने और कहने लगते हैं कि विद्या और विचार ने ही तो धर्म का नाश शुरू किया है। जैन समाज में भी ऐसी ही एक घटना ताज़ी है। अहमदाबाद में एक ग्रेजुएट वकील ने जो मध्यस्थ श्रेणीके निर्भय विचारक हैं धर्म के व्यावहारिक स्वरूप पर अमुक विचार प्रगट

किया कि चारों ओर से विचार के कब्रस्तानों से धर्म-गुरुओं की आत्मा जग पड़ी। हलचल होने लग गई कि ऐसा विचार प्रगट क्यों किया गया? और उस विचारक को जैन धर्मोचित सज़ा क्या और कितनी दी जाय? सज़ा ऐसी हो कि हिंसात्मक भी न समझी जाय और हिंसात्मक सज़ा से अधिक कठोर भी सिद्ध हो जिससे आयन्दा कोई स्वतन्त्र और निर्भय भाव से धार्मिक विषयों में समीक्षा न करे। हम जब जैन समाज की ऐसी ही पुरानी घटनाओं तथा आधुनिक घटनाओं पर विचार करते हैं तब हमें एक ही बात मालूम होती है और वह यह कि लोगों के ख़याल में धर्म और विचार का विरोध ही जँच गया है। इस जगह हमें थोड़ी गहराई से विचार-विश्लेषण करना होगा।

हम उन धर्मधुरंधरों से पूछना चाहते हैं कि क्या वे लोग तात्त्विक और व्यावहारिक धर्म के स्वरूप को अभिन्न—एक ही समझते हैं? और क्या व्यावहारिक स्वरूप या बंधारण को वे अपरिवर्तनीय बतला या साबित कर सकते हैं? व्यावहारिक धम का बंधारण और स्वरूप अगर बदलता ही रहता है और बदलना चाहिए तो इस परिवर्तन के विषय में विशेष अभ्यासी और चिन्तनशील विचारक केवल अपना विचार प्रदर्शित करें इसमें उनका क्या बिगड़ता है?

सत्य, अहिंसा, संतोष आदि तात्त्विक धर्मका तो कोई विचारक अनादर करता ही नहीं बल्कि वे तो उस तात्त्विक धर्म की पुष्टि, विकास एवं उपयोगिता के स्वयं क़ायल हैं। वे जो कुछ आलोचना करते हैं, जो कुछ फेर-बदल या तोड़ फोड़की आवश्यकता बताते हैं वह तो—धर्मके व्यावहारिक स्वरूप के सम्बन्ध में है और उसका उद्देश्य धर्म की विशेष उपयोगिता एवं प्रतिष्ठा बढ़ाना है। ऐसी स्थिति में उन पर धर्म-विनाश का आरोप लगाना या उनका विरोध करना केवल यही साबित करता है कि या तो धर्मधुरंधर धर्म के वास्तविक स्वरूप और इतिहास को नहीं समझते और समझने की कोशिश नहीं करते या समझते हुए भी ऐसा पामर प्रयत्न करने में उनकी कोई परिस्थिति कारणभूत है।

आमतौर से अनुयायी गृहस्थ वर्ग ही नहीं बल्कि साधु वर्ग का बहुत बड़ा भाग भी किसी वस्तु का समुचित विश्लेषण करने में और उस पर समतोलपन रखने में नितान्त असमर्थ है। इस स्थिति का फ़ायदा उठाकर संकुचित-मना साधु और उनके अनुगामी गृहस्थ भी एक स्वर से कहते हैं कि ऐसा कहकर अमुक ने धर्मनाश शुरू किया। बिचारे भोलेभाले लोग इस बात से और भी अज्ञान के गहरे गड्ढे में गिरते हैं। वास्तव में चाहिये तो यह कि कोई विचारक नये दृष्टिबिन्दु से किसी विषय पर विचार प्रगट करें, तो उनका सच्चे दिलसे आदर करके विचार-स्वातन्त्र्य को प्रोत्साहन दिया जाय। इसके बदले में उनका गला घोंटने का जो प्रयत्न चारों ओर देखा जाता है उसके मूलमें मुझे दो तत्त्व मालूम होते हैं। एक तो उग्र विचारों को समझ कर उनकी ग़ल्ती दिखाने की असामर्थ्य और दूसरा अकर्मण्यता की भित्ति के ऊपर अनायास मिलनेवाली आरामतलबी के विनाश का भय।

यदि किसी विचारक के विचारों में आंशिक किंवा सर्वथा ग़ल्ती हो तो क्या उसे साधुगण समझ नहीं पाते? अगर वे समझ सकते हैं तो क्या उस ग़ल्ती को वे चौगुने बल से दलीलों के साथ दर्शाने में असमर्थ हैं? अगर वे समर्थ हैं तो उचित उत्तर देकर उस विचार

का प्रभाव लोगोंमें से नष्ट करने का न्याय्य मार्ग क्यों नहीं लेते ? धर्म की रक्षा के बहाने वे अज्ञान और अधर्म के संस्कार अपने में और समाज में क्यों पुष्ट करते हैं ? मुझे तो सच बात यही जान पड़ती है कि चिरकाल से शारीरिक और दूसरा जवाबदेही-पूर्ण परिश्रम किये बिना ही मखमली व रेशमी गद्दियों पर बैठ कर दूसरों के पसीनेपूर्ण परिश्रम का पूरा फल बड़ी भक्ति के साथ चखने की जो आदत पड़ गई है वही उन धर्मधुरंधरों से ऐसी उपहासास्पद प्रवृत्ति कराती है। ऐसा न होता तो प्रमोद-भावना और ज्ञान पूजा की हिमायत करनेवाले धर्मधुरंधर विद्या, विज्ञान और विचार-स्वातन्त्र्य का आदर करते और विचारक युवकों से बड़ी उदारता से मिलकर उनके विचारगत दोषों को दिखाते और उनकी योग्यता की क़द्र करके ऐसे युवकों को उत्पन्न करनेवाले जैन समाज के लिए वे गौरव मानते। ख़ैर! जो कुछ हो पर अब दोनों पक्षों में प्रतिक्रिया शुरू हो ही गई है। जहां एक पक्ष ज्ञात या अज्ञात रूप से यह स्थापित करता है कि धर्म और विचार में विरोध है तो दूसरे पक्ष को भी यह अवसर मिल रहा है कि वह प्रमाणित करे कि विचार-स्वातन्त्र्य आवश्यक है। यह पूर्णरूप से समझ रखना चाहिये कि विचार-स्वातन्त्र्य के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही अर्थशून्य है वास्तव में विचार तथा धर्म का विरोध नहीं, पर उनका पारस्परिक अनिवार्य सम्बन्ध है।

फिर वही

[श्री श्यामसुन्दर]

—अभी अभी तो उषा के कपोल लाल रंग से भींगे थे। भूल से प्याली ने उसके अधरों का प्यार ले ही तो लिया।

—उषा झिझकी;

—प्याली चूर चूर हो गयी, वह भी एक मस्ती ही तो थी।

—वह लजा गई; टुकड़े चुनने लगी,

—किन्तु ? आंखें चौंधियानें लगीं, पसीना बहने लगा, वह विभोर थी।

—और—

—'दिनेश' उसे अंक में ले अनन्त की ओर चल दिये।

—सध्या ने कुंकुम खोला, रजनी ने सितारों वाली साड़ी पहनी······संध्या ने दिनेश को बिदा किया।

—दिनेश ने अपनी थाती संध्या को दी, संध्या ने रजनी को······।

—उषा सचेत हुई, कुमुदिनी उसे खिल=खिलाते आती देख लजा कर छुप गई।

—उषा के कपोल एक बार फिर से लाल रंग में भींगे दिखाई पड़े !!

मेरी जापान-यात्रा

[श्री पुखराज हीगड़]

मेरे यहां छाते का व्यवसाय है। छाते के सभी भाग विदेशों और ख़ास कर जापान से आते हैं। वे भाग भारत ही में तैयार किये जा सकें, इसी उद्देश्य को लेकर मैं जापान गया। पहले तो मैं वहां जाने में बहुत हिचकिचाया, क्योंकि मेरे ख़याल से मेरे जाने से पूर्व कोई भी मारवाड़ी जैन सज्जन वहां नहीं गये होंगे। लेकिन मेरे कितने ही जोशीले मित्रों के साहस दिलाने पर मेरा उत्साह बढ़ा। पहले तो मैंने कलकत्ते से सीधे जाने वाले स्टीमर 'सैंथिया' से जाना चाहा, लेकिन उसमें एक भी यात्री न होने से मैंने 'कारागोला' नामक जहाज़ से सिंगापुर तक जाकर वहाँ से P. & O. कम्पनी का 'कैथे' नामक जहाज़ पकड़ने का निश्चय किया।

हमारा जहाज़ कलकत्ते के आउटराम घाट से रवाना होकर हुगली को पारकर बंगाल की खाड़ी में पहुंचा। उस समय समुद्र बहुत अशान्त था। मतली (Sea-sickness) ने तमाम यात्रियों पर असर किया। लेकिन भाग्यवश उसका असर मुझ पर सात-आठ घंटे से अधिक नहीं रहा। मेरे साथ जो नौकर था उसकी तबियत अधिक घबड़ा गई। मैं जहाज़ के प्रधान अधिकारी से मिल कर उसको दूसरे दरजे में ले आया। दवा आदि देने से उसको कुछ शान्ति हुई। दूसरे दिन जहाज़ रंगून पहुंचा। नगर का दृश्य दूर से बड़ा सुन्दर मालूम होता था। यात्री हाथ में केमेरा लेकर फ़ोटो खींचने के लिये जहाज़ पर इधर-उधर दौड़ रहे थे। जहाज़ के किनारे लगने पर मैं अपने एक मित्र के यहां चला गया। रंगून है तो कलकत्ता और बम्बई से छोटा लेकिन सफ़ाई में इन दोनों शहरों से अधिक आगे है और पुलिस का इन्तज़ाम प्रशंसनीय है।

रंगून से दूसरे दिन उसी जहाज़ द्वारा मैं पिनाङ्ग पहुंचा। हालांकि पिनाङ्ग बहुत छोटा शहर है लेकिन अत्यन्त रमणीय है। यहाँ पर ट्राम नहीं चलती हैं लेकिन बसें हैं जो बिजली से चलती हैं। उनका ऊपर का हिस्सा ट्राम के समान होता है। पहिये रबर टायर के होते हैं। इसमें यह खूबी है कि यह यहाँ की ट्राम के समान लाइन पर ही न चल कर कोरी सड़क पर तीन-चार फीट इधर-उधर भी चल सकती है। यहाँ पर डालर (अमेरिका का सिक्का) का चलन है।

यहाँ से रवाना होकर दूसरे दिन हमारा जहाज़ सिंगापुर पहुंचा। यहां पर भी डालर ही का चलन है। सिंगापुर बहुत साफ़ सुथरी जगह है। यहां की म्युनिसिपैलिटी का सफ़ाई का प्रबन्ध भी प्रशंसनीय है। हरेक मकान–मालिक को अपने मकान के दरवाजे पर एक काले रंग का सन्दूक रखना पड़ता है ताकि कूड़ा सड़क पर इधर-उधर न फेंका जाकर उसमें डाला जाय। सिंगापुर Straits Settlement होनेके कारण यहाँ आयात-निर्यात पर चुंगी नहीं लगती।

इसी कारण यहाँ का आयात—निर्यात बहुत है। यहाँ की आबादी अधिकतर चीनियों की है।। चीनी लोग मेहनती और हुनरवाले होते हैं।

सिंगापुर से मैं नये जहाज़ द्वारा हाङ्गकाङ्ग को रवाना हुआ। यह तीन दिन का रास्ता है। जब जहाज़ बीच में पहुंचा, समुद्र बहुत अशान्त था। केवल यात्रियों की ही नहीं बल्कि जहाज़ पर काम करने वालों की भी तबियत ख़राब हो गई। तीसरे दिन जहाज़ हाङ्गकाङ्ग पहुंचा। यह शहर पहाड़ी पर बसा हुआ है। अत्यन्त रमणीय स्थान है। रात को शहर का दृश्य बहुत सुहावना लगता है। यहाँ पर जगह की कमी होने से बहुधा ग़रीब लोग पानी पर नावों में घर बनाकर रहते हैं। यहाँ की बस्ती चीनियों की है। कई बार ऐसा देखने में आया है कि चीनी लोग साँप, चूहा, बिल्ली, कुत्ते आदि तक को खा जाते हैं।

हाङ्गकाङ्ग से जहाज़ उसी दिन रवाना होकर दो दिन में शांघाई पहुंचा। पहले तो यहां रेशम का व्यवसाय बहुत ज्यादा था लेकिन आज कल जापान की प्रतिद्वन्द्विता के आगे यह व्यवसाय नहीं के बराबर है। शहर मामूली ढङ्ग पर बसा हुआ है।

शांघाई से रवाना होकर तीसरे दिन हम जापान के प्रसिद्ध बन्दर कोबे जा पहुंचे। यहाँ मेरे एक मित्र मुझ से आ मिले। उन्होंने मुझे India-Lodge में ठहरने की राय दी। यह लाज भारतीय व्यापारियों के चन्दे से ख़रीदा गया है। प्रत्येक भारतीय - किसी भी जाति का क्यों न हो- -यहाँ ठहर सकता है। यहाँ आमिष और निरामिष दोनों प्रकार का भोजन प्राप्य है। लेकिन मुझे वहां खाना अनुचित मालूम होने से मैंने अपने लिये अलग रसोई का बन्दोबस्त करवाया। कोबे शहर की आबादी लगभग नौ लाख की है, ओसाका की बाईस लाख और टोकियो की पैंतीस लाख है। टोकियो संसार में तीसरा शहर कहलाता है। जापान में कोबे की जलवायु बहुत अच्छी मानी गई है। भारतीय तथा अन्य विदेशी यहां अधिक रहते हैं क्योंकि कोबे व्यवसाय का केन्द्र है। यहाँ मकान दो प्रकार के होते हैं। एक लोकल स्टाइल,(Local-Style) और दूसरा फ़ारेन स्टाइल (Foreign Style)। जो लोकल स्टाइल के मकान हैं वे अधिकांश लकड़ी के हैं और जो फ़ारेन स्टाइल के हैं वे अपने मकानों जैसे हैं। अधिकतर मकान लोकल स्टाइल के हैं। भाड़ा कलकत्ता और बम्बई से कम है।

जापान की भाषा बड़ी विचित्र है। हज़ारों में एक या दो आदमी अंग्रेज़ी जानते हैं। भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ रहने के कारण मेरा इधर-उधर जाना भी बहुत मुश्किल हो गया। विवश होकर एक जापानी ट्यूटर का बन्दोबस्त किया। विचित्र होने पर भी जापानी भाषा बहुत सरल है, अतः मुझे पन्द्रह दिन मे ही काम चलाऊ बोलना आ गया।

जब मैं भारत में था तब मेरा यह विचार था कि जापान की बनी हुई चीजें ख़राब होती हैं पर यहाँ आने पर मेरा यह ख़याल ग़लत निकला। जापानी चीजों के प्रति ख़राब होने का केवल मेरा ही विचार रहा हो यह बात नहीं है, क़रीब-क़रीब सभी देश यही ख़याल रखते हैं। इसका कारण यह है कि कुछ वर्षों पहले जापान का निर्यात व्यवसाय (Export-Trade) केवल कुछ छोटे-छोटे एक्सपोर्टर्स के हाथों में था। अच्छी संगठित संस्था न होने के कारण इन छोटे-छोटे व्यापारियों में बहुत अनुचित प्रतिद्वन्द्विता होती थी। और इसी अनुचित-प्रतिद्वन्द्विता के कारण और केवल निजी लाभ ही एक मात्र लक्ष्य रहने के कारण

चीजें बहुत घटिया क्वालिटी की बाहर भेजी जाती थीं। किन्तु अब वह अवस्था नहीं रही। अब व्यवसायियों की एक सुन्दर संगठित संस्था है। उसी के द्वारा आयात, निर्यात का संचालन होता है। वस्तुएं भी बढ़िया क्वालिटी की और टिकाऊ बना कर भेजी जाती हैं। जापान की सरकार भी इस संस्था को बहुत मदद करती है।

हमारे भारत के बाज़ार में जापानी वस्तुए इतनी सस्ती आकर पड़ती है कि आश्चर्य होता है। उस सस्तेपन के कारण भारत में जापान की बनी हुई चीजों का आयात बहुत बढ़ गया है और दूसरे देशों के निर्यात को इससे बहुत धक्का पहुंचा है। यह कहा जाता है कि अपना निर्यात व्यवसाय बढ़ाने के लिये जापान अन्य देशों के बाज़ार में अनुचित रीति से Dumping करता है। किसी वस्तु विशेष के बनाने में जितना खर्च पड़ा हो, उससे भी कम दाम पर केवल उस वस्तु विशेष की खपत बढ़ाने के लिये तथा दूसरे प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखाने के लिये किसी बाज़ार विशेष में उस वस्तु को बेचने को ही Dumping कहते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि अपने मजदूरों के Standard of living (रहन-सहन के मान) को नीचा रखते हुए जापान सस्ती मज़दूरी पर चीजें तैयार करा लेता है और इस प्रकार दूसरे प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखाने में समर्थ होता है। यह भी कहा जाता है कि जापान की सरकार अनुचित रूप से अपने सिक्के-येन-की दर को घटा कर तथा छूट, रियायतें और दूसरी आर्थिक सहायता देकर अपने देश के निर्यात व्यवसाय को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। लेकिन जापान आनेपर मुझे ये सारी बातें निस्सार मालूम हुईं। ये बातें केवल उन देशों द्वारा या उन व्यक्तियों द्वारा फैलाई गई हैं, जो या तो प्रतिद्वन्द्विता में जापान से पराजित होकर अपना बाज़ार खो बैठे हैं या केवल अपने स्वार्थवश होकर ऐसा कहते हैं। जापान के निर्यात व्यवसाय के बढ़ने का मुख्य कारण येन (जापानी सिक्का) की दर अन्य देशों के सिक्कों के मुकाबले घट जाना है। यह मैं मानता हूं कि वहां मजदूरी की दर कई देशों के मुक़ाबले बहुत कम है, पर वहां का जीवन भी तो अन्य देशों के मुक़ाबले बहुत सादा और सीधा है। उनके व्यवसाय के इस तरह बढ़ने का सबसे ज़बर्दस्त कारण जापानियों का अध्यवसाय, उनकी लगन और उनका उत्साह है। व्यापारिक और औद्योगिक शिक्षा का प्रचार भी उनकी व्यवसायिक उन्नति का एक प्रबल कारण है।

जापानियों की देशभक्ति एक गौरव पूर्ण विषय है। उनकी नम्रता और मिलनसारी प्रशंसनीय है। जापान की पुलिस की प्रशंसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। कितनी नम्रता! कर्त्तव्य पालन में कितनी तत्परता!! एक बार मैं एक फैक्टरी देखने ओसाका गया। फैक्टरी का पता न लगने पर मैंने एक पुलिस थाने में जाकर पता लगाना चाहा। थानेदार बड़ी नम्रता से पेश आया और डायरी देख कर एक सिपाही को मेरे साथ कर दिया। हम पन्द्रह मिनिट में ही उक्त फैक्टरी में पहुंच गये। वहां पहुंच जाने पर बड़ी नम्रतापूर्वक सिपाही ने मुझसे बिदा मांगी। मैंने एक येन निकाल कर उसे देना चाहा, पर उसने जो उत्तर दिया, वह अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा है।

उसने कहा, 'मैं वह नहीं चाहता। उसे आप किसी अपाहिज को दे दें। मैं तो जनता का सेवक हूं। केवल दुःख इतना ही है कि मैं वेतन भोगी सेवक हूं।"

एक दूसरी घटना का ज़िक्र भी अप्रासंगिक न होगा। एक दिन मैं ओसाका से कोबे आ रहा था, यह आध घंटे का रन है। थका हुआ होने से मुझे नींद आ गई। कोबे पहुंचने पर गाड़ी के कंडक्टर ने मुझे जगाया। मैं हड़बड़ाहट में अपना हैंड बेग गाड़ी में ही छोड़ कर चल पड़ा। गाड़ी के चले जाने के पश्चात् मुझे बेग का ख़याल आया। मैंने तुरन्त रेलवे पुलिस को ख़बर दी। दूसरे दिन सुबह पुलिस ने वह हैंडबेग मेरे निवासस्थान पर पहुंचा दिया। यह है जापानी पुलिस की कार्यतत्परता और सभ्य व्यवहार का एक नमूना। एक हमारे यहां की पुलिस है कि प्रत्येक साधारण से साधारण सिपाही अपने आपको एक छोटा-मोटा राजा समझता है। पर जाने दीजिये, क्या रखा है इस तुलना में। यह बुराई तो उसी दिन दूर होगी, जिस दिन हम स्वतन्त्र होंगे। उस पुलिस से नम्रता और सेवाभाव की क्या आशा की जा सकती है, जिसे अपने ही देशवासियों पर दमन करने के लिये वेतन दिया जाता हो।

जापान के सामाजिक जीवन, व्यापारिक संगठन और नैतिकता बहुत बढ़े-चढ़े हैं। एक दूसरे की सहायता करना तो वहां के निवासियों के जीवन का मानो एक अंग है। कोई कैसा भी छोटा काम क्यों न करे, सब उसे उत्साहित करते है। एक हमारा समाज है, जहां सुनार, दर्ज़ी, लोहार आदि का कार्य करना मानो बैठे बैठाये एक आफ़त मोल लेना है। समाज के सरपंच इन कार्यों को बुरा मानते हैं, लेकिन कन्या विक्रय, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह आदि जो वास्तविक बुराइयां हैं, उनकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखते। अगर समाज के सौभाग्य से कुछ व्यक्तियों ने समाज सुधार की ओर ध्यान दिया भी तो वे थोड़े ही दिनों में नाम कमाने और दलबन्दी के फेर में जा पड़ते है। मैं तो हमारे नवयुवकों से यही प्रार्थना करूंगा कि वे इन तथाकथित छोटे कामों के करने में अपनी कोई हेठी न समझें।

जापान में मुझे लिमिटेड कम्पनियां बहुत उन्नत अवस्था में देखने में आई। हमारे देश में लिमिटेड कम्पनियां इनी-गिनी है और जो है वे भी इतनी उन्नत अवस्था में नहीं। उनके प्रति लोगों का पूरा विश्वास भी नहीं। इसका कारण यह है कि यहां डाइरेक्टर्स केवल अपना पेट भरने की फ़िकर रखते है। जापान में ऐसा नहीं है। जापानी डाइरेक्टर्स बड़ी इमानदारी, अध्यवसाय, परिश्रम और लगन के साथ शेयर होल्डर्स का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में जो लिमिटेड कम्पनियां है, उनमें अधिकांश यूरोपियनों की है। फलतः सारा रुपया विदेशों में चला जाता है, क्योंकि विदेशी मैनेजिंग डाइरेक्टर्स देशी शेयर होल्डरों का इतना ख़याल नहीं रखते। कुछ लिमिटेड कम्पनियां भारतीयों की है जरूर, पर उन्नत अवस्था में नहीं। कहते दुःख तो होता है पर यह नग्न सत्य है कि हमारे ओसवाल समाज में तो ऐसी कम्पनियां कहने को भी नहीं हैं। यह बात नहीं है कि हमारे समाज में धनी नहीं हैं। हैं और बहुत बड़े। पर वे भीरु हैं या समय के अनुसार चलनेवाले नहीं। वे आगे नहीं बढ़ते। फल यह होता है कि एक ओर जहां हमारे समाज में बेकारी बढ़ती जा रही है, दूसरी ओर अन्य समाजों के मुक़ाबले हमारा

समाज नगण्य होता जा रहा है। क्या समाज के धनी इस ओर ध्यान देंगे ?

मैं कह चुका हूं कि मेरा व्यवसाय छाते का है और छाता बनाने की मशीनें लेने तथा इस व्यवसाय सम्बन्धी अन्य बातें सीखने के लिये मैं जापान गया था। 'छाते के व्यवसाय' के सम्बन्ध में मैं फिर कभी लिखूंगा। अभी तो केवल यही लिख कर मैं अपना लेख समाप्त करता हूं कि इच्छित मशीनें लेकर मैं जिस रास्ते गया था उसी रास्ते भारत लौट आया। जापानियों में भी अनेक दुर्गुण होना सम्भव है, पर मैं तो उनकी कार्यकुशलता, अविरल लगन, सदुत्साह, प्रेम और कर्तव्य-तत्परता आदि गुणों पर मुग्ध होकर ही भारत लौटा हूं।

कवित्त

[श्री सुजानमल बांठिया]

महल ओ मंदिर बनाये लक्ख कोटिन के,
चाकर उठ बैठ में करत खमा खमा ॥
सुमरिना कर लीन चित्त तो न थिर कीन,
मुखतें रटत राम मन में रमा रमा ॥
फँसा निरपराधिन लीन नजराना दंड,
कबूँ नाहि क्षमा उर आणी अधमाधमा ॥
वाचा व्हें हैं बंद डारैं भूमि करि तोहि नंग,
मारेंगे घूंस यमराज सिर जमा जमा ॥

राजस्थान के ग्राम-गीत

[श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया]

राजस्थानी समाज के ग्राम-गीतों को लेक कितने ही प्रकाशक मालामाल हो गये हैं समाज की भोली-भाली जनता ने इसके नाम पर अपना काफी रुपया बर्बाद कर दिया। फिर भी गैर-राजस्थानी हमारे ग्राम-गीतों को लेकर हमारी हँसी ही करते हैं? इसका कारण यह है कि उन प्रकाशकों ने जो ग्रन्थ प्रकाशित किये—वे ग्राम-गीत नहीं थे—पर उनकी राग में गाये जाने वाले भद्दी चालों के गीत बनाकर उन लोगों ने उन्हें ग्राम-गीत के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था। भोली जनता उनके चकमे में आ गई और उसने दिल खोल कर ऐसे प्रकाशनों को खरीदा और उनकी कुप्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया।

इतना ही नहीं कितनों ने तो जनता की नीचतम मनोवृत्ति का बड़ा ही अनुचित लाभ उठाया -- उन्होंने उन अश्लील भावों को लेकर अश्लील चित्र बनाकर भी अपने ग्रन्थ में छापे— जिससे कि उनकी बिक्री बढ़ी पर समाज के चरित्र-बल को बड़ी ठेस पहुंची।

हमारे यहाँ गाये जानेवाले गीतों में कितना रस, कितना भाव और कितना लालित्य है— इसका नमूना पाठकों के सामने रखते हुए मैं उनसे विनय करूंगा कि वे उन अश्लील प्रकाशनों को रोकने का प्रचार करें जिनसे राजस्थानी समाज पर कलंक का धब्बा लगता है।

उन प्रकाशित गीतों में देवर—भाभी जैसे पवित्र रिश्ते पर बड़ा ही अनुचित आक्रमण किया गया है। जिस देशमें — जिस भारतवर्ष में ऐसे-ऐसे देवर हो चुके हों जो अवसर आने पर इस बात की जोरों के साथ घोषणा कर सकते हों कि उन्होंने पैरों के पाय-जेबों के सिवा हाथों के कंकणों की तो बात ही क्या कलाई तक भी नहीं देखी— उस देशमें देवर-भौजाई के इस पवित्र रिश्ते को कलुषित बनानेवाले गीतों का गाया जाना बड़ा ही लज्जास्पद है—पर वे गीत—हमारी गृह-रमणियों की कल्पना नहीं—वे कुत्सित मनोवृत्ति के प्रकाशक और उनके गुर्गों की करामात है। आज हम देवर का एक गीत यहाँ पर देते हैं - पाठक असली गीत को पहचानें—

एक भाभी अपने देवर से प्रार्थना करती है—

(१)

मैंमद घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी,
रखड़ी घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी।
परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।
मदनलाल देवरिया ! ससार में भौजाई प्यारीजी ॥

कुण्डल घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी,
झूंठणा घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी।
परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।
हीरालाल देवरिया। संसार में भौजाई प्यारीजी ॥

हार पुवाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी,
चीक घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी।
परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।
ख्याली देवरिया। संसार में भौजाई प्यारीजी ॥

बाजूबंद घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी,

गजरा घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी।

परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।

मदनलाल देवरिया ! संसार में भौजाई प्यारीजी ॥

पायल घड़ाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी,

बिछिया घड़ाद्यो देवर परणीनैं पैराद्योजी।

परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।

ख्याली देवरिया ! ससार में भौजाई प्यारीजी ॥

चूनड़ रंगाद्यो देवर परणी नैं उढ़ाद्योजी,

लंहगो सीमाद्यो देवर परणी नैं पैराद्योजी।

परणी नैं पहरायर म्हारै पगां लगाद्योजी।

हीरालाल देवरिया ! ससार में भौजाई प्यारीजी ॥

इस गीत में कितना सुन्दर भाव है। जेठानी अपनी देवरानी को नख से शिष तक आभूषणों से सुसज्जित देखना चाहती है—इसके लिये वह अपने देवर से प्रार्थना करती है- विनय करती है—अपील करती है—और अन्त में इसके बदले में उससे चाहती क्या है कि वह अपनी स्त्री को सब प्रकार से पहना, उढ़ा कर सुसज्जित करके उसके पैरों लगा दे—अर्थात् चरणों में डाल दे जिससे कि वह अपने शुभाशीर्वादों द्वारा अपने हृदय को तृप्त कर ले। बस यही एक कामना है—जो इस सारे गीत में प्रकट की गई है।

भाभी कहती है—"हे देवर ! मैंमद घड़ा दो और अपनी स्त्री को पहना दो—रखड़ी घड़ा दो और अपनी परिणीता को पहना दो—उनको पहना कर हे मेरे मदनलाल देवर! उसे मेरे पांव लगा दो। संसार में भाभी बड़े ही प्यार की वस्तु है।

फिर प्रार्थना करती है—"हे देवर ! कानों में पहनने के लिये कुण्डल और माथे में पहनने के लिये झूंठणे बनवा दो। उनको पहना कर हे मेरे हीरालाल देवर ! अपनी परिणीता स्त्री को मेरे चरणों में डाल दो।

फिर वह अपील करती है—"हे देवर ! हार पुवा दो और चीक भी घड़ा दो और उनको पहना कर अपनी स्त्री को मेरे चरणों में डाल दो।

इसी तरह वह बांजूबन्द, गजरा पायल और बिछिया आदि घड़ा देने और उनको पहना कर अपनी स्त्री को उसके चरणों में डाल देने की प्रार्थना अपने देवर से करती है।

अन्त में वह कहती है—हे देवर ! एक चूनड़ी भी रंगा देना-साथ ही एक लंहगा भी सिला देना। फिर इसी प्रकार सब वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके मेरे पांव लगाने के लिये भेज देना।

इतने सुन्दर भाव भरे गीतों के स्थान में अश्लील भावों से पूर्ण गीत बनाकर छापना—यह एक उन्नतिशील समाज का सबसे बड़ा अपमान है।

धारवा

नृत्यकला-का अभी तक भी राजस्थान में अभाव नहीं है। नृत्य के समय गाये जाने वाले गीतों की रचना भी हमारी गृहलक्ष्मियों ने की है—वे इसे अवसर विशेषों पर नाचते हुए गाकर अपने दिल को बहला लेती हैं। यहाँ हम 'धारवा' नामक एक गीत देते है। यह गीत एक प्रकार के नृत्य का गीत है जिसे स्त्रियाँ होली के अवसर पर गाती हैं। इस नृत्य में स्त्रियाँ पंक्तियाँ बनाकर एक दूसरे के सामने खड़ी हो जाती हैं। ढोल बजते ही वे अपने हाथ ऊँचे कर लेती हैं—घूमती हैं और ताली बजाती हुई आमने सामने आगे बढ़ती हैं। गुजरात में इसको 'गरबा' नाच कहते हैं।

इस गीत में कितनी सुन्दर उपमाओं द्वारा स्त्री ने अपनी और अपने पति की तुलना की है—वह देखने

और समझने योग्य हैं। क्या किसी कवि की कविता में हमें यह भाव मिल सकता है। वह गीत यह है —

(२)

ढोलो गयो है गुजरात, मरवण महलां मांही एकली रे लो।
ढोलो सावणियां रो मेह, मरवण आभा केरी बीजली रे लो॥
वरसण लागो है मेह, चमकण लागी है बीजली रे लो॥
ढोलो नदियां रो नीर, मरवण जल मांली माछली रे लो।
सूकण लागो है नीर, तड़फण लागी है माछली रे लो॥
ढोलो चपला रो पेड़, मरवण चंपाकेरी डालियां रे लो।
ढोलो चपला रो फूल, मरवण फूलां मांली पांखड़ी रे लो॥

पति गुजरात गया हुआ है। स्त्री महलों में अकेली है। वह अपनो अपने प्रियतम से तुलना करती है और कहती है—

मेरा पति सावण का मेघ है—मैं बिजली हूं।
मेघ बरसने लगा है—बिजली चमकने लगी है।
मेरा पति नदी का पानी है—मैं जलके भीतर की मछली हूं।
पानी सूख गया है अर्थात् वह परदेश चला गया है—और मछली तड़फ रही है।
मेरा पति चम्पा का पेड़ है - मैं उसकी डालियाँ हूं।
वह चम्पा का फूल है—मैं फूल की पँखुड़ी हूं।

'ओसवाल नवयुवक' के अधिकांश पाठक जैन धर्मावलम्बी है। अतः उनके मनोरंजनार्थ हम यहाँ दो गीत जैनियों में गाये जानेवाले भी देते हैं—इन गीतों की भावना भी वैसी ही है जैसी कि एक ग्राम-गीत में होनी चाहिये—

एक जैन स्त्री गाती है—

(३)

पंच बधावा सखि मेरै मन भावै,
बाणी सुहावै साधू गुरु तणी जी।
पहले बधावै म्हानें समकित सुहावै,
(तो) दूजे हो चारितर निरमलो जी॥
अगणें बधावै पिया तपस्या सुहावै,
(तो) चौथै हो शील सुहावणो जी।
पँचवै बधावै श्री पूजजी पधारिया,
(तो) श्रावग हो भगती भली करै जी॥
उपशम सुसरैजी रो म्हानै लाड सुहावै
(तो) उपशम सासूजी रै पाय लागस्यां जी
गंबर जेठ म्हानै खरो रे सुहावै,
(तो समता जेठाणी रै पाय लागस्यां जी॥
शील संतोषी म्हानें देवर सुहावै,
(तो) व्रत देराणी रा मीठा बोलड़ा जी।
दया तो नणद म्हानें खरी रे सुहावै,
(तो) तपसी नदोई निरो पावणो जी॥
धीरज पिताजी रो म्हानें लाड़ सुहावै,
(तो) अठपहरी माता रैं कद,मिलस्यां जी।
लज्जा वहण म्हानैं खरी रै सुहावै,
(तो) भाव जीजो जो रलियावणा जी॥
गुरु गुरुण्यां रो म्हानें मेल सुहावै,
(तो) गुरु बहनां रैं जाज्यो भूलरा जी।
कुबुध निरासन म्हानें नहीं रे सुहावै,
ज्ञान सायब रलियावणो जी॥
टूक केशर रो धणनें तिलक सुहावै,
(ता) दरसण भाव आदिनाथ रो।
केवल वीरा म्हानैं लेबा नैं आयो,
(तो) मुगत पियर कब जायस्यां जी॥
इसड़ो बधावों नरनारी वै गावै—
जां घर रलीये बधावणा जी॥

हे सखी! पांच बधाइयाँ मुझे सुहावनी मालूम पड़ती है और साधु-संतों तथा गुरु की वाणी दिल को भाती है।

सबसे पहले मुझे 'समकित' सुहावना मालूम पड़ता है दूसरे निर्मल, पवित्र और शुद्ध चरित्र भला लगता है।

तीसरे मुझे हे प्रियतम ! तपस्या और चौथे शीलता अच्छी लगती है। पाँचवीं बधाई में तो श्री पूज्यपाद आ ही पहुंचे हैं। उनके सेवक उनकी भक्ति, सेवा और शुश्रूषा में लग गये हैं।

मुझे 'उपशम'रूपी श्वसुर का लाड़-प्यार अच्छा लगता है। मैं उपशमरूपी सास के चरणों में पड़ूंगी।

'संवर'रूपी जेठ मुझे अच्छा लगता है और समता-रूपी जेठाणी के मैं चरणों में पड़ूंगी। शील और संतोष का अवतार--देवर मुझे भला लगता है और व्रतरूपी देवरानी के मीठे-मीठे बोल मेरे दिल को भाते हैं।

दयारूपी नणद मुझे प्यारी लगती है और तपस्वी रूपी नणदोई मेरे यहाँ नित्य पाहुने आते हैं।

इसके बाद वह अपने नैहर की भी याद करती है और कहती है 'मुझे धैर्यरूपी पिता का प्यार भला लगता है। मैं 'अठपहरी' रूपी माता से कब मिलूंगी ?'

लज्जारूपी बहन मुझे सुहावनी प्रतीत होती है और भावरूपी जीजा—मेरे चित्त को लुभा लेता है।

गुरु और गुरुवानी का मुझे मेल सुहाता है और गुरु बहनों का झुण्ड अच्छा लगता है।

कुबुद्धि और निराशा मुझे अच्छी नहीं लगती। ज्ञानरूपी प्रियतम पति बड़ा ही सुहावना है। केशर का तिलक मुझे अच्छा लगता है और श्री आदिनाथजी महाराज का दर्शन और ध्यान प्यारा लगता है। केवल रूपी भाई मुझे लेने आया है। मैं मुक्तिरूपी नैहर कब जाऊंगी।

ऐसी बधाइयाँ वे ही नर-नारी गाते हैं—जिनके घरमें उत्सव हो--बधाइयाँ गाने का जिन्हें सौभाग्य मिला हो।

दूसरी जैन स्त्री गाती है--

(४)

धण पूछै पिया साँभलो,
पिया चालो ओ चालो सेत्रुंज री यातरा।
गैली ये धण बावली,
गोरी धण बिना ये धन यातरा किम होवै ॥
अनसन लै धण सोय रही,
म्हारे शासन देवत सपने आविया।
म्हारै गाँव-गाँव कागज मोकल्या,
पिया जानं ओ संघ भेला हुवा ॥
गाड़्यां घाल्या खीचड़ो,
पिया लकड़ां ओ दाम लदाईया।
आगै गाड़ी श्री पूजजी री,
पिया पाछे ओ, पाछे संघ भेला हुवा ॥
उतर दिखण री हिरणटी,
म्हारै किन दिश ओ आदिनाथ राजिया।
आदिनाथ बायड़ खोभड़ी, नेमीनाथ बायड़ खोभड़ी —
पिया सो जल ओ [illegible]धवी न्हाविया।
जाय ऊतरिया तलहटी,
म्हारे सघ मैं ओ जय जयकार हुआ ॥
पहन पटोलो धसमसी,
धण ओढ़ण वो रंग चून्दड़ी।
गल गुजराती काँचली,
वांरे हिवड़ै ओ हार हीरां जड़्यो ॥
थाल भर्यो गज मोतियां,
धण मोती ओ दे रे उछावली।
केसर भरी ये कटोरड़ी,
धण टीकी ओ देरे उछावली ॥

यातरा आदिनाथ नेमिनाथ पूजिया,

म्हारी ओ पूरवि मन रली जी।

यातरा करीने ऊतरया,

म्हारै संघ में ओ जय जयकार हुआ।

भण पूछै पिया साँभलो,

म्हारै किन भवरो सींचो आड़ै आवियो॥

मागज साहब थाकियो,

म्हारे परभवरो सींचो आड़ै आवियो।

जातां खाधां खीचड़ी,

पिया घिरतां ओ पिण्ड खिजड़ री॥

जात्रा जां री जाणज्यो,

पिया जां रे ओ मोहवी ढीकरा।

जावतां री गरचो पुग्यै,

पिया घिरतां तो लेवं रे बधावणा॥

अर्थ स्पष्ट है।

इसी प्रकार हजारों की तादाद में नाना प्रकार के भावों से भरे—पवित्रतम गीत हमारे घरों में गाये जाते हैं। हमारा ध्यान उनके संग्रह की तरफ जाय तो इस बृहत्साहित्य की रक्षा हो सकती है नहीं तो वर्तमान समय की गतिविधि को देखते हुए तो यही प्रतीत होता है कि आगे जाकर ये सब सदा के लिये हमारे कानों से दूर हो जायगे।

बीज में वृक्ष

[श्री मोतीलाल नाहटा बी० ए०]

देखा, बड़े—बड़े पादप छोटे बीजों में छिप रहते।
देखा, छोटे मंत्रों में जीवन का सबल स्रोत बहते॥
छिपा रजकणों में भावी, अतीत प्रासादों का आकार।
अरे रजकणों में ही जग ने देखा पर्वत को साकार॥
जलकण यद्यपि हैं नगण्य, पर जीवन के वे ही आधार।
सीप तुच्छ, पर देती अपना जीवन—धन मुक्ता उपहार॥
दीप शिखा होती छोटी, पर करती जग में ज्योति प्रसार।
कुम्भकार के क्षुद्र चक्र में छिपा विश्व का दर्शन—सार॥
अरे! बड़ों का छोटों ही में होता है अस्तित्व विकास।
अटल सत्य यह, इसकी साखी देगा युग-युग का इतिहास॥

'देवत्व'

[श्री 'भग्न-हृदय']

पाषाण में ही देवत्व देखने वाले, और उस देवत्व को भूलते-भूलते अन्ध-श्रद्धा के आवर्त्त में पड़ने को उद्यत, ढोंगी बर्बर ! सचेत हो।

पाषाण की मूर्त्ति पर यह सोने का अ-कलापूर्ण चित्रकारी से भरा हुआ गुम्बज क्यों बनवाया है ?

छोटे-छोटे शिशुओं और बालकों को अपने वक्ष से चिपटाकर बैठे, सोते या रोते हुए माता पिताओं को, उनकी टूटी टपरियों में, धूप और वर्षा, अन्धड़ और सर्दी के कोड़ों से बचाने की भावना तेरे हृदय में नहीं जागती ?

रेशमी परिधान पहिने, चांदी के टुकड़ों को बिखरानेवाले और मनों केशर चन्दन की होली खेलनेवाले इन स्वार्थी यात्रियों के पदार्पण के लिये यह सङ्गमर्मर की चौकियां और रंग-बिरंगी टाइलें क्यों जड़वाई हैं ?

ठण्ड से गलती हुई और धूप से जलती हुई रेत पर मां के पीछे-पीछे रोते रोते भागते हुए, लड़-खड़ा कर चलनेवाले, छोटे-छोटे नंगे पांवोंवाले बालकों, और सूखे चमड़े की तरह तड़की हुई त्वचावाले, लोहू-लुहान, कांटों की परवाह न कर चले जाते, मज़दूरों और किसानों के पांवों की ओर तेरा ध्यान नहीं जाता ?

"वीतराग" की मूर्त्ति पर यह स्वर्ण और रजत के खोले क्यों धरे हैं ? सिर पर यह मुकुट, बाहु पर यह बाजूबन्द, अङ्ग पर केशर-चन्दन का लेप और चांदी-सोने के वर्क तह पर तह, क्यों रखे हैं ? यह चमेली और गुलाब के फूल, रसभरी मिठाई के दोने और ताज़ा फलों का पहाड़ चरण-तल पर किस लिये है ?

झलझलाती धूप और रोम-रोम में शूल सी चुभ जानेवाली सर्दी की बेरोक मार से नीले पड़े हुए, हज़ारों छेदों और लटकनोंवाली गाढ़े की कमरी पहिने, पसीने से नहाए, सर्दी से ठिठुरे और वर्षा से गलते हुए शरीरों की ओर तेरी आँख नहीं फिरती ? ६० मिनिट प्रति घंटे के हिसाब से १०-१०, १२-१२ घंटे काम करनेवाले, गन्दे कपड़े पहने हुए, जूं, खटमल, मच्छरों के शिकार, भूख से तड़पते हुए कंकालों की ओर तेरी दृष्टि क्यों नहीं फिरती ?

फिर, तेरी श्रद्धा की कसौटी क्या है ?

अपने देव की पूजा-सत्कार का अधिकार पाप और पाखण्ड फैलानेवाले इन पुजारियों को ५-७ तांबे के टुकड़ों के मोल क्यों बेच रखा है ? यही तो है तेरी हार्दिक श्रद्धा।

पाषाण में देवत्व की धारणा कर ; पर, इसके पहिले मनुजता को पहिचान, सब ही प्राणियों में न सही, कंकालों में तो प्राण देख ले !!

आत्म कथा

[श्रीयुत "दांत"]

मैं हूं दांत - शरीर के सौन्दर्य की एक कलात्मक पूर्ति। आज बीसवीं शताब्दी है जब कि मैं अपने संचित अनुभवकोष का द्वार खोल रहा हूं—यद्यपि मेरे जीवन की कई शताब्दियां बीत चुकी हैं। जीवन-चरित्र (auto-biography) आजकल लिखना बड़प्पन की निशानी समझी जाती है। गांधीजी बड़े हैं उन्होंने अपनी जीवनी लिखी है। नेहरूजी की जीवनी तो अभी हाल में ही मेरे पुस्तकालय में आई है। बड़प्पन की खुमारी में मैंने सोचा— चलो. मैं भी अपनी आत्म-कथा लिख डालू। लोगों ने अभी तक मेरी क़द्र नहीं की—शायद अब करने लग जांय!

मैं किसी राष्ट्र का गांधी या नेहरू नहीं हूं—पर काम का महत्त्व यदि समझा जाय तो उनसे बहुत ज्यादा हूँ वे जीवन को शान्त सुखमय ही बनाते हैं या बनाने का प्रयत्न करते हैं पर मैं तो उसकी रक्षा ही करता हूं।

मैं जीवित का जीवन, सुन्दर का सौन्दर्य—और स्वस्थ का स्वास्थ्य हूं। सब कुछ मुझ में है:—इसीलिये मैं बड़ा हूँ।

मैं चूने का बना हूं, जिसे अँगरेजी में केलशियम (Calcium) कहते हैं, और मसूड़ों (Gums) द्वारा जबड़े (Jaws) की हड्डी के साथ सटा रहता हूं। मेरे शरीर की पुष्टि खून से होती है। यह खून रक्त-वाहिनी नालियों द्वारा आता रहता है, जिनका द्वार मसूड़ों में बना है। बहुत से लोग समझते हैं कि मेरे में जान नहीं है, मैं मुर्दा हूं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। मेरे शरीर के अन्दर छोटे-छोटे ज्ञानतन्तु (Nerves) हैं। इन्हीं के द्वारा मुझे सरदी गरमी आदि सब बातों का ज्ञान होता रहता है।

मुझ में ज्ञान रहता है, मुझे भी सुख दुःख का अनुभव होता है, परन्तु फिर भी मनुष्य जाति मेरे पर कभी-कभी बड़ा अन्याय कर बैठती है। नमूना देखिये।

जब मैं चबाता हूं मुझे काफी मेहनत पड़ती है। फलस्वरूप खून का ज्यादा दौरा होता है एवं मुंह की गरमी बढ़ जाती है। दूसरे ही क्षण मनुष्य बहुत ठंढी चीज़ खाता है, खून की गरमी कम हो जाती है। खून मुंह में न रह कर दूसरी तरफ चला जाता है। खून न रहने से मुझे बड़ी ठंढ मालूम होती है। इसी प्रकार निर्दयी मनुष्य अपने स्वाद के खातिर मुझे एक क्षण ठंड पहुंचाता है, दूसरे क्षण गरमी है, फिर तीसरे क्षण ठंड पहुंचाता है। बताइये यह मेरे साथ सरासर अन्याय नहीं तो क्या है?

जैसा मैंने पहले कहा था—मेरा शरीर केलशियम से बना है। मनुष्य के भोजन में भी केलशियम रहता है। यह खून में जाकर मिलता है एवं खून केलशियम मुझे प्रदान करता है। मुझे मजबूत बनाये रखने के लिये केलशियम बहुत ही ज़रूरी है। केलशियम दूध

दही, छेना, मक्खन, पत्तीदार साग, गुड़, गेहूं, आलू, गोभी, नारंगी आदि में रहता है। परन्तु सिर्फ इन चीजों के खा लेने से ही कुछ नहीं हो जाता। केलशियम का खून में मिलना भी बहुत जरूरी है। सूर्य की किरणें इस काम में पूरी मदद पहुंचाती हैं। यदि Calcium खाने के साथ-साथ हर रोज़ थोड़ी देर धूप में रहा जाय तो केलशियम बहुत शीघ्र खून में मिल जाता है। केलसियम बड़े काम की चीज़ है, ख़ास कर गर्भवती स्त्रियों के लिये। क्योंकि इस समय में गर्भ को अपनी हड्डियों के लिये केलशियम की ज़रूरत होती है। यदि मां इसको नया केलशियम खा कर पूरी नहीं करती, तो गर्भ माँ की हड्डियों एवं दांतों से Calcium खींचता है। फल यह होता है कि माता को दांतों की तकलीफ या हड्डी की बीमारी (Osteo–Malacia) हो जाती है। खैर, यह सब तो उस केलशियम की महिमा है, जिससे मेरा शरीर बना है। मुझे तो इस लेख में अपनी ही गुण गाथा करनी है।

गर्भ के तीसरे महीने ही में मेरी नींव–जड़–लगनी शुरू हो जाती हैं। एवं जब बच्चा जन्म लेता है, तो जबाड़े के अन्दर मैं अपने बीस दोस्तों के साथ छिपा रहता हूं। एवं मौका पाकर आहिस्ते आहिस्ते अपना रूप प्रकट करता हूं। उस समय हमको लोग Milk Teeth या दूधिया दांत कहते हैं। कुछ दिनों तक अपनी बाल-क्रीड़ा दिखा कर मैं फिर गायब हो जाता हूं एवं दूसरी बार फिर जन्म लेता हूं—इस बार लोग मुझे Permanent teeth कहते हैं। मेरे दो जन्मों का यह इतिहास कितना सुन्दर है। मुझे मजबूत होने में बहुत वर्ष लगते हैं। करीब १८ वर्ष। मुंह शरीर रूपी किले का फाटक है और मैं हूं इस फाटक का खास पहरेदार। किसी बाहरी शत्रु को मैं उसमें प्रवेश नहीं करने देता। परन्तु जब मनुष्य ही मेरी परवाह नहीं करता, जब वह मेरे से मनमाने काम करवाने लगता है; दिन भर पान चबाने, सुपारी चबाने के लिये मुझे मजबूर करता है तो मेरा शरीर खराब हो जाता है तथा मैं कमजोर हो जाता हूं। मुझ में हिम्मत नहीं रहती कि मैं शत्रुओं का मुक़ाबिला कर सकूं। वे किले के अन्दर प्रवेश कर ही जाते हैं एवं मेरे ही घर पर अपना अड्डा जमा लेते हैं। Pyorrhoea बीमारी हो जाती है। मुंह में पीप पड़ जाती है एवं मुंह दुर्गन्धमय हो जाता है।

जब शत्रु किले के अन्दर घुस जाते हैं उस पर अपना अड्डा जमा लेते हैं, तो मनुष्य को फिक्र लगता है कि अपने किले की रक्षा करे। उसने ज्योंही बाज़ार में दंत मंजन, दंत क्रीम, दंत लोशन एवं दंत ब्रश देखा; मेकलीन, फारहम्स, कोलीनस, नीम पेस्ट के बारे में अखबारों में पढ़ा जो, सब दांतों को मजबूत बनाने का--यानी मेरे रुग्ण शरीर को स्वस्थ बनाने का दावा करते हैं, वह उनकी शरण में जाता है। परन्तु मनुष्य जाति की अक्ल पर परदा पड गया है। जिस मकान को कीड़ों ने खोखला कर दिया है उसको सिर्फ लीपा-पोती करने से काम कैसे चल सकता है? मेरे शरीर को मज़बूत बनाने के लिये केलशियम एवं सूर्य किरणों की गर्मी—गर्भ से लगा कर बराबर जिसकी जरूरत रहती है—का जब अभाव है तो यह दंत मंजन आदि कर ही क्या सकते हैं? जिस मकान की नींव ही कमजोर है वह कितने दिन टिक सकता है? जो मातायें प्रकृति के नियमानुसार गर्भाधान से लेकर १८ वर्षों तक अपने बच्चों का खूब सावधानी एवं हिफ़ाज़त के साथ पालन करती है एवं मेरी तरफ़ ख़ास निगरानी

रख मेरी सफाई पर ध्यान देती हैं, वे ही पूजनीय हैं। परन्तु ऐसी पूजनीय स्त्रियों को चाहिये कि जब वे गर्भ धारण करें तो दूध, घी, हरे साग, फल फूल सूर्य की किरणों और विटामिन D का काफी परिमाण में उपयोग करें। इनसे मेरा शरीर बड़ा मजबूत बनता है और मैं ही बच्चों की सुन्दरता को बढ़ाता हूं। मैं हरेक बच्चे के मा-बाप से अपील करूंगा कि वे मेरी रक्षा, मेरी मज़बूती के लिये निम्न लिखित उपाय काम में लावें –

(१) जन्म लेने के बाद से एक साल तक बच्चे को सिर्फ माता का दूध ही पिलाया जाय, परन्तु शर्त यह है कि माता स्वस्थ हो एवं उसका दूध बच्चे के लिये काफ़ी हो।

(२) एक साल बाद बच्चे को गाय का दूध एवं थोड़े-थोड़े फल आदि खिलाने की आदत डालनी चाहिये।

(३)बच्चे को बाज़ार की मिठाइयां कभी भूल कर भी न खिलायी जाय। ये मेरे शरीर को तो नष्ट करती ही हैं, परन्तु हड्डियों को भी ख़राब कर डालती हैं।

(४) इस ऊमर में बच्चों को दांतुन व्यवहार करना, मंसूड़ों की मालिश करना, खाने को खूब चबा कर खाना, पानी खूब पीना आदि बातें सिखानी चाहिये। हमारे शरीर की सफाई करने के लिये नीम का दंतुन या अंगुली ही सबसे अच्छी चीज़ है। क्योंकि –

(१) इससे मेरे शरीर पर जो भोजन के टुकड़ों, कीटाणुओं या अन्य पदार्थों के कारण एक पतली फिल्म जम जाया करती है, उतर जाती है एवं मेरा शरीर चमकने लगता है।

(२) इससे भोजन के छोटे-छोटे टुकड़े जो मेरे शरीर के आसपास के छिद्रों में अटक जाते हैं, वे बाहर निकल जाते हैं।

(३) इससे मसूड़ों की मालिश भी हो जाती है। यह ख़ास ध्यान में रखने की बात है कि मसूड़ों में रक्त की नालियां हैं जो मेरे शरीर का पालन-पोषण करती हैं। मसूड़ों की मालिश करने से वहां अच्छा शुद्ध रक्त का दौरा होता है जो मेरे शरीर को पुष्ट करता है। परन्तु देखने में आता है कि लोग सिर्फ मेरे शरीर को चमकाने की तरफ ही विशेष ध्यान देते हैं मसूड़ों की तरफ बिल्कुल नहीं।

कुल्ला करना भी मेरी सफाई का एक खास अंग है, परन्तु सिर्फ मुंह में पानी डाल कर तीन चार बार थूक देने से ही काम नहीं चलता परन्तु मुंह में पानी भर कर इतने ज़ोर से उस पानी को मेरे शरीर के पास के छिद्रों के बीच से निकालने की चेष्टा करनी चाहिये कि जो भी भोजन के रहे सहे टुकड़े हों वे बाहर निकल आवें।

ये कुल्ले या दांतुन सुबह उठने के बाद एवं रात को सोने के पहले करने चाहिये।

आख़िर यह प्रश्न भी हो सकता है कि मनुष्य के जीवन में मेरी उपयोगिता क्या है कि जिसके कारण इन सब बातों की परवाह की जाय—प्रश्न जितना साधारण है उतना ही महत्त्वपूर्ण भी। इसलिये इसका उत्तर देना भी आवश्यक है। मेरे ख़ास उपयोग सक्षेप में इस प्रकार कहे जा सकते हैं।

मेरे ख़ास उपयोग——

(१) भोजन चबाना

हरेक प्राणीका पेट, जिसमें खाना हज़म होता है, इतना तेज़ नहीं कि जो कुछ वह खाय, हज़म हो जाय।

परन्तु यदि मैं खाने की वस्तु को पीस पीस कर खूब महीन बना दूं एवं मेरे मित्र लार (Saliva) से उसको भिगो कर तर कर दूं, तो पेट बड़ी आसानी से उस खाने को हजम कर डालता है।

(२) बोलने के काम में।

आप उस आदमी से जरा बात तो करिये जिसके मुंह में से मुझे और मेरे तीन चार और मित्रों को डाक्टरों की चमकती हुई गंडासी से आकृष्ट होकर बाहर निकल जाना पड़ा हो। उसकी बोली विकृत सी लगेगी। बूढ़े आदमियों से बातें करिये, उनकी बोली बड़ी खराब लगती है। यह मेरा ही प्रभाव है कि आपकी बोली ऐसी सुन्दर होती है जिसे सुनकर सब मोहित हो जावें।

(३) सुन्दरता बढ़ाने में।

यदि स्त्री के मोती के से दांत हो तो, उसकी सुन्दरता सौ गुनी अधिक हो जाती है। यदि स्त्री के चेहरे का कट (आकृति) बहुत सुन्दर हो परन्तु दांत टेढ़े मेढ़े, तो उस सुन्दरता का महत्त्व कितना कम हो जाता है। बुढ़ापे में सुन्दरता क्यों चली जाती है? इसीलिये तो कि निर्दयी प्रकृति मुझे बाहर निकाल फेंकती है।

(४) कुल्ला करने में

कुल्ला करने ही से मुंह की सफाई रहती है। एवं मुंह की सफाई रहने से बाहर के जीव जन्तु या शूक्ष्म कीटाणु शरीर के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते।

बस यही मेरी संक्षिप्त आत्मकथा है, जिसका उद्देश्य मनुष्य को उसीके शरीर के रहस्य समझने में सहायता करना है। और यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने को कृतार्थ हुआ समझूंगा।

मैं हूं आपका
दांत

"द्विविधा"

[श्री शुभकरण बोथरा, चूरू]

(१)

देखूं क्या मैं कोमल किसलय
मन्द हास से हँसते से,
मर्मर ध्वनिमय पत्रों को या
देखूं सूखे मानस से ॥

(२)

देखूं उच्च भवन मालायें
सज्जित हैं सुखमा से जो।
या मुरझाई पलकें देखूं
दीन हीन कुटिया में जो ॥

(३)

देखूं प्रेमासव में पागल
हृदय विचुम्बित प्रेमी को,
या उनके ही तरल हृदय में
जलती देखूं बड़वा को

(४)

देखूं खिलते कुसुमों को या
भ्रमरों को मधु गुञ्जन में
या झंझा के कटु झपटे ही
देखूं इस लघु जीवन में ॥

(५)

देखूं जगमग जगमग तारे
चन्द-चाँदनी में हँसते,
या मिटते कमलों को देखूं
जीवन की साँसें गिनते ॥

(६)

मोहन के वंशी-स्वर में लय
मुग्ध गोप-बाला देखूं
या रणभेरी लिए मुरारी
को रण में सजता देखूं ॥

(७)

शान्त लहरियां उठती देखूं
या मानव-मानस जल में,
या दरिद्र की काई देखूं
आकुल मन इस जीवन में ॥

(८)

कहां असम में समता देखूं
कैसे समता में असमान ?
जिस जीवन में नाश मिला है
उसमें माया भ्रम है ज्ञान ॥

नई हवा

[श्री पन्नालाल भडारी, बी० ए० बी० काम, एल०एल० बी०]

संसार परिवर्तनशील है। समय के साथ साथ स्थिति में भी फेरफार होता रहता है, चाहे हम उसको देख सकें या नहीं। रद्दोबदल ही जीवन का रहस्य है, यही जीवन है।

पन्द्रहवीं सदी तक का आध्यात्मिक और शान्त संसार अठारहवीं सदी तक राजनीतिक उथल-उथल का अखाड़ा बना रहा। उस समय आध्यात्मिकता पीछे रह गई थी और राजनैतिक शक्ति का बोलबाला रहा। पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने सम्पूर्ण संसार के जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी। जड़युग का प्रादुर्भाव हुआ। राजनैतिक शक्ति जड़ता के पूर्ण विकास का निरा साधन बनी रही।

इस प्रकार धार्मिक संसार राजनैतिक उष्णता को पार करता हुआ जड़ता के इन्द्रजाल में आ फंसा।

बीसवीं शताब्दी का यह युग उग्र जड़ता का युग है। पश्चिम में उत्पन्न हुई इस जड़ता (Materialism) ने पश्चिम में ही उग्रता धारण कर ली थी। क्राइस्ट का धार्मिक क्षेत्र जड़वादियों का रणक्षेत्र बन गया। क्रास के स्थान पर किरचों की चमक से प्राप्त किया हुआ झण्डा फहराने लगा। मशीनों के कोलाहल से शान्त जीवन दहल उठा। चिमनियों की धुआं वस्त्रों को काला करके चमड़ी को चीरती हुई कालेपन की छाप हृदय पर मार गयी। आध्यात्मिकता का कोमल पौधा उखड़ गया।

अठारहवीं शताब्दी में पूर्व की आध्यात्मिक शान्ति भी राजनैतिक खलबलाहट से तनिक भंग हो गई थी। महात्माओं की पवित्र भूमि राजनैतिक रणक्षेत्र में परिणत हो रही थी। तब तक उग्र जड़ता की रश्मि वहां नहीं पहुंची थी, किन्तु उन्नीसवीं सदी तक मशीनों की आवाज़ इतनी बुलन्द हो गई कि उनकी घड़घड़ाहट एशिया में भी सुनाई पड़ी।

पश्चिम की जड़ सभ्यता पूर्व में फैलने लगी। उषा को विलीन करता हुआ एक नवीन प्रकाश उत्पन्न हुआ।

पूर्व में आध्यात्मिकता अपना झण्डा अब भी फहरा रही थी। पाश्चात्य भौतिकता उस पर विजय न पा सकी, जैसा कि पश्चिम में हुआ। पूर्व में आध्यात्मिकता और जड़ता का संघर्ष हुआ, युद्ध हुआ; विजय किसी ने न पाई। द्वन्द अब भी चल रहा है। द्वन्द अब शिथिल होता जा रहा है। आध्यात्मिकता और जड़ता का संगम, न कि संग्राम, दिखाई दे रहा है, या यों कहिये कि पूर्व में आध्यात्मिक जड़ता नामक 'सभ्यता' का प्रादुर्भाव हो रहा है। इस नये रंग मे रंगे हुए मानव-जीवन के रचनात्मक कार्य, संभव है, श्रेयस्कर सिद्ध हों।

पश्चिम में तो जड़ता अपना नग्न ताण्डव कर रही है। विज्ञान भी मानवता का नैतिक और शारीरिक नाश करने के लिये वैज्ञानिक रचना रच रहा है। पाशविक युद्ध के नारे उच्च स्वर से आलापे जा रहे हैं। प्रश्न यह होता है कि पश्चिम कहां जा रहा है? आधुनिक परिस्थिति के विद्यार्थी का उत्तर भी यही हो सकता है—'नाश की ओर!'

पश्चिम को जड़ता में आध्यात्मिकता के पुट की आवश्यकता है ताकि पूर्व की तरह पश्चिम में इन दोनों में संगम होकर एक नई सभ्यता का प्रकाश हो। तब संपूर्ण संसार जड़ता के नशे को छोड़ कर शान्त हृदय से उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकेगा। यही नूतन-वायु हो !!!

बेकारी की समस्या

[श्री गोपीचन्द धाड़ीवाल]

बेकारी वर्तमान युग की सब से बड़ी समस्या है। जिधर देखो उधर बेकारी ही बेकारी की आवाज़ आती है। प्रत्येक समाज के नेता यही कहते हैं कि बेकारी का प्रश्न भीषण होता जा रहा है और उसे दूर करने के भिन्न-भिन्न उपाय बताये जाते हैं।

अग्रवाल महासभा के सभापति श्री रामकृष्ण जी डालमिया ने स्वजातीय ५०० युवकों को उद्योग-धन्धों में कार्य देने का आश्वासन दिया है। यह एक हद तक ही सराहनीय अथवा अनुकरणीय होगा। यदि डालमियाजी के विचारों का अनुकरण इस रूप में किया गया कि प्रत्येक जाति स्वजातीय कर्मचारी ही रखे तो यह अनुकरण सबके लिये घातक होगा। जिस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रीयता आज संसार के लिये घातक सिद्ध हो रही है, जिस प्रकार यूरोपीय देशों की व्यापारिक संरक्षक नीति संसार के व्यापार को चौपट कर रही है, जिस प्रकार भारत में प्रान्तीयता और जातीयता (Communalism) भारत की गुलामी की बेड़ियां जकड़ रही है, उसी प्रकार यह जातीय संरक्षण नीति मारवाड़ी समाज का हित नहीं किन्तु अहित ही करेगी। क्या यह वांछनीय होगा कि ओसवाल, ओसवाल कर्मचारी ही रखें और अग्रवाल, अग्रवाल कर्मचारी ही रखें। हमारे सामाजिक संगठन हमारे पारस्परिक भेद बढ़ाने में काम में नहीं लाये जाने चाहिये किन्तु भेदों के घटाने और देश के विशाल संगठन को दृढ़ करने में। डालमियाजी ५०० अग्रवाल युवकों को ऐसा तैयार करें कि उन्हें जातीय संरक्षण की आवश्यकता न रहे और वे अन्य जाति के नवयुवकों की प्रतिद्वन्द्वता में उत्तीर्ण हों, यह निस्सन्देह सराहनीय बात होगी, इससे अग्रवाल समाज की उन्नति के साथ-साथ मारवाड़ी समाज की और देश की भी उन्नति होगी। व्यापार में जातीय संरक्षण की नीति न तो संरक्षकों के लिये हितकर होगी और न संरक्षितों के लिये। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से, प्रतिद्वन्द्वता का ज़माना है और संरक्षित प्रायः प्रतिद्वन्द्वता में निर्बल साबित होते हैं। सफलता उसे ही मिलेगी जिसकी कार्य-पद्धति निर्दोष हो, कार्यकर्त्ता और कर्मचारी, सुयोग्य (efficient) हों। इसलिये जातीय संस्थाओं और नेताओं को चाहिये कि अपने जातीय युवकों को इस योग्य बनावें कि उन्हें किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता ही न रहे और वे अपनी योग्यता के बल पर खड़े हों।

इस समय मारवाड़ी समाज में बेकारी के कई कारण हैं—पर एक विशेष कारण जिसकी ओर सबसे कम ध्यान जाता है, वह है हमारे युवकों की अयोग्यता, निरुत्साह, पुरुषार्थहीनता, और शिक्षित युवकों की आरामतलबी, फैशन और खर्चीलापन। जिस हिम्मत और साहस (enterprise) ने एक 'लोटा और डोरी' लिये हुये हमारे पूर्वजों को व्यापार विजयी बनाया, आज हमारे युवकों में, शिक्षित युवकों में वह भाव नहीं। आज उन्हें चाहिये संरक्षण। हमारी संस्थाओं और नेताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिये और हमारे युवकों में संरक्षण की भूख कदापि उत्पन्न नहीं करनी चाहिये।

यौवन

[श्री रामकुमार जैन "स्नातक" विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, हिन्दी प्रभाकर]

विकृति

है कैसा यह पागलपन ?

इस यौवन की मदिरा को,
नाली में ढुलकाता है ?
कोमल मृणाल से तन को
शूलों से बिंधवाता है ?

तू क्रान्ति-क्रान्ति रटता है
अरु व्यर्थ शान्ति खोता है।
पगले ! वैभव के पथ में,
क्यों काँटे तू बोता है ?

उन्मत्त हुवा तेरा मन।
है कैसा यह पागलपन ॥ १ ॥

कितने टकराये हारे,
इन दुर्गम पाषाणों से।
बिंध सका न लक्ष्य किसी भी
यह धन्वी के बाणों से।

जीवन कुसुमों को प्यारे,
मत बुरी तरह बिखरा तू !
तू अनुभवहीन युवक है,
इतना न अधिक इतरा तू।

यह महादुखद संघर्षण।
है कैसा यह पागलपन ॥ २ ॥

प्रकृति

टूटे न युवक तेरा प्रण।

ओ आत्मशक्ति के पुतले !
तू व्यर्थ मृत्यु से डरता।
बिन बने भला निर्मोही,
है कौन मुक्ति को वरता ?

निज लय में लय हो जाना,
क्या यही न जय कहलाती ?
चल आगे क़दम बढ़ादे,
मज़बूत बनाले छाती।

कर दुखदानवदल मर्दन।
टूटे न युवक तेरा प्रण ॥ ३ ॥

हुंकार एक तेरी से
टूटेंगे नभ के तारे।
निज शक्ति भुला मत, तू ही,
है इस जगती को धारे।

उठ, रूढ़िदुर्ग को ढा दे,
प्रगटा शुचिता की झांकी।
मर कर ही बलिदानी ने,
जीवन की क़ीमत आंकी।

कर नव्यसृष्टि का सर्जन।
टूटे न युवक तेरा प्रण ॥ ४ ॥

होमियोपैथी

[श्री मन्नालाल बैद]

कोई डेढ़ सौ वर्ष हुए कि होमियोपंथी का जन्म जर्मनी के वैज्ञानिक क्षेत्र में हुआ। इसके जन्मदाता महात्मा हानीमन वहाँ के एक प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर थे। वर्षों अनुभव करने के उपरान्त आपका विश्वास उस प्रचलित चिकित्सा-पद्धति से ऊब गया। इतना ही नहीं आपको विश्वास हो गया कि इस पद्धति से जनता की उत्तरोत्तर लाभ के स्थान पर हानि ही हो रही है। परन्तु दूसरा कोई साधन ही नहीं था। इसी विचार से आपने चिकित्सा कार्य्य को छोड़कर साहित्याध्ययन करना आरम्भ किया। सन् १७६० में जीविका उपार्जन करने के लिये डाक्टर कलेन द्वारा रचित एलोपैथिक 'मेटिरिया मेडिका' का अंग्रेजी से जर्मनी में अनुवाद कर रहे थे। इसी बीच में कुनैन के पाट में आपको ज्ञान हुआ कि कुनैन के प्रयोग से स्वस्थ व्यक्ति को उसी प्रकार का जूड़ी ज्वर आ सकता है, जिसको दूर करने केलिये भी कुनैन का ही प्रयोग किया जाता है। रोग और औषधि के इस सादृश्य-सम्बन्ध ने उनके सामने सर आइज़क न्यूटन की पेड़ से गिरते हुए सेब वाली समस्या उत्पन्न कर दी। परन्तु विद्वानों के लिये इशारा मात्र ही यथेष्ट होता है। उन्होंने एक बार फिर अपना पुराना कार्य्य हाथ में लिया और अपने साथियों तथा मित्रों पर औषधियों के लक्षण (Symptoms) तथा चिन्ह (Signs) सिद्ध करने लगे। बीस वर्ष के सतत प्रयास तथा विलक्षण अन्वेषण बुद्धि के आधार पर आपने उस प्राकृतिक सिद्धान्त का निर्माण किया जो आज सारे जगत का कल्याण कर रहा है। आपने स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि जो औषधि स्वस्थ व्यक्ति पर किसी प्रकार के लक्षण और चिन्ह उत्पन्न कर सकती है वह औषधि अस्वस्थ व्यक्ति के उसी प्रकार के लक्षणों तथा चिन्हों को दूर भी कर सकती है। इसी सिद्धान्त का नाम होमियोपैथी है।

वैज्ञानिक क्षेत्र में कार्य्य करने वालों को भली प्रकार विदित है कि प्रकृति का प्रत्येक कार्य्य किसी न किसी सिद्धान्त पर स्थित रहता है। क्या रसायन विद्या (Chemistry) और क्या प्रकृति विज्ञान (Physics) सब निश्चित्त नियमों में आबद्ध है। चिकित्सा की पुरानी पद्धति (Allopathy) अभी तक अपने आप को किसी प्रकार की नियम-शृङ्खला में नहीं बांध सकी है। आज जिस मत का अनुसन्धान होता है और जनता जिसको सत्य समझ कर लाखों की संख्या में उसके अनुसार औषधि का प्रयोग करती है, वही मत दूसरे दिन किसी दूसरे विद्वान द्वारा असत्य घोषित कर दिया जाता है और नये उपचार की सृष्टि की जाती है। सहसा प्रश्न उठता है कि "क्या पहला मत वास्तव में दूषित था और क्या उससे जनता को लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ी थी ?" यदि ऐसा ही है तो दूसरे उपचार का भी कैसे विश्वास किया जा सकता है ? वास्तव में दोनों ही मतों का निर्माण

निर्मूल तथा नियम रहित हृदय से हुआ है। यह कोई कहानी मात्र नहीं है। महात्मा हानीमन ने अपने जीवन में इसका गहरा अनुभव कर लिया था और प्रकृति का छिपा हुआ सच्चा नियम ज्ञात करके उनको जो आनन्द हुआ होगा उसका चित्रण करना लेखनी की शक्ति के बाहर है।

होमियोपैथी का प्रथम नियम रोग और औषधि का सादृश्य सम्बन्ध है। कुनैन का ही उदाहरण लीजिये। इसके प्रयोग से एक प्रकार का ज्वर आता है जिसमें प्रथम जाड़ा लगता है; उसके पश्चात् पसीना आकर ज्वर चला जाता है और निश्चित समय पश्चात् वही ज्वर उसी प्रकार से फिर आता है। होमियोपैथी के प्रथम नियमानुसार जिस-व्यक्ति की जीवन शक्ति (Vital Force) क्षीण हो जाने से इस प्रकार का ज्वर आता हो उसकी चिकित्सा भी कुनैन से ही करनी चाहिए। इसी प्रकार सब औषधियों की जो प्रायः २००० की संख्या में हैं, स्वस्थ व्यक्तियों पर सिद्ध करके उनके लक्षण और चिन्ह ज्ञात कर लिये गये हैं। प्रकृति के प्रत्येक अंग में इसी नियम का समावेश है। दो सम शक्ति वाले चुम्बक पत्थरों को पास रखने से दोनों की पारस्परिक आकर्षण शक्तियों का ह्रास हो जाता है; इसी प्रकार औषधि और रोग की शक्तियों के समान तथा बराबर होने से दोनों का नाश होकर रोगी का सच्चे रूप में प्राप्त होना नितान्त प्राकृतिक ही है।

चिकित्सा शास्त्र में दिलचस्पी रखने वालों को भली प्रकार विदित है कि प्रत्येक औषधि का कार्य्य-क्षेत्र (Sphereofaction) कितना विशाल है। एक एक औषधि उपयुक्त स्थान पर दिये जाने से समस्त शरीर पर प्रभाव डाल सकती है। एक बात और भी विचारणीय है कि कुछ औषधियों को साथ मिलाकर प्रयोग करने से उनमें कभी कभी रसायनिक परिवर्तन हो जाता है जो औषधियों के लक्षणों में भी परिवर्तन पैदा कर देता है और औषधि जिन लक्षणों पर दी जाती है उनकी पूर्ति नहीं कर पाती। इन्हीं सब कठिनाइयों का विचार करके होमियोपैथी में भिन्न २ औषधियों के लक्षण अलग २ रूप में सिद्ध किये जाते हैं और इसके द्वितीय नियमानुसार एक रोगी के लिये एक बार में एक ही औषधि का प्रयोग किया जाता है। चिकित्सा की पुरानी पद्धति में एक ही रोगी को भिन्न २ रोगों के लिये अनेक औषधियों का मिश्रण दिया जाता है। होमियोपैथी इसका विरोध करती है क्योंकि मिश्रण की भिन्न २ औषधियों में रसायनिक परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है जिससे औषधियों के गुण बदल सकते हैं; दूसरे एक औषधि के पूर्ण प्रभाव को दूसरी औषधि रोक सकती है; और तीसरे वैद्य का भी सदा सिर घूमता रहता है कि कौनसी औषधि ने रोगी को सुधारा है।

अध्यात्मवाद में विश्वास रखने वाले जानते हैं कि अध्यात्मिक शक्तियाँ बाह्य शक्तियों से कहीं अधिक बलिष्ट हैं। एक पहलवान मुष्टिक प्रहार मात्र से पाषाण-शिला के टुकड़े २ कर सकता है पर उसका गौरव उस यति के सन्मुख नितान्त तुच्छ है जिसने अनेक योग साधनों में अपने बाह्य शरीर की बलि देकर आत्मिक शक्ति को समुपलब्ध किया है और संसार का प्रतिष्ठा-पात्र बन गया है। इसी सिद्धान्त की परिपुष्टि होमियोपैथी करती है। होमियोपैथिक औषधियाँ रोगी के बाह्य अवयवों पर प्रत्यक्ष प्रभाव न डाल कर रोगी की जीवनशक्ति को दृढ़ बनाती हैं जो उसकी आत्मा तथा बाह्य शरीर का सुन्दर सामन्जस्य बनाये रखती है। इसीलिये प्राकृतिक शक्ति प्राप्त की

हुई (Potentised) औषधियाँ न्यूनातिन्यून मात्रा में प्रयोग की जाती हैं।

चिकित्सा की पुरानी पद्धति के अनुसार अपरिपक्व (Crude) औषधियाँ रोगी पर अपनी बाह्य शक्तियों से प्रभाव डालती हैं और इसीलिये बहुमात्रा में प्रयोग की जाती हैं। होमियोपैथिक औषधियाँ विशेष क्रियाओं द्वारा अणु तथा परमाणुओं में विभाजित होकर प्राकृतिक शक्तियों को प्राप्त कर लेती है। ३० क्रम (Potency) की एक मात्रा में मात्राका

$$\frac{१}{१०००००००००००००००००००००००००००००००००००००}$$

अंश औषधि होती है। इस प्रकार औषधि अपने बाह्य शरीर से प्रायः मुक्त सी हो जाती है। अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर भी औषधि का बाह्य शरीर अदृश्य रहता है। पाठक इसको कोरी गप्प समझ कर हंसी नहीं उड़ावें। उनको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि ज्यों-ज्यों औषधि का क्रम बढ़ता है अर्थात् औषधि की मात्रा कम होती है त्यों-त्यों उसकी वास्तविक शक्ति की मात्रा भी बढ़ती जाती है। बाह्य दृष्टि से देखनेवाले जड़वादी इसको असम्भव कहकर छोड़ देंगे परन्तु रोगी पर भिन्न-भिन्न क्रम की औषधियों का प्रभाव देखकर सम्भवतः जड़वादी और आध्यात्मवादी दोनों ही को विशेष सान्त्वना मिलेगी।

जीवात्मा और जीवन–शक्ति के विषय में भी जड़वादियों का सिद्धान्त सम्भ्रान्त है क्योंकि मृत शरीर की परीक्षा करने पर उसमे किसी जड़ पदार्थ की कमी मालूम नहीं होती जिससे शरीर को हम मृत कह सकें। होमियोपैथी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करती है और आत्मा तथा शरीर का विभिन्न होना ही मृत्यु है। शरीर तो आत्मा का निवासस्थान मात्र है। अब प्रश्न यह उठता है कि शरीर और आत्मा के पारस्परिक सम्बन्ध में अन्तर उत्पन्न करनेवाली कौन सी शक्ति है ? इस अन्तर का उत्तरदायित्व जीवन-शक्ति (Vital Force) पर ही है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की जीवन शक्ति उनके मानसिक तथा शारिरिक चरित्र पर ही निर्भर करती है। स्वामी की उपेक्षा के कारण सुन्दर से सुन्दर प्रासाद अल्प काल में ही जर्जरित होकर भग्नप्रायः हो जाता है; यही दशा मानव-शरीर की होती है जब जीवन शक्ति के क्षीण हो जाने से आत्मा तथा शरीर का पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल पड़ जाता है। इस शिथिलता के कारण उत्पन्न हुए शरीर के बाह्य परिवर्तनों (Tissue changes) को ही रोग मान लेना कितनी भूल है। यह (Tissue change) तो क्षीण जीवन शक्ति का प्रतिबिम्ब मात्र है। सच्चा रोग तो जीवन शक्ति की क्षीणता ही है। अतएव जीवन शक्ति को सुदृढ़ बनाना ही रोगी का उपचार कहा जा सकता है। जीवन शक्ति जैसे सूक्ष्म पदार्थ (Menaterial substances) पर प्राकृतिक शक्तियों द्वारा प्राप्त की हुई औषधियाँ ही प्रभाव डाल सकती हैं, जड़ पदार्थ (Material crude drugs) नहीं।

चिकित्सा की पुरानी पद्धति (एलोपैथी) शरीर के अवयवों के परिवर्तन (Tissue change) को ही रोग तथा शरीर को ही रोग का स्थान एवं कारण मानती है और इन परिवर्तनों को स्थान च्युत कर देना ही उपचार समझती है। मलहमों द्वारा चमड़े की शक्तियों को उत्तेजित करके, चमड़े पर निकले हुए फोड़े को अदृश्य करना चिकित्सा नहीं किन्तु रोगी के रोग को बढ़ाना है। फोड़े का कारण चमड़ा नहीं

हो सकता, उसका कारण तो जीवन शक्ति की क्षीणता है। बिना कारण का नाश किये फलों की वृद्धि रोकना मूर्खता मात्र है। प्रायः डाक्टरों के अनुभव में आता है कि चमड़े पर निकले हुए फोड़े को इस प्रकार दबा देने से मेदा, हृदय, फुसफुस आदि शरीर के अधिक महत्वपूर्ण अवयवों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और समय पाकर रोगी का रोग दुसाध्य बन जाता है। होमियोपैथिक औषधियाँ रोगी की जीवन-शक्ति पर प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार कारण के सुधरने से फल अपने आप सुधर जाते हैं।

माता-पिता की क्षीण जीवन-शक्ति का कुछ फल उनकी सन्तान को भी भोगना पड़ता है। महात्मा हानीमन ने २३ वर्ष तक भिन्न-भिन्न रोगियों के वृतान्त रखकर सिद्ध किया कि अनिश्चित काल से अदृश्य शत्रु हमारे शरीर में छिपे आ रहे हैं। रोगों के बाह्य रूप को दबाये जाने से हमारे शरीर की बनावट में उस प्रकार का परिवर्तन हो गया है जो इन शत्रुओं की वृद्धि में सहायता करता है। ये शत्रु भी जड़ पदार्थ नहीं हैं परन्तु एक शक्ति के समान हैं' जो हमारे शरीर में छिपे रहते हैं और जीवन-शक्ति के ह्रास होते ही अपने स्वरूप को रोग के रूप में प्रकट करते हैं। महात्मा हानीमन ने इनके नाम सोरा (Psora) सिफिलिस (Syphilis) तथा साइकोरिस (Sycoris) रक्खा है। इनकी चिकित्सा के लिये समान गुणोंवाली औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार होमियोपैथिक चिकित्सा नम्र एवं प्राकृतिक साधनों से की जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा सदैव शीघ्र, स्थायी, सुन्दर एवं सर्वोत्कृष्ट होती है। औषधियों का मूल्य कम होने से उन लोगों के लिये सोने में सुगन्ध हो गई है जो आर्थिक संकट के कारण अपने रोग की चिकित्सा नहीं करा सकते थे। भारत वर्ष जैसे निर्धन देश में यह चिकित्सा विशेष सफलता से सम्पादित की जा सकती है। बङ्गीय जनता का ध्यान इस चिकित्सा ने विशेष रूप से खिचा है; परन्तु भारतवर्ष का बहुत बड़ा हिस्सा अभी तक ऐसा पड़ा है जहां चिकित्सा की सुविधाएं न होने से जनता को विशेष कष्ट उठाने पड़ते हैं। जन हितैषी सज्जन इस पद्धति का पूर्ण ज्ञान करके थोड़े ही खर्च में असंख्य पीड़ित ग्रामीणों का उपकार कर सकते हैं। परन्तु प्रथम आवश्यकता योग्य डाक्टरों की है क्योंकि कभी-कभी अच्छी वस्तुओं का भी दुरुपयोग हो जाने से रोगी का रोग और भी कठिन हो जाता है। आशा है मारवाड़ी भाई इस ओर विशेष ध्यान देकर राजपूताने जैसे पिछड़े हुए प्रान्त में रोग पीड़ित जनता के लिये चिकित्सा का अभाव मिटाने के लिये इस पद्धति से लाभ उठावेंगे।

श्रीयुक्त खूबचन्दजी सेठिया

आप सुजानगढ़ निवासी स्व० श्रीयुक्त तोलारामजी सेठिया के तृतीय पुत्र हैं। आप पाट के व्यवसाय के सिलसिले में गत ५।६ वर्षों से इङ्गलैण्ड में हैं और स्वतंत्र रूप से लण्डन में अपनी आफिस खोल रक्खी है। आप शिक्षित, उत्साही और व्यवसाय में कुशाग्र बुद्धि रखनेवाले युवक हैं।

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियाँ और शुभ कामनाएँ

बम्बई, ता० [illegible]—३६

श्री सम्पादक महाशय,

'ओसवाल नवयुवक'

२८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता।

'ओसवाल नवयुवक' मासिक पत्र का फिर प्रभात हुआ और उसकी प्रभा-ज्योति हमारे गुजरात में भी पड़ी। उस मासिक को देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। विद्वान लेखकों के लेख और कवियों की कविता देख कर मालूम होता है कि 'नवयुवक' पत्र अपने ओसवाल समाज में एक अच्छा, सुन्दर और समयोपयोगी मुख-पत्र होगा। उसे सिर्फ ओसवालों का ही नहीं परन्तु सारे जैन समाज का अग्रगण्य और प्रशंसनीय पत्र बनाने की कोशिश करनी चाहिये। युवक गण नव-युग के स्रष्टा हैं—अतः इस 'नवयुवक' पत्र द्वारा वे समाज के [illegible] उन्नति और [illegible] करना [illegible] भारतवर्ष के [illegible] प्रचार करने की अभिलाषा, अपने विद्वान लेखकों द्वारा 'ओसवाल नवयुवक' रखेगा—इसमें शंका का कोई स्थान नहीं रह जाता है। × × × ×

'नवयुवक पत्र गुजराती और हिन्दी भाषाभाषी ओसवालों के भेदभावों को भुलाने के लिये अपनी शक्ति खर्च करेगा। मेरी मातृभाषा 'गुजराती' होते हुए भी मैंने इस मासिक को अच्छी तरह पढ़ लिया है। आपके सातवें वर्ष का द्वितीय और तृतीय अंक पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। आगे बहुत बार मित्रों से सुना था कि 'नवयुवक' एक अच्छा, परिष्कृत मासिक पत्र है—लेकिन पढ़ने का आनन्द अभी तक नहीं मिला था—सो यह आनन्द प्राप्त करने के लिये उस मासिक का मैं ग्राहक बनना चाहता हूँ। सो इसका वार्षिक मूल्य मनिआर्डर द्वारा आपको भेजा है, सो कृपया इस वर्ष के [illegible]

[illegible] हीराभाई

पत्र का सम्पादन और मुद्रण दोनों उत्तम कोटि के हैं लेखों का चुनाव भी बुद्धि पूर्वक किया हुआ है।

[illegible] में अज्ञानता, सुस्ती और [illegible] है। इनको मिटाने के लिए आदर्श पत्र [illegible] कुछ समर्थ हो सकता है। पत्र के सम्पादक में जितनी [illegible] और समाज शास्त्रज्ञता का जितना विकास होगा उतनी उस पत्र से सफलता मिल सकेगी।

मुनि हिमांशु विजयजी

बरलूट (सिरोही)

राष्ट्र और धर्म

[श्री शुभकरण बोथरा]

भावना के क्षेत्र में राष्ट्र और धर्म एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत नहीं हो सकते। राष्ट्र विरोधी धर्म-भावना कुछ टिकने जैसी वस्तु नहीं। वैसे ही जहाँ उपयोग-युक्त धर्म-भावना के साथ राष्ट्रीय धर्म का पालन होता है, वहाँ किसी तरह की बाधा नहीं रह सकती। राष्ट्र तथा धर्म अविभक्त हैं। धर्म से रहित राष्ट्र आत्मा से पृथक शरीर के समान है एवं राष्ट्रीय भावना रहित धर्म काया-विहीन आत्मा के सदृश है। राष्ट्रीय भावना से पृथक धार्मिक भावना केवल धर्मान्धता है तथा धर्म रहित राष्ट्रीय विचार व्यर्थ आवेश प्रगट करते हैं। एक दूसरे के मेल से जो भावना उत्पन्न होती है वही भावना राष्ट्र को दीप्त करती है मानव को गौरवान्वित करती है। राम-राज्य में धार्मिक तथा राष्ट्रीय भावनाएं संयुक्त थीं; किन्तु रावण के राज्य में धार्मिकता को ठुकरा दिया गया, इसी लिये उसका नाश हुआ। केवल धार्मिक भावना से भी राष्ट्र नहीं टिक सकता। जितनी धार्मिक भावना तथा व्यवहारिक भावना की ज़रूरत है उतनी ही राष्ट्रीय भावना की भी आवश्यकता है। जिस तरह धार्मिकता के नाश से हिंसा वृत्ति एवं व्यवहारिक-भावना के नाश से व्यवहार शून्यता अवश्यम्भावी है, उसी तरह राष्ट्रीय भावना के नाश से परतन्त्रता यानी गुलामी का आविर्भाव होता है।

राष्ट्रीयता तथा धार्मिकता का सामंजस्य व्यक्ति-विशेष के भावों को उच्चतम बना सकता है। प्रत्येक व्यक्ति इस तरह यदि अपनी प्रवृत्तिओं को इस प्रकार विकसित कर सके तो किसी भी राष्ट्र की नैतिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक उन्नति होने में देर न लगे।

प्रत्येक मनुष्य का, चाहे वह कोई धर्मावलंबी क्यों न हो राष्ट्र के प्रति भी वही कर्त्तव्य है जो धर्म के प्रति। व्यक्तिगत एवं समाज व्यापी अन्य कर्त्तव्य भी हैं, किंतु मुख्य ये ही दो हैं। प्रत्येक मनुष्य को राष्ट्र सेवा भी करनी होगी, और धर्म सेवा भी। यदि राष्ट्र परतन्त्र है, पराधीन है, तो वह अपने धर्म का पालन भी स्वतन्त्र रूप से नहीं कर सकता। उसे राष्ट्र को स्वतन्त्र देखना ही होगा अन्यथा उसका धर्म भी राष्ट्र के साथ-साथ विजेता की शरण में पड़ा हुआ परवश बना रहेगा। यदि राष्ट्र स्वतन्त्र है तो धर्म-ध्यान निर्विघ्न और निश्चित रूप से हो सकता है। अतएव प्रत्येक धर्म–पालक का यह कर्त्तव्य है कि यदि स्व-राष्ट्र परतन्त्र हो तो उसे स्वतन्त्र करने के लिये वह हर तरह का उद्योग करे। इस साधना में उसे किसी तरह की भी धर्म-हानि संभवित नहीं हो सकती। परतन्त्र राष्ट्र के विदेशी शासक उसके धर्म का समुचित आदर करेंगे, यह युक्ति सर्वथा अवमाननीय है। धर्म–पालन तभी हो सकता है जब मनुष्य के मन पर, देह पर, समाज पर, और देश पर भी स्वायत्त-शासन हो। अतः यदि यही निश्चित है कि धर्म-वृद्धि राष्ट्र की स्व शक्ति-संचालन पर ही निर्भर

होती है। कोई भी धर्म परतन्त्र रहने की शिक्षा नहीं देता। सभी धर्मों के सिद्धांत सर्व प्रथम स्वतन्त्रता की ही प्रेरणा करते हैं।

यह कथन सर्वथा युक्ति सङ्गत है कि स्वतंत्रता बिना धर्म की साधना नहीं की जा सकती। जब तक मनुष्य परतंत्र रहता है उसकी आत्मा को शांति नहीं मिलती; सर्वदा क्लेश-क्रोध-ईर्ष्या का उसके मन पर अधिकार बना रहेगा। देश की स्वतन्त्रता धर्म के लिये अत्यावश्यक है; अतः यह मनुष्य का परम कर्तव्य है कि चाहे जिस देश व काल में वह रह रहा हो इन दो अवस्थाओं का (राष्ट्र एवं धर्म स्वातंत्र्य) सम्मेलन करने की अनवरत चेष्टा करता रहे।

जैन धर्म इस महान् सत्य का प्रचार सदा से कर रहा है। राग द्वेष को जीतनेवाला मनुष्य जैन है - फिर वह चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो—"एगं जाणई सो सव्वं आणई"। आत्मा को जानने की जो कोई कोशीश करे, उसे जैन कह सकते है। जैन धर्म किसी कौम विशेष का धर्म नहीं है। कोई भी कौम इसका अवलंबन कर सकती है। वर्ण से शूद्र होते हुए भी शूद्र जैनी हो सकता है। जैन धर्म का प्रधान उपदेश 'अहिंसा' है। अहिंसा कायरता नहीं सिखाती। योगियों के लिये तो सभी अवस्थाओं में अहिंसा पालन का नियम है; क्योंकि उन्हे संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रखना है, वे तो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' इस मंत्र का एकांत ध्यान करते है। अपने जीवन की रक्षा हेतु किसी भी जीव को कष्ट या क्लेश पहुंचाने की उन्हे आवश्यकता नहीं। परन्तु संसारिक जीवों को, जिन्हें यहां सभी तरह के कर्तव्यों का पालन करना है, अवस्था विशेष का ध्यान रख कर अहिंसा का पालन करना चाहिये। सत्य की रक्षा के लिये यदि असत्य की हिंसा भी करनी पड़े तो कोई दोष नहीं हो सकता। छली कपटी दुराचारी जीवों को शिक्षा देना तो प्रत्येक अहिंसावादी जैन का कर्तव्य है। निर्बल को संतप्त करनेवाले सबल जीव का, निर्बल की रक्षा के हेतु किया हुआ घात भी वांछनीय है। हां, अकारण ही निर्दोष का नाश न हो यह अहिंसा का मुख्य नियम है। जैन धर्म वीरोचित धर्म है। कायर मनुष्य जैन धर्म का पालन नहीं कर सकता। कोई भी वीर, योग्य व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से जैन धर्म का पालन कर सकता है, तथा अहिंसा का पालन करते हुए वह राष्ट्र एवं धर्म दोनों की सेवा कर सकता है। स्वतंत्र विचारोंवाला व्यक्ति ही जैन धर्म के मूल सिद्धांतों को समझ कर कार्य्य रूप में परिणत कर सकता है राष्ट्र-स्वतंत्रता की ओर जैन सिद्धांत का सर्व प्रथम लक्ष्य रहा है।

इतिहास साक्षी है कि 'ऐतिहासिक युग' के प्रारम्भ से मध्य काल तक अनेक जैन धर्मावलम्बी पृथ्वीपतियों ने भारत के विभिन्न भागों पर सफलतापूर्वक शासन किया है। फिर भी न मालूम किन कारणों से अनेक विद्वान, जैन तथा बौद्ध धर्म के प्रचार को ही भारत की मध्यकालीन परतंत्रता का कारण बतलाते हैं। किन्तु साथ ही साथ यह भी निश्चित सत्य है कि इन धर्मों के विश्वव्यापी प्रचार के समय ही सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्राट अशोक के से साम्राज्य बने थे। इन धर्मों का प्रचार शिथिल होते ही हिंसा तथा अधर्म की प्रवृत्ति बढ़ी, द्वेष कलह का जोर बढ़ा। फलतः विदेशियों ने साम्राज्य हस्तगत कर लिया। जैन धर्मावलम्बी अनेक अन्यान्य शिरोमणि भी अपनी कीर्ति को उज्ज्वल कर गये हैं। जैन मतानुयायी मनुष्य राष्ट्र-धर्म की रक्षा करने का उद्योग हमेशा करते रहे हैं और करते रहेंगे।

इसका कारण यह है कि जैनी राष्ट्र सेवा (संघ सेवा) को अपना प्रधान कर्तव्य समझते हैं। परतंत्रता जैन धर्म की कट्टर शत्रु है।

जैन धर्म की शिक्षा जितनी उच्च, आध्यात्मिक, निर्मल, गंभीर, समयोचित तथा वीरोचित है उतनी शायद ही किसी अन्य धर्म की हो। साधारण श्रेणी का मनुष्य जैनमत का समुचित रूप से पालन नहीं कर सकता। कलह, द्वेष, मिथ्या, कपटादि का त्याग प्रत्येक जैनी को करना पड़ता है। जैनमत सार्वत्रिक है। राष्ट्र के प्रति कर्तव्य पालन का जैन मत सदा प्रचार करता आ रहा है, किन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ जैन शासन में भी शिथिलता आ गयी है। मुख्य सिद्धान्तों पर अमल करना तो अलग, उलटे उन्हें अनर्गल प्रलाप कह कर उपेक्षा करनी तथा मन गढंत सिद्धांत रच कर कार्य्य करना आज-कल का नियम सा हो गया है। आज ऐसे अनेक नियमों का पालन होता है जो सत्य के सर्वथा प्रतिकूल है। ऐसी अवस्था में यदि जैनी भी राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल गये तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु यह अवश्य दुःख की बात है कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने वाला जैन धर्म आज परतंत्रता (गुलाम-मनोवृत्ति) का ही दास है। राष्ट्र ही जब रसातल को जा रहा है तब धर्म की तो बात ही क्या है। अतः प्रत्येक जैनी का यह कर्तव्य है कि बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की तरह तथा—कथित शिक्षाओं की उपेक्षा कर और मूल नियमों को समझ कर, और विवेचना करके उनका पालन करें। राष्ट्र+धर्म की सम-भाव से सेवा करें। जैन धर्म की दिव्य शिक्षायें अनेक जीवों का उद्धार कर सकती है तथा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को श्रेष्ठतम बना सकती है।

प्रत्येक परतंत्र देश के निवासियों का यह कर्तव्य है कि वे अपने व्यक्तिगत सामाजिक तथा धार्मिक भेद भावों को भूल कर स्वतन्त्रता पाने की सामूहिक चेष्टा करें। भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न धर्म हैं तथा भिन्न-भिन्न जातियां; फलतः भेद सर्वत्र विद्यमान है। खास कर हिंदू—धर्म में तो आवश्यकता से अधिक मतभेद और शिथिलता समा गयी है। सदा से वीर, धीर गंभीर रहनेका पाठ पढ़ाने वाला, जैन धर्म भी कायरता का जहां स्थान नहीं है वहीं अपने आपको भेद द्वारा नष्ट किये दे रहा है। वास्तव में कई शताब्दियों से जैन-धर्म दबता आ रहा है।

आज भी विद्वान् जैनाचार्य शास्त्रानुवाद पढ़ने तथा मिथ्या धर्माधना का प्रचार करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं। वेसमयोचित राष्ट्र-नीति और धर्म को जानते तक नहीं। यदि जानते भी हैं तो भीरु-तावश प्रचार नहीं करते। कायरता जैन सिद्धान्तों के प्रतिकूल है, इसका वे विचार नहीं करते। उनका तो यह प्रधान कर्तव्य है कि त्रुटियों को हटा कर समयानुकूल सुधार करें तथा समयोचित धर्मानुयायियों की वृद्धि करें। केवल अपने ही कतिपय धर्मान्ध शिष्यों को अनुकूल शिक्षा देकर प्रचार बंद कर अगर वे अपनी सत्ता कायम रखना चाहते हैं तो यह धर्म के विकास का गला घोटना है। राष्ट्र कर्तव्य को तो वे सर्वथा ही भूल गये हैं और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की ओर ध्यान तक नहीं देते। यह निश्चित है कि राष्ट्र सेवा का ख़याल न कर जो व्यक्ति, जो धर्म, और जो जाति स्वार्थ सेवा को ही अपना प्रधान कर्तव्य समझती है उसका नाश शीघ्र होता है।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति (साधु और श्रावक) से यही

अनुरोध है कि मिथ्या अहंभाव तथा स्वार्थ का त्याग कर जैन सिद्धान्तों में समयानुसार आवश्यकीय परिवर्तन कर "राष्ट्र और धर्म" की सेवा करना ही अपना उद्देश्य बनावें। कुसंस्कार एवं कुरीतियों को नष्ट करना होगा, प्रेम भाव को अपनाना होगा। आज राष्ट्र के प्राण संकट में है। धर्म को इसकी सबसे अधिक सहायता करनी चाहिये है ऐसा करने से ही हम अग्रसर हो सकते हैं।

कीर्त्ति

[अछूत ऋषि तिरुवल्लुवर]

(१) दुनियां में और सब चीजें तो नष्ट हो जाती है, मगर अतुल कीर्त्ति सदा बनी रहती है।

(२) विनाश जिससे कीर्त्ति में वृद्धि हो, और मौत जिससे अलौकिक यश की प्राप्ति हो, ये दोनों महान् आत्माओं ही के मार्ग में आते हैं।

(३) जो लोग दोषों से सर्वदा रहित नहीं है वे खुद अपने पर तो नहीं बिगड़ते, फिर वे अपनी निन्दा करनेवाले से क्यों नाराज़ होते हैं ?

(४) निःसन्देह यह सब मनुष्यों के लिये बेइज्ज़ती की बात है, अगर वे उस स्मृति का सम्पादन नहीं करते, जिसे कीर्त्ति कहते हैं।

(५) बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो; उसकी स्मृद्धि भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी।

—तामिल वेद से

गांव की ओर

[गोवर्धन सिंह महनोत बी काम]

गताङ्क से आगे

(४)

डाकिये भी इस संसार में कितने महत्वपूर्ण जीव हैं। प्रेमीजन बड़े-से-बड़े घाटे और मुनाफे की उतनी परवाह नहीं करते, अपने बड़े-से-बड़े सम्बन्धी और मित्रों के आगमन की उतनी आतुरता से प्रतीक्षा नहीं करते, जितनी इन जीवों की करते हैं। अपने प्यारे के केवल एक पत्र के लिये वे इन जीवों के मार्ग में अपने पलक–पांवड़े बिछाये रहते हैं। प्रकाश को कितने ही दिनों से अपने पिता का पत्र न मिला था। गत पत्र में मां के अस्वस्थ होने की खबर थी। वह उनका कुशल समाचार जानने के लिये आतुर हो रहा था। रह–रह कर दरवाजे की ओर देख लेता था। डाकिये के आने का समय हो गया था। सहसा बाहर पैरों की आहट सुनाई दी। लपक कर दरवाजे की ओर बढ़ा। लेकिन डाकिये के स्थान पर नज़र आया सुशील। अपने प्रियतम मित्र को देखकर आज वह इतना प्रसन्न हुआ, जितना उस डाकिये को देखकर होता। वह निराश होकर लौटा। सुशील ने उसके पीछे-पीछे कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा, "प्रकाश, आज इतने चिन्तित क्यों नज़र आते हो। क्या मेरे आने से तुम्हारी शान्ति में किसी प्रकार की बाधा पड़ी है ?"

प्रकाश बोला, "नहीं भाई ! मैं चिन्तित केवल मां का कुशल समाचार जानने के लिये हूं। लेकिन क्षमा करना, इस समय तुम्हारी जगह एक डाकिये का आगमन मुझे अधिक प्रसन्नता प्रदान करता।"

सुशील बोला, "अगर मैं ही डाकिया बन जाऊं तो ?"

प्रकाश ने हंस कर उत्तर दिया, "तो मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रह जाय।"

सुशील ने जेब से एक पत्र निकाल कर प्रकाश को दिया और बोला, "मैं तुम्हारे पास चला ही आ रहा था कि डाकिया मिल गया। पूछने पर उसने तुम्हारे नाम का यह पत्र दिया।"

प्रकाश बिना कुछ उत्तर दिये बड़ी आतुरता से पत्र खोल कर पढ़ने लगा। सुशील ने देखा कि पत्र पढ़ कर प्रसन्न होने के बजाय प्रकाश चिन्तित हो उठा है। उसने पूछा, 'सब कुशल पूर्वक हैं तो ?"

"हां, सब कुशल है किन्तु वह गुत्थी और भी उलझ गई है।"

"सो क्या ?"

"पढ़ने से सब समझ जाओगे"—कहकर प्रकाश ने पत्र सुशील के हाथ में दे दिया।

राधाकान्त बाबू ने अपने समधी की चिट्ठी पाकर विवाह की तैयारियाँ आरम्भ कर दी थी। प्रकाश को विवाह की निश्चित तिथि लिख कर उन्होंने उसे शीघ्र आने की आज्ञा दी थी। इसी आज्ञा को पढ़ कर प्रकाश चिन्तित हो उठा।

सुशील पत्र समाप्त कर बोला, "अब क्या विचार है ?"

"विचार क्या होगा सुशील ? भारी उलझन में पड़ गया हूं। कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करूं ? यह तो निश्चय कर ही लिया है कि विवाह तो करूंगा नहीं। लेकिन

अब पिताजी को क्या उत्तर दूं ? पिताजी ने विवाह की जो तिथि लिखी है, उससे तो सिर्फ चार महीने का समय और रह जाता है। उन्होंने विवाह की तैयारियाँ भी आरम्भ कर दी हैं। यदि शीघ्र ही उन्हें अपने निश्चय की सूचना न दूंगा तो व्यर्थ ही हानि होगी। तुम्हारे विचार में अब मुझे क्या करना चाहिए ?"

"यदि विवाह नहीं करने का ही निश्चय कर लिया है, तो अपने निश्चय की सूचना तुम्हें यथा शीघ्र अवश्य पिताजी को दे देनी चाहिए।"

"सुशील ! सुशील !! तुम मेरे 'हृदय' होकर भी क्या हृदय की बात नहीं जानते ?"

"जानता हूं प्रकाश, जानता हूं। स्पष्ट देख रहा हूं कि आज तुम्हारा हृदय विविध विचारों का समराङ्गण हो रहा है। तुम्हारे निश्चय के जो शत्रु हैं, उनमें पिताजी की कोपाग्नि तथा माताजी की कातरता गौण है और प्रधान है उन प्रेम रस पूर्ण लोल लोचनों की मार। मेरे सत्य बोलने पर मुझे क्षमा करना। प्रकाश, मैं यह भी समझ रहा हूँ कि तुम अभी तक यह निश्चय नहीं कर सके हो कि तुम्हें किस दिशा का अवलम्बन करना है ?"

"ठीक कहते हो सुशील। मेरी दशा इस समय ठीक उस कृपण के समान हो रही है, जिसका धन उसके सामने ही डाकू उठा ले जाँय। सुशील, मैंने उसे क्यों देखा था ? मुझे देख कर शीघ्र ही उसकी दृष्टि झुक गई थी, मुख लाल हो गया था। मैंने सोचा कि क्या मैं सूर्य हूं जो मुझे देख कर उसका मुख कमल अरुणाई प्राप्त कर खिल सा रहा है। और अपनी इस कल्पना पर मैं कुछ मुस्कुराने लगा था। वह मेरा मन्द स्मित देख कर उसके तन का कंपना और मन का शर्माना मैं क्या कभी भूल सकूंगा ? उसके बाद आज तक मैंने न जाने कितने हवायी किले बनाये हैं ! कितने खयाली पुलाव पकाये हैं ? क्या मेरे कल्पना राज्य का यह सारा वैभव, यह सारा सुख यों ही विलीन हो जायगा ? जानता हूं सुशील, कि यह सब इस समय अनुचित है किन्तु वह त्यागभाव अभी मुझमें उत्पन्न कहाँ हुआ है ? मेरे लिये यह त्याग अगर असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है।"

'प्रकाश, किधर भटक रहे हो ? सच्चे प्रेम की व्याख्या तुम अब भी नहीं समझ सके हो। मोह में पड़े हो और उस पवित्र प्रेम से दूर हो। तुम उस चितवन को नहीं भूल सकोगे, किन्तु प्यारे, उसका रूप बदल सकोगे। अपने प्रेमी के लिये कष्ट सहने में जो मज़ा है, उस ज्वाला में जो आनन्द है, वह उसके साथ सुख भोग में भी नहीं। उस आनन्द को, उस स्वर्गीय विभूति को तुम अभी समझ नहीं सके हो किन्तु समझ जाओगे। इस प्रेम को तुम देश प्रेम में बदल दो। देश प्रेम की वेदी पर, विश्व प्रेम के नाम पर इस व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान हो जाने दो। व्यर्थ में मत भटको। मैं यह कब कहता हूं कि तुम अनुपमा से प्रेम न करो। किन्तु सच्चे प्रेम में विवाह करने की क्या आवश्यकता है ? हमें आत्मा की पवित्रता को प्रेम करना है। शरीर—हाड़ मांस के पुतले के कारण ही प्रेम करना विवेक शून्यता है, अन्धापन है। मैं तो इसे स्वार्थ-साधना कहने में भी नहीं हिचकिचाता। यह तो प्रेम का नाम देकर 'मोह' का व्यापार करना है। अमृत के स्थान पर ज़हर पीना है। अपने प्रेम-पात्र के द्वारा लोक हित न होने देकर उसे अपने ही सुख और हित का साधन बना बैठना स्वार्थ-परायणता नहीं तो क्या है ? इससे अन्त में आनन्द के स्थान पर दुःख ही मिलता है।"

प्रकाश बात काट कर बोला, "तो क्या तुम यह समझते हो कि सारा संसार दाम्पत्य जीवन को लात मार देगा ? क्या विवाह न करना भी कोई कर्त्तव्य है ?"

सुशील थोड़ा तेज होकर बोला, "मैं दाम्पत्य जीवन को हेय कब बतलाता हूं, परन्तु वास्तविकता का सदा ध्यान रखना

चाहिए। मैं केवल सिद्धान्तों के सहारे किसी बात को उचित नहीं समझ लेता। इस बात को तुम अस्वीकार नहीं कर सकते कि यह समय सुखकी सेज पर सोने का नहीं है। इस समय तुम्हारे लिये कांटों की सेज सोने के लिये है, कांटों का ताज पहनने के लिये है। व्यक्तिगत वासनाओं को ठुकरा देना है। फिर बताओ तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम अपने साथ किसी दूसरे को भी कांटों की सेज पर सुलाओ। अनुपमा ने क्या अपने लिये कल्पना साम्राज्य तैयार न कर रखा होगा? उस साम्राज्य को मिटा देने का तुम्हें क्या हक है? सारा संसार दाम्पत्य जीवन को लात मार देगा या नहीं, इसकी चिन्ता तुम्हें न करनी चाहिए। तुम्हें तुम्हारे कर्त्तव्य पालन से काम है। भारतवर्ष के सभी निवासी स्वतन्त्रता युद्ध में प्राण देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे? क्या तुम भी इसे कर्त्तव्य समझ कर अपनाओगे? 'विवाह न करना भी कोई कर्त्तव्य है?, तुम्हारे इस प्रश्न में वासना स्पष्ट झलक रही है। किन्तु याद रखना प्रकाश, वासनामय प्रेम वह भयङ्कर भूल है, जो आत्मसंजम, ज्ञान और कर्त्तव्य पालन की भावना पर परदा डाल देती है। मैं तो विवाह करने को केवल उसी समय और उसी हालत में कर्त्तव्य समझ सकता हू, जब तुम्हारी सहधर्मिणी फाँसी पर भी तुम्हारा साथ देने को तैयार हो। अपने कर्त्तव्य पालन में वह तुम्हारी बाधक होने के बजाय तुम्हारा दाहिना हाथ बने। क्या तुम अनुपमा से—जिसके हृदय को अणुमात्र भी नहीं पहचानते हो—यह आशा रखते हो?"

प्रकाश दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोला, "सुशील, भैया, तुम सदा से मुझे सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न करते रहे हो। तुम्हारे समान कर्त्तव्य-शील मित्र के साथ रह कर मुझे पथ-भ्रष्ट होने का भय नहीं। पर मैं बहुत कमजोर हृदय का व्यक्ति हूं। यह त्याग मेरे लिये बहुत बड़ा होगा। मैं आज पिताजी को स्पष्ट उत्तर लिख देता हूं। लेकिन इससे पहले क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम गोपाल चाचा की अनुमति लें?"

सुशील हंस कर बोला, "इसमें सन्देह नहीं कि गोपाल चाचा अनुभवी व्यक्ति हैं, ज़माना देखे हुए हैं, नये विचारों और नये सुधारों के कायल हैं। नवयुवकों की इज्ज़त करते हैं, लेकिन वे तुम्हें स्वाधीनता के लिये मरने की, देश की पुकार सुन कर जेल जाने की अनुमति दे दें, इसमें मुझे सन्देह है। राधाकान्त चाचा की तरह ही गोपाल चाचा भी तुम्हें पुत्रवत चाहते हैं। मुझे भय है कि तुम्हारे इस प्रस्ताव पर वे रोने न लगें क्योंकि वे बहुत सरल और मोहवाले व्यक्ति हैं। हाँ, अगर तुम्हें किसी से इस विषय में सलाह लेनी है तो बहन कमला से लो। वह स्वतन्त्रता देवी की सच्ची उपासिका है। उसकी नसों में नवीन भारत का खून उबलता हुआ है। साथ ही यह न समझो कि वह नवीन भारत की होकर, भारत की प्राचीनता को, प्राचीन आर्य संस्कृति को भूल गई है। वह भारतीय है और शुद्ध भारतीय है। वह तुम्हारी बहन है और तुम को बहुत प्यार करती है; फिर भी जो सच्ची सलाह वह तुम्हें देगी, उसकी आशा तुम दूसरों से नहीं कर सकते।"

प्रकाश बोला, 'तुम तो कमला की इस तरह मुक्त कण्ठ से स्तुति कर रहे हो, जैसे दुनिया में उसे छोड़ कर और कोई दूसरी योग्य स्त्री ही नहीं है।"

सुशील ने अत्यन्त गम्भीर होकर उत्तर दिया, 'दूसरी कोई अधिक योग्य है या नही, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मैं तो उन्हीं से प्रेम करता हूं, उन्हीं पर श्रद्धा रखता हू, जिनकी तरफ मेरी आत्मा मुझे प्रेरित करती है। कमला से मैं बहुत स्नेह करता हूं, उस पर मेरी अत्यधिक श्रद्धा है। यही समझ लो कि मेरे विचार उससे उधार लिये गये हैं।"

प्रकाश कुछ न बोला। वह दीवार पर की घड़ी की ओर अनिमेष नेत्रों से ताक रहा था।

सुशील उठता हुआ बोला, "मैं खाना खाकर आता हूं, फिर गोपाल चाचा के यहाँ चलेंगे।"

सुशील के चले जाने पर प्रकाश उठा और सहसा उसके मुंह से यह उद्गार निकल पड़े, "तब क्या विमला का कहना सच है? नहीं नहीं, मुझे सुशील पर अत्यधिक विश्वास है। कमला भी विदुषी है, साध्वी है। अगर उनमें प्रेम भी है तो वह पवित्र है, शुद्ध है, वासनामय नहीं। भगवान हम सबको सद्बुद्धि दें।

(५)

कमला और विमला थीं तो दोनों सगी बहनें, लेकिन उनके स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर था। कमला शान्त, शिष्ट और मृदुभाषिणी थी तो विमला चपल, उद्दण्ड और वाचाल थी। कमला सदा पराये हित में लगी रहती थी, विमला को अपनी टीपटाप से ही फुरसत न मिलती थी। अपने रिश्तेदारों में, पड़ोसियों में जहाँ कोई उत्सव हो, त्यौहार हो, आनन्द हो, शोक हो कमला सबके आगे मिलती थी। किसी की सेवा करने का अवसर मिलने पर कमला इसे अपना अहोभाग्य समझ कर करती थी। विमला का विचार था कि किसी की सेवा करने में अपनी हेठी नज़र आती है। यद्यपि गोपालचन्द्र ने दोनों को शिक्षा देने में कुछ भी कसर बाकी न रखी थी, फिर भी विमला पर आधुनिक शिक्षा ने अपना पूरा रंग जमा ही लिया था। उसे फैशनेबिल रहने का शौक़ था। वह कालेज में फैशन का अवतार समझी जाती थी। कमला सीधी सादी थी। खद्दर की साड़ी पहनने में ही अपना सौभाग्य समझती थी। दोनों बहनों की इस भिन्नता पर सभी आश्चर्य करते थे। कोई यदि पूछ भी बैठता तो विमला यही उत्तर देती थी, "अपने अपने विचार हैं। किसी को खद्दर अच्छा लगता है किसी को नहीं। वे भारतीयों का हित ध्यान में रख कर खद्दर पहनती हैं तो मैं संसार के समस्त मिल-मजदूरों का हित ध्यान में रख कर अन्तर्राष्ट्रीय मिलों के कपड़े पहनती हूँ। किसी के विचारों का, कार्यों का दायरा संकुचित होता है, मेरा दायरा सारा संसार है।" उसके इस उत्तर को सुन कर प्रश्नकर्त्ता एक मुस्कुराहट के साथ अपना मार्ग लेता था। पाठकों को भी आश्चर्य होता होगा कि एक ही संस्कृति में बढ़ी हुई दोनों सगी बहनों के स्वभाव में इतना अन्तर क्यों था? असल बात तो यह है कि कमला के ये विचार, उसकी यह स्वदेश-भक्ति, उसकी त्यागपूर्ण भावना, उसकी अपनी नहीं, उसके पति की थी। आज से दो वर्ष पहले कमला का विवाह हो चुका था। उसके पति आनन्द कुमार बड़े क्रान्तिकारी विचारों के मनुष्य थे। वे कमला से बहुधा कहा करते थे, "प्रिये, जिधर देखो अन्याय ही अन्याय नज़र आता है—सबलों का निर्बलों पर, अमीरों का गरीबों पर, फिर केवल व्यक्तियों तक ही इस प्रवृत्ति की सीमा नहीं, बड़े शक्तिशाली राष्ट्र अन्य कमजोर राष्ट्रों को हड़प जाने में लगे हैं। अगर उनसे अपने इस अत्याचार को बन्द करने के लिये प्रार्थना की जाती है तो बड़ी शान के साथ वे उत्तर देते हैं कि वे तो प्राकृतिक नियमों का पालन कर रहे हैं, क्योंकि प्रकृति से ही संसार में भिन्नता का, इस वर्त्तमान असमानता का अस्तित्व है। शायद सारा संसार आँखें मूंद कर इसी सिद्धान्त को मान भी लेता और महात्मा ईसा तथा कार्लमार्क्स के साम्य-वाद के सिद्धान्त पोथियों के रूप में ही पड़े रह जाते अगर महात्मा लेनिन ने इस अत्याचार के प्रति अपनी आवाज बुलन्द न की होती। उन्होंने अन्यायियों का बध कर और मजदूर-राज्य की स्थापना कर संसार को बतला दिया कि अत्याचारियों को एक दिन कितनी कड़ी सजा मिलती है। आज अपने देश की, अपने प्यारे भारतवर्ष की जो दशा है, उसे देख कर मेरी छाती फटी आती है। महात्माजी अपने अहिंसा के उपदेशों द्वारा भारत का उद्धार करना चाहते हैं, लेकिन प्रिये, मैं तो उनके विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं

हूं। मानलो कि एक व्यक्ति खाने के लिये कुछ भी न पाकर भूखों मर रहा हैं। 'मरता क्या न करता' के सिद्धान्त के अनुसार वह तुम्हारे घर में आकर चोरी करता है। यहां उसको कुछ खाने को मिल जाता है। अभी उसने खाना आरम्भ किया ही है कि तुम्हें खबर लग जाती है। तुम जाकर उसके हाथ जोड़ कर कहती हो कि वह तुम्हारी वस्तु खाना बन्द कर दे क्योंकि उस वस्तु पर उसका कुछ भी अधिकार नहीं है। अब मैं तुम्ही से पूछता हूं कि वह खाना बन्द करके भूखों मरते हुए अपना प्राण देना स्वीकार करेगा? यही हाल हमारे भारत का है। भारत को स्वराज्य देकर क्या शासकवर्ग शक्तिहीन बनना पसन्द करेंगे? भारत उनके लिये सोने की चिड़िया है। उस चिड़िया के हाथ से निकल जाने पर वे शक्तिहीन हो जायंगे, अन्य शक्तिशाली राष्ट्रों के आगे उनका कहीं ठिकाना भी न लगेगा, यह समझते हुए भी क्या वे हमारी प्रार्थना पर कान दे सकते हैं? हमें अवश्य इस पर अधिक विचार करना होगा और नये सिद्धान्त-नये मार्ग का अवलम्बन करना होगा।

कमला अपने पति की इन तर्क पूर्ण बातों को सुन कर स्वदेश-भक्ति की भावना में डूब जाती थी। वह अपने पति से तर्क में जीत नहीं सकती थी, फिर भी उसके हृदय में महात्मा जी के उपदेशों के प्रति, अहिंसावादी सत्याग्रहियों के प्रति असीम श्रद्धा, असीम प्रेम था। कितनी ही बातें ऐसी होती हैं जिनमें मनुष्य तर्क से नहीं आत्म-प्रेरणा से विश्वास करने को बाध्य होता है। यही हाल कमला का था। उसके अन्तः-करण के एक कोने से आवाज़ उठा करती थी कि यह कोई जरूरी बात नहीं है कि जो सिद्धान्त दूसरे देशों के साथ लागू हों, वह भारत के विषय में भी लागू होवें ही। भारत धर्म प्राण देश है। संसार का शिक्षक रहा है। वह संसार के अन्य देशों से क्या शिक्षा लेगा? उसके अपने सिद्धान्त हैं। भगवान् बुद्ध और महावीर ने अपने अहिंसा-धर्म का—प्रेम पूर्ण भ्रातृभाव का डंका सारे भारत में ही नहीं, सारे आलम में बजा कर अपनी धाक जमाली थी। महात्माजी उन्हीं सिद्धान्तों का तो प्रचार करते हैं। निश्चय ही वे अपने व्रत में सफल होंगे। जब मनुष्य किसी को प्राणदान नहीं कर सकता तो उसे प्राण लेने का क्या अधिकार है? अपने अधिकारों के लिये मर जाने में जो आनन्द है, वह सरकारी व्यक्तियों की हत्या करने में कहां?, वे विचारे तो अपना पेट भरने के लिये, पैसों के लिये नौकरी करते हैं।

चाहे कमला सिद्धान्तरूप से अपने पति से सहमत न हो, पर उनसे उसने स्वदेशानुराग, त्याग और सरलता का वह सबक सीखा था जिसने उसके जीवन को औसत स्त्रियों से बहुत ऊंचा उठा दिया था। लेकिन दुर्भाग्य से वह इस सबक को अधिक दिन तक नहीं सीख सकी। विवाह के दो ही वर्ष बाद उसे अपने पति से बिछुड़ना पड़ा। एक दिन उसके घर पर अचानक पुलिस ने छापा मारा और उसके पति को पकड़ ले गई। पीछे उसे मालूम हुआ कि उन पर एक हत्या तथा डाके का अभियोग है। बहुत बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर करने पर भी उसके पति को बीस वर्ष सपरिश्रम कारा-वास का दण्ड मिला। इस दण्ड-विधान को सुन कर कमला की क्या दशा हुई होगी, इसे एक स्त्री-हृदय ही समझ सकता है। कुछ दिनों बाद ही गोपालचन्द्र जाकर कमला को अपने यहां ले आए। यहां आने के कुछ ही दिनों बाद कमला ने धड़कते हुए हृदय से सुना कि उसके पति अन्य दो कैदियों के साथ जेल से भाग गये हैं। तब से आज तक वह हृदय में एक अज्ञात भावना, एक अज्ञात लालसा लिये फिरती है। कहीं भी जाती है, उसके नेत्र भीड़ में इधर-उधर न जाने किसे खोजा करते हैं। आज एलबर्ट हाल में 'सहशिक्षा' पर व्याख्यान था। कमला और विमला दोनों अभी वहीं से लौटी हैं। व्याख्यान में बहुत भीड़ थी। कमला की आंखें निरन्तर पुरुषों की भीड़ में जाकर न जाने किसे खोज रही थी। अथक

परिश्रम करने पर भी कुछ हाथ न आया, जान कर मन निराश हो चुका था। घर आने पर भी वह निराशा की छाप मिटी न थी। अनमने भाव से कुर्सी पर बैठ कर वह एक पुस्तक देखने लगी। विमला कपड़े बदलते-बदलते बोली, "आज चन्द्रावतीजी का व्याख्यान सबसे अच्छा और जोशीला रहा। तुम्हें कैसा लगा ?"

कमला पुस्तक मेज़ पर रखते हुए बोली, "बोली तो अच्छा लेकिन तुम तो जानती ही हो कि मैं 'सहशिक्षा' के विपक्ष में हूं। मैं 'सहशिक्षा' को बुरी ही नहीं, घातक समझती हूं।"

विमला बोली, "तुम तो दीदी, केवल हठधर्मी के कारण ऐसा कहती हो। नहीं तो आज चन्द्रावतीजी के भाषण को सुनकर तुम ऐसा न कहती। कितनी सुन्दरता से उन्होंने दलीलें पेश की थीं, कितनी बुद्धिमता से अपने पक्ष का प्रतिपादन किया था।" कमला ज़रा दुःखित होकर बोली, "तुम इसे हठधर्मी समझो या और कुछ। विमला, कितनी ही बातें ऐसी होती हैं, जो तर्क से सर्वश्रेष्ठ ठहराई जा सकती हैं, पर उनका व्यवहारिक रूप बड़ा विकृत होता है। बाह्य तड़क-भड़क में न भूल कर किसी बात की गहराई तक पहुच कर उसका विवेचना करना चाहिये।"

विमला तेज़ होकर बोली, "मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूं। जो बात आत्म-प्रेरणा या व्यवहारिक ज्ञान से ही सर्वश्रेष्ठ मान ली जाती हो, उसके लिये भी कुछ न कुछ तर्क उपस्थित किया जा सकता है। अगर तुम बिना कुछ अधिक विचारे अपने मत पर दृढ़ हो तो मैं कहूंगी कि परम्परा ने, रूढ़ियों ने तुम्हारी बुद्धि पर परदा डाल दिया है। पुरुषों की स्वार्थ-प्रियता को तुम समझ नहीं सकी हो। तुम तो भारत की प्राचीनता की, प्राचीन संस्कृति की अधिक कायल हो। उधर ही दृष्टिपात करो, तुम्हें 'सहशिक्षा' के जीते जागते कितने ही उदाहरण मिलेंगे। 'सहशिक्षा' प्राकृतिक है, व्यवहारिक है और मितव्ययितापूर्ण है। स्त्री जब पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है, तो विद्योपार्जन में एक साथ रहना अस्वाभाविक बात नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों के साथ मिल कर कार्य करने से, या पुरुषों को स्त्रियों के साथ मिल कर कार्य करने से हानि के बदले लाभ ही अधिक होता है। चरित्र अधिक दृढ़ और अधिक निर्मल होता है। व्यर्थ की संकीर्णता और संकोच हट जाते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष अगर एक साथ मिल कर कार्य करें तो पुरुष को बढ़ता देख कर स्त्री और स्त्री को बढ़ता देख कर पुरुष अधिक लगन और उत्साह से कार्य करेंगे। प्रतिद्वन्दिता पुरुषों और पुरुषों के बीच में, स्त्रियों और स्त्रियों के बीच में उतनी प्रखर और उपयोगी नहीं होती जितनी पुरुषों और स्त्रियों के बीच में। प्रखर प्रतिद्वन्दिता से लाभ के सिवाय हानि नहीं होती। अब अगर स्कूलों के दृष्टिकोण से ही देखा जाय तो 'सहशिक्षा' से कितना आर्थिक लाभ होता है, यह तुम आसानी से समझ सकोगी। एक ही स्कूल में दो विभाग कर, दो टीचर नियुक्त करने की झंझट मिट जायगी। स्कूल में लड़के और लड़कियां- दोनों ही का उपस्थित रहना लाभदायक और ज़रूरी है। एक को देख कर दूसरे का हौसला बढ़ता है। लड़के और लड़कियां—दोनों ही समाज के भावी स्तम्भ हैं। अगर आरम्भ ही से इन्हें साथ रहने की शिक्षा न दी गई तो भविष्य में बड़े—बड़े अनिवार्य सामाजिक कामों में वे कैसे एक साथ कदम उठायेंगे। 'सहशिक्षा' से प्राप्त हुए अनुभव से जो विवाह होते हैं, वे अधिकतर सुखप्रद और शांतिवर्द्धक होते हैं। यह तो 'सहशिक्षा' का व्यवहारिक रूप है। यह शिक्षा विद्यार्थियों के आध्यात्मिक जीवन पर भी कुछ कम असर नहीं डालती। 'सहशिक्षा' देनेवाले स्कूलों में विद्यार्थी अलक्षित भाव से पारस्परिक सहयोग और यथार्थता का पाठ पढ़ते हैं। सहिष्णुता और दृष्टिकोण की विस्तीर्णता ऐसे ही स्कूलों में प्राप्त की जा सकती है। क्या जीवन के प्रत्येक बड़े

कार्य में पुरुष के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि वह स्त्री का दृष्टिकोण भी सामने रखे ?"

कमला ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "बहन, तुम तो एक लम्बी चौड़ी वक्तृता ही दे बैठी। केवल बाह्य रूप को देख कर ही किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुंचा जा सकता। युवावस्था वह अवस्था है, जब बाहरी वातावरण बहुत जल्दी और सरलता से उस पर अपना असर डालते हैं। सहशिक्षा का अनिवार्य परिणाम होगा कि युवक और युवतियां अबाध-रूप से परस्पर मिलेंगे और इस अबाध मिलन से केवल आध्यात्मिक ही नहीं, शारीरिक बुराइयां पैदा होंगी। बिना पर्याप्त धार्मिक और मनुष्योचित शिक्षा के यह सहशिक्षा, जो स्कूलों और कालेजों में दी जाती है, हमारे युवक और युवतियों को खतरे के मार्ग में ढकेल देगी और उनके चरित्र नष्ट हो जायँगे। मेरी राय में यह बड़ी भयानक बात है कि एक लड़की को और विशेष कर युवावस्था में युवकों से अबाध रूप से मिलने दिया जाय क्योंकि इस अवस्था में वह आन्तरिक इच्छाओं व प्रलोभनों को दबाने में असमर्थ होती है और विशेषकर उस समय, जब कि बाह्य आडम्बर भी उसके सामने लुभावने आकर्षण रख रहे हों। यह लो, प्रकाश और सुशील भी आ पहुचे। क्यों सुशील, मैं ठीक कहती हू या नहीं ? मेरा कहना है कि 'सहशिक्षा' हमारे लिये बुरी ही नहीं घातक है और विमला 'सहशिक्षा' को अच्छी ही नहीं, अनिवार्य बतलाती है।"

सुशील के बोलने के पहले ही विमला बोल उठी, "सुशील बाबू तो तुम्हारी ही बातों को दोहरायगे। प्रकाश भैया, तुम्हारी इस विषय में क्या राय है ?"

कहने को तो विमला इतना कह गई, लेकिन जब उसने सुशील के शान्त चेहरे की ओर देखा, स्वतः ही उसके नेत्र झुक गये। प्रकाश ने भी इस अवसर पर एक बार कमला की ओर देखा और एक बार सुशील की ओर। उसने देखा कि विमला की बात सुन कर कमला एक बार सिहर उठी, लेकिन सुशील पर उसके कहने का कोई प्रभाव न पड़ा। वह जैसे था, वैसे ही खड़ा रहा। प्रकाश सोचने लगा, "तब क्या विमला का कहना ठीक है ?"

बाहर निकलती हुई कमला बोली "विमला यह तुम्हारा अन्याय है। सिद्धान्त की बातों में पक्ष कैसा ? अगर सुशील के विचार मेरे विचारों से मिलते हैं और उसे तुम पक्षसमर्थन समझती हो तो यह तुम्हारी भूल है, अन्याय है। मैं कब कहती हू कि तुम सुशील ही से पूछो, प्रकाश से भी पूछ सकती हो। हां, यह मैं जानती हू कि सुशील के विचार मेरे विचारों से अधिक मिलते हैं, अगर प्रकाश के विचार मेरे विचारों से भिन्न हो तो उसके लिये किसी को उत्तरदायी नहीं बनाना पड़ेगा।"

प्रकाश बोला, "बहन कमला, तुम बैठो। मेरे विचार सुशील के विचारों से भिन्न नहीं हैं। मैं भी इस विषय पर उनके विचार सुनना चाहता हूं।"

सुशील विमला की ओर देख कर बोला, "विमला बहन, मैं सदा से अपने विचार बेधड़क कहता आया हूं। किसी का लिहाज रख कर या किसी से स्नेह रहने के कारण मैं अपने सिद्धान्तों की हत्या कभी नहीं करता। यों तो मेरे लिये जैसी कमला वैसी तुम। लेकिन उसके विचार मेरे विचारों से मिलते हैं, उसके भावों का मेरे भावों से अपूर्व सादृश्य हैं; समान विचार और एक भाव वाले होने के कारण अगर उसके प्रति मेरा विशेष आकर्षण हो तो वह स्वाभाविक ही है। हां, तो मैं सहशिक्षा' को बुरी समझता हूं। युवक और युवतियां दोनों ही उन पदार्थों के समान हैं जो प्रबल आकर्षक द्वारा टकरा कर जल उठें। युवक और युवतियों में केवल शारीरिक ही नहीं, प्रबल मानसिक आकर्षण भी है। तुम्हारी 'सहशिक्षा' के पक्ष में केवल यही एक जबर्दस्त दलील हो सकती है कि इससे स्त्रियों को ऊंची शिक्षा देनेकी सुविधा प्राप्त हो जायगी।

लेकिन यह शिक्षा हमारी बहनों की पवित्रता और सतीत्व के मोल मिलेगी। 'पवित्रता और सतीत्व' ये ही दो वस्तुए हैं, जिन्होंने आज भी इस समाज के ढ़ीले ढ़ाचे को अपवित्रता और पाप के गर्त में गिरने से बचा रखा है। तुम अन्य देशों की बाह्य तड़क-भड़क को देख कर भारत में भी वही दशा, वही वातावरण बनाना चाहती हो। लेकिन याद रखो, अन्य किसी भी देश में स्त्रियों के सतीत्व को इतना महत्व नहीं दिया गया है, जितना हमारे भारत में क्योंकि घर और समाज की पवित्रता के लिये यही एक अनिवार्य उपाय है। 'सहशिक्षा' और 'अबाध मिलन' का कुछ भी अर्थ क्यों न हो, पवित्र आध्यात्मिक पहलू पर विचार करना न भूलना चाहिये। मि० ऐयर की पुस्तक 'फादर इण्डया' पढ़ो तो तुम्हें पता चलेगा कि कितने अमेरिकन छात्र और छात्राओं के जीवन इस 'सह-शिक्षा' के कारण नष्ट हुये हैं। मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होता हू, अगर 'सह-शिक्षा' के सब खतरों और बुरे परिणामों को जानते हुए भी केवल किसी का पक्ष समर्थन करने के लिये चुप रहू।"

विमला किसी को अपना पक्ष समर्थन न करते देख बहुत क्षुब्ध हो उठी। वह बड़ी तेजी से बोली, "सुशील बाबू, सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत अन्तर होता है। देश, काल और स्थिति के अनुसार सिद्धान्तों को बदला जा सकता है। सिद्धान्तों के अनुसार देश, काल और स्थिति नहीं बदले जा सकते। आप भारत के प्राचीन निरर्थक सिद्धान्तों को लेकर बैठे रहें, भारत का तरुण समाज काल और परिस्थिति के अनुसार अपने नवीन सिद्धान्त निर्माण करेगा। आपकी यह दलील कि साथ रहने मात्र ही से युवक, युवतियों के चरित्र बिगड़ जायगे, बिल्कुल थोथी है। आप अपने ही जीवन पर दृष्टिपात करके दूसरों के प्रति अपनी कोई राय क़ायम कर सकते हैं। क्या आप कभी किसी युवती से नहीं मिलते? क्या किसी युवती के साथ घटों बैठ कर आपने कभी विचार-विनिमय नहीं किया? क्या उस 'आबाध मिलन' से आपके चरित्र में कुछ अन्तर पड़ा? अगर नहीं तो कृपया दूसरों के चरित्र को भी उसी दृढ़ता और पवित्रता की दृष्टि से देखिये। यह मानती हू कि आप पक्ष-समर्थन के लिये अपने सिद्धान्तों की हत्या नहीं करते। लेकिन व्यवहारिक वातावरण की अपने सिद्धान्तों पर छाप न पड़ने देना भी मैं बुद्धिमानी नहीं समझती।"

सुशील से अब यह छिपा न रहा कि यह कटाक्ष उस पर किस लिये किया गया था। उसके नेत्र स्वतः ही कमला की ओर उठ गये। उसने देखा कि कमला के मुख पर लाली दौड़ आई। उसके भी तीर सा लगा। विमला की मुखरता को अधिक उत्तेजना देना व्यर्थ समझ कर वह प्रकाश से बोला, "चलो गोपाल चाचा से मिल आवें।" प्रकाश भी कमला और सुशील के इस भाव-परिवर्तन को सूक्ष्म रूप से देख रहा था। विमला की बात का उत्तर न देकर सुशील के बात टालने के उपक्रम को देख कर प्रकाश और भी शंकित हो उठा। वह अनमने भाव से बोला, "चलो।"

सबके जाने पर भी कमला बैठी ही रही। वह सोच रही थी कि मानव हृदय भी कितना विषमय है।

(क्रमशः)

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है; जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपन्थ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ?—किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेजकर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

(४)

बेकारी

हमारे समाज में बेकारी बढ़ती चली जा रही है—समाज का जीवन रोगग्रस्त है।आपने उसके उपचार के लिये कुछ सोचा है ?

जिस समय सारे समाज क्रान्ति की उथल-पुथल में ऊपर नीचे होंगे—उस समय आपकी क्या स्थिति होगी ? आप किस की ओर ताकेंगे ? इस समय आप समाज के होनहार युवकों—नौनिहालों—की बेकारी दूर करने से उदासीन हैं। पर उस समय आप स्वयं-आपका सारा समाज ही बेकार होगा-तो आपका सम्हलना-आपकी हजारों चेष्टाएं किस काम की होंगी ? युवकों के बेकार जीवन का अभिशाप ही क्या सारे समाज का अभिशाप नहीं बन जायगा ?

दूसरे समाज इस ओर कितने अग्रसर हैं ? क्या आप के कानों तक यह बात नहीं पहुंचती—धनीमानी क़हलाते हुए भी आपकी आँखें नहीं खुली ? अभी आंखें नहीं खुली तो फिर कब खुलेगी ?

आइये ! जल्दी कीजिये—इस सम्बन्ध में अब व्यावहारिक योजनाओं पर विचार कीजिये—उनमें सहायता दीजिये।

बेकारों के लिये एक योजना

[श्री गोवर्द्धन सिंह महनोत बी० काम]

गत तीन जुलाई के कलकत्ता के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक अमृतबाज़ार पत्रिका में नीचे लिखा समाचार प्रकाशित हुआ था, जो हमारे देश की बढ़ती हुई भीषण बेकारी का एक ज्वलन्त और ताज़ा उदाहरण है। पाठकों को सूचित करने के लिये हम उसे ज्यों का त्यों नीचे देते हैं—

"शिमला २ जुलाई। लेजिसलेटिव असेम्बली डिपार्टमेण्ट के वाच और वार्ड आफिसर के सहायक की केवल एक खाली जगह के लिये, जहां अस्सी रुपये से आरम्भ होकर दो सौ तक की गुञ्जायश थी, विज्ञापन किया गया था। फलतः अभी तक साढ़े तीन हज़ार अर्जियां आ चुकी हैं और बहुत सी आ रही है क्योंकि अभी अर्जी दाख़िल करने की आख़िरी तारीख में दो सप्ताह की देर है। इन अर्जियों को छांटने और मुलाकात के लिये कुछ व्यक्तियों को बुलाने का निश्चय करने के लिये भी सम्भवतः एक व्यक्ति और मुकर्रर किया जायगा। यह है हमारे देशकी बढ़ती हुई बेकारी का एक मर्म्मस्पर्शी दृश्य।"

एक यही उदाहरण हमारे सामने हो, यह बात नहीं है। यह तो ऐसी एक हजार एक उदाहरणों में से केवल एक है। तमाम संसार के आगे आज यह बेकारी का भूत भयंकर रूप से मुंह बाये खड़ा है। इस भूत को भगाने के लिये सभो अगर प्रयत्नशील नहीं तो चिन्ताशील अवश्य हैं। भिन्नता की भित्ति पर स्थित सामाजिक व्यवस्था, पारस्परिक असहयोग, बढ़ते हुये वैज्ञानिक अविष्कार आदि जो कारण इस बेकारी की वृद्धि के बनाये जाते है, उनका विवेचन करना हमारा आज का विषय नहीं। कारण कुछ भी रहे हों, हम तो यह देखना चाहते है कि संसार के सभी देशों में और ख़ास कर भारत में इस भूत को भगाने के क्या प्रयत्न किये जा रहे है ?

संसार के सभी प्रगतिशील देशों में इन बेकारों के कष्ट को दूर करने के लिये सभी सम्भव सम्भव उपाय काम में लाये जा रहे हैं। उनके लिये नये-नये उद्योग-धंधे खोले जा रहे है। उनकी आर्थिक सुविधा के लिये नये नये कानून बनाये जा रहे है। इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली और जापान आदि देशों में बेकारों के लिये ब्यूरो (Bureau) खोले जा चुके हैं। अभी मिश्र देश के प्रधान मंत्री नहास पाशा ने भी केरो में इसलिये एक ब्यूरो खोलने का निश्चय किया है कि उनके पास किसी भी प्रकार की नौकरी पाने के लिये अभी तक सत्रह हज़ार से भी अधिक अर्जियां आ चुकी हैं। इसी प्रकार अमेरिका, स्पेन और टर्की आदि देशों में भी इस भूत को भगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अब देखना यह है कि हमारे भारत में, जहां बेकारों की संख्या किसी भी देश के मुकाबले कम नहीं और उनकी अवस्था किसी भी देश के मुकाबले बहुत अधिक शोचनीय है, क्या प्रयत्न किया जा रहा है ? भारत की बेकारी का विश्वव्यापी बेकारी के कारणों के साथ-साथ विदेशी शासन और उद्योग धन्धों पर विदेशियों

का प्रभुत्व और स्वदेशियों की उदासीनता भी एक सबसे बड़ा जबर्दस्त कारण है जिस पर हम आज बहस करना नहीं चाहते। सबसे पहले यह मालूम करना चाहते हैं कि हमारी वर्त्तमान सरकार इस तरफ कितना प्रयत्न कर चुकी है तथा क्या करने के लिये प्रयत्नशील है ?

भारत सरकार ने वह प्रयत्न नहीं किया जो भारतीय बेकारों के प्रति करना चाहिये था। अन्य देशों की सरकारों के सामने उसका प्रयत्न नगण्य है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत सरकार का ध्यान इस शिक्षित बेकारी की तरफ खिंचा है और वह शीघ्र ही इस विषय में जांच का कार्य आरम्भ करेगी। भारत सरकार का विचार है कि वह देश के बेकार शिक्षितों की कुल गिनती करने के बजाय इस बात का पता लगावेगी कि सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर सरकारी तथा व्यवसायिक संस्थाओं में नौकरों की सालाना मांग कितनी है ? कुल बेकारों की गिनती करना एक बहुत कठिन कार्य है। अतः यह दूसरा आंकड़ा इस विषय में अवश्य बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। इस आंकड़े से भारत सरकार को यह पता लग जायगा कि सालाना कितने आदमियों की तो मांग है और कितने शिक्षित बेकार हैं ? जब मांग और खपत का अन्दाज़ लग जायगा तब सरकार ऊंची शिक्षा को रोकने का प्रयत्न करेगी और वर्त्तमान शिक्षण पद्धति को इस प्रकार नियन्त्रित करेगी कि मांग और खपत बहुत असमान न रहें। हां, भावी-शासन प्रणाली में यद्यपि शिक्षा का मामला प्रान्तों के अपने अपने हाथों में रहेगा, पर फिर भी भारत सरकार--अगर सदिच्छा से काम करना चाहे तो प्रान्तीय सरकारों पर प्रभाव अवश्य डालेगी। इस भूत को भगाने के लिये वह इस समय भी प्रान्तीय सरकारों को दबा रही है और देश में नये-नये उद्योग धंधों को प्रोत्साहित कर रही है।

अब देखें कि प्रान्तीय सरकारें क्या कर रही हैं ? पंजाब सरकार ने निश्चय किया है कि प्रान्त की बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिये एक एम्प्लायमेण्ट ब्यूरो (Employment Bureau) खोला जाय। पंजाब के इण्डस्ट्रीज के डाइरेक्टर आंकड़े इकट्ठे करेंगे और नौकरी चाहनेवाले बेकारों के नाम रजिस्टर्ड करेंगे और सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में योग्य रजिस्टर्ड बेकारों को काम दिलाने की चेष्टा करेंगे। शिक्षितों की बेकारी दूर करने के लिये पंजाब सरकार का दूसरा निश्चय एक टेलरिंग स्कूल खोलने का है। यह स्कूल अमृतसर में खोला जायगा। आरम्भ में बीस विद्यार्थी और फिर चालीस विद्यार्थी इसमें शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। लन्दन के शिक्षा प्राप्त और भारत स्थित एक बड़ी अंग्रेजी दूकान में अनुभव प्राप्त किये हुए एक कटर की नियुक्ति की जा रही है। जो इस स्कूल में भरती होना चाहेंगे, वे कम से कम मैट्रिक पास तो अवश्य ही होने चाहिये। लेकिन आरम्भ में कुछ अशिक्षित किन्तु अनुभवी दर्जी भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। दो से तीन वर्ष तक का शिक्षा का कोर्स रहेगा। पंजाब सरकार ने इस योजना पर कार्य करने का इसलिये निश्चय किया है कि आजकल भारत में पंजाब के निवासी ही सबसे अधिक फैशनेबुल कपड़े पहननेवाले हैं। पंजाब सरकार की यह योजना दूसरी प्रान्तीय सरकारों के लिये अनुकरणीय है और वे भी अपने यहां अपने प्रान्त की जरूरत के अनुसार कार्य खोल कर बेकारी भगाने का प्रयत्न कर सकती हैं।

संयुक्त प्रान्त की सरकार भी यह देख कर कि

रिजर्व बैंक की कानपुर की शाखा में केवल चालीस-चालीस रुपयों के वेतन वाले तीन क्लर्कों की जगहों के लिये एक हजार चार सौ अर्जियां पहुंची हैं, अब संयुक्त प्रान्त में एक एम्प्लायमेण्ट ब्यूरो (Employment Bureau) खोलने का विचार कर रही है।

बिहार प्रान्त के शिक्षित जनों की बेकारी दूर करने के लिये बिहार सरकार ने एक कमेटी (Un-employment Commitee of Bihar) नियुक्त की है। इस कमेटी का क्षेत्र यथेष्ट विस्तृत है। इस समय प्रान्त में जो उद्योग धंधे चल रहे हैं उनमें कितने आदमियोंके खाने की गुञ्जायश है, साधारण व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था हो जाने से कितने लोग काम में लग सकते हैं; यह सब विषय हैं, जिन पर यह कमेटी विचार करेगी और यदि आवश्यकता समझी तो साधारण व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करने की भी सिफ़ारिश करेगी। यह कमेटी प्रान्त की मुख्य-मुख्य औद्योगिक संस्थाओं में जा चुकी है और शिक्षितों की बेकारी की परिधि तथा उनके लिये काम मिलने के मार्गों का पर्याप्त पता लगा चुकी है। इस कमेटी की अन्तिम रिपोर्ट आगामी सितम्बर में तैयार हो जायगी।

मद्रास की धारा सभा के सदस्य श्रीयुत् सी० वासुदेव ने यह प्रस्ताव वहां की धारा सभा में रखा है कि,

"यह कौंसिल मद्रास सरकार से सिफ़ारिश करती है कि मद्रास प्रेसीडेन्सी की बेकारी को दूर करने के लिये सरकार यथाशीघ्र यथोचित उपाय करे।"

शायद इसी प्रस्ताव के फलस्वरूप मद्रास सरकार शिक्षित बेकारों को कृषि कार्य में लगा कर उनकी बेकारी की समस्या हल करने की स्कीम को अपने हाथ में लेने के प्रश्न पर विचार कर रही है। इसी उद्देश्य से उसने विभिन्न फार्मों में कृषि की शिक्षा में सुविधायें देने का निश्चय किया है। इस कार्य के अनुसार डेढ़ सौ शिक्षित युवकों को लाभ होगा। इस स्कीम को सफल बनाने में नौ हजार रुपये लगेंगे, जिसके लिये मद्रास सरकार को प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति लेनी पड़ेगी।

मध्यप्रदेश की धारा सभा के मेम्बर श्रीयुत् सी० बी० पारख के इस प्रस्ताव पर कि मध्यप्रदेश की सरकार प्रान्त के बेकारों और खास कर शिक्षित बेकारों की अवस्था की यथाशीघ्र जांच करे और सभी सम्भव और समयोचित उपाय उनकी बेकारी को दूर करने के लिये काम में लावे, गत २८ जुलाई की कौंसिल की बैठक में बहुत जबर्दस्त बहस हुई। अन्त में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास भी हुआ। अब मध्यप्रान्त की सरकार इस समस्या पर विचार कर रही है।

इसी प्रकार बङ्गाल, बम्बई आदि की सरकारें भी अपने-अपने दायरे से इस बेकारी के भूत को भगाने में प्रयत्नशील हैं। गैर-सरकारी सस्थायें और सामाजिक संस्थायें भी इस विषय में प्रयत्नशील है। सभी समाज अपने दायरे में बढ़ती हुई बेकारी को देख चिन्तातुर हो उठे हैं। बम्बई के छात्र सम्मेलन की गत २ अगस्त की बैठक, जो डा० सुरबन बी० मेहता की अध्यक्षता में हुई, ने भी शिक्षितों की बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिये एक एम्प्लायमेण्ट ब्यूरो बनाने का प्रस्ताव पास किया और इस विषय में प्रयत्नशील है। इसी प्रकार अ० भा० अग्रवाल महासभा के सत्रहवें अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीयुत् रामकृष्णजी डालमिया ने भी अग्रवाल समाज की बढ़ती हुई बेकारी को देख कर अपनी जाति के पांच सौ नवयु-

वकों को काम देने की प्रतिज्ञा कर जातीय संरक्षण की नीति से काम लिया है। यह जातीय संरक्षण की नीति अच्छी है या बुरी, इस पर हम बहस नहीं करना चाहते। हमने तो यह सब केवल इसलिये लिखा है कि विज्ञ पाठक भारत की बढ़ती हुई बेकारी से और उसके उचित या अनुचित रीति से दूर करने के जो प्रयत्न चल रहे हैं, उनसे परिचित हो लें।

भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारें कितने ही प्रयत्न क्यों न करें, पर यह बेकारी नहीं मिट सकती। अगर उनको बेकारी की समस्या सचमुच हल करनी है तो उन्हें एक बात की ओर ध्यान देना होगा और वह है वर्तमान दूषित शिक्षा-प्रणाली में सुधार करना। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली इतनी दूषित है कि पढ़ कर कोई भी सिवाय नौकरी करने के और किसी काम का नहीं रहता। हमारी राय में यदि स्कूल से लेकर कालेज तक, कला-कौशल और उद्योग धन्धों की कुछ न कुछ शिक्षा ऐच्छिक किन्तु अनिवार्य बना दी जाय और अगर उन विषयों की व्यवहारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय तो फिर कोई कारण नहीं है कि पढ़-लिख कर निकलने पर विद्यार्थी का दृष्टिकोण स्वावलम्बी न बने और नौकरी की दुराशा में गोते लगाने के स्थान पर उद्योग धन्धों की सृष्टि न करें। जब तक साधारण शिक्षा के इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया जाता बेकारी को दूर करने का कोई भी उपाय अधिक लाभकर नहीं सिद्ध हो सकता। यहां पर हम प्रसंगवश सप्रू कमेटी की रिपोर्ट का जिक्र करें तो अनुचित न होगा। हम उक्त कमेटी की इस बातका हृदय से समर्थन करते है कि साधारण लड़कों को ऊँची किताबी शिक्षा न दिला कर उनके लिये व्यवसायिक औद्योगिक तथा अन्य व्यवहारिक शिक्षाओं का प्रबन्ध किया जाय। सप्रू कमेटी ने विश्वास दिलाया है कि ऐसा होने पर चन्द वर्षों में ही बेकारी दूर हो जायगी। हम मानते हैं कि ऐसा हो जायगा, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि सप्रू कमेटी की यह रिपोर्ट अधूरी है। उसमें भारत के वर्त्तमान अगणित शिक्षित बेकारों के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। उनका क्या होगा ? अभी भारत सरकार सप्रू कमेटी की रिपोर्ट की जांच कर रही है। क्या जब तक यह जांच हो, तब तक इस रिपोर्ट के रचयिता उपरोक्त विषय में कुछ न लिखेंगे ? जिनको सरकारी और अर्द्ध सरकारी संस्थाओं में नौकरी करते पचीस वर्ष या ऊपर हो गये हैं, उन्हें हटा दिया जाय और उनकी जगह अगर ये शिक्षित बेकार लिये जायं तो कहीं यह प्रश्न कुछ हल हो सकता।

खैर, अब हम सरकारी आलोचना को छोड़ कर जहां हमारी आवाज नक्कारखाने में तूती के समान है, अपने समाज की तरफ झुकते हैं। हमारे समाज में भी बेकारी बढ़ रही है। और शीघ्रता से ओसवाल नवयुवक के गत तीन अंकों के 'हमारे जीवन मरण के प्रश्न' शीर्षक स्तम्भ में जो कुछ लिखा गया है, वह परस्पर इतना अधिक सम्बद्ध है कि उसे हम एक ही शीर्षक 'बेकारी को समस्या' के नीचे रख सकते हैं। यह समस्या हमारे समाज के आगे इस समय प्रमुख समस्या है। विश्वव्यापी कारणों के साथ-साथ हमारे समाज को बेकारी का एक खास और जबर्दस्त कारण देश के उन्नत उद्योग धन्धों के प्रति हमारे धनियों की उदासीनता है। उनकी इस घातक और कायरतापूर्ण उदासीनता को भगाने के लिये बहुत कुछ कहा जा चुका है, कहा जा रहा है और कहा जायेगा। अन्य समाज के धनियों को आगे बढ़ते देख कर उनकी भी

आंखें खुलेंगी। हम उनसे केवल इतना ही कह कर कि वे आगे आवें और नयी-नयी इण्डस्ट्रीज हाथ में लेकर बेकारों को काम में लगावें और योग्य और होनहार युवकों को व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करें, अपने बेकार साथियों की ओर मुड़ते हैं।

धनी तो पता नहीं कब आगे बढ़ेंगे, पर वर्तमान शिक्षित बेकारों के लिये भी तो हमें कुछ करना चाहिये। हमें अपने समाज के बेकारों के हितार्थ एक एम्पलायमेण्ट ब्यूरो खोलना चाहिये। मोटा-मोटी तौर से इस ब्यूरो का काम होगा हमारे समाज के योग्य और होनहार शिक्षित बेकारों का नाम रजिष्टर्ड कर रखना; बड़ी-बड़ी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, गैर सरकारी और व्यवसायिक संस्थाओं से पत्रव्यवहार रखना; उनकी नौकरों के लिये मांग हो, उसे स्वीकार करना और अपने रजिष्टर्ड बेकारों को वहां नौकरी पर लगा देना; योग्य शिक्षित बेकारों को समयोचित व्यवहारिक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करना; बेकारों की कष्टमय दशा का चित्रण समाज के आगे रखना; अपने समाज के धनियों को उद्योग धन्धों को हाथ में लेने के लिये उत्साहित करना आदि आदि। बिना इस प्रकार का एक ब्यूरो हमारे समाज में स्थापित हुए, हमें तो कम उम्मीद है कि हमारे बेकार ओसवाल नवयुवक उन ओसवाल धनियों तक पहुंच सकेंगे, जो नये उद्योग धन्धे खोलेंगे। अगर इस तरह का एक ब्यूरो बन जाय और वह बेकारों का प्रतिनिधित्व करने लगे, तो उन बेकारों को कितनी आर्थिक सहूलियत प्राप्त हो जायगी, यह एक अनुभव करने की बात है। यह सब तो एक योजना का खाका मात्र है। अगर कोई व्यक्ति या संस्था इस योजना को हाथ में लेना चाहे तो हम सहर्ष सहायता पहुंचाने को तैयार हैं। क्या हम उम्मीद करें कि 'ओसवाल नवयुवक' इस कार्य को अपने सुयोग्य हाथों में लेगा ?

जैन—साहित्य—चर्चा

रूढ़िच्छेदक भगवान् महावीर

व्याख्या प्रज्ञप्ति में आई हुई जीवनशुद्धि और विश्व-विज्ञान का वर्णन उपरोक्त अनुसार दे चुकने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने अपने समय की रूढ़ियों को तोड़ने के लिये जो प्रवचन धारा बहायी है उसके सम्बन्ध में अब कुछ कहना है। यह प्रवचन धारा इस सूत्र में और दूसरे सूत्रों में भी ठीक-ठीक रूप में उपलब्ध है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में जातिवाद से होती हुई सामाजिक विषमता को तोड़ने के लिए भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जाति* विशेष से कोई पूजापात्र नहीं हो सकता पर गुण विशेष से ही हो सकता है। ब्राह्मण कुल में जन्मा हुआ या मात्र मुख से ॐ ॐ का जाप करनेवाला ब्राह्मण नहीं है परन्तु ब्रह्मचर्य से कोई ब्राह्मण बनता है। इस प्रकार श्रमण कुल में रहने वाला या कोई केवल सिर मुंडानेवाला श्रमण नहीं हो सकता है परन्तु जिसमें समता हो वही श्रमण कहलाता है। जंगल में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं कहाता पर मनन-आत्मचिन्तन करनेवाला मुनि कह-

* - "सोवागकुलसभूओ गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो नाम आसि भिक्खू जिइंदिओ ॥ १ ॥
कोहो य माणो य वहो य जेसिं
मोसं अदत्तं च परिग्गहंच।
ते माहणा जाइविज्जाविहीणा
ताइं तु खित्ताइं सपावयाइं ॥ १४ ॥
सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो
न दीसइ जाइ विसेस कोइ।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं
जस्सेरिसा इड्ढी महाणु भावा" ॥ ३७ ॥
उत्ताराध्ययन सूत्र अध्ययन–१२

चण्डाल कुल में पैदा हुआ और उत्तम गुण को धारण करनेवाला हरिकेश नाम जितेन्द्रिय भिक्षु था। (१)

जिनके चित्त में क्रोध है, अहंकार है, हिंसा है, असत्य है, चौर्य है और मूर्च्छा है ऐसे जाति और विद्याहीन ब्राह्मण पाप क्षेत्र हैं। (१४)

तप की विशेषता साक्षात दिखती है परन्तु जाति की विशेषता कुछ भी नहीं दिखाई देती। कारण कि हरिकेश साधु, चंडाल का पुत्र होने पर भी तप और संयम के कारण से महा प्रभावयुक्त शक्तिशाली हो सका है। (३७)

लाता है। मात्र कोई वृक्ष की छाल पहिनने से तापस नहीं कहलाता परन्तु आत्मा को शुद्ध करनेवाला तप करता है वही तापस कहलाता है *। इसके अतिरिक्त आठ गाथाओं में भगवान् ने खास करके ब्राह्मण का स्वरूप बतलाया है ‡।

धम्मपद और सुत्तनिपात में भगवान् बुद्ध ने भी ब्राह्मण का इस तरह का लक्षण कितनीक गाथाओं में बतलाया है। इस पर से हम लोग स्पष्टरूपसे जान सकते हैं

जो आसक्ति नहीं रखता, शोक नहीं करता, और आर्य के वचन अनुसार रहता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२०)

तपाकर शुद्ध किए हुए सोने की तरह जो शुद्ध है और राग, द्वेष तथा भय से विमुक्त है उसे हम ब्राह्मण कहते है। (२१)

गतिशील और अगतिशील प्राणियों की स्थिति जान कर जो मन, वचन और काया से शरीर की हिंसा नहीं करता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२२)

क्रोध, हंसी, लोभ या भय से जो झूठ नहीं बोलता उसे हमें ब्राह्मण कहते है। (२३)

सजीव या निर्जीव वस्तु को जो थोड़ी या अधिक चोरी नहीं करता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२४)

जो मन वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२५)

जिस तरह कमल जल से उत्पन्न होने पर भी जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार काम से जो अलिप्त रहता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२६)

जो लोलुप नहीं है, स्वार्थ को लेकर नहीं जीता, अकिंचन है, और गृहस्थों में संसक्त नहीं है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। (२७)

जो द्विजोत्तम इस तरह के गुणवाले होते है वे ही अपना और दूसरे का उद्धार करने में समर्थ है। (३३)

---

*—"न वि मुंडिएण समणो न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेण कुसचीरेण न तावसो ॥ २९ ॥
समयाए समणो होइ बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ तवेणं होई तावसो ॥ ३० ॥
कम्मुणा बंभणो होइ कम्मुण होइ खत्तियो।
वइस्सो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३१ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन—२५

‡—"जो न सज्जइ आगंतुं पव्वयन्तो न सोअइ।
रमए अज्जवयणम्मि तं वय बूम माहणं ॥ २० ॥
जायरूवं जहामट्ठ निद्धतमलपावजं।
रागद्दोसभयाईय त वय वूम माहणं ॥ २१ ॥
तसे पाणे वियाणित्ता संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं तं वय बूम माहणं ॥ २२ ॥
कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयइ जो उ तं वय बूम माहणं ॥ २३ ॥
चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहु।
न गिण्हइ अदत्तं जो त वय बूम माहणं ॥ २४ ।
दिव्व माणुस्सतेरिच्छ जो न सेवेइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केणं तं वयं वूम माहणं ॥ २५ ॥
जहा पोम्म जले जायं नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहि त वय बूम माहणं ॥ २६ ॥
अलोलुय मुहाजीवि अणगार अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेहिं तं वय बूम माहणं ॥ २७ ॥
एवगुणसमाउत्ता जे हवंति दिउत्तमा।
ते समत्था उद्धत्तुं पर अप्पाणमेव च" ॥ ३३ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन —२५

कि उन दोनों महापुरुष का शुष्क जातिवाद से बड़ा विरोध था। इसी कारण से इनके तीर्थों में शूद्रों, क्षत्रियों और स्त्रियों—सबको एक समान सम्मान का स्थान मिला हुआ है।

जातिवाद की तरह उस समय जड़मूल फैलाकर बैठी हुई कितनीक जड़ क्रियाओं के संबंध में भी भगवान् महावीर ने उस समय विरोध उठाया था। इन क्रियाओं में खास कर यज्ञ, स्नान, अर्थ समझे बिना वेदाध्ययन, भाषा की झूठी पूजा का अभिमान, सूर्य चन्द्र के ग्रहण से सम्बन्ध रखनेवाले कर्मकाण्ड, दिशाओं की पूजा के प्रघात, युद्ध से स्वर्ग मिलने की मान्यता इन सब जड़ प्रक्रियाओं के कारण समाज की आत्मशुद्धि का ह्रास होना जान कर इस सूत्र में और दूसरे सूत्रों में भगवान् ने उन-उन क्रियाओं का सच्चा स्वरूप बतलाया है और उनके जड़ स्वरूप का अच्छा विरोध किया है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में यज्ञ के स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है कि सब वेदों में विहित किए हुए यज्ञ पशु हिंसामय है। उस पशुहिंसा रूप पापकर्म द्वारा जो यज्ञ किया जाता है वह यज्ञ याजक को पाप से बचा नहीं सकता इसलिये वह सच्चा यज्ञ नहीं है पर सच्चा यज्ञ इस प्रकार है - 'जीवरूप अग्निकुण्ड में मन वचन काय की शुभ प्रवृत्तिरूप कुडछो से शुभ प्रवृत्ति का घी सींच कर शरीर रूप छाणे और दुष्कर्म रूप लकड़ों को प्रदीप्त कर शान्तिरूप प्रशस्त होम को ऋषि नित्य प्रति करते है। यही सच्चा होम है ॐ।

ॐकि माहणा जोइ समारभता उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ?
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं न त सुदिट्ठं कुसला वयंति ॥३८॥
कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं साय च पाय उदयं फुसंता।
पाणाइं भूयाई विहेठयंता भुज्जोवि मंदा पक रेह पावं ॥३९॥

यज्ञ का ऐसा स्वरूप जिन प्रवचन में स्थान-स्थान पर बतलाया हुआ है। भगवान महावीर ने उस वक्त के समाज में यज्ञ के विषय में इस प्रकार की मान्यता का प्रचार कर हिंसात्मक यज्ञ का खुले आम विरोध किया और उसे रोका था।

भगवान् के समय में और आज भी मात्र जल स्नान में बहुत लोग धर्म समझते हैं ॐ। गंगा स्नान,

तवो जोइ जीवो जोइठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंग।
कम्म एहा संजमजोग संती होमं हुणामि इसीणं पसत्थं ॥ ४०॥
उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन—१२

हे ब्राह्मणो, अग्नि में आलभन करते हुए तुम जल द्वारा बाहर की शुद्धि को क्यों शोधते हो? तुम जो बाहर की शुद्धि खोजते हो वह अच्छी नहीं है ऐसा कुशल पुरुष कहते हैं। (३८)

कुश, यूप, घास, लकड़, अग्नि और जल सायं और सबेरे स्पर्श करते तुम मन्द प्राण भूत की हिंसा करते हो और उससे बार-बार पाप करते हो। (३९)

सच्चा होम तो यह है—तप यह अग्नि है, जीव यह अग्नि का स्थान है, प्रवृत्तियाँ कुडछी है, शरीर छाणे हैं, पुण्य पाप ये लकड़े हैं और संयम यह शान्ति है। ऋषिओंने ऐसे होम की प्रशंसा की है। (४४)

ॐ—"उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति सायं च पायं उदग फुसंता।
उदगस्स फासेण सिया य सिद्धी सिज्झिंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४ ॥
मच्छा य कुम्मा य सिरीसिवा य मग्गू य उट्टा दग रक्खसा य।
अट्ठाणमेय कुसला वयंति उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५
सूत्र कृतांग प्रथम श्रुत स्कंध अध्ययन—७

सुबह और सायं पानी का स्पर्श करते जो लोग

त्रिवेणी-स्नान, प्रयाग स्नान महात्म्य विषयक ग्रन्थों की परम्परा हमारे देश में आज कतिपय समय से चली आती है। और भोले लोग गंगा में स्नान कर अपने को पुण्य प्राप्त हुआ मानते हैं।

इस प्रकार के स्नान के माहात्म्य के असर से आज के जैन भी शेत्रुंजी नदी के स्नान में धर्म मानने लगे हैं। भगवान कहते हैं कि स्नान तो मात्र शरीर के मल को—और वह भी घड़ी भर के लिए-ही दूर करता है परन्तु आत्मा के मल को जरा भी दूर नहीं कर सकता अत: यह स्नान सच्चे पुण्य का कारण नहीं है। परन्तु सच्चा स्नान करना हो तो धर्मरूप जलाशय में आए हुए ब्रह्मरूप पवित्र घाट पर स्नान करना चाहिये जिससे कि वह वास्तव में शीत, विमल और विशुद्ध होता है †।

भगवान् ने स्नान की इस प्रकार व्याख्या कर विवेकपूर्वक बाह्य स्नान का निषेध किया है—ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। परन्तु जो जनता मात्र जलस्नान में ही धर्म मानती और उसीसे आत्मशुद्धि समझती है उसके लिए भगवान ने जीवनशुद्धि के लिए सच्चे स्नान का स्वरूप बतला कर सच्चा मार्ग खोला है।

उनके समय में लोग पुण्यकर्म समझ वेद को केवल कंठस्थ कर रखने और अर्थ का विचार भाग्य से ही करते थे। वेद के अर्थ की परम्परा भगवान् के पहिले के समय से ही टूट जाने का प्रमाण यास्काचार्य खुद ही हैं, कारण वे वैदिक शब्दों का स्पष्ट अर्थ नहीं कर सकते थे परन्तु तत्सम्बन्धी अनेक मतमान्तरों के साथ अपना अमुक मत बतलाते हैं अतः बहुत काल से वेद के अर्थ का विचार करना लोगों ने छोड दिया था और वेद जैसा ग्रन्थ होने से उसे कंठस्थ करने में और स्वरपूर्वक उच्चारण करने में ही पुण्य माना जाता था और ब्राह्मण लोग यह मानते थे कि वेद को पढ़ कर ब्राह्मणों को जीमाकर और पुत्र उत्पन्न करने के बाद ही आरण्यक तपस्वी हुआ जा सकता है ※।

परन्तु इस प्रकार का जड़ कर्मकांड जीवनशुद्धि का एकान्त घातक है यह समझ कर उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि वेदोंका॥ अध्ययन आत्मा का रक्षण नहीं कर सकता। जिमाये हुए ब्राह्मण आलसी होने से

जल द्वारा सिद्धि मानते है उनके मत से तो जल के स्पर्श के कारण जल में रहनेवाले जीव मात्र की सिद्धि होनी चाहिये। (१४)

उदाहरण के लिए मछलियाँ, काचबे, सर्प, उंट, (एक प्रकार का जलचर जीव) और जल राक्षस ये सब प्राणी निरन्तर जीवन पर्यन्त जल में रहते हैं तो इनका निर्वाण होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता अतः लोग जो मात्र जल स्नान से सिद्धि होना बतलाते हैं —वह असत्य है—ऐसा कुशल पुरुष कहते है। (१५)

†—उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-१२, गाथा-४६—४७

※ "इमं वयं वेअविओ वयंति—

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भुच्चाण भोए सह इत्थियाहिं आरण्णगा होइ मुणी पसत्था ॥९॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन—१४

वेद के जाननेवाले ऐसा कहते हैं:- वेद को पढ़कर, ब्राह्मणों को जिमाकर, लड़कों को उत्तराधिकारी बनाकर और ससार के भोगों को भोगकर फिर मुनि बनाना ठीक है।

॥ - "वेआ अहीआ न भवति ताणं"—उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन—१४

पाठ किए हुए वेद रक्षण नहीं कर सकते।

जिमानेवाले को लाभ के बदले उलटा नरक में डालते हैं और 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' * ऐसा जो वैदिक प्रवाद है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि उत्पन्न किए हुए पुत्र भी अपने पिता या खुद की आत्मा का रक्षण नहीं कर सकते। इस प्रकार जिन प्रवचन में वेद के शुष्क अध्ययन का विरोध किया गया है और ज्ञान तथा आचार पर एक समान जोर दिया गया है।

भगवान के जमाने में वैदिक या लौकिक संस्कृत को ही महत्व मिलता था—और वह इतना अधिक कि इसी भाषा में बोलने में पुण्य है और अन्य भाषा में बोलने में पाप है। इस हकीकत की प्रतिध्वनि महाभाष्य† के आरम्भ में आज भी देखने में आती है।

* —इम वय वेअविओ वयति—"जहा न होइ असुआण लोगो।
सुत्ता दिआ निन्ति तमं तमेण जाया य पुत्ता न हवंति ताणं॥
उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन—१४

आगे जो यह कहा गया है कि पुत्र रहित मनुष्य को सद्गति नहीं मिलती यह ठीक नहीं है। क्योंकि उत्पन्न हुए पुत्र भी रक्षण नहीं कर सकते और जिमाये गये ब्राह्मण अन्धकार में ले जाते हैं।

† —भूयांसोऽपशब्दा अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः तद्यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी-गोणी गोता—गोपोतलिका—इत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः।
यस्तु प्रयुंक्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः॥
(महाभाष्य के प्रथम सूत्र का प्रारंभ)

अपशब्द अधिक हैं और शब्द कम हैं। एक शब्द के भ्रष्टरूप बहुत होते हैं। जैसे कि एक गो शब्द का ही गावी, गोणी, गोता गोपोतलिका आदि बहुत भ्रष्टरूप होते हैं।

जो कुशल मनुष्य व्यवहार के समय यथावत शब्द का प्रयोग करता है वह वाग्योगविद् अनन्त जय को पाता है और अपशब्द को बोलनेवाला दोषी होता है। भाष्यकार पतंजलि के समय में सामान्य लोग जो शब्द बोलते उन्हें यहाँ अपशब्द कहा गया है और ऐसा कहने का उनका आशय क्या उस समय की प्रचलित लोकभाषा की अवज्ञा करना और कही जाने वाली संस्कृत को पूज्य स्थान देने का नहीं है ?

उसमें संस्कृत के सिवा बाकी भाषाओं को अपभ्रष्ट बतलाया गया है और उसका प्रयोग करने वालों को दोषी ठहराया गया है और इस प्रकार उस समय के कतिपय लोग शब्द को ब्रह्म समझ कर उसी की पूजा के पीछे पड़े हुए थे। इस दिशा में भगवान ने अपने सर्व प्रवचन को उस समय की लोक भाषा में कर उस समय जमी हुई भाषा की झूठी महिमा को तोड़ डाला था और एक मात्र सदाचार ही आत्मशुद्धि का कारण है परन्तु मात्र-भाषा से कुछ होता जाता नहीं है यह बतलाया है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि जुदी-जुदी भाषाएँ आत्मा का रक्षण नहीं कर सकतीं।‡ भगवान बुद्ध ने भी भाषा की झूठी पूजा के प्रवाद को भगवान महावीर की पद्धति से ही अटकाने का प्रयास किया है।

सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के विषय में जो मान्यता अभी प्रचलित है वैसी ही मान्यता

‡ —"न चित्ता तायए भाषा कओ विज्जाणु सासणं ?।
विसण्णा पावकम्मेहिं बाला पंडिअमाणिणो॥"

चित्र विचित्र भाषा किसी का रक्षण नहीं कर सकती और न शुष्क शास्त्राभ्यास ही। अपने को पंडित मानते हुए अज्ञानी पाप करने में लीन रहते हैं।

भगवान के जमाने में भी थी। राहु सूर्य को निगल गया और ग्रहण पूर्ण होने पर राहु ने सूर्य या चन्द्र को छोड़ दिया जैसे मानों राहु का सूर्य और चन्द्र के साथ वैरभाव हो ऐसा उस समय के लोग समझते थे और ऐसा रूपात्मक वर्णन आजतक वैदिक परम्परा में पौराणिक ग्रन्थों में मिलता है। ग्रहण के समय धर्म मान कर जिस तरह लोग स्नान के लिए आजकल दौड़ धूप करते है वैसा उस समय भी करते होंगे—ऐसा मानना गलत नहीं है। कहने का मतलब यह है कि ग्रहण के प्रसंग को धार्मिक प्रक्रिया का रूप देकर लोग जैसे आजकल धूमधाम मचाते हैं वैसे ही उस समय भी मचाते होंगे। उनके सामने भगवान ने कहा कि राहु चन्द्र या सूर्य को निगलता नहीं है और न उनमें किसी प्रकार का वैरभाव ही है। यह तो गगन मंडलमें राहु एक गतिमान पदार्थ है वैसे ही चन्द्र और सूर्य भी गतिमान पदार्थ हैं। जब गति करते करते वे एक दूसरे के आडे आ जाते हैं तब अंश से या पूर्णरूप से एक दूसरे को ढक देता है और फिर अलग भी हो जाते हैं, अर्थात् कोई एक दूसरे से निगला नहीं जाता। जब एक दूसरे को ढक देता है तब लोग उसे ग्रहण हुआ कहते हैं अतः ग्रहण कोई धर्ममय उत्सव नहीं है इस-लिए इस सम्बन्ध में दौड़ धूप भी धर्ममय नहीं है यह प्रगट है। (भा० ३ पा० २७९)

इस प्रकार ग्रहण के सम्बन्ध में प्रचलित जड़-क्रियाओं का, ग्रहण का स्पष्ट स्वरूप बतलाकर, इस स्थल पर स्पष्ट खुलासा किया गया है। आगे शशि और आदित्य का स्पष्ट अर्थ भी बतलाया है। शशि शब्द का पौराणिक अर्थ शश—खरगोश—वाला होता है और आदित्य का अर्थ अदिति का पुत्र ऐसा होता है। भगवान ने इस पौराणिक परम्परा के साथ टक्कर लेने के लिये ही मानो शशि और आदित्य के उनसे भिन्न अर्थ बतलाए हैं।

भगवान शशि का सश्री—श्री सहित-शोभा सहित ऐसा अर्थ करते है अर्थात् जो तेजवान, क्रांतिवान और दीप्तिवान है वह शशि—सश्री। उसको जिन प्रवचन में ससी—सश्री कहा गया है। और आदित्य, भगवान के कथनानुसार जिसको मुख्य भूत - आदि भूत कर काल की गणना हो वह आदित्य है। काल की गणना में सूर्य का स्थान सबसे प्रथम है इसलिए भगवन का कहा हुआ यह अर्थ उपयुक्त है और व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी ठीक है।

भगवान ने आदित्य का जो उपर्युक्त अर्थ बत-लाया है वह [1]मत्स्य पुराण में भी उपलब्ध है।

इस तरह शशि और आदित्य के पौराणिक अर्थों का विरोध कर उनके नए अर्थ किए हैं। और ऐसा कर उन दोनों के प्रति लोग की भ्रान्ति को कम करने का प्रयास किया गया है।

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्'-- (गीता अ० २ श्लो० ३७)—गीता के इस वाक्य में ऐसा कहा गया है कि शत्रु को मार कर तुम स्वर्ग में जाओगे इससे गीता के जमाने में या गीता के समय के पहले से ही लोगों में ऐसी मान्यता फैली हुई थी कि लड़नेवाला व्यक्ति स्वर्ग जाता है। इस मान्यता के कारण बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में लड़नेवाले खूब मिल जाते थे और इस तरह मनुष्य जाति का कच्चर घाण निकलता (नाश होना) था। इसको रोकने के लिए भगवान् ने इस मान्यता पर स्पष्ट प्रकाश डाला है और कहा है कि लोग युद्ध से स्वर्ग मिलने की बात करते हैं, वह मिथ्या है। पर वास्तविक बात तो यह है कि लड़नेवाला स्वर्ग में ही

---

१ "आदित्य श्चादि भूतत्वात्"—मत्स्यपुराण अ० २ श्लो० ३१

जाता है ऐसा नहीं है, परन्तु वह अपने शुद्धाशुद्ध कर्म के अनुसार भिन्न २ योनिओं में जन्म धारण करता है। (भा० ३ पा० ३२)

इस तथ्य को कह कर भगवान् ने, युद्ध स्वर्ग का साधन है, इस प्रकार की लोगों में फैली हुई धारणा को झूठा ठहरा कर लोगों को युद्ध के हिंसामय मार्ग से दूर रहने की खास हिदायत की है।

उस समय प्रचलित दिशा पूजा की प्रथा को लोगों में से दूर करने और उसका सच्चा स्वरूप बतलाने के लिए भगवान ने इस सूत्र में दिशा की भी चर्चा की है। दशवें शतक के पहले उद्देशक की शुरूआत दिशा के विवेचन से की गई है। भगवान ने गौतम को कहा है कि दिशाएँ दस कही गयी हैं जिनके क्रम-पूर्वक नाम ऐन्द्री (इन्द्र के स्वामित्ववाली), आग्नेयी (अग्नि के स्वामित्ववाली), याम्या (यम के स्वामित्व वाली), निऋृति (निऋृति नाम के देव के स्वामित्व वाली) वारुणी (वरुण देव के स्वामित्ववाली), वायव्य (वायु के स्वामित्ववाली), सौम्या (सोम के स्वामित्ववाली), ऐशानी (ईशान के स्वामित्ववाली), विमला और तमा इन दस दिशाओं के पुराण-प्रसिद्ध उपर्युक्त नाम सूचित करने के उपरान्त नीचे के प्रसिद्ध शब्द भी बतलाए गये हैं। पूर्व, पूर्व-दक्षिण, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, पश्चिमोत्तर, उत्तर, उत्तर-पूर्व, ऊर्ध्व, अधो—ये सब दिशाएँ जीवाजीव के आधार रूप हैं इसलिये उपचार से इन दिशाओं को जीव अजीव रूप भी कहा गया है। दिशा को द्रव्य रूप मानने की पद्धति वैदिक परम्परा की * वैशेषिक शाखा में प्रसिद्ध है।

वैदिक काल में दिशाओं की पूजा करने का प्रचार था, यह हकीकत उस साहित्य पद से जानी जा सकती है और दिशाओं का प्रोक्षण कर भोजन करने की पद्धति एक व्रत के रूप में अमुक परम्परा में प्रचलित थी और इस परम्परा को माननेवाले लोग दिशा× पोक्खिणो कहलाते थे यह बात जैनागमों में भी मिलती है। इस प्रकार वेद की प्राचीन परम्परा में दिशाओं का महत्त्व विशेष प्रसिद्धि पा चुका था और दिशाओं की पूजा का प्रचार भी लोगों में ठीक-ठीक था। इस जड़ प्रचार को रोकने के लिए ही भगवान ने दिशा के माहात्म्य की निष्प्रयोजनता बतलाने के लिए उनको इस सूत्र में जीवाजीवात्मक बतलाया है। दिशा मात्र आकाशरूप होने से जीवाजीव रूप समस्त पदार्थों का आधार रूप है, यह बात सच है, परन्तु केवल इतने से उनकी जड़ पूजा करना शुरू कर देना आध्यात्मिक शुद्धि या जीवन-शुद्धि के लिए जरा भी उपयोगी नहीं है।

जो लोग जल से दिशाओं को अर्घ्य देकर फल, फूल को ग्रहण करते है, वह दिशा प्रोक्षी कहलाते हैं।

भगवान् बुद्ध ने भी दिशाओं को जड़ पूजा को रोकने के लिए अपने प्रवचनों में अन्य तरह से प्रयत्न किया है। दीघनिकाय१ के तृतीय वर्ग के सिगालो-विवाद सुत्त में लिखा है कि एक बार बुद्ध भगवान् राजगृह के वेणुवन में रहते थे। उस समय सिगाल नामक एक युवक शहर से बाहर आ रोज सुबह स्नान कर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे—इन छओं दिशाओं को नमस्कार किया करता। राजगृह में

*—"पृथ्वी व्यापस्तेजो वायुराकाश कालो दिग् आत्मा मन इति द्रव्यानि"

(वैशेषिक दर्शन प्रथम अध्याय)

×—"उदके न दिशः प्रोक्ष्य ये फल-पुष्पादि समुच्चिन्वन्ति

औपपातिक सूत्र पृ० ९०

१—जुओ दीघनिकाय—उपर्युक्त सूत्र

भिक्षा के लिए जाते हुए बुद्ध ने उसको देख कर कहा "गृहपतिपुत्त! तुम ने यह क्या किया करते हो।" सिगाल बोला—"हे भदन्त! मेरे पिता ने मरते समय ६ दिशा-ओंकी पूजा करते रहने की आज्ञा मुझे दी है अतः यह दिशाओं को नमस्कार करता हूं।" भ० बुद्ध बोले "हे सिगाल! तुम्हारी यह नमस्कार विधि आर्यों की पद्धति के अनुसार नहीं है"। तब सिगाल ने आर्यों की रीति अनुसार ६ दिशाओं की नमस्कार विधि बतलाने के लिये बुद्ध से विनती की। भगवान बुद्ध ने कहा—"जिस आर्य श्रावक को ६ दिशाओं की पूजा करनी हो उसे चार कर्म, क्लेशों से मुक्त होना चाहिए; चार कारणों से पाप कर्म करना उसे उचित नहीं और सपत्तिनाश के ६ द्वारों को अङ्गीकार करना भी उसे उचित नहीं। इन चौदह बातों को सुने तब ही वह ६ दिशाओं की पूजा करने के योग्य बनता है।" इसके बाद बुद्ध ने उसे कहा कि "हे भाई! मा बाप पूर्व दिशा है, गुरु को दक्षिण दिशा समझना; पत्नी-पुत्र, पश्चिम दिशा; संगी साथी उत्तर दिशा; दास और मजूर नीचे की दिशा तथा श्रमण ब्राह्मण ऊपर की दिशा समझना। यह कह कर इन दिशाओं की पूजन की पद्धति बुद्ध भगवान ने विस्तार से समझायी है।

इस पर से यह मालूम पड़ता है कि भगवान बुद्ध के समय में दिशाओं की जड़ पूजा का प्रचार खूब जोर से हुआ होना चाहिए। जिसको रोकने के लिए श्रीबुद्ध ने नए प्रकार से दिशा की पूजा की पद्धति लोगों को बतलायी और भगवान महावीर ने पूर्वोक्त रीति से दिशाओं को जीवाजीवात्मक बतला कर उस जड़ पूजा से लोगों को बचाने का प्रयत्न किया। यह हक़ीक़त इस सूत्र में आए दिशा के प्रकरण पर से स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। दिशा सम्बन्धी भगवान के प्रवचन उस समय की दिक् पूजा की रूढ़ि को नाबूद करनेवाले हैं।

इस प्रकार भगवान ने अपने समय की कुरूढ़ियों को नाबूद करने के लिए और उनके स्थान पर सुमार्गका प्रचार करने के लिए बहुत प्रयास किया है। इस प्रकार के उदाहरण बहुत दिये जा सकते हैं पर ऊपर के उदा-हरण नमूने स्वरूप हैं।

भगवान महावीर और भगवान् बुद्ध ने कुरूढ़ियों को दूर कर लोगों को सुमार्ग पर लाने के लिए अपने प्रवचनों में पूर्वोक्त कतिपय बातें बतलायी हैं। इसीसे ये दोनों महापुरुष उस समय के प्रबल सुधारक थे, यह जो आजकल के शोधक मानते हैं वह सत्य है। आर्यों के बतलाए हुए अहिंसा और सत्यमय मार्ग में जो कुछ कूड़ा करकट भर गया था उसे दूर करने में इन दोनों महापुरुषों ने बहुत प्रयत्न किया है, इसमें शक नहीं है।

कुछ ऐसी वैदिक मान्यताएँ थीं जिनसे लोगों में हिंसा, असत्य, जड़ता वगैरह दुर्गुणों की वृद्धि होती थी और इससे उस समय की प्रजा भी ऊब गयी थी। इस प्रजा को सन्मार्ग बतलाने के लिए भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर कल्याण—रूप से न प्रगट हुए होते तो आज हमारी क्या दुर्दशा होती यह कौन कह सकता है?

हमारी सभा संस्थाएँ

ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता

१—प्रान्तीय निर्वाचन सम्बन्धी कार्य :—

नए विधान के अनुसार संगठित होनेवाली बंगाल लेजिस्लेटिव एसेम्बली एवं कौंउन्सिल के चुनाव में वे ही व्यक्ति मत दे सकते हैं जिनका नाम सरकार की ओर से तैयार की हुई निर्वाचक सूची में हो। आरम्भिक सूची ता० ३ अगस्त को प्रकाशित हुई है। मताधिकार के क्या लाभ हैं यह समझाने के लिये तथा उपरोक्त सूची में नाम न हो तो उसमें नाम लिखाने के लिए उत्साहित करने के लिए गत ता० १ अगस्त ३६ को श्री डालिमचन्दजी सेठिया, बार-एटला के सभापतित्व में समिति की ओर से सब ओसवालों की आम सभा बुलायी गयी थी। उपस्थिति संतोषजनक न थी फिर भी उपस्थित सज्जनों को मताधिकार का लाभ समझाया गया और इस अधिकार को काम में लाने के लिए उपरोक्त सूची में नाम न हो तो लिखवाने के लिए एप्लीकेशनादि करने की अपील की गयी।

२—शोक सभा :—

सरदार शहर निवासी श्रीयुक्त रामलालजी दूगड़ की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए समिति की एक विशेष सभा ता० ९ अगस्त ३६ को बुलाई गयी थी। निम्नलिखित शोक प्रस्ताव पास हुआ।

'ओसवाल नवयुवक समिति की यह विशेष सभा समाज सेवी, विद्वान् और उत्साही युवक सरदार शहर निवासी श्री रामलालजी दूगड़ की आकस्मिक और असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करती हुई उनके शोक-सन्तप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करती है।'

३—सरदार शहर में हैज़ा:—

गत जुलाई मास के अन्तिम सप्ताह में सरदार शहर (बीकानेर) में हैजे की महामारी फैल गयी। फैलते-फैलते इसने इतना उग्र रूप धारण किया कि सैकड़ों अमूल्य जानें इसकी ज्वाला में भस्म हो गई। लोग घबड़ाकर अपने घरबार छोड़-छोड़ भागने लगे। इस कर्त्तव्य मय अवसर पर समिति ने अपनी ओर से वहां पर सेवा कार्य करने का विचार किया। गत ता० १० अगस्त को समिति की कार्यकारिणी का एक जरूरी (urgent) अधिवेशन बुलाया गया और उसमें इस कार्य को तत्परता से करने का निश्चय हुआ।

ता० ११—८-३६ को ओसवालों की आम सभा भी समिति की ओर से बुलायी गयी जिसमें करीब ७० सज्जन उपस्थित थे। इस कार्य के लिए काफी संख्या में स्वयंसेवकों ने अपने नाम लिखाए। तथा यह निश्चय

हुआ कि स्वयंसेवकों और डाक्टरों का प्रथम जत्था ता० १३ को यहाँ से भेज दिया जाय। इसके अतिरिक्त सरदारशहर की वास्तविक परिस्थिति और वहाँ की खास आवश्यकताओं को जानने के लिए श्रीयुक्त रुघलालजी आँचलिया आदि प्रतिष्ठित सज्जनों को तार दिए गये। एक तार बीकानेर महाराज को भी दिया गया था जिसमें लिखा गया था--

'सरदार शहर में सेवाकार्य के उद्देश्य से हम डाक्टर, कम्पाउण्डर स्वयं सेवक एवं औषधियाँ आदि भेज रहे हैं, कृपया सरदारशहर के राजकर्मचारियों को सुविधा देने की आज्ञा करें।'

ता० १२ को बीकानेर महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय का निम्न लिखित आशय का तार प्राप्त हुआ 'कल का तार प्राप्त हुआ सरदारशहर में रोग प्रायः शान्त हो चुका है फिर भी आपका प्रस्ताव धन्यवाद के साथ स्वीकार किया जाता है।'

ता० १३ को हमारे पास श्रीयुक्त रुघलालजी आँचलिया तथा श्रीयुक्त श्रीचन्द गणेशदास की ओर से भी एक-एक तार आया जिसमें लिखा था:—

'वर्षा हो चुकने से दो दिन से कोई नए रोगी नहीं हुए।'

इन तारों से तथा अन्य लोगों के पास आए हुए समाचारों से यह अच्छी तरह स्पष्ट था कि अब सरदारशहर में तात्कालिक (immediate) सेवा-कार्य की कोई आवश्यकता न थी इसलिए समिति की ओर से डाक्टरादि भेजना अनावश्यक समझा गया।

इस अवसर पर जिन स्वयंसेवकों ने कार्य करने के लिए अपने नाम दिये थे खास कर डाक्टर जेठमलजी भन्साली को जिन्होंने सर्व प्रथम अपनी सेवाएँ इस कार्य के लिए देने की तत्परता दिखाई थी—उनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इस अवसर पर हम उन सज्जनों को भी धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते जिन्होंने इस कार्य के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता करने का वचन दिया था।

श्रीचन्द रामपुरिया
मंत्री

श्री जीवदया ज्ञान प्रचारक मंडल, गुढ़ा बालोतरा

उपरोक्त संस्था के पांचवे और छठे वर्ष की कार्य-विवरणपुस्तिका मिली। इन दो वर्षों के कार्य का विवरण पढ़ कर हम संस्था के कार्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

गुढ़ा बालोतरा जैसे मारवाड़ के शिक्षा-शून्य भू-भाग में जिस उत्साह और शक्ति के साथ इस संस्था ने कार्य किया है-- और कर रही है, वह सराहनीय है। अहिंसा और जीव-दया जैन-धर्म का मूलसिद्धान्त है। जिस प्रकार इस सिद्धान्त का प्रचार होना चाहिये उसी प्रकार व्यवहारिक रूप से हिंसा और हत्या का विरोध भी होना चाहिये। इस मण्डल ने हजारों मूक पशुओं की हिंसा रोकी है। पर इस रिपोर्ट के ६-७ वें पृष्ठ पर सूचित किया गया है कि मण्डल के कार्यकर्ताओंने अधिकारी जैन विद्वानों से अपील की कि अपने विचारों से उनको सहायता करें—विशेषकर जब किसी गाँव के ठाकुर ने उनसे यह कहा है—कि तुम अगर हिंसा के विरुद्ध मुझे उचित समाधान करा दो तो मैं गाँव भर की हिंसा रोक दूँ; उनकी अपील का समाज की ओर से कुछ भी उत्तर नहीं दिया जाना अवश्य खेद जनक है। वैसे अहिंसा के सिद्धान्त पर अपने यहां ग्रन्थ लिखे पड़े हैं पर जिस व्यवहारिक और नवनीति से उनका विवेचन वे चाहते हैं उनकी अवश्य कमी है।

संस्था के कार्यकर्त्ताओं को उनकी तत्परता के लिये धन्यवाद है— और समाज की उदासी तथा अकर्मण्यता के लिये दुख है।

'भंडारी पैथालाजिकल लेबोरेटरी' का उद्घाटन

१८ जुलाई १९३६ को इन्दौर के किंग एडवर्ड अस्पताल में स्थानीय ए० जी० जी०, पोलिटिकल एजेन्ट मालवा, सर सिरेमल वापना व अन्य बड़े २ अफसरों की उपस्थिति में "भण्डारी पैथालाजिकल लेबोरेटरी" का उद्घाटन बड़े समारोह से हुआ।

उद्घाटन के पूर्व मि० फिट्ज़ ए० जी० जी० सेन्ट्रल इंडिया ने श्री कन्हैयालालजी भंडारी के दान की सराहना करते हुए एक समयोचित भाषण दिया।

ए० जी० जी० ने अपने भाषण में बतलाया कि अस्पताल से संयुक्त मेडिकल स्कूल की आर्थिक दशा इतनी शोचनीय थी कि यदि श्रीयुत भंडारीजी २५०००) रु० का यह दान देकर अपनी उदार मनोवृत्ति का परिचय न देते तो स्कूल बन्द करना पड़ता। मि० फ़िट्ज़ ने आगे चल कर कहा कि - "इस दान के उपयोग से चिन्ताजनक परिस्थिति का कुछ समय के लिये अवश्य निवारण हो गया है परन्तु कुछ समय में फिर यही कठिन समस्या उपस्थित होगी। यही कारण है कि हम श्री भंडारीजी का आभार मानते है, कि उन्होंने केवल दान देकर इस स्कूल को पुनर्जीवन ही नहीं दिया परन्तु और सज्जनों के लिये एक उज्ज्वल उदाहरण भी रक्खा है।"

अन्त में मि० फिट्ज़ ने मिसेज़ फ्रेज़र से प्रार्थना की कि वे लेबोरेटरी का उद्घाटन करें।

उद्घाटन समारोह के बाद श्री भंडारीजी की तरफ़ से सब निमन्त्रित सज्जनों को 'At Home' दिया गया। इस अवसर पर श्री भंडारीजी ने स्कूल के ४०० विद्यार्थियों व उनके अध्यापकों को मिठाई वितरण की।

श्रीयुक्त भंडारीजी के इस दान एवं उदार मनोवृत्ति का हमारे समाज को गर्व होना चाहिये। हम श्रीयुक्त भंडारीजी को बधाई देते हैं।

श्री अ० भा० अग्रवाल महासभा—

श्री अखिल भारतवर्षीय अग्रवाल महसभा के मंत्री ने आगामी वर्ष के लिये एक व्यवहारिक योजना प्रकाशित की है—जिसमें समाज सुधार के वे सभी क्रियात्मक अंग सम्मिलित कर लिये गये हैं जिनकी 'लिस्ट' हमारी सभा संस्थाओं के विधानों में बिना हेर-फेर के सभी जगह देखी जाती है। एक तरह से यह स्वाभाविक भी है क्योंकि हमारे समाजों में इन सब सुधारों की आवश्यकता है। इन सुधारों के लिये संगठित संस्थाएँ ही अधिक सफलता पूर्वक प्रयत्न कर सकती है— और ऐसी प्रत्येक संस्था के कार्यकर्त्ताओं को पूरी शक्ति और भावना के साथ कार्य करना चाहिये।

इसी आशा को लेकर हम अग्रवाल महासभा की योजना का हृदय से स्वागत करते हैं और सफ़लता की कामना करते हैं— जो वास्तव में सभा के सच्चे सेवा, भावी कार्यकर्त्ताओं की शक्ति और लगन पर निर्भर है।

सम्पादकीय

रोटी का सवाल

इस युग ने हमारे जीवन में इतनी समस्याएं उत्पन्न कर दी है--कि उन पर अलग २ विचार करना असम्भव सा प्रतीत होता है, पर तब भी जीवन इनमें इतना उलझ गया है कि उसकी रक्षा के लिये इन पर विचार करना ही होगा। इस संसार में रहते हुए हमारे सामने रोटी का सवाल सबसे बड़ा है--और इस सम्बन्ध में बेकारी का प्रश्न प्रधानरूप से हमारा ध्यान आकर्षित करता है। सबसे पहले हमारे सामने सवाल उठता है कि हमारे समाजमें बेकारी क्यों बढ़ी? इसका उत्तर मोटामोटी तो वही होगा जो संसार-व्यापी बेकारी बढ़ने के विषय में दिया जाता है। संसार-व्यापी बेकारी बढ़ने के सम्बन्ध में स्थूल दृष्टि से यही कहा जाता है कि मशीनों का आविर्भाव होने से मनुष्य बेकार हो गये क्योंकि एक ही मशीन अनेक मनुष्यों का कार्य सम्पन्न कर देती है; संसार की जन-संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है; देशों में परस्पर विश्वास और सहयोग नहीं रहा; आदि-आदि। किन्तु इससे भी गहरे उतर कर विचार करनेवाले बताते हैं कि मशीनवाद बेकारी बढ़ने का कारण नहीं है। मशीनों से तो संसार की उत्पादन शक्ति बढ़ी है। वे यह भी कहते हैं कि संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या भी इसका कारण नहीं हो सकती क्योंकि संसार की वर्तमान उपज इन्हीं मशीनों के कारण इतनी पर्याप्त है कि सारे संसार का पेट भरने के बाद भी बाकी बची रहे। पृथ्वी ने अब भी सोना उगलना बन्द नहीं किया है। बेकारी का जो कारण ये बताते है, वह है संसार की वर्तमान समाजिक व्यवस्था जो असमानता के सिद्धान्त पर स्थित है। मशीनें आजकल समाज की नहीं किन्तु व्यक्तियों की जायदाद है। इन मशीनों की सहायता से प्राप्त उपज समाज के लिये नहीं होती, केवल उन व्यक्तियों के लिये होती है, जो मशीनों के मालिक है। ये मशीनों के मालिक, केवल अपने भरे हुये पेट को और भरने के लिये इन यंत्रों द्वारा प्राप्त उपज पर अपना अनुचित एकाधिपत्य किसी भी मूल्य पर बनाये रखने को कटिबद्ध रहते है। अगर उपज संसार की आवश्यकता से अधिक होती है तो ये मशीन-मालिक जो समाज में मुट्ठी भर भी नहीं हैं, बाज़ार में उस उपज का दाम बढ़ाये रखने के लिये, उस उपज को अनुचित रीति से नष्ट करने में भी नहीं सकुचाते और इस प्रकार अपनी पाशविक स्वार्थ परता को चरितार्थ करते है। कई बार ऐसा देखने में आया है कि गल्ले का भाव ऊंचा रखने के लिये गल्ला समुद्र में फेंक दिया गया, जब कि लाखों मनुष्य अन्न के एक-एक दाने को तरसते रहे। संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या केवल

उनकी इस अर्थ-क्षुधा को बढ़ाने में ही सहायता करती है, क्योंकि अधिकांश व्यक्ति गरीब है और इन्हीं मशीन-मालिकों पर आश्रित हैं और अपने भूखे पेट को भरने के लिये वे इन्हीं का मुंह ताकते रहते हैं। उनकी खाने की मांग इनके यंत्रों की उपज को और भी अधिक मंहगा करती है। अतः दूसरों का भूखा पेट ही इनकी स्वार्थपरता और अर्थलोलुपता को बचाये रखनेवाला है।

अपनी इन्हीं उपरोक्त दलीलों पर अड़े रह कर वे विचारशील व्यक्ति कहते जाते हैं कि यही स्वार्थ भरा सिद्धान्त केवल व्यक्तियों ही में शामिल नहीं, समाजों में, देशों में, राष्ट्रों में और सारे जगत में वर्तमान समय में काम कर रहा है। एक उन्नत समाज अपने से कमजोर समाज पर जैसे हिन्दू उच्चवर्ण समाज अछूत समाज पर, इसी स्वार्थपरता के वशवर्त्ती होकर अपना अनुचित दबाव जमाये रहता है। एक उन्नत राष्ट्र अपने से कमजोर राष्ट्र पर, जैसे इङ्गलैण्ड भारत पर, इसी अर्थ-लोलुपता के कारण अपना शासन किसी भी अनुचित उपाय से कायम रखने को आतुर रहता है। यह परस्पर का वैमनस्य, यह बढ़ती हुई भीषण बेकारी और यह आर्थिक संकट केवल उसी समय जड़-मूल से नष्ट होगा, जिस दिन यह भीषण आर्थिक और सामाजिक असमानता मिट कर समानता फैल जावेगी और ये मशीनें व्यक्तियों की जायदाद न होकर समाज की जायदाद होंगी और उनकी उपज केवल कुछ व्यक्तियों के लिये न होकर सारे समाज के लिये समान रूप से होगी।

लेकिन प्रस्तुत अर्थशास्त्र और उसके आचार्य उपरोक्त सिद्धान्त को स्वीकार न कर पूंजीवादियों की सत्ता को क़ायम रखते हुये केवल इन्हीं पूंजीवादियों की सद्भावना और स्वच्छ मनोवृत्ति पर संसार का भला अवलम्बित बतलाते है। कुछ भी हो! हम इन कारणों पर बहस नहीं करना चाहते। कारण कुछ भी रहे हों, पर उनका असर हमारे समाज पर भी कम नहीं पड़ा है। इन कारणों के साथ-साथ कुछ और भी ख़ास कारण हैं, जो केवल हमारे ही समाज से सम्बन्ध रखते हैं। वे हैं हमारे समाज की अशिक्षा और उद्योग-धंधों से हमारी उदासीनता और हमारा लकीर के फ़कीर बने रहना। 'बेकारी की समस्या' एक हमारे ही समाज के आगे हो, यह बात नहीं। आज संसार के सभी देश इस प्रश्न का हल न पा सकने के कारण परेशान है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहां सभी देश और सभी समाज अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझ कर कम-से-कम अपने-अपने दायरे से इस भूत को भगाने के लिये आतुर हैं। वहां हमारा समाज अभी इस समय में बिलकुल निश्चेष्ट है। इस समय इस समस्या को हल करने की चेष्टा करनेवालों को मोटामोटी दो दलों में बांटा जा सकता है। एक वह दल है, जो मशीनों ही को-मशीन मालिकों को नहीं—सर्वनाशकारी समझ कर मशीनों का बहिष्कार कर गृह शिल्प (Cottage industries) का उत्थान चाहता है। परन्तु इस दल के लोग थोड़े हैं क्योंकि आज समय का प्रवाह ही दूसरी तरफ़ है। आज मनुष्य के पास भीम और हनुमान की तरह शारीरिक शक्ति नहीं, वैज्ञानिक शक्ति है। आज मनुष्य को केवल पेट भरने की सामग्री ही नहीं, बल्कि आमोद की सामग्री भी चाहिये। दूसरा दल इस सिद्धान्त का पक्षपाती है कि विज्ञान के मार्ग में संसार इतना आगे बढ़ गया है, मनुष्य इतना वैज्ञानिक हो गया है और

उसकी आवश्यकताएं इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि सिवाय मशीनों के और कोई उनकी पूर्ति नहीं कर सकता। मशीनों की बढ़ती हुई शक्ति इस जमाने में राष्ट्र विशेष की सच्ची शक्ति की परिचायक है। वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य की अपनी बुद्धि की उपज है। प्रकृति के ऊपर मनुष्य की यह विजय है। इन लोगों की समझ में इससे जान बूझ कर मुख मोड़ना, विजेता होकर पराजित हो जाना, सिवाय मूर्खता के और कुछ नहीं है। पर वास्तव में देखा जाय तो सत्य इन दोनों के बीच में है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह बढ़ती हुई जड़ सभ्यता, मशीनवाद और उसका अनुगामी पूंजीवाद ही हमारे समाज की असमानता और वर्गद्वन्द्विता का कारण है। संसार की बेकारी, अविश्वास और असमानता आदि बुराइयों को दूर करने के लिये वर्त्तमान समाज की व्यवस्था प्रणाली में सुधार होना जरूरी है। बुराइयां केवल उसी समय जड़ से दूर हो सकती है, जब हम समाज में रह कर समाज से अलग अधिकारों के इच्छुक न रहें—हम समाज से भिन्न अपना कोई हित नहीं समझें। जब 'काम नहीं तो रोटी भी नहीं' वाला सिद्धान्त हम सब के लिये समान रूप से लागू हो।

हम उपरोक्त समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में केवल स्वप्न ही नहीं देखते बल्कि उसके विषय में पूरे आशा-वादी भी हैं, हां, उस व्यवस्था के स्थापित होने में देर भले ही हो जाय। पर अगर इस वर्त्तमान अवस्था में शीघ्र ही कुछ आवश्यक रद्दोबदल न हुआ और ये धनिक केवल अपनी ही तोंद का खयाल रखते रहे तो उस क्रान्ति के उपस्थित होने में वह देर भी न होगी। हमें अब इसी बात पर विचार करना है कि वह आवश्यक रद्दोबदल क्या है? जिस प्रकार किसी ऐसे रोग के लग जाने पर, जो मरने पर्यंत नहीं छूटता, उस रोग के छूटने की आशा न रहते हुए भी उसको अधिक काल तक दबा रखने के लिये सद्य-उपचार किया जाता है, इसी प्रकार हम यह जानते हुए भी कि बिना समाजवाद का नूतन जामा पहने हमारी शिकायतें मिटने की नहीं, फिर भी वर्त्तमान व्यवस्था को बहुत जल्द न मरने देने के विचार से उसी के सुधार के लिये सद्य-उपचार ढूंढ़ निकालना चाहते हैं।

अब हम अपने समाजके माननीय धनियों से चन्द शब्द कहना चाहते है। चूंकि आपही समाज के स्तम्भ है, आपही समाज का प्रतिनिधित्व करते है, अतः आप से हम पूछते हैं कि बताइये आपने इस बेकारी की समस्या को दूर करने का क्या प्रयत्न किया? अगर आपने कुछ प्रयत्न किया तो आप हमारी प्रशंसा और हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। और अगर नहीं किया तो आप हमारे शब्दों पर तनिक ध्यान दीजिये। बेकारी के कारणों का हम ऊपर विशद विवेचन कर चुके हैं और उसके हटाने का एक मात्र उपाय भी हम बता चुके हैं। पर हम इस सत्य को स्वीकार करने में भी नहीं सकुचाते कि हमारा समाज अशिक्षित है, पिछड़ा हुआ है। अतः हम आपसे यह अभी नहीं कहना चाहते कि आप सामज की जायदाद समाज—जो इन्हीं अशिक्षित व्यक्तियों का एक समूह मात्र है—के अयोग्य हाथों में सौंप कर एक विश्वासपात्र ट्रस्टी की तरह सम्मानित हूजिये। समाज की थाती समाज को सौंपने के पहले एक कर्त्तव्यपरायण ट्रस्टी की तरह यह आप का कर्त्तव्य है कि उन नाबलिग़ हाथों को जिन में यह धरोहर सौंपी जाय, योग्य बनावें। समाज के होनहार नवयुवकों को व्यापारिक शिक्षा—क्योंकि

हमारा समाज एक व्यापार-जीवी समाज है—दिलाने का उचित प्रबन्ध कीजिये। अन्य औद्योगिक और प्रगतिशील देशों में औद्योगिक शिक्षा के लिये उन्हें भेजने का प्रबन्ध कीजिये। समुद्र पार जाने से धर्महानि होती है आदि अनुदार विचारों को तिलांजली दीजिये। एक बार आँख उठा कर देखिये कि हमारे समाज में कितनी अशिक्षा भरी है। कलकत्ते में, जहाँ हमारा समाज अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील, अधिक उन्नत और अधिक सुधार प्रेमी है, कितने बैरिस्टर, कितने चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट और कितने अन्य उपाधियों से भूषित हैं।

हम प्रसंगवश आपसे इतना कह गये। नहीं तो कहना यह है कि बेकारी को दूर करने के लिये आप क्या करें? हम आप ही के पक्ष में होकर आपको बतलाना चाहते हैं कि उस उथल-पुथल को शीघ्र न आने देने के लिये आप को जल्दी ही ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिसमें समाज के इन असन्तुष्ट व्यक्तियों के हृदय में शान्ति अधिक काल तक बनी रहे और उनको अपनी जीविका उपार्जन का साधन प्राप्य रहे। इस के लिये आपको चाहिये कि आप दूसरे देशों और दूसरे समाजों की ओर आँख उठा कर देखें और अधिक नहीं तो वही करें जो वे कर रहे हैं। उनको देखिये, वे अपना अपना बल बढ़ाने के लिये, अपने-अपने दायरे से इस बेकारी के भूत को भगाने के लिये, नये-नये उद्योग धन्धे खोल रहे हैं, नये-नये व्यवसायों में हाथ डाल रहे हैं अशिक्षा को भगाने का प्रयत्न कर रहे हैं और व्यवहारिक शिक्षा देकर नवयुवकों को भावी जीवन के लिये तैयार कर रहे हैं। आप भी आगे आइये, उन्नत उद्योग धंधों में हाथ डालिये, नवयुवकों को तैयार कीजिये। समाज अगर पिछड़ा रहा तो शर्म आपको आयगी क्योंकि समाज के प्रतिनिधि आप हैं। हम दूसरे समाजों के उन दूरदर्शी बुद्धिमान धनिकों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते जो नये-नये उद्योगों में हाथ लगा कर केवल अपने समाज की ही नहीं, वरन सारे भारत की लाज रखते हैं। उदाहरणार्थ हम माहेश्वरी समाज के स्तम्भ बिड़ला बन्धुओं की, जो सूत, पाट और चीनी की कई मिलें खोल कर ही चुप नहीं रहे बल्कि अब कागज और सीमेन्ट की मिलें भी खोल रहे हैं, और अग्रवाल समाज के माननीय श्रीरामकृष्णजी डालमियाँ की जिन्होंने कई नये उद्योग-धंधे खोलकर अपने समाज के पांच सौ नवयुवकों को काम देने की प्रतिज्ञा की है, हृदय से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। यद्यपि हमें यह जातीय संरक्षण नीति बिल्कुल पसन्द नहीं, क्योंकि इससे लाभ के बदले हानि की ही अधिक सम्भावना है, पर फिर भी दूसरे समाज के धनिकों की आँखें खोलने के लिये डालमियाजी की यह प्रतिज्ञा एक अच्छा सबक सिद्ध हो सकता है।

एक बार फिर अपने समाज के धनिकों को आगे आने और सूत, पाट, रेशम, कागज, सिमेंट, चावल, तेल आदि की मिलें; कांच, बैंक, बीमा आदि का व्यवसाय और सिनेमा आदि जैसे उन्नत उद्योग हाथ में लेने के लिये आह्वान कर हम अपने लेख को समाप्त करते हैं।

टिप्पणियाँ

श्रीमद् आचार्य श्री कालूरामजी महाराज का स्वर्गवास—

गत मिती भादुवा सुदी ६ रविवार ता० २३ अगस्त १९३६ को ग्वालियर राज्य के गंगापुर नगर में संध्या समय श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के अष्टम आचार्य श्री कालूरामजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपके देहावसान से एक विद्वान जैनाचार्य, और दार्शनिक हमारे बीच से उठ गये।

आचार्य श्री का जन्म मिती फाल्गुन शुक्ला २ सं० १९३३ को बीकानेर राज्य के छापर ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्रीयुक्त मूलचन्दजी कोठारी था। आपकी दीक्षा सं० १९४४ की मिती आसोज सुदी ३ को आपकी माताजी सती छोगांजी के साथ बीदासर (बीकानेर) में हुई थी। सती छोगांजी अब भी विद्यमान है। इनकी अवस्था लगभग ९० साल की हो चुकी है और इनका सारा जीवन कठिन तपस्या और व्रतों का एक रोमाञ्चकारी इतिहास है। आचार्य महोदय का दीक्षा संस्कार स्वामी मघराजजी महाराज, श्री तेरापन्थी सम्प्रदाय के षष्ठ आचार्य के हाथ से हुआ था और सं० १९६६ की मिती भादवा सुदी १५ को, पूज्यजी महाराज श्री डालचन्दजी स्वामी के देहावसान के बाद, आप आचार्य पद पर आसीन हुए थे। इस प्रकार आपका आचार्य काल प्राय: २७ वर्ष तक रहा।

इस २७ वर्ष के दीर्घ काल में आचार्य महाराज ने जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया था। आप एक चलते-फिरते आदर्श आश्रम थे। आपने अपने जीवन में लगभग ४०० साधु साध्वियों को प्रवर्जित कर अहिंसा और संयम के त्याग और तपस्यापूर्ण मार्ग पर अग्रसर किया था। इधर में आपके अनुयायी गृहस्थों की संख्या भी काफ़ी बढ़ गयी थी। आपने धर्म के प्रचार के लिए थली, ढूंढाड़, मारवाड़, मेवाड़ मालवा, पंजाब, हरियाना आदि देशों के उपरान्त बम्बई, गुजरात और दक्षिणादि के नए क्षेत्रों में भी अपने विद्वान सन्तों को विहार के लिए भेजा था।

अभी तेरापन्थी गण समुदाय में १३९ साधु और ३३३ साध्वियाँ हैं। इतने बड़े संघ को जिस खूबी के साथ आपने अनुशासित किया और उसमें सुव्यवस्था को कायम रक्खा वह आपकी संघ व्यवस्था-शक्ति, बुद्धिमता और दूरदर्शिता का परिचायक है। संगठन और सुव्यवस्था की दृष्टि से आपका संघ आदर्श और अनुकरणीय रहा है इसमें सन्देह नहीं।

आचार्य श्री की दीक्षा केवल ११ वर्ष की अवस्था में ही हुई थी अत: वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। आचार्य श्री का शास्त्रीय ज्ञान बड़ा गम्भीर और विस्तृत था। जैनागमों का ही नहीं पर अन्य धर्मों के आराध्य ग्रन्थ जैसे गीतादि का भी आपने खूब बारीकी से अभ्यास किया था। अन्य धर्मों की जो खूबियाँ होती उन्हें आप सदा स्वीकार करते थे। आपका संस्कृत का पाण्डित्य भी अगाध था। संस्कृत व्याकरण, काव्य, कोष आदि विविध विषयों के आप एक अच्छे विद्वान थे। आप एक अच्छे कवि भी थे।

आपने अपने साधु और साध्वियों में समान रूपसे शिक्षा का प्रचार किया था। आपकी सम्प्रदाय में कई अच्छे कवि, वैय्याकरणी, दार्शनिक और तत्वज्ञ साधु है। आपके शासन में कई साधुओं ने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्ति की है।

आपका सन्मान केवल आपकी सम्प्रदाय में ही नहीं था परन्तु आप भारत के कई नरेशों के भी आदरणीय थे। आपकी विद्वता भारत की सीमा पार कर विदेशों में भी पहुंच गयी थी। जैन-साहित्य के संसार प्रसिद्ध विद्वान डा० हरमन जैकोबी ने भी आपके दर्शन किए थे और शास्त्रीय चर्चा कर कई भ्रम दूर किए थे। तेरापन्थी सम्प्रदाय को तो आप की देन अमाप थी। इस सम्प्रदाय की वर्तमान उन्नति आप की प्रतिभा और असाधारण व्यक्तित्व को ही आभारी है।

गत दो ढाई महीनों से आपके हाथ में विषाक्त फोड़ा हो गया था और यही आखिर घातक भी सिद्ध हुआ। इस फोड़े की भयानक वेदना को आपने अन्त तक शान्ति और सम भाव से सहन किया और ता० २३ को, अन्त तक एक महान योगी की आत्म जागरुकता दिखाते हुए प्रस्थान किया।

आचार्य श्री ने अपने हाथों से ही तेरापन्थी सम्प्रदाय के आचार्य पद का भार अपने शिष्य मुनिवर श्री तुलसीरामजी को सौंप दिया था। आपकी उमर इस समय २३ वर्ष की है। इस छोटी अवस्था में आचार्य पद की योग्यता को पाना जहां शिष्य के लिए गौरव का विषय है वहीं गुरु की महानता को भी प्रगट करने वाला है। स्वर्गीय आचार्य श्री की तरह हम आप से भी जैन धम के विशाल सिद्धान्त और उनमें रहे हुए विश्व कल्याण के महान मन्त्रों के प्रचार की आशा रखते हैं और आपका शासन दीर्घकालीन हो इसकी कामना करते है।

अक्ल का दीवाला—

संसार में ऐसे भी बहुत से आदमी हैं जिन्हें जबर्दस्ती किसी मंतव्य का विरोध कर अपने आप को हँसी का पात्र बनाने की आदत हो जाती है—और वह आदत कभी-कभी सीमा पारकर इतनी बढ़ जाती है, कि उनकी इस प्रकृति पर क्षोभ और दया आने लगती है। अभी गत जून मास में जैन नवयुवक परिषद् के अध्यक्ष पद से दिये हुए श्री परमानन्द दास कुंवरजी कापड़िया के भाषण को लेकर अहमदाबाद के कुछ दकियानूसी जैनियों में जो हाय-तोबा मची, वह इस बात का ताज़ा उदाहरण है। श्रीयुत कापड़िया हमारे समाज के उन बहुत थोड़े से 'युवकों' में से हैं—जिनके हृदय में समाज के दुःख की टीस है—उसके प्रति एक सद्भावनापूर्ण उत्तरदायित्व है। उनका भाषण गहन विचारपूर्ण और समयोचित होने के साथ-साथ क्रान्ति पूर्ण भी था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भावों और विचारों की इस क्रान्ति के बिना समाज का जीवन शुद्ध नहीं हो सकता। समय की गति का साथ न दे सकने के कारण अब तो हम इतने पीछे रह गये हैं कि समाज को आगे लाने के लिये एक गहरी उथल-पुथल की आवश्यकता है और इसके लिये हमें श्री परमानन्द भाई के जैसे हज़ारों भाषणों की आवश्यकता है।

श्री कापड़ियाजी के भाषण के कुछ अंशों को लेकर पुराने ख़याल वाले विचार-शून्य कुछ जैनियों के दिमाग़ ख़राब हो रहे हैं। उनका विरोध कर वे अपनी ही हँसी उड़ा रहे हैं—अहमदाबाद के कुछ स्वार्थी गुरुडमवादियों ने एक मीटिंग कर अहमदाबाद श्री संघ से श्रीयुत कापड़ियाजी को बाहर कर दिया है। यह कार्य कितना अर्थशून्य और बेसमझी का है, वह इससे मालूम होता है कि न तो श्री कापड़ियाजी का जन्म अहमदाबाद में

हुआ, न वे वहां रहते हैं। तब फिर वे यदि वहाँ के संघ द्वारा बहिष्कृत भी कर दिये गये तो इसका मतलब क्या ? फिर कुछ अनुत्तरदायित्व पूर्ण साधुओं और उनके १०-२० ढोंगी गृहस्थों की सभा से की हुई कार्यवाही को कोई भी आदमी सारे संघ की इच्छा नहीं मान सकता। जहां हम श्रीयुत कापड़ियाजी की विद्वता, अवसरोचित साहस और निर्भीकता की प्रशंसा करते है वहाँ उन लोगों की खुले दिल से निन्दा करते हैं जिन्होंने श्रीयुत कापड़ियाजी के विचारों का विरोध कर अपने को हास्यास्पद बनाया। हम उन्हें एक बार फिर चेता देना चाहते है कि उनके इस प्रकार धर्म-धर्म चिल्लाते रहने से धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। इस प्रकार की प्रवृत्ति उन्हें और उनके 'धर्म' को एक दिन गर्त मे ले बैठेगी। हम श्रीयुत कापड़ियाजी को आश्वासन दिलाते हैं कि सारा युवक समाज हृदय मे उनके साथ है।

स्वर्गीय रामलालजी दूगड़ —

श्रीयुत रामलाल दूगड़से —जिनकी २-३ रचनाएँ ओसवाल नवयुवक के पिछले अङ्कों में छप चुकी हैं — पाठक परिचित ही है। श्रीयुत दूगड़ ने ओसवाल नवयुवक के पुनः प्रकाशन में हमें जो प्रोत्साहन दिया उसे हम कभी नहीं भूलेंगे पर आज रामलालजी हमारे बीच में नहीं हैं। अकस्मात हैजे के आक्रमण से आपका देहान्त गत ता० ३१ जुलाई को हो गया। जिस समय श्रीयुत रामलाल दूगड़ की मृत्यु का समाचार सुना तो हृदय को एक धक्का सा लगा। श्रीयुत दूगड़ ने, ओसवाल नवयुवक की, लेखनी द्वारा जो सेवा की—उसको पाठक कभी नहीं भूल सकते-उनके विचार उच्च, लेखनी सजीव और साहित्य-प्रेम गहन था। उनके प्रति जिन आशाओं से हमारा हृदय भरा था—आज वह खाली पड़ा है।

श्रीयुत दूगड़ सरदारशहर के रहनेवाले थे। आप श्री भानीरामजी दूगड़ के सुपुत्र थे और अभी आपकी अवस्था लगभग २७।२८ वर्ष की ही थी। आप स्थानीय समाज के होनहार युवक थे जिन पर समाज की बहुतसी आशाएं अवलंबित थीं। जिस प्रकार उन्होंने श्री शार्दूल व्यायाम शाला को अपने दृढ़ प्रयत्नों द्वारा
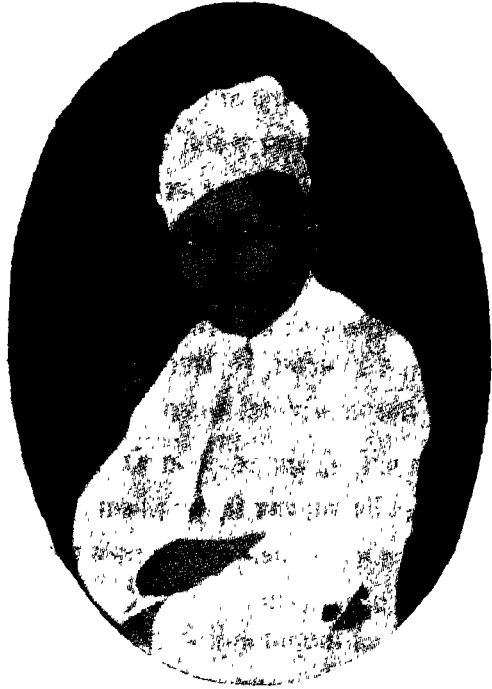
(स्वर्गीय रामलालजी दूगड़)

अमर कर दिया—उसी प्रकार वे अपने अन्य कार्य नहीं कर सके—यह हमारा बड़ा दुर्भाग्य ही है। यह संस्था आज बीकानेर राज्य की एक अच्छी संस्था मानी जाती है। इसका सारा श्रेय दूगड़जी को ही है।

आशाओं के उस पुतले को युवावस्था में खोकर आज हम अपने बीच में एक बड़ी कमी महसूस करते हैं—किन्तु परवश है। श्रीयुत दूगड़ के कुटुम्बियों के प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं—और

आशा करते हैं कि श्रीयुत दूगड़ की प्रबल लेखनी और अदम्य उत्साह की प्रेरणा दूसरे 'रामलाल' उत्पन्न करने में सफल हो।

'सुधार बनाम सेवा'

['ओसवाल नवयुवक' के जून वाले अङ्क में हमने 'सुधार बनाम सेवा' शीर्षक सम्पादकीय लिखा था— उसके विषय में हमारे वयोवृद्ध सुधारक श्रीयुत पूरणचन्द जी शामसुखा ने जो बहुमूल्य समीक्षा लिख कर भेजी है उसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और पाठकों की जानकारी, और विचारणा के लिये उसे ज्यों-की-त्यों यहाँ छापते हैं।

श्रीयुत शामसुखजी की आलोचना के विषय में हमें केवल इतना ही कहना है कि उनको हमारे लेख में जो शंका और गलतफहमी हुई है—और जिसका उत्तर हम देना चाहिये—वह उसी लेखको एक बार फिर पढ़ लेने से दूर हो जायगी। हमें बड़ा दुःख है कि श्रीयुत शामसुखाजी हमारे लेख के उद्देश्य को पूरी तरह नहीं समझे। हम भी शामसुखाजी के इस कथन से पूरी तरह सहमत हैं— कि "प्रत्येक वस्तु को अनेक दृष्टियों से देखा जा सकता है।" वास्तव में इस मतभेद का कारण भी विचारणा-विरोध नहीं - केवल दृष्टि भेद है। हम ने सुधार के विषय में जो इतना लिखा है— उसका मतलब यह नहीं कि हम सुधार के विरोधी हैं—किन्तु हाँ, सुधार की उस दम्भ पूर्ण भावना के अवश्य आलोचक हैं—जो आजकल प्रायः सुधारकों में पाई जाती है। और यदि श्रीयुत शामसुखाजी भी जरा अधिक विचार करेंगे – तो मान लेने को राजी हो जायेंगे कि ऐसी सुधार भावना—जिसमें अपनी पूर्णता—और दूसरों की अपूर्णता का खयाल ज्ञात नहीं तो अज्ञात रूपसे बना ही रहता है। और हम समझते हैं कि इस विचारणा में पाठक हम से सहमत होंगे। ऐसे सुधारको तो हम विडम्बना मात्र ही कहेंगे— सेवा में भी यह भाव आ सकता है यह हम अपने लेख में भी मान चुके हैं— पर उसमें इस की बहुत कम सम्भावना है। केवल इतना लिख कर ही हम श्रीयुत शामसुखाजी की समालोचना छाप रहे हैं—और इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ते हैं]

ओसवाल नवयुवक के नवीन प्रकाशन की दूसरी संख्या (जून १९३६) में सम्पादकीय वक्तव्य—"सुधार बनाम सेवा" शीर्षक लेख में नवयुवक सम्पादक महोदय ने सुधारकों के प्रति जो अकारण ही आक्रमण किया है उसका प्रतिवाद करने को इस वृद्ध को लेखनी उठानी पड़ी। सम्पादकजी का सुधारकों के प्रति इतना आक्रोश क्यों हुआ यह तो मुझे विदित हो नहीं सकता परन्तु इस तरह का विचारशून्य, असम्बद्ध लेख लिख कर ओसवाल नवयुवक का कलेवर पूर्ण करना हो तो उसे पुनर्जन्म नहीं देना ही अच्छा था—नवयुवकों के लिये जीवन की कठिनाइयों का अनुभव नहीं रहने के कारण "दूसरों को उपदेश देने की धृष्टता समाज के लिये ही नहीं, निजके लिये भी घातक" होती है। अनुभवहीन नवयुवकों के लिये पत्र का सम्पादन करना व उसके ज़रिये दूसरों को उपदेश देने की धृष्टता करना क्या घातक नहीं है? सुधारकों के प्रति जितना कड़ा व भद्दा शब्द इस लेख में लिखा गया है वैसे शब्दों को सम्पादकीय कार्य उठाने वालों के प्रति भी अनायास लगा दिया जा सकता है।

प्रत्येक वस्तु को अनेक दृष्टियों से देखा जा सकता है। Drain Inspector रास्ते के दोनों तरफ के सुन्दर मकानों को नहीं देखकर सिर्फ ड्रेन में मैला कहाँ है उसीकी खोज करता है, इसी तरह प्रस्तुत लेख में "सुधार की भावना में ही अहंकार और ऊँच-नीच

का समावेश" देखा गया है। वास्तव में सुधार की भावना में अहंकार व अभिमान का स्थान हो नहीं सकता -- वहाँ विनय व बहुमान का ही स्थान है। इस प्रगतिशील युग में मनुष्यों की भावधारा आश्चर्य रूप से परिवर्तित हो रही है। इस भावधारा के साथ चलने के लिये प्रत्येक मनुष्य को अपनी भावनाओं में, रहन-सहन में हरदम सुधार करने की आवश्यकता है। जहाँ यह सुधार नहीं है वहाँ पश्चात् पड़े रहना व उसका फल मृत्यु है। इस सुधार की भावना के अभाव से अपना समाज आज भारत की प्रगतिशील जातियों से पिछड़ गया है। इस संसार में कोई वस्तु स्थिर नहीं रह सकती। वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन में जहां भी अग्रगति बन्द होती है, वहाँ ही मृत्यु की छाया आकर पड़ती है। सुधार बन्द कर देना व मृत्यु के सामने ढकेलना एक ही बात है। विशेष दुःख की बात है कि हमारे नवयुवक, शिक्षित सम्पादक महोदय ऐसे सुधारों व सुधारकों के ऊपर ही खड्गहस्त हुए है। समाज में सुधार व सुधारकों की आवश्यकता सब समय में है और रहेगी। सुधारका युग खतम हो नहीं सकता। जैसे-जैसे मनुष्यों की भावधारा में परिवर्तन होता रहेगा वैसे-वैसे ही अपने को सुधारने की आवश्यकता होती रहेगी व जो महाशय पिछड़े रहेंगे उन्हें सुधारने के लिए सुधारकों की आवश्यकता भी होती रहेगी। 'समाज सुधार' के अन्दर 'समाजसेवा' का क्या समावेश नहीं होता?

नवयुवकों की बहुमुखी प्रतिभा केवलमात्र सेवा में निबद्ध रह नहीं सकती। जिन्हें सेवा पसन्द है उन्हें उस तरफ चलना चाहिये परन्तु सेवा एक मात्र कर्तव्य नहीं है। धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय क्षेत्र में ऐसे बहुत से कार्य मिलेंगे जिसे करना नवयुवकों का कर्तव्य होगा। सम्पादकजी को उपदेशक का स्थान ग्रहण करने के पहले वक्तव्य विषयों के प्रति विशेष मनन करना उचित था।

सम्पादक महाशय ने सुधार के इतने कट्टर विरोधी होते हुए भी ओसवाल नवयुवक की इसी संख्या में 'पर्दा' शीर्षक एक सुधार के प्रबन्ध को स्थान दिया !! पण्डित श्री बेचरदासजी का 'जीवन शुद्धि' शीर्षक एक माननीय प्रबन्ध इसी संख्या में प्रकाशित हुआ है। उक्त प्रबन्ध में आत्मा अनात्म भाव में जिन कारणों से फँसता है उस दृश्य संसार के भीतर "लोक व ओघ" नामक दो संज्ञा है -- जिसका अर्थ—"बिना समझे प्राकृत लोक प्रवाह को अनुसरण करने की वृत्ति व कुल परम्परा अनुसरण या चले आते प्रवाहानुसार बिना विचारे चलते रहने की प्रवृत्ति।" यह दोनों वृत्तियाँ जीवन शुद्धि का घात करनेवाली हैं। इसलिए इसे हेय परिलक्ष्य समझ कर सुधार लेना उचित है। क्या भगवान के वचन से भी सुधार की उपयोगिता सिद्ध हो सकती है? सम्पादक महाशय अब पण्डितजी की इन पंक्तियों का मनन करेंगे?

समाज सुधार की भावना लेकर ही कुछ दिन पहले 'अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन' की प्रतिष्ठा हुई थी व इसके परिचालकों में स्वर्गीय श्री पूरणचन्दजी नाहर, श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा, श्री राजमलजी ललवानी, श्री अचलसिंहजी जैन, स्वर्गीय श्री नथमलजी चोरडिया प्रमुख ओसवाल समाज के शिरोमणि गण थे व हैं। उन्हें भी क्या सम्पादक महोदय भद्दे आक्षेपों से कलंकित करने की धृष्टता करेंगे? नाहरजी महाशय ने प्रथम अधिवेशन के सभापति के स्थान से अपने विद्वता व बहुदर्शिता पूर्ण भाषण में समाज सुधार के विषय में बड़े मार्मिक व

ओजस्वी शब्दों में विवेचन किया है--यहाँ सिर्फ एक स्थान से सामान्य उद्धरण दिया जाता है—"कन्या विक्रय की प्रथा अत्यन्त निन्दनीय है। जिस स्थान में यह कार्य होते देखा जाय, वहाँ आन्दोलन अथवा *सत्याग्रह* करके तुरन्त इसे रोक देना चाहिये।" (The Italics is mine) नाहरजी साहब के उक्त कथन के ऊपर भी इस भद्दे लेख के सम्पादकजी क्या 'सुधारक युग अब वास्तव में खतम हो चुका" कहने का दुःसाहस करेंगे ?

ओसवाल समाज में आज भी बालविवाह वृद्ध-विवाह, कन्या विक्रय, औसर-मोसर आदि कुरीतियों ने जड़ पकड़ रखी है। लोकमत इतना प्रबल नहीं हुआ है कि इन कुरीतियों का मूलोच्छेद कर दे। क्या समाजकी जीवन-शुद्धि के लिए इन्हें सुधारने की जरूरत नहीं है ?

क्या सम्पादक युगल अपनी भूल स्वीकार करेंगे ? क्या ऐसा हो सकता है कि सम्पादक महाशयने अपनी अकर्मण्यता व भीरुता को ढकने के लिए दूसरों के प्रति अर्थहीन आक्षेप आरोप किया हो।

सरदारशहर में हैजा——

गत जुलाई महिने के अन्तिम और अगस्त के आरम्भिक सप्ताहों में सरदारशहर (बीकानेर) में हैजे की बीमारी का बड़ा भयानक प्रकोप रहा। रोग आरम्भ होने का कोई खास कारण तो नहीं मालूम हुआ। सम्भवतः वर्षा की कमी और अत्यधिक गर्मी के प्रकोप के कारण यह बीमारी फैली।

हैजे के इस प्रकोप ने महामारी (Epidemic) का रूप धारण किया हैजे के प्रथम शिकार हुए हमारे स्व० रामलालजी दूगड़ के बहनोई और उनके बाद खुद रामलालजी ही। दोनों युवकों ने इस संसार से विदा ली। इन दुःखद मृत्युओं ने सरदारशहर में तहलका मचा दिया। लोगों में भय का संचार होना स्वाभाविक था। फिर भी इस अवसर पर लोगों ने भीरुता और हृदयहीनता का परिचय दिया वह सर्वथा अनुचित था।

सुनने में आया है कि इस प्रकोप के समय रुग्ण बड़े भाई को छोड़ कर छोटा भाई उसके ना कहते रहने पर भी अपने जीवन की रक्षा के उद्देश्य से वहाँ से भाग निकला। माताओं तक ने अपने लड़कों को अकेला छोड़ कर सरदारशहर से पलायन किया। लाशें दो–दो दिनों तक घरों में सड़ती रही परन्तु उनके दाह संस्कार करने वाला कोई नहीं था। ये बातें सुनने पर हृदय रोमाञ्चित हो उठा। हृदय में आया कि समाज साहस और कर्त्तव्य-शीलता ही नहीं पर मनुष्यता भी विदा हो चुकी है।

हम ओसवाल प्रायः जैनी हैं। हम कर्म सिद्धान्त को मानने वाले हैं। समझ में आ सकता है कि रोग के अवसर पर अपनी रक्षा के लिए वहाँ से दूर चले जाँय पर यह सर्वथा अनुचित है कि एक भाई बीमार हो और दूसरा उसे छोड़ कर उसके उपचार की व्यवस्था की चिन्ता न कर वहाँ से चला जाय। लाशें सड़ती रहे और उन्हें फूंकने के लिए कोई न जाय ? कर्म सिद्धान्त के माननेवालों में मानवीयता को गिरा देने वाली इस नीचता को देख कर दुःख और शर्म का अनुभव होता है। इस समय वहाँ की जनता का कर्तव्य तो यह था कि हृदय में साहस इकट्ठा कर पारस्परिक सहायता करते और रोग से बचे रहने के उपाय करते हुए रोगियों की सेवा करते। आखिर मनुष्य कहीं भी क्यों न चला जाय—यदि मृत्यु होनी है तो

होगी ही—यहाँ तो इसी सिद्धान्त से काम लेने की आवश्यकता थी और मुस्तैदी के साथ रोग फैलने के कारणों को दूर, यथोचित औषधियों और डाक्टरों का प्रबन्ध कर रोग को वहाँ से भगाने की चेष्टा करना ही उचित था।

सरदारशहर काफी बड़ा शहर है और वहाँ की ओसवाल जनता भी काफी धनी है। इस समय वहाँ के धनिकों का यह कर्त्तव्य था कि वे वहाँ पर डाक्टरों और औषधियों का प्रबन्ध करते और अपने शहर की रक्षा का उपाय सोचते। परन्तु उन्होंने तो अपने इस कर्त्तव्य की सर्वथा उपेक्षा की।

इस बीमारी से सरदारशहर में २००।२५० मौतें हुई। यदि वहां के वासी समुचित साहस और बुद्धि-मानी से काम लेते तो शायद हैजा इतना नहीं फैल सकता। लोग जैसे २ शहर छोड़ कर भागते गये वैसे वैसे कूड़ा कचरा भी वहां बढ़ने लगा और सफाई के अभाव में रोग और भी अधिक फैला। मालूम हुआ कि सरकारी मेहतर भी इस अवसर पर वहां से भाग चुके थे और सड़कों और पाखानों में कूड़ा करकट और मैल बुरी तरह से सड़ता रहा।

सरकार की ओर से भी डाक्टरों का प्रबन्ध काफी न था। आश्चर्य की बात तो यह है कि रोग से ठीक हुओं की संख्या नहीं के बराबर ही रही। डाक्टरों के इलाज से एक्के-दुक्के रोगी ही ठीक हुए। फिर डाक्टर भी गरीबों के लिए नहीं धनिकों के लिए ही थे क्योंकि बिना सवारी और मनमानी फीसके लिए वे रोगी का देखना अस्वीकार कर देते थे। सरकार की ओर से भयंकर बीमारी के अवसर पर भी डाक्टरों और औषधियों का पूरा प्रबन्ध न होना अवश्य दुःख की बात है। वहां की जनता को सरकार का ध्यान स्वास्थ्य विभाग की इस दुर्व्यवस्था की ओर खींचना चाहिए और इस विभाग में और अधिक खर्च कर इसे हर तरह से उन्नत करने की आवश्यकता दिखाना चाहिए। इस अवसर पर डाक्टरों की ओर से जो धांधली मचायी गयी था उसकी भी सरकार की ओर से जांच होनी चाहिए।

इस महामारी के कारण जिन परिवारों को अपने आत्मिकों का वियोग सहना पड़ा है उनके प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं और उनके दुःख से स्वयं भी दुःखी हैं।

व्यापार चर्चा—

हमें खेद है कि इस अङ्कमें पहले ही मैटर बहुत अधिक हो जाने से स्थानाभाव के कारण हम "व्यापार-चर्चा" सम्बन्धी टिप्पणियाँ नहीं दे सके हैं। पाठक क्षमा करें।

Reg. No. C 1668.

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं घेवरचन्द बोथराद्वारा
२८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

क्षमा में प्रतिहिंसा को कहीं स्थान नहीं रहता। जब तक हृदय के किसी भी कोने में प्रतिहिंसा का जरा भी अंकुर छिपा रहता है तब तक क्षमा की पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं होती और जब तक क्षमा की पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं होती तब तक [illegible] आशंका बनी ही रहती है।

—श्री [illegible]

वार्षिक मूल्य ३)

एक प्रति का ।=)

सम्पादकः—
गोपीचन्द चोपड़ा बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०

लेख-सूची

[सितम्बर १६३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वांङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २ ।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिए। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन—प्रकाशन, पता—परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैः—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अंक के लिए	रु० १८)
„ „ तृतीय	„ „ „	१५)
„ „ चतुर्थ	„ „ „	२५)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	„ „ „	१०)
„ आधा पृष्ठ या एक कालम	„ „	७)
„ चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	„	४)
„ चौथाई कालम	„ „	२।)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

श्री सरदारसिंहजी महनोत

आप उज्जैन निवासी श्रीयुत सेठ सौभाग्यचन्दजी महनोत के द्वितीय पुत्र हैं । आप गत पहली सितम्बर से स्थानीय बसन्ती काटन मिल्स लिमिटेड के जनरल मैनेजर नियुक्त हुए हैं । आप इस लाइन में गत दस वर्षों से कार्य कर रहे हैं । टेक्सटाइल सम्बन्धी आपका अनुभव गहरा और विशाल है । विशेष हर्ष यह है कि आप उच्च राष्ट्रीय विचारों के युवक हैं । आपकी पत्नी श्रीमती सज्जन देवी महनोत हमारे कलकत्ते के ओसवाल समाज की एकमात्र राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन में कई बार जेल भी जा चुकी हैं । अपनी पत्नी को इस राष्ट्रीय ढांचे में ढालने का सारा श्रेय श्री सरदारसिंहजी को है । आप अन्य नवयुवकों के लिये आदर्श हैं ।

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता ।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] सितम्बर १९३६ [संख्या [illegible]

लहरी

[श्री दिलीप सिंघी]

मेरी अनुपम लहरी ! आज इतनी सुन्दर क्यों लगती हो ? इतनी मोहकता कहां से बटोर लाई ! और यह मक़ामक मादकता ? क्या परियों के देश में विचर आई हो ? यह निधि वहीं से पाई क्या ?

पहले भी तो कई बार तुम्हारे दर्शन हुए थे पर वह सुन्दरता इतनी आकर्षक नहीं थी, वह मोहकता इतनी मोहनीय नहीं थी, वह मादकता इतनी मदभरी नही थी ! प्रिये ! आज किस क़दर खिल उठी हो ! चेहरा उल्लास से किस प्रकार चमक रहा है !................

क्या कहा ? मेरे लिए कोई अपूर्व भेंट लाई हो ! देवि ! वह उपहार क्या है ? क्या ? आशा, उत्सर्ग और आनन्द !

पर्यूषणपर्व

[श्री भँवरमल सिंघी बी० ए०, 'साहित्यरत्न']

सदा की भाँति पर्यूषणपर्व का सप्ताह इस बार भी आया और चला गया -- जप, तप, दान प्रभावना का खूब ठाठ रहा। सम्वत्सरी के दिन पारस्परिक वैमनस्य के पुराने खाते बन्द होकर नये खाते चालू हो गये। वास्तव में इस सप्ताह का हमारे समाज में बड़ा महत्त्व है। आज भी—जब कि धर्म का ज्यादा से ज्यादा ह्रास हो रहा है—इन सात दिनों में भारत के प्रत्येक भाग में जहां जैन रहते है, बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ अनेक धर्म कार्यों का आयोजन होता है। मुनियों और यतियों के सारगर्भित (?) व्याख्यान होते है—कल्पसूत्र पढ़ा जाता है—और इन दिनों में प्रत्येक श्रावक का यह कर्तव्य समझा जाता है कि वह इन 'बखाणों' में उपस्थित हो, भगवान की पूजा-प्रक्षालन करे। सामयिक और प्रतिक्रमण की भी धूमधाम रहती है। धूमधाम से हमारा मतलब यह है कि इन दिनों में मामूली दिनों की अपेक्षा अधिक लोग सामयिक प्रतिक्रमण करते है और खूब करते है। रात को भगवान की—(जिसको हम बड़े गर्व के साथ 'वीतराग' कहते हे) जो जो सजावट होती है वह देखते ही बनती है। उस समय हमारे मन्दिरों की शोभा कितनी विकासमय होती है—यह लिखते हुए दुख तो बहुत होता है किन्तु सत्य बात छिपायी नहीं जा सकती। एक बार तो मुझे यह देखने का सौभाग्य मिला कि भगवान के अंग पर लोट कॉलर का अंगरेजी ढङ्ग का कोट रचकर एक भक्तजी अपनी 'अंगरचना-कला' का विज्ञापन कर रहे थे। यह है हमारे इस सप्ताह का विराट् आयोजन; जप तप, ज्ञान की वृद्धि; धर्म की भावना का उत्साहपूर्ण प्रदर्शन! सारांश यह कि आजकल इस सप्ताह में निर्जीव क्रिया काण्ड के सिवाय और कुछ नहीं होता। वैसे तो सारे समाज में धर्म की सच्ची भावना—'प्रमाण' तत्त्व—लुप्त होकर निरर्थक ज्ञानशून्य क्रिया प्रधानता पा रही है। हमारी जीवन कल्पना ही—मैं तो समझता हूं—धर्म की ओट में पार्थिव और धर्मविरुद्ध होती जा रही है। इस आडम्बर में जितनी शक्ति और धन का व्यय किया जाता है - उसके उपयोग से समाज के कई अंगों को मजबूत बनाया जा सकता है--जिनकी समाज को आवश्यकता है।

कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है कि जिन सिद्धांतों की शिक्षा हमारा धर्म संसार भरको देता है उन्हींसे हम स्वयं दूर होते आ रहे है। ज्ञान, तप, शील, उदारता आदि गुणों को - धर्म के प्राण को-छोड़कर झूठे प्राणरहित आडम्बरों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे है। जिस समय धर्म में इतनी शिथिलता आ रही है-समाज की एक-एक ईंट ढीली पड़ी है—जिस समय समाज के पुनर्संगठन की ज्यादा से ज्यादा आवश्यकता है—उस समय भी हम अपनी रही-सही शक्ति को इस प्रकार खोदें, इससे अधिक लज्जा की बात और क्या हो सकती है ?

जिन सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर हमारे

धर्म की रचना हुई—जिनकी लम्बी-चौड़ी बातें बनाकर हम धर्म-धर्म चिल्लाते है—लड़ते है, उनका पालन करने मे जरा भी उत्तरदायित्व नहीं समझते। यह तो स्पष्ट ही धर्म के प्रति कपट करना है। सिद्धान्तों का केवल नाम भर ले लेने से तो धर्म की रक्षा हो नहीं जाती। उनको पालन करने से, उनमें युगकी आवश्यकताओं के अनुसार संशोधन करने से ही हम धर्म की उन्नति कर सकते है। श्री परमानन्द भाई कापडिया के विचारों का दकियानूसी जैनी चाहे कितना ही विरोध करें एक दिन अवश्य सारे समाज में उनका प्रचार होगा—क्योंकि वे समाज की आवश्यकताओं को लेकर बने है। उनकी प्रेरणा के मूल में समाज के पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना है।

कई विद्वानों ने समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है, पर हमारा दुर्भाग्य है कि समाज इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रहा है। 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' वाला हिसाब है। अहिंसा का दम भरते हुए भी हम इस सप्ताह में विदेशी रेशमी वस्त्रों का खूब उपयोग करते हैं जिसमें कई प्रकार की हिंसा होती है। शुद्ध खादी की पवित्रता और धार्मिकता को मान लेने पर भी हमारा अंधा समाज उन्हीं रेशमी वस्त्रों पर टूट रहा है, जो अधार्मिक होने के साथ-साथ देश की गरीबी को बढ़ाते है। इस पवित्र पर्व के अंतिम दिन अर्थात् सम्वत्सरी को हम प्रत्येक व्यक्ति से क्षमा-याचना करते है—ऐसा नियम है। कितना पवित्र और उज्ज्वल विचार है। इसी प्रकार प्रति वर्ष हम अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगते है और दूसरों के अपराधों के लिये क्षमा करते है। इस तरह वर्ष भरके भेद-भाव को मिटा कर हम पुनः समस्त समाज में भ्रातृ-भाव की स्थापना करते हैं। क्षमा याचना की यह प्रथा—आज भी प्रचलित है—पर केवल प्रथा के रूप में। उसकी मूल भावना तो नष्ट हो चुकी और रहे भी कैसे जब कि हमारे जीवन की कठिनाइयां कितनी उग्र गति से बढ़ रही है। आज जीवन में एक कटुपन पैदा हो गया है---जिससे सारे समाज में समभाव उत्पन्न करना तो दूर, अपने समाज में ही और यहां तक कि अपने घर में भी प्रेम और एकता का अभाव ही है। हम 'खमाते' है—जरूर पर हृदय की प्रेरणा से नहीं, केवल इसलिये कि ऐसा न करने से दूसरे लोग हमको बुरा कहेगे। छपी-छपाई दो आने में १०० चिट्ठियां खरीद कर सम्वत्सरी की क्षमा याचना समाप्त हो जाती है। किनको चिट्ठियां लिखनी है, इसकी लिस्ट पहले से बनी रहती है। यह धर्म की भावना है जिसमें जीवन का अंश शेष नहीं—जिसमें सहृदय उदारता का लेश भी नहीं। आये साल सम्वत्सरी आती है—'खमाना' भी होता है—और फिर हजारों-लाखों रुपये धर्म ही के नाम पर हर साल होम दिये जाते है - जरा जरा सी बात पर झगड़े होते है। इस प्रकार यह समाज दिन प्रति दिन टुकड़ियों में बंटता चला जा रहा है—और यदि यही हालत रही तो एक रोज अवश्य छिन्न-भिन्न हो जायगा।

निरुद्देश्यक पंथों की वृद्धि धर्म के लोप की पहली चेतावनी है। अपने स्वार्थ के अंधे लोग अब भी मुनियों और यतियों (?) की ओर दृष्टि लगाये बैठे हैं जिन्हें अपने आराम के लिये बैठे-बैठे हाथ भी हिलाना नहीं पड़ता। समाज के अज्ञान और अन्धभक्ति के आधार पर वे मखमली गद्दियों पर विराजते है। आज उनकी वही दशा है जो एक समय बौद्ध मठ-पुजारियों की हो गई थी। हमारे मुनि और यति-यदि चाहे तो आज भी समाज का बहुत कुछ सुधार हो सकता है क्योंकि जैसी हमारे

समाज की रचना है उसमें उनके संकेत पर बहुत कुछ उलट फेर हो सकती है। पर आकस्मिक परिवर्तन से वे घबराते हैं—चले आते हुए आराममय जीवन को वे जोखम में नहीं डालना चाहते। धर्म स्थापक भगवान् महावीर ने चतुर्विध संघ की योजना से अखिल जैन समाज को एक ही सामान्य सूत्र में इस प्रकार बांध दिया है कि एक संघ के सुधार से दूसरा भी सुधर सकता है। पर सुधार के नाम से तो हमारे अधिकांश आचार्यों (?) को चिढ है। समाज के कार्यों में वे हस्तक्षेप क्यों करें - वह धर्म का कार्य तो है नहीं। ऐसे आचार्यों को हम फिर एक बार चेतावनी देते हैं कि समाज की अवस्था से भिन्न होकर धर्म की कोई स्थिति नहीं है। जब समाज का जीवन सड़ रहा हो—गल रहा हो, उस समय समाज के आदर्शों से विमुख होकर धर्म की राग आलापना बेसमझी नहीं तो क्या है? कोई भी धर्म—जो बहुसंख्यक जनता का धर्म होने का हकदार है—समाज को जीवनहीन बना कर प्रतिफलित नहीं हो सकता। समाज की संस्थाओं का जीवन शोधन धर्माचार्यों को करना पड़ेगा ऐसे 'ठेकेदारों' से हमारा काम नहीं चलेगा—जो धर्म की कुंजी तो अपने हाथ में लिये हुए हैं—पर न तो खुद उस पवित्र द्वार में घुसते हैं—न दूसरों को घुसने देते हैं। ऐसे साधु भी हमारे समाज में हैं—जिन्हें समाज के रुग्ण जीवन का दर्द है—जिनमें सच्ची भावना विद्यमान है—पर आचार्यों और 'ब्रह्मवाणी' करने वाले श्रावकों को तो वे विक्षिप्त ही दिखाई देते है। हमारे लिये शास्त्रों का पठन इसीलिये बाधित है न कि हम उनकी पोल खोल कर—उनकी सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा न कर सकें? एक बार एक सच्चे मुनि को शास्त्रसम्मत वास्तविक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए और वर्तमान मुनि समाज की निर्बलताओं और दोषों का स्पष्टीकरण करते हुए कुछ सेठों को हमने यह कहते सुना है कि 'महाराज को भी जमाने की हवा लगी है।' पर अब तो यह हवा खूब फैल रही है—एक दिन जब सब को यह हवा पकड़ लेगी—तब फिर इन सेठों का क्या हाल होगा? अभी से वे इसी हवा को क्यों नहीं अपनाने लगते?

मुनियों और साधुओं की पोपलीला के सिवाय, धर्म पर जो पूंजीपति सेठों का एकाधिकार होता चला जा रहा है—उससे तो समाज की नसों का साहस ही धीमा सा हो गया है। किसीने कितना सच कहा है—' राज धर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टका धर्म हो गये।" मन्दिरों के देव द्रव्य की कहानी कितनी भयानक है? समाज का जीवन सूखता जा रहा है, खोखला पड़ा है, पर मंदिरों के अतुल देवद्रव्य से मुकदमें लड़े जाते है या ट्रस्टियों की मिलें चलती हैं। एक प्रत्यक्ष अनुभवी लेखक का कहना है—"वे ज्ञान की पूजा बढ़ाते हैं, ज्ञान के समक्ष लड्डू, बतासे और पैसे चढ़वाते हैं, परन्तु उनकी संतान प्रति दिन अज्ञान, विद्याहीन होती जा रही है, उनका साहित्य बन्द किये भाण्डारों में सड़ता जा रहा है, परन्तु इस ओर लक्ष्य न देकर उन ज्ञान के पुजारियों—पूजा-अरियों—ने ज्ञान भाण्डारों पर अपने डबल चाबी के ताले लगाकर उन्हें अपने कैदी बना रखे हैं। जिस तरह ज्ञान के लिये वैदिक धर्म में वेदों का ठेका ब्राह्मणों ने ही ले रखा था वैसे ही इस पद के मुनि (चाहे वे एक गृहस्थ के पास ही पढ़े हों) कहते है कि सूत्र पढ़ने का अधिकार हमें है—श्रावकों को नहीं। उनकी धार्मिक संपत्ति में परम निर्णयता, आदर्श श्रावकता, उच्च जीवन, अनाग्रही

जीवन परम अहिंसकता, प्रमाणिकता, मार्गानुसारिता इत्यादि सद्गुणों के बदले विलासी साधुता, नामकी श्रावकता, चेलों की वृद्धि, पुस्तकों की ममता, अयुक्त पदवियों का मिथ्याडम्बर, गुणी और गुण की ओर ईर्षा बड़े बड़े देवालय, अचेलक और परम तपस्वी तीर्थङ्करों के लाखों रुपये के जेवर तथा शत्रुंजय वासी आदीश्वर का कई लाख का जवाहराती मुकुट है। .... वे धर्म को सामने रख कर मानो स्वयं ही धर्म के रक्षक न हों—ऐसा समझ कर धर्म के नाम से कलह करते हैं — प्रजाबल को क्षीण करते हैं—युवकों के विकाश को रोकते हैं और जाग्रत होती हुई प्रजा को धर्म के नामसे डरा कर सुला देने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

समाज में चारों ओर अशिक्षा का प्रगाढ़ अन्धकार छाया हुआ है। बुद्धि इतनी मन्द है कि धर्म का कोई वास्तविक सिद्धान्त हमारी समझ में नहीं आता—क्योंकि परम्परा से चली आई हुई रूढ़ियों के सामने वह नया और असाध्य मालूम होता है। जिस वस्तु का जो यथार्थ अर्थ था—आज हम उसका विपरीत अर्थ लगा रहे हैं। जिस देवद्रव्य की उपयोगिता राष्ट्र और संघ की रक्षा और विद्या प्रचार के लिये समझी गई थी—उसी देवद्रव्य के लिये हमारे मुनी और धनी लोग यह कहते हैं कि इसका उपयोग तो मंदिरों के लिये है—न कि समाज के कामों के लिये। इन पंक्तियों के लेखक का अनुभव है कि एक दफा एक मंदिर में महावीर जयंति का उत्सव मनाने का आयोजन करना पड़ा। उसमें जो 'लाइट' का विशेष खर्चा पड़ा, उसके लिये ट्रस्टियों की ओर से पैसे मांग लिये गये। बड़ी हँसी आती है कि महावीर जयंतियों के लिये भी हमारे मंदिरों में किराया देना पड़े। श्रद्धेय पं० बेचरदासजी के शब्दों में—'जब देवद्रव्य के खर्चे से ज्ञान के भण्डार, धर्मशालायें, उपाश्रय, और ज्ञान के उपकरण बनाने की अनुमति दी गई है, तो वर्तमान काल में समाज में शिक्षण का प्रचार करने के लिये हम उसी द्रव्य में राष्ट्रीय पाठशालाए, राष्ट्रीय महा-विद्यालय, राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करें—तथा उसके साधन छात्रालयों, छात्रवृत्तियों और पुस्तकालयों में उस द्रव्य का व्यय कर एवं तदुपरान्त संघ रक्षा के मूल भूत संघ की रक्षार्थ उस द्रव्य द्वारा जगह-जगह ब्रह्मचर्याश्रम आदि खोलें—ऐसी भावना होनी चाहिये।'

इस प्रकार ये ढोंगी मुनी लोग अपनी स्वेच्छाचारिता और भक्तों की अंधभक्ति के बल पर समाज में अनेक प्रकार के धर्तींग खड़े करके मंदिरों में सम्पत्ति इकट्ठी कराते हैं। उनकी नाराजगी से बचने के लिये तथा अपना नाम विज्ञापित करने के लिये बराबर निर्बल होता हुआ समाज उनके आदेशानुसार धन देने लगा। समाज में शिक्षा प्रचार के लिये धन की कितनी आवश्यकता है—भीषणरूप में फैली हुई बेकारी को मिटाने के लिये कितने साधनों की आवश्यकता है—इसकी ओर कोई नहीं देखता। भगवान (वीतराग) की मूर्ति के लिये लिये जवाहिरात खरीदे जाते हैं—कीमती विदेशी वस्त्र खरीदे जाते हैं-टाइल्स लगाई जाती हैं-और न जाने कितने आडम्बर रचे जाते हैं पर ज्ञान प्रचार के लिये, समाज की जागृति के लिये, युवकों के विकास के लिये—उस देवद्रव्य का एक पैसा भी नहीं मिल-सकता। चाहे उस द्रव्य का ढेर ट्रस्टियों के दीवाले में बह जाय—चोरों के हाथ में चला जाय—पर समाज के जरूरी कार्यों में देना पाप है। क्योंकि वह देवद्रव्य है! 'व्यवस्थापकों की उस द्रव्य पर ममता होनेके कारण उसे वे अपने बाप की पूंजी समझ बैठे हैं। इस कारण अन्य धार्मिक क्षेत्रों (जिन क्षेत्रों की वृद्धि की

वर्तमान काल मे विशेष आवश्यकता है) के लिये वह द्रव्य आज कल के शूद्र के समानअस्पृश्य सा हो गया है—और पोषण न मिलने से वे क्षेत्र सूखते चले जा रहे है।" उन्हें नहीं मालूम कि बिना बाहरी व्यावहारिक जीवन की शान्ति के यह कोरी धर्म की तूती कब तक बजती रहेगी ?

पर्यूषण पर्व के सप्ताह की कल्पना बहुत ऊंची है। इस वृहद् आयोजन का उद्देश्य था हमारे एक वर्ष के कार्य का पर्यालोचन करना, धर्म में आई हुई शिथिलता को दूर करने के लिये जनता के हृदय में क्रान्ति उत्पन्न करना और परस्पर विचार-विनिमय करके भविष्य के लिये एक आदर्श क्रियात्मक विधान तैयार करना। इस योजना के स्रष्टा की कितनी गहरी अन्तर्दृष्टि थी। वास्तव में आज भी इसी ढङ्ग की आवश्यकता है— जनता के दिमाग से यह खयाल दूर होना चाहिये कि पर्यूषण हर साल के 'उत्सव' की एक प्रथा है। पर यह एक बड़े उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य का सप्ताह है। इस सप्ताह में जब सब मिलते है—धर्म कार्य के लिये समय निकाला जाता है—तो समाज की जीवन रक्षा के लिये उपचार ढूंढ़ने चाहिये—सम्मिलित योजना रख कर टूटे हुए समाज के टुकड़ों को जोड़ना चाहिये। धर्म-साहित्य की छानबीन कर उसको युग की आवश्यकताओं के अनुसार नये प्रकार से सजाना चाहिये। धर्म में राष्ट्रहित का विचार भुला नहीं देना चाहिये। बस इतना ही कि धर्म की सच्ची भावना पुनर्जीवित करने का प्रयत्न चारों ओर से हो। इतना करने से ही हमारा पर्यूषण पर्व मनाना सफल होगा—हमारे जीवन की कल्पनाएं विस्तृत होंगी। अभी जो धर्म जीवन से अलग मालूम होता है, वह फिर जीवनमय हो जायगा—जीवन मे घुल जायगा।

विकसित फूल के प्रति

[श्री नयनमल जैन, कालेज विद्यार्थी, जालौर]

(१)

फूल रहा है फूल अरे क्यों ?,
यौवन—मद में भूल रहा ?
धूल—शूल से छेदन होगा,
हाय ! इसे तू भूल रहा॥

(२)

रूप—अनूप देख कर तेरा,
मुग्ध—मधुप मुसकाते हैं।
रूप—राशि—रस पीने वाले,
पागल से मँडराते हैं॥

(३)

बड़े—बड़े जगपति लखपति भी,
पुष्प ! तुम्हें अपनाते हैं।
कण्ठहार में तुझे गूंथ कर,
हिय का हार बनाते हैं॥

(४)

रे मतवाले ! इतरा मत तू,
क्षणभर का यह आदर है।
यौवन—धन लुट जाने पर तो,
केवल शेष अनादर है॥

भारतवर्ष का पशुधन

[श्रीयुत सेठ अचलसिंहजी, आगरा]

प्रत्येक देश में उसकी जलवायु के अनुसार कोई न कोई एक मुख्य धन्धा हुआ करता है, जिसके आधार पर उसके बहुसंख्यक निवासी अपनी जीविका चलाया करते हैं। जिस प्रकार इङ्गलैंड लोहे और कोयले के धन्धे से, न्यूज़ीलैंड अपनी भेड़ों से, जावावाले चीनी से, फ्रांसवाले शायद अंगूर से, उसी प्रकार भारत अपने पशुओं से अपनी जीविका चलाता है। इन्हींको इस देश का मुख्य धन माना गया है।

जो देश स्वतन्त्र हैं, वे हर प्रकार से अपने धन की तरक्की करने का प्रयत्न किया करते हैं, जिससे उनके बाशिन्दों और उनकी आनेवाली सन्तानों की जीविका सुगमता से चलती रहे। पर जो देश परतन्त्र होते हैं, वे अपने धन की उन्नति को कायम नहीं रख सकते। उसका परिणाम यह होता है कि उनको और उनकी सन्तानों को रोटी की मुसीबत व मुश्किलात का सामना करना पड़ता है।

मैं आप महानुभावों का ध्यान भारत और उसके प्राचीन धन की ओर ले जाना चाहता हूं। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि भारत का धन पशुधन ही माना गया है। प्राचीन समय में मनुष्यों की अमीरी व ग़रीबी का अन्दाज़ा उनके पशुधन से ही लगाया जाता था। अगर आप प्राचीन इतिहास को देखें, तो आपको पता चलेगा कि एक सेठ-साहूकार के दस-दस बीस-बीस, तीस-तीस व चालीस-चालीस हज़ार गायों के झुण्ड होते थे और इसके अलावा पांच-पांच सौ, हज़ार-हज़ार, दो-दो हज़ार तक जुआरे व गाड़ियां रहा करती थीं, जिनके द्वारा उनकी खेती का धन्धा व माल देश-देशान्तरों से लाने व ले जाने का कार्य चला करता था। हर ग्राम में सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों पशु हुआ करते थे। यहां तक कि नगरों व शहरों में हर गृहस्थ के पास कम से कम दो-चार पशु अवश्य हुआ करते थे। यह व्यवस्था तो अकबर और औरङ्गज़ेब के समय तक चली आई थी कि क़रीब-क़रीब हर गृहस्थ के यहां कम से कम एक गौ अवश्य हुआ करती थी।

यही कारण था कि उन दिनों मनों के नाज, सेरों के घी, पसेरियों के तेल, गुड़ आदि चीजें बिका करती थीं। दूध बिकने की तो कोई ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी, क्योंकि प्रत्येक गृहस्थ के यहां कोई न कोई पशु अवश्य हुआ करता था और अगर किसीको ज़रूरत पड़ भी जाती थी, तो वह आपस में मांग लिया करता था, जैसा कि प्रायः आज-कल पानी पीने के वास्ते मांग लिया करते हैं। इसका कारण केवल यही था कि उस समय लगान बहुत कम था और पशुओं की काफ़ी संख्या थी, जिनके गोबर आदि का काफ़ी तादाद में खाद बनता था और पशुओं की काफ़ी संख्या होने के कारण खेत आसानी से कमा लिये जाते थे। इसके अलावा हर गांव, क़स्बे, नगर, व शहर के पीछे कितनी ही चरागाहें हुआ करती थीं, जहां सारे गांव, नगर व क़स्बे के पशु चरा करते थे। यही कारण था कि

सेरों के घी और मनों के नाज़ बिका करते थे। यहां तक कि पथिकों या राहगीरों को पानी के बजाय दूध पिलाया जाता था। बाज़-बाज़ लोग तो दूध की प्याऊ लगवा दिया करते थे। आजकल तो मनुष्यों को दूध के दर्शन तक नहीं होते है, यहां तक कि मरीज़ों और बच्चों तक को दूध नहीं मिलता, जिसके कारण हर वर्ष सैकड़ों, हज़ारों नहीं, बल्कि लाखों बच्चे काल के गाल में पहुंच जाया करते हैं।

अब मैं सक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि किन किन कारणों से यह विकट समस्याय उपस्थित हो गई है:—

१ यह तो आप जानते है कि भारत का धन यहां के पशु ही रहे हैं। विदेशों को चमड़े, हड्डी, खून, चर्बी इत्यादि की जरूरत पड़ती ही है। तो वह कहां से पूरी हो? उन्होंने देखा कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहां जी चाहे जितना चमड़ा, चर्बी, हड्डी मांस आदि किफ़ायत से मिल सकता है। उन्होंने जब यहां कुछ लोगों से इसकी मांग की तो लोभी और स्वार्थी पुरुषों ने और जो पशुओं को मारना पाप या हानिकर नहीं समझते थे, उन्होंने कसाइयों द्वारा पशु कटवा कर चर्बी चमड़ा, हड्डी, खून, मांस देना शुरू कर दिया। चूंकि भारत मे पशुओं की बहुतायत थी, इस कारण पशु बहुत सस्ते मिलते थे और इस प्रकार काटनेवाले कारखानेदारों ने यहां आकर कंपनियां खोल दीं, जिनका सिर्फ़ यही काम था कि वे यहां से कच्चा चमड़ा मांस, चर्बी इत्यादि खरीद खरीद कर विदेशों को रवाना करें। इस प्रकार यह पेशा दिनों-दिन बढ़ता गया, यहां तक कि हर प्रान्त में दो-दो चार-चार कबेले (Slaughter Houses) खुल गये, जहां प्रति वर्ष सैकड़ों, हज़ारों नहीं बल्कि लाखों पशु काटे जाने लगे और जिससे यह एक बड़ा मोटा रोजगार बन गया। यहां के लोग इस क़दर गिर गये हैं कि बहुत से हिंदू, यहां तक कि बहुत से ब्राह्मण तक इन कारखानेदारों को ओर से पशु खरीदने लगे और यहां के धनी इस व्यवसाय में रुपया लगाने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि आजकल इस क़दर पशुओं का अभाव हो गया है कि जो गाय पांच या दस रुपये में मिलती थी, वह आज चालीस या पचास रुपये मे भी नहीं मिलती है और जो जुआरा पचास या पचहत्तर रुपये में मिलता था, वह आज दो सौ तक में नसीब नहीं होता है। जिस दूध का बेचा जाना महा पाप समझा जाता था, वह आज तीन-चार आने सेर तक बिकता है। इसका सीधा-सादा मतलब यही है कि अब पशुओं की संख्या इस क़दर कम हो गई है कि क़रीब-क़रीब बिलकुल अभाव सा हो गया है। जिन गांवों में सैकड़ों नहीं हज़ारों मवेशी रहा करते थे, वहां आज मुश्किल से दस-बीस पशु दिखाई देते हैं।

२ भारत में पशुओं के कम होने का एक कारण यह भी है कि विदेशी लोग माल ढोने के वास्ते इञ्जिन व मोटर तैयार करते हैं। सड़क छिड़कने के वास्ते, मैला ढोने के वास्ते, सवारी के वास्ते, खेत जोतने के वास्ते ट्रैक्टर, हल इत्यादि चीजें तैयार करते हैं। लेकिन भारतवर्ष में क़रीब-क़रीब सारे काम बैलों द्वारा किये जाते है। भारतवर्ष की ताक़त सिर्फ पशु ही है और वे बहुत सस्ते मिलते भी हैं। इनका अभाव होने से और उनके बाज़ार के तेज़ होने के कारण यहाँ विदेशियों के इञ्जिन, मोटर, ट्रैक्टर आदि सामान के वास्ते अच्छा बाजार (Market) बन गया है और काफ़ी तादाद में उनकी खपत भी होने लगी है। इस प्रकार विदेशों का स्वार्थ इसी में है कि भारत के पशु-धन का ह्रास हो और चूंकि यहां की सरकार भी विदेशी है,

इसलिए वह भी इस स्वार्थ की पूर्ति में बाधा नहीं पहुंचाना चाहती। जब यहां रेल नहीं थी, उस समय लाखों बैलगाड़ियां माल ढोने का काम किया करती थीं, घर-घर रथ और बहेलियां रहा करती थीं। इस प्रकार हज़ारों, लाखों नहीं, करोड़ों पशुओं और आदमियों की रक्षा हुआ करती थी। अगर कोई यह कहे कि मोटर द्वारा या रेल द्वारा किफ़ायत होती है, तो यह बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि बैलगाड़ियों का सारा रुपया अपने देश में यानी हिन्दुस्तान में ही रहता है, जब कि मोटरों, इंजिनों और ट्रैक्टरों का रुपया विदेशों में चला जाता है। यही नहीं कि रुपया केवल एक बार जाकर बन्द हो जाय, बल्कि जब तक मोटर ट्रैक्टर, इंजिन चला करते हैं, तब तक उनके वास्ते पेट्रोल और पुर्जे वगैरह आया करते हैं।

३—भारत में एक लाख के क़रीब जो विदेशी फौज रहती है, उसे नित्य मांस खाने को दिया जाता है।

४—हम प्रायः देखा करते हैं कि यहां के अच्छी अच्छी नस्ल के मवेशी जैसे हरियाने की भैंसें, मान्टगोमरी की गायें विदेशों को भेजी जाती हैं।

५—कलकत्ते, बम्बई आदि शहरों के दूध बेचनेवाले ग्वाले बड़ी उम्दा नस्ल की गायें—भैंसें, पंजाब, हरियाने, कोसी, छाताई आदि स्थानों से मगाते हैं और चार—छः महीने दूध लेकर कसाइयों के हाथ बेच डालते हैं, जहां उनका खात्मा हो जाता है। इस प्रकार हज़ारों नहीं, लाखों पशु प्रति वर्ष छुरी के घाट उतारे जाते हैं।

६—इसके अतिरिक्त प्रत्येक शहर में मांस खानेवालों के संख्यानुसार कई कमेले हुआ करते हैं, जहां प्रति दिन छोटे पशु यानी भेड़, बकरी के अलावा गाय, बैल, भैंस इत्यादि भी मांस के लिये मारे जाते हैं।

७—ईद के अवसर पर हिन्दू—मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ाने की ग़रज़ से स्वार्थी लोग हज़ारों लाखों गायों की कुर्बानी करा दिया करते हैं।

८—गांवों और शहरों में जो चरागाहें थीं, उनकी सारी जमीन आजकल काश्त में ले ली गई है—और पशुओं के चरने के वास्ते कोई प्रबन्ध नहीं है। अच्छे दिनों में ही चारे का अभाव रहता है। फिर जब अकाल पड़ता है, तब की क्या पूछना है ?

९—अब तक हिन्दुओं में मूर्खता के कारण ऐसी रीति चली आती है कि सैकड़ों नहीं, हजारों पशु देवी, दुर्गा, जखैय्या के नाम पर प्रति वर्ष बलिदान किये जाते हैं अर्थात काटे जाते हैं।

समस्या इतनी गम्भीर होती जा रही है कि अब उसे हल करना कठिन हो रहा है। सिवाय इसके कि या तो पशु अपने तन को त्याग कर मर जांय या कसाइयों के हाथ बिकें उनके लिये और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार लाखों पशु कभी किसी प्रान्त में, कभी किसी प्रान्त में, छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं।

अब यह विचारना है कि हम अपने धन की रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं।

सबसे मुख्य बात तो यह है कि अगर हम अपने को हिन्दुस्तानी समझते हैं और यह जानते हैं कि हम यहां हो पैदा हुये हैं और यहां ही मरेंगे; देश के सुख में हमारा सुख है; देश के दुःख में हमारा दुःख है; तो हमारा यह परम पावन कर्तव्य है कि हम अपने पशु-धन की तन, मन और धन से रक्षा करें। अब प्रश्न यह उठता है कि वह उपाय कौन सा है ? जहां तक मैंने सोचा-विचारा है, मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि हम अपने धन की पूर्ण रक्षा उसी अवस्था में कर सकते हैं, जब हम पूर्ण स्वराज्य हासिल कर लें। वैसे तो

बहुत से तरीके हैं पर वे वैसे ही हैं कि जैसे पेड़ की जड़ को न सींच कर उसकी पत्तियों को सींचना। पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना ही एक मात्र उपाय है। उसी अवस्था में हम अपने पशु-धन के ह्रास को रोक सकेंगे और उसकी वृद्धि कर सकेंगे। संसार में सिर्फ भारतवर्ष ही एक ऐसा गुलाम देश है, जिसमें व्यापारिक दृष्टि कोण से अर्थात् चमड़े, मांस, हड्डी के ख़याल से पशु काटे जाते हैं और कोई देश ऐसा अभागा नहीं है, जहां पशु इस प्रकार वध किये जाते हैं।

परन्तु जब तक देश स्वतन्त्र न हो, तब तक हमें क्या करना चाहिये ? हम चाहें तो फैशन और शौक़ के फेर में न पड़ कर बहुत से पशुओं को कटवाने से रोक सकते हैं। यह पढ़ कर पाठक शायद आश्चर्य करेंगे कि वे स्वयं पशु कटवाने के कारण कैसे बन रहे हैं ?

विदेशियों अर्थात् यूरोपियनों के आने से पहिले यहां भारत में चमड़े, मांस और चर्बी आदि की ज़रूरतों के वास्ते पशु नहीं मारे जाते थे, क्योंकि उस समय चमड़े, हड्डी, चर्बी, ख़ून इत्यादि को इस्तेमाल में लाने को बुरा, असभ्यतापूर्ण और घोर पाप समझा जाता था। पर हम भारतवासियों ने ज्यों ज्यों चमड़े चर्बी, हड्डी आदि की वस्तुओं का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया, त्यों-त्यों विदेशियों को कच्चे माल की आवश्यकता पड़ने लगी और वे भारत से कच्चे माल को ले जाकर अपने यहाँ से सुन्दर चमड़े व हड्डी की चीजें और चर्बी के कलफ़ से अच्छे-अच्छे कपड़े बना कर भेजने लगे। आप स्वयं इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि हम भारतवासियों ने फैशन और बाहरी आडम्बरों में पड़ कर किस तरह से चमड़े, हड्डी, चर्बी और ख़ून आदि की वस्तुओं को अपनाना शुरू कर दिया। विदेशियों के आने के पहिले चमड़े की कोई वस्तु इस्तेमाल में नहीं लाई जाती थी। चमड़े और हड्डी का छूना तक पाप समझा जाता था। लोग बहुत कम जूते पहिनते थे। वे जूते भी मरे हुये पशुओं की खाल से बनते थे। ज्यादातर लोग काठकी खड़ाऊं और चट्टी का इस्तेमाल करते थे। विदेशियों के आने के पेश्तर ज्यादातर जूते बनाने, चरस बनाने या ढोल आदि चीजों के मढ़ने के वास्ते ही चमड़े की आवश्यकता पड़ा करती थी और वह भी मरे हुये पशुओं के चमड़े से ही पूरी हो जाया करती थी। पर अब तो समय ने ऐसा पलटा खाया है कि प्रत्येक भारतवासी चमड़े का जूता पहनता है और फैशनेबिल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बड़े आदमी तो सिर्फ़ जूतों के एक दो जोड़े ही नहीं बल्कि दस-दस, पांच-पांच जोड़े तक रखते हैं। यही नहीं, प्रायः सभी इस्तेमाल की चीज चमड़े व हड्डी की होना ज़रूरी समझते हैं, जैसे बिस्तर बन्द, पेटी, घड़ी का तसमा, सूटकेस, बक्स, बटन, घोड़े के सामान मोटर या गाड़ी के पोशिस, बेग, ज़ीन, चाबुक, टोप, टोपियों के अन्दर चमड़े का अस्तर, हर प्रकार के तसमे आदि जो चीजें देखो वही चमड़े की ही नज़र आती हैं। इस प्रकार अगर हिसाब लगाया जाय, तो पता चलेगा कि एक-एक आदमी के इस्तेमाल में कई-कई पशुओं का चमड़ा लगता है।

यह तो आप जानते ही होंगे कि जितनी मुलायम और उम्दा-उम्दा चिकनी खालें होती हैं, वे छोटे-छोटे बछड़े या बछिया के चमड़े से ही तैयार की जाती हैं। जितना बिदेशी बढ़िया, मुलायम और फ़ैशनेबिल ऊनी व सूती कपड़ा आता है, उसमें काफ़ी चर्बी का लेप दिया जाता है। वरना वह इतना दिखावटी व महीन नहीं बन सकता। तमाम मशीनों में भी चर्बी का व्यव-

हार होता है। मिलों की अन्य चीजें भी चमड़े की बनती है, बहुत से साबुन और बहुत सी दवायें और अन्य चीजें चर्बीसे तैयार की जाती है।

हड्डी के दस्ते लकड़ी, छुरी कटारी आदि में लगते हैं। हड्डी से ही ब्रुश की डंडी, बटन, खिलौने आदि वस्तुयें तैयार की जाती है। इसके अलावा करोड़ों मन हड्डी यहां से पिस-पिस कर खाद के वास्ते या चीनी को साफ़ करने के वास्ते हर वर्ष विदेशों को जाया करती है। खून का रंग बनता है और दूसरे कई कामों मे आता है।

वर्तमान समय में दुर्भाग्यवश चमड़े, चर्बी आदि का इस्तेमाल इस क़दर बढ़ गया है कि भारतवर्ष में भी एक नहीं अनेक चमड़े बनाने के कारखाने खुल गये है।

ऊपर की बातों के अलावा पशुधन के ह्रास का एक मुख्य कारण और भी है। यहां के पशुओं की नस्ल दिनों दिन खराब होती चली जा रही है क्योंकि इस बात का कोई पूरा प्रबन्ध वर्तमान सरकार की ओर से नहीं है कि अच्छे-अच्छे बिजार (सांढ) रक्खे जायें, जिन से जो सन्तान पैदा हों, वे मजबूत और शक्तिशाली हों।

प्राचीन समय में तो यह प्रथा थी कि हर गांव में एक-एक और नगरों व शहरों में दस-दस, बीस-बीस बहुत अच्छी नस्ल के बिजार रक्खे जाया करते थे, उनको पूज्य भाव से देखा जाता था, उनके वास्ते खाने का सभी प्रबन्ध था और यहां तक था कि बिजार को खेतों में आजादी से चरने दिया जाता था। प्राचीन समय में यह आम रिवाज़ था और प्रायः कहीं-कहीं अब भी ऐसा देखा जाता है कि अगर कोई घर का बड़ा-बूढ़ा मर जाता है, तो उसके नाम पर बिजार छोड़ दिया जाता है और उसकी काफ़ी अच्छी देखभाल रक्खी जाती है, पर शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल बुरे से बुरा जानवर बिजार बनाया जाता है और उसके खाने-पीने का कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता है। वह जहां-जहां जाता है, वहां-वहां मार खाता है। यहां तक कि बड़े-बड़े शहरों में म्युनिसिपैलिटी उन्हें पकड़-पकड़ कर मैला ढोने की करांची खींचने के काममें लाती है।

आजकल अच्छे बिजारों का अभाव ही पशुधन के ह्रास का एक मुख्य कारण है जिसकी वजह से बहुत कमजोर और निकम्मी सन्तान पैदा होती है। बछड़े बजाय अच्छे-खासे बैल होने के नाटे रह जाते हैं और बछिया बजाय दुधारू गाय होने के मामूली गाय बनती हैं, जो इस क़दर छोटी व कमजोर होती हैं कि दूध का देना तो दरकिनार रहा, वे अपने बच्चों को भी पूरा दूध नहीं पिला सकतीं। इसका परिणाम यह होता है कि लोग इनको रखने में असमर्थ होते हैं और वे या तो बाज़ार में पड़ोसियों का नुकसान करने के लिये छोड़ दी जाती हैं या क़साई के हाथों बिकती हैं।

अब मैं आप महानुभावों का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि अमेरिका, कनैडा, स्विटजरलैंड और हालैण्ड आदि स्वतन्त्र देशों में मनुष्य अपने पशु-धन की किस प्रकार तरक्की व उन्नति कर रहे हैं।

एक समय था जब भारत में भगवान कृष्ण गौवें चराते थे, जिससे उनका नाम गोपाल पड़ा। वही दृष्टिकोण हम आज स्वतन्त्र देशों में देखते हैं। यह बताया जा चुका है कि किसी स्वतन्त्र देशमें चमड़े, हड्डी, चर्बी आदि के वास्ते पशु नहीं मारे जाते है। स्वतन्त्र देश पशुधन को अपने राष्ट्र-उत्थान का एक मुख्य साधन समझते हैं और वे इस विषय में वैज्ञानिक तरीकों से हर प्रकार की तरक्की कर रहे हैं। पशुओं की नस्ल

सुधारने को शिक्षा के वास्ते बड़े-बड़े विश्वविद्यालय और कालेज खोल रक्खे हैं। इनमें काफी खोज की जा रही है। पशुओं की नस्ल सुधारने में काफी ध्यान दिया जा रहा है। वहां विजार अच्छे से अच्छे जानवर का बनाया जाता है। एक-एक विजार की कीमत हजारों रुपये तक होती है। गाये सिर्फ दस-दस सेर या पांच-पांच सेर ही दूध नहीं देतीं, बल्कि तीस-तीस, चालीस-चालीस सेर और बाज-बाज गायें तो पचास-पचास सेर तक दूध देती है। अभी हालमें "भारत" में प्रकाशित हुआ था कि कैनेडा में एक गाय ने एक वर्ष में ३८० मन दूध दिया, जिससे ३८० आदमी रोज चाय पीते थे और जिसकी कीमत १३८००० रुपया कूती जाती है।

उन्हें इस किस्म की खुराक दी जाती है कि जिससे वे ज्यादा से ज्यादा दूध दे सकें। वहां पर पशु की खुराक का, सफाई का, उनके चरने का, गर्मी-सर्दी से बचाव का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध किया जाता है। विदेशों में यह एक बड़ा गम्भीर विषय हो गया है। इस विषय पर बड़े-बड़े ग्रन्थ और पुस्तकें रची गई है। कई देशों का व्यापार पशुधन द्वारा यानी दूध, मक्खन, मलाई और मावे पर ही चलता है जैसे डेनमार्क, स्वीज़रलैण्ड इत्यादि का।

अब प्रश्न यह उठता है कि अपने देश के पशुधन की हालत यदि सुधारी जाय, तो किस प्रकार सुधारी जा सकती है ? मैं आपको ऊपर बता चुका हूं कि पूरा सुधार तो उसी हालत में हो सकता है जब हम लोग स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें, लेकिन हमें यह सोचना है कि वर्तमान स्थिति में क्या कुछ उपाय हो सकते है, जिनसे हम अपने पशु-धन की रक्षा कुछ कर सकें ?

मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार अपने उदार पाठकों की सेवा में कुछ आवश्यक उपाय रखता हूं, जिनको कार्य में लाने से बहुत कुछ कठिनाई हल हो सकती है:-

* प्रत्येक हिन्दुस्तानी को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये :—

(१) चमड़े, चर्बी हड्डी और खून आदि की वस्तु का इस्तेमाल नहीं करेंगे, जैसे जूता, बक्स, बिस्तरबन्द, गाड़ी, मोटर की पोशिश इत्यादि।

(२) विदेशी कपड़ा या वह कपड़ा जिसमें चर्बी का लेप लगता हो, वह दवा, साबुन या अन्य कोई चीज़ जिसमें चर्बी का उपयोग होता हो, इस्तेमाल नहीं करेंगे।

(३) वह सामान, जो हड्डी से बनता हो या उसमें हड्डी का जुज लगता हो, इस्तेमाल नहीं करेंगे।

(४) वह रंग व सामान जो खून से बनता हो, इस्तेमाल नहीं करेंगे।

* आजकल हमारे सारे काम बगैर चमड़, चर्बी, हड्डी, खून इत्यादि की वस्तुओं के चल सकते हैं जैसे जूता रबड़ का या केनवेस का, बक्स, साज़, पोशिश, बिस्तरबन्द सब केनवेस या जीन के बन सकते हैं। बगैर चर्बी के लेप का कपड़ा खद्दर या हाथ का बना हुआ मिलता है। बगैर हड्डी के सारे सामान मिल सकते हैं। बगैर खून का रंग भी बनता है। बगैर चर्बी का साबुन बगैरह भी बाजार में मौजूद है। मैं पिछले दस वर्ष से इस बात का प्रयत्न कर रहा हूँ कि जहां तक हो सके चमड़े, हड्डी, चर्बी की वस्तु का इस्तेमाल न करूं। मैं अपने घोड़े का साज़ और गाड़ी की पोशिश केनवेस की बनवाता हूँ। जूता मोटर के सोल और ऊपर केनवेस का पहिनता हूँ। मेरा काम बगैर चमड़े आदि की वस्तुओं के बिना किसी दिक्कत के चल जाता है।

(५) हमको सरकार के भरोसे न रह कर चुंगियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा ग्राम-पंचायतों द्वारा इस बात का प्रबन्ध करना चाहिये कि अच्छे से अच्छे बिजार रक्खे जायं, जिससे अच्छी सन्तान पैदा हो। पशुओं की नस्ल सुधारने पर भी हमको पूरा ध्यान देते रहना चाहिये।

(६) जब कभी बन्दोबस्त हो, उस समय सरकार और ज़मींदारों से मिल कर कुछ ज़मीन चरागाह के वास्ते अवश्य छुड़वानी चाहिये।

(७) आजकल हम देखते हैं कि हमारे कुछ भाई जिनके दिल में दया है, उन्होंने गौशालायें खोल रक्खी हैं, जिनमें वे लंगड़ी, लूली और निठल्ली गायों की रक्षा करते हैं और हर वर्ष हजारों रुपया उनके लिये खर्च करते हैं। अगर वे सज्जन विचार से काम लें और इस विषय के किसी जानकार की सलाह का उपयोग करें तो वे साथ-साथ और भी बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। जैसे अच्छे बिजारों का रखना, नस्ल का सुधारना, जनता के लिये अच्छे दूध का प्रबन्ध करना इत्यादि। इसलिये मैं चाहता हूं कि गौशाला के प्रेमी बजाय पत्तियों के सींचने के जड़ को सींचें, जिससे कि देश का लाभ हो।

(८) अमेरिका आदि देशोंमें जब चारे की फ़स्ल होती है, उस समय वे लोग चारे का काफ़ी स्टाक इकट्ठा कर लेते हैं और जब चारेका अभाव होता है, उस समय वे इसको अपने पशुओं के काम में लाते हैं। इसी प्रकार अगर हमारे ग्रामीण भाई या धनी लोग जब चारे की फ़स्ल हो, उस समय अपने खेत से लाकर या दूसरों से खरीद कर चारे को स्टाक में रक्खा करें और उससे जब अकाल पड़े अपने पशुओं की रक्षा करें। अगर हमारे देशवासी अमेरिका की प्रथा के अनुसार साइलेज (Silage) का तरीका काम में लावें, तो बहुत किफायत से चारा रक्खा जा सकता है। इसका तरीका यह है कि एक कुए के समान पक्की ज़मीन में गड्ढा खोद कर उसमें बरसात के दिनों में जो कुछ हरी घास वगैरह मिल सके ठूस-ठूस कर भर दो और उसे छप्पर से छा दो। जब ज़रूरत हो उसमें से निकाल लो। इस प्रकार तीन-चार साल तक चारा मिल सकता है। इस किस्म का चारा पशुओं के लिये बहुत उपयोगी होता है।

(९) आजकल हम देखते हैं कि हमारे बहुत से बड़े अमीर आदमी मोटर, घोड़ा, गाड़ी आदि तो रखते हैं, पर गाय नहीं रखते। जब उनसे कहा जाता है कि कम से कम एक गाय तो रख लो, तो वे कहते हैं कि कौन आफत मोल ले? उस समय विचार उठता है कि मोटर, घोड़ा, गाड़ी जो फिजूल खर्च है, उसकी आफत तो खुशी खुशी बर्दाश्त की जाती है, पर एक गाय, जो जीवन को बढ़ाती है व बल पुरुषार्थ देती है, उसको कहीं नहीं रक्खा जाता। यही कारण है कि आये दिन बड़े आदमी कमज़ोर व बीमार रहते हैं और सैकड़ों रुपया हकीम, डाक्टरों में खर्च करते हैं।

मेरा विचार है कि वह गृहस्थ गृहस्थ नहीं, वह हिंदू हिंदू नहीं, जो कमसे कम एक गाय नहीं रखता है। गरीबी के कारण कोई नहीं रख सके तो दूसरी बात है। पर जो इस योग्य है, उनको तो कम से कम एक गाय अवश्य ही रखनी चाहिये। अधिक रक्खें, तो अति उत्तम बात है। जिन महानुभावों के घर में भैंस या गाय है, वे ही घी और दूध का आनन्द पा सकते हैं, बाजार से लेने वाले नहीं। जो दूध बाजार से आता है, वह या तो पानी मिला होता है, या मक्खन निकाला हुआ होता है, जो मुश्किल से लाभदायक होता है। इस प्रकार से गाय का रखना उत्तम व वांछनीय है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हमारे देशी राज्य इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकते हैं ? हां, अगर रजवाड़े इस ओर ध्यान दें, तो बहुत कुछ कर सकते हैं। पर अब उनमें भी गौ-भक्ति की अपेक्षा मोटर भक्ति ही अधिक है। वे मोटरों का सालाना बजट लाख-दो लाख, दस लाख तक अवश्य रख लेते हैं, पर गौशाला का हजार-दो हजार का होना भी ज्यादा समझा जाता है। रजवाड़े अगर चाहें तो इस ओर बड़ी तरक्की कर सकते हैं। उनको इस विषय का एक अलहदा विभाग खोलना चाहिए, जिसके द्वारा शहर व ग्रामों में अच्छे-अच्छे बिजारों का प्रबन्ध करा के पशुओं की नस्ल सुधारने, पशुओं के वास्ते चरागाह का प्रबन्ध करा के घी और दूध शुद्ध तथा सस्ता बिकवाने इत्यादि बातों का सुचारू रूपसे प्रबन्ध कराया जावे व उसके उपाय सोचे जावें। ये सब बातें वैज्ञानिक ढङ्ग से होनी चाहिए। इस बात की सब से अधिक ज़रूरत है कि इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ विद्यार्थियों को अमेरिका, कैनेडा, स्वीटज़रलैंड आदि देशों में भेजा जाय और अगर हो सके तो किसी एक अच्छे जानकार को कुछ समय के वास्ते विदेश से बुला भी लेना चाहिए। इस प्रकार वहां से जानकार के आने से और विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक शिक्षा ग्रहण के बाद बहुत कुछ तरक्की की जा सकेगी।

इसके अलावा हिन्दू-विश्व-विद्यालय के मुख्य प्रबंधकर्ताओं से भी मैं अनुरोधपूर्वक निवेदन करूंगा कि वे पशुधन की उन्नति के लिये भी कोई विशेष शिक्षा-विभाग खोल दें, जिससे भारत और भारतीयों का उद्धार हो।

यह तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं कि भारतवर्ष एक आर्य्य संस्कृति का देश है। यहां के आदमी ज्यादातर नाज और शाक पात पर निर्भर रहते हैं अर्थात् शाकाहारी हैं। भारतवर्ष के पतन का अर्थात् उसकी गुलामी के कारणों में एक कारण पशु-धन का ह्रास भी है। यहां के बासिन्दों की मुख्य खुराक दूध और घी है। जब दूध और घी का ह्रास हो गया, तो यह निश्चय है कि यहां के मनुष्य कमज़ोर और दुर्बल होंगे। इसी का यह परिणाम है कि आज जिस बच्चे, नवयुवक या विद्यार्थी को देखो वह निहायत कमजोर, केवल हड्डियों के जानदार पुतले के समान नज़र आता है। इसका कारण यह है कि अव्वल तो आजकल नब्बे फी सदी मनुष्यों को दूध-घी मिलना ही नहीं और अगर दस-बीस फी सदी को मिलता भी है, तो वह निकम्मा व मिलावटी होता है। यानी यों कहना चाहिये कि खालिस और उम्दा घी या दूध मुश्किल से एक फी सदी को मिलता होगा।

प्रिय बधुओ ! अगर आप भारतीय हैं, यदि आपके हृदयमें मातृभूमिका प्रेम है और अगर आप चाहते हैं कि हम और हमारी संतान एक अच्छी अवस्था को प्राप्त हों, तो आप लोगों के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि तन, मन धन से अपने पशु-धन की रक्षा करें वरना यही हालत होगी कि 'अब पछताये होत का, जब चिड़ियां चुग गईं खेत'।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैंने जो निवेदन किया है, उसपर मेरे देश भाई अवश्य ध्यान देंगे और उसको कार्यरूप में परिणत करेंगे।

चार सहवास

[श्री वियोगी हरि]

सहवास चार प्रकार के होते हैं:—

(१) शव, शव के साथ सहवास करता है,

(२) शव, देवी के साथ सहवास करता है;

(३) देव, शव के साथ सहवास करता है;

(४) देव, देवी के साथ सहवास करता है।

(१) जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी दु:शील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है वहाँ शव शव के साथ सहवास करता है।

(२) जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दु:शील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी अहिंसक, अचौर, सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला पुण्यवती, उदार और मधुरभाषिणी होती है, वहाँ शव देवी के साथ सहवास करता है।

(३) जिस घर में पति अहिंसक, अचौर, सदाचारी, सच्चा, मद्य-विरत, सुशील, पुण्यात्मा उदार और मधुरभाषी होता है, और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करनेवाली, दु:शीला, पापिनी, कृपण और कटुभाषिणी होती है, वहाँ देव शव के साथ सहवास करता है।

(४) जिस घर में पति और उसकी पत्नी दोनों ही अहिंसक, अचौर, सदाचार-रत, मद्य-विरत, सुशील पुण्यवन्त, उदार और मधुरभाषी होते हैं वहाँ देव देवी के साथ सहवास करता है।

—बुद्ध-वाणी से

हमारा स्त्री समाज

[श्रीमती श्रीमती देवी रांका, नागपुर]

> हमें श्रीमती श्रीमती देवी रांका का यह लेख प्रकाशित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। श्रीमती रांका हमारे सुपरिचित देशभक्त सेठ पूनमचन्दजी रांका के छोटे भाई श्री आसकरणजी रांका की धर्मपत्नी हैं। आप श्री सरदारसिंहजी महनोत, जिनका चित्र इसी अंक में अन्यत्र छपा है, की भतीजी हैं। आप बड़े उच्च राष्ट्रीय विचारों की हैं। विवाहसे पूर्व आप इसी सिलसिले में जेल भी हो आई हैं। आपके विचार बड़े जोशीले एवं भावपूर्ण होते हैं। हमें आशा है कि समाज की अन्य शिक्षिता बहनें भी 'स्त्री-समाज' से सम्बन्ध रखनेवाले अपने-अपने विचार हमें भेजने की कृपा करेंगी।
>
> —सम्पादक

'चांद' के सन १६३५ के 'विदुषी अंक' में भारत के साम्यवादी-आन्दोलन की एक प्रमुख नेत्री विदुषी-श्रेष्ठ श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय ने निम्नलिखित सन्देश भेजा था:—

"किसी भी देश का पुनर्निर्माण तब तक सम्पूर्ण नहीं होता जब तक साथ ही उसका सांस्कृतिक पुनर्जीवन भी न हो। इस सांस्कृतिक निर्माण में स्त्रियों का एक विशेष स्थान है। अपनी सौन्दर्य और भावना-संबन्धी सूक्ष्म ग्रहणशक्ति, अपने सृष्टि रचना सम्बन्धी प्रकृतिदत्त गुण और जीवन के साथ अपने घनिष्ट सम्पर्क के कारण वे ही संस्कृति की मूल स्रोत और उसके गौरव की ऐतिहासिक रक्षिका होती हैं। इस दृष्टि से देश के सांस्कृतिक विकास में स्त्रियों का भाग सदैव अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।"

संसार केकिसी भी देश के पुनर्निर्माण के इतिहास की ओर आंख उठा कर देखने मात्र से ही हमको पता लग जायगा कि उस देश की स्त्रियों के अविरल परिश्रम अटूट लगन और सदुत्साह के बिना शायद वह पुनर्निर्माण अधूरा ही रह जाता। रूस की मज़दूर क्रान्ति को ले लो, फ्रान्स की खूनी क्रान्ति को ले लो, मिश्र, टर्की और जापान आदि के काया पलटने के उपक्रम को ले लो, दूर नहीं जाकर वर्त्तमान भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन को ले लो, जहां भी हम देखेंगे, हमें स्त्रियों की कर्त्तव्य पालन की महत्ता का आभास मिलेगा। हां, भारत के विषय में यह कहा जा सकता है कि अभी यहां का नारी-जागरण नगण्य है, किन्तु यह कहते समय हमें इस सत्य को नहीं भूलना चाहिये कि अभी तो भारत के पुनर्निर्माण के कार्य का आरम्भिक युग ही है। फ़िर भारत दूसरे देशों की तरह नहीं है। यह स्वयं एक महाद्वीप है। यहां करोड़ों मनुष्य हैं, हज़ारों फ़िरके हैं, प्रत्येक फ़िरके में स्त्रियों के लिये भिन्न-भिन्न नियम हैं, जो कालान्तर से स्त्री-समाज को पिछाड़ने में ही सफल हुये हैं। यही कारण है कि यहां नारी-जागरण उतनी सफलता से नहीं हो पा रहा है, जितनी सफलता से अन्य देशों में। जो कुछ भी हो, यह बात निसन्देह सत्य है कि बिना

स्त्रियों के आगे बढ़े न तो कोई देश स्वाधीन हुआ है और न भविष्य में ऐसा होना सम्भव है। अब सवाल यह उठता है कि भारत में, जहां नारी-समाज बहुत ही गयी बीती हालत में है, स्त्रियां कैसे आगे आवें ? भारत के प्रत्येक फिरके को या समाज को, अगर वह इस होड़ा होड़ के ज़माने में जिन्दा रहना चाहता है, अपने नारी-विभाग को जागृत करने का काम अपने-अपने हाथ में उठा लेना चाहिये। यह देख कर जहां प्रसन्नता होती है कि अधिकांश समाजों ने इस दिशा में प्रयत्न करना शुरू कर दिया है, वहां यह देख कर दुःख भी कम नहीं होता कि अभी हमारा ओसवाल समाज इस विषय में एकदम निश्चेष्ट है। हमारे समाज ने अभी तक नारी को पैर की जूती ही समझ रखा है। लड़कियों को शिक्षा दिलाना पाप समझ रखा है। अधिक क्या, लड़की के जन्म तक को उसने अपना अभाग्य समझ रखा है। पूजनीय ऋषियों के इस वाक्य को अपने हृदय से एकदम भुला रखा है कि,

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।'

किन्तु इसका परिणाम वही हुआ है, जो ऐसी दशा में होना चाहिये था। हमारा समाज आज प्रायः सभी अन्यान्य समाजों से पिछड़ा हुआ है। अशिक्षित माताओं की सन्तानें अशिक्षित, निर्बल माताओं की सन्तानें निर्बल, भीरू और साहसहीन माताओं की सन्तानें डरपोक होती ही हैं। इसीलिये आज हमारे समाज के अधिकांश व्यक्ति मूर्ख, कायर और कमज़ोर हैं। किसी काम में आगे बढ़ना, चाहे वह काम सामाजिक हो, राजनैतिक हो, या व्यवसायिक हो, जानते ही नहीं। हमारा पुरुषवर्ग मुझे क्षमा करे, अगर मैं यह कहने की धृष्टता करूं कि वे मुर्दे से भी बदतर हालत में हैं। उनके शारीरिक गठन की ओर देखो, कितने कमज़ोर और बेडौल, उनके चरित्र की ओर देखो, कितने पतित; उनके विचारों की ओर देखो, कितने संकीर्ण और ओछे; उनके कार्यों की ओर देखो, कितने सामान्य और स्वार्थ भरे। उनके स्त्री-समाज की ओर देखो, भेड़-बकरियों से भी गया बीता, किन्तु इसका सारा उत्तरदायित्व पुरुषवर्ग पर है, जो स्त्रियों को केवल विलास की सामग्री, या घर का धन्धा भर करने के लिये केवल दासी, या अपनी जायदाद समझते हैं। लेकिन मैं उन्हें यह बता देना चाहती हूं कि समय बदल गया है। नवयुवक अपनी पिछड़ी हुई हालत का अनुभव करने लगे हैं। स्त्रियों के हृदय में भी कम से कम यह भावना तो घुस गई है कि वे पिछड़ी हुई हालत में रखी गई हैं और उनके भी पुरुषों के मुकाबले कुछ अधिकार हैं। क्या इस समय यह अच्छा न होगा कि पुरुषवर्ग स्वयं ही उस समय की प्रतीक्षा न कर, जब असन्तुष्ट स्त्रीवर्ग एक जबर्दस्त मतभेद और गृह युद्ध उपस्थित करेगा, अपने स्त्री समाज को ऊंचा उठाने में प्रयत्नशील होकर अपनी लाज आप ही रख ले ?

मैं अपने समाज के पुरुषों को और साथ ही उन स्त्रियों को भी, जो अपने अधिकारों के ज्ञान से वंचित हैं, यह बतलाना चाहती हूं कि मानव जगत में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं है। एक ही प्रकृति के वे ठीक उसी प्रकार दो भिन्न-भिन्न अंग हैं, जिस प्रकार एक ही शरीर के दो हाथ अलग-अलग होते हुये भी एक से महत्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार दाहिने और बायें हाथ के कार्यों का दायरा किसी हद तक अलग रहते हुये भी किसी कार्य को सुचारु रूप से संपन्न करने के लिये दोनों के मिल कर काम करने की

आवश्यकता पड़ती है,उसी प्रकार पुरुष और स्त्री वर्ग के परस्पर सहयोग के बग़ैर समाज आगे नहीं बढ़ सकता। अपनी मंजिल पूरी करने के लिये जिस प्रकार गाड़ी के दोनों पहिये दुरस्त होने चाहिये, उसी प्रकार इस जीवन संग्राम में विजय पाने के लिये पुरुष और स्त्री दोनों को एक दूसरे का पूर्ण सहयोग चाहिये। एक दूसरे की अवहेलना करने से काम नहीं चल सकता। पुरुष और स्त्री, इन दोनों में से पहले कौन हुआ था, यह कह सकना एकदम असम्भव है। पुरुष के पहले होने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक है, जितनी स्त्री के पहले होने की, या दोनों ही की एक दूसरे के बाद होने की सम्भावना गलत है। कहने का मतलब यह है कि दोनों ही अनन्त काल से एक साथ वर्त्तमान हैं और दोनों ही के जीवनयापन के समान अधिकार है। जिन स्त्री पुरुष की संतति भिन्न नहीं, वे स्वयं कैसे भिन्न कहे जा सकते हैं? अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर एक दूसरे को दबा रखना भयंकर नीचता है, घोर अमानुषिकता है। इस जगह यह प्रश्न उठ सकता है कि अगर दोनों एक ही प्रकृति के अंग है और समान अधिकार वाले हैं तो भगवान् ही ने एक को सबल और दूसरे को अबला बना कर भिन्नता क्यों पैदा की? इसका उत्तर हमको अपनी शरीर-रचना की ओर ध्यान देने ही से मिल जाता है। बायां हाथ दाहिने हाथ की अपेक्षा कमजोर और कई छोटे-मोटे कामों को करने में असमर्थ होता हुआ भी शरीर रूपी समाज की सेवा करने का या कोट रूपी महल के जेब रूपी कमरे में स्वच्छन्दता से प्रवेश करने का उतना ही या शायद अधिक अधिकार रखता है, जितना दाहिना हाथ। यही हाल पुरुष और स्त्री समाज का है। शारिरिक रचना की भिन्नता के कारण एक दूसरे के कार्यों का दायरा अलग-अलग कर दिया है। पर ऐसा सोचते समय यह न भूलना चाहिये कि अलग-अलग दायरा रहने पर भी एक दूसरे से इतना सम्बद्ध है कि विच्छेद नहीं किया जा सकता। पुरुष बलवान तथा सख्त होने के कारण बाहरी जगत में काम करता है तो स्त्री अबला और कोमल होने के कारण भीतरी जगत यानी घर, जो स्वयं एक पूरा जगत ही है, में काम करती है। एक की शान्ति और सुव्यवस्थिता पर दूसरे की शान्ति और सुव्यवस्थिता निर्भर है। अगर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्त्रियों के दायरे का महत्व और भी बढ़ जाता है। घर वह फेक्टरी है, जहां बाहरी जगत में काम करने के लिये पुरुष रूपी मशीनें तैयार की जाती हैं। इतना कहने से मेरा आशय केवल यही है कि पुरुष वर्ग यह समझ ले कि स्त्रियों का स्थान किसी प्रकार पुरुषों से नीचा नहीं है।

हमारे वर्त्तमान स्त्री समाज की क्या दशा है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है? इसका अनुभव होते हुये भी केवल अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर या स्वाभाविक कायरता के कारण परिवर्त्तन से डर कर पुरुष वर्ग चुप है। भीषण पर्दे की शिकार बनी हुई हमारी बहनें जीती जागती पुतलियों की अपेक्षा किसी कदर अच्छी नहीं है। भीषण भारी गहनों और बेडौल वेश-भूषा से लदी हुई वे सजी सजाई गठड़ियों के सिवा और क्या हैं? दिन के समय 'चांदनी' में छिप कर जब हमारी बहनें कहीं जाने के लिये बाहर निकलती हैं, तब चलते फिरते तंबुओं के सिवा वे और क्या नजर आती हैं? काला अक्षर भैंस बराबर' समझ कर जब वे परस्पर के कुशल समाचार भी नहीं ले दे सकती, तब उनको दशा दयनीय के सिवा और क्या है? मैं पुरुषों को एक बार फिर इस बात की याद दिला कर

कि बिना अपने बामाङ्ग को ऊपर उठाये उनका ऊपर उठना असम्भव है अधिकारयुक्त शब्दों में प्रार्थना करती हूं कि वे स्त्री समाज के सुधार के प्रति प्रयत्नशील हों। पर्दा प्रथा, जिसके विषय में रोज रोना रोया जाता है, नष्ट कर वे अपने स्त्री समाज को इस विस्तृत संसार में प्रवेश करने देकर, उसे कूपमडूक होने से बचावें। अपनी लड़कियों को अनिवार्य रूप से शिक्षा देकर उन्हें भविष्य की सुयोग्य मातायें, बहनें और पत्नियां होने के लिये तैयार करें। पर्दा प्रथा हट जाने से और शिक्षा फैल जाने से जेवर कपड़े सम्बन्धी दूसरी बुराइयां स्वयमेव दूर हो जायंगी। जब स्त्रियां विवेक को गहना समझने लगेंगी, लज्जा को सच्चा और सुन्दर कपड़ा समझने लगेंगी, उस समय पुरुषों को कितनी झंझटों से मुक्ति मिल जायगी, यह पुरुष वर्ग के लिये एक अनुभव करने की बात है। मैं अपने नवयुवक भाइयों से भी यह प्रार्थना करूंगी कि वे प्राचीन दकियानूसी विचारों वाले वृद्धों की बातों पर ध्यान न देकर देश, काल और परिस्थितियों की आवश्यकताओं को समझ कर अपनी अपनी पत्नियों को आवश्यक हेर-फेर करने में केवल स्वतन्त्रता ही न दें, बल्कि सहायता भी दें। वे इस बात को सदा ध्यान में रखें कि उनकी पत्नियों के अधिकार उन पर उतने ही है, जितने उनके अपनी पत्नियों पर है। उनके उत्थान में उनका भी उत्थान है और उनके पतन में उनका भी पतन।

इस जगह अगर मैं अपनी बहनों से यह प्रार्थना न करूं तो बात एक तरफा हो जायगी कि जहां अधिकारों का सवाल उठता है, वहां कर्त्तव्य पालन की भावना मौजूद रहनी चाहिये। जिस पर हमारा कुछ अधिकार है, उसके प्रति हमारा कुछ कर्त्तव्य भी है। जिस प्रकार यह हमारा अधिकार है कि मध्य रात्रि को आराम से सोते हुये हमको गली में हल्ला-गुल्ला मचा कर कोई न जगावे, उसी प्रकार यह हमारा कर्त्तव्य है कि गली में हल्ला-गुल्ला मचा कर हम मध्य रात्रि में किसी की निद्रा में विघ्न न डालें। अगर हम पुरुषवर्ग से समान अधिकार चाहती है तो उनके प्रति कर्त्तव्य पालन की भावना भी हममें रहनी चाहिये। अपने पति, पिता, भाई और पुत्र के प्रति हमे अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। सारे सामाजिक कामों में हमें कंधे से कंधा भिड़ा कर पुरुषवर्ग की सहायता करनी चाहिये। शिक्षा प्राप्त कर हमें सच्ची सहधर्मिणी, सच्ची सहदुःखिनी, सच्ची सहचरी साबित होना चाहिये। पांवों की बेड़ी न बन कर हम सच्ची सहायिका बनें।

अब मैं केवल एक बात और कह कर अपना लेख समाप्त करती हूं कि परमात्मा उसीकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। आप स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होने की चेष्टा करें। अपने पिताओं, पतियों और पुत्रों से अपनी मांगों को प्राप्त करने की स्वयं चेष्टा करें, अगर वे हमारे कहने पर एक बार कान न दें तो हम बार-बार प्रार्थना कर कर उन्हें अपनी बात सुनने के लिये विवश करें। जब वे देखेंगे कि आप न्यायपूर्वक अपनी मांगों को पेश करती हैं, तो वे न्याय को ठुकरा कर अन्यायी न बन सकेंगे। हमारे समाज की पढ़ी लिखी और सुधारक मनोवृत्ति वाली बहनों को चाहिये कि वे स्वयं, पुरुषों के भरोसे न रह कर, अपने आप का एक ऐसा संगठन करें कि अपनी मांगों को लेनेमें उन्हें सहूलियत हो। वे एक 'ओसवाल-महिला-समिति' या ऐसे ही किसी अन्य नामवाली समिति की स्थापना करें। पत्र-व्यवहार द्वारा या कभी-कभी परस्पर मिलती रह कर सच्चे सहयोग पूर्वक वे बहनें बहुत कुछ कर सकेंगी। इस विषय पर मैं अगले अंक में कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करूंगी।

करलो जो कुछ है करना

[श्री मोतीलाल नाहटा, बी० ए० 'विश्वेश']

चुनलो चुनलो फूल देखना ये न कहीं मुरझा जाये ।
तीव्र चाल से वृद्ध काल-पक्षी आता पर फैलाये ॥
यही कुसुम जो आज तुम्हारे कानन में मुस्काता है ।
अरे कल वही पड़ा रहेगा वह भूतल पर कुम्हलाये ॥

गगनाङ्गण में चमक रहा है स्वर्ग दीप दिनकर जो आज ।
चढ़ करके सर्व्वोच्च शिखर पर बना प्राचि दिशि का जो ताज ॥
बस अब अति ही शीघ्र देखना उसकी गति रुक जायेगी ।
वह होगा अस्ताचल की गोदी में, होगा तम का राज ॥

जीवन नाटक के भी प्रायः प्रारम्भिक ही दृश्य ललाम ।
जब नस नस में भरा हुआ रहता असीम साहस उद्दाम ॥
गिरे न जब तक अरे, यवनिका अभिनय कौशल दिखलादो ।
रङ्ग-मञ्च पर आकर के नायक लेना कैसा विश्राम ॥

कल, बस कल की बात न करना, कल तो कल आने वाला ।
कल कल कर इस मूढ़ जगत ने कितना समय बिता डाला ॥
खुला हुआ मन्दिर उपासना का सामान जुटा लेना ।
अरे देखना कहीं न उसके पट पर पड़ जाये ताला ॥

भय क्या, मृत्यु ही तो जीवन, मरना तो जी कर मरना ।
यौवन का पावन प्रभात उत्साह भरा क्या है डरना ॥
एकबार आकर तरङ्गवत् कर देगा सहसा प्रस्थान ।
समय हाथ रहते जीवन में करलो जो कुछ है करना ॥
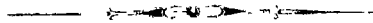
श्रीमद् कालूगणि ❀

[श्री मानिकचन्द सेठिया]

श्री वीर-प्रभू के स्थापित चार तीर्थ, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका के नायक, श्री वीर प्रभू की वाणि को यथावत प्रचार करने वाले चौवदे पूर्व के सार नवकार मंत्र में जो पाँच पद होते है उनमें तीन पदों में आचार्य महाराज को स्मरण किया जाता है। ऐसे आचार्य पद की प्राप्ति से पण्डित को मरने पर तीन ही भव में मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसे उत्तम पुरुष का स्मरण करना अपनी आत्मा को उज्ज्वल करना है। अतएव जीवन-मरण की धारा-रूप इस दुखद पर्यटन से यदि प्राणी को छुट कारा पाना है तो उसे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में ऐसे ही महान् उत्तम पुरुषों के जीवन को स्मरण करना होगा — उनकी छत्र छाया में जाना होगा—उनके बताये हुए दान, शील, तप तथा भावना के गुणों की वृद्धि करनी होगी। ऐसे महान् पुरुष ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप के मूर्तिमान प्रतिनिधि होते है। इस अनन्त काल-प्रवाह में ऐसे अनन्त प्रतिनिधि अन्तर्धान हो गये हैं। इसी काल ने अभी हाल ही में हमारे बीच में से एक ऐसे ही महान् आचार्य महाराज को उठा लिया है। अब हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होगा और न हमें प्रत्यक्ष सेवा एवं उपदेश का लाभ मिलेगा परन्तु इस क्रूर काल के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए हमारे पास हमारी स्मरण शक्ति है जिसके बल पर हम अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए उन्हें स्मरण करते रहेंगे। हम ही क्या हमारी आनेवाली पीढ़ियां भी स्मरण करती रहेंगी। उनको स्मरण में रखने का द्वितीय साधन यह है कि आचार्यों के गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्य ही होते हैं, अतएव आचार्य महाराज तो हमें स्वामीजी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री तुलसीरामजी महाराज के स्वरूप में प्राप्त हैं जिनका प्रतिनिधित्व प्राप्त कर हम उन्हें कभी भूल नहीं सकते।

अपनी सफल यात्रा समाप्त कर जानेवाले आचार्य महाराज हमें नाना प्रकार से स्मरण आते है; क्योंकि हमने उनको बहुत सन्निकट रह कर देखा है। प्रत्येक विषय में वे पूर्ण थे। उनके जीवन के किसी विषय का स्मरण कीजिये आपको अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होगी। मैं आज उनके कतिपय पावन संस्मरणों की चर्चा करूंगा।

जन्म और बाल्यकाल—

आपका जन्म स्वाभाविक अलौकिकता लिए हुए हुआ था। सं० १९३३ की साल की फुलरीया दूज आपका जन्म दिवस है। फुलराया दूज का दिन हिन्दुओं के लिये जैसा महत्व का है वैसा ही मुसलमानों के लिये भी नवीन चाँद उठने के लिये महत्व का है।

❀ श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सम्प्रदाय के अष्टम आचार्य महाराज श्री श्री श्री १००८ श्री श्री कालुरामजी महाराज के स्वर्गवास पर, उनके सम्मान में कलकत्ते में ता० ३०-८-३६ को हुई सभा में दिया हुआ श्री मानिकचन्द सेठिया का भाषण।

अतएव आपका जन्म दिवस समस्त भारतवर्ष के लिये हर्ष का और महत्व का दिवस था। आपके जन्म ग्रह भी अलौकिक थे। सुजानगढ़ के श्रावक रूपचन्दजी सेठिया ने आपकी जन्म कुण्डली ज्योतिषवेत्ता पं० बीजराजजी को फलादेश देखने के लिये दी। पण्डितजी ने उस कुण्डली के फलादेश पर बहुत विचार किया, परन्तु उनकी बुद्धि कुछ काम न आई। वे विचारते-विचारते हैरान हो गये। अन्त में उन्हें कहना ही पड़ा कि यह किसी मनुष्य की कुण्डली नहीं हो सकती, क्योंकि इस कुण्डली में स्त्री के घर में शून्य पड़ती है तथापि परिवार बड़ा भारी होना और राज छत्र का जोग पड़ा है। पण्डितजी ने तो संसारिक मनुष्य को दृष्टिकोण में रख कर विचार किया था, इस लिये अगर वे इस आलौकिक पुरुष की जन्मकुण्डली का अर्थ नहीं लगा सके तो इसमें कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं हुई। हमारा अलौकिक पुरुष बालकपन में काले रंगवाला, शरीर में दुबला, लम्बे-लम्बे कान वाला, भिप्पे से बाल वाला और चञ्चल प्रकृति का था। क्या यह अलौकिक प्राणी इस कुरूपता के आवरण में होकर यह चाहता था कि उसे कोई नहीं पहिचाने? उनके इस रूप में भी हम संसारियों के लिए यह शिक्षा भरी थी कि रूप मे मत भूलो, धूलि से लथ-पथ बच्चों का अनादर मत करो, क्योंकि कौन जानता है कि यह अज्ञानी और कुरूप बच्चा सयाना होने पर एक दिन धर्म और मानव समाज का कितना बड़ा हितकारी होगा? संसारी मनुष्यों ने इस बालक को नहीं पहिचाना, परन्तु हम मानते हैं कि भरत क्षेत्र का मालिक इन्द्र है। इन्द्र अपनी सब प्रजा को पहिचानता है। अतएव इन्द्र की आंख से यह बालक भी दूर न रह सका। संस्कृत में इन्द्र का दूसरा नाम मघवा है। और इस अलौकिक बच्चे को सबसे प्रथम पहिचाननेवाले भी श्री मघवागणि बड़े विद्वान, स्वरूपवान और प्रभावशाली आचार्य थे। वे इस बालक की विशेष धर्म रुचि देख कर, उत्तरोत्तर उसकी धर्म रुचि बढ़ती रहने के हेतु साधु साध्वियों का बिहार इनके निवास-स्थान पर कराते रहे, जिसका फल यह हुआ कि इस अलौकिक बालक ने अपनी माता और बहिन सहित सं० १९४४ में चरित्र दीक्षा ग्रहण की

साधुकाल—

यद्यपि श्री मघवागणि संस्कृत के पण्डित थे, तथापि यह कहना पड़ेगा कि उस समय गण समुदाय में संस्कृत का प्रचार कम था। परन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत के अनुसार श्री कालूगणि ने अन्यान्य शिक्षाओं के साथ-साथ संस्कृत पढ़ने का पूर्ण परिश्रम किया, जिससे आप संस्कृत के अच्छे विद्वान हो गये। आप शुरू से ही बड़े विनयशील और आज्ञाकारी थे। एक समय की बात है, सप्तम आचार्य महाराज श्री डालगणि ने आपको बुलाया। आपके उपस्थित होने पर उन्होंने प्रश्न किया, 'तुम अभी क्या कर रहे थे?' उत्तर मे आपने कहा 'लिख रहा था'। महाराज ने आपका लिखा हुआ कागज मंगाया, निरीक्षण करने पर मालूम हुआ कि शेष का एक अक्षर अधूरा लिखा हुआ है। महाराजने पूछा, 'इस अक्षर को पूरा क्यों नहीं लिखा?' आपने स्वाभाविक विनय सहित उत्तर दिया 'आपकी पुकार सुनने पर मैं अक्षर को पूरा लिख कर विलम्ब नहीं कर सका'। यह आप की आज्ञा पालन की परीक्षा का समय था। इस परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए। आपके जीवन में यह एक बड़ी भारी विशेषता रही है कि आप खुद जैसे आज्ञा पालन में तत्पर थे वैसे ही अपने आश्रितों से आज्ञा पालन

करवाने में भी तत्पर थे। जिस विद्वान अथवा साधारण पुरुष ने आप के दर्शन-सेवा का लाभ लिया है, मुक्त कण्ठ से आपके विनम्र अनुशासन की प्रशंसा करनी ही पड़ी है।

आचार्य काल—

पाट विराजने के समय-आचार्य पद प्राप्त करने के समय-आप ३३ वर्ष के थे। उस समय सब ने यह अनुभव किया था कि आपने छोटी उम्र में ही इस पद को प्राप्त किया है, लेकिन आपने योग्यता के सामने आयु का विचार निरर्थक प्रमाणित कर दिया। अपना उत्तराधिकारी भी आप केवल २३ वर्ष की आयु के युवक साधु को चुन गये हैं। यह चुनाव भी आयु की दृष्टि से अपूर्व हुआ है। इनका ऐसा कौन सा कार्य है जो अपूर्व नहीं हुआ? पाट विराजने के बाद आपका ऐसा शारिरिक परिवर्तन हुआ कि जिन्होंने इनको पहले देखा था वे विश्वास नहीं कर सकते थे कि यह वही कालूरामजी है। एक बार आप बिदासर में विराजमान थे। एक जाटनी, जिसने इनको बालकपन में खूब अच्छी तरह देखा था, आपके दर्शन करने के लिये आई। पूज्य श्री कालूरामजी महाराज को देख कर उसने पूछा 'क्या यही कालूरामजी है?' लोगों के 'हाँ' कहने पर उसने कहा, "तुम लोग सब भूल करते हो। उनको तो मैंने देखा है। और वही है तो जरूर तुम्हारे अनजान में उनको तो कोई देवता उठा ले गया और इस सुन्दर स्वरूपवान पुरुष को तुम लोगों के लिए पाट पर बैठा गया है।" आपके चन्द्रमुख को कभी किसी ने विषादमय नहीं देखा। आपके सन्मुख महा सवादि अवसरों पर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका द्वारा अत्यन्त विद्वता से आपका गुण-गान किया जाता था, परन्तु मैंने यह खूब गौर करके देखा है कि उनकी मुखाकृति सदा समानभाव से रहती थी। अपने मन को हर अवस्था में एक सा रखना, यह एक साधारण बात नहीं है। श्रीमद कालूगणि सहन शील-स्वभाव के थे। एक बार की बात है, सुजान गढ़ के खूमचन्दजी बोकड़िया ने पूज्यजी महाराज को लाडनूं से पधार कर सुजानगढ़ में स्वामीजी श्री जवरीमलजी महाराज को दर्शन देने की प्रार्थना की। परन्तु आपने अवसर नहीं देखा तो दर्शन देने नहीं पधारे। कुछ ही दिनों बाद जवरीमलजी देवलोक हो गये। खूमचन्दजी को इससे बहुत कष्ट हुआ और इस बात को लेकर श्री कालूरामजी महाराज को ओलंभा देने गये। उस समय खूमचन्दजी इतने आवेश में थे कि उचित-अनुचित का उन्हें विवेक नहीं रहा। सेवा में बैठे हुए अन्य जन खूमचन्दजी की कटु उक्तियों को सुनते हुए उकता गए। उनको सावधान करते हुए उनमें से एक ने कहा, 'आपने बहुत कहा अब तो शांत होइये'। परन्तु हमारे पूज्यजी महाराज ने उदार हृदय से कहा, 'इनको कहने दो। सब कुछ कह चुकने पर ही इन का मन हलका होगा।' समय-समय पर आप ऐसी ही उदारता का परिचय दिया करते थे। उस उदारता के प्रभाव से आज भी सारा गण-समुदाय विनम्र और विनयशील है।

दिनों दिन श्री कालूगणि के संघ की वृद्धि हो रही थी, परन्तु इसका उन्हें जरा भी अभिमान नहीं था, जिसका परिचय उन्होंने समय-समय पर अपने कार्यों से दिया है। हम थली वाले जब कभी किसी छोटे गाँव वाले को माघ महोत्सव या चौमासा या सेखे काल में उसके गाँव में पधारने के लिए अर्ज करते सुनते थे, तो अपने मन में उसकी उस अर्ज की उपेक्षा करते थे और बहुधा कह भी बैठते थे, 'श्री जो महाराज के

पधारने लायक आपका गाँव नहीं है।' परन्तु गाँव के योग्य अयोग्य होने का यह अभिमान हम सेवार्थियों को ही था। उनकी दृष्टि तो एक मात्र उपकार के प्रति थी। गाँव के छोटे बड़े होने से उनको मतलब नहीं था। वड़ नगर में माघ महोत्सव करके उन्होंने दिखा दिया कि जहाँ केवल तीन, चार ही घर श्रद्धा रखने वाले श्रावकों के हों वहाँ पर भी माघ महोत्सव हो सकता है। मालवे के बिहार से उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि साधु पर-उपकार के हेतु बिहड़ रास्तों में बिहार कर छोटे छोटे ग्रामों में भी विचर सकते हैं। आप स्वयं जैसे मान के अभिलाषी नहीं थे वैसे ही आपके साधु साध्वी भी हैं, जिनमें स्वामीजी श्री मोहनलालजी (चुरूवाला) महाराज ने जिस निरभिमानता का परिचय दिया है, वह एक बड़ी अपूर्व घटना है। कहना पड़ेगा कि ऐसे महान गुरु के ही ऐसे विनयशीय शिष्य हो सकते हैं।

श्री वीर प्रभु के आदेशों के दायरे में आनेवाले कार्यों के लिये तथा जिन कार्यों से ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की वृद्धि हो, उनके लिये आप की उदारता समुद्र के तुल्य अथाह और गम्भीर थी, परन्तु विपरीत कार्यों के लिये आप हिमालय के समान अचल थे। साधु मार्ग में जिसको जिस समय शिथिलाचारी देखा, गण समुदाय से उसको उसी समय बाहर कर दिया। भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध चलनेवाले के साथ आपने कभी समझौता नहीं किया, चाहे वह कैसा ही बड़ा विद्वान और प्रभावशाली अपने आपको समझता रहा हो। आपके जीवन काल में ऐसी कई घटनायें हुईं, परन्तु आप दूसरों के प्रभाव में नहीं आये। जोरावर मलजी नामक एक साधु, जो अत्यन्त वृद्ध थे, बहुत वर्षों के दीक्षित थे। कर्म-संयोग से उन्होंने अपनी मृत्यु पास आयी समझ कर आमरण संथारा (अनशन) धारण किया। भावीवश उनका मन चलायमान हो गया। उन्होंने महाराज के पास प्रार्थना की "मैं आहार ग्रहण तो करूंगा, परन्तु मेरे लिये दण्ड-व्यवस्था कर मुझे शुद्ध कर लीजिये।' उस समय अन्य सम्प्रदायवालों ने इस बात का प्रचार करना शुरू किया कि ऐसे साधु के लिये पच्चखान भंग की दण्ड व्यवस्था शास्त्रानुसार हो सकती है। इस व्याख्या के प्रचार करने में उनकी एक बड़ी कुअभिसंधि थी। वे चाहते थे कि पूज्यजी महाराज, श्री जोरावरमल की वृद्धावस्था से द्रवीभूत होकर हम लोगों की दी हुई व्याख्या के भुलावे में आ जावें, परन्तु कुचक्रियों को विफल होना पड़ा। शास्त्र की व्याख्या यह है कि साधु के लिये पच्चखान कायम रख कर ही दण्ड-व्यवस्था हो सकती है। श्रावक समाज की तरफ से भी कई एक घटनायें हुईं। जिनमें एक यह है। फतेहपुर के लछमनदासजी दुगड़ की पत्नी ने दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने पति से आज्ञा मांगी, परन्तु वे राजी नहीं हुए। उस बाई ने दीक्षा लेने की अभिलाषा से पति-आज्ञा न मिलने तक तीनों आहारों का त्याग कर दिया। ज्यों ज्यों दिन निकलते गये उसकी शारिरिक क्षीणता के समाचार आने लगे। लछमनदासजी को बहुत समझाया गया, परन्तु अपनी हठ के कारण वे न माने। हम कुछ युवकों ने विचार किया कि अगर ये नहीं मानते हैं तो न सही, श्री जी महाराज से प्रार्थना की जावे कि उस बाई को समुदाय की साक्षी से दीक्षा दे दी जावे। हम लोगों की दलील यह थी कि लेनेवाले की योग्यता पर दीक्षा दी जानी चाहिये, आज्ञा का प्रतिबन्ध किसी के दीक्षा लेने के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहिए। हमारी इस प्रार्थना के उत्तर में

महाराज का फरमाना यह था कि बाई के दीक्षा ग्रहण करने की योग्यता में कोई कमी नहीं है, परन्तु उस पर उसके स्वामी का अधिकार है अत: स्वामी की आज्ञा बिना दीक्षा ग्रहण करना चोरी करना है, जिससे तीसरे महाव्रत का भंग होता है। महाराज ऐसी ही आकस्मिक घटनाओं के समय अडिग रह कर ऐसी सरल व्याख्या करते थे कि जिससे प्रतिपक्षी को भी सरल बोध हो जाता था। वैरागियों को अपने अभिभावकों से आज्ञा प्राप्त करने में अभिभावकों की सांसारिक मनोवृत्ति के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन पक्के वैरागी इस कार्य में सफल ही होते है। इस बाई को यद्यपि आज्ञा के अभाव में चरित्र नहीं प्राप्त हुआ परन्तु अपने प्रण पर अटल रह कर ७२ दिन की तपस्या से जीवन समाप्त किया। वैरागियों की परीक्षा का इससे बढ़ कर आश्चर्यकारी दृष्टान्त और क्या होगा ?

श्रीमद् कालूगणि के प्रतिपक्षी साधारण जनता में भ्रम फैलाने के लिए धर्म के नाम पर यह प्रचार किया करते थे कि भूखे प्यासे को अन्न जल नहीं देना, मरते हुए को नहीं बचाना तथा लोकहित कार्य नहीं करना, इत्यादि ही तैरापंथियों का धर्म है। इन आरोपों के विरुद्ध आपकी स्पष्ट घोषणा थी कि, अन्न-जल देते हुए को साधु मनाई करे तो वह साधु नहीं, किसी प्राणी को बचाने वाले को साधु मना करे तो वह साधु नहीं, और लोकहितकर कार्यों में बाधा देनेवाला साधु के भेष में अन्तराय-कर्म का बाँधने वाला है। परन्तु यह सब प्रश्न संसार पक्ष के हैं। मुक्ति का मार्ग और संसार का मार्ग, दोनों भिन्न हैं। साधु केवल मुक्ति मार्ग का साधक है। संसार मार्ग से साधु का कोई सम्बन्ध नहीं है। साधु के उपदेश में संसार बृद्धि के हेतुओं की शिक्षा की आशा रखना सर्वथा भूल है।"

अब प्रश्न यह उठता है कि श्री जी महाराज की उपरोक्त स्पष्ट घोषणा के पश्चात् भी यह आरोप कायम क्यों है ? शायद यह आरोप हम सांसारिक श्रावकों के व्यवहार के कारण ही अभी तक चले आते हैं। हम श्रावकों को चाहिए कि संसार-व्यवहार की बातें देश-काल और परिस्थिति के अनुसार किया करें।

एक बार मैंने राजलदेशर में बड़े सबेरे प्रायः दो वर्ष के समय के बाद श्री जी महाराज के दर्शन किये। उस समय मैं अवस्था मे भी छोटा ही था। मैं समझता था कि श्रीजी महाराज मुझे नहीं पहिचानेंगे। परन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने श्रीजी महाराज को मेरा नाम लेकर मेरी बन्दना स्वीकार करते सुना। कितनी निर्मल स्मरण शक्ति थी उनकी, इसका विचार कर हृदय आनन्दित हो जाता है। यदि मैं यह कहूं तो अत्युक्ति न होगी कि श्री महाराज चारों तीर्थों के बच्चे-बच्चे से परिचित थे। केवल उनका नाम, ग्राम, और गौत्र ही नहीं जानते थे बल्कि साथ-साथ किस की कैसी भावना धर्म के प्रति है, इसका भी पूरा पूरा विवरण जानते थे। तभी तो जब जो श्रावक उनकी सेवा में उपस्थित होता उसको उसी के हित के अनुकूल उपदेश दिया करते।

एक से एक बढ़ कर गुणवान आचार्य इस श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय में हुए हैं। श्रीजी महाराज ने भी अपने शासनकाल में ज्ञान दर्शन, चरित्र और तप की खूब बृद्धि की। भौगोलिक दृष्टिकोण से आपके शासन काल में तीन नवीन क्षेत्रों में धर्म का अधिक प्रचार हुआ। (१) हैदराबाद (निजाम) (२) कुंकण देश (बम्बई प्रान्त) और (३) खान

देश। इस समय बारह देशों में आपके साधु साध्वी विचरते हैं। २७ वर्ष के अपने आचार्य–काल में आप ने भी सात देशों में विचरण किया था। इस चर्तुमास के आरम्भ तक आप की आज्ञा में रहने वाले १४१ मुनि, ३३४ महासतियां, कुल ४७५ हो गये। उनके आठ देशों में ६६ चौमासे हुए थे। श्रावकों की वृद्धि कितनी हुई, इसका हिसाब नहीं है, परन्तु क्षेत्र के हिसाब को देखते हुए तथा वंशानुक्रम को देखते हुए श्रावकों की संख्या डाल गणि महाराज के समय से दूनी भी हो तो आश्चर्य नहीं।

आपके शासन काल में चारित्र गुणवृद्धि का विवेचन एक अपूर्व विषय है। दीक्षा महोत्सव होते ही रहते थे। दीक्षार्थियों की योग्यता, कुल सम्पन्नता एक से एक बढ़ कर होती थी। बालक, युवक, वृद्ध सभी अवस्था वाले दीक्षा ग्रहण करते थे।

सं० १६७६ में बीकानेर में १३ दीक्षाएं, सं० १६८६ और ८६ में सरदार शहर में १६ और १३ दीक्षाएं, सं० १६६१ में जोधपुर में २२ दीक्षाएं, सं० १६६२ में उदयपुर में १५ दीक्षाएं आपके हाथ से हुई थी। इस समय गुरुओं की अयोग्यता से उकता कर सुधारक लोग बाल-दीक्षा के विरोध में कानून तक बनवाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। लेकिन इतनी-इतनी दीक्षाएं एक साथ होना श्री कालूरामजी सरीखे योग्य आचार्य की प्रतिभा का प्रमाण है। विशेष महत्व की बात यह है कि दीक्षा विरोधी सुधारक लोग भी आप के दर्शन कर आपकी दीक्षा-प्रणाली तथा आपकी सत्ता में होने वाले दीक्षा महोत्सवों को देख कर यह कहने लगते थे कि आपके अनुशासन के मुताबिक यदि दीक्षाएं हों तो ऐसे कानून बनाने की कल्पना भी न करनी पड़े। आपने १५५ साधु और २५२ साध्वियों कुल ४०७ व्यक्तियों को दीक्षा दी थी। सप्तम आचार्य श्री डालगणि ६८ साधु, २३१ साध्वियों, कुल २६६ तपस्वी आपकी आज्ञा में सौंप कर देवलोक हुए थे। आप १३६ साधु और ३३३ साध्वियाँ, कुल ४७२ तपस्वी अपने उत्तराधिकारी की आज्ञा में सौंप कर देवलोक पधारे हैं।

श्री कालूरामजी महाराज के शासन काल में तपस्या की बड़ी वृद्धि हुई है। वैसे तो संघ में तपस्या बराबर हो जारी है। हमारे समाज में ऐसी कोई स्त्री नहीं जिसने कम से कम अठाई (लगातार आठ उपवास) न की हो। अनेक बड़ी-बड़ी तपस्याएं भी होती ही रहती हैं। गण समुदाय में आगे जो होती रही हैं, वे तो हुई ही हैं, लेकिन आपके शासन काल में सबसे बड़ी तपस्या महासतीजी श्री मखूजी ने २६७ दिन की और स्वामी श्री रणजीतमलजी ने १८० दिन की की थी। श्री चुन्नीलालजी महाराज बड़े घोर तपस्वी हो गये हैं, उन्होंने तीन परिपाटी लघुसिंह के तप की की थी और उनका सारा जीवन ही तपस्या में व्यतीत हुआ था। श्री रणजीतमलजी स्वामी ने अर्द्ध वार्षिक तपस्या तो की ही थी, लेकिन अन्त में अपनी आयु समाप्ति पास आयी समझ कर तपस्या करनी शुरू की। ६१ दिन की तपस्या (अनशन) के पश्चात् आप देवलोक हुए। इसी तरह श्री आशारामजी महाराज ७३ दिन की तपस्या, जिसमें १५ दिन का संथारा आया, करके देवलोक हुए। श्री ईश्वरदासजी महाराज को २३ दिन का संथारा आया था और श्री हुलासमलजी स्वामी की तपस्या भी उल्लेखनीय है। आपने लघुसिंह के तप की २ परिपाटी समाप्त कर तीसरी चालू कर रखी थी, इसी बीच आप संथारा प्राप्त कर देवलोक हो गये। महासती श्री जड़ावाजी का

संथारा भी बड़ा प्रशंसनीय हुआ। आपने ७१ दिन की तपस्या की जिसमें ३२ दिन का संथारा आया। इसी तरह श्रावक समाज में भी बड़े-बड़े संथारे कई श्रावक, श्राविकाओं को प्राप्त हुए हैं। श्रीजी महाराज की माता श्री छोगाजी महाराज, जिनकी आयु ६१ साल की है, की तपस्या का वर्णन भी बड़ा आनन्दकारी है। आप मौरा देवी माता के तुल्य हो गई होतीं यदि श्रीमद् कालूगणि अपने से पहिले इनको देवलोक में जाते देख सकते, परन्तु यह प्रश्न आयु कर्म के आधीन है, जिसमें किसी का वश नहीं। माता छोगाजी के, जिसने दर्शन किये हैं, कह सकता है कि आप के कर्म क्षय होकर आत्मा इतनी निर्मल हो गयी है कि यदि संभव होता तो इस भव से ही आप मुक्ति प्राप्त कर जातीं।

हमारे अलौकिक आचार्य श्री कालूगणि का जन्म दिवस जैसा अपूर्व था, वैसा ही अपूर्व देवलोक पधारने का दिवस भी था। सम्वत्सरी का क्षमत्-क्षमापना का दिन एक महान् प्रभावशाली दिन है, आप उसी दिन चतुर्संघ से क्षमत् क्षमापना करते हुए स्वर्गवासी हो गये।

कवित्त

[श्री सुजानमल बांठिया]

राग द्वेष त्याग दे सुजान क्रोध लोभ छोरि,
त्यों ही कर त्याग मन माया मोह तज रे।
धारी तैं देह पंच इन्द्रिय परिपूर्ण पाई,
हिंसा ते मरोर मन जल ज्यों जलज रे॥
पाई प्रभुताई रंग रूप सौं सवाई प्रभा,
देहें सब छेह जरा नेत्र मूंदि लज रे।
करले उपकार त्यों प्राणिन पे आंण दया,
मुक्तिपद चाहे तो जिनेन्द्र देव भज रे॥

चौरासी रत्न

[श्री फतेचन्द ढड्ढा]

हमारे शास्त्रों में और अन्य प्राचीन साहित्यों में भी हमें चौरासी रत्नों का वर्णन मिलता है। कोई ज़माना था, जब हमारे भारत में इन सभी रत्नों का केवल बाहुल्य ही न था, बल्कि ये रत्न साधारण देन लेन की वस्तुओं के आलावा सजावट में भी काम आते थे। दन्तकथाओं की बात छोड़ दीजिये, प्राचीन पुस्तकों में अनेक स्थानों पर यह पाया जाता है कि साधारण श्रीमन्तों के घर के किवाड़, पर्दे, पलंग की चद्दरें, झालरें, श्रृंगारदान और अन्य फरनीचर आदि इन रत्नों द्वारा सजाये जाते थे। आज वह जमाना स्वप्न की वस्तु है। अब इन सभी रत्नों का दूर से देखना तो दरकिनार, बड़े-बड़े जौहरी भी चौरासी रत्नों के नाम तक नहीं जानते। आज भारत में दोनों समय भोजन की फिक्र से ही छुटकारा मिलना कठिन है, उस दशा में रत्नों की फिक्र कौन करे? भारत की ऐसी दशा क्यों हो गई? वे सभी रत्न कहां चले गये? रत्नों के इस दयनीय ह्रास का कारण क्या है? आदि कई ऐसे प्रश्न है, जो बड़े विचारणीय और महत्व के हैं। इन सभी विषयों पर विचार न कर मैं आज केवल पाठकों के ज्ञान और मनोरंजन के लिये उन चौरासी रत्नों का नाम, रंग और रूप बतलादेना चाहता हूं। यह एक ऐसा विषय है, जिसमें बहुत कुछ खोज की जा सकती है।

रत्नों का ग्रहों के साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। ज्योतिषशास्त्र में इन रत्नों का बहुत महत्व माना गया है। प्रत्येक रत्न अपने गुण दोष के अनुसार मनुष्य पर अवश्य अच्छा-बुरा प्रभाव डालता है। मनुष्य के केवल भाग्य पर ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य पर भी रत्नों का बहुत प्रभाव पड़ता है।

यह बात तो इतिहास प्रसिद्ध ही है कि कोहेनूर हीरे को—उसके Original रूप में धारण करने वाला सुखी न रह सका। इतना बड़ा मुग़ल साम्राज्य इस से नष्ट हुआ। मुहम्मद शाह को पराजित कर नादिर-शाह उसे ईरान ले गया, किन्तु कोहेनूर वहां भी न टिक सका। फारस के बादशाह को हरा कर विजेता के साथ कोहेनूर काबुल आया। काबुलके बादशाह ने आतंकित होकर पंजाब केशरी महाराजा रणजीतसिंह को भेंट किया। पर इसे लेकर रणजीतसिंह भी आराम से न रह सके। अन्त में यह हीरा अंग्रेजों के हाथ लगा और भारत ही क्या एशिया महाद्वीप को भी छोड़ कर सात समुद्र पार इङ्गलैण्ड चला गया। वहां इसको तुड़वा कर दो भाग कर दिये गये। कहने का आशय केवल यही है कि रत्नों का प्रभाव केवल व्यक्तियों पर ही नहीं बल्कि बड़े-बड़े शक्तिशाली साम्राज्यों पर भी पड़ता है। ग्रहों के उपद्रवों को शान्त करने के लिये रत्न बड़े काम में आते हैं। नीचे लिखे ८४ रत्नों में से प्रथम नौ रत्न आजकल भी अधिक प्रचलित हैं। ये 'नव-रत्न' कहलाते हैं और अलग-अलग नौ ग्रहों के काम में आते हैं।

आशा है इस लेख से पाठकों का मनोरंजन होने के साथ-साथ कुछ लाभ भी होगा।

चौरासी रत्नों की सूची

१—माणिक—लाल रंग, यह रत्नों का राजा और सूर्यग्रह में काम आता है।

२—हीरा—सफेद रंग, यह शुक्र-ग्रह में काम आता है।

३—पन्ना—हरा रंग, यह बुद्ध-ग्रह में काम आता है।

४—नीलम—नीला रंग, यह शनि-ग्रह में काम आता है।

५—लसनिया—बिल्ली की आंख के समान रंग, यह केतु-ग्रह में काम आता है।

६—मोती—सफेद रंग (यह पृथ्वी से नहीं पानी में सींप से निकलता है) यह चन्द्र-ग्रह में काम आता है।

७—मूंगा—लाल रंग, यह मंगल-ग्रह में काम आता है।

८—पुखराज—पीला, सफेद और नीला रंग, यह बृहस्पति-ग्रह में काम आता है।

६—गोमेदक—लाल धुंवे के समान रंग, यह राहु-ग्रह में काम आता है।

(उपरोक्त नवरत्न कहे जाते हैं)

१०—लालड़ी—गुलाब के फूल के समान लाल रंग, तोल में २४ रत्ती से ऊपर होने से 'लाल' कहा जाता है।

११—पिरोजा—आसमानी रंग, (यह पत्थर में नहीं, कंकर में होता है) मुसलमान इसको अधिक पहनते हैं।

१२—ऐमनी—गहरा लाल थोड़ा स्याही लिये रंग होता है और मुसलमान इसको अधिक पसन्द करते हैं।

१३—जबरजद—सब्ज निर्मल रंग, मुसलमान अधिक पसन्द करते हैं।

१४—ओपल—अनेक तरह के रंग इसपर हरेक रंग का अक्स पड़ता है।

१५—तुरमली—रंग पांच प्रकार का, पुखराज की जाति का, परन्तु हलका और नरम होता है।

१६—नरम—पीलापन लिये लाल रंग का होता है।

१७—सुनेला—सोने में धुंवे के समान रंग का होता है।

१८—धुनेला—यह भी सुनेला की ही तरह होता है, केवल कुछ फर्क होता है।

१६—कटेला—बैंगन के समान रंगवाला होता है।

२०—सितारा—बहुत तरह के रंग, ऊपर सोने का छींटा होता है।

२१—फिटक बिल्लौर—सफेद रंग का होता है।

२२—गौदन्ता—थोड़ा पीलापन लिये सफेद गौ के दांत के समान रंगवाला होता है।

२३—तामड़ा—स्याही लिये हुये लाल रङ्गवाला होता है।

२४—लुधिया—मजीठ के माफिक लाल रङ्गवाला होता है।

२५—मरियम—सफेद रङ्ग, इसका पॉलिश अच्छा होता है।

२६—मकनातीस—थोड़ा कालापन लिये सफेद रङ्ग, चमकदार पत्थर होता है।

२७—सिंदरिया—सफेदी लिये गुलाबी रङ्गवाला होता है।

२८— लिली— थोड़ा जरद रङ्ग नीलम की अपेक्षा नरम, किन्तु नीलम की ही जाति का होता है।

२९— बेरूज़— हल्का सब्ज़ रङ्ग का होता है।

३०—मरगज़—रङ्ग सब्ज़, लेकिन पानी नहीं होता, पन्ने की जाति का होता है।

३१—पितोनिया—हरे के ऊपर लाल छींटेदार होता है।

३२—बंसी—हल्का हरा रङ्ग, संगेसम की अपेक्षा नरम होता है, किन्तु पालिश अच्छा होता है।

३३—दुर्रेनज़फ—कच्चे धान के माफिक रङ्ग, पालिश अच्छा होता है।

३४— सुलेमानी—काला रङ्ग, ऊपर सफेद डोरा होता है।

३५—अलेमानी —भूरा रङ्ग, ऊपर डोरा, सुलेमानी की जाति का होता है।

३६—जजेमानी कुछ ज़र्दी लिये भूरे रङ्गवाला, ऊपर डोरा, सुलेमानी की जाति का होता है।

३७—सावोर —हरा रङ्ग, ऊपर भूरे रङ्ग की रेखा होती है।

३८—तुरसावा—गुलाबीपन लिये, पीला रङ्ग, नर्म पत्थर है।

३९—अहवा—गुलाबी रङ्ग, ऊपर बड़े २ छींटे होते हैं।

४०—आवरी—कालापन लिये, सोने के समान रङ्गवाला होता है।

४१— लाजवरद—लाल रङ्ग, पूरे पर सोने का छींटा रहता है।

४२—कुदृएत—काला रङ्ग, ऊपर सफेद और पीला दाग़ होता है।

४३—चीती—रङ्ग, ऊपर सुनहरी छींटा और सफेद डोरा मालूम होता है।

४४—संगेसम—दो तरह का, अंगूरी और सफेद कपूरी, जिसमें कपूरी अच्छा होता है।

४५ – मारवर—रङ्ग बाँस के समान, लाल और सफेद रङ्ग मिला होने से मकराना कहा जाता है।

४६— लौस—मारवर की जाति का ही होता है।

४७—दानाफिरङ्ग— पिस्ते के समान हल्के रङ्ग का होता है।

४८—कसौटी—काला रङ्ग, इसपर सोने चाँदी को कसके परीक्षा करते हैं।

४९ – दारचना— दारचीनी के तुल्य रङ्ग, मुसलमान लोग इसकी माला बनाते हैं।

५० हकीकुलबहार—हरेपन के साथ पीलापन मिला हुआ मुसलमान लोग माला बनाते हैं और यह जल में होता है।

५१ – हालन—गुलाबी, मैला रङ्ग, हिलाने से हिलता है।

५२—सिजरी—सफेद रङ्ग, ऊपर श्याम रङ्ग का पेड़ दिखता है।

५३—मुवेनज्फ—सफेद रङ्ग में बाल के समान लकीर होती है।

५४—कहरवा—पीला रङ्ग, इसकी माला बनती है, इसको कपूर भी कहते हैं।

५५ —झरना—मटिया रङ्ग, इसमें पानी देने से सब पानी झर जाता है।

५६—संगेबसरी—आँख के सुरमे में पड़ता है।

५७—दांतला—पीलापन लिये सफेद रङ्ग, पुराने शंख के समान होता है।

५८—मकड़ी—सफेदी लिये काला रङ्ग, ऊपर मकड़ी के जाले के माफिक होता है।

५६—संघिया—शंख के समान सफेद रङ्ग होता है।

६०—गूदड़ी—फकीर इसे अधिक पहनते हैं।

६१—कांसला—सब्ज़ी लिये सफेद रङ्ग का होता है।

६२—सिफरी—सब्ज़ी लिये आसमानी रङ्ग का होता है।

६३—हदीद—भूरापन लिये काला रङ्ग, वजन का भारी होता है, मुसलमान लोग माला बनाते हैं।

६४—हवास—सुनहरा हरा रंग होता है, दवा में काम आता है।

६५—सीगली—रङ्ग काला और लाल मिश्रित, माणिक की जाति का।

६६—ढेडी—काला रङ्ग इसकी खरल तथा कटोरी बनती है।

६७—हकीक—रंग सब तरह का, इसकी छड़ी की मूंठ, कटोरी आदि बनती हैं।

६८—गौरी—इसके जवाहरात तौलने के बाट और कटोरे बनते हैं।

६६—सीया—काला रङ्ग, इसकी तरह २ की मूर्तियां बनती हैं।

७०—सीमाक—लाल, पीला और थोड़ा मैला होता है। ऊपर सफेद, पीला और गुलाबी छींटा होता है। खरल कटोरे बनते हैं।

७१—मूसा—सफेद मटिया रङ्ग, इसकी खरल कटोरी आदि बनती हैं।

७२—पनघन—थोड़ा हरापन लिये हुये काला रङ्ग, इसके खिलौने बनते हैं।

७३—अमलिया—थोड़ा कालापन लिये गुलाबी रङ्ग, इसकी खरल बनती है।

७४—डूर—कत्थे के समान रङ्ग होता है। इसकी खरल बनती है।

७५—तिलवर—काला रङ्ग ऊपर सफेद छींटा। इसकी खरल बनती हैं।

७६—खारा—हरापन लिये काला रङ्ग, इसकी खरल बनती हैं।

७७—सीरखड़ी—रङ्ग मिट्टी के समान, इसके खिलौने बनते हैं। जख्म पर लगाने से जख्म भरता है।

७८—ज़हरमोरा—थोड़ी सफेदी लिये हरा रङ्ग, इसका खास गुण यह है कि किसी चीज़ में विष मिला कर कटोरे में इसे भी धर लेने से विष का दोष जाता रहता है।

७६—रवात—लालरङ्ग, रात में जिसे बुखार आवे, उसके गले में इसे बांधने से आराम होता है।

८०—सोहनमक्खी—नीला रङ्ग, दवाई में पड़ता है।

८१—हज़रते ऊद—सफेद रङ्ग, मिट्टी के तुल्य, पेशाब सम्बन्धी बीमारी को दूर करता है।

८२—सुरमा—काला रंग, इसका आंखों के लिये अंजन बनता है।

८३—पायज़हर—सफेद बांस के समान रंग, विष के घाव पर इसे घिस के लगाने से घाव सूखता है।

८४—पारस—काला रंग, लोहे को स्पर्श कराने मात्र से ही लोहा सुवर्ण हो जाता है।

लघुता में महानता

[श्री दुर्गाप्रसाद झुनझुनवाला बी० ए० 'व्यथित']

मत समझो छोटा सा बालक,
प्रिय, यह जग की सृष्टि महान,
भरी हुई इसमें है प्रतिभा
शिव-प्रताप की, जीवन-प्राण !

क्या ? छोटा है, इसी लिये
करते हो, प्रिय, इसका अपमान !
किन्तु, इसी लघुता में भरी
विश्व की महिमा, अहो ! महान ।

छोटी सी जूही की कलिका
करती वन को सौरभ-दान,
छोटे—छोटे बीजों में हैं
छिपे वृक्ष के रूप ! महान ।

रजु—कण में है छिपा भूत
भावी प्रासादों का इतिहास,
होता विचलित जगतीतल
सुन कर विरहाकुल एक उसास !

छोटी सी पुस्तक में है
बिखरा जीवन का सौरभ—सार,
छोटे हैं आंसू, हैं किन्तु,
दुखी जीवन के वे आधार !

लघु सी बीणा की तानों में
फूट पड़ा त्रिभुवन का गान,
नन्हीं सी प्रिय की स्मृति करती
व्यथित हृदय को शान्ति—प्रदान ।

कवि की एक तान में निहित
वेदनाओं का चिर—आभास,
प्रिय, लघुता में ही है भरा
महत्ता का भावी इतिहास ।

साकार शैशव

बतलाओ, क्या प्रकट हुआ है तुम में ही शैशव साकार ?
बतलाओ, क्या छिपा हुआ है तुम में कोई नव अवतार ? ?

—'विरक्त'

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत के सौजन्य से प्राप्त ।]

न्यू राजस्थान प्रेस कलकत्ता ।

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियां और शुभ कामनाएं

वीर सेवा मन्दिर

सरसावा, ता० २३-९-३६

'ओसवाल नवयुवक' के चारों अंक मिले। देखकर प्रसन्नता हुई। पत्र का नाम और क्षेत्र सकुचित होते हुए भी उसकी नीति प्रायः उदार जान पड़ती है और इससे आपका क्षेत्र बढ़ने की बहुत कुछ आशा है। लेखों का चुनाव अच्छा किया गया है। प० बेचरदासजी और प० सुखलालजी के लेख अपनी खास विशेषता रखते हैं और बहुत शिक्षाप्रद हैं। छपाई, सफाई और कागज सब सुन्दर हैं। पत्र उपयोगी तथा होनहार जान पड़ता है। मैं हृदय से इसका अभिनन्दन करता हूँ और भावना करता हूँ कि इसका भविष्य उज्ज्वल हो।

जुगलकिशोर मुख्तार

उज्जैन, २२-९-३६

पत्र के तीन अंक मिले। आप लोगों की प्रशंसनीय सेवा के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। नैतिक सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों पर प्रकाश डाल कर जनता की आप अपूर्व सेवा करें, यह ऐच्छनीय है। समय पर पत्र की जो सेवा बन पड़ेगी, उस पर लक्ष रक्खूंगा।

वीर पुत्र आनन्द सागरजी

श्री लहरसिंह जैन पुण्यभूमि में लिखते हैं:—

'ओसवाल नवयुवक' के तीन अंक मई, जून, जुलाई के देखने का अवसर हमें मिला। 'नवयुवक' पहले भी छै वर्ष तक ओसवाल समाज की सेवा कर चुका है, किन्तु इस बार वह जिस सजधज से और ठोस सामग्री लेकर उपस्थित हुआ है, इससे तो सहज ही यह अनुमान हो सकता है कि जैन समाज में जो एक सर्वश्रेष्ठ मासिक की कमी थी, उसे वह अवश्य पूर्ण कर देगा। सुन्दर छपाई, चित्रों की पर्याप्त संख्या, मजबूत टाइटल पेज आदि बातें भी आकर्षण की वस्तु हैं। हम ओसवाल नवयुवकों से इस पत्र को अपनाने की अपील करते हैं और यह चिरकाल तक समाज की सेवा करता रहे, ऐसी आशा करते हैं। ऐसे पत्रों का फलना-फूलना सारी जाति का फलना-फूलना है।

इन्दौर

'ओसवाल नवयुवक' का पुनर्जन्म हुआ देख कर हृदय को बहुत सन्तोष हुआ। नये अंक देख कर उसके दीर्घ जीवन की आशाएं दृढ़ होती प्रतीत होती हैं। हृदय से कामना है कि वह अजर अमर हो।

नन्दलाल मारू

पानीहाटी, २५-९-३६

'ओसवाल नवयुवक' के सभी अंक मिले। 'नवयुवक' की उदार मनोवृत्ति देख कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। मुझे पूरी आशा है कि 'नवयुवक' हमारे समाज के नवयुवकों को राष्ट्रीयता की भावना में पगा देने में पूर्ण सफल होगा। मैं 'नवयुवक' के दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

सरदारसिंह महनोत

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत बी० कॉम]

(गताङ्क से आगे)

(६)

मनुष्य का सोचा हुआ सदा पार नहीं पड़ता। इस संसार में इतनी भिन्नताओं का संमिश्रण है कि कभी कभी मनुष्य को शान्ति के बदले अशान्ति, सफलता के बदले असफलता और प्रकाश के बदले अन्धकार का आलिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह विरक्त हो जाता है। संसार का नग्न रूप उसकी आंखों के सामने नाचने लगता है। सदा मोह-ममता में फंसा रहनेवाला व्यक्ति भी उस समय सच्चे वैरागी की तरह कह उठता है कि "यह स्वार्थ की दुनिया है। यहाँ कोई किसी का नहीं। माता-पिता, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि का पारस्परिक सङ्गठन स्वार्थपूर्ण है। अवसर आने पर कोई किसी का नहीं होता। स्वार्थ-सिद्धि के लिये सभी अपना-अपना पृथक मार्ग निर्धारित किया करते हैं"। सचमुच उस समय वह इस दुनिया से ही घृणा करने लगता है।

आज बाबू राधाकान्त की भी यही अवस्था हो रही है। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उनका पुत्र-आज्ञाकारी पुत्र-कभी उनकी आज्ञा अमान्य करेगा। वे नहीं जानते थे कि कभी कोई ऐसा प्रसङ्ग उपस्थित होगा जिसमें उन्हें उसकी स्वीकृति का भिखारी बनना पड़ेगा, उसे सहमत करने के लिये तरसना पड़ेगा। परन्तु आज ऐसा ही प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है। पुत्र के विद्रोह ने उनके हृदय में ज्वालामुखी की अग्नि प्रज्वलित कर दी है। आज प्रातःकाल ही उन्हें उसका भेजा हुआ एक पत्र मिला। लिफ़ाफ़ा देखते ही उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया। बड़ी प्रसन्नता से वे पत्र खोल कर पढ़ने लगे। परन्तु अफसोस! शीघ्र ही हर्ष शोक में परिणत हो गया। व्यथित होते हुए वे मन ही मन कहने लगे :—

"इस बुढ़ापे में प्रकाश मुझे ऐसा कष्ट देगा, इसका अनुमान मैंने स्वप्न में भी नहीं किया था। उसकी धृष्टता भी आश्चर्य में डालने लायक़ है। किस शोखी के साथ उसने अपने विवाह की चर्चा की है और उस पर बहस तथा दलील पेश की है। हम लोग भी कभी नवयुवक थे, अपने पिता के इकलौते पुत्र थे, उनके अपार स्नेह के भाजन थे। क्या हम लोगों के हृदय में देश-प्रेम न था? क्या हम लोगों के हृदय में उत्साह और लहर न थी? परन्तु हमने तो कभी पिता की आज्ञा नहीं ठुकराई, पूज्य पिता के हृदय पर किसी प्रकार का आघात न लगाया। आजकल के छोकरे विवाह न कर नेता बनना चाहते हैं। परन्तु ज़रा अपने नेताओं से तो पूछें कि उन्होंने विवाह किया है या नहीं? उनसे यह भी पूछ लें कि वृद्ध पिता को कष्ट देना देश-प्रेम है या देश-द्रोह? मैं मानता हूँ कि जवानी की लहर गर्म खून वालों को उत्तेजित कर देती है। परन्तु किसी दलील के द्वारा, किसी तर्क के द्वारा उसे न्याय संगत नहीं सिद्ध किया जा सकता है। अन्याय अन्याय है चाहे उसकी उत्पत्ति का कारण कुछ भी हो। उसे किसी भी अवस्था में सदाचार तथा देश-प्रेम नहीं कहा जा सकता है। सुव्यवस्थित जीवन को तितर-बितर कर देना आजकल के नवयुवकों के लिये एक फैशन हो गया है। यह सबक उन्होंने पश्चिम की उस

सभ्यता से सीखा है, जहाँ संयुक्त परिवार के शान्त और त्यागपूर्ण वातावरण के लिये कोई स्थान नहीं है, जहाँ आत्मोद्धार-मोक्ष-के दृष्टिकोण से विवाह को कोई महत्व नहीं है और जहाँ भारत की सबसे महान वस्तु सतीत्व की कोई गिनती नहीं है। देश-प्रेम के दीवानों, उत्तेजना और अनुभव हीनता की वेदी पर समाज के सुन्दर सङ्गठन का बलिदान न करो। क्या देश-सेवा के लिये स्त्री-बहिष्कार आवश्यक है ? अब मैं समधी को कैसे मुंह दिखाऊँगा ? समाज में मेरी साख कैसे रह सकेगी ? लड़कीवाले मेरा ही उदाहरण दिया करेंगे।"

इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते राधाकान्त बाबू अपनी स्त्री को पत्र का सम्वाद देने भीतर गये। उनकी स्त्री शीला देवी उस समय विवाह की तैयारियों में व्यस्त थी। हठात् अपने पतिदेव को आते देख कर शीलादेवी उनसे बातें करने के लिये बरामदे में आ गई।

खिन्नता पूर्वक बाबू राधाकान्त बोले, "जानती हो, तुम्हारा पुत्र इस समय गिरगिट की तरह रंग बदल रहा है।"

आश्चर्य चकित शीलादेवी ने कहा, "क्या कहा आपने ! लल्लू का कोई समाचार मिला है क्या ?"

राधाकान्त बाबू ने क्रोध से कांपते हुये उत्तर दिया, "समाचार की बात क्या पूछती हो, उसने तो बम भरा एक डिब्बा भेजा है।"

शीलादेवी ने स्वाभाविक घबड़ाहट के साथ कहा, "आप भी तो अजीब आदमी हैं। साफ-साफ बातें करना जानते ही नहीं। लल्लू क्यों बम भेजने लगा ? बम के नजदीक जाय उसकी रोग-बला।"

राधाकान्त बाबू ने क्रोधपूर्ण मुस्कुराहट के साथ उत्तर दिया, "क्या बातें करती हो तुम भी। लल्लू अब वही लल्लू न रहा। अब हमलोगों का पुत्र न रह कर वह बाप बनना चाहता है। आज उसने एक लम्बी चौड़ी चिट्ठी भेजी है। विवाह करने से साफ-साफ इन्कार कर दिया है। पता नहीं अब समाज के सामने किस तरह हम लोगों का सिर ऊँचा रहेगा ? जिस प्रतिष्ठा की रक्षा बाप-दादों ने सिर देकर भी की थी, वही प्रतिष्ठा, वही सम्मान आज तुम्हारे लल्लू के कारण धूल में मिलने जा रहा है।"

शीलादेवी एक अज्ञात भय की आशङ्का से सहम कर बोली, "क्या सचमुच उसने विवाह करने से अस्वीकार कर दिया है ?"

आवेश के साथ अपनी पत्नी के सामने पत्र फेंकते हुये बाबू राधाकान्त ने कहा, "यह देखो, अपने लल्लू की करतूत। कैसा बेहया लड़का है वह ! विवाह करने से तो अस्वीकार किया ही है साथ ही जेल जाने की भी धमकी दी है। क्यों न हो, उसे लीडर जो बनना है। हम लोगों की तरह वह मूर्ख रह कर भला कैसे जीवन बिता सकता है ? लेकिन एक बार भी मुलाकात हो जाने पर मैं उसकी सारी लीडरी भुला दूंगा। जवानी और जोश सदा नहीं रहता।"

कांपते हाथों से पत्र उठाकर शीलादेवी पढ़ने लगी। पत्र इस प्रकार था :—

कलकत्ता,

१०-१२-३१

पूज्य पिताजी,

आपका कृपा पत्र मिला। कई दिनों से मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था, इसलिये पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु पत्र को पढ़ कर मुझे जिस निराशा का सामना करना पड़ा, उसे व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। मुझे दुःख है कि यह पत्र पाकर आपकी भी ठीक वही अवस्था होगी, जैसी आपका पत्र पाकर मेरी हुई थी।

किन शब्दों में यह पत्र आरम्भ करूं, इसका पता लाख चेष्टा करने पर भी नहीं लग रहा है। अपने मन भावों को प्रकट करने में मेरी कलम किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ रही है।

दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है। सचमुच इस समय मेरी विकट परिस्थिति हो रही है। आपकी सेवा में तो सभी बातें स्पष्ट रूप से लिखनी ही पड़ेगी। आप पिता हैं, देवता तुल्य हैं। आपसे कोई बात छिपा कर किस प्रकार सुखी हो सकता हूँ? आपकी सेवा में तो निवेदन करना ही पड़ेगा। चाहे इस प्रयत्न में जहर की घूट ही क्यों न पीनी पड़े।

मैं अपना जीवन सफल समझता यदि आपकी आज्ञा शिरोधार्य करने की शक्ति अपने में पाता। आपकी आज्ञाओं का पालन करना मेरे जीवन का सुखद स्वप्न है और सदा रहेगा। परन्तु अफसोस! आजकी परिस्थिति मेरी बुद्धि को चकनाचूर कर रही है। आज मैं कर्त्तव्य निश्चित करने में बड़ी कठिनाई का सामना कर रहा हूँ। एक ओर आपकी आज्ञा है और दूसरी ओर देश की पुकार। एक ओर आपको सुखी करने की लालसा है और दूसरी ओर देशभक्ति का उद्गार। पिताजी, आपने मेरे जन्म से ही प्रेमपूर्वक मेरा लालन-पालन किया है। इस विकट परिस्थिति में भी मुझे आपके सहारे की आवश्यकता है। ठुकराइये नहीं, सहारा दीजिये।

क्या मैंने अपने मनोभावों को व्यक्त कर दिया? क्या आपको मेरे अभिप्राय, नहीं, नहीं, निवेदन का पता लग गया? मैं समझता हूँ कि इस समय तक मैंने आपकी किसी भी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया है। मेरी एकान्त कामना है कि मैं आजन्म आपकी आज्ञाओं का पालन करता रहूँ। पिताजी, आप भी इस उद्देश्य की पूर्ति में मुझे सहारा दीजिये। आपकी सहायता के बिना मेरी यह कामना कभी सिद्ध नहीं हो सकती है। मुझे रामचन्द्र बनने का अवसर दीजिये, प्रह्लाद बनने की परिस्थिति भगवान् न करे किसी समय मेरे सामने उपस्थित हो।

अब स्पष्ट ही क्यों न कह दूं? पिताजी, इस समय देश की जो परिस्थिति है, उसके आप जानकार हैं। देश में जो आग लगी हुई है, देश में जो बवंडर उठ रहा है, उसे देखते हुये कौन कह सकता है कि देश के लिये किसे कौन सी कुर्बानी करनी पड़ेगी? देश के बच्चे-बच्चे को इस समय मातृभूमि की सेवा करने के लिये हर समय सिर पर कफन बांध कर तैयार रहना चाहिये। मैंने भी भारत की पवित्र भूमि पर जन्म लिया है। भारत और प्यारे भारत की हवा मेरे उपयोग में आई है। भारत के अन्न जल से मेरा लालन-पालन हुआ है और भारत के सूर्य से मुझे प्रकाश मिला है। ऐसी दशा में भारत के प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है और वह स्पष्ट है।

प्रश्न उठता है कि विवाह करने के बाद क्या मैं देश की, एक जून आधा पेट भोजन करनेवाले गरीब किसानों की सेवा न कर सकूंगा? आप कहेंगे कि सेवा का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है। हर कोई प्रत्येक परिस्थिति में देश की सेवा कर सकता है, केवल शिक्षा चाहिये। आप यह भी कहेंगे कि इस समय जिन महापुरुषों के द्वारा देश के सेवा कार्य का सञ्चालन हो रहा है वे भी तो विवाहित ही हैं। पिताजी, इन दलीलों में बहुत जोर है और इनका लोहा प्रत्येक को किसी न किसी रूप में मानना पड़ेगा। परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन यह है कि अपनी क्षुद्र शक्ति की तुलना मैं देश के महापुरुषों की विराट् शक्ति से क्यों कर करू ? लोग कहते हैं कि नैपोलियन एक साथ कई काम किया करता था, परन्तु इस आधार पर क्या प्रत्येक व्यक्ति एक साथ कई काम आरम्भ कर सकता है? निश्चय ही विवाहित महापुरुषों ने देश की और संसार की बहुत बड़ी सेवायें की हैं। उनकी सेवा के सामने संसार का मस्तक सदा झुका रहेगा। हमारे वर्तमान कर्णधारों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है। उनकी शक्ति अपार है, वे जिस परिस्थिति में चाहें, देश की सेवा कर सकते हैं। परन्तु मुझ जैसे अल्प-बुद्धि और अल्प विद्यावाले किस प्रकार इस तरह का दावा कर सकते हैं?

पिताजी, मैं देश की परिस्थिति का पहले जिक्र कर चुका हूँ। इस समय देश के प्रति हम लोगों का कर्त्तव्य भी स्पष्ट ही है। इस परिस्थिति में पुत्र उत्पन्न कर कोई भी पिता सैनिक उत्पन्न करने का गर्व कर सकता है। उसे हरगिज यह आशा न करनी चाहिये कि उसका पुत्र फूलों की सेज पर सुख की नींद सोयेगा। यदि आप मुझ से व्यक्तिगत किसी भी प्रकार की आशा रखते हों तो देश की आवश्यकता की वेदी पर उसे बलिदान हो जाने दीजिये। व्यक्तिगत लाभ से देश की आवश्यकता कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। जबतक हम लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की आहुति न देंगे, उस समय तक यह कहने का हमें कौन सा अधिकार है कि हमने देश की भलाई के लिये कुछ कष्ट सहा है? जिस व्यक्ति को ऐसा कहने का अधिकार नहीं है, वह किसी प्रकार अपने को मनुष्य नहीं कह सकता है। आपके सामने देशभक्ति और कर्त्तव्यपरायणता के सम्बन्ध में अधिक चर्चा करना एक बहुत बड़ी धृष्टता होगी।

पत्र कुछ विस्तृत हो रहा है। मेरी ऊटपटांग बातें पढ़ कर आप भी धैर्य खो रहे होंगे। अब इस पत्र को समाप्त करना आवश्यक है। परन्तु समाप्त करने के पहले आपको मैं स्पष्ट रूप से बतला देना चाहता हूँ कि मैंने अविवाहित रह कर देश सेवा करने का निश्चय किया है। शायद इस मार्ग का अवलम्बन करने से मुझे जेल-यात्रा भी करनी पड़े। पिताजी, मैं जानता हूँ कि यह सम्वाद पढ़ कर आपको तथा माताजी को अपार कष्ट होगा। आप इसे अक्षम्य धृष्टता समझेंगे। फिर भी आपसे निवेदन है कि आप ममता और मोह को कर्त्तव्य-पथ का बाधक न बनावें। मुझे आशीर्वाद दीजिये कि देश की वेदी पर अपने को अर्पित कर मैं आप लोगों का मुख उज्ज्वल कर सकूं। कुछ दिनों के लिये आप इस बात को भूल जाइये कि मैं आपका पुत्र हूँ। पुत्र स्नेह को आप कृपया इस संतोषपूर्ण भावना में बदल दीजिये कि देश को एक सैनिक प्रदान करने में आप सफल हो सके हैं। बस—बिदा होता हूँ। राष्ट्रीय सैनिक की हैसियत से आप और माताजी मेरा प्रथम प्रणाम स्वीकार कीजिये और सफलता का आशीर्वाद दीजिये। आपके आशीर्वाद से मैं दूने उत्साह से आगे बढ़ सकूंगा।

श्री चरणों में प्रकाश का प्रणाम

पत्र पढ़ कर शीला देवी की आँखों से आँसू बह आये। वह कुछ बोलना ही चाहती थी, परन्तु पति के क्रोध तथा हृदय के उद्वेग के कारण वह कुछ न बोल सकी। उसे चुप देख कर तैवरियाँ चढ़ाते हुए बाबू राधाकान्त बोले, "देख ली अपने पुत्र की करतूत। कैसा झुंझाऊ पत्र भेजा है। मैंने तो उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखने का निश्चय कर लिया है।"

आँसू पोंछ कर शीला देवी बोली, "वह तो लड़का है, नादान है। आपके मुख से इस प्रकार की बातें शोभा नहीं देती। इस उमर में सभी कोई अनाप-सनाप बका ही करते हैं। आजकल शादी की बात छिड़ने पर 'नांहीं नूंहीं' करने की चाल सी चल गई है। देखते नहीं, हरसाल शादी के समय लड़के नखरे किया करते हैं, पर अन्त में शादी कर ही लेते हैं। यदि लल्लू ने भी वैसा ही किया है तो कौनसी बड़ी बात हो गई। किसी प्रकार उसे समझा बुझा कर राजी कर लेना होगा।"

राधाकान्त बाबू उठते हुए बोले, "यह भी खूब कही तुमने। वह क्या गाय बैल है जो रस्सी लेकर मैं उसके पीछे-पीछे घूमा करूंगा। तुम नहीं जानती कि आजकल के लौण्डों का दिमाग किस तरह आसमान पर चढ़ा रहता है। बिना सख्ती किये वे ठीक तरह सीधे रास्ते पर नहीं आते।"

शीलादेवी आँसू भरी आँखों से पत्र को देख रही थी।

७

निद्रे, तुम धन्य हो। क्या यह विश्व कभी तुम्हारे उपकारों को भूल सकता है? नहीं, हरगिज नहीं। सारे दिन के परिश्रम के उपरान्त क्लान्त जगत तुम्हारी गोद में जा जो विश्राम पाता है, वह और कहाँ मिल सकता है? वह तुम ही हो निद्रे, जो चिन्ता की ज्वाला में दहकते हुये को अपने अङ्क में स्थान देकर अमृत पिलाती हो, सांसारिक दुखों से मुक्त सा कर देती हो। बिछुड़े हुओं को स्वप्न में अपने प्रियजनों से मिलानेवाली निद्रे, तुम्हें नमस्कार है।

इसी निद्रादेवी की स्वर्गीय सुख प्रदायिनी गोद में सम्पूर्ण जगत् विश्राम कर रहा है। नीचे सड़क पर कभी-कभी मोटर की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ जाती है। पर इस समय भी होस्टल के एक कमरे में बत्ती जल रही है। कमरे में एक बड़ी सी 'विवेकानन्दजी' की तस्वीर टंगी है। दो पलङ्ग बिछे हैं। एक खाली पड़ा है और दूसरे पर एक युवक लेटा हुआ है। किन्तु उसकी आँखों में नींद नहीं है। वह उस तस्वीर की ओर देखता हुआ कुछ सोच रहा है। पाठक, यह युवक और कोई नहीं, हमारा पूर्वपरिचित सुशील है। उस दिन विमला द्वारा किये गये आक्षेपों के कारण सुशील का चित्त अत्यन्त चञ्चल हो उठा है। वह मानव स्वभाव के उस विचित्र पहलू पर विचार कर रहा था, जिसमें उसे परछिद्रान्वेषण में ही आनन्द आता है, दूसरों के व्यवस्थित जीवन को किसी न किसी तरह विश्रृङ्खलित और अशान्त कर देने में ही कौतुक प्राप्त होता है। इस समय वह अपने गत जीवन के उस भाग का सिंहावलोकन कर रहा था, जिसमें कमला की मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। आज तक उसने इसका विचार भी न किया था कि एकाएक कैसे कमला ने उसके जीवन में पदार्पण किया। इस बात को जानने की उसने कभी चेष्टा भी न की थी कि उसके हृदय में कमला ने क्यों, कब और कैसे अचानक स्थान प्राप्त कर लिया। पर विमला के उस दिन के आक्षेपों से उसका शान्त हृदय हिल उठा था। शायद उसके हृदय की यह अशान्ति कुछ देर बाद स्वतः ही दूर हो जाती, पर उसने उन आक्षेपों द्वारा कमला को भी क्षुब्ध होते हुए देखा था, और यही कारण था कि आज वह अपने गत जीवन के उस भाग के इतिहास का सिंहावलोकन करने को बाध्य हुआ था, जिसमें कमला ने अनायास ही प्रवेश किया था।

"उससे परिचय हुए थोड़ा ही समय हुआ था पर उसके सरल हृदय की ओर मेरा आकर्षण बढ़ता जा रहा था। अक्सर मेरा साथ देते गये। बहन की कमी कई वर्षों से अखर रही थी—कमला ने उसकी पूर्ति की।

रक्षाबन्धन का दिन आया—बहनें अपने भाइयों के राखियां बांधने लगीं। प्रकाश के साथ गोपाल चाचा के घर पर मैं गया था—कमला भी वहाँ ही थी। शायद साधारण शिष्टाचार के नाते ही उसने मेरे हाथ में भी राखी बांधना चाहा। यह उत्तरदायित्व बहुत बड़ा था—पर मैंने सिहरते हुए हृदय से इस उत्तरदायित्व को सम्भाल लिया, पर ऐसा करते हुए भी मुझे जिम्मेदारी की अत्यधिक चिन्ता थी। पर कमला की सरल भावना ने इस पर विजय पाई। कांपते हुए हाथ पर उसने राखी बांध कर केवल इतना कहा, "सुशील भैया—जिम्मेदारी को निभाते जाना।" मेरी आँखों में दो आँसू चमक रहे थे। बस, केवल इतना ही, मेरा रुका हुआ प्रेम उमड़ पड़ा। मैंने एक बार कमला की ओर देखा हाथ भी आगे बढ़ाये—पर, भाई और बहन के प्रेम को संसार इस प्रकार देखना कैसे पसन्द करे। सभ्यता का रोग मेरी वात्सल्यभरी इच्छाओं का दमन करने लगा।

उसके बाद हमने घंटों बैठ कर विचार-विनिमय किया है। इस विचार-विनिमय के फलस्वरूप हमारे हृदय एक दूसरे से इतने परिचित हो गये हैं कि वे अभिन्न कहे जा

सकते हैं। पर इस अभिज्ञता के लिये किसे दोष दिया जा सकता है ? यह तो स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। फिर विमला ही को कैसे दोष दिया जा सकता है ? "हृदय का वास्तविक रूप कोई समझता नहीं, संसार हंसता है" एकबार प्रसंगवश कहे हुये कमला के ये शब्द भी कितने सत्य हैं। हमारी वर्त्तमान सभ्यता ही का यह दोष है। वह कितनी संकुचित और कितनी अनुदार और वह भी विशेष कर स्त्रियों के प्रति।" इसी प्रकार सोचते विचारते सुशील को भी झपकी आ गई और वह उसी निद्रादेवी की गोद में जा पड़ा, जिसमें जाकर मनुष्य चिन्तामुक्त, शोकमुक्त हो जाता है, अत्यन्त दुख से सताया जाकर भी सुख का अनुभव करता है।

दूसरे दिन होस्टल के कई लड़कों के पुकारने तथा द्वार के खटखटाने से जब उसकी निद्रा खुली, तब सूर्य निकल आया था। कमरे की खुली हुई खिड़कियों से धूप आ रही थी। आंखें मलते हुए उठकर उसने दरवाजा खोला। पर उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने अपने सामने बाबू राधाकान्त को खड़े देखा। उन्हें देख कर वह कुछ सहम सा गया। प्रणाम करके उनके हाथ से बेग लेकर वह उन्हें कमरे में ले आया और खाली खाट पर बैठाते हुए वह बोला,

"आज मेरे अहोभाग्य जो प्रातःकाल ही श्रीमान् के दर्शन हुये। मुझे तो स्वप्न में भी आपके यहां पधारने की आशा न थी। आप कुशलपूर्वक तो हैं ? मां भी कुशलपूर्वक हैं न ? वे कभी मुझे भी याद करती हैं ?"

राधाकान्त इधर-उधर देखते हुये बोले, "हां, सब कुशल से हैं। प्रकाश की मां तुम्हें बहुत याद करती हैं। वे बड़ी प्रेममयी हैं। तुम कुछ दुबले नजर आते हो। अच्छे तो रहे ?"

"आपकी कृपा से सकुशल हूँ। चलिये, स्नानादि से निवृत्त होकर कुछ नाश्ता कर लीजिये।"

राधाकान्त प्रकाश को देखने के लिये अधीर हो रहे थे। पलङ्ग से उठते हुये वे बोले, "प्रकाश कहां है ? क्या वह इस कमरे में नहीं रहता ?"

"यहीं रहता है। यह उसकी खाट है। पर लोथियन कमेटी के बहिष्कार स्वरूप आज बीडन स्क्वागरमें छात्रों की एक सभा उसी के नेतृत्व में होनेवाली है। वह रात भर उसी सभास्थल के आयोजन में रहा है। आज भी वहीं गोपाल चाचा के यहां खाकर फिर काम में लग जावेगा। हम भी निवृत्त होकर वहीं चलते हैं। भोजन वहीं करेंगे।"

राधाकान्त मन ही मन तावपेच खाते हुये नित्यकर्म से छुट्टी पा सुशील के साथ गोपालचन्द के यहां चले।—क्रमशः

मैक्सिम गोर्की

[श्री मोहन० आर० व्यास]

किसी भी देश के सांस्कृतिक अथवा राजनैतिक पुनर्निर्माण में उस देश के साहित्यिकों का जो हाथ रहता है, वह कोई उपेक्षा करने की वस्तु नहीं है। बिना तत्सम्बन्धी साहित्य प्रचार के -कम से कम आधुनिक काल में वह पुनर्निर्माण केवल कठिन ही नहीं असम्भव है। पुनर्निर्माण के लिये, काया पलटने के लिये आन्दोलन करना पड़ता है—चाहे वह रचनात्मक उपायों द्वारा (by construction) हो अथवा विनाशात्मक उपायों द्वारा (by destruction) हो। लेकिन बिना सहयोगी साहित्यके वह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। देश की क्रान्ति में, उसके सांस्कृतिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक पुनर्निर्माण के कार्य में एक सच्चे और त्यागी साहित्यिक का वही महत्व है, जो उस आन्दोलन के प्रवर्तक अथवा डिक्टेटर का। किसी भी देश की क्रान्ति की ओर आँख उठा कर देखने से इस बात की सत्यता प्रकट हो जाती है। रूस की मजदूर-क्रान्ति इस बात का प्रमाण है। इस क्रान्ति के सफल होने का जितना श्रेय, लेनिन, ट्राटस्की, स्टैलिन आदि नेताओं के त्याग और वीरता का है, उतना ही श्रेय गोर्की आदि रूस के तत्कालीन साहित्यिकों के साहित्य को भी है। साहित्य द्वारा उन्होंने मजदूरवर्ग में अपनी दशा को उन्नत बनाने की भूख पैदा कर दी थी, उनमें वह नया सांस्कृतिक जीवन फूंक दिया था, जिसने आज उन्हें प्रस्तुत अवस्था में ला रक्खा है। मैक्सिम गोर्की का स्थान रूस के साहित्य में सबसे अधिक ऊँचा और आदरणीय है। रूस में उनका वही स्थान है जो भारत में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का या शायद इससे भी अधिक ऊँचा। रूस की वर्त्तमान सामाजिक और राजनैतिक उन्नति गोर्की के साहित्य की बहुत आभारी है। उसके बिना वह किस दिशा में प्रवाहित होती तथा वह इतनी सफल भी होती कि नहीं, इसमें सन्देह है। लेनिन, ट्राटस्की आदि ने जहाँ नवीन प्रणाली के, नये सांस्कृतिक जीवन के विचार अपनी वाणी और कार्यों द्वारा लोगों के सामने रखे, वहाँ गोर्की के साहित्य ने लोगों को उस जीवन की वास्तविकता का ज्ञान कराया। पराकाष्ठा पर पहुंच कर किसी भी वस्तु का अन्त हो जाता है—चाहे वह उत्थान की पराकाष्ठा हो या पतन की। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है। रूस में उस समय जारशाही के अत्याचारों की पराकाष्ठा हो गई थी। गोर्की के साहित्य ने लोगों को इसी पराकाष्ठा का ज्ञान कराया और उस दशा से अपना उद्धार करने का विवेक भी पैदा किया। अभी हाल ही में केवल रूस के ही नहीं, सारे संसार के ख्यातनामा लेखक इन्हीं मैक्सिम गोर्की का शरीरान्त हो गया है। उनके निधन से संसार का एक महान् कलाकार उठ गया है। प्रस्तुत लेख में इसी युग-प्रवर्तक कलाकार के जीवन की प्रमुख घटनाएँ संक्षेप में बतलाई गई हैं।

गोर्की का असली और पूरा नाम मैक्सिमो विच पेशकाय था, लेकिन ये साहित्यिक जगत में अपने उपनाम 'गोर्की' से ही प्रसिद्ध है। इनका जन्म धनियों के लीला-निकेतन से बहुत दूर निजनी-नोवगोरोड नामक गांव में जारशाही के अत्याचारों से पीड़ित तथा तत्कालीन सामाजिक असमानता से दुखित एक गरीब परिवार में हुआ था। गोर्की के भाग्य मे पितृ सुख बदा नहीं था। इनके पिता इन्हें उसी गरीबी की अवस्था में छोटे से को ईश्वर (?) के भरोसे छोड़ कर चल बसे थे।

गोर्की के सामने केवल नौ वर्ष की अवस्था में ही रोटी का सवाल भीषण रूप से मुंह बाये खड़ा हो गया। साधारणतः इस अवस्था में बालक को अपने खेल से भी फुरसत नहीं मिलती है, लेकिन बालक गोर्की को जिन मुसीबतों से सामना करना पड़ा, उसे जान कर हृदय भर आता है। इनके ये दिन अत्यन्त कष्ट में बीते। इन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। इसी नन्ही सी अवस्था में इन्हें कभी कुली का कभी मजदूर का और कभी खिदमतगार का काम करना पड़ा था। कई दिनों तक इन्हें एक चमार के यहां रोटी सेंकने का भी काम करना पड़ा था। इन्होंने बहुत दिनों तक जूते सीने का काम भी किया। लेकिन उस समय के कटु अनुभवोंने ही महात्मा गोर्की के भविष्य-साहित्य का निर्माण किया। उस दुःख की गोद में पल कर ही गोर्की ने दुःखितों और अत्याचार पीड़ितों का सच्चा प्रतिनिधित्व करना सीखा।

मैक्सिम गोर्की के सच्चे अध्यवसाय और अविश्रान्त परिश्रम का पूरा परिचय इसी एक बात से लग जाता है कि इस करुणोत्पादक, अत्याचार पीड़ित नन्हीं अवस्था में भी उन्होंने पढ़ना सीख लिया। जहां सैकड़ों साधन उपस्थित रहने पर भी हमारे बच्चे पढ़-लिख नहीं पाते हैं, वहां भरपेट भोजन पाने का ठिकाना न रहने पर भी गोर्की ने पढ़ना सीख लिया। पढ़ना भी वह, जिसने लाखों मनुष्यों की जीवनसरिता की गति को बदल दिया। यही तो होती हैं महापुरुषों की अलौकिकतायें। गोर्की का यह आत्म-उत्थान का प्रयत्न प्रत्येक देश के नवयुवकों के लिये एक सच्चा आदर्श है।

गोर्की के साहित्यक जीवन का श्रीगणेश बहुत सामान्य रीति से हुआ। जब ये रेलवे में कार्य करते थे, उस समय एक पत्र में अपनी फुरसत के समय की लिखी हुई एक कहानी प्रकाशित कराई। उस कहानी को लोगों ने बहुत पसन्द किया। इसके पश्चात् इसी प्रकार इक्की-दुक्की कहानियां लिखते-लिखते गोर्की एक प्रान्त में पत्रकार का कार्य करने लगे। पत्रकार होने के पश्चात इनकी कहानियां प्रमुख पत्रों में छपने लगीं। ये कहानियां इनके साहित्यिक जीवन की प्रथम सीढ़ी कही जा सकती है। यों तो इस साहित्यिक जीवन का सूत्रपात उन रोटी के चन्द टुकड़ों और चिथड़ों के बीच में हुआ था, जिनका सच्चा अनुभव ही इनके साहित्य का आधार है। सन १८९२ ई० से लगा कर सन १८९७ ई० तक इनकी कलम से कई सुन्दर कहानियां निकलीं। सन् १८९७ ई० में इनकी कहानियां पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुईं। जनता ने इन कहानियों को केवल खूब पसन्द ही नहीं किया, बल्कि गोर्की का स्थान टालस्टाय सरीखे प्रसिद्ध साहित्यिकों में नियत कर दिया। युगप्रवर्तक महात्मा टाल्स्टाय सरीखे साहित्यिकों में गणना होना ही गोर्की की असाधारण प्रतिभा का द्योतक है।

केवल साहित्यसेवा कर ही गोर्की ने अपने कर्त्तव्य

की इतिश्री समझ ली हो, यह बात नहीं है। पीड़ित मजदूरवर्ग के उद्धार के लिये, साम्यवाद के प्रचार के लिये उन्होंने जो भीषण शारीरिक कष्ट सहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं है। गोर्की के हृदय में जारशाही के प्रति, साम्राज्यवाद के प्रति, पूंजीवाद के प्रति, किसी भी तरह की आर्थिक असमानता के प्रति एक भीषण आग सुलगा करती थी, जिसकी ज्वालाओं से वे इस वर्गवाद के नाश करने का अहर्निश स्वप्न देखा करते थे। सन् १८९९ ई० में गोर्की साम्यवादियों से जा मिले। उस समय जारशाही के खूंखार सैनिक हाथ धोकर इन साम्यवादियों के पीछे पड़े थे। उन्होंने गोर्की का भी पीछा किया। फलतः इन्हें रूस छोड़ कर भाग जाना पड़ा। पर इस भाग जाने ही से इन्हें छुटकारा न मिला, विदेशों में भी इनके पीछे जारशाही के गोयन्दे लगे रहे। इसके बाद गोर्की की ख्याति बढ़ गई और वे स्वय भी जोर-शोर से, जी जान से जारशाही को उलटने के आन्दोलन में दत्तचित्त हुए। इस आन्दोलन की सफलता का कितना श्रेय गोर्की को है, यह बताने की आवश्यकता नहीं महसूस होती।

गोर्की का सम्पूर्ण साहित्य उस समय के अत्याचार पीड़ित रूस का जीता-जागता उदाहरण है। सत्ताधारियों की पाशविकता का मुंह बोलता चित्र है। 'साहित्य का उद्देश्य केवल जीवन के आदर्श को उपस्थित करना ही नहीं है, बल्कि उसकी वास्तविक दशा का दिग्दर्शन कराना भी है' यह सिद्धान्त गोर्की के साहित्य में स्पष्ट है। गोर्की की सभी कृतियों में 'मदर' बहुत सुन्दर और श्रेष्ठ है। इस पुस्तक में गोर्की ने जितनी सुन्दरता से यह दिखाया है कि किस प्रकार निरन्तर अत्याचारों को सहन करते हुए मजदूरों को अपनी दशा का ज्ञान उदय होता है और किस प्रकार वे अपना सुदृढ़ संगठन कर अपने ध्येय की ओर अग्रसर होते हुए अपना बलिदान चढ़ाते हैं, उसे देख कर हृदय गदगद हुए बिना नहीं रहता। इसी 'मदर' नामक पुस्तक में 'पेवेल' का चित्रण करते हुए बड़ी खूबी से गोर्की यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि किस प्रकार एक अत्याचार पीड़ित परिवार का पितृविहीन युवक क्रान्तिकारियों के फेर में पड़ कर स्वयं एक बड़ा संगठन कर्त्ता बन कर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का कुछ भी ध्यान न रख कर अपने लक्ष्य की बलिवेदी पर बलिदान होता है। 'पेवेल' की माँ, जो 'मदर' की नायिका है, का चित्रण करते समय तो मानो गोर्की ने अपनी संपूर्ण प्रतिभा पुस्तक के कलेवर में उड़ेल दी है! उन्होंने बड़ी खूबी से दिखलाया है कि किस प्रकार मदर अपने पुत्र के परिवर्त्तन से भयभीत होती हुई भी अत्याचारियों के स्वार्थ और हथकंडों को समझने लगती है तथा किस प्रकार वह धीरे धीरे अपने पुत्र के कार्यों में सहयोग देने लगती है और किस प्रकार गरीबों के हित को समझती हुई अपने पुत्र के प्रति व्यक्तिगत प्रेम को विश्वप्रेम में बदल देती है 'पेवेल' की जगह सारे पीड़ित उसके पुत्र बन जाते हैं, 'पेवेल' की तरह सभी मजदूरों की वह 'मदर' बन जाती है। 'मदर' संसार की श्रेष्ठ पुस्तकों में से है और सभी को उसे पढ़ना चाहिये।

लेनिन ने स्वयं अपने मुख से कहा है कि गोर्की सोवियट के सबसे महान लेखक हैं, वे सोवियट के प्राण हैं, सोवियट की निधि हैं। पाठक इसीसे समझ लें की गोर्की का रूस में कैसा महत्व है। गोर्की के साहित्य ने रूस को नवजीवन दिया है, अतः वह जीवित साहित्य है। इस साहित्य ने पीड़ित और सुप्त आत्माओं को जगाने मे मंत्र का काम किया है। स्वयं गोर्की का उत्थान

मजदूरों के बीचमें से हुआ था अतः उनके लिये गोर्की के हृदय में स्वाभाविक स्नेह सना स्थान था। इसी स्नेह-जनित आवेश में अगर एक बार उन्होंने ऐसा कहा तो कोई आश्चर्य नहीं है कि, "नवीन युग का नेता होगा वह समाज, जिसे हम आज 'अपने-आपके प्रति लापरवाह' सा देखते हैं—वह होगा मजदूरवर्ग।"

गोर्की ने केवल स्वयं ही साहित्य-सेवा कर संतोष नहीं कर लिया। अपने जीवन में और खास कर अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने अपने ही ढांचे पर सैकड़ों लेखक तैयार कर दिये। कितने ही मजदूरों और आवारों को गोर्की ने उनके विकाश का व्यक्तिगत ख़याल रख कर आगे बढ़ने को उत्साहित किया। गोर्की के अविश्रान्त परिश्रम से उत्पन्न हुआ यह क्रान्तिकारी साहित्य आज केवल रूस में ही नहीं, बल्कि सारे जगत में फैल गया है। धनिकों की शोषण-नीति इसके भय से थर्रा उठी है।

गोर्की बड़े सीधे-सादे, बच्चों की तरह हंसमुख और निष्कपट, बड़े उदार हृदय और सरलता के अवतार थे। विपत्ति में भी हंसते रहना, बड़े गम्भीर प्रसंग के उपस्थित होने पर भी उसमें से हंसी मजाक का रास्ता ढूंढ़ निकालना, गोर्की की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

डा० सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी० के साथ भारतवर्ष के विषय में चर्चा करते हुए गोर्की ने कहा था,

"सारा मनुष्य-समाज आज जिस रोग से पीड़ित हो रहा है और जिसके कारण भारतवर्ष ऐसा दलित और शोषित हो रहा है, उसे दूर करने के लिये पहली बात यह होनी चाहिये कि यह दलन, शोषण हमारे हृदय में तीर की तरह चुभे।"

गोर्की ने यह बिल्कुल ठीक कहा है। 'जो कुछ हो रहा है,' उस पर संतोष कर बैठ रहना बिल्कुल गीदड़-पन है। जब तक वर्त्तमान शोषक व्यवस्था प्रणाली के प्रति हमें पूरा असंतोष न होगा और उसको मिटाने के लिये हम कटिबद्ध न होंगे, तब तक हमारे किये कुछ न होगा। कायरतापूर्ण संतोष वह भयंकर भूल है, जिसका कोई इलाज नहीं। आज हमारा अछूत-वर्ग केवल इसीलिये इस दयनीय दशा को प्राप्त है कि उसमें यह पापी संतोष संस्कृति के रूप में पैदा हो गया है। अपनी दशा को वह भगवान् की मरजी और पूर्व जन्मों के कर्मों का फल कह कर वर्त्तमान स्थिति में संतोष कर लेता है। जब कोई अछूत रास्ते में चलता है तो स्वयं चिल्लाता जाता है, "महाराज, खबर-दार, बचिये।" भला, इस सन्तोष की भी कोई हद है? इसी सन्तोष को पहले नाश करना होगा। उसी अवस्था में हमारा उद्धार सम्भव है।

गोर्की के मरने से संसार की जो क्षति हुई है, उसकी शीघ्र ही पूर्त्ति होने को नहीं। रूसवाले गोर्की की सेवाओं को भूले नहीं हैं। उनका जैसा सम्मान किया गया है और किया जा रहा है, वह बहुत कम साहित्यिकों का किया गया होगा और किया जायगा। उन्हीं के नाम पर एक नगर बसाने की योजना की गई है। रूसियों ने उनके सम्मान के लिये कुछ उठा नहीं रखा है। मैं इस प्रवृत्ति की प्रशंसा करता हूं और इसे अनुकरणीय समझता हूं।

प्रसिद्ध इतिहासकार मि० एच० जी० वेलस, फ्रांस के प्रसिद्ध विचारक रोमांरोलां और विश्व प्रख्यात जार्ज बर्नर्डशा गोर्की के अन्तरंग मित्रों में से हैं। सभी जाति और देशों के पुरुष गोर्की से प्रेम करते हैं। महान् पुरुष किसी देश या जाति विशेष की निधि नहीं होते वरन सारे संसार की विभूति होते हैं। इस महान् आत्मा के प्रति हम अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

जैन—साहित्य—चर्चा

जैन शास्त्रों पर वैदिक परम्परा का प्रभाव

वैदिक परम्पराओं में कई सुधार करनेवाले जिन-प्रवचन में भी कई ऐसी मान्यताएं पाई जाती है, जिन पर वैदिक परम्परा का असर पड़ा है। इस बात को समझने के लिये इस सूत्र में से ही हमको कई उदाहरण नीचे लिखे अनुसार मिल सकते हैं।

वेद की परम्परा में देवों और दानवों का युद्ध प्रसिद्ध है। उस युद्ध का वर्णन निरुक्त * में बिजली के कड़ाके तथा मेघ की गर्जना का रूपक बांध कर किया गया है। इस सूत्र में इन्द्रभूति गौतम भगवान् महावीर को पूछते हैं, "क्या देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ है ?" इसका उत्तर भगवान स्वीकार सूचक 'हुंकार' से देते हैं। इसके पीछे के सूत्रों में देवताओं के शस्त्र और असुरों के शस्त्रों की हकीकत भगवान ने इन्द्रभूति गौतम को समझाई है (भा० ४ पा० ६८) देवदानव संग्राम सम्बन्धी सभी प्रश्न वैदिक परम्परा में प्रसिद्ध हुई देवदानव की लड़ाई को लक्ष में रख कर ही करने में आये है, ऐसा प्रतीत होता है। केवल इतना ही नहीं बल्कि देवदानव युद्ध की इस पौराणिक कथा में इससे सम्बन्ध रखनेवाला और भी वर्णन उपस्थित रहे, इसलिये उस युद्ध के कारणों के सम्बन्ध की एक कथा भी इस सूत्र में दी गई है।

तीसरे शतक के दूसरे अध्याय में इस सम्बन्ध में यह कहने में आया है कि देवों और असुरों में जन्म से ही एक दूसरे के प्रति शत्रुता का स्वभाव है और इन दोनों में सम्पति और स्त्री के लिये युद्ध होता है। वैदिक कथा के वर्णन की अपेक्षा देवासुर संग्राम संबंधी उपरोक्त वर्णन यह बात अधिक स्पष्ट रूप से समझाता है कि देवता और असुर भी लोभी और विषयी होकर परस्पर लड़ते हैं। ऐसा समझा कर यह वर्णन लोगों को लोभ और विषय से विमुख कर उनमें 'स्वर्ग भी वाञ्छनीय नहीं है' यह विवेक उत्पन्न करता है। इस जैन कथा में इसी तत्व को समझाया गया है। यहां इस बात का ध्यान में रखना आवश्यक है कि जहाँ वैदिक परम्परा में देवों और दैत्यों के दो स्पष्ट विभाग किये गये हैं, वहां जैन-परम्परा में असुरों को भी देवों की तरह ही गिना गया है ‡।

* निरुक्त के उल्लेख के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ भाग २ पृ० ४८—४९ टिप्पणी २ देखिये।

‡ देवाश्च जैन समये भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकभेदाश्चतुर्धाभवन्ति ॥ ३ ॥ अभिधानचिन्तामणि देवकाण्ड श्लोक ३

भगवान् महावीर ने तृतीय शतक के इसी अध्याय में, अपनी उपस्थिति में देवेन्द्र देवराज इन्द्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर का युद्ध हुआ था, ऐसा इन्द्रभूति गौतम को विस्तार पूर्वक समझाया है और उस युद्ध में भगवान् के सहारे से ही असुरेन्द्र चमर की रक्षा हुई थी, ऐसा भी बताया गया है। यह युद्ध जम्बु द्वीप के भारतवर्ष के सुंसुमार नगर में उस समय हुआ था, जब भगवान् दीक्षा लेने के बाद ग्यारहवें वर्ष में तपस्या कर रहे थे। असुरेन्द्र और देवेन्द्र दोनों ही भगवान् के भक्त थे, ऐसा इस कथा में बताया गया है। इस सूत्र में आई हुई इस कथा का उल्लेख सिद्धसेन दिवाकर ने स्वरचित बत्रीशीओ में की महावीर-स्तुति के तीसरे (१) श्लोक में कवित्व को शोभा दे, ऐसी सरस रीति से किया है।

जिस प्रकार राम और पाण्डवों की कथा जैन-परम्परा में जैन दृष्टि से वर्णन की गई है, उसी प्रकार देवासुर संग्राम की यह कथा भी उसी प्रकार संस्कृत कर वर्णन की गई है और उस वर्णन के द्वारा लोभ, विषय आदि से विमुख करने का कोई आध्यात्मिक हेतु साधन किया हो और यह वर्णन उनके उस ध्येय के सानुकूल हुआ हो, ऐसा जान पड़ता है।

ऐसा ही एक दूसरा वर्णन लोकपालों के सम्बन्ध का है। तीसरे शतक के सातवें अध्याय में ऐसा कहने में आया है कि देवेन्द्र देवराज शक्र (इन्द्र) के चार लोकपाल है। सोम, यम, वरूण और वैश्रमण। ये चारों लोकपाल इन्द्र की आज्ञा में रहते हैं।

संसार में होनेवाले उल्कापात, दिग्दाह, धूलि-वर्षा चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, इन्द्रधनुष, भयङ्कर अग्नि लगना, ग्रामदाह, नगरदाह, प्राणीक्षय, जनक्षय, धनक्षय, वंश-नाश, संध्या, गांधर्वनगर और दूसरे इसी प्रकार के सभी उत्पात इस संसार में सोम की देखरेख में होते हैं।

सोम ही की अध्यक्षता में विद्युत्कुमार, विद्युत्-कुमारी; अग्निकुमार, अग्निकुमारी; वायुकुमार, वायु-कुमारी; चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण आदि रहते हैं।

इन्द्र का दूसरा लोकपाल यम है। जगत में कलह, महासंग्राम, मारकाट, रोग, शोक, शारीरिक दुःख, बलगाड़, एकांतरा, दु आंतरा तेजरा, चौथिया, खांसी, श्वास, पांडुरोग, हरस, शूल, मृगी आदि सभी उपद्रव इसकी सत्ता में होते है। अंब, अंबरीष, महा-काल, असिरत्र, कुंभ, वालु, वैतरणी, ये सभी यम के आश्रित हैं।

वरूण तीसरा लोकपाल है। अतिवृष्टि, मंदवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, बाढ़, जलप्रलय और जल के अन्य सभी उपद्रव वरूण की सत्ता के नीचे होते हैं।

लोह, तांबा, शीशा, सोना, चांदी और हीरा आदि रत्नों की खानें, सुवर्ण आदि की वृष्टि, सुकाल, दुष्काल, सस्तापन, मंहगापन आदि इन्द्र के चौथे लोकपाल वैश्रमण की सत्ता में है।

सुवर्णकुमार और सुवर्णकुमारी, द्वीपकुमार और द्वीपकुमारी, दिक्कुमार और दिक्कुमारी, वानव्यंतर और वानव्यन्तरी, ये सभी वैश्रमण के आश्रय में रहते हैं।

यह सब देखते हुए क्या ऐसा नहीं जान पड़ता है कि यह सम्पूर्ण संसार चक्र इन लोकपालों द्वारा प्रभा-वित नहीं है ? लेकिन आत्मबल को प्रधान मानने वाले और इसी सिद्धान्त पर प्रवर्त्तन करने वाले तीर्थंकरों

(१) इस श्लोक के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ भाग २ पृ० ६१ टिप्पणी १ देखिये।

के शासन में इन लोकपालों की क्या सत्ता थी, यह कैसे जाना जाय?

जो कुछ दृश्य और अदृश्य घटनाएं घटित होती है, वे सब आत्मा द्वारा संचित किये हुए कर्मों के फल हैं, ऐसा जिनदेव कहते हैं, तो अपने रोग शोक और दुष्काल के कारणों का शोध अपने कर्म में किया जाय या लोकपाल के कर्म में?

कदाचित लोकपालों की केवल निमित्त कारण के रूप में कल्पना करके उपर्युक्त व्यवस्था ठीक ठहराई जा सकती है, लेकिन हरस, खांसी, शूल आदि के निमित्त कारण शरीर रक्षा के अज्ञान और कुपथ्यादि को बताया जाय या लोकपालों को।

किसी भी कार्य के होने के पांच कारण जैन परम्परा बतलाती है। जैसेः—काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत और पुरुष। जगत की संपूर्ण व्यवस्था इन कारणों की व्यवस्था के आधीन है। इस व्यवस्था में रोग फैलाने-वाले, सुकाल उपस्थित करने वाले लोकपालों का क्या स्थान है, यह समझना कठिन है। जैन परम्परा में संत-समागम और उसकी अनुपस्थिति में वीतराग का ध्यान, स्मरण वा पूजन अपने आदर्श पर पहुंचने के लिये साधक वर्ग के लिये उचित माने गये हैं किन्तु रोगों को टालने के लिये या धनलाभ आदि का सुख प्राप्त करने के लिये सोम, यम, वरुण और वैश्रमण व इन्द्रादि का ध्यान, स्मरण, पूजन और प्रार्थना सम्यक्-दृष्टि साधक के लिये तो सर्वथा वर्जनीय है। वह तो दुःख और सुख से जो जो प्रसंग आते हैं, उनको अपने ही संस्कारों का परिणाम समझ कर अनुभव करता है। किन्तु वैदिक परम्परा में तो सोम यम, वरुण, वैश्रमण और इन्द्र आदि को ही लाभ व हानि कर्त्ता ठहरा कर लाभ प्राप्ति के लिये या दुःख टालने के लिये सोम आदि जिन जिन लोकपालों की पूजा-प्रार्थना* के पुराने विधान बनाने में आये है, वे आज भी प्रचलित है। इसीसे इस सूत्र में वर्णित इन लोकपालों की हकीकत पौराणिक पद्धति के आधार पर है, ऐसा मानने मे कुछ अनुचित नहीं है।

वृष्टि के लिये इन्द्र की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से वेदों में प्रसिद्ध है। यहां तक कि वैदिक काल में लोगों की यह धारणा थी कि वृष्टि भेजना इन्द्र के अधिकार की बात है। इसी धारणा के वशीभूत होकर वृष्टि भेजने के लिये इन्द्र को खुश करने के लिये वे यज्ञ करते थे। इसी वहम को श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत की पूजा करवा कर दूर करने का प्रयत्न किया, यह बात प्रसिद्ध है ही, और जैन परम्परा में वृष्टि वगै-रह के लिये इन्द्रादिक को खुश करने का प्रयत्न कभी किया गया हो, ऐसा वर्णन नहीं है, क्योंकि भगवान् महावीर स्वयं इन्द्रयज्ञ वगैरह यज्ञों के विरोधी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह परावलम्बन भगाने के लिये ही और स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाने के लिये ही उन्होंने पुरुषार्थवाद और कर्मवाद के सिद्धान्त उस समय के समाज के समक्ष उपस्थित किये थे, इस सत्य के रहते हुए भी वृष्टि भेजने वाले इन्द्र के सम्बन्ध की ये पुरानी कथाएं इस सूत्र में वर्णित हैं।

चौदहवें शतक के द्वितीय अध्याय में इन्द्रभूति गौतम भगवान को पूछते हैं कि देवेन्द्र देवराज शक्र (इन्द्र) जहां और जब वृष्टि करने की इच्छा करते

* वर्त्तमान समय में जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा करने की विधि में के शान्तिस्नात्र में शान्ति कर्म के लिये देवों को आमंत्रित किया जाता है और उनको संतुष्ट करने के लिये नाना प्रकार के नैवेद्य भी अर्पण किये जाते हैं।

हैं, वहां किस प्रकार वृष्टि करते है ? भगवान् इस प्रश्न के उत्तर में गौतम को कहते हैं कि जब इन्द्र की इच्छा वृष्टि भेजने की होती है तब वे अपनी अन्तर-सभा के देवों को बुलाते है, अन्तरसभा के देव मध्य सभा के देवों को बुलाते है और मध्यसभा के देव आम-सभा के देवों को बुलाते हैं । और ये आम-सभा के देव इन्द्र के कहने से वृष्टि करते हैं। इस प्रकार की वृष्टि और इन्द्र के सम्बन्ध का जो वर्णन जैन प्रवचन में आया है, वह वेद की प्राचीन इन्द्रकथा की प्रसिद्धि का ही परिणाम है। अब तो यह बात वैज्ञानिक रूप से भी सिद्ध हो गई है कि वृष्टि किस प्रकार आती है और उसके क्या कारण हैं तथा उनके साथ इन्द्र का क्या सम्बन्ध है और यह इन्द्र कौन है ?

नवमे शतक के तृतीय अध्याय में एकोरुक, एक जांघ वाले, एक टांग वाले मनुष्यों के द्वीप का वर्णन है। यह द्वीप, जंबूद्वीप में आये हुए 'मंदर' पर्वत के दक्षिण में 'चुल्ल हिमवंत' पर्वत के पूर्व छोर से लगा कर ईशानकोण में तीन सौ योजन तक सुदूर क्षार समुद्र में जाने के बाद मिलता है। इस द्वीप की लंबाई चौड़ाई तीन सौ योजन है और घेरा ९४९ योजन से कुछ ही कम है।

इसी प्रकार दूसरे कई द्वीपों के विषय में भी उसमें वर्णन किया गया हैं। इस शतक के प्रथम अध्याय में लिखा हुआ है कि जंबूद्वीप में पूर्व और पश्चिम की सब मिला कर १४५६००० नदियां हैं।

द्वीप और समुद्र इस विश्व में असंख्य हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है। जब इन्द्रभूति गौतम ने द्वीपों और समुद्रों के नाम के विषय में भगवान् से प्रश्न किया था, उस समय भगवान ने बतलाया कि संसार में जितने सभी रूप, सभी रस, सभी गंध और सभी स्पर्श है, उतने ही द्वीप और समुद्रों के नाम समझने चाहिये, जैसे क्षीर समुद्र, इक्षु समुद्र, घृत समुद्र आदि। (भा० २ पा० ३३४)

इसके पश्चात चन्द्र, सूर्य और ताराओं की संख्या और उनमें रहने वालों की रहन-सहन के विषय में भी नवमे शतक के द्वितीय अध्याय में वर्णन आता है। ताराओं के विषय में लिखते हुये उसमें कहा गया है कि एक लाख तैतीस हजार नो सौ पचास कोटि ताराओं के समूह इस विश्व को शोभित कर रहे हैं।

इस सूत्र में आया हुआ यह सब वर्णन भूगोल-खगोल सम्बन्धी प्राचीन आर्य परम्परा के प्रभाव पर अवलम्बित है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि भूगोल और खगोल के विषय की इसमें वर्णित मान्यता वैदिक महाभारत पुराण आदि की अन्य सभी अवैदिक परम्पराओं में बताई गई है।

आधुनिक भूगोल और खगोल का विज्ञान इस विषय पर जो प्रकाश डालता है, वह खूब मनन करने योग्य है।

ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता समझने वाली सभी परंपराओं में जगत की उत्पत्ति के साथ-साथ जगत के प्रलय की भी एक प्रमुख कल्पना चली आती है।

प्रलयकाल को माननेवाली परम्पराएं ऐसा बतलाती हैं कि उस समय सभी परमाणु और जीवों के सिवाय और कुछ नहीं बच रहेगा। जब सृष्टि की नई शुरूआत होती है, तब इन बचे हुए परमाणु और जीवों का उपयोग करके ईश्वर नई सृष्टि प्रस्तुत करते है। जैन परम्परा में इस सम्बन्ध में ऐसा मानने में आया है कि प्रलयकाल के उपस्थित होने पर भयंकर वायु बहेंगी, दिशाएं धूममय हो जायंगी, सूर्य प्रचण्ड-रूप से तपेगा, चन्द्र अतिशय असह्य शीतलता प्रदान करेगा, पानी अस्वादिष्ट, गरम, दाहक, कीटपूर्ण, रोग-

जनक, हो जायगा, मूसलाधार वृष्टि होगी। इस प्रकार भारतवर्ष में ग्राम, ※ नगर, खेत, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन और आश्रम में रहने वाले मनुष्य, मवेशी गाय, भैंस, आदि, आकाश में विचरण करने वाले पक्षी, ग्राम और जंगल में चलने वाले उसी प्रकार के जीव तथा अनेक प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, लता, बेल घास शेरड़ियाँ, घर अनाज, अंकुर तथा तृण बनस्पतियों का भी नाश हो जायगा। वैताढ्य सिवाय अन्य पर्वत, गिरि, पहाड़, धूलके ऊँचे टीलों आदि का नाश होगा। गंगा और सिंधु को छोड़ कर अन्य सब नदियों का भी अन्त हो जायगा। अग्नि की वृष्टि होने के कारण पृथ्वी तपते तवे की तरह और धगधगाते अंगारे की तरह हो जायगी। जमीन में अत्यन्त कीचड़ और दलदल हो जायगा। ऐसी हो जायगी कि उस पर उपरोक्त प्राणी भी नहीं चल सकेंगे। ७२ निगोदो भावी सृष्टि के लिये बीज रूप में बच भर रहेंगे और वैताढ्य पर्वत का आश्रय लेकर उसकी गुफाओं में रहेंगे। (भा० ३ पा० २१-२३)

बाइबल में भी प्रलयकाल में जो जीव बचे रहेंगे, उनकी संख्या का वर्णन एक कथा के रूप में किया गया हैं, उसका सारांश इस प्रकार है:—

"प्रभु ने विश्व में भयंकर जल प्रलय होने की खबर नुह को स्वप्न में दी और साथ ही आज्ञा की कि तू एक बहुत बड़ा जहाज तैयार कर, जिससे तेरा कुटुम्ब और पृथ्वी पर के हरेक जाति के नर और मादा—दो जीवों को बचा सके। नुह ने आज्ञानुसार जहाज़ तैयार किया और उसमें अपने कुटुम्ब को और हरेक जाति के पशु-पक्षियोंमें से भी एक-एक जोड़े को पकड़ कर भर लिया। जो पशु उसने पकड़े, उनमें एक सिंह और एक सिंहनी, एक बाघ और एक बाघनी, एक हिरन और एक हिरनी, एक भैंस और एक पाड़ा, एक गाय और एक सांड, एक बकरा और एक बकरी, एक मेड़ और एक मेंढ़ा था। पक्षियों में एक तोता और एक मैना, एक कबूतर और कबूतरी, एक मोर और एक मोरनी थी। जलप्रलय हुआ। संपूर्ण विश्व में केवल इस जहाज में रहे हुये ये कितनेक जीव बचे रह सके।"

वैदिक परम्परा और आवेस्ता की परम्परा में भी इसीसे मिलता-जुलता वर्णन है, यह ऐतिहासिकों से छिपा नहीं है।

इस प्रकार आजसे ढाई हजार वर्ष पहले की परम्परा पर संकलित हुए इस ग्रन्थ में तत्कालीन या उससे पूर्व की अन्य कई परम्पराओं का परस्पर संमिश्रण हो गया है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इस उपरोक्त वर्णन से हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते है कि व्यवस्थित अथवा अव्यवस्थित रूपसे लोक में प्रचार पाई हुई परम्परा प्रत्येक प्राचीन साहित्य में अच्छी प्रकार वर्णित है। कई बार केवल उसी परम्परा को लेकर ही वह साहित्य लोकमान्य और लोकप्रिय हो जाता है।

इस सूत्र के अवलोकन करते हुए जीवन शुद्धि की मीमांसा, भगवान द्वारा बताये हुए विश्व-सम्बन्धी विचार, रूढ़िच्छेद और अन्यान्य परम्पराओं की प्रभाव जनित कतिपय नवीन जैन परम्परा, इन सभी विषयों के बाबत विचार हो गया।

अनेकान्त दृष्टि

भगवान् ने जहां-जहां आचार के तत्व का प्रतिपादन किया है, वहां उसकी सभी अपेक्षाओं के साथ में भी विचार किया गया है। जैसे कि कोई एक

※ ग्राम आदि के परिचय के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ भाग २ पृ० १०६ टिप्पणी १ देखिए।

पदार्थ उसके मूल द्रव्य की दृष्टि से अमुक जाति का होता है, उसके परिणाम की दृष्टि से किसी जुदी जाति का होता है। इसी प्रकार क्षेत्र, काल, भाव आदि सभी पहलुओं को लक्ष्य में रख कर विचार किया गया है। (भा० २ पा० २३२)

स्कन्दक के प्रश्न के उत्तर में भगवान ने उन्हें कहा है कि लोक अन्तवाला भी है और लोक अनन्त भी है। काल और भाव से लोक अनन्त है और द्रव्य और क्षेत्र से लोक अन्तवाला है। जीव भी द्रव्य और क्षेत्र से नाशवान है और भाव और काल से अनन्त है। (भा० १ पा० २३५)

परमाणु सम्बन्धी विचार करते समय द्रव्य दृष्टि का (दव्वट्ठयाए) और प्रदेश दृष्टि का (पएसट्ठयाए) उपयोग किया गया है। (भा० ४ पा० २३४)

आचार के विषय में समन्वय की दृष्टि केशी और गौतम के संवाद में सुप्रसिद्ध है ही।

एक स्थान पर सोमिल नामक एक ब्राह्मण ने भगवान को पूछा है कि, "तुम एक हो ? दो हो ? अक्षत हो ? अव्यय हो ? और वर्त्तमान, भूत, भविष्य रूप हो ?" इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा है कि, "द्रव्य दृष्टि से मैं एक हूं, ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से मैं दो हूं, प्रदेश की दृष्टि से मैं अक्षत हूं, अव्यय हूं और उपयोग की दृष्टि से मैं वर्त्तमान, भूत और भविष्य का परिणामवाला हूं।" इस तरह की समन्वय दृष्टि जैसी भगवान् महावीर ने बतलाई है वैसी ही भगवान् बुद्ध ने भी बतलाई है।

सिंह सेनापति को बुद्ध भगवान् ने कहा, "मुझे चाहे कोई अक्रियावादी कहे या क्रियावादी कहे या उच्छेदवादी कहे, लेकिन मैं तो सभी जाति का हूं। पुण्यप्रद विचारों को कार्यरूप में परिणत करना चाहिये, कुशल वृत्ति धारण करनी चाहिये, सदिच्छा का अनुसरण करना चाहिये, ऐसा मैं उपदेश देता हूं तब मैं क्रियावादी हूं। पाप कार्यों का विचार भी नहीं करना चाहिये, पाप के विचार मनमें भी नहीं आने देना और पाप-पूर्ण विचारों का नाश करना चाहिये, इन सबका मैं उपदेश देता हूं, इसलिये मैं अक्रियावादी हूं और अकुशल मनोवृत्ति का उच्छेद करने के लिये मैं कहता हूं, इसलिये मैं उच्छेदवादी हूं।"

इस प्रकार की व्यक्तिगत व विषयगत समन्वय की दृष्टि जैन परम्परा के और बौद्ध परम्परा के शास्त्रों में इस समय भी वर्तमान है। इसके स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, विभज्यवाद, ये नाम जैन परम्परा मे प्रसिद्ध हैं और बौद्ध परम्परा में भी मध्यम प्रतिवाद और विभज्यवाद नाम से प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय में भी अगर हम इस उपरोक्त समन्वय दृष्टि से विचार करें तो लगभग सभी साम्प्रदायिक कलहों का अन्त हो जावे और अपनी बुद्धि और जीवन का सद्व्यय होकर उनका उचित रूप से विकाश हो सके।

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[राजनगर (अहमदाबाद) में द्वितीय जैन युवक परिषद् के सभापति के स्थान से दिया हुआ श्रीमान् परमानन्द कुंवरजी कापड़िया का भाषण हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्नों का एक विशद् और सचा विवेचन है। उसी भाषण का एक अंश नीचे दिया जाता है। पूरा भाषण भी हिन्दी में 'ओसवाल नवयुवक' आफिस से शीघ्र ही प्रकाशित होगा]

"आजकल के जैन धर्म के शिक्षण और उसको समझने की प्रणाली में भी बहुत फेरफार की जरूरत है। जैनधर्म बहुत उदार सिद्धान्तों से भरा है। उसमें से समयानुकूल उपयोगी उपदेश और आदरणीय जीवन-नियम चुने जा सकते हैं। परन्तु आजकल का धार्मिक शिक्षण 'यह खाना चाहिये और यह न खाना चाहिये' के विवेचन में ही पर्याप्त हो जाता है, ऐसा प्रतीत होता है। 'पूजा करो, तप करो, जप करो, सब प्रवृत्तियों से जहाँ तक बने पीछे हटो, किसके सगे-सन्बंधी और किसके प्यारे? समाज क्या और देश क्या? संसार केवल असार है, जीवन क्षण भंगुर है, उपवास करो और इन्द्रियों का दमन करो' बस, इसी प्रकार के अपने जीवन को नीरस बनानेवाले, निष्प्राण बनानेवाले, मंदोत्साही बनानेवाले धर्मोपदेश चारों ओर से हमारे धर्मगुरु दे रहे हैं। किसी धर्मगुरु को ऐसा उपदेश देना नहीं सूझता, जिससे हमारा जीवन समर्थ बने, गृहस्थाश्रम उन्नत हो, समाज के प्रति अपना धर्म और कर्त्तव्य हम समझें, असत्य और अधर्म से लड़ने की शक्ति हममें उत्पन्न हो। हमारे जीवन में भी द्विधा भाव आ गया है। हम अपने जीवन में धार्मिक और व्यवहारिक ऐसे दो भाग पालते हैं, क्योंकि वर्त्तमान जीवन के प्रवाह के साथ सम गति रखनेवाला और उसको उन्नत बनानेवाला जीवन विज्ञान हम जानते नहीं।"

—परमानन्द कुंवरजी कापड़िया

बहनों के प्रति

[श्रीमती उमादेवी ढड्ढा]

प्रिय बहनों, अभीतक तुम अज्ञानरूपी अंधकार में ही पड़ी हो। अहिंसा का—हमारे धर्म के सबसे बड़े और आधारभूत सिद्धान्त का—तुमने अभीतक अर्थ ही नहीं समझा है। अहिंसा को धर्म समझनेवाली देवियों, तुमने अभीतक केवल कीड़ियों और खटमलों की रक्षा करने में ही अपने धर्म की समाप्ति समझ रखी है, लेकिन मेरी भोली बहनों, तुम्हें यह पता नहीं कि तुम्हारे अनजान में तुम कितना बड़ा भारी पाप कर रही हो, कितने बड़े भ्रम में पड़ी हो! क्या तुम्हें पता है कि इस विदेशी वस्त्र ने, जिसे तुम सदा बड़े प्रेम और उत्साह से पहनती हो, केवल तुम्हारे धर्म पर ही नहीं बल्कि तुम्हारे शील पर भी हाथ मारा है। धर्म और शील दो भिन्न वस्तुएं नहीं है, पर मैंने उन्हें इसलिये अलग-अलग लिखा है कि आजकल के 'धर्म' में शील का समावेश नहीं। आजकल का धर्म केवल कीड़ियों, खटमलों, जूं आदि जीवों की रक्षा करने में, मछलियों को आटे की गोली डालने में और चील और कुत्तों को रोटी खिलाने में ही समाप्त हो जाता है। ऐसे ही छोटे-मोटे कार्यों में 'अहिंसा' का प्रतिपालन समझ लिया जाता है। हां, तो विदेशी वस्त्र ने आपके शील पर भी हाथ मारा है।

> इस लेख की लेखिका हमारे सुपरिचित श्री सिद्धराज ढड्ढा, एम० ए०, एल एल० बी० की धर्मपत्नी हैं। आपके इस लेख से स्पष्ट झलकता है कि आपके विचारों पर आपके पतिदेव के विचारों की छाप पड़ी है। श्रीमती ढड्ढा उच्च राष्ट्रीय विचारों की एक प्रगतिशील महिला हैं। आपके विचार बड़े सरल और गम्भीर होते हैं। आशा है श्रीमतीजी भविष्य में भी अपने विचारों से स्त्री समाज की इसी प्रकार सेवा करती रहेंगी। —सम्पादक

धर्म पर इस विदेशी वस्त्र ने इस प्रकार हाथ मारा है कि इसमें पशुओं की चर्बी लगती है। उस चर्बी के लिये उन पशुओं का बध किया जाता है। अब बताओ, कहां रही तुम्हारी अहिंसा?

शील पर इस विदेशी वस्त्र ने इस प्रकार हाथ मारा है कि इसके झीनेपन से तुम्हारे अंग-प्रत्यंग सभी झलकते हैं, छिपते नहीं। दर्शकों की कामुक दृष्टि तुम्हारी ही ओर लगी रहती है। स्त्रियों का सच्चा भूषण लज्जा अर्थात् शील है। अब बताओ, कैसे तुम उस शील की रक्षा कर सकी? तुम्हारे शरीर की सच्ची सजावट उस शील से होगी, इस झीने, तड़कीले-भड़कीले विदेशी वस्त्र से नहीं।

धर्म और शील के साथ-साथ इस विदेशी वस्त्र व्यवहार ने तुम्हारी मनुष्यता का भी हरण किया है। तुम इससे खरीद कर सारा पैसा विदेश भेज देती हो, इससे यहां के हजारों और लाखों ही नहीं करोड़ों भाई बेरोजगार के हो गये हैं, उन्हें दोनों वक्त खाना नसीब

नहीं होता। अब बताओ, कहां रही तुम्हारी मनुष्यता ?

तब तुम्हें तुम्हारे धर्म, शील और मनुष्यता की रक्षा के लिये क्या करना चाहिये ? सबसे पहला तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम हिंसा के पिंड इन झीने, तड़कीले-भड़कीले कपड़ों को अपने शरीर पर से ही नहीं, घर में से भी निकाल दो। इसके स्थान पर धारण करो शुद्ध स्वदेशी खद्दर। अपने भूखे और बेरोजगार भाइयों पर दया कर खद्दर खरीदो और अपना पैसा विदेश में जाने से रोको। खद्दर खरीदने से यहां के लोगों को रोजगार मिलेगा और तुम्हारे धर्म और शील की जो तुम्हारा सर्वस्व है—रक्षा होगी।

चिट्ठी-पत्री

वीर सेवा मंदिर,
सरसावा (सहारनपुर)
ता० ११-६-१९३६

श्रीयुक्त संपादकजी,

सेवा में "जैन लक्षणावली" नामक एक विज्ञप्ति भेजी जाती है। इसको पढ़ कर आप इसकी उपयोगिता, आवश्यकता और इसके महत्व को अवश्य अनुभव करेंगे। हमारा विचार है कि इसमें सभी प्रमाणिक जैन लक्षणों का बिना किसी संकोच और पक्षपात के संग्रह किया जायगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि सभी समाज हितैषियों को अपने अपने तरीके पर इसमें सहयोग देना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि आप इसको अपने पत्र में अवश्य स्थान देंगे।

आपका
जुगलकिशोर मुख्तार

जैन लक्षणावली

समन्तभद्राश्रम की विज्ञप्ति नं० १ में आश्रम द्वारा किये जाने वाले कार्यों की जो सूची प्रकाशित की गई थी, उसमें 'जैन लक्षणावली' नाम का एक महत्वपूर्ण संग्रह तय्यार करने का भी कार्य रक्खा गया था। आश्रम का देहली से स्थान परिवर्तन होने के बाद से यद्यपि 'अनेकान्त' पत्र को घाटे की पूर्ति न होने आदि कुछ अनिवार्य कारणों से बन्द रखना पड़ा और दूसरा भी कोई खास कार्य नहीं हो सका फिर भी यहां पर आश्रम का कुछ अनुसन्धानादि कार्य और आफिस वर्क ज़रूर होता रहा है, धवलादि के परिचय विषयक एक हज़ार पेज के नोटों का लिया जाना भी उसी का एक परिणाम है। परन्तु दो वर्ष से मेरे 'वीर सेवा मन्दिर' के निर्माण कार्य में लग जाने के कारण उन कार्यों का होना भी प्रायः नहीं के बराबर ही हुआ है। अब 'वीरसेवा मन्दिर' के प्रतिष्ठित हो जाने पर समन्तभद्राश्रम के कुछ कार्यों को नियमित रूप से हाथ में लेने का विचार किया गया है, 'अनेकान्त' को भी निकालनेका विचार चल रहा है। 'अनेकान्त' के पुनः प्रकाशन के लिये पहले कितना ही पत्र-व्यवहार किया गया परन्तु सफलता नहीं मिली। बाद को 'जयधवला का प्रकाशन' नाम का मेरा लेख पढ़ कर * एक मित्र महोदय इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 'अनेकान्त' को कम से कम तीन वर्ष तक तो अवश्य निकालने की प्रेरणा करते हुए एक अच्छी सहायता का वचन दिया। परन्तु उस समय मैं 'वीर सेवा मन्दिर' की बिल्डिंग के निर्माण कार्य में लगा हुआ था—मुझे ज़रा भी

* यह लेख १ ली जनवरी सन् १९३४ के जैन जगत् में प्रकाशित हुआ है।

अवकाश नहीं था—और इसलिये मैंने उन्हें लिख दिया था कि वे अपना वचन कुछ समय धरोहर रक्खें। आशा है वह धरोहर सुरक्षित होगी। यदि वह सुरक्षित हुई और 'वीर सेवा मन्दिर' को समाज के कुछ विद्वानों का यथेष्ट सहयोग प्राप्त हो सका तो आश्चर्य नहीं कि 'अनेकान्त' के पुनः प्रकाशन की योजना शीघ्र प्रकट कर दी जाय। फिलहाल 'जैन लक्षणावली' के निर्माण का कार्य हाथ में लिया जाता है। इसमें मैं प्राचीन जैन साहित्य पर से जैनाचार्यादि द्वारा प्रतिपादित पदार्थों तथा जैन पारिभाषिक शब्दों के उन सभी प्रमाणिक लक्षणों का संग्रह करना चाहता हूं, जिन से वस्तुतत्त्व के समझने में आसानी हो सके। जितने भी लक्षण भिन्न भिन्न विद्वानों के एक विषय के उपलब्ध होंगे उन सब का एकत्र संग्रह उन विद्वानों के नामोल्लेख पूर्वक कालक्रम से किया जायगा, जिससे पाठकों को लक्षणों के क्रम विकास का (यदि कुछ हो) और देश-काल की उस परिस्थिति का भी कितना ही अनुभव हो सके, जिसने उस विकास को जन्म दिया हो अथवा जिससे प्रेरित होकर पूर्ववर्ती किसी लक्षण में कुछ परिवर्तन अथवा फेरफार करने की ज़रूरत पड़ी हो। ऐसे एक प्रमाणिक संग्रह के तय्यार होने से पाठकों की ज्ञानवृद्धि में बहुत मदद मिलेगी, देशी विदेशी सभी विद्वानों के पास वह एक Reference book के तौर पर रह सकेगा और स्वाध्याय प्रेमी उससे यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे। ऐसे महत्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ के तय्यार करने के लिये मुझे समाज के उन सभी सेवाभावी विद्वानों के सहयोग की खास आवश्यकता है, जो ऐच्छिक करके रूप में अपनी कुछ सेवाएँ इस काम के लिये अर्पण करना चाहें। जो विद्वान लोकहित की दृष्टि से किये जाने वाले इस पुण्यकार्य में अपने सहयोग की स्वीकृति प्रदान करेंगे उन्हें उनकी शक्ति आदि के अनुसार योग्य सूचनाओं के साथ कुछ ग्रन्थों के नाम निर्दिष्ट कर दिये जावेंगे जिनमें से वे लक्षणों का संग्रह करके भेजेंगे। लक्षणों का क्रम आदि का शेष सब काम यहाँ आश्रम में हो जायगा। आश्रम में लक्षणों के संग्रह का काम भी प्रारम्भ कर दिया गया है। परन्तु यह काम इतना बड़ा है कि बिना दूसरों की सहयोग प्राप्ति के इसका यथेष्ट रूप में जल्दी पूरा होना कठिन है। अतः समाज के संस्कृत–प्राकृत भाषाविज्ञ सभी विद्वानों से सादर निवेदन है कि वे इस सेवा-यज्ञ में अवश्य ही अपना हाथ बढ़ाएँ और अपने सेवा वचन की मुझे शीघ्र ही सूचना देकर अनुगृहीत करें। ऐसे सब सहायकों को ग्रन्थ के छप कर तय्यार होने पर उसकी एक-एक कापी भेंट की जायगी।

सेवक—

जुगल किशोर मुख्तार

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर

श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर का षष्टम और सप्तम वार्षिक कार्य-विवरण पढ़ कर खुशी हुई। विद्या मंदिर, ब्रह्मचारी मन्दिर और प्रधान कार्यालय इन तीन विभागों में यह गुरुकुल मुख्यतः विभक्त है। इसमें लग भग ६१ छात्र शिक्षा लाभ कर रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, हिन्दी तथा गुजराती भाषायें एवं धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, गणित, इतिहास, महाजनी, भूगोल, संपादन कला, अर्थशास्त्र, राजनीति, संगीत तथा उद्योग आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता है। यहां दर्जी का कार्य, प्रेस और पुस्तक बंधाई का कार्य भी सिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहां एक अच्छा वाचनालय भी है और वक्तृत्व कला का भी अभ्यास कराया जाता है। साथ २ गोशाला तथा स्टेशनरी स्टोर्स भी है। भोजनागार एवं औषधालय का प्रबन्ध भी बड़ा अच्छा है। व्यायाम पर भी नियमित रूप से ध्यान दिया जाता है। समय २ पर गुरुकुल के छात्र पैदल भ्रमण भी किया करते हैं, जो ज्ञानवृद्धि और शारीरिक विकाश के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसे गुरुकुलों से देश का बहुत बड़ा कल्याण साधन होता है। जैन गुरुकुल ब्यावर के उत्साही कार्यकर्त्ता जो कार्य कर रहे हैं, वह सराहनीय है। हम अपने समाज का इस गुरुकुल की सहायता करने की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं हम इस गुरुकुल के दीर्घ जीवन और उन्नति की कामना करते हैं।

श्री महावीर जैन मित्र-मंडल की स्थापना

इन्दौर के नये मन्दिर में श्री महावीर जैन बालमित्र मंडल की स्थापना श्रीयुत् छोटेलालजी लूनिया के सभापतित्व में पर्यूषणपर्व के प्रारम्भिक दिवस ता० १४-८-३६ को हुई।

पर्यूषण में पुस्तकजी का जुलूस श्रीयुत सूरजमलजी नाहटा तथा पालनाजी का जुलूस श्रीयुत नथमलजी सावणसुखा के यहां से निकले थे। जलूसों में उक्त मण्डल के सदस्यों ने स्वयंसेवकों का कार्य सन्तोष-जनक रूप से किया। उस कार्य से प्रसन्न होकर श्रीयुक्त हीरालालजी जिन्दानी ने १५ रजतपदक मंडल को भेंट किये। श्री हीरालालजी का यह कार्य प्रशंस-नीय और अनुकरणीय है।

स्थानीय ओसवाल समाज से मंडल का निवेदन है कि किसी भी सेवाकार्य में आवश्यकता होने पर मंडल को अवश्य सूचित करें क्योंकि मंडल का मुख्य उद्देश्य सेवाकार्य ही है।

पारसमल भण्डारी
मंत्री

श्री महावीर भवन, नागपुर

आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी के देहावसान पर शोक—

जैनाचार्य श्री अमोलक ऋषिजी का ६३ वर्ष की आयु में गत १४ सितम्बर सोमवार को धुलिया में देहान्त हो गया। तार द्वारा नागपुर समाचार पहुंचते ही १५ सितम्बर को महावीर भवन बन्द रखा गया। तपस्वी मुनि देव-ऋषिजी ने मौन धारण किया और अन्य श्रावक और श्राविकाओं ने विविध प्रकार के धार्मिक कृत्यों द्वारा शोक प्रकाश किया। ता० १६ को प्रातःकाल ८ बजे तपस्वी मुनि देव-ऋषिजी के सभापतित्व में महावीर भवन में एक शोक सभा हुई। श्वेताम्बर जैन, दिगम्बर जैन, स्थानकवासी और तेरापंथी वहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे तथा गैर जैन भी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। मुनि कान्ति ऋषि के मंगलाचरण गान के बाद देशभक्त सेठ पूनमचन्दजी रांका बाबू परमालजी जवेरी, श्री डंडेकरजी, जनरल अवारीजी, प्रोफेसर कस्तूरचन्द जैन आदि के भाषण हुए।

देशभक्त सेठ पूनमचन्दजी रांका ने अपने भाषण में बतलाया कि स्वर्गीय ऋषिजी की साहित्य सेवा प्रशंसनीय और पूज्य है। उनकी नम्रता और पवित्रता भी उनकी साहित्यिक प्रतिभा से कम नहीं थी। उनके उठ जाने से हमारी बड़ी भारी क्षति हुई है।

सभापति तपस्वी देवऋषिजी ने उपस्थित जनता को दलबन्दी से दूर रहने की और पारस्परिक सहयोग और प्रेम का पाठ पढ़ने की शिक्षा देकर सभा की कार्यवाही को समाप्त किया।

सर्व श्री सूरजमलजी सुराना, नन्नूमलजी पारख, मूलजी भाई शाह, गुलाबचन्दजी बलदोटा, खेमचन्दजी बोरड़िया, पोपटलाल भाई और श्रीमती धनवती देवी रांका आदि सभा में उपस्थित थे।

सर्व सम्मति से शोक-सूचक प्रस्ताव पास होकर सभा १० बजे समाप्त हो गई।

मूलजी भाई शाह

श्री शार्दूल व्यायामशाला सरदार शहर

शोक-सभा—

ता० ३१-८-३६ को श्री शार्दूल व्यायामशाला की एक शोक-सभा श्री अनूपचन्दजी छाजेड़ के सभापतित्व में स्वर्गीय श्री रामलालजी दूगड़ की आकस्मिक मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए हुई। श्री सोहनलालजी आंचलिया ने शोक प्रकट करते हुए कहा कि आपके देहावसान से व्यायामशाला और सरदार शहर की ही नहीं वरन् समस्त ओसवाल समाज की बड़ी भारी क्षति हुई है। स्व० दूगड़जी इस संस्था के तीन साल तक लगातार मंत्री रह चुके थे। इस साल आप स्थानीय पब्लिक लाईब्रेरी के मंत्री तथा व्यायामशाला के सभापति थे। व्यायामशाला ने आपके मंत्रित्व में जो उन्नति की है वह जन साधारण से छिपी नहीं है प्रमाण स्वरूप यह भव्य भवन सामने मौजूद है। आपका जन्म सं० १९६५ मिती आसाढ़ सुदी ८ को हुआ था। बाल्यावस्था से ही आपको हिन्दी साहित्य से बड़ा भारी प्रेम था। १२–१३ वर्ष पूर्व आपने मित्र हित कारिणी नामक एक पुस्तकालय स्थापित किया था, जिसमें इस समय प्रायः २५०० पुस्तकें है। सार्वजनिक कार्यों में आप हर समय तन-मन धन से भाग लेते थे। आप बड़े ही उत्साही सहनशील, अनुभवी एवं होनहार युवक थे। आपसे शहर को तथा जाति को बड़ी भारी आशा थी, लेकिन ता० ३०-७-३६ को हैजे ने आप पर अचानक आक्रमण किया और आप उसी रात को हम सबों को अथाह शोक सागर में छोड़ कर इस असार-संसार से चल बसे। परमात्मा आपकी स्वर्गगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। हम आपके सन्तप्त परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उनको इस असह्य दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करें। मंत्री

संपादकीय

संस्था-महारोग

कहना न होगा कि आज हमारे देश में सामाजिक जीवन रोग ग्रस्त है। समाज के अङ्ग-प्रत्यंग में रोग के कीटाणु प्रविष्ट होकर उसकी जीवन शक्ति नष्ट कर रहे हैं। रुग्ण समाज की ऐसी चिन्ताजनक परिस्थिति में हमारे लिये चुपचाप बैठे रहना तो असंभव है ही, समाज के उत्तरदायित्व को समझनेवाले व्यक्ति बराबर समाज की स्वस्थता के लिये प्रयत्नशील हैं। गत बीस-पचीस वर्षों में तो ऐसे लोगों की संख्या भी खूब बढ़ गई और कार्य भी खूब हुआ। समाज को रोगमुक्त कर उसमें स्वस्थ जीवन की लहरें उत्पन्न करना ही "सुधार" की ऊंची से ऊंची कल्पना है। 'सुधार' शब्द का जन्म इस अर्थ में भारत में थोड़े ही वर्षों पहले हुआ था, या यों कह सकते हैं कि उससे पहले इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। सुधार और सुधारवादियों के जन्म के साथ ही भारत में संस्था — आधुनिक संस्था—की उत्पत्ति हुई। और जैसे-जैसे लोगों में सुधार की-सुधारक बनने की प्रेरणा बलवती होती गई, संस्थाओं की संख्या और परिमाण बढ़ता गया। इसका एक बड़ा प्रमाण हम आज भी यह देखते हैं कि संस्था से अलग रह कर कोई व्यक्ति 'सुधारक' नहीं कहलाया जाता। यह मान लेने में हमें कोई आपत्ति नहीं है कि यह संगठन का युग है और संस्था संगठित शक्ति की परिचायक है। अर्थात् बिना-संगठन के संस्था का जन्म नहीं हो सकता और जब जन्म ही नहीं हो सकता तो फिर उसकी सफलता का तो सवाल ही क्या? तो क्या इन संस्थाओं से भारत का सामाजिक जीवन सचेष्ट और संगठित हुआ? नहीं, यह बिलकुल स्पष्ट है कि आज सैकड़ों हजारों संस्थाएं होते हुए भी भारत का सामाजिक जीवन वैसा ही रोगी की तरह निर्जीव, निश्चेष्ट और निरीह सा पड़ा है।

वास्तव में समाज का यह रोग बढ़ कर इस स्थिति पर पहुंच गया है कि अब तो उसको दिया हुआ पथ्य भी अपथ्य हो जाता है। यह रोग की भयानक स्थिति है। बढ़ती हुई बीमारी में भारतीय संस्थाएं संगठन के अभाव में पथ्य के स्थान पर कुपथ्य हो रही हैं। रोग के उपचार करने के स्थान में वे स्वयं समाज का एक रोग—केवल रोग ही नहीं महारोग—बन रही हैं। यही 'संस्था-महारोग' है। वास्तव में सुधार के क्षेत्र में जबसे संस्थाओं की संख्या बढ़ रही है, तभी से धीरे-धीरे व्यक्तिगत सुधार की भावना लुप्त सी होती जा रही है। बात यह है कि किसी संस्था का कार्यकर्त्ता होने पर भी मनुष्य अपने आपको सुधरा हुआ—और केवल सुधरा हुआ ही नहीं बल्कि

सुधारक यानी दूसरों को सुधारनेवाला—मान लेता है और उसे स्वयं को सुधारने के स्थान पर दूसरों को पूर्ण बनाने की ही परवाह रहती है। उसकी यह नासमझी उसको और समाज को दोनों को रसातल पर ला खड़ा करती है। संस्थाओं में अधिकतर 'सुधार' की भावना लेकर लोग इसलिये आते हैं कि उससे यश, प्रतिष्ठा और धन का लाभ होने की आशा होती है। ऐसे कहलानेवाले सुधारकों की इस कुत्सित मनोवृत्ति, पारस्परिक ईर्ष्या और साम्प्रदायिक कलह ने संस्थाओं की संख्या बढ़ाने में केवल खूब योग ही नहीं दिया बल्कि ये स्वयं ही इस वृद्धि का कारण हुई। एक-एक समाज और एक-एक सम्प्रदाय और फिर एक-एक समूह को लेकर असंख्य संस्थाएं बन गई, जिनके कारण संगठन के नाम से भारत का टूटा हुआ समाज और भी असंगठित हो गया। इन बढ़ती हुई संस्थाओं में पारस्परिक सहयोग के स्थान पर केवल एक दूसरे को नीचा दिखाने की भावना रहने से समाज संगठित होने के स्थान पर—विभाजित हो गया। पारस्परिक असहयोग रहने पर भला कहीं संगठन हो सकता है फिर चाहे वे व्यक्ति हों या संस्थाएं।

अलग-अलग उद्देश्यों को लेकर ही अगर वे संस्थाएं कार्य करें तब तो उनका बढ़ना ठीक ही है। मतलब यह है कि एक ही समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं को भिन्न-भिन्न संस्थाएं हल करें पर उन सबके मूल में भिन्नता का आभास न हो। भिन्न-भिन्न समस्याओं को हल करती हुई संस्थाओं में पारस्परिक संघर्ष की सम्भावना कम रहती है और उन संस्थाओं के भिन्न-भिन्न प्रयत्न सामूहिक रूपसे उस समाज को संगठित करने में सफलीभूत होते हैं जिस समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं को हल करने के लिये उन संस्थाओं की उत्पत्ति हुई थी।

हमारे समाज में अनेक समस्याएं हैं जिनको सुलझाने के लिये अलग-अलग संस्थाएं होनी ही चाहिए। लेकिन जब वे अपने उद्देश्य-विधान में केवल संख्या बढ़ाने की गरज से—अनेक कार्य-क्रम सम्मिलित कर लेती हैं और फिर उनमें जो पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता प्रारम्भ होती है उससे संस्थाएं अवश्य ही एक रोग सा बन जाती हैं। फिर वे केवल यश (?) लोलुप स्वार्थी मनुष्यों का अखाड़ा बन जाती हैं। असल में संस्थाएं भी तभी उपयोगी बनाई जा सकती हैं, जब व्यक्तिगत सुधार को आदमी भूल न जाय। व्यक्तिगत सुधार से ही संस्थाओं को शक्तिमान किया जा सकता है। संस्थाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत सुधार निःसन्देह अधिक उपयोगी है। पर संस्थाएं फिर भी जरूरी हैं, क्योंकि यह युग संगठन का युग है और बिना संगठन के हम कोई बड़ा सामूहिक महत्व का कार्य—नहीं कर सकते। जिन कार्यों में संगठन की आवश्यकता है—और वह आवश्यकता प्रत्येक सामाजिक कार्य में है—उनको पूर्ण रीति से कर सकने में संस्था से बड़ा लाभ हो सकता है। पर संस्था के संचालन में न संगठन के मूल मंत्र को और न व्यक्तिगत सुधार की आत्म प्रेरणा को भूल जाना चाहिए—उसे केवल सेवा की एक ऊंची नैतिक साधना समझना चाहिये।

भारतीय संस्थाओं में आजकल अखिल भारतीयता का एक रोग और पैदा हुआ है। न जाने कितनी अखिल भारतीय संस्थाएं हैं। यहाँ तक कि एक ही समाज में दो-दो चार-चार अखिल भारतवर्षीय संस्थाएँ हैं। यह ठीक है कि भारतवर्ष एक विशाल देश है और समस्त देश की शक्तियों को बटोर कर एक केन्द्रीय

संस्था होना चाहिये पर बिना किसी मतलब के केवल नाम के लिये अखिल भारतीय नाम जोड़ देना केवल अनावश्यक ही नहीं वितंडावाद है। असल में चाहिये यह कि एक दो केन्द्रीय बड़ी संस्थाएँ हो और उनकी अनेक शाखाएँ अलग हों जो पूर्ण उत्साह और परिश्रम के साथ बिना व्यक्तिगत स्वार्थ के ठोस काम करें। शाखा संस्थाओं पर ही केन्द्रीय संस्थाओं की सफलता निर्भर है।

दूसरी बात यह है कि असल में सभा संस्थाओं में जो प्रायः स्वार्थ की मनोवृत्ति भर जाती है और उसके कारण कार्यकर्त्ता अपना फ़ायदा करने की सोचने लगता है उसका कारण यह है कि कार्यकर्त्ता अधिकतर अवैतनिक होते हैं। एक बार तो केवल क्षणिक जोश में आकर वे उसमें चले जाते हैं पर रोटी का सवाल तो सभी के सामने है। गृहस्थी रहते हुए व्यवहारिक जीवन की आवश्यकताएँ रहती ही है और जब उनके लिये प्रबन्ध न हो तो फिर मनुष्य क्या सुधार कर सकता है! पहले तो उसे अपने पेट की सेवा और अपना सुधार करना है। स्वभावतः ही ऐसी हालत में उसमें चोरी, अन्याय, स्वार्थपरता और दम्भ आदि की भावना उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। वास्तव में संस्था के सुदृढ़ संचालन के लिये उसके कार्य कर्त्ता अवश्य वैतनिक होने चाहिये। अवैतनिक कार्यकर्त्ताओं में बहुधा यह भावना प्रवेश कर जाती है कि वे संस्था पर और उस संस्था के द्वारा समाज पर एक प्रकार का अहसान कर रहे हैं और जहां इस भावना ने प्रवेश किया कि सच्ची सेवा छूमन्तर हो जाती है। कुछ दिन पहले इस प्रकार का वेतन लेना कार्यकर्त्ता एक प्रकार का अपमान समझ कर उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। और बहुत से अब भी वैसा ही समझते हैं। पर यह ख़याल बिलकुल निर्मूल है। ऐसे रोग अपनी गुप्त स्वार्थ परता और अन्याय से संस्था का जीवन खोखला कर देते हैं—कहने को चाहे वे महान् त्यागी बने रहें। असल में लोगों से जब तक यह भावना टाली नहीं जायगी तब तक संस्था का जीवन शुद्ध नहीं हो सकता और इस संस्था महारोग से समाज की रक्षा नहीं हो सकती।

विदेशों में संस्थाएँ इसलिये सफल हुई है और होती हैं कि उन में बिलकुल व्यवसायिक ढंग से काम होता है। व्यवसायी ढंग से हमारा मतलब यह नहीं कि उनमें सुधार की भावना नहीं रहती, पर वे ठीक नियमित रूप से इसका कामकरते है।

हम संस्था महारोग से हमारा ओसवाल समाज भी बचा नहीं है। हमारे यहाँ भी कोई बुड्ढों की, कोई युवकों की, कोई गुजरातियों की, कोई मारवाड़ियों की कोई तेरापथियों की तो कोई स्थानक वासियों की न जाने कितनी ही संस्थाएँ हैं - पर सफल एक भी नहीं। हमारे समाज में ही एक दो ही नहीं पाँच छै अखिल भारतीय संस्थाएँ है, किन्तु कार्य करने में वे अखिल प्रान्तीय भी नहीं हैं। उनके सामने अपने कार्यक्रम की रेखाएँ ही स्पष्ट नहीं है। सच तो यह है कि ठोस कार्य तो प्रान्तीय शाखाएँ ही करें और दर असल वे ही कर सकती हैं। विभिन्न प्रान्तीय संस्थाओं को समय-समय पर मिला कर पारस्परिक कार्य की जानकारी और विचार-विनिमय के लिये केवल एक केन्द्रीय संस्था हो जो उनके मूल में एक सफल सूत्रधार की तरह उनका संचालन करे और इस तरह की व्यवस्था से, ही बहुत ठोस कार्य हो सकता है। कार्यकर्त्ता सब वैतनिक हों जो पूरी शक्ति और दिमाग से एक साथ कार्य कर सकें जिससे अन्त में हम अपनी शक्तियों

का सामूहिक परिणाम पा सकें। इस तरह की केन्द्रीय संस्था से हमारी बहुत सी धन-जन की शक्ति बच जायगी और कार्य चौगुनी गति से हो सकेगा। अभी तो हमारे यहां इतनी संस्थाएँ हैं कि आपस में एक प्रतियोगिता सी मची हुई है और प्रतिद्वन्द्विता की प्रवृति समाज के लिये कितनी घातक है वह सर्व विदित है। क्या हम आशा करें कि समाज के विचारक वर्ग का ध्यान इस ओर जायगा ?

टिप्पणियाँ

आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी का स्वर्गवास—

गत १४ सितम्बर सोमवार को धुलिया मे हमारे आदरणीय मुनि आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी का स्वर्गवास हो गया। आपके देहावसान से एक विद्वान और सर्वप्रिय जैनाचार्य हमारे बीच से उठ गये।

आचार्य श्री ने केवल दस वर्ष की अवस्था में ही गृह त्याग कर सदा के लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। अपने जीवन भर अपने इस व्रत का मनसा-वाचा -कर्मणा निर्वाह किया। पूरे पचास वर्षों तक आचार्य तप और त्याग का उपदेश देते हुए स्थान-स्थान पर पैदल भ्रमण करते रहे। आपके उपदेश केवल जैन समाज तक ही सीमित न थे। सैंकड़ों ग्राम, जिनमें होकर आप गुजरते थे, आपके उपदेशों का लाभ उठाते थे। आपकी पवित्रता और नम्रता आपके सर्वोच्च गुण थे। आपकी इसी नम्रता और विद्याप्रेम से प्रभावित होकर सन १९३२ में अजमेर में हुए बृहत् साधु सम्मेलन में आप सर्वसम्मति से पंच निर्वाचित किये गये थे। सम्पूर्ण जैन जगत् आपकी धार्मिक रचनाओं के कारण आपका सदा आभारी रहेगा। इन रचनाओं में ३२ सूत्रों का हिन्दी अनुवाद उल्लेखनीय है।

अजमेर के साधु-सम्मेलन के बाद पूज्य ऋषिजी ने अपने दृष्टिकोण को अधिक विस्तृत बना कर उसे एक राष्ट्रीय रूप दे दिया था। आपने शुद्ध खद्दर धारण करना प्रारम्भ कर दिया था और आपके उपदेश उस समय से अधिकतर ग्रामोद्योग के ही कई पहलुओं को लेकर होते थे। ग्रामीणों की दयनीय दशा को आप कभी भूलते न थे। आप अपने प्रत्येक उपदेश में कहते थे कि अहिंसा धर्म के सिद्धान्तों का सत्य रूप से पालन करने के लिये हमें अपने ग्रामीण भाइयों की दयनीय दशा की ओर ध्यान देना चाहिये।

कई सनातनी भी आपकी रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए हैं। हमें अब फिरकेबाजी को लात मार कर और अपने संकुचित धार्मिक दृष्टिकोण को विस्तृत राष्ट्रीयता का रूप देकर स्वर्गीय आचार्य श्री के सिद्धान्तों को अपनाना चाहिये।

बाढ़ पीड़ित—

यों तो आये साल ही भारतवासी बाढ़ द्वारा पीड़ित होते रहते है, पर इधर कई वर्षों से भारतवर्ष बाढ़ के साथ-साथ भूकम्प और अकाल का भी शिकार बन रहा है। इसे हम प्रकृति के कोप और भारत के दुर्भाग्य के सिवा और क्या कह सकते है ? बिहार और क्वेटा के सर्वनाशकारी भूकम्प के धक्के से हम सम्हल भी न सके थे कि इस वर्ष यह भीषण बाढ़ फिर आ पहुंची। पत्रों में लगातार प्रकाशित होनेवाले बाढ़ पीड़ितों के दयनीय वर्णन को पढ़ कर किस सहृदय के आंसू नहीं निकल पड़ते ? गत बिहार के भूकम्प

से वहाँ कई स्थान ऊँचे नीचे हो गये थे। अतः नीचे स्थानों में पानी भर गया है और गांव के गांव जलमग्न हो गये हैं। बिहार में बाढ़ के साथ-साथ मलेरिया का प्रकोप भी फैल रहा है।

नित्य नई नई जगहों से बाढ़ के समाचार आ रहे हैं। बंगाल और बिहार तो आये साल ही इसके शिकार होते रहते हैं, पर अब मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत में भी बाढ़ के समाचार आ रहे हैं। राजपूताना में भी अतिवृष्टि से सैकड़ों घर भूमिसात् होने के समाचार मिले हैं। इसी प्रकार संयुक्त प्रान्त की बाढ़ भी जैसे बाजी मार ले आना चाहती है। गोरखपुर प्रान्त में मीलों पानी छाया हुआ है। लखनऊ में चारों ओर पानी भर आया था।

बाढ़ के कारण सैकड़ों मनुष्य बह गये, हजारों बेघरबार के हो गये और मूक पशुओं का तो कहना ही क्या। बाढ़ पीड़ित मनुष्यों के लिये खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं और रहने को घर नहीं। हम इन पीड़ितों के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और उनके कष्ट निवारण की प्रार्थना के साथ-साथ पाठकों से अनुरोध करते हैं कि इन पीड़ितों के प्रति आप तन, मन और धन से सहानुभूति दिखावें। जनता से हमारी प्रार्थना है कि बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ जो संस्थाएं काम कर रही हैं, उन्हें यथाशक्ति धन देकर अपना सहयोग प्रदान करें।

जैन मन्दिर में सिरफुटौवल—

गत १९ सितम्बर को बम्बई में गोड़ीजी के मंदिर में एक मामूली सी बात को लेकर मारपीट तक हो गई। एक वर्ग चाहता था कि पर्यूषण-पर्व रविवार से शुरू हो और दूसरा चाहता था कि शनिवार से। इसी बात पर दोनों दलों में मनमुटाव हो गया। मंगलवार को रात में स्थिति विषम हो गई। पहले वर्ग ने मन्दिर को घेर लिया और अन्दर घुस गया और मारपीट आरम्भ हो गई। अन्त में पुलिस की सहायता से ट्रस्टी अशान्त जनता को हटाने में समर्थ हुए। कितनी अनुदार मनोवृत्ति है। इस प्रकार की घटना हमारी संकुचित मनोवृत्ति की परिचायक है। भारतवर्ष का गत इतिहास हमें बारम्बार याद दिलाता है कि हमारे पतन का कारण हमारी संकुचित मनोवृत्ति और फूट ही रही है। हमने अभी तक अपनी ठोकर से सबक नहीं सीखा है। आज हमारा समाज कितना जर्जरित हो चुका है; और सर्वनाश के निकट जा रहा है। इस प्रकार की फूट और मनोमालिन्य के बदले उदारता की आवश्यकता है और इसी में हमारे समाज का कल्याण है।

हम पर्यूषण-- पर्व के महान् और उच्च उद्देश्यों को भूल जाते हैं। उसके बजाय हम धर्म की आड़ में ढोंग रचते है। जरा जरा सी बात में सिरफुटौवल की नौबत आ जाती है। क्या हमारी क्षमा याचना बाहरी दिखावे और केवल रूढ़ि के पोषण तक ही सीमित है? उसका पवित्र उद्देश्य पूरा ही नहीं हो पाता है। प्रत्येक वर्ष हम अपने मनोमालिन्य को क्षमा-याचना करके दूर करने की बजाय संकुचित मनोवृत्ति के कारण धर्म की आड़ में मानों विद्वेष की अग्नि में घी की आहुति देते हैं। यदि यही हाल रहा तो एक दिन हमारा नाश अवश्यम्भावी है।

श्री कमला दातव्य औषधालय:—

गत १३ सितम्बर रविवार को स्वर्गीय श्रीमती कमला नेहरू की पुण्य-स्मृति में नं० पी० २६, न्यू जगन्नाथ घाट रोड, कलकत्ता में बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए० द्वारा श्री कमला दातव्य होमियोपैथिक औष-

धालय का उद्घाटन किया गया। यह औषधालय गरीबों और असमर्थों की सेवा करने के उद्देश्य को लेकर ही स्थापित किया गया है। कलकत्ता में यों तो सैकड़ों ही नहीं हजारों दवाखाने हैं, पर ऐसी बहुत कम संस्थाएं हैं जो ठीक समय पर पैसे—पैसे के लिये मुहताज हमारे गरीब भाइयों के बीमार और रोगग्रस्त हो जाने पर उनकी आवश्यक चिकित्सा करे। ठीक समय पर दवा का उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण सैकड़ों व्यक्तियों को असमय काल के गाल में चला जाना पड़ता है। अतः उनकी इसी आवश्यकता का अनुभव कर अगर ऐसे दवाखाने खोले जांय तो उनकी कुछ सेवा हो सकती है। इस श्री कमला दातव्य औषधालय में रोग से उत्पीड़ित व्यक्तियों को मुफ्त में दवा दी जायगी तथा जो रोगी कारणवश अस्पताल नहीं जा सकते एवं पैसा न होने के कारण डाक्टर को घर पर बुला कर नहीं दिखा सकते, खबर मिलने पर उनके घर जाकर मुफ्त इलाज करने की चेष्टा की जायगी। जनता को चाहिये कि इससे फायदा उठाये। हमारा उपरोक्त संस्था के साथ पूर्ण सहयोग है और जनता से अनुरोध है कि वह तनमनधन से इस औषधालय को सहायता पहुंचा कर गरीबों की सेवा करने के साथ-साथ श्रीमती कमला नेहरू की इस पुण्य-स्मृति को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करे।

प्रान्तीयता का त्यागः—

सुनते हैं और किसी हद तक ठीक भी है कि बंगालियों में प्रान्तीयता की भावना बहुत अधिक होती है। इसके कारणों और परिणामों का विवेचन न कर हम यह कहना चाहते हैं कि इस प्रवृत्ति से पारस्परिक सहयोग नष्ट हो कर फूट फैल जाती है। इसका हर-हालत में त्याग करना चाहिये। अभी हाल ही में कलकत्ता की बसंती काटन मिल्स लिमिटेड के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री सुबोध मित्र ने श्रीयुत् सरदारसिंहजी महनोत, जिनका चित्र और परिचय इसी अंक में अन्यत्र छपा है, को मिलका जनरल मैनेजर नियत कर अन्य बंगालियों के सामने एक अच्छा आदर्श उपस्थित किया है। मनुष्य को केवल जाति, प्रान्त, धन या सिफारिश से न पहचान कर उसकी योग्यता से पहचानना चाहिये। हम श्री सुबोध मित्र के इस कार्य की हृदय से प्रशंसा करते हैं और अन्य बंगाली भाइयों और हमारे समाज के व्यक्तियों से भी प्रार्थना करते हैं कि वे इस कार्य का अनुकरण कर प्रान्तीयता को अपने पास न फटकने दें।

व्यापार-चर्चा

कलकत्ता में कम्पनियों की बाढ़ः—

इधर कुछ दिनों से कलकत्ता में कम्पनियों की एक बाढ़ सी आ गई है। हाल ही में कई नई कम्पनियां खुली हैं कलकत्ता के कम्पनी-जगत् में एक युग-परिवर्तन सा हो गया है। बिड़ला बन्धुओं के तत्त्वावधान में 'रूबी फायर इंश्योरेन्स' की स्थापना हुई है। इन्हीं के प्रबन्ध में 'दी ओरियंट पेपर मिल्स' और मेसर्स लोयलका के प्रबन्ध में 'सेफ कस्टडी' के भी शेयर बिक चुके हैं। 'ओरियंट पेपर मिल्स' के शेयरों की मांग आशा से अधिक रही। इसीलिये सुना जाता है कि बिड़ला बन्धु और एक दूसरा पेपर मिल खोलने की योजना में लगे है। यह भी जाना गया है कि बिड़ला बन्धु

'साइकल मेन्यूफेक्चर', 'सिमेण्ट मिल' और 'बेकुलाइड का कारखाना' आदि उद्योगों में भी हाथ डालेंगे। इधर कुछ दिनों से जबसे श्री रामकृष्णजी डालमिया ने 'भारत इंश्योरेन्स कम्पनी' का काम अपने हाथ में लिया है, वह कम्पनी प्रगति की ओर सरपट दौड़ लगा रही है। उसकी कई नई शाखायें खोली जा चुकी हैं। श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान के तत्वावधान में आशा है कि यह कम्पनी बहुत उन्नति करेगी। कलकत्ते के बाजोरिया बंधु भी एक पेपर मिल खोल रहे हैं, ऐसा जाना गया है। यह भी मालूम हुआ है कि श्री अमृतलाल ओझा भी एक 'सेफ कस्टडी' स्थापित कर रहे हैं। 'नाहटा एण्ड कम्पनी' के प्रबन्ध में एक इण्डस्ट्रियल लाइफ इंश्योरेन्स कम्पनी की भी स्थापना हुई है। हमें यह देख कर अति हर्ष है कि अब इतनी देर से हमारे समाज का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ है। इन सभी नई कम्पनियों के खुलने से कलकत्ता के शेयर मारकेट में भी एक हलचल सी मच गई है। हमें पेपर मिलों का भविष्य बड़ा अच्छा दिखाई देता है, क्योंकि अभी इस उद्योग के लिये भारत में बहुत गुन्जाइश है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत शीघ्र चीनी की मिलों की तरह कागज की मिलें भी हमारे देश में बढ़ जांयगी। हम हमारे समाज के धनिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर उन्हें इस धंधे में कूदने को उत्साहित करते हैं।

व्यापारिक प्रतियोगिता:—

अर्थशास्त्रों में लिखा है कि व्यापारिक प्रतियोगिता (Competition) बड़ी अच्छी और आवश्यक वस्तु है। हम उनके इस कथन से सहमत होते हुए भी किसी हद के बाद व्यापारिक प्रतियोगिता को केवल बुरा ही नहीं घातक समझते हैं। सत्य के आधार पर अगर यह हो तो हमें कोई उज्र नहीं है, पर केवल स्वार्थ के वशीभूत होकर और एक दूसरे को नीचा दिखाने की भावना को लेकर किसी भी अनुचित उपाय से प्रतियोगिता करना बहुत बुरा है। बीमा व्यवसाय, सूत की और चीनी की मिलों में इसी अनुचित प्रतियोगिता ने, जो केवल परस्पर तक ही सीमित है, घर कर लिया है। इस समय हमारे देश का सारा प्रमुख व्यवसाय विदेशियों के कब्जे में है। ऐसी हालत में आपस ही में प्रतियोगिता करना कितना बुरा होगा, यह स्पष्ट है। इस समय तो हमें चाहिये कि सब मिल कर विदेशियों के मुकाबले खड़े हों और भारत के व्यापार से उनके अनुचित प्रभाव को हटाने की कोशिश करें। कागज की मिलों का भविष्य तो हमें अच्छा दिखता है, पर अगर सबने सहयोग रखा तो। अगर उनमें भी चीनी आदि की तरह प्रतियोगिता धंस गई तो फिर जैसा चाहिये वैसा सुन्दर परिणाम न होगा।

हमारे इतना कहने का यह मतलब नहीं है कि कोई व्यापारिक प्रतियोगिता करे ही नहीं। नहीं, प्रतियोगिता तो व्यापार को बढ़ाने वाली, और देश की स्मृद्धि सूचक होती है। पर उचित होनी चाहिये, न कि घातक। विदेशी व्यापारियों को देख कर हमें यह सबक सीखना चाहिये।

सिनेमा व्यवसाय:—

सिनेमा व्यवसाय आधुनिक संसार का एक उन्नत और आवश्यक व्यवसाय है। इसकी उपयोगिता और प्रगति के बाबत लेख हम एक से अधिक बार इस पत्र में प्रकाशित कर चुके हैं। भारत का सिनेमा व्यवसाय भी उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है, पर संसार के अन्य प्रगतिशील देशों के आगे अभी भारतीय प्रगति नगण्य है। यहां अभी इस व्यवसाय की बहुत

अधिक गुञ्जाइश है। पर हमारे समाज ने अभी इस ओर आंख उठा कर भी नहीं देखा है। ध्यान देने की बात तो दूर वे इस धंधे को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन उनकी यह उपेक्षा भ्रमात्मक है। वे अपने ही सहयोगी अग्रवाल समाज की ओर आंख उठा कर देखेंगे तो, पता लगेगा कि इस धंधे से किस प्रकार फायदा उठाया जा सकता है ? अभी भारतीय सिनेमाओं में और विशेषकर हिन्दी चित्रपटों में उच्च कोटि की फिल्मों की बहुत अधिक आवश्यकता है। अगर कोई अच्छी, सुन्दर शिक्षाप्रद और साथ ही मनोरंजक फिल्में तैयार करे तो उसे बहुत फायदा हो सकता है। प्रभात और न्यू थियेटर्स की ओर देखने से इस बात को सत्यता आपसे आप प्रकट हो जायगी। प्रभात कंपनी वास्तव में बहुत श्रेष्ठ फिल्में तैयार करती है। जल्द ही उसका एक फिल्म 'अमर ज्योति' कलकत्ते में आने वाली है। क्या हम आशा करें कि हमारे समाज का ध्यान इस धंधे की ओर भी जायगा ?

* * * *

उस दिन अमृत बाजार पत्रिका में मि० डोसानी ने लिखा था कि आज तक जितने भी फिल्म-व्यवसायी क्षेत्र में आये हैं, वे व्यवसायिक दृष्टिकोण को सामने रखकर ही आये हैं, शिक्षा के दृष्टिकोण को सामने रख कर नहीं, क्योंकि अगर वे शिक्षा के दृष्टिकोण को सामने रख कर मैदान में आते तो शायद सफल भी नहीं होते। लेकिन मि० डोसानी शायद इस जगह पक्षपातपूर्ण दृष्टि से काम ले रहे हैं। यह बात तो सर्व-सम्मत है हो कि फिल्मों की उपयोगिता शिक्षा के लिये बहुत है। मि० डोसानी जोर लगा कर यह बात केवल उस हालत में कह सकते थे, जब कुछ व्यवसायी शिक्षा के दृष्टिकोण को सामने रख कर आये होते और असफल रहते। हमारी राय में तो अगर कोई फिल्म व्यवसायी सच्ची लगन से इस क्षेत्र में आगे आता तो अवश्य सफल होता। प्रभात फिल्म कम्पनी की 'महात्मा' नामक फिल्म वास्तव में शिक्षाप्रद है फिर चाहे वह किसी भी दृष्टिकोण से क्यों न तैयार की गई हो। हम यह बात भी जोर देकर कह सकते हैं कि 'महात्मा' व्यवसायिक दृष्टि से भी सफल ही हुआ है। इसी प्रकार अमृत-मन्थन' और न्यू थियेटर्स का 'चण्डीदास' आदि भी शिक्षा और व्यवसायिक दोनों ही दृष्टियों से सफल हुए हैं। शिक्षाप्रद फिल्मों को भी खासा मनोरञ्जक और रसीली बनाया जा सकता है, चाहिये केवल वैसा करने की सच्ची लगन और योग्यता।

व्यापार में विज्ञापन की उपयोगिता:—

इस बात को मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती कि मारवाड़ी समाज संसार की प्रमुख व्यापारी जातियों में है। लेकिन वह आधुनिक प्रगति के साथ कदम उठा कर चलना नहीं जानता। उसने अभीतक यह नहीं सीखा है कि आधुनिक व्यापारिक जगत् में विज्ञापन का कौन सा स्थान है। आधुनिक व्यापार की सफलता अधिकांश में विज्ञापन पर ही अवलम्बित है। बिना विज्ञापन के किसी वस्तु विशेष के व्यापार की कदर नहीं। विज्ञापन की आवश्यकता इतनी अधिक महत्व-पूर्ण हो उठी है कि इस जमाने में विज्ञापन-बाजी भी एक अत्यन्त उत्कृष्ट कला हो गई है। किसी भी विदेशी पत्र को उठा कर देखिये और विज्ञापन कला का सच्चा नमूना देखने को मिलेगा। भारत से बाहर कदम रखिये और विज्ञापन का महत्व समझ में आ जायगा। हमारे देश ने और खास कर हमारे समाज

ने अभी तक इसका महत्व नहीं समझा है। किसी भी बात या वस्तु के लिये लोगों पर प्रदर्शन या लेखन या वक्तव्य द्वारा आकर्षण डालना ही विज्ञापन है। है तो घर की ही बात, पर अत्यन्त महत्वपूर्ण और हमारे समाज की विज्ञापन की ओर से उदासीनता का एक खासा नमूना समझ कर ही हम उसका यहां ज्यों का त्यों उल्लेख कर रहे हैं। हमने हमारे समाज के एक व्यवसायिक सज्जन से 'ओसवाल नवयुवक' के लिये विज्ञापन मांगा। उन्होंने पूछा, कि "विज्ञापन देने से हमें क्या फायदा होगा।"

हमने उत्तर दिया, "पत्र को पढ़नेवाले आपकी दूकान और आपके व्यवसाय का पता पा जायंगे और आपकी बिक्री तथा साख बाजार में बढ़ जायगी। आपकी वस्तु की ओर लोग आकर्षित हो जायगे।"

उन्होंने हमें टालने के विचार से कहा, "अच्छा साहब, थोड़ी देर के लिये आपकी बात मान ली जाय, तो भी आप यह किस तरह कह सकते हैं कि 'ओसवाल नवयुवक' जो केवल ओसवालों में ही जाता है, हमारी बिक्री बढ़ाने मे समर्थ होगा।"

हमने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "लीजिये, अब आप व्यक्तिगत बात ले आये। यह तो आप मानते हैं न कि 'नवयुवक' ओसवाल समाज का एक मात्र मासिक पत्र है? हमारे समाज के सभी व्यक्ति इसके अंक की अधीरता से प्रतीक्षा करते रहते हैं। दूसरे पत्रों के लिये जहां समाज का दायरा और पाठकों की संख्या निश्चित नहीं, वहां 'नवयुवक' का दायरा और पाठक निश्चित हैं। फिर यह आप ही का पत्र है। पाठक भी आप ही के हैं। अब विचारिये कि इसमें विज्ञापन देने से जो फायदा आपको होगा, वह दूसरे पत्र में देने से हो सकता है?"

वे हंस कर बोले, "लेकिन साहब, हमारा और हमारे पाठक होने का यह मतलब कैसे हो सकता है कि वे हमारी वस्तु ही खरीदेंगे। अगर हम अन्य पत्रों में विज्ञापन देंगे तो सभी समाजों के थोड़े-थोड़े आदमी तो हमारी खबर पाही जायंगे।"

हमने भी हंस कर उत्तर दिया, "लेकिन 'थोड़े-थोड़े सभी' की अपेक्षा 'एक पूरा' ज्यादा अच्छा है। ओसवाल समाज में बड़े-बड़े व्यवसायिक भरे हैं। इस समाज में अगर आपका विज्ञापन काम कर गया तो फिर आप को दूसरे समाजों का मुंह देखने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी।"

उन्होंने लापरवाही से कहा, "लेकिन आप हमें यह विश्वास कैसे दिला सकते हैं कि 'नवयुवक' ओसवाल समाज द्वारा पढ़ा जाता है।"

हमने गम्भीर भाव से कहा, 'आपही निष्पक्षपात भाव से कहिये कि आप 'नवयुवक' को पढ़ने के लिये लालायित रहते हैं या नहीं?"

उन्होंने जैसे हार कर कहा, "हां साहब इस बार इसकी सजावट एवं सामग्री देख कर यह बात तो मंजूर करनी ही पड़ेगी।"

हमने विजय की सांस लेकर कहा, "बस, इसीसे प्रकट हो जाता है कि आपही की तरह हमारे समाज के सभी व्यक्ति इसको पढ़ते हैं।"

उन्होंने जैसे गला छुड़ाते हुए कहा, "अच्छा साहब, ले आइये आधे पेज का विज्ञापन।"

हम विज्ञापन तो ले आये पर इस बात का हमें सन्देह ही रहा कि हम उन्हें विज्ञापन का महत्व पूरी तौर से समझा सके। समाज के व्यवसाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे आधुनिक अप-टू-डेट तरीकों से व्यापार करना सीखें।

वर्ष ७, संख्या ६

अक्टूबर १९३६

यदि अपने में दोष है और कोई निन्दा करता है तो उसका उपकार मानना चाहिये, इसलिये कि वह अपने दोष का स्मरण कराता है। यदि दोष नहीं है और कोई निंदा करता है तो उसपर दया करनी चाहिये, इसलिये कि वह बिचारा निरर्थक कर्मबन्धन—पाप करता है—अपनी जीभ से हमारा मल साफ करता है।

—श्री विजयधर्मसूरि।

वार्षिक मूल्य ३)

एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— { गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०.

अखिल ओसवाल-समाज
के
एक मात्र मासिक पत्र
'ओसवाल नवयुवक'
के
ग्राहक बनिये
(उच्च कोटि के साहित्यिक, व्यवसायिक
और सामाजिक लेखों तथा सुन्दर
चित्रों से युक्त पत्र, वार्षिक
मूल्य केवल ३) मात्र)

लेख-सूची

[अक्टूबर १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१--'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२-- पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३--पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४--पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़कर लिखे होने चाहिएँ। लेख साफ-साफ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५--लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६--अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७--लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन--प्रकाशन, पता--परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक--'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८--यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैः--

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अंक के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	४०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	१२)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक--ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

जैन युवक परिषद् अहमदाबाद के द्वितीय अधिवेशन के सभापति

श्री परमानन्द कुंवरजी कापड़िया

सभापति के आसन से दिये हुये आपके भाषण ने समूचे जैन जगत में एक खासा हलचल मचा दी है। आपके विचार उच्च, गम्भीर और क्रान्तिकारी हैं।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] अक्टूबर १९३६ [संख्या ६

त्याग

[श्री भँवरमल सिंघी]

त्यागी, तूने त्याग की साधना से जीवन को बहुत ऊँचा उठा लिया है। वैभव की मदिरा पीकर तू जो प्रतिष्ठा नहीं पा सका—वह आज उस नशे के छोड़ देने पर—त्याग करने पर मिली है। यह तेरे त्याग की पूजा है, तू उसे पूजा के योग्य रख।

यह तेरे हृदय का प्रकाश मंडल है जिसमें भावना का चित्र प्रतिबिम्बित होकर हमारी उत्सुकता की प्यास बुझाता है। तू इस चित्र की रक्षा कर।

तेरी इस भावना में उमड़ पड़ने वाला उल्लास है या केवल विवशता? तेरे इस त्याग के मूल में दूसरों के पास कम होकर तेरे पास अधिक होने की ग्लानि है या केवल त्यागी बनने की हविस? दृढ़ता से विचार कर तू इसका उत्तर ढूंढ।

त्याग की सराहना करना अ-त्यागी का कर्तव्य है—पर तू उस पर रीझता क्यों है? क्या तू ने इस पूजा के लिये त्याग किया है? त्यागी, एक बार अपने हृदय को सम्भाल!

त्याग का भी एक नशा होता है—जो त्यागी को दबा बैठता है। त्याग की असली साधना तो इस नशे को रोक रखने में है। एक चित्त रह कर देख, कहीं एक के त्याग से दूसरी वस्तु का लगाव न हो जाय। तू इस भावना को निर्मल, निरस रख। कवि के इन शब्दों को भूल न जा—

'त्याग, त्याग, क्या करता है, गर्व त्याग का त्याग।' अगर तुझे गर्व है तो तू साधक नहीं त्याग का भिखारी है। त्यागी, तू अपने हृदय को संभाल।

राजस्थानी वार्ता

[श्रीरघुनाथप्रसाद सिंहानिया, विशारद, एम० आर० ए० एस०]

साहित्य प्रत्येक प्रगतिशील जाति की कसौटी है। साहित्य से उस जाति के गुण-दोषों, उन्नति-अवनति आदि बातों का पता लग जाता है। साहित्य में जाति-निर्माण की शक्ति है। इतना ही नहीं, उसमें वह शक्ति है जो एक राष्ट्र को नीचे से उठाकर ऊपर ले जा सकती है और ऊपर से उठाकर खंदक में गिरा सकती है।

रूस के साहित्यकों ने रूस के उत्थान में जो हाथ बँटाया वह उससे कहीं अधिक मूल्यवान है जो वहां के वीर सैनिकों ने किया। रूसी साहित्य ही वह वस्तु थी जिसने रूसियों में आत्म-सम्मान का भाव जागृत किया—उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराया कर्त्तव्य-पथ बतलाया। यदि रूसी साहित्य को इस साँचे में नहीं ढाला जाता वहां की क्रान्ति सैकड़ों वर्षों में भी सफल नहीं हो पाती।

इसी प्रकार राजस्थान के वीरों को भी उसके साहित्य ने ही इतना महान बनाया था। चारणों की एक-एक कविता में वीरता-प्रवाहिनी शक्ति भरी थी—उसने कायरों को वीर बनाया, कुपथ-गामियों को सन्मार्ग दिखलाया देश के गौरव और मान की रक्षा की। साथ ही साथ वीरों की गाथाओं का अपनी कविताओं में चित्रण कर भावी सन्तानों के हृदय में भी ओजस्वी भाव भरे। यही कारण था कि वहां सहस्रों वर्षों तक एक से एक ऐसे वीर होते रहे जिनके लिये प्राणों का निछावर करना कोई बड़ी बात न थी—जो अपने शरीर से बढ़ कर आत्म-सम्मान को समझते थे।

इतना ही नहीं, वहां के साहित्य ने स्त्रीत्व की कोमल भावनाओं में भी वीरत्व प्रवाहित कर दिया। वीर-मातायें, वीर-पत्नियां और वीर-कन्याओं की हुंकारें वहां के घरों से सुनाई पड़ी। एक-एक नारी के हृदय में वहां के साहित्य ने ऐसी भावनायें भर दी कि वह वीर पुत्र, वीर पति और वीर भाई की ही कामना किया करती थी। एक वीर माता और वीर पत्नी कहती है—

> सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाह।
> दूध लजाणो पूत सम, बलय न जांणै नाह॥

अर्थात् हे सखी, मैं सब कुछ सहन कर सकती हूं सारे दुःखों का स्वागत कर सकती हूं पर दो बातें नहीं सह सकतीं—वे मेरे हृदय को जला डालती हैं—एक दूध की लाज को गँवा देनेवाला पुत्र और दूसरे चूड़ियों को न पहचाननेवाला पति।

एक वीर पत्नी अपनी सखी से कहती है—

> सहियां मो पी बाणियां, लजी बिजण करेय।
> मांण मुहंगो बेचणो, जीव सुहंगो देय॥

अर्थात् हे सखी, मेरा प्रियतम बनिया है—वह

लाभ का ही व्यापार करता है—'सम्मान' को वह मंहगा बेचता है और प्राण सस्ते में दे डालता है।

ऐसे ही भाव राजस्थानी साहित्य ने वहां के आबाल-वृद्ध-बनिता के हृदय में कूट-कूट कर भर दिये थे।

राजस्थानी भाषा का साहित्य बहुत विशाल है। पर खोज और अध्ययन के अभाव में वह इधर-उधर बिखरा हुआ पड़ा है— 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' के विद्वान् संपादक जी० ए० ग्रियर्सन ने राजस्थानी साहित्य के संबन्ध में लिखा है—

"प्राचीन मारवाड़ी में जिसको डिंगल भी कहते हैं अनेकों काव्य पाये जाते हैं। परन्तु उनका अब तक अध्ययन नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त राजस्थानी में ऐसा साहित्य और भी है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है परन्तु उसके संबन्ध में भी बहुत कम जानकारी है। मैं जेम्स टाड के द्वारा संग्रहित ऐतिहासिक गाथाओं की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं, जो सबसे प्रथम ऐसे यूरोपियन थे, जिन्होंने उस साहित्य के कुछ अश का पुनरुद्धार किया। किसी एक व्यक्ति के लिये इस कार्य को पूर्ण कर लेना निस्सन्देह बड़ा ही कठिन है- जब तक कि यह कार्य कुछ संयुक्त अध्ययनशील व्यक्तियों द्वारा सगठित रूप से हाथ में न लिया जाय। ऐसी दशा में मुझे भय है कि राजस्थान के इतिहास प्रेमियों के काम आने के पूर्व यह साहित्य कहीं दीमकों और कीड़ियों का शिकार न बन जाय।

वीर गाथाओं के अतिरिक्त राजस्थानी में धार्मिक साहित्य की भी भरमार है—अकेले दादूपन्थी संप्रदाय के ही लाखों की तादाद में पद्य पाये जाते हैं।"

राजस्थानी में दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध होता है। पहला है मौखिक और दूसरा है लिखित। मौखिक साहित्य को छोड़ कर जब लिखित साहित्य की ओर देखा जाता है तो वह दो प्रकार का पाया जाता है। एक पद्यात्मक और दूसरा गद्यात्मक। दोनों प्रकार के साहित्यों का निर्माण एक ही सिद्धान्त को लेकर हुआ है।

पद्य ग्रन्थों की अपेक्षा गद्य ग्रन्थों में राजस्थान की प्राचीन संस्कृति का बहुत अधिक परिचय मिलता है। राजस्थानी साहित्य में शौर्य, सच्चरित्रता और स्वामी-भक्ति आदि गुणों का विशेष प्रकार से चित्रण किया गया है। जो महापुरुष इन गुणों में से किसी में सम्पन्न हुआ करते थे उनका जीवन-चरित्र 'बातां' के नाम से संगृहीत किया जाता था। ये बातें कल्पित नहीं बल्कि ऐतिहासिक भित्ति पर चित्रित की जाती थी। प्राचीन ख्यातों से एकत्र कर इन बातों में स्थान-स्थान पर काव्य-रचना द्वारा लालित्य लाया जाता था। राजस्थानी में इसी साहित्य को 'बातें' कह कर पुकारा गया है। आजकल की भाषा में इनको उपन्यास कहा जा सकता है और इतिहास-संसार में इनको ऐतिह्य (Legends) कहा जाता है। इन बातों में जितनी सामग्री पुरुषों के लिये प्राप्त होती है उतनी ही स्त्रियों के लिये भी मिलती है। ऐसी एक नहीं सैंकड़ों की संख्या में 'बातें' पाई जाती है, जिनसे इस देश में प्रचलित उस समय के पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन, उत्सवों की शैलियों, स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक व्यवहार और विवाह की भिन्न-भिन्न रीतियों आदि पर पूरा प्रकाश पड़ता है। यह बहुमूल्य साहित्य किसी समय राजस्थान के घर-घर में मिलता था। माताएँ बचपन से ही अपनी संतानों को इन 'बातों' द्वारा शिक्षायें दिया करती थीं - जिसका आगे जाकर उनके चरित्र पर मनोवांछित

प्रभाव पड़ता था। समय के उलट-फेर से अब यह साहित्य बहुत कुछ नष्ट हो चुका। जहां हजारों की संख्या में ऐसी 'बातें' उपलब्ध होती थीं वहां आज बहुत कुछ खोज करने पर बिखरी हुई कुछ 'बातें' कठिनता से उपलब्ध होती हैं। 'राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी' ने जबसे इस दिशा में कार्य आरम्भ किया है तब से उसके पास राजस्थानी साहित्य का काफी संग्रह हो गया है। उसके खोज करनेवाले ठाकुर भगवतीप्रसाद सिंहजी बीसेन ने जहां अन्य विषयों का अन्वेषण किया है—वहां उन्होंने 'बातों' का भी एक अच्छा संग्रह किया है। आज उसी संग्रह से हम 'माँम गडूके री बात' यहां देते हैं। यह मौखिक रूप में संग्रह की गई है। ठाकुर साहब ने इसको सुन कर लिपिबद्ध किया है। हम इसे ज्यों का त्यों यहां देते हैं—

माँमगडूकेरी बात

दिली ऊपर फिरोजसा पातसा राज करतो हो, सो बड़े तौर सूं नै नैक नामी सू राज करतो हो। सो अेक दिनां री बात है सो अेक बिलायत सूं पातसा तरवार मेली जिण री कीमत बडी ही। सो पातसा फिरोजसा लै लीवी नै अेक दिन भाठा मैं वाही, जिणां सूं तरवार तूट गई। जरां उजीर अरज कीनी कै इसी तरवार आप तोड़ दीनी सो बडी भूल कीवी। जरां पातसा कयो कै सांची बात है, पिण म्हारै सांमी तरवार संभावै जिसो आज दिन कोई दीसै नहीं। जिण सूं जांणा हां कै तरवारां मंच नै कांई करां।

इण तरै कयो जरां उजीर अरज कीनी कै झगडो तो मोटी बात है पिण काबा गजनी रो पातसाह है जिण कनां सूं आप राज श्री लिखाय मंगावो तो आप जिसो कोई नहीं छै। जद पातसाह भला-भला आदमियां नै मेलिया, पिण लिखी नहीं। जरां दूजी बार पातसाह रा मरजीदांन मांमगडूको नै मैंघी भगतण नै मिसरी खान नाई चाकर- तीनाई जणा वड़ा अकलमंद था— जिणां नैं कयो कै "जोर सू तो आपां नै राजश्री लिखै नहीं नै थे पातसाह नै राजी करनैं लिखाय लावो"। इण तरै कय नैं बहीर कीना। सो मैंघी भगतण मांय तो गावण रो इलम घणो आछो थो नै मिसरी खांन में बात करण रो इलम आछो थो नै मांमगडूको कांम करना आछो थो। सो तीनांई जणां नैं विदा कीना। सो जातां जातां काबा गजनी सयर गया। पातसाह नै अरज हुई कै "दिली सूं भला आदमी आया छै"। पातसाह हुकम देर डेरो करायौ, मुजरो हुवो रोजीनां दरबार मांहि जावण लाग्यो। पातसाह इणां सूं घणो खुसी हुवो। दोनूं जणां री बातां सुनै, मैंघी रा गावणा सूं राजी हुवो।

अेक दिन पातसाह नसो कीनोड़ो खुसी में बैठो थो, नै मैंघी गाय रही थी, जरां राजी हुय नै फुरमायो कै थे थारी जीब सू मांगो जकोई आजीवका देवां। जरां इणां तीनांई जणां अरज कीवी कै 'आप राजी हुवा तो म्हारै पातसाह नै राजश्री लिख देवो"। जरां पातसाह लिख दीनी नैं पछै किताराईक दिनां रै बाद सीख कीनी। जरां पातसाह कयो कै "थे तीनू जणां मती जावो, अेक जणो जावो अर दोय जणां अठै हाजर रैवो"। जरां मिसरीखां नै मैंघी भगतण तो हाजर रया नैं मामगडूका नै दिली मेलियो।

दिली पूंच मांमगडूकै सारा समंचार कया नै खलीतो दीनो। पातसाह फिरोजसा घणो राजी हुवो। पछै पातसाह कयो कै "म्हारे साहजादी है सो काबा गजनी रा पातसाह रा साहजादा सूं सनमंध कर आवो"। जरां मांमगडूको पाछो बलियो नैं सनमंध कीनो। पछै

बड़ी भलूमी सूं व्याव कीनो नैं डायजो तो मोकलो दीनो सो ले लीनो नै मांमगड़कै नै मिसरीखां नें मैंघी भगतण नै मांग नै डायजै में उरा लीना। सो उठे पातसाह री मरजी मुजब रैवो करै, मोकली ईजत बधाई। मिसरीखां नें तो आजीवका दे ने रात दिन हाजर राखतो। मैंघी नै गवाणतो नैं मांमगड़कै नें उजीरायत रो काम सूंप दीनो। इण तरै केई वरस निकलिया। पछे काबा गजनी रो पातसाह तो मर गयो, सायजादो मालक हुवो। जिण बगत मांमगड़कै दगो कर नै पातसाह नें मार नांखियो, मिसरीखां नें मार नांखियो, मैंघी भगतण नें मार नांखी नें आप राज रो मालक हुय गयो।

जिण बगत में पातसाह री हुरम, दिली रै पातसाह री बेटी थी सीयांणी नांम थो, सो दोय छोटा टाबरां था जिणां नें लै नें निकल गई, सो दिली रै मारग कांनी वहीर हुई, सो दिनां लागां दिली में पूगी नें हवेली भाड़े लीनी नें चाकर सीपाई सारा नौकर राखिया। सारी जीनत बांध दीनी, क्रोड़ां रुपिया रो असबाब कने थो सो सारी बात बणाय दीवी। सायजादा छोटा हा सो पढ़ावणा सरू कीनां नें पछै सायजादा मोटा हुय नै मांय आय नें सीयांणी नें कयो कै अमां, त म्हारै वास्तै दोय कबांणा मंगाय देवै तो म्हे सीखा। जरा कबणीगर ने बुलाय भलांमण दे नै आछी कबांणां बणाई, सो लाय नै दिखाई, तो हाथ में लै नै खेंचण लागा सो दोनूं तूट गी नै कबणीगर बड़ो सोच कीनो। जरां उणांरा रुपिया दिराय दीना नै कयो कै आछी बणाय लावो। जरां दूजी कबांणां बणाय ले गयो, सो खांचतां तूट गी। जरां उण लुहार रै बाप नै जाय नें कयो कै "बाबा, कबांणां तीन बार लोहरी बणाय लै गयो सो तूट जावै इसा जोधार छै। जरां उण नै कयो कै ओ दोनूं भाई मने बताव तो हूं कबाणां वणाय देवां। जरां उठे आय नै देखिया सो बडो डील हो, पराक्रमी हा। जरां उण कारीगर देख नै कई कै दूजी कवाणां तो हाथ ईंणा रै चढै नहीं नें आगे पातसाह रो जमाई काबा गजनी रो अठे आया था जिणा री कबांणा रै सांतरो करणी मने संपी थी सो कबांणा त्यार कर नें ला सूं। इण तरै कय नें कबाणा लाय दीनी। सो ईणां रै हाथ चढ़ गी। कारण इणां रै बाप रै हाथ री ज हूती। सो हिवै रोजीनां तीर दबावै सो बड़ो जोर-सोर सं तीर कठेई रुकै नहीं। इणां रा नाम बड़ोड़ा रो सायब अनें छोटोड़ा रो रायब हा।

हिवै सारी दिली में स्याय हुय गया कै बड़ा पराक्रमी छै, सो अेक दिन जमना कनै सारा टाबरां भेला रमता हा, जठै पातसाह रो हाथी मस्त हुवोड़ो आवतो हो नें म.वत हेलो कीनो "नास जाजो नास जाजो, हाथी म्हारै बस में नहीं छै"। सो दूजा तो नास गया नें अे दोनूं भाई बैठा रया नै हाथी नजीक आयो जरां बडोड़ो सायब बोलियो कै "रायब इण हाथी नें समभाय दे।" जरां तीर चलाया सो माथो फोड़ नें उभो सारै डील में नीसर गयो। हाथी मर गयो।

पातसाह नै मालम हुई कै दोय छोकरा छै सो बड़ा पराक्रमी छै। हाथी मार नांखियो छै। जरां पातसाह फुरमायो कै "उणां नै पकड़ लावो"। जरां आदमी पचास-साठ गया। जिणा नै तो मार नांखिया नें पाछी मालम हुई बड़ा पराक्रमी छै, पकड़ीजै नहीं। जरां ईकांरी पलटण नें हुकम हुवो सो हजार ईकां संभनै माथै गया सो दोनूं भायां कबांणा संभाय नें दस-बीसां नें मारिया। सो सारा डरे गया नें कयो कै आप फुरमावो जीऊं करां। जरां कयो कै चालो पातसाह नें पकड़ लेवां। इण तरै विचार नें पाछा

धीरिया सो लालकोट मांही कुण ही आडो फिरियो नहीं। थेट जाय नै पातसाह नै पकड़ लीनो नै बडोड़ो भाई गादी ऊपर बैठ गयो। कुण ई नैड़ो जावै नहीं नै आ बात ईणां री मा कनै जाय नै लोकां कही सो पींजस में बैठ नै नाठी सो मांय आय नै बेटां नै ललकार नै पातसाह नै तो छुडायो नै आ पातसाह सूं मिली नै कयो, "हूं तो आप री बेटी हूं नै अे आपरा दोहीतरा छे, मांमगडूकै थारे जमाई नै मार नांखियो नै हूं हेकली इणां नै ले नै नास अठे आई नै इणां नै मोटा कीना।" जरां पातसाह कयो कै "बेटी, इतो बीखो काढियो अर तू मनै मालम कोनी कीनी।" इण तरै मिल नै आ तौ मांय जीनाना में दाखल हुई नै अे दोनूं था सो म्हैलां मांही डेरो करायो।

राजी सूं रैणो सरू कीनो। पातसाह कनै दिन ऊगां आवै नै सलाम कर नै बैस जावै। रोजीनां सैल-सिकारां करबो करै। एक दिन किणी लुगाई पाणी रो कलस तांबरो लीनां आवती जिण रै तीर री दीनी, सो बेज हुय गयो। जणां उंण कयौ कै थू इसो बलवंत हो तो थारे बाप रो बैर लेवै क्यूं नी। म्हां नै दुख क्य देवै छै। आ बात सुण नै मांय मीयाणी कने जाय नै कयो कै म्हारो बाप कुण छै, किण मारियो छै, कांई बात छै सो सारी हकीकत सुणाय नै मनै थूं कय, नहीं तो म्हें मर जासां। जरां सारी हकीकत सुणाई। जरां दोनूं भाई सभल नै काबा गजनी कांनी बहीर हुवा। पातसाह कयो कै बेटा, थांरै भेली फौज देवां सो ले जावो। जरा उणां कयो कै म्है तो ले जावां नहीं इकला जास्यां। जरां दोनूं भाई घोड़ा चढ नै बहीर हुय गया, लारै पातसाह री फोज बहीर हुई।

दोनूं भाई काबा गजनी पूगा। मांमगडूका नै ठा पड़ियो कै राज रा धणी आया। जरां सांम्हो आयो, पगां पड़ियो, राजगादी ऊपर सायब नै बैठांणियो नै आपरी बेटी थी जिकी सायब नै परणाई। जरां सायब कयो कै आप मांमगडूका नै मारण देवो नहीं तो आप सूं खता करसी। पिण मांनी नहीं। हिबै तो पाछा राजरा धणी हुय गया, खुसी करबो करै। अेक दिन सायब कयो कै मांमगडूका नै तो मारण देवो नहीं तौ घणा पछतावसो। मोकलो कह्यो पिण मांनियो नहीं। जरां सायब बेराजी हुय नै उठा सूं दिली नै बहीर हुवो तो बैनां बगत जिनांना में जाय नै सायब री हुरम मांमगडूकै री बेटी थी जिण कनै जाय नै कयो कै भाभी, पातसाह नै आपरै भरोसै छोड जावां हां। सो कोई तरां रो दगो नहीं हुवै जिसी सावचेती राखजो ले कांम पड़ै तो म्हारै कनै समचार बेगो दीजो। सो पीली घोड़ी पाणी पंथी है सो इण नै तुरन्त मेल दीजो। इण तरै भलांमण देनै दिली परो गयो। अठै इणां कनै पंचादी तीतर हो सो सगुण जोवण नै बुलातो सो बोलबो करतो जरां जांणतो कुसल खेम छै।

पछै अेक दिन उठै काबा गजनी मैं मांमगडूकै गोठ कीनी। पातसाह गोठ जीमण आयो। मांमगडूकै जीमण में जैर दीनो सो अचेत पड़ियो। जरां जिनाना में आपरी बेटी कनै पुगाय दीनो। सो बानैं देख समझी के म्हारा बाप ने जैर कीनो पिण खैर इंण नैं तो मेल मांही ओरी ही जठे सुवांण नै आप चौपड़ रमणी सरू कीनी नै उदासी तार भर नहीं दिखाई। उठै मांमगडूकै आप रै बेटै नूं कयो कै थूं जिनाना मांय जाय नै जाय देखां पातसाह जीवतो है कै मर गयो। जरां ओ मांय गयो नै चौपड़ रमता सुणिया जरां जांणियो खुसी छै। सो मांय गयो बेन कने। जरां बैन उठी सो उंण

नै मार नै पातसाह रे कने सुवांण दीनो अर फेर चौपड़ मांडी। पछे दूजा बेटा ने मेलियो सो उंण नै ई मार नांखियो। इंण तरै मांमगड़का रा बेटा पांच आया सो सारां नै मार नांखिया नै पातसाह कने सुवांण दीना, आडो दे दीनो नै रुको लिख नै घोड़ी रे गले बांध नै कयो कै दिली बेगी जावजै। रुकै में ओ दूहो लिख दीनोः-

दूहा

तोगो बोगो तमायडी, हाली अनै हमीर।
हेकण सायब कारणै, मारया पांचो बीर॥ १॥

अर्थात् तोगा, बोगा तमायड़ी, हाली और हमीर इन पांचों भाइयों को मैंने एक 'सायब' के वास्ते मार डाला है।

ओ दूहो लिख नै घोड़ी नैं बहीर कर दीनी नै तीतर बोलियो नहीं। जरां बडो सोच कीनो नै बोलियोः--

दूहा

उठ पचादी कैल कर, सेना दुख म देख।
जब लग ऊभो रायबो, लाखा गजण हेक॥ २॥

अर्थात् हे पंचादी, उठो, खेलो-कूदो, जब तक लाखों को गंजनेवाला रायब इस संसार में मौजूद है तब तक निराशमयी आंखों से न देखो।

ओ दूहो कयो, जरा तीतर बोलियो। पछै पाछो बलियो जितरै तो घोड़ी आवती देखी नै गले रो रुको दीठो। खोलियो नै बांच नै समझियो "सायब नै जैर हुवो।" मांय आय नै बडो सोच कीनो, कूंद हुवो। जरां इंण री मा ओ दूहो कयोः—

दूहा

रायब ऊठ कबांण ग्रह, मंछ मरोड़ म रोय।
मरदां मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय॥ ३॥

अर्थात्—हे रायब उठो, कमाण हाथमें लो, मूंछा पर ताव दो, रोवो मत। मरदों का अधिकार 'मरना' है रोना नहीं।

ओ दूहो सुण नै संभल नै घोड़ी चढ नै बहीर हुवो सो मारग बुवो जावै छे। उठी नै काबा गजनी में दीन ऊंगा इणां री बडारण पांणी नै गई सो सैर बारै दिली रे मारग माथै जाय ऊभी रही नै रोवण लागी नै बोली के इण मारग कोई दिली सूं आवेगा। इंण तरै ऊभी बाट जोवे है। जितरै घोड़ी आवती देखी जिण वगत रो दूहोः—

दूहा

नव सौ काबा गजनी, नव सौ कोट किंगूर।
पोंहती घोड़ी पीतली, पोह उगतै सूर॥ ४॥

ओ दूहो पढतो हो जितरै इंण बडारण कयो केः—

दूहा

जो तूं दीसै रायबो, (तो) घोडा बाग उठाय।
मामगडको मद पिवै, मर्की बाडी माय॥ ५॥

ओ दूहो सुण नै पाधरो बाग कांनी गयो सो मांमगड़को दारू पीतो थो, खुसी हुती थी। जिण वगत पूगो सो जठाई मार नांखियो नै पछै मेहलां में गयो सो पूछियो जरां सारी हकीकत इंण री भाभी सुणाई। पातसाह नैं पांच मांमगड़का रा बेटा मुवोड़ा था सो ताला खोल नै दिखाया। पातसाह जैर सूं मूवो थो नै रायब कने बींटी में चन्द्रकान्त मणी थी सो पातसाह न बारै लाय नै बींटी फेरी। जैर सारो उतर गयो। पातसाह खुसी होय नैं बैठा नै मांमगड़के रा बेटा नैं बारै गडाय दीना। पातसाह बडी खुसी कीनी नै उजीरायत रायब नै दीनी आप राज करवो लागो। पछै दिली सूं आप री मां नै बुलाय लीनी इण तरां सूं मांमगड़को दगा रो फल पायो।

कर्त्तव्य-विचार

[श्री कन्हैयालाल जैन, कस्तला]

नवयुवक !

नव-युवक ! कभी निज धर्म्म-विचार किया है ?
+ + + +
निज जननी का क्या कुछ कल्याण किया है ?
क्या 'जन्मभूमि' के हित बलिदान किया है ?
क्या मातृ जाति का अभ्युत्थान किया है ?
क्या स्वीय आत्म-गौरव सम्मान किया है ?
निज देश भेष का क्या उद्धार किया है ?
नवयुवक ! कभी निज धर्म्म-विचार किया है ?

माता !

माता ! क्या तुमने अपना कर्म्म किया है ?
+ + + +
क्या शिशुओं को वीरों का पाठ पढ़ाया ?
या 'लूलू आया' कह कर सदा डराया ?
राणा प्रताप का उनको नाम सुनाया ?
या देश द्रोहियों का ही चित्र दिखाया ?
क्या उनकी पूर्णोन्नति पर ध्यान दिया है ?
माता ! क्या तुमने अपना कर्म्म किया है ?

लेखक !

लेखक ! क्या तुमने स्वकर्त्तव्य पहिचाना ?
+ + + +
क्या देश जाति में जागृति ज्योति जगाई ?
क्या तिमिर निशा में प्रखर प्रभा प्रगटाई ?

क्या सुप्त जाति को ठोकर कभी लगाई ?
या सुना लोरियाँ केवल नींद बढ़ाई ?
गौरव-रक्षा हित क्या मरना है जाना ?
लेखक ! क्या तुमने स्वकर्त्तव्य पहिचाना ?

कवि !

कवि ! कहो कल्पना कहाँ उड़ी फिरती है ?
\+ + + +
क्या कभी वीर का गौरव-गान किया है ?
साड़ी पहने या नखशिख-ध्यान किया है ?
क्या नूतन उन्नति मन्त्र-प्रदान किया है ?
या बना-बना भड़वे निज पतन किया है ?
लख दीन, अश्रु की बिन्दु कभी गिरती है ?
कवि ! कहो कल्पना कहाँ उड़ी फिरती है ?

सम्पादक !

सम्पादक ! मम मुख छोटा बात बड़ी है।
\+ + + +
क्या नामधारियों पर ही श्रद्धा करते ?
या मौलिकता साहित्य-कोष में भरते ?
क्या नूतन कवि लेखक प्रकाश में लाते ?
या अन्य पत्र से कविता लेख चुराते ?
कहना ही पड़ता चाहे बात कड़ी है,
सम्पादक ! मम मुख छोटा बात बड़ी है।

महत्तियाण जाति

[श्री अगरचन्द नाहटा, श्री भवरलाल नाहटा]

['खण्डहर कहते हैं इमारत बुलन्द थी', ठीक यही बात हमारे जैन-धर्म के विषय में भी लागू है। उसका टूटा फूटा, इधर उधर बिखरा हुआ इतिहास उसकी महत्ता, उसकी प्राचीनता और उसकी सर्वाङ्गीणता का द्योतक है। इन्ही टूटे फूटे और बिखरे हुए कतिपय प्रमाणों को लेकर भी यह बेधड़क कहा जा सकता है कि जैन धर्म का प्राचीन इतिहास बहुत गौरवपूर्ण और सुनहला रहा है। जैन धर्म इतना प्राचीन है कि इसकी सत्ता में कई बड़े बड़े युग परिवर्त्तन हो गये हैं। कई जातियां बनीं और बिगड़ी, कई साम्राज्य स्थापित हुए और नष्ट हुए। जैनधर्म का इतिहास, उसके महान श्रावकों का, उसके प्रतिभाशाली आचार्यों का, उसके पवित्र तीर्थों का, उसके कलापूर्ण मन्दिरों का गौरवपूर्ण इतिहास छिन्न भिन्न दशा में किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज की सामग्री लिये पड़ा है। यदि उसकी खोज की जाय तो उसमें से देश, काल और स्थिति के अनुकूल बहुत महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकती है। एक विद्वान ने लिखा है कि इतिहास को बनानेवाले तो गये, किन्तु इस बने हुए इतिहास को इकट्ठे करनेवाले नहीं जागते, अपनी ही मिट्टी में अपने रत्न दबे हुए हैं, अपने ही पावों से वे कुचले जा रहे हैं। यह सत्य है, लेकिन सौभाग्य का विषय है कि हम में से कुछेक के हृदय में अपने देश के प्राचीन इतिहास तथा संस्कृति के प्रामाणिक अध्ययन में गहरे उतर कर शोध करने की वृत्ति उत्पन्न हो चुकी है। यह वृत्ति केवल प्रान्त और देश तक ही सीमित नहीं, बल्कि एकएक प्राचीन नगर की प्राचीनता, एकएक खण्डहर के इतिहास की खोज करने में भी लगाई जा रही है।

लेखक युगल भी इसी शोधक वृत्ति के युवक हैं। प्राचीन इतिहास के खोज करने की इन्हे बड़ी लगन है। इनकी पुस्तक 'युग प्रधान श्री जिनचन्द सूरि' इनकी इसी लगन का एक प्रशंसनीय प्रमाण है, आशा है प्रस्तुत लेख से पाठकों का मनोरञ्जन होने के साथ-साथ जैनधर्म की प्राचीनता और उसके विस्तार का भी उन्हें कुछ आभास मिलेगा। ---सम्पादक]

आर्य्यावर्त्त के प्राचीन इतिहास, भूगर्भ से संप्राप्त प्राचीन स्थापत्य एवं जैन साहित्य से यह भली भांति ज्ञात होता है कि किसी समय जैन धर्म केवल भारत-व्यापी ही नहीं किन्तु विदेशों में भी पालन किया जाता था। इस धर्म के अनुयाइयों की संख्या करोड़ों थी। बड़े-बड़े नृपति-गण इस महान धर्म के अनन्य भक्त–उपासक थे * जिससे इसका उत्कर्ष अधिकाधिक वृद्धिगत होता गया ‡, परन्तु ज्यों-ज्यों इसका सम्बन्ध उन प्रभावशाली राष्ट्र सञ्चालकों से शिथिल पड़ता गया त्यों त्यों इस पुनीत-धर्म की अवनत अवस्था विशेष दयनीय होने लगी।

* देखें, मुनिवर्य ज्ञानसुन्दरजी लिखित प्राचीन जैन इतिहास के ४ भाग

‡ उदाहरणार्थः—सम्प्रति और कुमारपाल का शासन काल ही पर्याप्त होगा। दक्षिण में तो जैन धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास वहां के नृपतियों के जैन धर्म ग्रहण और परित्याग पर ही निर्भर रहा है। देखें मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १४

इस धर्म को पालन करने में किसी भी जाति और व्यक्ति को प्रतिबन्ध नहीं था। ऊँच नीच का सम्बन्ध किसी की मौरूसी बात न हो कर गुणों से था। अतः क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य और क्या शूद्र, सभी वर्ण और जातियों-उपजातियों वाले मुमुक्षु इस धर्म के आदर्श झण्डे के नीचे आकर बेरोकटोक आत्म-कल्याण करते थे।

उस समय जैन धर्मानुयायी जातियों की संख्या हजारों पर थी पर काल चक्र से आज उनका नामोनिशान भी नहीं मिलता। कई जातियाँ तो विधर्मियों के साथ सङ्घर्ष से निःसत्त्व हो कर उनके उदर में समाविष्ट हो गईं; बहुत सी जातियाँ वर्त्तमान की प्रसिद्ध ओसवाल, पोरवाल, श्रीमालादि जैन जातियों में सम्मिलित हो चुकी हैं और कइयों को जैनाचार्यों के संसर्ग के अभाव में अपने पूर्वजों का प्रिय धर्म भी भुला देना पड़ा। पूर्व प्रान्तीय सराक जाति का नाम, जिसमें अब भी बहुत से जैन संस्कार विद्यमान हैं एवं जिसके व्यक्तियों की संख्या एक लाख के करीब पाई जाती है, इसी के उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

प्रस्तुत निबन्ध में हम एक ऐसी जाति का परिचय देंगे जिसका नाम मात्र शिला-लेखों और कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में ही अवशेष है। जिस जाति वालों ने पूर्व प्रान्तीय जैन तीर्थों के जीर्णोद्धार आदि में महत्त्व पूर्ण भाग लिया है अथवा दूसरे शब्दों में यों कहें कि वर्त्तमान पूर्व प्रान्तीय जैन तीर्थ जिनके सद्द्रव्य और आत्म भोग के ही सुपरिणाम है, एवं जो केवल ३०० वर्ष पूर्व एक अच्छी संख्या में विद्यमान थे, उनकी जाति का आज एक भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता, यह कितने बड़े खेद की बात है। *

* बिहार के महतिआण (मथियान) महल्ले में मात्र दो मुद्रायें इस जाति की अन्तिम स्मृति रूप विद्यमान हैं जो हमारे उक्त कथन के अपवाद स्वरूप कही जा सकती हैं।

नाम और प्राचीनता

इस जाति का शुभ नाम प्रसिद्ध लोक-भाषा में 'महत्तियाण' और शिलालेखादि में 'मंत्रीदलीय' भी पाया जाता है।

शिलालेखों के कथनानुसार तो इस जाति की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन है। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभ देव भगवान के पुत्र महाराजा श्री भरत चक्रवर्त्ति के प्रधान मन्त्री श्री दल (१) के नाम से उनकी सन्तति का नाम भी 'मन्त्रिदलीय' प्रसिद्ध हुआ। मन्त्री शब्द का अपभ्रंश "महता" है, अतः उनके वंशजों की जाति का नाम भी उसी शब्दानुसार 'महत्तियाण' कहलाने लगा ऐसा ज्ञात होता है।

प्रतिबोधक आचार्य

इस जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाने का श्रेय खरतर-गच्छाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि ※ को है। शिलालेखों और पट्टावलियों में इस सम्बन्ध में जो उल्लेख प्राप्त हैं, उनके आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं:—

१ "नरमणिमण्डित मस्तकानां प्रतिबोधित प्राग्देशीय महत्तियाणि श्रावक वर्गाणां"

(हमारे संग्रहस्थ १६ वीं शताब्दि में लिखित पट्टावली)

२ "नरमणि मण्डित भालो महत्तियाण श्रावक प्रतिबोधकः"

(१) श्री ऋषभ जिनराज प्रथम चक्रवर्त्ति श्री भरत महाराज सकल मंत्रि मंडल श्रेष्ठ मंत्रि श्री दल सतानीय महतियाण ज्ञाति × (पावापुरी शिलालेख)

※ श्री जिनचन्द्र सूरिः—ये श्री जिनदत्त सूरिजी के शिष्य थे।

(समय सुन्दरजी कृत खरतर गच्छ पट्टावली)

३ "नरमणि मण्डित भालः श्री जिनदत्त सूरिभिः स्वहस्तेन पट्टो स्थापितः पूर्वास्यां दश वर्षाणि स्थित्वा महुत्ति-आण श्राद्धः प्रतिबोधकः ।

(खरतर गच्छ पट्टावली संग्रहः पृ० ११)

४ "श्री जिनचन्द्र सूरि* (सम्वेग रंगशाला प्रकरण-कर्त्ता):-- केचिदन्य ज्ञातीय राज्याधिकारिणोऽपि श्राद्धाः जाता तेभ्यः प्रति पातिशाहिना बहु महत्त्वं दत्तम् ततस्तेषां 'महतीयाण' इति गोत्र स्थापना कृता । तद्-गोत्रीयाः श्रावकाः "जिनं नमामि, वा जिनचन्द्र गुरुं नमामि, नान्यम्" इति प्रतिज्ञावन्तो बभूवुः"

(क्षमाकल्याणजी कृत पट्टावली, ख० प० संग्रह पृ० २३)

५ "श्री जिनचन्द्र सूरि (संवेगरंगशाला कर्त्ता): धनपाल कटाकज्ञाता महुत्तिआण गोत्रीया इति । "महुत्तिआणड़ा दुइ नमइ कइ जिण कइ जिणचन्द"

(खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह पृ० ४५)

६ "श्री बृहत्खरतर-गच्छीय नरमणि मण्डित भाल स्थल श्री जिनचन्द्र सूरि प्रतिबोधित महत्ति-आण श्री संघ कारितः

(पावापुरी तीर्थस्थ सं० १६९८ का लेख श्री पूरण-चन्दजी नाहर कृत जैन लेख संग्रह

उपरोक्त ६ अवतरणों में नं० १-२-३-६ में मणिधारीजी और नं० ४-५ में संवेग रंगशाला कर्त्ता जिन-चन्द सूरिजी को इस जाति के प्रतिबोधक आचार्य लिखा है। इन दोनों आचार्यों के समय में लगभग १०० वर्षों का अन्तर है, परन्तु दोनों का एक ही नाम होनेके कारण यह भ्रान्ति हो जाना सम्भव है। इन प्रमाणों से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि इस जाति के प्रतिबोधक खरतर गच्छाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि थे।

इस जाति वालों की एक प्रतिज्ञा

नं० ४-५ के अवतरण से इस जाति वालों की एक महत्त्व पूर्ण प्रतिज्ञा का पता लगता है। वह प्रतिज्ञा यह थी कि "हम या तो श्री जिनेश्वर भगवान को या श्री जिनचन्द्र सूरि (एवं उनके अनुयायी साधु संघ) को ही वन्दन करेंगे दूसरों को नहीं"। इससे उनके सम्यक्त्व गुण की दृढ़ता एवं अपने उपकारी खरतर-गच्छाचार्यों के प्रति अनन्य श्रद्धा का अच्छा परिचय मिलता है।

उपरोक्त बात की पुष्टि स्वरूप इस जाति वालों ने जिन-बिम्ब और जिनालयों की सभी प्रतिष्ठाएं खरतर गच्छाचार्यों द्वारा ही कराई है।

श्री जिनकुशल सूरिजी के पट्टाभिषेक महोत्सव में भी इसी जाति के ठक्कुर विजयसिंह ने बहुत सा द्रव्य व्यय * किया था, जैसा कि श्री जिन कुशल सूरि पट्टाभिषेक रास में लिखा है:—

"त विजयसिंह ठक्कुर पवरो महंतिआण कुलि सारु।
तउ नामु ठामु तसु अपियउ तउ गोलइ सउ गण धारु ।८।
त गुज्जर धर मंडणउ अणहिलवाड़उ नामु।
त मिलिय संघ समुदाउ तहि महत्तिआण अभिरामु ।।९।।

(हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १६)

उपरोक्त श्रावक ठक्कुर विजयसिंह की गुरु भक्ति की प्रशंसा बड़ी २ उपमाओं द्वारा इसी रास में इस प्रकार वर्णित है:—

त आदहि ए आदि जिणंद भरहु, नेमि जिन नारायणु,
पासह ए जिम धरणिन्दु जिम सेणिय गुरु वीर जिणु,
तिणि परि ए सुहगुरु भत्ति महंति आण परि सलहिय ए,
पडि बन्नए तहि पड़िपुन्न विजयसीहु जगिजसि लियउ ए,

* खरतर बिरुद प्राप्त श्री जिनेश्वर सूरिजी के शिष्य थे।

* बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर द्वारा प्रकाशित खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह पृ० ३०

परमार्हत ठक्कुर विजयसिंह के पुत्र रत्न ठक्कुर वलिराज की गाढ़ अभ्यर्थना से खरतर गच्छीय श्री तरुण प्रभाचार्य ने "षड़ावश्यक बालावबोध वृत्ति" की रचना की थी, जैसा कि इस ग्रन्थ की निम्न प्रशस्ति से ज्ञात होता है:—

"संवत् १४११ वर्षे दीपोत्सव दिवसे शनिवारे श्री मदणहिल्ल पत्तने महाराजाधिराज पातसाहि श्री पीरोज-साहि विजयराज्ये प्रवर्त्तमाने श्री चंद्रगछालंकार श्री खरतर गच्छाधिपति श्री जिनचन्द सूरिशिष्य लेश श्री तरुणप्रभा सूरिभिः श्री मंत्रिदलीय वंशावतंस ठक्कुर वाहड़ सुत परमार्हत ठक्कुर विजयसिंह सुत श्री जिन-शासन प्रभावक श्री देवगुर्व्वाज्ञा चिन्तामणि विभूषित मस्तक श्री जिनधर्म कावकर्पूरपूर सूरभित सदाधातु परमार्हत ठक्कुर वलिराजकृत गाढाभ्यर्थनया षडावश्यक वृत्ति सुगमा बालावबोध कारिणी सकल सत्तोपकारिणी लिखिता। छः। शुभमस्तु ॥ छः ॥

(सं० १४१२ लिखित प्रति बीकानेर ज्ञानभंडार में से)

कुलीनता

इस जाति की कुलीनता और उच्चता ओसवाल, श्रीमालादि जातियों से किसी तरह न्यून नहीं थी। श्री जिनपति सूरिजी कृत समाचारी * के अन्त में खरतर गच्छ में आचार्यों, उपाध्यायों, महत्तरा आदि पदों के योग्य कुलों की जो व्यवस्था की गई है उनमें महत्ति-आण जाति को भी बीसा ओसवाल, श्रीमालों की भांति आचार्य पद के योग्य बतलाई गई है।

लेखों की सूचि

इस जातिवालों के निर्माण कराये हुए जिन बिम्ब व जीर्णोद्धारों के उल्लेखवाले बहुत से शिलालेख इस समय उपलब्ध हैं। जिनमें से बाबू पूरणचन्दजी नाहर द्वारा सम्पादित 'जैन लेख संग्रह' के भाग १-२-३ आदि के लेखों की संवतानुक्रम सूचि तथा अन्य सूचियां नीचे दी जाती हैं। जिससे पाठकों को उनके उत्कर्ष एवं सुकृत्यों का संक्षिप्त परिचय हो जायगा।

सं० १४१२ आषाढ़ कृष्णा ६ २३६
सं० १४३६ फाल्गुन शुक्ला ३ १०५६
सं० १५०४ फाल्गुन शुक्ला ९ २७०, २३६, २५६, १७१, १७२, १८४६, १८५४, १८५५, १८५६
सं० १५१६ वैशाख शुक्ला १३ ४८२
सं० १५१९ आषाढ़ कृष्णा १ २४२१, २१६, ४१८, ४१९, २८१, २१५, २१७, ४८, १६१
सं० १५१९ आषाढ़ कृष्णा १० १८६
सं० १५१९ आषाढ़ शुक्ला १० १०३
सं० १५२३ वैशाख शुक्ला १३ ११५७
सं० १५२७ माघ कृष्णा ५ १९
सं० १६८६ वैशाख सुदि १५ २७१
सं० १६८८ (१८६) " " १७६
सं० १६९८ वैशाख शुक्ला ५ १९२, १९०, १९१
सं० १७०२ माघ शुक्ला १३ १९८

श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी संग्रहित "जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह" भा० १-२ में :-

सं० १६१६ आषाढ़ सुदि ५ ......
सं० १५१२ आषाढ़ बदि २ १४०७
सं० १५१९ आषाढ़ बदि १ १६१, ४८७
सं० १५३६ १३७८

* उ० श्री जयसागरजी संकलित श्री जिनदत्त सूरि चरित्र उत्तरार्ध में प्रकाशित।

श्री जयन्तविजयजी सम्पादित 'अर्बुदगिरि शिला-लेख संग्रह' में :—

सं० १४८३ लेखांक १७६

हमारे संगृहित 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' में :—

सं० १५२३ वै० सु० १३ अजितनाथजी का मंदिर

श्री जिनविजयजी सम्पादित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह' भा० २ में :—

सं० १४८५ कार्त्तिक शुक्ला ५ ५६

सं० १४९६ आषाढ़ शुक्ला १३ ६०

(ये दोनों लेख गिरनार यात्रा के हैं)

गोत्रों के नाम

उपरोक्त शिलालेखों में इस जाति के बहुत से गोत्रों के नाम उपलब्ध होते हैं जिनकी नामावली इस प्रकार है :—

उसियड़ १८६, १४०७ (बु)

काणा १०३, १६१, १९२, २१५, २१७, २७०, २८१, ४१८, ४१९, १६१ (बु)

काद्रड़ा १९२

चोपड़ा १७६, १९०, १९८, २४५, २७१, १९१, १९२

जीजियाण १९२

झाटड़ २३९, २५६

दान्हरा १९२

दुल्लह १९

नानूड़ा १९२, ६० (जि० सं० भा० २)

बाल्हिडिवा १९७

मडनोड़ १७१, १७२

रोहदिया ६०

वायड़ा २१६, १३७८ (बु)

वार्त्तिदिया १९२

मयला १९२

संघेला १६६७

महधा १६६७

पाहड़िया १६६७

मीणवाण १६६७

वजागरा १६६७

जूफ १६६७

मुंड ११५७

भगाड़ ४८७ (बुद्धिसागर सूरि सम्पादित *)

सुनामड ५९ (जिनवि० सम्पादित भा० १-२)

जिस जाति के गोत्रों की संख्या केवल प्रतिमा लेखों में इतनी प्राप्त हो उस जाति वालों की जन संख्या कितनी अधिक होनी चाहिये उसका अनुमान पाठकगण स्वयं कर लें।

निवासस्थान और गृह संख्या

इस जातिवालों का निवासस्थान कौन कौन से प्रान्तों में और किन किन नगरों में था, इसके विषय में सत-रहवीं शताब्दी में लिखे हुए हमारे संग्रह के एक पत्र से अच्छा प्रकाश पड़ता है। यद्यपि इस पत्र में थोड़े से स्थानों (घरों की संख्या के साथ) के ही नाम हैं, तो भी वह विशेष उपयोगी होने से पाठकों की जानकारी के लिये, उसका अंश हम यहां उद्धृत करते हैं।

श्री महुत्तियाण खरतर श्रावक इतरे ठामे ग्रामे वसइ छई:

१ घर २५ बिहार। तत्र पींपलिया

२ घर २० माणिकपुर

३ घर ५ पटणइ

४ घर २ वारि (बाढ़)

---

* अध्यात्मज्ञान प्रसारक मंडल से प्रकाशित।

५ घर ३ भागलपुर
६ घर १ बांगर मऊ
७ घर ४ जलालपुर
८ घर २० सहारणपुर। गंगापारेपि केपि।
९ घर २० अमदाबादे

माजनई सर्व घर १००

इससे पहिले के शिलालेखों और खरतर गच्छ की बृहत् गुर्वावली दिल्ली, जवणपुर (जौनपुर), डालामऊ, नागौर आदि स्थानों में भी इस जाति के प्रतिष्ठित धनी मानी श्रावकों के निवास करने का उल्लेख पाया जाता है। विहार तो इनका प्रमुख निवासस्थान था, जिसका परिचायक वहां अब भी "महत्तियाण मुहल्ला" नाम से प्रसिद्ध एक मुहल्ला है और वहां उन्हीं के बनाये हुए जिनालय और धर्मशाला विद्यमान हैं।

चौदहवीं शताब्दि से सतरहवीं शताब्दि पर्यंत मंत्रिदलीय लोगों की बड़ी भारी जाहोजलाली ज्ञात होती है। वे केवल धनवान ही नहीं परन्तु बड़े-बड़े सत्ताधीश एवं राजमान्य व्यक्ति थे। अपने उपगारी खरतर गच्छाचार्यों की सेवा, तीर्थयात्रा, संघ भक्ति, और अर्हन्त भक्ति में इस जातिवालों ने लाखों रुपये खुले हाथ से व्यय कर अपनी चपला लक्ष्मी का सदुपयोग किया था।

खरतर गच्छ बृहद् गुर्वावली * में इन के सुकृत्यों का मनोज्ञ एवं श्लाघनीय वर्णन भी मिलता है, जिसका संक्षिप्त सार यहां लिखा जाता है।

* इस गुर्वावली के अवतरण लेख विस्तारभय के कारण नहीं दिये गये हैं। इसका हिन्दी अनुवाद हमारी ओर से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

संवत १३७५ में कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्र सूरि के साथ दिल्ली के ठक्कुर विजयसिंह रूदा (डालामऊ के) अचलसिंहने फलवर्द्धि पार्श्वनाथ की यात्रा की थी और वहां ठ० सेढ़ू ने बारह सहस्र द्रव्य देकर इन्द्रपद प्राप्त किया था, एवं इसी वर्ष में ठक्कुर प्रतापसिंह के पुत्रराज अचलसिंह ने कुतुबुद्दीन सुरत्राण से सर्वत्र निर्बाध यात्रा के निमित्त फरमान प्राप्त कर संघ सहित हस्तिनापुर, मथुरा आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। एवं मार्ग में कुतुबुद्दीन सुरत्राण की कैद से द्रमकपुरीय आचार्य को छुड़ाया था।

संवत १३७९ में ठक्कुर † आशापाल के पुत्र जगत्सिंह श्री जिनकुशल सूरिजी आदि ने संघ के साथ और आरासण तारङ्गा आदि तीर्थों की यात्रा की थी। सं० १३८० में संघपति रयपति के संघ में मन्त्रिदलीय सेठ यवनपाल भी मुख्य सुश्रावकों में थे। सं० १३८१ में श्री जिनकुशल सूरिजी संघ के साथ धांधुका नगर में पधारे उस समय ठक्कुर उदयकर्ण ने संघ वात्सल्य आदि कार्यों द्वारा जैन धर्म की प्रभावना की थी। सं० १३८३ में श्री जिनकुशल सूरिजी के जालौर पधारने पर मन्त्रिदलीय सेठ भोजराज के पुत्र मं० सलक्खणसिंह आदि ने फाल्गुन कृष्णा ९ से लगातार १५ दिनों तक पूज्य श्री के पास प्रतिष्ठा, व्रत ग्रहण, उद्यापनादि नन्दि महोत्सव बड़े समारोह से सम्पन्न करवाये। सं० १३८३ फाल्गुन कृष्णा ९ को राजगृह के "वैभार गिरि" नामक पर्वत के शिखर पर ठ० प्रतापसिंह के वंशधर अचलसिंह ने चतुर्विंशति जिनालय निर्माण कराया था, उसके मूल नायक योग्य श्री महावीर स्वामी एवं अन्य तीर्थङ्करों की पाषाण एवं धातुनिर्मित बिम्बों

† इस जाति वालों का ठक्कुर विशेषण उनकी महत्ता का सूचक है।

की प्रतिष्ठा श्री जिनकुशल सूरिजी के कर कमलों से सम्पन्न हुई थी। *

* सं० १४१२ में उत्कीर्ण राजगृह पार्श्व जिनालय प्रशस्ति में भी जिनकुशल सूरिजी के द्वारा विपुला गिरि पर ऋषभ देव की मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति बड़े महत्व की है और सानुवाद श्री जिन विजयजी सम्पादित जैन लेख संग्रह में भी प्रकाशित है।

उपसंहार

इस प्रकार उपलब्ध साधनों के द्वारा जो कुछ भी इस जाति के विषय में ज्ञात हुआ वह इस लेख में संक्षिप्त रूप से लिख दिया गया है। इससे विशेष जानकारी रखनेवाले सज्जनों से अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने की कृपा करें।

मितव्ययिता

[श्री कालूराम के० शाह]

(१) उधार लेने व उधार खरीदने की आदत न डालो अन्यथा वह किफायत और उद्योग का हरण कर लेगी।

(२) किफायत करना यह एक प्रकार की पैदा-यश है, क्योंकि व्यक्ति अक्सर उसकी कमाई से नहीं, बल्कि किफायत से संपत्तिवान बनता है।

(३) बुढ़ापे में खर्च के लिए युवावस्था में जरूर बचत करो कि जिससे बुढ़ापे में वह बचत उचित रूप में काम आ जाय।

(४) गरीबी का मुख्य कारण बहुधा फिजूलखर्ची होना होता है। फिजूलखर्च से सदा अपना बचाव करो।

(५) बाजार में जाते समय अपने बटुवे को सम्हाल लो कि उसमें कितनी गुंजायश है और सोच विचार कर खर्च करो।

(६) जितनी पैदायश हो उसमें से अवश्य योग्य रूप से बचत करते रहो कि जिससे व्यवहार सदा समतौल रहे।

(७) हमेशा पैदायश और खर्च का हिसाब रखो और लाभ तथा हानि की तुलना करो।

(८) कई छोटी छोटी रकमें जो पिछले जीवन में अनावश्यक खर्च डालीं, अगर संग्रह करते तो आजतक अच्छा संग्रह किया होता, इसलिये अबसे इस बातको लक्ष्य में रखो कि व्यर्थ में खर्चा न हो।

(९) पैदायश प्रमाणिकता से करो किफायत विवेकता से और दान बुद्धिमत्ता से करो।

प्राचीनता के गीत और विज्ञान

[श्री दरबारीलालजी सत्यभक्त]

बहुत सोचा परन्तु इस लेखके लिये कोई ज़रा छोटा शीर्षक न मिला। 'अन्धश्रद्धा और विज्ञान' रखने से भी काम न चला क्योंकि अन्धश्रद्धा का कारण अज्ञान या मूढ़ता है; परन्तु प्राचीनता के गीत मनुष्य अभिमान से भी गाया करता है, बल्कि इसमें अभिमान मुख्य होता है। खैर, अब शीर्षक के ऊपर ही इतना तर्क वितर्क क्यों करूं? जो कुछ कहना है उसका संकेत ऊपर के शीर्षक से हो जाता है, इतना कहना ही बस है।

"सुदूरभूत में मनुष्यजाति बन्दर थी" डार्विन साहिब के इस वक्तव्य की चाहे कोई हंसी उड़ाये, चाहे विचारणीय समझे, चाहे विश्वास करे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ता जाता है। उसका ज्ञान-भण्डार बढ़ता जाता है और उससे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है- तीक्ष्ण होती जाती है इससे उसकी ज्ञानोपार्जन की शक्ति भी बढ़ती जाती है। फिर भी किसी प्राणी के लिये—फिर वह प्राणियों का राजा मनुष्य ही क्यों न हो—यह असम्भव है कि वह प्रकृति के समस्त रहस्यों को, उसकी दैशिक और कालिक सीमाओं को जान ले। इस मनुष्य नाम के जन्तुओं में जो ज़रा बड़े से ज्ञानी होते हैं— जिन्हें यह मनुष्य जन्तु अपनी तुच्छता के कारण सर्वज्ञ कह दिया करता है—वे भी सिर्फ इतना जानते हैं कि "हम कुछ नहीं जानते, कोई प्रकृति का पार नहीं पा सकता।"

इस प्रकार प्रकृति के इस अनंत पथ पर यह मनुष्य नाम का बड़ा सा कीड़ा धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ रेंगता हुआ चला जाता है। और इस धीमी चाल से ही इसने इतना मार्ग तय कर लिया है कि उसका तय किया हुआ मार्ग आगामी मार्ग के सामने भले ही शून्य के बराबर हो, फिर भी वह इतना अवश्य है कि 'कुछ' कह कर उसका अपमान नहीं किया जा सकता, उसे 'बहुत कुछ' कहना पड़ता है।

मनुष्य की इस प्रगति के अनेक कारणों में से प्रधान कारण है, मनुष्य को अपने अज्ञान का-अपूर्णता का-ज्ञान। अपने अज्ञान को कम करने के लिये वह जो प्रयत्न करता है उसीका फल यह प्रगति है। परंतु मूढ़ता-वश और अहंकारवश बहुत से मनुष्य प्रगति के इस कारण को नष्ट कर देते हैं। वे समझते हैं या कहते हैं कि जो कुछ जानने लायक था वह सब भूतकाल में जान लिया गया है, अब कुछ नहीं जाना जा सकता। ऐसे लोग संसार के ज्ञान-भण्डार को देते तो कुछ है नहीं, किंतु कोई दे रहा हो तो उसमें बाधा डालते हैं, उसके उत्साह को ठंडा करके उसे गिराना चाहते हैं। जिस जगह ऐसे लोगों का बाहुल्य होता है, वहाँ हर एक तरह की प्रगति रुक जाती है।

प्राचीनता के गीतों का दूसरा फल होता है निराशा। कोई महापुरुष मानवहित के लिये बड़े से बड़ा त्याग क्यों न कर रहा हो, उसका उपाय कितना

ही अव्यर्थ क्यों न हो, परन्तु ऐसे लोग उसमें कोई आशा नहीं रखते और इसीलिये उसको कोई मदद नहीं देना चाहते हैं। वे तो किसी ऐसे अवतार की आशा में बैठे रहते हैं, जिसके जन्म पर शेषनाग छत्र करे, देवता पूजा करने को आते हुए दिखाई दें, मेरुपर उनका अभिषेक हो, उनके शरीर से दूध निकले, वह सूर्य को मुंह में दबाले, तारा, ग्रह, नक्षत्र वगैरह नये बना दें! अगर ऐसी असम्भव विशेषताएं किसी में दिखाई नहीं देतीं तो वे उस पर विश्वास नहीं कर सकते। बात ज़रा पुरानी है, एक बार एक सज्जनने-जिन्हें पढ़े लिखे होने के कारण शिक्षित कहना पड़ता है मुझ से कहा था—"गांधीजी हैं तो अच्छे आदमी, परंतु इनसे कुछ हो नहीं सकता, क्योंकि ये कोई अवतार थोड़े ही हैं। अवतार की एक भी विशेषता इनमें दिखाई नहीं देती—न कोई देव आता है, न कोई अतिशय दिखाई देता है—इसलिये इस देश का उद्धार तो तब तक नहीं हो सकता जब तक भ० रामचन्द्रजी की तरह या भ० कृष्णचंद्रजीकी तरह कोई अवतार नहीं होता।" मैंने उनको अवतारवाद का रहस्य समझाया, मरने के बाद आज कलके समान या इन से भी छोटे महापुरुष किस तरह अवतार बन जाते हैं, आदि बातें कहीं परन्तु उन्हें जँची नहीं। इतने दिनों की जमी हुई कीट एक बार सिर्फ पानी डालने से कैसे धुल जाती?

इन प्राचीनता के गीतों का जो एक और दुष्परिणाम होता है, उससे भी कुछ कम अनर्थ नहीं होता। मंत्र यंत्रों पर, देवी-देवताओं पर अंध-विश्वास करके ढोंगी लोगों के जाल में फँसकर लोग बुरी तरह बर्बाद होते हैं। इस पर तो एक पुराण ही लिखा जा सकता है।

मैं प्राचीनता के गीतों का विरोध नहीं करता किंतु यह चाहता हूं कि वे सचाई के आधार पर गाये जाँय; वे ऐसी कल्पनाओं के आधार पर न गाये जाँय जो अंधश्रद्धा और अविचिह्नीपन को बढ़ाती हैं, विज्ञान की अवहेलना करती है। हम उनमें विकास की प्रेरणा लें, अहंकार का पोषण नहीं। आज जब कोई वैज्ञानिक असाधारण तपस्या करके प्राण देकरके भी कोई नया आविष्कार करता है, किसी नये सिद्धांत का पता लगाता है, तब हम अपनी अकर्मण्यता को छिपाने के लिये तथा अहंकार की पूजा करने के लिये कहते हैं— "उँह! इसमें क्या हुआ? हमारे पूर्व पुरुष तो यों करते थे और त्यों करते थे" और यह बात मनमें घूमती रहती है हम तो एक ही हैं, इसलिये ये वैज्ञानिक छोकरे किस हमारे पूर्वज और कि गिनती में हैं!

यह अहंकार, यह मूढ़ता साधारण लोगों में ही नहीं है शिक्षितों में और उनमें भी विद्वान कहलानेवालों तक में है। वे चाहते हैं कि जो नया है वह सब पुराने की जूठन सिद्ध कर दिया जाय, तभी हम देवता के प्रसाद की तरह उसे स्वीकार करें। यदि आइन्स्टीन ने सापेक्षवाद (Relativity) का सिद्धांत निकाला तो हमें जैनियों के अनेकांतवाद की विजय के सिवाय उसमें कोई विशेषता नज़र नहीं आती। इस सिद्धांत से देश, काल गति, आकर्षण आदि की मान्यताओं में कौनसी क्रांति हुई है, इसमें कट्टर जैन सहमत भले ही न हों, फिर भी वे उसमें अपने गीत गा लेना चाहते हैं। अनेकांतवाद का जितना व्यापक अर्थ करके जैन लोग अपनी विजय के गीत गाते हैं, वह अनेकांत जैनियों की चीज़ नहीं है, उसमें कोई विशेषता भी नहीं है। बाप, बेटेकी अपेक्षा बाप है और बेटा, बाप की अपेक्षा बेटा, इस बात को मनुष्य-समाज उसी समय से समझता है जब जैन-धर्म का पता भी न था। इस बात को समझने के लिये जैन शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं। यदि

जैनियोंने इस सर्वमान्य और सर्व प्रचलित सिद्धांत के लिये नाम दे दिया तो यह कोई बहादुरी की बात नहीं थी। फिर भी मैं यह नहीं कहता कि जैन-धर्म को अनेकांतवाद का श्रेय नहीं है। है, और वह इस बात को लेकर है कि अनेकांतवाद का उपयोग जनता जिस जगह नहीं करती थी, उस जगह भी उसका उपयोग कर दिखाया। दार्शनिक मतभेदों के नाम पर लोग लड़ते थे, लोग नहीं समझते थे कि जिस प्रकार बाप-बेटे में अनेकांतवाद का उपयोग है, ऋतु परिवर्तन के अनुसार रहन सहन के परिवर्तन में अनेकांतवाद का उपयोग है, उसी तरह दार्शनिक और धार्मिक बातों के समन्वय में भी हो सकता है। अथवा दार्शनिक या धार्मिक बातों में अनेकांत का जितना उपयोग पहिले के लोग करते थे उससे कई गुणा उपयोग जैनियों ने कर दिखाया। यह जैन धर्म की विशेषता है। अब अगर कोई कहे कि 'उह! जैनियों ने इसमें किया क्या? पहिले भी तो हम अपने को अपने बाप का बेटा और बेटे का बाप मानते थे, जैनियों ने अनेकांतवाद का अविष्कार किया तो क्या किया?' परन्तु इतने से ही जैनियों की विशेषता मारी नहीं जा सकती, क्योंकि उसकी विशेषता उसके उपयोग की नवीनता में है। ठीक इसी प्रकार आइन्सटीन के सापेक्षवाद की विशेषता उसके उपयोग की नवीनता में है, जिसका कि जैनियों को या दूसरों को स्वप्न भी नहीं था। आइन्सटीन के सापेक्षवाद से जैनियों को अपने अनेकांत के विजय के स्वप्न देखने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें इतना ही समझना चाहिये कि जैनियों ने एक दिन एक ऐसे अनेकांतवाद को जन्म दिया था जिसका उस ज़माने के लोगों को पता न था, उसी प्रकार आइन्सटीन ने एक ऐसे सापेक्षवाद को जन्म दिया है जिसका हमें पता नहीं था।

संसार में ऐसे बहुत से सिद्धांत हैं जिनका पता मनुष्य ने तभी लगा लिया था जब वह वह पशुसे मनुष्य बना था। परन्तु उस क्षुद्र सामान्य ज्ञान के बाद मनुष्य ने जो लाखों करोड़ों विशेषताओं का ज्ञान किया है उनकी महत्ता उस क्षुद्र सामान्य ज्ञान में नहीं समा जाती। अगर कोई कहे कि सारा विश्व सत् है और दूसरा आदमी प्रत्येक सत्पदार्थ को जाने तो इसी से इस महान विशेष ज्ञानी का महत्त्व उस सामान्य ज्ञानी के आगे फीका न पड़ जायगा। हम प्राचीनता के गीत गाने के लिये पुराने सामान्य ज्ञानों को इतना महत्त्व दे देते हैं कि विशेष ज्ञानों की विशेष क़ीमत भूल जाते है, उसमें कोई महत्त्व नहीं समझते।

अगर सिनेमा में किरणें शब्दरूप में परिणत हो जाती हैं तो हम मूढ़ता पूर्ण गम्भीरता के साथ कह दिया करते हैं कि 'उंह! इसमें क्या हुआ? हम पहिले से जानते थे कि पुद्गल पुद्गल सब एक है।" परन्तु पुद्गलैक्य के ज्ञान से किरणें शब्द तो नहीं बन जातीं थीं। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि हम किस प्रकार अपने या पूर्वजों के तुच्छ सामान्य ज्ञान के आगे वर्तमान के वैज्ञानिकों के विशेष ज्ञानों पर उपेक्षा रखते हैं या उनकी अवहेलना करते हैं।

एक बार एक बड़े से पंडितजी कह रहे थे कि रेलगाड़ी का अविष्कार करके वैज्ञानिकों ने क्या बहादुरी की है? चक्र का अविष्कार तो पहिले से ही था! चक्र न होता तो रेलगाड़ी कहां से बनती?

निःसंदेह चक्र का अविष्कारक उस युग का महान वैज्ञानिक था; परन्तु चक्र को जानवर या मनुष्य की शक्ति की अपेक्षा आग और पानी से कई गुणी गति

प्रदान करने वाले वैज्ञानिक का ज्ञान जो असंख्यगुणा है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती; और यह नहीं कहा जा सकता कि चक्र के अविष्कारक को भी इतना ज्ञान था।

प्राचीनता का गीत गाने वाला एक दल और है। उसका कहना है कि जो कुछ आविष्कार हुये हैं वे सब हमारी पुस्तकों में लिखे हैं। जर्मनीवालों ने व दूसरे लोगों ने हमारा संस्कृत साहित्य पढ़कर ये आविष्कार कर लिये। दिन रात उन पुस्तकों को घोंटने वाले यहाँ के बड़े-बड़े पंडितों को उन पुस्तकों में जिन आविष्कारों के दर्शन नहीं हुए, उनके दर्शन वैज्ञानिकों को हो गए! ये भोले जीव समझते हैं कि जो लोग यहाँ का साहित्य पढ़ते हैं वे ही वहाँ वैज्ञानिक हैं। यद्यपि बहुत निम्नश्रेणी के लोग ही ऐसे गीत गाते है, किंतु आखिर ऐसे शेखचिल्ली भी हैं सही।

प्राचीनता के गीत गाने का दूसरा तरीका है पुरानी कल्पनाओं को—भक्तिकल्प्य घटनाओं को-इतिहास मान लेना। मनुष्य किसी वस्तु को पाने के पहिले कल्पनाएँ करता है। कल्पनाओं के विषय कुछ तो ऐसे होते हैं कि जो अप्राप्त होने पर भी अप्राप्य या असम्भव नहीं कहे जा सकते, और कोई असम्भव होते है। जैसे मनुष्य ने पक्षियों को उड़ता देख कर मनुष्यों में उड़ने की कल्पना की। वह स्वयं तो उड़ नहीं सकता था इसलिये उसने कल्पना द्वारा परियों की सृष्टि को, विमानों की कल्पना की, गरुड़, हंस आदि पक्षी—वाहनों में बैठकर उड़ने के स्वप्न देखे। और पूजा के लिये जिन कल्पित अकल्पित देवों को उसने चुना उनके साथ उसने यह खेचरता जोड़ दी। कल्पना के कोई लगाम तो होती नहीं है, इसलिये वह मनचाही दौड़ती है। इसी का फल ये गरुड़, पुष्पक, कैकियंत्र आदि हैं। जहाँ कोई चाह हुई और उसके मन ने कहा 'अहा, यदि ऐसा होता" वहाँ कल्पना ने उसकी पूर्ति कर दी। वह सोचने लगा—हम सरीखे क्षुद्र, पापी, क्षीणपुण्य जीव अगर इन चीज़ों को प्राप्त नहीं कर सकते तो तीर्थङ्कर, अवतार, पैगम्बर, देव ऋषि, महामनियाँ, तपस्वी, पुण्यात्मा, आदि इन चीज़ों को प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए महापुरुषों के पास उसने ऐसे तरकसों की कल्पना की जो कभी ख़ाली न हों! ऐसे बाणों की कल्पना की जो सैकड़ों को मारकर सिखाये हुए पक्षी की तरह तरकस में आ विराजें! एक ही बाण से सर्पों की सेनाएँ, गरुड़ों के झुण्ड, आग की लपटें, मूसलधार वर्षा, झंझावात, बेहोशी और जागृति, जीवन और मौत आदि सभी कुछ निकलने लगे! सूर्य में, चन्द्र में, तारों में पहुँचना तो मामूली बात थी, परन्तु उन्हें खा जाना भी एक मामूली बात समझी गई! मनुष्य का पशु बन जाना, पुरुष का स्त्री, स्त्रीका पुरुष हो जाना भी सरल समझा गया! शरीर में खूनकी जगह दूध बहने लगा! एक जगह बैठे-बैठे त्रिलोक-त्रिकाल दिखाई देने लगा। पवित्र नारियाँ आग में जाने पर भी न जलीं! इन सब कल्पनाओं के द्वारा मनुष्य ने अपनी भक्ति का और चाह का अच्छा परिचय दिया है। परन्तु इसमें यह न समझना चाहिये कि ये घटनाएँ हैं, इनमें वास्तविकता है।

मनुष्य की असंख्य कल्पनाओं में से कुछ कल्पनाएं विज्ञान के द्वारा फलीभूत हो रही हैं तथा आगे और भी होंगी। पहिले जो कल्पनाएँ थीं, उन में से बहुत सी बातें आज प्रत्यक्ष हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि आजकल के वैज्ञानिक पुरानी बातों का जीर्णोद्धार कर रहे हैं। पुरानी कल्पनाओं का आधार वैज्ञानिकता नहीं था, किन्तु श्रद्धा-भक्ति आदि थी। जितने प्राचीन मज़हब है उन सब में ऐसी कल्पनाएँ पाई जाती

हैं। आज का वैज्ञानिक यदि अपनी प्रचण्ड तपस्या से उन कल्पनाओं को भी प्रत्यक्ष कर रहा है तो इसमें उन कल्पकों की विजय नहीं है, वैज्ञानिक की विजय है।

बहुत से भाई मिथ्याभिमान वश कहा करते हैं कि विज्ञान की अन्तिम से अंतिम खोजें हमारे धर्म, हमारी मान्यताओं का ही अनुकरण करती हैं। यह अहंकार भयंकर आत्मवञ्चना है। ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं है जिसकी वस्तु-तत्त्व से सम्बन्ध रखने वाली मान्यताओं को विज्ञान ने उलट पुलट न कर दिया हो। यहाँ पर हर एक सम्प्रदाय की बातें चुनकर खण्डन करने की जरूरत नहीं है। कभी यह भी किया जायगा। अभी तो हमें यही समझना चाहिये कि धर्म या सम्प्रदायों ने मनुष्यों को समयानुसार नीति सिखाई है, जिसकी उपयोगिता विज्ञान से भी बढ़ कर है; परन्तु अन्य क्षेत्रों में उनने जो दिया है, उसका उस समय की धार्मिक दृष्टि में भले ही बहुत मूल्य हो, परन्तु इस समय नहीं है। इसलिये इस समय हमें श्रद्धा के नामपर उन पुरानी मान्यताओं से चिपटे रह कर विकास का विरोध उपेक्षा आदि नहीं करना चाहिये।

पुराने लोगों ने उन से भी पुराने लोगों की अपेक्षा आगे बढ़ कर मनुष्यता का परिचय दिया है; हमें उन से भी आगे बढ़ कर मनुष्यता का परिचय देना चाहिये। हमें पुराने लोगों में से उन महापुरुषों के गीत गाना चाहिये जिनने उस समय के समाज को आगे बढ़ाया है; परन्तु पुराने युग के गीत गानेका कुछ अर्थ नहीं है। यदि सचमुच पुराना जमाना हमारी अपेक्षा अधिक ज्ञान रखता था तो यह हमारे लिये लज्जा से डूब मरने की बात है; इसके लिये अहंकार कैसा?

मेरा कहना यह नहीं है कि पुराने लोगों की निंदा करो। वे प्रशंसनीय हैं, क्योंकि वे आगे बढ़े थे। उन्हीं के आगे बढ़ने का फल तो हम हैं, इसलिए हम उनके कृतज्ञ हैं। परन्तु हमें यह जान लेना चाहिये कि हम उनके आगे बढ़ने के फल हैं, पीछे हटने के नहीं। इसलिये हमें अपनी महत्ता का अनुभव कर के और भी आगे बढ़ना चाहिये। प्राचीनता के भाट बन कर न रहना चाहिये।

दूसरी बात यह कि विज्ञान की या वैज्ञानिकों की तारीफ़ करके मैं यह नहीं कहता कि वे सुख शान्ति के दूत हैं। वे फ़रिश्ते भी हो सकते हैं और शैतान भी। वे एक शक्ति है, जिसका सदुपयोग भी होता है और दुरुपयोग भी। इसलिए धार्मिक दृष्टि से उनके कार्य का कुछ भी मूल्य नहीं है। मूल्य है सिर्फ ज्ञानकी दृष्टि में।

यहाँ मैं ज्ञान पर दृष्टि रख कर ही कुछ विचार करना चाहता था इसलिये विज्ञान और वैज्ञानिकों के विषय में यह सब कहना पड़ा। सदाचार और संयम की दृष्टि से आज भी मनुष्य पशु से बहुत अन्तर नहीं रखता। इस दिशा में उसकी अवस्था अभी शोचनीय है। परन्तु ज्ञान अर्थात् पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि में मनुष्य बढ़ता जाता है। इस वृद्धि में हमें भी भाग लेना चाहिये। इसकी दिशा भी सुधारते रहना चाहिये। प्राचीनता के गीत गा कर उसके मार्ग में बाधक न बनना चाहिये; न अपने को पिछड़े हुए भोले जीवों में शामिल करना चाहिये।

सत्य संदेश से।

युवक की कामना

[श्री रामकुमार जैन 'स्नातक'—विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, हिन्दीप्रभाकर,]

१

मात्र है यही कामना नाथ ॥
दुर्गम पथ हो कण्टकमय हो, महा भयंकर सङ्कटमय हो ।
चला चलूं, चाहे तज देवें, बन्धु—सखा सब साथ ॥
मात्र है यही कामना नाथ ॥

२

सीखूं दुखमय जीवन जीना, रक्षहेतु हो खून पसीना ।
परहित पड़े गरल जो पीना, कभी न ठनके माथ ॥
मात्र है यही कामना नाथ ॥

३

सुख—स्वप्नों की चाह नहीं हो, वैभव की परवाह नहीं हो ।
कुष्ट—रोगियों के व्रण धोकर पावन कर लूं हाथ ॥
मात्र है यही कामना नाथ ॥

४

कोई अगर लगावे ठोकर सह लू उसको रजकण बन कर ।
किन्तु सान्त्वना मुझसे पावें निर्बल, दुखी, अनाथ ॥
मात्र है यही कामना नाथ ॥

५

सुख न सही, कर्त्तव्य रहे पर, मृत्यु समय भी पड़े न अन्तर ।
मन मे परहित, जिह्वा पर हो भगवन् की गुणगाथ ॥
मात्र है यही कामना नाथ ॥

'सेवा'

[श्री मनोहरसिंह डांगी, शाहपुरा]

किस तरह से हम अपने जीवन को आनन्दमय बना सकते है ? वह कौनसी वस्तु है जिसे प्राप्त करने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है और वह कौन-सा उपाय है जिसका अवलम्बन करने से मनुष्य में प्रबल शक्ति आ जाती है ?

इन्हीं प्रश्नों को दूसरे शब्दों में यों रख सकते हैं कि हमारे जीवन का तात्पर्य क्या है ? इसका उत्तर यही है कि हमारे जीवन का सच्चा उपयोग सेवा-मार्ग का अवलम्बन करने से ही हो सकता है। यदि हम सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बना लें और इस मार्ग को मजबूती से पकड़ लें तो हमारा सम्पूर्ण जीवन आनन्दमय, प्रभावशाली और शक्तिमान हो जायगा और यदि सब लोग इसी मार्ग पर चलने लगें तो इस जगत की काया बिलकुल पलट जाय और यह जगत अन्धकारमय और शोकमय होने के बदले लोगों को प्रकाशमय और आनन्दमय प्रतीत होने लगे और उन लोगों को जो दुनियां के व्यसनों में पड़े हुए अपने को सुखी समझते हैं मालूम हो जाय कि सेवा से प्राप्त असली आनन्द के सामने सांसारिक सुख ऐसा तुच्छ और मिथ्या है जैसा सोने के सामने पीतल और हीरे के सामने कांच। तब वे लोग यह भी समझ जायेंगे कि जिन मनुष्यों को वे नीच और अधम समझते रहे हैं वे उन से किसी तरह कम नहीं है, बल्कि शायद वे उन से अच्छे हैं, क्योंकि उन तुच्छों का जीवन उनके जीवन से अधिक आनन्द से व्यतीत होता है। यदि इस मार्ग को हम ग्रहण कर लें तो बहुत से सामाजिक प्रश्न, जो हमारे सामने उपस्थित हैं स्वयमेव हल हो जायंगे और मनुष्य-मात्र के आनन्द की वृद्धि होगी। बहुत से लोग, जिन्हें अपना जीवन वृथा मालूम होता है, इस नियम को ग्रहण करने से यह प्रतीत करने लगेंगे कि उनका जन्म किसी मुख्य उद्देश्य के लिए हुआ है। वे अपने जीवन को लाभदायक, प्रभावशाली और आनन्दमय बना सकेंगे। अमीरों और ग़रीबों में बहुत से लोग ऐसे है जिनका समय काटे नहीं कटता, परन्तु यदि वे इस सीधे सादे नियम पर चलने लगें तो उन्हें यह मालूम हो जायगा कि समय बहुत थोड़ा है और कार्य बहुत अधिक है।

बहुत लोगों ने सच्चा, प्रभावशाली और आनन्दमय जीवन व्यतीत किया है और अब भी कर रहे हैं। इनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है ? इन सब में कौनसी मुख्य बात थी जिससे वे सफलता प्राप्त कर सके ? मेरे विचार में यह बात आती है कि उन सबने सेवा-मार्ग के अवलम्बन से ही अपने जीवन को प्रभावशाली और सफल बना पाया है। लेकिन यहां यह ध्यान देने की बात है कि जहां-जहां यह कोशीश हुई है कि अपने जीवन को बड़ा और प्रभावशाली कैसे बनाया जाय वहां-वहां लोग सफलता से दूर रहे हैं। परन्तु यदि उन्होंने केवल सेवा-मार्ग पर अपने जीवन की इमारत बनाई है, तो वे अपने कार्य में सदा सफल हुए हैं और उनकी इमारत बहुत मज़बूत और पक्की तैयार हुई है।

अधिकांश लोगों का खयाल रहा है कि जो मनुष्य संसार में प्रभुता, सफलता और आनन्द प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह अपनी सारी शक्ति और विचारों को स्वयं अपने ही लिए लगा दे। परंतु यह भ्रम है। संसार का यह अटल नियम है कि वही मनुष्य अपने जीवन को सफल बना सकता है, जिसने दूसरों की सेवा के लिए अपने शरीर को अर्पण कर दिया है अर्थात जितना अधिक हम दूसरों की सेवा करने के लिए और उनके दुःख-विमोचन के लिए तत्पर रहते हैं उतना ही अधिक हमारा जीवन प्रभावशाली और आनंदमय होता है। सेवा मार्ग का अवलम्बन ही संसार में आनन्द बढ़ाने का मूल मंत्र है। सेवा से मेरा मतलब यह नहीं है कि अपने पेट के लिए किसी की गुलामी करना शुरू कर दीजिए। सेवा से मेरा तात्पर्य यह है कि रोगियों को औषधि दीजिए, वस्त्र-विहीनों को वस्त्र पहिनाइए, जिनके दिल टूट गए हैं, उन्हें ढाढस बँधाइए, जो दुर्बल हैं उन्हें बल दीजिये, जो निर्धन हैं, उनकी धन से सहायता कीजिए, जो अज्ञानी हैं, उनके लिए ज्ञानरूपी प्रकाश का दीपक जलाइए और मनुष्य-मात्र में न्याय के प्रति प्रेम और अन्याय के प्रति घृणा पैदा कीजिए। लोगों में यह भाव उत्पन्न कर दीजिए कि संसार को आनन्दमय बनाना हो तो वे अपने जीवन का कर्त्तव्य समझने लगें और उन्हें यह भी बता दीजिए कि वह एक मात्र कर्त्तव्य केवल "सेवा" है।

संसार में वही लोग बड़े और महात्मा गिने जाते हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन दूसरों की सेवा में व्यतीत किया है। यदि आप संसार में अपने यश को अटल करना चाहते हैं तो दूसरों की सेवा में अपने आप को भुला दें, दूसरों की सेवारूपी यज्ञ में अपने आपकी आहुति दे दें, फिर केवल सारी जाति और सारा देश ही नहीं बल्कि सारा संसार आपके नाम को सोने के अक्षरों में लिखेगा।

जो मनुष्य आनन्द प्राप्त करना चाहता है उसे यह याद रखना चाहिए कि संसार का यह अटल नियम है कि "इस हाथ दे, उस हाथ ले।" हमको उतना ही आनन्द मिल सकता है जितना आनन्द हम दूसरों को देते हैं, अर्थात् जितनी हम उनकी सेवा करके उनके दुःख दूर करते हैं और उनके आनन्द को बढ़ाते हैं उतना ही आनन्द हमको मिल सकता है। इसलिए सेवा-मार्ग के अवलम्बन में ही सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है।

मेरी आशा

[श्री दिलीप सिंघी]

ग्रीष्म की ग्रामीण अकर्मण्यता जितनी बरबस, जितनी गहन, जितनी असह्य और करुणोत्पादक है, उससे कहीं अधिक दारुण स्थिति उस प्रगति-पिपासु की है, जो जीवन-ज्योति जगाना तो चाहता है, जिसे प्रेम-पंथ का पथिक बनने की हविस तो है, पर जिसकी रगों में कर्मयोगी का खून संचारित नहीं होता।

निराश इसलिए हो जाता हूं कि उसके ज्योतिहीन नेत्रों में आंसू ही आंसू दीखते हैं, पर आशा इसलिए बंधती है कि शायद अश्रुओं का अवशेष हो जाने पर खून टपकने लगे।

जापानी चीजें इतनी सस्ती क्यों ?

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत, बी० काम०]

आज जापानी चीजों का इतना अधिक सस्तापन देख कर लोग दांतों तले अंगुली दबाते हैं। जापान ने ऐसी सस्ती चीजें पैदा कर व्यापारिक जगत् में एक खासी हलचल सी मचा दी है। सुई से लेकर बड़ी-बड़ी मोटरें तक बड़ी उम्दा और सस्ती जापान से तैयार होकर आती हैं। ग्रामोफोन, रेडियो, घड़ियां, साइकलें आदि वस्तुएं इतनी सस्ती और अच्छी संसार के बाजार में शायद ही कभी बिकने आई हों। जापान के सिवा और कोई देश निकट भविष्य में ऐसी अच्छी और साथ ही इतनी सस्ती चीजें तैयार कर सकेगा, हमें तो ऐसी आशा नहीं है। तो फिर जापान ही इतनी सस्ती चीजें कैसे तैयार कर लेता है, यह एक सवाल है, जो आजकल बड़े-बड़े व्यापारियों के दिमागों को भी परेशान किये हुए है। इस प्रश्न के कई उत्तर दिये जाते हैं, जो अधिकांश में मामले की गहराई में पैठ कर दिये होने की जगह उत्तरदाताओं के अपने-अपने स्वार्थों को दृष्टिकोण में रख कर दिये जाते हैं। आज हम इसी प्रश्न पर विचार करेंगे। हम इस जगह यह कह देना चाहते हैं कि हम स्वयं न तो कभी जापान जा पाये हैं और न हमारे किसी जापानी वस्तु का व्यापार ही है। यह विवेचन कुछ तो जापान जाकर आये हुए मित्रों की राय पर और कुछ इस मामले के निष्पक्ष अध्ययन पर अवलम्बित है। यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि जापानी चीजें उस आयात-कर, जो भारत सरकार द्वारा उस पर लगाया जाता है, के जबर्दस्त समुद्र को पार करने के बाद भी इतनी सस्ती आकर पड़ती हैं कि देख कर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।

आगे बढ़ने के पहले हम इस प्रश्न के उन उत्तरों पर विचार करेंगे, जो साधारणतया हमारे सामने पेश किये जाते हैं। पहली बात जो कही जाती है वह यह है कि जापान के व्यापारी अपनी वस्तुओं का Dumping करते हैं। किसी वस्तु विशेष को तैयार करने में जो लागत लगती है उस लागत से कम कीमत में बाजार हाथ में कर लेने की गरज से बेचने को Dumping कहते हैं। दूसरी बात यह कही जाती है कि जापान की सरकार बहुत आर्थिक सहायताएं और सुविधाएं देकर जापान के निर्यात-व्यवसाय को और साथ साथ Dumping को प्रोत्साहित करती है। तीसरी बात यह कही जाती है कि जापान-सरकार ने येन (जापानी सिक्का) की विनिमय दर को जानबूझ कर घटा दिया है और इस प्रकार जापान के निर्यात व्यवसाय को बढ़ावा देकर दुनिया के बाजारों में खलबल पैदा कर दी है। चौथी बात जो बहुत जोर देकर कही जाती है, वह यह है कि जापान में मजदूरी बहुत सस्ती है, वहा के मजदूरों का Standard of living (रहन-सहन का मान) बहुत नीचा है, वे गुलामों की तरह रहते हैं, इसलिये यह कुदरती बात है कि ऐसे मुल्क में चीजें इतने सस्ते

दामों पर तैयार हो सकती हैं जो दूसरे देशों में बिना उनके मजदूरों के रहन-सहन को गिराये तैयार हो सकना सम्भव नहीं। यह बात कहने वाले साथ-साथ यह भी कहते हैं कि ये सस्ती जापानी चीजें संसार भर के Standard of living को नीचा गिरा देंगी, इसलिये ये जापान के व्यवसायी 'मनुष्यता के शत्रु' हैं और इसी कारण हम सब को पारस्परिक सहयोग के द्वारा जापानी वस्तुओं के आयात को रोक कर संसार की सभ्यता को नीचे गिरने से बचाने की भरसक चेष्टा करनी चाहिये। और भी इसी प्रकार की कई बातें कही जाती हैं, पर मुख्य कारण, जो जापान की चीजों के हमारे बाजार में सस्ते पड़ने के कुछ स्वार्थियों द्वारा बताये जाते हैं, ये ही हैं।

अब देखना यह है कि ये कारण, जो जापान के विरुद्ध अभियोगों के रूप में हैं, कहां तक सच हैं। हमने जहां तक इस बात पर विचार किया है, हमें यही मालूम हुआ है कि इन अभियोग लगाने वालों में अधिकांश व्यक्ति अपने हृदय में अपनी बातों को असत्य और तर्क रहित समझते हुए भी केवल अपने स्वार्थों को पोषण करने की गरज से जानबूझ कर जनता को भ्रम में डालने के लिये ऐसे विचार उपस्थित करते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य यही रहता है कि किस प्रकार जापान की वस्तुओं का अपने बाजार में आना बन्द हो और उनकी अपनी वस्तुओं की खपत बढ़े। अब उपरोक्त एक एक अभियोगों को लेकर विचार करना ठीक होगा। जापान के व्यवसाइयों ने लागत से कम कीमत पर अपनी वस्तुओं का कभी निर्यात नहीं किया है। इस बात की सत्यता इसी से प्रकट हो जाती है कि जापानी फर्मों में काफी लाभ रहता है और खास कर उन फर्मों में, जो जापान के निर्यात व्यवसाय से अधिक सम्बन्ध रखती हैं, दूसरे उद्योग धंधों की अपेक्षा बहुत अधिक लाभ उनमें रहा है। अगर वे फर्म इतने वर्षों से लगातार ही Dumping करती रहतीं तो क्या यह लाभ रहता ?

यह सच है कि जापान की सरकार आर्थिक सुविधाएं और सहायता देकर निर्यात-संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहित करती रही है। लेकिन किसी अनुचित हद तक नहीं। फिर यह तो हरेक देश की सरकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह स्वदेश के वाणिज्य-व्यवसाय की वृद्धि का हर प्रकार से ध्यान रखे। पहले जापान का विदेशी व्यवसाय छोटे-छोटे एक्सपोर्टर्स के हाथों में था। सहयोग और संगठन के अभाव से बहुधा उन लोगों में अर्थहीन प्रतिद्वन्दिता हो जाती थी, जिससे किसी को कोई फायदा न होता था। उससे नतीजा सिर्फ यही होता था कि चीजों की क्वालिटी घटिया हो जाती थी और इससे जापानी वस्तुओं की साख घट जाती थी और फलतः विदेशी बाजार हाथ से जाते रहते थे। उस समय जापानी वस्तुओं की जो साख घटी थी, उसी का यह परिणाम है कि आज भी जापानी चीजें साधारणतया घटिया क्वालिटी की ही समझी जाती हैं। वे चाहे जितनी टिकाऊ हों, पर हमारे दिमाग में यह ख़याल एक प्रकार से जड़ पकड़ गया है कि वे टिकाऊ नहीं होतीं। फिर उनका वर्त्तमान बढ़ा चढ़ा सस्तापन देख कर तो यह विश्वास दृढ़ सा हो जाता है कि वे टिकाऊ नहीं होतीं। हमने कई व्यक्तियों को इसी गलतफहमी के कारण जापानी वस्तु खरीदने की जगह चौगुने दाम देकर भी ब्रिटेन या जर्मनी की वस्तु खरीदते देखा है।

इसी व्यर्थ की प्रतिद्वन्दिता से उत्पन्न हुई बुराइयों को दूर करने के लिये सन् १९२५ की पहली सितम्बर

से जापान की सरकार ने निर्यात-संस्था-कानून (Export association Law) बनाया, जिसका फल यह हुआ कि जापान का निर्यात-व्यापार सहयोग और संगठन की भित्ति पर स्थापित हो गया। जापान सरकार ने कोई अनुचित आर्थिक सहायता निर्यात व्यवसाय को न दी। केवल एक छोटी सी रकम जो सन १९३१ से जापान सरकार ने विदेशों में स्थित जापानी निर्यात-संस्थाओं की शाखाओं को सहायता स्वरूप देना आरम्भ किया है, इस बात का अपवाद हो सकती है। इन शाखाओं का मुख्य काम यही है कि वे निर्यात के लिये जो वस्तुएं हों, उनकी कम से कम कीमत और अधिक से अधिक संख्या पर नियन्त्रण रखें। इसमें साफ जाहिर हो जाता है कि इन निर्यात संस्थाओं का काम dumping को रोकना है, उसे प्रोत्साहित करना नहीं। कई व्यक्ति जापान सरकार के विरुद्ध यह अभियोग लगाते हैं कि वह जहाजी कम्पनियों को अनुचित रूप से आर्थिक सहायता देकर जापान के निर्यात व्यवसाय को प्रोत्साहित करती है। इसमें कोई सन्देह नही कि वह जहाजी कम्पनियों को रकम देती है, पर इसे किसी प्रकार की सहायता कहना अनुचित होगा। यह तो वह केवल ऋण शोध के रूप में देती है। उदाहरणार्थ डाक ले जाने के लिये। फिर अगर इसे हम सहायता भी कहें तो एक जापान सरकार ही अपने जहाजों को सहायता नहीं दे रही है। इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली और संयुक्त-राज्य भी अपनी-अपनी जहाजी कम्पनियों को सहायता देते ही हैं। टोकियो स्थित ब्रिटिश कामर्शियल राजदूत ने अपनी एक रिपोर्ट में हाल ही में कहा है कि: —

'संसार के लगभग सभी देशों से जो रिपोर्टें यहां प्राप्त होती हैं, उनसे यह मालूम होता है कि जापान सरकार की अपने देश के व्यवसाय के प्रति आर्थिक सहायता के लिये विदेशों में बहुत गलतफहमी फैली हुई है। उसके विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि जापान सरकार अपने मजदूरों को काम में लगाये रखने के लिये यहां बड़े-बड़े उद्योग धन्धों को आर्थिक सहायता करती है। ये सब रिपोर्टें भ्रमजनक हैं। जो रकम जापान सरकार देती है, वह बहुत नगण्य है।'

यह निःसन्देह सच है कि येन (जापानी सिक्का) की विनमय दर में कमी होने की वजह से जापान का निर्यात बहुत बढ़ा है। लेकिन यह कहना केवल भ्रम ही नहीं, परले सिरे का मिथ्यात्व है कि जापान की सरकार ने जान बूझ कर ऐसा किया है। इस विषय पर हम पूरा विवेचन स्थानाभाव के कारण नहीं कर सकते। उस पर तो एक स्वतन्त्र निबन्ध ही लिखा जा सकता है। यहां पर केवल यही कह देना पर्याप्त होगा कि यह विनियम दर की कमी कुछ ऐसे कारणों को लेकर हुई है, जिन पर जापान सरकार का कोई अधिकार नहीं। उदाहरणार्थ विदेशों में जापान की साख का घटना, जापान के भविष्य के प्रति विश्वास न रहना आदि। यह बात इसीसे प्रकट है कि सन १९३२ के जून में जापान सरकार के ५ /' के स्टर्लिङ्ग बोण्ड, जिनकी Face value पूरी एक सौ पाउण्ड थी इतने नीचे गिर गये कि उनकी कीमत केवल ४० पौण्ड रह गई। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि येन के गिरने के कारण जापान के निर्यात व्यवसाय में वृद्धि हुई है। लेकिन अन्य देशों की राय इस विषय में अतिरञ्जित है। जापान की सरकार यह बात अच्छी तरह समझती है कि नीची विनिमय दर दुधारी तलवार की तरह है। इसमें निर्यात व्यवसाय को बहुत थोड़े समय के लिये और किसी हद

तक ही सहायता पहुंच सकती है। फिर जापान जैसे देश में तो यह अधिक समय तक लाभदायक रह ही नहीं सकती, क्योंकि जापान की आयात, वहां की निर्यात से बहुत अधिक है, जापान का सारा वाणिज्य विदेशों से आये हुए कच्चे माल पर ही निर्भर करता है।

अब सबसे जोरदार अभियोग जो अन्य देशवाले जापान पर लगाते हैं, वह है वहां के मजदूरों की गिरी हुई दशा यानी सस्ती मजदूरी। यह बात जापानी स्वयं कबूल करते हैं कि जापान के मजदूरों की दशा सन्तोषजनक नहीं है और वहां कुछ अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी की दर भी अधिक ऊंची नहीं है। लेकिन यह बात विचारने के साथ ही यह सवाल उठता है कि संसार में इस समय ऐसा कौन सा देश है, जहां मजदूरों की दशा सन्तोषजनक हो ? ऊंची मजदूरी की दर से ही यह साबित नहीं हो पाता कि वहां मजदूरों की दशा अच्छी है। केवल मजदूरी की दर के माप से विभिन्न देशों के मजदूरों की दशा की तुलना नहीं की जा सकती। जापान से लौटे हुए अपने मित्रों के मुंह से जापान का हाल सुन कर मेरा तो यही विश्वास हो गया है कि अन्य कई देशों की अपेक्षा जापानी मजदूर अधिक सुखी हैं। श्री कालीप्रसादजी खेतान की जापान यात्रा का वर्णन सुन कर और 'ओसवाल नवयुवक' के गत अगस्त के अंक में श्री पुखराजजी हींगड़ की जापान यात्रा का वर्णन पढ़ कर मेरे इस विश्वास की और भी पुष्टि हुई है। अगर जापान में मजदूरी की दर नीची है तो वहां का जीवन भी कम आडम्बरपूर्ण और अधिक सादा होता है। अपने स्वार्थों में धक्का लगते देख कर अन्य देशों के पूंजीपति जापान के मजदूरों की गिरी हुई दशा पर आंसू बहायें, इसे हम बगुला-भक्ति के सिवा और क्या कह सकते हैं ? हमारे बम्बई के मिल मालिकों को ही ले लीजिये। रेल किराये की थोड़ी सी बचत के लिये वे भारत का कोयला न खरीद कर विदेशी कोयला मंगाते हैं, पर अपने स्वार्थों में धक्का लगता देख कर जापानी वस्त्रों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करते हैं। 'सत्तर चूहे खाय, बिल्ली चली हज़ को' वाली लोकोक्ति इनके विषय में अच्छी तरह लागू होती है। मेरा तो यहां तक विचार है कि हम भारतीयों के लिये ये बम्बई के मिल मालिक जापानी मिल मालिकों से किसी प्रकार अधिक अच्छे नहीं हैं।

हां, तो अब हमें यह देखना है कि जापानी चीजों के इतनी सस्ती होने के वास्तविक कारण क्या हैं ? इन कारणों को मोटा-मोटी हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) Rationalization, (२) दक्षता की वृद्धि और लागत में कमी, (३) जापान के मजदूरों की एक स्वामिभक्ति और उनकी मजदूरी की कुछ विशेषताएं।

(१) Rationalization

गत यूरोपीय महायुद्ध में जापान के उद्योग धन्धों में बहुत वृद्धि हुई। उस समय ये उद्योग धन्धे संगठित नहीं थे और व्यवसाइयों में परस्पर बहुत अनुचित प्रतिद्वन्द्विता फैली हुई थी। महायुद्ध के बाद इनको लगातार कई आफतों का सामना करना पड़ा। उनमें से मुख्य ये हैं (१) महायुद्ध के बाद का फैला हुआ विश्वव्यापी आर्थिक संकट, (२) सन् १९२३ का जबर्दस्त भूकम्प, (३) सन १९२७ का आर्थिक संकट और (४) सन् १९३० में स्वर्ण-प्रतिबन्ध हटाने के बाद होनेवाली विनमय दर में कमी। किन्तु इन कठिनाइयों ने एक प्रकार से जापान के वाणिज्य व्यव-

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियां और शुभ कामनाएं

देशभक्त सेठ श्री पूनमचन्दजी रांका

नागपुर से देशभक्त सेठ श्री पूनमचन्दजी रांका लिखते हैं —

'ओसवाल नवयुवक' के अंक मिले। सम्पादन अच्छा हो रहा है। आप लोगों का परिश्रम सराहनीय है। मैं 'ओसवाल-नवयुवक' के लिये क्या सन्देश भेजूं? समाज में जो सुधारक, सेवक या प्रमुख हैं, वे समाज को जो जो उचित मार्ग व्याख्यान, लेख द्वारा बताते हैं, उन मार्गोंपर स्वयं चलने लग जांय तो समाज बहुत कुछ आगे बढ़ सकता है। लेकिन आज कहनेवाले स्वयं वैसा आचरण करते नहीं, इसी से समाज पिछड़ रहा है। आशा है 'नवयुवक' इस दिशा में प्रकाश डालेगा।
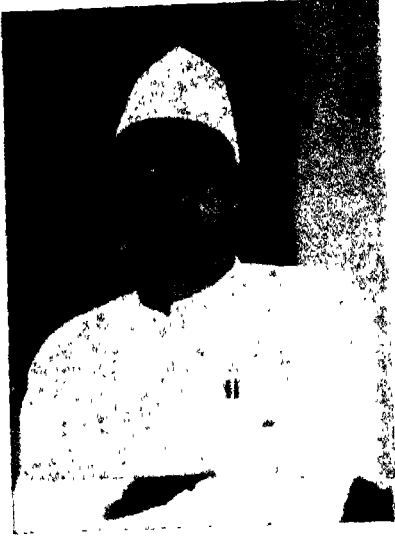
'सत्य सन्देश' कहता है:—

दो वर्ष बन्द रह कर यह मासिक पत्र नई सजधज के साथ प्रकाशित हुआ है। संकुचित नाम होने पर भी उदार नीति से काम करता है। अनेक विषयों की उपयोगी सामग्री रहती है। छपाई सफाई बहुत सुन्दर है। हम सहयोगी का स्वागत करते हैं।

उदयपुर, २०-१०-३६

'ओसवाल-नवयुवक' का अंक मिला। इसके पुनः प्रकाशन से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। पत्रका सम्पादन आप लोगोंके हाथों अच्छा हो रहा है। मैं यहां इस पत्र के ग्राहक बनाने का प्रयत्न करूंगा

बलवन्तसिंह महता

'नवराजस्थान' कहता है:—

इस मासिक पत्र का प्रकाशन, ओसवाल समाज के युवकों में जागृति उत्पन्न करने और जीवन का संचार करने के लिये, कलकत्ते के उत्साही युवकों के परिश्रम का फल है। पहिले छः वर्ष तक प्रकाशित होते रह कर यह उल्लेखनीय प्रचार करता रहा था, परन्तु फिर इसका प्रकाशन बन्द हो गया था। अब यह पुनः गत चार मास से प्रकाशित होने लगा है। पत्र में स्फूर्तिप्रद और ज्ञानवर्द्धक लेख, व्यवसाय चर्चा और मनोरंजन की सामग्री भी जुटाई जाती हैं। यह ओसवाल युवकों के लिये अपनाने की वस्तु है।

अजमेर, २८-६-३६

'नवयुवक' का अंक प्राप्त हुआ। इसके पुनर्प्रकाशन से बड़ी प्रसन्नता है। पत्र वास्तव में बड़ी उच्चकोटि का है। प्रत्येक नवयुवक को इसे अवश्य अपनाना चाहिये।

धनकरण चोरड़िया।

साय का भला ही किया। जो कमज़ोर भित्ति पर खड़ी हुई व्यर्थ की प्रतिद्वन्दिता मचानेवाली फर्म थीं, उनमें से कुछ तो 'Survival of the fittest' के नियम के अनुसार मैदान में न ठहर सकीं और स्वयं नष्ट हो गईं और कुछ अच्छी मजबूत फर्मों में शामिल हो गईं। इस शामिल हो जाने का (amalgamation) का यह फल हुआ कि किसी वस्तु विशेष को बनाने की कीमत (Cost of production) में इतनी कमी हो गई कि जापानी उद्योग धन्धे दूसरे देशों के प्रतियोगी उद्योग धन्धों के मुकाबले आसानी से ठहर सके। इस Amalgamation के बाद जापानियों ने अपने उद्योगों के Rationalization की ओर ध्यान दिया। प्राचीन और भद्दी मशीनों की जगह उन्होंने नई और अप-टू-डेट मशीनें प्रचलित कीं, उद्योग-शिक्षा की ओर ध्यान दिया, उद्योग धन्धों के हरेक पहलू पर ध्यान देकर उनमें होने वाली बरबादी (Waste) को दूर करने का प्रयत्न किया, प्रबन्ध और संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया। इसी Rationalization, जिसके लिये यद्यपि जापानियों को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है, ने जापान के उद्योग को प्रतियोगिता के मैदान में डटे रहने की वह शक्ति दी है, जो विदेशों में खतरा 'Menace' हो गई है।

(२) दक्षता की वृद्धि और लागत में कमी

दूसरी बात, जिसने जापान को अन्य देशों के मुकाबले बाजार अपनाने की शक्ति दी है, वह है दक्षता की वृद्धि और लागत में कमी। अपने मजदूरों को दक्ष बनाने की ओर केवल सरकार और मिल मालिकों ने ही ध्यान नहीं दिया है, बल्कि मजदूरों ने भी स्वयं दक्षता प्राप्त कर अपने देशको संसार की प्रगति में आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है। वहां के मजदूर कामचोर नहीं किन्तु महनती हैं। जापान में बराबर यह प्रयत्न किया गया है और किया जा रहा है कि किस प्रकार किसी चीज़ के तैयार करने की लागत (Cost of production) में कमी हो। वहां के सूत-व्यवसाय (Cotton spg. & wvg.), खानों से कोयला निकालने (Coal mining), नकली रेशम (Artificial silk), रेलवे के कारखाने (Railway workshops) आदि उद्योगों का अगर कोई ध्यान पूर्वक अध्ययन करे तो उसे मालूम हो जायगा कि जापानियों ने Elimination of varions processes (विभिन्न तरीकों के हटाने) की ओर कितना ध्यान दिया है। इस Elimiantion से किसी वस्तु के तैयार करने की लागत में बहुत कमी हो गई है और यही कारण है कि अन्त में जाकर बाजार में वे वस्तुएं बहुत सस्ती पड़ती हैं। इस जगह हम विस्तार पूर्वक बतला सकते थे कि किस प्रकार उन्होंने Elimination of processes किया है; पर यह जरा Technical बात है, इसलिये बिना स्वयं देखे अधिक समझ में नहीं आ सकती और अरुचिकर सी लगती है। एक दो उदाहरण हम दे देना चाहते हैं। जिसने कभी कोई काटन मिल देखा है, वह जानता है कि सूत बुनने (Cotton spinning) में बाबिन के चार Process होते हैं लेकिन जापानियों ने अब बाबिन (Bobbins) के तीन ही Process रखे हैं। इसी प्रकार रेल के पूरे इञ्जिन को ओवरहाल (Overhaul) करने में अब जापान में केवल पांच दिन लगते हैं, जहां १७ वर्ष पहले पूरा एक महीना लगा करता था। संसार के अन्य किसी भी देश में इतना जल्दी ओवरहाल नहीं हो पाता है।

(३) जापान के मजदूरों की एक खासियत और उनकी मजदूरी की विशेषताएँ

जापान का औद्योगिक व्यक्ति Rationalization के मैदान में कितना आगे बढ़ा हुआ है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि वह अपनी मशीनों पर इसलिये गर्व नहीं करता कि उन्होंने उसे बहुत वर्षों तक काम दिया है; उसे उन मशीनों को उस समय त्यागने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है, जब उसे एक नई और अप-टू-डेट तथा कम खर्चे की मशीन मिलती है। यहां पर ध्यान देने की बात है कि कोई भी मशीन का मालिक पुरानी की जगह नई और कम खर्चे वाली मशीन रखने का कितना ही इच्छुक क्यों न हो, अपने मनोरथ में पूरा सफल नहीं हो सकता, जब तक उसके इस कार्य से उसके मजदूर पूरे राजी न हों। इङ्गलैण्ड में कोई मिल मालिक साधारण साँचों (Looms) के स्थान पर Automatic (अपने आप चलने वाले) साँचे नहीं रख सकता, क्योंकि वहां की ट्रेड यूनियन उसके इस कार्य का विरोध करती है। इसके अलावा एक नई मशीन किसी काम की नहीं रहेगी, अगर मजदूर उस पर काम न कर सके। इस विषय में जापान का मजदूर अपनी एक खासियत रखता है। वह किसी नये परिवर्त्तन का विरोध नहीं करता, बल्कि अपने आप को नवीन वातावरण के अनुसार बना लेता है। Elimination of process के साथ वहां के मजदूर का पूरा सहमत है। अन्तर्राष्ट्रीय लेबर आफिस, जेनेवा के असिस्टेण्ट डाइरेक्टर मि० फरनेण्ड ने यह कहते समय कोई अत्युक्ति नहीं की है कि जापान का मजदूर ही जापान की सच्ची पूंजी है।

जापान के मजदूर की कुछ विशेषताएं ये हैं। वह परिश्रमी, प्रतियोगी, अध्ययनशील, दक्ष और प्रकृति-प्रेमी होता है। पश्चिम में जहां मजदूर वर्ग का ध्येय कम से कम घंटे काम करने का और इन घंटों में कम से कम काम करने का और इस काम के लिये ज्यादा से ज्यादा मजदूरी प्राप्त करने का रहता है। लेकिन जापान में ऐसा नहीं है। वह मजदूर, जो कम समय में ज्यादा और अच्छा काम कर दिखाता है, प्रशंसा का पात्र होता है। लोग उसे आदर्श समझने लगते हैं। इसी प्रकार वहां का मजदूर एक प्रतियोगी है। किसी एक फेक्टरी के सदस्य की हैसियत से वह अच्छा और तेज काम कर निकलने में दूसरी किसी फेक्टरी के मजदूर से आगे रहना चाहता है। वह इस बात को खूब जानता है कि संसार की व्यवसायिक प्रतिद्वन्दिता में डटे रहने में ही जापान का जीवन है। जापानी मजदूर अध्ययनशील भी कम नहीं होता। वह सदा अपने जीवन में, जहां है वहां ही न रह कर, आगे बढ़ना चाहता है। उसकी अध्ययन की इच्छा केवल उसकी नौकरी के काम तक ही सीमित नहीं है। उसे हमेशा विज्ञान, राजनीति और साहित्य का अध्ययन करने की भूख रहती है। वह नये नये आविष्कार करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहता है और इसके लिये उसे इनाम मिलता है। जापानी मजदूर अपने काम में कितना दक्ष होता है, यह इसीसे प्रकट है कि जापान की मजदूरी की दर कम होते हुए भी जापान के रेशम की टक्कर में चीन का रेशम नहीं ठहरता, क्योंकि चीनी अपने काम में जापानियों की अपेक्षा अधिक दक्ष नहीं हैं। जापानी मजदूरों का प्रकृति प्रेम भी उनके स्वास्थ्य पर सुन्दर प्रभाव डालता है। वे खेल कूदों में बहुत भाग लेते हैं और समय समय पर यात्रा आदि करते रहते हैं।

अब मैं यह कह कर अपना लेख समाप्त कर देना

चाहता हूं कि उन व्यक्तियों को, जो अपने स्वार्थों के कारण जापान के विरुद्ध झूठे अभियोग लगाते हैं यह ध्यान में रखना चाहिये कि 'Protection is no substitute for efficiency' अर्थात् संरक्षण से दक्षता के स्थान की पूर्त्ति नहीं हो सकती और जापान इस बात को खूब समझता है। इस प्रकार झूठे अभियोग लगाने मात्र से ही प्रतियोगिता के मैदान में जीत नहीं हो सकती। अगर उन्हें सफल होना है, तो उन्हें जापान से सबक सीखना पड़ेगा।

शारीरिक ज्ञान

[डाक्टर बी० एम० कोठारी एम० बी०, बी० एस०]

(४)

मनुष्य-देह रूपी मशीन के सबसे मुख्य भाग अर्थात् खोपड़ी (Skull) को सर्वोपरि स्थान में रखने के लिए गठित और सुदृढ़ स्तम्भों की आवश्यकता होती है। इस हेतु एक Vertebral column (रीढ़) खड़ा किया गया है, जिसको २६ हड्डियों ने मिल कर बनाया है। खोपड़ी को हर समय दाहें-बाहें घूमने की जरूरत पड़ती रहती है, इसलिए इस रीढ़ के सांधे इस चतुराई से बनाये गये हैं कि ऐसे नाजुक movements के होते हुए भी स्तम्भ की सुदृढ़ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इनकी देह (Body) में एक सूराख कर दिया गया है, जिसमें Spinal cord (ज्ञान-तन्तुओं का समूह) रहता है, जो Brain (मस्तिष्क) को देह के दूसरे भागों से सम्बन्धित रखता है और उनकी दशाओं अथवा गति की सूचना उसको देता रहता है। मनुष्य को विषम life-struggle (जीवन-संग्राम) में बहुधा कूदना-फांदना भी पड़ता है, इसलिए इन Vertebree के बीच में Cartilege रख दिये गये हैं, जिससे इच्छित elasticity (लचीलापन) प्राप्त हो जाती है और मस्तिष्क हानिकारक shocks से मुक्त हो जाता है।

देह के अन्य नाजुक भागों को भी सुरक्षित रखना आवश्यक है। Heart (हृदय) और lungs (फेफड़े) दोनों ही ऐसे organs (अंग) हैं, जिनकी कुशल गति और सहयोग पर ही जीवन निर्भर है। इनके लिए भी हड्डी का एक दुर्ग बनना चाहिये, ताकि बाहरी चोटों का असर इन पर आघात न पहुंचा सके। पर साथ ही साथ यह दुर्ग ऐसा होना चाहिये कि दृढ़ होते हुए भी lungs के फैलने (expand) और सिकुड़ने (contraction) की गति को बाधा न हो। इस कठिन समस्या का समाधान भी बड़ी कुशल रीति से किया गया है। २४ पसलियों (Ribs) ने मिल कर सचमुच ऐसा ही उत्तम सन्दूक बनाया है। पीठ में यह Vertebral column से इस प्रकार जोड़ दी गई है कि इन सांधों में फैलाव के लिए यथेष्ट स्थान

हो। आगे की और ऊपर की हड्डियां Manubrium skrim से जुड़ी हुई हैं, उसके नीचे की ३ हड्डियां आपस में एक दूसरे के साथ ligaments और Muscles द्वारा संयुक्त कर दी गई हैं और बची हुई २ हड्डियां बिल्कुल खुली हैं। दो clavicles (हंसलियां) ऊपर से इस सन्दूक की रक्षा करती हैं। इस दुर्ग में सुरक्षित Heart अंग के प्रत्येक भाग से अशुद्ध खून को खींचता है और उसे साफ करने लिये फेफड़ों के पास pump कर देता है--यह है Heart-beat (हृदय-धड़कन) की गति और उसका प्रयोजन। फेफड़ों के फैलने से शुद्ध हवा का प्रवाह होता है जिसमें से ताजा oxygen रक्त में मिल जाता है और खून की अशुद्ध वस्तु Carbonic acid gas हवा में फैल जाती है और lungs के सिकुड़ने के साथ बाहर फेंक दी जाती है। इस प्रकार शारीरिक आरोग्यता के लिए फेफड़ों में रक्त शुद्ध किया जाता है और हृदय के द्वारा अंग के प्रत्येक भाग में life activity को चलाने के लिए पहुंचाया जाता है।

यह धड़ (Trunk) दो pedestals पर खड़ा है और उनके पैरों में मेहराबों (arches) का आयोजन किया गया है, क्योंकि इनके mechanism में मजबूती एवं springiness दोनों का खूब अच्छा मिश्रण है। इस pedestal के ऊपरी भाग को pelbis बोलते हैं। इस Basin के सूराखों में से रक्त की नलियां और ज्ञान-तन्तु lower extremities को जाते हैं और मैल-मूत्र के द्वार भी यहीं हैं। जांघ (Thigh) की हड्डी इस pelbis से जुड़ी हुई है और इस सांधे का नाम Hip Joint है जो बड़े मजबूत सांधों में से एक है। किसी वस्तु को पृथ्वी पर उठाने के लिए झुकने की भी आवश्यकता पड़ती है, इस लिए जांघ और टांग (leg) के बीच में घुटने (knee) का सांधा रखा गया है। पैर ankle joint के द्वारा टांगों से सम्बन्धित है। एड़ी (Heel) पर पूरे मनुष्य का बोझ स्थित है और इस arch-mechanism में यह एक सफल Lever का काम करती है। Lower extremity कुल ३१-३१ हड्डियों का बना हुआ है, जिनमें अधिकतर (२६) हड्डियां पैर के के घड़ने में जुटी हुई हैं।

अब रहे हाथ यह भी तो पैर के समान ही हैं। सच तो यह है कि पशु से मनुष्य के evolution (विकाश) के साथ ही पैर हाथ में बदल गये। चार पैर पर चलने वाला पशु दो पैर पर खड़ा हो गया और आगे के दो पैर हाथ बन गये जिससे मनुष्य ने अस्त्र सम्हाले और अपने प्रतियोगियों पर हकूमत जमाई, Upper Extremity में ३२-३२ हड्डियां हैं। Hip की जगह यहां shoulder Joint (कंधा) है, परन्तु अन्तर इतना है कि पहला अगर मजबूत है तो दूसरा Wide movements में सबसे आगे है। Elbow बिना खाने में और बाल बनाने में असुबिधा होती और कलाई की उपयोगिता तो हर काम में प्रकाशित ही हैं। क्या ही सुन्दर Design हैं। मनुष्य-कृत मशीनों में इन्हीं Principles और Plans का ही तो अनुकरण किया गया है।—क्रमशः।

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत बी० कॉम]

(गताङ्क से आगे)

(८)

गोपालचन्द्र का ड्राइंग रूम आज एक खासा डिबेटिंग क्लब का दृश्य उपस्थित कर रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि डिबेटिंग क्लब में प्रत्येक वक्ता केवल अपना पक्ष प्रतिपादन करने के लिये ही अपनी दलीलें पेश करता है, चाहे वे दलीलें उसकी आत्मा के द्वारा मान्य हों या न हों, पर यहां प्रत्येक वक्ता अपनी आत्मोक्त दलीलों को पेश कर रहा है, चाहे वे दलीलें तर्क द्वारा सर्व-मान्य ठहर सकें या नहीं। गोपालचन्द्र आज अपने बड़े भाई के आगमन से अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, पर पीछे उनके आगमन का कारण जान कर चिन्तित भी कम न हुए थे, क्योंकि कलकत्ते जैसे महानगर में रह कर वे जमाना देख चुके थे और इस बात को भली प्रकार समझते थे कि युवकों की, तरूण भारत के युवकों की आत्मा को परास्त करना हंसी ठट्ठा नहीं है; उनकी आत्माएं त्याग के लिये होड़ लगा रही हैं।

कमला और विमला ने भी बाबू राधाकान्त को कभी देखा न था, इसलिये आज एकाएक उन्हें यहां देख कर उनके भी हर्ष और विस्मय का ठिकाना न था, पर उनके आने का कारण जान कर कमला जहां और भी अधिक शान्त और शिष्ट हो उठी थी और परिणाम को अभी नजदीक भविष्य में न देखना चाहती थी, वहां विमला अत्यन्त चपल और मुखर हो उठी थी और परिणाम देखने के लिये मानो उसका कौतुक उबला पड़ता था। उधर सरलता की मूर्त्ति सरला देवी भी अपने जेठ के आने से आशातीत प्रसन्न हुई थी, क्योंकि यों तो कलकत्ते में अपने इष्ट मित्र कितने ही थे, पर खून पानी से सदा गाढ़ा होता है, पराये पराये ही हैं और अपने अपने ही। कमला के विवाह पर उसने इन लोगों के आने की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा की थी, पर विवाह जिस प्रकार पर्दा और दहेज प्रथा आदि को ठुकरा कर किया गया था, उस पर बाबू राधाकान्त रुष्ट हो गये थे और यही कारण था कि कमला के विवाह में सिवाय प्रकाश के इन लोगों की ओर से और कोई भी योग न दे सका था। आज उन्हीं जेठ को अपने यहां आया हुआ देख कर सरलादेवी की प्रसन्नता का ठिकाना न था। उन्होंने सिर पर साड़ी को और आगे खींच कर, गले में आंचल डाल कर लजाया हुआ मुख लिये राधाकान्त को प्रणाम किया था। पहले तो राधाकान्त यह भी न समझे कि उन्हें प्रणाम करनेवाली यह स्त्री कौन हो सकती है क्योंकि उन्हें स्वप्न में भी इस बात का गुमान न था कि उनके छोटे भाई की स्त्री उन्हें इस प्रकार खुले मुंह निर्लज्जतापूर्वक प्रणाम कर सकेगी। पर जब सुशील के कहने पर उन्हें विश्वास हुआ तब वे स्वयं ही मुंह फेर कर कुर्सी पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद प्रकाश भी गांधी टोपी लगाये, चप्पल चटपटाते हुए वहां आ पहुँचा और आते न आते कमला के पास पहुँच कर बोला, "बहन, क्या बताऊँ, यहां के पुलिसवाले सारी रात धरना दिये बैठे रहे, जैसे स्क्वायर उन्हीं का है, पर हम भी उन के लकड़दादा हैं। सारा बन्दोबस्त इस खूबी से किया है कि उन को पता भी न लगे।" पर जब

कमला ने मुस्कुराते हुये बाबू राधाकान्त की तरफ इशारा किया तब तो प्रकाश के देवता ही कूच कर गये। उसे स्वप्न में भी गुमान न था कि उसके क्रोधी पिता यहां तक आने का कष्ट उठायगे। उसने गांधीटोपी उतार कर उसे छिपाने की चेष्टा करते हुये इतनी दीन दृष्टि से सरलादेवी की ओर ताका कि वह ममतामय मातृहृदय अपनी करुणापूर्ण मुस्कुराहट को न रोक सका। अन्त में लज्जित हृदय और नीची नज़र से प्रकाश ने पिता को प्रणाम किया और सुशील के पास ही कुर्सी पर बैठ गया। उसने एक बार सुशील की ओर देखा। सुशील की आंखों में दीप्ती थी और था प्रकाश के अस्थिर और चचल व्यवहार के प्रति उपहास। वहां भी प्रकाश की नज़र न ठहर सकी। उसने कमला की ओर देखा। वहां थी शान्ति और उसके प्रति आश्वासन। उसने कमला के नेत्रों में पढ़ा, "इतने घबड़ाते क्यों हो, युवकोचित व्यवहार करो," तब कहीं उसकी तबीयत ठिकाने हुई और अपनी घबड़ाहट के लिये लज्जा अनुभव करने लगा। नीची नजर किये हुए उसने मां की कुशल पूछी और यात्रा आदि के विषय में समयोचित प्रश्न भी किये। राधाकान्त ने भी अपने भावों पर यथाशक्य नियन्त्रण रखते हुए सब प्रश्नों का यथा उचित उत्तर देकर सबको कुशल पूछी।

सरलादेवी बोलीं, "पहले भोजन कर लिया जाय फिर और बातें।"

सबको यह बात पसन्द आई और भोजन करने बैठे। भोजन करते समय इधर उधर की कितनी ही बातें तथा मनोरंजन के लिये कुछ विनोद भी होता रहा। फिर सब ड्राइङ्गरूम में आ बैठे। राधाकान्त ने प्रकाश का वह पत्र निकाल कर गोपालचन्द को दिया और कहा, "लो, तुम ही इसे पढ़ कर विचार करो कि यह कहां तक उचित है।"

गोपालचन्द्र पत्र को शान्त और स्थिर दृष्टि से पढ़ गये और फिर आंखें मूंद कर कुछ देर कुर्सी पर उठंग गये, मानों उस समस्या को सुलझाने की चिन्ता में हों। फिर आंखें खोल कर वे धीरे-धीरे प्रकाश से कहने लगे।

"बेटा, अब तुम बच्चे नहीं हो। सोलह वर्ष की आयु होने पर पुत्र के साथ मित्रवत् आचरण करना चाहिये, ऐसा हमारे शास्त्रों का कथन है। अब तुम स्वयं अपने भले बुरे को पहचानने की शक्ति रखते हो। हमेशा विचार कर इस बात का निश्चय करने का प्रयत्न करो कि तुम्हारी भलाई किस बात में हैं। घर में अंधेरा रख कर कोई मस्जिद में दिया नहीं जलाता है। तुम्हारी अंग्रेजी में भी एक कहावत है कि Charity begins at home अर्थात् सुधार घर से आरम्भ करो। घर के लोगों को दुखी बना कर दूसरों की भलाई करने जाना अगर मूर्खता नहीं तो क्या है? घर में अशान्ति का बीजारोपण कर बाहर शान्ति फैलाने का प्रयास केवल हास्यास्पद है। पिता और माता की आज्ञा मानने का महत्व तुम्हें शायद न समझाना पड़ेगा। फिर अगर तुम्हारे पिता तुम्हें कोई अनुचित आज्ञा देते हों तो दूसरी बात है। पर वे तो बहुत ही उचित परम्परागत आज्ञा प्रदान कर रहे हैं। इस आज्ञा का उल्लङ्घन कर प्रह्लाद बनने की बात तो दरकिनार उल्टे कंस बनना पड़ता है। पिताजी की यही तो आज्ञा है कि तुम विवाह कर अपने गृहस्थ-धर्म का पालन करो। भाई, सेवा का क्षेत्र वास्तव में तुम्हारे कथनानुसार बहुत ही बड़ा है। हर कोई किसी भी परिस्थिति में सेवा कर सकता है। फिर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना कर सेवा करना तो और भी बुद्धिमानी है। सामाजिक जीवन के एक पहलू को अस्तव्यस्त कर दूसरे के चूना मिट्टी लगा कर अगर समाज के ढांचे के दीर्घायु होने का स्वप्न देखते हो, तो मेरी समझ में तो यह तुम्हारी नादानी है। तुम खुद भी इस बात को स्वीकार करते हो कि तुम्हारे लगभग सारे नेता विवाहित ही हैं, फिर क्यों नहीं तुम उन्हीं की सी परिस्थिति उत्पन्न कर सेवा करने का साहस

रखते हो ? विवाह तो मनुष्य के जीवन का एक आवश्यक संस्कार है, उसे पालन न करने को मैं तो हठधर्मी समझता हूं। तुम विवाह को बन्धन कहते हो। मैं भी उसे बन्धन कहता हूं, पर फर्क केवल इतना ही है कि तुम्हारी नजर में वह बंधन ऐसा है जो तुम्हें आगे बढ़ने से रोकता है, पर बेटा, मेरी नजर में वह बन्धन ऐसा है जो हमारे समाज को किसी प्रकार के आघात से टूटने से रोकता है। तुम्हारा इस बंधन के विषय में कुछ भी अनुभव नहीं और मैं अनुभवी हूं। मेरा तो यही अनुभव है कि विवाह जीवन को सुचारु रूप से पार करने के लिये केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। इसलिये मेरा तो समझाना यही है कि तुम पिता की आज्ञा के अनुसार विवाह करो। उन्हें सुखी करो, खुद भी सुखी हो और फिर मजे से निजकी, देश की, जाति की, समाज की या अपने बुजुर्गों की सेवा करना चाहो, करो। क्यों, बेटी कमला, तुम्हारी क्या राय है ?"

गोपालचन्द्र के चुप होते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। सन्नाटे को भंग करती हुई धीरे-धीरे कमला बोली, "आपके सामने मुंह खोलना मेरी धृष्टता है और फिर भला आपको मैं क्या राय दे सकती हूं। फिर भी जब आपकी आज्ञा है, तो मेरी समझ के अनुसार मैं कुछ कहती हूं। दो महत्वपूर्ण कार्यों के एक साथ उपस्थित होने पर खूब सोच विचार कर यह देखना पड़ता है कि कौन सा कार्य अधिक महत्वपूर्ण है, जिसको पहले किया जाना चाहिये। इसी बात के विवेचन में बहुत बड़े विवेक की आवश्यकता है। इस समय प्रकाश भैया के आगे भी दो अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य उपस्थित है। आपके कहने के अनुसार विवाह करना सृष्टि संचालन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। प्रकाश के लिये भी विवाह रूपी महत्वपूर्ण संस्कार का समय उपस्थित है, पर साथ ही देश सेवा का और अधिक महत्वपूर्ण कार्य आ उपस्थित हुआ है। अब उसको या उसके लिये हम सुहृदों को इस बात का विवेचन करना है कि वह कौन से कार्य में पहले हाथ लगावे। हम लोगों ने इस बात का विवेचन किया भी है और इस निश्चय पर पहुचे हैं कि पहले देश सेवा के कार्य को हाथ में लेना चाहिये। आपके कहने के अनुसार यह भी हो सकता है कि विवाह कर वह देश सेवा भी कर सकता है, पर इस समय विवाह करना ही व्यर्थ है क्योंकि विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिये किया जाता है और भारत में इस समय सन्तानों की आवश्यकता नहीं। जनसंख्या इस समय आवश्यकता से अधिक बढ़ गई है। जबकि मुख्य उद्देश्य ही निरर्थक रहा तब 'विवाह' में कोई महत्व ही नहीं रह गया। केवल आपकी आज्ञा पाकर ही मैंने इतना कहा है, अतः धृष्टता को क्षमा कीजियेगा।"

गोपालचन्द्र की बुद्धिमत्ता और अनुभव भरी बातें सुन कर राधाकान्त समझने लगे कि अब प्रकाश को रास्ते पर आना ही पड़ेगा, वह इन दलीलों का उत्तर कभी न दे सकेगा। पर जब उन्होंने प्रकाश के स्थान पर कमला को उन दलीलों का उत्तर देते सुना तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास न आया। उन्हों ने स्वप्न में भी न सोचा था कि एक लड़की के मस्तिष्क में भी इतनी बातें उत्पन्न हो सकती हैं। वे मुंह बाकर उसकी ओर अत्यन्त विस्मयपूर्ण नेत्रों से देखने लगे।

कमला के चुप होते ही विमला कुर्सी आगे खिसकाती हुई तेज होकर बोल उठी।

'कुछ भी कहो दीदा, मैं तो तुम्हें आज तक न समझ सकी। तुम तो सदा से भारत की प्राचीनता की अनन्य भक्त रही हो, पर तुम्हारी आज की बातें तो मुझे बेहद आश्चर्य में डाल रही हैं। विवाह भी क्या केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये किया जाता है ? मैं इस बात को स्वीकार करती हूं कि सन्तानोत्पत्ति विवाहित जीवन का एक आवश्यक अंग है, पर साथ ही यह तो बताओ कि तुम्हारे प्राचीन भारत के आगे क्या विवाह करने का सन्तानोत्पत्ति ही एक

आदर्श कारण था ? नहीं दीदी, इस स्थान पर तुम भूल करती हो। विवाह करने का मुख्य उद्देश्य सच्चे प्रेम की प्राप्ति है। प्रेम ही परमात्मा है, ऐसा शास्त्रों में कहा है। और विवाह कर स्त्री और पुरुष दोनों का मिल कर इस प्रेम परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न करना ही विवाह का मुख्य उद्देश्य है। देश कार्य में परमात्मा प्राप्ति का प्रयत्न भी कभी बाधक हो सकता है, मैं तो इस बात पर विश्वास नहीं कर सकती। विवाह कर लेने पर दोनों ही एक दूसरे को उत्साहित करते हुये मैदान में आगे बढ़ सकते हैं। इङ्गलैण्ड का ही प्राचीन इतिहास ले लो। वहां के नाइट लोग देश सेवा के लिये कैसे कैसे अद्भुत् कार्य करते थे, पर उनको प्रोत्साहन मिलता था उनकी प्रेम पात्रियों से। यहां तक कि वे प्रेम पात्री का होना अपने कर्त्तव्य का आवश्यक अंग समझने लगे थे। अब रही सतानोत्पत्ति की बात। सो अगर सन्तानोत्पत्ति को ही विवाह का मुख्य उद्देश्य माना जाय तो इस दृष्टिकोण से भी प्रकाश भैया का विवाह करना उचित है। अगर ऐसे देश सेवा व्रती मनुष्य विवाह न कर सन्तान उत्पन्न न करेंगे और दूसरे कर्त्तव्यच्युत पुरुष पृथ्वी का भार बढ़ाने को सन्तानें उत्पन्न करते जायंगे तो लाभ के बदले हानि ही होगी। अगर ये व्रती पुरुष भी व्रती सन्तानें उत्पन्न करेंगे तो जरा आंख मींच कर भारत के भविष्य के उज्वल चित्र का ध्यान तो करो। मोतीलाल नेहरू के पुत्र जवाहरलाल का आदर्श भी अगर चाहो तो सामने रख सकती हो। आज इटली के डिक्टेटर मुसोलनी ने अधिक सन्तान उत्पन्न करने के लिये एक पुरस्कार घोषित किया है। क्यों ? इसीलिये न कि अधिक मनुष्य-बल पाकर वे अपनी उस जन संख्या के लिये, जो अभी देश में समाती भी नहीं है, स्थान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। फिर हम भारतवासी ही सन्तानोत्पत्ति को रोक कर और जो हैं उनको मरने देकर किसके लिये और कैसे तथा क्या प्राप्त कर लेंगे ? तुम अगर प्रकाश ही को व्यक्तिगत रूप से लक्ष्य कर यह कह रही हो तो मैं कुछ नहीं कहना चाहती, पर अगर तुमने वे बातें सिद्धान्त रूप से कही हैं तो मैं जोरदार विरोध करती हूं। प्रकाश विवाह कर अधिक दृढ़ता और उत्साह से ठोस देश सेवा कर सकेंगे। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है दीदी, कि तुम लोगों ने केवल जेल जाने मात्र ही को देश सेवा समझ रखी है।

सुशील जरा मुस्कुरा कर बोला, "कमला का उत्तर तुम मुझसे सुनो विमला बहन। कमला केवल अपने विचार प्रकट किया करती हैं। ऐसा करते हुए वे कभी तर्क का आश्रय नहीं लेती। इसलिये सिद्धान्तों को लेकर झगड़ना समयोचित नहीं है। इस समय जो प्रश्न उपस्थित है, वह निसन्देह प्रकाश के लिये ही है। फिर भी यह मत समझना कि प्रकाश के लिये इस प्रश्न को उपस्थित करते हुए कोई सिद्धान्त पर हम लोग नहीं खड़े हैं। तुमने तथा अन्य बड़े-बड़े कवियों ने दाम्पत्य जीवन की तारीफों के जो पुल बांधे हैं, मैं स्वयं भी उनसे इन्कार नहीं करता और मेरा यह आशय कदापि नहीं कि संसार के समस्त प्राणियों को सन्यास धारण कर लेना चाहिये। मेरा आशय इस समय और ऐसे वातावरण में केवल यही है कि दाम्पत्य जीवन से स्वार्थपरता बढ़ती है। और इस समय जबकि देश, समाज और जाति की यह अधोगति उपस्थित है और जब कि हमारी बात बात में स्वार्थ कूट कूट कर भरा हुआ है, यहां तक कि पत्नी-पुरुष सम्बन्ध में भी स्वार्थ ही का प्राधान्य हो गया है, हमको या किसी बड़े भारी साहित्यिक या किसी उच्च कोटि के कवि को दाम्पत्य जीवन की राग आलापना शोभा नहीं देता। हम लोगों ने इसी जीवन को अपना लक्ष्य समझ कर अपने आपको दाम्पत्य सुख का दास बना लिया है। इस समय हमें ऐसे त्यागियों की, ऐसे उत्साही युवकों की आवश्यकता है जो जाति के उद्धार के लिये, देश की स्वतंत्रता के लिये सर्वस्वत्याग में तत्पर रहें। देश के बड़े-बड़े साहित्यकों को, बड़े-बड़े कवियों

को चाहिये कि वे इसी भाव को जाग्रत करें। मैं इस बात को एक बार फिर दोहराऊँगा कि जनसख्या हमारे देश में आवश्यकता से अधिक बढ़ गई है। इटली और भारत के वातावरण में बहुत ही ज्यादा अन्तर है। बिमला बहन, किसी वस्तु की गहराई तक पहुँच कर ही उस बात का विवेचन किया जा सकता है। इटली स्वतन्त्र है, स्वाधीनता प्राप्त देश है। उसे इस समय अपनी बढ़ी हुई समृद्ध और स्वतन्त्र जनसख्या के लिये वासस्थान की खोज करनी है। इसलिये उसे खोज कर या अन्य राष्ट्रों से छीन कर उपनिवेश बसाने पड़ेंगे। इस कार्य के लिये उसे मनुष्य-बल की अत्यन्त आवश्यकता है। पर हमारा भारत एक पराधीन देश है और जनसंख्या जरूरत से ज्यादा है। उसे अन्य उपनिवेश बसाना तो दूर रहा स्वयं अपने को स्वाधीन करना है। ऐसी हालत में शृङ्गार और प्रेम का ढोल बजाना शोभा नहीं देता है। इस समय तो त्याग, सर्वस्वत्याग की आवश्यकता है।"

राधाकान्त कमला की दलीलें सुन कर बड़े विस्मित और साथ ही दुखित भी हुए, पर विमला की बहस ने जहां उनके बिस्मय को और भी बढ़ाया वहां हर्षित भी हुये। उन्होंने सोचा कि तर्क यथार्थ ही बड़े मार्के का हैं और अपना पक्ष पोषित करते हुये देख कर वे विमला पर बड़े प्रसन्न हुये। पर साथ ही सुशील का उत्तर सुन कर वे बेहद जल भुन गये और दिल में यह खयाल पक्का हो गया कि उनके भोले भाले प्रकाश को इसी सुशील ने ये सब अडंगे सिखाये हैं। पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने सरलता की मूर्ति सरलादेवी को भी इस बहस में भाग लेते देखा।

सरलादेवी चुपचाप इन लोगों की बातें सुन रही थी। पर सुशील के मुंह से दाम्पत्य जीवन के प्रति ऐसे ओछे विचार निकलते देख कर वे चुप न रह सकीं। वे धीरे-धीरे बोलीं,

"मेरे बच्चों, मैं तो पुराने विचारों की स्त्री हूँ। पर मेरी निगाह में जो उचित और अनुचित जंचे, उसे तुम्हें बताना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूं। सुशील, तुम्हारे बलिदान और सर्वस्वत्याग के आदर्श को मैं बुरा नहीं बताती। वह मनुष्य के लिये बहुत ही बड़ा आदर्श है। उस आदर्श को प्राप्त करना मनुष्य के लिये बहुत ऊंचा और महत्वपूर्ण कार्य है। पर जिस प्रकार कुछ व्रतधारियों के उपवास करने से अन्न और जल निरर्थक नहीं हो जाते, उसी प्रकार दो चार युवकों के परित्याग से दाम्पत्य जीवन त्याज्य तथा स्वार्थ भरा नहीं हो जायगा। और--"

विमला बीच ही में हंसती हुई बोल उठी,—"मां, दो चार युवकों का त्याग ही क्यों, भारत में तो दस लाख से अधिक त्यागी घूमते फिरते हैं। क्यों है न ठीक सुशील बाबू?"

सरलादेवी भ्रू कुञ्चित कर बोली,—"विमला तुम्हारी यह बे समय की हंसी मुझे अच्छी नहीं लगती। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस तरह हंसी में तुम इसका विवेचन नहीं कर सकती। दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। इसका त्याग करने मात्र ही से सामाजिक जीवन की नींव उखड़ जायगी और ऊपर का सारा ढांचा गिर पड़ेगा। किसी एक बड़े भारी साहित्यिक ने कहा है "गार्हस्थ्य को ऋषियों ने सर्वोच्च धर्म कहा है। और अगर शान्त हृदय से विचार कीजिये तो विदित हो जायगा कि ऋषियों का यह कथन अत्युक्ति मात्र नहीं है। दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि देवोचित गुणों के विकाश के जैसे सुयोग गार्हस्थ जीवन में प्राप्त होते हैं, और किसी अवस्था में नहीं मिल सकते। मुझे तो यहां तक कहने में सकोच नहीं है कि मनुष्य के लिये यही एक ऐसी अवस्था है, जो स्वाभाविक कही जा सकती है। जिन कृत्यों ने मानव जाति का मुख उज्वल कर दिया है, उनका श्रेय योगियों को नहीं, दाम्पत्य सुख भोगियों को है। हरिश्चन्द्र, कृष्ण, नेपोलियन और नेलसन आदि इसी बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं।" सुशील, अगर विमला के

कहने के अनुसार मैं भी तुमसे यह कहूं कि तुम लोगों ने केवल जेल जाने मात्र ही को देश सेवा समझ रखी है तो नाराज मत होना क्योंकि तुम्हारे तथा प्रकाश के इस प्रकार विवाह न कर जेल जाने ही को सबसे बड़ी देश सेवा समझ बैठने में मुझे तो कुछ तथ्य नजर नहीं आता। तुम्हें याद है भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनाते हुये लार्ड मैकाले ने क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि अगर किसी देश या जाति पर कोई दूसरा देश या जाति शासन करना चाहती है तो उसे उस जाति का साहित्य तथा इतिहास नष्ट कर अपने साहित्य और इतिहास को उसमें फैलाना चाहिये। इसी कथन के अनुसार उन्हों ने कार्य भी किया है। सुशील, शासक वर्ग ने अपने साहित्य और इतिहास को फैला कर तथा हमारे प्राचीन साहित्य और इतिहास को नष्ट कर न केवल हमें ही पराधीन बना रखा है, हमारी संस्कृति पर भी गहरा असर डाला है। पराये साहित्य और इतिहास ने हम में गुलामी की भावनायें पैदा की हैं। वे ही गुलामी की भावनायें हैं, जिन्होंने हमारे भारत को पराधीनता में जकड़ रखा है। मैंने रेल में सफर करते हुये कई ग्रामीणों को यह कहते हुए सुना है कि अंग्रेजी राज्य में कितना बड़ा सुख है, सरकार ने कैसी रेल निकाली है कि घंटों ही में सैंकड़ों कोस चले जाते हैं। कैसा तार निकाला है कि मिनटों ही में हजारों कोसों की खबर लग जाती है आदि। पर अगर वे हमारा प्राचीन साहित्य जानते तो ऐसी बातें न करते। उन्हें भारत के विमान, भारत के धनुष बाण और ऋषियों के समाधि ध्यान की क्या खबर? मेरे कहने का आशय यह है सुशील, कि तुम्हें इन गुलामी की भावनाओं को हटाने मात्र ही से सच्ची सफलता मिल सकती है। जेल जाने से नहीं। हुल्लड़बाजी और बात है और ठोस कार्य और। सच्ची सेवा और सच्चा कार्य तो तब ही होगा, जब तुम भारत को शिक्षित करोगे, अशिक्षित ग्रामीणों में स्वतन्त्रता का संदेश पहुंचाओगे। यह जब ही सम्भव होगा, जब तुम शिक्षा फैला कर उन्हें भारत की प्राचीनता से, उसके साहित्य और इतिहास से परिचित कराओगे। सच्चा सामाजिक जीवन बिताते हुये समाज के भीतर पैठ कर समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करना ही ठोस सेवा है। इस सेवा कार्य में तुम्हारी विवाहिता भी तुम्हारा हाथ बंटायंगी। तुम्हारी मातायें तुम्हें सहर्ष आज्ञा देंगी। तुम्हारे पिता गर्व से फूल उठेंगे। नवयुवकों के उत्साह और जोश की निन्दा मैं नहीं करती। उस पर तो हमारे भविष्य की सारी आशायें अवलम्बित ही हैं, पर उसको नियन्त्रण में रखने का भार हम तजर्बेकारों के कंधों पर है। इसी उत्तरदायित्व के नाते मैंने तुम से इतना कहा है।"

प्रकाश अभी तक चुपचाप बैठा हुआ सब की बातें सुन रहा था। राधाकान्त के डर से न बोला हो, ऐसी बात नहीं थी। वह केवल अपने आचरण से—चाहे वह उचित हो या अनुचित—उत्पन्न अशान्त वातावरण से कुछ-कुछ घबड़ा सा गया था। अब सरलादेवी को बोलते देख कर उसमें वह भाव जागृत हो उठा, जो अक्सर उस मनुष्य को, जो सब तरफ से उपेक्षित या तिरस्कृत हुआ हो, और भी ढीठ बना देता है। प्रकाश कनखियों से राधाकान्त की ओर देख कर बड़े धीरे-धीरे बोला,

"चाची, तुम सबों ने बड़ी लम्बी चौड़ी दलीलें दे डाली हैं और उन सबों में जोर भी बहुत है। पर तुमने वे सब दलीलें एक गृहस्थ और एक नागरिक के दृष्टिकोण को सामने रख कर कही है, किन्तु एक छात्र के दृष्टिकोण को सामने रख कर कहना था। एक छात्र की हैसियत से मैं इस देश सेवा में और किस तरह हाथ बंटा सकता हूं। सेवा इतनी आवश्यक और अनिवार्य है कि अपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर एक नागरिक होने तक उसकी तरफ से उदासीन नहीं रह सकता। एक नागरिक होने तक अपने भीतर उन भावनाओं को पैदा

करना, जो स्वतन्त्रता की पूजा करने वाली हों और उन शक्तियों और अभ्यास को प्राप्त करना, जो स्वतन्त्रता की उपासना के मार्ग में आई बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का आसानी से सामना करा सके, यही अपनी छात्रावस्था में मेरा एक मात्र कर्त्तव्य है, जो देश के प्रति मुझे पालन करना है। प्राचीन काल की बात को छोड़ दो, जब पाठशाला, विद्यालय और विश्वविद्यालय ही वे स्थान थे जहां छात्र को मनुष्य बनना सिखाया जाता था, उसे देश, समाज और जाति के प्रति कर्त्तव्य पाठ पढ़ाया जाता था। किन्तु आधुनिक विद्यालय वे स्थान हैं, जहां मनुष्यत्व के गुण तो दूर रहे उद्दण्डता, अशिष्टता और अत्यधिक मात्रा में स्वार्थपरता का सबक सिखाया जाता है। देश के प्रति कर्त्तव्य का पाठ सीखने के लिये अगर मेरी राय में—कोई उपयुक्त स्थान हैं तो जेलें ही। स्वतन्त्रता की कीमत जितनी जेल की चहारदीवारी में बन्द रह कर कूंती जा सकती है, उतनी हमारे समान सुसम्पन्न, सुविधावादी नागरिकों के घरों में नहीं। चाची, क्षमा करना, अगर तुम्हारे कथनानुसार सब ही ठोस देश सेवा करने का दम भरने लगे और जेल जाने को निरर्थक समझें तो फिर स्वतन्त्रता मिल चुकी। इन विदेशियों की कूट राजनीति को बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी नहीं समझ पाते हैं, फिर हमारी और तुम्हारी तो बात ही क्या ? मुझे यह तो बताओ चाची, कि ऐसी कौन सी ठोस देश सेवा है जिसे करने से जेल का भय न हो। तुम्हारे ठोस देशसेवकों से ये विदेशी जितने घबड़ाते हैं, उतने हमारे जैसे क्षणिक उत्साहियों से नहीं। जो कोई भी ग्राम्य संगठन करना चाहेगा, उन भोलेभाले ग्रामीणों को राजनीतिक स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाना चाहेगा वह किसी न किसी जुर्म में फांस लिया जायगा या किसी आर्डिनेन्स में पकड़ा जाकर और कई दिनों के लिये जेल की हवा खायगा। अब रही बात मेरे जेल जाने की, सो मैं पुकार पुकार कर तो कहता नहीं कि मुझे जेल ले जाओ। पर हां, जिसने इस मार्ग में पाव दिया है, उसके लिये जेल जाने की सम्भावना पग पग पर है और यही सम्भावना है, जो मुझे शादी न करने के लिये प्रेरित करती है। अगर आज सभा में······।"

अभी प्रकाश कह ही रहा था कि दरवान ने आकर खबर दी कि नीचे एक सार्जेण्ट और तीन पुलिस के जवान खड़े हैं और यहां आने की इजाजत चाहते हैं। पुलिस के आगमन का और विशेष कर इस समय गोपालचन्द्र के घर पर चढ़ाई होने का किसी को स्वप्न में भी अनुमान न था। सब भौचक्के से होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। अन्त में सहमी हुई आवाज से गोपालचन्द्र ने उसको ले आने की आज्ञा दी। दरवान के चले जाने पर विमला हसती हुई बोल उठी,

"प्रकाश भैया, तुम तो कहते थे कि तुम लाल पगड़ी वालों के लकड़दादा हो और इस खूबी से इन्तजाम किया है कि उनको पता भी न लगे, पर ये लाल पगड़ी वाले भी सफेद टोपी वालों के लकड़दादा नहीं तो कम से कम उस्ताद तो जरूर हैं, कैसा शीघ्र पता लगा लिया कि सभा के सभापतिजी इसी मकान में विराजमान हैं।"

गोपालचन्द्र डांट कर बोले, "चुप रहो विमला, यह समय ऐसी बातों का नहीं है। बड़ी सावधानी से इन जीवों का सामना करना पड़ेगा।"

सार्जेण्ट और पुलिसवालों के प्रवेश करने पर गोपालचन्द्र अंग्रेजी में बोले, "कहिये, आप क्या चाहते हैं।"

सार्जेण्ट नम्रता से अंग्रेजीमें बोला, "गुडमार्निङ्ग बाबू, मुझे अफसोस है कि मैंने आपके आराम में खलल डाला, किन्तु मुझे तो अपना फर्ज अदा करना ही पड़ता है। गैरकानूनी सभा का आयोजन करने और उसका सभापतित्व स्वीकार करने के अपराध में प्रकाशचन्द्र नामक युवक पर वारंट जारी है और मुझे उन्हीं को गिरफ्तार करना है। हमारे जासूस ने लगभग घण्टा भर पहले उन्हें इसी मकान में प्रवेश करते देखा

है ! कृपा कर बतलाइये कि आप लोगों में प्रकाशचन्द्र कौन है ?"

कुछ समय तक किसी के मुंह से कुछ बोल न फूटा। अन्त में उस खामोशी को भग कर प्रकाश स्वय बोला, "मेरा ही नाम प्रकाशचन्द्र है।"

हंसते हुए सार्जण्ट ने कहा, "आप को मेरे साथ चलना होगा।"

प्रकाश शान्त स्वर से बोला, "कहां चलना होगा ?"

सार्जण्ट चलने के लिये उद्यत होकर बोला, "थाना। वहां से कल आपको अदालत में हाजिर किया जायगा।"

प्रकाश सब की ओर मुंह कर बोला, "आप लोग कोई भी व्यर्थ दुःखित न होइयेगा। मुझे जेल में कुछ भी कष्ट न होगा। पिताजी, निश्चय ही आपको अत्यन्त कष्ट हो रहा होगा लेकिन मैं अपने कर्त्तव्य पथ से च्युत होना नहीं चाहता। आप आशीर्वाद कीजिये कि हम विजयी हों। चाचाजी, आप पिताजी को समझाइयेगा। चाची, आप भी आशीर्वाद करिये कि हम बड़ी से बड़ी कुरबानी करने में दृढ़ प्रतिज्ञ हों। कमला बहन, तुम्हारी याद सदा मुझे आगे बढ़ाती रहेगी। विमला, यह देश तुम्हारा भी देश है। अगर तुम ही इस तरह पिछड़ी रहोगी तो फिर कौन आगे बढ़ेगा। सुशील तुम......"

सार्जण्ट बोला, 'बाबू अब चलिये। हम अधिक देर नहीं ठहर सकते।"

सुशील बोला, "जाओ प्रकाश, जाओ। तुम्हारे कष्ट सहन की याद मुझे भी देश कार्य में अग्रसर होने में मदद करेगी। तुमने अपना कर्त्तव्य पालन किया है, मैं भी अपना करूंगा। भगवान तुमको सफल करे और तुम अपने आदर्श तक पहुंच सको।"

प्रकाश सबको प्रणाम कर सार्जण्ट के साथ चला। बाहर एक टैक्सी खड़ी थी, उसी पर बैठ कर वे थाने की ओर चले!
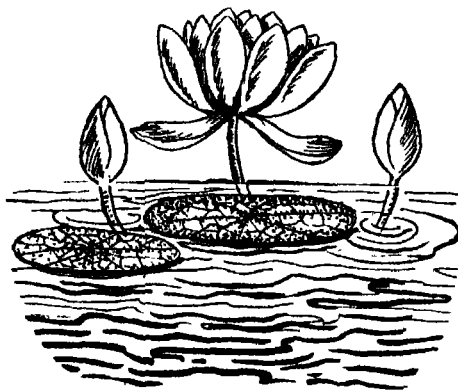
स्वर्गीय प्रेमचन्दजी

[श्री भवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न]

प्रतिभाशाली व्यक्तियों का सम्मान उनके जीवन-काल में तो होता ही है, पर उनके संसार से चले जाने के बाद वह बहुत बढ़ जाता है। वास्तव में अभाव की अनुभूति उसकी सौन्दर्यमयी वेदना—जितनी तीव्र होती है, उतनी अनुभूति-सुन्दरता अभाव के बिना प्रत्यक्ष नहीं होती। मामूली तौर से भी यह बात तो अक्सर कही जाती है कि जीतेजी मनुष्य की जो कद्र नहीं होती, वह उसके मरने पर होने लगती है। उसके जीवन का जो महत्व उसके सामने नजर नहीं आता, वह उसके अभाव में दीखता है; उसकी जो कृतियां जीवन में मामूली दीखती हैं, वे ही उसके मरने के बाद मूल्यवान प्रतीत होती हैं। यह तो हुई आमबात, जो हर आदमी के विषय में कही जा सकती है; फिर हमारे सुप्रसिद्ध उपन्यास सम्राट् स्वर्गीय प्रेम-चन्दजी ('स्वर्गीय' लिखते हुए हम निस्सहाय से हुए प्रतीत होते हैं) तो हमारे बीच में नहीं होते हुए भी, हमारे हृदय में तो सदा बिराजे रहेंगे ही।

श्रद्धेय प्रेमचन्दजी की मृत्यु से विश्व का एक महान् साहित्यिक, और उच्च कलाकार उठ गया। साहित्य की साधना ही उनके जीवन का उद्देश्य था—पर हमारे दुर्भाग्य ने उनको इस साधना के लिये अधिक नहीं जीने दिया। हिन्दी प्रेमियों, बल्कि राष्ट्र-प्रेमियों के हृदय में उनके प्रति जो प्रेम, श्रद्धा और सम्मान प्रतिष्ठित था—वह आज बहुत बढ़ गया, इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि उनके चले जाने पर हिंदी का उपन्यास-साहित्य सूना विधुर सा प्रतीत होता है। साहित्य में जीवन की उपासना करनेवाले, कला में जीवन की मूर्ति चित्रित करनेवाले—इस राष्ट्रसेवी को खोकर सचमुच हमें देश के दुर्भाग्य पर रोना आता है।

+ + +

स्वर्गीय बाबू प्रेमचन्दजी (श्री धनपत राय बी० ए०) के नाम से कोई हिंदी जाननेवाला व्यक्ति अपरिचित नहीं होगा। उनकी कहानियां और उपन्यास स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, गरीब-अमीर सभी के पसंद की वस्तु है, क्योंकि जीवित व्यक्ति को - चाहे वह कोई हो जीवन के संघर्ष का - उसकी गूढ़ अनुभूतिओं का खाका चाहिये और यही प्रेमचन्दजी की कला का सबसे प्रभावशाली गुण है। जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व में जीवन और साहित्य दोनों एक हो गये थे उसी तरह वे उनका सम्मेलन बाहर भी चाहते थे। जीवन से साहित्य के अलगाव को वे पतन का सबसे पहला चिह्न समझते थे। प्रेमचंदजी प्रथम श्रेणी के कला-कार थे और उनकी कला का मूल्य जीवनका सृजन, उसको बल और प्रेरणा प्रदान करता था।

साहित्य के इतिहास में वे एक युग प्रवर्त्तक माने जायंगे। उच्च श्रेणी के कलापूर्ण उपन्यास लिखनेवाले हिंदी में उनसे पहले कोई नहीं थे। उन्हींसे इस प्रवृत्ति का जन्म हुआ। प्रेमचंदजी भी पहले उर्दू में लिखते थे और केवल १५-२० वर्ष पहले ही वे हिंदी की ओर

मुड़े थे। इसी अल्प समय में उन्होंने रंगभूमि, कायाकल्प, सेवासदन, प्रेमाश्रम, गबन, कर्मभूमि, गोदान इत्यादि कई बड़े उपन्यास और सैकड़ों छोटी कहानियां लिखकर हिंदी का सूना भण्डार भर दिया और उनकी प्रेरणा से न जाने कितने उपन्यासकार और कहानी लेखक उत्पन्न हुए। इस क्षेत्र में प्रेमचंदजी की तीन विशेषताएँ प्रधान रूप में लक्षित होती हैं वे आदर्शवादी सुधारक थे, उनकी भाषा सादी मुहावरेदार है—जैसी कि एक औपन्यासिक के लिये होनी चाहिये और उनके उपन्यासों का ढाँचा जीवन की तीव्र अनुभूतियों पर खड़ा रहता है। उपन्यासकला पर इस समय कुछ न लिख कर, इतना कह देना अलम् होगा कि उपन्यास जीवन का सच्चा चित्र होता है—जिसमें कहीं कहीं कुतूहल वृत्ति के परितोष के लिये—या पूर्ण जीवन की कल्पना के लिये अतिरंजित घटना का अच्छा समावेश हो जाता है। प्रेमचंदजी के उपन्यासों में इस नियम का पालन होता है।

× + +

सबसे अधिक आकर्षक बात तो यह है कि इतने बड़े साहित्यिक होते हुए भी प्रेमचंदजी को गर्व छू तक नहीं गया था। व्यक्तिगत जीवन में प्रेमचंदजी की सादगी और विचारशीलता; निरभिमानता और निर्भीकता; विनोद प्रियता और सहिष्णुता विशेष महत्व रखनेवाले गुण थे। जब मैं हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये बनारस गया—तब मेरा उनसे पहले पहल परिचय हुआ था। इतना तो मैं जानता ही था कि प्रेमचंदजी बनारस में रहते हैं—बस उनको देखने के लिये लालायित था। इसके पहले मेरी दो एक रचनाएँ 'जागरण' (जो उनके संपादकत्व में पहले प्रकाशित होता था) में प्रकाशित हो चुकी थी—अतः मैं लेखक के बहाने ही उनके पास चला गया। मुझे आशंका थी कि उनसे कैसे बातें करूंगा, वे तो हैं उपन्यास सम्राट ! पर एक बार उनके सामने पहुंच कर तो मैं यह भूल ही गया कि वे उपन्यास सम्राट हैं। वे इस तरह बातें करते थे जैसे मेरे से उनका बड़ा पुराना परिचय है। फिर तो मैं बराबर उनके पास आया जाया करता था। उनको मेरे गद्य काव्य पसंद आते थे, इसलिये कृपा भी थी। इसमें खास बात यह थी कि वे भी जीवन की वेदना को - उसकी सौंदर्यमयी प्रेरणा को—साहित्य का महान तत्व समझते थे। उस दिन के उनके ये शब्द मेरी डायरी में लिखे हैं —"इस युग में हमें वे आँखें बंद कर देनी चाहिये, जिन्हें जीवन में नश्वरता के सिवाय और कुछ नहीं दिखाई देता, केवल वे आँखें चाहिये जिनमें वेदनामय जीवन संघर्ष को सराहने की शक्ति हो।" यही बात उन्होंने फिर प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के अध्यक्षपद से भी कही थी "कलाकार वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में जोर और सचाई पैदा होती है।"

साहित्य द्वारा राष्ट्र की सेवा करना ही उनके जीवन का सबसे बड़ा आदर्श था उसीके लिये वे चेष्टारत रहते थे। इस दिशा में उनका जीवन साहित्य से भी ऊपर की वस्तु थी। उनके विषय में जो समालोचना की जाती, उसको पढ़ कर वे चुप हो जाते थे। उसका बहुत कम उत्तर देते थे, क्योंकि उसमें वे अपनी शक्ति कम नहीं करना चाहते थे। समालोचना की परवाह न कर वे अपनी साधना करते जाते थे। प्रांतीय-साहित्यों के संगठन का जो काम गांधीजी के तत्वावधान में हो गया— उसके मूल उत्पादकों में वे भी थे। सब प्रांतों के साहित्य एक ही राष्ट्रीय सूत्र से संचालित होने चाहिये इसी काम के लिये वे 'हंस' का सम्पादन करते थे।

जिस साहित्य में राष्ट्र को ऊँचा उठाने का बल न हो, उसको वे साहित्य ही नहीं मानते थे। उनके इन शब्दों में कितनी तीव्र वेदना झलकती है "जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हो और उसका एक-एक शब्द नैराश्य में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और शृङ्गारिक भावों का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिये कि जाति जड़ता और ह्रास के पंजे में फँस चुकी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बल बाकी नहीं रहा।'

उस स्वर्गीय आत्मा ने मरने से ६ महीने पहले ही साहित्य की परीक्षा के लिये एक कसौटी बनाई थी—"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च विचार हो—स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

साहित्य की यह समयानुकूल प्रखर कसौटी है और इसी कसौटी पर पूर्ण उतर कर स्वर्गीय प्रेमचंदजी का साहित्य तपाये सोने की भाँति दीप्तिमान है और रहेगा। जिस प्रकार उन्होंने अपनी प्रतिभा और साधना से हमको लगातार बल और प्रेरणा दी थी उसी तरह हम उस चिरस्मरणीय स्वर्गीय आत्मा के लिये शांति की निरंतर प्रार्थना करते हैं।

कविते!

[श्री पूर्णचन्द्र टुंकलिया एम० ए०, विशारद]

जीवन-सरि में, कविते! रस भर।
शुष्क पड़ी, नीरस, सरिता की दीप्ति बढ़ा, कर धार प्रखरतर॥
हृद-उद्गम-थल की हिम पिघले, करुणा के कण निकलें झर झर।
प्रौढ़-कल्पना-मेघ-राशि से बिन्दु-सुधा दे इसे अमर कर॥
ठोकर खा खा, उछले, सँभले; प्रस्तर को घिस घिस कोमल कर—
बही चले, उन सिसक रहे सब प्राणों में नूतन जीवन भर॥
हिल जावे जड़ शुष्क तटों की, निष्फल तरु टूटें, हो खरभर।
पङ्क क्रोड़ में छिपा, नीर का मुक्त दान दे अञ्जलि भर भर॥
सरल-तरी-स्थित जन तट उतरें; भार पूर्ण सब पोत नष्ट कर।
सरल-वक्र-गति से निर्भय चल चूमे चरण सिन्धु के सुखकर॥
अमर शान्ति पावे जग-जन-हृद तेरे में अवगाहन कर कर।
गुञ्जन करे अनन्त काल तक कलकल छलछल तेरा सुस्वर॥

जैन—साहित्य—चर्चा

श्रीमद्भगवती सूत्र का ऐतिहासिक अन्वेषण

[पं० बेचरदास दोशी]

(गताङ्क से आगे)

अब श्रीमद्भगवती सूत्र के ऐतिहासिक अन्वेषण के विषय में नीचे लिखी बातें विचार करने की हैं:-

(१) आगम की परम्परा और ग्रन्थ का नाम

(२) अन्य आगमों में प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय, वर्त्तमान रचना शैली तथा ग्रन्थ का मसाला

(३) दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय और उसकी साक्षी का उल्लेख

(४) व्याख्या-प्रज्ञप्ति में आये हुए कितने ही मतांतर

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति में आए हुए कितने ही विवादास्पद स्थान

(६) व्याख्याप्रज्ञप्ति की टीका

(७) व्याख्याप्रज्ञप्ति के टीकाकार

(१) आगम की परम्परा और ग्रन्थ का नाम,

इस सूत्र के मूलकर्त्ता के विषय में सबसे प्रथम विचार करना था, लेकिन इस बाबत जैन परम्पराओं ने स्पष्ट कर दिया है कि मूल आगम को तीर्थंकरों के अनुयाइयों ने ही रचा है अर्थात् आगम की शब्द रचना तीर्थंकरों की नहीं है परंतु उनके समकालीन या पीछे होनेवाले अनुयाइयों की है। कण्ठस्थ रहनेवाले आगमों में कालांतर के कारण कई परिवर्त्तन हो गये हैं, ऐसा खुद जैन-परम्परा स्वीकार करती है और वह ऐसा भी मानती है कि वर्त्तमान में उपलब्ध आगम देवर्धिगणी द्वारा संकलन किये हुये हैं। यह संकलन बलभी में भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद लगभग हजार वर्ष में हुआ है, ऐसा जैन इतिहास कहते हैं। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता के विषय में लगभग निर्णय हो ही जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम - जैन सम्प्रदाय में—भगवती-सूत्र प्रसिद्ध है, परंतु नीचे दिये हुए उल्लेखों से मालूम होता है कि यह उसका मूल नाम नहीं वरन् उसकी महानता दिखलाने वाला एक विशेषण मात्र है और टीकाकार अभयदेव भी इस बाबत ऐसा ही मानते हैं।

समवायांग सूत्र और नंदीसूत्र में वर्त्तमान में उपलब्ध अंगसूत्रों के नाम और विषय बतलाये गये हैं, उनमें इस सूत्र के लिये 'वियाह' शब्द का प्रयोग किया

गया है और उस शब्द का मूल 'वियाह' धातु में बतलाया गया है। 'वि' और 'आ' उपसर्गों के साथ 'ख्या' धातु से बने हुए 'व्याख्या' शब्द में से पूर्वोक्त 'वियाह' शब्द की उत्पत्ति है अर्थात् 'वियाह' का अर्थ अनेक प्रकार की व्याख्या-विवेचना—होता है। टीकाकार भी इस 'वियाह' शब्द की इसी प्रकार व्याख्या करते हैं।

कई स्थानों में 'जहा पन्नत्तिये' ऐसा बता कर इस ग्रन्थ के छोटे नाम का निर्देश किया हुआ है। इनको और इस ग्रन्थ के टीकाकार अभयदेव के उल्लेख को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का पूरा नाम 'वियाहपण्णत्ति' होना चाहिये। आगे जो 'वियाह' का उल्लेख आया है, वह इसका छोटा नाम है।

'वियाहपण्णत्ति' शब्द से ठीक मिलता-जुलता संस्कृत-शब्द 'व्याख्या' प्रज्ञप्ति है और उसका अर्थ—जिसमें असंकीर्णतावश अनेक प्रकार की व्याख्याओं का समावेश होता है। इस अर्थ को देखते हुये यह नाम इस ग्रन्थ को बिल्कुल ठीक फबता है।

'वियाहपण्णत्ति' शब्द के बदले कई स्थानों पर 'विवाहपण्णत्ति' शब्द भी मिलता है। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि ठीक शब्द तो 'वियाह-पण्णत्ति' है और विवाहपण्णत्ति तो उसका पाठान्तरमात्र है, जो 'य' का उच्चारण 'व' करने से उत्पन्न हुआ मालूम होता है। व्युत्पत्ति और व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से 'वि' और 'आ' साथ लिये हुए 'ख्या' धातु में से 'वियाह' शब्द उत्पन्न हो सकता है अर्थात् उसका केवल बोलने का 'विवाह' रूप पाठांतर भर ही माना जा सकता है।

टीकाकार तो 'वियाहपण्णत्ति' और 'विवाहपण्णत्ति' इन दोनों शब्दों को स्वीकार करते हैं। पहले शब्द का अर्थ तो उपरोक्त ही करते हैं और दूसरे शब्द का अर्थ करते हुए वे उससे ठीक मिलते-जुलते संस्कृत शब्द 'विवाह प्रज्ञप्ति' और 'विबाध प्रज्ञप्ति' बतलाते हैं लेकिन प्राचीन परम्परा को देखते हुए 'वियाहप-णत्ति' ही ठीक नाम जान पड़ता है।

'पण्णत्ति' शब्द से मिलता-जुलता संस्कृत शब्द 'प्रज्ञप्ति' है। उसका स्पष्ट अर्थ 'प्रज्ञापन' होता है। ऐसा होते हुए भी टीकाकार उस शब्द से मिलते हुए ये शब्द 'प्रज्ञप्ति' (प्रज्ञ×आप्ति) और 'प्रज्ञात्ति' (प्रज्ञ+आत्ति) बताते हैं। और इस प्रकार वे 'व्याख्या-प्रज्ञप्ति' के उपरान्त 'व्याख्या प्रज्ञाप्ति' 'व्याख्या प्रज्ञात्ति' 'विवाह प्रज्ञाप्ति' 'विवाह प्रज्ञात्ति' 'विबाध प्रज्ञाप्ति' 'विबाध-प्रज्ञात्ति' 'विवाह प्रज्ञप्ति' और 'विबाध प्रज्ञप्ति' वगैरह संस्कृत शब्द 'वियाहपण्णत्ति' और 'विवाहपण्णत्ति' के बदले काम में लाये हैं। इससे कोई यह न समझे कि इस ग्रन्थ के ये सभी नाम हैं। नाम तो 'विवाहपण्णत्ति' एक ही है लेकिन टीकाकार जो इसके लिये पूर्वोक्त अनेक संस्कृत शब्द काम में लाये हैं, उसका कारण उनका आगमों के प्रति अत्यधिक सद्भाव और शब्द-कुशलता मात्र है। जहाँ-जहाँ इस सूत्र के नाम के लिये संस्कृत शब्द देखने में आते हैं वहाँ वे सभी 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' नाम बताते हैं, इससे टीकाकारों द्वारा काम में लाये हुए उपरोक्त शब्द इस ग्रन्थ के नाम न समझने चाहिये। भगवती* शब्द तो इस सूत्र की पूज्यता प्रदर्शित करनेवाला विशेषणमात्र है, खास नाम नहीं, इसे न भूलना चाहिये।

* प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम तो 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' है लेकिन सम्प्रदाय में 'भगवती' नाम से प्रसिद्ध है, इसीलिये इस ग्रन्थ के मुख-पृष्ठ पर यह नाम मोटे अक्षरों में दिया हुआ है और उसके कर्ता के नाम का उल्लेख भी सम्प्रदाय प्रसिद्धि के अनुसार ही दिया हुआ है।

(२) अन्य आगमों में प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय वर्त्तमान रचनाशैली तथा ग्रन्थ का मशाला,

'समवाय* नाम के चतुर्थ अङ्ग में और नन्दी‡सूत्र में इस सूत्र का परिचय देने में आया है। "वियाह सूत्र में जीवों के बाबत व्याख्यान है। अजीवों के विषय में व्याख्यान (विवेचन) है। जीवाजीव बाबत व्याख्यान है। स्वसमय, परसमय और स्वपरसमय तथा लोक, अलोक और लोकालोक के विषय में व्याख्यान है। उसी प्रकार छत्तीस हजार वे व्याकरण - पूछे गये प्रश्नों के निर्णयात्मक उत्तर-शिष्य-हित के लिये बताये गये हैं, जो व्याकरण अनेक प्रकार के देवों, राजाओं और राजर्षियों व अनेक प्रकार के संशयवाले जिज्ञासुओं ने श्री जिनदेव से पूछे हैं। जिसके उत्तर श्री जिनदेव ने द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश, परिणाम, यथास्तिभाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण और अनेक प्रकार के सुन्दर उपक्रमों के साथ इसमें दिये हैं।" इस तरह से समवाय नामक चतुर्थ अंग में प्रस्तुत 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' सूत्र के अभिधेय विषय का परिचय दिया हुआ है। तहां नन्दीसूत्र में समवाय की अपेक्षा थोड़ा अंतर है अर्थात् नंदीसूत्र में समवाय अंग में कही हुई व्याकरण-सम्बन्धी कोई हकीकत मिलती नहीं। लेकिन उसमें सिर्फ "जीव, अजीव, जीवाजीव, स्वसमय, परसमय, स्वपरसमय, लोक, अलोक और लोकालोक-सम्बंधी व्याख्यान व्याख्या प्रज्ञप्ति में है" इतना ही बताया गया है।

ऊपर बताये हुए प्रमाण के अनुसार उन दोनों सूत्रों में इस सूत्र के अभिधेय की बाबत जिस प्रकार अन्तर बताया गया है उसी प्रकार उसके परिमाण में विषय में भी भेद मालूम पड़ता है। वह भेद इस प्रकार है:— व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र के पदों की संख्या समवायांग में ८४००० बताई गई है और नन्दीसूत्र में उनकी संख्या २७७००० बताई गई है। परिमाण के बाबत दूसरी हकीकतें दोनों में एकसी हैं। वे इस प्रकार हैं: अंग की अपेक्षा से व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र पांचवां है, उसमें एक श्रुतस्कन्ध है, एक सौ से अधिक अध्याय हैं, दस हजार उद्देशक और दस हजार समुद्देशक हैं।

इस सूत्र में वर्णन किये हुए विषय की और परिमाण की जो हक़ीकत ऊपर दी गई है उसकी तुलना प्रस्तुत सूत्र के विषय और परिमाण के साथ करते हुए कोई ख़ास अन्तर मालूम नहीं होता। उद्देशकों और पदों की संख्या में अन्तर है। वह अन्तर तो प्राचीन परम्परा भी मानती हैं।

रचनाशैली की बाबत इस सूत्र में प्रश्नोत्तर की पद्धती है। यह हक़ीकत समवायांग में तो बताई गई ही है और इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी वही शैली अपने सामने है। जिस प्रकार इस सूत्र में भगवान महावीर और इन्द्रभूति गौतम के बीच में हुए प्रश्नोत्तर की शैली है उसी प्रकार आर्य्य श्यामाचार्य रचित पन्नवणा-प्रज्ञापना—सूत्र में भी है। पन्नवणा सूत्र श्यामाचार्य का रचा हुआ है, यह सिद्ध बात है। इसीसे उसमें की भगवान महावीर और इन्द्रभूति गौतम के प्रश्नोत्तरों की शैली श्यामाचार्य द्वारा जुटाई हुई है, उसी प्रकार इस व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र की पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर शैली प्रस्तुत सूत्र के संकलन कर्त्ताओं द्वारा जुटा ली गई है या मूल में ही इस प्रकार है, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनेक अर्वाचीन ग्रन्थों में भी उनके कर्त्ताओं द्वारा ऐसी शैली का होना बताया जाने से सन्देह होना स्वाभाविक है।

* समवायांग सूत्र पृ० ११४

‡ नन्दीसूत्र पृष्ठ २२९

वर्तमान में इस सूत्र में आये हुए अनुष्टुप श्लोकों की संख्या लगभग १५८०० है, जो आगे बताये हुए पदों (विभक्त्यन्त पदों) की संख्या से मिलती हुई हो सकती है, ऐसा कहा जा सकता है। शतक १३८ हैं और उद्देशक १९२५ हैं, जहां प्राचीन परम्परा इसमें दस हजार उद्देशक और दस हज़ार समुद्देशक होना बताती है। १९२५ उद्देशकों की संख्या तो इस सूत्र के प्रान्त भाग में ही बताई गई है और टीकाकार ने भी उसे माना है। पदों की संख्या प्रान्त भाग की गाथा में ८४००००० लिखी हुई है जो समवाय और नन्दी सूत्र दोनों में नहीं मिलती। लेकिन अन्त की गाथा में 'चुलसीय सयसहस्सापदाण' के बदले 'चुलसीई य सहस्सा पदाण' ऐसा पाठ करने से समवायांग सूत्र में बताई हुई पद संख्या के साथ कोई विरोध नहीं होता और ऐसा पाठ कुछ अयुक्त नहीं है।

लेकिन खूबी यह है कि अन्त की जिस गाथा में ८४००००० पदों की संख्या लिखी हुई है, उसकी टीका करते हुए आचार्य अभयदेव "चतुरशीतिः शतसहस्राणि पदानामत्राङ्गे इति सम्बन्धः" ऐसा लिख कर व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में ८४००००० पद होना मानते हैं और समवायांग सूत्र में जिस स्थल पर इस सूत्र की पद-संख्या बताई गई है, वहां मूल में "चतुरासीई पयसहस्साइं पयग्गेणं" इस पाठ की टीका करते हुए यही अभयदेव "चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेणेति" ऐसा लिख कर व्याख्या प्रज्ञप्ति में ८४००० पद होने का लिखते हैं। इस प्रकार उनकी अपनी ही समवाय और व्याख्या प्रज्ञप्ति की टीका में जो स्पष्ट विरोध रहता है, उस तरफ उनका ध्यान कैसे नहीं गया होगा ? इस विरोध के परिहार की रीति ऊपर बताई गई है। ये पाठान्तर-परीक्षण की दृष्टियां ठीक जंचे जैसी है।

इसके उपरान्त इस सूत्र में जिस किस्म की शैली के साथ विषय वर्णन किये गये हैं, उस सम्बन्ध का निरीक्षण आरम्भ में "आध्यात्मिक शोध" शीर्षक के नीचे कर लिया गया है, जो अब इस स्थल पर फिर पढ़ना बिलकुल ठीक होगा।

(३) दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय और उसकी साक्षी का उल्लेख।

विक्रम की नवीं शताब्दी में हुए प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्रीमान् भट्टाकलंकदेव मुनि तत्त्वार्थ सूत्र के अपने तत्त्वार्थराजवार्तिक में द्वादश अंग का परिचय देते हुए व्याख्याप्रज्ञप्ति का भी परिचय देते हैं। उसमें वे भी नाम तो व्याख्याप्रज्ञप्ति ही बताते है और उसमें "क्या जीव है ? क्या जीव नहीं है ? इस प्रकार के ६०००० व्याकरण है" ऐसा कह कर व्याख्याप्रज्ञप्ति के प्रतिपाद्य विषय का भी उल्लेख करते हैं।

गोमट्टसार की ३५५ वीं गाथा में प्रस्तुत सूत्र का 'विखापण्णत्ति' नाम दिया हुआ है और नन्दी सूत्र में लिखे अनुसार उसमें २८८००० पद हैं, ऐसा भी लिखा है।

आगे बताये हुए अनुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में तो व्याख्याप्रज्ञप्ति की साक्षी अनेक स्थानों में आती है। इसी अनुसार दिगम्बर सम्प्रदाय के तत्त्वार्थराजवार्तिक में भी व्याख्याप्रज्ञप्ति की साक्षी दी हुई है। तत्त्वार्थसूत्रगत "विजयादिषु द्विचरमाः" सूत्र के वार्तिक में यह साक्षी वाला उल्लेख नीचे लिखे अनुसार है:--

"एवंहि व्याख्याप्रज्ञप्ति दण्डकेषूक्तम्-विजयादिषु देवा मनुष्यभवयास्कन्दन्तः कियतीर्गत्यागतीः विजयादिषु कुर्वन्ति ? इति गौतमप्रश्ने भगवतोक्तम् जघन्येनैको भवः अगत्या उत्कर्षेण गत्यागतिभ्यां द्वौ भवौ।"

[अनुवादः क्योंकि व्याख्याप्रज्ञप्ति के दण्डकों में

ऐसा कहा हुआ है कि मनुष्य भव को पानेवाले विजयादि विमानों में रहनेवाले देवता विजयादि विमानों में कितनी गति और आगति करते हैं ? इस प्रकार के गौतम के प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते है कि आगति के हिसाब से कम से कम एक भव और गतिआगति के हिसाब से ज्यादा से ज्यादा दो भव ।]

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में गौतम के प्रश्न और भगवान् के उत्तरवाला यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र ही प्रसिद्ध है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इस तरह का व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र हो, ऐसा जाना* नहीं। इससे उपर्युक्त वार्तिक में गौतम के प्रश्न और भगवान् के उत्तरवाले जिस व्याख्या-प्रज्ञप्ति सूत्र की साक्षी दी हुई है, वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्रसिद्ध प्रस्तुत व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र है, क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता ? जब तक गौतम के प्रश्न और भगवान् के उत्तरवाला व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र दिगम्बर सम्प्रदाय में जाना हुआ है, ऐसा निर्णय न हो सके, तबतक तो राजवार्तिक में साक्षी रूप से दिया हुआ यह व्याख्याप्रज्ञप्ति, यह वर्तमान सूत्र समझा जा सकता है, ऐसा कहने में कोई हरकत नहीं है। यदि सचमुच ऐसा हो तो इसपर से एक दूसरी बात यह भी निकलती है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत सूत्र दिगम्बर सम्प्रदाय को भी सम्मत हैं, अर्थात् दोनों सम्प्रदायों में शास्त्रीय एकता है ।

(४) व्याख्याप्रज्ञप्ति में (भगवती में) आये हुए कितने ही मतान्तर ।

* 'मोक्षमार्गप्रकाश' में अर्वाचीन पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं कि "सूत्रों में गौतम के प्रश्न और भगवान् महावीर के उत्तर जैसी शैली घटित नहीं हुई, इससे ऐसी शैलीवाले सूत्र दिगम्बर सम्प्रदाय-सम्मत नहीं हैं ।" उनका यह उल्लेख दिगम्बर सम्प्रदाय के धुरन्धर आचार्य भट्टाकलंक के उपर्युक्त निर्देश के सामने कितना प्रमाणिक माना जा सकता है ?

इस ग्रन्थ में जो जो मतान्तर आये हुए हैं, उनके कोई विशेष खास नाम मूलग्रन्थ में दिये हुए नहीं हैं। उसी प्रकार इस बाबत टीकाकारों ने भी कुछ भी स्पष्ट नहीं लिखा है। इसलिये बौद्धत्रिपिटक और वैदिक साहित्य का विशेष अन्वेषण करने से इन सब मतों के विषय में आवश्यक वर्णन मिलना कठिन नहीं है।

इस सूत्र के पन्द्रहवें शतक में मंखलीपुत्र गोशालक से सम्बन्ध रखनेवाला सविस्तर वर्णन दिया हुआ है। यह वर्णन अक्षरशः ऐतिहासिक है, ऐसा कहना कठिन है, लेकिन उससे गोशालक के सम्प्रदाय का थोड़ा बहुत वर्णन हम जान सकते हैं। इसमें गोशालक को स्वभाववादी या नियतवादी की तरह चित्रित किया गया है। गोशालक का कथन उसमें ऐसा जताया गया है कि वह, जीवों का सुख दुःख स्वाभाविक नियत मानता है। इस सूत्र के सिवाय दूसरे सूत्रों में भी गोशालक का मत बताया गया है। सूयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पहले अध्याय के दूसरे उद्देशक में दूसरी तीसरी गाथा में अन्य मत को बताते हुये ऐसा कहा गया है कि "कई ऐसा कहते हैं कि जीवों को सुख दुःख होता है, वह स्वयंकृत नहीं है, अन्यकृत भी नहीं है, लेकिन ये सब सिद्ध ही हैं स्वाभाविक है।"

ऐसा ही मत उपासक दशांग के सातवें अध्याय में आजीवक के उपासक सद्दालपुत्र ने स्वीकार किया है। सद्दालपुत्र कहते हैं कि "उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषकृत पराक्रम नहीं किन्तु ये सभी नियत है।" ये सद्दालपुत्र आजीवकोपासक गोशाकल को अपने धर्म गुरु की तरह से स्वीकार करते है। इस तरह व्याख्याप्रज्ञप्ति, सूयगडांग और उपासक दशांग में गोशालक के मत के विषय में कोई फर्क मालूम नहीं होता। इन सब बातों को देखते हुए गोशालक स्वभाववादी नियतिवादी— थे यह ठीक जान पड़ता है।

बुद्धपिटकों में भी मंखली गोशालक के सम्बन्ध का वर्णन है। उसमें कहे हुए उसके प्रतिपादन को पढ़ने से मालूम होता है कि वे अहेतुवादी थे। दीर्घनिकाय के सामञ्ञफल सूत्र में लिखा हुआ है कि "प्राणभूत, जीव और सत्त्व के सुख दुःख अहेतुक हैं, बल नहीं, वीर्य नहीं, पुरुषकृत पराक्रम नहीं, यह गोशालक का मत है।" इस तरह बुद्धपिटक और जैनसूत्रों में गोशालक के मत की तरह उपर्युक्त वर्णन का एक-सा उल्लेख आता है और टीकाकार भी उसको उसी तरह बताते हैं।

इस सूत्र में गोशालक द्वारा वर्णन की हुई निर्वाण प्राप्ति की पद्धति बताने में आई है, जिसमें से बहुत कुछ दीर्घनिकाय के उल्लेख के साथ अक्षरशः मिलती है। इस तरह सूत्र में नामनिर्देशपूर्वक केवल एक गोशालक का ही जिक्र है।

इसके अलावा एक समय में दो क्रियाओं का होना माननेवाले, एक समय दो आयुष्य करना तथा भोगना माननेवाले आदि अन्य अनेक मतों को अन्य तीर्थक के नाम से बतलाने में आया है (भा० १ पा० २१६) (भा० १ पा० २०४), वे कौन से हैं, यह जल्दी कहना बहुत कठिन है।

इसके अलावा इस सूत्र में और दूसरे सूत्र में कई जगह चार समवसरणों का निर्देश किया हुआ है। इन चारों में से एक क्रियावादी का, दूसरा अक्रियावादी का, तीसरा अज्ञानवादी का, चौथा विनयवादी का है, ऐसा कहा जाता है। टीकाकार कई जगह ऐसा लिखते हैं कि प्राचीन समय में तीन सौ तिरसठ पाखण्ड--थे। उन तीनसौ तिरसठ को समझाते हुए वे टीकाकार इन चार समवसरणों को आधारभूत बताते हैं। तीनसौ तिरसठ की संख्या मिलाने के लिये जो पद्धति टीकाकार स्वीकार करते हैं, वह पद्धति बराबर समझ में नहीं आती। ठीक तो इन तीन सौ तिरसठ पाखण्डों का इतिहास बताया जा सके ऐसा एक भी साधन प्राप्त नहीं किन्तु उस संख्या के बदले बौद्ध ग्रन्थों में साठ पाखण्डों का उल्लेख मिलता है। उस विषय का बहुत कुछ वर्णन भी उनमें दिया हुआ है। यह सब पाठकों को बौद्ध-साहित्य में से देख लेना चाहिये।

इसके अलावा महावीर के ठीक पहिले होनेवाले जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के कई शिष्यों ने भगवान् महावीर के साथ अथवा उनके कई शिष्यों के साथ चर्चा की है उसका उल्लेख इस सूत्र में कई जगह है। इन चर्चाओं को बारीकी से पढ़ने से और भगवान्--महावीर के साथ पार्श्वनाथ के इन शिष्यों का व्यवहार देखते हुए इतिहास के पृथक्करणपूर्वक गवेषणा करनेवाले किसी भी विवेकी व्यक्ति को यह स्पष्ट जान पड़ेगा कि उस समय में पार्श्वनाथ के और भगवान महावीर के शिष्यों के रीति-रिवाजों में इतना अन्तर था कि वे दोनों एक ही परम्परा को स्वीकार करते हुए भी एक दूसरे को पहचान भी नहीं सकते थे। ऐसा होते हुए भी उन दोनों के शिष्य समुदाय में भेद सहिष्णुता और समन्वय की शक्ति होने के कारण शायद ही कभी वैमनस्य हुआ हो। इस सम्बन्ध में ज्यादा जानने की इच्छा रखनेवालों को उत्तराध्ययन सूत्र का केशी गौतमीय--अध्ययन ध्यान देकर पढ़ना चाहिये।

(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति में आये हुए कितने ही विवादास्पद स्थान,

(१) सातवें शतक के नवें उद्देशक में वज्जी विदेह पुत्र कोणिक के साथ काशी और कौशल के नौ मल्लकि नौ लेच्छकि अट्ठार गणराजाओं के युद्ध का वृत्तान्त आता है, उसमें 'वज्जी' शब्द विदेहपुत्र कोणिक का विशेषण है और वह उसके वंश का सूचक है। वज्जी

लोगों के साथ मल्लवंश और लिच्छवी वंश के राजाओं के युद्ध का वृत्तान्त बौद्ध ग्रन्थ में भी आता है। इस प्रकार वज्जी शब्द एक राजवंश का सूचक है, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा होते हुए भी टीकाकार इस 'वज्जी' शब्द का अर्थ वज्जी अर्थात् बज्री वज्रवाला इन्द्र कहते हैं, जो यहां बिल्कुल असंगत है। जहां यह वृत्तान्त है, उस जगह मूलमें लिखा हुआ है कि "गोयमा! वज्जी विदेहपुत्ते जइत्था; नव मल्लई नव लेच्छई कासी को सलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था।" (भा० ३ पा० ३०) इस वाक्य में वज्जी का अर्थ किसी भी तरह 'इन्द्र' नहीं हो सकता, किन्तु यह वज्जी शब्द विदेहपुत्र का विशेषणरूप है, यह बात सूत्र की यह वाक्य-रचना ही बतलाती है।

(७) भा० १ पा० २८० में देवलोक में देवों के पैदा होने का वृत्तान्त दिया हुआ है, उसमें ऐसा बताया गया है कि "पूर्व के संयम के कारण देवता देवलोक में पैदा होते हैं, आत्मभाववक्तव्यता के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न नहीं होते" यहां टीकाकार आत्म-भाव वक्तव्यता का अर्थ 'अहंमानीता' करते हैं और ऐसा बता कर पूरे सूत्र का अर्थ वे ऐसा लगाते हैं कि 'यह वृत्तान्त 'अहंमानीता' के कारण कहते नहीं" लेकिन विचार करने से टीकाकार की यह पद्धति संगत नहीं जचती, क्योंकि २८२ वें पृष्ठ में यह वाक्य भगवान महावीर के मुख से कहा गया है, वहां उसका टीकाकार द्वारा बताया हुआ अर्थ थोड़ा भी संगत हो सकता हो, ऐसा नहीं है।

विचार करने से ऐसा जान पड़ता है कि आत्म-भाववक्तव्यता का अर्थ आत्मभाव की दृष्टि अर्थात् स्वस्वरूप प्राप्ति की दृष्टि करें तो कोई असगत नहीं है।

ऐसा अर्थ करने से यह आशय निकलता है कि देव-लोक की प्राप्ति का कारण आत्मभाव नहीं आत्मभाव अर्थात् स्वस्वरूप की प्राप्ति। यह तो सीधा ही निर्वाण का कारण है। इससे आत्मभाववक्तव्यता की दृष्टि से देवता देवलोक में उत्पन्न नहीं होते. ऐसा सूत्र का अर्थ हुआ। इसलिये भगवान् महावीर के मुख में शोभित होने जैसा इसका सीधा और सादा अर्थ हो सके, ऐसा होते हुए भी आत्मभाववक्तव्यता का अर्थ टीकाकारों ने 'अहंमानिता' किया है, इसका कोई कारण समझ में नहीं आता।

आत्मभाववक्तव्यता का जो अलग अर्थ यहां बताया गया है, वैसा करते हुए भी यदि अन्य अधिक उपयुक्त अर्थ, जो यहां ठीक लगे, कोई बतायगा तो जरूर उसको ग्रहण किया जायगा।

'अहंमनिता' का जो अर्थ बताया गया है, वह यहां भगवान् महावीर के मुख में शोभा नहीं देता, इसीलिये इस शब्द का कोई दूसरा भाव शोधकों को अवश्य खोजना चाहिये। भगवान् महावीर के मुख में यह वाक्य इस प्रकार है:

'अहं पिणं गोयमा! एवमाइक्खामि, भासामि, पन्नवेमि, परूवेमिपुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जन्ति, पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जति, कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, संगियाए देवा देवलोएसु उव-वज्जति, पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जन्ति, सच्चेणं एस-मट्ठे, णोचेवणं आयभाववत्तव्वयाए।"

[अनुवादः— (भगवान् महावीर कहते हैं कि) हे गौतम, मैं भी ऐसा कहता हूं, बोलता हूं और बताता हूं और प्ररूपता हूं कि पूर्व के तप से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं, पूर्व के संयम से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं, कर्मीपन के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं और संगी-पन के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते है। (अर्थात्) हे आर्य! पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्मीपन

और संगीपन के कारणों से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं, यह बात सच है। आत्मभाववक्तव्यता के कारण ऐसा नहीं होता है।"]

(३) गोशालक के पन्द्रहवें शतक में भगवान् महावीर के लिये सिंहअनगार को जो अहार लाने के लिये कहा गया है, उस प्रसंग के दो तीन शब्द बहुत विवादास्पद हैं। कवोय सरीरा-कपोत शरीर मज्जार-कडये-मार्जारकृतक कुक्कुडमंसए-कुक्कुट-मांसक-इन तीन शब्दों के अर्थ में विशेष गोलमाल जान पड़ता है। कोई-कोई टीकाकार यहां कपोत का अर्थ 'कपोत पक्षी' मार्जार का अर्थ प्रसिद्ध 'मार्जार' और कुक्कुट का अर्थ प्रसिद्ध 'कूकड़ो' बताते हैं तो अन्य टीकाकार इन शब्दों का लाक्षणिक अर्थ करते हैं। इनमें कौन सा अर्थ उपयुक्त है, यह नहीं कहा जा सकता। शोधकों को इस विषय में अवश्य विचार करना चाहिये।

(४) बीसवें शतक के दूसरे अध्याय में 'धर्मास्तिकायनां अभिवचन पर्याय शब्द — कितने हैं ?' इसके उत्तर में भगवान ने प्राणातिपात विरमण - अहिंसा, मृषावादविरमण-सत्य आदि सद्गुणवाचक शब्दों को बताया है और इसी प्रकार अधर्मास्तिकायनां अभिवचन — पर्याय शब्द-बताते हुये प्राणातिपात-हिंसा, मृषावाद-असत्य आदि दुर्गुण वाचक शब्द कहे हैं। मूल में आया हुआ यह वर्णन, जिस प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का स्वरूप मानने में आता है, उसके साथ थोड़ा भी उपयुक्त नहीं जचता। टीकाकारों ने भी इस वर्णन को स्पष्ट करने के लिये कुछ नहीं लिखा अर्थात् इस मूल का धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के साथ कैसे मिलान करना, यह प्रश्न अभीतक हल नहीं हो सका है।

इसके अलावा इस सूत्र में ऐसे कई विवादास्पद स्थान हैं, जो सब यहां लिखे नहीं जा सकते। यहां तो केवल इस विषय के थोड़े से उदाहरण ही दिये गये हैं।

(६) व्याख्याप्रज्ञप्ति की टीका.

इस सूत्र के मूल श्लोकों की संख्या लगभग १५८०० है और उसकी इस टीका के श्लोकों की संख्या १८६१६ है अर्थात् सच पूछा जाय तो यह टीका एक प्रकार की टिप्पणी की तरह है। टीकाकारों ने केवल मात्र शब्दों का अर्थ भर किया है। जिस जगह खूब अधिक समझाया गया है, उस जगह भी उन्होंने भाग्य ही से कुछ लिखा है। इसका कारण केवल एक ही दीखता है कि टीकाकारों के जमाने में आगमों के स्वाध्याय की परम्परा लगभग नष्ट प्रायः हो गई थी।

इसके अलावा टीकाकार के पहिले जो टीका टिप्पणीयां वगैरह इस सूत्र को समझने के लिए थीं उसमें भी चाहिये उतना प्रकाश नहीं था, ऐसा यह टीकाकार स्वयं बताते हैं।

यह टीकाकार स्वयं कई जगह लिखते हैं कि आगम की परम्परा नष्ट हो जाने से और आगम के अच्छे जानकार के अभाव से यह टीका संशयग्रस्त मन से लिखी हुई है। और पढ़ने में कई जगह पाठभेद होने से अर्थ करने में बड़ी मुश्किल पड़ती है। इस सूत्र में हर-एक शतक के अन्त में दिये हुए टीका के श्लोकों में टीकाकारों ने इस प्रकार की अपनी कठिनाइयों को दर्शाया हुआ है। तो भी उन्होंने इस सूत्र पर किये हुए प्रयत्न से अपन कुछ समझ सकते हैं और सूत्र का मूलपाठ ठीक ही दिया हुआ है इसलिये टीकाकार के हमलोग बहुत आभारी हैं इस बात को नहीं भूलना चाहिये।

उपर्युक्त विवादास्पद जगहों को बताने में हमारा उद्देश टीकाकार की उपेक्षा करना कदापि नहीं, परन्तु

जो कोई भी टीकाकार टीका करते हुए साम्प्रदायिक-वृत्ति रखता है और केवल शब्दों का ही स्पर्श करता है, वह कई बार मूल के यथार्थ अभिप्राय को बताने में समर्थ नहीं होता, यह ध्यान में रखना चाहिये।

अभी जो सूत्र विद्यमान हैं उनकी टीकाओं को देखने से उन हरएक सूत्र पर नई टीका करने का समय आ पहुंचा है। परन्तु वो होनेवाली सब टीका पृथक्करण की, तुलना की और विशालता की दृष्टि को मुख्य रख कर ही होनी चाहियें, यह न भूला जाय।

सिद्धसेन दिवाकर के कथनानुसार सिर्फ सूत्रों को रटने से अर्थ का ज्ञान नहीं होता। अर्थ का ज्ञान नयवाद पर अवलम्बित है, यह नयवाद गहन है इसलिये नयवाद को समझने के साथ सूत्रार्थ के अभ्यासी पैदा करने का खूब प्रयत्न होना चाहिये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय, देश, संयोग और भेद यह सब ध्यान में रख कर आचार और तत्व का विवेचन करना चाहिये। सूत्रों के मर्म को समझने के इच्छुकों को कभी एक तरफा दृष्टि न रखना चाहिये। एक तरफ लुढ़कने से तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है और इसी अनर्थ के कारण यह सब धार्मिक कलह पैदा होते हैं।

(७) व्याख्याप्रज्ञप्ति के टीकाकार,

टीकाकार अभयदेव विक्रमी ११ वीं शताब्दि से बारहवीं शताब्दि तक में हुये थे। उनके सम्बन्ध का विस्तृत वृत्तान्त प्रभावक-चरित्र में अभयदेव सूरि के निबन्ध में दिया हुआ है। वे खास धारानगरी के वासिन्दे थे, उनके पिता का नाम महिधर और माता का नाम धनदेवी था। और इन आचार्य का मूल नाम अभय-कुमार था। वर्धमानसूरि के शिष्य बुद्धिसागरसूरि और जिनेश्वरसूरि थे। ये अभयदेवसूरि इन जिनेश्वर-सूरि के शिष्य थे। जिस समय ये आचार्य हुए, उस समय साधु-संस्था बहुत शिथिल-दशा में थी। चैत्य-वासियों का खूब बोलबाला था। चैत्यवासी भी आचार में इतने शिथिल हो गये थे कि वे वेतनभोगी नौकर भी होने लग गये थे। ये आचार्य और इनके गुरू इस शिथिलता को दूर करने का प्रयत्न करते थे। नवअङ्ग सूत्र पर इनकी टीका भी विद्यमान है। इसके अलावा इन्होंने पंचाशक आदि अनेक प्रकरणों पर विवरण लिखे हैं और अन्य कई नए प्रकरण भी रचे हैं। सूत्रों पर की हुई बहुत कुछ टीकाएँ उन्होंने पाटण में की है, ऐसा उन्होंने बताया है। प्रस्तुत सूत्र की टीका इन्होंने ११२८ में पाटण में की है, ऐसा उन्होंने टीका के प्रसंग में कहा है। टीका के आरम्भ में दी हुई प्रशस्ति से जान पड़ता है कि वे चान्द्रकुल के थे। उनके गुरू के गुरू का नाम वर्धमानसूरि था। इनके दीक्षा-गुरू जिनेश्वरसूरि थे, ऐसा प्रबन्ध में बताया है, किन्तु इस प्रशस्ति में 'तयोर्विनेयेन' ऐसा लिख कर वे जिनेश्वर और बुद्धिसागर दोनों को अपने गुरू की तरह स्वीकार करते हैं। यह टीका उन्होंने निर्वृत्तिकुल के द्रोणाचार्य के द्वारा शुद्ध कराई थी, ऐसा उन्होंने लिखा है। ये टीकाकार नवांगीवृत्तिकार के नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। इससे अधिक जानने के लिये प्रभावक चरित्र-भाषान्तर की प्रस्तावना में आये हुए अभयदेव-सूरि के वृत्तान्त को देखना चाहिये।

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे ससार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार, और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपन्थ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इन को सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।— सम्पादक।]

अशिक्षा

हमारा सम्पूर्ण समाज अशिक्षित है—समाज का जीवन अज्ञान के अन्धकूप में पड़ा सड़ रहा है। आपने उसका उद्धार करने के लिये क्या सोचा है ?

इस समय संसार के सभी समाज अशिक्षा दूर करने और शिक्षित होने की निरन्तर चेष्टा कर रहे हैं, अज्ञान जनित अपनी बुराइयों को शिक्षा प्राप्त कर दूर करने की भरसक कोशिश कर रहे हैं—उस समय आपके समाज की क्या दशा है, इस पर कभी विचार किया है ?

जिस समय अन्य समाज अपने अपने दायरे से इस अशिक्षा के भूत को भगा कर आपकी ओर उपहास भरी नजर से ताकेंगे, उस समय आपको मुंह छिपाने को कौन जगह मिलेगी, इसका कभी ध्यान किया है ?

अन्य समाज इस दिशा में कितने प्रयत्नशील हैं ? क्या आपने कभी इस पर कुछ विचार करने का कष्ट उठाया है ? वे जहां अपने युवकों को—अपने भावी सूत्रधारों को तैयार करने में लगे हैं, उन्हें देश में, विदेश में सुविधाएं देकर शिक्षित बना रहे हैं, वहां आप अभी गहरी नींद में सो रहे हैं।

जागिये ! उठिये !! शिक्षा-प्रचार की व्यावहारिक योजनाओं पर विचार कीजिये—तन मन धन से उनमें सहायता कीजिए।

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री धर्मदास जैन विद्यालय, थांदला (झाबुआ स्टेट)

सन् १६३० में जैनमुनि श्री भगवानदासजी का चतुर्मास थांदला में हुआ और उन्होंने ६३ दिन का उपवास धारण किया। सुदूर प्रान्तों से मुनिश्री के अनुयायी उनके दर्शनार्थ थांदला आये। मुनि महाराज ने उस समय सबका ध्यान गरीबी से पीड़ित अर्द्ध नग्न भीलों की ओर दिलाया और इन गरीब और सताये हुए व्यक्तियों को शिक्षित बनाने और उनकी मद्य-मांस भक्षण की बुरी आदतों को सुधारने की जरूरत महसूस कराई। इसका फल यह हुआ कि सन् १६३० में थांदला में इस विद्यालय की स्थापना हुई। तब से अबतक पूरे छः वर्षों तक इस विद्यालय ने इस दिशा में कार्य किया है और इसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। भीलों के लड़के, जो अभी कलतक अछूत और गये बीते समझे जाते थे, अन्य उच्च वर्णों के लड़कों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक मिलने लगे। सम्पूर्ण डूंगर प्रान्त (मालवा) में केवल यही एक प्राइवेट संस्था है और बीसियों लड़कों को हर साल शिक्षित किया है। यहां हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं का केन्द्र है। हर साल विशारद परीक्षा में दो-तीन बैठते ही हैं। इस विद्यालय का मुख्य उद्देश्य शिक्षण प्रगति को बढ़ाना ही है, लेकिन अभी कुछ दिनों से झाबुआ स्टेट की कौंसिल ने यद्यपि कौंसिल मेम्बरों ने व्यक्तिगतरूप से विद्यालय के कार्यों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा ही की है विद्यालय पर एक राजनीतिक संस्था होने का आरोप लगाया है। यह जैन विद्यालय झाबुआ के महाराज के प्रति बिल्कुल राजभक्त संस्था है और कांग्रेस आदि राजनीतिक संस्थाओं से इसका कोई लगाव नहीं है। इस संस्था के नष्ट हो जाने से एक सच्ची अछूत और पिछड़ी हुई जातियों में काम करने-वाली सस्था उठ जायगी। हरेक भद्र व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह तन मन धन से इस संस्था को मदद पहुंचावे और झाबुआ कौंसिल के इस निराधार कार्य का विरोध करे।

मन्त्री

जैन विधवा-विवाह मण्डल, पूना

इस मंडल की स्थापना पहली अगस्त सन् १६३४ को हुई थी। तबसे लेकर गत ३१ जुलाई तक की इस मंडल की द्विवार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। मंडल को अपने कार्य में अच्छी सफलता मिली है। ज्ञान-प्रकाश, सत्यसंदेश, नव-राजस्थान, सनातन जैन आदि पत्रों ने मंडल के कार्यों की प्रशंसा की है। गत ता०

२६-७-३६ को मंडल की द्विवार्षिक सभा हुई, जिसमें आगामी साल के लिये रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया। इस समय मंडल के सदस्य ८२ (पुरुष ७६+महिला ६) हैं। इस समय तक मंडल के तीन सदस्यों ने भी मंडल के नियन्त्रण के बाहर विधवा-विवाह किये हैं। गत ३१ जुलाई तक मंडल की कुल आय ३३०॥) और कुल व्यय १०५।-)। रहा। शेष २२५=)॥। मंत्री के पास जमा है। प्रत्येक समाज-सुधार प्रेमी से अनुरोध है कि मंडल के प्रति तन मन धन से अपनी सहानुभूति प्रदर्शन करें।

कनकमल महनोत, मंत्री

साहित्य-संसार

राजपूताने के जैन-वीर—लेखक, श्री अयोध्या-प्रसाद गोयलीय "दास"; भूमिका लेखक, राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा; प्रकाशक, हिन्दी विद्या मन्दिर, पहाड़ी धीरज, देहली; पृष्ठ ३५२; मूल्य, दो रुपया।

इस पुस्तक का विषय ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण है। राजपूताने का इतिहास और विशेष कर जैन धर्मावलम्बी पुरुषों का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी बहुत छिन्न भिन्न और अन्धकार के गह्वर में पड़ा हुआ है। इन सब कठिनाइयों के रहते हुए भी श्री गोयलीय ने जैन-वीरों के इतिहास को पुस्तक बद्ध करने में जो परिश्रम किया है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। यद्यपि पुस्तक अपूर्ण है, क्योंकि इसमें राजपूताना के सभी जैनवीरों का (उदाहरणार्थ किशनगढ़ राज्य के तत्कालीन दीवान शेरसिंहजी महणोत आदि का) इतिहास नहीं आ सका है। फिर भी प्रत्येक जैनी को इसे अपनाना चाहिये। भाषा परिमार्जित और जोशीली है। इस पुस्तक को पढ़ कर प्रत्येक जैनी की छाती अपने बुजुर्गों की गौरवपूर्ण याद से फड़क उठेगी। इतिहास, साहित्य और प्रचार की दृष्टि से पुस्तक अत्युत्तम है।

सम्पादकीय

जैन साहित्य और उसका उद्धार

अभी इस महीने में जैन साहित्य के उद्‌भट्ट विद्वान और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन साहित्य के प्रोफेसर पं० सुखलालजी सिंघवी का कलकत्ते में आगमन हुआ था। ऐसे विद्वान का हमारे बीच में होने का जितना उपयोग जनता को करना चाहिये था वह तो न हो सका पर स्थानीय ओसवाल नवयुवक समिति ने पण्डितजी के एक व्याख्यान का आयोजन किया था। जिसका विषय था "जैन साहित्य और उसका उद्धार"। इस व्याख्यान में पंडित सुखलालजी ने समाज का ध्यान कितनी ही बहुत महत्वपूर्ण बातों की ओर आकर्षित किया था।

हम सभी कहते हैं और यह कहते हुए बड़ा गौरव अनुभव करते हैं कि हमारा जैन-साहित्य बड़ा प्राचीन और बड़ी बड़ी महत्वपूर्ण सामग्रियों से भरा हुआ है। इस बात को मानने में हमें कोई आनाकानी नहीं कि वास्तव में जैन-साहित्य बहुत प्राचीन और महत्वपूर्ण है, पर उसकी उस 'प्राचीनता' का हम तो कोई मूल्य नहीं समझते जबतक उसकी खोज कर उसकी महत्वपूर्ण सामग्रियों को प्रकाश में न लाया जाय। केवल 'प्राचीनता' की दुहाई देने मात्र ही से कोई वस्तु या साहित्य महत्वपूर्ण और मान्य नहीं हो जाते। 'प्राचीनता' केवल उसी समय महत्वपूर्ण और वांछनीय समझी जा सकती है, जब उसकी उपयोगी सामग्रियों को समाज के जीवन में उतरने योग्य बना कर पेश किया जा सके। और वास्तव में बात तो यह है कि किसी भी साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन उसकी प्राचीनता या अर्वाचीनता से नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिये। साहित्य की उपयोगिता और श्रेष्ठता की कसौटी तो एक ही हो सकती है कि उस साहित्य ने उससे सम्बन्ध रखनेवाले समाज को मानव जाति के और देश के कल्याण में सहयोग देने के लिये कितना तैयार किया। साहित्य जीवन को महान और उच्च बनाने का एक साधन है और अतः किसी भी साहित्य के श्रेष्ठ होने की एक ही कसौटी हो सकती है कि उसके द्वारा जन-समूह कितना ऊंचा उठा और उसका कितना कल्याण हुआ। जैन साहित्य को भी हमें इसी कसौटी पर कस कर उसका मूल्य निकालना होगा और उसके उपयोगी तत्वों को जनता के सामने रखना होगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारे पुराने साहित्य की आधुनिक दृष्टि से खोज की जाय।

प्राचीन जैन साहित्य के उद्धार के लिये कुछ प्रयत्न हुआ जरूर है, पर वह उन साधु या श्रावकों द्वारा हुआ है जो 'प्राचीनता' के तो प्रेमी हैं, पर उस 'प्राचीनता' को अर्वाचीन रंग में रंगना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि उनके कार्य की कीमत केवल 'प्राचीनता' के नाम से ही कूती जाय, लेकिन ऐसा चाहते समय वे इस बड़े

भारी सत्य को भुला बैठते हैं कि उनका केवल 'प्राचीनता' की दुहाई देनेवाला वह कार्य अर्वाचीन जीवन के साथ ठीक मेल नहीं खाता और जब तक जीवन के लिये उपयोगी सामग्री उस 'प्राचीनता' से न मिले, वह अवांछनीय ही रह जाती है। अब तक इस पुरातत्त्वान्वेषण की दशा में जितने कार्य हुए हैं, जितने अनुवाद, जितनी टीकायें, जितने समालोचक और ऐतिहासक ग्रन्थादि प्रकाशित हुए हैं, उनमें बहुत कम ऐसे हैं जिनमें से वर्त्तमान जीवन के लिये आसानी के साथ उपयोगी तत्व चुने जा सकें। ये वर्त्तमान नवयुवक प्रकृति के साथ मेल नहीं खाते और इसीलिये वर्त्तमान नवयुवक प्रकृति द्वारा अगर वे उपेक्षित हों तो इसमें आश्चर्य क्या है? यह प्रकाशन केवल उस प्राचीन दायरे में उस साधु और श्रावक समुदाय में रहने के काबिल है, जो केवल 'प्राचीनता' समझ कर ही पूज्य भाव रखते हैं। लेकिन इससे संसार का कोई वास्तविक कल्याण साधन नहीं हो सकता।

अब हमें इस दिशा में जो करना है, उसमें सबसे पहला काम इस प्राचीन साहित्य को एकत्रित कर अर्वाचीन जीवन में इसकी उपयोगिता के क्रम से इसको प्रकाशित करना होगा। उस 'प्राचीनता' में जो चीज सामूहिक रूप से हमारे वर्त्तमान दैनिक जीवन के लिये जितनी अधिक उपयोगी हो, उतना ही पहले उसपर हमारा ध्यान जाना चाहिये। अर्वाचीन नवयुवक के क्रान्तिकारी जीवन से जो वस्तु जितनी ही अधिक मेल खाय, उनके भावुक और प्रगतिशील दिमाग पर जो जितना ही अधिक और उपयुक्त असर डाल सके, वह उपयोगिता के क्रम की कसौटी पर उतनी ही खरी उतरेगी। यही क्रम हमारे इस पुरातत्त्वान्वेषण का भी होना चाहिये।

जैसा कि कहा जाता है जैन साहित्य बहुत प्राचीन और महत्वपूर्ण है, लेकिन परिवर्तन न चाहनेवाले सत्ताधारियों के अधिकार में रहने से और 'प्राचीनता' की दुहाई को ही सब कुछ समझ बैठनेवाले व्यक्तियों का श्रद्धाभाजन रहने से, वह असङ्गठित और आडम्बरपूर्ण हो गया। उसमें के तत्वों को नवीनता का जामा पहनाते हुए परिवर्त्तन न चाहनेवाले ये व्यक्ति डरें। लेकिन हमें उनके उस डर की परवा न कर समय, काल और परिस्थिति के अनुसार नवीन सांचों में इन 'प्राचीनता' की सामग्रियों को ढालना होगा। सिद्धांतों की तुला पर उपयोगितावाद नहीं तोला जाता, वरन उपयोगितावाद की तुला पर सिद्धान्त तोले जाते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों और रचनाओं का अनुवाद करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुवाद सरल हों, शुद्ध बोलचाल की भाषा में हों, बिल्कुल नीरस न हों वल्कि उनमें जीवन के पहलुओं का विवेचन और विश्लेषण और विषय का चित्रण इस मनोरञ्जक ढङ्ग से हो कि तबीयत न ऊबे और चित्त पर प्रभाव भी अधिक तथा स्थायी पड़े। जो विषय जितना ही अधिक सरल, आकर्षक और मनोरञ्जक होता है, वह उतनी ही शीघ्रता से दिल पर असर करता है। उपयोगिता और मनोरञ्जन का सामञ्जस्य इस युग की एक बड़ी मांग है। हम इस दिशा में कार्य करते समय इस मांग की उपेक्षा नहीं कर सकते। आजकल के मनुष्य को, जब कि जीवन-संग्राम अधिक भीषण और प्रतिद्वन्दिता अधिक प्रखर है, प्राचीन साहित्य की महत्वपूर्ण सामग्रियों के पठन के लिये फुरसत जरा कम ही मिलती है। अतः ऐसी दशा में हमारे लिये यह केवल वांछनीय ही नहीं बल्कि जरूरी होगा कि हम इस विषय को इस ढंग से तैयार

करें कि जिसमें मनुष्य को परिश्रम कम हो और उपयोग अधिक हो। प्राचीन रचनाओं के अनुवाद, संकलन या समालोचनाओं के साथ पुस्तक की विषयानुक्रमणिका, तत्संबन्धी शब्दकोष, तत्सम्बन्धी टिप्पणियां, प्रस्तावनाएं और परिचय आदि इस तरतीब से दिये जांय कि पुस्तक में से इच्छित वस्तु ढूढ़ने के लिये पाठक को कम से कम परिश्रम और कम से कम समय खर्च करना पड़े। हमारी तो यहां तक इच्छा है कि वे पुस्तकें इस ढंग से बनायी जांय और उनको वर्त्तमान रूप देकर ऐसा तरतीबवार और आकर्षक बना दिया जाय कि वे ट्राम, ट्रेन, बस या और किसी सवारी में चलते हुये यात्रियों को किसी भी मनोरंजक उपन्यास या पत्र का काम दे सकें। अर्थात हमारा ध्यान इतना दूर तक रहने से ही हम इस ओर कुछ सफलता प्राप्त कर सकेंगे। यह जमाना कारबारी होने के साथ-साथ आकर्षण का भी है। किसी भी कार्य में आजकल आकर्षण की बड़ी भारी आवश्यकता है। व्यापार को ले लीजिये, राजनीतिक, सामाजिक तथा ऐसी ही अन्य बातों को ले लीजिये, आकर्षण की आवश्यकता सब जगह महसूस की जाती है। हम भी इस दिशा की ओर कार्य करते हुए इस पहलू की ओर से बेखबर रह कर नहीं चला सकते। पुस्तकों में आकर्षण होना चाहिये। उनकी छपाई, उनका गेट-अप, उनका आकार प्रकार सभी जमाने के अनुसार सुन्दर होना चाहिए। आकर्षण से अच्छाई भी पैदा होती है और बुराई भी। लेकिन बुराइयों में आकर्षण अधिक रहता है। अच्छाइयों में आकर्षण का समावेश जितना हो, उतना ही मनुष्य के लिये हितकर सिद्ध होगा।

श्री पं० सुखलालजी के भाषण के पश्चात् स्थानीय इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स के स्थानापन्न सेक्रेटरी श्री सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए०, एल-एल-बी० ने भी अपने भाषण में प्राचीन जैन साहित्य के उद्धार की महत्वपूर्ण आवश्यकता बतलाते हुये एक अच्छा मार्ग निर्देश किया। उन्होंने इस कार्य के लिये एक रिसर्च सोसाइटी की स्थापना पर जोर दिया। हम इस प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन करते हैं। प्रस्ताव बहुत समयोपयोगी है और आशा है समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा। बिना संगठित और सुचारुरूप से काम किये सफलता मिल नहीं सकती। श्रीयुत ढड्ढाजी ने यह भी कहा कि स्वर्गीय श्री पूरणचन्द्रजी नाहर की कलकत्तास्थित गुलाबकुमारी लाइब्रेरी और नाहर-म्यूजियम जैन साहित्य और तत्सम्बन्धी वस्तुओं का एक अपूर्व और महत्वशाली संग्रहालय है। अगर इसके नियन्त्रण में उक्त रिसर्च संस्था कायम हो तो अधिक उपयुक्त बात होगी। ऐसा होने से उक्त संस्था को 'ओसवाल नवयुवक' आदि पत्रों का सहकार भी प्राप्त हो सकेगा और कार्य उत्तमता से हो सकेगा। हमारा भी पाठकों से अनुरोध है कि वे इस महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार और परामर्श हमें भेज कर अनुग्रहीत करें। निःसन्देह धनी आदि सुसम्कृत कहलानेवाले जैन समाज के लिये यह क्या कम खेद का विषय है कि जैन साहित्य की खोज के लिये एक भी केन्द्रीय संस्था न हो? आशा है समाज इस कमी की पूर्त्ति के लिये शीघ्र ही सचेष्ट होगा। हमसे इस कार्य में जो सेवा बन आयगी हम सदा सहर्ष करने को तैयार रहेंगे।

टिप्पणियाँ

उपन्यास-सम्राट् श्री प्रेमचन्दजी का स्वर्गवास——

गत ८ अक्टूबर को काशी में हिन्दी-साहित्य-गगन के अति प्रकाशमान सितारे उपन्यास सम्राट् श्री मुन्शी प्रेमचन्दजी बी० ए० का जलोदर के रोग से स्वर्गवास हो गया। आपके स्वर्गवास से हिन्दी जगत् का एक महान् अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिवाला व्यक्ति उठ गया। यह हमारी एक बड़ी जबर्दस्त क्षति है, जिसकी पूर्त्ति की निकट भविष्य में कोई सम्भावना नहीं। श्री प्रेमचन्दजी का असली नाम श्री धनपतराय बी० ए० था, पर साहित्य-जगत् में आप 'प्रेमचन्दजी' के नाम से ही प्रसिद्ध थे। हिन्दी-साहित्य की तरह उर्दू-साहित्य के क्षेत्र में भी प्रेमचन्दजी का खूब यश प्राप्त है। पहले प्रेमचन्दजी उर्दू ही में लिखते थे, पर हिन्दी की ओर अपना स्वाभाविक प्रेम रहने के कारण वे हिन्दी में भी लिखने लगे। गत बीस बाइस वर्ष के अल्प समय में ही आपने हिन्दी-जगत् को अपनी अपूर्व प्रतिभा से चकित कर जो सर्वोच्च सन्मान प्राप्त किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। हिन्दी-जगत् को आपने अपना जो साहित्य कहानियों और उपन्यासों के रूप में प्रदान किया है, वह एक अपूर्व और अलभ्य वस्तु है। मानव-चरित्र के विश्लेषण की, जीवन के विभिन्न पहलुओं के चित्रण की आपमें जो शक्ति थी, वह कोई कहने की बात नहीं, किन्तु आपके रचित साहित्य को पढ़ कर अनुभव करने की बात है। इतना होते हुए भी बड़े खेद के साथ इस नग्न-सत्य को भी प्रकट करना ही पड़ेगा कि हिन्दी-जगत् ने आपका जैसा चाहिये वैसा सम्मान नहीं किया। अन्य भाषाओं के कलाकारों को वहां जैसा सम्मान मिलता है क्या यहां भी प्रेमचन्दजी को वैसा ही मिला? कुछ भी हो श्री प्रेमचन्दजी के हम सभी ऋणी हैं और इस समय हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना करने और उनके दुखी परिवार के प्रति सहानुभूति दिखाने के साथ-साथ उनकी पवित्र स्मृति में एक स्मारक खड़ा करने में, जैसा हिन्दी के गण्यमान्य सज्जन या पत्रकार निश्चय करें, तन मन धन से सहायता दें।

श्री धर्मदास जैन विद्यालय, थांदला (झाबुआ)

इस विद्यालयकी स्थापना सन् १९३० में हुई थी। तब से अबतक यह भीलों तथा अन्य अछूत जाति के बालकों को अन्य उच्च वर्णों के बालकों के साथ समान-भाव से शिक्षा देने का एक सराहनीय कार्य करता रहा है। इस प्रान्त में ऐसे एक विद्यालय की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। लेकिन सुना है कि इधर कई दिनों से झाबुआ राज्य के अधिकारियों की इस पर कोप दृष्टि है। केवल इसके विरुद्ध प्रचार करके ही चुप नहीं रहा गया है, बल्कि इसके अध्यापकों तथा कई छात्रों को कई अपराध लगा कर गिरफ्तार करके उन पर मुकदमें चलाये गये हैं। अगर वास्तव में यही बात है तो हम हृदय से इस नीति की निन्दा करते हैं। हमें आशा है कि झाबुआ महाराज इस मामले में पूरी छानबीन कर न्याय से काम लेंगे और रियासत के नौकरों को मनमानी करने का अवसर न देंगे। जहां और जगह शिक्षा की प्रगति को बढ़ावा दिया जाता है, वहां देशी रियासतों में इस प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाये जाते हैं। इसे हम देशी राजाओं की शिक्षा न्यूनता, अदूरदर्शिता, स्वार्थप्रियता और खुशामदपसन्दी के सिवा और क्या कह सकते हैं?

लेकिन यह बिल्कुल सही बात है कि अगर उन्हें और भी कुछ दिन अपने पूर्वजों के सिंहासनों पर टिके रहना है तो यह वर्त्तमान नीति बदलनी ही पड़ेगी। हम सारी जैन-जनता से यह कहना चाहते हैं कि वे एकमन से विद्यालय के प्रति झाबुआ राज्य के इस अन्याय का घोर विरोध करें और इसे नष्ट न होने दें।

स्पेन का गृह-युद्ध

स्पेन में इस समय दो प्रमुख दल हैं। एक साम्यवादी और दूसरा फासिस्ट। इस समय वहां की सरकार साम्यवादी दल की है। फासिस्ट दल इस सरकार को हटाना चाहता है। अतः वहां खूब जोरों से गृह-युद्ध छिड़ा हुआ है।

ऐसा जान पड़ता है कि स्पेन का यह गृह-युद्ध शीघ्र ही संसार में दूसरा महायुद्ध उपस्थित करेगा। सबसे ताजा खबरों से जाना जाता है कि विद्रोहियों की सेना स्पेन की राजधानी मेड्रिड पर चढ़ाई कर चुकी है और इस नगर पर बमबाजी भी शुरू कर दी है। स्पेन की वर्त्तमान साम्यवादी सरकार की सेना डट कर विद्रोहियों का मुकाबला कर रही है। दोनों ओर से अपनी अपनी विजय घोषित की जा रही है। स्पेन में ध्वंस का एक दर्दनाक नजारा उपस्थित हो गया है। इस गृह-युद्ध को लेकर यूरोप के अन्य राष्ट्र आपस में घात-प्रतिघात कर रहे हैं और अपना-अपना मौका ताक रहे हैं। जिस प्रकार कुछ समय पहले रूस सारे संसार में साम्यवादी सरकारें कायम करने का स्वप्न देखा करता था, उसी प्रकार अब इटली और जर्मनी सारी दुनियां में फेसिज्म का बोलबाला देखना चाहते हैं। पुर्त्तगाल भी इन्हीं का साथ दे रहा है। लेकिन रूस यह कैसे देख सकता है कि स्पेन की साम्यवादी सरकार का नाश हो जाय और साम्यवाद के प्रबल शत्रु फेसिज्म का बोलबाला हो जाय। अतः वह फेसिज्म की स्थापना के विरुद्ध अपनी कमर कसे तैयार है। इधर फ्रांस, जो सदा जर्मनी से भय करता है, यह नहीं चाहता कि वह तीन ओर से फासिस्ट राज्यों से घिर जाय और उसके शत्रुओं की शक्ति को बढ़ने दे। फ्रांस और इङ्गलैण्ड, दोनों में ही प्रजातन्त्रात्मक राज्य है। फ्रांस तो फासिस्ट राज्यों की शक्ति न बढ़ने देने में रूस के साथ सहमत है, पर वह बिना इंगलैण्ड का निश्चित रुख जाने कुछ नहीं कर सकता। इधर इंगलैण्ड यह नहीं निश्चय कर पा रहा है कि वह किसका साथ दे? उसके लिये फासिज्म और साम्यवाद दोनों ही अवांछित हैं। ऐसा जान पड़ता है कि संसार का भावी महायुद्ध इंगलैण्ड के रुख पर अवलम्बित है। इधर संसार के अन्य शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका और जापान आदि भी अपना-अपना मौका ताक रहे हैं। यूरोप में जब-जब भी युद्ध होता है, जापान को पूर्व में अपना स्वार्थ साधने का अच्छा मौका मिल जाता है कौन कह सकता है कि इस बार यह ऊंट किस करवट बैठे? पता नहीं, यह वर्त्तमान जड़वादी सभ्यता इस संसार को कहां ले जाकर छोड़ेगी।

बम्बई का हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष—

शोक का विषय है कि दोनों ओर के नेताओं के हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापन के अविरल प्रयत्नों के होते हुए भी हाल ही में बम्बई में यह लज्जाजनक भीषण दंगा हो गया। इस दंगे में बीसियों मरे और सैकड़ों घायल हुए, यह अमानुषिकता और बर्बरता नहीं तो और क्या है? इस समय जब कि हम सभी भारतवासी भारत के लिये स्वतन्त्रता प्राप्ति में लगे हुए हैं, ऐसे पारस्परिक झगड़ों से इस राष्ट्रीय कार्य में बहुत बड़ी रुकावट आती है। इन धार्मिक झगड़ों के कारण

भारत को कई बार केवल सबक ही नहीं सीखना पड़ा है बल्कि उसकी यह वर्त्तमान दासता भी, अगर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो इसी पारस्परिक धार्मिक वैमनस्य के कारण ही टिकी हुई है। लेकिन न जाने हमारे देशवासियों की कब आंखें खुलेंगी ? बम्बई का यह दंगा भी मारुती सभामण्डप और मस्जिद के एक छोटे से प्रकरण को लेकर आरम्भ हुआ था। ऐसा जान पड़ता है कि यह बात इतनी नहीं बढ़ पाती अगर कुछ स्वार्थी नेता पर्दे के पीछे से इस नाशकारी अभिनय का संचालन न करते होते। लेकिन उन स्वार्थियों को यह बात न भूलनी चाहिये कि पाप का घड़ा एक न एक दिन अवश्य फूट जाता है और धोखेबाजी सदा नहीं चलती। एक न एक दिन उन्हें अवश्य अपने किये पर सिर्फ पछताना ही न पड़ेगा बल्कि उसकी सजा भी भुगतनी पड़ेगी। हम हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही से कहना चाहते हैं कि इतने दिनों के बाद भी वे सबक सीखें और कम से कम उस समय तो मिल कर रहना सीखें जब देश को एक बाहरी शक्ति से अपने अधिकार लेना है।

व्यापार-चर्चा

कागज की मिलें---

यों तो कागज की मिलों के लिये अभी भारत में काफी गुञ्जाइश है, लेकिन जिस धड़ल्ले से इन गत कई दिनों में कागज की मिलें खुलने का आयोजन हुआ है, उसे देखते हुये तो हमें इनका भविष्य इतना उज्ज्वल नजर नहीं आता। अभी जो मिलें भारत में चल रही हैं, उनसे ही उस किस्म के कागजों की जिनको सरकार की ओर से संरक्षण(Protection) मिला हुआ है, खपत को देखते हुए पैदायश पर्याप्त है। जिन मिलों का इन थोड़े दिनों में खुलने का आयोजन हुआ है, उनसे इस प्रकार के कागजों की उपज में ३८००० टन की वृद्धि हो जायगी। हां, अगर इन मिलों में अनुचित प्रतियोगिता न रह कर सहयोग से काम होता रहा तो शायद सफलता किसी हद तक सम्भव है। इन्हें चाहिये कि सब मिल कर भारत सरकार से अधिक संरक्षण प्राप्त करने की चेष्टा करें और अपनी उपज को दूसरे देशों की उपज के मुकाबले अधिक अच्छी बनावें। भारत के अलावा भी बाजार ढूंढ़ने की इन्हें चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये एक मारकेटिंग बोर्ड की स्थापना भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

बंगाल में कपड़े की मिलें---

इधर बंगाल में कई नई कपड़े की मिलें खुल चुकी हैं और खुल रही है। गत दो तीन वर्षों में बसंती काटन मिल, बंगश्री कॉटन मिल, बंगोदय कॉटन मिल आदि कई मिलें खुल चुकी है और विद्यासागर कॉटन मिल आदि कई मिलें अभी बन रही हैं। प्रकाश कॉटन मिल आदि कुछ मिलें ररिष्टर्ड हो चुकी हैं। कहने का आशय यह है कि बंगाल के वस्त्र व्यवसाय में एक युग परिवर्त्तन सा हो गया है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि लगभग ये सारी मिलें बंगालियों के प्रबन्ध में खुली हैं या खुल रही हैं। बंगालियों में भी अब यह भावना जाग चुकी है कि व्यवसाय-क्षेत्र में पिछड़े रह कर कोई जाति, प्रान्त या देश इस उद्योग-

शील जमाने में कभी आगे नहीं बढ़ सकता। इन मिलों से पश्चिमी भारत (अहमदाबाद और बम्बई) की मिलों को अवश्य धक्का पहुंचेगा। यह सही है कि जलवायु और कच्चे माल का उत्पत्ति-केन्द्र आदि बातें पश्चिमी भारत की मीलों के लिये अधिक लाभप्रद है, पर कोयले की अच्छाई और नजदीकी और कपड़े की खपत के लिये अधिक गुञ्जायश और इन सबसे जबर्दस्त बात प्रान्तीयता की भावना, ये बंगाल की मिलों की सफलता के पक्ष में है। पश्चिमी भारत की मिलों के लिये, जो केवल थोड़े से लाभ के लिये बंगाल का कोयला न लेकर विदेशी कोयला लेने में भी नहीं हिचकती, यह प्रतिद्वन्दिता एक अच्छा सबक सिद्ध हो सकती है। बंगाली मिलों के लिये इस समय भी बहुत गुंजायश है क्योंकि बंगाल में खपत होनेवाले कपड़े का करीब ७५ प्रतिशत बंगाल के बाहर से आता है। फिर भी हमारा कहना तो यही है कि उस हालत में जब कि देश को अन्य देशों के मुकाबले उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में डटे रहना है, इस प्रान्तीयता की कलुषित भावना को और स्वार्थपरता के दूषित विचार को छोड़ कर पारस्परिक सहयोग द्वारा सामूहिक रूप से विदेशी वस्तुओं का मुकाबला करना चाहिये।

भारत का रेशम-व्यवसाय

भारत में रेशम का उद्योग बहुत समय से चला आता है और यहां इसके लिये काफी गुञ्जाइश भी है। भारत में रेशम की खपत के लिये एक विस्तृत बाजार है, जो विदेशियों ने हस्तगत कर रखा है। यहां रेशम का जो कुछ भी उद्योग होता है, वह बहुत छोटे पैमाने पर। इस व्यवसाय की इस विस्तृत गुञ्जाइश को देख कर ही भारत सरकार के पास इस व्यवसाय को संरक्षण देने की शिफारिस की गई। भारत सरकार ने भी इस शिफारिस में तथ्य और जोर देख कर भारत के रेशम-व्यवसाय को संरक्षण देने का निश्चय कर लिया और इस दिशा में कदम भी बढ़ाया है। भारत के रेशम-व्यवसाय का सबसे जबर्दस्त प्रतिद्वन्दी जापान है, जो अपने नकली रेशमद्वारा बाजार को हस्तगत किये बैठा है। उसके बाद चीन, इटली आदि देशों का नम्बर आता है। जापान इस बात से सचेत हो गया है और उसने भारत ही में पूंजी लगा कर इस संरक्षण के रोड़े से बचने का उपाय सोच लिया है। वह तो पहले ही यहां पूंजी लगा चुका होता, पर वर्त्तमान की अन्तर्राष्ट्रीय डांवाडोल स्थिति देख कर चुप था। सुना है कि कलकत्ते में कुछ जापानी व्यवसायी नकली रेशम की एक मिल खोल रहे हैं। यद्यपि सस्ती मजदूरी और जापान का-सा वातावरण जापानियों को भारत में मिलने का नहीं, फिर भी हमें आशा है कि भारत सरकार जापानियों के तथा अन्य विदेशियों के भारत में पूंजी लगाने पर आवश्यक नियन्त्रण रख कर भारत के रेशम व्यवसाय को पनपने का पूरा मौका देगी।

ट्राम और मोटर बस---

रेलवे और मोटर लारियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता का सवाल तो अभी जनता के सामने है ही पर कलकत्ता जैसे बड़े-बड़े शहरों में ट्रामों और मोटर बसों में प्रतिद्वन्दिता का सवाल भी हमारे सामने आ खड़ा हुआ है। बम्बई के समान जहां मोटर बसें भी ट्राम कंपनी ही की चलती है, वहां प्रतिद्वन्दिता का सवाल नहीं है। मोटर बसें चलाने का ठेका ट्रामकंपनी को मिलना अच्छी बात है या बुरी, यह एक दूसरा सवाल है, लेकिन कलकत्ता जैसे शहरों में जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी मोटर बस चला कर ट्राम कम्पनी के साथ प्रतिद्वन्दिता कर सकता है, यह

एक बड़ा विचारणीय प्रश्न हो गया है। ट्राम कम्पनी में विदेशी पूंजी लगी है, अतः स्वदेशी मोटर-बसों को अपनाना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है। फिर भी हमने देखा है कि लोग ट्राम को ही मोटर बस की अपेक्षा ज्यादा पसन्द करते हैं। अभी गत मास कलकत्ता बस सिण्डिकेट ने यह घोषित किया था कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों को बस का मन्थली टिकिट अपेक्षाकृत कम दामों पर दिया जायगा। लेकिन हमने देखा है कि इस घोषणा का विद्यार्थियों पर जैसा होना चाहिये वैसा असर न पड़ा। इसके कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण मोटर-बसों द्वारा समय की नापाबंदी है। यद्यपि इस ओर कलकत्ता बस सिण्डिकेट ने अब ध्यान देना शुरू किया है, पर फिर भी अच्छा संगठन न होने से समय की पाबन्दी नहीं हो पाती है। इसके अलावा सफाई का न होना, जहां आवश्यकता हो वहां न रुकना, हद से ज्यादा सवारियां भर लेना, एक दूसरे से आगे निकलने की चेष्टा में दुर्घटना की हरवक्त सम्भावना रहना आदि कई छोटी-मोटी बातें ऐसी हैं, जो मोटर-बसों के प्रति जनता की सहानुभूति को दूर रखती हैं। जबतक इन बातों के सुधार की ओर पूरे तौर से ध्यान न दिया जायगा, मोटर-बसों का ट्रामों के साथ प्रतिद्वन्द्विता में टिकना कठिन होगा।

Reg. No. C 1668.

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं भंवरचन्द बोथरा द्वारा २८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

वर्ष ७, संख्या ७ — नवम्बर १९३६

"जो समाज में नवीन सुधार—मौलिक फेरफार—करना चाहते हों, जो नवयुग के सृजन में योग देने की इच्छा रखते हों—उन्हें सबसे पहले स्वयं अपना चारित्र्य शुद्ध करना चाहिये; वाणी संयम का खूब अभ्यास करना चाहिये; व्यक्ति को हमेशा गौण रख कर सिद्धान्त की लड़ाई लड़नी चाहिये; निडरता और समझदारी दोनों का उपयुक्त समन्वय करना चाहिये। वर्तन के प्रत्येक अंश में पूरी नम्रता दिखानी चाहिये ."

—परमानन्द कुंवरजी कापड़िया।

वार्षिक मूल्य ३) — एक प्रति का ।=)

सम्पादकः—
गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०

लेख-सूची

[नवम्बर १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफ़ी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिए। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता-परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
„ „ तृतीय „	„ „ „	३०)
„ „ चतुर्थ „	„ „ „	५०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	„ „ „	२०)
„ आधा पृष्ठ या एक कालम	„ „	१३)
„ चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	„	८)
„ चौथाई कालम	„ „	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

त्रीकम भाई भथाभाई डोसी

आप बम्बई के शेयर बाज़ार के प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। आपने अपने ही परिश्रम एवं योग्यता से प्रचुर धनोपार्जन किया है। आप एक उच्च विचार के सज्जन हैं। आप गुजराती के अच्छे लेखक हैं। इसी अंक में अन्यत्र आपका एक लेख प्रकाशित है। आपने समय-समय पर "नवयुवक" में लिखने का वचन दिया है।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] नवम्बर १९३६ [संख्या ७

मेरी व्यथा

[श्री दिलीप सिंघी]

बहुत दूर चन्द्र की शीतलता में उठी थी, समुद्र की निर्मलता में अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देख अपनी मोहकता पर इठलाती हुई आगे बढ़ी। दिल में उमङ्ग उठी 'संतप्त मानव-जीवन के उत्ताप को शान्त करती हुई हिमाचल के बाहु पाश में बंध जाऊं, सन्तोष की एक सांस लूं और छूट कर संसार के सामने हिमाचल की अचलता और कर्मशीलता के गान गाती हुई समुद्र में गुदगुदी कर फिर उसीमें अन्तर्धान हो जाऊं'। सुन्दर सपने देखती हुई बह रही थी। पता नहीं, यह क्रम कितने समय तक जारी रहा.........।

फिर एक ऐसे प्रदेश में प्रवेश हुआ जहां सारा वातावरण उष्ण था, आसमान से आग बरस रही थी, मानव-जीवन कुण्ठित प्रतीत हो रहा था, सारा प्रदेश चेतनाहीन था, निश्चेष्ट था।

सोचने लगी 'क्या यह निश्चेष्टता उष्णता की सृष्टि है या यह उष्णता-बन्दी मानव-जीवन की गर्म-गर्म आहों का परिणाम है?' विचारधारा चल रही थी...........।

पर······पर······यह क्या? मेरी गुलाबी ठण्ड कहां गई? मेरी कान्ति, मेरी मोहकता कहां विलुप्त हो गई? सारा बदन गर्म क्यों हो गया?·········आह! उठी थी तब 'शीतल मन्द-मन्द बयार' थी, मेरा स्पर्श मात्र गुदगुदी पैदा करता था, पर अब मैं क्या हो गई? "झुलसानेवाली लू"।

अपने माधुर्य से मानव-जीवन के ताप को हलका करने के अरमान लेकर निकली थी पर उस ताप की असीमता में स्वतः फंस गई।

ओसवाल जाति भूषण भैरूं शाह

[श्री अगरचन्द नाहटा]

इतिहास किसी भी देश समाज और धर्म के उत्कर्ष-अपकर्ष या उन्नत-अवनत दशा को जानने के लिये थर्मामीटर है, उन्नति और अवनति के मार्ग का मार्गदर्शक यंत्र है, इसलिये प्रत्येक धर्म, समाज या देश का इतिहास जानना मनुष्य मात्र के लिये अत्याव-श्यक और परमोपयोगी मना गया है।

आर्यावर्त के जातीय इतिहास में ओसवाल, पोर-वाल (प्राग्वाट) और श्रीमाल इन तीनों जैन जातियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आज चाहे जैन जातियाँ या समाज अवांच्छनीय अवनत दशा पर हों पर इन जातीयों का अतीत गौरव, या भूतकालीन इतिहास बड़ा ही आदर्श और उन्नत रहा है।

श्वेताम्बर समाज की प्रधान (उपरोक्त) तीन जातियों का इतिहास अभीतक अन्धकार में ही कहा जा सकता है। क्योंकि गहन अनुसन्धान और शोध-पूर्ण खोज के साथ अद्यावधि इस विषय में कोई विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ देखने में नहीं आया 'महाजन वंश मुक्तावलि१, "जैन-सम्प्रदाय शिक्षा२" 'जैन गोत्र संग्रह' ३ आदि कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, पर वे भी अधिकांश किम्बदन्तियों और अर्वाचीन (१००-२०० या ३०० वर्षों पहले तक के) हस्तलिखित पत्रों, भोजग, भाटों की वहियों, जिनका कि अधिकांश भाग मनगढन्त और कल्पित हैं, के आधार से रचे गये हैं। इसलिये ये ग्रन्थ ऐतिहासिक कहाने की योग्यता नहीं रखते। इस विषय में उल्लेखनीय तीन ग्रन्थ मेरे दृष्टिपथ में आये हैं। १ श्रीमाली (वाणिया) ओ ना (१) ज्ञाति-भेद, २ जैन जाति महोदय और ३ ओसवाल जाति का इतिहास। पर इनमें भी इन जातियों के प्राचीन पूर्वजों या ज्योतिर्धरों का विशेष इतिहास नहीं पाया जाता, अतः गहरी खोज पूर्ण इन जातियों के पुरखाओं का विशाल इतिहास देखने में नहीं आया, यह कह देना अयुक्त न होगा।

"ओसवाल जाति का इतिहास" नामक ग्रन्थ यद्यपि बहुत विशाल ग्रन्थ है तथापि पूर्वकालीन पुर-खाओं के इतिहास की ज्ञातव्य सामग्री उसमें बहुत कम है। उसमें अधिकांशः विद्यमान धनिकों का गुणगान मात्र ही है। अस्तु,

उपरोक्त तीनों जातियों के पुराकालीन इतिहास की पर्यावलोचना में सर्वाधिक गौरवशाली 'प्राग्वाट'

---

१ लेखकः—महोपाध्याय रामलालजी यति। २ लेखकः—श्रीपालजी यति। ३ लेखकः—हीरालाल हंसराज—जामनगर

(१) यह ग्रन्थ जातीय इतिहास जानने के लिये बहुत महत्व का है। इसके लेखक हैं, मणिलाल बेकोर भाई व्यास। विद्वान लेखक ने बहुत परिश्रम से, अनेक स्थानों में परिभ्रमण कर इस विषय की सामग्री एकत्रित कर गुजराती भाषा में इस ग्रन्थरत्न को सुसम्पादन करके प्रगट किया है।

दूसरे नम्बर में 'ओसवाल' तृतीय श्रेणी में 'श्रीमाल' जाति ज्ञात होती है। यद्यपि ओसवाल ज्ञाति में अनेकों नररत्न सपूत हो गये हैं तथापि विद्वता, ग्रन्थ रचना, कला प्रेम, कला के उन्नत और आदर्श स्मारक आबू के देव मन्दिरों के निम्मीण आदि विशिष्ट कार्यों से मेरी दृष्टि में 'प्राग्वाट' ज्ञाति का ✻ इतिहास अधिक गौरव सम्पन्न है।

जैन जातियों के महापुरुषों का इतिहास शोध करने पर बहुत कुछ मिल सकता है। कई ज्योतिर्धरों के तो स्वतन्त्र जीवन चरित्र मिलते हैं पर अधिकांश सामग्री यत्रतत्र बिखरी पड़ी है उसे एकत्रित करना बहुत आवश्यक है। हस्तलिखि ग्रन्थों के प्राचीन भंडारों में फुटकर अनेक कविताए मिलती हैं। हस्त-लिखित ग्रन्थों की प्रशस्तियों में, लेखन पुष्पिका लेखों में कहीं-कहीं बहुत से सुकृत्यों का विस्तृत इतिहास मिलता है। बीकानेर के जैनज्ञानभंडारों की ज्ञातव्य सूचि करते समय ऐसे अनेक अनुभव मुझे हुए हैं। जिस श्राद्ध-वर्य केअभ्यर्थना, अनुरोध और आग्रह से ग्रन्थ रचा गया उनका अच्छा वर्णन प्रशस्तियों में मिलता है। जिन-जिन श्रावकों ने ग्रन्थ लिखवाये खरीद कर मुनियों को बहराये (समर्पित किये), ज्ञानभण्डार स्थापित किये, उनकी भी बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक (ज्ञातव्य सुकृत्यों के वर्णन और वंशपरम्परा के साथ) प्रशस्तियां लेखन-प्रशस्ति रूप से लिखी जाती थी। पिटर्सन, बुल्हर, भण्डारकर आदि की रीपोर्टों में तथा बीकानेर-भंडार के हस्तलिखित ग्रन्थों के पुष्पिका लेखों में कई-कई प्रशस्तियों में तो ग्रन्थ लिखानेवाले के सुकृत्यों और वंशपरम्परा के परिचय में ४०-५० श्लोकों तक का छोटा सा काव्य ही लिख दिया गया है। मन्दिरों और मूर्त्तियों के शिलालेखों में भी जैन जाति के प्रभा-वक श्राद्ध समूहों का ज्ञातव्य इतिहास मिलता है। भोजगों (सेवगों) की पोथियों में भाटों की बहियों में कुलगुरुओं के दफ्तरों में पट्टावलियों और राज्य-तवारीखों में भी खोजी साहित्यप्रेमी को काफी सामग्री मिल सकती है, अतः अपने पूर्वजों के आदर्श चरित्रों के जिज्ञासु और इतिहासप्रेमी महानुभावों का इस ओर ध्यान आकृष्ट करता हूं। इस लेख द्वारा ओसवाल जाति के उज्वल रत्न "नवलख बन्दी मुक्तकारक भैरू शाह" का संक्षिप्त परिचय कराया जाता है. पाठको को यह प्रयास उपयोगी हुआ तो भविष्य में ऐसे ही अनेकों नररत्नों का परिचय लिखने में उद्यत होने की मेरी अभिलाषा है।

ओसवाल जाति में 'लोढ़ा' ✻ गोत्र सुप्रसिद्ध है। इसी गोत्र में श्रीमान् 'भैरूं (दास) शाहजी' हुए हैं। आप अलवर में निवास करते थे और श्री डाहा शाहजी के सुपुत्र थे। आपके "रामाशाह"* नामक कीर्त्ति-शाली भ्राता थे, वे भी अच्छे दानवीर हो गये हैं।

भैरूं शाह की कीर्त्ति का एक कवित्त मुझे बीका-नेर के ज्ञानभंडारों का निरीक्षण और सूचि बनाने के

✻ प्राग्वाट ज्ञाति के ज्योतिर्धरः—१ विमल दण्डनायक २ मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल, कवि चक्रवर्त्ती श्रीपाल सिद्धपाल······कविवर ऋषभदास, राणकपुर भव्य प्रासाद निर्माता धन्ना शाह इत्यादि।

✻ लोढ़ा गोत्र की उत्पत्ति के विषय में १७ वीं शताब्दी लिखित एक पत्र में लिखा है:—'स० ७०१ भ० श्री रविप्रभ सूरिइं लखौटियौ माहेश्वरी लाखणसी प्रतिबोध्यो' बधु कण्ठे स्वर्णमय लोढकस्याभरण द्वारापित स्तेन लोढ़ा इति गोत्र' (बीकानेर ज्ञानभण्डार)

* इनके लिये देखें 'श्री माली ज्ञाति भेद' पृ० ८८ में 'रामाशाह कीर्त्ति कवित्त'।

समय देखने में आया और उसी समय उसकी नकल कर ली, पर इनके सम्बन्ध में अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों की शोध में था. इसी समय सूरिसम्राट में श्रीमान तपागच्छाचार्य अकबर-प्रतिबोधक हीरविजयसूरिजी के भक्तों में आपका नाम देखा और फुटनोट (हिन्दी भाषान्तर पृ० २५३) द्वारा आपका विशेष परिचय प्राप्त हुआ। पाठकों की जानकारी के लिये उक्त ग्रन्थ से आपका ज्ञातव्य परिचय ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत कर देता हूं: —

(अलवर का शाह) भैरव हुमायूं का मानीता मन्त्री था। कहा जाता है कि उसने अपने पुरुषार्थ से नौ लाख बन्दियों को छुड़वाया था। बंदियों से यहां अभिप्राय कैदियों से नहीं है। युद्ध में जो लोग पकड़े जाते थे वे बन्दी कहलाते थे। उन बंदियों को मुसलमान बादशाह गुलाम की तरह खुरासान या दूसरे देशों में बेच देते थे। ऐसे नौ लाख बंदियों को भैरव ने छुड़ाकर अभयदान दिया था। कवि ऋषभदास ने हीरविजय सूरि रास* में उसका उल्लेख किया है। उस घटना का संक्षिप्त सार यह है:-

'हुमायूं ने जब सोरठ पर चढ़ाई की तब उसने नौ लाख मनुष्यों को बन्दी बनाया। उसने उन लोगों को मुकीम के सुपर्द किया और उन्हें खुरासान में बेच आने की उसको आज्ञा की। ये सब लोग पहले अलवर में लाये गये। वहां के महाजनों ने उन्हें छोड़ देने की प्रार्थना की, परन्तु वे छोड़े न गये। उनमें से दस बीस मनुष्य सदैव रक्षकों की बेपरवाही से मरते रहते थे। भैरव को यह बात अत्यन्त दुखदाई मालूम हुई। वह हुमायूं का मानीता मन्त्री था। ऐसी अवस्था में यदि वह कुछ न करता तो फिर उसकी दयालुता और सन्मान क्या काम के थे? सबेरे के वक्त बादशाह जब दांतन करने बैठा तब उसने अपनी अंगूठी भैरव के हाथ में दी। भैरव ने एक कोरे कागज पर अंगूठी की मुहर लगा ली। जब वह बादशाह के पास से आया तब एकान्त में बैठ कर उसने धूजते हाथों उस कागज पर फर्मान लिखा। इस फर्मान को लेकर वह मुकीम के पास गया। आप रथ में बैठा रहा और अपने एक नौकर को फर्मान लेकर मुकीम के पास भेजा। फर्मान में लिखा था, "तत्काल ही नौ लाख बंदियों को भैरव के हवाले कर देना।" बादशाह की मुहर-छाप का फर्मान देख कर मुकीम ने भैरव को अपने पास बुलाया, उसका सत्कार किया और बन्दियों को उसके आधीन कर दिया। बन्दी स्त्री, पुरुष, बालक-बूढ़े सभी भैरव को अन्तःकरण पूर्वक आशीर्वाद देने लगे। भैरव ने उसी रात उन सबको रवाना कर दिया और खर्च के लिये एक एक स्वर्णमुद्रा सभी को दी। उनमें से पांच सौ मुखियों को उसने एक एक घोड़ा भी सवारी के लिये दिया।

दूसरे दिन सबेरे ही भैरव देवपूजा, गुरु वन्दनादि आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो, एक विचित्र बाघा पहिन बादशाह के पास गया। बादशाह सहसा उसे न पहिचान सका। उसने पूछाः- "तुम कौन हो?" भैरव ने कहाः मैं आपका दास भैरव हूं। आज मैंने हजूर का बहुत बड़ा गुनाह किया है। मैंने उन नौ लाख कैदियों को छुड़ा दिया है और बहुत सा धन भी खर्चा है। बादशाह यह सुन कर क्रुद्ध हुआ और उसने "किस लिए ऐसा किया? किसकी आज्ञा से किया?" आदि कई बातें कह डालीं। भैरव आहिस्तगी के

* देखें आनन्द काव्यमहोदधि मौक्तिक ५ वां पृ० २७७ से २८० तक।

साथ बोला,—"हजूर के सिर (पर) एक आपत्ति आनेवाली है, इसीलिये मैंने सब बन्दियों को छुड़ाया और धन देकर रवाना कर दिया है। वे बेचारे अपने बालबच्चों और सगे-सम्बन्धियों से जुदा हो गये थे। मैंने उनकी जुदाई मेट कर उनकी दुआएं ली है और खुदाबंद की उम्र दराज-बड़ी आयु की है।" इस युक्ति से बादशाह शान्त ही नहीं हुआ बल्कि भैरव से प्रसन्न भी हुआ।

भैरूंशाह की कीर्ति का एक कवित्त, जो बीकानेर के ज्ञान-भण्डारों में प्राप्त हुआ, वह निम्न लिखित है:—

कवि सीहूंकृत

शाह भैरूंदास सुयश गीत

राग:—कडखो

मृग नैण मन हरण युं तरणि प्रिय सुं कहइ,
कंत तुहि मिलत मोहि सरम आवइ।
तुम्ह देखत मुगल खुरसांन तैं बेचता,
भूपती बंद भैरूं छुडावइ ॥१॥ मृग०।
रयण रसरंग प्रियु संग सुतो हुंती
मात अरू तात बालक विछोहइ।
करि हि आलोच मन मांहि मृग लोचनी,
चलहु री सखी भैरूं छुडावइ ॥२॥ मृग०।
काबिल खुरासाण खंधार में बात ऐसी चलहु
हिन्दु की बंद अब कै न आइ।
अलवरे गढ (अ)कब्बर 'भैरूंदास' 'डाहां' तणी,
हुक्म फुरमांण भैरूं छुड़ावइ ॥३॥ मृग०।
राज अंतेउरी बाजती नेउरी
भलकति राखडी कनक बांही।
साप ज्युं सलकती बाज ज्युं चमकती
ऐसी चन्द्रवदनी भैरूं छुडावइ ॥४॥ मृग०।
अबल बाल शशि बदन मृग लोचनी,
बांधि अलगा २ अलवरहिं आइ।
लाख अरू कोडि कौ गिणत लेखो नहीं,
दइ छुडाइ जे पीउ जे मिलाइ ॥५॥ मृग०।
राव रांणी हुती भूमि जे जोगिता
डरपतौ कोइ बाहिर न आवै।
द्वीप परदीप नवखंड मैं युं सुणी,
नवखंड नवलखी बंद छुड़ावइ ॥६॥ मृग०।
धनवंत बलवंत मंडलीक मोटा जिसा
मत करो कोइ झूठी बड़ाइ।
देश गुजरात मेवाड़ि में युं सुणी,
नवलखी बंद भैरूं छुडावइ ॥७॥ मृग०।
चिरजीवो लख कोडि वरस जिण
आवास आण्यो हमारो।
गुन्द गुन (ण?) माल हिरदं हियरै जपुं।
हर जिम नांम भैरूं तिहारो ॥८॥ मृग०।
भणत सीहूं+ संघ देव डहरा जतन
जीत जगनाथ (पाठान्हाथ)जसपत्रलीधो।
अष्ट पु (ह) र शील पहराइ बब्बर थप्यो,
राय चंद छोड भैरूं ही लीयो ॥९॥ मृग०।
(हमारे संग्रह में गुटका १ अठारहवीं शताब्दी की लि०)

नीचे मैं शाह भैरूंदास कृत एक कविता उधृत करता हूं:—

+ इन्हीं सींहा कवि का रचित "वन्दीवान छोडावनार भैरूंशाह छंद" 'श्रीमाल वाणिआओ ना ज्ञाति भेद' पुस्तक के पृ० ८६ में छप चुका है।

शाह भैरू दास कृत

शील स्वाध्याय

म कर रस रंग प्रीउ परनार सुं, सुणन हित वात तुं सीख मोरी।
जेण अपणो पती तुज लंपट पणै, सोई किम कंत हो ईसी तोरी ॥ १ ॥ म०
चिन्तामणी इखत जल बिन्दु उदध नहीं मेरू गिर सरस अन्तर अनेरो (घ ?)।
सुध (द्ध ?) वल्ल नाग अमर फल एरड़ी पेख विमास मन लाल केरौ ॥ २ ॥ म०
जीव निगोद में अछै सुखम खरा तेह पिण रह्या रस विषै खूता।
इन्द्र अहिल्या सती असुर गढ लंकपती, पेखे ब्रह्मा हरिहर विगूता ॥ ३ ॥ म०
वायस रयणी न हुवइ अति दृष्ट बल पंखपति राज नव दिवस पेखे।
कामादि पुरष दिन राति सूझै नहीं, हाथ दीपक नवि कूप देखे ॥ ४ ॥ म०
शील कलावती कर नवला हुआ, वृष्टि सोवन हुई चन्दनबाला।
कूप भर चालणी कुमर अमरावती, भुयंग फीटी हुई पुष्प माला ॥ ५ ॥ म०
शेठ सुदरसण शूली सिंहासण, नारद शीयल परमाण सिद्धा।
राम लक्ष्मण बिहुंलीयै गढ लंकपति, गगण मंडल राधावेध जीता ॥ ६ ॥ म०
शीयल सुधा धरे सेव सुरनर करे, दयावंत लोक जे कुल उजवालै।
संघवी 'डाहा' सुतन कहत "भैरूंदास" धन्य नर नार जे शील पालै ॥ ७ ॥ म०

(श्री पूज्य श्री जिन चारित्रसूरि के गुटके से)

इन शाह भैरूंदास के बाबत इससे अधिक और कुछ प्राप्त नहीं है, अगर और कोई सज्जन इनके बाबत अधिक प्रकाश डालने की कृपा करेंगे तो हम उनके कृतज्ञ होंगे।

नव-युवकों से

[श्री आनन्दीलाल जैन—दर्शनशास्त्री, न्यायतीर्थ]

(१)

कर्मवीर बन जन्मभूमि में अपना सत्व दिखाने को,
फैल रहे पाखण्ड विश्व में—उनका नाम मिटाने को,
साहस-दया-निजात्मशक्ति से विश्व-प्रेम उमड़ाने को,
पथ-भ्रान्त पथिकों को सहसा जीवन-राह सुझाने को,
कार्यक्षेत्र में गौरव-धन को संचित कर घर आओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे ॥

(२)

वीर प्रसविनी मातृभूमि में सौर्य प्रवाह बहाने को,
शक्ति विहीन देश में फिर-से प्रबल पराक्रम लाने को,
आत्मवीर्य—साहस दृढ़ता की असिधारा चमकाने को,
नंगे-भूखे भारत को फिर शीघ्र स्वतन्त्र बनाने को,
आओ ! हे नवयुवको !! आगे शीघ्र सफलता पाओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे ॥

(३)

विपति-सैन्य को हरा युद्ध में जय-झण्डा फहराने को,
विलखित भारत-माता को फिर अपनी शक्ति दिखाने को,
पूत सपूत बने हो उसके गौरव-देश बटाने को,
जन-समाज के नत मस्तक को फिर ऊँचा कर जाने को,
उन्नति शील कहाकर जग में अजर अमर बन जाओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे ॥

क्रान्ति और जैन धर्म

[श्री शुभकरण बोथरा बी० ए०]

क्रान्ति सर्वव्यापी है। प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, समाज, जाति, देश अथवा धर्म क्रान्ति के प्रबल प्रवाह से प्रेरित होकर उन्नति या अवनति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। क्रान्ति के प्रभाव से पृथक रह कर कोई पदार्थ अपना अस्तित्व कायम रख सके, यह नितान्त असंभव है। कुविचारजनित क्रान्ति ही अवनति की ओर ले जाती है, अन्यथा क्रान्ति सदा उन्नति एवं सुधार का उद्गम स्थान है। क्रान्ति का जहां अभाव है, वहां नाश अवश्यम्भावी है। क्रान्ति का लोप उस अकर्मण्यता का सूचक है, जो महान शक्ति को भी कुण्ठित कर देती है। क्रान्ति सभी समय में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है, भेद केवल इतना ही है कि कभी सत्क्रान्ति का प्रबाह मन्द पड़ जाता है और उस समय कुक्रान्ति पूर्ण वेग से प्रवाहित हो समाज में अव्यवस्था और अनाचार फैलाती है।

संसार के इतिहास में समय-समय पर जो क्रान्तियां हुई है, मानव समाज के इतिहास के विद्यार्थी के लिए वे अपना एक खास महत्व रखती हैं। उनका वेग कभी राजनीति, कभी नैतिकता और कभी धर्म की ओर, जैसे-जैसे आवश्यकता हुई है वैसे-वैसे परिचालित हुआ है। जब शासन–अव्यवस्था या अनाचार से समाज के जीवन की गति कुण्ठित होने लगती है; जब जीवन-प्रवाह के सभी क्षेत्र संकुचित हो जाते हैं; जब सत्य-धर्म का नाश होने लगता है; जब प्रमादवश परिवर्तन को रोकने का विफल प्रयास मदान्ध धर्माध्यक्ष या सत्ताधीश करते हैं, तब मानव प्रकृति ठोकर खाकर एक प्रचण्ड बबंडर की तरह जागृत हो उठती है और घोर आतंक पूर्ण और शक्तिशाली रूप धारण कर लेती है। इस बबण्डरका एक ही प्रबल झोंका अनेक पापपूर्ण, नाशकारी एवं अप्राकृतिक साधनों को समूल नष्ट कर देता है। शुद्ध वातावरण तैयार करने के लिए क्रान्ति का आश्रय सर्वथा अनिवार्य है, क्योंकि क्रान्ति के बिना ऐसा हो सकना संभव नहीं। जीवन की गति रुद्ध करने के प्रयत्नों के विरुद्ध मानव प्रकृति की विद्रोहात्मकता संसार के इतिहास की मनोरञ्जक सामग्री है और इसके अध्ययन से हमें समाज और देश की अनेक समस्याओं को हल करने में सहायता मिल सकती है।

समय-समय पर भिन्न-भिन्न क्रान्तियां हुआ करती हैं और सब का प्रभाव अलग-अलग होता है क्योंकि उनके उद्देश भी विभिन्न होते हैं। प्राचीन काल में भारत क्रान्ति का जन्मस्थान था, जहां नवीन विचारों की प्रेरणा के लिए क्रान्तियां होती ही रहती थीं, वहां अनेक शताब्दियों से अब सुषुप्ति है। आज से पचास वर्ष पहिले तक तो सड़े गले विचारों को लेकर ही भारत क्रान्ति के नाम से घबराता था और आज भी आवश्यकतानुकूल सच्ची क्रान्ति की कमी है। वैसे तो क्रान्तियुग का पवन पूर्ण वेग से बह रहा है, योग्य अथवा अयोग्य, फलप्रद या विफल, लाभदायक

या हानिकारक—जिधर भी नजर फैंकी जाय, उधर ही क्रान्ति का संघर्ष होता हुआ नजर आता है। किन्तु जहां इस संघर्षण का उद्देश्य समाज के जीवन को सुसंस्कृत करने, नव विचारों के सृजन करने और पुराने विचारों के परिशोधन का होना चाहिये, वैसा बहुत कम हो रहा है। इसके बदले व्यर्थ भावनाओं में, आडम्बरों में, कृत्रिमता में लगाया हुआ है। व्यर्थ के वादविवाद में, कलह-द्वेषादि में हम क्रान्ति (?) को प्रोत्साहित करते है। ठोस एवं चिरस्थायी कार्यों के सम्पादन में अपने उत्साह का सदुपयोग न कर हम क्षणस्थायी एवं ऊपरी कार्यों में अपनी शक्ति लगाने को उद्यत रहते हैं। पत्रपत्रिकाओं में हम तरह-तरह के सद्विचार प्रगट करते है; अज्ञानी लोकमत को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन देते है—इस प्रकार अपना उल्लू सीधा करते हैं—किन्तु स्वतः देश की, समाज की और धर्म की उन्नति में कौन सा फलप्रद कार्य करते हैं, जिसमें हमें वास्तविक लाभ पहुंचता हो? सद् एवं असद्, आचरणीय एवं अनाचरणीय—सावद्य एवं निर्वद्य—वदनीय एवं अवदनीय—इनका ज्ञान प्राप्त हो, इनको पृथक करने की विवेकशक्ति प्राप्त हो, इसके पहिले ही नवीन अशुचि वायुमण्डल से प्रभावित होकर हमारे युवक अपने जीवन लक्ष्य को सदा के लिए अनिश्चित छोड़ कर आजीवन इधर उधर ठोकरें खाते रहते हैं, किन्तु विवेक द्वारा प्रेरित होकर सुव्यवस्थित जीवन धारण करने की न तो चेष्टा करते हैं और न अवसर पाते हैं। अपने संकुचित मन्तव्य के अनुकूल कुछ साधन मिल जायं तो हमारे उत्साही (?) युवक जीवन पर्यन्त उन्हीं में गोते लगाते रहेंगे, उन्नति या क्रान्ति से उन्हें कोई भी वास्ता नहीं। आधारहीन युक्तियों को पेश कर अनर्गल प्रलाप करते हुए हमारे युवक समाज एवं धर्म के प्रति अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दोषयुक्त और अपर्य्याप्त ज्ञान को सीख कर अपने उस अधूरे ज्ञान की करामात दिखाना ही हमारे युवकों का एक कर्त्तव्य-सा हो गया है। दोषों को प्रगट कर उन्हें हटाने की चेष्टा करने की हिम्मत न होने से संस्कृति को ही मिथ्या साबित करने की कुचेष्टा में हमारे युवक और सुधारक अपनी वीरता दिखलाते हैं।

कोई भी विचारशील व्यक्ति क्रान्ति का विरोध नहीं कर सकता, क्योंकि क्रान्ति ही उन्नति का एकमात्र मार्ग है। हम हमेशा सुनते हैं और पढ़ते हैं कि हरेक महापुरुष ने क्रान्ति का समर्थन किया है, क्रान्ति द्वारा ही उन्होंने अपने उद्देश्यों की सफलता प्राप्त कर जगत का कल्याण किया है। यहां तक कि अन्तर्यामी 'तीर्थंकरों' ने भी क्रांति का अनुसरण किया है क्योंकि क्रांति के बिना कोई भी दोष या कुसंस्कार हटाया नहीं जा सकता। जहां क्रांति नहीं वहां जड़ता के कारण क्रमशः अज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, फलतः पाप और व्यभिचार स्थान पाते हैं। इसीलिये प्रत्येक महात्मा ने क्रांतिपथ का ही अनुसरण करके संसार में शांति और सुख को स्थिर रखने की चेष्टा की है। प्रत्येक महान् उपदेश के अवसर पर या किसी महत् सुधार को कार्यान्वित करने के मौके पर या किसी महापुरुष के संसार कल्याण की इच्छा करने पर या अन्य किसी महान परिवर्त्तन के समय पर क्रांति की महत् उद्घोषणा हुई है तथा प्रस्तुत परिस्थिति का परिवर्त्तन कर नवीन प्रणाली से कार्य में अग्रसर होने का उपदेश दिया गया है। उन महात्माओं ने क्रांति को ही एकमात्र उपाय निर्दिष्ट किया है। किन्तु कहना न होगा कि

क्रांति के मूल में सद्विवेक, सद्विचारों की प्रेरणा रहनी चाहिये, क्योंकि उसीसे उसकी सफलता है।

जिस धर्म के तत्वावधान में आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति के मूलमंत्र अत्यधिक संख्या में विद्यमान हैं; जिस धर्म ने शांति, संतोष तथा संघसेवा के अमूल्य मत्र का सर्वाधिक रूप में प्रचार कर अनंत प्राणियों को मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर किया है; जिस धर्म का एकमात्र उद्देश्य अहिंसा, परोपकार और मुक्ति का पाठपढ़ाना है, दुःख दारिद्र्य अनाचार से मुक्त होना एकमात्र जिस धर्म की शिक्षाओं द्वारा सम्भव है, उसी जैन-धर्म के साधन आज दुर्बल हो गये हैं, उस धर्म के उपासनागृह आज शून्य हैं। जिस स्थान में पवित्रता हरदम निवास करती थी, वहीं आज दम्भ और प्रमाद की दुर्गन्ध उड़ रही है। तुच्छ बातों को लेकर आज उन्हीं पवित्र स्थानों में हम खून-खराबी करने तक को तय्यार रहते हैं। जहां हमें अत्यधिक समता धारण कर आत्म-निवृत्ति की चेष्टा करनी चाहिये, वहां हम एक दूसरे के सत्यानाश करने का उपाय सोचने में व्यस्त रहते हैं। क्या यही हमारा जैन-धर्म है ? या हमें जैन-धर्म की पवित्रता के नाम पर कलह और द्वेष फैलाने की शिक्षा मिलती है ? सच्चे धर्म-हितेच्छु की भावना यही है कि इन दुर्गुणों को दूर कर धर्म के उपासना-गृहों को सबल बनाया जाय, साधन-सम्पन्न बनाये जायं, वे पवित्र बनाये जायं, तीर्थंकरों की शिक्षाओं का प्रचार कर धर्म की उन्नति की जाय, दोषयुक्त एवं असंगत कुसंस्कारों और कुविचारों को नष्ट कर दिया जाय।

जो लोग जैन-धर्म के केवल नाममात्र से ही परिचित हैं, वैसे अनुयायियों को रख कर यह धर्म कब तक स्थिर रह सकता है ? जैन-धर्म का सार्वत्रिक प्रचार होना तो दूर रहा उसके अनुयायी यदि धर्म की शिक्षाओं का अपने सार्वजनिक जीवन में भी प्रचार करें तो कुछ आशा की जा सकती है। आजकल के सुधारक कहे जानेवाले व्यक्तियों की स्वार्थ-साधना से धर्म की क्या उन्नति हो सकती है ? यह सुधारक दो-चार चटक-मटकवाले बाहरी सुधार (?) कर स्वतः ही जनता के प्रतिनिधि बन बैठते है। धर्म को और समाज को उन्नति पथ की ओर अग्रसर करने का न तो इनका कोई निश्चित ध्येय है और न ये किसी सुयोग्य विचारशील व्यक्ति के नायकत्व में सत्य सिद्धान्तों का अन्वेषण करने का प्रयास करते हैं, किन्तु बनते हैं क्रान्तिकारी। क्या यही क्रान्ति है ? यह क्रान्ति नहीं स्वार्थभरा उन्माद है। क्रान्ति का पथ सदा निश्चित रहता है। अनिश्चित तथा अव्यवस्थित कार्य क्रान्ति पैदा नहीं कर सकते। तथा कथित नये सुधारक नया सुव्यवस्थित संगठन करने के बदले वर्त्तमान में जो सुन्दर है उसे भी अपनी स्वार्थभरी शेख़ी द्वारा नष्ट कर देते हैं। क्रान्ति पैदा करना साधारण श्रेणी के मनुष्य द्वारा सम्भव नहीं, यह सत्ज्ञान को धारण करनेवाले देव सदृश मेधावी प्रज्ञ व्यक्ति द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

शास्त्र भी हमें बतलाते हैं कि प्रत्येक क्रान्तिकारी की क्रान्ति के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना तथा सत् और असत् पृथक् करने की सम्पूर्ण शक्ति रहती थी। इस उत्कृष्ट ध्येय से रहित क्रान्ति कभी लोकोपकारी नहीं हो सकती। तीर्थंकरों ने भी क्रान्ति को सिद्धान्तों के प्रचार का मुख्य साधन समझ कर समय और भाव देखकर अपनाया था। सर्वज्ञ तीर्थंकर कैवल्य प्राप्त करने के पश्चात् ही शासन सुधार की व्यवस्था करते है, क्रान्ति की उद्घोषणा करते हैं। हमें

भी उचित है कि हम प्रभु के बताये हुये सिद्धांतों को समझ कर उनका मनन करें, तब उनके विरुद्ध होते हुए आचरण को हटाने का प्रयत्न करें। हमारा यह कर्तव्य है कि हम प्रभु के शासन में रह कर उनकी आज्ञानुसार चलें।

सत्य एक है अनेक नहीं। सत्य किसी काल में सत्य और किसी में असत्य नहीं माना जा सकता। सत्य सर्वदा उसी रूप में रहता है, जिस रूप में उसकी सृष्टि हुई है। सत्य जब एक है तब मूल धर्म में परिवर्तन कैसे हो सकता है? धर्म के मूल-तत्व भी सत्य ही हैं। धर्म जैसा था वैसा ही है तथा सदा वैसा ही रहेगा। कुछ स्वार्थियों की स्वार्थेच्छा से यदि उसमें परिवर्तन हो जाय तो वह परिवर्तन कभी भी मान्य नहीं हो सकता। यह तो सत्यधर्म को ग्रहण करनेवाले के विवेक पर निर्भर है कि वह सत्य को ग्रहण करेगा अथवा असत्य को।

क्रांति के मार्ग में अनेक रुकावटें पैदा की जा सकती हैं, पर उसके वेग को नष्ट नहीं किया जा सकता। जब-जब प्रभु शासन के विरुद्ध आचरण होता है तब-तब महापुरुष क्रांति की उद्घोषणा करते हैं। भूत के व्यर्थ वितण्डावाद को नष्ट कर वर्तमान एवं भविष्य को सुधारना क्रांति का मुख्य उद्देश्य है। क्रांति व्यर्थ के सुधार को लाकर सत्य को नष्ट करने के लिए नहीं बल्कि ठोस सुधार के साथ सत्य को प्रगट करने के लिये है। क्रान्ति के साथ साथ विवेक की बड़ी भारी आवश्यकता है। काल के प्रभाव से उत्पन्न हुई जीर्णता का नाश करते समय यह अति विचारणीय है कि हमारी उत्तेजना से जीर्णता नष्ट होती है अथवा मूल वस्तु ही। यौवन के उन्माद या क्षणस्थायी जोश से क्रान्ति उत्पन्न नहीं होती।

संसार के सब धर्म समान हैं। प्रत्येक धर्म की मुख्य शिक्षाओं को देखा जाय तो हम यही पाते हैं, "जीवों पर दया भाव रक्खो, सत्य की खोज करो असत्य से प्रथक रहो, निर्बल को न सताओ, प्राणीमात्र से बन्धुत्व रक्खो आदि।" सारे संसार के धर्म हमें इन्हीं सिद्धान्तों पर अमल करने की शिक्षा देते हैं। इसीसे आत्मकल्याण होगा, अनन्त सुख की प्राप्ति होगी, अमरत्व और ईश्वरत्व, मिलेगा, किसी न किसी रूप में प्रत्येक धर्म के यही सिद्धान्त हैं। किन्तु जब हम वर्तमान अवस्था को देखते हैं तो हमें प्रत्येक धर्म का रूप विकृत हुआ नजर आता है। ईश्वरीय दिव्य शिक्षाओं का नाश, स्वार्थियों के मनोनुकूल सिद्धान्तों का गठन एवं प्रचार आज प्रत्येक धर्म को समूल नष्ट कर रहा है। इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, हिन्दूधर्म आदि मुख्य धर्मों की वर्तमान अवस्था को देखा जाय तो किसी भी धर्म के प्रवर्तक या प्रचारक देवात्माओं की शिक्षाएं आज किसी भी रूप में नहीं मानी जातीं। आज सर्वत्र हिंसा, असत्य, प्रमाद, मिथ्याडम्बर, व्यर्थ मोह, क्रूरता और विभत्सता का नग्न नृत्य हो रहा है। पाश्चात्य देशों में तो सभ्यता ही की कायापलट हो गयी है। धर्म तथा अधर्म का विचार तक नहीं रहा है। हमारे देश में भी प्राचीन सभ्यता को, धर्म को नष्ट करने की सामग्रियाँ पैदा हो रही हैं। अगर यही हाल रहा तो वे यहां से भी किसी न किसी दिन सत्य को भगा कर ही दम लेंगी। हमारे जैन धर्म की भी यही अवस्था है।

वर्तमान अवस्था का अध्ययन करना, उसकी त्रुटियों को समझना और तब क्रांति को प्रोत्साहित करना यह हमारा परम कर्त्तव्य है, जिससे हमारे समाज, धर्म और मानवता की भलाई हो। आजका

वातावरण अति कलुषित हो गया है। नाना प्रकार के भेदों ने शासन-सत्ता को नगण्य कर दिया है। फिर भी हम सुख की नींद सो रहे हैं। आज हममें शिक्षा की कमी है— विचारों का दिवाला है। न हमारा कोई संगठन है और न हमारी बातों का कोई मूल्य है। सत्ता आज जैनियों के हाथ से छीनी जा चुकी है। जैन-धर्म का ऐसा दर्दनाक पतन तो कभी नहीं हुआ। इसे देख कर भी हम क्यों मौन है ? आज धर्म का सर्वत्र अपमान हो रहा है, यह देखते हुए और समझते हुए भी हम चुप हैं। यह मनुष्यता नहीं पशुता है। पशु भी इतने अकर्मण्य नहीं होते। हम प्रत्यक्ष रूप से इन नाशकारी दुष्परिणामों को देख रहे हैं। फिर भी इनका प्रतिकार करने की चेष्टा नहीं करते। इस दुर्दशा को देख कर तथा इसके परिणाम स्वरूप भविष्य के अवश्यम्भावी भयानक नाश का अनुमान कर हृदय स्तम्भित हो जाता है। प्रत्यक्ष दिखता है कि यदि ऐसी ही हालत रही तो वह दिन दूर नहीं जब जैन-धर्म भूतकाल की एक स्मृतिमात्र रह जायगा।

अब तो इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक जैनी द्वेषभाव त्याग कर धर्म के सच्चे और पवित्र सिद्धान्तों का मनन कर उनके अनुसार कार्यशील हो। प्रत्येक व्यक्ति में विचार विनिमय की शक्ति है और सच्चे सिद्धान्त कहीं भी छिप नहीं सकते। कुछ लोगों ने यदि स्वार्थवश उन पर पर्दा डाल दिया हो तो उसे विवेक द्वारा हटाया जा सकता है। असली जैनत्व की भावना अङ्गीकार कर हमें अपने बिचारों, भावों और कार्य्यों में क्रान्ति की उमड़ पड़नेवाली वे लहरें उत्पन्न करनी चाहिये, जिनसे धर्म को जीवन में उतारा जा सके।

लघुताई बड़ी है रे भाई

[श्री सौभाग्यचन्द्रजी महनोत]

[इस कविता के रचयिता उज्जैन निवासी वयोवृद्ध सेठ श्री सौभाग्यचन्द्रजी महनोत हमारे परिचित श्री सरदारसिंहजी महनोत के पिता हैं। आपकी आयु इस समय ९० वर्ष से भी ऊपर है। दीर्घ जमाना देखे हुए इन विशाल अनुभवी सज्जन की यह कविता हमारे पास भेजते हुए श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत ने लिखा है:—'दादासाहब को सदा से लिखने का बहुत शौक रहा है। उन्होंने कई कवितायें, कई निबन्ध और कई पुस्तकें भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी हैं, जो सभी अप्रकाशित हैं। आजकल दृष्टि के मन्द पड़ जाने से उन्होंने लिखना छोड़ दिया है। अब हमारा विचार है कि उन रचनाओं को प्रकाशित करावें। उनकी एक कविता मैं आपकी सेवा में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूं, अगर उचित समझें तो प्रकाशित कर बाध्य करें।" कविता सचमुच भावपूर्ण और अच्छी है। —सम्पादक।]

राग—धनाश्री, यमनकल्यान और आसावरी

लघुताई बड़ी है रे भाई।
लघु रज कोमल सिर पै चढ़त है रे, पत्थर ठोकरें खाई ॥ है० ॥
लघु द्वितिया के चन्द्र-दरस से, परसन लोग लुगाई।
पूरन कला पूनम दिन व्यापी, क्षीण कला व्हे जाई ॥ है० ॥
बाल लघु रणवास रमावे राणी भी चित्त लाई।
होय बड़ा जावण नहीं पावे, जावे तो शीश छेदाई ॥ है० ॥
चन्द्र सूर्य को मोटापन से राहू ग्रहसत जाई।
तारागण लघुताई धारत भय कछु राखत नाहीं ॥ है० ॥
हस्ती ने तृण ढूंढन कारण मस्तक खाक रमाई।
योजन गन्धा कीड़ी कण ले षड रस पावत भाई ॥ है० ॥
अवयव में मोटा मस्तक ने अपनी करी है बड़ाई।
छेदन, भेदन, मुंडन आदि पावत है दुखदाई ॥ है० ॥
चरण लघु अंग मांहि कहावे, पावे जग में बड़ाई।
शीस छोड़ बन्दै सहु चरना, चरना में शीस नमाई ॥ है० ॥
गुण प्राप्ती को मूल बीज है, धरलो चित नरमाई।
सोभा चित्त विचार विवेक धर धारले हिरदा मांही ॥ है० ॥

जापान में मृत्यु-संस्कार रिवाज

[श्री पुखराज हींगड़, जापान]

कल की बात है कि यहां मेरे एक जापानी दोस्त की मां का देहान्त हो गया। दो दिन पहले जब मैं उसके घर गया था, उसकी मां की दशा खराब थी। डाक्टर का आना-जाना और उसका इलाज जारी था। मेरा दोस्त और उसके परिवार के अन्य व्यक्ति बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ अपने एक नित्यकर्म की तरह रोगी की सेवा सुश्रुषा करते थे।

जब उसकी मां मर गई तो उसने अपने इष्ट मित्रों को किसी नियमित व्यवहारिक कार्य की तरह पत्र अथवा टलीफोन द्वारा सूचित किया। लगभग आधे घंटे में सभी उसके मकान पर एकत्रित हो गये। सबने मिल कर बड़ी शान्तिपूर्वक घर को फरनिचर, पिक्चर पर्दे और फूलों से सजाया और फिर इस मृत्यु की खबर म्यूनिसिपैलिटि को दी। थोड़ी देर में एक मोटर लॉरी लाश को श्मसान ले जाने के लिये म्यूनिसिपैलिटी की ओर से आ गई। (ऐसी कई लॉरियां खूब सजी सजाई हरदम म्यूनिसिपैलिटी के गैरेज में तैयार रहती हैं।) इसके बाद लाश को स्नान करा कपड़े पहनाये गये और सबने मिल कर प्रार्थना की, "हे भगवन, इसकी आत्मा को ऊंची गति और शान्ति प्रदान करना आदि।" प्रार्थना समाप्त करके लाश को लॉरी में रखा गया। लॉरी लाश को लेकर श्मशान की तरफ रवाना हो गई और हम सब लोग मेरे दोस्त के खर्चे से मोटरों में बैठ कर श्मसान पर पहुंचे। वहां बड़ी शांति और धैर्य के साथ लाश का अग्निसंस्कार किया गया। इसके पश्चात् सब लोग श्मसान पर फिर एक बार प्रार्थना करके घर लौट आये। यह सब हुआ लेकिन सिवाय दिली
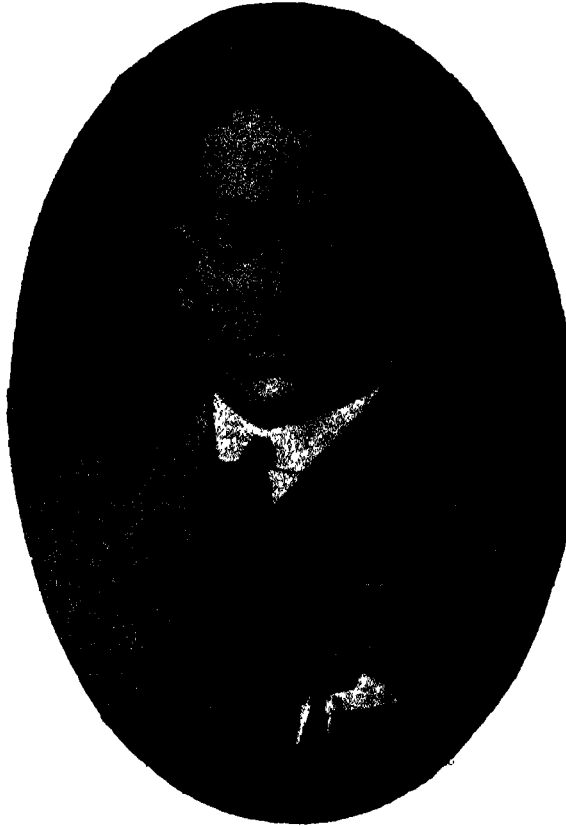
लेखक

अफसोस के किसी किस्म का बाहरी लोग दिखाऊ रोना पीटना कतई न हुआ।

दो तीन घण्टों के बाद मेरे दोस्त को उसके रिश्तेदारों व मित्रों ने कई चीजें रुमाल, टाई, सिगरेट केस, फल आदि चीजें भेंट और उपहार में दी, शायद इस ख़याल से कि वह अपनी स्वर्गीया मां का ख़याल भूल जावे। दो तीन दिन तक यही क्रम रहा।

तीसरे दिन जब मैं अपने दोस्त से मिलने गया तो उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब मैंने अपने दोस्त और उसकी स्त्री को हमेशा की तरह अपने व्यापार के कार्यों में संलग्न देखा। सिर्फ उनके चेहरों पर मां की जुदाई का रंज मालूम देता था। मैंने अपने मुल्क के कायदे अनुसार जब उसकी मां की मृत्यु पर दुःख और समवेदना प्रकट की तो उसने कहा, "दोस्त, यह सब कुदरती मामले हैं। इनमें अपना कोई वश नहीं, अतः इस झगड़े में पड़ना व्यर्थ है। इससे फायदे के बदले नुकसान ही होता है।" यह उत्तर सुन कर मुझे एक प्रकार की झेंप के साथ-साथ हैरानी भी हुई।

हरेक विषय में केवल थोड़े ही अरसे में जापानियों ने बहुत तरक्की कर ली है और इसका कारण केवल यही है कि उनमें अपना भला बुरा विचारने की पूरी शक्ति है और हम लोग रूढ़ियों के गुलाम बने हुये अपने भले बुरे की विवेचन शक्ति का ज्ञान न रखते हुये पतन की ओर निरन्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। हममें से हरेक यह महसूस करता है कि अगर हम मार्ग देख कर नहीं चलेंगे, समय रहते सावधान न होंगे तो कहीं के न रहेंगे। लेकिन अफसोस इस बातका है कि जानते हुये भी हम अनजान बने हुये हैं, सूझते हुये भी अन्धे हैं।

मेरे इतना लिखने का आशय केवल यही है कि हम जापान के उक्त रिवाज की सादगी पर ध्यान दें और फिर अपने मुल्क में जारी उसी रिवाज के साथ उसका तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें। हमारे यहां क्या होता है ? सुनिये,

(१) रोगी की मृत्यु होने से पहले ही रोना-पीटना आरम्भ हो जाता है। बताइये, इससे उस मरणासन्न की आत्मा को कितना कष्ट होता होगा। उस समय बड़े धैर्य के साथ केवल भगवन् में विश्वास रख कर उसकी आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थनारत रहना चाहिये।

(२) मरने के बाद महिनों तक रोना-पीटना चालू रहता है और खासकर हमारे मारवाड़ गोठवाड़ में तो निराला हिसाब है। बहुधा मृतक के घर की औरतें लगभग ६ महीनों तक दोनों टाइम प्रतिदिन रोती हैं। रिस्तेदारों की या मित्रों की जो स्त्रियां दूसरी जगह से समवेदना प्रकट करने आती हैं, वे बाहर से ही बड़ी ऊँची आवाज से रोती हुई आती हैं। आंसू भले ही न निकलें, आवाज जितनी बुलन्द होगी, समवेदना भी उतनी ही गहरी समझी जायगी। केवल स्त्रियां ही नहीं, बल्कि बाज वक्त आदमियों को भी यही स्वांग भरना पड़ता है। मुझे सबसे अधिक अफसोस इस बात का है कि हमारे समाज में जो सुधारक बनते हैं, लीडर बनते हैं, वे इन छोटे-छोटे झूठे किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण रिवाजों की ओर ध्यान तक नहीं देते। खयाल करने की बात है कि क्या इतने जोर-शोर से रोने से कोई मृतक लौट कर आ सकता है। इस चिल्लाहट से अपना कोई मतलब निकलना तो दूर रहा उल्टे तन्दुरुस्ती और समय की बरबादी होती है।

(३) इतना ही नहीं, बल्कि यह भी जरूरी हो जाता है कि हमारे मुल्क में कि जिस आदमी के घर मृत्यु हुई हो तो उसको अपने घर पर कमसे कम दो एक

महीना रहना ही पड़ेगा, फिर भले ही विदेशों में चलता हुआ उसका व्यापार नष्ट ही क्यों न हो जाय। अगर वह ऐसा न करे तो समाज उसे बुरा भला कह कर अंगुली पर उठा लेता है। एक तो यों ही उसका आदमी मरा, दूसरे यों व्यापार का नुकसान हुआ, तीसरे कई प्रकार के व्यर्थ के खर्च करने पड़े। बिचाराचारों ओर से जेरबार हो जाता है।

(४) इसके बाद भी हरसाल मृतक की यादगार में आनेवाले श्राद्ध, बरसी, दागतिथि, औसर-मौसर आदि सैकड़ों खर्चीली फिजूल रूढ़ियां हैं। इन सभी पर अलग-अलग विवेचनात्मक निबन्ध या ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। पता नहीं, हमारी दशा कब सुधरेगी ? हमारी आंखों पर पड़ा हुआ भ्रम का पर्दा न जाने कब दूर होगा ?

अब जरा विचारिये कि जापान के रिवाजों में और हमारे रिवाजों में कितना अन्तर है। भले और बुरे में भी इतना ही अन्तर होता है।

मेरी अपने मुल्क के नेताओं से और खास कर हमारे समाज के गोठवाड़ मारवाड़ के अपने को सुधारक और लीडर कहनेवाले व्यक्तियों से प्रार्थना है कि वे शीघ्र इस दिशा में ध्यान देकर इन छोटे-छोटे महत्वपूर्ण रिवाजों में उचित सुधार करने की चेष्टा करें। उसी हालत में वे मान्य समझे जांयगे। अगर हमारे पूज्यवर विश्वप्रेमी श्री विजयशान्ति सूरिश्वरजी व श्री विजय-वल्लभजी इत्यादि महान् पुरुष इस ओर ध्यान दें तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

नवयुवक

[श्री पन्नालाल भण्डारी बी० ए०, बी० कॉम०, एल-एल० बी०]

"नवयुवक" शब्द कितना आकर्षक और मनमोहक है! इसके प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में नूतनता, स्फूर्ति, साहस और उत्साह प्रवाहित होते हैं। यह शब्द बचपन और वृद्धावस्था की मध्यस्थ सुन्दर स्थिति का द्योतक और उत्साहपूर्ण गाम्भीर्य का चिन्ह है।

दकियानूसी विचार-प्रणाली, रूढ़ि और उन्नति मार्ग के रोड़ों को समूल उखाड़ फेंकना नवयुवक की प्रकृति का एक प्रमुख काम है। जैसे समय की गति के साथ सरिता का प्रवाह अपना स्थान बदल कर जीवित रहने का प्रयास करता है वैसे ही स्थित्यानुसार नवयुवक सुन्दर मानवी जीवन को सांचे में ढाल कर अधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है। संसार के लिये नवयुवक प्रकृति की एक अनुपम भेंट है।

उन्नत राष्ट्रों का इतिहास—प्राचीन या अर्वाचीन-अपनी सुदृढ़ नींव अपने नवयुवकों के बल के सहारे डालता रहा है। उन राष्ट्रों का विकास नवयुवक हृदयों पर ही होता रहा व उनकी प्रगति नवयुवक की मानसिक और शारीरिक शक्ति पर ही अवलम्बित रही।

नवयुवक का हृदय दिमाग से आगे दौड़ता है। मनुष्य समाज या राष्ट्र की उन्नति या अवनति हृदय पर ही अवलम्बित है न कि दिमाग पर। हृदय अनुकरण करने की वस्तु है, दिमाग केवल प्रशंसा की। कर्मण्यता के क्षेत्र में हृदय ही राजा है। हृदय में मानवता का वास है, दिमाग में नहीं। चरित्र पर ही राष्ट्र बनते हैं और बिगड़ते हैं बुद्धि पर नहीं। बुद्धि की आवश्यकता केवल उसी समय तक है, जबतक वह हृदय की असंयमित रफ्तार को संयमित बनाती रहे। नवयौवना[illegible] बुद्धि और हृदय का सुन्दर संगम है।

हिसाब समीक्षा

[श्री कस्तूरमल बांठिया, बी० काम०]

हिसाब समीक्षा की आवश्यकता --

आज कल लिमिटेड कम्पनियों का जमाना है। लिमिटेड कम्पनियों के शेयरों व डिबेंचरों में अनेक लोगों की बचत फंसी हुई है। साल दर साल ऐसी कम्पनियों के छपे हुए हिसाब इन लोगों के पास आते रहते हैं, परन्तु इन हिसाबों से कम्पनी की अन्दरूनी हालत का पता विरले ही लोग लगा पाते हैं। जब तक कोई कम्पनी डिविडेन्ड बांटती रहती है कोई इस बात को जानने की चेष्टा नहीं करता कि यह कमाई में से दिया गया है या और किसी तरह से। डिविडेन्ड का बांटा जाना ही कम्पनी का अच्छी हालत में होने का सच्चा प्रमाण नहीं है। फिर भी लोग उस समय तक निश्चिन्त से रहते हैं जब तक कि कम्पनी के शेयरों का भाव बाजार में टिका रहता है, पर ज्योंही भाव गिरने लगता है त्योंही उसके अच्छी हालत में होने में सन्देह होने लगता है और तब ऐसे लोग शेयरों के दलालों से भाव गिरने का सबब पूछते फिरते हैं और जो कुछ वे कहें उसे प्रमाण मान कर सन्तोष करते हैं।
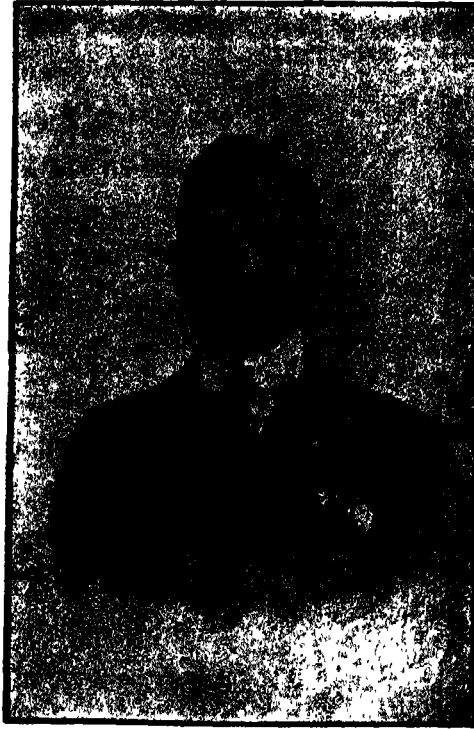
लेखक

लिमिटेड कम्पनियों के विषय में ही यह बात हो सो नहीं है। कितने ही लोग व्यापार की बाहरी चटक मटक देख कर उसके अच्छी हालत में होने की धारणा कर लेते हैं और जब ऐसे व्यापारी का कर्ज आदि का पैगाम आता है तो उसे कर्ज भी दे देते हैं। इस प्रकार कर्ज देने का परिणाम सामान्यतया हानिकर ही होता है। यह हानि तनिक सावधानी से सहज ही बचाई जा सकती है। वह सावधानी है व्यापार के हिसाब की समीक्षा यानी जांच पड़ताल।

यह बात सच है कि सिवा बड़े व्यापारियों के अन्यत्र ऐसे व्यवस्थित हिसाब जहां साल दर साल का आंकड़ा और हानि लाभ का विवरण तैयार किया गया हो कठिनाई से ही मिलता है, परन्तु जहां ये मिले वहां व्यापार की अन्दरूनी हालत का पता कैसे लगाया जा सकता है, यही संक्षेप में दिग्दर्शन कराना इस लेख का उद्देश्य है।

हिसाब समीक्षा और हिसाब परीक्षा में भेद—

यह बात सबसे पहले यहां स्पष्ट कर देना ठीक होगा कि इस जांच पड़ताल का उद्देश्य हिसाब परीक्षा से भिन्न है। हिसाब परीक्षक तो इस बात की जांच करता है कि परीक्षित हिसाब बदस्तूर और व्यापार की किसी नियत समय तक की सच्ची हालत बताता है या नहीं। बस इतनी ही हिसाब परीक्षक की जिम्मेदारी होती है, इसके आगे नहीं। व्यापार की इस हालत से उसके भविष्य का निश्कर्ष निकालना उसका काम नहीं है। हिसाब परीक्षा के तत्व भी भिन्न हैं और यह तत्सम्बन्धी विशेषज्ञों का काम है। परन्तु हरेक सच्चे और बदस्तूर हिसाब से किसी व्यापार के भविष्य का हाल बड़ी आसानी से जाना जा सकता है। यही नहीं बल्कि व्यापार में कहां सुधार करने से वह हानिप्रद हो तो लाभप्रद और सामान्य लाभप्रद हो तो विशेष लाभप्रद किया जा सकता है, यह भी सहज ही जाना जा सकता है। यह जानकारी हम सब के लिए उपयोगी हो सकती है।

व्यापार की दो मुख्य बातें—

किसी व्यापार के सम्बन्ध में जानने की दो ही मुख्य बातें हैं। (१) क्या व्यापार में पर्याप्त पूंजी है? (२) क्या व्यापार जितनी चाहिए उतनी कमाई कर रहा है? यद्यपि ये प्रश्न दो हैं परन्तु ये परस्पर इतने अधिक सम्बन्धित हैं कि एक की तहकीकात स्वतः ही दूसरे पर भी प्रकाश डाल देती है। पहले प्रश्न का उत्तर तो आपको व्यापार के आंकड़े यानि देनलेन के चिट्ठे से सहज ही मिल सकता है और दूसरे प्रश्न का उत्तर उसके वृद्धि खाते यानि हानि लाभ के हिसाब से। यह आप लोगों को मालूम होगा कि जहां आंकड़ा किसी व्यापार की केवल समय विशेष की स्थिति ही प्रदर्शित करता है वहां हानि लाभ का हिसाब उसकी प्रगति को प्रदर्शित करता है। स्थायी स्थिति के हिसाब की परीक्षा कर हम जानते हों उससे अधिक किसी तरह की सूचना भला हमें कौन दे सकता है? परन्तु प्रगति का हिसाब ऐसा है कि जिसकी भिन्न-भिन्न बातों की समीक्षा कर एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने मालिक को कभी-कभी ऐसी सूचनाएं दे देता है, जिसका उसे कभी विचार ही न आया हो। ऐसी सूचनाएं कभी-कभी व्यापार के भविष्य को ही बदल देती है।

हानि लाभ के हिसाब की विशेष उपयोगिता—

आंकड़े की अपेक्षा हानि लाभ का हिसाब इसलिए भी अधिक उपयोगी होता है कि किसी भी व्यापार की आर्थिक स्थिति का सुधार उसकी कमाने की शक्ति बढ़ाने से अधिक आसानी से किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक व्यापार पूंजी की कमी के कारण पर्याप्त लाभ नहीं देता। यह पूंजी की कमी दो तरह से पूरी की जा सकती है। एक तो स्वयम् मालिक द्वारा अधिक पूंजी लगाई जा कर और दूसरे किसी से ऋण लेकर। अच्छी साख वाले को ऋण मिलने में विशेष कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। परन्तु व्यापार की कमाई बढ़ाने में पूंजी के साथ-साथ हिकमत और

बुद्धिमानी की भी आवश्यकता है। इसकी सूक्ष्म हानि लाभ पत्रक की जांच से हो सकती है।

तीन वर्ष के हिसाबों की तुलना की आवश्यकता –

व्यापार का उद्देश्य ही धन कमाना है। अस्तु व्यापार के हिसाब की उपयोगिता सिर्फ इसी एक बात में है कि जो यह बताने में समर्थ हो कि व्यापार की वह स्थिति जिसने उसे अब तक धनोपार्जन में समर्थ रखा है, कहां तक कायम रह सकती है। समय प्रगतिशील है। आजका जमाना दसवर्ष पहले के जमाने से बिलकुल ही भिन्न है। यह परिवर्तन कोई अकस्मात ही हो गया हो सो भी बात नहीं है। सामान्यतया परिवर्तन शनैः शनैः ही होता है, परन्तु अधिक काल बीतने पर वही अकस्मात् सा प्रतीत होने लगता है। महायुद्ध के बाद की सहज सम्पन्नावस्था आज की इस असीम मन्दी के वर्षों में परिवर्तित हुई है। इसलिये किसी व्यापार के भविष्य का विचार करने के लिए उसके तीन वर्ष से अधिक पुराने हानि लाभ और आंकड़ों की जांच करना निरर्थक है। तुलना के लिए तीन वर्ष की अवधि पर्याप्त है। अस्तु किसी भी व्यापार की स्थिति एवं प्रगति का रुख जानने के लिए हमें उसके तीन वर्ष के उपर्युक्त दोनों हिसाबों का मिलान करना अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य है।

जितने ही अधिक पूर्ण और विवरण सहित ये हिसाब हों, उतनी ही अधिक हमें किसी व्यापार के भविष्य की उनसे सूचना मिल सकती है। परन्तु भिन्न-भिन्न वर्षों के इन हिसाबों को जब तक हम एक दूसरे के आमने सामने न रखें, हमें न तो व्यापार की साल दर साल की प्रगति का और न उसकी स्थिति का समूचा समष्टि चित्र दिखाई पड़ सकता है, जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए सबसे पहली आवश्यक बात जो हमें करनी चाहिये वह है इनका एकत्रीकरण। नीचे हम एक कल्पित व्यापार के तीन वर्षों के आंकड़ों के एकत्रीकरण का उदाहरण देते हैं, जो पाठकों को सहज ही समझ में आ सकेगा।

देना

	वर्ष एक	वर्ष दो	वर्ष तीन
पूंजी	३१.१२.२१	३१.१२.२२	३१.१२.२३
पूंजी	रु० ३०,०००	३०,०००	३०,०००
व्यापारियों का देना	९,२४३	६,७६४	६,००४
बक का देना	७.४१९	४,६८४	३,६२४
रिजर्व फंड	८,०००	९,०००	१०,०००
वृद्धिखाता में बचत	५,६२७	६,८५९	८,८४४
टोटल	रु० ६०,२८९	५७,३०७	५८,४७२

लेना

	वर्ष १	वर्ष २	वर्ष ३
	३१.१२.२१	३१.१२.२२	३१.१२.२३
रोकड़ पोते बाकी	रु० २४४	१५५	२८२
ग्राहकों में लेना	९, ५८७	८,०९१	८६८०
माल पोते	१८,७६५	१८,५१४	१९५४०
मशीनेरी प्लेन्ट	११,८४२	११,२०६	१०९३०
जमीन जायदाद	१९,५००	१९,१२५	१८७५०
मुत्फरकात	३५१	२१६	२९०
	६०,२८९	५७,३०७	५८४७२

इस एकत्रीकरण से साल दर साल इस व्यापार में क्या परिवर्तन हुआ यह प्रत्यक्ष हो जाता है और इससे बिचारशील व्यक्ति कुछ शिक्षाप्रद निश्कर्ष निकाल सकते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि हानि लाभ का हिसाब ही व्यापार की समीक्षा में सब से उपयोगी हिसाब है, आइए, फिर हम इस समीक्षा का कुछ काम इसी हिसाब की बारीकियों की छानबीन द्वारा करें। इस

हिसाब की प्रत्येक कलम पर कुछ न कुछ टीका टिप्पणी की जा सकती है और वह भी इतनी कि जिसमें उचित समीक्षा का उद्देश्य ही नष्ट हो जाय। यह खतरा प्रत्येक समीक्षक को बचाना चाहिए। इस हिसाब के सम्बन्ध में तीन प्रश्न किये जा सकते है जो इस समीक्षा की तह तक पहुंच जाते हैं, इसलिए हमें इन तीन प्रश्नों पर ही विचार करना ठीक है, ये प्रश्न इस प्रकार हैं:

(१) क्या माल की बिक्री का कुल नफा इतना पर्याप्त है कि जो व्यापार का सारा खर्च अदा कर, कुछ खरा नफा भी दे दे ?

(२) क्या व्यापार के अखराजात व्यापार को देखते हुए वाजिब है ?

(३) क्या नफे की दर बिक्री के लिहाज से ऊँची या नीची है ?

हानि लाभ के हिसाब के तीन विभाग

इन प्रश्नों का विचार किसी एक वर्ष के हानि लाभ के हिसाब पर ही हम कर सकते हैं और उससे जो उत्तर हमें प्राप्त हो उसकी दूसरे साल के हिसाब से प्राप्त हुए उत्तरों से तुलना कर हम उनमें इस अर्से में क्या उलट-फेर हुआ है, यह सहज ही जान सकते हैं परन्तु पूर्व इस के कि हम इन पर विचार करें हमें इस हिसाब की कुछ आवश्यक बातों का ज्ञान लेना भी जरूरी है। बही-खाते के आधुनिक आचार्य हानि-लाभ के हिसाब तीन अङ्कों में विभाजित करते हैं, जिसे वे व्यापार खाता (Trading Account) हानि लाभ खाता (Profit & Loss Account) और हानि लाभ वितरण खाता (Profit & Loss approporiation) कहते है। इस प्रकार तीन भेद करने का कारण यह है कि माल की खरीदी के लिए किया गया खर्च व्यापार के अन्य खर्च से बिलकुल भिन्न होता है। जब माल बिक्री के लिए खरीद किया जाता है तो उसको बिकने लायक बनाने के लिए उस पर और भी कितना ही खर्च करना पड़ता है। यह खर्च माल की तादाद के अनुसार बढ़ता है। परन्तु व्यापार चलाने का खर्च ऐसा है कि जो प्रायः स्थिर सा रहता है, इसलिए हानि-लाभ खाते के सर्व प्रथम ऐसे दो भाग कर दिये जाते हैं, जिनमें से एक में माल की खरीद, उस पर लगा खर्च और माल की बिक्री का अहवाल दिया जाता है और दूसरे में व्यापार का अन्य खर्च दिया जाता है। पहले खाते से जिसे हिसाब-विशारद व्यापार-खाता कहते हैं, माल लागत से कितने अधिक दामों में बिका है यानि उसकी बिक्री का कुल मुनाफा (Cross Profit) कितना है मालूम होता है, इसी मुनाफे में से व्यापार-सञ्चालन का सारा खर्च अदा किया जाता है और जो शेष बच रहता है वह तक्सीम हो जाता है। व्यापार खाते में खर्च की कौन कलमें समावेश की जांय, इस विषय में हिसाब-विशारदों में बड़ा मतभेद है। कितने ही सिर्फ उसी खर्च का इसमें समावेश करते है कि जो माल की निकासी (Output) के अनुरूप घटता बढ़ता है। एक दृष्टि से यह ठीक भी है, क्योंकि माल की निकासी के साथ-साथ कारखाने के भाड़ा आदि में परिवर्तन नहीं होता, जो खर्च माल की बिक्री के योग्य बनाने में किया जाय, वह सब अनिवार्य खर्च हैं, जिसका माल की पड़-तल लगाने में अवश्य ही समावेश होना चाहिए, कच्चे माल की लागत और उसे बिक्री योग्य बनाने का सारा खर्च दोनों की इकट्ठी रकम को माल का मूल खर्च यानी प्राइम कॉस्ट कहा जाता है, इसको समझाने के लिए नीचे हम एक उदाहरण देते है, यह उदाहरण एक कार-खाने के व्यापार खाते (Trading Account) का दिया गया है।

व्यापारखाता—

अ० ब० कारखाने का व्यापारी हिसाब ता० ३१ दिसम्बर १९३५ को समाप्त होने वाले वर्ष का:—

४००००) बिक्री के जमा।	६,०००) बाकी लेना माल पोते ता० १ जनवरी को
६,७००) बाकी लेना माल पोते ता० ३१ दिसम्बर को	१७,५००) माल खरीद मय रेल व गाड़ी भाड़े के
	१५,०००) मजदूरी
	११,२००) शेष कुल मुनाफा जो बिक्री पर २८ प्रतिशत पड़ता है।
४६,७००)	४६,७००)

माल पर कमाये गये कुल मुनाफे की साल दर साल की दर का मिलान कर हम सहज ही जान सकते हैं कि व्यापार का मुनाफा बढ़ रहा है कि घट रहा है। परन्तु मुनाफे की दर की तुलना में यह बात सबसे जरूरी है कि साल दर साल का बचा हुआ माल न तो कीमत में और न किस्म में परस्पर बहुत भिन्न हो। माल का स्टाक बिक्री के अनुसार हरेक व्यापार में रहता है और रहना भी चाहिए। जिस व्यापार में बिक्री न बढ़ कर माल का स्टाक यदि साल गुजिश्ता से बढ़ जाय तो इसका यही परिणाम हो सकता है कि माल की खरीदी में कुछ असावधानी हुई है और अब वह नीचे भाव में ही बिक सकता है। इसलिए ऐसे साल की बिक्री पर मुनाफे की दर शायद माल पोते की कीमत ऊंची कूत कर कायम रख ली गई है, यह सन्देह होना हरेक विचारशील व्यक्ति को वाजिब है।

मुनाफे की दर का बिक्री से सम्बन्ध—

मुनाफे की दर सिद्धान्ततः बिक्री की तादाद पर निर्भर नहीं करती, क्योंकि माल की लागत पर मुनाफा चढ़ाकर बिक्री की कीमत निश्चित की जाती है। इसलिए यह दर पहले ही निश्चित हो जाती है। परन्तु व्यवहार में बात दूसरी ही होती है। जितनी बिक्री कम होती है, मुनाफा भी कम होता है। कारखाने में मुनाफा इसी बात में है कि मशीनों से उनकी ताकत भर काम लिया जाय। जैसे एक कारखाने की मशीन साल भर में १ लाख चीज निकाल सकती है,परन्तु वह केवल ७०,००० चीज ही निकालती है, हालांकि उसके चलाने में खर्च उतना ही लगता है। इसलिए ऐसे कारखाने में प्रति चीज की लागत उचित से कुछ अधिक पड़ती है, जिसका परिणाम मुनाफे पर स्वतः ही पड़ जाता है। जहां मुनाफा कम हुआ कि बिक्री और मुनाफे की निष्पत्ति भी अपने आप कम हो जाती है। भाव की तेजी मन्दी से इस मुनाफे की दर की इस रद्दोबदल का कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, हालांकि यह बात भी सत्य है कि माल की पैदावार बजार की तेजी मन्दी के अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

किसी कारखाने के सम्बन्ध में हमें खास दो बातें जानना आवश्यक है। (१) पूंजी और माल की बिक्री का क्या सम्बन्ध है? (२) बिक्री और कुल मुनाफे की क्या निष्पत्ति है? कारखानों के विषय में

नकद, जमीन, जायदाद आदि सब पूंजी मानी जाती है, क्योंकि यदि वहां कारखाना खड़ा न किया गया होता तो उस जायदाद का किराया और रकम का व्याज भी उपजाया जा सकता था। विशेषज्ञों का कहना है कि कपड़े की मील और लकड़ी अथवा धातु के कारखानों में बिक्री उनमें कुल लगी पूंजी के बराबर हुआ करती है। अन्य व्यापारों में पूंजी और बिक्री का इस प्रकार समान होना नहीं पाया जाता, परन्तु उनमें भी चिरकाल के अनुभव से यह देखा गया है कि बिक्री और पूँजी का कुछ ऐसा सम्बन्ध स्थिर हो गया है कि जिसको देख कर यह सहज ही कहा जा सकता है कि वह व्यापार अपनी पूर्ण शक्ति से चल रहा है या नहीं। यदि किसी व्यापार में बिक्री इस अनुभवजन्य अनुपात से कम होती है तो इसके कारणों की तलाश करना हरेक व्यापारी के लिए आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि व्यापार में आवश्यकता से अधिक पूंजी जमा हो जाती है या दिखलाई पड़ती है। इस हालत में उस व्यापार को लाभप्रद बनाने के लिए पूजी कम करना या कारखाना बढ़ाना आवश्यक हो जाता है।

जिस प्रकार बिक्री और पूँजी का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिए अनुभव से स्थिर-सा हो गया है, उसी प्रकार बिक्री और कुल मुनाफे की निष्पत्ति (Rates of Gross profit) भी स्थिर है। खुदरा व्यापार में बिक्री पर २५ प्रतिशत, थोक फरोशी में शायद १० प्रतिशत मुनाफा उचित माना जाता है। इसी तरह कारखानों के लिए २० प्रतिशत का मुनाफा वाजिब माना जाता है। अस्तु जिस कारखाने में मुनाफा बिक्री का २८ प्रतिशत हो, जैसा कि उपर्युक्त कल्पित उदाहरण में है, वह नुकसान में चल रहा है, यह नहीं कहा जा सकता।

मुनाफा क्या है ? खरीद की कीमत से बिक्री की कीमत की अधिकता ही तो। परन्तु यह अधिकता हमें यह नहीं बताती और न यह बता ही सकती है कि इस मुनाफे का कितना अंश खरीद से प्राप्त हुआ है और कितना बिक्री से। यदि मुनाफा कम हुआ है तो इसका एक तो यह कारण हो सकता है कि माल की खरीदी में अथवा उस पर खर्च की हुई मजदूरी आदि में असावधानी हुई है और दूसरा कारण यह हो सकता है कि तैयार माल बहुत नीचे भाव में बिका है। व्यवहार में देखा गया है कि दोनों ही ओर की असावधानी से मुनाफे की दर गिरा करती है।

मुनाफा और खरीद व मजदूरी का सम्बन्धः—

इस तहकीकात के पश्चात माल की खरीद, उस पर किया गया मजदूरी आदि का खर्च और बिक्री की हमें तहकीकात करना चाहिए, और इसमें खास बात जो तहकीकात की है वह यह है कि हमारे माल खरीदने वाले और हमें माल बेचनेवाले कौन और कैसे है ? क्या माल किसी एक बड़े व्यापारी से खरीदा जाना है या बेचा जाता है ? कितने ही व्यापारों में एक मातबर व्यापारी से काम करना लाभदायक होता है तो कितने ही में हानिप्रद। हां, जहां माल बहुत से छोटे-छोटे व्यापारियों को बेचा जाय, वहां यह तहकीकात करना आवश्यक है कि उस व्यापार में उगाही कितनी रहती है। सुव्यवस्थित व्यापार में बिक्री और उगाही का सम्बन्ध शीघ्र ही स्थिर हो जाता है और बिक्री को देख कर उगाही की तादाद सहज ही बताई जा सकती है। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि किसी व्यापार में

आप इतनी उधार देते हैं कि एक महीने में बिक्री चीज़ का रुपया उससे तीसरे महीने की पहली तारीख को वसूल हो जाय। इस हालत में जब आप अपना हिसाब ३१ दिसम्बर को समाप्त करेंगे, आपकी बहियों में नवम्बर और दिसम्बर की बिक्री की उगाही बाकी निकलती रहेगी। अब मान लीजिये कि साल में आपकी बिक्री रु० ४०,०००) की होती है तो आपकी उगाही लगभग ७,०००) रु० की होगी पर अधिक नहीं। यदि आपकी उगाही इसके स्थान पर रु० १५,०००) की हो तो इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि या तो उगाही वसूल करने में ढील की जाती है या माल ऐसे आसामियों को बेचा जा रहा है, जिनकी स्थिति अच्छी नहीं है। इसलिये यह तहकीकात एक योग्य और जरूरी बात है। पक्षान्तर में यदि उगाही रु० २,०००) ही हो तो इसका यह भी कारण है कि व्यापार में पूंजी की कमी होने के कारण ग्राहकों को सहूलियत नहीं दी जाती और इसलिये वे अन्यत्र चले जा रहे हैं। या उन्हें अपने माल का रुपया जल्दी से चुकाने के लिए छूट में अधिक व्याज का प्रलोभन दिया जा रहा है। यह अवस्था भी व्यापार के लिए हानिकर है।

जो बात बिक्री की उगाही के लिये सत्य है, वही बात हमारी खरीदी के लिए भी कही जा सकती है। यदि खरीद का पैसा व्यापारियों का बहुत देना हो तो इसका यही कारण हो सकता है कि पूंजी की कमी के कारण पैसा नहीं चुकाया जा सकता और इसलिए माल खरीद भी किफायत से नहीं हो रही है। व्यापारियों को देना थोड़ा हो तो इसका यह निश्कर्ष निकलता है कि खरीद का पैसा नकद देकर माल बहुत किफायत से खरीदा जा रहा है।

मजूरी के विषय पर हिसाब बहुत ही कम प्रकाश डालता है। मजूरी कहीं-कहीं काम पर तो कहीं-कहीं रोजाना पर चुकाई जाती है। रोजाना लेने वाले पूरा काम बदले में देते हैं या नहीं यह बाहरी आदमी कुछ नहीं कह सकता। हां जहां काम से मजूरी चुकाई जाती हो वहां उसकी तुलना और कारखानों में वैसे ही चुकाई जानेवाली मजूरी से की जा सकती है, और यदि वह अधिक हो तो उसके कारणों की तहकीक़ात करना तब उपयोगी होता है।

माल पोते—

व्यापार खाते की आखिरी कलम है माल पोते बाकी। कारखाने में माल का स्टाक तीन तरह का हो सकता है, एक तो तैयार माल का, दूसरा जो तैयार हो रहा है और तीसरा कच्चा माल। जिस कारखाने में बिक्री सुव्यवस्थित होती हो वहां तैयार माल का स्टाक शायद ही मिलेगा। हां, ऐसे कारखाने में तैयार हो रहे माल का व कच्चे माल का स्टाक ही अधिक मिलेगा। कच्चा माल कोई तो खपत के अनुसार खरीद करता है तो कोई दूसरा व्यक्ति जिसके पास धन की कमी नहीं है और जो कच्चे माल के बाजार की रुख पहचानता है, अच्छे भावों में अपनी खपत के लायक आगे से आगे खरीद करता रहता है। इस विषय में कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। परन्तु किसी व्यापार गृह का क्या ढंग है यह उसके साल दर साल के हिसाबों को देखने से सहज ही जाना जा सकता है।

पोते की कूत की भूल का हानिलाभ पर प्रभाव—

तैयार हो रहे माल के सम्बन्ध में अलबत्ता एक कठिनाई आती है और वह है उसकी कीमत की कूत की। कच्चे माल से तैयार हो रहा माल कितनी

कीमत का है, यह कूंतना विशेषज्ञों का काम है और इसकी कूंत आंकड़े के लिहाज से करना जरूरी है न कि हानि लाभ के हिसाब से। साल दर साल तैयार हो रहा माल समान सा रहे तो उससे हानि लाभ पर कुछ असर नहीं पड़ता। हां, इसकी कूत का ढंग ही गलत हो अथवा साल दर साल बदलता रहे तो उससे आंकड़ में अवश्य गलती पड़ जाती है, क्योंकि तब वह व्यापार की सच्ची स्थिति नहीं बताता। उदाहरणार्थ उक्त कल्पित व्यापार खाते में साल के अन्त में रु० ३,७००) का माल पोते साल-प्रारम्भ से अधिक है यानी वह रु० ६,०००) से बढ़ कर रु० ९,७००) हो गया है। माल पोते की कूंत में दोनों सालों की शैली और सिद्धान्त यदि एक सा ही रहा हो और यदि उस शैली और सिद्धान्त से माल की कीमत की कूंत १० प्रतिशत ऊंची होती हो तो इसमें जब कि आंकड़े में रु० ९७०) का अन्तर आवे, हमारे हानि लाभ खाते में सिर्फ रु० ३७०) का ही अन्तर आ सकता है क्योंकि साल गुजिश्ता से माल केवल रु० ३,७००) का ही अधिक पोते है। इसीलिए यह पहले ही कहा जा चुका है कि सुव्यवस्थित व्यापार या व्यवसाय में साल दर साल माल पोते में विशेष घट बढ़ न होना चाहिए।

बिक्री और माल पोते का सम्बन्ध----

हरेक व्यवसाय व व्यापार में कितना माल पोते रहना चाहिये इसका भी विशेषज्ञों ने अनुभव से अनुमान लगा लिया है। इस विषय में कोई सर्वमान्य सिद्धांत यद्यपि नियत नहीं हुआ है फिर भी ऐसा माना जाता है कि कपड़े की खुदरा फरोशी में माल से चौगुणी बिक्री होना चाहिये। अर्थात् साल भर में कपड़े की खुदरा बिक्री की दूकान में जितनी बिक्री हो उसका चतुर्थांश साल-आखीर में माल पोते रहना चाहिये। भिन्न-भिन्न व्यापारों के लिए यह निष्पत्ति अलग अलग होगी और जितना ही कीमती माल होगा उतना ही बिक्री और माल पोते का अनुपात भी होगा, जैसे मणियारी माल में माल का उथलाचौगुणे से अधिक न करने वाला शायद ही कमा सकेगा।

तीन वर्ष के हिसाबों की तुलनाः---

अब तक हमने एक ही साल के व्यापारी खाते की भिन्न-भिन्न कलमों पर विचार किया है, परन्तु एक ही साल के हिसाब की समीक्षा से किसी भी व्यापार का भविष्य नहीं जाना जा सकता। इसके लिये उसके लगातार गत तीन वर्षों के हिसाब की तुलना करना हमारे लिए आवश्यक है। और ज्योंही हम ऐसा करते है हमें व्यापार की कुछ ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं, जो एक वर्ष के हिसाब में नजर ही नहीं आती थी। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि किसी व्यापारी की लगातार तीन वर्षों की बिक्री और उस पर कुल मुनाफे की निष्पत्ति इस प्रकार हैः—

वर्ष	बिक्री	बिक्री और मुनाफे का अनुपात
	रु०	प्रतिशत
१९३१	३०,०००	२५
१९३२	३६,०००	२७
१९३३	४०,०००	२८

यह व्यापर निःसंदेह ही तरक्की पर कहा जायगा क्योंकि इसमें न केवल साल दर साल की बिक्री ही बढ़ रही है परन्तु बिक्री और मुनाफे का अनुपात भी बढ़ रहा है। परन्तु यदि इस व्यापार में बिक्री और अनुपात के अङ्क ऐसे न होकर ठीक इससे विपरीत हों अर्थात् ४०,०००, ३६,०००, और ३०,००० हों तो उससे हम सहज ही कह सकेंगे कि व्यापार घट रहा है

एवम् गिर रहा है और इसका उपाय करना जरूरी है। पक्षान्तर में ये ही अङ्क निम्नलिखितरूप में हों तो—

१६३१	रु० ३०,०००	२५
१६३२	४०,०००	२८
१६३३	३६,०००	२७

यह निश्कर्ष निकलेगा कि व्यापार की रुख अनिश्चित है। यदि सन १६३२ में बिक्री एकदम बढ़ जाने का कोई ऐसा आकस्मिक कारण हो गया हो कि जिसका अनुमान भी न किया जा सकता हो औरजिसके फिरसे होने की कोई भी आशा न हो तो ऐसे व्यापार का रुख निश्चित तरक्की पर कहा जा सकता है।

व्यापार-खाता किसी व्यापार का एक छोटा-सा ही हिसाब है परन्तु विशेषज्ञ इसे प्रत्येक व्यापार का जिगर यानि हृदय मानते हैं। जब तक किसी रोगी का हृदय ठीक होता है, वैद्य या डाक्टर उस रोगी को स्वस्थ होने में किसी तरह का सन्देह नहीं करते। मन्द हृदयवाले रोगी के स्वस्थ होने की धन्वन्तरि भी आशा नहीं दिल.ता। इसी तरह व्यापार-खाता हमें किसी व्यापार की सच्ची अवस्था बता देता है और यह प्रकट कर देता है कि किसी प्रयोग विशेष से वह पनप और फूल सकता है या नहीं। व्यापार की सफलता उसके कुल मुनाफे पर निर्भर करती है। कुल मुनाफा माल की सस्ती पैदावार और ऊँचे भाव में उस माल की बिक्री होने पर निर्भर रहता है। पैदावार का सस्तापन कच्चे माल की किफ़ायत से खरीद और कारखाने के अपनी पूर्ण शक्ति पर काम करने पर निर्भर रहता है। यह कहा जा सकता है कि व्यापार में और भी अनेक तरह के खर्च होते हैं. जिनका भी मुनाफे पर असर पड़ता है। यह बात यद्यपि अस्वीकार नहीं की जा सकती, परन्तु ये अन्य खर्च साल दर साल सामान्यतया स्थिर रहते हैं, पैदावार के अनुरूप वे नहीं बढ़ते। उनमें एक हद तक ही कमी की जा सकती है। ऐसे खर्चों में फिजूलखर्ची न हो, बस इसी लक्ष्य की आवश्यकता है, कमाई तो मुख्य बिक्री से होती है।

फिर भी हिसाब समीक्षा में हानि लाभ के हिसाब की कलमों का भी विचार करना आवश्यक है, क्योंकि वह भी व्यापारी का एक अत्यन्त उपयोगी हिसाब है। यह लेख पहले ही लम्बा हो गया है। यदि पाठकों को यह रुचा तो फिर अगले किसी अङ्क में हानि लाभ के हिसाब और आँकड़े की भिन्न भिन्न कलमों की समीक्षा करने की चेष्टा करेंगे *।

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धनसिंह महनोत, बी० कॉम]

गताङ्क से आगे

(६)

अनुपमा विजयशंकर बाबू की इकलौती कन्या थी। वे उसे पुत्र के समान प्यार करते थे। एक मात्र कन्या का विवाह था। हृदय में उत्साह था, उमङ्ग थी। सोचा था विवाह बड़े धूम धड़क्के से करेंगे। दो महीने पहले से ही विवाह की तैयारियां शुरू कर दी गई थीं।

रमादेवी बड़े उत्साह के साथ विवाह की तैयारियों में व्यस्त थी। सारे दिन अथक परिश्रम करती थीं। क्यों न करतीं ? कितने ही दिनों की आशा अब शीघ्र ही पूरी होनेवाली थी। अब विवाह के दिन दो मास से भी कम रह गये थे। इसीलिये वह घर को साफ करवाने, लिपवाने-पुतवाने में लगी हुई थी। आज भण्डार घर को साफ करवाया था। भोजन का समय होने पर पतिदेव को भोजन कराने के लिये वे जैसे ही बाहर आई, बिजयशङ्कर वहां आ पहुंचे। रमादेवी उन्हें देखते ही सहम गई। सोचने लगी आज दाल में जरूर कुछ काला है।

विजयशङ्कर की आज अद्भुत हालत थी। आंखें लाल लाल। क्रोध से कांप रहे थे। मुंह से आवाज न निकलती थी।

पति का ऐसा स्वरूप रमादेवी ने आज से पहले कभी न देखा था। डरती डरती बोली, "आज आपकी यह क्या हालत है ? क्या हुआ है ?"

विजयशङ्कर कुछ न बोल सके। भीषण क्रोध के कारण बहुत देर से रुके हुए आंसू निकल पड़े। क्रोध उत्तेजना प्राप्त कर आग हो जाता है और आश्वासन प्राप्त कर पानी। रमादेवी की आश्वासनपूर्ण आवाज से क्रोधित विजयशङ्कर सिसकने लगे। पास ही पड़ी हुई खाट पर बैठ कर एक पत्र रमादेवी की गोद में डाल दिया।

× × × ×

राधाकान्त और गोपालचन्द्र के बहुत दौड़-धूप करने पर भी, बहुत रिश्वत-घूस देने पर भी, बहुत अनुनय-विनय करने पर भी केवल अपने ही हठ के कारण प्रकाश को दो साल सपरिश्रम कारावास का दण्ड दे दिया गया। राधाकान्त के दुःख से दुखित होकर और स्वयं भी प्रकाश पर सरल स्नेह रखने के कारण गोपालचन्द्र ने उपरोक्त उपायों द्वारा मजिस्ट्रेट को इस बात के लिये राजी कर लिया कि अगर प्रकाश केवल अपने कृत्यों के लिये सरकार से क्षमा प्रार्थना करे और भविष्य में किसी भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग न लेने की शपथ करे तो वे उसे बिना किसी शर्त के छोड़ दे सकते हैं। गोपालचन्द्र ने और स्वयं राधाकान्त ने प्रकाश को बहुत समझाया, बहुत आरजू-मिन्नतें की, यहां तक कि राधाकान्त उसके आगे रो पड़े, पर प्रकाश टस से मस न हुआ। वह केवल कहता रहा कि उसने तो उसका कर्त्तव्य पालन मात्र किया है। कर्त्तव्य पालन के लिये क्षमा प्रार्थना की क्या आवश्यकता ? उसे अपने कृत्यों के लिये कोई पश्चाताप नहीं है और भविष्य में ऐसे कार्य न करने की शपथ भी वह नहीं लेना चाहता, क्योंकि अब उसके जीवन का उद्देश्य ही ऐसे कार्य करते रहना है। अन्त में भगवान् पर भरोसा रख कर

राधाकान्त प्रकाश को छुड़ाने के प्रयत्न से विमुख हुए और उधर प्रकाश ने अपने कर्त्तव्य पालन की भावना से संतुष्ट होते हुए सुप्रसिद्ध सेण्ट्रल जेल में पदार्पण किया।

जब अंगूर हाथ नहीं लगते हैं तब वे खट्टे समझ लिये जाते हैं, यह मानव प्रकृति है। अपने प्रयत्न में किसी प्रकार सफल न हो पाने से राधाकान्त की चिन्ता, उनकी विकलता निराशोत्पादक रोष में बदल गई। वे यह कहते हुए शिवपुरी लौटने की तैयारी करने लगे, "मुझे क्या करना है? मैं तो उसी के भले के लिये कहता था। हमारी तो दुनियां पूरी हो चुकी। अधिक से अधिक दो चार वर्ष और जी लेंगे। पर वह भी याद रखे कि जवानी और जोश सबों को होते हैं, पर सदा नहीं ठहरते, पीछे पछताना ही पड़ता है। हम तो यही समझ लेंगे कि परमात्मा ने पुत्र दिया ही नहीं।"

गोपालचन्द्र ने कह सुन कर राधाकान्त को दस बारह रोज और ठहरा ही लिया। प्रकाश के गिरफ्तार होने और दो साल की सजा पाने का समाचार राधाकान्त ने पत्र द्वारा घर भेज दिया था। यह जान कर शीलादेवी की क्या दशा हुई होगी, इसको एक मातृ हृदय ही समझ सकता है। राधाकान्त, गोपालचन्द्र आदि का आश्चर्य और दुख उस समय और भी बढ़ गया जब सुशील ने पढ़ाई छोड़ कर राधाकान्त के साथ ही शिवपुरी जाने का इरादा प्रकट किया। यों तो राधाकान्त अपने भोलेभाले प्रकाश को बिगाड़ देने के लिये सुशील पर मन ही मन अत्यन्त नाराज थे, फिर भी अपने मित्र जगदीश प्रसाद का पुत्र होने के कारण स्नेह भी कम नहीं करते थे। शीलादेवी भी इस मातृहीन युवक पर माता की तरह स्नेह रखतीं थी। अपने हृदय के टुकड़े प्रकाश का अनन्य मित्र होने के कारण उनके हृदय में सुशील के प्रति स्नेह और भी बढ़ गया था। राधाकान्त और गोपालचन्द्र आदि ने सुशील को बहुत समझाया, पर उसने एक न सुनी। उसका कहना था,

"प्रकाश तो मर्दे मैदान की तरह युद्ध करता हुआ जेल चला गया है और मैं क्या होस्टल और कालेज जीवन का आनन्द लेता रहूं? उसने अपना कर्त्तव्य पालन किया है, मैं अपना करूंगा। क्या यह मुनासिब है कि वह तो जेल की कठिन यातना सहे और मैं भविष्य में अच्छी नौकरी पाने की उम्मीद में पढ़ता जाऊं? चाची के शब्दों में मैं देश की ठोस सेवा करूंगा। ग्राम्य-सङ्गठन की दिशा में कार्य करूंगा। ग्रामीणों में शिक्षा प्रचार का प्रयत्न करूंगा, उन्हें स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाऊंगा। इस राक्षसी शिक्षा में धरा ही क्या है? चाची के कथनानुसार इसने हमारे संस्कारों तक में गुलामी की भावनायें भर दी हैं। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये, देश तथा समाज की कठिनाइयों को दूर करने के लिये सुसन्तति तैयार करना अथवा देश की भावी सन्तान को मनुष्य बना कर उन्नति के पथ पर आरूढ़ करना, न कि और भी अवनति के गढ़े में ढकेल देना। आजकल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है गुलामी। पर वह भी आजकल नहीं मिलती। विद्यार्थी जीवन से निकल कर जब आजकल का कोई युवक अपने आगे जीवन का विस्तृत कर्मक्षेत्र देखता है, तब उसे वास्तव में कितनी निराशा और दुख का सामना करना पड़ता है, यह वही बता सकता है, जिसे कभी इस स्थिति में से गुजरना पड़ा है।"

गोपालचन्द्र ने समझाया, "ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करना हरेक छात्र का कर्त्तव्य है। यह दूसरी बात है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली अच्छी नहीं। पर उस हालत में जब कि दूसरी कोई प्रणाली प्रचलित नहीं, अन्य कोई उपाय भी तो नहीं है। हां, यह तुम्हारा कर्त्तव्य हो सकता है कि तुम उस प्रणाली में जिसे तुम दूषित समझते हो, परिवर्त्तन करने का प्रयत्न करो। पर वह प्रयत्न तुम आधुनिक प्रणाली

से एक दम इस प्रकार नाता तोड़ कर नहीं कर सकते। खैर, यह तो हुई प्रणाली-शोधन की बात। अब जरा अपने व्यवहारिक जीवन पर भी तो दृष्टिपात करो। डिग्री प्राप्त किये बिना जीवनयापन में कितनी कठिनाई पड़ती है? तुम्हारे पिता की तुम पर कितनी बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं? उन्हें तुम्हारे इस निश्चय से कितना कष्ट होगा? तुम बच्चे तो हो नहीं, खुद समझदार हो। किसी बात में जल्दबाजी करना नादानी और पागलपन के सिवा और कुछ नहीं है।"

सुशील ने अपना निश्चय जताया, "चाचाजी, किसी निर्धन और अनाथा माता के हृदय से पूछिये कि वह कितनी चिन्ताओं और विपत्तियों को अपने ऊपर लाद कर पुत्र को पढ़ाती है, परन्तु फिर भी पाती क्या है? एक पढ़ा लिखा जैंटिलमैन पुत्र सामने खड़ा है, जिसका जीवनक्षेत्र और कर्मक्षेत्र दोनों ही शून्य हैं। अब वह समय आ उपस्थित हुआ है जब द्वार-द्वार की ठोकरें खाने के उपरान्त किसी भाग्यशाली एम० ए० को ३०) या ३५) मासिक की जगह मिल गई, तो गनीमत समझा जाता है। और वह बिचारा अगर विवाह की शृङ्खला में जकड़ा जा चुका है, तब तो जीवन भार स्वरूप हो जाता है। रही पितृ-हृदय की बात, सो अपने सिद्धान्तों के लिये, सत्य के लिये एक पुत्र का जो कर्त्तव्य है, वह प्रकाश ने मुझे बता दिया है।"

अन्त में सुशील के इस दृढ़ निश्चय के आगे सभी को सिर झुकाना पड़ा। राधाकान्त ने भी यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि गांव का लड़का गांव चला जायगा तो क्या बुरा है। घर में रह कर बाप-दादे की इज्जत की रक्षा तो कर सकेगा। इसके विपरीत यहां रहने से प्रकाश की तरह उन्मत्त होकर जेलों की हवा खाता फिरेगा।

सुशील ने अपने अन्य दो एक मित्रों से भी परामर्श किया। किसी ने कुछ राय दी और किसी ने कुछ। उन लोगों ने कहा कि देश की सेवा भी आवश्यक है, परन्तु कालेज छोड़ कर अपने भविष्य को बिगाड़ना, उन्नति के मार्ग पर एक जबर्दस्त पत्थर रख देना भी तो ठीक नहीं है। उन्मत्त सुशील उन परामर्शों का कोई अर्थ न समझ सका। उसके हृदय में उसके आत्माभिमान ने कहा कि ये लोग डरपोक हैं, पागल हैं। अपना काम किये जाओ। तुम्हारा रास्ता पाक और साफ है। क्यों इन तर्कशास्त्र की पहेलियों में पड़ते हो?

आखिर सुशील राधाकान्त चाचा के साथ शिवपुरी लौट आया। यहां आकर राधाकान्त ने सब बात खोल कर अपने समधी को लिख दी और विवाह के लिये अपनी मजबूरी दिखलाते हुए क्षमा प्रार्थना की और इस बात के लिये प्रार्थना की कि विजयशङ्कर बाबू दो साल और ठहरें, फिर अवश्य विवाह कर दिया जायगा। अगर नहीं ठहर सकें तो वे अन्य जगह सम्बन्ध करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

× × × ×

रमादेवी ने अज्ञात भय की आशंका से धड़कते हुए हृदय और कांपते हुए हाथों के साथ पत्र पढ़ा। पत्र समाप्त कर चुकने पर रोती हुई रमादेवी पति की तरफ निराशापूर्ण आंखों से देख कर बोली, "अब क्या होगा?"

इस समय तक विजयशङ्कर कुछ-कुछ सम्हल गये थे। आपही आप बोले,

"हे भगवन्, इतना बड़ा धोखा! मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कहीं मित्र भी इस प्रकार धोखा दे सकता है? तू कब किधर का पलड़ा भारी कर देगा, कौन जान सकता है? मनुष्य जो सोचता है, वह कम ही होता है। क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि पुत्र—और वह भी प्रकाश के समान—पिता की आज्ञा न माने? हो न हो इसमें राधाकान्त ही की कुछ चालाकी है। किसी और जगह से पुत्र की कीमत ज्यादा मिली होगी। कितनी उमंग से व्याह की तैयारियों में लगा था, पर हाथ लगा यह अपमान। लिखता है कि आप अन्य जगह सम्बन्ध करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

ओह ! मैंने कभी भी इस अपमान की आशा न की थी। ठीक ऐन मौके पर यह धोखा ! हां, यह किसने सोचा था कि मेरी एक मात्र अनुपमा के विवाह में इस प्रकार बिडम्बना से सामना करना पड़ेगा ? अब मैं समाज में कौनसा मुंह लेकर रहूँगा। भगवान् ! इस सङ्कट से बचाओ।"

आंसू बरसाती हुई रमादेवी बोली, "अब क्या होगा ?"

विजयशंकर कुछ न बोले। केवल शोकसन्तप्त हृदय लिये हतबुद्धि की तरह रमादेवी की ओर ताकते रहे।

रमादेवी सिसकियां भरती भरती बोली, "क्या विवाह की तैयारियां न करूं ? हाय ! मेरे मन की यह एक मात्र अभिलाषा भी पूरी होते हुए भगवान् क्यों न देख सका ? हे प्रभो ! मुझ से ऐसा कौन सा अपराध बन पड़ा ?"

कष्ट, जब वह दैव या अदृष्ट द्वारा उपस्थित होता है, मनुष्य को सिर झुका कर सन्तोष के साथ सहना पड़ता है। पर जब वह किसी व्यक्ति विशेष के कारण उपस्थित होता है, तब शोक केवल शोक ही नहीं रह जाता, वह क्रोध का, प्रतिहिंसा का रूप धारण कर लेता है। विजयशङ्कर में भी धीरे-धीरे क्रोध का संचार होने लगा। रमादेवी को रोती देख कर वे अत्यन्त उत्तेजित हो उठे। खाट से उठते हुए वे चिल्ला कर बोले,

"क्यों, तैयारिया क्यों बन्द कर दें ? ठीक निश्चित समय पर अनुपमा का व्याह होगा। उसने समझा होगा कि मैं प्रकाश के समान योग्य वर और न पाऊंगा। पर वह भी देखे और आंखें खोल कर देखे कि अनुपमा के लिये प्रकाश ही नहीं, उससे भी अधिक योग्य वर अनेकों प्राप्य हैं। अगर दुर्लभ है तो अनुपमा सी वर कन्या। अगर मैंने भी राधाकान्त से इस अपमान का बदला नहीं लिया तो मेरा नाम विजयशङ्कर नहीं।"

१०

मनुष्य विनोद प्रिय जीव है। गृहस्थी की चिन्ताओं और सांसारिक झगड़ों-बखेड़ों में अविरल संलग्न रहने से उसको चित्त की शान्ति और आत्मा के सुख के लिये कभी कभी आनन्द और मौज मनाने की सूझती है। पर ऐसे मनुष्य भी होते हैं जो दूसरों के लिये विनोद की सामग्री जुटा कर या स्वयं विनोद के साधन बन कर अपनी जीविका चलाते हैं। अगर वे उचित रूप से यह कार्य करें तो कोई हर्ज नहीं है, परन्तु केवल अपना मतलब पूरा करने के लिये वे भलेमानसों को विनोद के बहाने ऐसे व्यसनों में फंसा देते हैं कि वे भले-मानस कहीं के नहीं रह जाते। उनके अच्छे और बुरे का ज्ञान जाता रहता है। वे अन्त में बरबाद हो जाते हैं।

सध्या का समय है। सूर्य भगवान अस्ताचलगामी हो रहे हैं। केवल ऊँचे वृक्षों, पहाड़ों और मकानों की चोटियों पर धूप चमक रही है। समय बड़ा सुहावना प्रतीत हो रहा है। ऐसे ही समय शङ्करपुर के जमींदार बाबू दीनानाथजी के बगीचे में एक विनोद पार्टी जमी हुई है। इस विनोद पार्टी में केवल पांच व्यक्ति, कुछ नौकर और दो तीन गाने बजानेवाले हैं। पांचों व्यक्तियों में वह जो खूबसूरत सा सबका सरदार मालूम पड़ता है और अपनी चञ्चल आंखों से इधर उधर देख रहा है, बाबू दीनानाथजी का सपूत मदनमोहन है। दूसरा व्यक्ति, जिसका चेहरा रोबीला है और दाढ़ी मूंछ बढ़ाये हुए है, दीनानाथजी का नया सेक्रेटरी है। इसे आये अभी चारपांच महीने ही हुए हैं। लेकिन मदनमोहन के साथ इसकी अच्छी घनिष्ठता हो गई है। इसका नाम कान्ति-चन्द्र है। तीसरे व्यक्ति, जो अधेड़ हैं और जिनकी आंखों से धूर्तता टपकी पड़ती है, गौरीपुर के रहनेवाले हैं और बाबू विजयशंकर के पड़ोसी हैं। आपका नाम लाला हरदयाल है। चौथे महापुरुष लालाजी के अभिन्न मित्र और गौरीपुर के धूर्ताभिराज नन्दलाल हैं। पांचवां व्यक्ति है शंकरपुर का नामी पहलवान कंचनसिंह।

जमींदारपुत्र मदनमोहन मधुपुर कालेज के फर्स्टइयर में पढ़ता है। फर्स्टइयर में आपको हो तो तीन साल गये हैं,

पर आपके लगातार परिश्रम करने पर भी क्लास कलमुंही को वेश्या की तरह आपसे कुछ ऐसी मुहब्बत हो गई है कि आपको छोड़ती ही नहीं। जमींदार बाबू दीनानाथजी भी आपको कितने ही ब्राह्मी मोदक और ब्राह्मीपाक खिला चुके, हवन अनुष्ठान करवा चुके,—फिर भी अगर माता सरस्वती आपके मस्तिष्क को अपना वासस्थान न बनाये तो इसे सरस्वती की बुद्धि न्यूनता और उसके दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? गत साल ही मदनमोहन तो हिम्मत हार चुके थे और मधुपुर जाने का विचार छोड़ चुके थे। दीनानाथजी भी अपने परलोकवासी बुद्धिमान वयोवृद्ध सेक्रेटरी के मुंह से यह सुन कर कि सरस्वती और लक्ष्मी में परस्पर बैर है, मदन-मोहन को आगे पढ़ाने का विचार छोड़ चुके थे, लेकिन शंकर-पुर के एक मात्र धुरंधर पंडित अखंडेश्वर शास्त्री की ललकार से मदनमोहन को फिर उस मनहूस कालेज का मुंह देखना ही पड़ा। शास्त्रीजी ने वयोवृद्ध सेक्रेटरी को चुनौती दी और कहा कि इस बार वे 'वैरशत्रु नाशक' नाम का ऐसा जबर्दस्त अनुष्ठान करेंगे कि सरस्वती को लक्ष्मी से शत्रुता छोड़नी ही पड़ेगी और साथ ही वे 'आकर्षक' नामक ऐसा जप करेंगे कि मदनमोहन को आकर्षित करने के लिये सेकेण्ड इयर को बाध्य होना ही पड़ेगा। बिचारे सेक्रेटरी इस चुनौती के आगे सर न उठा सके। इसीलिये बाबू दीनानाथजी की आज्ञा से हमारे मदनमोहन को फिर कालेज में अपनी चिर परिचित कक्षा में जाना ही पड़ा। इस समय गर्मी की छुट्टियां हैं। आप परीक्षा देकर आये हुए हैं। परिणाम की खबर छुट्टियों के बाद कालेज खुलने पर लगेगी।

लाला हरदयाल के साथ मदनमोहन का स्नेह कुछ स्वाभाविक सा है। लालाजी का घर गौरीपुर में जमींदार बाबू विजयशंकर के पड़ोस ही में है। दोनों में अच्छा खासा घरौपा है। लाला हरदयाल की एक बाड़ी में खरबूजे फलते थे। वे विजयशंकर के यहां खरबूजे भेज दिया करते थे तो आम की मौसम में विजयशंकर के यहां से लालाजी के घर आम की डाली चली जाती थी। उनके बाप दादा चाहे जो करते हों किन्तु वे तो रुपयेका लेन देन करते थे। इनके पिता की और स्वयं इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक बात बड़े जोरों से मशहूर थी। जितने जोरों से वह मशहूर थी, उतने ही धीरे धीरे वह कानोकान कही जाती थी। पाठक ! हमें तो स्वयं ही वह बात मालूम न थी। लेकिन खुद मदनमोहन ने अपने पिता के नये सेक्रेटरी से उस दिन हमारे सामने ही कहा था,

"उनका परिचय पूछते हो क्या ? उनका नाम लाला हरदयाल है। उनके दादा अपनी जवानी में विदेशों में रह कर न जाने किस चीज की दलाली किया करते थे; और उन्होंने उस दलाली में खूब रुपया भी कमाया। हरदयाल के पिता खूब शर्मीले स्वभाव के थे। इतने शर्मीले कि विवाह होने पर भी कई दिनों तक अपनी स्त्री के पास जाने को उनकी हिम्मत न हुई। इसी बीच हरदयाल के दादा खूब बीमार हुए और मजबूरन हरदयाल के पिता को विदेशों में अपने पिता का कारबार सम्हालने जाना पड़ा। लगभग तीन वर्ष पश्चात् जब वे लौटे, तब उन्हें दो वर्ष के हरदयाल को अपनी गोदी में आने को तैयार देख बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने पिता से बड़े धीरे धीरे बोले कि यह लड़का कैसे पैदा हुआ जबकि उन्होंने उस लड़के की मां का चेहरा भी भली प्रकार नहीं देखा। उनके पिता ने तिरस्कार भरी आंखों से देख कर जवाब दिया कि इस छोटी सी बात में इतना आश्चर्य करने का कोई कारण नजर नहीं आता क्योंकि हरदयाल तो दो ही वर्ष का है, पर जब वे विदेशों से आये थे, तब हरदयाल के पिता पांच वर्ष के थे। अपने जन्म का रहस्य सुन कर हरदयाल के पिता बड़े दुखित हुए और फिर उन्हें कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी, पर उन्होंने कसम खाई कि वे हरदयाल को कभी विदेशों में न भेजेंगे। पर उस परमात्मा की विचित्र

लीला तो देखो कि जब ये लोग विदेशों में जाते हैं तब तो वंश मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये बच्चे हो जाते हैं, पर अब बिचारे हरदयाल आरम्भ से ही यहीं है, फिर भी उनकी स्त्री प्रसव करने का नाम भी नहीं लेती। लेकिन देखो कान्तिचन्द्र! यह बात और किसी से न कहना। हमने मित्र समझ कर तुमसे कही है।"

शंकरपुर के आसामियों में लालाजी का लेन देन विशेष प्रकार से चलता था। इसीसे दीनानाथ बाबू से इनका बहुत काम रहा करता था। महीने में दस-पन्द्रह वार आप अवश्य ज़मींदार बाबू से मिलने शंकरपुर चले आते। शंकरपुर गौरीपुर से केवल चार ही मील तो है, इसीसे अपने टट्टू, जिसे कई व्यक्ति शायद ईर्ष्यावश खच्चर कहते थे, पर आते कितनी देर लगती। उसी टट्टू पर, जब मदनमोहन बच्चा था, लालाजी उसे बैठा कर इधर उधर घुमाते और कई तरह की कहानियां, जिनमें अधिकतर तोतामैना, फिसाने अजायब, साढ़े तीन यार का किस्सा और अलिफलैला की कहानियां ही रहा करती, सुनाते और उसे खूब प्रसन्न करते थे। वह पुराना स्नेह अब बढ़ते बढ़ते बहुत बढ़ गया था।

कितनी ही बार मदनमोहन अपने बचपन में लालाजी के साथ गौरीपुर भी गया था और जमींदार बाबू विजयशङ्कर के घर में भी जाने का उसे कई बार अवसर मिला था। रमादेवी उसे खूब प्यार से खिलातीं पिलातीं और अनुपमा के साथ खेलने देतीं। लेकिन जबसे उसने मधुपुर कालेज में प्रवेश किया है या यों कहिये कि किशोरावस्था पार करके युवावस्था में पैर रखा है, सदा की चली आती परिपाटी के अनुसार उसका विजयशङ्कर के अन्तःपुर में जाना रोक दिया गया है। लाला हरदयाल के अन्तःपुर में उसके लिये अब भी रोक टोक नहीं है। गत वर्ष गर्मी की छुट्टियों में वह एक बार लालाजी के यहां गया था, वहां उसे अनुपमा दिखाई दी थी। वह तो उसे देख कर हैरान रह गया था। ३ साल पहले की अनुपमा में और इस अनुपमा में आकाश पाताल का अन्तर था। जब गुलाब केवल कलीही के रूप में था अब वह अधखिला फूल था। पहले वह उस दशा में था, जब भौंरे गुञ्जार करते हुए आगे निकल जाते हैं, अब वह उस दशा में था, जब भौंरे पराग के लोभ से आस पास मंडराने लगते हैं। जिसको बचपन ही से 'फिसाने अजायब' की शिक्षा दी गई हो, अगर उसका दिल यह चांद का टुकड़ा देखते ही अपनी जगह छोड़ दे तो क्या आश्चर्य है? उसी समय से मदनमोहन उस अधखिली कली का ध्यान किया करता है। फ़ुरसत के समय, जिसकी उसको शायद ही कभी कमी हुई हो, उसने इस अधखिले फूल को अपने पास बैठा कर कितने ही खयाली पुलाव पकाये हैं।

हां, तो महफ़िल खूब जमी हुई थी। गानेवाले गा रहे थे,

"तुम्हें न जाने दूंगी अब तो मेरे सरस बटोही
देखूं कैसे भाग सकोगे हे मेरे मनमोही!
कल कल की कल से है पर मैं आज न जाने दूंगी
व्याप रही कैसी मादकता आज तुम्हें हर लूंगी।"

"वाह! क्या कहना है!!" कह कर लाला हरदयाल झूमने लगे।

"कमाल है!" कह कर नन्दलाल ताली पीट पीट कर सुर मिलाने लगा।

गानेवालों ने फिर गाया,

"तुमसे कितनी दूर यहां थी मैं दुखिया हतभागी
अब न तुम्हें बनने दूंगी मैं बीतराग बैरागी।
भ्रमित मृगी सी भटक रही मैं तृषा दग्ध चाहों में
अब तो कसलो धृष्ट! मुझे अपनी गोरी बाहों में।"

सिर धुनते धुनते लाला हरदयाल अपने पास ही बैठे हुए मदनमोहन की जांघ पर थपेड़ा मार कर बोल उठे, "अरे उस्ताद, कुछ सुना।"

नींद से एकाएक जगाये हुए की तरह चौंक कर मदन-मोहन बोला,

"क्यों क्या बात है ? किसी के यहां चोरी हो गई क्या ?"

हरदयाल झल्ला कर बोले, "चोरी हो गई तुम्हारा सिर। अरे, उसी जमींदार विजयशंकर के यहां उनकी—"

बात काट कर मदनमोहन बोल उठा, "विजयशंकर के यहां ! क्या कोई मौत हो गई ? उनकी लड़की तो नहीं मर गई ? उस्ताद ! क्या खिला फूल थी ? ओह, हजारों में एक थी।"

हरदयाल और भी अधिक क्रुद्ध होकर बोले, "मर गई तुम्हारा सिर ! अरे, उसका ब्याह आजकल—"

मदन०—"काश अगर उसका विवाह मेरे साथ होता !"

हर०—"कहां राजा की रेवाड़ी और कहां नाई का छाती-कूटा।"

इस बार मदनमोहन को क्रोध हो आया। आप चिल्ला कर बोल उठे, "आखिर तुमने मुझे समझा क्या है दादा ?"

हरदयाल उसी तरह गम्भीर रह कर बोले, "बिना सींग का जानवर। बिना दुम का बन्दर। दिन में जागनेवाला उल्लू। मोर पंख लगाया हुआ कौआ। सफेद कपड़े पहना हुआ गदहा। अपने मन का—"

नन्दलाल लोट पोट होता हुआ बोला, "बस करो लालाजी, बस करो। आइन्दा के लिये भी तो उपाधियां रख छोड़ो।"

मदनमोहन भी अपने आप को एकाएक इतनी अधिक लाजबाब उपमाओं का उपमेय समझ कर बिना हंसे न रह सका। हंसता हुआ बोला, "आखिर आज बात क्या है जो लाला साहब इतना बल खाये हुए हैं ?"

हरदयाल और भी अधिक गम्भीरता धारण कर बोले, "तुम किसी की बात तो पूरी सुनते नहीं। अपनी ही बेसुरी अलापा करते हो। फिर हमारा कुछ कहना तो जैसे भैंस के आगे मृदंग बजाना है।"

नन्दलाल कहकहा लगा कर बोला, "वाह दादा वाह ! क्या कहना !! आखिर तुमने इनको फिर भैंस बना ही डाला।"

क्रान्तिचन्द्र जो इतनी देर तक चुप चाप बैठा हुआ इन सबकी बातें सुन रहा था, इस बार हंसे बिना न रह सका। वह बोला, "अबके कहिये लालाजी। मैं मदनमोहन का मुंह पकड़ लेता हूं। यह इस बार न बोल सकेंगे।"

हरदयाल उसी प्रकार मुंह बनाये हुये बोले, "हम तो इन्हीं के भले की कहते थे। कहेंगे तो भी हमें कोई लाभ नहीं है और नहीं कहेंगे तो भी कोई नुकसान नहीं है। आप ही क्यों मुंह पकड़ेंगे और हम ही क्यों कहेंगे ?"

मदनमोहन बोला, "बस, नाराज हो गये दादा ? तुमने तो हमें इतनी गालियां दे डालीं तो भी हम नाराज न हुए। तुम्हारी कसम दादा, अब बीच में न बोलूंगा। ध्यान से सुनूंगा। कहो।"

हरदयाल अब हंस कर बोले, "हां, अब आये रास्ते पर। बात यह है कि इसी अगली तृतीया को विजयशंकर की लड़की अनुपमा का विवाह शिवपुरी के तहसीलदार राधाकान्त के लड़के के साथ होनेवाला था। लेकिन राधाकान्त ने एक पत्र भेज कर जाहिर किया है कि उनका लड़का प्रकाशचन्द्र शादी करने से इन्कार करता है और यह भी लिखा है कि वह किसी राजनीतिक अपराध में गिरफ्तार होकर इस समय कलकत्ते की किसी जेल में बन्द है। साथ ही राधाकान्त ने इस बात की भी प्रार्थना की है कि अगर विजयशंकर दो साल और ठहरें तो प्रकाश के जेल से छूटने पर वे जैसे तैसे उसे विवाह के लिये अवश्य राजी करेंगे और अगर विजयशंकर नहीं ठहर सकते हैं तो वे अन्य जगह सम्बन्ध स्थापित करने को स्वतन्त्र हैं। राधाकान्त के इस पत्र को विजयशंकर ने अपना अपमान

राय बहादुर सेठ हीराचन्दजी कोठारी मुन्तजिम ए खास बहादुर इन्दौर।

आप बड़े मुत्सुद्दी कार्य कुशल तथा योग्य सज्जन हैं, आपने अपनी योग्यता तथा कार्य कुशलता से केवल एक क्लर्क के साधारण पद से होल्कर स्टेट की कौंसिल के सभापति जैसे बहुत बड़े सम्माननीय पद को प्राप्त किया था। आपका इन्दौर राज्य में बहुत सम्मान है। इस समय आप पेंशन प्राप्त कर रिटायर्ड हो गये हैं। आप बड़े धर्म-प्राण सज्जन हैं।

ओसवाल नवयुवक

पर

सम्मतियां और शुभ कामनाएं

इन्दौर, २३-११-३६

'ओसवाल नवयुवक' का पांचवा और छठा अंक मेरे सामने है। छपाई की सफाई तो है ही, परन्तु लेखों का चुनाव और सम्पादकीय स्तम्भ भी समाज के लिये बहुत उपयोगी है। यदि यह पत्र इसी प्रकार उन्नति पथ पर अग्रसर रहा तो इससे समाज का बहुत बड़ा हित होगा, परन्तु साथ ही समाज का भी यह कर्त्तव्य है कि वह इस होनहार पत्रको अपना कर इसकी एवं निजकी उन्नति में सहायक हो। मैं पत्र की उन्नति हृदय से चाहता हूं।

हीरालाल सिन्धाणी

पूना, २४-११-३६

आपके भेजे हुए वर्ष ७ के सभी अंक प्राप्त हुये। आपका प्रयत्न सराहनीय है। मैं तीन रुपये मनिआर्डर द्वारा भेज रहा हूं। मैं पत्र की उन्नति हृदय से चाहता हूं। आशा है समाज की निरन्तर सेवा करते हुए 'ओसवाल-नवयुवक' अपनी विधवा बहनों के प्रति अपने कर्त्तव्य को न भूलेगा।

कनकमल महनोत, M. A.

मन्त्री—

श्री जैन-विधवा-विवाह-मंडल, पूना।

अकोला, २०-११-३६

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'ओसवाल नवयुवक' फिर प्रकाशित होने लगा है। अकोला आने पर मुझे उसके अंक देखने को मिले तो मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ी। लेखों का चुनाव, संपादन और छपाई आदि सब सुन्दर है। मैं इस पत्रकी उन्नति की कामना करता हूं।

कुसुमकान्त जैन
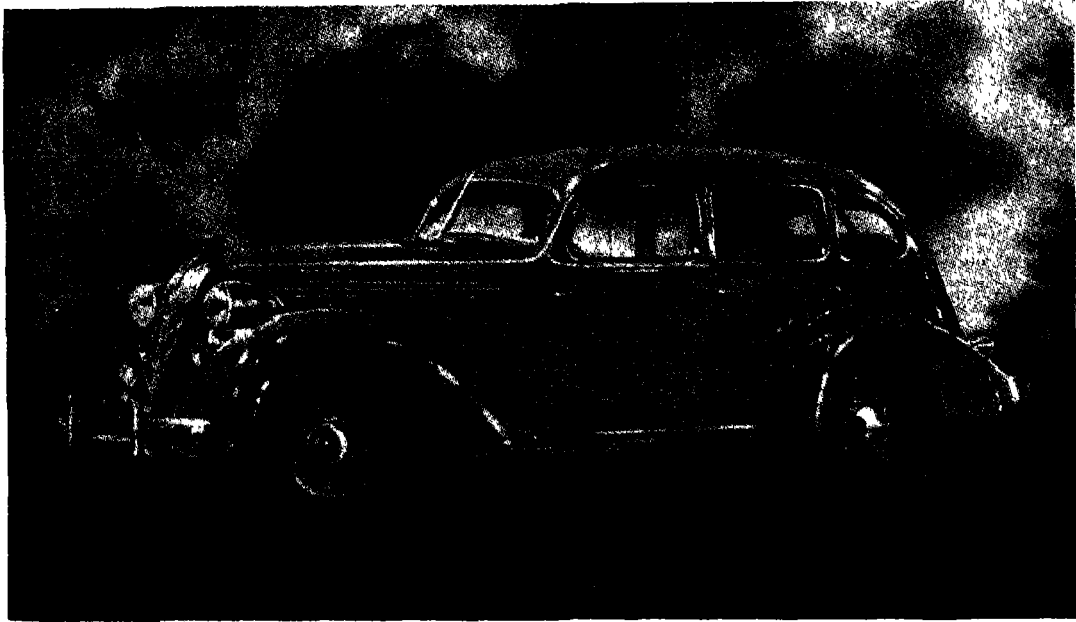
H U D S O N
TERRAPLANE

This wonderful HUDSON-built car is the result of an epoch-naking advance in motor-car design—the new Hudson Terraplane of Jnited Engineering, providing new driving ease, comfort and safety vith complete protection in body strength, made entirely of steel. Full 3-passenger seats front and rear, longer springs, improved oil-cushioned hock absorbers and a smooth effortless performance such as no other ar anywhere near its price can produce. 4950/-

THE GREAT INDIAN MOTOR WORKS Ltd
HEAD OFFICE ·
12, GOVERNMENT PLACE EAST
PHON : CAL. 74 - - - CALCUTTA
SERVICE STATION
33, Rowland Road, CALCUTTA
Phone : Park 548.

समझा है। उन्होंने यह ठान ली है कि जिस तरह भी हो इसी अगली तृतीया को अनुपमा का विवाह हो ही जाना चाहिये। अब उन्हें नये बर की तलाश है।

यद्यपि मदनमोहन मन ही मन अनुपमा का ध्यान किया करता था और उसके रूप-रस-पान के लिये लालायित रहता था। लेकिन प्रकाश के साथ अनुपमा का विवाह पक्का हो चुका था यह वह जानता था। अतः वह उस पराये गले में पड़े हुये सुन्दर फूल की तरफ केवल ललचाई आंखों से देख कर ही रह जाता था, उसे छीन कर अपने अधिकार में करने की उसकी हिम्मत न थी। लेकिन अब हरदयाल की इस खबर ने उसकी उस सुप्त लालसा को जागृत कर दिया। उसने इस अवसर से लाभ उठा कर अपनी बासना पूरी करने का इरादा कर लिया। वह बोला,—

"अगर ऐसी बात है दादा, तो विजयशंकर बाबू को उनके तलाश-कार्य में मदद पहुंचाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उनसे कहो कि शंकरपुर के जमींदार बाबू दीनानाथजी का सुपुत्र मदनमोहन ही अनुपमा के लिये एक मात्र उपयुक्त वर है।"

लाला हरदयाल मुंह सिकोड़ कर बोले, "वाहरे उपयुक्त वर! क्या मेरे मुंह से और भी विशेषण सुनना चाहते हो?"

मदनमोहन इस बार जरूरत से ज्यादा गम्भीर होकर बोला, "मजाक न करो दादा! मजाक की भी हद होती है। मैंने मेरे जीवन में शायद इससे अधिक गम्भीर होकर कोई बात नहीं कही। मैं अनुपमा को चाहता हूं! चाहे जिस उपाय से हो, मैं उसे अपनी बनाना चाहता हूं। तुम मुझसे स्वाभाविक स्नेह रखते हो, इसी स्नेह के नाते मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम मेरी इस इच्छा-पूर्त्ति में सहायता करो। विजयशंकर तुम्हारे मित्र हैं, वे अवश्य तुमसे परामर्श करेंगे। क्यों नन्दलाल ठीक है न?"

नन्दलाल तो धूर्त्ताधिराज था। उड़ती चिड़िया पहचानता था। वह लालाजी को खूब जानता था। उसे मालूम था कि लालाजी को स्वाभाविक स्नेह जितना अधिक मदनमोहन से नहीं उतना चांदी के टुकड़ों से है। लालाजी के स्वर और ढंग से वह पहचान गया कि वे इस समय सिक्के की मंजुल मूर्त्ति के ध्यान में हैं। उसने इशारे ही में मदनमोहन को बता दिया कि रुपया निकालिये और फिर लालाजी के हथकंडे देखिये। प्रगट में बोला,

"परामर्श तो अवश्य ही करेंगे। फिर लालाजी का भी कर्त्तव्य है कि वे उनके मित्र होने के नाते उन्हें उचित परामर्श दें। साथ ही लालाजी आपके भी मित्र हैं, अतः उन्हें चाहिये कि वे आपका भी कार्य कर दें। इस समय वे आपके लिये भले ही ऐसे वैसे गये बीते विशेषणों का प्रयोग करे, कोई परवा नहीं। लेकिन उस समय अगर वे कार्य रूप में उपयुक्त कार्य विशेषणों का प्रयोग करें तो अच्छा है।"

मदनमोहन भी समझ गया। वह लालाजी को एक ओर ले जाकर बोला।

"दादा! चाहे जिस तरह हो, अनुपमा मेरी होनी चाहिये। इसके लिये जितना भी खर्च पड़े, मैं उठाने को तैयार हूं। खर्च के विषय में मैंने तुम से कब मुंह फेरा है? गत बार जब तुम मधुपुर आये थे, और तुमने रात भर मिस हमीदा के यहां टिकने का हठ ठाना था, तब तुम्हारे उस हठ को पूरा करने में मैंने क्या कुछ कम खर्च किया है? इस समय भी लो, ये पचास के नोट तुम्हारी नजर हैं। अगर मेरा कार्य हो गया तो मैं तुम्हें पांच सौ दूंगा।"

पचास के नोट जेब में रखते हुए लालाजी खीसें निपोर कर बोले।

"नहीं, नहीं, मदनमोहन, यह क्या करते हो? मैं क्या कोई पराया हूं? तुम्हारा कार्य सो मेरा कार्य। रुपयों की ऐसी कोई आवश्यकता न थी। पर खैर तुम्हारी मरजी। देखो किसी को पता न लगने पावे। लेकिन ध्यान रखना, यह

नन्दलाल बड़ा धूर्त्त है। कुछ दे ले कर इसे भी ठंडा कर देना नहीं तो अवश्य यह बदमाश बना बनाया काम बिगाड़ देगा।"

मदनमोहन संतुष्ट होकर बोला, "इसके लिये तुम चिन्ता न करो।"

इन दोनों के पीछे आने पर कंचनसिंह पहलवान बोले, "ऐसी क्या गुपचुप बातें हैं भाई हम से भी इतना परहेज!"

मदनमोहन ने उसकी ओर इस तरह देखा मानों आंखों ही आंखों में कह दिया कि क्यों व्यर्थ चिल्लाते हो, पीछे कह देंगे।"

गाने वाले गा रहे थे,

"जान पड़ा जैसे युग युग से हुआ वियोग तुम्हारा।
अब न मिलेगा इन नयनों को वह मुख प्यारा प्यारा॥
प्रियतम का संयोग न होता यौवन बीता जाता।
बिखरे हुये बुदबुदों सा यह पीड़ित जग दुख पाता॥

गाना सुन कर मदनमोहन कुछ अन्यमनस्क हो उठा। हरदयाल फिर सिर धुनने लगे। नन्दलाल इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था कि लालाजी ने कितने रुपयों पर हाथ साफ किया है। कचनसिंह जरदा तैयार कर रहे थे। क्रान्तिचन्द्र सोच रहे थे कि यह अनुपमा और प्रकाशचन्द्र कौन हैं? अगर कहीं वे ही निकले तो क्या उन्हें फिर यहां से भी अपना बोरिया बंधना समेटना पड़ेगा? इस बात का पता लगाना उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

इसके बाद कुछ देर तक और इधर उधर की गप्पें होती रहीं। इसी बीच में मदनमोहन ने लालाजी के कथनानुसार नन्दलाल को पच्चीस रुपये देकर कह दिया कि वह अनुपमा सम्बन्धी कोई जिक्र कहीं न करे और अगर लालाजी को कभी उसकी कुछ आवश्यकता आ पड़े तो हर प्रकार से सहायता दे।

जब लालाजी अपने उसी खच्चर नामधारी टट्टू पर सवार होकर गौरीपुर की ओर रवाना हुये तो नन्दलाल भी पैदल ही साथ हो लिया। मार्ग में मुस्कुरा कर लालाजी ने पूछा,

"क्यों यार कितना।"

'पहले आप बताइये लालाजी, क्योंकि पहले आपने हाथ फेरा था।"

"नहीं, पहले तुम बताओ।"

"नहीं, पहले आप बताइये।"

"पैंतीस।"

"पन्द्रह।"

दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। अंधेरा था, नहीं तो दोनों को साफ मालूम हो जाता कि दोनों की आंखों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास खेल रहा था।

मातृभूमि

[श्री नन्दलाल मारू, इंदौर]

उठकर बैठो ! आँखें खोलो !! देखो !!! भारत-माँ की ओर,
कैसी है वह वस्त्रविहीना, दीना, असहाया, कमजोर ?
हाय ! भूख से हो वह पीड़ित, जो देती थी अन्न रसाल।
तीस कोटि बीरों की जननी होकर हा ! उसका यह हाल ॥

जिस भारत-भू में तीर्थंकर से अनुपम पैदा हुए मुनीश,
भरत सरीखे चक्रवर्ति नृप, देवसेव्य नवनिधि के ईश
बाहु बली से बली हुए थे गौतम के से थे गणदेव।
आनँदजी से दृढ़धर्मी थे श्रावक, श्रेणिक से नरदेव ॥
सीता, द्रुपद-सुता चन्दनबाला इत्यादिक हुई अनेक।
प्रातःस्मरणीया सतियां जिन रक्खी शील धर्म की टेक ॥

'दिवसा गता ते हि नो' अब तो घर घर में फैली है फूट।
स्वप्न समान हुए सब श्री-धी-मान्, चंचला चलदी रूठ ॥
निर्धन सजातीय को धन दे अपने तुल्य बनाते जो।
गये कहां वे दस सहस्र, गायों का गोकुल रखते जो ?
आज न मिला पेट भर खाना कल की चिंता अलग सवार।
अन्न वस्त्र के लाले पड़ते क्या उन्नति का करें विचार ?
खेल कूद के दिन हैं जिनके, फिरें भटकते रोज़ी को।
खिलते ही कुम्हलानेवाली कली भला क्या ताज़ी हो ?
कब तक ऐसी दशा रहेगी इसका भी कुछ है अन्दाज ?
अब तो तारो अटक रहे हैं घट में प्राण गरीबनिवाज ॥

मानस-प्रतिमा

(श्री दुर्गाप्रसाद झुंझुनूंवाला, बी० ए० "व्यथित")

१

"चित्रकार, क्या मेरा भी एक चित्र बना दोगे ?"

चित्रपट से नज़र हटा कर चित्रकार ने देखा कि उसके दरवाजे पर पांच समवयस्का सुन्दरियों से घिरी हुई एक लावण्यमयी ललना खड़ी है। उसके होठों पर हँसी की रेखा थी, आंखों में शर्मभरी मुस्कुराहट। चित्रकार ने बहुतेरे चित्र बनाये थे। प्रकृति की निराली छटा में भोले-भाले सौंदर्य को अपनी तूलिका के प्रवाह में लाना ही उसका नित्य का काम था। किन्तु ऐसा मोहक सौंदर्य उसके कल्पना-जगत में भी आज तक नहीं आया था। चित्रकार की आंखें कुछ देर के लिये जम गईं उसी अनुपम सौंदर्य पर।

एक सखी ने हंस कर पूछा, —"चित्रकार, क्या देख रहे हो ?"

शर्म से उसकी आंख नीची हो गईं। कुछ देर के बाद उसने कहा "मेरे लिये क्या आज्ञा है ?"

उसी सखी ने उत्तर दिया—"राजकुमारी की इच्छा है कि उनका एक चित्र अभी बनाया जाय।"

कुछ सोच कर चित्रकार ने अपनी कलम उठाई।

रंग की तूलिका ग़ज़ब का काम कर रही थी। धीरे-धीरे चित्रपट पर राजकुमारी की तस्वीर स्पष्ट होती जा रही थी। सखियां मुग्ध होकर उसके हाथ की सफाई देख रही थीं। लेकिन राजकुमारी का ध्यान कहीं और था।

चित्र प्रस्तुत हो गया। प्राण नहीं थे और सब कुछ था। सभी ने चित्रकार की निपुणता की प्रशंसा की। अन्त में राजकुमारी ने चित्रकार से पूछा— "अच्छा, जी, तुम्हीं बताओ, चित्र कैसा है ?"

चित्रकार ने एक नज़र चित्र पर डाली। उसने देखा—चित्रित राजकुमारी की आंखों में अभिमान का भाव था। उसका मुख मलिन हो गया। उसने कहा "माफ़ करना, राजकुमारी, मुझे पसन्द नहीं है।"

राजकुमारी की आंखें शर्म और क्रोध से लाल हो गईं। उसने कहा "मेरा इतना अपमान! तुम्हें इसकी सज़ा मिलेगी।"

चित्रकार ने उत्तर दिया "अपमान नहीं राजकुमारी, चित्रकार की आंखें सभी वस्तुओं को कला की दृष्टि से देखती हैं।"

राजकुमारी लज्जित होकर वहां से चली गई। चित्र वहीं पड़ा रह गया।

२

नदी के किनारे अपनी निर्जन कुटिया में चित्रकार बैठा हुआ है। लेकिन आज उसका मन चित्र खींचने

में नहीं उग रहा है। सामने ही राजकुमारी का चित्र है। उसका मन बारबार राजकुमारी की ओर जा रहा है। प्रेम और अभिमान में लड़ाई हो रही है। आज तक उसे ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ा था।

वहां से उठ कर वह नदी के किनारे आया। इठलाती हुई नदी टेढ़ी मेढ़ी चाल से बह रही थी। उसके मन ने प्रश्न किया, "क्या संसार की यही गति है? क्या सभी जगह सौन्दर्य में अभिमान है?" प्रेम ने उत्तर दिया "नहीं। यही नदी जब समुद्र से मिलती है तो इसका सब अभिमान चूर हो जाता है। प्रेम में गर्व को स्थान नहीं है।"

सन्ध्या समय चित्रकार नदी के किनारे बैठा प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा देख रहा था। अस्तोन्मुख सूर्य की रक्त किरणें नदी के लहराते हुए जल को आलिंगन कर रही थीं। हठी पपीहा प्यारे की धुन में "पी कहां" की रट लगा रहा था। मुग्धा सलज्जा सन्ध्या प्रियतम चन्द्रदेव से मिलने की तैयारी कर रही थी। चारों ओर प्रेम का साम्राज्य था। इसी समय उसने एकाकिनी राजकुमारी को अपनी ओर आते देखा।

"चित्रकार, कहो क्या कहते हो?"

"क्षमा करना, राजकुमारी, मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकता।"

"चित्रकार, मेरा सौन्दर्य समूचे देश में विख्यात है। मुझे पाने के लिये बड़े-बड़े राजकुमार व्याकुल हैं। ज़रा सोचो भी, मेरा प्रेम स्वीकार कर लेने से तुम्हारे भाग्य खुल जाते हैं।"

'अभागे का भाग्य ही कितना बड़ा है, राजकुमारी। फिर भी तुम्हारा सौन्दर्य मेरी मानस-प्रतिमा के सौंदर्य की तुलना में कुछ भी नहीं है।"

"ओह, मेरे प्रेम का इतना तिरस्कार! राजकुमारी का इतना अपमान!! चित्रकार, कल तुम्हें इस गुस्ताख़ी की सज़ा मिलेगी।" क्रोधान्ध राजकुमारी तेजी के साथ वहां से चली गई।

\+ + +

उसी दिन रात को चित्रकार अपनी कुटिया में बैठा हुआ था। उसके सामने एक बढ़िया सा चित्रपट था। चित्र खींचने के सभी सामान प्रस्तुत थे। लेकिन वह कल्पना के किसी आनन्दमय संसार में विचरण कर रहा था।

सहसा उसने कलम उठाई। रेखायें खिंचने लगीं। रंग भरे जाने लगे। थोड़ी ही देर में तस्वीर तैयार हो गई। रामकुमारी वही थी लेकिन चेहरे का भाव कुछ और ही था। चित्रकार ने एक लम्बी सांस लेकर कहा —"प्रभो, क्या कभी राजकुमारी का सौन्दर्य इस सौन्दर्य तक भी पहुंच सकेगा? क्या अभागे चित्रकार की यह अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकेगी?" उसने इस चित्र को भी पहले चित्र के पार्श्व में रख कर उस पर एक परदा डाल दिया।

\+ + +

दूसरे दिन प्रातःकाल।

चित्रकार ने एक करुणा भरी दृष्टि अपनी निर्जन कुटिया पर डाली और राजकर्मचारियों के साथ हो लिया। राजाज्ञा से उसे राजकुमारी का अपमान करने के अपराध में कारावास का दण्ड मिला। नदी का सूना तट और भी सूना हो गया। चित्रकार की सूनी कुटिया संसार-चक्र के परिवर्तन का निर्देश कर रही थी।

तिरस्कृत होकर अभिमानी व्यक्ति को अपनी दशा का भान होता है। राजकुमारी ने अभिमान में आकर चित्रकार को दण्ड तो दिला दिया किन्तु प्रेम का बीज

हृदय-क्षेत्र में अंकुरित एवं प्रस्फुटित हो चुका था। उसने सोचा एक मामूली से चित्रकार ने मेरे प्रेम को ठुकरा दिया। क्यों? मुझमें राजकुमारी होने का अभिमान है। मैं नारी सुलभ कोमल और स्निग्ध भावों को भूल गई हूं इसीलिये तो। उसने सच ही तो कहा कि प्रेम में गर्व का स्थान नहीं है। फिर क्या करूँ? हृदय तो पहले ही उसके चरणों में पुष्पाञ्जलि चढ़ा चुका है।"······

राजकुमारी, अब भी समय है। अभागिन, यदि अब भी अपने प्रियतम का प्रेम प्राप्त करना चाहती है तो उसके लिये तपस्या कर। अभिमान को त्याग कर सरलता और करुणा को हृदय में स्थान दे। तभी तू उनके प्रेम पर विजय प्राप्त कर सकेगी।······ वह विजय कितनी पावन, कितनी मादक, कितनी मधुर होगी!

३

जिस राजकुमारी के मुख पर अभिमान और दम्भ की छाया सर्वदा छायी रहती थी, जिस राजकुमारी के शासक हृदय ने अपनी आज्ञा के विरुद्ध 'ना' सुनना जाना ही नहीं था, जिस राजकुमारी के भ्रूभंग से ही राज्य के सभी लोग थर-थर कांपते थे, वही राजकुमारी अब सरलता और स्नेह की मूर्ति हो रही है, उसका शासक हृदय आज स्वयं प्रेम द्वारा शासित हो रहा है, उसके शब्दों से आज लोगों में आतंक के स्थान पर श्रद्धा और स्नेह के भाव उदय होते हैं। प्रेम, तुझे धन्य है! तू नीचे से भी नीचे स्थान से लोगों को किस ऊंचे स्थान तक पहुंचा देता है!

शारदीय पूर्णिमा थी। भगवान चन्द्रदेव अपनी निर्मल ज्योत्स्ना से पृथ्वीतल को आलोकित कर रहे थे। राजकुमारी अपने उद्यान में अकेली बैठी हुई थी। सामने ही कारागार था। वह सोच रही थी— कैसे वह अपने प्रियतम का प्रेम प्राप्त कर सके। बिरह का संताप उसके हृदय को प्रतिक्षण दग्ध कर रहा था।

सहसा कारागार की काली दीवारों को भेदती हुई एक करुण ध्वनि उसके कानों में पड़ी। चित्रकार वीणा के स्वरों में अपने मनोभावों को भरने की चेष्टा कर रहा था। वीणा के रोते हुए तार मानो उसके हृदय की वेदना को प्रकट कर रहे थे। राजकुमारी के हृदय को कड़ी चोट लगी। उसका हृदय भी वीणा के तारों के साथ रो उठा। आंखों से आंसू की धारा बह चली। प्रेम से उसका चित्त चंचल हो उठा। वहां से उठ कर वह कारागार के द्वार पर पहुंची। राजकुमारी के सम्मान में सन्तरी ने दरवाजा खोल दिया। क्षण भर बाद राजकुमारी चित्रकार के सामने थी।

"चित्रकार!"

चौंक कर चित्रकार ने सिर उठाया। सामने स्नेह की मूर्ति वही राजकुमारी खड़ी थी। खिड़की के छिद्रों से छन कर आती हुई चाँदनी उसके अश्रुसिक्त मुख-मण्डल पर पड़ रही थी। चित्रकार का हृदय प्रेम से उन्मत्त हो उठा। उसने कहा 'राजकुमारी, आह! आज तुम कितनी सुन्दर जान पड़ती हो!"

"प्रियतम······"

अवनत राजकुमारी को चित्रकार ने अपने आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लिया।

४

वही नदी का सूना तट है। वही सूनी कुटिया है। किन्तु आज वहां का दृश्य कुछ और ही है। आकाश से भगवान राकापति प्रेम-सुधा की वर्षा कर रहे हैं। वसुधा प्रेम के शुभ्र धवल रंग में रंगी हुई है। नदी के

जल में प्रेम हिलोरें ले रहा है। चित्रकार की सूनी कुटिया आज प्रेम का रंगस्थल बन रही है।

चित्रशाला में टहलते हुए राजकुमारी सहसा एक चित्र के सामने ठहर गई। चित्रकार ने कहा "प्रिये, यही तुम्हारा उस दिन वाला चित्र है।"

"जाने दो, प्रिय! वह राजकुमारी अब इस संसार में नहीं है।...मगर यह दूसरा चित्र कैसा है? इस पर पर्दा क्यों पड़ा हुआ है?"

"प्रिये, यही तो मेरी 'मानस-प्रतिमा' है। आज तक मैं अपने हृदय में इसी प्रतिमा की पूजा करता रहा हूं।"

पर्दा हटा कर राजकुमारी ने चित्र को देखा। यह उसीका चित्र था। किन्तु उसके मुख पर अभिमान तथा दंभ के वे भाव नहीं थे। आंखों में करुणा की रेखा थी; होठों पर प्रेम भरी मधुर मुस्कुराहट!

राजकुमारी ने स्नेहभरी दृष्टि से चित्रकार की ओर देखा और मुस्करा कर उसके हृदय में अपना मुंह छिपा लिया।

एकता

[श्री अरविन्द टी० डोसी]

एकता वह वस्तु है, जिससे बड़े-बड़े साम्राज्य सहज ही स्थापित हो जाते हैं। वहीं एकता है, जहां मनुष्य अपने अन्य भाई से हिल मिल कर रहता है। यह हिल मिल कर रहना बड़ी अच्छी वस्तु है। इसमें सच्चे स्वार्थ रहित प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। इसी मिलन से उत्पन्न प्रेम से हम बड़ी बड़ी रुकावटों का सहज ही सामना कर सकते हैं। इस प्रेममय वातावरण को लेकर एक साथ मिलकर जब हम बड़ी बड़ी बाधाओं का नाश करते हैं, उस समय हमारे 'सङ्घ' का कितना जबर्दस्त प्रभाव होता है? जो राज्य, जो मनुष्य और जो धनी अथवा निर्धन उस 'सङ्घ' का अपमान करता है, वह अन्त में पछताता है। इतिहास पृथ्वीराज और जयचन्द्र का उदाहरण लेकर हमें इस बात का ज्वलन्त दृष्टान्त देता है। प्राचीन काल में, जब सत्य का बोलबाला था, इस 'सङ्घ' का जो प्रभाव था, वह इतिहास जाननेवालों से छिपा नहीं है।

किन्तु इस समय वह 'सङ्घ' टूट गया है। कई फिरके पैदा हो गये हैं। सम्पूर्ण हिन्दू समाज केवल 'बड़प्पन' के लिये परस्पर लड़ रहा है। यही कारण है कि वह दुनियां में आज नगण्य है, उपेक्षणीय है।

इसीसे मेरा कहना है कि आओ, हम सब हिल-मिल कर फिर उसी 'सङ्घ' की स्थापना करें। एकता की जबर्दस्त शक्ति संसार को दिखादें। एकता के जोर से ये दासता की बेड़ियां तोड़ कर हमारे खोये हुए गौरव और स्वत्वों को फिर से प्राप्त करें।
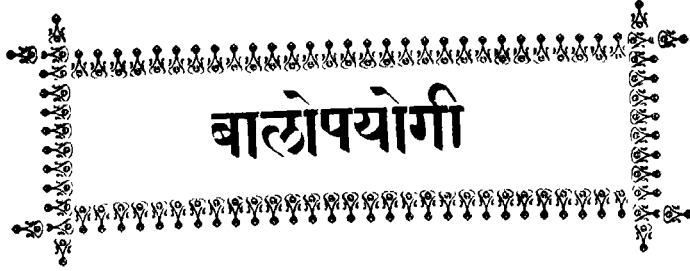
महापुरुष और मज़ाक

[श्री पन्नालाल भनसाली]

महापुरुषों के प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य रहती है और इसी विशेषता के कारण वे अन्य मनुष्यों की दृष्टि में ऊँचे और आदरणीय माने जाते हैं। उनके काम करने का ढंग, बातचीत करने का तरीका, परस्पर मिलने-जुलने का सलीका कुछ निराला ही होता है। इन सबमें एक अपूर्व आनन्ददायक ऐसा रहस्य छिपा रहता है, जो सर्वसाधारण में नहीं पाया जाता। उनकी मति प्रत्युत्पन्न एवं बुद्धि बड़ी विलक्षण होती है। किसी प्रश्न का उत्तर इतना शीघ्र और दुरुस्त देते हैं कि सुन कर विस्मय होता है। उनका प्रत्येक कार्य आकर्षक एवं शिक्षाप्रद होता है। उनका एक भी शब्द असभ्य एवं निरर्थक नहीं होता। उनकी बोली बड़ी मीठी और व्यवहार इतना सरल होता है कि उनके पास जाने पर दुर्जन मनुष्य भी सज्जन हो जाते हैं। वे किसी की बात का उत्तर देने में पत्थर-सा नहीं पटकते। वे बात-बात में मज़ाक नहीं करते मगर मौका आने पर चूकते भी नहीं। वे इसको अच्छी तरह जानते हैं कि 'नीकी पै फीकी लगै बिन अवसर की बात'। उनसे बात करनेवाले का जी चाहता है कि ये एक दफ और बोलें तो अच्छा हो। अपनी बात वापिस नहीं लेनी पड़े इसका विचार वे पहिले ही कर लेते हैं। वे सच्ची बात पर अड़ना भी खूब जानते हैं। जिद्द करना तो जैसे जानते ही नहीं। यदि भूल से कोई बात अनुचित निकल जाती है तो अपने शब्द वापिस लेने में भी सकोच नहीं करते। भूल सुधारने में तनिक भी अपमान नहीं मानते। किसी की चापलूसी नहीं करते, किसीको रिझाने के लिये मीठी-मीठी बातें नहीं करते। उसी तरह सिर्फ अपना रौब गांठने के लिये कड़ापन भी नहीं दिखाते। उनके शब्द आडम्बर शून्य एवं भाषा सुधरी हुई होती है। वे अपनी विद्वत्ता जताने के लिये कठिन शब्द वा विदेशी भाषा के शब्द प्रयोग में नहीं लाते। उनका पेट बहुत बड़ा होता है, एककी बात दूसरे को कभी नहीं कहते। कटु वाक्यों को हजम करने की शक्ति रखते हैं। किसीका मर्म रहस्य जानते हुए भी प्रकट नहीं करते। किसी मनुष्य को व्यंग्य वचन वा अप्रिय सत्य भी नहीं कहते। सारांश यह कि जिस समय जिस मनुष्य के साथ जिस ढंग से बात करनी उचित होगी उसी तरह

करेंगे, अन्यथा मौन रहेंगे। वे हमेशा प्रसन्न चित्त तथा हंसमुख रहते हैं। उनमें एक ऐसा स्वाभाविक गुण रहता है कि उनका प्रत्येक शब्द आदर्श एवं अमूल्य होता है। वे शब्दों को तौल-तौल कर बाहर निकालते हैं। कम बोलते और अधिक सोचते हैं। इन्हीं महान गुणों के धारण करने से उनको महापुरुष माना जाता है। महापुरुषों द्वारा की गई मज़ाक चुभती हुई होती है। जिन्हें सुन कर लोग कट जाते हैं, लेकिन उसमें भद्दापन या बेहूदापन की झलक नहीं पाई जाती। वे जो कुछ कहेंगे ऐसे ढंग से कहेंगे कि सुन कर चकित हो जाना पड़े। आज मैं आप लोगों को कुछ महापुरुषों की ऐसी ही मज़ाकों का मज़ा चखाऊंगा।

एक बार स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू किसी अदालत में वकालत करने गये। वहां के जज को यह आदत पड़ गई थी कि वह सबको 'बेवकूफ' कह दिया करते थे। 'बेवकूफ' कहना उनका तकिया-कलाम हो गया था। बात ही बात में उन्होंने पण्डितजी को भी 'बेवकूफ़' कह दिया। भला पण्डितजी जैसे मजेदार सज्जन कब यह सुन कर चुप रह सकते थे? वे झट बोल उठे - बेवकूफ! (एक क्षण पश्चात्) क्या यही शब्द हुजूर ने मेरे लिये भी कहा है? बेचारे जज साहब झेंप गये।

एक बार श्री विवेकानन्द अमेरिका में देशी जूता गेरुआ अंगरखा, और साफा पहने सड़क पर जा रहे थे। एक सज्जन ने पीछे छड़ी से उनका साफा दूर उछाल दिया। उन्होंने तुरन्त पूछा "आप जैसे सभ्य पुरुष ने यह कष्ट क्यों उठाया?" उसने कहा "भला आपने यह विचित्र भेष क्यों धारण किया है?" विवेकानन्दजी ने उत्तर दिया 'मैं बहुत दिनों से इस देश की सभ्यता की प्रशंसा सुनता था, इसीसे देखने की इच्छा से आया था। आज यहां सभ्यता का पहला पाठ आप ही ने मुझे पढ़ाया है।' वह बेचारा सिर नीचा किये आगे बढ़ गया।

उर्दू के शायर ग़ालिब साहब बड़े पुर-मज़ाक शख्स थे। एक बार उनका एक शागिर्द उनके दरवाजे से गुज़रा लेकिन उनसे सलाम करने के लिये नहीं गया। जब ग़ालिब साहब को मालूम हुआ तो आपने उसे लिखा "वाक़ई मुझसे बड़ी बे अदबी हुई। हुजूर दरवाजे से गुज़र गये मगर बन्दा कदम-बोसी के लिये हाजिर न हुआ। मुआफ कीजियेगा।" बेचारा शागिर्द कट गया।

एक बार ग़ालिब साहब बीमार पड़े। उनके पैर फटने लगे। उनके एक शागिर्द ने पैर दबाये और जब उन्हें कुछ आराम मिला तो उसने कहा—"उस्ताद, लाइये, अब मेरा मेहनताना दीजिये।" ग़ालिब साहब बोले— अजी कैसा मेहनताना? तुमने मेरे पैर दबाये, मैंने तुम्हारे पैसे दबा लिये। लेन-देन बराबर हो गया।"

एक बार एक सन्यासी ऋषि दयानन्द सरस्वती को चिढ़ाने के लिये आया। उसने दयानन्दजी से कहा —"महाराज! आप अपने को सन्यासी कह कर लोगों को ठगते और धोखा देते हैं। भला सन्यासी को धातु छूना कहां लिखा है, जो आप अपने पास पैसा रखते और थाली में भोजन करते हैं। दयानन्दजी बोले—"ठीक फरमाते हैं। आप तो सच्चे सन्यासी हैं न? आप तो धातु का स्पर्श भी न करते होंगे? मगर यह तो बताइये कि आपने अपनी हजामत किस चीज से बनवायी है? यह तो निश्चय है कि उस्तरे से तो न बनवायी होगी, क्योंकि वह तो धातु है।" बेचारा सन्यासी चुप हो गया।

एक बार स्वामी भिखनजी को किसी ने कहा— "आपका मुंह देखनेवाला नरक में जाता है।" स्वामीजी

ने पूछा "और आपका मुंह देखनेवाला कहां जाता है ?" उसने उत्तर दिया——"मेरा मुंह देखनेवाला तो सीधा स्वर्ग में जाता है।" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"मेरी तो यह मान्यता नहीं है कि किसी का मुंह देखने मात्र से ही स्वर्ग नरक की प्राप्ति होती हो, लेकिन आपके कथनानुसार अगर यह सही है तो आपने तो मेरा मुख देखा है और मैंने आपका; अब आप ही विचार कर लीजिये कि मैं कहां जाऊंगा और आप कहां ?" उत्तर सुन बेचारा बहुत लज्जित हुआ।

मज़ाक वही है, जिसकी भाषा संयत, जिसका अर्थ गहरा और जिसकी चोट कड़ी हो। इसके विपरीत जो मज़ाक होती है, वह मज़ाक की अपेक्षा गाली अधिक होती है।

प्यारी मां

[इस कविता के रचयिता की पत्नी का स्वर्गवास हो गया और वह अपने पीछे छोटी छोटी दो पुत्रियां छोड़ गई। यद्यपि पिता ने पुत्रियों का अपने हृदय में माता का सा स्नेह भर कर बड़े यत्न से लालन पालन करना शुरू किया, किन्तु माता के स्थान की पूर्ति वे किसी तरह भी न कर सके। अपनी उन्हीं पुत्रियों के नन्हे से हृदय को लेकर कवि ने इस कविता में जिस भाव को व्यक्त किया है, वह बड़ा करुणापूर्ण है। संपादक]

मां, मां प्यारी कहां गई तुम, भूल गई क्यों तुम हमको ?
मां तो कभी न ऐसा करती, फिर यह क्या सूझी तुमको ?

माता होकर पिता दुलारी, लड़ती रहतीं हम तुमसे,
अरु पाती शीघ्र पिता से हम वह, जो तुम देती नहीं झट से।

देख पिता का प्यार हमारे, ऊपर थी तुम बहु चिढ़ती,
जिसे देख कर सहसा हम भी, थी डरतीं तुम से रहती।

ऐसी बच्चों की बातों से, रंज हुई देखी न ममा,
फिर तुम हमसे रूस गई क्यों, और गई क्यों छोड़ ममा ?

गया न ऐसा त्यौहार कोई, कपड़े नये न पहने हों,
कहो ममा वे कैसे आये, और बनाये किसने क्यों ?

यदि हमारा प्रेम न होता, तुम ऐसा करती कैसे ?
प्रेम नहीं, कर्तव्य वह था, यह भी हम माने कैसे ?

दिन भर व्यस्त सदा ही रहती, थी यदपि तुम बीमार ।
सीना पिरोना करती रहती, कभी न करती चैन बिचार ॥

यदपि हम लोगों की पेटी, भरी हुई थी ड्रेसों से,
फिर भी 'बेटी मेरी नंगी' कह कर लड़ती थी उनसे ।

'बच्चे मेरे रहें अकेले, नहीं चलेंगे ये भी साथ,
कह कर सदा यही तुम लेती, जहां जाती वहां हमको साथ ।

पर आज हमें क्यों छोड़ यहां तुम, इक दम भूली प्यारी माँ,
विलख बिलख कर हम हैं रोती, तो भी दया न आती माँ ।

पिता हमारे लाड लड़ाते, रखते हमें सदा ही पास,
चाहे हमारी कभी न टलती, मुख से निकल गई जो बात ।

पाकर ऐसा स्नेह पिता का, फिर भी झर झर रोती है ।
याद तुम्हारी कर कर माता, दिन अपने हम खोती हैं ॥

क्या हमने था किया बिगाड़ा, कर न सकी तुम हमको माफ ?
छोड़ भरोसे किसके माता, कहां सिधारी कहो न साफ ?

यदि छुपी हो, हार गई हम, लो न हमारा तुम अब अन्त ।
होकर प्रकट, बताओ माता, भूल हमारी हमें तुरन्त ॥

आओ, देखो, खाली हो गई, भरी ट्रङ्क जो ड्रेसों से ।
नई ड्रेस की कौन कहे, हम, फटी पुरानी भीतर से ॥

नहीं है दोष पिताजी का, लड़ कर उन्हें सतावें क्यों ?
कोरे कपड़े भरी पेटियां, बिना तुम्हारे सिले वे क्यों ?

पिता यदपि है पालनकर्ता, रक्षा तो माता करती,
विपद समय में इससे दुनिया, माता नाम रटा करती ।

माँ को खो कर अब हम समझीं, माता कैसी प्यारी है ?
माँ बिन बच्चों की यह दुनिया, शोक भरी पिटारी है ।

यदि जगत का हो कोई स्वामी, जिसे सदा जन भजते हैं ।
बच्चों की माता मत छीनो, यही आरजू करते हैं ॥

— भुक्तभोगी

जैन समाजनी चालु स्थिति

[श्री टीकम भाई जे० डोसी]

जैन समाजनी चालु स्थिति उपर मारा विचारो लखी जणाववानी मने वारंवार प्रेरणा थती हती परन्तु ते प्रेरणा समाजमां जाहेर लखाण रूपे मुकवानो समय मने आजे भाई नेमीचंदजी आंचलियानी ओसवाल नवयुवक नी पत्रीकामां आप कंई लखी आपो ए जात नी मांगणी ने अंगे आ-प्रसंग प्राप्त थयो छे।

आजे जैन समाज क्लेश झगड़ा वितण्डा-वाद अने खोटी मोटा-इओ ने अंगे बीजा समाज करतां विशेस अने विशेस टुंका टुंका समाजमां वेंचाई जवा पाम्यो छे। जेने लीधी आजे जैन समाज पाछल अने पाछल जोवामां आपे छ। मुख्यत्वे कराने मोटाइ नी लालसामांज बनवा पाम्युं छे। तेवी मारी मान्यता छे। आजे ज्यां जुओ त्या टुंका टुंका समुदायनी मोटाइलइने व्यक्तिओ पोतानी मोटाई सांचवी रह्या छे पछी तेमां महावीर प्रभुना शासन नी उन्नति छे के नहीं ते पण तेओए पोताना माटाई खोवाई जवाना भयमां लवलेश पण दरकार करा नथी! बीजुं कारण तो ए छे के आजे जैन समाजमां जे भीन्न-भीन्न मतो देखाय छे तेने मतो पोताना वस्तु स्थिति खरी छे तेम समजाववां जतां-

> इस लेख के लेखक गुजराती जैन-समाज के एक प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति हैं। आपके विचार उन्नत और मनोवृत्ति उदार है। आपका चित्र और परिचय इसी अंक में अन्यत्र छपे हैं। हमारे अन्य गुजराती भाई भी अगर अपने-अपने विचार हमें लिख भेजेंगे तो हम अवश्य उनके सुयोग्य लेखों को हिन्दी-भाषान्तर करके सहर्ष प्रकाशित करेंगे। —सम्पादक

प्रभु महावीर खरा धर्म ने भूली जईने पोतानी दृष्टिए भीन्न रूपमां देखाडे छे। अने ते वस्तु साची छे के खोटी ते समाजाववानी खामीने अंगे झगडा अने वितंडावादना रूपमां देखावदेय छे। आथी करीने खरा वस्तु स्थिति शुं छे ते समजवानी इच्छा राखनारने ते प्रत्ये अभाव थाय छे। आ वस्तु स्थितिमां फेरफार थवानी खास जरूर छे अनेने युवक बंधुओज करी शकशे कारण के युवकोमां आजे पाते क्यां उभाछे ते जोवानी इच्छा सारा प्रमाणमां जोवामां आवे छे अने तेज इच्छा-ओथी आजे युवको प्रभु महावीरना शासननी उन्नती करवाना प्रयत्नो करी रह्या छे। अने तेज बन्धुओ प्रभु महावीरना धर्म ने बरोबर समजवामां उद्यम करेतो जैन समाजनी उन्नती जरूर थवानो संभव छे आथी मारा युवक बन्धुओ प्रत्ये मारी विनंति छे के दरेक समाजु युवके पोतानी स्वइच्छा थी प्रभु महावीरना खरा धर्म ने समजवानी प्रयास जरूर करवो जाइये।

अस्तुः

हिन्दी भाषान्तर

जैन समाज की वर्त्तमान स्थिति

[श्री टीकम भाई जे० डोसी]

जैन समाज की वर्त्तमान स्थिति पर मेरे विचार लिख कर प्रकाशित करने की मुझे बारम्बार प्रेरणा होती थी परन्तु उस प्रेरणा को लिखित रूप से समाज के सामने रखने का अवसर मुझे आज भाई नेमचन्दजी आंचलिया की 'ओसवाल-नवयुवक नामक मासिक में आप कुछ लिख भेजिये' इस प्रकार की मांग से प्राप्त हुआ है।

आज जैन समाज क्लेश, झगड़ा वितंडावाद और अन्य कई बुराइयों को लेकर अन्य समाजों की अपेक्षा बहुत अधिक छोटे-छोटे फिरकों में विभाजित हो गया है। इसी कारण आज जैन समाज लगातार पिछड़ता जा रहा है। खास कर 'मोटाई' की लालसा में ही वह फंसा हुआ है ऐसी मेरी मान्यता है। आज जहां देखो वहां छोटे-छोटे फिरकों के अग्रणी 'मोटाई' की लालसा लेकर ही अपनी 'मोटाई' का सिंचन कर रहे हैं। फिर इस लालसा के प्रतिपालन में महावीर प्रभु के शासन की उन्नति है या नहीं, इस बात को विचारने की वे अपनी 'मोटाई' खो जाने के भय से लव-लेश भी आवश्यकता नहीं समझते। दूसरा कारण यह है कि आज जैन-समाज में जो भिन्न-भिन्न मत दिखाई देते हैं, वे सभी मत 'अपनी वस्तु स्थिति अच्छी है' ऐसा समझाने जाकर महावीर प्रभु के सच्चे धर्म को भूल जाकर अपनी दृष्टि में ही भिन्न रूप में नजर आते हैं। और वह वस्तु सत्य है अथवा मिथ्या, यह समझाने की त्रुटि को लेकर ही झगड़े और वितंडावाद पैदा होते हैं। इसी कारण 'सत्य वस्तु स्थिति क्या है ?' यह समझने की इच्छा रखनेवालों को इसको समझने का आभाव है।

इस वस्तुस्थिति में रद्दोबदल होने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह रद्दोबदल युवकगण ही कर सकेंगे, क्योंकि युवकों में "आज वे कहां खड़े हैं ?' यह जानने की इच्छा प्रबल प्रतीत होती है और इसी इच्छा से प्रेरित होकर आज हमारे नवयुवक प्रभु महा-बीर के शासन की उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अगर ये ही नवयुवकभाई प्रभु महावीर के धर्म को ठीक तौर से समझने का प्रयत्न करे तो जैन समाज की उन्नति होना अवश्य सम्भव है। इसलिये मेरे युवक भाइयों से मेरी प्रार्थना है कि प्रत्येक समाज के युवक को अपनी सहज इच्छा से प्रभु महावीर के सत्यधर्म को समझने का अवश्य प्रयास करना चाहिये। अस्तु।

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण।

दैवी पूजा में से मनुष्य पूजा का क्रमिक विकास।

(ले०—पं० श्री सुखलालजी) (अनु०—पं० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल)

> यह लेख बम्बई की पर्युषण पर्व व्याख्यान माला में सन् १९३४ में पढ़ा गया था। मूल लेख गुजराती में था और उसका हिन्दी अनुवाद जैन जगत् के वर्ष ९ के अङ्क १४ में तथा उसके बाद के अङ्कों में क्रमशः प्रकाशित हुआ था। श्रद्धेय पण्डितजी ने इस लेख को कितनी विद्वता और परिश्रमपूर्ण खोज के साथ लिखा है, वह पाठक पढ़ कर स्वयं समझ सकेंगे। इस लेख से भगवान महावीर की जीवनी पर अपूर्व प्रकाश पड़ता है और भगवान महावीर का जीवन एक मनुष्य का सा ही सादा जीवन था—उसमें भूत प्रेत और देवी-देवताओं के उपसर्ग और चमत्कार की अलौकिक घटनाएं न थी,—यह स्पष्ट हो जाता है। इस लेख की अत्यन्त उपयोगिता को समझ कर हम सूमचा लेख इन अङ्कों में क्रमशः प्रकाशित करेंगे। पाठक इस लेख को बहुत ही मनोयोगपूर्वक पढ़ें, यह निवेदन है।

अन्य देशों और अन्य प्रजा की भांति इस देश में और आर्य प्रजा में भी प्राचीन काल से क्रियाकाण्ड और वहमों के राज्य के साथ ही साथ थोड़ा बहुत आध्यात्मिक भाव मौजूद था। वैदिक मंत्र-युग और ब्राह्मणयुग के विस्तृत और जटिल क्रियाकाण्ड जब यहाँ होते थे तब भी आध्यात्मिक चिन्तन, तप का अनुष्ठान और 'भूत दया की भावना, ये तत्व मौजूद थे यद्यपि थे वे अल्पमात्रा में। धीरे-धीरे सद्गुणों का महत्व बढ़ता गया और क्रियाकाण्ड तथा वहमों का राज्य घटता गया। प्रजा के मानस में ज्यों-ज्यों सद्गुणों की प्रतिष्ठा स्थान प्राप्त करती गई, त्यों-त्यों उसके मानस से क्रियाकाण्ड और वहम हटते गये। क्रियाकाण्ड और वहमों की प्रतिष्ठा के साथ, हमेशा अदृश्य शक्ति का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। जब तक कोई अदृश्य शक्ति मानी या मनाई न जावे (फिर भले ही वह देव दानव, दैत्य, भूत, पिशाच या किसी भी नाम से कही जाय) तब तक क्रियाकाण्ड और वहम न चल सकते हैं और न जीवित ही रह सकते हैं। अतएव क्रियाकाण्ड और वहमों के साम्राज्य के समय उनके साथ देव पूजा अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई हो, यह स्वाभाविक है। इसके विपरीत सद्गुणों की उपासना और

प्रतिष्ठा के साथ किसी अदृश्य शक्ति का नहीं वरन् प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली मनुष्य व्यक्ति का सम्बन्ध होता है। सद्गुणों की उपासना करनेवाला या दूसरों के समक्ष उस आदर्श को उपस्थित करनेवाला व्यक्ति किसी विशिष्ट मनुष्य को ही अपना आदर्श मान कर उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सद्गुणों की प्रतिष्ठा की वृद्धि के साथ ही साथ अदृश्य देव पूजा का स्थान दृश्य मनुष्य पूजा को प्राप्त होता है।

मनुष्य पूजा की प्रतिष्ठा।

यद्यपि सद्गुणों की उपासना और मनुष्य पूजा का पहले से ही विकास होता जा रहा था, तथापि भगवान महावीर और बुद्ध इन दोनों के समय में इस विकास को असाधारण विशेषता प्राप्त हुई जिसके कारण क्रियाकाण्ड और वहमोंके क़िलों के साथ साथ उसके अधिष्ठायक अदृश्य देवों की पूजाको भी तीव्र आघात पहुंचा। भगवान् महावीर और बुद्ध का युग अर्थात् सचमुच मनुष्य पूजाका युग। इस युगमें सैकड़ों हज़ारों स्त्री-पुरुष क्षमा, सन्तोष, तप, ध्यान आदि सद्गुणोंके संस्कार प्राप्त करने के लिये अपने जीवन को अर्पण करते हैं और इन गुणों की पराकाष्ठा को पहुंचे हुए अपने श्रद्धास्पद महावीर और बुद्ध जैसे मनुष्य-व्यक्तियों की ध्यान या मूर्ति द्वारा पूजा करते हैं। इस प्रकार मानव पूजा के भाव की बढ़ती के साथ ही देव मूर्ति का स्थान विशेषतः मनुष्य मूर्ति को प्राप्त होता है।

महावीर और बुद्ध जैसे तपस्वी, त्यागी और ज्ञानी पुरुषों द्वारा सद्गुणों की उपासना को वेग मिला और उसका स्पष्ट प्रभाव क्रियाकाण्ड प्रधान ब्राह्मण संस्कृति पर पड़ा। वह यह कि जो ब्राह्मण संस्कृति एक बार देवदानव और दैत्यों की भावना एवं उपासना में मुख्य रूप से मशग़ूल थी, उसने भी मनुष्य पूजा को स्थान दे दिया। अब जनता अदृश्य देव के बदले किसी महान विभूती रूप मनुष्य को पूजने, मानने और उसका आदर्श अपने जीवन में उतारने के लिये तत्पर हुई। इस तत्परता का उपशमन करने के लिये ब्राह्मण संस्कृति ने भी राम और कृष्ण के मानवीय आदर्श की कल्पना की और एक मनुष्य के रूप में उनकी पूजा प्रचलित हो गई। महावीर-बुद्ध युग से पहले राम और कृष्ण की, आदर्श मनुष्य के रूप में पूजा होने का कोई भी चिह्न शास्त्रों में नहीं दिखाई देता। इसके विपरीत महावीर-बुद्ध युग के पश्चात् या उस युग के साथ ही साथ राम और कृष्ण की मनुष्य के रूप में पूजा होने के हमें स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। इससे तथा अन्य साधनों से यह मानने के लिये पर्याप्त कारण है कि मानवीय पूजा की मज़बूत नींव महावीर-बुद्ध युग में डाली गई और देव पूजक वर्ग में भी मनुष्य पूजा के विविध प्रकार और सम्प्रदाय इसी युग में प्रारम्भ हुए हैं।

मनुष्य पूजा में दैवी भाव का मिश्रण

लाखों करोड़ों मनुष्योंके मन में सैकड़ों और हज़ारों वर्षों से जो संस्कार रूढ़ हो चुके हों, उन्हें एकाध प्रयत्न से, थोड़े से समय में बदल देना संभव नहीं। इस प्रकार अलौकिक देव महिमा, दैवी चमत्कार और देव पूजा की भावना के संस्कार प्रजा के मानसमें से एक दम न निकल सके थे। इसी संस्कार के कारण ब्राह्मण संस्कृति ने यद्यपि राम और कृष्ण जैसे मनुष्यों को आदर्श के रूप में उपस्थित करके उनकी पूजा प्रतिष्ठा शुरू की, तथापि प्रजा की मनोवृत्ति ऐसी न बन सकी थी कि वह दैवी भाव के सिवाय और कहीं सन्तुष्ट हो सके। इस कारण ब्राह्मण संस्कृति के तत्कालीन अगुआ विद्वानों ने, यद्यपि राम और कृष्ण

को एक मनुष्य के रूप में चित्रित किया, वर्णित किया, तो भी उनके आन्तरिक और वाह्य जीवन के साथ अदृश्य दैवी अंश और अदृश्य दैवी कार्य का सम्बन्ध भी जोड़ दिया। इसी प्रकार महावीर और बुद्ध आदि के उपासकों ने उन्हें शुद्ध मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया, फिर भी उनके जीवन के किसी न किसी भाग के साथ अलौकिक दैवी सम्बन्ध भी जोड़ दिया। ब्राह्मण-संस्कृति आत्मतत्त्व को एक और अखण्ड मानती है अतः उसने राम और कृष्ण के जीवन का ऐसा चित्रण किया जो अपने मंतव्य से मेल रखनेवाला और साथ ही स्थूल लोगों की दैवी पूजा की भावना को भी संतुष्ट करनेवाला हो। उसने परमात्मा विष्णु के ही राम और कृष्ण के रूप में अवतार लेने का वर्णन किया। परन्तु श्रमण संस्कृति आत्मभेद को स्वीकार करती है और कर्मवादी है, अतः उसने अपने तत्वज्ञान के अनुरूप ही अपने उपास्य देवों का वर्णन किया और जनता की दैवी पूजा की हविस मिटाने के लिये अनुचर और भक्तों के रूप में देवों का सम्बन्ध महावीर और बुद्ध आदि के साथ जोड़ दिया। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों का अन्तर स्पष्ट है। एक में मनुष्य पूजा का प्रवेश हो जाने पर भी उसके अनुसार दिव्य अंश ही मनुष्य के रूप में अवतरित होता है अर्थात् आदर्श मनुष्य अलौकिक दिव्यशक्ति का प्रतिनिधि बनता है और दूसरी संस्कृति में मनुष्य अपने सद्‌गुण प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न से स्वयमेव देव बनता है और जनता में माने जाने वाले देव उस आदर्श मनुष्य के सेवक मात्र हैं, और उसके भक्त या अनुचर बन कर उसके पीछे पीछे फिरते हैं।

चार महान् आर्य-पुरुष

महावीर और बुद्ध की ऐतिहासिकता निर्विवाद है—उसमें सन्देह को ज़रा भी अवकाश नहीं है, जब कि राम और कृष्ण के विषय में इससे उलटी ही बात है। इनकी ऐतिहासिकता के विषय में जैसे प्रमाणों की आवश्यकता है वैसे प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। अतः इनके सम्बन्ध में परस्पर विरोधी अनेक कल्पनाएँ फैल रही हैं। इतना होने पर भी प्रजा के मानस में राम और कृष्ण का व्यक्तित्व इतना अधिक व्यापक और गहरा अंकित है कि प्रजा के विचार से तो ये दोनों महान् पुरुष सच्चे ऐतिहासिक ही हैं। विद्वान् और संशोधक लोग उनकी ऐतिहासिकता के विषय में भले ही वाद-विवाद और ऊहापोह किया करें, उसका परिणाम भले ही कुछ भी हो, फिर भी जनता के हृदय पर इनके व्यक्तित्व की जो छाप बैठी हुई है, उसे देखते हुये तो यह कहना ही पड़ता है कि ये दोनों महापुरुष जनता के हृदय के हार हैं। इस प्रकार विचार करने से प्रतीत होता है कि आर्य प्रजा में मनुष्य के रूप में पुजनेवाले चार ही पुरुष हमारे सामने उपस्थित होते हैं और आर्यधर्म की वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों शाखाओं के पूज्य पुरुष उक्त चार ही हैं। येही चारों पुरुष भिन्न भिन्न प्रान्तों में, भिन्न भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न रूप से पूजे जाते हैं।

चारों की संक्षिप्त तुलना।

राम और कृष्ण एवं महावीर और बुद्ध ये दोनों युगल कहिये या चारों महान पुरुष कहिये, क्षत्रिय जातीय हैं। चारों के जन्म स्थान उत्तर भारत में है और सिवाय रामचन्द्रजी के, किसी का भी प्रवृत्तिक्षेत्र दक्षिण भारत नहीं बना।

राम और कृष्ण का आदर्श एक प्रकार का है, और महावीर तथा बुद्ध का दूसरे प्रकार का। वैदिक सूत्र और स्मृतियों में वर्णित वर्णाश्रम धर्म के अनुसार

राज्य शासन करना, गो ब्राह्मण का प्रतिपालन करना, उसीके अनुसार न्याय-अन्याय का निर्णय करना और इसी प्रकार न्याय का राज्य स्थापित करना, यह राम और कृष्ण के उपलब्ध जीवन-वृतान्तों का आदर्श है। इसमें भोग है, युद्ध है और तमाम दुनियावी प्रवृत्तियां हैं। परन्तु यह प्रवृति-चक्र जन साधारण को नित्य के जीवन क्रम में पदार्थ पाठ देने के लिये है। महावीर और बुद्ध के जीवन-वृतान्त इससे बिल्कुल भिन्न प्रकार के हैं। इनमें न भोग की धमाचौकड़ी है और न युद्ध की तैयारी ही। इनमें तो सबसे पहले अपने जीवन के शोधन का ही प्रश्न उपस्थित होता है और उनके अपने जीवन की शुद्धि होने के पश्चात् ही, उसके फलस्वरूप प्रजा की उपयोगी होने की बात है। राम और कृष्ण के जीवन में सत्व-संशुद्धि होने पर भी रजोगुण मुख्य रूप से काम करता है और महावीर तथा बुद्ध के जीवन में राजस-अंश होने पर भी मुख्य रूप से सत्व-संशुद्धि काम करती है। अतएव पहले आदर्श में अन्तर्मुखता होने पर भी मुख्य रूप से वहिर्मुखता प्रतीत होती है और दूसरे में वहिर्मुखता होने पर भी मुख्य रूप से अन्तर्मुखता का प्रतिभास होता है। इसी बात को यदि दूसरे शब्दों में कहें तो यह कह सकते हैं कि एक आदर्श कर्मचक्र का है और दूसरा धर्मचक्र का है। इन दोनों विभिन्न आदर्शों के अनुसार ही इन महापुरुषों के सम्प्रदाय स्थापित हुये हैं। उनका साहित्य भी उसी प्रकार निर्मित हुआ है, पुष्ट हुआ है और प्रचार में आया है। उनके अनुयायी वर्ग की भावनाएं भी इस आदर्श के अनुसार गढ़ी गई हैं और उनके अपने तत्वज्ञान में तथा उनके मत्थे मढ़े हुए तत्वज्ञान में इसी प्रवृत्ति-निवृत्ति के चक्र को लक्ष्य करके सारा तंत्र संगठित किया गया है। उक्त चारों ही महान पुरुषों की मूर्तियां देखिये, उनकी पूजा के प्रकारों पर नज़र डालिये या उनके मन्दिरों की रचना तथा स्थापत्य का विचार कीजिये, तो भी उन में इस प्रवृत्ति चक्र और निवृत्ति चक्र की भिन्नता साफ़ दिखाई देगी। उक्त चार महान् पुरुषों में से यदि बुद्ध को अलग कर दें तो सामान्यतया यह कह सकते हैं कि बाकी के तीनों पुरुषों की पूजा, उनके संम्प्रदाय तथा उनका अनुयायी-वर्ग भारत वर्ष में ही विद्यमान है; जब कि बुद्ध की पूजा, संप्रदाय और उनका अनुयायी-वर्ग एशिया—व्यापी बना है। राम और कृष्ण के आदर्शों का प्रचारक-वर्ग पुरोहित होने के कारण गृहस्थ है जब कि महावीर और बुद्ध के आदर्शों का प्रचारक-वर्ग गृहस्थ नहीं, त्यागी है। राम और कृष्ण के उपासकों में हज़ारों सन्यासी हैं, फिर भी वह संस्था महावीर एवं बुद्ध के भिक्षु-संघ की भांति तन्त्रबद्ध या व्यवस्थित नहीं है। गुरु पदवी को धारण करने वाली हज़ारों स्त्रियां आज भी महावीर और बुद्ध के भिक्षु संघ में मौजूद हैं जबकि राम और कृष्ण के उपासक सन्यासी-वर्ग में वह वस्तु नहीं है। राम और कृष्ण के मुख से साक्षात उपदेश किये हुए किसी शास्त्र के होने के प्रमाण नहीं हैं जबकि महावीर और बुद्ध के मुख से साक्षात् उपदिष्ट थोड़े बहुत अंश अब भी निर्विवाद रूप से मौजूद हैं। राम और कृष्ण के मत्थे मढ़े हुए शास्त्र संस्कृत भाषा में हैं, जब कि महावीर और बुद्ध के उपदेश तत्कालीन प्रचलित लोकभाषा में हैं।

तुलना की मर्यादा और उसके दृष्टि बिन्दु।

हिन्दुस्थान में सार्वजनिक पूजा पाये हुए ऊपर के चार महापुरुषों में से किसी भी एक के जीवन के विषय में विचार करना हो या उनके सम्प्रदाय, तत्त्वज्ञान अथवा कार्यक्षेत्र का विचार करना हो तो अवशेष तीनों के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उस उस वस्तु का विचार भी साथ ही करना चाहिये। *क्योंकि इस समग्र भारत*

में एक ही जाति और एक ही कुटुम्ब में अक्सर चारों पुरुषों की या उनमें से अनेक पुरुषों की पूजा या मान्यता प्रचलित थी और अब भी है। अतएव इन पूज्य पुरुषों के आदर्श मूलतः भिन्न भिन्न होने पर भी बाद में उनमें आपस में बहुत सा लेनदेन हुआ है और एक दूसरे का एक दूसरे पर बहुत प्रभाव पड़ा है। वस्तुस्थिति इस प्रकार की होने पर भी यहां पर तो सिर्फ धर्मवीर महावीर के जीवन के साथ कर्मवीर कृष्ण के जीवन की तुलना करने का ही विचार किया गया है। और इन दोनों महान पुरुषों के जीवन-प्रसंगों की तुलना भी उपयुक्त मर्यादा के भीतर रह कर ही करने का विचार है। समग्र जीवन-व्यापी तुलना एवं चारों पुरुषों की एक साथ विस्तृत तुलना करने के लिये जिस समय और स्वास्थ्य की आवश्यकता है, उसका इस समय अभाव है। अतएव यहां बहुत ही संक्षेप में तुलना की जायगी। महावीर के जन्म-क्षण से लेकर केवल ज्ञान की प्राप्ति तक के प्रसगों को कृष्ण के जन्म से लेकर कंसवध तक की कुछ घटनाओं के साथ मिलान किया जायगा।

यह तुलना मुख्य रूप से तीन दृष्टि-बिन्दुओं को लक्ष्य करके की जायगी

(१) प्रथम तो यह फलित करना कि दोनों के जीवन की घटनाओं में क्या संस्कृति भेद है ?

(२) दूसरे, इस बात की परीक्षा करना कि इस घटनावर्णन का एक दूसरे पर कुछ प्रभाव पड़ा है या नहीं ? और इसमें कितना परिवर्त्तन और विकास सिद्ध हुआ है ?

(३) तीसरे यह कि जनता में धर्मभावना जागृत रखने और सम्प्रदाय का आधार सुदृढ़ बनाने के लिये कथाग्रन्थों एवं जीवन वृत्तान्तों में प्रधान रूप से किन साधनों का उपयोग किया जाता था, इसका पृथक्करण करना और उसके औचित्य का विचार करना।

पर सम्प्रदायों के शास्त्रों में उपलब्ध निर्देश एवं वर्णन।

ऊपर कहे हुए दृष्टिविन्दुओं से कतिपय घटनाओं का उल्लेख करने से पूर्व एक बात यहां खास उल्लेखनीय है। वह विचारकों के लिये कौतूहलवर्द्धक है, इतना ही नहीं वरन अनेक ऐतिहासिक रहस्यों के उद्घाटन और विश्लेषण के लिये उनसे सतत् और अवलोकनपूर्ण मध्यस्थ प्रयत्न की अपेक्षा भी रखती है। वह यह है बौद्धपिटकों में ज्ञातपुत्र के रूप में भगवान महावीर का अनेकों बार स्पष्ट निर्देश पाया जाता है परन्तु राम और कृष्ण में से किसी का भी निर्देश नहीं है। पीछे की बौद्ध जातकों में (देखिये दशरथ जातक नं० ४६१) राम और सीता की कुछ कथा आई है परन्तु वह वाल्मीकि के वर्णन से एकदम भिन्न प्रकार की है। उसमें सीता को राम की बहिन कहा गया है। कृष्ण की कथा तो किसी भी बौद्धग्रन्थ में आज तक मेरे देखने में नहीं आई। किन्तु जैनशास्त्रों में राम और कृष्ण इन दोनों की जीवन कथाओं ने काफी स्थान घेरा है। आगम माने जाने और अन्य आगम ग्रन्थों की पपेक्षा प्राचीन गिने जानेवाले अङ्ग साहित्य में, रामचन्द्रजी की कथा तो नहीं है फिर भी कृष्ण की कथा दो अङ्गों— ज्ञाता और अन्तगड—में स्पष्ट और विस्तृत रूप से आती है। आगम ग्रन्थों में स्थान न पानेवाली रामचन्द्रजी की कथा भी पिछले श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों के प्राकृत संस्कृत के कथा साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त करती है। जैन साहित्य में वाल्मीकि-रामायण की जगह जैन रामायण तक बन

जाती है। यह तो स्पष्ट है कि श्वेताम्बर, दिगम्बर— दोनों के साहित्य में राम और कृष्ण की कथा ब्राह्मण-साहित्य जैसी हो ही नहीं सकती, फिर भी इन कथाओं और इनके वर्णन की जैनशैली को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि ये कथाएँ मूलतः ब्राह्मण साहित्य की ही होनी चाहिये और लोकप्रिय होने पर उन्हें जैन-साहित्य में जैनदृष्टि से स्थान दिया गया होना चाहिये। इस विषय को हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे। आश्चर्य की बात तो यह है कि जैनसंस्कृति से अपेक्षाकृत अधिक भिन्न ब्राह्मण संस्कृति के माननीय राम और कृष्ण ने जैनसाहित्य में जितना स्थान रोका है, उसने हजारवें भाग भी स्थान भगवान् महावीर के समकालीन और उनकी संस्कृति से अपेक्षाकृत अधिक नज़दीक तथागत बुद्ध के वर्णन को प्राप्त नहीं हुआ! बुद्ध का स्पष्ट या अस्पष्ट नामनिर्देश केवल आगम ग्रन्थों में एकाध जगह आता है (यद्यपि उनके तत्त्वज्ञान की सूचनाएँ विशेष प्रमाण में मिलती हैं)। तह तो हुआ बौद्ध और जैन कथा ग्रन्थों में राम और कृष्ण की कथा के विषय में; अब हमें यह भी देखना चाहिये कि ब्राह्मण-शास्त्र में महावीर और बुद्ध का निर्देश कैसा क्या है? पुराणों से पहले के किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में तथा विशेष प्राचीन माने जानेवाले पुराणों में यहां तक कि महाभारत में भी, ऐसा कोई निर्देश या अन्य वर्णन नहीं है जो ध्यान आकर्षित करे। फिर भी इसी ब्राह्मण-संस्कृति के अत्यंत प्रसिद्ध और अतिशय माननीय भागवत में बुद्ध, विष्णु के एक अवतार के रूप में ब्राह्मणमान्य स्थान प्राप्त करते हैं, ठीक इसी प्रकार जैसे जैनग्रन्थों में कृष्ण एक भावी तीर्थंकरके रूप में स्थान पाते हैं। इस प्रकार पहले के ब्राह्मणसाहित्य में स्थान प्राप्त न कर सकनेवाले बुद्ध धीमे धीमे इस साहित्य में एक अवतार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जब कि स्वयं बुद्ध भगवान् के समकालीन और बुद्ध के साथ ही साथ ब्राह्मण-संस्कृति के प्रतिस्पर्द्धी, तेजस्वी पुरुष के रूप में एक विशिष्ट सम्प्रदाय के नायक पद को धारण करनेवाले, इतिहास प्रसिद्ध भगवान् महावीर को किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन ब्राह्मण ग्रन्थ में स्थान प्राप्त नहीं होता। यहां विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करनेवाली बात तो यह है कि महावीर के नाम या जीवनवृत्तान्त का कुछ भी निर्देश ब्राह्मणसाहित्य में नहीं है, फिर भी भागवत जैसे लोकप्रिय ग्रन्थ में जैन सम्प्रदाय के पूज्य और अति प्राचीन माने जानेवाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की कथा ने संक्षिप्त होने पर भी मार्मिक और आदरणीय स्थान पाया है।

तुलना।

(इस तुलना में जिन शब्दों को मोटे टाइप में दिया गया है, उनपर भाषा और भावकी समानता देखने के लिये पाठकोंको खास लक्ष्य देना चाहिये। ऐसा करने से आगे का विवेचन स्पष्ट रूप में समझा जा सकेगा)

[१]

गर्भहरण-घटना ❀ ।

महावीर ।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में ब्राह्मणकुण्ड नामक ग्राम था। उसमें बसने वाले ऋषभदत्त नामक ब्राह्मणकी देवानन्दा नामकी स्त्रीके गर्भमें नन्दन मुनिका जीव दशवें देवलोकसे च्युत होकर अवतरित हुआ। तेरासीवें दिन इन्द्रकी आज्ञासे उसके सेनापति नैगमेषी देव ने इस गर्भ को क्षत्रिय-कुण्ड नामक ग्राम के निवासी सिद्धार्थ क्षत्रिय की धर्मपत्नी त्रिशला रानीके गर्भ में बदल कर उस रानी के पुत्रीरूप गर्भ को देवानन्दाकी कोंखमें रख दिया। उस समय उस देवने इन दोनों माताओंका अपनी शक्ति से खास निद्रावश करके बेभान-सी बना दिया था। नौ मास पूर्ण होनेपर त्रिशलाकी कोंख से जन्म पानेवाला, वही जीव, भगवान् महावीर हुआ। गर्भहरण करानेसे पूर्व इसकी सूचना इन्द्रको आसन के कांपनेसे मिली थी। इन्द्रने आसनके काँपनेके कारण का विचार किया तो उसे मालूम हुआ कि तीर्थंकर सिर्फ उच्च और शुद्ध क्षत्रिय कुलमें ही जन्म ले सकते हैं, अतः तुच्छ, भिखारी और नीच इस ब्राह्मणकुलमें महावीरके जीव का अवतरित होना योग्य नहीं है। ऐसा विचार कर इन्द्रने अपने कल्पके अनुसार, अपने अनुचर देवों के द्वारा योग्य गर्भ-परिवर्त्तन कराकर कर्त्तव्य पालन किया। महावीरके जीवने पूर्व भवमें बहुत दीर्घकाल पूर्व कुल मद करके जो नीच गोत्र उपार्जन किया था, उसके अनिवार्य फल के रूप में नीच या तुच्छ गिने जाने वाले ब्राह्मण कुलमें थोड़े समय के लिये ही सही, परन्तु जन्म लेना ही पड़ा। भगवान् के जन्म-समय विविध देव-देवियों ने अमृत, गन्ध, पुष्प, सुवर्ण, चाँदी आदि

कृष्ण ।

असुरों का उपद्रव मिटाने के लिये देवों की प्रार्थनासे विष्णु ने अवतार लेने का निश्चय करके योग माया नामक अपनी शक्ति को बुलाया। उसको संबोधन करके विष्णु ने कहा—तू जा और देवकी गर्भ में मेरा जो शेष अंश आया हुआ है, उसे वहाँ से संकर्षण (हरण) करके वसुदेवकी ही दूसरी स्त्री रोहिणी के गर्भ में प्रवेश कर, जो बलभद्रराम के रूप में अवतार लेगा और तू नन्दपत्नी यशोदा के घर पुत्री रूप में अवतार पायेगी। जब मैं देवकी के आठवें गर्भ के रूपमें जन्मूंगा तब तेरा भी यशोदा के घर जन्म होगा। एक साथ जन्मे हुए हम दोनों का, एक दूसरे के यहाँ परिवर्त्तन होगा। विष्णु की आज्ञा शिरोधार्य करके उस योगमाया शक्ति ने देवकी को योग-निद्रावश करके सातवें महीने उसकी कोंख में से शेष गर्भ का रोहिणी की कुक्षि में संहरण किया। इस गर्भ-संहरण करने का विष्णु का हेतु यह था कि कंस को, जो देवकी से जन्मे हुए बालकों की गिनती करता था और आठवें बालक को अपना पूर्ण शत्रु मान कर उसका नाश करने के लिए तत्पर था, गिनती करने में शिकस्त देना। जब कृष्णका जन्म हुआ तब देवता आदि सबने अपने पुष्प आदि की वृष्टि करके उत्सव मनाया। जन्म होते ही वसुदेव तत्काल जन्मे हुए बालक कृष्ण को उठाकर यशोदा के यहाँ पहुँचाने ले गये। तब द्वारपाल तथा अन्य रक्षक लोग योग-माया की शक्ति से निद्रावश हो अचेत हो गए।

—भगवत दशमस्कन्ध अ० २, १-१३ तथा अ० ३ श्लो० ४६-५०

❀ किसी भी दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थ में, महावीर के जीवन में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

की वर्षा की। जन्म के पश्चात् स्नात्र के लिये इन्द्र जब मेरु पर ले गया तब उसने त्रिशला माता को अवस्वापनी निद्रा से बेभान कर दिया।

—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र, पर्व, १०, सर्ग २, पृ० १६-१९।

[२]
पर्वत—कम्पन

जब देव-देवियाँ महावीर का जन्माभिषेक करने के लिये ले गए तब उन्हें अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए और उनकी शंका का निवारण करने के लिये इस तत्काल प्रसूत बालक ने केवल अपने पैर के अँगूठे से दबा कर एक लाख योजन के सुमेरु पर्वत् को कँपा दिया।

—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृ० १९

इन्द्र के द्वारा किये हुए उपद्रवों से रक्षण करने के लिए तरुण कृष्णने योजन प्रमाण गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक ऊपर उठाए रखा।

—भागवत, दशमस्कन्ध. अ० ४३ श्लो० २६-२७

[३]
बाल—क्रीड़ा

(१) करीब आठ वर्ष की उम्र में वीर जब बालक राजपुत्रों के साथ खेल रहे थे, तब स्वर्ग में इन्द्र के द्वारा की हुई उनकी प्रशंसा सुन कर, वहाँ का एक मत्सरी देव भगवान् के पराक्रम की परीक्षा करने आया। पहले उसने एक विकराल सर्प का रूप धारण किया। यह देख कर दूसरे राजकुमार तो डर कर भाग गये, परन्तु कुमार महावीर ने ज़रा भी भयभीत न होते हुए उस साँप को रस्सी की भाँति उठा कर दूर फेंक दिया।

—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृष्ठ २१

(२) फिर इसी देव ने महावीर को विचलित करने के लिए दूसरा मार्ग लिया। जब सब बालक आपस में घोड़ा बन कर, एक दूसरे को वहन करने का खेल खेल रहे थे तब वह देव बालक का रूप धर कर महावीर का घोड़ा

(१) कृष्ण जब अन्य ग्वाल—बालकों के साथ खेल रहे थे, तब उनके शत्रु कंस द्वारा मारने के लिए भेजे हुए अघ नामक असुर ने एक योजन जितना लम्बा सर्प रूप धारण किया और बीच रास्ते में पड़ रहा। वह कृष्ण के साथ समस्त बालकों को निगल गया। यह देख कर कृष्णने इस सर्प का गला इस तरह दबा लिया कि जिससे उस सर्प आघासुर का मस्तक फट गया, उसका दम निकल गया और वह मर गया। सब बालक उसके मुख में से सकुशल बाहर निकल आये। यह वृत्तान्त सुन कर कंस निराश हुआ और देवता तथा ग्वाल प्रसन्न हुए।

—भागवत दशमस्कन्ध, अ० १२, श्लो० १२-३५ पृष्ठ८३८

(२) आपस में एक दूसरे को घोड़ा बना कर उस पर चढ़ने का खेल कृष्ण और बलभद्र ग्वाल बालकों के साथ

बन गया। उसने दैवी शक्ति से पहाड़सा विकराल रूप बनाया, फिर भी महावीर इससे तनिक भी न डरे और घोड़ा बन कर खेलने के लिए आए हुए उस देव को सिर्फ एक मुट्ठी मार कर झुका दिया। अन्त में यह परीक्षक मत्सरी देव भगवान् के पराक्रम से प्रसन्न हो कर, उन्हें प्रणाम करके अपने रास्ते चला गया।

—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृ० २१-२२

खेल रहे थे। उस समय कंस द्वारा भेजा हुआ प्रलम्ब नामक असुर उस खेल में सम्मिलित हो गया। वह कृष्ण और बलभद्र को उड़ा ले जाना चाहता था। वह बलभद्र का घोड़ा बना कर उन्हें दूर ले गया और एक प्रचण्ड एवं विकराल रूप उसने प्रगट किया। अन्त में बलभद्र ने भयभीत न होते हुए सख्त मुष्टिप्रहार किया जिससे उसके मुँह से खून गिरने लगा और उसे मार डाला। अन्त में सब सकुशल वापिस लौटे।

— भागवत दशमस्कन्ध, अ० २०, श्लो० १८—३०, पृ० ८६८

(क्रमशः)
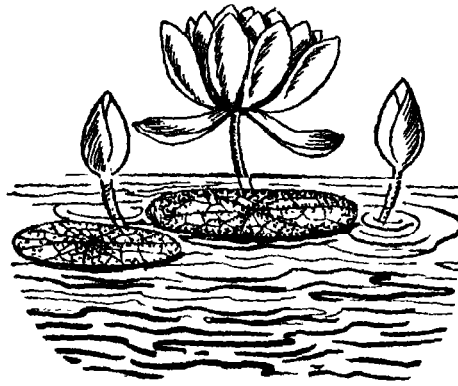
हमारे समाज के जीवनमरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपथ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं? किस ओर जा रहे हैं?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर? या—पतन और मृत्यु की ओर?

आप समाज के हितचिन्तक हैं?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

अशिक्षा

(२)

सारी बुराइयों की जड़ अशिक्षा है, इस बात को पूर्णतया जानते हुए भी आपने इसके प्रतिकार का क्या उपाय किया है?

अन्यान्य समाजों के शिक्षित जनसमूह और उनके प्रगतिशील कार्यकलापों को देखकर क्या कभी आपको अपने अज्ञान-पीड़ित समाज की दशा पर तरस आया है?

क्या देशी और क्या विदेशी, सभी समाजों के बड़े बड़े विद्वान अपनी शिक्षा के बल पर जब संसार में अद्भुत कार्य कर दिखाते हैं, तब अपने समाज की दशा पर कभी आपको शर्म आयी है?

बिना शिक्षा प्राप्त किये विवेक की प्राप्ति नहीं होती और विवेक की अनुपस्थिति में मनुष्य और पशु में केवल सींग-पूंछ का ही भेद रह जाता है, इस बात का आपको कभी भान हुआ है?

अगर हां, तो बताइये आपने अपने अशिक्षित समाज को इस अशिक्षा के अन्ध-कूप से उबारने का क्या प्रयत्न किया? कितनी पाठशालाएं, कितने स्कूल और कितने कालेज खोले? कितने ग्रन्थ प्रकाशित कराये? कितने पुस्तकालय स्थापित कराये?

अगर नहीं, तो अब भी समय है, उठिये! आगे बढ़िये!! अपने तन मन और धन का शिक्षा-प्रचार की व्यवहारिक योजना को कार्यरूप में परिणत करने में सदुपयोग कीजिये।

जीवन-मरण के प्रश्नों की चर्चा

'ओसवाल नवयुवक' के इस वर्ष के प्रथम अंक से लगाकर हम बराबर समाज के सामने 'हमारे समाज के जीवन-मरण के प्रश्न' रख रहे हैं, पर खेद का विषय है कि कहीं से भी इन प्रश्नों पर विवेचनात्मक उत्तर या इन प्रश्नों को हल करने वाली व्यवहारिक योजनाएं हमारे पास प्रकाशनार्थ न आयीं। समाज की इस उदासीनता को देख कर किसे कष्ट हुये बिना न रहेगा? लेकिन हमें यह देख कर कुछ आशा बंधती है कि 'ओसवाल सुधारक' के गत २० अक्टूबर के अङ्क में 'व्यवसायों का भंडार' शीर्षक देकर राय साहब कृष्णलालजी बाफ़णा बी० ए० ने इन प्रश्नों पर कुछ चर्चा आरम्भ की है। हमें राय साहब की चर्चा का 'आरंभ' देख कर बड़ा कौतुक प्राप्त हुआ। राय साहब अपनी चर्चा को इस प्रकार आरम्भ करते हैं, "हम जैसे ६० वर्ष से ऊपर वाले यदि जीने-मरने की चर्चा करें, तो वाजबी है, लेकिन 'ओसवाल नवयुवक' के सामने जीने मरने का प्रश्न रहे, यह बड़े आश्चर्य व चिन्ता का विषय है। आदि।"

लेकिन इन दिल्लगी भरी बातों में न कोई गाम्भीर्य है और न कोई सार। हम यह बताना चाहते हैं कि ये मरने-जीने के प्रश्न 'नवयुवक' के व्यक्तिगत नहीं हैं, ये सम्पूर्ण समाज के मरने-जीने के प्रश्न हैं। जिस दलदल में फंस कर हम पीड़ित और पिछड़े हुए हैं, उसी दलदल का तथा हमारी दुर्दशा का सच्चा चित्र समाज के आगे पेश करना ही इन प्रश्नों का उद्देश्य है। इन चित्रों को देख कर अगर समाज को अपनी रुद्धगति और पिछड़ी हालत का ज्ञान हो तो हमारा उद्देश्य सार्थक होगा। हमारी हार्दिक इच्छा है कि इन चित्रों को देख कर आप अपने समाज की असली अन्दरूनी हालत का अनुमान कर उसके उद्धार विषयक अपने विचार या व्यवहारिक योजनायें हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजें। हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे 'ओसवाल सुधारक' में प्रकाशित होने वाले राय साहब के "व्यवसायों का भण्डार" अवश्य पढ़ें और उसमें जो सार मिले, उसे चुन लें। राय साहब को हम उनकी इस चर्चा के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

सम्पादकीय

हमारा युग

हमारी सभ्यता के इतिहास में युगों का क्रम चलता है। युग आते हैं, समाप्त हो जाते हैं। अवधि के विचार से एक युग दूसरे से भिन्न नहीं होता किन्तु फिर भी युगों में भिन्नता होती है; वही उसका महत्त्व है। बड़ी ऊमर के लोगों को यह कहने में गर्व होता है कि उन्होंने युग देखे हैं। उनका यह कथन वैज्ञानिक सत्य की कसौटी पर तो नहीं कसा जा सकता और न वास्तव में उस कसौटी का कोई मतलब ही होगा। शास्त्रों की गणना के हिसाब से युग कितने वर्षों का होता है और उपरोक्त रीति से गर्व करने वाले बुजुर्गों ने इतने वर्ष देखे हैं या नहीं, यह संदेहात्मक हो सकता है, पर इस कथन से इतना अर्थ तो अवश्य फलाया जा सकता है कि उन्होंने अपने जीवन में चाहे वह युगों का हो या वर्षों का-भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव किये हैं। वास्तव में एक युग का जीवन (यही युग-परिवर्तन या युगान्तर का सब से अधिक महत्त्वशाली अंश है) दूसरे से अलग होता है—एक युग की समस्याएं दूसरे युग में दोहराई जाकर भी अपने में नवीनता छिपाये रहती हैं। अक्सर कहा जाता है -कि इतिहास दोहराया जाता है। यह सच है, पर इसके साथ-साथ यह भी सच है कि उसमें नवीनता अवश्य होती है।

सदा की तरह सभी बातें चलती रहने पर भी प्रत्येक युग में एक न एक प्रधानता अवश्य रहती है—जिससे उस युग की सबसे अधिक चालू प्रवृति का पता चल सकता है। हमें हमारे युग की चर्चा करनी है जिसमें हम रहते हैं। और क्या कहें—हमें हमारे जीवन का चित्र देना है क्योंकि वही हमारे युग की चर्चा का माध्यम है। जीवन से अलग युग की चर्चा ही क्या? विषय तो गम्भीर है यह अब मालूम हुआ क्योंकि पहले के युगों का ज्ञान हमारा अधूरा है, इस युग का ज्ञान अपरिपक्व है। जो अधूरा और अपरिपक्व है, वह हमारी क्या सहायता करेगा? पर संतोष का कारण यह आत्मप्रतीति कि शायद कई लोगों में उतनी भी खलबली न हो—जो हम में है—जिसे हम कह सकते हैं।

कहने वाले कहते ही हैं कि हमारा युग विचित्र है। मैं भी कहता हूं—यह युगान्तरकारी युग है। मेरे एक मित्र कहते हैं, इसका मतलब क्या हुआ? मैं उनको क्या उत्तर दूँ? मेरी समझने की सामग्री तो अधूरी और अपरिपक्व है, यह मैं कह चुका हूँ। यदि 'युगान्तरकारी युग' पर ही उनको आक्षेप हो तो यह केवल अर्थ की विशेषता पर जोर देने के लिये।

सबसे पहले तो यह कहेंगे कि हमारा युग गुलामी का युग है। देश की स्वतन्त्रता के लिये नेताओं के उद्योग चल रहे हैं—पर फिर भी युग तो हमारा गुलामी का ही है। पसन्द हो या न हो गुलामी हमारी सबसे

बड़ी विशेषता है। बात पसन्द आने की नहीं हैं पर इससे क्या - हैं तो हम गुलाम ! जो बात पसन्द न हो वही करें या करनी पड़े, यह गुलामी की चरम सीमा है। राजनीतिक स्वतंत्रता के विषय में हमारी हालत पिंजरे में तड़पते हुए पक्षी की तरह से है। कइयों को इसलिये थोड़ा सन्तोष भी है कि गुलामी से छूट जाने के लिये नेता लोग प्रयत्न कर रहे हैं- किसी दिन ठीक हो ही जायगा यह विचार हमारी जीर्ण बुद्धि को गुलाम बनाये है। और वे फकीरी चमत्कार की बाट जोहते हैं। सामाजकि सुधार के क्षेत्र में भी हम इससे अधिक नहीं बढ़े हैं। असल तो यह है कि व्यक्ति के कार्य में समष्टि की हितसाधना की कल्पना कर हम अपने स्वार्थ को धक्का देना नहीं चाहते, अर्थात् हम अपने स्वार्थ के गुलाम हैं, हमारे जीवन के चारों ओर गुलामी का तांता बंधा है - उसी में हम फंसे हैं।

युग की समस्याएँ हमारे राष्ट्र की समस्याएँ हैं -- और वही भिन्न-भिन्न समाजों की; क्योंकि दोनों में भेद नहीं है—उनमें अंग-अङ्गी का सम्बन्ध है। हमारे समाज की हालत बुरी-एकदम बुरी है; पूछना किससे है—अपनी आँखों से देखते हैं, अपने कानों से सुनते हैं। देख सुन कर भी सोचते यह हैं कि सुधारक और नेता अपना काम कर रहे हैं। हमसे क्या मतलब ! अपने आपको संतुष्ट करने के लिये आदमी को हजारों रास्ते मिल जाते हैं। आज का आदमी अधिकतर अपने को तटस्थ रख कर ही सब कुछ हुआ देखना चाहता है क्योंकि तटस्थता ही उनके व्यक्तिगत जीवन के डर का उपाय है। सबसे बड़ी बुराई तो यही है कि इच्छा रख कर भी हम आगे नहीं बढ़ते। जो काम सबको मिल कर करना चाहिये उसको दो-चार के कन्धों पर छोड़ देने से उनके भी कन्धे बैठ जायंगे—और काम मिट्टी में मिल जायगा। दो-चार ने मिल कर उफनते हुए जोश के साथ सम्मेलन का आयोजन कर दिया और एक बार सम्मेलन हो गया पर फिर तो बात निभाने को वह हर साल एक प्रश्न रह जाता है। यह प्रश्नावस्था बुरी है।

पत्र निकालने की हबिस हुई और पांच-सात आदमियों की हिम्मत के बल पर काम शुरू हो गया पर सारे समाज के सहयोग के बिना वह कैसे आगे बढ़े ! उसमें तो स्वार्थ की कुछ न कुछ हानि अवश्य है। इस युग के आदमी की निगाह में यही उसकी सबसे बड़ा हित है जो ज्ञानियों की निगाह में उसका सबसे बड़ा शत्रु है। ओसवाल समाजका एकमात्र मासिक यह 'नवयुवक'--ऊँची-ऊँची कल्पनाओं की प्रेरणा पर उठा हुआ यह मूर्त्तिमान उत्साह छः वर्ष के तूफानी जीवन के बाद एक बार असहाय होकर विलीन-सा हो गया था, पर प्रेरणा से उसके पैर बन्धे थे—वह फिर एक बार दूने उत्साह से आया है। आशा और उत्साह दूना है—साहस और प्रेरणा पूरी है—पर सहानुभूति और सहायता कम है। इसलिये हालत अच्छी होते हुए भी अच्छी नहीं है। साहित्य का सृजन इस पत्र को करना है, यही हमारे समाज का इस समय सबसे ज्यादा भुलाया हुआ अङ्ग है। बात यह है कि पत्र को तो समाज का जीवन बनाना है--फिर भी युग यह विचित्र है। हम सब कुछ करने को तैयार हैं-- पर हमारे पास लेखक नहीं है—हमारे पास आर्थिक साधन नहीं है। लेखक हमें पैदा करने हैं पत्र का ग्राहक बनना ओसवाल मात्र का कर्त्तव्य है। जो होना चाहिये, वह नहीं हो रहा है !. इसलिये हम जो चाहते हैं, वह नहीं कर सके हैं। स्वार्थ की भावना में सब गड़बड़ है उसको जीतना जरूरी है - पर दुर्लभ ! हम बेसमझ बने हैं—

समझ है तो केवल स्वार्थ की। समझने की बात तो यह है कि समाज के भीतर रहते हुए निःस्वार्थ बुद्धि से सामाजिक जीवन में योग देना जरूरी है। हमारे समाज को भी यदि ऊँचा उठाना है तो इस पत्र को बनाना पड़ेगा। युग की समस्याओं पर विचार करना था– पत्र की समस्या पर इसलिये लिख दिया।

पहले ही कह देना चाहिये था--पर अभी सही कि हमारा व्यक्तिगत जीवन ही साफ——स्वतन्त्र नहीं! ऐसे जीवन में क्या कर सकने की सम्भावना हो! राजनीतिक गुलामी की बात छोड दीजिये——हम तो मन के गुलाम हैं धर्म (जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिये है) के गुलाम हैं; सामाजिक रूढ़ियों और बाहरी परिस्थितियों के गुलाम हैं।

हममें ज्ञान की ज्योति मिट रही है क्योंकि हमारे समाज में उसके साधन नहीं के बराबर है। जो हैं, वे प्रतिकूल परिस्थिति पैदा करनेवाले हैं। ज्ञान के इस दीवाले ने हमारे जीवन को अपने हाथ का न रखा। असली धर्म तो हमारा कर्त्तव्य है—वह जीवन शोधक है। हमें उसका पालन करना ही चाहिये—पर वीर होकर—स्वतन्त्र होकर! गुलामी तो सब तरह की बुरी है धर्म के योग से वह बुराई से बच नहीं सकती।

यह हमारा युग है विचित्र जटिल! इसमें बुराइयाँ है - अच्छाइयों के साथ। आदमी अपनी आँखें खोल कर काम ले। बातें वही हैं जो पूर्व के युगों में भी होंगी, पर सबमें विषमता है। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में आर्थिक विषमता फैली है विरोधी आन्दोलन का भी कोलाहल है पर न मालूम कितने वर्ष लगेंगे इसको मिटाने में! आजकी विषम परिस्थितियों में शान्ति की कल्पना करना असम्भव है। विश्व शान्ति की बातें की जाती हैं—तोपों के मूँह में बैठ कर। क्या होगा यह है रहस्यमय! पर रहस्य को तोड़ने का साधन है मनुष्य का कर्त्तव्य पथ जिस पर वह सच्चे हृदय से आगे बढ़ता जाय। अपनी सच्ची आकांक्षाओं का दमन न करे किसी भी तरह की गुलामी के कारण।

यह हमारा युग है- विषमता, जटिलता और गुलामी का।

टिप्पणियाँ

विश्व-शान्ति खतरे में——

इस समय विश्व-शान्ति खतरे में है। भावी विश्व-व्यापी महायुद्ध के बादल चारों ओर घिर आये हैं। गत यूरोपीय महायुद्ध की अपेक्षा भी इस समय भावी महायुद्ध के अधिक भयंकर कारण उपस्थित हैं। विश्व-शान्ति के नारे बुलन्द करते हुये भी सब राष्ट्र भावी युद्ध की आशंका से अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र बढ़ा रहे हैं। गत महायुद्ध में पराजित हुआ और सब विजेता राष्ट्रों द्वारा अनुचित रीति से दबाया हुआ जर्मनी इस समय फिर हिटलर की अध्यक्षता में अपना सिर उठा चुका है। अन्य राष्ट्रों द्वारा हड़पे हुये अपने अधिकारों और अपने उपनिवेशों को फिर से प्राप्त करना चाहता है। इटली भी मुसोलिनी की छत्रछाया में रोमन साम्राज्य को फिर से स्थापित करने का स्वप्न देखता है। वह अपनी निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये उपनि-वेश बसाने में प्रयत्नशील है। बिचारे अबिसीनिया पर वह अन्य सब राष्ट्रों के देखते-देखते कब्जा कर चुका है। अब भूमध्यसागर पर उसकी आंख है। इटली

और जर्मनी दोनों ही साम्यवाद को अपने मार्ग का कांटा समझते हैं और उसे नष्ट कर फासिष्टवाद की स्थापना करना चाहते हैं। जर्मनी ने तो साम्यवाद को समूल उखाड़ फेंकने के लिये जापान के साथ संधि की है। ये सब मिल कर साम्यवादी रूस को नष्ट कर डालना चाहते हैं, किन्तु रूस ने अपने बचाव की इतनी अधिक तैयारी कर रखी है कि संसार का कोई भी राष्ट्र उसके साथ लोहा लेने की हिम्मत नहीं कर पाता। स्पेन, जहां साम्यवादी सरकार थी, अन्य सत्तावादी राष्ट्रों की दुरभिसंधियों के कारण इस समय अन्तिम सांसें ले रहा है। साम्यवादी स्पेन का अन्त ही शायद यरोप में महायुद्ध का आरम्भ होगा। फ्रांस की परिस्थिति बड़ी खराब हो उठी है। वहां प्रजातन्त्र सरकार कायम है। जर्मनी उसका सदा का प्रतिद्वन्दी है। फ्रांस नहीं चाहता कि वह तीन ओर प्रतिद्वन्दियों से घिर जाय और इस लिये वह स्पेन की वर्तमान साम्यवादी सरकार को कायम देखना चाहता है, किन्तु बिना ब्रिटेन का निश्चित रुख जाने वह कुछ करने की हिम्मत नहीं करता। इधर ब्रिटेन अपनी घात देख रहा है। वह जल्दबाजी करना नहीं चाहता। वह अपनी पूरी तैयारियां कर रहा है। भूमध्यसागर पर का वह अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहता। इसीलिये उसने फिर से मिश्र की सरकार के साथ संधि की है। जापान-जर्मनी संधि से ब्रिटेन भी चिन्तित हो उठा है। फिर भी वह राष्ट्रों की गुटबन्दी में पड़ना नहीं चाहता। लेकिन अब अवस्था ऐसी हो रही है कि वह बहुत समय तक गुट-बन्दी से अलग नहीं रह सकता। ब्रिटेन न तो साम्य-वाद का ही पक्षपाती है और न फैसिज्म का ही। अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसका क्या रुख होगा? शायद वह अपने स्वार्थों को ध्यान में रख कर ही किसी का पक्ष लेगा। देखें ऊंट किस करवट बैठता है!

ओसवाल महासम्मेलन —

गत २० नवम्बर के 'ओसवाल सुधारक' में राय साहब कृष्णलालजी बाफणा, बी० ए० ने ओसवाल महासम्मेलन के आगामी अधिवेशन के स्थान का अनु-मान करते हुए इस बात की आशा प्रकट की है कि वह कलकत्ते में होगा। आपने कलकत्ता के उत्साही और साहसी नवयुवक दल की प्रशंसा करते हुए महासम्मेलन को अपना एक प्रचारक आगामी अधिवेशन के सिल-सिले में कलकत्ता भेजने की राय दी है। हम रायसाहब के परामर्श का हृदय से समर्थन करते हैं। कलकत्ता में सभी प्रान्तों के ओसवाल हैं और इस महानगरी में धन जन संबंधी सभी सुविधाएं भी प्राप्य हैं। और जगहों की अपेक्षा यहां का ओसवाल समाज है भी प्रगतिशील। यदि महासम्मेलन प्रयत्न करे और कलकत्ता की ओसवाल नवयुवक समिति आदि प्रगतिशील संस्थाएं आगे बढ़ें तो आगामी अधिवेशन बड़े मजे से कलकत्ता में हो जाय।

पत्र-परिवर्तन की आवश्यकता—

यह देख कर बड़ा दुःख होता है कि हिन्दी के पत्रों ने और विशेष कर हमारे समाज के पत्रों ने पत्र-परिवर्तन की आवश्यकता को नहीं समझा। हम बराबर हर महीने आगरा के 'ओसवाल-सुधारक' को 'ओसवाल नवयुवक' भेजते हैं, पर कई बार लिखने पर भी ओसवाल सुधारक' हमारे पास नहीं भेजा गया। पत्र-परिवर्तन केवल पारस्परिक सहयोग और संगठन के लिये किया जाता है, उसमें इसके सिवा और कोई खास उद्देश्य निहित नहीं रहता। सहयोग और

संगठन की कीमत शायद हमें इस स्थानपर समझाने की आवश्यकता नहीं। सारे ओसवाल समाज में केवल ये ही दो सामाजिक पत्र हैं, इनमें भी एक मासिक और दूसरा पाक्षिक। इतना होने पर भी परस्पर सहयोग की भावना न रहना, कितने खेद की बात है। सहयोग शून्य नीति को लेकर कोई पत्र समाज और देश की उन्नति नहीं कर सकता। क्या 'ओसवाल सुधारक' के संचालक महोदय इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे ?

औसर की कुप्रथा—

यह मालूम हुआ है कि राले गांव (जिला-वर्धा) के सेठ रत्नचंदजी मुणोत अपनी स्वर्गीया माताजी का औसर करने जा रहे हैं। नागपुर के देशभक्त सेठ श्री पूनमचंदजी रांका तथा अन्य सुधारकों के कठिन प्रयत्न और आन्दोलन से मध्य प्रदेश और बरार के ओसवाल समाज से इस कुप्रथा का तीन चार वर्षों से मूलोच्छेद हो गया था, परन्तु मुणोत जी इसे फिर से चालू करना चाहते हैं। साथ ही हमें यह समाचार भी मिला है कि पूना के सेठ श्री धोंडीरामजी हीराचन्दजी दलीचन्द्रजी खिवसरा ने अपनी स्वर्गीया माता श्री का औसर न कर उसके बदले अपनी माता श्री के स्मर्णार्थ ५०००) रुपये दान के लिये अलग निकाल रक्खे हैं। एक साथ इन दोनों समाचारों से हमें हर्ष विषाद दोनों ही होते हैं। कितने शोक का विषय है कि इतने वर्षों के आन्दोलन के बाद भी अभी मुणोत जी जैसे इतने पिछड़े हुये व्यक्ति मौजूद हैं, जो मरी हुई इस कुप्रथा को फिर से चालु करना चाहते हैं। मुणोत जी तथा अन्य औसर प्रेमी सज्जनों को सदा यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह धन का दुरुपयोग है। अगर उन्हें अपना धन खर्च करना ही है तो उन्हें पूना के उपरोक्त खिवसरा बन्धुओं का अनुकरण करना चाहिये। सारे समाज में कितनी गरीबी, कितनी बेकारी और कितनी अशिक्षा भरी है, अगर इस गरीबी, बेकारी और अशिक्षा को दूर करने में ये औसर प्रेमी अपने धन का सदुपयोग करें तो इससे मृतात्मा को अधिक शान्ति मिलेगी और साथ ही समाज का भी भला होगा। क्या हम आशा करें कि मुणोत जी अपने निश्चय पर फिर एक बार विचार करेंगे !

Reg. No. C 1668.

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं भंवरचन्द चोपड़ा द्वारा
२८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

वर्ष ७, संख्या ८ दिसम्बर १९३६

'जो मनुष्य अपने देश से प्रेम करना नहीं जानता, उसका सांसारिक प्रेम झूठा है। उच्चतम प्रेम-धर्म का यह सिद्धान्त है कि यदि तुम्हारे देशी भाई कपड़े के लिये मोहताज हों और तुम मन-माने वस्त्रों से सजे-बजे हो; यदि तुम्हारे भाई भूखों मरते हों—और तुम्हारे पास आवश्यकता से भी अधिक खाने-पीने का सामान हो, तो ऐसी दुरवस्था के लिये तुम्हीं अपराधी हो—तुम्हीं दोषी हो; तुम्हारे स्वदेशी भाई नहीं।'

—महात्मा टाल्स्टाय

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादक:— गोपीचन्द चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०
विजयसिंह नाहर बी० ए०
भँवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

लेख-सूची

[दिसम्बर १९३६]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफ़ी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता-परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	४०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	१३)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

श्रीयुत सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए०, एल-एल० बी०

आप हमारे समाज के उन अग्रगण्य प्रतिभाशाली युवकों में से हैं—जिनका सहयोग हमारे समाज के सार्वजनिक जीवन के निर्माण में बराबर मिलता रहा है ! आपकी लेखनी, वाणी, और क्रियात्मक शक्ति—तीनों में समाज सेवा की एक ही भावना है ! आप श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल नवयुवक परिषद् के मन्त्री रह चुके हैं—और आजकल भी श्री भारत जैन महामंडल के संयुक्त जनरल सेक्रेटरी है। 'ओसवाल नवयुवक' को पुनर्जीवित करने के सफल प्रयत्नों में श्रीयुत ढड्ढाजी का भी मुख्य हाथ था। आपने आरंभ में इसका सम्पादन भी किया था। आपकी रचनाएं हिन्दी और अंगरेजी के भी कई पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। आजकल आप कलकत्ते के इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स जैसी प्रगतिशील व्यापारिक संस्था के स्थानापन्न सेक्रेटरी हैं।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७ दिसम्बर १९३६ संख्या ८

मरुभूमि

[श्री दौलतराम छाजेड़]

अवश्य ही लेखक की यह कविता रसानुभूति की किसी हिलोर में लिखी गई है। जिन लोगों ने अबतक केवल साधारण भौगोलिक दृष्टि से ही मरुभूमि के वातावरण की कल्पना की है—उनको लेखक की इस हिलोर में मरुभूमि की सरसता-मधुरता-का आनन्द आवेगा। कविता में 'भाषायमक'का-सा आह्लाद मिलता है—सम्पादक।

मरुभूमि बड़ी बढ़िया जग में, सुख हो रग में मग में बगतां।
नर देह निरोग रहै नितही, सुध स्वच्छ अरण्य हवा लगतां॥
जन, गेह सुदेह रहै न रहै, निज धर्म तजै न छती सगतां।
मरि के इंह जन्म लहूं शिवलौं, छक नींद जचै गरचैं जगतां॥
अस सुन्दर मोर बने यंह पै, जस देवी को देव खिलौनो दयो।
कहिं बाहर गांव में कुवे जुपै, घर जाट के त्यार बिलौणो भयो॥
लोंहि के हल कस्सी कुंदाल कृषी, लख मेह दिलेवो जिलौनो थयो।
खिलवैये यहां बहु सर्प तने, पढ मन्त्र जु हस्त पिलौनो लयो॥

सम्यग् दृष्टि

[श्री परमानन्द कुंवरजी कापडिया]

> श्री कापडियाजी के पहले भाषण के कारण रूढ़ियों के गुलाम दकियानूसी जैनियों में खासी खलबली मच गई थी। अभी ता० २३—१०—३६ को राजकोट में "श्री काठियावाड़ जैन युवक परिषद" के सभापति के आसन से श्री परमानन्द भाई का जो व्याख्यान हुआ—वह भी बड़ा क्रान्तिपूर्ण और सारगर्भित है। यह लेख उसी भाषण के एक अंश का भाषान्तर है। क्रान्तदर्शी विचारक होने के नाते लेखक का दृष्टिकोण और विवेचन मनन करने योग्य है।—स०

सम्यग दृष्टि सब बातों का निर्णय तारतम्य, इतिहास, और विज्ञान को दृष्टि में रखकर करती है। मानव समाज का उत्तरोत्तर विकास किस प्रकार हुआ; औजार और खेती के आविष्कार से लेकर आजके वायुयान और रेडियो तक के आविष्कार किस प्रकार हुए; पूर्व की जगली दशा में से आज की जटिल समाज रचनाका विकास किस प्रकार हो सका; स्थूल विचार दशा में से नीति, धर्म, और अध्यात्म की सूक्ष्म विचारणाएँ किस प्रकार निकलीं,-उपलब्ध साधनों द्वारा इन बातों की शोध करना इतिहास का काम है। इस प्रकार विचार करने पर कोई भी समाज रचना अनादि सिद्ध नहीं हो सकती। किसी भी एक ही व्यक्ति के कथन में या एक ही ग्रन्थ की घटना में सब सत्यों का समावेश नहीं हो सकता-कोई भी भाषा-ग्रन्थ या भाषा में रचित सूत्र अनादि नहीं हो सकता। एक शोध के पीछे दूसरी शोधका जन्म होता है, एक विचार के बाद दूसरे विचार का विकास होता है और प्राचीन शास्त्रों के पीछे नये शास्त्रों की रचना होती है। समाजकी परिस्थिति में फेरफार होते ही जाते है और उनके साथ-साथ समाज के प्रश्नोंका रूप भी बदलता जाता है और समय-समय पर उनके नये नये समाधान भी मिलते जाते हैं।

समय समय पर और देश देश में महान् ज्योतिर्धरों का जन्म होता है और वे प्रजा के हृदय को नये प्रकाश से आलोकित करते हैं। इन्हीं ज्योतिर्धर पुरुषोंका अवतार तीर्थंकर बुद्ध, क्राइस्ट और पैगम्बर आदि नामों से उल्लिखित किया जाता है। ऐसा भी नहीं है कि ये सब महापुरुष एक ही श्रेणी के हों। उन सब का विकास उनके खुद के व्यक्तित्व तथा जिस देश-काल में वे उत्पन्न होते हैं—उस समय तक की तैयारी पर निर्भर होता है। किन्तु प्रत्येक ज्योतिर्धर महापुरुष का सामान्य कार्य जनता को असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार में से ज्योति-प्रकाश-की ओर ले जाने का होता है। वे लोग क्रान्तदर्शी होते हैं-उनकी बुद्धि में भूतकाल का सारा अनुभव प्रतिबिम्बित होता है-और अभेद्य भविष्य में भी उनकी दृष्टि पहुँच सकती है। वे क्रान्त दर्शन के योग से समवर्ती समाज को परम सत्यों का ज्ञान देते हैं और मनुष्य की सामान्य स्थिति पर से लोकोत्तर स्थिति के आदर्श की रचना करते हैं।

सम्यग् दृष्टि द्वारा भूतकाल के पैगम्बरों के विषय में ऊपरोक्त खयाल उत्पन्न होते हैं। यह दृष्टि अतीत की महत्ता को स्वीकार करती है। समय समय पर उत्पन्न हुई संस्कृति के सूत्रधारों के प्रति सत्कार भावना उत्पन्न करती है और पुराने जमाने से आज तक के संकलित ज्ञान का गौरव मानने की बुद्धि उत्पन्न करती है—इतना होने पर भी उसका सत्य दर्शन भूत काल के साथ ही बंधा नहीं रह सकता। यह दृष्टि धर्म शास्त्रों को पुराने जमाने की विज्ञान विषयक प्रगति के परिचायक रूप में मानती है। पर शास्त्रों की सृष्टि का ठेका किसी काल विशेष, देश विशेष, या व्यक्ति विशेष का ही हो, ऐसा मानने की इस दृष्टिमें थोड़ी भी गुंजाइश नहीं। शास्त्र हिमालय पर्वत पर स्थित कोई परिमित मान सरोवर नहीं है—किन्तु वह तो जन प्रदेश के बीचमें सदा अनेक प्रवाहों का योग लेकर बहने वाली कल्याण-वाहिनी गंगा है। एक सिद्धान्त के विकृत हो जाने पर नये सिद्धान्त का अनुसन्धान होता है – प्राचीन खोज आज की नई खोज से रूपान्तरित हो जाती है। एक मन्तव्य के स्थान पर दूसरा मन्तव्य स्थान पाता है। इस प्रकार से ज्ञान का वृक्ष अनन्त काल तक नवपल्लवित हुआ करता है। इस दर्शन के आधार पर सम्यग् दृष्टि हरेक वस्तु के सार को ग्रहण करती है और असार वस्तु को छोड़ देती है।

मान्यताओं के मोह से वह दर्शन परे है! और साथ ही साथ मात्र नवीनता से वह प्रभावित नहीं होता। वह अतीतका आश्रय लेता है, भविष्य के स्वप्नों की रचना करता है और उसी ओर लक्ष्य करके वर्तमान काल में वर्तन करता है!

सम्यग् दृष्टि ही सच्चा मार्ग है!

संप्रदाय दृष्टि, उच्छेदक दृष्टि, तथा सम्यग् दृष्टि – इन तीनों प्रकार की दृष्टियों में से सम्यग् दृष्टि ही सच्ची है! इस दृष्टिको स्वीकार करने में हम लोगोंको कितनीही विचार सरणियों में से गुजरना पड़ेगा, कितने ही पूर्व ग्रहों को तोड़ना पड़ेगा, अपनी आंखों पर पड़े हुए कुछ पड़दों को हटाना पड़ेगा, पर जिसको भूत और भविष्य का सम्बन्ध करना है—जिसको धर्म के साथ विज्ञान का समन्वय बिठाना है—जिसको स्मृतियों और समाज शास्त्र में मेल उत्पन्न करना है, उसको इस प्रकार की दृष्टि स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

सम्यग् दृष्टि और जैन मान्यताएँ—

यदि हम अपनी जैन मान्यताओं पर इस दृष्टि से विचार करें तो अवश्य ही हमारी कुछ धार्मिक कल्पनाओं में परिवर्तन की जरूरत महसूस होगी। भूतकाल के कल्पित स्वर्ण युग की स्थापना भविष्य के क्षितिज पर करनी होगी। हम लोग ज्ञान से अज्ञान की तरफ, प्रकाश से अंधेरे की ओर जा रहे हैं – इस मान्यता के स्थान में यह वास्तविक हकीकत स्वीकार करनी पड़ेगी कि दुनिया का ज्ञान कोष बढ़ता जाता है तथा प्रकृति पर मनुष्य का आधिपत्य भी बढ़ रहा है। अपने और अपने समाज के भविष्य के विषय में सारा दृष्टिकोण ही बदलना पड़ेगा जिससे हमारे चित्तको घेर कर रहा हुआ निर्वेद लोप हो जाय, और नया आशावाद प्रकट हो! भगवान महावीर ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का जो स्वरूप प्रतिपादित किया था, उसमें कालान्तर से कितना नया विकास हो गया है—तथा आज इन तत्त्वों की मीमांसामें कितनी नई विचारणा उत्पन्न हो गई है – इसका सच्चा ज्ञान सम्यग् दृष्टि की मदद से ही हो सकता है। किसी समय में केवल तात्त्विक विचार भेदों का समन्वय करने वाला अनेकान्तवाद कहाँ और आज विज्ञान के विशाल

प्रदेश की समस्याओं को हल करने वाला तथा नई समस्याओं को उपस्थित करने वाला प्रो० आइन्सटाइन का सापेक्षवाद कहाँ ? एक समय में केवल मोक्ष-प्राप्ति के ध्येय को ध्यान में रख कर प्रतिपादित अहिंसा कहाँ और आज समाज और राजनीति के प्रदेश को स्पृश करती हुई असहयोग और सत्याग्रह के मर्म को समझाने वाली अहिंसा कहाँ ? इस तरह छोटे से बीज में से उगे हुए महान् वृक्षों की भव्यता का आनन्द सम्यग् दृष्टि द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

सम्यग् दृष्टि और भगवान् महावीर—

भगवान् महावीर के प्रति भी यदि हम नये दृष्टिकोण से विचार करें तो कुछ फर्क मालूम पड़ेगा। संप्रदाय दृष्टि से भगवान् महावीर के अतिशय-अतीन्द्रियता-का खूब महत्व मालूम होता है, तथा 'जिनकल्प' और 'स्थविर कल्प' — इस प्रकार उनके और हमारे बीच में भेद डाल कर यह दृष्टि उनके चरित्र को अनुकरण की सीमा से बाहर ले जाती है। किन्तु सम्यग् दृष्टि इस अतिशय और अतिन्द्रियता की तह में रहा हुआ उनका एक आदर्श मनुष्य की तरह सुन्दर मनोहारी अनुकरण योग्य चरित्र प्रकाश में लाती है। इस विशाल जगत् के सनातन इतिहास की दृष्टि से उनका सर्व श्रेष्ठत्व शायद विवादास्पद मालूम पड़े-पर जिस प्रकार सांसारिक जीवन में हम अपने माता पिता से बढ़ कर किसी को नहीं मानते वैसे ही धार्मिक जीवन में अपने धर्म पिता की तरह उनकी (महावीर की) सर्वश्रेष्ठता अविचल एवं अबाधित है। परन्तु उनके सर्वज्ञत्व में पूर्वोक्त क्रान्त-दर्शन की कल्पना के अनुसार थोड़े रूपान्तर की संभावना है। इस तरह से कितनी ही मधुर मान्यताओं को छोड़ने में, पुराने चश्मों को उतारने में, कई अन्य कल्पनाओं को एक तरफ रख देने में हमको शुरू-शुरू में कुछ बुरा मालूम होगा, पर परिणाम में विशद विचार सरणि के लाभ की पूरी संभावना है। साम्प्रदायिक अन्धता और उच्छेदक वृत्ति का मोह दोनों ही प्रगति विरोधक हैं, केवल सम्यग् दृष्टि ही सच्ची प्रगति का राजमार्ग है।

सम्यग् दृष्टि की आवश्यकता किस लिये ?

इस विषय का इतना लम्बा प्रतिपादन करने का कारण यह है कि अपने नवयुवक श्रुति, स्मृति और धर्म शास्त्रों को अर्थहीन प्रलाप मान कर फेंक दें — यह बात मुझे जितनी असह्य है—उतनी ही असह्य मेरे लिये यह दशा भी है जिसमें नये विचार, नई भावनाओं और नये वैज्ञानिक संशोधनों को अपने जीवन में उतारने में वे पूर्व ग्रहों या परम्परा के मोह के कारण पीछे पड़े रहें और समाज के नव विधान के लिये निरुपयोगी बन जांय। इसलिये मैं अपने नवयुवकों से ऊपर वर्णन की हुई सम्यग्दृष्टि को ग्रहण करने का खूब आग्रह करता हूँ।

हमारी आजीविका के साधन

[श्री सिद्धराज ढड्ढा, एम० ए०, एल-एल० बी०]

> श्रीयुत ढड्ढाजी 'ओसवाल नवयुवक' के पाठकों से शायद ही अपरिचित हों—वे 'नवयुवक' के बहुत पुराने लेखक हैं। लेख आपके सामने है। देखिये उनके विचारों की प्रौढ़ता, शैली की प्रभविष्णुता और विषय की तीव्र अन्तर्दृष्टि! आप हमारे समाज के एक अग्रगण्य विचारक युवक हैं, जिनके हृदय में समाज और देश के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण सहानुभूति है। आजकल आप इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स के स्थानापन्न सेक्रेटरी हैं।

आजीविका उपार्जन आजकल हमारे समाज के लिये ही नहीं पर सारे देश के लोगों के लिये एक जटिल प्रश्न है। अनपढ़ लोगों से भी कहीं अधिक मात्रा में पढ़े लिखे युवकों के लिये कमा कर खाने का सवाल दिन पर दिन टेढ़ा होता जा रहा है। पढ़े-लिखे युवक अधिकतर मध्यमश्रेणी के घरानों में हैं--अतः उनकी बेकारी ने जल्दी ही -समाज, सरकार और समाचार पत्रों का -सबका ही- ध्यान खेंच लिया है। हमारे देश के कितने ही प्रांतों में तो सरकार की ओर से बेकारी के प्रश्न पर विचार करने के लिये कमीटियां नियुक्त हो चुकी हैं और सरकार के काम जिस ढंग से हुआ करते हैं, उस ढंग से 'कुछ' योजनाएँ भी काम में लाई जा रही हैं।

हमारे समाज में अभी बेकारी ने प्रत्यक्ष में इतना उग्र रूप धारण नहीं किया है। 'प्रत्यक्ष में' ही क्योंकि वास्तव में तो आजीविका का यह प्रश्न हमारे समाज में भी उसी सीमा तक पहुँच चुका है जितना सारे देश में। फर्क केवल इतना ही है कि हमारे समाज के युवक अधिक संख्या में पढ़े-लिखे नहीं होने से और हमारी जाति को 'व्यापार' से पुश्तैनी प्रेम होने से, वे नौकरी के लिये जगह-जगह घूमते नहीं फिरते पर कोई न कोई काम करके, जिसे वे तथा समाज 'व्यापार' के नाम से पुकारता है, अपना पेट भरते हैं। पर हजारों की संख्या में केवल दलाली में लगे रहना, ब्याज पर रुपया उधार देने का धंधा करना या वह भी न करसकने पर 'फाटका' सट्टा करना क्या 'व्यापार' कहा जा सकता है? और जिस समाज के अधिकांश लोग ऐसे कामों से ही अपनी आजीविका प्राप्त करते हों वह समाज चाहे प्रत्यक्ष में न सही पर वास्तव में तो बेकारी का भीषण मूर्त्तिमान स्वरूप ही है और आगे-पीछे उसे इस समस्या का नग्नरूप में सामना करना ही पड़ेगा। ऐसे अनुत्पादक (unproductive) धंधों में लगे रह कर कब तक कोई भी समाज या जाति अपना अस्तित्व रख सकते हैं-- यह विचार करने की बात है। आज भी हमारी समाज में अपेक्षाकृत ऊपरी शान्ति की तह में दरिद्रता, निराशा और अकर्मण्यता का अन्धकार छाया हुआ है।

व्यक्तिगतरूप से मैं तो इस बात में विश्वास रखने वालों में से हूं कि यह सब रोग अब पुराने और दुःसाध्य हो गये हैं और अब तो एक बार सर्वनाश-मृत्यु-होने पर ही नवीन जीवन का निर्माण हो सकता है— पर फिर भी अन्तिम समय तक आशा रहती ही है और इसी नाते समाज की आजीविका के इस प्रश्न पर कुछ विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

'कमाने' का सम्बन्ध चाहे कितना ही रुपये आने पाई से क्यों न हो अन्त में मनुष्य के अधिकतर सांसारिक प्रयत्नों का ध्येय—पदार्थों का उपभोग है—और इसलिये वही मनुष्य वास्तव में 'कमाता' है जो कोई न कोई चीज उपजाता है—चाहे फिर वह धान हो—कपड़ा हो, जूता हो या और कोई काम में आनेवाला पदार्थ। पुराने जमाने में आजकल के कारखानों के युग के पहले—लोग अपने २ गांव में अपने उपभोग में आनेवाली करीब २ सभी सामग्री अपने आप पैदा कर लेते थे और व्यापार या लेन-देन कुछ आवश्यक चीजों का या केवल बहुमूल्य चीजों का ही होता था। कल कारखानों और बड़े पैमाने की उत्पत्ति (Large scale production) के आज के युग में ऐसा स्वावलम्बन विशेष प्रकार के प्रयत्न के बिना तो असम्भव सा ही हो गया है, पर फिर भी हम आसानी से जन समुदाय को उन दो हिस्सों में बाँट सकते हैं— जो अपनी आजीविका उत्पादक (Productive) या अनुत्पादक (Unproductive) साधनों से प्राप्त करते हैं। पूंजी और मजदूरी-मेहनत और उसके फल-के जटिल सवालों को थोड़ी देर के लिये दूर रख कर देखें तो कह सकते हैं कि जो आदमी किसी भी वस्तु के उपजाने के काम में लगा हुआ है उसे 'उत्पादक' कार्य में लगा हुआ समझना चाहिये और जो किसी ऐसे काम में न लगा होकर केवल दिमागी काम में या और किसी ऐसे ही कार्य में लगा हुआ हो जिसका किसी भी पदार्थ के उपजाने से कोई सीधा सम्बन्ध न हो, उसे अनुत्पादक में। यह बात मानी जा सकती है कि समाज में सदा कुछ ऐसे आदमियों की जरूरत होती है जो अनुत्पादक कामों में लगे हों। पर यह सीधी सी बात है कि जितने आदमी अनुत्पादक कामों में लगे होंगे उतने ही प्रमाण में समाज के बाकी आदमियों को उपभोग की चीजें तैयार करने में ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। इस तरह देखा जाय तो दलाली, साहूकारी या सट्टे जैसे अनुत्पादक कामों में लगे हुए आदमी समाज के लिये भार रूप होते हैं। उनके उपभोग की वस्तुएं तैयार करने को दूसरे आदमियों को उतनी ही अधिक मेहनत करनी पड़ती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है—ऐसे भी कुछ आदमियों की समाज को जरूरत होती है, और उस हद तक समाज के दूसरे व्यक्ति उनका भार भी उठा सकते हैं पर यह निर्विवाद है कि ऐसे अनुत्पादक कामों में लगे हुए आदमियों की संख्या ज्यादा होना समाज के अस्तित्व के लिये घातक है। वास्तव में बेकारी का अर्थ ही ऐसे अनुत्पादक कार्यों में लगे हुए या दूसरी तरह से कहें तो, उत्पादक कार्यों में न लगे हुए आदमियों की संख्या का आवश्यकता से अधिक बढ़ जाना है। और इसलिये बेकारी का सब से सरल और सीधा उपाय यही है कि जहाँ तक हो सके ऐसे आदमियों को उत्पादक कामों में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। और जो समाज या जाति सारी की सारी ही अनुत्पादक कामों में लगी हुई हो उसका भविष्य कितना अनिश्चित और निराशा पूर्ण होगा यह अब पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

यह तो हुआ हमारे समाज की वर्तमान दशा पर

विचार। इससे यह स्पष्ट है कि यदि समाज को एक अनिश्चित और अन्धकारमय भविष्य से बचना है तो उसे चाहिये कि वह अपने नवयुवकों के लिये उत्पादक कामों के क्षेत्र ढूंढ निकाले। ऐसे उत्पादक कामों में छोटे और बड़े दोनों ही पैमानों पर होने वाले उद्योग-धन्धे और कल कारखाने तथा खेती यही मुख्य हैं।

यह सन्तोष का विषय है कि समाज के कुछ आदमियों का ध्यान इस ओर लगा है और वे इन मान्यताओं पर विचार करने लगे हैं। पर इन बातों में भी लोगों का ध्यान अभी औद्योगिक व्यवसायों की ओर जितना गया है उतना खेती की ओर नहीं। जैसा ऊपर कहा है बेकारों में से अधिकांश लोग मध्यमश्रेणी के हैं और उनका सम्बन्ध शहरों से और पाश्चात्य औद्योगिक सभ्यता से अधिक रहा है इसलिये उद्योग-धन्धों की बात तो उनको फिर भी समझ में आती है पर खेती की ओर, जिस क्षेत्र में सचमुच उत्पादक कार्य का सब से बड़ा Field है, अभी लोगों का बहुत कम ध्यान गया है। पर विशेष कर हमारे देश में जहाँ खेती के लिये विशाल भूखण्ड और उत्तम जलवायु के साधन प्राप्त हैं—यह क्षेत्र बेकारी के प्रश्न को हल करने में मुख्य स्थान रखता है और खेती तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों के पुनर्निर्माण पर ही देश का भावी अवलम्बित है। बड़े पैमाने पर होने वाले व्यवसायों और उद्योगों की आवश्यकता भी है ही पर यदि हमें इन सब चीजों से अन्य देशों में होनेवाली विषमताओं और जटिल समस्याओं से सबक्र सीख कर उनसे बचना है—तो इस प्रकार के औद्योगीकरण की रचना अमुक निश्चित सिद्धान्तों पर करनी होगी और मुख्यस्थान खेती और छोटे उद्योग-धन्धों को ही देना होगा।

हमारा समाज अहिंसा में मानने वाला है। अहिंसा की मान्यता के कारण ही कुछ पेशे और व्यवसाय हमारी जाति के लिये वर्जित भी समझे जाते हैं। पर आज तो उस मान्यता की विकृति से हमारे जीवन और सिद्धान्तों में एक आश्चर्यजनक वैषम्य आ गया है। पचास रुपये उधार देकर सौ का झूठा दस्तावेज लिखवाने वाला, और ७५ फी सदी ब्याज खानेवाला 'साहूकार' अहिंसक; और अपनी आजीविका के लिये की हुई कृषककी निर्दोष मजदूरी प्रवृत्तिमय और अतः पाप का पात्र समझी जाती है। इसी "प्रवृत्ति-निवृत्ति" के विकृत सिद्धान्त के कारण हमारे समाज में यह धारणा हो गई है कि खेती पाप का साधन है और अतः वर्जित है। पर ऐसा कहने वाले लोग महावीर के "आनन्द" आदि उन गृहस्थशिष्यों की बात भूल जाते हैं जिनके हजारों बीघों की खेती थी और हजारों ढोरों के झुंड रहते थे। किसी भी कार्य में पाप समझना और साथ ही उसके फल का उपभोग करना मेरी तुच्छ समझ में तो आत्म वञ्चकता ही नहीं कायरता भी है। खेती में पाप समझना और खेतों में उत्पन्न हुए पदार्थों का उपभोग करना उसी प्रकार की कायरता है। सच तो यह है कि यदि सब से निर्दोष-निष्पाप-साधन आजीविका का कोई है तो वह खेती है—क्योंकि यही प्राकृतिक मार्ग है। हमारी आवश्यकताओं के लिये—खाने-पीने और पहनने के लिये जो चाहिये—वह दूसरे प्राणियों का शोषण किये बिना प्रकृति से प्राप्त कर लेना- इससे बढ़ कर निर्दोष साधन आजीविका का मेरी समझ में तो नहीं हो सकता।

अतः समाज के नवयुवकों से मेरी प्रार्थना है कि यदि वे बेकारी के भयंकर रोग से समाज को बचाना चाहते हैं तो दलाली—या सट्टे-फाटके जैसे अनुत्पादक कामों को छोड़ कर—उद्योग-धन्धों और खास कर खेती जैसे कामों की ओर ध्यान दें जो सबसे स्वाभाविक उत्पादक व्यवसाय है।

बादल

[श्री दिलीप सिंघी]

श्रीयुत 'दिलीप' के भाव-गीत हम बराबर पाठकों की सेवा में देते आ रहे हैं ! लेखक की सक्रिय मनो-व्यथा उनके काव्य का प्राण है ! आप कृषि प्रेमी हैं—खेती करते हैं, अतः 'बादलों' से आपका विशेष सम्पर्क रहता है। देखिये, "बादल" के प्रति कितनी मार्मिक अनुभूति का चित्रण किया है, इस गीत में। —सम्पादक

बादल ! ये तृषित नेत्र टकटकी लगाये तुम्हारी मन्थर गति को निहार रहे हैं कहाँ जाओगे ?

किसकी खोज में हो ? यही तुम्हारी प्रियभूमि है, बहको मत, मेघ !

ये पर्वत शिखायें, ये वाटिकायें तुम्हारे विरह में कैसी व्यथित हो रही है. वह देखो तुम्हें निहार कर उनके मलिन मुख पर एक हलकी-सी मुस्कान दौड़ रही है, महीनों के विदेश गमन के पश्चात् तुम्हारे दर्शन हुए हैं।

मुद्दत से ये लतिकायें, ये वनराजि वायु के झकोरों को अपने रक्त की भेंट दे दे कर तुम्हें अपना प्रेम सन्देश भेज रही हैं, शीत भर ओस के अश्रुओं से अपने दिल का गुब्बार निकाला पर अश्रुओं के अवशेष हो जाने पर...आह ! सूख कर कांटा हो गई हैं।

घूर क्यों रहे हो, बादल ? यह काया पलट देख कर ? अमरावती छोड़ कर गये थे, हां, पर वह उजड़ गई है—तुम्हारे विरह में, बरस पड़ो ! जल्दी करो, वह देखो दक्षिण की तेज़ हवा चलने लगी, तुम्हें बरबस कहीं ले जायगी।

यह क्या ? तुम तो जा रहे हो ! आह, आज अपनी ही प्रियभूमि से तुम अनजान हो गये !

सराक जाति और जैनधर्म

[श्री तेजमल बोथरा, कलकत्ता]

यह जानकर हमें अपार हर्ष होना चाहिये कि इसी बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में एक ऐसी जाति निवास कर रही है जो प्रायः अपने निजी स्वरूप को भूल सी गई है। हम लोगों को भी उसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी न थी, किन्तु गवर्नमेण्ट द्वारा प्रकाशित सेन्सस रिपोर्ट और डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ने यह सुस्पष्ट कर दिया है कि इन प्रान्तों में रहनेवाले "सराक" वस्तुतः जैन श्रावक हैं। इन लोगों के गोत्र, रहन-सहन, और आचार-विचार को देख कर केवल यह मालूम ही नहीं हो जाता वरन दृढ़ निश्चय हो जाता है कि ये लोग जैन ही हैं। ये लोग मानभूम, वीरभूम, सिंहभूम, पुरुलिया, रांची, राजशाही, वर्द्धमान, बांकुड़ा, मेदनीपुर आदि जिलों तथा उड़ीसा के कई एक जिलों में बसे हुए हैं। यद्यपि ये लोग प्रायः अपने वास्तविक स्वरूप को भूल से गये हैं, फिर भी अपने कुलाचार को लिए हुए कट्टर निरामिष भाजी हैं। धर्म कर्म के सम्बन्ध में वे अपने कुलाचार और भगवान पार्श्वनाथ के उपासक हैं इससे अधिक ज्ञान नहीं रखते। न उनका किसी खास धर्म की ओर राग ही है। पर हां ! यह उनमें से प्रायः सभी अच्छी तरह जानते और मानते हैं कि उनके पूर्वज जैन थे। वे लोग शिखरगिरि की यात्रा करने जाया करते थे, यह देखने वाले वयोवृद्ध तो उनमें अब तक मौजूद हैं। उन लोगों में ऐसा बंधन था कि शिखरगिरि की यात्रा कर चुकने के बाद फिर वे कृषि कार्य्य न करें। यही कारण हुआ कि उन्हें अपनी दरिद्रता के कारण उक्त नियम पालन में असमर्थ होने पर यात्रा त्याग करने को विवश होना पड़ा। इन लोगों का धन्धा (व्यवसाय) वाणिज्य और कृषि कार्य्य था, पर अब केवल कृषि और कहीं कहीं कपड़े आदि बुनने का काम ही इनकी जीविका निर्वाह का साधन रह गया है। ये लोग ई० सन के पूर्व से ही मानभूम एवं सिंहभूम आदि जिलों में बसे हुए हैं और अपनी भलमनसियत के कारण प्रख्यात हैं। कर्नल डाल्टन का कथन है कि उनमें से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं पाया गया जो जुल्मी साबित हुआ हो, और आज भी वे इस बात का पूरा गर्व कर सकते हैं कि वे अपने और अपने सहवर्तियों के बीच बड़ी शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। अब कहीं-कहीं वे इस बात को भूल कर कि वे जैन ही हैं कहीं अपना परिचय बौद्ध और कहीं हिन्दू कह कर देने लगे हैं। यहां तक कि कोई कोई तो अपने को शूद्र भी समझने लगे हैं। परन्तु निम्न उद्धरणों को देखने से इसमें तनिक भी संशय नहीं रह जाता है कि वे जैन ही हैं और सैकड़ों वर्षों से इस वातावरण (जिसका जैन धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है) में रहने के कारण अपने को भूलने लगे हैं।

सन् १६११ ई० के मानभूम जिले के गजेटियर्स के पेज ५१ व ८३ में से सराक जाति सम्बन्धी विशेष उल्लेख में से पेज ५१ का कुछ अंश :—

Reference is made elsewhere to a peculiar people bearing the name of Sarak (variously spelt) of whom the district still contains a considerble number. These people are obviously Jains by origin and their own traditions as well as those of their neighbours, the Bhumij make them the descendents, of a race which was in the district when the Bhumij arrived; their ancestors are also creditted with building the temples at Para, Chharra, Bhoram and other places in these pre-Bhumij days. They are now, and are creditted with having always been, a peaceable race living on the best of the terms with the Bhumij.

अर्थात इस जिले में एक ऐसी जाति निवास करती है जो सराक नाम से पुकारी जाती है और जिसकी संख्या यहां काफी परिमाण में है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि ये (सराक) उत्पत्ति से जैन हैं। इनके कुलाचार से एवं इनके सहवर्त्ती भूमिजों के परम्परागत प्रवाद से भी यह प्रमाणित होता है कि ये लोग उस जाति के वंशधर हैं जो भूमिजों के आगमन से पूर्व ही यहां वसी हुई थी और जिन्होंने पारा, छरा, भोरम आदि स्थानों में भूमिज-काल से पूर्व ही जिन-मन्दिर बनवाये थे। भूमिजों के साथ हेलमेल, उनका रहन-सहन और सद्व्यवहार इस बात का द्योतक है कि ये लोग सदैव से ही और आज भी शान्ति प्रिय है।

इसी तरह सन १६०८ ई० के पुरी गजेटियर्स के पेज ८५ में भी लिखा है:—

The Saraks are an archaic Community of whom Mr. Gait gives the following account in the Bengal Census report of 1901. The word Sarak is doubtless derived from Srawak, the Sanskrit word for "a hearer" amongst the Jains the term was used to indicate the laymen or persons who engaged in secular pursuits as distinguished from the jatis, the monks or ascetics; and it still survives as the name of a group which is rapidly becoming a regular caste of the usual type. The Buddhists used the same words to designate the second class of monks, who mainly occupied the monasteries; the highest class of Arhats usually lived solitary lives as hermits while the great majority of the Bhikshus, or Lowest class of monks, led a vagrant life of mendicancy, only resorting to the monasteris in times of difficulty or distress. In course of time the Saraks appear to have taken to weaving as a means of livelihood; and this is the occupation of the Orissa Saraks, who are often known as Saraki tanti. There are four main

settlements in Orissa viz ; in the Tigiria and Barmba States, in the Banki Thana in Cuttack, and in Pipli Thana in Puri. The Puri saraks have lost all connection with the others, and do not intermarry with them. Though they are not served by Brahmans, they call themselves Hindus. They have no traditions regarding their origin, but like other Saraks are strict vegetarians. The Saraks assemble once a year (on the Magh Saptami) at the celebrated cave temples of Khandagiri to offer homage to the idols there and to confer on religious matters

सराक एक अति प्राचीन जातियों में से है—जिसके सम्बन्ध में मि० गेट सन १६०१ ई० की बंगाल सेन्सस रिपोर्ट में कहते हैं "यह निश्चय है कि सराक शब्द की उत्पत्ति श्रावक शब्द से है जिसका अर्थ संस्कृत भाषा में "सुनने वाला होता है" जैनों में श्रावक उनको कहते हैं जो यति व मुनियों से भिन्न हैं, अर्थात गृहस्थ हैं। यहां बहुत से सराक बसे हुए है। समय पाकर ये लोग अपने जीविका निर्वाह के लिए कपड़े आदि बुनने लगे हैं और अब ये सराकी तांती कहलाते है। खास कर ये लोग यहां (उड़ीसा) ताड़गिरिया राज्य, कटक का बंकी थाना और पुरी के पिपली थाने में बसे हुए हैं। ये लोग भी अन्यान्य सराकों की तरह कट्टर शाकाहारी हैं। प्रति वर्ष माघी सप्तमी के दिन ये लोग खण्डगिरि की गुफाओं में जाकर वहां की (जैन) मूर्त्तियों की पूजा स्तवना करते है"

और भी बंगाल सेन्सस रिपोर्ट (नं० ४४७) के पेज २०६ में लिखा है—"प्राचीन काल में पार्श्वनाथ पहाड़ के निकटस्थ प्रदेशों में जैनियों की काफी वस्ती थी; मानभूमि और सिंहभूम तो इन लोगों के खास निवास स्थान थे। जैनियों के कथनानुसार भी यह स्पष्ट है कि इन सब प्रन्तों में भगवान् महावीर ने विचरण किया था। वहां की जनश्रुति भी यही है कि प्राचीन काल में इन स्थानों में सराकों का राज्य था और उन लोगों ने कई जिन मन्दिर बनवाये थे। मानभूम में जैनियों के कई प्राचीन स्मारक और सिंहभूम में कई तामे की खानें पाई गई हैं। ये लोग प्राचीन जैन श्रावक है और अब इनकी सन्तान सराक नाम से ख्यात है"।

उपर्युक्त रिपोर्टों के अतिरिक्त भी कई निम्नलिखित ऐसे प्रमाण हैं जिन से यह निःशंसय कहा जा सकता है कि ये लोग जैन सन्तान ही है।

(१) इनके गोत्रों का आदिदेव, अनन्तदेव, धर्मदेव और काश्यप (भगवान पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी का भी यही गोत्र था) आदि नामों का होना। जैनेतर किसी भी जाति में इन गोत्रों का होना असम्भव सा है।

(२) इनके ग्रामों तथा घरों में कहीं २ अब भी जिन मूर्त्तियों का पाया जाना और इनका उन्हें भगवान पार्श्वनाथ के रूप में पूजना।

(३) मानभूम जिले के पाकवीर, पच्चग्राम, बोरम, छरा, तैलकूपी, और देलोआ आदि ग्रामों में; बाकुड़ा जिले के बहुलारा ग्राम में, और वर्द्धमान जिले के कटवा ताल्लुके के उज्जयिनी ग्राम के निकट जिनमूर्त्तियों का पाया जाना।

(४) देलोआ (कातरासगढ़) जैन मन्दिरों के एक शिला लेख में—"चिचितागार आउर श्रावकी

रक्षा वंशीपरा" का लिखा होना जिसका अर्थ यह है कि ये सब चैत्यागार एवं जिन मन्दिर श्रावक वंशजों के तत्वावधान में रहे।

(५) इन लोगों का कट्टर निरामिष भोजी होना-यहां तक कि अनन्त काय-जमीकन्दादि फलों से भी परहेज करना।

जिसके सम्बन्ध में एक कहावत भी प्रचलित है।

"डोह डुमुर पोड़ा छाती, यह नहीं खाय सराक जाति"

अर्थात सराक लोग इन चीजों को नहीं खाते (जैनेतर किसी भी जाति में फल विशेष से परहेज नहीं पाया जाता)।

(६) कहीं २ यहां तक पाया जाना कि उनके भोजन करते समय यदि कोई 'काटो" शब्द का उच्चारण करले तो वे भोजन तक करना छोड़ देते है।

(७) इनका रात्रि भोजन को बुरा मानना। कई एक करते तक नहीं।

(८) पुरी जिले के सराकों का माघ सप्तमी के दिन खण्डगिरि की गुफाओं में जाकर वहां की मूर्त्तियों के सम्मुख निम्न भजन का बोलना।

तुमि देख हे जिनेन्द्र, देखिले पातक पलाय
प्रफुल्ल हल काय।

सिंहासन क्षत्र आछे, चामर आछे कोटा।
दिव्य देह केमन आछे, किबा शोभाय कोटा॥
तुमि देखहे ··· ····

क्रोध मान माया लोभ मध्ये किछु नाहि।
रागद्वेष मोह नाहि एमन गोसाञिं॥ तुमि ·······
केमन शान्त मूर्त्ति बटे, बले सकल भाया।
केवेलीर मुद्रा एखन साक्षात देखाय॥ तुमि······ ··
आर (अपर) देवेर सेवा हले, संसार बाड़ाय।
पार्श्वनाथ दर्शन हले, मुक्तिपद पाय। तुमि··· · ·

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लोग (सराक) जैन सन्तान ही हैं। पर यह सब होते हुए भी सैकड़ों वर्षों से इनका ऐसे देश और जाति के साथ निवास करना कि जिसका जैन धर्म से सम्बन्ध छूटे शताब्दियां की शताब्दियां बीत गई और जहां हिंसा का साम्राज्य सा छाया हुआ है। जहां न साधु समागम ही रहा है। जहां उदर पूर्ति की समस्या के सिवाय धर्मादि विषयोंपर कोई चर्चा ही नहीं वहां यदि ये अपने वास्तविक परिचय को भूलने लगें तो इस में आश्चर्य्य ही क्या? फिर भी यह जैन धर्म की छाप का ही प्रभाव है कि आज भी ये लोग अपने कुलाचार को लिये हुए हैं। पर यदि हम लोग अब भी उस ओर से बिलकुल उदासीन ही रहें; उनकी ओर अपने कर्त्तव्य का कुछ भी खयाल न किया तो सम्भव है कि ये अपनी रही सही यादगारी को भी भूल जांय।

लिखते बड़ा ही दुःख होता है कि जहां दुनिया की सारी जातियां अपने २ उत्थान के उद्योग में तीव्र गति से काम कर रही है वहां हमारा जैन समाज (जाति) कान में तेल डाले प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ है।

अब भी समय है कि हम चेत जांय नहीं तो जैसे हम थोड़े ही काल में एक करोड़ से घटकर केवल १२ लक्ष ही रह गए हैं, वे भी न रह सकेंगे। हमारे लिए यह सुवर्ण अवसर है कि हम अपने आदि जैन (सराक) बन्धुओं को पुनः उनके वास्तविक स्वरूप में लाकर थोड़े ही उद्योग से १२ लक्ष से १३ लक्ष हो जांय और उन्हें पथच्युत होने से भी बचालें। यह हमारे लिए परम सौभाग्य की बात हैं कि श्रीमान् बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी, गणेशलालजी नाहटा एवं अन्यान्य कई एक महा-

नुभावों का ध्यान इस महत् कार्य की ओर आकर्षित हुआ है और उनकी प्रेरणा से हमारे परमपूज्य न्याय-विशारद न्याय-तीर्थ-उपाध्याय श्री मगलविजयजी महाराज एवं उनके शिष्यरत्न श्री प्रभाकर विजयजी महाराज, जी-जान से इन (सराकों) में धर्म प्रचार कर रहे है, केवल इतना ही नहीं कलकत्ता व भरिया में "श्री जैन धर्म प्रचारक सभा" नामक संस्थाएं भी प्रचार कार्य के लिये स्थापित की गई है और प्रचार कार्य्य में काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। हमें भी चाहिए कि हम अपने तन मन और धन से इस महान कार्य्य में जुट जांय। जहां संसार के प्राणी मात्र पर हमारी यह भावना होनी चाहिए कि "सवि जीव करु शासन रसी' वहां यदि हम इन सुलभ बोधी भाइयों (जो यह चाहते हैं कि हम उन्हें अपना लें) का भी उद्धार न कर सकें, इससे बढ़कर हमारे लिए शर्म और खेदकी बात क्या हो सकती है। हमारे सामने यह एक ही ऐसा महान कार्य्य है कि जिस में हमारा प्रधान से प्रधान कर्त्तव्य और जिन शासन की महती सेवा समायी हुई है। अतः मैं अपने पूज्य धर्माचार्य्य मुनि महाराज, और सहधर्मी बन्धुओं से यही विनम्र प्रार्थना करूंगा कि वे इन बिछुड़े हुए भाइयों को उनके वास्तविक स्वरूप में लाकर महान से महान पुण्य के भागी बनें। और संसार के इतिहास में अपने नाम को स्वर्णाक्षरों से लिखा कर अपनी कीर्त्ति को अमर कर जांय।

नोट : सराक जाति सम्बन्धी विस्तृत साहित्य में से प्राप्य पुस्तकों और पत्रों का विवरण :

Reference to the 'Sarak' or 'Sarawak' can be had in the following books and Journals :—

1. A Statistical Account of Bengal Vo XVII (Tributary States & Manbhum) by W W Hunter Published in London 1877 See Pages 291. 293 and 301-2.
2. Archaeological Survey of India Reports Vol VIII Bengal Province by Cunningham 1878. See Tour through the Bengal Province in 1872-73 by J D, Begler
3. Journal of Asiatic Society of Bengal Vol XXXV 1866 Part I Page 186 Notes on a tour in Manbhum in 1864-65 by Leiutnant Colonel E T. Dalton Chief Commissioner of Chota Nagpur-Part II Page 164. Do
4. Proceedings of the Asiatic Society for June 1869 Page 170 On the Ancient Copper Miners of Singhbum by V. Ball Geological Survey of India.
5. The people of India by Sir Herbert Risley K C I E, C I. E 1908 Page 77
6. Bengal District Gazetteer 1910 Vo. XXVII Manbhum Pages 48-52 83-85 and 263 289.
7. Bengal District Gazettoer 1910 Vo XX Singhbhum Page 25
8. Puri (Orrissa) Gazetteer 1908
9. Tribes & Castes of Bengal by H. M. Risley Vol II Ethnographic Glossery 1891.
10. Gait's Census Reports of 1911. No 455 pages 209 No. 457
11. Ethology of Bengal by Dalton.
12. Archaeological Survey 1911 by Nagendro Nath Basu.
13. Asiatic Researches Vol IX by Prof Wilson.

किस ओर ?

[श्री मोतीलाल नाहटा, 'विश्वेश', बी० ए०]

जा रहा था रवि पश्चिम ओर,
कमल-दल का मुख हुआ मलीन।
दुखी था चक्रवाक निशि देख,
प्राचि दिशि-मुख था ज्योति विहीन ॥

खड़ी शशि-स्वागतार्थ सन्ध्या,
बिछा कर अपना अञ्चल श्याम।
विहग थे लौट रहे गृह-ओर
कृषक भी जाते थे निज धाम ॥

बह रहा सुरभित सरस समीर
कुसुम-कुल था आनन्द विभोर।
तरुणि सन्ध्या-लावण्य-प्रकाश
छा गया नभ में चारों ओर ॥

देख तम रञ्जित राका का
आगमन पथिक हुए हैरान।
चले द्रुत गति से सब गृह ओर,
खटकता था दिन का अवसान ॥

हो गया राका का उद्भाव,
लेकर सँग अनुचर तम-तोम।
आवरण से क्षिति मुंह ढक गया,
हुआ कालिमा कज्जलित व्योम ॥

तिरोहित तारक-चय भी शीघ्र,
सदन छोड़ बाहर आया।
किन्तु न जाने क्यों अवनि पर
पड़ रही थी श्यामल छाया ॥

लिये निशि मुक्ताओं का हार,
प्रतीक्षा प्रियतम की करती।
किन्तु द्विज को न आता देख,
विपद आशङ्का से डरती ॥

क्षपा के मुख पर फिर सहसा
विषाद की प्रकटी इक रेखा।
बीतने इक क्षण भी न पाया,
इन्दु को राहु-ग्रसित देखा ॥

× × × ×

छोड़ क्षिति-नभ पर तम का राज्य
शून्य करके रजनी का अंक।
चला जा रहा था किस ओर ?
कालिमा कवलित कलित मयंक ॥

"उसका नारीत्त्व आदर की वस्तु है, माधव ! क्रीड़ा की नहीं ।"... ...पर माधव के जीवन में वैभव की उद्दण्डता खेल रही थी ।

वैभव का अभिशाप

[श्री दुर्गाप्रसाद झुनझुनवाला बी० ए०]

वै

रात के ग्यारह बज चुके थे। घनघोर बादल छाये हुए थे। वर्षा वेग के साथ हो रही थी। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था। हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। देहात का माजरा था, पगडण्डियों का मार्ग। उस पर कीचड़ और फिसलन ने और भी दुर्गति कर रक्खी थी। रास्ता चलना मुश्किल हो रहा था। फिर भी किसी तरह घर तो पहुँचना ही था। भीगते-भागते, गिरते-पड़ते, किसी प्रकार किशोर जल्दी से जल्दी घर पहुँचना चाहता था।

किशोर एक ग्रामीण युवक था। अवस्था लगभग बाईस वर्ष की होगी। घर कोई विशेष सम्पन्न नहीं था किन्तु आराम से था। पिता पहले ही मर चुके थे माता थीं - वह भी पुत्रवधू का मुंह देखने के छै महीने बाद ही चल बसीं। किशोर एम० ए० की परीक्षा देकर घर आने की तैयारी कर ही रहा था कि उसे माता की बीमारी की खबर मिली और वह तुरन्त उनकी सेवा में जा पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे केवल माता का अन्तिम स्नेह और आशीर्वाद ही प्राप्त हो सका। अब घर में केवल स्त्री-पुरुष ही रह गये थे। बाप दादों के घर को सूना छोड़ कर जाना भी मुश्किल था। और जाना आवश्यक भी था। वह एम० ए० में सर्व प्रथम हुआ था। उसे शहर के गवर्नमेंट कालेज में प्रोफेसर का पद मिल रहा था। फिर बैठे बैठे भी कैसे काम चलता। स्त्री को अकेली छोड़ नहीं सकता था। यही सोच कर वह घर बार की व्यवस्था करने में लगा हुआ था। दशहरे की छुट्टियों के बाद ही वह अपने पद पर चला जायगा। उसके पहले ही वह सब व्यवस्था कर डालना चाहता था।

भ

माधव था जमींदार का लड़का वैभव की गोद में पला हुआ। लक्ष्मी उसके चरणों पर लोट रही थी। स्वभावतः ही उद्दण्ड प्रकृति का था। किन्तु फिर भी न जाने कैसे किशोर से उसकी मित्रता थी। किशोर जानता था कि वैभव मनुष्य के कोमल भावोंका शत्रु है। सम्पन्न व्यक्तियों का स्नेह बहुधा स्थायी नहीं होता। फिर भी वह माधव को प्यार करता था। आज किशोर उसी के पास चला गया था। सोचा था तीन ही मील का मामला है। घूमना भी हो जायगा और मित्र से भेंट भी हो जायगी। किन्तु सात बजते ही आकाश में बादल होने लगे। थोड़ी देर बाद ही प्रकृति ने प्रचण्ड रूप पकड़

लिया। किशोर डर रहा था पत्नी घर पर अकेली ही है। वह बार बार माधव से घर जाने की अनुमति माँग रहा था किन्तु माधव कहता था -"वाह! इस तूफान में कहाँ जाओगे ? "दस बजते बजते प्रकृति ने बहुत ही भीषण रूप धारण कर लिया। अब किशोर से नहीं रहा गया। जैसे भी हो उसे जाना ही होगा। प्रकृति की इस भीषणता में अपनी हृदयेश्वरी को वह अकेली नहीं छोड़ सकता। सम्भव था, उसके इस सकल्प में कोई ईश्वरीय प्रेरणा थी। नियति शायद उसके लिये कोई दूसरा ही जाल तैयार कर रही थी।

माधव के यहाँ से चलने के थोड़ी देर बाद ही वर्षा भी साधारण नहीं थी। देहाती मार्ग पर पानी ही पानी हो गया था। किशोर कई बार गिरते गिरते बचा। उसके सभी कपड़े भीग गये। शरीर जाड़े के मारे थर थर काँप रहा था। फिर भी वह गिरता-पड़ता जल्दी जल्दी चला जा रहा था। अभी भी गाँव तीन चार फर्लाङ्ग की दूरी पर था। सहसा बिजली की चमक में उसके समीप ही एक मनुष्य-मूर्ति खड़ी दिखाई दी। किशोर में यथेष्ट साहस था। चोरों से वह नहीं डरता था। भूतों में उसका विश्वास ही न था। किन्तु फिर भी प्रकृति की इस भीषणता में ऐसे निर्जन सुनसान स्थान में अपने समीप ही मनुष्य की एक अस्पष्ट छाया को देख कर उस दिन वह आशंका से सहम उठा। कुछ देर तो वह निश्चेष्ट सा खड़ा रहा। फिर साहस बटोर कर उसने कहा "कौन है ? इस समय ऐसे निर्जन स्थान में क्यों खड़ा है ?" और साथ ही उसने अपने हाथ के छोटे से देहाती डंडे को संभाला। किन्तु उधर से जवाब नदारद। उसने फिर कर्कश स्वर में कहा--"जल्दी बोलो, तुम कौन हो ? नहीं तो मैं वार करता हूं। "वह दो कदम और आगे बढ़ गया। इस बार एक कम्पित से क्षीण स्वर में उसे उत्तर मिला—"मैं हूं एक किस्मत की सताई हुई अभागी बालिका।"

"बालिका!" किशोर का उठा हुआ हाथ अपने आप नीचे हो गया। एक बालिका! और इस भयंकर समय में ऐसे स्थान पर। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बोला 'तुम ऐसे समय में यहाँ क्यों हो ? घर क्यों नहीं जाती ? क्या तुम्हारे घर नहीं है ?"

उत्तर में फिर उसी वेदना भरे स्वर ने कहा—'घर तो था किन्तु किस्मत ने छीन लिया। आफत की मारी हूँ। किसी आश्रय की तलाश में हूँ। "किशोर का हृदय सरल था। बालिका के वेदना भरे स्वर ने उसकी सहानुभूति को चंचल कर दिया। उसका हृदय उस दुखी बालिका के संकट का साथी होने के लिए व्याकुल हो उठा। अन्धकार में कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं था किन्तु आवाज के लक्ष्य में दो कदम और आगे बढ़ कर उसने कहा 'बहन, तुम चाहे कोई भी हो, मेरे साथ चलो। रात भर मेरे घर पर विश्राम करो सवेरे तुम्हारा हाल सुन कर जैसा होगा वैसा किया जायेगा। देखो अन्धेरा है। मेरा हाथ पकड़ लो, बहन। डरने की कोई बात नहीं है।" बालिका उसके सरल स्वभाव और स्नेह पूर्ण आश्वासन पर मुग्ध हो रही थी। उसे एक सहारा मिल रहा था और वह उस सहारे पर अपना सारा बोझ डाल देना चाहती थी। उसने किशोर का हाथ पकड़ लिया और उसके साथ चली।

घर पहुँच कर किशोर ने दरवाजा खट खटाया। मालती भीतर से ही बोलती आ रही थी— "इस भयानक रात में कहाँ कहाँ मारे भटक रहे हो ? घर की भी सुध है या नहीं ? "किन्तु दरवाजा खोलते ही दीपक के मन्द प्रकाश में पति के पीछे एक स्त्री को देख कर वह ठिठक सी रही। किशोर ने उसका सन्देह दूर करने के

लिये उस बालिका का हाल कह सुनाया। मालती उसके पास गई और दीपक को बालिका के मुंह के आगे किया। बालिका बदहवास सी हो रही थी उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। वेदना की अगणित आकुल भावनायें उसके मुख को विकृत किये हुए थीं। मालती का स्वभाव बड़ा ही स्नेह-शील था। वह आर्द्र हो उठी बालिका की इस दशा पर। वह उसे अपने हृदय में छिपा लेने को व्याकुल हो उठी।

थोड़ी ही देर बाद सूखे कपड़े पहन कर वह बालिका मालती की गोद में मुंह छिपाये अपने उत्तप्त आंसुओं से हृदय की कृतज्ञता को प्रकट कर रही थी। किशोर का हृदय निश्छल आनन्द के हिंडोले पर मग्न हो कर झूल रहा था।

ब

"तुम कहती हो कि बदमाश तुम्हें जबर्दस्ती उठा लाये और उसके बाद तुम दैवगति से किसी प्रकार उनके पंजे से छूट गई। इसमें तुम्हारा तो कोई कसूर नहीं है। फिर तुम अपने पिता के घर जाने में क्यों डरती हो?"

किशोरी (यही उस बालिका नाम था) सरल हृदय किशोर के इस प्रश्न को सुन कर व्याकुल हो उठी। वह अब केवल बालिका ही नहीं थी। उसका शैशव यौवन से क्रीड़ा कर रहा था। उसका सौन्दर्य उसके एक एक अंग में मादकता भर रहा था। प्रत्येक अवयव में एक अज्ञात अभिलाषा की स्फूर्ति फड़क रही थी। वह अब दुनिया को कुछ समझती थी। किशोर की सरलता पर उसे वेदना हुई। किशोर ने कालेजों में शिक्षा प्राप्त की थी। वह पुस्तकों का विद्वान्-प्रकाण्ड पंडित था। किन्तु अभी वह संसार को न जानता था। किशोरी उससे कैसे कहे कि अब पिता के घर में उसके लिये स्थान नहीं है। इसकी कल्पना ही किशोर के कोमल हृदय के लिये कष्ट प्रद हो सकती। वह चुप रही।

किन्तु किशोर ने फिर भी कहा- "चलो, मैं तुम्हे तुम्हारे पिता के यहां पहुँचा आऊँ। वे तुम्हारे लिये व्याकुल हो रहे होंगे।"

अब कहे बिना भी काम नहीं चल सकता था। किशोरी ने कहा—"भइया, तुम्हारा हृदय सरल है। तुम अभी संसार को नहीं जानते। मेरे लिये अब उस घर में स्थान नहीं है। मैं इतने दिनों तक घर से बाहर न मालूम कहां-कहां, कैसे-कैसे आदमियों के साथ, किस प्रकार रही। क्या यह सन्देह का पर्याप्त कारण नहीं है? क्या इतने पर भी समाज मुझे अंगीकार कर लेगा? भाई, हमारे समाज की व्यवस्था ही ऐसी है। इस समय में इस विशाल विश्व में निराश्रय और निराधार हूं। सब कुछ होते हुए भी अनाथा। किस्मत ने मुझ से आज मेरा सब कुछ छीन लिया!" इतना कहते-कहते किशोरी रो पड़ी।

किशोरी की बातों में वास्तविकता का एक ऐसा नग्न चित्र था जिसका भीषण रूप देखते ही किशोर कांप उठा। उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। वह निराश होकर कुर्सी पर गिर पड़ा। वास्तव में यह सत्य था कि किशोरी के लिये अब उस समाज में स्थान नहीं था। फिर उसके प्रति अब किशोर का क्या कर्तव्य है? क्या वह उसे इस विश्व में यों ही निराश्रय छोड़ दे? क्या वह अपनी आंखों के आगे ही अपनी एक बहन को दरदर की ठोकरें खाते हुए देखे? और अन्त में इसका परिणाम क्या होगा यह सोच कर ही किशोर की आत्मा कांप उठी। नहीं, उससे ऐसा पाप न हो सकेगा। वह अपनी बहन को अपनी गोद में छिपा कर रक्खेगा। संसार की प्रतारणायें उस

पर पड़ें, विपत्तियों के पहाड़ उस पर टूट पड़ें, फिर भी वह अपने स्नेहपूर्ण आश्रय से अपनी बहन को कभी अलग नहीं करूंगा। इस निश्चय के साथ ही उसके मुख पर कर्त्तव्य की ज्योति सी जग उठी। एक अपूर्व तेज में उसका मुख देदीप्यमान हो गया। उसने स्नेह-कम्पित स्वर में कहा - "बहन, मेरे रहते तुम निराश्रिता कैसे हो सकती हो? मैं जब तक जीवित हूं, तुम्हें अपनी गोद से अलग नहीं कर सकता! मुझे समाज की और संसार की परवाह नहीं है। हमारा संसार अलग होगा जहाँ स्नेह की शीतल धारा हमारे सन्तप्त हृदय को निरन्तर शान्ति प्रदान करेगी।"

मालती अभी तक एक विचित्र ही अवस्था में खड़ी थी। एक ही रात के सहवास से उसे किशोरी पर अत्यन्त स्नेह हो गया था। वह डर रही थी यदि किशोर उसे आश्रय देना अस्वीकार कर दे! किन्तु किशोर की यह बात सुनते ही उसने स्नेह-विह्वल होकर किशोरी को गले से लगा लिया। आह! इस स्वर्गीय आनन्द में कितना सुख था! किशोर मस्त हो उठा। इस सुख के आगे उसे संसार की क्या परवाह थी!

इसी समय माधव वहाँ आ पहुँचा 'मुझे दुःख है, किशोर, रात तुम्हें बहुत कष्ट हुआ होगा!...... अरे, यह कौन है? यह तो एक नई ही सूरत देखने में आ रही है। कहाँ से पकड़ लाये इसे?"

किशोर माधव की उच्छृङ्खलता पर दुखी हो रहा था। माधव एक सम्पन्न युवक था। ऐश्वर्य की गोद में पला था। दुःख को वह जानता ही न था। फिर वह दूसरे के दुःख का अनुभव कैसे कर सकता था। फिर भी किशोर ने बालिका का सारा हाल कह सुनाया। किशोरी ने एक बार माधव की ओर देख कर आँखें नीची कर लीं। लज्जा की आरक्त लालिमा उसके मुख पर खेल रही थी। माधव मुग्ध भाव से उस अर्द्ध-विकसित सौन्दर्य को देख रहा था। सहसा उसने किशोर के कान के पास मुंह ले जा कर कहा—"चीज़ तो अच्छी है, यार!" किशोर ने कठोर दृष्टि से माधव की ओर देखा। उस दृष्टि से माधव एक बार सहम उठा और फिर उसने उस समय किशोर से कुछ नहीं कहा। किशोरी मालती के साथ चली गई।

दो तीन दिन बाद माधव फिर किशोर के घर आया और इधर उधर की बातें करने के बाद कहने लगा "भाई किशोर, एक बात कहूँ। नाराज़ न होना। तुम इस बालिका को मुझे दे दो! घर का काम करेगी और पड़ी रहेगी। अनाथ तो है ही, उसे एक सहारा मिल जायगा।" किशोर ने माधव की ओर देखा। उसने माधव के मुख पर एक ऐसा भाव देखा जो उसने आज के पहले कभी न देखा था। माधव के मुख पर लालसा का विकार था। मोह की ज्वाला में उसकी चेतनता भस्म सी हो रही थी। उस पर एक नशा सा सवार था। किशोर उसके इस रूप को देखकर किञ्चित सहम उठा। जीवन में पहली बार उसके सामने ऐश्वर्य के उन्माद में मत्त धनी युवकों के पापमय जीवन का चित्र आया। किन्तु उसका कर्त्तव्य निश्चित था। वह जानता था उसकी परीक्षा का समय आ गया है। वह यह भी समझ गया कि जिसे वह अब तक अपना मित्र समझता था वही अब उसका सर्वनाश करने के लिये तैयार हो जायगा। माधव के पास धन था, ऐश्वर्य था, आदमी थे, साधन थे। किन्तु किशोर! उसके पास तो अपने धर्म के सिवा और कुछ भी न था। फिर भी किशोर अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ था। उसने दृढ़ स्वर में कहा "माधव, वह मेरी बहन है।"

"मैं जानता हूँ, किशोर। लेकिन सारे धर्म के ठेकेदार तुम्हीं तो नहीं हो जाओगे। किशोरी तुम्हारी बहन है - यह जानते हुए भी मैं तुम से कहता हूँ कि उसे मुझे दे दो।"

किशोर माधव की इस उद्दण्डता पर तिलमिला उठा। उसने कठोर स्वर में कहा - "यह नहीं हो सकता, माधव।"

"मैं तो उसे ले जाने को तैयार होकर आया था, किशोर।"

किशोर ने अपने स्वाभाविक स्वर में उत्तर दिया--- "माधव, मैं उस दिन तुम्हारा हृदय से स्वागत करूँगा जिस दिन तुम किशोरी को विवाह कर ले जाने को आओगे। यों किशोरी तुम्हारे यहां नहीं जा सकती। अभी उसका भाई किशोर उसकी रक्षा करने में समर्थ है। उसका नारीत्व आदर की वस्तु है, माधव, क्रीड़ा की नहीं।"

"तुम जानते हो, किशोर, मैं जमींदार का लड़का हूँ। एक ऐसी वैसी बालिका से मैं विवाह तो नहीं कर सकता।"

"तो माधव, मेरे जीते जी यह भी नहीं हो सकता कि किशोरी तुम्हारी लालसा का शिकार हो जाय।"

अबकी माधव ने भी अपना असली रूप प्रकट किया। उसने कहा "किशोर, मुझे दुःख है कि आज मुझे तुम्हें अपना वह रूप दिखाना पड़ रहा है जिसकी तुम शायद आशा नहीं करते थे। मैं तुम से कहता हूँ - तुम्हें किशोरी को मुझे देना ही पड़ेगा। तुम "ना" नहीं कर सकते। क्या तुम इतना भी नहीं सोच सकते कि तुम्हारी इस "ना" का कितना भीषण परिणाम हो सकता है? क्यों नाहक मुझे अपना दुश्मन बना रहे हो?"

किशोर समझता था कि उसके सामने यह समस्या आवेगी और वह इसके लिये पहले ही से तैयार था। उसने तड़प कर कहा - "मैं जानता हूँ, माधव, तुम सम्पन्न हो। तुम्हारे पास धन है, हर प्रकार के साधन हैं। तुम इस धन के बल पर मुझे नष्ट कर सकते हो, मेरा हृदय कुचल सकते हो। किन्तु याद रहे मुझे बरबाद करके भी तुम मेरी आत्मा पर विजय नहीं पा सकते। आत्मा पर स्नेह ही शासन कर सकता है, पशुबल नहीं। जाओ, तुम्हारी शक्ति में जो हो वह करो। मैं सभी आपदाओं का सामना करने को तैयार हूँ। किन्तु अपने जीते जी मैं किशोरी को अपनी स्नेह-छाया से अलग नहीं कर सकता।"

इसी समय मालती ने आकर कहा "माधवजी, तुम्हारे पास धन है, हम निर्धन हैं। इसका यह मतलब नहीं कि धनी लोग निर्धनों की इज्जत पर नजर डालें। तुम अपने धन-मद को लेकर यहाँ से चले जाओ। हम अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हैं। हमें विश्वास है कि परमपिता हम निर्धनों की लाज का रक्षक है।"

माधव ने दाँत पीसते हुए कहा "मैं तो जानता हूँ, किशोर, किन्तु परिणाम के लिये तैयार रहना।"

"हम हमेशा विपत्तियों के स्वागत को प्रस्तुत हैं।"

माधव क्रोध में भरा हुआ चला गया। उसी समय किशोरी दौड़ती हुई आई और कहा- "भइया, मुझे जाने दो। मुझ अभागिनी के लिये अपने सुखमय संसार को बरबाद न कर दो।"

किशोर ने स्नेहपूर्वक कहा "यह तू क्या कह रही है, किशोरी? क्या तू मेरी बहन नहीं है?"

४

दूसरे दिन गाँव में सबके मुह पर एक ही बात थी। जहाँ देखो वहाँ एक ही बात की आलोचना थी—किशोर

ने न जाने कहाँ की एक लड़की को उड़ा कर अपने यहाँ रख लिया है। कितना बड़ा अन्याय है। क्या शिक्षित होने का यही मतलब है? किशोर को तो हम ऐसा नहीं समझते थे। छिः, छिः, किशोर इतना गिर गया! इत्यादि। जो किशोर गांव में सभी के आदर का पात्र था उसी की ओर आज लोग उँगली उठा रहे थे। किशोर का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। चारों ओर से उस पर धिक्कार और घृणा की बौछार थी। माधव का चक्र सफल हुआ।

किशोर का हृदय बड़ा ही व्यथित हो उठा। उसका अब गांव में रहना कठिन था। लाचार, उसने समय से पहले ही शहर जाने की तैयारी की और एक दिन सन्ध्या समय वह मालती और किशोरी को लेकर चल पड़ा। विचार था कि रात की ट्रेन पकड़ कर लखनऊ चला जायगा। किन्तु वह थोड़ी ही दूर गया होगा कि गांव में बड़ी जोर का धुवां उठता दिखाई दिया। उसने सोचा—कहीं आग लग गई है। वह देखने के लिये लौटा तो मालूम हुआ कि आग उसी के घर में लगी है। हज़ारों तमाशबीन इकट्ठे थे लेकिन आग बुझाने की चेष्टा दो चार को छोड़ कर और कोई नहीं कर रहा था। किशोर को आया देख कर किसी ने आवाज़ कसी "देखा, पाप का फल क्या हाथों हाथ मिला है! यही कहा है, भाई, कि हम अपने भाइयों की आँखों में धूल झोंक सकते हैं लेकिन परमात्मा की आँखों में धूल नहीं झोंक सकते।" किशोर ने यह सुना तो उसका हृदय फट सा गया। क्या अच्छे कामों का यही फल है? बाप दादों की एक निशानी थी वह भी जल कर खाक हो गई। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे ख्याल हुआ कि उसका विरोधी तो एक व्यक्ति है। व्यक्ति की शक्ति ही कितनी है जब कि सर्वशक्तिमान के हाथों का साया उसके सिर पर है। उसने उस जलते हुए अपने शैशव के क्रीड़ास्थल और कैशोरावस्था की रंगभूमि की ओर एक हसरत भरी नज़र डाली और चल पड़ा। किशोरी ने सब हाल सुना और उसके सामने आकर बोली - "भइया, अब भी मुझे जाने दो। मेरे कारण अपनी बरबादी न कराओ।" किशोर चञ्चल हो उठा। उसके मुंह से केवल यही निकला—"किशोरी!" किन्तु उसके स्वर में इतनी करुणा थी कि किशोरी विह्वल हो उठी। उसने वेदनामिश्रित स्वर में "भइया" कहा और रोती हुई किशोर के पैरों पर गिर पड़ी। किशोर ने उठा कर उसे गले से लगा लिया और कहा — "बहन, विचलित न हो। यह तो हमारी परीक्षा है!"

और वह धीरे-धीरे स्टेशन की ओर चल पड़ा।

(क्रमशः)

स्याद्वाद-महत्ता

[श्री आनन्दीलाल जैन-दर्शन शास्त्री, न्यायतीर्थ, जयपुर]

(१)

विश्व-शान्ति का अनुपम साधन,
स्याद्वाद मौलिक सिद्धान्त ।
जगति-तत्व आलोकित करता,
हो जाते जब तार्किक भ्रान्त ॥

(२)

वैज्ञानिक-विश्लेषण द्वारा,
प्रकृति-तत्व ज्यों मिलता है ।
नित्य-अनित्य वाद भी त्यों ही,
स्याद्वाद से खिलता है ॥

(३)

वीर-वदन हिमवन से इसका,
धारावाहिक पुण्य-प्रवाह
बहता, आता संसृति-पथ में,
जिसका है साहित्य अथाह ॥

(४)

जब एकान्तिक जग के मारे,
कम्पित वसुधा करते थे ।
अहम्मन्यता के भावों से,
लड़ लड़ कर जब मरते थे ॥

(५)

भू-मंडल पर धर्म-भेद का,
घटाटोप जब छाया था ।
ले अवतार वीर-प्रभु ने तब,
सच्चा मार्ग बताया था ॥

(६)

पारस्परिक ऐक्य-संस्थापक,
वीर-प्रभु तब यों बोले ।
तत्कालीन समय जनता के,
हृदय-कपाटों को खोले ॥

(७)

ओ एकान्तिक ? लड़ते हो क्यों,
वस्तु कथंचिन्नित्य कहो ।
पक्षपात का चश्मा हटा कर,
आत्मिक सुख में मग्न रहो ॥

(८)

द्रव्य सदा अविनाशी जग में,
क्षण क्षण में पर्याय विनाश ।
बौद्ध-सांख्य एकान्तवाद से,
करते हैं इनका प्रतिभास ॥

(९)

स्यात् अस्ति अरु स्यात् नास्ति है,
उभय रूप है वस्तु-विधान ।
अवक्तव्य अरु अस्ति नास्त्युभय,
प्रमाणित करते विद्वान ॥

(१०)

जीवन में प्रतिपल होता है,
इनका व्यवहारिक उपयोग ।
अवलम्बन जो वस्तु-सिद्धि में,
दार्शनिक करता उपभोग ॥

(११)

भारतीय हृदयों में गूंजे, स्याद्वाद का प्रबल निनाद ।
भव्य-मनोरथ सफल सदा हों, फैले अनेकान्त संवाद ॥

युवक-हृदय

[श्री भंवरमल सिंघी बी०, ए०, 'साहित्य रत्न,']

हृदय जीवन का प्रतीक है ! हृदय से आदमी पहचाना जाता है ! हृदयहीन भी आदमी होते हैं— पर उनका होना भी नहीं होने के बराबर है। जीवन के विकास के साथ साथ हृदय भी बढ़ता है- उसमें परिवर्तन होता है। शिशु के 'कुत्ते-बिल्लियों' में यौवन का हृदय नहीं समाता। पर यौवन का हृदय इतिहासों को रच सकता है— विकसित कर सकता है - बदल सकता है ! सच्चा प्रगतिशील युवक हृदय ही राष्ट्र और जाति के इतिहास का निर्माण और रक्षा; जातियों के विधान की पुनर्संगठित रचना या विनाश; नियमों का नव निर्माण या उनका उच्छेदन कर सकता है- सब के मूल में इस हृदय के जीवन की प्रेरणा है। जिस देश के जातीय अथवा राष्ट्रीय जीवन में युवक-हृदय अपने उत्तरदायित्व को संभाले हुए अपनी कर्तृत्व शक्ति का सम्पादन और उपयोग करता है— उस राष्ट्र के इतिहास का भविष्य सदा उज्ज्वल और प्रकाशमय है। सच्चे युवक हृदय की अन्तर्प्रेरणा से ही जातीय इतिहास की घटनाएँ निर्मित होती हैं। युवक हृदय में होनेवाले भावना-सम्भूत महान् उथल पुथल से जातीय जीवन के युग बनते हैं— युगान्तर उत्पन्न होते हैं और उन्हीं की पार्श्व-भूमिका में राष्ट्र अपनी विभूतियों को पहचानता है। किसी भी जाति का इतिहास यह बता सकता है कि युवकों ने उसका निर्माण किया—उसका रूप परिवर्तन किया—उसकी रक्षा की और अवसर हुआ तो उसको छिन्न-भिन्न भी कर दिया। युवक हृदय हँसा— इतिहास भी हँस हँस कर मुखरित हो उठा; वह रोया इतिहास भी रो पड़ा।

जिस युवक हृदय में इस प्रकार की शक्ति हो—जो राष्ट्र के जीवन-इतिहास में युग परिवर्तन कर सके— जो कांटों पर चल चल कर भी-मृत्यु को सामने आयी हुई जान कर भी अपने कर्तव्य की मूल भावना में पागल बना रहे; जिसमें राष्ट्र की प्राण-रक्षा के लिये सब कुछ न्यौछावर कर देने की हिलोरें उठती हों— जिसमें न्यायपूर्ण सत्य की बलिवेदी पर मर मिटने की एकान्त साधना हो, उसी की कल्पना-प्रेरणा में सच्चे इतिहास की सामग्री गर्भित है।

सच्चा युवक-हृदय वह है जिसकी भावनाओं में एक तीव्र वेदना हो—जिसके जीवन में स्वयं जीवन अपना इतिहास रच सके—देख सके ! जिसमें शक्ति और क्षमता का अबाध प्रवाह शाश्वत गति से बहता रहे— जिसकी कर्तृत्व शक्ति सदा उछलती रहे। सच्चा युवक-हृदय वह है जो वर्तमान से छटपटाता रहे—भविष्य के लिये उछलता रहे; जिसमें जीवन के विभिन्न चित्रों को देख सकने की अन्तर्दृष्टि और उसकी गम्भीर भावना को समझ सकने की विवेकशीलता हो और हो उन खोजी हुई सत्यताओं को जीवन में घुला देने की कर्त्तव्य साधना !

युवक-हृदय की इन परिभाषाओंकी सहायता से यह

स्पष्ट ही है कि युवक कहलाने में आयु का कोई प्रतिबंध नहीं है। जिसमें जीवन की तीव्र भावना और अदम्य उत्साह पूर्ण कार्य-शक्ति है, जिसमें सागर की गम्भीरता और पर्वतों की सी स्थिर विरोध शक्ति है, जिसमें कष्टों को झेलने की उमंग और उनकी मधुर वेदना से जीवन-रचना का विवेक है, वह अपनी सारी आयु में भी युवक कहलाने का अधिकारी है। वैसे भावना और शक्ति से शून्य मनुष्य को २० वर्ष की आयु में भी बूढ़ा समझिये। भावनापूर्ण जीवनाहुतियां देने की इसी तत्परता के कारण गाधीजी हजार युवकों के आदर्श कहे जा सकते हैं। राष्ट्र के इस बलवान नेता के प्रत्येक कार्य में एक अद्‌भुत युवकोचित साहस, उत्कट कर्तव्य-साधना और पूर्ण जागरूकता का दर्शन किया जा सकता है। युवक-हृदय की इन प्रवृत्तियों में उत्साह और श्रद्धा की भावनाएँ मूल रूप से विद्यमान हुआ करती हैं। उत्साह कार्य क्षमता को जन्म देता है और श्रद्धा विरोध शक्ति की सृष्टि करती है। एक श्रद्धा के बल पर ही युवक हृदय बड़ी बड़ी कठिनाइयों को झेल सकता है और उत्साह के त्याग को ही जीवन का त्याग समझिये। मनुष्य-जीवन में अनुत्साह को कहीं स्थान नहीं है। कहने का मतलब यह है कि जिस हृदय में एक मतवालापन न हो वह क्या जाने युवकों का सा उछलना कूदना। श्रद्धेय प्रेमचन्दजी-आज जिनकी केवल स्मृति ही हमारे पास है—ने कितने जोश पूर्ण कल्पना-वेग के साथ लिखा है—"युवक हृदय वह है जो बीस का हो या चार बीस का, पर हिम्मत का धनी हो, दिल का मर्द हो! जो छः महीनों का सुगम मार्ग न चल कर छः दिन का दुर्गम मार्ग पकड़े, जो नदी के किनारे नांव की इन्तजार में खड़ा न रहे, बल्कि भराभर तूफान में उछलती हुई लहरों पर सवार हो जाय; नहीं, जो नांव को सामने आई हुई देख कर भी ठुकरा दे और अगम्य जल राशि में कूद पड़े—प्रवाह अगर पश्चिम में हो तो वह पूर्व को मुंह करे; कठिनाइयां न हो तो वह उनकी सृष्टि करे··· जो अकेला चना होकर भी भाड़ को फोड़ने को तैयार हो; उपासना करे तो, शक्ति की, और आराधना करे तो स्फूर्ति की।" इन शब्दों में युवक हृदय के पागलपन का कितना प्रभावशाली चित्र है। जिस प्रकार युवक हृदय में शक्ति का एक अद्भुत विलास होता है उसी प्रकार इन शब्दों में भी गहरी प्रभाविष्णुता है। 'पागलपन' की इसी बलवती स्पृहा से राष्ट्रों का उदय हुआ—उनका इतिहास बना। इसी भावना योग की सहायता से आज भी राष्ट्र जी रहे हैं। युवकों का पागलपन-उमङ्गभरी साहसिकता ही राष्ट्र का जीवन है—व्यक्तित्व की पूर्णता है। जीवन पर्यन्त युवक बने रहनेवाले स्टीवेन्सन ने कितना सच लिखा है "मृत्यु-निश्चेष्टता से तो 'पागल' कर्मण्यता भी अच्छी है।" आज हमारे हृदयों में यह भावना नहीं रही—हमारे हृदय ठंडे पड़े हैं। न हम पागल हैं-न होशियार।

अनावश्यक-हृदय की गति को मन्थर कर देनेवाला विवेक तो हम में प्रबल नहीं, जरूरत से ज्यादा प्रबल हो उठा है। पर हृदय पक्ष तो ठंडा पड़ा है। हृदय-हीन विवेक से क्या हो? जीवन में यौवन एक बार आता है—ऐसा कितनी ही बार कहा गया है—पर वह प्रसंग दूसरा है। हृदय में तो भावनाओं का साम्राज्य है फिर उसे कुचला क्यों जाय? विवेक की वर्फ से उसे क्यों ढक दिया जाय?

युवक हृदय के ये सपने विवेकपूर्ण नहीं हैं—होने भी क्यों चाहिये? विवेक काम का हो सकता है यदि वह केवल विवेक ही रहे। हृदय के स्थान में भी यदि

विवेक होने लगे जैसा आजकल होता है— तो वह जीवन की मृत्यु है। विवेक का अर्थ है 'अगर-मगर' की लड़ाई-हृदय का काम है तरंगों का सृजन और अर्थ है उनमें कूद पड़ने की तत्परता। राष्ट्र की आशाएँ-आशाओं पर अवलम्बित भविष्य जिनकी ओर मुंह किये हैं, जीवन का विकास जहां से उठनेवाला है— वेदना भी जहां आशा और विजय का गीत गाती है— स्वागत का सङ्गीत सुनाती है ऐसा युवक हृदय आज इस देश में नहीं है अभी तो हृदय में भी विवेक का रोना है-विवेक अपनी जगह छोड़ हृदय के स्थान पर कब्जा कर बैठा है—क्योंकि वह सूना है। यह कब्जा तो दूर करना है—यह मानी हुई बात है। 'हृदय' के स्वागत के लिये लिखी हैं—ये जीवन की फुलझड़ियां !

मन्दिर के द्वार पर

[श्री नयनमल जैन, जालौर]

प्रभो ! पूजने तेरे को हैं,
आते लोक अनेक यहां।
नाना विधि की सामग्री ला,
पूजा करते नाथ ! यहां ॥ १ ॥

केशर औ चन्दन के द्वारा,
शोभित तुमको करते हैं।
भांति-भांति से मोहित करके,
वर ही मांगा करते हैं ॥ २ ॥

रिक्त हाथ आया हूं मैं,
जो मेरा है, लाया हूं।
आंसू ही हैं बचे हुये,
उन्हें चढ़ाने आया हूँ ॥ ३ ॥

करुणा कर के करुणेश,
क्या न उन्हें स्वीकारोगे ?
सारे जग से घृणित दीन को,
"नयन" क्या न अपनाओगे ? ॥ ४ ॥

तीन ऐतिहासिक चित्र

[श्रीमती प्रेमकुमारी नवलखा, सीतमउ]

> इस लेख की लेखिका ने अभी ही लिखना शुरु किया है। आपकी विचारपूर्ण रचना-शैली इस प्रारम्भावस्था में भी कितनी आकर्षक—कितनी आशाप्रद है, यह पाठक स्वयं अनुभव करेंगे। हम आशा करते हैं कि श्रीमती नवलखा इस दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ती जायेंगी—सम्पादक।

विजय मद मे मत्त, अपनी संस्कृति के गौरव से गर्वित, सुवर्ण-गौर रंग आर्यों ने भारतवर्ष में पदार्पण किया। मध्य एशिया के रेतीले ऊसर मैदानों में पला हुआ उनका मन, गंगा और सिन्ध की विस्तृत तराइयाँ, हरे-हरे द्रुमदलों से आच्छादित पर्वत श्रेणियाँ, उपजाऊ मैदान, सोने और रत्नों की कई खानें देख कर भारत में बसने को लालायित हो उठा, भारत की भूमि में रम गया। वे इस लोभ को संवरण न कर सके। वे वीर थे, उनके सुगठित गौर-शरीर में नूतन बल का संचार हो रहा था, उन्हें अपने साहस प्रदर्शन की अत्यन्त अभिलाषा थी। कारा-कोरम व हिन्दुकुश को पार कर वे अपनी विजय-पताका फहराते हुए यहां आये। भारत के आदिम-निवासी, असभ्य और असंगठित अनार्य, आर्यों के राज्य-मद की थपेड़ों को नहीं सह सके। कुछ ने जंगलों में जान बचाई, कुछ ने गुलामी स्वीकार की, और कुछ ने तलवार की वेदी पर वीरता की झाँकी दी। उस दिन स्वर्णमयी भारत-भूमि में आर्यों के भाग्य का बाल-रवि प्रकाशित हुआ था। नये साम्राज्य की रचना थी—नव इतिहास का प्रारम्भ।

उस साम्राज्य-भवन की सजावट हर प्रकार से की गई। आर्यों की कल्पना में उस दिन कला का निर्माण हुआ था जिसे हम आज पूज कर अपने को धन्य मानते हैं। उर्वरा भारत-भूमि ने उन्हें अवकाश भी खूब दिया। अन्न और द्रव्य के आधिक्य ने उन्हें इस ओर से निश्चिन्त बना दिया। उन्होंने समय की इस बचत का उपयोग मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में किया। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-कला धर्म-दर्शन आदि विषयों में व संलग्न रहे। उनकी विचार और कल्पना-शक्ति अद्वितीय थी। उनका दर्शन-ज्ञान अपूर्व था। वे वैभव-शाली थे, शूरवीर थे, ज्ञानी थे तथा धार्मिक-भावना में ओत-प्रोत थे।

इस समय गुलामी का इतिहास अनार्यों के भाग्य को लेकर खेल रहा था-ये आर्यों के गुलाम थे; उनका जीवन निर्जीव था।

(२)

समयने पलटा खाया। पश्चिम से फिर रत्नगर्भा भारत-भूमि पर आक्रमण हुआ। नवीन-साम्राज्य स्थापन की भावनाओं से प्रेरित, नूतन-धर्म के आवेश से उत्तेजित, मुसलमानों ने भारत की पवित्र आर्य-भूमिमें पदार्पण किया। इतिहास का क्रम बदला फिर शोणित की नदियाँ बहीं। देश रक्षा के महायज्ञ में हँसते-हँसते प्राणाहुतियाँ दी गईं। वीरों ने हिन्दू-धर्म और भारत की स्वतन्त्रता के हेतु यहाँ के निवासी आर्यों ने अपने प्राण

की बाजी लगा दी। युवक-बाल-वृद्ध-वनिता सबने अपना-अपना कर्त्तव्य पालन किया। यवन कई बार परास्त हुए। परन्तु भारतीय आर्यों के दुर्भाग्य का एक जयचन्द था। भारतीय इतिहास की परम्परा को उसने एक ही ठोकर में तहस-नहस कर डाला।

धीरे-धीरे समस्त आर्यावर्त मुसलमानों के आधिपत्य में आ गया। सारे भारत पर मुसलमानों की विजय पताका फहराने लगी। हिन्दू-संस्कृति नष्ट होने लगी। यवनों से प्राप्त हुए टुकड़ों के लिये परतन्त्र आर्य सदा लोलुप रहने लगे। स्वाभिमान स्व धर्म-दृढ़ता स्वदेश प्रेम, स्वाधीन जीवन ने शनैः-शनैः उनका साथ छोड़ दिया। इस पराजय की छाप धर्म, साहित्य, कला सब पर ही पड़ी—सभी पर पराजय की निराशा-पूर्ण क्षब्धता भी झलकने लगी। अब मुसलमान भारत के शासक थे, एक बृहत साम्राज्य के अधिष्ठाता। यहां के प्राचीन निवासी आर्य केवल उनके ऐशआराम एवं सुख की सामग्री जुटाने के यन्त्र-मात्र थे, खुद के जीवन में कल्पना शून्य।

(३)

समय की गति कहीं रुकती नहीं, काल की कराल चपेटों से भी कोई बचता नहीं। समय की गति विचित्र है। मुसलमानों का भाग्य-सूर्य अस्त हुआ, इतिहास फिर बदला। उसी आदिम मार्ग पश्चिम से व्यापार करने के हेतु एक गौरांग जाति ने पवित्र, भारत-भूमि पर पैर रखा। वे आये तो थे व्यापार करने के निमित्त, किन्तु यहां की अपार-अमूल्य सम्पत्ति देखकर लोभ को वे टाल नहीं सके। भारत के दुर्भाग्य ने उनका साथ दिया। मुगल बादशाह के अन्धे विलास ने इस नूतन जाति को यहां पनपने का अवसर दिया। इस जाति की कर्त्तव्य परायणता और बुद्धिमानी ने सभी कठिनाइयां दूर कर दी। साम्राज्य का बीज-वपन हुआ और एक विशाल वृक्ष बन गया। इस नूतन वृक्ष की नवीन शाखाओं के अत्यधिक विस्तार के कारण यहां के कुछ प्राचीन वृक्ष एवं पौधे स्वभावतः ही नष्ट हो गये। छोटे-छोटे निर्बल पौधों ने इस नवीन विशाल वृक्ष की छाया में आश्रय लिया। इस वृक्ष के विस्तार के कारण यहां के चिरकाल के जीर्णतम वृक्षों की जड़ बहुत ढीली पड़ गई। इसकी छाया में मनुष्य भी अपने प्राचीन आश्रयदाता वृक्षों को भूल गये। कुछ काल तक यह स्थिति बनी रही। इस विशाल वृक्ष के नीचे भी इतिहास करवट बदलने की चेष्टा कर रहा है। यह है नूतन साम्राज्य और यह उसका इतिहास।

भारतीय, मुसलमान, आर्य, अनार्य सब एक श्रेणी में-एक गुलामों की पन्क्ति में-रखे गये। फिर भी वे भूले रहे झूठी शीतलता में, तत्वहीन प्रलोभनों में, कपट पूर्ण आशाओं में !! इतना होने पर भी झूठन के लिये आपस में वे लड़ मरने को तैयार रहे, एक हजार वर्ष की दुःख पूर्ण दासता ने भी उन्हें जगाया नहीं।

आज वे संसार में सबसे दरिद्र, सबसे असभ्य, हीन और सबसे पिछड़े हुए हैं। वे 'कुली' हैं, 'काले' हैं, असभ्य हैं, और हैं अज्ञानी। उनका कोई अधिकार नहीं, क्योंकि वे मनुष्य नहीं, पशु भी नहीं, केवल 'कुली' 'काले' दास मात्र है।

इन तीन चित्रों में एक महान जाति का शौर्य, उसका गर्व एकत्रित है—आर्यों ने गुलामी का क्रम चलाया था आज वे खुद उस क्रम के शिकार हैं। एक रोज हंस-हंस कर इतिहास बनाया था और आज ठहर-ठहर कर उसको पढ़ते हैं।

भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड और मिसेज सिंपसन की प्रेमकहानी

[श्री भंवरमल सिंघी बी० ए०, साहित्यरत्न]

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के सिंहासन परित्याग की कहानी जितनी ऐतिहासिक, रोमाञ्चकारी और महत्त्व-पूर्ण है—उतनी ही रोचक भी! सदियों तक यह घटना इङ्गलैंड और सारे ब्रिटिशसाम्राज्य के इतिहास की स्मृतियों में अमर रहेगी और प्रेम के इतिहास में इस महान विजय का उल्लास चिर नवीन रहेगा। सम्राट के जीवन में इतिहास का एक द्वन्द्व था जिसमें एक ओर प्रेम था—दूसरी ओर साम्राज्य का मोह, एक तरफ जीवन संगिनी की कल्पना, दूसरी ओर वैधानिक कर्त्तव्य; एक तरफ हृदय का आदेश, दूसरी ओर प्रधान मंत्री एवं मन्त्री-मण्डल की राज्यहितैषिताकी नेक सलाह, विजय किस की? प्रेयसी-परित्याग या राज्य-परित्याग के विकल्प में करना क्या? सम्राट के जीवन में यह समस्या उत्पन्न हुई और प्रेमाकुल हृदयकी तत्परता के साथ उन्होंने सिंहासन छोड़ दिया। आज इस घटना पर चारों ओर खलबली मची है।

भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड

ऐसा प्रेमाख्यान इङ्गलैण्ड के इतिहास में दूसरा कोई नहीं हुआ। भूतपूर्व सम्राट् की दृढ़ता अद्भुत है कि 'जहां कभी सूर्य अस्त नहीं होता' ऐसे समृद्धिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को छोड़ कर उन्होंने अपने निर्णय का अन्त तक निबाह किया। प्रेम की खुमारी में जीवन की कल्पना पूरी करने आज वे स्वतन्त्र हुए हैं—मिसेज सिम्पसन के साथ। कहीं भी गये हों प्रेम की बांसुरी उनके पास है। जिन मिसेज सिम्पसन ने सम्राट् के जीवन में ऐसी उथल-पुथल मचादी, जिनके स्नेह की प्रेरणा से आकुल होकर उन्होंने इङ्गलैंड के महान सम्राट न होकर केवल 'कर्त्तव्य परायण नागरिक' होना स्वीकार किया है, उन्हींके विषय में कुछ लिख कर पाठकों की उत्सुकता पूरी करूंगा।

श्रीमती वालिस सिम्पसन जिन से भूतपूर्व सम्राट ने विवाह करने का निश्चय किया है - एक अमेरिकन महिला हैं जिनका जन्म आज से ४१ वर्ष पूर्व अमेरिका में बाल्टीमोर के एक साधारण गृहस्थ के घर में हुआ था। इनके पिता का नाम टियेकल वालिस वारफील्ड था। पिता की मृत्यु के बाद इनकी माता की आर्थिक हालत बड़ी शोचनीय हो गई थी–और अपने छोटे से रहनेके मकान को होटल की तरह किराये देकर वे अपना निर्वाह करती थीं। सन १९१६ में मिसेज सिम्पसन ने (उस समय इनका यह नाम नहीं था) पहले-पहल लैफ्टीनैंट अर्ल विनफील्ड स्पेंसेज् नामक एक खुबसूरत सैनिक अफसर से विवाह किया जिनके साथ दस वर्ष तक इनका दाम्पत्य जीवन सुख शांति के साथ बीता किन्तु बाद में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गईं कि मिसेज सिम्पसन ने सन १९२७ में तलाक की अर्जी दे दी।

उसी वर्ष इनकी जान पहचान मि० अर्नेस्ट सिम्पसन से हुई–जिन्होंने १९२८ में अपनी पहली पत्नी को त्याग दिया और सन १९२९ में उन्होंने मिसेज स्पेन्सेज़ (मिसेज सिम्पसन) के साथ विवाह कर लिया और दोनों लन्दन में रहने लगे। यहाँ इनके कई दोस्त हो गये जिनमें प्रिंस आफ वेल्स (जो बाद में सम्राट एडवर्ड हो गये थे) की परिचिता लेडी फर्नेस भी थी जिनकी जान पहचान से अर्नेस्ट सिम्पसन और मिसेज सिम्पसन को एक बार फोर्ट वेलवेडियर में भी जाने का अवसर मिला। वहाँ प्रिंस आफ वेल्स ने मिसेज सिम्पसन को पहली बार देखा–और सहसा वे इनकी ओर आकर्षित हो गये। और उसी दिन उनके हृदय में प्रेम का वह अंकुर उत्पन्न हुआ था जिसके वृक्ष की कलियाँ आज उनके जीवन में मादक सौरभ बिखेर रही हैं। यह बात सन १९३३ की है। पर इसी बीच में एक नई घटना हो गई। कुछ महीनों बाद मि० सिम्पसन अकेले कहीं बाहर चले गये और सप्ताहों तक नहीं आये–और इस बीच में एक दिन मिसेज सिम्पसन को अपने पति के नाम का एक पत्र मिला जो किसी स्त्री के हाथ का लिखा मालूम होता था–इससे मिसेज सिम्पसन को अपने पति के प्रति अविश्वास की आशंका हुई और उन्होंने मि० सिम्पसन को एक दिन निम्न पत्र लिखा:—

"Dear Earnest,

I have just learned that...... instead of being on business.........you have been staying at a Hotel in Bray with a lady........ am instructing my solicitors to take proceedings."

अर्थात्—

प्रिय अर्नेस्ट,

मुझे अभी मालूम हुआ है कि तुम किसी काम से बाहर नहीं गये हो बल्कि तुम ब्रे में एक स्त्री के साथ किसी होटल में ठहरे हुए हो······मैं अपने वकील से कार्यवाही करने को कह रही हूँ।

इसी बीच में गत वर्ष जनवरी में सम्राट जार्ज पंचम का देहान्त हो गया और प्रिंस आफ वेल्स सम्राट एडवर्ड अष्टम के नाम से सिंहासनासीन हुए। पर मिसेज सिम्पसन के प्रति उनका प्रेम बढ़ता जा रहा था– उन्हें वे बराबर अपने पास ही रखना चाहते थे। दिन प्रति दिन मिसेज सिम्पसनका राजमहलोंमें आनाजाना बढ़ता ही गया–और वे राजमहल की पार्टियों में सम्मानित भी की जाने लगी, सिनेमा, नाच इत्यादि में भी सम्राट उनको अपने साथ रखने लगे। श्रीमती सिम्पसन को भी सम्राट से बड़ा प्रेम है —अत: उन्होंने अपने पहले पति मि०

सिम्पसन से तलाक की अर्जी दे दी—और गत अक्टूबर मास में उनको तलाक की आज्ञा इस शर्त पर मिल गई है कि वे छ महीने तक पवित्र रहे। छ महीनों बाद यानी अप्रेल १९३७ में वे विवाह कर सकेंगी। उसके बाद सम्राट ने यह इच्छा प्रकट की कि आगामी अप्रेल में वे मिसेज सिम्पसन के साथ विवाह करेंगे। इस प्रकार इनमें घनिष्ठता बढ़ रही थी। अभी अभी कुछ महीनों पहले सम्राट ने जो मैडीटरेनियन सागर की यात्रा की थी उसमें भी मिसेज सिम्पसन उनके साथ थी और कई स्वागत-पार्टियों में वे उनके बराबर बैठी थीं।

ऐसा कहा जाता है कि मिसेज सिम्पसन यद्यपि एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुई महिला हैं, पर वे बड़ी सुन्दर है। उनके स्वभाव में शिक्षा और संस्कृति की सद्भावना है। और उनके इन्हीं शारीरिक और मानसिक गुणों के कारण भूतपूर्व सम्राट् ने उनको अपनी जीवन-संगिनी बनाने के लिये तय किया है। यहाँ तक कि उनकी माता महारानी मेरी ने भी मिसेज सिम्पसन के व्यक्तिगत गुणों की प्रशंसा की है। नृत्यकला में मिसेज सिम्पसन बड़ी प्रवीण है। साथ ही सम्राट् की तरह उनकोभी बाग लगाने का, बोटिंग करने का और नाचने का बड़ा शौक है। इन्हीं कारणों से हमारे भूतपूर्व सम्राट् मिसेज सिम्पसन पर रीझ चुके हैं।

(मिसेज सिम्पसन)

उनके इस प्रकार के विवाह करने की खबर से इङ्गलैंड में विधान सम्बन्धी हलचल मच गई। क्या सम्राट होते हुए उनके लिये मिसेज सिम्पसन जैसी महिला से विवाह कर सकना संभव था? एक तो वह साधारण घर में उत्पन्न हुई स्त्री फिर जिसने दो पतियोंको तलाक दे दिया है और जब कि वे दोनों पूर्व पति जीवित भी हैं। इस हालत में मिसेज सिम्पसन के साथ बादशाह का विवाह होने देना इङ्गलैंड के सरदारों को अच्छा न लगा। प्रधान मंत्री मि० बाल्डविन शुरू से ही इस प्रकार के विवाह का विरोध कर रहे थे। पर भूतपूर्व सम्राट् किसी भी तरह अपने निर्णय में परिवर्तन करनेको राजी न हुए। इसलिये राज्य छोड़ देने के अतिरिक्त उनको और कोई चारा न दीखा। अपने स्वार्थ के लिये किसी प्रकार का अपकार्य कर राज्य में अशांति फैलाना उनके व्यक्तित्व के गौरव को ढक देना इसलिये एडवर्ड जैसे प्रजावत्सल सम्राट् के लिये इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतः समस्या बड़ी विकट एव अभूतपूर्व थी। कुछ लोगों ने इस समस्या का निराकरण इस तरह करना चाहा था कि सम्राट् अपना विवाह उसी के साथ करें जिसको वे चाहते हैं पर वह इङ्गलैंड की महारानी न होंगी। और उनकी सन्तान राज्य सिंहासन की हकदार भी न होंगी। पर इङ्गलैंड के वैधानिक इतिहास में कभी इस प्रकार की विवाह-पद्धति नहीं चली, इसलिये मंत्रीमंडल ने इसके लिये भी आज्ञा नहीं दी।

ब्रिटेन के शासन-तंत्र में सम्राट् के व्यक्तिगत जीवन

में राष्ट्रीय गौरव प्रतिष्ठित समझा जाता है। वहाँ सम्राट के व्यक्तिगत जीवन में भी साम्राज्य की बड़ी भारी जिम्मेदारी है। इङ्गलैण्ड में राजा की लोकप्रियता उसके व्यक्तिगत जीवन की लोकप्रियता पर निर्भर रहती है, इस लिये इङ्गलैण्ड के सरदारों और मन्त्रियों को यह आशंका थी कि इस प्रकार के विवाह से प्रजा में सम्राट के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जायगी क्योंकि परित्यक्ता मिसेज सिम्पसन के प्रति जनता में श्रद्धा रह नहीं सकती। और आज जब सारे यूरोप की परिस्थिति डाँवाडोल हो रही है- इस प्रकार की बात पैदा करना राज्य के लिये उचित नहीं! इसी धारणा पर मि० बाल्डविन विधान की रक्षा के लिये कटिबद्ध थे।

अब सम्राट के व्यक्तिगत जीवन की बात रही। वे अपनी युवावस्था (जब वे प्रिंस आफ वेल्स थे) से ही लोकप्रिय हैं। संसार के लगभग हरेक भाग में वे भ्रमण कर चुके हैं। प्रजा के हृदयों में उनके प्रति जितना प्रेम है, उतनी ही सहानुभूति वे भी सम्राट के नाते अपनी प्रजा के प्रति रखते थे। प्रजा अपने 'पलक पाँवड़े' बिछाये उनके स्वागत के लिये उत्सुक रहती थी। ऐसे लोकप्रिय सम्राट के जीवन की इस समस्या में सब के हृदय की सहानुभूति थी। इस विषय में जनता में मतभेद भी था। कुछ लोग कहते थे 'अपने व्यक्तिगत जीवन की बातों में सम्राट को स्वतन्त्रता होनी चाहिये।' इसके विपरीत कुछ लोगों की राय थी कि सम्राट के विवाह का प्रश्न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन का ही प्रश्न नहीं है--उसका प्रभाव सारे साम्राज्य की स्थिति पर पड़ना अवश्यम्भावी है! अतः वह राज्य के हितों को देख कर होना चाहिये।

मतभेद था- पर अब उसका महत्त्व ही नहीं रहा। एक ओर तो राज्य के प्रति अपने सद्भावना पूर्ण उत्तरदायित्त्व की प्रेरणा से प्रेरित होकर और दूसरी ओर प्रेम की दृढ़ता के कारण सम्राट ने राज्यसिंहासन त्याग दिया! और उनके छोटे भाई ड्यूक याफ आर्क सिंहासनारूढ हो गये हैं। यह भूतपूर्व सम्राट के महान् व्यक्तित्व का उज्ज्वल उदाहरण है और उनके भावुक हृदय की उदार वीरता।

जो दृष्टि चन्दरोज पहले स्पेन की अन्तर्कलह और महानाश की ओर दौड़ती हुई यूरोपीय विषम परिस्थितियों से हट कर केवल सम्राट के जीवन की ओर खिंच गई थी वह फिर अपने स्थान पर चली गई है पर सम्राट के सिंहासन त्याग के समाचार से जनता के हृदय खेदपूर्ण हो रहे हैं।

शाही प्रेम की इस कहानी का उदय किसी दिन अज्ञातरूप से दो भावुक हृदयों में हुआ था—आज वह सर्व-विदित है। उस दिन कौन जानता था कि इस कहानी का रूपान्तर इतिहास की परम्परा को बदल देगा पर प्रेम ईश्वर है- वह सब कुछ बदल सकता है।
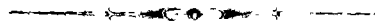
हमारे समाज में पर्दा

[श्रीमती उमराव कुमारी ढड्ढा]

आजकल हमारे मारवाड़ी समाज में पर्दा किस रूप में पालन किया जाता है—यह एक विचारणीय बात है। वैसे पर्दे का रिवाज कई दिनों से चला आता है—पर समय के फेर से आज इस प्रथा में रही हुई स्वाभाविक बुराइयों के अलावा इस में और भी कितनी ही बुराइयाँ घुस गई है जिससे हंसी आये बिना नहीं रहती! हमारे समाज में ज्यादा करके पर्दे का रूप घूंघट प्रथा है—जिसका पालन विशेष कर स्त्रियाँ अपने ही घर या समाज के पुरुषों के सामने करती है; घरों में फेरीवाले बिसायतियों, जमादारों, या नौकरों आदि के सामने किसी प्रकार का पर्दा नहीं किया जाता! यह बात विचित्र ही है! घर में बड़े बूढ़ों, ससुर जेठ आदि के सामने चलने तक में संकोच होता है फिर आवश्यकता होने पर भी उनकी किसी प्रकार की सेवा करना—कैसे सम्भव है? इसके अलावा इस बुरी प्रथा के कारण हमारी बहनों की तन्दुरुस्ती खराब होती है और वे अशिक्षिता रह जाती है।

पर्दे के साथ साथ और ज्यादातर उसी के कारण से मारवाड़ी समाज की महिलाओं का पहनाव और रहन-सहन भी एक विचित्र ढंग का हो गया है! पर्दे के साथ-साथ हमारे यहाँ गहनों का प्रचार जरूरत से ज्यादा हो गया है—पैरों में जो लंबा बाजेदार 'जोड़' पड़ा रहता वह तो ऐसा मालूम होता है कि मानों कैदियों के पैरों में बेड़ी पहनाई गई हो; और सिर पर 'बोर' तो जैसे लड्डू लाकर रख दिया हो। और चोटी पर भी न जाने क्या क्या लगाया जाता है—जिससे सारा पहनाव ही भद्दा सा लगता है। गहने पहनना बुरा नहीं है—पर वे ऐसे न हों जो शरीर की सुन्दरता न बढ़ा कर उल्टी हंसी दिलावें तथा वे इतने ज्यादा भी न हों कि उनके होने का महत्व ही चला जाय। बाजेदार गहने पहने ही क्यों जाय जिससे आवाज कान में पड़ते ही पुरुष की आंख उठे। पर यह गहने का रिवाज तो तभी उठेगा जब पर्दे की प्रथा न रहेगी। यह समझ लेने में तो कोई मुश्किल नहीं कि असली पर्दा, घूंघट का नहीं, आंख का है; किन्तु आश्चर्य तो यह है कि हमारे यहाँ स्त्रियाँ अपने घर तथा समाज में जितना पर्दा करती हैं वहाँ से बाहर उतनी ही बेपर्दगी करती हैं! जब कहीं ऐसी जगह जाने का अवसर आता है कि जहाँ अपनी जान पहचान या जाति के व्यक्तियों के मिलने की संभावना न हो तो घूंघट किधर ही रहता है—और पल्ला भी किधर ही पड़ा रहता है। और वे अपनी धुन में चली जाती है! क्या यही पर्दा है?

अन्य समाजों की महिलाओं ने पर्दे को छोड़ दिया है और दिनप्रति दिन छोड़ती जा रही है, जिससे उनमें बल और जीवन बढ़ रहा है। किन्तु हमारे समाज में महिला जीवन कितना कमजोर और 'अपक्क' सा है? एक तो हमारी महिलाओं में शिक्षा की कमी और फिर पर्दे के कारण उनको बाहरी संसार का कुछ भी ज्ञान

नहीं होता। इस प्रथा को दूर करने के लिये काफी बल की जरूरत है। महिलायें चाहती हुई भी पर्दा इसलिये नहीं उठा सकती कि उनके घर में ही सास-ससुर और देवर-जेठ का इतना विरोध होता है कि वे उसका सामना नहीं कर सकतीं। इस प्रकार के वातावरण में जो किसी तरह पर्दा उठा भी देती हैं उन पर तो बिचारियों पर आफत सी आ जाती है।

इसलिये ऐसी घातक प्रथा को हटाने का चारों ओर से एक साथ प्रयत्न होना चाहिये जिससे जल्दी सफलता मिल सके। पर्दे की तो इतनी हानियां हैं कि पन्ने लिखे जा सकते हैं पर उसकी जरूरत नहीं क्योंकि उनको सब जानते हैं। दुख तो इतना ही है कि जानते हुए भी लोग इसको दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। समाज के सुधारप्रिय युवकों एवं युवतियों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस कार्य की ओर बढ़ें जिससे हमारा मारवाड़ी समाज वर्तमान सड़े हुए जीवन से ऊपर उठे और स्वच्छ हवा में सांस ले सके।

वरदान

[श्री भँवरलाल बख्शी, आयु १४ वर्ष]

दयामय, हमें दो यह वरदान !
विकसित सेवा सुमन हो और जीवन का उद्यान !!
सेवा के हम व्रती बनें सब, फिर हो जीवन-गान !
देश, जाति के हित साधन अब करें स्वयं बलिदान !!
भारत के हम सपूत कहलावें, होकर वीर महान !
नवयुग के हम स्रष्टा, रूढ़ि-रीति का करें पयान !!

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धन सिंह महनोत बी० काम]

गताङ्क से आगे

(११)

अपनी विवाह सम्बन्धी बातचीत को छिप छिपकर सुनने के लिये लड़कियां कितनी लालायित रहती हैं, इसे उस लड़की का हृदय ही जानता है, जिसका विवाह दस पन्द्रह दिन बाद ही होने वाला हो। प्रत्येक छोटी से छोटी बात को सुनकर वह अपने भविष्य-जीवन के लिये कितने बड़े बड़े दिमागी किले बनाती है। उस परिचित वातावरण को, जिसमें वह इतनी बड़ी हुई है, उन प्यारे प्रियजनों को, जिनके सहवास में उसका प्रत्येक क्षण बीता है, वह एकाएक छोड़ कर उस अपरिचित वातावरण में, उस अपरिचित जनसमूह में चली जायगी, जिसकी उसने केवल कल्पना भर की थी। लेकिन वह घबड़ाती नहीं है क्योंकि उसने कल्पना शक्ति द्वारा अपने आप को उस अपरिचित वातावरण में रहने योग्य बना लिया है। अगर यह कल्पना सृष्टि न हुई होती तो शायद कुमारियां इतनी स्वच्छ प्रसन्नता से इतना उमंग भरा हृदय लेकर श्वसुरालय न जाती!

हां तो हमारी अनुपमा भी तो आजकल उसी कल्पना जगत में विचरण किया करती है। उसकी इस कल्पना में वास्तविकता की भी तो कुछ पुट लगी हुई है, क्योंकि गत साल वह अपने पिता के साथ अपने भावी श्वसुरालय हो आई है। इसलिये उसकी कल्पना की दौड़ में परिचित मार्ग, परिचित दिवारें और परिचित जन सहायता पहुंचाते हैं। वह भी अपने विवाह सम्बन्धी बातचीत सुनने के लिये अत्यन्त लालायित रहती है। कल भी जब विजयशंकर समधी का पत्र लेकर भीतर आये, वह उनकी बातें सुनने को किवाड़ की आड़ में खड़ी थी। पर जब उसे अपने माता पिता का रज और उस रज का कारण मालम हुआ तो उसका सारा कल्पना-साम्राज्य, जिसे कितनी सुनसान रात्रियों में निर्मल चन्द्रमा को साक्षी रख कर उसने बसाया था, केवल क्षणभर में ही ध्वस होता हुआ मालम होने लगा। अपने कल्पना-सम्राज्य की अवधि दो साल और बढ़ाने में शायद उसे इतना कष्ट न होता। अधिक से अधिक यही कष्ट हो सकता था कि उसके कल्पना-साम्राज्य के शासन प्रबन्ध में कुछ बाधा पड़े या उस प्रबन्ध के लिये कोई दूसरी रूप रेखा निश्चित करनी पड़े। लेकिन उसे सीमातीत कष्ट हुआ, जब उसने अपने पिता की क्रोध जनित यह प्रतिज्ञा सुनी कि इसी अगली तृतीया को वे उसका विवाह अन्य योग्य वर के साथ कर देंगे। अगर अनुपमा के कल्पना साम्राज्य में वास्तविकता की पुट न होती तो शायद वह इसी साम्राज्य में 'अन्य योग्य वर' की मूर्त्ति 'प्रकाश' के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकती थी। परन्तु वह तो प्रकाश को देख चुकी थी। उसके साथ अपनी कल्पना में उसने न जाने क्या क्या किया था? अनेक रम्य स्थानों की सैर कर चुकी थी। अनेक रम्य, शान्त रात्रियां उसने प्रकाश के साथ बातें करते हुए बिताई थीं। कितनी ही बार प्रकाश के कष्ट में वह उसे सान्त्वना दे चुकी थी, उसके रोग में उसकी शुश्रूषा कर चुकी थी। स्वयं उससे सान्त्वना प्राप्त कर चुकी थी, शुश्रूषा करवा चुकी थी। प्रकाश को देखे बाद इसके प्रत्येक कार्य में प्रकाश का परोक्ष चित्र विद्यमान था। उसके इसी सुखी साम्राज्य

को कल का 'आधा घंटा' नष्ट कर चुका था। सारी रात उसने न जाने कैसे तड़प तड़प कर बिताई थी।

आज सब के भोजन आदि से निवृत्त हो जाने के बाद अनुपमा ने शान्ति-लाभ की आशा से पिछवाड़े के बगीचे में प्रवेश किया। यहां आकर उसने देखा कि उसकी अभिन्न हृदया सखी निरुपमा पहले ही से वहां बैठी हुई न जाने क्या सोच रही है? पीछे से उसके गाल में चुटकी लेकर अनुपमा बोली,

"क्यों, किस भाग्यवान का ध्यान कर रही हो?"

निरुपमा हँस कर बोली, "भाग्यवान का ध्यान तो तुम करो, अनु। मैं तो दुखी जगत् का ध्यान कर रही थी।"

अनुपमा ने मुस्कुरा कर व्यङ्ग किया, "यह पराये दुःख दुबला होना कबसे सीखा?"

निरुपमा ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "जब से तुमने मेरे दुख में दुखी होना सीखा।"

अनुपमा ने लज्जित होकर उत्तर दिया, "देखें, तुम्हारे दुःखी जगत की रूप रेखा मैं भी तो सुनूं।"

निरुपमा ने उसी स्वर में कहा "इसमें सुनने को क्या रखा है? एक रसहीन कथा है। इसे तो देखो और अनुभव करो। देखो, सूर्य भगवान् अपनी प्रचण्ड किरणों से मानो आग बरसा रहे हैं। पृथ्वी तवे के समान जल रही है। किन्तु ऐसे समय में भी वह देखो, वह किसान पलाश-पत्र पर मोती के समान अपने शरीर से पसीने की बूंदे चुआता हुआ हल चलाने में व्यस्त है। इन्हीं पसीने के मोतियों से उठाई गई गगन स्पर्शी इन बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं में कृत्रिम बरफ से ठंडे हुए कमरों में कृत्रिम वायु के झोंकों का सेवन करते हुए बड़े बड़े मुलायम बिछौनों पर पड़े श्रीमानों को भी देखो। हाय, किसका खून पसीने के रूप में बहता है और कौन उसका उपभोग करता है!"

अनुपमा बोली, "किन्तु नीरू, उस परम पिता की दयालुता को न भूलो। उस नन्दन-कानन में पड़े रहने पर गरमी से संतप्त बाबुओं का हाय तोबा भी सुनो और भयङ्कर गरमी में सूर्य की किरणों का सानन्द सेवन करनेवाले उस किसान को 'आलीजा' गाते हुए भी सुनो। अब विचार करो कि कौन सुखी है? एक के हिस्से में अतुल ऐश्वर्य है और दूसरे के हिस्से में स्वर्गीय प्रसन्नता। एक को कितनी अधीरता है और दूसरे को कितना सन्तोष!"

निरुपमा तेज होकर बोली, "किन्तु यह 'सन्तोष' घातक है। हा भगवान्, कब वह समय आवेगा जब ये पृथ्वीपालक किसान कमर बांध कर और इसी सत्यानाशी सन्तोष को छोड़ कर प्रतिहिंसा की आग में धधक उठेंगे! क्या ही अच्छा हो यदि इस प्रचण्ड सूर्य की आग ही इनमें ज्वाला पैदा कर दे!"

अनुपमा के हृदय में भी तो आज ज्वाला है। लेकिन वह संसार के कष्टों के लिये नहीं, अपने ही कष्टों के लिये है। सदा खिले हुए फूल की तरह प्रसन्न रहने वाली सूरत आज मुरझाई कली की तरह उतरी हुई है। निरुपमा से यह उदासी छिपी न रही। वह सदा से अनुपमा के हृदय को पहचानती है। दोनों हा घनिष्ट बाल-सखियां हैं। लाला हरदयाल के अपनी कोई सन्तान न होने से इस अनाथा दूर के रिश्ते की भाञ्जी को वे बचपन से ही अपने यहां रखे हुए हैं। यद्यपि लालाजी की गृहिणी कभी कभी कहा करती हैं कि कितना ही यत्न करो, कितना ही लाड़ प्यार करो पढ़ाओ लिखाओ, व्याह शादी करो पर पराया बालक अपना नहीं हो सकता। लेकिन लालाजी का निरुपमा पर अत्यधिक स्नेह देख कर और अपने बांझपने पर मन ही मन झुंझला कर वे अधिक कहने का साहस नहीं करती थीं। क्योंकि वे जानती थीं कि पराये बालक को पालने से भी अधिक कष्ट सौत का सिर पर रहना है। लालाजी का मकान विजयशंकर के मकान के बगल में ही था। बचपन से अनुपमा और निरुपमा साथ

खेली हैं। यह बगीचा ही उन दोनों का प्रधान क्रीड़ास्थल रहा है।

निरुपमा ने अनुपमा के कंधे पर हाथ रख कर पूछा, "तुम आज इतनी उदास क्यों हो बहन ?"

संतप्त हृदय सहानुभूति पाकर उमड़ पड़ता है। आंखें सावन की झड़ी बरसाने लगती हैं। अनुपमा का कष्ट निरुपमा से सहानुभूति प्राप्त कर आंखों के मार्ग से निकल बहने लगा। उसे रोती देख कर निरुपमा को अत्यन्त आश्चर्य और साथ ही दुःख भी कम न हुआ। वह कंधे को छोड़ कर चिबुक पकड़ कर बोली,

"अरे ! तुम तो रोती हो ! आखिर बात क्या है ? अन्ना, कुछ कहो भी।"

कुछ देर तक सिसकियां भरने के उपरान्त आंसू पोंछती-पोंछती अनुपमा बोली,

"मेरे पिता स्त्री के हृदय को नहीं पहचानते। वे यह नहीं जानते कि स्त्रियां प्रेम के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहती हैं। वे स्त्री नहीं हैं, नहीं तो खूब समझ पाते कि स्त्री का हृदय वह भूमि नहीं है, जिसमें प्रेमांकुर कुशा के समान जन्म लेते हैं और उखाड़े जाकर फिर लग सकते हैं। आश्चर्य और दुख तो इस बात का है कि माता ने स्त्री होकर भी प्रेम का मर्म न समझा और पिता की 'हां' में 'हां' मिला दी।"

निरुपमा अवाक् होकर अनुपमा का मुंह देखती रही। उसके लिये इस पहेली का अर्थ लगाना असम्भव था।

"हृदय जिसे एक बार प्यार करने लग जाता है, जिसे वह वरण कर लेता है, फिर मनुष्य समाज की हस्ती नहीं कि उसको वह उससे विमुख कर सके। चकोर चन्द्रमा को प्यार करता है, भँवर फूल को प्यार करता है, मृग वीणा को प्यार करता है, पतंग दीपशिखा को प्यार करता है। अपने प्रेमी के लिये वे प्राण भी दे देते हैं। फिर यह तो मनुष्य—उसमें भी स्त्री का—हृदय है। जिसमें प्रेम है और विवेक भी है। विवेक प्रेम को अधिक उज्वल बना देता है। स्त्री जिसे प्रेम करती है, उससे उसको अलग रखना अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है, पर वे इस बात को समझ कर भी नहीं समझते, यही कष्ट है।"

निरुपमा के लिये पहेली अधिक गहन होती जा रही थी। उसे समझ नहीं पड़ा कि अनुपमा का अभिप्राय क्या है ? वह उसी प्रकार जिज्ञासा भरी आंखों से अनुपमा की ओर ताकती रही।

अनुपमा ने सांस लेकर फिर कहना आरम्भ किया,

"अगर हम पाश्चात्य सभ्यता में पली होतीं तो शायद 'प्रेम' और 'विवाह' का विच्छेद करने में हम न हिचकिचातीं; अगर हम असभ्य होतीं तो इस प्रश्न को इतना महत्व भी नहीं देतीं। लेकिन हम उस सभ्यता और संस्कृति में पली हैं, जहां स्त्रियों को 'प्रेम' की वह शिक्षा दी जाती है, जहां 'प्रेम' का अर्थ 'विवाह' है और 'विवाह' का अर्थ 'प्रेम'। 'प्रेम' ही 'विवाह' की साधना है और 'विवाह' ही प्रेम की साधना। सावित्री, रुक्मणी और राजुल कुमारी हमारे सामने रात दिन आदर्श के रूप में उपस्थित हैं। हृदय जिसे वरण कर चुका, वह पति हो चुका। उसी के प्रेम की साधना में यह जीवन बीत जायगा। भारतीय स्त्रियां एक ही बार पति वरण किया करती हैं।"

निरुपमा अब अधिक चुप न रह सकी। यह पहेली उसके लिये असम्भव हो उठी। वह अनुपमा को झकझोर कर बोली,

"तू पागल तो नहीं हो गई है अन्ना, तू क्या बड़बड़ा रही है ? मैं अभी तक तेरे एक शब्द का भी अर्थ नहीं समझ सकी।"

अनुपमा जैसे सोकर उठी। वह चौंक कर अपनी विचार शृङ्खला को भुला बैठी। कुछ लज्जित सी होकर वह बोली,

"नीरू, तू जानती है कि मैं परायी हो चुकी। मेरा हृदय मैं किसी और को अर्पण कर चुकी हूँ। मैं उन्हें पति वरण कर चुकी। बस यही मेरा कष्ट है।"

निरुपमा अत्यधिक आश्चर्य दिखाती हुई बोली,

"अन्ना, तू क्या कह रही है? कष्ट! तुझे!! कष्ट तो उसे हो जिसका भाग्य उसका साथ न दे। तू तो सौभाग्यवती है बहन। जिसे तूने तेरा हृदय अर्पण किया है, उसी के गले में केवल चन्द दिनों के बाद ही तू हार की तरह शोभित होगी। फिर भविष्य की सुन्दर मधुर कल्पनाओं में अपना समय बिताने के स्थान पर तुम दुःखभरी आहें क्यों ले रही हो? कष्ट तो उस अभागी को होना चाहिये जो भूल से अपना हृदय किसी ऐसे व्यक्ति के अर्पित कर चुकी हो, जिसके साथ उसका विवाह असम्भव हो। तुमने तो उसी को वरण किया है, जो तुम्हारा है।"

अनुपमा फिर आते हुए आंसूओं को पीकर बोली,

"बहन, जब तक मुझे निश्चय था कि मैं उसी अंगूठी में हीरे की तरह जड़ी जाऊँगी, तब तक मधुर कल्पनाओं का अस्तित्व था। सूर्य में भी वे मुस्कुराते थे और चन्द्र में भी उनको हँसता हुआ पाती थी। किन्तु, क्या तूने सुना नहीं कि उन्होंने विवाह न करने का निश्चय कर लिया है। ऐसा भी सुनने में आया है कि देश के लिये स्वतंत्रता-युद्ध में भाग लेने के कारण उन्हें दो साल की सजा भी हो गई है। कल उनके पिता का पत्र आया था। उसमें उन्होंने लिखा है कि अगर मेरे पिता दो साल और ठहरें तो उनके जेल से छूटने पर उनको मेरे साथ विवाह करने के लिये उनके पिता बाध्य करेंगे और अगर मेरे पिता इस शर्त पर ठहरने को राजी नहीं हैं तो वे मेरा अन्य जगह सम्बन्ध स्थापित करने को स्वतन्त्र हैं। मेरे पिता ने इस पत्र को अपना बहुत बड़ा अपमान समझा है। इसी अपमान के प्रतीकार स्वरूप उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वे इसी अगली तृतिया को मेरी शादी किसी अन्य वर के साथ कर देंगे। इसमें शायद मुझे कुछ भी आपत्ति न होती, क्योंकि माता पिता की आज्ञा मानना सन्तान का कर्त्तव्य है। लेकिन पारसाल गर्मी के दिनों में शिवपुरी उनके यहां अपने साथ ले जाकर पिताजी ने यह विषवृक्ष लगाया है। तू भी तो मेरे साथ गई थी। जब तक मैंने उन्हें नहीं देखा था, कुछ भी कल्पना न थी। पर जिस दिन मैंने उन्हें देखा, न मालूम कैसा लगा। जैसे कोई सोयी हुई भावना एकाएक ठेस लगने से जाग उठी हो। हमेशा चिड़िया की तरह स्वतन्त्रता से चहकनेवाली मैंने उसी दिन लज्जा का अनुभव किया। उस लज्जा का जो नारी जीवन का प्राण है। मैंने उसी दिन बोध किया जैसे मैं नारी हूं। और तब से लेकर आज तक इस भावना को पोषण करती आई हू कि मैं केवल उन्हीं के लिये सिरजी गई हूँ। अब एकाएक यह कष्ट आ पड़ा। इसको सहन करना मेरे लिये असम्भव हो रहा है। अब तू ही बता कि मैं क्या करू?"

निरुपमा अब सारा किस्सा समझ गई। थोड़ी देर तक वह कुछ न बोली, मानो सारी समस्या को हल करने में लगी हो। फिर अनुपमा का हाथ पकड़ कर बोली,

"अन्ना, बहन, मेरी तुम्हारे साथ सच्ची सहानुभूति है। मैं खूब जानती हू कि किसी को हृदय अर्पण कर फिर उसे न पाने के समान कष्ट स्त्री के लिये दूसरा नहीं है। भगवान् ने यह हृदय के आदान प्रदान का अधिकारी भी वर कन्या के आदान प्रदान के समान मातापिता के हाथों में क्यों न रखा? इस समय तो तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि अपने हृदय के निर्णय की सूचना अपने माता पिता को दो और यथाशीघ्र दो। अगर इसके बाद भी वे अपने दुराग्रह को न छोड़ें तो फिर जो कुछ करना होगा किया जायगा। तुम्हारे लिये यह सूचना देने का काम मैं करूंगी, पर तुम भी उपस्थित रहना। पिताजी से कहने के पहले मां से कहना अधिक अच्छा होगा क्योंकि वे स्त्री हैं, स्त्री हृदय की बातों को अधिक सुगमता से समझ सकेंगी।"

अनुपमा कुछ न बोली। वह केवल निरुपमा के मुख की ओर देखती रही। कुछ देर चुप रह कर निरुपमा फिर बोली,

"किन्तु यह तो बता अभी, कि अगर दो वर्ष बाद भी प्रकाश बाबू ने विवाह करना ही स्वीकार न किया तो?"

अनुपमा कुछ तेज होकर बोली, "तो क्या होगा? मुझे भी देश सेवा के विस्तीर्ण और खुले हुए क्षेत्र में जगह मिल मिल ही जायगी। जिधर प्रकाश होगा, उधर ही जाऊँगी। अंधेरे में टटोलते फिरना मुझे पसन्द नहीं है। अनुपमा दिखा देगी और सिद्ध कर देगी कि सेवा कार्य में स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं हैं। अनुपमा अगर विवाह करेगी तो उसी हठीले के साथ। नहीं तो आजन्म कुंआरी रहेगी।"

यह कहते कहते अनुपमा के मुख पर एक अनोखी छटा छा गई। आँखें एक सच्ची प्रतिज्ञा के आलोक से चमकने लगी।

निरुपमा इस उत्साह की मूर्त्ति को बड़ी आशा और सान्त्वना-प्राप्त आंखों से देखती रही। उसकी आंखों से स्पष्ट झलका पड़ता था मानों अनुपमा ने उसको मार्ग दिखाया है और अब उसको भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

तो क्या निरुपमा भी किसी को अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी है?

(१२)

कष्ट में बड़ी शक्ति होती है! कभी कभी मनुष्यों को इससे हानि कम और लाभ अधिक होता है। मानसिक पीड़ा से एक प्रकार के वैराग्य की उत्पत्ति होती है; मनुष्यों की नसों में नयी बिजली दौड़ जाती है। यदि उस शक्ति का वास्तविक उपयोग किया गया तो उसके सहारे मनुष्य आश्चर्यजनक कार्य करने में सफल होता है। अपने मित्र प्रकाश के जेल जाने का सुशील के हृदय पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। यद्यपि मित्र की वीरता और कर्त्तव्यपरायणता से उसे अत्यधिक प्रसन्नता और गर्व था, फिर भी वियोग की वेदना कुछ कम न थी। उसका हृदय कहता था कि प्रकाश तो सच्चे वीर की तरह युद्ध करता हुआ जेल चला गया, परन्तु तुम क्या करते हो? क्या प्रकाश को कर्त्तव्य की शिक्षा देकर ही तुम्हारे कर्त्तव्य की समाप्ति हो गई? क्या यह उचित है कि तुम्हारा मित्र जेल की कठिन यातना सहे और वह भी तुम्हारे उकसाने से और तुम मौज से शिवपुरी की स्वास्थ्यप्रद जलवायु, उसके अलौकिक प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते रहो? इस प्रकार की भावनायें हृदय में उठते ही उसका युवक हृदय अधीर हो उठता था। अपनी अकर्मण्यता पर उसे बड़ी ग्लानि होने लगती थी। ग्लानि के बाद हृदय में वैराग्य के भाव की उत्पत्ति होती थी और उसके साथ ही आती थी एक नवीन शक्ति तथा दिव्य ज्योति। वह मन ही मन उन्मत्त की तरह कहने लगता था—

'नहीं, नहीं, सुशील अपने कर्त्तव्य से पीछे न हटेगा। वह युद्ध करेगा देश की पराधीनता से और देश के दुर्भाग्य से। पर इस युद्ध का सच्चा मोर्चा चाची के कथनानुसार ग्रामों में ही है। गरीब कृषकों की, एक शाम भोजन करके भी संसार की भलाई के लिये सिर तोड़ परिश्रम करनेवाले मजदूरों की सेवा ही सच्ची देशसेवा है। वे ही देश के प्राण हैं। उन्हीं की सेवा में मुक्ति है, कल्याण है और है जीवन की सफलता का आनन्द।'

प्रकाश की माता शीलादेवी को पूर्ण विश्वास था कि राधाकान्त बाबू कलकत्ते से प्रकाश को साथ लेकर ही लौटेंगे। राधाकान्त घर वापस आये, परन्तु प्रकाश उनके साथ न आया, उसके बदले आया सुशील। अपने पुत्र की जेल यात्रा की बात सुन कर शीलादेवी पर मानो बज्रपात हुआ। उसी दिन से उसने खाट पकड़ ली। कई दिनों तक उसने खाना नहीं खाया। आखिर सन्तोष करना ही पड़ा। कलेजे पर पत्थर रख कर वह किसी तरह कष्ट पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगी। परन्तु पुत्र के कष्टों का ध्यान उसे सदा सताया करता। शीला

सुशील को भी पुत्र की तरह ही मानती थी। उसे मालूम था कि प्रकाशचन्द्र सुशील को अपने से भिन्न नहीं समझता है। यही सोच कर बुद्धिमती शीलादेवी सुशील को ही देख कर किसी प्रकार सन्तोष करने लगी। सुशील भी प्राणपण से शीलादेवी की अपनी माता समझ कर ही सेवा करता। वह सदा वही काम करता जिससे उन्हें प्रकाश की याद कम सतावे। सुशील की माता उसके बचपन में ही चल बसी थीं। अब जो उसे शीलादेवी का वात्सल्य प्राप्त हुआ, उसका मन एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति से बहुत प्रसन्न हुआ। बाबू राधाकान्त सुशील को अपने पुत्र का बहकाने वाला समझते हुए भी हृदय से स्वाभाविक स्नेह करते थे। एक तो सुशील के पिता प्रोफेसर जगदीशप्रसाद यों ही उनके अन्तरङ्ग मित्र थे, उस पर सुशील के सदाचार पूर्ण जीवन और शीलादेवी के प्रति पुत्रवत सेवा भाव देख कर वे सुशील पर बहुत प्रसन्न हो गये। शीलादेवी का पुत्र वियोग जनित कष्ट और उसकी अस्वस्थता देख कर उन्होंने जगदीशप्रसाद को सब बातें खोल कर लिखने के साथ ही यह भी लिख दिया था कि वे सुशील को शीला की अस्वस्थता और मानसिक दुःख के कारण अभी शिवपुरी ही रखेंगे।

परन्तु एक बात से राधाकान्त बेतरह डर गये। सुशील उनके ग्राम में किसानों का सगठन करने लगा। जहां दो चार आदमी इकट्ठे हो जाते कि वह अपना व्याख्यान आरम्भ कर देता था। गांव में इस बात की खासी चर्चा फैल गई। लोग कहने लगे कि प्रकाश तो गांधी बाबा का चेला बन कर उनके साथ जेल चला गया है और उसका गुरुभाई अब यहां के लोगों को जगाने आया है। लोगों को यह भी विश्वास होने लगा कि यदि उसके कथनानुसार कार्य किया गया तो यहां के लोगों का अच्छा सङ्गठन हो सकता है। एक दिन एक सभा की गई। उसमें लगभग एक सौ आदमी इकट्ठे थे। सभा में सुशील का ओजपूर्ण भाषण हुआ। लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। सुशील का भाषण बड़े प्यारे और सरल शब्दों में हुआ करता था। इससे प्रत्येक के हृदय में उसका असर पड़े बिना नहीं रह सकता था। एक तो ये ग्रामीण यों ही सरल हृदयवाले होते हैं, शहर के छल कपट से परे होते हैं, तिस पर ग्रामीण कृषक तथा जरायम पेशावाले लोग सदा से दबे हुए रहते हैं; इसलिये जब इनको कोई सच्ची सलाह और सच्ची सहानुभूति देनेवाला मिल जाता है, ये हृदय से उसकी बात सुनते हैं और उसकी कदर करते हैं।

इसी प्रकार सभायें होने लगीं और लोगों पर धीरे धीरे सुशील का प्रभाव फैलने लगा। एक सभा में एक दिन सुशील ने पांच आदमियों की एक 'हितकारिणी कमेटी' बना दी और उस कमेटी पर ग्राम सगठन का भार दिया गया। लोगों से यह भी अपील की गई कि वे अपने मामले मुकदमें सरकारी अदालत में न भेजें, इस कमेटी के द्वारा ही उनका निर्णय करालें। इस कमेटी के साथ साथ ही एक 'नवयुवक सङ्घ' की स्थापना भी की गई। इसके ग्यारह सदस्य चुने गये। इन लोगों के जिम्मे गांव की रक्षा का भार दिया गया। 'हितकारिणी कमेटी' के निर्णयों को कार्यरूप में परिणत करने का भी काम इनके जिम्मे किया गया। इस प्रकार के एक दल के बिना 'हितकारिणी कमेटी' के निर्णयों का पालन भी नहीं हो सकता था। जैसे कमेटी ने किसी व्यक्ति को पांच रुपये जुर्माने की सजा दी। अब जुर्माना वसूल करने का कार्य 'नवयुवक सङ्घ' को सौंपा गया। उसके सदस्य दंडित व्यक्ति से जुर्माना वसूल कर लेंगे। एक शब्द में 'नवयुवक सङ्घ' की उपयोगिता वही थी, जो साधारण पुलिस की हुआ करती है। जिस तरह जज जुर्माने की सजा देकर उसकी वसूली का भार पुलिस को दे देता है, उसी तरह 'हितकारिणी कमेटी' और 'नवयुवक सङ्घ' का भी पारस्परिक सम्बन्ध था। जनता की भलाई के अन्य छोटे मोटे कार्य भी इस संघ के सुपुर्द किये गये। जैसे किसी का जानवर किसी की फसल

नष्ट न करे, कोई तालाब गन्दा न करे, कोई सड़क अथवा किसी अन्य सार्वजनिक स्थान को अपने व्यक्तिगत उपयोग में न लावे। इस प्रकार सुशील ने उस ग्राम के सङ्गठन का एक बड़ा ही सुन्दर खाका तैयार कर दिया। लोग बड़े उत्साह के साथ उसके अनुसार कार्य करने के लिये तैयार हो गये।

तुरन्त इन बातों की खबर थानेदार साहब को भी लगी। एक दिन उन्होंने तहसीलदार बाबू राधाकान्त के पास जाकर नम्रता पूर्वक सख्त हिदायत कर दी कि वे सुशील को समझा बुझालें। ग्राम में इस प्रकार विद्रोहात्मक भाव फैलाना ठीक नहीं है। यदि सुशील भविष्य में फिर किसी तरह का आन्दोलन करेगा तो तुरन्त उस पर मामला चलाया जायगा। दारोगा साहब की खरी खोटी सुन कर बाबू राधाकान्त को सुशील के लिये बड़ी चिन्ता हुई। साथ ही वे अपने लिये भी कम चिन्तित न हुए। शिवपुरी जैसे ग्रामों में अक्सर तहसीलदार और थानेदार में परस्पर अदावट रहा करती है। दोनों ही अपने अपने महकमों में स्वतन्त्र हुआ करते हैं। तहसीलदार का पद बड़ा होते हुए भी थानेदार के अधिकार विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। तहसीलदार बाबू राधाकान्त और थानेदार साहब में भी यही परम्परागत अदावट थी। राधाकान्त की चिन्ता का यह भी एक विशेष कारण था।

उसी दिन सन्ध्या को उन्होंने सुशील को अपने पास बुलाया और थानेदार साहब की सभी बातें कह सुनायी। इसके साथ ही अपनी लम्बी टिप्पणी भी जोड़ दी जिसका आशय यह था कि शिवपुरी जैसे शान्त और शिष्ट ग्राम में व्यर्थ की हुल्लड़बाजी से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होगी। उनकी बातें सुन कर सुशील ने निर्भयतापूर्ण मुस्कुराहट के साथ उत्तर दिया "जिस युवक ने देशसेवा न की, उसका जीवन व्यर्थ है। प्रकाश देश के लिये ही तो जेल गया है। ऐसी दशा में क्या आप आशा करते हैं कि मैं चूड़ी पहन कर घर में बैठा रहूँगा? आप दारोगा साहब को शौक से मामला चलाने दीजिये। उनकी धमकी की उतनी भी परवाह न कीजिये, जितनी कुत्ते के भूकने की भी की जाती है।" उसने और भी बहुत कुछ नम्रतापूर्वक कहा, जिसका आशय यह था कि चाचाजी वृद्ध हो गये हैं, इस कारण खून ठंडा हो गया है। इस समय तो देशभक्ति के लिये मर मिटना ही उनके जैसे युवकों का प्रधान कर्त्तव्य है इत्यादि।

सुशील की उग्र बातें सुन कर उस समय तो बाबू राधाकान्त चुप हो गये। चन्द मिनटों के बाद वे उसे फिर समझाने बुझाने लगे, पर कोई फल न हुआ। अब वे बड़ी चिन्ता में पड़े। वे सोचने लगे कि यदि सुशील पर कहीं मामला आदि चला तो बदनामी उनके सिर होगी। और यह कलङ्क कालिमा उनके मस्तक से सहज ही दूर न हो सकेगी। यही बात सोच कर वे सदा चिन्तित रहा करते थे। अन्त में समझा बुझा कर उन्होंने सुशील को अपने पिता के यहां मधुपुर भेज दिया। परन्तु उस ग्राम से प्रस्थान करने के पहले उसने वहां का संगठन और भी दृढ़ कर दिया। उसकी बिदाई वहां के नवयुवकों को बहुत अधिक अखरी। (क्रमशः)
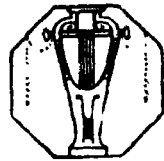
राजस्थान के दोहे

[श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, विद्याभूषण, विशारद, एम० आर० ए० एस०]

राजस्थान भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय है-- उसका इतिहास गौरवमय है—उसकी गाथायें भारतीय मात्र के हृदय को पुलकित करनेवाली हैं और हैं नव-जीवन की संचारक। वहाँ के बच्चे-बच्चे ने अपनी प्रतिज्ञा को निवाहने की चेष्टा की-नवजवानों ने अपने शान के सामने प्राणों को तुच्छ समझा—वृद्धों ने हसते हँसते देश की वलिवेदी पर अपने प्राण निछावर कर दिये। नववधुओं ने भी अपने पतियों का अनुसरण किया---जौहर व्रत किये-- माताओं ने पुत्रों को युद्ध क्षेत्र में भेजने ही में अपने दूध की इज्जत समझी-बहनों ने युद्धक्षेत्र से विजय प्राप्त कर लौटे हुए भाई को रोचन लगा कर सम्मानित करना ही अपना कर्त्तव्य समझा।

वहाँ के कवियों ने अपनी सरस्वती का आह्वान केवल देश की-धर्म की-जाति की-सम्मान की-सतीत्व की रक्षा के लिये ही किया -- उन्होंने धन के लोभ से किसी की प्रशंसा न की और न किसी की निन्दा। केवल सत्य बात का ही उन्होंने अपने काव्यों में वर्णन किया। जहाँ बुराई देखी वहाँ उन्होंने उसकी कठोर से कठोर शब्दों में निन्दा की। किसी की भी सिफारिश वहाँ न चली। यही कारण था कि वहाँ के राजपूत अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं हो सके—जो हुए वे निन्दा के भाजन हुए। चारणों ने राजपूत जाति की सम्मान रक्षा के लिये जो जो बचन कहे राजपूतों ने उन्हें शिरोधार्य किया। यह पारस्परिक सद्भाव वहाँवालों के लिये बड़ा ही काम का सिद्ध हुआ।

चारण जाति स्वभावतः ही कवि हुआ करती थी -- काव्यनिर्माण ही उसका प्रधान काम था। राजपूत सरदार अपने साथ एक न एक चारण को अवश्य रखते थे—चारणों और राजपूतों का चोली-दामन का सम्बन्ध था। बात यहाँ तक थी कि जिस राजपूत के पास कोई चारण न था-- उसके राजपूत होने में भी सन्देह किया जाता था। राजस्थानी साहित्य की निर्माता अधिकांश में यही जाति थी।

यों तो राजस्थान में तीन चार प्रकार का साहित्य प्रचुर प्रमाण में मिलता है पर चारणों द्वारा कहे गये 'दोहों' में जो चमत्कार है वह अन्य किसी प्रकार के साहित्य में नहीं। उन्होंने इन दोहों में 'गागर में सागर' भरने की चेष्टा की है। उनके द्वारा कहे गये एक-एक दोहे ने रियासत का इतिहास बदल डाला है-युद्धक्षेत्र की पराजय को विजय में परिणत कर दिया है। यहाँ तक नहीं अपने कर्त्तव्य को भूले हुए लोगों को कर्त्तव्य का ज्ञान करा दिया है।

राजस्थान की इस साहित्यिक संपत्ति में गूढ़ अर्थ भरा पड़ा है। नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, सदाचार, कर्त्तव्य परायणता आदि सभी गुणों का समावेश इसमें है। वीर रस, शृङ्गार रस, रौद्ररस आदि नवों रसों का आस्वादन इसके अध्ययन से मिल सकता है। हम

यहाँ पर विभिन्न प्रकार के विभिन्न रसों के कुछ दोहे अपने पाठकों की जानकारी के लिये देते है—

उदैराज कवि कहता है—

साहिब चरण न सेबिया, पर उपगार न कीध।
उण माणस ऊदौ कहै, अहल जमारो लीध॥

जिसने उस परम पिता परमात्मा के चरण कमलों की सेवा न की—दूसरों की भलाई न की उसने इस संसार में वृथा ही जन्म लिया।

एक स्त्री कहती है—

नाटज भजण रिपु दलण, सषी अम्हीणो कंत।
रिण बैरी घर मंगणां, मिलै हसत हसत॥

हे सखी, मेरा पति 'अस्वीकार' और शत्रुओं का नाश करनेवाला है वह युद्ध में बैरियों से और घर में याचकों से हँसते हँसते मिलता है।

इस एक ही दोहे में कवि ने राजस्थान के वीर क्षत्रियों के दो महान गुणों की क्या ही सुंदर ढंग से प्रशंसा की है। साथ ही वह यह भी बतला देता है कि वीर क्षत्रिय के ये लक्षण हैं—(१) दान (२) शत्रु-दमन अर्थात् युद्ध से विमुख न होना। एक कवि क्या ही सुन्दर ढंग से वीरों और कायरों के भेद को दरसाता है कि—

अेक अचंभो दीठ मैं, जलधारा बरसत।
साजा घट रीता थियै, फूटा घट पूरत॥

"जिस समय जल अर्थात् तलवारों की बौछार हो रही थी, उस समय मैंने एक अचंभा देखा - वह अचम्भा यह था कि जो घड़े अर्थात् शरीर पूरे अर्थात् सुरक्षित थे वे खाली ही रहे अर्थात् उन पर पानी न चढ़ा-उनकी इज्जत नहीं बढ़ी-वे कायर की तरह रण छोड़ कर भाग खड़े हुए। जो घड़े फूट गये अर्थात् जो वीर रण क्षेत्र में लड़कर काम आये, उन पर मान का पानी चढ़ा—उनकी इज्जत बढ़ी।

राजपूती किसे कहते हैं - उसकी इज्जत किस प्रकार बढ़ सकती है इस पर एक कवि कहता है—

रजपूती चावल जिसी, घणी दुहेली सोय।
ज्यूं ज्यूं चाढ़े सेलड़ां, त्यूं त्यू उज्जल होय॥

अर्थात् राजपूती-क्षत्रियत्व चावल के समान है- - जिस प्रकार चावल आग पर चढ़ानेके बाद ज्यों-ज्यों वह पकता जाता है त्यों-त्यों उसकी उज्ज्वलता निखरती जाती है उसी प्रकार यह राजपूती ज्यों ज्यों तलवारों, और सेलों की धारों पर चढ़ती जाती है त्यों-त्यों इसकी इज्जत-इसकी शान अधिकतर बढ़ती जाती है।

एक प्रियतमा अपने प्रियतम के विषय में अपनी सखी से कहती है—

सषी असो पिय बांणियो, लाहे बिणज करेह।
मांण महँगौ आपसी, मरण सहूँगो देह॥

'हे सखी, मेरा पति पूरा बनिया है। वह लाभ का ही व्यापार करता है। मान को मंहगा बेचता है और 'मरना' सस्ते बेच डालता है अर्थात् उसको अपनी इज्जत के सामने मरने की चिन्ता नहीं। वह अपने प्राणों से भी बढ़ कर अपनी शान को समझता है। ये ही भाव तो राजपूत जाति को इतना ऊंचा उठाने के कारण थे।

एक भावज अपनी ननद से कहती है—

अरि नैड़ा पिय बंकड़ा, सायधण बचणां सुदृध।
हालौ नणदल हिल्रवां, बालक अजिया दुदृध॥

'शत्रु सन्निकट है, मेरा प्रियतम बाँका वीर है—वह युद्धक्षेत्र में गये बिना रुक नहीं सकता मैं अपने वचनों पर दृढ़ हूँ अर्थात् उसके युद्ध में काम आ जाने पर अवश्य सती हो जाऊँगी—उस समय मेरे इस नवजात शिशु को माता के दूध के बिना बड़ा ही कष्ट होगा अतः हे ननद! इसे अभी से बकरी का दूध

पीने की आदत डाल दो जिससे कि यह उसको पान कर अपने प्राणों की रक्षा कर सके।

एक कवि नववधुओं की ओर लक्ष्य करके उनसे कहता है—

तरुणी जणैं कपूत मत, चंगो जोबन षोय।
जण तूं बैर बिहंडणो, कै कुल मंडण होय॥

'हे तरुणी, अपने इस सुन्दर और स्वस्थ यौवन को खोकर कपूत मत पैदा कर। या तो बैरियों का नाश करनेवाला ही उत्पन्न कर या वंश की इज्जत बढ़ाने वाला सपूत ही।'

वर्षा ऋतु की बहार देख कर एक वियोगिनी नायिका के दुख का ख्याल कर कवि कहता है—

बरसण लागी बद्दली, चमकण लागी बीज।
जिण रो सायब चाकरी, सो किम षेले तीज॥

'बादल बरसने लगे हैं बिजली चमकने लगी है। ऐसे सावण के सुहावने समय में जिसका प्रियतम विदेश में चाकरी पर गया हुआ है वह तीज का त्यौहार किस प्रकार मनावेगी।'

सावणी तीज का राजस्थान में क्या महत्व है, इसे जो राजस्थान के रहनेवाले है खूब समझते है। इस दिन सारे राजपूताने में आनंद की हिलोरें उठने लगती हैं। आबाल-वृद्धवनिता सभी पुलकित हो उठते हैं स्त्रियां आनन्द सागर में गोते लगाती हुई गीत गाती है। इस समय 'प्रियतम' का अभाव एक स्त्री के हृदय में हूक सा पैदा करता है।

और भी,

अंजन केरी मिस करी, नष लेषण लिष लेह।
पीतम काज संदेसड़ो, धण बिलपती देह॥

कवि कहता है कि 'अंजन (काजल) की स्याही बना कर और नाखूनों की लेखनी से लिख कर नायिका अपने प्रियतम को बिलाप करती हुई संदेशा भेजती है।"

कितना स्वाभाविक वर्णन है!

बसंत का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

आयौ मास बसत रौ, सब फूली बणराय।
जाँण सुहागण नीसरी, सिंदुर सीस लगाय॥

बसंत का महीना आ गया है। सारी वनस्पतियाँ फूल उठी हैं सब जगह सुहावनी छटा छा रही है—यह कैसी शोभित हो रही है, मानो सिंदुर का टीका माथे पर लगा कर सुहागिनि नारी बाहर आ खड़ी हुई हो।

देखिये, ग्रीष्म की लू को संबोधित करके कवि क्या ही सुन्दर कहता है

कौ लूवां रहसौ कठै, पावस धर पड़ियांह।
बाली नारि विदेस पिय, तपसीं तेण हियांह॥

'हे लू! पावस ऋतु के आ जाने पर तुम कहाँ रहोगी। लू ने उत्तर दिया उन नवयौवना स्त्रियों के हृदय पर तपती रहूँगी जिनका प्रियतम विदेश होगा।'

एक स्त्री अपने पति से कहती है—

कतड़ा लाह न भजियां, तो भग्गां मो षोड़ि।
हसिस्यै मोय सहेलियां, दे ताली मुष मोड़ि॥

हे प्रियतम, रणक्षेत्र से भाग जाने से कोई लाभ नहीं है। यदि तुम भाग जाओगे तो मेरे कलंक लग जायगा। मेरी सहेलियाँ मुख फेर-फेर कर—तालियाँ बजा-बजा कर हँसेंगी।

रणक्षेत्र में कटे हुए सिरों को देख कर कवि कहता है—

हूँ बलिहारी बेलियाँ, भाजे नह गइयाँह।
छीना मोती हारज्यूं; पाषन्ती पड़ियाँह॥

'मैं इन बेलियों की बलि जाता हूँ- कारण ये रण-क्षेत्र से भाग कर कहीं नहीं गई। ये कटे हुए सिर पड़े

कैसे दिखाई दे रहे हैं--मानो मोतियों का हार टूट कर मोती बिखर गये हों।"

पति तलवारों के घावों से कट कर रणक्षेत्र में पड़ा है उसके शव को देख कर उसकी स्त्री कहती है—

हंस हिलोले हल्लियौ, घावा भरियो घट्ट।
अजूं न मेल्है साहिबो, मूंछां तणो मरट्ट॥

'हंस था सो उड़ गया—सारा शरीर घावों से लहू-लुहान हुआ पड़ा है। पर मेरा प्रियतम अभी तक अपनी मूंछों की मरोड़ को नहीं छोड़ सकता अर्थात् अभी तक इसकी तनी हुई मूंछे इसके शान की घोषणा कर रही हैं।

एक कवि कहता है:

पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय।
इला न देणी आपणीं, हालरिये हुलराय॥

अर्थात् राजस्थानी माता अपने लड़के को पालणे में झुलाते समय ही 'मरने' की महत्ता समझा देती है और साथ ही यह भी बतला देती है कि अपनी 'जमीन' प्राण रहते दूसरे के कब्जे में न जाने देनी चाहिये।

एक राजा जंगल में शिकार खेलने गया था—रास्ते में भटक गया चलते-चलते उसको दो रास्ते दिखलाई पड़े -वहां पर उसने एक चारण से मार्ग पूछा—उसने तुरन्त उत्तर दिया—

जीव बधतां नरग गहि, अवधूतां हुय सग्ग।
हूं जाणू दोय बट्टड़ी, मन भावै सोई लग्ग॥

अर्थात् हे राजन! जीवों को मारने से नरक जाना पड़ता है—और साधु प्रकृति रखने से स्वर्ग मिलता है—मैं केवल इन्हीं दो रास्तों को जानता हूं—तुम्हारी जिधर इच्छा हो जा सकते हो!

एक सूरवीर की स्वामिभक्ति की प्रशंसा करते हुए एक कवि कहता है—

कृपण जतन धनरो करै, कायर जीव जतन्न।
सूर जतन उणरो करै, जिण रो खाधो अन्न॥

अर्थात् कृपण मनुष्य केवल अपने धन की रक्षा के लिये और कायर अपने प्राणों की रक्षा के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं—पर शूरवीर को न तो धन की ही परवाह है और न अपने प्राणों का मोह। वह तो दिन रात जिसका अन्न खाता है—उसी की रक्षा के प्रयत्न में सलग्न रहता है।

वर्तमान समय मारवाड़ी समाज के लिये बड़ा ही विकट है—संसार की प्रगति में यह समाज पीछे है—जो चाहता है वही इस पर आक्षेप कर बैठता है- इसका क्या कारण है ? क्या समाज में जन संख्या की कमी है? नहीं 'ऐसी बात नहीं' हम काफी तादाद में होते हुए भी पंगु हैं इसका कारण एक कवि के शब्दों में बतलाते हुए हम इस लेख को समाप्त करते हैं—

मरदां घणां न मान, मान हुवे हेकण मना।
जुध जीत्यो जापान, रूस घणो दल राजिया॥

अर्थात् घनी तादाद होने से किसी समाज विशेष की प्रतिष्ठा नहीं होती-प्रतिष्ठा तो तब होती है—जब सब एक दिल हो जांय सब के सब समाज हित के मामले में एक राय हों रूस में सेना बहुत थी पर एक दिल होने के कारण जापान के छोटे से दल ने उस पर विजय प्राप्त की।

जैन—साहित्य—चर्चा

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण ।

(क्रमागत)

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी]

(अनु०—श्रीमान् पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(४)

साधक-अवस्था

(१) एकबार दीर्घ तपस्वी वर्द्धमान ध्यान में लीन थे। उस समय शूलपाणि नामक यक्ष ने पहले-पहल तो इन तपस्वी को हाथी का रूप धारण करके कष्ट पहुँचाया, परन्तु जब इस कार्य में वह सफल न हुआ तो उसने एक विचित्र सर्प का रूप धारण करके भगवान् को डंक मारा तथा मर्मस्थानों में असह्य वेदना उत्पन्न की। यह सब होने पर भी जब वे अचल तपस्वी ज़रा भी क्षुब्ध न हुए तो उस यक्ष का रोष शान्त हो गया। उसने अपने दुष्कर्म के लिये पश्चात्ताप किया और अन्त में भगवान् से क्षमा माँग कर उनका भक्त बन गया।

—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ३, पृ० ३२-३३

(१) कालिय नामक नाग यमुना के जलको जहरीला कर डालता था। इस उपद्रव को मिटाने के लिये कृष्ण ने, जहाँ कालिय नाग रहता था वहाँ जा कर उसे मारा। कालिय नाग ने इस साहसी तथा पराक्रमी बालक का सामना किया। उसने डंक मारा। मर्म स्थानों में डङ्क मारा और अपने अनेक फणों से कृष्ण को सताने का प्रयत्न किया। परन्तु इन दुर्दान्त चपल बालक ने नाग को हाय तोबाह कराया और अन्त में उसके फणों पर नृत्य किया। नाग अपने रोष को शान्त करके तेजस्वी कृष्ण की आज्ञा के अनुसार वहाँ से चला गया और समुद्र में जा बसा।

—भागवत, दशम स्कन्ध, अ० १६, श्लोक ३—३०, पृ० ८५८—५९

(२) दीर्घ तपस्वी एकबार विचरते विचरते मार्ग में ग्वाल-बालकों के मना करने पर भी जानबूझ कर एक ऐसे स्थान में ध्यान धर कर खड़े हो गये जहाँ पूर्व जन्म के मुनिपद के समय क्रोध करके मर जाने के कारण सर्प रूप में जन्म लेकर एक दृष्टिविष चण्ड कौशिक साँप रहता था और अपने विष से सबको भस्मसात् कर देता था। इस साँप ने इन तपस्वी को भी अपने दृष्टिविष से भस्म करने का

(२) एकबार किसी वन में नदी के किनारे नन्द वगैरह गोप सो रहे थे। उस समय एक प्रचण्ड अजगर आया जो विद्याधर के पूर्व जन्म में अपने रूप का अभिमान करने के कारण मुनि का शाप मिलने से अभिमान के फलस्वरूप सर्प के इस नीच योनि में जन्मा था। उसने नन्द का पैर ग्रस लिया। जब दूसरे ग्वाल बालक नन्द का पैर छुड़ाने में असफल हुए तो अन्त में कृष्ण ने आकर अपने पैर से साँप

प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में निष्फल होने पर उसने अनेक डंक मारे। जब डंक मारने में भी उसे सफलता न मिली तो ※ चण्डकौशिक सर्प का क्रोध कुछ शान्त हुआ। इन तपस्वी का सौम्यरूप देख कर, चित्तवृत्ति शान्त होने पर उसे जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ। अन्त में धर्म की आराधना करके वह देवलोक में गया।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, स० ३, पृ० ३८-४०

(३) दीर्घ तपस्वी एक बार गंगा पार करने के लिये नाव में बैठ कर पगले पार जा रहे थे। उस समय इन तपस्वी को नाव में बैठा जान कर पूर्वभव के बैरी सुदंष्ट्र नामक देवने उस नाव को उलट देने के लिये प्रबल पवन की सृष्टि की और गंगा तथा नाव को हचमचा डाला। यह तपस्वी तो शान्त और ध्यानस्थ थे परन्तु दूसरे दो सेवक देवों ने इस घटना का पता लगते ही आकर उस उपसर्गकारक देव को हरा कर भगा दिया। इस प्रकार प्रचण्ड पवन का उपसर्ग शान्त हो जाने पर उस नाव में भगवान के साथ बैठे हुए अन्य यात्री भी सकुशल अपनी अपनी जगह पहुंचे।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, स० ३, पृ० ४१-४२

(४) एकबार दीर्घ तपस्वी एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। वहीं पास में वन में किसी के द्वारा सुलगाई हुई अग्नि फैलते फैलते इन तपस्वी के पैर में आकर छुई। सहचर के रूप में जो गोशालक था वह तो अग्नि का उपद्रव देख कर भाग छूटा परन्तु ये दीर्घ तपस्वी तो ध्यानस्थ एवं स्थिर

का स्पर्श किया। स्पर्श होने के साथ ही सर्प अपना रूप छोड़कर मूल विद्याधर के सुन्दर रूप में पलट गया। भक्तवत्सल कृष्ण के चरण स्पर्श से उद्धार पाया हुआ यह सुदर्शन नामक विद्याधर कृष्ण की स्तुति करके विद्याधर लोक में अपनी जगह चला गया।

—भागवत दशम स्कन्ध अ० ३४, श्लो० ५–१५ पृ० ९१७–१८

(३) एकबार कृष्ण का बध करने के लिये कंश ने तृणासुर नामक असुर को व्रज में भेजा। वह प्रचण्ड आंधी और पवन के रूप में आया। कृष्ण को उड़ाकर ऊपर ले गया परन्तु इस पराक्रमी बालक ने उस असुर का गला ऐसा दबाया कि उसकी आंखें निकल पड़ीं और अन्त में प्राणहीन होकर मर गया। कुमार कृष्ण सकुशल व्रज में उतर आये।

--भागवत, दशम स्कन्ध, अ० ११, श्लो० [illegible]

(४) एकबार यमुना के किनारे व्रज में आग लग गई। उस भयङ्कर अग्नि से तमाम व्रजवासी घबरा उठे परन्तु कुमार कृष्ण ने उससे न घबरा कर अग्निपान कर उसे शान्त कर दिया।

—भागवत, स्क० १०, अ० १७, श्लो० २१–२५ पृ० ८६६–६७

※ जातकनिदान में बुद्ध के विषय में भी एक ऐसी ही बात लिखी है। उलुवेला में बुद्ध ने एकबार उलुवेलकाश्यप नामक पांच सौ शिष्यवाले जटिल की अग्निशाला में रात्रिवास किया। वहाँ एक उग्र आशीविष प्रचण्ड सर्प रहता था। बुद्ध ने उस सर्प को जरा भी चोट पहुँचाये बिना ही निस्तेज कर डालने के लिये ध्यान समाधि की। सर्प ने भी अपना तेज प्रकट किया अन्त में बुद्ध के तेजने सर्प के तेज का पराभव कर दिया। प्रातःकाल बुद्ध ने जटिल को निस्तेज किया हुआ सर्प बताया। यह देख कर जटिल अपने शिष्यों के साथ बुद्ध का शिष्य बन गया। यह ऋद्धिपाद या बुद्ध का प्रातिहार्य अतिशय कहा गया है।

ही बने रहे। अग्नि का उपद्रव स्वयं शांत हो गया।

—त्रिषष्ठिशलापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ३, पृ० ५३।

(५) एकबार दीर्घ तपस्वी ध्यान में थे। उस समय किसी पूर्व जन्म की अपमानित उनकी पत्नी और इस समय व्यन्तरी के रूप में मौजूद कटपूतना (दिम्बराचार्य जिनसेन-कृत हरिवंश पुराण के अनुसार कुपूतना-सर्ग ३५ श्लो० ४२ पृ० ३६७) आई। अत्यन्त ठण्ड होने पर भी इस वैरिणी व्यन्तरी ने दीर्घ तपस्वी पर खूब ही जल के बूंद उछाले और कष्ट देने का प्रयत्न किया। कटपूतना के उग्र परिषह से यह तपस्वी जब ध्यान से विचलित न हुए तब अन्त में वह शान्त हुई, पैरों में गिरी और तपस्वी की पूजा करके चली गई।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १० सर्ग ३, पृ० ५८

(५) कृष्ण के नाश के लिये कंस द्वारा भेजी हुई पूतना राक्षसी व्रज में आई। इसने बालकृष्ण को विषमय स्तनपान कराया परन्तु कृष्ण ने इस षड्यत्र को ताड़ लिया और उसके स्तन का ऐसी उग्रता से पान किया कि जिससे वह पूतना पीड़ित होकर फट पड़ी और मर गई।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० ६, श्लो० १—९, पृ० ८१४

(६) दीर्घ तपस्वी के उग्र तप की इन्द्र द्वारा की हुई प्रशंसा सुन कर उसे सहन न करने वाला संगम नामक देव परीक्षा करने आया। तपस्वी को उसने अनेक परिषह दिये। उसने एकबार उन्मत्त हाथी और हथिनी का रूप धर कर तपस्वी को दन्तशूल से ऊपर उछाल कर नीचे पटक दिया। इसमें असफल होने पर उसने भयङ्कर बवण्डर रच कर इन तपस्वी को उड़ाया। इन प्रतिकूल परिषहों से तपस्वी जब ध्यानचलित न हुए तब सङ्गम ने अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ रचीं। उन्होंने अपने हावभाव, गीत नृत्य, वादन, द्वारा तपस्वी को चलित करने का प्रयत्न किया परन्तु जब इसमें भी उसे सफलता न मिली तो अन्त में उसने तपस्वी को नमन किया और भक्त होकर उनकी पूजन करके चलता बना।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ४, पृ०६७-७२

(६) एकबार मथुरा में मल्लक्रीड़ा के प्रसङ्ग की योजना कर कंस ने तरुण कृष्ण को आमंत्रण दिया और कुवलयापीड हाथी के द्वारा कृष्ण को कुचलवाने की योजना की परन्तु चकोर कृष्ण ने कंस द्वारा नियुक्त कुवलयापीड को मर्दन करके मार डाला।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० ४३, श्लो० १—२५ पृ० ९४७—४८

जब कोई अवसर आता है तो आसपास बसनेवाली गोपियां इकट्ठी हो जाती हैं, रास खेलती हैं और रसिक कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हैं। यह रसिया भी तन्मय होकर पूरा भाग लेता है और भक्त गोपी जनों की रसवृत्ति को विशेष उद्दीप्त करता है।

—भागवत, दशम स्कन्ध, अ० ३०, श्लो० १—४०, पृ० ९०४—७

दृष्टि बिन्दु

(१) संस्कृति भेद—

ऊपर नमूने के तौर पर जो थोड़ी सी घटनाएँ दी गई हैं, वे आर्यावर्त की संस्कृति के दो प्रसिद्ध अवतार पुरुषों के जीवन में की हैं। उनमें से एक तो जैन

सम्प्रदाय के प्राण स्वरूप दीर्घ तपस्वी महावीर हैं और दूसरे वैदिक सम्प्रदाय के तेजोरूप योगीश्वर कृष्ण हैं। ये घटनाएं सचमुच घटित हुई हैं, अर्धकल्पित हैं या एकदम कल्पित हैं, इस विचार को थोड़ी देर के लिए एक ओर रख कर यहाँ यह विचार करना है कि उक्त दोनों महापुरुषों की जीवन घटनाओं का ऊपरी ढाँचा एक सरीखा होने पर भी उनके अन्तरंग में जो अत्यंत भेद दिखाई दे रहा है, वह किस तत्त्व पर, किस सिद्धान्त पर और किस दृष्टि बिन्दु पर अवलम्बित है ?

उक्त घटनाओं की साधारण रूप से किन्तु ध्यान-पूर्वक जाँच करने वाले पाठक पर तुरन्त ही यह छाप पड़ेगी कि एक प्रकार की घटनाओं में तप, सहिष्णुता और अहिंसा धर्म झलक रहा है, जब कि दूसरी प्रकार की घटनाओं में शत्रुशासन, युद्धकौशल और दुष्ट दमन-कर्म का कौशल झलक रहा है। यह भेद जैन और वैदिक संस्कृति के तात्त्विक भेद पर अवलम्बित है। जैन संस्कृति का मूल तत्त्व या मूल सिद्धान्त अहिंसा है। जो अहिंसा की पूर्णरूप से साधना करे या उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हो गया हो, वही जैन संस्कृति में अवतार बनता है। उसी की अवतार के रूप में पूजा होती है। वैदिक संस्कृति में यह बात नहीं उसमें तो जो पूर्ण रूप से लोक संग्रह करे, सामाजिक नियम की रक्षा के लिये जो सामान्य सामाजिक नियमों के अनुसार सर्वस्व अर्पण कर के भी शिष्ट का पालन और दुष्ट का दमन करे, वही अवतार बनता है और अवतार के रूप में उसी की पूजा होती है। तत्त्व का यह भेद कोई मामूली भेद नहीं है। क्योंकि एक में उत्तेजना के चाहे जैसे प्रवल कारण विद्यमान हों, हिंसा के प्रसंग मौजूद हों, तो भी पूर्णरूप से अहिंसक रहना पड़ता है; जब कि दूसरी संस्कृति में अन्तःकरण की वृत्ति तटस्थ और सम होने पर भी विकट प्रसंग उपस्थित होने पर प्राणों की बाजी लगा कर अन्यायकर्त्ता को प्राणदण्ड तक देकर हिंसा के द्वारा भी अन्याय का प्रतीकार करना पड़ता है। जब इन दोनों संस्कृतियों में मूलतत्त्व और मूल भावना में ही भिन्नता है तो दोनों संस्कृतियों के प्रतिनिधि माने जाने वाले अवतारी पुरुषों की जीवन घटनाएँ इस तत्त्व भेद के अनुसार योजित की जाएँ, यह जैसे स्वाभाविक है उसी प्रकार मानस शास्त्र की दृष्टि से भी उचित है। यही कारण है कि हम एक ही प्रकारकी घटनाओं को उक्त दोनों महापुरुषों के जीवन में भिन्न-भिन्न रूप में योजित की हुई देखते है।

अधर्म या अन्याय का प्रतीकार करना और धर्म या न्याय की प्रतिष्ठा करना, यह तो प्रत्येक महापुरुष का लक्षण होता ही है। इसके बिना कोई महापुरुष नहीं बन सकता। महान पुरुष के रूप में उस की पूजा भी नहीं हो सकती। फिर भी उसकी पद्धति में भेद होता है। एक महान पुरुष किसी भी प्रकार के; किसी भी अन्याय या अधर्म को अपनी सारी शक्ति लगा कर बुद्धिपूर्वक तथा उदारतापूर्वक सहन करके उस अधर्म या अन्याय को करने वाले व्यक्ति का अन्तःकरण अपने तप द्वारा पलट कर उसमें धर्म एवं न्याय के राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न करता है। दूसरे महापुरुष को व्यक्तिगत रूप में धर्म स्थापन की यह पद्धति यद्यपि इष्ट होती है, तो भी वह लोक समूह की दृष्टि से इस पद्धति को विशेष फलप्रद न समझ कर किसी और ही पद्धति को स्वीकार करता है। वह अन्यायी या अधर्मी का अन्तःकरण समता या सहिष्णुता के द्वारा नहीं पलटता। वह तो 'विष की दवा विष' इस नीति को स्वीकार अथवा 'शठ के प्रति शठ' होने

वाली नीति को स्वीकार कर उस अन्यायी या अधर्मी को मटियामेट करके ही लोक में धर्म और नीति की स्थापना करने पर विश्वास करता है। विचार सरणी का भेद यह इस युग में भी स्पष्ट रूप से गाँधीजी तथा लोकमान्य की विचार एवं कार्यशैली में देख सकते हैं।

किसी प्रकार की ग़लतफ़हमी न हो इस उद्देश्य को यहाँ दोनों संस्कृतियों के सम्बन्ध में कुछ विशेष बता देना उचित है। कोई यह न समझ ले कि इन दोनों संस्कृतियों में प्रारम्भ से ही मौलिक भेद है और दोनों एक दूसरी से अलग रह कर ही पली-पुसी हैं। सचाई तो यह है कि एक अखण्ड आर्य-संस्कृति के दोनों अंश प्राचीन हैं। अहिंसा या आध्यात्मिक संस्कृति का विकास होते-होते एक ऐसा समय आया जब कुछ पुरुषों ने उसे अपने जीवन में पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। इस कारण इन महापुरुषों के सिद्धान्त और जीवन-महिमा की ओर अमुक लोक-समूह झुका जो धीरे-धीरे एक समाज के रूप में संगठित हो गया। सम्प्रदाय की भावना तथा अन्य कई कारणों से यह अहिंसक समाज अपने-आपको ऐसा समझने लगा मानो वह एकदम अलग ही है। दूसरी ओर सामान्य प्रजा में जो समाज नियामक और लोक संग्राहिका संस्कृति पहले से ही मौजूद थी, वह चालू रही और अपना काम करती चली गई। जब-जब किसी ने अहिंसा के सिद्धान्त पर अत्यन्त जोर दिया तब तब इस लोक-संग्रहवाली संस्कृति ने उसे प्रायः अपना तो लिया किन्तु उसकी आत्यन्तिकता के कारण उसका विरोध जारी रखा। इस प्रकार इस संस्कृति का अनुयायी वर्ग यह समझने और दूसरों को समझाने लगा मानो वह प्रारम्भ से ही जुदा था। जैन संस्कृति में अहिंसा का जो स्थान है, वही स्थान वैदिक संस्कृति में भी है। भेद है तो इतना ही कि वैदिक-संस्कृति अहिंसा के सिद्धान्त को व्यक्तिगत रूप से पूर्ण आध्यात्मिकता का साधन मान कर उसका उपयोग व्यक्तिगत ही प्रतिपादन करती है और समष्टि की दृष्टि से अहिंसा सिद्धान्त को सीमित कर देती है। इस सिद्धांत को स्वीकार करके भी समष्टि में जीवन-व्यवहार तथा आपत्ति के प्रसंगों में हिंसा को अपवाद रूप न मान कर अनिवार्य उत्सर्ग रूप मानती है एवं वर्णन करती है। यही कारण है कि वैदिक-साहित्य में जहाँ हम उपनिषद् तथा योगदर्शन जैसे अत्यन्त तप और अहिंसा के समर्थक ग्रन्थ देखते हैं वहाँ साथ ही साथ "शाठ्यं कुर्यात् शठं प्रति" की भावना के समर्थक तथा जीवन-व्यवहार किस प्रकार चलाना चाहिये, यह बतानेवाले पौराणिक एवं स्मृति-ग्रन्थों को भी प्रतिष्ठाप्राप्त देखते हैं। अहिंसा संस्कृति की उपासना करनेवाला एक वर्ग जुदा स्थापित हो गया और समाज के रूप में उसका संगठन भी हो गया। पर कुछ अंशों में हिंसात्मक प्रवृत्ति के बिना जीवित रहना तथा अपना तन्त्र चलाना तो उसके लिये भी सम्भव न था। क्योंकि किसी भी छोटे या बड़े समग्र समाज में पूर्ण अहिंसा की पालना होना असम्भव है। इसीसे जैन-समाज के इतिहास में भी हमें प्रवृत्ति के विधान तथा विशेष प्रसंग उपस्थित होने पर त्यागी भिक्षु के हाथ से हुए हिंसा प्रधान युद्ध देखने को मिलते हैं। इतना सब कुछ होने पर भी जैन-संस्कृति का वैदिक संस्कृति से भिन्न स्वरूप स्थिर ही रहा है और वह यह कि जैन-संस्कृति प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत या समष्टिगत हिंसा को निर्बलता का चिह्न मानती है और इसलिए इस प्रकार की प्रवृत्ति को अन्त में वह प्रायश्चित्त के योग्य समझती है। वैदिक-संस्कृति ऐसा नहीं मानती। व्यक्तिगत रूप से अहिंसा तत्व के विषय में उसकी

मान्यता जैन-संस्कृति के समान ही है, परन्तु समष्टि की दृष्टि से वह स्पष्ट घोषणा करती है कि हिंसा निर्वलता का ही चिह्न है, यह ठीक नहीं, बल्कि विशेष अवस्था में तो वह बलवान का चिह्न है, आवश्यक है, विधेय है, अतएव विशेष प्रसग पर वह प्रायश्चित्त के योग्य नहीं है। लोक-संग्रह की यही वैदिक भावना सर्वत्र पुराणों के अवतारों में और स्मृति-ग्रन्थों के लोक-शासन में हमें दिखलाई देती है।

इसी भेद के कारण ऊपर वर्णन किये हुए दोनों महापुरुषों के जीवन की घटनाओं का ढाँचा एक होने पर भी उसका रूप और झुकाव भिन्न-भिन्न है। जैन-समाज में गृहस्थों की अपेक्षा त्यागी वर्ग की संख्या बहुत कम है। फिर भी समस्त समाज पर (योग्य या अयोग्य, विकृत या अविकृत) अहिंसा की जो छाप लगी हुई है और वैदिक समाज में परिव्राजक वर्ग अच्छी संख्या में होने पर भी उस समाज पर पुरोहित गृहस्थवर्ग की चातुर्वर्णिक लोक-संग्रह वाली वृत्ति का जो प्रबल और गहरा असर है, उसका स्पष्टी करण उपर्युक्त संस्कृति भेद में से आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

(२) घटना के वर्णन की परीक्षा

अब दूसरे दृष्टिबिन्दु के सम्बंध में विचार करना है। वह दृष्टिबिन्दु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह है कि इन वर्णनों का आपस में एक दूसरे पर कुछ प्रभाव पड़ा है या नहीं, और इससे क्या परिवर्तन या विकास सिद्ध हुआ है, इस बात की परीक्षा करना। सामान्य रूप से इस संबंध में चार पक्ष हो सकते हैं

(१) वैदिक तथा जैन दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों का वर्णन एक दूसरे से बिलकुल अलग है। किसी का किसी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है।

(२) उक्त वर्णन अत्यन्त समान एवं बिम्बप्रतिबिम्ब जैसा है अतः वह बिलकुल स्वतंत्र न होकर किसी एक ही भूमिका में से उत्पन्न हुआ है।

(३) किसी भी एक सम्प्रदाय की घटनाओं का वर्णन दूसरी सम्प्रदाय के वैसे वर्णन पर आश्रित है अथवा उसका उस पर प्रभाव पड़ा है।

(४) यदि एक सम्प्रदाय के वर्णन का प्रभाव दूसरे सम्प्रदाय के वर्णन पर पड़ा ही हो तो किसका वर्णन किस पर अवलम्बित है? उसने मूल कल्पना या मूल वर्णन की अपेक्षा कितना परिवर्तन किया है और अपनी दृष्टि से कितना विकास सिद्ध किया है?

(१) उक्त चार पक्षों में से प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है। एकही देश, एकही प्रान्त, एकही ग्राम, एकही समाज और एकही कुटुम्ब में जब दोनों सम्प्रदाय साथ ही साथ प्रवर्त्तमान हों तथा दोनों सम्प्रदायों के विद्वानों तथा धर्मगुरुओं में शास्त्र, आचार और भाषा का ज्ञान एवं रीतिरिवाज़ एकही हों, वहां भाषा और भाव में इतनी अधिक समानता रखनेवाली घटनाओं का वर्णन, एक दूसरे से सर्वथा भिन्न या एक दूसरे से प्रभाव से रहित मान लेना लोकस्वभाव की अनभिज्ञता को स्वीकार करना होगा।

(२-३) दूसरे पक्ष के अनुसार यह कल्पना की जा सकती है कि दोनों सम्प्रदायों का उक्त वर्णन पूर्ण रूप में न सही अल्पांश में ही किसी सामान्य भूमिका में से आया है। इस संभावना का कारण यह है कि इस देश में भिन्न-भिन्न समयों में अनेक जातियां आई हैं और वे यहीं आबाद हो गई हैं। संभव है कि वैदिक और जैन संस्कृति के अङ्कुर पैदा होने से पहले गोप या आहीर जैसी बाहर से आई हुई या मूल से इसी देश में रहने वाली किसी विशेष जाति में

कृष्ण और कंस के संघर्षण के समान या महावीर और देवों के प्रसंगों के समान, अच्छी-अच्छी बातें वर्णित हों, और जब उस जाति में वैदिक और जैन संस्कृति का प्रवेश हुआ या इन संस्कृतियों के अनुयायियों में उसका सम्मिश्रण हुआ तो उस जाति में प्रचलित और लोकप्रिय हुई उन बातों को वैदिक एवं जैन संस्कृति के ग्रन्थकारों ने अपने-अपने ढंग से अपने-अपने- साहित्य में स्थान दिया हो। जब वैदिक तथा जैन संस्कृति के वर्णनों में कृष्ण का सम्बन्ध ग्वालों और आहीरों के साथ समान रूप से देखा जाता है और महावीर के जीवन प्रसंग में भी ग्वालों का बारम्बार जिक्र पाया जाता है, तब तो दूसरे पक्ष को और भी अधिक सहारा मिलता है। परन्तु वर्तमान में दोनों संस्कृतियों का जो साहित्य हमें उपलब्ध है और जिस साहित्य में महावीर तथा कृष्ण की उल्लिखित घटनायें संक्षेप में या विस्तार से, समान रूप में या असमान रूप में चित्रित की गई नज़र आती हैं, उन्हें देखते हुए दूसरे पक्ष की संभावना को छोड़ कर तीसरे पक्ष की निश्चितताकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। हमें निश्चित रूप से प्रतीत होने लगता है कि मूल में चाहे जो हो, परन्तु इस समय के उपलब्ध साहित्य में जो दोनों वर्णन पाये जाते हैं उनमें से एक दूसरे पर अवश्य अवलम्बित है या एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है, फिर भलेही वह पूर्णरूप में न हो, कुछ अंशों में ही हो।

(४) ऐसी अवस्था में अब चौथे पक्ष के विषय में विचार करना शेष रहता है। वैदिक विद्वानों ने जैन वर्णन को अपना कर अपने ढङ्ग से अपने साहित्य में उसे स्थान दिया है या जैन लेखकों ने वैदिक - पौराणिक वर्णन को अपना कर अपने ढङ्ग से अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है ? बस यही विचारणीय प्रश्न है।

जैन संस्कृति की आत्मा क्या है और मूल जैन ग्रन्थकारों की विचाराधारा कैसी होनी चाहिये ? इन दो दृष्टियों से यदि विचार किया जाय तो यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि जैन साहित्य का उल्लिखित वर्णन पौराणिक वर्णन पर अवलम्बित है। पूर्ण त्याग, अहिंसा और वीतरागता का आदर्श, यह जैन संस्कृति की आत्मा है और मूल जैन ग्रन्थकारों का मानस इसी आदर्श के अनुसार गढ़ा होना चाहिये। यदि उनका मानस इसी आदर्श के अनुसार गढ़ा हुआ हो तभी जैन संस्कृति के साथ उसका मेल बैठ सकता है। जैन संस्कृति में वहमों, चमत्कारों, कल्पित आडम्बरों तथा काल्पनिक आकर्षणों को जरा भी स्थान नहीं है। जितने अंशों में इस प्रकार की कृत्रिम और बाहिरी बातों का प्रवेश होता है, उतने ही अंशों में जैन संस्कृति का आदर्श विकृत एवं विनष्ट होता है। यदि यह सच है तो आचार्य समन्तभद्र के शब्दों में, अंधश्रद्धालु भक्तों की अप्रीति को अंगीकार करके और उनकी परवाह न करते हुए यह स्पष्ट कर देना उचित है कि भगवान महावीर की प्रतिष्ठा न तो इन घटनाओं में है और न बाल कल्पना ऐसे दिखाई देने वाले वर्णनों में ही। कारण स्पष्ट है। इस प्रकार की दैवी घटनाएं और अद्भुत चमत्कारी प्रसंग तो चाहे जिसके जीवन में लिखे हुए पाये जा सकते हैं। अतएव जब धर्मवीर दीर्घ तपस्वी के जीवन में पग-पग पर देवों का आना देखा जाता है, दैवी उपद्रवों को बाँचा जाता है, और असंभव प्रतीत होनेवाली कल्पनाओं का रंग चढ़ा हुआ नजर आता है तो ऐसा मालूम होने लगता है कि भगवान् महावीर के जीवन वृत्तान्त में मिली हुई ये घटनाएँ वास्तविक नहीं हैं। ये घटनाएं समीपवर्ती वैदिक पौराणिक वर्णन में से बाद में ले ली गई हैं।

इस विधान को स्पष्ट करने के लिये यहाँ दो प्रकार के प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं:

(१) प्रथम यह कि स्वयं जैन-ग्रन्थों में महावीर जीवन-सम्बन्धी उक्त घटनाएँ किस क्रम से मिलती है, और

(२) दूसरे यह कि जैन ग्रन्थों में वर्णित कृष्ण के जीवन-प्रसंगों की पौराणिक कृष्ण-जीवन के साथ तुलना करना और इन जैन तथा पौराणिक ग्रन्थों के समय का निर्धारण करना।

(१) जैन सम्प्रदाय में मुख्य दो फिरके हैं, दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर फिरके के साहित्य में महावीर का जीवन बिलकुल खण्डित है और साथ ही इसी फिरके के अलग-अलग ग्रन्थों में कहीं-कहीं कुछ-कुछ विसंवादी भी है। अतएव यहाँ श्वेताम्बर फिरके के ग्रन्थों को ही सामने रख कर विचार किया जाता है। सबसे प्राचीन माने जानेवाले अंग साहित्य में सिर्फ दो अग ही ऐसे हैं कि जिनमें महावीर के जीवन के साथ उल्लिखित घटनाओं में से किसी-किसी की झलक नज़र आती है। आचाराङ्ग सूत्र के जो पहला अङ्ग है और जिसकी प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है—पहले श्रुतस्कन्ध (उपधान सूत्र अ० ६) में भगवान् महावीर की साधक अवस्था का वर्णन है। परन्तु इसमें किसी भी दैवी, चमत्कारी या अस्वाभाविक उपसर्ग का नाम निशान तक नहीं है। इसमें तो कठोर साधक के लिये सुलभ बिलकुल स्वाभाविक मनुष्यकृत तथा पशुपक्षीकृत उपसर्गों का वर्णन है, जो अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है, और एक वीतराग संस्कृति के निर्देशक शास्त्र के साथ सामंजस्य रखने वाला मालूम होता है। बाद में मिलाये हुये माने जानेवाले इसी आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में अत्यन्त संक्षेप मे भगवान की सारी जीवन-कथा आती है। इसमें गर्भ के संहरण की घटना का निर्देश आता है, और किसी प्रकार का ब्यौरा दिये बिना किसी विशेष घटना का निरूपण न करते हुए सिर्फ भयंकर उपसर्गों को सहन करने की बात कही गई है। भगवती नामक पाँचवें अंग में महावीर के गर्भ संहरण की घटना का वर्णन विशेष पल्लवित रूप में मिलता है। उसमें यह कथन है कि यह घटना इन्द्र ने देव के द्वारा कराई। फिर इसी अंग में दूसरी जगह महावीर अपने को देवानन्दा का पुत्र बतलाते हुए गौतम को कहते हैं कि (भगवती श० ६ उद्देश ३३ पृ० ४५६) यह देवानन्दा मेरी माता है। (इनका जन्म त्रिशला की कोख से होने के कारण सब लोग इन्हें त्रिशला पुत्र के रूप में तबतक जानते होंगे, ऐसी कल्पना दिखाई देती है)।

यद्यपि अङ्ग विक्रम की पाँचवीं शताब्दी के आस पास संकलित हुए हैं। तथापि इस रूप में या कहीं-कहीं कुछ भिन्न रूप में इन अंगों का अस्तित्व पाँचवीं शताब्दी से प्राचीन है। इसमें भी आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का रूप और भी प्राचीन है। यह बात हमें ध्यान में रखनी चाहिये। अंग के बाद के साहित्य में आवश्यक निर्युक्ति और उसका भाष्य गिना जाता है, जिनमें महावीर के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली उपर्युक्त घटनाओं का वर्णन है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि निर्युक्ति एवं भाष्य में इन घटनाओं का वर्णन है तथापि वह बहुत संक्षिप्त है और प्रमाण में कम है। इनके बाद इस निर्युक्ति और भाष्य की चूर्णि का समय आता है। चूर्णि में इन घटनाओं का वर्णन विस्तार से और प्रमाण में अधिक पाया जाता है। चूर्णि का रचना काल सातवीं या आठवीं सदी माना जाता है। मूल निर्युक्ति ई० सं० से पूर्व की होने पर भी

इसका अन्तिम समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दी से और भाष्य का समय सातवीं शताब्दी से अर्वाचीन नहीं है। चूर्णिकार के पश्चात् महावीर के जीवन की अधिक से अधिक और परिपूर्ण वृत्तान्त की पूर्ति करनेवाले आचार्य हेमचन्द्र हैं। हेमचन्द्र ने त्रिपष्ठिशलाका पुरुष-चरित्र के दशम पर्व में तमाम पूर्ववर्त्ती महावीर-जीवन-सम्बन्धी ग्रन्थों का दोहन करके अपनी कवित्व की कल्पनाओं के रंग में रँग कर महावीर का सारा जीवन वर्णन किया है। इस वर्णन में से ऊपर जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे समस्त घटनाएँ यद्यपि चूर्णि में विद्यमान हैं तथापि यदि हेमचन्द्र के वर्णन को और भागवत के कृष्ण वर्णन को सामने रख कर एक साथ पढ़ा जाय तो जरूर ही मालूम पड़ने लगेगा कि हेमचन्द्र ने भागवतकार की कवित्व शक्ति के संस्कारों को अपनाया है।

(क्रमशः)
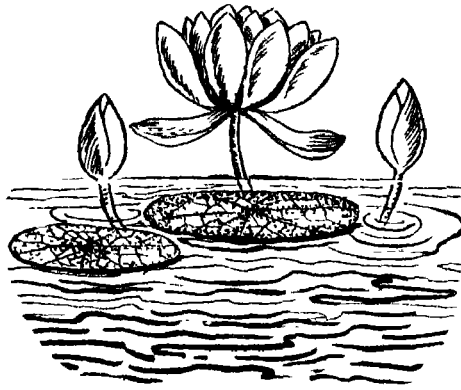
हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे ससार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपथ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या पतन औ- मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ? मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

अशिक्षा

(३)

आपके घर में साहित्य और ज्ञान का भण्डार भरा है पर उसकी रक्षा और अभिवृद्धि के वर्त्तमान साधन तो आपके पास नहीं हैं। क्या आपने इसके लिये कुछ विद्वान् तैयार किये हैं ? या प्राचीनता से ही सब कुछ हो जायगा ? इस कार्य के लिये तैयारी करने में युवकों की मदद करना क्या आपने कभी अपना कर्त्तव्य समझा है !

हमारा जीवन आज निर्जीव-निस्तेज सा लगता है—क्योंकि उसमें ज्ञान की ज्योति नहीं रही। अशिक्षा का अँधेरा छाया है, इस पर विचार करने के लिये क्या आपने कभी कुछ समय निकाला है ?

शिक्षा का उद्देश्य क्या रोटी के प्रश्न तक ही सीमित है ? इससे आगे क्या मनुष्य जीवन का कुछ भी महत्त्व नहीं ? आज की शिक्षा प्रणाली दूषित है तो उसमें सुधार करने के बदले क्या अब शिक्षा का ही अन्त कर देना चाहते हैं ? साधन को न मिटाकर साध्य को ही मिटा देना चाहते हैं ?

अज्ञान के अन्धकार में हमारा जीवन टकरा रहा है। उठने का साहस हो तो उठिये—फिर शायद उठने का अवसर ही न आवे।

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री मारवाड़ी जैन मंडल, मद्रास

ओटारी पेराम्बूर में मारवाड़ी जैन मंडल की ओर से जैनियों की एक सभा श्री देवसी भाई मूलचन्द के सभापतित्व में हुई थी। इस सभा के बुलाने का उद्देश्य उन आक्रमणों का रोधवि करना था जो हिज मास्टर्स वायस कंपनी द्वारा निकाले हुए तिरुग्नान सम्भण्डार नाम के चार ग्रामोफोन रिकार्डों में किये गये हैं। इस नाटिका के लेखक, मुद्रक, प्रकाशक और विक्रेताओं तथा रिकार्डों के बनाने वाली कंपनी ने जो जैनियों की धार्मिक भावना की निंदा की है- तथा उनकी खिल्ली उड़ाई है-- उस पर सारा जैन समाज क्षुब्ध है।

ता० २८ नवम्बर १९३६ को जो सभा हुई थी उसमें श्री एम० के० देवराज, एडवोकेट ने निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया "राम्राट की छत्रछाया में रहने वाले मद्रास के जैनियों की यह सभा उन ग्रामोफोन रिकार्डों का घोर विरोध करती है जो हिज मास्टर्स वायस कंपनी द्वारा निकाले गये हैं जिसमें वह 'तिरुग्नान सम्भण्डार' नाम का नाटक लिया गया है, जिसका विषय जैनियों की धार्मिक भावना पर आघात करता है और उनकी जातिका अपमान करता है। श्री देवीचंदजी, सावरचंदजी सुराणा इत्यादि महानुभावों के जोरदार भाषणों के साथ इस प्रस्ताव का समर्थन व अनुमोदन किया जा कर, वह पास हो गया। यह भी निश्चित किया गया कि इस सम्बन्ध में आवश्यक कानूनी कार्यवाही भी की जाय तथा स्थानीय सरकार के पास भी लिखा पढ़ी की जाय।

निम्न लोगों के पास प्रस्ताव की नकल भेजी गई है।

(१) हिज एक्सेलेंसी दी गवरनर आफ मद्रास के प्राइवेट सेक्रेटरी।

(२) मद्रास सरकार के ला मेम्बर।

(३) ,, ,, होम मेम्बर

(४) ,, ,, के प्रधान सेक्रेटरी

(५) पुलिस इन्सपेक्टर जनरल, मद्रास

(६) पुलिस कमिश्नर, मद्रास

(७) कानूनी सलाहकार मि० ई० एण्डी लोबो, बार-एट-ला, मद्रास।

[नोट - जिन रिकार्डों के विषय में इस पत्र में चर्चा की गई है उनके विषय की सम्पूर्ण जानकारी करने के के लिये हमने उक्त मंडल के मंत्रीजी को एक पत्र लिखा था--पर उनका कोई उत्तर न आने से हम पूरी सूचना पाठकों को नहीं दे सकते। इस विषय की ओर ध्यान जाते ही इतना तो स्पष्ट है कि इस प्रकार के

आक्षेप होने से हमारी धार्मिक भावना का अपमान होता है और उसका विरोध हमें करना चाहिये। आज जब देश की सारी शक्तियां देश की गुलामी—जिसके कारण सारे ही समाज और जातियां निर्जीव सी हो रही है—से लड़ने में संलग्न है—और होनी चाहियें, इस प्रकार के जातीय व धार्मिक मानापमान की प्रवृत्ति घोर निन्दनीय है।—सम्पादक |

श्री जैन-गुरुकुल, ब्यावर

जैन-गुरुकुल, ब्यावर का अष्टम वार्षिकोत्सव मार्गशीर्ष शुक्ला ९, १०, ११, ता० २२, २३, २४, दिसम्बर १९३९ को दानवीर श्रीमान सेठ सरदारमलजी सा'ब पुङ्गलिया नागपुर निवासी की अध्यक्षता में होगा।

स्था० जैन समाज के सर्व प्रथम इस गुरुकुल ने अपने आठ वर्ष के अल्प-जीवन-शैशव-काल में शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी जो प्रगति की हैं उसका निरीक्षण करने के लिये, उत्सव के समय आमन्त्रित अनेक धुरन्धर विद्वानों तथा श्रीमानों के संसर्ग से लाभ उठाने के लिये तथा शिक्षा, समाज आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में होने वाली अनेक महत्वपूर्ण विचारणाओं में भाग लेने के लिये हमारा आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इस उत्सव पर सकुटुम्ब और मित्र मण्डल के साथ अवश्य पधारें।

अनेक मुनिवरों के दर्शन का और व्याख्यान श्रवण का भी लाभ मिलेगा।

इसी अवसर पर कविसम्मेलन संगीत का जल्सा संरक्षक-परिषद्, छात्र-प्रतियोगिता एवं उद्योग-प्रदर्शन करने की आयोजना भी की गई है। इन सम्मेलनों में आप यथोचित भाग लेने की कृपा करें।

उत्सव के अवसर पर श्री जैन-गुरुकुल, ब्यावर के ब्रह्मचारी अनेक आश्चर्य-पूर्ण और मनोरञ्जक व्यायाम व खेल के प्रयोग प्रदर्शित करेंगे, जिन्हें देख कर आप अवश्य प्रसन्न होंगे। साथ ही गुरुकुल की फिल्म सिनेमा के रूप में दिखलाई जायगी।

- मंत्री
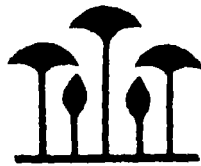
चिट्ठी-पत्री

(१)

पूना सिटी, ता० १३-११-३६

श्रीमान् सम्पादकजी,

इस पत्र के साथ मैं आपके सुप्रसिद्ध मासिक में प्रकाशित करने के लिये जो निम्न समाचार भेज रहा हूं, मुझे आशा है कि आप उसे अनुग्रह कर प्रकाशित करेंगे और अपने सम्पादकीय अग्रलेख या टिप्पणियों में इस पर चर्चा करेंगे।

आपका कृपाकांक्षी
के० पी० कांकरिया

खिंवसरा बन्धुओं का अभिनंदनीय उपक्रम

पूना निवासी श्री धोंडिरामजी दुलीचन्दजी खिंवसरा के सामाजिक सुधारप्रिय विचारों से राजस्थानी समाज भली-भांति परिचित है। हाल में ही आपकी माता श्री राजकुंवर बाई खिंवसरा का स्वर्गवास हुआ है। सुधारक सेठ साहब ने अपनी माता का औसर न कर उसके बजाय उनकी स्मृति में पांच हज़ार रुपये दान करना निश्चय कर यह रकम अलग निकाल रखी है। इस रकम के ब्याज से समाज के असहायों को सहायता और साधु-साध्वियों के रोगादि के उपचार के कार्यों में खर्च मिल सकेगा। श्री सेठजी का यह उपक्रम अभिनन्दनीय है। समाज के धनिक आपका अनुकरण कर अपने धनका सदुपयोग करके समाज-उत्थान का श्रेय प्राप्त करें।

[नोटः—हम पूना के खिंवसरा बन्धुओं के इस अनुकरणीय उपक्रम के लिये हृदय से उनका अभिनन्दन करते हैं। इस विषय पर एक टिप्पणी गताङ्क में प्रकाशित कर चुके हैं। कोई भी विचारशील व्यक्ति "औसर" जैसे निरर्थक कार्यों का समर्थन नहीं कर सकता। जितने भी विचारशील समाज-सुधारक औसर के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा रहे हैं, हम उन सभी से सहमत हैं। श्री कांकरियाजी के साथ हम भी अपने समाज के धनिक और साधारण, सभी व्यक्तियों से प्रार्थना करते है कि वे खिंवसरा बन्धुओं के इस कार्य का अवसर पड़ने पर अनुकरण करें।—सम्पादक]

(२)

श्रीमारवाड़ी जैन मंडल, मदरास

श्रीमान महाशयजी,

सेवा में विदित हो कि अपने मारवाड़ी समाज की गहरी निद्रा के कारण हर समय हर जगह मारवाड़ी की क्रूर मशकरी और बेइज़्ज़ती हुआ करती है, यह आप को अच्छी तरह विदित है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे समाज में अशिक्षा ज्यादा होने से तथा कलह कुसंप में गड़ होने से हम उन विरोधियों का सामना करने में असमर्थ रहे हैं। अब इस प्रकार की निद्रा में पडे रहना

हमको शोभास्पद नहीं । इस तरह हमारे समाज का जिन्दा रहना भी मुश्किल है।

हमारी बेखबरी का दुरुपयोग अब यहाँ तक हो रहा है कि दुनियां में मारवाडी के लिए मन माने लिखना और 'मारवाड़ी' का अर्थ भी जुदा २ बेखटके लगा रहे हैं क्योंकि वे लोग जानते हैं कि मारवाड़ में से हमको कौन पूछनेवाला है।

आज हमारा मंडल आपकी सेवा में बम्बई के एक प्रसिद्ध बुकसेलर एन० एम० त्रिपाठी के यहाँ से प्रकाशित न्यु पाकेट गुजराती इङ्गलिश डिक्सनेरी में मारवाड़ी शब्द का अर्थ जो किया है वह आप को भेज रहे हैं। अगर आपकी संस्था मारवाड़ी समाज या देश का गौरव रखती है तो आपका प्रथम फर्ज यह है कि जब तक यह कोष गवर्नमेन्ट में जप्त नहीं हो जाय तब तक भरसक प्रयत्न शील रहें और दूसरा यह है कि ता० १३-६-३६ के बम्बई समाचार साप्ताहिक पत्र में 'मारवाड़ी के जुल्मों से जनता में हाहाकार मच गया है,' ऐसा एक लेख प्रगट हुआ है। आप से प्रार्थना है कि शीघ्रातिशीघ्र इस के लिए भरसक प्रयत्न करें और विरोधियों को मुंह तोड़ उत्तर दें। आशा है कि आप पत्र पढ़ते ही प्रयत्न शील रहोगे। कृपया इस विषय में आप जो कार्यवाही करें उससे हमारे मडल को भी वाकिफ करते रहें।

आपका नम्र,

बुकसेलर का पता
एन. एम. त्रिपाठी बुकसेलर
प्रिन्सेज स्ट्रीट, बम्बई नं २

देवीचंद सागरमल जैन,
मंत्री, मारवाड़ी जैन मडल

[नोटः - इस विषय की सविस्तर चर्चा हम इसी अंक के सम्पादकीय अग्रलेख में कर रहे हैं।—सं०]

(३)

सराक जाति के लिये अपील

[सराक जाति के कई हजार स्त्री-पुरुष इन प्रान्तों में निवास करते हैं। इस बात के काफी प्रमाण मिल चुके हैं—और मिलते जा रहे हैं कि यह जाति जैन धर्मावलम्बी है—किन्तु अधिक दिनों से हमारा इनका सम्बन्ध न रहने के कारण यह अपना जैनत्व भूल गये हैं पर तो भी इनमें जैनपने के कई चिह्न अवशेष है। इनको वापस अपने जैनत्व का ज्ञान कराने के लिये प्रयत्न होना आवश्यक है। प्रसन्नता है कि हमारे कुछ मुनि-राजों का ध्यान इस कार्य की ओर गया है। हमने अन्यत्र श्री तनमल बोथरा का एक लेख इस विषय की पूरी जानकारी करानेवाला छापा है। श्रीयुत लक्ष्मीचंदजी सुचन्ती ने हमारे पास इस कार्य की सहायता के लिये एक अपील भी प्रकाशित करने को भेजी है जो हम यहाँ प्रकाशित करते हैं आशा है जैन समाज तन-मन-धन से इस कार्य की ओर ध्यान देगा। सम्पादक]

जिसको न निज जाति तथा
निज धर्म्म का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है
और मृतक समान है॥

यह बात अब किसी से छिपी नहीं है कि सराक जाति प्राचीन श्रावक (जैन) ही है, 'सराक' शब्द को देखते हुए भी यह साफ ज़ाहिर हो जाता है कि सरावक, सराक आदि श्रावक के ही अपभ्रन्श रूप हैं। इण्डियन सेन्सस की रिपोर्ट से भी यह बात पुष्ट हो जाती है कि ये प्राचीन श्रावक ही हैं। इनकी रीति-रिवाजों तथा गोत्रों से भी इनके श्रावक होने में किसी को शक हो

ही नहीं सकता। परन्तु आज यह जाति इस प्रान्त में धर्म-गुरुओं के अभाव से अपनी विशेष धार्मिक-क्रिया को भूल-सी गयी है। सदियों से इन्हें कोई उपदेशक नहीं मिले फिर भी यह जाति अपनी खास बातों को बनाये रही जैसे भगवान् पार्श्वनाथ को तथा भगवान आदिनाथ को अपना इष्टदेव मानना आदि।

क्या आप यह नहीं सोचते कि अन्य देशवासी सात समुद्र पार से भी इस देश में आकर अपने धर्म के प्रचार के लिये क्या-क्या नहीं कर रहे है? अपने इस कार्य को सिद्ध करने के लिये करोड़ों रुपये खर्च कर रहे हैं तथा कितने कष्ट सहन कर रहे हैं लेकिन यह जैन जाति अपने गुमराह भाइयों के साथ रहते हुए भी इनके लिये क्या कर रही है?

इस समय अब हमलोगों के सामने यह सवाल उपस्थित है कि इस सोई हुई जाति को किस प्रकार जगाया जाय? हर्ष का विषय है कि इसके प्रति हमारे मुनिराजों का ध्यान आकर्षित हुआ है। अभी एक वर्ष से इस जाति को सुधारने के लिये तथा उन्हें पुनः 'सर्वतो भावेन' जैन बनाने के लिये न्यायतीर्थ न्याय-विशारद उपाध्याय श्री मंगलविजयजी महाराज तथा उनके शिष्यरत्न मुनि श्री प्रभाकरविजयजी महाराज अकथनीय प्रयत्न कर रहे हैं तथा झरिया का श्री संघ और मुख्यतः सेठ कालीदास भाई भी इस कार्य में काफी उत्साह दिखला रहे हैं। अभी श्री पावापुरीजी में निर्वाणोत्सव पर आये हुए सज्जनों ने भी इस कार्य में काफी दिलचस्पी दिखलाई है। उनके प्रति मैं हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूं।

अब इस महान पुण्य कार्य के लिये धन की आवश्यकता सबको महसूस करनी पड़ेगी। आप इनको पुनः जैन तभी बना सकते हैं जब उन्हें जैन-धर्म की काफी शिक्षा मिले; इसके लिये आपको स्कूल, बोर्डिङ्ग, अस्पताल बनाने पड़ेंगे तथा धर्मोपदेश देने के लिये अनेक प्रचारक रखने पड़ेंगे, इसके लिये हमको अपने समय तथा धन का त्याग करना होगा। यदि आप महानुभाव अपने आवश्यक खर्चे में से भी २)-४)-५)-१०) महीना देकर इस महान् कार्य के लिये उत्सर्ग करें तो आप अपनी सोई हुई जैन जाति को उठा कर जैनियों की घटती हुई संख्या को लाखों की संख्या में बढ़ा कर महान् पुण्य के भागी होंगे।

जैन भाइयों से मैं प्रति महीने की सहायता देने के लिये इसलिये अनुरोध कर रहा हूं कि इस आर्थिक संकट के समय में एक दफे बड़ी रकम देने में सभी भाइयों को थोड़ी दिक्कत उठानी पड़ेगी लेकिन थोड़ी मासिक रकम हर महीने देने से वह इसको महसूस न कर सकेंगे।

श्री संघ का तुच्छ सेवक
लक्ष्मी चंद सुचन्ती

सम्पादकीय

मारवाड़ियों पर आक्षेप

अन्यत्र हम श्री मारवाड़ी जैन मंडल, मद्रास से आई हुई एक गश्ती चिट्ठी प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें यह समाचार संगृहित है कि बम्बई के एन० एम० त्रिपाठी एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित न्यू पाकेट गुजराती-अंगरेजी डिक्सनेरी-जो सन १९२३ में प्रकाशित हुई थी—में मारवाड़ी शब्द का निम्न अर्थ दिया है

मारवाड़ी, a. relating to Marwari. N. A Marwari, a. Parsimonious N. A cheat; a rogue. इस विद्वेषपूर्ण परिभाषा से मारवाड़ी जाति में खूब खलबली मची है—जो नितान्त उपयुक्त है। वास्तव में यह हमारी अब तक की कमजोरी का ही उपयोग है। 'हम मारवाड़ी हैं—हम व्यापार करना जानते हैं; हमारे पास धन है। धन है सो सब कुछ है; दूसरी ओर हम क्यों देखें ?' हमारे विचारों का यह जीर्ण-क्रम हमको—हमारे गौरव को नष्ट कर रहा है, पर हम तो अज्ञान-अशिक्षा-की नींद में सोये हैं! हम बेपरवाह हैं, बेखबर हैं; हमारी जाति पर—जातीय प्रतिष्ठा पर आये दिन मनमाने लौछन लगाये जाते हैं। मारवाड़ी की मनमानी निराधार परिभाषा की जाती है—मनमाना अर्थ लगाया जाता है।

यह जातीयता का युग नहीं है। जातीय पक्षापक्ष को लेकर वैमनस्य और अनैक्य फैलाना देश के सामष्टिक हितों के लिये घातक है। इसी जातीय संकीर्णता और पारस्परिक विद्वेष ने भारतीय स्वतंत्र जीवन को परतंत्र और विषमय बना दिया है। परन्तु फिर भी मनुष्य के लिये अपनी जाति का गौरव-अपना जातीय स्वाभिमान भूल जाना असम्भव है। जिस जाति में मनुष्य का जन्म होता है—उसका विकास होता है उसके प्रति उसकी सहानुभूति रहती ही है! और फिर जब उसकी जाति पर अनावश्यक और अनाश्रित दोषारोपण किया जाय—उसकी निन्दा की जाय तो कान में तेल डाले बैठा रहना किसी भी जीवित समाज के लिये शक्य नहीं है।

मारवाड़ी जाति आज भी, जब कि भारतीय व्यापार का अधिकांश भाग विदेशियों के हाथ में चला गया है, यहां के व्यापारिक समाजों में अग्रिम है। डिक्सनरी के संपादक और प्रकाशक को *शायद यह पता नहीं है कि मारवाड़ी यदि धनी है तो इसलिये नहीं कि वे चोर और बदमाश हैं, पर इसलिये कि उनमें* उपार्जन की व्यापारिक कुशलता और परिश्रम प्रियता है। फिर धन संकलन के साथ-साथ मारवाड़ियों की *दानशीलता तो जगत प्रसिद्ध है। आज भी मारवाड़ी* भारत की धर्म प्राण जातियों में प्रमुख हैं और इन्हीं के द्रव्य-बलपर भारत की अनेक संस्थाएँ चलती हैं। मारवाड़ियों के हाथ खींच लेने पर इन संस्थाओं का क्या हाल होगा, यह केवल कल्पना करने की बात है।

इतिहास के स्वर्ण पृष्ठ भी इस जाति की गौरव

गाथा से रंगे हैं। भामाशाह जैसे देश-हितैषी और नैणसी मूथा जैसे कर्मण्य वीरों की कृतियाँ हमारे देश का इतिहास गौरवान्वित किये हुए हैं। जिस समय देशप्रेम के मतवाले वीर प्रताप की आशाएँ टूट सी गई थीं उसी समय मारवाड़ी वीर भामाशाह के अद्भुत त्याग से निराश हुए प्रताप की भुजाओं में मेवाड़ का वह खून उबला था-जिसने यवन-सम्राट से विजय प्राप्त की। आज भी बिड़ला जैसे दानी, बजाजजी जैसे देशप्रेमी, सेठ गोविन्ददास जैसे त्यागी और सेठ अचलसिंह जैसे कर्मण्य सुधारक इसी मारवाड़ी समाज में हैं।

जिनमें निष्पक्ष सत्य को मान सकने की उदारता है वे तो आज भी मारवाड़ियों की ईमानदारी के कायल हैं। मारवाड़ी मात्र अपनी बात का 'धनी' होता है। उसकी व्यापारिक सत्यता अप्रतिम है। 'आज भी मारवाड़ियों की सर्राफी आँट जगत् भर में प्रसिद्ध है। मारवाड़ी सामाज आज भी बिना हस्ताक्षर लाखों रुपये लेती है और देती है।' दूसरी समाजों में बाप का कर्जा बेटा नहीं चुकाता, पर अपनी सात पीढ़ियों का ऋण भी मारवाड़ी चुकाता है। यह है उनकी सचाई-उनकी जिम्मेदारी।

कहीं पर रु० ५०) सैकड़े का ब्याज लेते हुए देख कर जो मारवाड़ियों को बदनाम करते हैं—अवश्य उनको अर्थशास्त्र के मामूली से मामूली सिद्धान्तों का भी ज्ञान नहीं है। जहाँ मारवाड़ी साहूकार एक जगह ५० प्रतिशत का ब्याज लेता है-वहीं दूसरे मौके पर या दूसरे स्थान पर केवल ५ या ६ प्रतिशत का सूद भी लेता है और वास्तव में इस भेद का एक सैद्धान्तिक कारण है। ऋण में ज्यों-ज्यों जोखिम बढ़ती जाती है त्यों-त्यों ब्याजदर में भी वृद्धि होना अर्थशास्त्र का पहला सिद्धान्त है। जो लोग केवल उनके ५० प्रतिशत के ब्याज को ही देखते हैं वे क्या कभी यह भी विचारते हैं कि उनको कई बार हजारों और लाखों का नुकसान भी हो जाता है। यह मारवाड़ियों की ही छाती है कि बिना कानूनी लिखा पढ़ी के भी हजारों और लाखों रुपये का लेनदेन जबान के आधार पर करते हैं।

देशी बैंकिंग (Indigenous Banking) के प्रश्न पर विचार करते समय कोई भी इस बात को नहीं भूल सकता कि मारवाड़ियों द्वारा इस देश के कोने-कोने में बैंकिंग की जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं—वे नये पाश्चात्य ढंग के बैंकों द्वारा नहीं मिलती। ऋण साधारणत: प्रत्येक कृषक की पहली आवश्यकता है और गरीब किसान कभी भी आधुनिक ढंग के बड़े बैंकों का लाभ नहीं उठा सकता। उन तक पहुंचते हुए भी वह डरता है। इन बैंकों द्वारा ऋण जिन शर्तों पर दिया जाता है उनकी पूर्ति कर सकना भी उसकी साधन-हीनता के कारण असंभव ही है। ऐसी परिस्थिति में मारवाड़ियों की सुविधा पूर्ण बैंकिंग ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। आर्थिक क्षेत्र में सभी तरह से मारवाड़ियों द्वारा इस देश का बड़ा उपकार हुआ है।

हम अपने मारवाड़ी भाइयों से अपील करते हैं कि अपने समाज पर अन्य जाति या अन्य प्रान्तों के लोगों द्वारा समय २ पर जो दोषारोपण किये जाते हैं उनका मुंहतोड़ उत्तर देना चाहिये। एन० एम० त्रिपाठी एण्ड कम्पनी की डिक्सनरी में मारवाड़ी का जो अर्थ लगाया गया है वैसा अर्थ यदि किसी और समाज के प्रति लगाया जाता, तो कभी के लेखक और प्रकाशक के दाँत खट्टे कर दिये जाते। पर हम तो चुप हैं—इसी चुप्पी के कारण तो हमारी उदारता, हमारी

दानशीलता का दूसरे लोग दुरुपयोग कर रहे हैं। अभी जो लोग इस प्रकार का अर्थ लगाते हैं वे ही जब लंबी-लंबी झोलियाँ लेकर मारवाड़ियों की गद्दियों में भटकते रहते हैं--उस समय भी क्या उनको अपने पर—अपने कामों पर शर्म नहीं आती ! उस समय भी क्या उनको मारवाड़ियों की उदारता, सहानुभूति और निर्लोभिता का परिचय नहीं मिलता। कांग्रेस और हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी महान् सार्वजनिक संस्थाओं के आर्थिक आधार के निर्माण में भी मारवाड़ियों की सहायता जाननेवालों को मालूम ही है !

देश की भलाई के प्रति हमारा कर्त्तव्य है पर जाति के प्रति भी हमारा बड़ा भारी कर्त्तव्य है। जातीय स्वाभिमान की भावना ही हमारा जीवन है—स्वाभिमान से हीन मनुष्य तो पशु के समान है; नहीं, पशु में भी स्वाभिमान की भावना होती है। अब अपने को चेत जाना चाहिये नहीं तो एक दिन हम किसी तरफ भी सिर नहीं उठा सकेंगे। हम को लुच्चा और बदमाश कहने वाली जातियों के प्रति हम अपनी क्या जिम्मेवारी समझें ? अन्य जातियों की तरह हम भी सबसे पहले अपनी शक्तियाँ अपनी ही जाति की सर्वाङ्गीण उन्नति में लगा दें। हमारी जाति में गरीब व्यक्ति क्यों दिखाई दे --बेकारी क्यों रहने पावे--शिक्षा की कमी क्यों रहे। क्या हमारे पास धन नहीं है ? हमारे पास साधन नहीं है ? एकबार हमें अपनी ही जाति की ओर दृष्टि कर लेनी चाहिये। हम सब मिल कर एक होकर शक्ति संचय करें, ऐसी निन्दाओं को अपनी सहानुभूति से बहिष्कृत कर दें। अनुमान तो ऐसा है कि यह कार्य किन्हीं स्वार्थियों का है जिनमें विवेक का अंश भी नहीं है। तो भी हम मारवाड़ी सम्मेलन, तथा अन्य सब मारवाड़ी संस्थाओं के कर्णधारों से भी इस तरफ ध्यान आकर्षित करने का अनुरोध करते हैं ! इस प्रकार की डिक्सनेरी अवश्य ही जब्त होनी चाहिये। देश के सर्व हितों के संरक्षक नेताओं से भी हमारी प्रार्थना है कि जातीय विद्वेष भरे इस प्रकार की कुत्सित भावना वाले प्रकाशनों के विरुद्ध उनको आन्दोलन करना चाहिये !

अपने मारवाड़ी नवयुवकों से हमें विशेष कर अपील करनी है कि इस प्रकार की घटनाओं से उनको सबक सीखना चाहिये। हमारा समाज धनी—मानी होते हुए भी शिक्षा और शक्ति के नाम से शून्य है इस प्रकार के विषैले वातावरण को पनपने देने का कारण हमारी निर्बलता ही है ! हम को अपने में शक्तिका विकास करना चाहिये— बिखरी हुई शक्तियाँ मिलानी चाहिये ! देश के बदलते हुए कलात्मक और सांस्कृतिक जीवन में योग देकर हमें हमारे समाज की सजीवता प्रमाणित करनी चाहिये ! जिस दिन हमारी शक्तियों का प्रकाश चारों और फैल जायगा उस दिन कोई भी इस प्रकार की निन्दा नहीं कर सकेगा ! सचेष्ट जागरूकता शक्ति का पहला साधन है !

टिप्पणियाँ

प्रेम का सिंहासन राज्य सिंहासन से ऊपर है !

मनुष्य का हृदय रसमय है ; प्रेम रसों का राजा है ! जिस हृदय में प्रेम राज्य करता है—जहाँ उसकी 'अमर ज्योति' दीप्तिमान है वहाँ साम्राज्यों के वैभव का मोह भी कितनी देर टिक सकता है ? जिसके जीवन में एकबार प्रेम की खुमारी का प्रसार हो जाता

हैं—उसके आनन्द का सच्चा प्रकाश उस प्रेम-साधना में होता है जहाँ उसको बड़ा से बड़ा त्याग भी करना पड़े तो साधना की सबलता बनी रहे—बल्कि वह और भी बढ़ जाय! प्रेम के राज्य-मंदिर में नियम और शर्तें नहीं हैं उनके तोड़ने में ही प्रेम की अभिव्यक्ति है!

भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड को अपनी प्रेयसी मिसेज सिम्पसन के प्रति इतना अगाध प्रेम है कि उन्होंने साम्राज्य परित्याग की समस्या आने पर उसको इस तरह छोड़ दिया कि जैसे वे कभी उसके अधिकारी थे ही नहीं, सारे बृटिश साम्राज्य में इस पर खलबली मची है—एक साधारण परिवार की स्त्री के प्रति मोहित होकर इतने बड़े विशाल समृद्धिशाली साम्राज्य का मोह त्याग देना-हृदय-हीन राजनीतिज्ञों के लिये कुछ भी हो-प्रेम पारखी के लिये प्रेम की महानता है। मनुष्य के हृदय पर प्रेम का कितना बड़ा प्रभाव है? —उसकी विजय में कितना उल्लास है—उसकी सचाई में कितनी शक्ति है!

'मैंने मिसेज सिम्पसन के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया है—और मैं साम्राज्य को छोड़ने को तैयार हूं।' एडवर्ड के इन शब्दों में प्रेम की भूमिका कितनी मादक और आकर्षक है! उनका जीवन कितना ऊंचा दिखलाई देता है! उनके व्यक्तिगत जीवन की सहृदयता और सचाई के प्रति हमारी परम सहानु-भूति है।

श्री शौरीपुरीजी तीर्थ का मुकदमा—

लगभग ६ वर्ष से श्री शौरीपुरीजी तीर्थ के सम्बन्ध में श्वेताम्बरी और दिगम्बरी दोनों समाजों में जो मुकदमा चल रहा है—और उसके कारण जैन समाज में जो वैमनस्य बढ़ रहा है वह बड़े खेद का विषय है! यह तीर्थ भगवान् नेमीनाथ की जन्मस्थली होने के कारण पवित्र है—पूज्य है! आश्चर्य है कि दोनों ही समाज भगवान नेमीनाथ को मानते हुए भी उन्हीं के नाम पर पवित्र हुए तीर्थ के बारे में परस्पर लड़ कर अपनी शक्ति नष्ट करते हैं तथा जैनेतर समाजों की निगाह में हास्यास्पद बनते हैं।

दुर्भाग्य का विषय है कि वर्षों के कटु अनुभव ने भी जैन समाज की आँखें नहीं खोली। झूठे गर्व के नशे में मत्त तीर्थों के ट्रस्टी लोग आये साल सरकार तथा वकील बैरिस्टरों को हजारों लाखों रुपये दे देते हैं। पर क्या उनसे पूछें कि यह बाहरी गर्व की लड़ाई किस प्रकार क्षण-प्रतिक्षण गिरते हुए जैन समाज की रक्षा करेगी। या तीर्थों के आवरण में यह व्यक्तिगत स्वार्थों का द्वन्द्व है? अनेकान्त के मानने वालों में यह नग्न एकान्तिकता? व्यापक जैनत्व के स्थान में यह संकीर्ण स्वार्थबुद्धि! वास्तव में यह लड़ाई पूंजीवादियों की है—पूंजीवाद इसका कारण है। लड़ाई का कारण ऊपर से कुछ भी मालूम पड़े पर मूल कारण तो तीर्थों में रही हुई सम्पत्ति ही है! सच्चा सुधार तो मूल कारण को दूर करने से होगा आज के जीवन की परि-स्थितियों में तीर्थों में सम्पत्ति एकत्रित करना सब से अधिक पापमय प्रवृत्ति है, जिससे समाज और देश के सच्चे जीवन के क्षेत्र सूख रहे हैं।

हम दोनों समाजों के विवेकशील अग्रगण्य व्यक्तियों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग इस लड़ाई को मिटाकर आपस में प्रेम और सहानुभूति पैदा करने में करें!

लेखकों से -

किसी भी पत्र के लिये लेखकों का सजीव सहयोग बड़ी आवश्यक वस्तु है। ओसवाल-नवयुवक का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की

सर्वाङ्गीण उन्नति करना है इसके लिये शुरू से हमारा लक्ष्य और नीति ऐसे ठोस साहित्य का सृजन करने की ओर है जिससे समाज के बहुमुखी जीवन को बल और प्रेरणा मिल सके। इसलिये 'नवयुवक' के लिये हमको इसी प्रकार के लेखों की आवश्यकता रहती है— जिनमें नवीन दृष्टिबिन्दु, नवीन विचारणा, और मौलिक विशिष्टता हो, फिर वह चाहे लेख हो, कविता हो या कहानी। इस दृष्टि से हमें कई बार अपने कृपालु लेखकों की रचना वापिस लौटा देनी पड़ती है और कई बार उनमें बहुत फेरफार कर देना पड़ता है, जिसके लिये आशा है, लेखक हमको क्षमा करेंगे। किसी लेखक की रचना यदि हम लौटा देते हैं तो इससे उनको निरुत्साहित नहीं होना चाहिये, बल्कि यह समझ कर उन्हें सन्तुष्ट होना चाहिये कि हम अपने लक्ष्य और नीति से बाध्य हैं। एक-दो लेख यदि न छप सकें तो उनको लिखना छोड़ नहीं देना चाहिये पर बराबर लिखते रहना चाहिये, कुछ दिनों के बाद अवश्य उनकी रचना छपने लगेगी।

शिक्षा की कमी और व्यापार-वाणिज्य की प्रवृत्ति के कारण हमारे समाज में लेखकों की संख्या बहुत कम है और फिर जो लिख सकते हैं उनको समयाभाव की शिकायत रहती है जिसके कारण वे कुछ लिख नहीं पाते। अतः हमें अभी लेखकों की ओर से पूरा सहयोग नहीं मिल सका। समाज के अनुभवी योग्य विचारक लेखकों से हमारी प्रार्थना है कि अन्य अन्य कामों के साथ उन्हें यह भी अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये कि उनके अनुभवों और ज्ञान का समुचित महत्व इसी में है कि उसकी सहायता से समाज फायदा उठा सके—उनकी सत्यपूर्ण शोध से जीवन की दिशा बदली जा सके और उनके विचारों और आदर्शों के योग से समाज के शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक जीवन में सबलता आ सके। योग्य लेखकों के सहयोग के अभाव में पत्र की साधना भी अधूरी है। अतएव समाज के प्रत्येक लेखक से हमारा अनुरोध है कि वह अपनी रचना के योग से 'नवयुवक' की सहायता कर इसको उच्च श्रेणी का पत्र बना देने में सहायक हो— जिसकी कमी आज वर्षों से हमारा समाज अनुभव कर रहा है।

गुजराती लेखकों के लिये सुविधा—

गत अंक में हमने एक गुजराती लेख हिन्दी भाषान्तर के साथ छापा था। अब हमने यह निश्चय किया है कि आगामी अङ्क से 'नवयुवक' के पृष्ठों में कुछ स्थान गुजराती लेखकों के लिये सुरक्षित रखेंगे और फिल हाल जब तक प्रेस की सुविधा न हो जाय गुजराती रचनाएं हिन्दी लिपि में छापेंगे तथा यथासंभव उनका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया करेंगे। इस प्रकार की योजना में हमारा उद्देश्य यह है कि गुजराती लेखकों और विचारकों से हमारा सम्पर्क बढ़ेगा - तथा परस्पर प्रेममय सहयोग बढ़ कर विचार पूर्ण साहित्य की अभिवृद्धि होगी। गुजराती लेखकों ने जैन साहित्य में कुछ नवीन विचारों और नई शैली की उद्भावना की है, यह निर्विवाद है। बम्बई के श्रीयुक्त टीकम भाई मूथा भाई डोसी जिनका चित्र और परिचय हम गताङ्क में प्रकाशित कर चुके हैं—ने इस कार्य में पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया है। इसके लिये उनको धन्यवाद है। इस नवीन विचार को क्रियात्मक रूप देने में हमें श्री नेमीचन्दजी आंचलिया का जो सहयोग मिला है, उसके लिये हम उनके भी आभारी हैं।

वर्ष ७, संख्या ९ जनवरी १९३७

> तुम खुद अपनी आंख से देखो, कि यह धर्म अकुशल है, अतः त्याज्य है, इसे हम ग्रहण करेंगे तो हमारा अहित ही होगा। अकुशल धर्म का त्याग तुम अपनी प्रज्ञा से करो— श्रुति से या मतपरम्परा से नहीं; प्रामाण्य शास्त्रों की अनुकूलता से या तर्क के कारण नहीं; न्याय के हेतु से या अपने चिर-चिंतित मत के अनुकूल होने से नहीं; और वक्ता के आकार अथवा उसके भव्यत्व से प्रभावित होकर भी नहीं।
>
> —भगवान् बुद्ध

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादकः—
विजयसिंह नाहर, बी० ए०
भँवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

आवश्यकता है ।
'ओसवाल-नवयुवक' के ऑफिस में काम करने के लिये एक ऐसे योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है जो कम से कम मैट्रिक पास हो और हिन्दी-अँग्रेजी में पत्र व्यवहार कर सके। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा—प्रार्थी लोग निम्न पते पर आवेदन पत्र भेजें।
व्यवस्थापक
ओसवाल नवयुवक
२८, स्ट्राण्ड रोड कलकत्ता।

लेख-सूची

[जनवरी, १९३७]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफ़ी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिएँ। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता-परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	५०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	३०)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

श्रीयुत सेठ दीपचन्दजी गोठी

सेठ दीपचन्दजी गोठी मध्य प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के बैतूल-भैंसदेही ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्र से काग्रेस के उम्मेदवार हैं। जन्म से रईस और जमींदार होते हुए भी आप बैतूल के एक प्रतिष्ठित और सच्चे काग्रेस कार्यकर्ता हैं। सन् १९२३ में काग्रेस की ओरसे ही आप मध्य प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए थे और सन् १९२९ में देश की पुकार पर आपने कौंसिल की सदस्यता त्याग दी। गत सत्याग्रह आन्दोलन में आपने जंगल सत्याग्रह का संगठन किया था और उसमें आपको ६ महीनों के लिये जेल यात्रा भी करनी पड़ी थी। इनके जिले में जो किसान-जागृति हुई उसका बहुत कुछ श्रेय श्रीयुत गोठीजी को ही है। हम आशा करते हैं कि इस निर्वाचन में अवश्य ही श्री गोठीजी को सफलता मिलेगी। आप हमारे समाज के एक सम्पन्न, उदार और प्रतिष्ठित सुधार-प्रिय व्यक्ति हैं।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७ | जनवरी १९३७ | संख्या ९

आकुल-स्पन्दन

[श्री 'प्रिय जीवन']

नीरव पीड़ा के प्रांगण में, जीवन-तरु झुलसा जाता !
संसृति के कम्पित पथ में, जीवन का रोदन गाता !
कब होगा वह विपण्ण विस्फोट, जिसका यह स्वागत कम्पन !
कह न सको तो बिखर पड़ो, अन्तर के आकुल स्पन्दन !

जीवन है मादक गरलामृत, शक्ति नहीं कैसे पीना !
कर प्रकम्प से टूट जायगा, मद-भीना जीवन-सपना !
किस दिन होगा वह दिव्य विहान, जब होगा मर्म विहाग !
कह न सको तो बिखर पड़ो, जीवन के आकुल अभिशाप !

शून्य निशा में बहता जाता, कहाँ मिलेगी दीप शिखा ?
नई तूलिका नई रंगीनी, रंगी न जीवन-अभिलाषा !
अस्थिर लहरों में जीवन खोता, आशा का बुद्बुद् रहता !
पर इस अस्थिर बुद्बुद में भी, जीवन आँख मिचौनी करता !

× × ×

कह न सको तो बिखर पड़ो, अन्तर के आकुल स्पन्दन !

"प्राण ! कैसा जीवन है यह !"

[श्री दिलीप सिंघी]

जब संसार का आदिकाल था—

आश्विन की अनुपम पूर्णिमा में खड़े थे —आदि पुरुष और आदि स्त्री ! रजत रश्मियों का नृत्य और वैभव हृदय में मस्ती की हिलोरें उठा रहा था। सारी प्रकृति शान्त थी, हां, उस शान्ति को भेदती हुई पास ही नदी की एक धारा खड-खड ध्वनि से बह रही थी जो झिंगुरों के आलाप से मिल एक मधुर गान उत्पन्न कर रही थी। गान की हर तान, चन्द्र की हर किरण कुछ अजीब मद बरसा रही थी। स्त्री-पुरुष तल्लीन थे। बरबस हृदय में स्फूर्ति उठने लगी, प्रेम से गद्गद् हो कंधे पर हाथ रख स्त्री बोली—'प्राण कैसा जीवन है यह !'

कुछ सदियों बाद—

श्रावण की अमावस्या में, प्रहर रात्रि बीत चुकने पर मेघाच्छन्न आकाश में चले जा रहे थे घोड़ों पर सुसज्जित, स-शिशु एक पुरुष और एक स्त्री। देखते २ एक बादल फटा, बिजली चमकी, कड़ाके की एक आवाज हुई और मूसलाधार बरसने लगा: बालक घबराया, रोने लगा। घोड़े ठहरे, सवार उतरे, स्त्री ने शिशु को छाती से लगाया ! चुपचाप गर्म २ बूंद पुरुष के पैरों पर पड़ी, वह चमका। "प्राण कैसा, जीवन है यह !" कातर स्वर में स्त्री ने शिकायत की।

समय की अत्यधिक दौड़-धूप के पश्चात्—

पौष की लम्बी रात के द्वितीय प्रहर में जब बर्फ की सी सर्द हवा चमड़ी को चीरती हुई बह रही थी —बैठे थे मिट्टी के एक घर में चूल्हे के पास एक अंधे वृद्ध स्त्री-पुरुष, एक युवक-युवती और लेटे थे फूस के बिछौनेपर तीन चार बालक-बालिकायें। अकालका वर्ष था; बाहर ढोर घास बिना मृत्यु की प्रतीक्षा में खड़े थे, जैसे तैसे अब तक सारा कुटुम्ब जीवन टिका रहा था। उदर ठगने का मामूली साधन भी अवशेष होने को था।··· हवा का एक तेज़ झोंका आया। वृद्ध स्त्री पुरुष कांपने लगे। फूस पर लेटा हुआ एक रुग्ण बालक चिल्लाया और लगा खांसने। युवती उठी, बालक के सिर पर हाथ रखा, चौंक पड़ी। आग की हल्की रोशनी में युवक को संकेत किया। युवक उठा और ज्यों ही बालक को गोद में लिया, दूसरा बालक चिल्लाया। संतप्त युवती रो पड़ी, हिचकी बंध गई, अस्पष्ट कंठ में बोली—"प्रा ण ! कै सा·· जी··व न ·· है · य ह !"

आर्थिक धन क्या है ?

[श्री पन्नालाल भंडारी बी० ए०, बी० कॉम, एल-एल० बी०]

[— आज के युग में आर्थिक समस्याएं इतनी बढ़गई हैं कि जीवन की गतिके साथ उनकी जानकारी आवश्यक है। पश्चिम से इन समस्याओं का प्रारंभ हुआ है अतः इस दिशा में पाश्चात्य दृष्टि-कोण के अध्ययन की रूपरेखा जानना जरूरी है। पश्चिमी आर्थिक विज्ञान की जानकारी अभीतक हमारे देश में केवल कालेज-यूनीवर्सिटियों के छात्रों तक ही सीमित हैं, जनसाधारणको उसकी जानकारी होनी चाहिये। श्रीयुत भंडारीजीने सिक्का-धन (Currency) और विनिमय (Exchange) के विषय में ओसवाल नवयुवक में एक लेख माला लिखने का वचन दिया है ! उस लेख माला का यह पहला लेख है। श्रीयुत भण्डारीजी सुशिक्षित अध्यवसायी और प्रौढ़ विचारों के युवक हैं। आशा है इन लेखों से हिन्दी भाषी पाठकों को फायदा होगा—सं०]

प्रत्येक आर्थिक-कार्य (Economic activity) मानवता की सुख-वृद्धि के हेतु से किया जाता है। संसार की आर्थिक व्यवस्था का प्रत्येक पहलू इस आदर्श को ही मद्दे नजर रखकर विकसित होता है। आर्थिक व्यवस्था का विकास अधिकतर भौतिक और आध्यात्मिक* सुख की शोध में प्रारम्भ हुआ। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक इन उद्देश्यों की पूर्ति थोड़े बहुत अंश में होती रही, पर इस ही सदी के उत्तरार्द्ध की पश्चिमी औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने इस व्यवस्था में नव-जीवन संचारित कर भौतिकता से मानव-समाज को चकाचौंध कर दिया। इस क्रान्तिसे उत्पन्न विचारों और सामग्रियों पर हमारी आधुनिक आर्थिक-व्यवस्था का ढांचा खड़ा है - डगमगा रहा है। नींव कहाँ तक कच्ची है यह विषय विषयान्तर होने के खतरे से दूर नहीं। इस विषय पर मेरे विचार पाठकों के सामने किसी और मौके पर स्वतंत्र लेख द्वारा रक्खूंगा। पाठक इतने से ही सन्तोष कर लें कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था के फल-स्वरूप मानवता का नग्न ताण्डव हो रहा है। मानव-समाजमें जो खलबली मची हुई है, उसको भौतिकता के नशे में चूर हुये दिमाग शान्त नहीं कर सके, वह तो दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। आर्थिक कार्य धन बढ़ाता है, मानव सुख के लिये। धन साधन है आत्म-सुख साध्य। पर आज कल की आर्थिक व्यवस्था ने साधन को ही साध्य मान रक्खा है; बस, यही इस झमेलेका मुख्य कारण है।

सिक्का-धन (Money) हमारी आर्थिक-व्यवस्था का उपयोगी और महत्व का स्तम्भ है। आजकल के आर्थिक-झमेलों का बहुत-कुछ श्रेय सिक्का-धन के सिर पर ही मढ़ा जा रहा है। इस विषय में अनेक गुत्थियां हैं जिनके कारण साधारण मनुष्य उसके असर को समझ नहीं सकता। इस लेखमाला में इन गुत्थियों को

* अर्थ शास्त्र भौतिक सुख सम्पत्ति की सिद्धान्त-शृङ्खला है ! आध्यात्मिक सुख के लिये आर्थिक व्यवस्था का विकास हुआ, लेखक का यह मन्तव्य असंगत सा लगता है ! आध्यात्मिक सुख की शोध में इच्छाओं (Wants) का दमन पहला सोपान है पर आर्थिक कार्य की प्रेरणा में इनका होना पहली आवश्यकता है ! इसलिये यह कथन ठीक नहीं।—संपादक।

सरल शब्दों में सुलझाने की कोशिश की जायगी ताकि आधुनिक सिक्का-धन सम्बन्धी प्रश्नों को साधारण मनुष्य समझ सके।

सिक्का-धन क्या है ?

सिक्का-धन वह है जो प्रत्येक दिन हम अपनी आवश्यकताओं की प्राप्ति के बदले में इनकी पूर्ति करने वाले को देते हैं। साधारण मनुष्य के सामने वह केवल धातु का सिक्का और प्रॉमीसरी नोट ही है। किन्तु आजकल हम चेक और हुण्डियों को भी इसमें सम्मिलित करते हैं क्योंकि इनके द्वारा परोक्ष या अपरोक्ष रूप में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जो सिक्का-धन बिना हिचकिचाहट से देश भर में स्वीकार कर-लिया जाय उसको हम करेन्सी (currency)कहते हैं।

आधुनिक–आर्थिक व्यवस्था में धातु सिक्का (coin) लेनदेन में बहुत कम काम में आता हैं; विशेष कर उन पाश्चात्य देशों में जिनकी आर्थिक व्यवस्था बढ़ी-चढ़ी है। आजकल धातु-सिक्का मानो विलीन हो गया है और उनका स्थान प्रोमीसरी नोटस् ने ग्रहण कर लिया है नोटस् प्रत्येक देश की केन्द्रीय बेंक (Central Bank) ही तैयार करती है और उनकी तादाद सरकारी नियंत्रणों के अनुसार नियमित रहती है। किसी भी नागरिक के मांगने पर सेन्ट्रल बैंङ्क का कर्तव्य है कि नोटस् के बजाय धातु-सिक्का या निश्चित वजन और किस्म (Fixed quantity and fineness) का सोना दे। बस, इसी विश्वास पर कागज सोने का काम करता है।

केन्द्रीय बैङ्क अनुभव बल पर यह जानते हैं कि साधारण स्थिति में जितने नोट्स जारी हुये है, उनको लेकर एक ही समय सारी जनता सोना या स्वर्ण-सिक्का मांगने को नहीं आती। अतएव बेंक नोटस के पीठ-बल के वास्ते शत प्रतिशत सोना न रखते हुये अमुक प्रतिशत ही रखती है। बहुधा ४० प्रतिशत सुरक्षित समझा जाता है। ग्रेट-ब्रिटेन में बेंक ऑफ इङ्गलेण्ड २६०,०००,००० पाऊण्ड नोट्स इश्यु करे वहाँ तक सोना रखने की आवश्यकता नहीं रक्खी गई, तत्पश्चात् शत प्रतिशत सोना रखना पड़ता है। सिक्का-धन-सम्बन्धी प्रश्नों को समझने के लिये बेंक-साख के प्रारम्भिक सिद्धान्तों को जानना आवश्यक है। आगे चल कर हमको यह भी मालूम करना होगा कि मूल्य-मान (Price level) और सिक्का-धन के बीच में क्या सम्बन्ध है, इसलिये दो शब्द इसके विषय पर भी लिखना उचित है ताकि आगामी लेखों को समझने में सहूलियत हो।

देखा जाता है कि अमुक समय पर करेन्सी (धातु-सिक्का या नोट्स) अमुक तादाद में है, किन्तु बेंक–अमानत (Bank deposits) के आँकड़े उससे कई गुने दिखाई देते हैं। बेंक-अमानत अमानत रखनेवाले के लिये करेन्सी ही है इसलिये औसत-आदमी के सामने तब यह सवाल पैदा होता है कि सिक्का-धन इतना कैसे बढ़ गया ? इसका संक्षिप्त में उत्तर यही है कि बेंक के पास सुरक्षित रखने के लिये जो अमानत ग्राहकों से करेन्सी के रूप में आती है उससे करीब-करीब दस गुना कर्ज वह बेंक अन्य ग्राहकों को देती है क्योंकि अमानत रखनेवाले ग्राहक कई होते हैं और सब अपनी अमानत वापिस लेने के लिये एक ही साथ नहीं आते हैं। ग्रेट-ब्रिटेन के बेंकों का यह अनुभव है कि १० प्रतिशत अनुपात काफी हैं। जो ऋण बेंक देती है वह भी ऋण लेनेवाले ग्राहक के नाम बतौर अमानत लिख लिया जाता है। अतएव यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि बैङ्क संस्था द्वारा १० इकाई करेन्सी १०० इकाइयां का काम करती हैं। सिक्का-धन-सम्बन्धी प्रश्नों को सम-

झने के लिये यह सिद्धान्त हमेशा याद रखना चाहिये।

करेन्सी की तादाद (quantity) और पदार्थों की कीमत के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को समझने के पहले हमको यह ख्याल रखना चाहिये कि १ रुपया अगर एक दिन में एक ही समय काम करे तो वह हमारी उस दिन की करेन्सी में एक रुपया ही गिना जायगा किन्तु वह १० समय रुपया का काम करे तो उस दिन की करेन्सी में १० रुपया गिना जायगा। इसको हम करेन्सी की भ्रमण-रफ्तार (Velocity of circulation) कहते हैं। उदाहरणार्थ किसी स्वतन्त्र टापू में १००० पदार्थ लेन-देन के लिये हैं और वहां १००० रुपया करेन्सी है, तब औसत कीमत प्रति पदार्थ एक रुपया बैठती है किन्तु वहां एक छोटी बैंक स्थापित की जाय जो अमानत से दस गुना ऋण देती है तो थोड़े समय में उन हज़ार रुपयों की भ्रमण-रफ्तार बढ़ जायगी। पदार्थ अगर १,००० ही रहे तो भ्रमण-रफ्तार के अनुपात में उन पदार्थों की कीमत बढ़ जायगी अर्थात् करेन्सी की कीमत पदार्थों में घट जायगी। अगर इन रुपयों में से ५०० रुपये गड्ढे में गाड़ दिये जाय या बैंक १० प्रतिशत ऋण देने के बजाय तीन प्रतिशत दे तो करेन्सी का भ्रमण रफ्तार कम होगा और पदार्थों की कीमत घट जायगी।

ऊपर यह बताया गया है कि केन्द्रीय बैङ्क का यह कर्तव्य है कि नोट्स के बजाय मांगने पर अमुक वज़न और किस्म का सोना या सोना-सिक्का देवे। जिस देश में बैङ्क इस तरह अपना कर्त्तव्य पूर्ण करती है उस देश को हम स्वर्ण-मान-स्थित देश (Gold Standard country) कहते हैं। उदाहरणार्थ सितम्बर १९३१ तक बैंक ऑफ इङ्गलैण्ड स्टरलिंग के बजाय सोना देती रही तबतक इङ्गलैण्ड स्वर्ण-मान देश कहलाया। तत्पश्चात् अनेक कारणों के बल से झुक कर जब इस तरह सोना देना उसने स्थगित कर दिया, तब इङ्गलैण्ड स्वर्ण-मान देश न रहा।

जब कि प्रत्येक देश की करेन्सी मांग होने पर सोने के अमुक निश्चित वजन और किस्म में परिणित की जा सकती है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि भिन्न-भिन्न देशों की करेन्सी का अमुक निश्चित सोने के आंकड़ों के हिसाब से पारस्परिक विनिमय (Exchange) होना चाहिये। उदाहरणार्थ ग्रेट-ब्रिटेन का स्टरलिंग अमुक किस्म के सोने का १० इकाई हिस्सा बैंक ऑफ इङ्गलैण्ड से प्राप्त कर सकता है और अमेरिका का डॉलर उसी किस्म का २ इकाई सोना प्राप्त कर सकता है तो स्टरलिंग और डॉलर का अनुपात १:५ होगा। लेकिन यह भाव स्थिर-सा नहीं रहता, वह अमुक सीमाओं के भीतर बदलता रहता है। ये सीमाएँ सोना एक दूसरे देश में भेजने का खर्चा बीमा खर्च, व्याज इत्यादि से निश्चित की जाती है। अगर अनुपात इस खर्च से बढ़-घट जाय तो बजाय करेन्सी के सोने से ही कर्ज का भुगतान किया जाता है। इन सीमाओं को अर्थशास्त्र में स्वर्ण-सीमाएं गोल्ड पाइण्टस कहते हैं।※

इससे यह जाहिर है कि स्वर्ण-मान देशों की राष्ट्रीय करेन्सियों का अन्तर्राष्ट्रीय भाव निश्चितसा रहता है। व्यापार भी निश्चिन्ततापूर्वक किया जा सकता है किन्तु अगर एक निश्चित स्टैण्डर्ड न हो तो बिना पतवार की नाव-सा हाल करेन्सी का होता है। व्यापार संकुचित हो जाता है।

पाठकों को यह भी मालूम होगा कि स्वर्ण-मान पर रहने के लिये प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को उतना सोना रखना चाहिये कि जनता में विश्वास रहे कि अमुक केन्द्रीय बैंक का नोट्स सोने-सा ही है।

※ दो देशों के स्वर्णमान पर न होते हुए भी उनके सिक्कों का पारस्परिक विनिमय भाव रखना ही पड़ता है--पर तब वह दो देशों की बाह्य और आन्तरिक कीमतों के अनुपात पर स्थिर होता है और समय-समय पर भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों की सिक्का नीति का भी इस पर बड़ा असर पड़ता है।

जैन दर्शन मां स्याद्वाद नुं स्थान

[श्री शांतिचन्द्र मोतीचन्द्र बी० ए०]

जैन तत्ववेत्ताओनु कथन छे के जेम आंधला माणसो हाथीना भिन्न भिन्न अवयवोने हाथ लगाड़ी ए भिन्न भिन्न अवयवोने एक पूर्ण हाथी समजीने अरस्परस लडे छे एवाज रीते संसारना प्रत्येक दार्शनिक जोके सत्यनो केवल अंश मात्रज जाणे छे छतां ए सत्यना अंश मात्रने संपूर्ण सत्य समजी परस्पर विवाद अने झगड़ा ऊभा करे छे। जो संसारना प्रत्येक दार्शनिक पोत पोताना एकान्त आग्रह छोडी 'अनेकान्त' अथवा स्याद्वाद दृष्टि थी हरेक वस्तुओनुं निरीक्षण करे तो हुँ धारुं छुं त्यां सुधी जीवना घणा प्रश्नो उकेल सहेजे थई जाय। मूलमां सत्य एकज छे। पण केवल सत्यना प्राप्त मार्ग घणा जुदा जुदा छे।

इस लेख के लेखक भाई शांतिचन्द्र बम्बई यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं। आपने जैन दर्शन का अच्छा अभ्यास किया है—जो आपके इस लेख से मालूम पड़ेगा। बम्बई में भाषण-प्रतियोगिता में सर्व प्रथम आने के कारण आपको बम्बई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस की तरफ से स्वर्ण पदक पुरस्कार स्वरूप दिया गया था। आशा है भाई शान्तिचन्द्र से हमको बराबर सहयोग मिलता रहेगा।—सं०

ज्यां सुधी छद्मस्थ जीवे पूर्ण सत्यनुं ज्ञान मेळव्युं नथी त्यां सुधी एनुं सम्पूर्ण ज्ञान आपेक्षिक कहेवाय छे अने ए सत्य मां जैन दर्शननुं अनेकान्त दृष्टिनुं गूढ़ रहस्य रहेलुं छे।

अहिंसा अने अनेकान्त जैन धर्मना बे मूल सिद्धान्त छे अने आ बे मूल सिद्धान्तो पर महावीर प्रभुए खास भारपूर्वक उल्लेख कर्यो छे। वीर प्रभुए शारीरिक अहिंसा नी साथे मानसिक अहिंसा (intellectual toleration) नुं पण पालण करवानुं कह्युं छे। वीरना कथन प्रमाणे उपशम वृत्ति ए मनुष्यनुं कल्याण तथा मोक्षनु साधन छे। प्रत्येक महान पुरुष भिन्न भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अनुसार सत्य ने प्राप्त करे छे तेथी करीने हरेक दर्शनना सिद्धांत अमुक अपेक्षाए सत्य छे। आपणे प्रत्येक वस्तुओनी उत्पत्ति तथा नाश जोइए छीए तथा ए वस्तुओनुं नित्यत्व पण अनुभव करीए छीए। हरेक पदार्थ अमुक अपेक्षाए नित्य अने सत अने अमुक अपेक्षाए अनित्य अने असत मालम पड़े छे। आवा अनेकान्त वादना उदाहरणो सूत्रमां घणे घणे ठेकाने मालम पडे छे।

सूत्र भगवती ने विषे, शतक सात में सोय।
द्वितीय उदेशे भाखियो, जीव प्रश्न अवलोय॥
किणी प्रकार करी प्रभु जीव शास्वता ख्यात।
किण प्रकार असास्वता, आख्या श्री जगनाथ॥
द्रव्य थकी तो सास्वता, भाव थकी सु विचार।
असास्वता प्रभुजी कह्या ऐ स्याद्वाद मत सार॥
सूत्र भगवती ने विषे, शतक चौदमें सार।

तुर्य उद्देशे भाखियो, परमाणु अधिकार ॥
कह्यो परमाणु सास्वतो, किणी प्रकार करेह।
किणी प्रकार असास्वतो, हिव तसु न्याय कहेह॥
द्रव्य थकी तो सास्वतो, परमाणु प्रति स्यात।
न मिटै परम अणु पणों, किण ही काल विख्यात॥
वर्णादिक ने पज्झव करि, असास्वता अवलोय।
स्याद्वाद वच एह छै, न्याय दृष्टि करि जोय॥

—श्रीमद् जयाचार्य महाराज कृत प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध

आवी रीते एक वस्तुनुं विविध रीते अने जुदी जुदी अपेक्षाए निरीक्षण करवामां आवे तेने स्याद्वाद कहे छे। आ स्याद्वाद थी कई मूल वस्तुनो फेरफार थतो नथी पण मात्र एना अवयवोना रूपान्तर मां फेरफार थाय छे। जेम के जीव द्रव्य थकी शाश्वतो कहेवामां आवे छे अने एज जीव भाव थकी अशाश्वतो मानवामां आवे छे पण तेथी मूल जीव मां कशो फेरफार थतो न थी।

जेम हरेक कायदा कानून मां अपवाद होय छे अने जेम ए अपवाद कायदा ने संपूर्ण करे छे (exception completes the rule) तेम स्याद्वाद मां पण प्रभुए अपवाद स्थाप्या छे। ज्यां ज्यां प्रभुए अपवाद स्थाप्यो छे त्यां त्यांज आपणे अपवाद लगावी शकीए। आपणे आपणा मतमतांतर प्रमाणे स्याद्वादनुं नाम लई जो अपवाद स्थापिए तो आपणे प्रभुना दृष्टिए दोषित गणाइए— कारण के वीर प्रभुए जे जे अपवादो बताव्या छे ते उपरांत एक पण अपवाद आपण ने वधारवा नो बिलकुल पण हक न थी। प्रभुना अपवादना उदाहरणो शास्त्रमां घणे ठेकाण छे।

बृहत्कल्प मांहि कह्युं, पंचमुद्देश मझार।
प्रथम पोहर अशणादि प्रति, वहिरी ने अणगार॥
तुर्य पहिर राखी करी, ते अशणादि प्रतेह।
भोगवणो कल्पै नहीं, सुखे समाधे एह॥
गाठा-गाठ आतंक करि, तुर्य पहिर में तेह।
भोगवणो कल्पै तसुं स्याद्वाद वच एह॥
प्रथम पहिर वहरी करी, कारण पडियां ताहि।
रात्री विषै जे भोगवै, ए स्याद्वाद वच नांहि॥
तुर्य पहिर आज्ञा कही, निशनीं आज्ञा नांहि।
तिण सुं निश नहीं भोगवै, कारण पडियां ताहि॥
द्वितीय उद्देशे ने विषै, बृहकल्परे मांहि।
जल वा मदनां घट तिहां रहिवैं कल्पै नांहि॥
अन्य स्थान न मिल कदा, तो इकबे निशि जांण।
रहिव कल्पै प्रभु कह्यो ए स्याद्वाद पहिछाण॥
तिण हिज उद्देशे आखियो. जे आखी निशि मांहिं।
दीपक वा अग्नि बलै तिहां नहिं रहिवुं ताहि।
जो अन्य जागां नहि मिलै, तो इक वे निशि तिणस्थान
रहि वुं कल्पै प्रभु कह्यो, ए स्याद्वाद वच जान॥
मुनि ने संघट्टो स्त्री तणो, करिवो वरज्युं स्वाम।
सोलमां उत्तराध्ययन में, वलि बहु सूत्रे ताम॥
बृहतकल्प छटे वहयुं नदी प्रमुख थी बार।
अज्झा प्रति काढै मुनी, ए स्याद्वाद मत सार॥

—श्रीमद जयाचार्य कृत प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध

आप्रमाणे वीर प्रभुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जोई अपवादो स्थाप्या छे अने आ अपवादो प्रमाणे चालतो थको व्यक्ति प्रभुनी आज्ञा प्रमाणे वर्ते छे एम कहेवाय।

कोई एक वस्तुनुं विविध रीते निरिक्षण जैन स्याद्वाद प्रमाणे जैनेतर दर्शनोमा पण मालम पडे छे। ऋगवेदमां ब्रह्मांना गुणोनुं वर्णन जुदी-जुदी अपेक्षाए करवामां आव्युं छे। "चाले छे तेम चालतो नथी; अणुथी नानामां नानो छे तेम मोटामां मोटो छे, सत छे तेम असत् पण छे" अनेक दृष्टि थी एक चीज चीजनुं निरीक्षण ग्रीक फिलोसोफिमां पण मालम पड़े छे। एम्पीडोकल्स (Empedocles), एटोमिस्टस (Atomists) अने

हेरेक्लीटस (Herecelitus) ए समन्वय पदार्थोना नित्यदशामां आपेक्षिक परिवर्तन स्वकार्यो छे।

There are beings or particles of reality that are permanent, original, unperishable, underived, and this cannot change into anything else; they are what they are and must remain so, just as the Eleatic School maintains. These beings or particles of reality, however, can be combined and separated, that is form bodies that can again be resolved into their elements. The original bits of reality cannot be created or destroyed or change their nature but they can change their relations in respect to each other and that is what we mean by change.

(Thilly: History of Philosophy.)

पश्चिम आधुनिक दर्शन (Modern Philosophy) मां पण आ प्रमाणेज विचार शक्ति मालम पडे छे। जर्मनी ना प्रख्यात तत्ववेत्ता हेगेल (Hegel) नुं कहवुं छे के विरुद्धधर्मात्म पणुं (contradiction) ए सत्य नुं मूल छे। काई पण वस्तुनुं यथार्थ वर्णन करवाने ए वस्तु सम्बन्धी पूर्ण सत्यनी साथे ए वस्तुनी विरुद्ध स्वभावनु कई रीते समन्वय थाय छे ते पण जनाववुं जोईए।

Reality is now this, now that; in this sense it is full of negations, contradictions, and oppositions. The plant germinates, blooms, withers, and dies; man is young, mature and old. To do a thing justice, we must tell the whole truth about it, predicate all those contradictions of it and show how they are reconciled and preserved in the articulated whole which we call the life of thing.

(Thilly : History of Philosophy.)

टूकमा कहेवानो मतलब एकज छे के सत्य मात्र एकज छे पण प्रत्येक दार्शनिक भिन्न-भिन्न देश अने कालनी परिस्थति अनुसार सत्यनो मात्र अंश ग्रहण करी रह्या छे अने अंश सत्य ने पूर्ण सत्य समजी मत-मतांतर अने झगड़ा उभा करी रह्या छे। जो हरेक वस्तुनुं स्याद्वाद नी दृष्टिए निरिक्षण करवामां आवे तो मने खात्री छे के अन्य दर्शनी मतमतांतर नो छेडो तरतज लावी शके अने पोतानी आत्मिक उर्मी सत्य मार्ग दोरवे।

सरों का वृक्ष*

[श्री पूर्णचंद्र जैन एम० ए०, विशारद]

सरों का वृक्ष था – सुन्दर, सुडौल, हराभरा और आसपास के वृक्षों से ऊँचा उठकर झूमता हुआ।

नीचे छोटे छोटे पौधे और हरी हरी घास थी, जो उस वृक्ष की ओर झांक झांक कर झुक झुक जाती थी मानो उसकी महत्ता स्वीकार करती हो!

रात उसके चरणों में तुहिन-मुक्ता की भेंट चढ़ा, धीरे धीरे बिदा हो जाती थी। ऊषा उसके गरिमा से उठे हुए मस्तक पर स्वर्ण-मुकुट धर जाती थी। रंग-बिरंगे परिधानों को धारण कर चिड़ियायें अपने कल-गान से उसका मनोरंजन करती रहती थीं। वायु उसके प्रस्वेद पोंछने को तत्पर रहती, वर्षा उसके धूसर शरीरको नहलाती, चांदकी चांदनी उसकी नस नसमें मादकता भर जाती, सूर्यका प्रकाश उसके अंग अंगको पुष्ट कर जाता।

मुक्ता-भेंट और स्वर्ण-मुकुट, संगीत और सुरा, पौष्टिक पदार्थ और राजसी शरीर की आभा–इन सब को पाकर वह मन ही मन फूल रहा था – झूम रहा था। आस पास की वृक्ष और बेलें, झाड़ और झाडियां उसके चिर-यौवन को देख ईर्षा करती थीं। वे भी फूलते-फलते थे, हंसते-खेलते थे; पर पतझड़ में मानो उनकी कोई सम्पत्ति छीन ले जाता था। नंगे भूत की भांति वे इस हरे-भरे सरों को व्यथित हृदय से देखते रहते।

सरों सोचता था– "मेरा यौवन चिरस्थायी है। मेरा भव्य हरित् परिधान, पुष्ट सुडौल शरीर, मद-भरा जीवन सब अक्षुण्ण है। जीवन पल और घड़ी, घड़ी और पल की सवारी में चढ़ता उतरता चलता ही रहेगा। स्वर्ण-मुकुट और नर्तकियों का नृत्य, सुधांशु का सोम और वर्षा द्वारा होनेवाला अभिषेक – यह सब मिलते ही रहेंगे, होते ही रहेंगे।' वह अपने मन में मुग्ध था। सन्तुष्ट था या नहीं – सो पता नहीं।

आस पास का वातावरण भी मुग्ध होने का प्रयत्न करता था। कभी सन्तुष्टि मिली या नहीं – कौन कह सकता है? एक रात आई—अमावास्या की, घोर अन्धकार-पूर्ण जिसमें हाथ को हाथ न सूझे।

उसी अन्धकार की अराजकता में अन्धड़ आया—इतने जोर का कि विचार मात्र से कंपकंपी उठने लगे।

रात बीती, सुबह हुई। और, सरों का वृक्ष?

वह राज्य-अपहृत भिखारी राजा की भांति पृथ्वी पर लोट रहा था। छोटी छोटी घास उधर देखती और अपनी विजय पर झूम उठती थी।

रात ने तुहिन-अश्रुओं से अपना दुःख प्रगट किया। अन्धड़ से उड़ी हुई धूलि ने ऊषा को स्वर्ण-मुकुट न लाने दिया—उसकी ऐसी इच्छा भी कदाचित् नहीं थी! नर्तकियां नीड़ से नहीं निकलीं!!

वह यौवन, वह सौन्दर्य, वह सुडौलता – सब धरा-लुण्ठित थे स्वार्थी संसार मुक्ता-भेंट और स्वर्ण-मुकुट, सुरा और नृत्य कुछ नहीं लाया।

सरों ने आज समझा कि वह क्या है और संसार उसको कैसा देखता है!

---

* यह वृक्ष सदा हरा भरा रहता है।

वैभव का अभिशाप

[श्री दुर्गाप्रसाद झूंझनूवाला बी० ए०]

(क्रमागत)

[**पूर्वापर**—किशोर और माधव दोनों मित्र थे, यद्यपि एक सरल सहानुभूति पूर्ण ग्रामीण युवक और दूसरा वैभव की गोद में पला हुआ जमींदार का लड़का। समाज के निष्ठुर प्रतिबन्धों से ठुकराई हुई कुमारी किशोरी एकाएक किशोर को मिल गई थी। किशोर ने उसको बहन कह कर अपने साथ रख लिया था। किशोरी का भरा हुआ यौवन, सरल रूप-लावण्य माधव की आँखों में चढ़ गया था, वह उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता था—किशोर इस अभीप्सित मार्ग में कांटा था-बहन का भाई। माधव की अन्धी वासना-जनित उश्रृंखलता ने किशोर के घर तक को जलवा दिया—किशोर ने मित्र की यह करतूत अपनी आँखों से देखी। एक बार उसका मन टकराया पर 'यह तो हमारी परीक्षा है' कह कर वह शहर जाने के लिये 'धीरे-धीरे स्टेशन की ओर चल पड़ा।" आगे पढ़िये —]

(अ)

माधव को चैन नहीं था। उसकी उद्दण्डता अपनी सीमा को उल्लंघन कर रही थी। अग्नि जब तक राख में दबी रहती है तभी तक उसका रूप भयावह नहीं प्रतीत होता। किन्तु ईंधन पाते ही वह अपना असली विध्वंस रूप दिखलाती है। उसी प्रकार हृदय की छिपी हुई वास्तविक मनोवृत्ति अवसर की ठेस पाकर ही अपना खेल दिखाती है। अभी तक लोगों ने माधव का केवल भलमंसी का रूप ही देखा था। उसे कोई अवसर ही ऐसा न मिला था कि वह अपनी उद्दण्डता को चरितार्थ कर सके। किन्तु किशोर वाला मामला आते ही उसकी शैतान-वृत्ति प्रबल हो उठी। साथ ही साथ उसकी विलास-लालसा ने भी उसके हृदय को जलाना शुरू किया। अपना मनोरथ सिद्ध न होता देख कर वह किशोर का सर्वनाश करने को तैयार हो गया। उसने किशोर को उसके गाँव में बदनाम किया। उसके घर को जलवा दिया। और जब किशोर गाँव छोड़ कर शहर को चला गया तब भी माधव के दिल को राहत न मिली। वह भी किशोर के पीछे-पीछे शहर को चला - किशोर को हर तरह से बरबाद करने के लिये। उसका विचार था किशोर को उसके कालेज में बदनाम करके उसकी जीविका के मार्ग को भी बन्द कर देने का। किन्तु अभी दशहरे की छुट्टी थी। अभी भी कालेज खुलने में पन्द्रह दिनों की देर थी। तब तक माधव को चुपचाप बैठना ही पड़ा।

लालसा को एक आधार की आवश्यकता होती है। आधार मिलने पर वह एक बार अपने को उसी पर केन्द्रीभूत कर देती है। किन्तु जब तक उसे वह आधार नहीं मिलता तब तक वह उसकी खोज में इधर-उधर भटका करती है। माधव की लालसा का आधार किशोरी थी। लेकिन किशोरी जब उसे न मिली तब उसकी बढ़ती हुई अतृप्त लालसा किसी दूसरे आधार की तलाश करने लगी। शहर का वातावरण था। पैसे की कमी न थी। एक दिन वह शहर की प्रसिद्ध नर्तकी के यहाँ जा पहुंचा। नीला ने उसे देखा तो वह

चौंक पड़ी। 'यह चेहरा तो पहचाना हुआ सा जान पड़ता है। तो क्या यह माधव है ? क्या वह इतना गिर गया है ?' किन्तु उसने अपने को संभाला। अभी उसके लिये नर्तकी का बाना ही अच्छा था।

माधव ने नीला का नृत्य देखा। उसकी एक-एक कलामय भावभंगी पर वह मुग्ध हो गया। नागरिक नीला के आगे सरल ग्रामीण बालिका किशोरी उसे तुच्छ जान पड़ी।

वह प्रतिदिन नीला के यहाँ पहुँचने लगा। नीला उसे देखती तो उसके हृदय से एक दर्द भरी आह निकल जाती। उसके हृदय में क्या था इसे कौन कह सकता है। किन्तु वह अपने को जब्त करती हुई अवसर की प्रतीक्षा में थी।

भि

छुट्टी के दिन इसी प्रकार बीत गये। कॉलेज खुलते ही किशोर ने अपना पद ग्रहण कर लिया। दो ही दिन में उसकी प्रतिभा का सितारा चमक उठा। नवयुवक प्रोफेसर किशोर के ज्ञान और विवेचना-शक्ति पर सभी मुग्ध थे। किन्तु किस्मत कुछ और ही खेल तैयार कर रही है।

एक हफ्ते बाद किशोर ने देखा-कालेज के वातावरण में कुछ सनसनी सी है। वह डरा—कहीं माधव यहां भी तो नहीं पहुंच गया। बात कुछ ऐसी ही मालूम होती थी। छात्र उसकी ओर देख कर मुस्कुराते हुए मुंह फेर लेते थे। प्रोफेसर लोग उससे कुछ झेंपते हुए से बात करते थे। उसकी ओर देख देख कर लोग फुसफुसाते हुए कुछ बातें करने लग जाते थे। किशोर समझ गया कि बारूद में पलीता लग चुका है। यह विस्फोट का प्रथम रूप है।

और उसने अपने को परिस्थिति के लिये पूर्णतः तैयार कर लिया।

दो चार दिन के बाद ही कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर जानसन ने उसे अपने घर पर बुलाया। शायद यह किशोर की तकदीर के फैसले का अन्तिम दिन था। किशोर भी एक शहीद की वीरता के साथ प्रिन्सपल के पास पहुंचा। इधर उधर की बातों के बाद प्रिंसिपलने कहा—"मिस्टर किशोर, यह मैं क्या सुन रहा हूं ? क्या यह सच है कि तुम्हारे यहां कोई अजनबी लड़की रहती है ?"

'हां, महाशय, यह बिल्कुल सच है" किशोर ने ठंडे दिल से कहा।

"तो यह कौन है, किशोर ?"

"यह मैं नहीं कह सकता"—किशोर ने नीची निगाह किये हुए उत्तर दिया।

"फिर भी तुम उसे अपने यहां रखे हुए हो ?"

"महाशय, वह बालिका निराश्रिता है। उस अनाथा को मैंने अपनी बहन बना कर अपने घर पर आश्रय दिया है। मैं जानता हूं कि अच्छे कामों में बाधायें आया ही करती हैं किन्तु मैं उनसे लड़ने को तैयार हूं।

"मैं तुम्हारी निर्भीकता पर प्रसन्न हूं, किशोर। मैं यह नहीं कहता कि तुमने कोई बुरा काम किया है। किन्तु किशोर, हमारा कॉलेज एक सार्वजनिक संस्था है। उसमें कच्ची उम्र के लड़के और लड़कियाँ पढ़ती हैं। सभी तो तुम्हारे उद्देश्य की महानता को नहीं समझ सकते, किशोर। फिर तुम्हीं सोचो कि ऐसी बातों का उनके नाजुक खयालों पर कैसा असर पड़ सकता है। इसके लिये कौन जिम्मेदार होगा, युवक ?"

"महाशय, मुझे दुःख है कि मेरे कारण कॉलेज के

'...समाज भी 'नवयुवक' को योग्य सहारा देकर अधिक से अधिक संख्या में ग्राहक बनकर उछलते हुए युवकों के उत्साह को बढ़ायगा और उसके द्वारा समाजकी सेवा करवा लेगा; ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।'

—राजमल ललवाणी, सभापति
अ० भा० ओसवाल महा सम्मेलन

'...यदि समाजकी सच्ची सेवा करनी हो तो इस पत्र को शीघ्र अपनाइये...पत्र को जीवित रखना स्वयं समाज को जीवित रखना है।'

—स्व० पूरणचन्दजी नाहर

ओसवाल नवयुवक के लिये

रु० १००००) का स्थायी कोष !

छः वर्ष तक पहले इस पत्र ने समाजकी जो सेवा की है उसकी सभी ने एक कंठ से प्रशंसा की है और फिर अब भी महीनों से यह आपकी सेवा में पहुंच रहा है। ऐसे पत्र की बड़ी आवश्यकता है, इस बात को कौन नहीं जानता ?

पहले की तरह पत्र को आर्थिक कठिनाई की आशंका न रहे - और बराबर नियमित रूप से प्रकाशित हो कर यह समाजकी उन्नति में पूर्ण योग देता रहे, इस लिये यह आवश्यक है कि इसके लिए रु० १००००) का एक स्थायी कोष हो जाय जिसकी सहायता से यह कालान्तर में स्वावलंबी बनकर सार्वजनिक जीवनकी एक संस्था हो जाय। समाज के सम्पन्न, उदार चेता महानुभावों से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि यथासंभव अधिक से अधिक सहायता देकर पत्र को अमर बनाने में योग दें।

इस कोष में जो सज्जन सहायता भेजना चाहें वे निम्न पते पर भेज दें—उनका नाम 'ओसवाल नवयुवक' में प्रकाशित किया जायगा।

ओसवाल नवयुवक
२८, स्ट्रांड रोड, कलकत्ता।

हमारा समाज !

हमारा साहित्य !

'...यह ओसवाल समाज में जागृति उत्पन्न करने और जीवन का संचार करने के लिये कलकत्ते के उत्साही युवकों के परिश्रम का फल है...ओसवालों के लिये अपनाने की वस्तु है।'

—नवराजस्थान

'...कहां है विशालभारत, सरस्वती, चांद, माधुरी के मुकाबले के मासिक ?...कलकत्ते का ओ० न० एक ऐसा है जो इस एकान्त अभावकी थोड़ी बहुत पूर्ति कर रहा है।'

—सा० युगभूमि

ओसवाल नवयुवक का ग्राहक बनना ओसवाल मात्र का कर्त्तव्य है।

युवकों से !

ओसवाल नवयुवक आप का पत्र है-

आप के लिये और आप की आशापर अवलंबित !

यह सच्चे प्रगतिशील युवक हृदय की वाणी है जिसमें राष्ट्र और समाज सेवा की प्रेरणा है। इसकी नीति बिल्कुल सीधी सच्ची निर्भय और न्यायपूर्ण है। तन-मन-धन सब तरह से यह युवक-प्रयत्न है। यह किसी व्यक्ति विशेष की सहायता पर नहीं चलता।

हम अपने युवकों और युवक संस्थाओं से अनुरोध करते हैं कि युवकों के इस प्रयत्न में वे तन, मन, धन, से सहायता करें जिससे पत्र दीर्घायु होकर अपने उद्देश्य और नीति में सफल हो।

प्रत्येक युवक और युवक-संस्था का धर्म है कि इस युवक-प्रयत्न में पूर्ण सहयोग दें।

'जीवित समाजमें समाचार-पत्र का होना अनिवार्य है। यह पत्र भी उसके जीवित होनेका प्रमाण है।'

—कस्तूरमलजी बांठिया

'नये नये उच्च कोटिके विद्वानों को आपने साहित्य क्षेत्रमें अवतीर्ण किया है-जिन्होंने परिष्कृत और परिमार्जित शैलीकी रचनाओं से हमारे सामाजिक पत्र को सुशोभित किया है।'

—कन्हैयालालजी जैन

जो सज्जन 'नवयुवक' के ५ ग्राहक बनाकर भेजेंगे—उनका नाम सधन्यवाद 'ओसवाल नवयुवक' में प्रकाशित किया जायगा और यदि वे चाहेंगे तो एक वर्ष के लिये पत्र उनकी सेवा में मुफ्त भेजा जायगा।

सच्ची सहायता का यह अपूर्व मौका न चूकिये।

एक सौम्य स्वरूप युवक की ललकार सुन कर उसे साहस हो आया। किशोर ने उसके पास जा कर कहा "देवी, आप डरें नहीं। मेरे रहते यह आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

बदमाश ने एक विद्रूप हंसी हसते हुए कहा-"छोकरे, क्यों व्यर्थ में मेरे बीच आकर अपनी जान को खतरे में डालता है? चला जा यहां से, नहीं तो इसी के साथ तुझे भी खत्म कर दूंगा।"

किशोर जरा भी विचलित न हुआ। उसने कहा-"मरने का इससे अच्छा मौका और कौन होगा भाई? किन्तु मेरे जीते जी तू इन पर हाथ नहीं उठा सकता।"

'अच्छा, तो यही सही। ले, तू भी मर- यह कहते हुए उसने अपना छुरा उठाया। किशोर ने उछल कर डंडा उसकी छुरे वाली कलई पर मारा। छुरा उसके हाथ से छूट कर अलग जा गिरा। किशोर ने लपक कर उसे उठा लिया। अब उस बदमाश को अपना खतरा मालूम हो गया और वह वहां से चलता बना।

युवती इतनी देर तक विस्मय विमुग्ध भाव से युवक किशोर की ओर देख रही थी। अब उसे होश हुआ। उसने समीप जाकर कहा - "मैं किस मुंह से आप को धन्यवाद दूं, महाशय! आज यदि आप न होते तो शायद अभी तक यहां का कुछ और ही दृश्य होता। क्या मैं जान सकती हूं कि मेरा रक्षक कौन है?"

"खुशी से, देवीजी, मुझे लोग किशोर कहते हैं।"

"किशोर! क्या प्रोफेसर किशोर?"

"देखता हूं कि आप मेरे विषय में जानती है।"

"हां, मैंने सुना था कि···· लेकिन वह कुछ नहीं। दुनिया में बहुत तरह के बहुत से लोग हैं।"

"चलिये, देवीजी, मैं आपको आपके घर पहुँचा आऊँ।"

रास्ते में कोई बातचीत न हुई। ठिकाने पर पहुंच कर किशोर ने देखा कि युवती का घर एक अजीब ढङ्ग से सजा हुआ है। उसने चलते चलते पूछा—"क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूं, देवीजी?"

"मेरा नाम नीला है।"

"नीला! प्रख्यात नर्तकी!"

"हां, वही।"

कुछ असमंजस में पड़ कर किशोर ने कहा—"अच्छा, अब मुझे जाना चाहिये। आज्ञा हो।"

"ठहरो, प्रोफेसर, आज तुम मेरे मेहमान हो।"

"नहीं, श्रीमती! मुझे जाने दीजिये।"

"ठहरो, प्रोफेसर! शायद एक नर्तकी के घर ठहरना तुम अपनी शान के खिलाफ़ समझते होगे। लेकिन तुम्हें ठहरना ही होगा। शायद आज का दिन मेरे और तुम्हारे इस वर्तमान जीवन का अन्तिम दिन है। क्या अन्तिम यवनिका को गिरते हुए देखने में मेरा साथ न दोगे, किशोर?"

नीला के स्वर में एक करुणापूर्ण आग्रह था जिसकी उपेक्षा किशोर न कर सका। किन्तु उसे आश्चर्य था कि यह सब क्या हो रहा है। वह कुछ समझ नहीं रहा था। फिर भी वह पास ही के एक कमरे में बैठ गया—खोया हुआ सा। नीला अपने कमरे में उदास बैठी हुई थी। रह रह कर उसकी आंखों से एक बूंद आंसू ढुलक पड़ता था।

५

थोड़ी ही देर बाद माधव वहां आया। इस समय वह उन्मत्त सा हो रहा था। किशोर चकित था माधव यहां और इस रूप में! बात क्या है? आज सभी

बातें अजीब दिखाई दे रही हैं। वह ठिठक कर देखने लगा कि आगे क्या होता है।

माधव अपने उसी उन्माद में नीला की ओर बढ़ा। नीला खड़ी हो गई। माधव ने एक कठोर हँसी हँसते हुए कहा—"नीला, मुझे मालूम हो चुका है कि तू बदमाश के हाथ से बच गई। लेकिन मेरे हाथों से तू बच नहीं सकती। देखूँ, अब तुझे कौन बचाता है।

"माधव!" नीला ने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा।

माधव पागलों की भांति नीला की ओर बढ़ा। अब नीला का रुख कड़ा पड़ गया। उसने कड़क कर कहा "माधव, ठहर जा।" उस झिड़की के पीछे न जाने कौन सी शक्ति थी कि माधव के पैर रुक गये।

नीला ने फिर कड़े स्वर मे कहा—"माधव, इधर देख। क्या तू मुझे जानता है?"

"हाँ!"

"मैं कौन हूँ?"

"एक नर्तकी। बाज़ार की एक वेश्या।"

नीला तड़प उठी। उसने और भी कड़े स्वर में कहा-"माधव, मैं फिर तुझ से पूछती हूं, क्या तू मुझे पहचानता है?

किशोर हैरत में था यह मामला क्या है। वह चकित होकर देख रहा था।

नीला ने फिर कहा-"माधव, क्या तू सचमुच मुझे पहचानता है? क्या तुझे याद है तेरे एक बहन थी?"

माधव का नशा हिरन हो रहा था। सहसा बिजली के समान उसकी आँखों के आगे बचपन का एक चित्र खिंच गया। उस समय वह चौदह वर्ष का था। माता पिता जीवित थे। उसकी एक बहन थी-नाम था लीला। वह विधवा थी विधव-जीवन के कष्टों का वह अपने लड़कपन के कोमल भावों द्वारा अनुभव करता था। लीला घर का सभी काम करती थी। एक मजदूरनी से भी बुरी दशा उसकी थी। फिर भी उससे कोई खुश न था। सभी उससे जलते थे। उसके जीवन में शान्ति नहीं थी। माधव उस समय भी अल्हड़ बालक ही था। कुछ समझता नहीं था। उसे थोड़ा थोड़ा याद आ रहा था कि एक दिन न जाने कैसा लांछन लगाकर लीला घर से निकाल दी गई थी। आह! उस समय लीला की कितनी बुरी दशा थी! वह कितना रो रही थी! उस समय की दशा याद आते ही माधव की आँखें भर आईं। उसकी कोमल भावनायें फिर से जाग्रत होने लगीं। उस घटना के बाद फिर किसी ने लीला के बारे में कुछ नहीं सुना था। आज आठ नव वर्ष के बाद इस प्रकार उन दिनों की याद क्यों दिलाई जा रही है! किशोर भी चकित होकर यह दृश्य देख रहा था।

नीला ने फिर पूछा—"माधव, याद है तेरे एक बहन थी?"

माधव ने कम्पित स्वर में उत्तर दिया-"हाँ, थी तो लेकिन तुम्हें इससे क्या?"

इस बार नीला का स्वर भारी था। उसने कहा—"इधर देख, मेरे अभागे भाई पहचान, मैं कौन हूं।"

माधव विक्षिप्त सा हो रहा था। उसे अपनी आँखों के आगे से एक परदा सा सरकता मालूम हुआ। उसने काँपते हुए कहा "तुम, तुम लीला... लीला तुम इस रूप में! तुम..."माधव संज्ञा-हीन सा हो रहा था। किशोर ने दौड़ कर उसे गिरने से बचाया।

किशोर ने कोमल स्वर में कहा—"यह सब क्या है, नीला!"

"अब मैं नीला नहीं हूं, प्रोफेसर! अब मैं लीला हूं। और तुम्हें मालूम होना चाहिये, प्रोफेसर, कि नीला

बन कर भी मैंने आजतक अपने को बेदाग रक्खा है। नीला केवल नर्तकी थी, वेश्या नहीं।"

इसी समय माधव होश में आया। उसने देखा वह किशोर की गोद में था और लीला उसके सामने खड़ी थी। वह किशोर को यहां देखकर चकित था। उसने पूछा -- "तुम यहाँ कैसे किशोर ?"

इसका उत्तर मैं तुम्हें दूंगी, माधव! "लीलाने कठोर स्वर में कहा।" तुम नहीं जानते हो, माधव कि वैभव के नशे में तुमने क्या क्या जुल्म किये। तुमने अपने मित्र की आश्रिता बहन पर बुरी दृष्टि डाली। तुमने अपनी इच्छा के वशीभूत होकर अपने मित्र का जीवन बरबाद किया। इसके बाद तुमने मुझ पर अपनी बहन पर नज़र डाली। मैंने तुम्हे पहचाना किन्तु तुम मुझे न पहचान सके। तुमने मेरी जान लेने की चेष्टा की। तुम पूछते हो 'किशोर यहाँ कैसे ?' आह! आज यदि किशोर यहाँ न होता तो यह अवसर ही न आता। लीला तुम्हे जीवित दिखाई न देती और, मेरे अभागे भाई, तेरी न जाने क्या दशा होती!... किशोर गरीब है किन्तु उसकी आत्मा महान है। तुम धनी हो किन्तु तुमने शैतानों का दिल पाया है।... उन्माद-यह वैभव का शाप है। उच्छृंखलता-यह धन का पागलपन है। माधव, तुम पर धन का नशा था। उस नशे में तुम पागल हो रहे थे। तुम धन के मद में मस्त अक्सर यह नहीं देखते कि उस पागलपन में तुम क्या करने जा रहे हो। किन्तु तुम्हारे उस पागलपन का शिकार होता है या तो हम जैसी अभागिनियों का नारीत्व अथवा किसी गरीब का कुचला हुआ दिल! आज इसी वैभव के उन्माद का फल है कि किशोर जैसा महान पुरुष तबाह है। और आज इसी धन की उद्दण्डता का यह परिणाम है कि मैं नर्तकी हूं!"

"लेकिन बहन, बहन......तुम... "

"हां, माधव, मैं आज नर्तकी हूं। समाज से अकारण ठुकराये जाने के बाद, जानते हो अबलाओं के लिये कौन सा मार्ग रह जाता है ? या तो गंगा की गोद अथवा रूप का बाजार! माधव मैं मर न सकी। किन्तु रूप के बाजार में बैठ कर यौवन का व्यापार करना मुझसे न हो सका। मैंने नृत्यकला सीखी और आज उसी का यह प्रसाद है कि मैं इतने दिनों तक इस गन्दी जगह में रह कर भी बेदाग हूं। माधव, यदि तुम्हें कुछ भी अपने किये का पश्चात्ताप हो, यदि तुम में कुछ भी साहस हो तो अपनी खोई बहन को फिर से "बहन" कह कर अपने घर में स्थान दो। मुझे इस दलदल से निकाल कर अपने पापों का प्रायश्चित्त करो।"

माधव का हृदय विदीर्ण हो रहा था। उसने रोते-रोते कहा -- "बहन, बहन, मेरे अपराधों को क्षमा करो। किशोर, मेरे भाई ... "

"माधव, तुम थोड़ी देर विश्राम करो!" किशोर ने स्नेह भरे कोमल शब्दों में कहा है!

'मेह का सौदा'

[श्री दौलतराम छाजेड़]

[व्यापार के क्षेत्र में सट्टे-फाटके का प्रचार दिन प्रति दिन ज्यादा हो रहा है। कई जगह मेह के बरसने पर भी हार-जीत का सौदा किया जाता है। यह सौदा दो आदमियों के बीच में होता है-एक को 'लगाईवाल' और दूसरे को 'खाईवाल' कहते हैं। 'लगाईवाल' कुछ रुपया देकर 'खाईवाल' के साथ यह शर्त करता है कि यदि मेह अमुक समय पर या अमुक माप तक बरसेगा तो खाईवाल' को 'लगाईवाल' के दिये हुए रुपयों के चौगुने या पांचगुने (जैसा तय हुआ हो) रुपये देने पड़ेंगे। बस इसी शर्त की पूर्त्ति या अपूर्त्ति में लाभ-हानि का निपटारा हो जाता है। अज्ञानतावश कई व्यक्ति इस में बर्बाद हो गये। इस कविता में लेखक ने "लगाईवाल" और 'खाईवाल' दोनों की मानसिक असंतोषावस्था का अच्छा चित्रण किया है।

(१)

जावत है सूको ज्यों ढबूस पड़ै मग्गर में,
कढै दाम घर से न आलै माहीं होवणा।
सैंकड़ी रुपयों मांय आखर में बीस रहै,
रीस नाहीं चलै बैठ कूंट मध्य रोवणा।
नाली को भाव तीन खाली को आठ होय,
साठ सुणी भाव हाथ मलमल के धोवणा।
कोई वख्त चलै जब नाली अरु खाल,
कहै आज ना लगाया यार कर्म लिख्या खोवणा।

(२)

पूनम की म्याद का पचास खाया पञ्चमी नै,
तेरस तक सेया जंम अंडे नै मोरड़ी।
बीजली पल्लाट लख्यो जोर को चल्लाण घरै,
पेट में खल्लाट थयो आत्मा बिदोरड़ी।
भोर भये बद्दल आकाश मध्य जोर करै
खाईवाल दबकै ज्यूं ऊँट तलै टोरडी।
नाली पर बादल गल चट दे चलाय दई,
टोपो लाग जाण्यो आज खाय लेसी गोरडी।

अर्थ

लगाईवाल अपने मन में कहता है—सूखा बीत रहा है (यानी मेह नहीं बरसता), जिससे ऐसी चोट पहुँच रही है मानो कमर में मुक्का पड़ा हो। घर के दाम जा रहे हैं—'आले' (मेह बरसने) के पक्ष में कभी नहीं होना चाहिये। सैकड़ों रुपयों की पूंजी में से अन्त में बीस रह गये— क्रोध करने से क्या हो, कोने में बैठ कर रोते हैं। नाली का भाव तीन का हो और खाली (छोटे तालाब) का भाव आठ का हो — और फिर साठ का भाव हुआ सुन कर तो वह हाथ मलने लगता है। किसी वक्त जब नाली और खाल चलने लगते हैं —तो वह कहता है 'यार, आज नहीं लगाये, असल में हमारी तकदीर में खोना लिखा है।

खाईवाल कहता है—पंचमी को पूर्णिमा की मियाद के पचास रुपये खाये थे और तेरस तक उनको इस तरह सेता रहा जैसे मोरनी अपने अंडे को सेती है—अर्थात् हानि की आशंका नहीं थी। जिस दिशा में से बादल आते थे—उसमें बिजली की चमक देख कर पेट में खलबली मच गई, और आत्मा चिल्लाने लगी। सुबह देखा कि आकाश में बादलों की घटाटोप है—यह देख कर तो ऐसा छिपा कि जैसे ऊँट के पेट के नीचे टोरडो (ऊँटनी की बच्ची) दबकती है। जब बादल गल कर मेह की बून्दे पड़ने लगी तो वह भय से कांपने लगा कि आज घर में पत्नी खा डालेगी अर्थात् क्रोधित हो जायगी।

विद्यार्थी-जीवन और स्वास्थ्य

[श्री फतहचन्द कुण्डलिया]

सर्व विदित है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य का महत्व व्यावहारिक, नैतिक और बौद्धिक सभी दृष्टियों से अवर्णनीय है। जीवन की सफलता के साथ स्वास्थ्य का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इसकी ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। वैसे स्वस्थता का ध्यान सदा ही रखना चाहिये, पर युवावस्था में-जब कि जीवन की सारी शक्तियाँ विकास पाती हैं - इसकी तरफ ध्यान देना बहुत जरूरी है। विद्याध्ययन की अवस्था होने के साथ-साथ इस अवस्था का महत्व शारीरिक सौन्दर्य के निर्माण में भी है। आरम्भिक अवस्था में ही वृक्ष की सुन्दरता और मजबूती के लिये सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। कुम्भकार घड़े को पका लेने पर उसकी शक्ल को सुधारना चाहे तो यह कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। उसको घड़े की अपरिपक्व अवस्था में ही उसकी सुन्दरता के लिये ध्यान देना होगा; तभी वह अपने उद्देश्य में सफल होगा।

ईश्वर-प्रदत्त आनन्द की समस्त सामग्रियों में स्वास्थ्य का ही पहला स्थान है। हमलोगों में भी यह कहावत प्रचलित है कि 'पहलो सुख निरोगी काया'। अस्वस्थ राजा से भी स्वस्थ गरीब अधिक सुखी है, क्योंकि रोगी और निर्बल राजा न तो सुख की नींद सो सकता है और न भोजन ही पचा सकता है। हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ आदमी से वह ईर्ष्या करता है। उक्त राजा और धनी के लिये संसार मीठा होते हुए भी कड़ुवा है। रोगी आदमी न तो धर्म साधन ही कर सकता है, और न अपने अन्य सांसारिक कामों को ही सुचारूरूप से चला सकता है। अतएव सांसारिक एवं पारलौकिक कार्यों का अच्छी तरह से संचालन करने के लिये स्वस्थ रहना नितान्त जरूरी है। स्वस्थ विद्यार्थी की विचार-शक्ति भी रोगी और निर्बल की अपेक्षा अधिक तेज होती है। कमजोर आदमी को रोग कब धर-पकड़ ले, इसका कोई ठीक नहीं। अगर कोई कमजोर विद्यार्थी परीक्षा के समय रोग का शिकार बन जाय तो उसको बहुत हानि उठानी पड़ती है। समय अमूल्य है। परन्तु कमजोर आदमी का बहुत-सा समय रुग्णावस्था में ही बीत जाता है। कितना ही कुशाग्र बुद्धिवाला विद्यार्थी क्यों न हो, अगर उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो वह अपने ध्येय में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि कमजोर विद्यार्थी निरन्तर नियमित काम नहीं कर सकता। स्वास्थ्य की महिमा अपरम्पार है। कहा भी है, 'एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत'। परन्तु इसकी महिमा कह लेने मात्र से कोई स्वार्थ नहीं सधता। हम जानते हैं कि इन्द्रकानन के फल बड़े ही स्वादिष्ट, रोचक एवं गुणकारी हैं, परन्तु इतना जानने मात्र ही से हमारा मुंह मीठा नहीं हो गया और न हम उसके गुणों से लाभान्वित ही हुए। इसी तरह स्वास्थ्य की महिमा जानने मात्र से हमारा कर्त्तव्य

पूरा नहीं हो जाता और न हम इसके गुणों से लाभान्वित होते हैं। इसलिये स्वास्थ्य जैसे अमूल्य धन को प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी-जीवन से ही हमलोगों को सतत् उद्योग करना चाहिये क्योंकि यही इसके प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ समय है। यदि इसको खो देंगे तो बाद में हमें पछताना पड़ेगा।

हमको यही हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि अगर स्वास्थ्य है तो जीवन-जीवन है, नहीं तो यह जीवन भार-स्वरूप है। वास्तव में रुग्णावस्था में रह कर अथवा कमजोर रह कर मुर्दा और निस्तेज जीवन बिताना केवल पृथ्वी का भार बढ़ाना है। इसमें शक नहीं कि इस खोये हुए अमूल्य रत्न को प्राप्त करने के लिए हमलोगों को बहुत सावधानी से प्रयत्न करना पड़ेगा।

आलस्य हमारे स्वास्थ्य का शत्रु है ! इसीके कारण कठिनाईयाँ दीखती हैं। पर कठिनाइयाँ भी हमें उठानी चाहियें क्योंकि मूल्यवान रत्न यदि खान से बिना कठिनाई के निकल जाता तो उसकी इतनी कीमत भी नहीं होती। यह बात भी तो सबको ज्ञात है और हम लोग हमेशा देखते भी हैं कि सुन्दर पौधे बड़ी मेहनत से जमते हैं परन्तु निकम्मी घास अपने आप उग आती है। पर एक बार जमकर वे सारे बाग की सुन्दरता बढ़ा देते हैं। स्वस्थ युवक भी समाज की शोभा है।

यदि हम लोगों को स्वास्थ्य प्राप्त करना है तो वासनाओं का दमन करना होगा लोलुपी नहीं रहना होगा, ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करना होगा, मादक और उत्तेजक पदार्थों का सर्वथा त्याग करना होगा, एवं नित्य नियमित रूप से व्यायाम करना होगा। आजकल बहुत से विद्यार्थी अपने स्वास्थ्य की अवहेलना करते हैं और दिन रात पुस्तकें पढ़ने में ही लगे रहते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। थोड़े समय के लिए वे कुछ उन्नति भले ही कर लें, परन्तु जीवन की लम्बी दौड़ में वे अपने को पिछड़े हुए पायेंगे। कमजोर मशीन से अधिक काम लेने पर अन्त में स्वयं मशीन से ही हाथ धोना पड़ता है।

स्वास्थ्य प्राप्त करने का उद्योग करते समय हम लोगों को यह बात कभी भी भूलनी नहीं चाहिए कि सदाचार और स्वास्थ्य अन्योन्याश्रयी हैं अर्थात् एक के बिना दूसरा कभी प्राप्त नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य्य यह है कि स्वस्थ होने के इच्छुक को सदाचारी भी बनना होगा। मन और शरीर का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिये मन को किसी न किसी काम में हमेशा लगा रखना चाहिए, क्योंकि यह सत्य है कि ठाला दिमाग भूतों की कर्मशाला है। (Empty mind is devil's workshop)

आजकल के कालेज और स्कूलों के विद्यार्थी सच्चे स्वास्थ्य की अवहेलना करते हैं और फेशनेबुल बनने तथा शरीर को कृत्रिम ढंग से सुन्दर बनाने के लिए वृथा बहुत समय नष्ट करते हैं। क्रीम, स्नो आदि से उनका निस्तेज और मुर्झाया हुआ चेहरा थोड़े समय के लिए कुछ आकर्षक भलेही हो जाय, परन्तु वह एक स्वस्थ आदमी के तेजस्वी एवं ओजस्वी मुखमण्डल की आभा के सामने नगण्य है। समय गुजर जाने के बाद उनको अपनी लापरवाही पर पछताना पड़ता है।

हम भारतीयों और विशेषकर जैनियों में यह मिथ्याभ्रम फैला हुआ है कि जो भाग्य में बदा है वही होगा, उद्योग करना व्यर्थ है। इसी मिथ्याभ्रम से हमने बहुत कुछ नुकसान उठाया और उठा रहे हैं। हम लोगों की यह मनोवृत्ति अब भी दूर नहीं हुई, जब कि हम दूसरे देशों को सतत् उद्योग द्वारा अपने स्वास्थ्य और

अन्यान्य बातों में उत्तरोत्तर उन्नति करते प्रत्यक्ष देख रहे हैं इधर हम अपने भाग्य की राग को अलापते हुए उनसे बहुत पिछड़ गए हैं, इसलिए हम लोगों को इस भ्रम को, जो हम को आलसी तथा निकम्मा बनाता है, छोड़ कर स्वास्थ्य प्राप्त करने का विद्यार्थी जीवन से ही सतत् उद्योग करना चाहिए।

सभी स्वस्थ रहना पसन्द करते हैं सभी चाहते हैं कि हमारा चेहरा देदीप्यमान हो, हम बलिष्ठ हों, कान्तिमान हों, परन्तु, ऐसे होने की चेष्टा बहुत कम लोग करते हैं और अपने मुर्झाए हुए चेहरे को देख कर ईश्वर की मर्जी बता कर या भाग्य को दोष दे कर सतोष कर लेते हैं और अपने द्वारा की गई स्वास्थ्य की अवहेलना पर ध्यान नहीं देते। हम नहीं कहते कि ईश्वर-मर्जी और भाग्य को दोष देने वाली उक्ति में कुछ भी तथ्य नहीं है, परन्तु यह भी कहना पड़ता है कि इस धारणा से लोगों में स्वास्थ्य और अन्यान्य बातों के प्रति अवहेलना का भाव पैदा होता है जो नितान्त हानिकारक है।

हरेक विद्यार्थी के माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि उसके स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान देवें और उसे व्यायामशाला में भेजें। उसके स्वास्थ्य पर पढ़ाई की अपेक्षा कम ध्यान नहीं देना चाहिए। परन्तु दुःख है कि आजकल लड़कों के संरक्षक अपने इस कर्त्तव्य को बिलकुल भूल गए हैं, यहां तक कि वे इसको अपना कर्त्तव्य समझते ही नहीं। पर इसके लिये प्रतीक्षा क्यों की जाय कि संरक्षक अपना कर्त्तव्य संभालेंगे तब सब ठीक होगा।

सरक्षक वर्ग तो पता नहीं कब अपना कर्त्तव्य पहचानेंगे, पर अपने विद्यार्थी भाइयों से मेरा कहना है कि वे स्वयं अपने स्वास्थ्य-सुधार के प्रति सचेत हों और नियमित रूप से व्यायाम करना आरम्भ करके सदाचार-पूर्वक अपना जीवन बितावें। यह उनके खुदके जीवन की आवश्यकता है और इसलिये खुद की साधना।

हम में दोनों हैं।

हमें ऐसा मालूम हो, कि मुझ में कुछ भी नहीं है, तो यह आत्मा की दुर्बलता है। हम यह सोचें, कि बस मैं ही हूं, मुझ ही में सब कुछ है, तो यह हमारा अभिमान है। हम जैसे हैं, वैसे ही अपने को मानें, तो अति दुःख और अति हर्ष के ज्वार-भाटे का हमें सामना न करना पड़े। हममें कमजोरियाँ भी हैं और विशेषताएँ भी हैं। कमजोरियों के लिये हम जाग्रत रहें, खिन्न नहीं। विशेषताओं के लिये प्रसन्न रहें, मगरूर नहीं।

— आचार्य गिरजाशंकर बधेका।

राजस्थान

[श्री कन्हैयालाल सेठिया "निर्मल"]

(१)

किस निद्रा में मग्न हुये हो सदियों से तुम राजस्थान।
कहाँ गया वह शौर्य्य तुम्हारा, और वह अतुलित सम्मान।।
देख दुर्दशा भीषण तेरी, चित्त में होता क्षोभ महान।
किस कारण से दलित हुआ, तू बता-बता हे राजस्थान।।

(२)

राजपूत-कुल-कमल-दिवाकर कहां गया वह वीर प्रताप।
जिसके भीषण तेग़ ताप को सह न सका था अकबर आप।।
याद दिलाता इस दिन भी वह हल्दी घाटी का मैदान।
सहस्र-सहस्र वीरों ने जहां पर रक्खी थी रजपूती शान।।

(३)

भरे हृदय से भामाशाह ने दिया देश हित सरबस दान।
जब तक सूर्य्य चन्द्र चमकेंगे तब तक अमर रहेगा नाम।।
यही प्रतिज्ञा थी वीरों की हो जायेंगे हम बलिदान।
पर न कलंकित होने देंगे मातृभूमि की निर्मल शान।।

(४)

किरण देवी और पदमिनी का भी यही यही है जन्मस्थान।
जिन सतियों की गौरव गाथा गाता सारा राजस्थान।।
हंसते-हंसते कर सकती थी स्वयं विसर्जन अपने प्रान।
जलती अग्नी में कूद पड़ी जो मातृ जाति का रखने मान।।

(५)

सिंहनाद कर गर्ज उठो अब करो शक्ति का फिर आह्वान।
एक बार इस विश्व-गगन में गूंज उठे फिर भैरव गान।।
फिर से तेरा चमक उठे शौर्य्य और रजपूती शान।
घाटी-घाटी में गूंज उठे 'जय-जय प्यारा राजस्थान'।।

राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी

[श्री पारसमल भण्डारी, इन्दौर]

विद्या, धन, बल और यश इन चारों दुर्लभ बातों में से एक का पाना भी मुश्किल है, फिर चारों तो एक जगह बिरले ही भाग्यशाली को मिलती हैं। सेठ कन्हैयालालजी बहुत अंश में ऐसे ही बिरले भाग्यशालियों में हैं। आज उन्हीं के व्यक्तिगत, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन का कुछ परिचय पाठकों को इस लेख द्वारा कराने का प्रयत्न कर रहा हूं।

श्री कन्हैयालालजी भण्डारी उन व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी बुद्धिमानी, व्यापार कुशलता और तीव्र व्यवस्थापिका शक्ति से अपने व्यवसाय को तरक्की पर पहुंचाया। जिन लोगों को आपके संसर्ग में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है, वे आपकी जबर्दस्त व्यवस्थापिका शक्ति से भली-भाँति परिचित हैं। इन्दौर की भण्डारी मिल आपकी इस शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। यह मिल जिस समय स्थापित हुई थी उस समय सब तरफ व्यापारिक स्थिति बड़ी डावांडोल हो रही थी और लोगों को बिल्कुल आशा न थी कि यह इतनी सफलता से आगे जाकर चल निकलेगी। मगर श्रीयुत् भण्डारीजी की कार्यशीलता तथा व्यापारिक विवेक ने इस मिल को इतनी उन्नति पर पहुंचाया कि आज व्यवस्था और सफलता की दृष्टि से यह मिल इन्दौर की सर्व प्रधान मिलों में से एक गिनी जाती है। श्रीयुत् भण्डारी कन्हैयालालजी सारे भारतवर्ष के ओसवाल समाज में पहले या दूसरे नम्बर के इण्डस्ट्रियलिस्ट (Industrialist) माने जाते हैं।

श्री कन्हैयालालजी का जन्म सम्वत् १९४५ में हुआ था। आप प्रारम्भ से ही व्यापारिक लाईन में बड़े प्रतिभाशाली रहे। आपने सन १९१९ में 'स्टेटमिल्स लिमिटेड' इन्दौर' को १० वर्ष के लिये ठेके पर लिया और इस मिल की कम-से कम खर्चे में अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की। साथ ही इस मिल के कपड़े को दूर २ के प्रान्तों में खपाने के लिये कानपुर व अमृतसर में कपड़े की दूकानें भी स्थापित की। आपने करीब छः लाख रुपये की नई मशीनरी खरीद कर इसमें रंगाई वगैरह का काम भी शुरू कर एक नया जीवन ला दिया। इस समय भी आप इस मिल की व्यवस्था कर रहे हैं।

सन् १९२२ में आपने अपने पिता के नाम से इन्दौर में ही तीस लाख की पूंजी से "नन्दलाल भंडारी मिल्स लिमिटेड" नामक एक और मिल खोली। जिस समय यह मिल खोली गयी थी उस समय की भारत की व्यापारिक स्थिति पर पहले ही लिख चुके हैं। मगर मिल लाइन में तथा मैशीनेरी के सम्बन्ध में आपकी विशेष योग्यता, व्यवस्थापिका-शक्ति और बुद्धिमानी के परिणाम स्वरूप इसमें आपको बहुत सफलता प्राप्त हुई। फलतः वर्तमान में यह मिल बहुत ही सफलतापूर्वक चल रही है। इस मिल के खुलने के बाद अर्थात् सन् १९२८ में आपने मूलजी हरिदास

कल्याण मिल्स-को रु० ७२५०००) में खरीद कर उसकी सारी मशीनरी इस मिल में सम्मिलित कर दी, जिससे इस मिल में एक नया जीवन आ गया और तेजी के साथ माल तैयार किया जाने लगा। इस समय यह मिल रात और दिन चौबीसों घंटों चलती रहती है।

इसी प्रकार आपने सन् १९२८ में इन्दौर में एक बहुत बड़े स्केल पर पीतल का कारखाना भी स्थापित किया। यह कारखाना सन् १९३१ से बिजली द्वारा चलाया जाने लगा। वर्तमान में इस पीतल के कारखाने से दूर २ के प्रान्तों में पीतल आदि के बरतन भेजे जाते हैं। इसी कारखाने में मशीनरी के बहुत से पुरजे भी ढाले जाते हैं।

सार्वजनिक सेवा

श्री कन्हैयालालजी एक बड़े योग्य व्यापारी तथा कुशल व्यवस्थापक होने के साथ ही साथ बड़े सुधरे हुए नवीन विचारों के शिक्षित सज्जन हैं। अपनी मिलों में काम करनेवाले व्यक्तियों तथा साधारण जनता की सुविधा के लिये अनेक उपयोगी संस्थाएँ खोल कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। पाठकों की जान कारी के लिये आपकी ओर से बनाई गई कुछ संस्थाओं का हम नीचे उल्लेख करते हैं।

सन् १९२२ में आपने अपने पिता के नाम से एक विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय के लिये आपने रु० २५०००) की लागतका एक मकान बनवा कर इसके सुपुर्द किया। सन् १९३० में खजूरी बाजार में रु० ६००००) की लागत से मकान तैयार करवा कर उस में नन्दलाल भण्डारी हाईस्कूल की स्थापना की जो आज भी बहुत सफलता पूर्वक चल रहा है। यहां पर प्रति-वर्ष सैकड़ों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस हाई स्कूल को चलाने में आपकी ओरसे करीब रु० १८०००) प्रति वर्ष खर्च किया जाता है।

इसी प्रकार मिल में काम करने वालों की सुविधा के लिये आपकी ओर से एक दवाखाना, शुद्ध पानी का एक कूँआ, भोजन करने का हाल आदि कई मकान बनाये गये हैं। जिन से प्रति दिन सैकड़ों स्त्री पुरुष लाभ उठाते हैं।

इसके अतिरिक्त स्नेहलता-गंज, इन्दौर के अन्तर्गत आपकी ओर से एक विशाल प्रसूति-गृह स्थापित किया गया जिसका भवन रु० २२५००) में मोल लिया गया था। इस प्रसूति गृह के अन्तर्गत मजदूर और सर्व साधारण जनता के लिये सब प्रकारकी सुविधाओं की व्यवस्था रक्खी गई है तथा सभी प्रकारके अनुभवी और योग्य डाक्टरों का प्रबन्ध है। यह गृह बहुत विशाल है तथा अत्यन्त सुव्यवस्थित ढंग से चलाया जा रहा है। इसका वार्षिक खर्च रु० १८०००) के करीब पड़ता है जो सब आप ही की तरफ से दिया जाता है।

इसी प्रकार आपकी जन्मभूमि रामपुरा में भी श्री नन्दलाल भंडारी बोर्डिङ्ग हाउस नामक बोर्डिङ्ग भी आप ही के द्वारा खोला गया जिसमें बहुत से विद्यार्थी रहते तथा विद्याध्ययन करते हैं। इस बोर्डिङ्ग की व्यवस्थाके लिये आपकी ओरसे रु० ११०) प्रतिमास वर्तमान में दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त महाराजा तुकोजीराव हास्पिटल में अपने पूज्य पिता के नाम पर 'नन्दलाल भण्डारी फेमिली वार्ड', इन्दौर में भण्डारी क्लब, रामपुरा में श्मशान विश्रांति गृह, ओसवाल भवन तथा एक व्यायाम-शाला आदि कई सार्वजनिक भवन व संस्थाएँ आपकी ओर से चल रही हैं। कहने का मतलब यह है कि आपने क्या व्यापार, क्या परोपकार, क्या जाति-सेवा, तथा क्या समाज सुधार सब में अपनी

प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। आपकी ओर से कई गरीब विद्यार्थियों को स्कालरशिप आदि भी दी जाती है। प्रायः सभी सार्वजनिक और परोपकार के कार्यों में हजारों रुपये आपकी ओर से सहायतार्थ दिये जाते हैं।

आपका जाति-प्रेम भी अत्यन्त सराहनीय है। ओसवाल जाति के नवयुवकों के प्रति आपके हृदय में बहुत गहरा स्थान है। सैकड़ों ओसवाल नवयुवक आपकी वजह से जीविका उपार्जित कर रहे हैं। जाति सुधार के सम्बन्ध में भी आपके विचार बड़े मजे हुए हैं। आप सामाजिक सुधारों को व्यवहारिक रूप देने के बहुत जबरदस्त हामी हैं। विवाह, शादी, ओसर मोसर इत्यादि सामाजिक कुरीतियों की वेदी पर जो हजारों लाखों रुपया खर्च होता है उसको तोड़कर आपने उस पैसे को विद्याप्रचार, समाज सुधार इत्यादि उपयोगी कार्यों के अन्दर खुले दिल से खर्च किया है। आप कई समाज-संस्थाओं के प्रेसीडेन्ट तथा पदाधिकारी रहे हैं। आपके द्वारा स्थापित की हुई सार्वजनिक संस्थाएं ओसवाल जाति के अन्दर काफ़ी तौर से प्रकाशमान हैं।

ओसवाल जाति में आपका काफी सम्मान है। आप सन् १६३३ के नाशिक जिला ओसवाल सम्मेलन के सभापति भी चुने गये थे। इस पद को आपने बड़ी योग्यता से सम्पादित किया।

इन्दौर के सभी क्षेत्रों में आपका बड़ा प्रतिष्ठित स्थान है। जनता और राज्य-दोनों में आपका सम्मान है। इन्दौर राज्य के शिक्षित प्रमुख धनिक नागरिकों में आपका स्थान ऊँचा है। आपको सन् १६२८ में होल्कर सरकार की ओर से इन्दौर म्यूनीसिपल कमेटी में नामजद किया गया जिसमें तीन वर्ष तक आप रहे। इन तीन वर्षों में आपने अपने कार्य को बड़ी योग्यता से सम्भाला। आप इन तीन वर्षों में म्यूनीसिपैलिटी की ओर से इन्दौर म्यूनीसिपल इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट बोर्ड के ट्रस्टी भी चुने गये थे। आप सरकार की ओर से सन् १६२८ में तीसरे दर्जे के आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये। आपने इस पद पर लगातार चार वर्षों तक काम किया। आपकी कार्य-कुशलता और योग्यता से प्रसन्न होकर होल्कर गवर्नमेंट ने आपको सन १६३२ में द्वितीय दर्जे के आनरेरी मजिस्ट्रेट के सम्माननीय पद से विभूषित किया। आज भी आप इस पद पर हैं और बड़ी योग्यता से कार्य सञ्चालित करते हैं। आप सन १६३३ में "इन्दौर स्टेट मिनरल सरवे" के मेम्बर बनाये गये तथा आज तक उसके मेम्बर हैं।

इसके अतिरिक्त आप कोआपरेटिव सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट, राव गुरुकुल की गवर्निङ्ग बॉडी के मेम्बर, तथा इसी प्रकार की कई सभाओं के व संस्थाओं के आप सभापति वगैरह हैं। तात्पर्य यह है कि आप बहुत बड़े बुद्धिमान्, व्यापार-कुशल, सुधारक और ओसवाल समाज के चमकते हुए व्यक्ति हैं।

आपके छोटे भ्राता श्री मोतीलालजी एवं सुगनमलजी भी आपके साथ व्यापार, मिल की व्यवस्था तथा अन्य कार्यों में सहायता देते हैं। आप दोनों भ्राता भी बड़े मिलनसार सज्जन हैं।

यह परिवार रामपुरा तथा इन्दौर ही नहीं वरन् सारे मध्य-भारत की ओसवाल समाज में अग्रगण्य तथा दीपता हुआ परिवार है।

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धन सिंह महनोत बी० कॉम]

गताङ्क से आगे

(१३)

क्रोध में मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। उचित अनुचित का विचार तो उसे रह ही नहीं जाता। उसका विवेक, उसकी विवेचन शक्ति सब कपूर के सदृश उड़ जाते हैं। चाहे उस कार्य का, जिसे वह करनेवाला है, फल कितना ही बुरा क्यों न हो, पर उसे सिवा उस कार्य के दूसरा कोई मार्ग सूझ ही नहीं पड़ता। बाबू विजयशंकर की भी क्रोध में ठीक यही दशा हो रही थी। उन्हें एक यही धुन थी कि किस तरह भी हो निश्चित तिथि में ही अनुपमा का विवाह सम्पन्न हो जाय। लेकिन योग्य लड़के सहज ही नहीं मिला करते। इसके लिये बड़ी छानबीन और धैर्य की आवश्यकता है। विजयशंकर आज तीन दिन से बराबर इसी समस्या पर विचार कर रहे थे, पर बहुत मगज दौड़ाने पर भी प्रश्न किसी तरह हल नहीं हो पाता था। अपने कई मित्रों के सामने उन्होंने इस प्रश्न को रखा, पर कोई फल न हुआ। हां, मित्रों ने कितने ही लड़के सुझाये अवश्य, पर विजयशङ्कर को उनमें से एक भी अपनी सर्वगुणसम्पन्ना पुत्री के योग्य न जंचा। किसी में कुछ खामी पाई और किसी में कुछ। आज भी वे हरदयाल, श्यामसुन्दर, पुरोहित सुन्दरदास, नन्दलाल आदि अपने मित्रों के साथ बैठे इसी विषय पर विचार कर रहे थे।

नन्दलाल लाला हरदयाल को सम्बोधन कर बोला, "लालाजी, आखिर आपका कहना ही सच निकला। सच कहने के लिये माफ करना, मैं तो समझता था कि आप राधाकान्त से व्यक्तिगत द्वेष रखने के कारण ऐसा कहते हैं।"

लालाजी खीसें निपोर कर बोले, "वाह, राधाकान्त से और मुझ से क्या लेना देना? मैं तो बाबूजी को केवल इसलिये उसकी चालाकी से सचेत करना चाहता था कि इनका और मेरा पीढ़ियों से घरौपा है।"

विजयशंकर बोले, "बेशक मैंने आपका कहना न मानकर भारी भूल की। आपने तो पहले ही कह दिया था कि राधाकान्त मुझसे मन ही मन द्वेष रखता है और विवाह के समय भी वह मुझे बहुत नीचा दिखावेगा। उस समय मुझे आपकी इन बातों पर विश्वास न होता था, पर अब अपनी भूल स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। परन्तु जो होना था सो हुआ। अब आप लोग बताइये कि अनुपमा की कहां सगाई हो कि विवाह इसी तृतीया को हो जाय?"

श्यामसुन्दर निराश भाव से हाथ मलते हुए बोले, "दुनियां भी कितनी बावली है? अपने पैर में आपही कुठाराघात करना इसका स्वभाव सा हो गया है। उस समय मनुष्य कितने सुखी रहे होंगे, जब कोई विवाह गमी का झगड़ा टंटा न था। कोई सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबन्ध न थे। मनुष्य पक्षियों की तरह स्वतंत्र थे। पर उन्हीं मनुष्यों में से किसी बेवकूफ ने इस बात का अविष्कार किया कि प्रतिबन्ध लगाने से मनुष्य 'सभ्य' हो जायगा और उसका

जीवन सुखी हो जायगा। पर मैं आपही से पूछता हूं बाबूजी, कि क्या पग पग पर इन प्रतिबन्धों के रहते हुए मनुष्य सुखी है? कभी नहीं। प्रतिबन्धों ने और इन नैतिक नियमों ने उसके जीवन को दुखमय बना दिया है, उसकी दशा पशुओं से भी बदतर हो गई है। उसके शारीरिक और मानसिक कष्ट बढ़ गये हैं। आरम्भ ही से चलिये। लड़का पैदा होता है। बस उस पर प्रतिबन्ध लग जाता है कि—"

नन्दलाल बात काट कर बोला, "आपने भी कहां का पचड़ा निकाला श्यामसुन्दरजी, इस समय काम की बातें होनी चाहिये।"

श्यामसुन्दर की आंखें लाल हो गयी। क्रोध से कांपने लगे। उठते हुए बोले,

"मूर्खों को संगति में रहना हमें पसन्द नहीं है।"

बाबू विजयशंकर श्यामसुन्दर को बहुत चाहते थे। दूसरों को श्यामसुन्दरकी बातें भले ही पागल का प्रलाप मालूम पड़े, पर विजयशंकर उन बातों की गहराई तक पहुँच जाते थे। वे जानते थे कि श्यामसुन्दर की बातों का बड़ा गूढ़ अर्थ होता है और उन्हें बड़ी दूर की सूझा करती है। श्यामसुन्दर उन व्यक्तियों में से थे, जिन्हें 'दुनिया किधर जा रही है' इस बात की कुछ भी परवा नहीं रहती। वे तो केवल अपने विचारों में मगन रहते और दूसरों को भी उन विचारों को सुनने के लिये विवश करते। अगर कोई उन विचारों को व्यर्थ समझता और उन्हें टोक देता तो वे तत्काल क्रोध से कांपने लगते थे और उस मूर्ख को संगति से उठ कर चल देते थे। फिर अगर कोई उनसे अनुनय विनय करके ठहरने के लिये कहता तो वे शान्त भी उतने ही शीघ्र हो जाते थे।

विजयशंकर ने उनका हाथ पकड़ कर कहा, 'वाह, आपने तो साथ में हमें भी मूर्ख समझ लिया। अजी बैठिये, हम तो सुन रहे हैं।"

श्यामसुन्दर ने बैठते हुए जवाब दिया, 'मेरा कोई दोष नहीं बाबूजी, मूर्खों की संगति में विद्वान भी मूर्ख समझ लिये जाते हैं। हां तो मैं क्या कह रहा था?"

पुरोहित सुन्दरदास मुस्कुरा कर बोले, "यही, आपने लड़का पैदा किया था।"

सभी इस विनोद पर ठठा कर हंसने लगे। श्यामसुन्दर भी अपनी हँसी न रोक सके। थोड़ी देर बाद वे फिर उसी तरह हाथ मलते हुए कहने लगे, "लड़का पैदा होते ही उस पर प्रतिबन्ध लग जाता है। उसके माता-पिता को कह दिया जाता है कि यह तुम्हारा ही लड़का है। इसका पालन पोषण करो। देखो, यह कहीं किसी दूसरे के कपड़े वगैरह न खराब कर दे, इसका ध्यान रखना। कुछ बड़ा होने पर और भी जबर्दस्त प्रतिबन्ध लग जाते हैं। अगर उसने किसी दूसरे लड़के के साथ लड़ाई करली या किसी की कोई वस्तु उठाली तो पीटा जाता है। उसे बताया जाता है कि उसका हक तो केवल उन्हीं दोनों व्यक्तियों की चीजों पर है, जो उसके माता-पिता कहलाते हैं, फिर चाहे उन मातापिता के पास फूटी कौड़ी भी न हो या करोड़ों की सम्पदा हो। बस उसी समय से लड़के की अमीरी और गरीबी का श्रीगणेश हो जाता है और उसी के साथ पूंजीवाद और साम्यवाद का संघर्ष भी प्रारम्भ हो जाता है। इतना बड़ा संघर्ष तो केवल इस छोटे से प्रतिबन्ध के कारण हुआ है। और आगे चलिये। लड़के का विवाह किया जाता है। नव-दम्पति में से हरेक को बता दिया जाता है कि बस, उससे जोड़ा गया यह जीव और केवल यही जीव उसका जीवन सगी है, दूसरे किसी से उसे सरोकार नहीं। जिसने इस प्रतिबन्ध का आविष्कार किया, उसका शायद यह खयाल था कि ऐसा प्रतिबन्ध लगाने से समाज में सुव्यवस्थिता छा जायगी और स्त्री जाति की रक्षा अधिक उत्तमतापूर्वक हो सकेगी और साथ ही 'व्यभिचार' हट जायगा, जिसके शायद दो एक दृष्टान्त इस आविष्कारकर्ता

को मिल चुके होंगे। पर उस प्रतिबन्ध का फल क्या हुआ? यह हुआ कि अव्यवस्थितता छा गई, स्त्री का नाम अबला पड़ गया और व्यभिचार की मात्रा बढ़ गई। जो स्त्री की रक्षा भी नहीं कर सकता, उसको भी अब सौभाग्य से पत्नी नसीब होने लगी। पर थोड़े ही दिनों बाद दुर्भाग्य से उसका अपहरण हो गया और वह अबला भी अपने कमजोर पति को छोड़ कर उसके साथ सहर्ष चली गई जो उसकी रक्षा अधिक उत्तमता पूर्वक कर सकेगा। परन्तु उस अपहृत पत्नी की निगरानी करने का भार उसके अभिभावकों पर था। अगर वे निगरानी नहीं कर सकते हैं तो उन पर 'लोक लाज' और 'समाज संकोच' आदि के छोटे छोटे प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। अतः उस स्त्री के अपहरण होने से उन अभिभावकों के 'कुल में कलङ्क' लग जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के पैदा होने से लगा कर मरने तक उसका जीवन प्रतिबन्धों से भरा है। अगर ये सब प्रतिबन्ध उठा दिये जांय तो आपको आज इस तरह कन्यादान के लिये चिन्तित न होना पड़े। जो योग्य और बलवान हो, वह आप से आप कन्या को ग्रहण करले। सारे प्रतिबन्धों को उठाने की बात तो दूर रही, केवल एक जातिबन्धन को ही टूट जाने दीजिये। फिर देखिये कि आपको लड़कों की कमी नहीं है। पर अभी तो—।"

अब विजयशंकर भी घबड़ा गये। उन्होंने देखा कि अगर श्यामसुन्दर को टोका न गया तो वे अपनी स्पीच सहज ही समाप्त न करेंगे। इसलिये उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा,

"श्यामसुन्दरजी, आप जो कहते हैं, वह बिल्कुल सही है, लेकिन हम दुर्भाग्य से इस प्रतिबन्धित मार्ग में इतने आगे बढ़ आये हैं कि अब हमारा लौटना कठिन ही नहीं, असम्भव है। इन प्रतिबन्धों ने केवल हमारे शरीर को ही नहीं जकड़ा है, बल्कि इनमें हमारी विद्या, बुद्धि और संस्कृति भी जकड़ी जा चुकी है। अगर आज ये सारे प्रतिबन्ध उठा दिये जांय तो भयानक बवंडर मच जायगा, भीषण रक्तपात होगा। अब तो औरतें 'अबला' हो ही चुकी हैं, इसलिये अगर उनपर से उनके अभिभावक अपना नियन्त्रण हटालें तो उनकी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी? इसी प्रकार अगर गरीबों को अमीरों का धन लूटने दिया जाय, तो देश के सारे कलकारखाने बन्द हो जायगे। विज्ञान नष्ट हो जायगा। मुफ्त का धन पाकर लोगों का आलस्य बढ़ेगा और आलस्य के साथ बढ़ेगा पाप। अब इन प्रतिबन्धों को दूर करने का कोई उपाय ही नहीं है। आपही बताइये क्या उपाय है?"

विजयशङ्कर बाबू ने सोचा था कि अब श्यामसुन्दर चुप हो जायगे और हुआ भी ऐसा ही। श्यामसुन्दर ने न सोचा था कि उनके वक्तव्य के विरुद्ध भी कोई सप्रमाण बोल सकता है। अब जब उन्होंने विजयशंकर बाबू का वक्तव्य सुना तो चुप हो गये और बहुत गम्भीर होकर उसका उत्तर सोचने लगे।

इधर विजयशंकर ने पुरोहित सुन्दरदास से पूछा, "पुरोहितजी, अब आप ही बताइये कि अनुपमा के विवाह के लिये क्या करें? आपकी नजरमें कोई सुयोग्य लड़का नहीं है क्या?"

पुरोहितजी ने अत्यन्त गम्भीर मुद्रा धारण कर उत्तर दिया, "मेरी नजर में इधर तो ऐसा कोई सुयोग्य लड़का नहीं है। हां, पूरब में कुछ लड़के हैं, पर इस लग्न पर विवाह होना बड़ा कठिन है। अरे हां, लालाजी, आप किस लड़के की बात कहते थे?"

लालाजी मुंह फेर कर बड़ी अनिच्छा पूर्वक बोले, "नहीं भाई, मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। मैंने तो पहले भी बाबूजी से राधाकान्त की कपटपूर्ण मित्रता के बारे में कह कर जो भूल की है, उसके लिये अभी तक पछता रहा हूँ। मैंने तो केवल यही कहा था कि बाबूजी को राधाकान्त पर इतना विश्वास न करना चाहिये क्योंकि वह बड़ा कपटी है, लुच्चा है। मैंने यह भी कहा था कि ऐसा सुनने में आया है कि राधाकान्त कई हजार रुपये लेकर प्रकाश का विवाह अन्य जगह करने का इरादा कर रहा है, पर बाबूजी ने मुझे वह लतेड़ बतलाई कि

अभी तक मेरे कानों में उनके वे शब्द गूंज रहे हैं। इन्होंने कहा था, "बस माफ करिये, लालाजी। राधाकान्त मेरे अन्तरंग मित्र हैं। आप सौ वर्ष तक प्रयत्न करके भी अपनी कुटिल मनोवृत्ति के कारण उनके साथ मेरा वैमनस्य पैदा नहीं कर सकते।" भाई, मैंने तो केवल बाबूजी से सरल स्नेह रखने के कारण और अनुपमा को अपनी निरुपमा के समान समझने के कारण इतना कहा था। अब मेरी जबान कोई लावारिस तो है नहीं, कि बार बार पराये कामों में पड़ कर अपनी कुटिल मनोवृत्ति को चरितार्थ करता रहूँ।

विजयशंकर लालाजी का हाथ पकड़ कर बोले, "क्यों लालाजी, हमीं को पराया समझने लगे। जब रात दिन साथ रहते हैं तो सौ अच्छी के साथ एक बुरी बात भी मुंह से निकल ही जाती है। मैं तो अपनी गलती पहले ही मंजूर कर चुका हूँ। लीजिये, अब अपने उस कहने पर आपसे माफी भी मांग लेता हूँ। आप को हम अपना समझते हैं, इसीलिये इतना कह भी सकते हैं।"

लालाजी बड़ी नम्रता से बोले, "नहीं, नहीं, बाबूजी, माफी मांगने की क्या आवश्यकता है? यों तो आप हमारे मालिक हैं और हम आपके सेवक। फिर यह आपका बड़प्पन है कि आप हम सेवकों पर इतनी अनुकम्पा रखते हैं, नहीं तो हम किस योग्य हैं? फिर आपका काम सो मेरा काम है। मैं तो पुरोहितजी से शङ्करपुर के जमींदार दीनानाथजी के सुपुत्र के बारे में कह रहा था।"

विजयशंकर निराशा से सिर हिलाते हुए बोले, "नहीं जी, यह तो असम्भव है।" लालाजी तत्परतापूर्वक बोले, "क्यों, असम्भव क्यों? क्या खान्दान अच्छा नहीं है या पास में पैसा नहीं है? या लड़का कुरूप है या मूर्ख है? हां, यह बात अवश्य है कि वह राधाकान्त के लड़के की तरह किताबों का कीड़ा नहीं है। पर दुनिया में केवल किताबी-अक्ल की ही जरूरत नहीं है, लौकिक ज्ञान भी चाहिये। राधाकान्त के लड़के में अनुभव की एकदम कमी है। वह केवल उद्दण्ड है, पर मदनमोहन में यह बात नहीं। और आजकल बी० ए० और एम० ए० होकर ही क्या करना है? मदनमोहन को नौकरी तो करनी नहीं। हां, अलबत्ता राधाकान्त के लड़के को यह आवश्यक है क्योंकि वे नौकरी-पेशा व्यक्ति हैं। मेरी राय में तो आपकी पुत्री के लिये दीनानाथजी का खान्दान राधाकान्त के खान्दान की अपेक्षा सौगुना अच्छा है। कितने ही आदमी यह जरूर कहते हैं कि दीनानाथजी का खान्दान कुछ हल्का है। पर मैं कहता हूँ यह कैसे हो सकता है। आपके मित्र राधाकान्त और दीनानाथजी की स्त्रियां भी तो ममेरी बहनें हैं। फिर आपकी मरजी की बात है।"

विजयशंकर बोले, "नहीं, यह बात नहीं है लालाजी। मैं यह नहीं कहता कि दीनानाथजी का खान्दान हल्का है या मदनमोहन बिल्कुल ही अयोग्य है। मदनमोहन, यद्यपि प्रकाशचन्द्र की तरह तेज जेहन नहीं है, फिर भी कितनी ही बातों में उससे अच्छा है। मैं अनुपमा का विवाह खुशी से उसके साथ कर सकता हूं, लेकिन असल बात यह है कि दीनानाथजी ने कई वर्षों पहले मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा था कि मैं अनुपमा का विवाह मदनमोहन से करूं। लेकिन उस समय राधाकान्त के जाल में फसे रहने के कारण मैंने उनके उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। उसी समय से दीनानाथजी मुझ से भीतर ही भीतर कुछ अप्रसन्न हैं। एक बार उन्होंने मधुपुर में महाराज से भी मेरी एक शिकायत कर दी थी। अब वे कभी मेरे साथ सम्बन्ध स्थिर नहीं करना चाहेंगे।" हरदयाल बोले, "वे आपके साथ सम्बन्ध स्थिर करेंगे, इस बात का जिम्मा मैं लेता हूँ।" विजयशंकर ने थोड़ी सूखी हँसी हँस कर कहा, "फिर नाराज मत हो जाना, लालाजी। मैं आपके जिम्मा लेने पर भी इतना बड़ा साहस नहीं कर सकता। यदि मेरे प्रस्ताव पेश करने पर उन्होंने उस प्रस्ताव को बदला लेने की भावना से ठुकरा दिया तो मेरे

अपमान की कोई सीमा न रहेगी। मैं सहर्ष प्राण दे सकता हूँ, पर अपमान सहन नहीं कर सकता।"

लालाजी चलती रकम थे। देखा कि बात जाती है। झटपट सोच कर बोल उठे, "बेशक, यह आपका कहना बिल्कुल ठीक है। प्राण से भी मान की कीमत अधिक होती है। लेकिन अगर दीनानाथजी की तरफ से ही यह प्रस्ताव आपके पास भेजा जाय तो कैसा हो ?"

विजयशंकर को जैसे डूबते को तिनका मिला। उन्होंने आशा भरे नेत्रों से देख कर कहा, "क्या यह कभी सम्भव हो सकता है ?"

लालाजी प्रसन्न होकर बोले, "क्यों नहीं ? अगर उनको अनुपमा के समान लक्ष्मी-वधू की आवश्यकता होगी तो अवश्य आपके पास प्रस्ताव भेजेंगे। मैं इसके लिये प्राणपण से चेष्टा करूंगा।"

विजयशंकर बोले, "अगर ऐसा हो लालाजी, तो मैं आपका उपकार न भूलूंगा और साथ ही मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता से भी मुक्ति मिल जायगी। पर अब समय बहुत थोड़ा रह गया है और यह प्रस्ताव शीघ्र ही आना चाहिये।"

लालजी बोले, "अगर मैं अपने प्रयत्न में सफल हुआ तो परसों यह प्रस्ताव आपकी सेवा में भेज दिया जायगा।"

इतने ही में अचानक श्यामसुन्दर फिर बोल उठे, "बस बस, ठीक है। मिल गया बाबूजी, आपकी शङ्का का जवाब मिल गया। आप कहते हैं कि प्रतिबन्ध उठाने से दुनियां का ढांचा ही बिगड़ जायगा, पर मैं कहता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। जितने धीरे-धीरे हम पर ये प्रतिबन्ध लगे हैं, उतने ही धीरे-धीरे हम इनको समूल नष्ट भी कर सकते हैं। मैंने रूस देश के बारे में बहुत सी ऐसी ही बातें सुनी हैं। अभी मुझे केवल यही सोचना पड़ा कि क्या ये बातें हमारे देश में भी हो सकती हैं। मुझे तो मेरी विचार शक्ति ने यही उत्तर दिया कि अवश्य, वे सिद्धान्त हमारे लिये भी हितकर हैं। हां, यह हो सकता है कि उनको प्राप्त करने का तरीका भिन्न हो। हां तो रूसवाले भी एक एक करके इन्हीं प्रतिबन्धों का नाश कर रहे हैं। लड़का पैदा होता है। मां-बाप केवल उसके लिये धाय और पालक के समान हैं। वे यह बात ध्यान में रख कर लड़के का पोषण करते हैं कि वह देश की वस्तु है, कुछ समय तक धरोहर की भांति उनके पास है, देशकी वस्तु की रक्षा करना उनका धर्म है। लड़का बड़ा होता है। वह न अमीर है और न गरीब। वह तो देश का एक सेवक है। उसके मां-बाप के पास भी कुछ नहीं है। वे भी देश के ही सेवक हैं। देश ही उन्हें खाने को देता है और देश ही पहनने को। देश की उपज बढ़ाने के लिये सब मिलकर खेती करते हैं। देश का धन और देश की शक्ति बढ़ाने के लिये सब मिलकर कल-कारखाने चलाते हैं। देश के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये सब यथा-शक्ति अपनी अपनी शक्ति लगाकर कार्य करते हैं। इससे नयी नयी वस्तुओं का भी आविष्कार होता रहता है और विज्ञान की उन्नति भी। पर हरेक रद्दोबदल की शुरुआत में कुछ गड़बड़ी होना स्वाभाविक ही है। इसलिये पहले सर्व सम्मति से एक ऐसी शक्ति की सृष्टि करनी पड़ती है, जो परिस्थिति को काबू में रख सके। यह सम्भव है कि आपके कहने के मुताबिक आरम्भ में लोगों में आलस्य का प्रभुत्व हो जाय। इसे रोकने का काम वह शक्ति करेगी। वह उन्हीं को भोजन देगी जो कार्य करेंगे। इस प्रकार यही पोशाक पहन कर भी, यही भोजन खाके भी, इसी वैज्ञानिक संसार में रहते हुए भी मनुष्य उस चिन्ता रहित स्थिति में पहुँच सकेगा जो बड़े बड़े ऋषि मुनियों को नसीब नहीं थी। जब मनुष्यों में कुछ कर्त्तव्य का ज्ञान हो जायगा और हम नये रद्दोबदल के वे आदी हो जायंगे, तब वह शक्ति, जिसकी सृष्टि परिस्थिति को काबू में रखने के लिये हुई थी, आप से आप नष्ट हो जायगी। कहिये बाबूजी, आपकी शंका का समाधान हो रहा है या नहीं ?"

विजयशंकर बाबू पहिले से ही श्यामसुन्दर की अनोखी सूझ पर रीझे हुए थे, पर आज वे उस पर लट्टू हो गये। पर श्यामसुन्दर के विचार सुन कर वे बड़े डरे कि कहीं यह पगला अपने विचारों का प्रचार न आरम्भ कर दे। विजयशंकर यह बात जानते थे कि श्यामसुन्दर अगर तमाम गाव में किसी को अक्लमन्द समझता है तो उनको, क्योंकि वे सदा उसके विचारों का समर्थन करते रहते हैं। जिस बात को विजयशंकर खराब समझते हैं, उसे फिर श्यामसुन्दर ध्यान में भी नहीं लाते। यही सोच कर विजयशंकर बोले,

"श्यामसुन्दरजी, आपके ये विचार अच्छे हैं जरूर, पर वास्तविकता से परे हैं।"

श्यामसुन्दर के समझ में न आया कि बाबू विजयशंकर के कहने का क्या अर्थ है? वे निराश नेत्रों से विजयशंकर के मुख की ओर देखने लगे। विजयशंकर मुस्कुराकर भीतर चले गये और सभा बर्खास्त हुई।

(१४)

सुशील के चले जाने पर शीलादेवी की अस्वस्थता दिन-दिन बढ़ती गई। रह रह कर प्रकाश की याद उन्हें सताने लगी। बाबू राधाकान्त बहुत दिलासा देते, समझाते बुझाते, पर सब व्यर्थ होता। जितनी शारीरिक शक्ति क्षीण होती जाती है उतनी ही मानसिक शक्ति भी कम होती जाती है। अब शीलादेवी का धैर्य छूट गया था। वे रात दिन प्रकाश की याद में दुखी रहने लगीं। जबतक सुशील रहा, उन्हें फिर भी धैर्य था, पर अब पास में कोई बालक न रहने से उन्हें सब सूना दिखाई पड़ने लगा। अन्त में राधाकान्त को विवश होकर गोपालचन्द्र को लिखना पड़ा कि वे कमला या विमला अथवा दोनों को ही चन्द दिनों के लिये भेज दें, नहीं तो शीलादेवी का बचना कठिन है। उन्होंने यह भी लिखा कि विमला के विवाह के लिये गोपालचन्द्र को जो चिन्ता है, वह भी विमला को शिवपुरी भेजने से दूर हो जायगी, क्योंकि राधाकान्त ने एक लड़का ठीक कर रखा है।

गोपालचन्द्र ने जब भौजाई की अस्वस्थता और चिन्ताजनक हालत की खबर पढ़ी, उनके सहज स्नेही हृदय में प्रेम उमड़ आया और आंखों से बरबर आंसू निकल पड़े। सरलादेवी भी कम दुःखित न हुई। इधर कुछ दिनों से उनका स्वास्थ्य भी खराब रहने लगा था। अतः कमला ने राय दी कि सब कोई मिलकर कुछ दिनों के लिये चले चलें, इससे मां का स्वास्थ्य भी सुधर जायगा और बड़ी मां की सेवा भी हो सकेगी। विमला को भी भ्रमण से बड़ा अनुराग था, इसलिये वह भी राजी हो गई। शिवपुरी जाने में गोपालचन्द्र का एक और भी उद्देश्य था। वह यह कि वे उस लड़के को स्वयं देखना चाहते थे, जिसे राधाकान्त ने विमला के लिये ठीक किया है। योग्य लड़के बड़ी कठिनता से मिलते हैं, इसलिये गोपालचन्द्र इस अवसर को चूकना नहीं चाहते थे। पत्र मिलने के तीसरे ही दिन शुभ मुहूर्त देख कर और मुनीम को कार्यभार सम्हला कर वे सबके साथ शिवपुरी के लिये रवाना हो गये।

राधाकान्त सबको आया हुआ देख कर अतीव प्रसन्न हुए। शीलादेवी भी कम प्रसन्न न हुई। सबके साथ हंसने बोलने में उसका समय सानन्द कटने लगा। कभी कभी प्रकाश की याद जरूर सताती पर कमला की सेवा और विमला की मुखरता से वह शान्त हो जाती। जो सूना घर उन्हें काटने दौड़ता था, वह अब फिर चमन हो गया था।

कमला और विमला दोनों को ही विश्वास था कि वे सुशील से अवश्य मिलेंगी। लेकिन यहां आने पर उन्हें मालूम हुआ कि सुशील उसके पिता के पास मधुपुर है। कमला और सुशील में सात्विक स्नेह था। वे एक दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होते थे। अतः दोनों का परस्पर मिलकर अपनी सुखदुख की बातें कर तबीयत हल्की

करने की इच्छा करने में कोई भी आश्चर्य नहीं है। पर विमला सुशील से क्यों मिलना चाहती थी ? इसका कारण था।

विमला ने जब पहले पहल सुशील को देखा था, उसकी स्वाभाविक ही यह इच्छा हुई थी कि सुशील उसकी ओर आकर्षित हो। पाठक याद रखें कि विमला विवाह न होने पर भी नारीत्व को प्राप्त कर चुकी है। उसके समान चुलबुली और कालेज के वातावरण में पली हुई लड़कियां अगर किसी युवक विशेष को अपनी ओर आकर्षित करना चाहें तो कोई आश्चर्य नहीं है। सुशील को अपनी ओर आकर्षित करने की अनेक चेष्टायें करने पर भी जब विमला अपने प्रयत्न में सफल न हुई और साथ ही सुशील को अपने बजाय कमला के प्रति विशेष आकर्षित देखा तो उसके नारी-अभिमान को बहुत धक्का लगा। वह महसूस करने लगी कि वह सुशील से घृणा करती है। लेकिन यह नारी का सहज स्वभाव है कि जब कोई उसकी तरफ आकर्षित होता है, वह दूर भागती है और जब वह व्यक्ति, जिसे वह अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है, उसकी ओर आकर्षित होना तो दर किनार देखना भी नहीं, तो नारी स्वयं द्विगुणित अभिलाषा से उसकी ओर आकर्षित होती है। यद्यपि विमला सुशील से घृणा करती है, पर वह उसे देखना चाहती है। सुशील की विमला के प्रति उपेक्षा के कारण विमला केवल उससे ही घृणा करती हो सो बात नहीं है। वह सुशील का कमला के प्रति सहज स्नेह देख कर कमला से भी ईर्ष्या करती है। इसी ईर्ष्या के वशीभूत होकर उसने एक दिन इशारे ही इशारे में प्रकाश को स्पष्ट कह दिया था कि कमला और सुशील का पारस्परिक सम्बन्ध अनुचित है। इसके बाद भी उसने कई बार प्रसंगवश कमला और सुशील के चरित्र पर आक्षेप किया था।

यहाँ सुशील को न पाकर कमला और विमला दोनों ही को निराशा हुई थी, पर जहां कमला निराश होने पर भी शान्त थी वहां विमला और भी अधिक अस्थिर हो गई थी।

शीलादेवी का स्वास्थ्य इन सबों के प्रयत्न से धीरे-धीरे सुधरने लगा। जलवायु परिवर्त्तन होने से सरलादेवी भी स्वास्थ्य लाभ करने लगी।

एक दिन प्रसंगवश गोपालचन्द्र ने राधाकान्त से कहा, "आपने विमला के लिये कौन सा लड़का ठीक कर रखने की बात लिखी थी। अगर योग्य वर और अच्छा घर हो तो बात पक्की ही कर लेनी चाहिये, क्योंकि आजकल योग्य लड़के और वे भी अच्छे खान्दानों के बड़ी मुश्किल से हाथ लगते हैं।"

राधाकान्त ने उत्तर दिया, "हां, तुमने ठीक याद दिलाई। मैं तो इन सब की बीमारी की वजह से भूल ही गया था। यहां से पन्द्रह मील उत्तर शङ्करपुर नामक एक ग्राम है। वहां के जमींदार बाबू दीनानाथ मेरे मित्र तथा रिश्तेदार भी हैं। उनकी स्त्री और तुम्हारी भौजाई दोनों ममेरी बहनें हैं। अच्छी सात आठ हजार सालाना आमदनी की जमींदारी है। पास में पैसा भी खूब है। उनके केवल एक ही लड़का है मदनमोहन। मधुपुर कालेज में फर्स्ट इयर में पढ़ता है। शायद इस साल फर्स्ट इयर की परीक्षा दे चुका है। शरीर स्वस्थ और सुन्दर है। सुना है कि स्वभाव का भी अच्छा है। कई दिन हुए जब दीनानाथजी का मेरे पास एक पत्र आया था। उन्होंने लिखा था कि अब मदनमोहन की अवस्था पर्याप्त हो गई है, इसलिये उसका विवाह कर देना जरूरी है और अगर मेरी निगाह में कोई योग्य लड़की हो तो मदनमोहन के साथ उसका विवाह पक्का करने का प्रयत्न करूं। मैंने उन्हें उत्तर दे दिया था कि मेरी भतीजी विमला के लिये मैं गोपालचन्द्र से यानी तुम से पूछ कर उन्हें उत्तर दूंगा और साथ ही यह भी लिख दिया था कि बिना मुझ से पूछे वे और जगह बात पक्की न करें। इसलिये अब अगर तुम्हारी इच्छा हो तो बात पक्की की जाय।"

गोपालचन्द्र—"लड़का देख लिया जाय तो अच्छा है

और साथ ही विमला को भी दिखा दिया जाय। अगर हम लोग किसी बहाने शंकरपुर ही चलें तो और भी अच्छा है। सरला भी वर तथा वर का घर देख ले तो उसकी भी तबीयत भर जाय।"

राधाकान्त पुरानी तबीयत के आदमी थे। उन्हें यह बात बड़ी बुरी मालूम हुई कि विमला को लड़का दिखाया जाना जरूरी है। पर इस विषय में कुछ कहना ठीक न समझ कर वे बोले,

"किसी बहाने जाने की क्या जरूरत है? शंकरपुर में हमारा एक बहुत पुराना मकान है, उसमें आधा हिस्सा तुम्हारा है। उसी मकान को सम्हालने के लिये चलेंगे। तुम्हारी भौजाई को भी घर छोड़े बहुत दिन हो गये हैं, वहां जाकर तबीयत भी बहलेगी और अपनी बहन से भी मिल सकेगी। आज मैं एक आदमी शंकपुर भेज देता हूं, वह मकान को साफ करा कर रहने का सब प्रबन्ध कर रखेगा। परसों मङ्गलवार अच्छा दिन है। उसी दिन हम सब शंकरपुर चले चलेंगे।"

जमींदार बाबू दीनानाथजी को बाबू राधाकान्त के सपरिवार शंकरपुर आने की खबर लग गई थी। उन्होंने बड़ी धूमधाम से राधाकान्त का स्वागत किया और उन्हें किसी प्रकार भी उनके पुराने मकान में न ठहरने देकर यह कह कर अपने ही यहां ठहराया कि उनकी स्त्री (मदनमोहन की मां) शीलादेवी से उमर में बहुत बड़ी हैं, इसलिये राधाकान्त को बिना किसी उज्र के उनके यहां ठहरना चाहिये। अन्त में बहुत हठ करने पर भी जब दीनानाथ बाबू न माने तो राधाकान्त ने गोपालचन्द्र से सलाह करके वहीं ठहरना स्वीकार कर लिया और उनके डेरे उसी बगीचे में डाल दिये गये, जिस में कलकी विनोद-पार्टी में हमारे पाठक भी सम्मिलित हो चुके हैं।

जिस दिन लाला हरदयाल बाबू विजयशंकर से इस बात का जिम्मा ले रहे थे कि वे दीनानाथ बाबू द्वारा मदनमोहन का अनुपमा के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भिजवावेंगे, उसी दिन सपरिवार बाबू राधाकान्त दीनानाथ के यहां मदनमोहन के साथ विमला का विवाह करने की गरज से पहुँच चुके थे।

विमला के रूप और योग्यता को देख कर बाबू दीनानाथ और उनकी गृहणी दोनों ही बड़े प्रसन्न हुए। इसी प्रकार गोपालचन्द्र और सरलादेवी भी मदनमोहन के सुन्दर और स्वस्थ शरीर को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। दीनानाथ और उनकी गृहिणी के सुन्दर शिष्टाचार से तो वे और भी बाधित हुए। विमला से भी यह बात छिपी न थी कि यह सब उसके विवाह के लिये किया जा रहा है। अतः वह भी छिप छिप कर मदनमोहन को देख रही थी। विमला सदा से चञ्चल प्रकृति की है। उसे किसी भी नयी बात में कौतुक प्राप्त होता है। किसी भी बात पर खूब गहरा विचार करना तो जैसे उसने सीखा ही नहीं। मदनमोहन के पुष्ट शरीर और उज्वल वर्ण पर वह भी रीझ गई। संक्षेप में उसी दिन रात को मदनमोहन के साथ विमला का विवाह पक्का हो गया। यहां इस बात को कहने की आवश्यकता नहीं कि मदनमोहन भी विमला का सुन्दर मुख और तड़क भड़क तथा वाक्चातुरी देख कर कम-से-कम उस समय अनुपमा को भूल गया था।

बाबू दीनानाथ भी प्राचीन विचारों के मनुष्य थे। छोटी-छोटी बातों में भी मान-अपमान का विवेचन करने में वे बड़े दक्ष थे। बाबू विजयशंकर द्वारा हुए उस अपमान को वे अभी तक भूले न थे। उसी अपमान का बदला लेने की भावना से दीनानाथ बाबू ने इसी अगली तृतीया को मदनमोहन का विवाह करने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन जब लाला हरदयाल मदनमोहन को खुशखबरी सुनाने के लिये शंकरपुर पहुँचे, तब राधाकान्त का परिवार शिवपुरी लौटने का उपक्रम कर रहा था, क्योंकि विवाह के दिन बहुत थोड़े थे और तैयारियां बहुत करनी थी। (क्रमशः)

जैन—साहित्य—चर्चा

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण।

(क्रमागत)

[लेखक—श्रीमान् पं० सुखलालजी] [अनु०—श्रीमान् पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(५)

अंग साहित्य से लेकर हेमचन्द्र के काव्यमय महावीर-चरित तक, हम ज्यों ज्यों उत्तरोत्तर आगे बढ़ते-बाँचते हैं, त्यों त्यों महावीर के जीवन की सहज घटनाएँ क़ायम तो रहती हैं मगर उनपर दैवी और चमत्कारी घटनाओं का रंग अधिकाधिक भरता जाता है। अतएव जान पड़ता है कि जो घटनाएं अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं और जिनके बिना भी मूल जैनभावना अबाधित रह सकती है, वे घटनाएँ किसी न किसी कारण से जैन साहित्य में - महावीर जीवन में-बाहर से आ घुसी हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिए यहाँ एक घटना पर विशेष विचार करना अप्रासंगिक न होगा। आवश्यकनिर्युक्ति, उसके भाष्य और चूर्णिमें महावीर के जीवन की तमाम घटनाएँ संक्षेप या विस्तार से वर्णित हैं। छोटी बड़ी तमाम घटनाओं का संग्रह करके उन्हें सुरक्षित रखने वाली निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णिके लेखकों ने महावीर के द्वारा सुमेरु कँपाने के आकर्षक वृत्तान्त का उल्लेख नहीं किया, जब कि उक्त ग्रन्थों के आधार पर महावीर जीवन लिखने वाले हेमचन्द्र ने मेरु-कम्पन का उल्लेख किया है। आचार्य हेमचन्द्र के द्वारा किया हुआ यह उल्लेख यद्यपि उसके आधारभूत निर्युक्ति, भाष्य या चूर्णिमें नहीं है, फिर भी आठवीं शताब्दी के दिगम्बर कवि रविषेणकृत पद्मपुराण में है ※। रविषेण ने यह वर्णन प्राकृत के 'पउमचरिय' से लिया है क्योंकि रविषेण का पद्मपुराण प्राकृत पउमचरिय का अनुकरण मात्र है, और पउमचरिय में (द्वि० पर्व श्लो० २५-२६ पृ० ५) यह वर्णन उल्लिखित है। पद्मचरित दिगम्बर सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, इसमें जरा भी विवाद नहीं है। पउमचरिय के विषय में अभी मतभेद है। पउमचरिय चाहे दिगम्बरीय हो, चाहे श्वेताम्बरीय हो, अथवा इन दोनों रूढ़ सम्प्रदायों से भिन्न तीसरे किसी गच्छ के आचार्य की कृति हो, कुछ भी हो, यहाँ तो सिर्फ यही विचारणीय है कि पउमचरिय में निर्दिष्ट मेरुकम्पन की घटना का मूल क्या है?

आगम ग्रन्थों एवं निर्युक्ति में इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं है, अतएव यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि पउमचरिय के कर्त्ता ने वहाँ से इसे लिया है। तब यह घटना आई कहाँ से? यद्यपि पउमचरिय का रचना-समय पहली शताब्दी निर्देश किया गया है,

---

※ द्वितीय पर्व श्लोक ७५-७६ पृष्ठ १५।

फिर भी कुछ कारणों से इस समय में भ्रम जान पड़ता हैं। ऐसा मालूम होता है कि पउमचरिय ब्राह्मण पद्म-पुराण के बादकी कृति है। पाँचवीं शताब्दी से पूर्व के होनेकी बहुत ही कम संभावना है। चाहे जो हो, परन्तु अंग और निर्युक्ति आदि में सूचित न की हुई मेरुकम्पन की घटना पउमचरिय में कहाँ से आई ? यह प्रश्न तो कायम ही रहता है।

यदि पउमचरिय के कर्त्ताके पास इस घटनाका उल्लेख करने वाला अधिक प्राचीन कोई ग्रन्थ होता और उसी के आधार पर उसने इसका उल्लेख किया होता तो शायद ही निर्युक्ति और भाष्यमें इसका उल्लेख होने से रह सकता था। अतएव कहना चाहिए कि यह घटना कहीं बाहर से पउमचरिय में आ घुसी है। दूसरी ओर हरिवंश आदि ब्राह्मण पुराणोंमें फलद्रूप पौराणिक कल्पनाओं से जन्मी हुई गोवर्धन को तोलने की घटना का उल्लेख प्राचीनकाल से मिलता है।

पौराणिक अवतार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का तौलन और जैन तीर्थंकर महावीर द्वारा सुमेरुपर्वत का कम्पन, इन दोनों में इतनी अधिक समानता है कि कोई भी एक कल्पना, दूसरी पर अवलम्बित है।

हम देख चुके हैं कि आगम-निर्युक्ति ग्रन्थों में, जिन में कि गर्भसंक्रमण सरीखे असंभव प्रतीत होनेवाले वर्णनों का उल्लेख है, उन में भी सुमेरुकम्पन का संकेत तक नहीं है। किसी प्राचीन जैन परम्परा मेंसे पउम-चरिय में इस घटना के लिए जाने की बहुत कम संभा-वना है। और ब्राह्मणपुराणों में पर्वत के उठाने का उल्लेख है, तब हमें यह मानने के लिए आधार मिलता है कि कवित्वमय कल्पना और अद्भुत वर्णनों में ब्राह्मण मस्तिष्क का अनुकरण करनेवाले जैन मस्तिष्क ने ब्राह्मण पुराण के गोवर्धन पर्वत को तोलने की कल्पना के सहारे इस कल्पना की सृष्टि कर ली है।

पड़ोसी और विरोधी सम्प्रदाय वाला अपने भग-वान् का महत्व गाते हुए कहता है कि पुरुषोत्तम कृष्णने तो अपनी अंगुली से गोवर्धन जैसे पहाड़ को उठा लिया; तब साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को संतुष्ट करने के अर्थ जैनपुराणकार यदि यह कहें तो सर्वथा उचित जान पड़ता है कि—कृष्णने जवानी में सिर्फ एक योजन के गोवर्धन को ही, उठाया पर हमारे प्रभु महावीर ने तो, जन्म होते ही, केवल पैर के अँगूठे से, एक लाख योजन के सुमेरु पर्वत को डिगा दिया ! कुछ दिनों बाद यह कल्पना इतनी मजबूत हो गई, इतनी अधिक प्रच-लित हो गई कि अन्त में हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रन्थ में इसे स्थान दिया। अब आज कलकी जैनजनता तो यही मानने लगी है कि महावीर के जीवन में आने वाली मेरुकम्पन की घटना आगमिक और प्राचीन ग्रन्थगत है।

यहां उलटा तर्क करके एक प्रश्न किया जा सकता है। वह यह कि प्राचीन जैनग्रन्थों में उल्लिखित मेरु-कम्पन की घटना की ब्राह्मणपुराणकारों ने गोवर्धन को उठाने के रूप में नक़ल क्यों न की हो ? परन्तु इस प्रश्न का उत्तर एक स्थल पर पहले ही दे दिया गया है। वह स्पष्ट है। जैन ग्रन्थों का मूल स्वरूप काव्य-कल्पना का नहीं है और यह कथन इसी प्रकार की काव्यकल्पना का परिणाम है। पौराणिक कवियों का मानस मुख्य रूप से काव्यकल्पना के संस्कार से ही गढ़ा हुआ नज़र आता है। अतएव यही मानना उचित प्रतीत होता है कि यह कल्पना पुराण द्वारा ही जैन-काव्यों में, रूपान्तरित होकर घुस गयी है।

(२) कृष्ण के गर्भावतरण से लेकर जन्म, बाल-लीला और आगे के जीवन-वृत्तान्तों का निरूपण करनेवाले प्रधान वैदिक पुराण हरिवंश, विष्णु, पद्म, ब्रह्मवैवर्त और भागवत हैं। भागवत लगभग आठवीं

नौवीं शताब्दी का माना जाता है। शेष पुराण किसी एकही हाथ से और एक ही समय में नहीं लिखे गये हैं, फिर भी हरिवंश, विष्णु और पद्म ये पुराण पाँचवीं शताब्दी से पहले भी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त इन पुराणों के पहले भी मूल पुराणों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। हरिवंश पुराण से लेकर भागवतपुराण तक के उपर्युक्त पुराणों में आनेवाली कृष्ण के जीवन की घटनाओं को देखने से भी मालूम होता है कि इन घटनाओं में केवल कवित्व की ही दृष्टि से नहीं किन्तु वस्तु की दृष्टि से भी बहुत कुछ विकास हुआ है। हरिवंशपुराण और भागवत-पुराण की कृष्ण के जीवन की कथा सामने रखकर पढ़ने से यह विकास स्पष्ट प्रतीत होने लगता है।

दूसरी ओर जैन साहित्य में कृष्णजीवन की कथा का निरूपण करनेवाले मुख्य ग्रन्थ दोनों—दिगम्बर और श्वेताम्बर—सम्प्रदाय में हैं। श्वेताम्बरीय अंग ग्रन्थों में से छट्ठे ज्ञाता और आठवें अन्तगड में भी कृष्ण का प्रसंग आता है। वसुदेव हिन्डी (लगभग सातवीं शताब्दी, देखो पृ० ३६८, ३६९) जैसे प्राकृत ग्रन्थों में कृष्ण के जीवन की विस्तृत कथा मिलती है। दिगम्बरीय साहित्य में कृष्ण-जीवन का विस्तृत और मनोरंजक वृत्तान्त बतानेवाला ग्रन्थ जिनसेनकृत (विक्रमीय ९ वीं शताब्दी) हरिवंशपुराण है और गुणभद्रकृत (विक्रमीय ९ वीं शताब्दी) उत्तरपुराण में भी कृष्ण की जीवनकथा है। दिगम्बरीय हरिवंशपुराण और उत्तर पुराण ये दोनों विक्रम की नौवीं शताब्दी के ग्रन्थ हैं।

कृष्ण के जीवन के कुछ प्रसंगों को लेकर देखिये कि वे ब्राह्मणपुराणों में किस प्रकार वर्णन किये गये हैं और जैन ग्रन्थों में उनका उल्लेख किस प्रकार का है?

ब्राह्मणपुराण

(१) विष्णु के आदेश से योगमाया शक्ति के हाथों बलभद्र का देवकी के गर्भ में से रोहिणी के गर्भ में संहरण होता है।

—भागवत, स्कन्ध १०, अ० २ श्लो० ६–२३ पृ० ७९९

(२) देवकी के जन्मे हुए बलभद्र से पहले के छह सजीव बालकों को कंस पटक पटक कर मार डालता है।

—भागवत, स्कन्ध १०, अ० २ श्लो, ५

जैन ग्रन्थ

(१) इसमें संहरण की बात नहीं है, बल्कि रोहिणी के गर्भ में सहज जन्म लेने की बात है।

—हरिवंश, सर्ग ३२ श्लो० १—१०, पृ० ३२१

(२) वासुदेव हिण्डी (पृ० ३६८, ३६९) देवकी के छः पुत्रों को कंस ने मार डाला, ऐसा स्पष्ट निर्देश है। परन्तु जिनसेन एवं हेमचन्द्र के वर्णन के अनुसार देवकी के गर्भजात छह सजीव बालकों को एक देव, अन्य शहर में जैन कुटुम्ब में सुरक्षित पहुंचा देता है और उस बाई के मृतक जन्मे हुए छह बालकों को क्रमशः देवकी के पास लाकर रखता है। कंस रोष के मारे जन्म से ही उन मृतक बालकों को पछाड़ता है और उस जैन गृहस्थ के घर पले हुए छह सजीव देवकी-

बालक आगे जाकर नेमिनाथ तीर्थंकर के समीप दीक्षा लेकर मोक्ष जाते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ३५, श्लो० १-३५ पृ० ३६३-३६४

(३) विष्णु की योगमाया यशोदा के यहाँ जन्म लेकर वसुदेव के हाथों देवकी के पास पहुँचती है और उसी समय देवकी के गर्भ में उत्पन्न हुए कृष्ण वसुदेव के हाथों यशोदा के यहाँ सुरक्षित पहुँचते हैं। आई हुई पुत्री को मार डालने के लिये कंस पटकता है। पर, वह योगमाया होने के कारण निकल भागती है और काली-दुर्गा आदि शक्ति के रूप में पुजती है।

—भागवत, दशमस्कन्ध, अ० ४ श्लो० २—१० पृ० ८०९

(३) यशोदा की तत्काल जन्मी हुई पुत्री कृष्ण के बदले देवकी के पास लाई जाती है। कंस उस जीवित बालिका को मारता नहीं है। वसुदेव हिण्डी के अनुसार नाक काटकर और जिनसेन के कथनानुसार नाक सिर्फ चपटा करके छोड़ देता है। यह बालिका आगे चलकर तरुण अवस्था में एक साध्वी से जैन दीक्षा ग्रहण करती है। और जिनसेन के हरिवंश के अनुसार तो यह साध्वी ध्यान अवस्था में मरकर सद्-गति पाती है लेकिन उसकी अंगुली के लोहू भरे हुए तीन टुकड़ों से, वह बाद में त्रिशूलधारिणी काली के रूप में बिन्ध्या-चल में प्रतिष्ठा पाती है। इस काली के समक्ष होने वाले भैंसों के बध को जिनसेन ने खूब आड़े हाथों लिया है जो आजतक भी बिन्ध्याचल में होता है।

—हरिवंश, सर्ग ३९ श्लोक, १—५१, पृ० ४५८-४६१

(४) कृष्ण की बाललीला और कुमारलीला में जितने भी असुर कंस के द्वारा भेजे हुए आये और उन्होंने कृष्ण को, बलभद्र को या गोपियों को सताया है, करीब करीब वे तमाम असुर कृष्ण के द्वारा या कभी-कभी बलभद्र के द्वारा मार डाले गये हैं।

—भागवत स्कन्ध १०, अ० ५—८, पृ० ८१४

(४) ब्राह्मण पुराणों में कंस द्वारा भेजे हुए जो असुर आते हैं वे असुर, जिनसेन के हरिवंश पुराण के अनुसार कंस द्वारा पूर्व जन्म में साधी हुई देवियाँ हैं। ये देवियाँ जब कृष्ण, बलभद्र या ब्रजवासियों को सताती हैं तब वे कृष्ण के द्वारा मारी नहीं जाती वरन् कृष्ण उन्हें हरा कर जीती ही भगा देते हैं। हेमचन्द्र के (त्रिषष्टि० सर्ग ५ श्लो०, १२३-१२४) वर्णन के अनुसार कृष्ण, बलभद्र और ब्रजवासियों को सतानेवाली देवियाँ नहीं वरन् कंस के पाले हुए उन्मत्त प्राणी हैं। कृष्ण उनका भी बध नहीं करते किन्तु दयालु जैन की भाँति पराक्रमी होने पर भी कोमल हाथ से इन कंसप्रेरित उपद्रवी प्राणियों को हरा कर भगा देते हैं।

— हरिवंश, सर्ग ३५ श्लो० ३५-५० पृ० ३६६-३६७

(५) नृसिंह विष्णु का एक अवतार है और कृष्ण तथा

(५) कृष्ण यद्यपि भविष्यकालीन तीर्थंकर होने के

बलभद्र दोनों विष्णु के अंश होने के कारण सदामुक्त हैं और विष्णुधाम स्वर्ग में विद्यमान हैं।

—भागवत, प्रथम स्कंध, अ० ३ श्लो० १-२४ पृ० १०-११

कारण मोक्षगामी हैं किन्तु इस समय युद्ध के फलस्वरूप वे नरक में निवास करते हैं और बलभद्र जैन दीक्षा लेने के कारण स्वर्ग गए हैं। जिनसेन ने बलभद्र को ही नृसिंह रूपमें घटाने की मनोरंजक कल्पना की है और लोक में कृष्ण और बलभद्र की सार्वत्रिक पूजा कैसे हुई, इसकी युक्ति कृष्ण ने नरक में रहते रहते बलभद्र को बताई, ऐसा अति साम्प्रदायिक और काल्पनिक वर्णन किया है।

—हरिवंशपुराण सर्ग ३५, श्लो० १-५५, पृ० ६१८-६२५

(६) द्रौपदी पाँच पांडवों की पत्नी है और कृष्ण पांडवों के परम सखा हैं। द्रौपदी कृष्णभक्त है और कृष्ण स्वय पूर्णावतार हैं।

—महाभारत

(६) श्वेताम्बरों के अनुसार द्रौपदी के पाँच पति हैं (ज्ञाता १६ वाँ अध्ययन) किन्तु जिनसेन ने अर्जुन को ही द्रौपदी का पति बताया है और उसे एक पतिवाली ही चित्रित किया है (हरिवंश सर्ग ५४ श्लो० १२-२५) द्रौपदी तथा पाण्डव सभी जैन दीक्षा लेते हैं। कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाते हैं। सिर्फ कृष्ण कर्मोदय के कारण जैनदीक्षा नहीं ले सकते फिर भी बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमिके अनन्य उपासक बन कर भावी तीर्थंकर पदकी योग्यता प्राप्त करते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ६५ श्लो० १६ पृ० ६१९ ६२०

(७) कृष्ण की रासलीला एवं गोपीक्रीड़ा उत्तरोत्तर अधिक शृङ्गारमय बनती जाती है और वह भी यहां तक कि अन्त में पद्मपुराण में भोग का रूप धारण करके बल्लभ सम्प्रदाय की भावना के अनुसार महादेव के मुख से उसे समर्थन मिलता है।

—पद्मपुराण अ० २४५ श्लो० १७५-१७६ पृ० ८८९-८९०

(७) कृष्ण रास और गोपी क्रीड़ा करते हैं पर वे गोपियों के हावभाव में लुब्ध न होकर एकदम अलिप्त ब्रह्मचारी रहते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ३५, श्लो० ६५-६६ पृ० ३६९

(८) इन्द्र ने व्रजवासियों पर जो उपद्रव किए उन्हें शान्त करने के लिये कृष्ण गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक हाथ से उठाये रखते हैं।

(८) जिनसेन के कथनानुसार इन्द्र द्वारा किए हुए उपद्रवों को शान्त करने के लिए नहीं, वरन् कंस के द्वारा भेजी हुई देवी के उपद्रवों को शान्त करने के लिए कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाया।

—हरिवंश, सर्ग ३५, श्लो० ४८-५० पृ० ३६७

पुराणों और जैनग्रन्थों में वर्णित कृष्ण के जीवन की कथा के ऊपर जो थोड़े से नमूने दिये गये है उन्हें देखते हुए इस सम्बन्ध में शायद ही यह सन्देह रहे कि कृष्ण वास्तव में वैदिक या पौराणिक पात्र हैं और जैनग्रन्थों में उन्हें पीछे से स्थान मिला है। पौराणिक कृष्ण जीवन की कथा में मार फाड़, असुर संहार और शृङ्गारी लीलाएं हैं। जैन ग्रन्थकारों ने अपनी अहिंसा और त्यागकी भावना के अनुसार उन लीलाओं को बदलकर अपने साहित्य में एक भिन्न ही रूप दिया है। यही कारण है कि पुराणोंकी भाँति जैनग्रन्थों में न तो कंस के द्वारा बालकों की हत्या दिखाई देती है और न कसके भेजे हुए उपद्रवियों का कृष्ण के द्वारा प्राणनाश ही दिखाई पड़ता है। जैसे पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन को छोड़ दिया उसी प्रकार कंस के भेजे हुए उपद्रवियों को कृष्ण द्वारा जीते छोड़ने की बात जैनग्रन्थों में पढ़ने को मिलती है। यही नहीं बल्कि सिवाय कृष्ण के और सब पात्रों के जैन दीक्षा स्वीकार करने का वर्णन भी हम देखते है।

हाँ, यहाँ एक प्रश्न हो सकता है। वह यह कि मूलमें वसुदेव, कृष्ण आदि की कथा जैनग्रन्थों में हो और बादमें वह ब्राह्मण ग्रन्थों मे भिन्न रूप में क्यों न ढाल दी गई हो? परन्तु जैन आगमों तथा अन्य कथाग्रन्थों में कृष्ण-पाण्डव आदि का जो वर्णन किया गया है उसका स्वरूप, शैली आदि को देखते हुए इस तर्क के लिए गुञ्जाइश नहीं रहती। अतएव विचार करने पर यही ठीक मालूम होता है कि जब जनता में कृष्णकी पूजा प्रतिष्ठा हुई, और इस संबन्ध का बहुत सा साहित्य रचा गया और वह लोकप्रिय होता गया तब समय सूचक जैन लेखकों ने रामचन्द्र की भाँति कृष्ण को भी अपना लिया और पुराण गत कृष्ण-वर्णन में, जैन दृष्टि से प्रतीत होनेवाले हिंसाके विषको उतार कर उसका जैन संस्कृति के साथ संबन्ध स्थापित कर दिया। इस से अहिंसा की दृष्टि से लिखे जानेवाले कथा साहित्य का विकास सिद्ध हुआ।

जब कृष्ण-जीवन के ऊधम और शृङ्गार से परिपूर्ण प्रसग जनता में लोकप्रिय होते गए तब यही प्रसंग एक ओर तो जैनसाहित्य में परिवर्तन के साथ स्थान पाते गए और दूसरी ओर उन पराक्रम प्रधान अद्भुत प्रसंगों का प्रभाव महावीर के जीवन-वर्णन पर होता गया, यह विशेष संभव है। इसी कारण हम देखते हैं कि कृष्ण के जन्म, बालक्रीड़ा और यौवनविहार आदि प्रसंग, मनुष्य या अमनुष्य रूप असुरों द्वारा किए हुए उपद्रव एवं उत्पातों का पुराणों में जो अस्वाभाविक वर्णन है और उन उत्पातों का कृष्ण द्वारा किया हुआ जो अस्वाभाविक किन्तु मनोरञ्जक वर्णन है वही अस्वाभाविक होने पर भी जनता के मानस में गहरा उतरा हुआ वर्णन, अहिंसा और त्यागकी भावनावाले जैन-ग्रन्थकारों के हाथों योग्य संस्कार पाकर महावीर के जन्म, बालक्रीड़ा और यौवनकी साधनावस्था के समय देवकृत विविध घटनाओं के रूप में स्थान पाता है। पौराणिक वर्णन की विशेष अस्वाभाविकता और असंगति को हटाने के लिए जैनग्रन्थकारों का यह प्रयास था किन्तु महावीर जीवन में स्थान पाए हुए पौराणिक घटनाओं के वर्णन में कुछ अन्शों में एक प्रकार की अस्वाभाविकता एवं असंगति रह ही जाती है और इसका कारण तत्कालीन जनता की रुचि है।

३-कथाग्रन्थोंके साधनों का पृथक्करण और उनका औचित्य।

अब हम तीसरे दृष्टिविन्दु पर आते हैं। इसमें

विचारणीय यह है कि "जनता में धर्मभावना जागृत रखने तथा सम्प्रदाय का आधार मजबूत करने के लिए उस समय कथाग्रन्थों या जीवन वृत्तान्तों में मुख्य रूप से किस प्रकार के साधनों का उपयोग किया जाता था? उन साधनों का पृथक्करण करना और उनके औचित्य का विचार करना।"

ऊपर जो विवेचना की गई है, वह प्रारम्भ में किसी भी अतिश्रद्धालु साम्प्रदायिक भक्त को आघात पहुँचा सकती है, यह स्पष्ट है क्योंकि साधारण उपासक और भक्त जनता की अपने पूज्य पुरुष के प्रति जो श्रद्धा होती है वह बुद्धिशोधित या तर्क परिमार्जित नहीं होती ऐसी जनता के ख्याल से शास्त्र में लिखा हुआ प्रत्येक अक्षर त्रैकालिक सत्यस्वरूप होता है। इसके अतिरिक्त जब उस शास्त्र को त्यागी गुरु या विद्वान् पंडित बांचता है तब तो इस भोली जनता के मन पर शास्त्र के अक्षरार्थ की यथाथता की छाप वज्रलेप सरीखी हो जाती है। ऐसी अवस्था में शास्त्रीय वर्णनों की परीक्षा करने का और परिक्षापूर्वक उसे समझाने का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है और विशिष्ट वर्ग के लोगों के गले उतारने में भी बहुत समय लगता है और वह बहुतसा बलिदान मांगता है। ऐसी स्थिति सिर्फ जैन-सम्प्रदाय की ही नहीं किन्तु संसारमें जितने भी सम्प्रदाय हैं सबकी यही दशा है और इस बात का समर्थक इतिहास हमारे सामने मौजूद है।

यह युग विज्ञानयुग है। इसमें दैवी चमत्कार या असंगत कल्पनाएँ टिक नहीं सकतीं। अतएव इस समय के दृष्टिकोण से प्राचीन महापुरुषों के चमत्कार प्रधान जीवन-चरितों को पढ़ें तो उनमें बहुतसी असंबद्धता और काल्पनिकता नजर आवे, यह स्वाभाविक है। परन्तु जिस युगमें ये वृत्तान्त लिखे गए जिन लोगों के लिये लिखे गये, और जिस उद्देश्य से लिखे गए, उस युग में प्रवेश करके लेखक और पाठक के मानसकी जाँच करके, उसके लिखने के उद्देश्य का विचार करके, गम्भीरतापूर्वक देखें तो हमें अवश्य मालूम होगा कि इस प्राचीन या मध्ययुग में महान पुरुषों के जीवन वृत्तान्त जिस ढंग से चित्रित किये गये हैं वही ढंग उस समय उपयोगी था। आदर्श चाहे जितना उच्च हो, उसे किसी असाधारण व्यक्ति ने बुद्धि शुद्ध करके भले ही जीवनगम्य कर लिया हो, फिर भी साधारण लोग इस अति सूक्ष्म और अति उच्च आदर्श को बुद्धिगम्य नहीं कर सकते। तो भी उस आदर्श की ओर सबकी भक्ति होती है, सब उसे चाहते हैं, पूजते हैं।

ऐसी अवस्था होनेके कारण लोगोंकी इस आदर्श सम्बन्धी भक्ति और धर्म भावना को जागृत रखने के लिए स्थूल मार्ग स्वीकार करना पड़ता है। जनता की मनोवृत्ति के अनुसार ही कल्पना करके उसके समक्ष यह आदर्श रखना पड़ता है। जनता का मन यदि स्थूल होने के कारण चमत्कारप्रिय और देवदानवों के प्रताप की वासना वाला हुआ तो उसके सामने सूक्ष्म और शुद्धतर आदर्श को भी चमत्कार एवं दैवी बाना पहनाकर रखा जाता है। तभी सर्वसाधारण लोग उसे सुनते हैं और तभी वह उनके गले उतरता है। यही वजह है, कि उस युगमें धर्मभावना को जागृत रखने के लिए उस समय के शास्त्रकारों ने मुख्य रूपसे चमत्कारों और अद्भुतताओं के वर्णन का आश्रय लिया है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि जब अपने पड़ौस में प्रचलित अन्य सम्प्रदायों में देवताई बातों और चमत्कारी प्रसंगों का बाजार गर्म हो तब अपने सम्प्रदाय के अनुयायियों को उस ओर जानेसे रोकने

का एक ही मार्ग होता है और वह यही कि अपने सम्प्रदाय को टिकाए रखने के लिए वह भी विरोधी और पड़ौसी सम्प्रदाय में प्रचलित आकर्षक बातों के समान या उससे अधिक अच्छी बातें लिख कर जनता के सामने उपस्थित करे। इस प्रकार प्राचीन और मध्य युगमें धर्म भावना को जागृत रखने तथा सम्प्रदाय को मजबूत करने के लिए भी मुख्य रूपसे मंत्र-तंत्र, जड़ी बूटी, दैवी चमत्कार आदि असंगत प्रतीत होनेवाले साधनों का उपयोग होता था।

गांधीजी उपवास या अनशन करते हैं ससार के बड़ेसे बड़े साम्राज्य के सूत्रधार व्याकुल हो उठते हैं। गांधीजीको जेलसे मुक्त करते हैं; फिर पकड़ लेते हैं और दुबारा उपवास प्रारम्भ होने पर फिर छोड़ देते हैं। देशभर में जहां जहां गांधीजी जाते हैं वहां वहां जन-समुद्र में ज्वारसा उमड़ आता है। कोई उनका अत्यन्त विरोधी भी जब उनके सामने जाता है तो एक बार तो मनोमुग्ध हो गर्वगलित हो ही जाता है। वह एक वास्तविक बात है, स्वाभाविक है और मनुष्य बुद्धिगम्य है। किन्तु यदि इसी बात को कोई दैवी घटना के रूप में वर्णन करे तो न तो कोई बुद्धिमान् मनुष्य उसे सुनने या स्वीकार करने को तैयार होगा और न उसका असली मूल्य जो अभी आंका जाता है, कायम रह सकता है। यह युगबल अर्थात् वैज्ञानिक युगका प्रभाव है। यह बल प्राचीन या मध्ययुग में नहीं था अतएव उस समय इसी प्रकार की स्वाभाविक घटना को जबतक दैवी या चमत्कारिक लिबास न पहनाया जाता तबतक लोगोंमें उसका प्रचार न हो पाता था। यह दोनों युगोंका अन्तर है, इसे समझ कर ही हमें प्राचीन और मध्य युगकी बातों का तथा जीवन-वृत्तांतों का विचार करना चाहिए।

अब अन्त में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शास्त्र में उल्लिखित चमत्कार पूर्ण और दैवी घटनाओं को आजकल किस अर्थ में समझना और पढ़ना चाहिए? इसका उत्तर स्पष्ट है। वह यह कि किसी भी महान् पुरुष के जीवन में 'शुद्ध बुद्धियुक्त पुरुषार्थ' ही सच्चा और मानने योग्य तत्त्व होता है। इस तत्त्वको जनता के समक्ष उपस्थित करने के लिए शास्त्रकार विविध कल्पनाओं की भी योजना करते हैं। धर्मवीर महावीर हों या कर्मवीर कृष्ण हों किन्तु इन दोनों के जीवन में से सीखने योग्य तत्त्व तो एक ही होता है। धर्मवीर महावीर के जीवन में यह पुरुषार्थ अन्तर्मुख होकर आत्मशोधन का मार्ग ग्रहण करता है और आत्मशोधन के समय आनेवाले आन्तरिक या बाह्य-प्राकृतिक-समस्त उपसर्गों को यह महान् पुरुष अपने आत्मबल और दृढ़ निश्चय द्वारा जीत लेते हैं और अपने ध्येय में आगे बढ़ते हैं। यह विजय कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता, अतः इस विजयको दैवी विजय कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। कर्मवीर कृष्ण के जीवन में यह पुरुषार्थ बहिर्मुख होकर लोक संग्रह और सामाजिक नियमन का रास्ता लेता है। इस ध्येयको सफल बनाने में शत्रुओं या विरोधियों की ओर से जो अड़चन डाली जाती हैं उन सबको कर्मवीर कृष्ण अपने धैर्य, बल तथा चतुराई से हटाकर अपना कार्य सिद्ध करते हैं। यह लौकिक सिद्धि साधारण जनता के लिये अलौकिक या दैवी मानी जाय तो कुछ असम्भव नहीं। इस प्रकार हम इन दोनों महान् पुरुषों के जीवन को, यदि कलई दूर करके पढ़ें तो उलटी अधिक स्वाभाविकता और संगतता नज़र आती है और उनका व्यक्तित्व अधिकतर माननीय, विशेषतया इस युग में, बन जाता है।

उपसंहार

कर्मवीर कृष्ण के सम्प्रदाय के भक्तों को धर्मवीर महावीर के आदर्श की विशेषताएं चाहे जितनी दलीलों से समझाई जांय, किन्तु वे शायद ही पूरी तरह उन्हें समझ सकेंगे। इसी प्रकार धर्मवीर महावीर के संप्रदाय के अनुयायी भी शायद ही कर्मवीर कृष्ण के जीवनादर्श की खूबियाँ समझ सकें। जब हम इस साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को देखते हैं तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या वास्तव में धर्म और कर्म के आदर्शों के बीच ऐसा कोई विरोध है जिससे एक आदर्श के अनुयायी दूसरे आदर्श को एकदम अग्राह्य कर देते हैं या उन्हें वह अग्राह्य प्रतीत होता है ?

विचार करने से मालूम होता है कि शुद्धधर्म और शुद्धकर्म ये दोनों एक ही आचरणगत सत्य के जुदा-जुदा बाजू हैं। इनमें भेद है किन्तु विरोध नहीं है।

सांसारिक प्रवृत्तियों को त्यागना और भोगवासनाओं से चित्त को निवृत्त करना, तथा इसी निवृत्ति के द्वारा लोक-कल्याण के लिये प्रयत्न करना अर्थात् जीवन धारण के लिये आवश्यक प्रवृत्तियों की व्यवस्था का भार भी लोकों पर ही छोड़ कर सिर्फ उन प्रवृत्तियों में के क्लेश-कलहकारक असंयम रूप विष को दूर करना, जनता के सामने अपने तमाम जीवन के द्वारा पदार्थ पाठ उपस्थित करना, यही शुद्धधर्म है।

और संसार-सम्बन्धी तमाम प्रवृत्तियों में रहते हुए भी उनमें निष्कामता या निर्लेपताका अभ्यास करके, उन प्रवृत्तियों के सामञ्जस्य द्वारा जनता को उचित मार्ग पर ले जाने का प्रयास करना अर्थात् जीवन के लिये अति आवश्यक प्रवृत्तियों में पग-पग पर आनेवाली अड़चनों का निवारण करने के लिए, जनता के समक्ष अपने समग्र जीवन द्वारा लौकिक प्रवृत्तियों का भी निर्विष रूप से पदार्थपाठ उपस्थित करना, यह शुद्धकर्म है।

यहाँ लोककल्याण की वृत्ति यह एक सत्य है। उसे सिद्ध करने के लिये जो दो मार्ग हैं वे एक ही सत्य के धर्म और कर्मरूप दो बाजू हैं। सच्चे धर्म में सिर्फ निवृत्ति ही नहीं किन्तु प्रवृत्ति भी होती है। सच्चे कर्म में केवल प्रवृत्ति ही नहीं मगर निवृत्ति भी होती है। दोनों में दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं, फिर भी गौणता और मुख्यता का तथा प्रकृति भेद का अन्तर है। अतः इन दोनों तरीकों से स्व तथा परकल्याणरूप अखंड सत्य को साधा जा सकता है। ऐसा होने पर भी धर्म और कर्म के नाम से अलग-अलग सम्प्रदायों की स्थापना क्यों हुई, यह एक रहस्य है। किन्तु यदि साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का विश्लेषण किया जाय तो इस अनुद्घाट्य प्रतीत होनेवाले रहस्य का उद्घाटन स्वयमेव हो जाता है।

स्थूल या साधारण लोग जब किसी आदर्श की उपासना करते हैं तो साधारणतया वे उस आदर्श के एकाध अंश को अथवा उसके ऊपरी खोखले से ही चिपट कर उसीको सम्पूर्ण आदर्श मान बैठते हैं। ऐसी मनोदशा के कारण धर्मवीर के उपासक, धर्म का अर्थ अकेली निवृत्ति समझ कर उसीकी उपासना में लग गए और अपने चित्त में प्रवृत्ति के संस्कारों का पोषण करते हुए भी प्रवृत्ति अंश को विरोधी समझ कर अपने धर्मरूप आदर्श से उसे जुदा रखने की भावना करने लगे। दूसरी ओर कर्मवीर के भक्त कर्म का अर्थ सिर्फ प्रवृत्ति करके, उसीको अपना परिपूर्ण आदर्श मान बैठे और प्रवृत्ति के साथ जुड़ने योग्य निवृत्ति के तत्त्व को एक किनारे करके प्रवृत्ति को ही कर्म समझने

लगे। इस प्रकार धर्म और कर्म दोनों के उपासक एक दूसरे से बिलकुल विपरीत आमने-सामने के किनारों पर जा बैठे। उसके पश्चात् एक दूसरे के आदर्श को अधूरा, अव्यवहार्य अथवा हानिकारक बताने लगे। परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक मानस ऐसे विरुद्ध संस्कारों से गढ़ा जा चुका है कि यह बात समझना भी अब कठिन हो गया है कि धर्म और कर्म ये दोनों एक ही सत्य के दो बाजू हैं। यही कारण है कि धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण के पन्थ में परस्पर विरोध, अन्यमनस्कता और उदासीनता दिखाई पड़ती है।

यदि विश्व में सत्य एक ही हो और उस सत्य की प्राप्ति का मार्ग एक ही न हो तो भिन्न-भिन्न मार्गों से उस सत्य के समीप किस प्रकार पहुँच सकते हैं, इस बात को समझने के लिये विरोधी और भिन्न-भिन्न दिखाई देनेवाले मार्गों का उदार और व्यापक दृष्टि से समन्वय करना प्रत्येक धर्मात्मा और प्रतिभाशाली पुरुष का आवश्यक कर्त्तव्य है। अनेकान्तवाद की उत्पत्ति वास्तव में ऐसी ही विश्वव्यापी भावना और दृष्टि से हुई है तथा उसे घटाया जा सकता है।

इस जगह एक धर्मवीर और कर्मवीर के जीवन की कुछ घटनाओं की तुलना करने के विचार में से यदि हम धर्म और कर्म के व्यापक अर्थ का विचार कर सकें तो यह चर्चा शब्दपटु पंडितों का कोरा विवाद न बन कर राष्ट्र और विश्व की एकता में उपयोगी होगी।
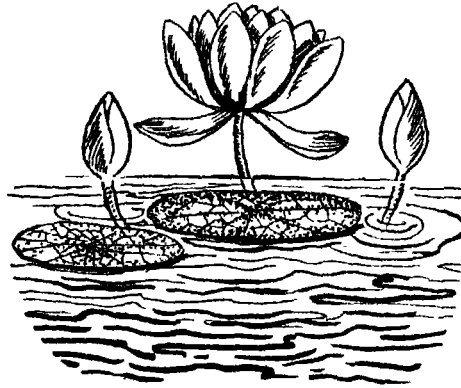
हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपथ भी जड़ से हिल गये हैं---तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या— पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ? —मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

राष्ट्रीयता

सदियों से सोई हुई—शक्ति के हाथों कुचली हुई मानवता आज उठ रही है। दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई—पैरों से ठुकरायी हुई राष्ट्रीयता का आज जागरणकाल है। आज जीवन के अभिनय में प्रत्यावर्तन का दृश्य है—वह प्रत्यावर्तन जिसमें सुदीर्घ अतीत-गौरव के सपने जगे हैं—जिसमें हृदय की पुंजीभूत वेदना भविष्य का सिंह-गर्जन कर रही है! चारों तरफ से आज राष्ट्र, राष्ट्र की तरह उठ रहा है, पर हमारा समाज···?

राष्ट्र की आवाज में आवाज मिलाना हमारे समाज ने जाना था और खूब जाना था, पर आज तो वह चुप है! राष्ट्र की निस्तब्ध चीत्कार पर भामाशाह ने अपना हृदय ही राष्ट्र के चरणों में रख दिया था! कौन नहीं जानता? और हम भी उसी पवित्र आत्मा के वंशज हैं···? क्या कोई इसका विश्वास कर लेगा—हमारी आज की एकान्तिकता पर? राष्ट्र से अलग हमारा व्यापारजीवी और धर्मजीवी होना भी किस काम का? राष्ट्र की विपत्ति क्या हमारी विपत्ति नहीं है? राष्ट्र की एक ही ठोकर में क्या हम भी तहस-नहस नहीं हो जायंगे? आपने क्या कभी भी इन प्रश्नों पर विचार किया है? राष्ट्र के प्रति आपने अपना क्या कर्त्तव्य समझा है? राष्ट्र-सेवा का कौनसा क्षेत्र आपने चुना है?

व्यक्ति या समाज कोई भी हो, उसकी सच्ची रक्षा तो राष्ट्र की रक्षा पर अवलंबित है—और इसीलिये इन प्रश्नों का इतना महत्त्व!

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता-

गत ता० ३०-१२-३६ को श्री ओसवाल नवयुवक समिति का वार्षिक अधिवेशन हुआ था उस समय समिति के मंत्री श्री श्रीचंदजी रामपुरिया बी० कॉम बी० एल० ने गत वर्ष की जो रिपोर्ट सुनाई थी वह यहाँ दी जाती है।

दसवें वर्ष की रिपोर्ट

'ओसवाल नवयुवक समिति' का आज दसवां वर्ष समाप्त होने चला है। इस दसवें वर्ष की अवधि में जो-जो कार्य किए गये हैं उनका सिंहावलोकन करना आज के अधिवेशन का खास विषय हैं। ऐसा करना उचित भी है। अपने गत कामों का हिसाब लगा कर ही आगे की दिशा को ठीक किया जा सकता है तथा अपनी कमियों को दूर कर अधिक बल और उत्साह से आगे बढ़ा जा सकता है। इस वर्ष समिति द्वारा जो यत्किंचित कार्य हुआ है उसी का विवरण इस रिपोर्ट में दिया जाता है। समिति ने वर्षारम्भ में जो कार्यक्रम बनाया था यद्यपि वह सम्पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा सका तथापि इस वर्ष कार्यक्रम के सबसे अधिक महत्व पूर्ण और उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य को अवश्य आरम्भ किया गया है—और इस लिए यह रिपोर्ट लिखते समय कुछ संतोष अवश्य है।

समिति के द्वारा किए गये कार्यों का विवरण लिखते समय हमें महान खेद है कि हमारे बीच में आज श्रीयुत पूर्णचन्द्रजी नाहर और श्री० रामलालजी दूगड़ नहीं है। स्वर्गीय नाहरजी वृद्ध होते हुए भी शक्ति और क्षमता में युवकों से भी आगे बढ़े हुये थे। समिति और ओसवाल नवयुवक के प्रति आपकी बड़ी सहानुभूति थी और जैनसाहित्य के आप माने हुए विद्वान थे और श्रीयुत रामलालजी दूगड़ ने पत्र की उन्नति में जो सहायता दी वह बराबर हमारी स्मृतियों में ताजी रहेगी।

समिति ने नवम वर्ष की समाप्ति के कुछ दिन बाद ही विराट व्यायाम प्रदर्शन की योजना की थी। यह प्रदर्शन ता० २६ दिसम्बर, ३५ को सध्या के ७॥ बजे से स्थानीय यूनीवर्सिटी इन्स्टीट्यूट हाल में हमारे श्रद्धेय श्रीयुक्त बहादुरसिंहजी सिंघी के सभापतित्व में हुआ था। इस अवसर पर स्थानीय समाज के प्रायः सभी प्रतिष्ठित सज्जनों ने उपस्थित हो इस प्रदर्शन की सफलता में हाथ बंटाया था। इस अवसर पर लगभग १००० स्त्री-पुरुषों की उपस्थिति थी। प्रदर्शन से समिति को अच्छी आय हुई थी तथा प्रचार की दृष्टि से भी यह कार्य बहुत सफल रहा। इस प्रदर्शन को सफल बनाने में श्रीयुत रिद्धकरणजी नाहटा तथा मोतीलालजी नाहटा का जो सहयोग प्राप्त हुआ था उसके लिये उनको हार्दिक धन्यवाद है।

समिति का नवम वार्षिकोत्सव भी इसी साल हुआ था। यह उत्सव ता० १५ मार्च, ३६ मिति चैत्र बदी ७ को दिन के दो बजे से स्थानीय दादाजी के बगीचे में हमारे सहयोगी परम उत्साही युवक श्रीयुक्त सिद्धराजजी ढढ्ढा एम० ए०, एल-एल० बी के सभापतित्व में सुसम्पन्न हुआ था। इस बार वार्षिकोत्सव के साथ-साथ प्रीति-सम्मेलन भी किया गया था। करीब ३५०।४०० सज्जनों ने उपस्थित होने की कृपा की थी। इस प्रीति सम्मेलन में लोगों ने जिस प्रसन्नता और प्रेम से भाग लिया था उससे वर्ष में एक बार तो ऐसे आयोजन की आवश्यकता विशेष रूप से मालूम होती है। कलकत्ते में होली तथा कार्तिक के महीनों में सहलें हुआ करती हैं परन्तु सर्व ओसवालों की एकत्रित सहल आज तक नहीं हुई। ये सहलें खर्चीली होती हैं। उनमें जूठन आदि भी बेशुमार पड़ती है। यदि हम इन अलग २ सहलों को एक साथ कर इस हल्के रूप में करें तो यह प्रीति-सम्मेलन समाज संगठन और भ्रातृभाव की वृद्धि की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हो।

ता० ३० तथा ३१ दिसम्बर १९३५ को कलकत्ते में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन हुआ था। उस समय समिति की ओर से भी ११ स्वयं सेवक भेजे गये थे।

कलकत्ता कारपोरेशन का पञ्चम साधारण चुनाव ता० २६ मार्च १९३६ को था। इस बार समिति का विचार था कि अपनी समाज में से भी किसीको चुनाव के लिए खड़ा किया जाय परन्तु कई कारणों से उस दिशा में प्रयत्न नहीं किया जा सका, फिर भी समिति ने इतना प्रबन्ध अवश्य किया कि जिससे समाज अपने मत उन्हीं उम्मीदवारों को दे सके जो सर्व दृष्टि से योग्य हों। इसी दृष्टि से ता० १४-३-३६ को सर्व ओसवालों की एक सार्वजनिक सभा भी बुलायी गयी थी तथा एक हैण्डबिल निकाल कर उन उम्मीदवारों के नाम भी सामने रक्खे गये थे जिनसे सच्ची सेवाओं की आशा की जा सकती थी। यह एक दुःख की बात है कि हमारा समाज नागरिक अधिकारों का उपभोग करना और उनसे लाभ उठाना जरा भी नहीं जानता। शिक्षित युवक भी इस दिशा में उपेक्षा करते आए हैं। हमारे अन्य जातीय मारवाड़ी भाई इस दिशा में बहुत कुछ अग्रसर हो चुके हैं और अब ओसवाल युवकों को भी इस दिशा में अग्रसर होना चाहिये। यह हर्ष की बात है कि इस वर्ष कारपोरेशन के चुनाव के लिये वार्ड नं० १४ से श्रीयुक्त विजयसिंहजी नाहर बी० ए० खड़े हुये थे और आपको सफलता भी मिली।

इस वर्ष का सबसे महत्वपूर्ण और गुरुत्वपूर्ण कार्य है 'ओसवाल नवयुवक' मासिक पत्र को पुनर्जीवित करना। यह पत्र पहिले भी ६ वर्षों तक समिति द्वारा प्रकाशित हुआ था। बाद में कई कारणों से इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। इस वर्ष इसे मई मास *से फिर से प्रकाशित करना शुरू किया गया है।* पत्र को पुनर्जीवित करने में हमारे सहयोगी इंडियन चैम्बर ऑफ कामर्स के मन्त्री श्रीयुक्त सिद्धराजजी ढड्ढा एम० ए० एल-एल० बी का प्रमुख हाथ रहा है। और आरम्भ के दो तीन महीनों में तो आपने पत्र का सम्पादन कार्य भी किया था और अब भी उसके लिये आप काफी समय और शक्ति लगाते हैं। पत्र की ग्राहक संख्या अभी उतनी नहीं है—जितनी कि हमारे समाज में होनी चाहिये। पत्र की प्रमुख आय ग्राहक और विज्ञापन से होती है। ग्राहकों की हालत तो उपरोक्त है ही। विज्ञापन की आय भी बहुत कम है।

प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह पत्र की ग्राहक संख्या की वृद्धि की चेष्टा करे। यदि एक-एक सदस्य १०-१० ग्राहक बनाये तो भी समिति के ५० सदस्य ५०० ग्राहक बना सकते हैं। विज्ञापन के लिए सदस्यों को प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। हमारे ही सहयोगी "मारवाड़ी" में करीब २००।२५० रुपये के विज्ञापन आते हैं और वह उस संस्था के सदस्यों का ही प्रयत्न है जिस संस्था का वह पत्र है। समिति के सदस्य भी प्रयत्न करें तो अपनी जाति से ही कुछ विज्ञापन प्राप्त कर सकें।

पत्र की ग्राहक संख्या वृद्धि के लिये बाहर प्रचारक भेजने की आवश्यकता है। ग्राहक बनाने के लिये सी० पी०, राजपूताना, मद्रास, बम्बई, दक्षिण आदि सभी प्रान्तों में काफी क्षेत्र है। प्रयत्न करने पर पत्र की ग्राहक संख्या ३००० तक हो सकती है इसमें सन्देह नहीं है। केवल सतत् प्रयत्न और लगन की आवश्यकता है।

पत्र के कोष की परिस्थिति ने एक शोचनीय अवस्था उत्पन्न कर दी है। इस दिशा में समाज से पूरा उत्तरदायित्वपूर्ण सहयोग नहीं मिला। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी काम को उठाकर अन्ततक उसे पार लगा देनेका धैर्य और लगन हम-लोगों में नहीं है। कठिनाइयों और बाधाओं से घबड़ा कर एक कार्य को मझधार में छोड़ देना युवकों के लिए कभी भी शोभा की बात नहीं हो सकेगी। इस से तो उनके नये कार्य करने की शक्ति पर ही कुठाराघात होगा। इस समय हमारा कर्तव्य तो यह है कि पत्र की आर्थिक अवस्था को सुधारने का प्रयत्न करें। उसके ऐसे उपाय निकालें जो हम अपनी स्थिति और समय में सुगमता से कर सकें। पत्र की ग्राहक संख्या वृद्धि के लिए तो तुरन्त ही आदमी भेजना चाहिए। विज्ञापन के लिए इस लाइन के एजेन्ट के साथ प्रबन्ध करना चाहिए और इसका भार किसी एक या दो सदस्यों को अपने ऊपर ले लेना चाहिए। इस प्रकार यदि हम दो ही उपायों से काम लें तो पत्र को विशेष घाटा न रहे तथा सदस्यों को भी अपनी विशेष शक्ति और समय इसमें जाने की शिकायत न रहे।

नए विधान के अनुसार संगठित होनेवाली बंगाल लेजिस्लेटिव एसेम्बली में वोट देनेके अधिकारी व्यक्तियों की सरकार के द्वारा आरम्भिक सूची प्रकाशित की गई थी। मताधिकार के क्या लाभ हैं, यह समझाने के लिए तथा ऊपरोक्त सूची में नाम न हो तो उसमें नाम लिखाने के लिए उत्साहित करने के लिए ता० १ अगस्त १९३६ को श्रीयुत डालिमचन्दजी सेठिया, बार-एट-ला के सभापतित्व में समिति की ओर से समस्त ओसवालों की आम सभा बुलायी गयी थी। पर उपस्थिति संतोष-जनक न थी।

जुलाई महीने के अन्तिम सप्ताह से सरदारशहर (बीकानेर) में हैजे की महामारी फैल गई थी। इस रोग के प्रकोप ने इतना भयंकर रूप धारण किया कि लोग घरबार छोड़ कर भागने लगे। श्रीयुक्त रामलालजी दूगड़ जैसे कर्मशील युवक इसी बीमारी से हमारे बीच से उठ गये। इस कर्त्तव्यमय अवसर पर समिति ने अपनी ओर से वहाँ पर सेवा कार्य करने का निश्चय किया। कार्यकारिणी का एक जरूरी अधिवेशन बुलाया गया और इस कार्य को तत्परता से उठाने का निश्चय हुआ।

ता० ११-८-३६ को ओसवालों की आम सभा भी समिति की ओर से बुलायी गयी जिसमें करीब ७० सज्जन उपस्थित हुए। इस मीटिंग में काफी जनों ने स्वयंसेवक रूप से कार्य करने का वचन दिया और

समिति की ओर से पहला जत्था ता० १३ को रवाना होने को था कि इसी बीच में वर्षा हो जाने से रोग के शान्त होने के समाचार आ गये। समिति की ओर से तारादि देकर जब इस बात का विश्वास कर लिया गया कि तत्क्षण सेवा कार्य की आवश्यकता नहीं रही है तो स्वयंसेवक नहीं भेजे गये। इस अवसर पर माननीय बीकानेर नरेश ने सरदार शहर में सेवा कार्य करने की अनुमति प्रदान कर जिस महान्-हृदयता का परिचय दिया था, उसके लिये यह समिति आपके प्रति चिर कृतज्ञ रहेगी। सरदारशहर में इस सेवा कार्य के करने के लिये श्रीयुक्त डाक्टर जेठमलजी भन्साली ने जिस उत्साह से इस कार्य का सारा भार अपने ऊपर लिया था तथा सरदारशहर में प्रथम जत्थे में जाना स्वीकार किया था, उसके लिये आपकी जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। आप के इस कार्य के लिये हम कृतज्ञ हैं।

फाल्गुन सुदी १५ रविवार ता० ८-३-३६ को स्थानीय मारवाड़ी संस्थाओं की ओर से एक संयुक्त प्रीति सम्मेलन हुआ था। समिति ने भी संयोजकों में अपना नाम दिया था। प्रीति सम्मेलन की सूचना सर्व सदस्यों को तथा आम जनता को यथा समय दे दी गयी थी परन्तु प्रीति सम्मेलन में बहुत ही कम सदस्य उपस्थित हुए। ऐसे अवसरों पर सदस्यों को अधिक संख्या में उपस्थित होना चाहिये जिससे पारस्परिक मेल जोल से संगठन और प्रेम-भाव की वृद्धि हो।

गत अक्टूबर महीने में कलकत्ते में जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् और हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन साहित्य के प्रोफेसर पं० सुखलालजी सिंघवी का आगमन हुआ था। उस समय समिति की ओर से आपके भाषण का आयोजन किया गया था। आपने "जैन साहित्य और उसका उद्धार" इस विषय पर एक मार्मिक भाषण दिया था।

इन कार्यों के अतिरिक्त समिति की व्यायामशाला का कार्य भी सन्तोषजनक सफलता के साथ होता रहा। आजकल भी करीब ३५।४० युवक व्यायाम करने के लिए आते हैं।

इस वर्ष समिति की साधारण सभा के ७ अधिवेशन हुए तथा का० का० सभा के १४ अधिवेशन तथा जरूरी २ अधिवेशन हुए। समिति के सदस्यों की संख्या ५१ है जिसमें ४ सदस्य नये हुए हैं। यह संख्या बहुत ही कम है। सदस्यों को चाहिए कि वे सदस्यों की संख्या बढ़ावें। इस संस्था को जोरदार बनाने के लिए कम से कम सदस्यों की संख्या २०० तो हो ही जानी चाहिए।

ऊपर में समिति के कार्यों का संक्षेप में विवरण दिया है। अब सरसरी नजर से समाज की वर्त्तमान अवस्था का भी दिग्दर्शन कराना है। हमारा समाज व्यापार-जीवी है। हमारे पूर्वज व्यापार की खोज में ही अपने प्रान्त को छोड़ कर यहाँ आए थे और यहाँ पर आकर प्रभूत धनोपार्जन किया था। उस समय Competition के सम्पूर्ण अभाव के कारण तथा अन्यान्य कई कारणों से धनोपार्जन करना उतना कठिन न था पर अब समय ने पलटा खाया है। हमारे पुराने काम—दूकान्दारी चलानी, पाट के काम अब नफे के नहीं परन्तु घाटे के हो गये है। इनमें सालोसाल भारी नुकसान हो रहा है। आसामियाँ पर आसामियाँ गारत हो रही हैं। हमारे संयुक्त परिवार पद्धति और साझेदारी प्रणाली से कारबार करने से तो परिस्थिति और भी भयानक हो उठी है। इस समय इस बात की आवश्यकता है कि

नये-नये व्यवसाय और उद्योग-धन्धों की ओर समाज अग्रसर हो और अपनी वर्त्तमान व्यवसाय पद्धति को बदल कर लिमिटेड लाइबिलीटी या समवाय पद्धति से काम करना शुरू करें। यह हर्ष की बात है कि हमारे अन्य मारवाड़ी भाई जैसे अग्रवाल इस दिशा में बहुत अधिक आगे बढ़े हैं। उन्होंने बहुत से नये-नये व्यवसाय और उद्योगों में हाथ डाला है और नवीन प्रणाली से उन्हें सफलतापूर्वक चला रहे हैं। भारतवर्ष में लगभग १४० मिलें चीनी की हैं जिनमें करीब ५० मिलें अग्रवाल भाइयों की है। यह कम गौरव की बात नहीं है। इसी प्रकार अग्रवाल भाइयों ने जूट मिल, काटन मिल, स्टील के कारखाने, बिजली के काम के कारखाने, बीमा कम्पनियाँ, आटा, तेल, रबर, होजियरी, बरफ आदि के कारखाने भी खोले हैं। ओसवालों को भी नये नये कामों में हाथ डाल कर आर्थिक दृष्टि से अपने समाज के पतन को बचाने की चेष्टा करनी चाहिए। हमारे व्यापारिक जीवन की नींव को हिलाने वाली एक और भी चीज है और वह है फाटकेबाजी इतने दिनों तक इसका प्रचार कलकत्ते बम्बई आदि बाहर के शहरों में ही था परन्तु अब वह उसकी सीमा पार कर हमारे राजस्थान के गांवों तक पहुँच चुका है और नित्य इसके द्वारा व्यापारिक अनाचार फैल रहा है। मारवाड़ी समाज के कई कच्छे-अच्छे फार्म फाटकेबाजी के कारण ही फंदे में बैठ गये। एक नहीं सैकड़ों ऐसे मारवाड़ी फार्मों का नामोल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने अपने धन को ही नहीं परन्तु अपनी इज्जत तक को इस फाटकेबाजी के कारण धक्का पहुंचाया है। समाज के अग्रगण्य नेताओं का ध्यान हम इस ओर खींचते हैं और उनसे निवेदन करते हैं कि वे इस नाशकारी प्रथा को जड़मूल से उखाड़ने का प्रयत्न करें और चेष्टा कर इस कार्य को कानून बनवा कर रोकें।

समाज में जो एक और चीज की बहुत अधिक कमी है, वह है शिक्षा। बालिकाओं की शिक्षा की बात दूर रही, लड़कों तक की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। दूर की नहीं कलकत्ते की ही बात देखिए। लड़कों की शिक्षा का कहीं भी समुचित प्रबन्ध नहीं। दो चार विद्यालय हैं भी पर उनमें भी जितना और जैसा चाहिए उतना और वैसा शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। इस दिशा में भी अन्य समाजों ने अच्छी उन्नति की है। समाज के लड़के सुशिक्षा पाकर योग्य बन सकें, इसका प्रबन्ध सबसे पहिले करने की आवश्यकता है। स्थानीय विद्यालयों के संरक्षकों से हमारी अपील है कि वे अपने २ विद्यालयों को सुव्यवस्थित करें और उनमें योग्य शिक्षकों द्वारा लड़कों को सुशिक्षा प्राप्त हो सके, इसका रास्ता निकालें। समिति के सदस्यों से भी निवेदन है कि वे स्थानीय स्कूलों में शिक्षा की उन्नति हो, इसकी चेष्टा करें और उनकी व्यवस्था के कार्य में भाग लें।

इसी तरह बहुत-सी कुप्रथाएं हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये, परन्तु खेद है कि हमारे समाज ने अभी तक अपने जीवन मरण के प्रश्नों पर विचार करना शुरू नहीं किया है। हमारी फिजूल खर्ची ज्यों की त्यों बनी हुई है। इस आर्थिक दुरवस्था के समय भी हम विवाह शादियों में अब भी हजारों रुपये खर्च किया करते हैं। अन्य समाजों के धनिकों ने अपने अपने समाज में किफायतसारी और सादगी के उदाहरण रखे हैं परन्तु हमारी समाज के धनियों की बात छोड़िये क्योंकि वे खर्च करें तो कर भी सकते हैं क्योंकि उनमें करने की सामर्थ्य है परन्तु मध्यश्रेणी के लोगों में भी आये मौके पर अपनी शक्ति से कई गुणा

अधिक व्यय करने की आदत अभी तक ज्यों की त्यों है। यह बात अवश्य ही परिताप की है क्योंकि इससे जीवन की शांति का नाश होता जा रहा है। अब इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने रहन सहन और व्यवहार को सादा और कमखर्चीला बनावें।

समिति के कार्यों का विवरण और समाज की वर्तमान अवस्था के सम्बन्ध में अपने थोड़े से विचार ऊपर लिखे हैं। रिपोर्ट कुछ आशा से लम्बी हो गयी और मैं नहीं चाहता कि आप के समय को और अधिक लूं, इसलिए इसे यहीं—केवल उन सहयोगी बन्धुओं को धन्य-वाद देकर समाप्त करता हूं कि जिनके सहयोग के बिना जो यत्किंचित सेवाएँ की जा सकी हैं, वे भी नहीं बन पड़तीं। वैसे तो समिति के सभी सदस्यों ने प्रत्येक कार्य में पूर्ण सहयोग और समय दिया है और इसलिए मैं उनका आभारी हूँ। फिर भी श्रीयुक्त सिद्ध-राजजी ढड्ढा, माणिकचन्दजी सेठिया तथा गोपीचन्दजी चोपड़ा ने समिति की जो असाधारण सेवाएँ की है उनके लिए मैं विशेष कृतज्ञ हूँ और उनको इसलिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

श्रीचंद रामपुरिया

मन्त्री

इस वर्षके समिति के पदाधिकारी एवं का० का० सभा के सदस्य

सभापति

श्रीयुत हणूतमल जी सुराणा

उप-सभापति

श्रीयुत सिद्धराज जी ढड्ढा, एम० ए०, एल-एल० बी०

मंत्री

श्रीयुत भंवरलाल जी पींचा, बी० एल०

उपमंत्री

श्रीयुत सागरमल जी सेठिया, बी० ए०

कोषाध्यक्ष (समिति)

श्री घेवरचंद जी बोथरा

व्यायामशाला (व्यवस्थापक)

श्री नेमीचन्द जी मनौत

सहकारी (व्यवस्थापक)

श्री मोतीलाल जी नाहटा, बी० ए०

सम्पादक 'ओसवाल नवयुवक'

(१) श्री विजयसिंह जी नाहर बी० ए०

(२) श्री भँवरमल जी सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्रीयुत घेवरचन्दजी बोथरा

पत्र-व्यवस्थापक

श्रीयुत श्रीचन्द जी रामपुरिया बी० कॉम, बी० एल०

कोषाध्यक्ष (पत्र)

श्रीयुत माणिकचन्द जी सेठिया

हिसाब-परीक्षक

श्रीयुत मोहनलाल जी बाँठिया बी० कॉम०

सदस्य

(१) सभापति (२) उप-सभापति

(३) मंत्री (४) उप-मंत्री

(५) कोषाध्यक्ष (समिति) (६)-(७) सम्पादक

(८) पत्र-व्यवस्थापक (९) व्यायामशाला-व्यवस्थापक

(१०) श्रीयुत छोगमलजी चोपड़ा, बी० ए०, बी० एल०

(११) „ माणिकचन्द जी सेठिया

(१२) „ गोपीचन्दजी चोपड़ा, बी० ए० बी० एल०

(१३) „ नरेन्द्रसिंह जी सिंघी, बी० ए० बी० एल०

(१४) „ जेठमल जी भंसाली एम० बी०
(१५) „ डालिमचन्द जी सेठिया, बार-एट-ला
(१६) „ मोहनलालजी बगाणी
(१७) „ मोतीलालजी नाहटा बी० ए०
(१८) „ बेगराज जी सिंघी
(१९) „ मन्नालालजी बैद
(२०) „ महालचन्दजी बोथरा
(२१) „ धनराजजी सिंघी, बी० ए०

श्री मारवाड़ी जैन मण्डल, मद्रास

[गत अंक में हम हिज मास्टर्स वायस कम्पनी द्वारा निकाले हुए 'तिरून्यान-संबन्दर' नामक चार ग्रामोफोन रिकार्डों के विरुद्ध श्री मारवाड़ी जैन मण्डल की कारवाई प्रकाशित कर चुके हैं। इन चारों चूड़ियों में जो प्रहसन उतारा गया है, उसके विषय का सारांश देकर उक्त मंडल के मन्त्रीजी ने एक नम्र अपील प्रकाशित करने को भेजी है, वह हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं—चूड़ियों के सारांश से पाठकों को मालूम होगा कि यह सब केवल जैन तीर्थकरों के जीवन और धर्म-सिद्धान्तों पर व्याघात करने को किया गया है - इसमें इतिहास और शास्त्र दोनों की हिंसा है। इसका हमें पूरा विरोध करना चाहिये। आशा है पाठक श्री मारवाड़ी जैन मंडल, मद्रास, जो इस विषय में बड़ी तत्परता के साथ कार्य कर रहा है - के मन्त्रीजीकी अपील का समुचित सम्मान करेंगे। - संपादक]

समस्त जैन समाज से नम्र अपील

भारतवर्ष के समस्त जैन संघ की सेवा में नम्र प्रार्थना है कि "दी हिज मास्टर्स वायस" ग्रामोफोन कम्पनीने तामिल भाषा की चार रेकार्ड (चूड़ियों) पर एक नाटक (प्रहसन) उतारा है। इस नाटक में जैन धर्म के तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ और महावीर को बहुत दुष्ट बताये हैं और जैन धर्म को तथा जैन अनुयायियों को पागल बताये हैं। उसका सारांश यह है—

'दक्षिण भारत में पांड्या नाम का एक जैन राजा था जो महावीर और पार्श्व का पूर्ण भक्त था; किन्तु उसकी रानी मंगयरकरशि तथा प्रधान कुलचरिया ये दोनों पक्के शिव भक्त थे। इसलिये रानी और प्रधान दोनों ही राजा को झूठे जैन धर्म को छोड़ कर सच्चे शिव-धर्म में वापस लाने की भरसक कोशिश करते थे; किन्तु उनका राजा के पास कोई वस नहीं चलता था। आखिर रानी और प्रधान ने सोचकर शिवधर्म के महान महात्मा साधु तिरून्यान संबन्दर" को राजा को उपदेश देने के लिये राजधानी में बुलाया। जब महावीर और पार्श्व को यह बात मालूम हुई कि तिरून्यान सबन्दर आया है तो वे बहुत घबराये क्यों कि तिरून्यान संबन्दर सच्चे धर्म का उपदेश देते थे। वास्तव में उनके सामने महावीर के झूठे धर्म का ढकोसला चलना कठिन था।

इसलिये महावीर ने यह सोचा कि तिरून्यान संबन्दर राजा को मिले, उसके पहले ही किसी न किसी तरकीब से उसका नाश करा देना चाहिये। ऐसा निर्णय करके महावीर राजा से मिले और राजा को तिरून्यान संबन्दर का नाश करने के लिये बहकाया। फलत: जब आधी रात को तिरून्यान सवन्दर स्वामी अपने शिष्यों के साथ मठ में सोते थे उस समय महावीर के शिष्यों ने उस मठ में आग लगा दी। किन्तु तिरून्यान स्वामी सच्चे शिव-भक्त थे। बस, जैसे उनकी आँख खुली और आग लगने की खबर होते ही उन्होंने शिव का भजन किया। भजन करते ही आग शांत हो गई और महावीर और राजा को अपनी काली

करतूत के लिये शरमाना पड़ा। उधर तिरुन्यान स्वामी ने अग्नि को हुक्म दिया कि जाओ राजा के शरीर में प्रवेश करो। हुक्म होते ही अग्नि ने राजा के शरीर में प्रवेश किया। अब राजा दाह से पीड़ित होकर चिल्लाने लगा। बहुत से वैद्य हकीमों ने दवाइयाँ की, किन्तु किसी का वश नहीं चला। आखिर अनेक मन्त्रवादियों को बुलाये। वे भी निराश हुये। अन्त में महावीर को राजाने बुलाया और कहा कि अगर आप का धर्म सच्चा है तो मुझे आराम करो। महावीर ने बहुत से मंत्र जाप किये किन्तु निरर्थक। अन्त में राणी और प्रधान ने राजा से प्रार्थना की कि आप भगवान शिव के परम भक्त सत्गुरु तिरुन्यान की शरण में जाइये। आपको जरूर आराम हो जायगा और सच्चे धर्म की परीक्षा भी हो जायगी। जब तिरुन्यान राजा के पास आया और आते ही ॐ शिवाय नमः बोलने से राजा का दाह रोग शांत हो गया।

इस पर प्रधान ने महावीर से कहा, क्यों रे ढोंगी महावीर, देखा सच्चा धर्म कैसा है ?' उस पर महावीर ने कहा कि ऐसे एकाध उदाहरण से क्या है ? मैं एक श्लोक ताड़पत्र पर लिखूं और तिरुन्यान भी लिखे। दोनों को आग में डाल दिया जाय। जिसका श्लोक नहीं जलेगा वह सच्चा धर्म और जलेगा वह झूठा। इस पर दोनों के श्लोक आग में डाले गये। उस में महावीर का श्लोक जल गया और शिवधर्म की विजय हुई। फिर भी महावीर ने अपने झूठे धर्म की हुज्जत नहीं छोड़ी और कहा कि हम दोनों का श्लोक बहती नदी में डाला जाय। जिसका श्लोक पानी में बह जायगा वह झूठा और ऊपर जायगा वह सच्चा। यहां पर भी महावीर की हार हुई। उसपर राजा ने क्रोधित होकर जैनों को फांसी पर चढ़ा दिए और शिव धर्म की शरण ली और महावीर वहां से किसी दूसरे देश में भाग गया।'

भाइयो! इसके सिवाय भी अनेक वाहियात बात उसमें कहीगई है। जब यह बात मद्रास के श्री जैन सकल संघ को मालूम हुई तो एक सभा करके उसके विरुद्ध में कार्यवाही करने का काम मारवाड़ी जैन मंडल को दिया गया। उसके अनुसार मंडल ने रेकार्ड (चूड़ियें) जप्त कराने के लिये एक बहुत ऊंचे दरजे के वारिस्टर साहब को मुकर्रर करके आगे कार्य शुरू कर दिया है। किन्तु यह बहुत ही जरूरी है कि हर एक जगह जैन संघ अपने अपने गांव में सभा करके विरोध दर्शक प्रस्ताव जो कि इसके साथ अंग्रेजी में छपा हुआ भेजा है, पास करके निम्न स्थलों पर शीघ्र भेजें ताकि केस में सफलता प्राप्त हो। इस केस में न मालूम कितना द्रव्य खर्च होगा। उसका निर्णय आज हम नहीं कर सकते।

अगर हमने ऐसे लेखक और नाटककारों को पूरा जबाब देने में या उनको योग्य नसीहत पहुंचाने में ढिलाई की तो न मालूम भविष्य में हमारे पवित्र धर्म के लिये स्वार्थी और धर्मान्ध लोग क्या २ तकलीफें पेश करेंगे। इसलिये हर एक जैन का पवित्र फर्ज है कि वे इस काम में पूरी सहायता दें; क्यों कि मद्रास प्रान्त शैव मार्गियों में से भरा पड़ा है।

धर्मान्ध और स्वार्थी लोगों का एक प्रकार का व्यापार ही लगा है कि शांत रही हुई प्रजा में निष्कारण अशांति की ज्वाला फूंक कर दोनों पक्ष को हैरान करना ऐसे स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ की धुन में खुद अपने धर्म का खण्डन करने में नहीं शरमाते। उपरोक्त कथा में जो बातें लिखी हैं वे खुद इनके शास्त्र और पुराणों से बिल्कुल विपरीत है। क्यों कि प्रभु

महावीर के मोक्ष होने के बाद करीब १५०० वर्ष पश्चात् तिरुन्यान सवन्दर हुआ है। किन्तु जैन धर्म और उसके अनुयायियों की जाहोजलाली नहीं देख सकने से जैसे घुवड़ प्रकाश को नहीं देख सकता तब वह सूर्य को गालियें देता है इस प्रकार जैन समाज और धर्म को गालियें देने का नीच प्रयास इस कथा में किया है।

आश्चर्य की बात तो एक यह है कि इन स्वार्थियों को आंख होते हुए भी यह नहीं दीखा कि भगवान महावीर और पार्श्व में ढाई सौ वर्ष का अन्तर था। तो भी इन भाइने दोनों का एक ही समय बताकर खुद अपनी मश्करी अपने हाथों की है।

खैर, जिनको अपने स्वार्थ साधने के सिवा ओर कुछ देखने का नहीं है उनको क्या ? किन्तु अगर हम लोग ऐसे स्वार्थसाधुओं को पूरा फौलादी पंजा न दिखायें तो यह समाज के विघ्न-संतोषी लोग हमेशा इसी प्रकार धर्म की निन्दा करने में प्रवृत्त रहेंगे ओर मद्रास की जनता में यहां की जैन समाज को हलकी बताने की भरसक कोशिश करते रहेंगे। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि इस पत्र को पढ़ते ही आप शीघ्र ही वहां पर सभा करके विरोध दर्शक प्रस्ताव पास करके फौरन हमारे लिखे पते पर भेज दें।

हमें आशा है कि आप इस कार्य में एक क्षण भी समय नहीं गुमावेंगे।

आपके नम्र
मंत्री, मा० जैन मंडल
४१०, मिन्ट स्ट्रीट मद्रास

नोट कृपया विरोध दर्शक प्रस्ताव निम्न पतों पर भेजें—

1. Private Secretary to H. E. The Governor, Madras.
2. The Hon. The Law Member with Govt. of Madras.
3. The Hon. The Home Member with Govt. of Madras.
4. The Chief Secretry to the Govt. of Madras
5. The Inspector-General of Police, Madras.
6. The Commissioner of Police, Madras.
7. The Legal Adviser, Mr. E. Andry Lobo, Bar-at-Law, Armenian Street, Madras.
8. The Marwari Jain Mandal, 110 Mint Street, Madras.

श्री ओसवाल भूकम्प सहायक फंड का हिसाब

[ता० १५ जनवरी सन १९३४ का दिन भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा जिस दिन वह भयानक भूकम्प हुआ था जिसके नाम से भी आज हृदय कांपने लगता है। बिहार-भूमि में तो उस दिन अर्द्ध-प्रलय का दृश्य सा खड़ा हो गया था। उस भूकम्प से बिहार में धन जन की जो क्षति हुई थी उसकी कमी आज भी महसूस की जाती है। उस महान् विपत्ति में लोग बेघर बेहाल हो गये थे। उनकी सहायता के लिये चारों ओर से प्रयत्न किये गये थे - चारों ओर से सारे भारत की सहानुभूति बिहार भूमि की ओर आकर्षित हो गई थी। कलकत्ते की श्री ओसवाल नवयुवक समिति ने उस मौके पर भूकम्प पीड़ित जनता की जो सहायता और सेवा की, वह आशातीत थी। उस मौके पर समिति के भूकम्प सहायक फंड में लगभग रु० २८५००) एकत्रित कर सहायतार्थ खर्च किये गये थे - जिनकी आय-व्यय का पूरा हिसाब नीचे प्रकाशित किया जाता है]

मन्त्री
ओसवाल नवयुवक समिति

निम्न महानुभावों से चन्दे की रकम प्राप्त की गई थी--जिसके लिये उनको समिति की ओर से धन्यवाद दिया जाता है।

५०००) श्री जूट बेलर्स एसोसियेशन
३५००) " जैन श्वेताम्बरी रिलीफ फंड से
१००१) " छगनमलजी तोलाराम चोपड़ा
१००१) " सुराना ब्रादर्स
१०००) " काशीपुर रोड जूट ब्रोकर्स एसोसियेशन
१०००) " सोहनलालजी दूगड़
१०००) " मन्नालालजी हणूतमलजी सुराना
७०१) " सूरजमलजी आशकरनजी बेंगानी
५०१) " तेजपालजी वृद्धिचन्दजी सुराणा
५०१) " मानिकचन्दजी ताराचन्द
५००) " मुरारजी वलजी से
३००) " मारवाड़ी एसोसियेशन से
२५१) " फूलचन्दजी सरावगी
२५१) " चौथमलजी गुलाबचन्द
२५१) " श्रीचन्दजी गणेशदास
२५१) " मोतीरामजी इन्द्रचन्द नाहटा
२५१) " ताराचंदजी मेघराज
२५१) " भीखणचंदजी चोरड़िया
२५१) " चाँदमलजी चंपालाल
२५१) " शाहा विजयसिंहजी वालचंद
२५१) " दुलीचदजी थानमल
२५१) " बींजराजजी हुकमचन्द
२५१) " गिरधारीमलजी रामलालजी गोठी
२५०) " भागीरथमलजी कानोड़िया
२२५) " मु० महिमागंज की मारवाड़ी एसोसियेशन
२०१) " बींजराजजी तनसुख
२०१) " खेतसीदासजी कालूराम
२०१) " बींजराजजी जयचंदलाल
२०१) श्री जुहारमलजी उदयचंद
२०१) " मोहनलालजी सरावगी
२०१) " हरखचन्दजी डालचन्द
१५१) " बनेचंदजी मुरलीधर
१५१) " एल० कोठारी एण्ड सन्स
१५१) " खड़गसिंहजी कोठारी
१५१) " हुकमचन्दजी हुलासचंद
१५१) " शोभाचन्दजी पटावरी
१५१) " थानसिंहजी करमचंद
१५१) " हरकचन्दजी दौलतराम
१५१) " छगनमलजी पारख
१२५) " बींजराजजी भैंरुदान
१२५) " जँवरीमलजी रामलाल
१२१) " हरखचंदजी जसकरन
१०१) " इन्दराजमल सुमेरमल
१०१) " चतुरभुजजी रिधकरन
१०१) " रायचन्दजी जँवरीलाल
१०१) " रतनलालजी बाँठिया
१०१) " चांदमलजी अजैराजजी
१०१) " लालचन्दजी अमानमलजी
१०१) " चुन्नीलालजी भैंरुदान
१०१) " तिलोकचन्दजी जयमल
१०१) " रामलालजी सोहनलाल
१०१) " कोड़ामलजी नथमल
१०१) " प्रेमचन्दजी मानिकचन्द
१०१) " मन्नालालजी धनराज
१०१) " चौथमलजी दुलीचन्द
१०१) " हमीरमलजी चम्पालाल

१०१) श्री नरसिंहदासजी तनसुखदास
१०१) „ जैसराजजी बालचन्द
१०१) „ उदयचन्दजी हजारीमल
१०१) „ मुलतानचन्दजी जुहारमल
१०१) , पन्नालालजी जँवरीमल वैद
१०१) „ धनसुखदासजी मालचन्द बोथरा
१०१) „ बहादुरसिंहजी सिंघी
१०१) „ चैनमलजी पारख
१००) „ कमलसिंहजी दुधेड़िया
१००) „ गणेशलालजी कमलसिंह दुधेड़िया
७१) „ उमानमलजी कन्हैयालाल
७१) „ हनूतमलजी नथमल
६२।-)॥ „ तिलोकचन्दजी सुराणा
६५-)॥।२॥ श्री जैनश्वेतांबरी तेरापंथी वि० के छात्रोंसे
६१) „ चुन्नीलालजी भगनमल
६१) , गुलाबचन्द जयचन्दलाल
६१) „ केशरीमलजी कुंनणमल
६१) „ मुलतानचन्दजी चौथमल
६०।=)॥ „ जैन श्वेतांबरी तेरापंथी विद्यालयकी लाइब्रेरी, अध्यापक छात्र और जमादारों से
५७॥) „ महावीर जैन जिला बोर्डिङ्ग हाउस, जोधपुर
५१) „ दानमलजी बाँठिया
५१) „ आशकरणजी चौथमल
५१) „ भैंरूदानजी रामलाल
५१) „ रामलालजी जीवराज
५१) , गणेशदासजी लाभूरामजी
५१) „ हरखचन्दजी पूरनमल
५१) „ जेसराजजी शोभाचन्द
५१) „ हरखचंदजी रावतमल

५१) श्री रतनचन्द जँवरीमल
५१) , ठाकुरसीदासजी किसनचन्द
५१) „ छोगमलजी रावतमल
५१) „ छत्तमलजी मुलतानमल
५१) „ जीवनमलजी सोहनलाल
५१) „ बगतावरमलजी दुर्जनदास
५१) „ रामलालजी दुलीचन्द
५१) , मानिकचन्दजी गोकुलचन्द
५१) „ बालचन्दजी इन्दरचन्द
५१) „ सुगनमलजी गोविन्दराम
५१) „ हनूतमलजी हनुमानदास
५१) „ तनसुखदासजी हरीराम
५१) „ सागरमलजी वैद
५१) „ हीरालालजी चाँदमल
५१) „ चैनरूपजी सिंघी
५१) „ तिलोकचन्दजी पृथीराज
५०) „ रंगपुर की मारवाड़ी सभा से
५०) „ सागरमलजी वेद
४१) „ ताराचन्दजी भालचन्द
४१) „ खेमचन्दजी प्रेमचन्द
४१) „ जेसराजजी जयचन्दलाल
४१) „ मानकचन्दजी छगनमल
४१) „ नथमलजी मोहनलाल
४१) „ पन्नालालजी सुगनचन्द
३५) , चौथमलजी बालचन्द
३१) „ चुन्नीलालजी चौथमल
३१) „ श्रीचन्दजी चंपालाल
३१) „ आनंदमलजी किशनमल
३१) „ चुन्नीलालजी शुभकरन
३१) „ शोभाचन्दजी लाभूराम

३१) श्री पन्नालालजी जैनसुख
३१) „ गणेशमलजी संपालाल
३१) „ रुक्मानन्दजी सागरमल
३१) „ बुधमलजी संतोषचन्द
३१) „ लादूरामजी चम्पालाल
३१) „ बुधमलजी जैचन्दलाल
३१) „ मोतीलालजी नेमचंद
३१) „ मेघराजजी नेवचंद
३१) „ कालूरामजी सुखलाल
३१) „ हरिसिंहजी संतोषचंद
३१) „ आनंदमलजी लक्ष्मीनारायण
३१) „ कुम्भकरणजी भिषणचंद
३१) „ मेघराजजी छोगमल
३०) „ अज्ञातनाम
२५) „ माणिकचंदजी सेठिया
२५) „ तनसुखदासजी मानमल
२५) „ किसनदासजी सेरमल
२५) „ वनेचन्दजी सुगनचंद
२५) „ हनूतमलजी भैंरुदान
२५) „ कुशलचंदजी ताराचंद
२५) „ पूर्णचंदजी जीवनमल
२५) „ चौथमलजी रामलाल
२५) „ सुजानमलजी चंडालिया
२५) „ हस्ते श्री जगत सिंहजी छाजेड़ खुदरा
२५) „ घनश्यामदासजी किशनचंद
२५) „ मदनचंदजी धर्मचंद
२५) „ लिखमीचंदजी चौथमल
२५) ” बालचन्दजी संतोषचंद
२५) ” हजारीमलजी समरथमल
२१) ” भोलारामजी बालचंद

२१) श्री तोलारामजी बोथरा
२१) ” हीरालालजी फतेचंद
२१) ” जुगल किशोरजी मानिकचंद
२१) ” गोपीचन्दजी धाड़ीवाल
२१) ” गुप्तदानी
२१) ” चुन्नीलालजी हीरालाल
२१) ” जुँहारमलजी सुखलाल
२१) ” मूलचंदजी भूमरमल
२१) ” भींवराज हुक्मचंद
२१) ” हरखचंद मंगलचंद
२१) ” भागचन्दजी नेमचन्द
२१) „ जयनारायणजी गंगाबिसन
२१) „ पूनमचन्दजी बगड़िया
२१) „ शोभाचन्दजी तिलोकचन्द
२१) „ सरदारमलजी बोरड़
२१) „ खूबचन्दजी जुगराज
२१) „ जुहारमलजी शोभाचन्द
२१) „ सूरजमलजी जयचंदलाल
२१) „ डाभमलजी विरधीचंद
२१) „ विरधीचंदजी जयचंदलाल
२१) „ हजारीमलजी सूरजमल
२१) „ भँवरमलजी सिंघी
२०) „ नथमलजी कांकरिया
१५) „ जुहारमलजी
१५) „ इन्दरचन्दजी बुधमल
११) „ रामलालजी हस्तीमल
११) „ मन्नालालजी इन्दरचन्द
११) „ भिखणचन्दजी लिखमीचन्द
११) „ अजीतलालजी कोचर
११) „ हुकमीचन्दजी नानगराम

११) श्री शिवलालजी अग्रवाल
११) " भैरूंदानजी सागरमल
११) " रामपुरिया मैच वर्क्स
११) " फकीरचन्दजी कोठारी
११) " लालचन्दजी बोथरा
११) " सरदारमलजी धाड़ीवाल
११) " तनसुखलालजी सेठिया
१०) " पूर्णचन्दजी श्यामसुखा
१०) " रामजीवन केजड़ीवाल
६) " जगत सेठजी के कोठी के जमादारों और नौकरों का चन्दा
७) " बलवन्तरामजी भण्डारी
७) " पानमलजी जेसराज
७) " छगनमलजी जशकरन
७) " सीरेमलजी पुनमचन्द
७) " गोविन्दरामजी मूलचन्द
७) " भीमराजजी सोहनलाल
५) " मानिकचन्दजी कांकरिया
५) " महता सरदारसिंहजी
५) " शेरमलजी शिवलाल
५) श्री रामपुरष पांडे
५) " धीरजी ठाकुर
५) " जगतसिंहजी छाजेड़
५) " दुर्गाशंकरजी पांडे
५) " धनवीरसिंह सिरदार
५) " एम० सी० राय सुराणा
५) " सूरजमलजी सेठिया
५) " जीवनमलजी सुखलाल
५) " सागरमलजी इन्दरचन्दजी
५) " गुलाबचन्दजी सुखलालजी
४) " मालूरामजी माली
२) " महाराज बहादुरसिंहजी
२) " रंगरूपमलजी सकरूमल
२) " घेवरचन्दजी मोतीलाल
२) " जेसराजजी सेठिया
१) " रणवीरसिंह
१) " अतीतसिंह
१) " रामचन्द्रजी
१) " कोछलाजी

२८५६६।=)॥२॥

उपरोक्त आय का हिसाब

आय

२८५६६।=)॥२॥ श्री सहायता खाते प्राप्त ऊपर माफिक

व्यय

५८८४॥।=)॥ सहायतार्थ अन्न खरीदा-धान, चावल इत्यादि।

१०८६।)॥ सहायतार्थ वस्त्र खरीदे-धोती, साड़ी, चादर कोट आदि।

६०८३।=)॥ कुआं बनाया तथा साफ कराया उसका खर्चा।

६६२।≡)॥ झोंपड़ी बनाने में खर्च हुआ।

व्यय

१४६।।-)।। नहरों की सफाई-खुदाई आदि में
२२८।।)। दवाई
३८२६।।।-)।।। सहायता नगद रुपयों की
 २०००) श्री मारवाड़ी रिलीफसोसाइटी को बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ।
 १४०६)।।। रेडक्रांस सोसाइटीको चीजें भेजी
 ४२०।।।-) नगद रुपया सहायतार्थ।
७०।।।-)।। गायों की सहायता में लगा।
२४६=) जरूरी चीजें खरीदी।
३५८।=)।।। खर्च खाते
 १११५।) रेल किराया-मुटिया भाड़ा आदि।
 ४८।=)।। दरमाओ कैम्प में लगे।
 ७०=) डाकमहसूल-स्टेशनरी आदि।
 ६०।।) तम्बू का भाड़ा-मास तीनका
 १३१) बट्टे खाते-जमादारों ने जमा नहीं कराया।
२६१५) उधार खाते दिया गया।
५२६७।।।-)२।। रोकड़ बाकी।
 ३४१८।=)।२।। श्री कोषाध्यक्ष सुराणाब्रदर्स के पास।
 १०००) श्री सोहनलालजी दूगड़ के पास।
 ४००) श्री छोगमलजी चोपड़ा के पास।
 २०७।) मुकाम पुर्निया में छगनमलजी तोलारामजी के पास।
 २००) श्री ओसवाल नवयुवक समिति के पास
 ७२=)।।। मुकाम फार्बिसगंज शिवलालजी गजानंदजी के पास।

२८५६६।=)।।२।।

हिसाब को बही खातों से मिलान करके देखा—ठीक है।

मानिकचन्द सेठिया

हिसाब परीक्षक।

ता० १६-१०-३४

सम्पादकीय

महान् क्रांति या महानाश

क्रांति का नाम अब हमारे लिये नया नहीं रहा है। उसका संदेश हमारे कानों में गूंजता है, और उसकी उपचारशीलता आज हमारी बुद्धि में समाती है, उसकी गूंज से हमारी आकांक्षाएं उठती हैं—लड़ती है। संसार अनादि से क्रांति का वक्षस्थल रहा है, और अनन्त तक क्रांति का संगीत विश्व एक छोर से दूसरे तक गूंजेगा। क्रांतियों की शृंखला लंबी है उसका इतिहास अमर है। विश्व-क्रांति के चित्रोंमें—उनमें चित्रित विभूतियों की अमर परम्परा में—हमारी आकांक्षाएँ उद्वेलित है। आज मानव जीवन क्रांति की हिलोरों में आलोड़ित है, उत्पीड़ित-जीवनापहृत-मानवता की अनन्त वर्षों से पुंजीभूत वेदना जीवन का मूक विश्लेषण आज इस क्रांति में प्रतीकारोन्मत है। यह क्रांति—यह प्रत्यावर्तन अवश्य किसी शक्ति का प्रकाश है—किसी पीड़ा की पुकार। जीवन पर काई जमी है। उसको दूर करना है, अतः यह क्रांति!

धर्म और अधर्म का प्रश्न आज हमारी स्वार्थपरता के आवरण में सभी मानवता को भी दबा बैठा है, अंध-विश्वास और रूढ़ संस्कारों में जीवन की सच्ची स्रोतस्विनी लुप्त हो गई है, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक गुलामी के फंदे में फंसा जीवन अपने आप को भूल सा गया है। आज जीवन में मरण बसा है—या हमारी जीर्ण बुद्धि ने मरण को ही जीवन समझ रखा है। विश्व के कोने-कोने में एक द्वन्द्व - एक विप्लव की ज्वाला जगमगा रही है। शक्ति के हाथ जरूरत से ज्यादा शक्तिशाली हैं- निर्बलों की निर्बलता बिल्कुल पिसी जा रही है। क्रान्ति कैसे न होगी? संसारभर की दरिद्र, निपीड़ित और मज़लूम मानवता की करुण कहानी कब तक छिपी रहेगी—उनकी संगठित शक्ति क्या नहीं कर सकती? एक ओर हम मदोन्मत्त राज्य-शक्ति का तांडव नृत्य देखते हैं, दूसरी ओर उसके अत्याचारों में पिसा हुआ अवाक् 'विषण्ण निर्जीव पड़ा यह जगजीवन।' एक ओर धर्म गुरुओं और धर्माचार्यों की स्वेच्छाप्रेरित पापलीला—दूसरी ओर आँखों के अंधे उनके उपासक। एक सहृदय विचारक ने कितना मार्मिक चित्र खींचा है इस अवस्था का "पुण्यभूमि भारत माता का अन्तरात्मा आज आंतरिक वेदना से अत्यन्त व्यथित हो रहा है—दारिद्र्य और परतंत्र्य के कारण अपना प्रजा जीवन खंड-खंड होकर पिस रहा है। सामाजिक धार्मिक और राज्यकीय इन तीन तरह की गुलामी की जंजीरों में हमारा व्यक्तित्व जकड़ रहा है और उससे हमारा आत्मा मूर्छित होकर धरणाशायी पड़ा है। झूठे जात्याभिमान और रूढ़ धर्मानुराग से प्रजा का स्नेह तंतु छिन्न-विछिन्न हो गया है। सर्वत्र तिरस्कार-बहिष्कार और असहकार के तीक्ष्ण वाक् प्रवाह हो रहे हैं।" इस जकड़े हुए जीवन में दो ही सवाल हैं -

मरना या जीना; प्रगति या महाजड़ता ? दो ही विकल्प हैं – क्रांति के लिये सन्नद्ध रहना या महानाश–महाप्रलय– की प्रतीक्षा करना ! पर आज हमारे सूखते हुए जीवन में कुछ-कुछ चेतन स्फुरण हुआ सा लगता है। मरण से पहले हम जीने की कोशिश क्यों न कर लें ?

हमारे सामाजिक जीवन में आज महान उथल-पुथल की जरूरत है, यदि हम पराभूत, परावलंबित जीवन नहीं चाहते, यदि हम पतन के गहरे गर्त से बचना चाहते हैं। प्रगति-विरोधक शक्तियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रियमाण हैं। परिवर्तन से आज की संत्रस्त मानवता डरती है, क्योंकि युगों से चली आती हुई जड़ता ने उसके आत्म विश्वास को अन्दर ही अन्दर नष्ट कर दिया है। 'मिथ्या विश्वासों और जीर्ण संस्कारों' की गुलामी ने सामाजिक जीवन के आनन्द को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। समाज का अन्तर और बाह्य दोनों विकृत हैं ! एक ओर अन्तर की पराजय और निराशा की करुण ध्वनि, दूसरी ओर बाह्य के अत्याचारों की वीभत्स पुकार ! पूँजीवाद और तज्जनित साम्राज्यवाद ने सामाजिक जीवन में एक ऐसा विषैला वैषम्य उत्पन्न कर दिया है, कि जिसके कारण समाज की शृंखलाएँ काटने सी लगी हैं। एक और ह सम्पन्न वर्ग का पाशविक वैभव – उसकी निष्ठुर रंगरलियाँ, दूसरी ओर है उनके पैरों से कुचली हुई–उनकी पैशाचिक वृत्ति से भयभीत जनता की आत्मग्लानि, अविश्रान्त मूक वेदना। यदि हम जीवन चाहते हैं तो इस परिस्थिति से ऊपर उठने की चेष्टा करनी चाहिये, नहीं तो जीवन का यह प्रभञ्जन अवश्य किसी ऐसे गर्त में जा ढकेलेगा कि जहाँ से निकलना मुश्किल होगा। हमारे समाज का अर्थात् ओसवाल समाज का सामाजिक जीवन तो कुछ है ही नहीं, उसका विवेचन ही क्या ? हमारा समाज धनी कहा जाता है – यह ठीक है, पर इससे आगे भी क्या कुछ कहा जाता है या कहा जावेगा ? हमारे सामाजिक जीवन की जड़-स्थिरता, उसकी सर्वतोमुखी गुलाम-मनोवृत्ति, और स्वार्थाभिभूत एकान्तिक प्रवृत्ति क्या हेय नहीं है ? अज्ञान का अंधकार, रूढ़ियों की गुलामी, धर्म का धतींग और आत्मा का क्लैव्य हमारे समाज का आंतरिक पतन सूचित करता है। हम धन के मद में ज्ञान की महिमा भूल बैठे हैं पर इसके बिना जीवन का निर्वाह कैसे होगा ? अभी तो हम पूर्वजों के ज्ञान पर अपनी बपौती पर जी रहे हैं। आज बाह्य दृष्टि से ज्ञान तिरस्कृत सा लगता है पर क्रांति के बाद जीवन का जो उन्मेष होगा वह ज्ञान की उपेक्षा कैसे करेगा ? इस परिस्थिति से स्वयं सिद्ध है कि हमें शीघ्र से शीघ्र क्रांति की उद्भावना करनी चाहिये, नहीं तो एक दिन जीवन ही नष्ट हो जायगा। हमें ज्ञान का प्रचार करना चाहिये–विचारों में क्रांतभावना उत्पन्न करनी चाहिये और इसलिये हमें ऐसे विचारोत्तेजक साहित्य की रचना करनी चाहिये जिससे मार्ग खोजती हुई मानवता को जीवन का मार्ग मिले और शक्ति की प्रेरणा में क्रांति का आवेश उद्भूत हो।

हमारे धार्मिक जीवन में इस समय सबसे अधिक विवेकपूर्ण क्रांति की जरूरत है ! बिना क्रांति के धर्म का वर्तमान ढकोसला चल नहीं सकता। आज तो धर्म की मंगलभावना निष्प्रभ सी होती जा रही है। शान्ति और स्वतन्त्रता, सत्य और अहिंसा का प्रेरक धर्म आज गुलामी और अनाचार, द्वेष और अनैक्य की समरभूमि हो रही है। सत्य-धर्म की कल्पना व्यक्तिगत स्वार्थों की गंदी नालियों में बह रही है। आज धर्म समाज के जीवन से अलग होकर इतना 'अछूत' हो गया है कि वह जीवन की दृष्टि से निष्प्रयोजन सा

लगता है। वास्तव में धर्मको अंगीकार करनेवाला जीवन स्वयं इतना नीरस हो गया है कि उसका हृदय तो केवल वेदना से भरा है–वही उसका धर्म है। कहा जाता है कि धर्म का उदय जीवन में ऐसा अभूतपूर्व प्रकाश उत्पन्न कर देता है कि फिर वह अपूर्ण नहीं रहता; पर आज जिसे हम धर्म कहते हैं या धर्म की जैसी परिस्थिति है– उसमें ऐसा मान लेना विवेक का गला घोंटना है। धर्म के नाम पर आचार्यों (?) के जीवन में आज हमें श्रद्धा नहीं होते हुए भी श्रद्धा का अभिनय करना धर्म का सिद्धान्त है। उनका निष्क्रिय जीवन समाज के ऊपर भाररूप पड़ा है–उनकी सांप्रदायिक मनोवृत्ति, संकीर्ण धर्म-भावना और विवेकशून्य क्रियाकाण्ड के कारण धर्म कम और धर्माभास अधिक फैल रहा है। बड़े-बड़े तीर्थों में–धर्मस्थानों में–पूंजी के साथ अनिवार्य रूप से रहा हुआ अनाचार बुरी तरह फैल रहा है आज धर्म का आसन कंपायमान है और उस आसन के चारों ओर "पोपमंडली अपने कुत्सित स्वार्थ की नशीली व उन्मादिनी विस्मृति में प्रलय के गीत गा रही है–लेकिन मनुष्य समाज–वही आंखों का अन्धा मनुष्य समाज–उनके सुधार की बात भी सहन नहीं करता, मानों उसने सब कुछ जान कर भी नहीं जाना या जान-बूझ कर भुला दिया" हजारों साधु-मुनियों के होते हुए भी आश्चर्य है कि हमारे समाज का संगठन ढीला पड़ा है–इसमें अज्ञान का अंधकार फैला हुआ है। विश्व की प्रगतिशील शक्तियों से घबराया हुआ धनिक वर्ग इन ढोंगियों के धर्मजाल के पीछे अपने को सुरक्षित समझता है। उनके कथनानुसार वह हजारों रुपये ज्ञान के नाम पर खर्च भी करता है पर उससे ज्ञान की एक भी नई किरण नहीं निकली। धर्म प्रचार के नाम पर वे हजारों रुपये खर्च करा देते है, पर असल धर्म की जड़ तो खोखली हो रही है। विश्वक्रांतियों का लंबा इतिहास इसका प्रमाण है कि जब जब समाज और धर्म की ऐसी अवस्था होती है तो क्रांति अवश्य होती है। आज भी उसी क्रांति की आवश्यकता है; वह होगी!

समाज और धर्म ही क्या–जीवन के अंग-प्रत्यङ्ग में ऐसी मलीनता, ऐसी उत्कट ग्लानि उत्पन्न हो गई है कि बिना क्रांति के उसका शोधन-संस्कार नहीं हो सकता। आज तो राष्ट्रपति पं० नेहरू के शब्दों में "जीवन की इच्छा यही है कि दुनिया की उस उन्माद-कारिणी पद्धति का अन्त कर दिया जाय जिसके कारण युद्ध और संघर्ष की उत्पत्ति होती है और जिसने लाखों मनुष्यों का जीवन पद-दलित कर दिया है, संसार-व्यापी गरीबी और बेकारी का जल्दी से जल्दी अन्त हो जिसमें हजारों लाखों मनुष्यों की शक्ति मानव जाति की सामूहिक भलाई में लग सके। अर्थात् जो शक्तियाँ नष्ट हो रही हैं उनका निर्माण हो।" आज जिस धारा में जिस उन्माद में हमारा समाज और राष्ट्र बह रहा है वह तो अवश्य नाशोन्मुख है। इससे बचना है तो क्रांति अनिवार्य है। एक बार समूचे जीवन में क्रांति उत्पन्न किये बिना कुछ भी कर सकना असंभव है। आज तो मानव की वेदना अगणित वाणी से पुकार रही है क्रांति अनिवार्य है! महानाश के बादल विश्व के चारों ओर घिरे हुए हैं–न मालूम कब उल्कापात हो जाय? कौन कह सकता है।

इस युग में मनुष्य की बुद्धि पर स्वार्थपरता का नङ्गा रङ्ग चढ़ा है। उसमें कृत्रिम मानापमान की–ऊंच-नीच की–वर्गमूलक भावना बसी है। वह उसी के नशे में पागल है, पर उसका यह पागलपन तो दूर होगा–आजकी आशावलंबित स्थिति में नहीं, तो कल की विनाश झंझा में! आज के व्यथित जीवन को शांति, स्नेह और सम-

भाव की बड़ीभारी आवश्यकता है और बिना क्रांति के इसका उत्पन्न होना असंभव है। विनाश के पहले एक बार उत्थान-उत्थान सा 'कुछ'-होना है जो सचमुच विनाशोन्मुख परिस्थितियों की चरमता का परिचायक होता है। ऐसे ही मौके पर आदमी के सामने प्रश्न आता है—महान् क्रांति या महानाश! आज की अवस्था ऐसी ही है, जीवन-मरण की तूफानी परिस्थिति इतनी ही विकट है। आज वर्षों के वैषम्य से बँटी हुई दो महान शक्तियाँ संघर्ष के चरम शिखर पर पहुँच चुकी हैं धनी और दरिद्र, सबल और निर्बल जालिम और मज़लूम के बीच एक महान संघर्ष उत्पन्न हो रहा है और इसी संघर्ष में मानवता के अधिकारों की इसी क्रान्ति में—भविष्य का निपटारा हो जाना है—महान् क्रांति या महानाश!

यह क्रांति मनुष्य को मानव पूजा का पाठ पढ़ायेगी, धर्म में पुनः एक बार मानवता का महत्व स्थापित करेगी और करेगी मानव वेदना का सौंदर्यांकन। इस क्रांति में मनुष्य समझेगा—मनुष्य के प्रति मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है? आज जो धर्म और समाज, व्यष्टि और समष्टि, लोकनीति और राजनीति में भेद की स्थूल भित्ति खड़ी हो रही है, क्रांति से उसका सुधार होगा और होगा इन सब का जीवन में स्थापन। इस क्रांति द्वारा मानव प्रेम और मानव पूजा के भाव पैदा होंगे और होगी समाजिक जीवन की सक्रिय सहानुभूति। जीवन इसके लिये छटपटाता है, इसलिये महान क्रान्ति या महानाश! इधर या उधर!

टिप्पणियाँ

काँग्रेस का ५० वाँ अधिवेशन—

स्वतंत्रता की लड़ाई हमारे देश में वर्षों से चल रही है और कांग्रेस अर्थात् राष्ट्रीय महासभा ने इस युद्ध में जो भाग लिया है, उससे हमारे जातीय एवं सार्वजनिक जीवन का इतिहास गौरवान्वित हुआ है। कांग्रेस के विकास के साथ साथ इस देश के राष्ट्रीय जीवन में जो स्फूर्ति और नवोत्साह पैदा हुआ है—वर्षों की गुलामी का प्रतिरोध करने के लिये हम में जो साहस और शक्ति का स्फुरण हुआ है, वही कांग्रेस की सफलता है—उसकी महान् विजय। और यही उसके प्रति हमारी श्रद्धा का सूचक! जनता का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व आज कांग्रेस को प्राप्त है। कांग्रेस की वाणी में जनमत प्रतिष्ठित है, इसलिये उसकी वाणी देशकी वाणी है! उसकी शक्ति में देश भर की शक्ति का प्रकाश है अतः उसमें सब से अधिक बल है। कांग्रेस की पुकार देश की पुकार है समस्त लोकमत की गूंज!

गत मास में कांग्रेस का ५० वाँ अधिवेशन फैजपुर में हो गया। सभापति का पद पुनः पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सुशोभित किया था जिनके तेजपूर्ण नेतृत्त्व में लड़ने का सौभाग्य हमें दो बार पहले मिल चुका है। आज पुनः देश के भविष्य का सूत्र संचालन राष्ट्रपति नेहरूजी के हाथों में है—उनकी शक्ति में सारे राष्ट्र की आशाएं अवलंबित हैं, उनकी आवाज में महान् त्याग और नैतिक बलकी प्रेरणा है! उनके हृदय में अपरिमेय और अपराजेय साहस पुंजीभूत है और है सच्चे युवक-हृदय की उछल-कूद।

कई दृष्टियों से कांग्रेस का यह अधिवेशन अभूतपूर्व

है, यह पहला ही मौका था कि कांग्रेस का अधिवेशन गाँवमें हुआ। कांग्रेसको तो राष्ट्र के बच्चे बच्चे का सहयोग चाहिये तभी तो कांग्रेस देश के सार्वजनिक जीवन का निर्माण कर सकेगी और उसके बूते पर माता की बेड़ियाँ काट सकेगी। इस समय कांग्रेस को किसानों और मजदूरों के सहयोग की बड़ी आवश्यकता है। फैजपुर के अधिवेशन ने कांग्रेस को किसानों के और निकट पहुंचा दिया। हजारों लाखों ग्रामवासी फैजपुर में कांग्रेस में सम्मिलित हुए और अपने देश के दुखदर्द की लंबी कहानी सुनी। इस दृष्टि से कांग्रेस के इस अधिवेशन का बड़ा महत्व है। राष्ट्रपति तो इस सफलता से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने कह दिया कि "मेरी तो राय ही बदल गई है। कांग्रेस के अधिवेशन सदा गाँवों में ही किये जाँय।" वास्तव में सच्चा भारत तो गाँवों में ही है।

लखनउ कांग्रेस में परिस्थितियों का एक कुहरा सा दीखता था, पर अब कुछ स्पष्टता आती हुई दीखती है। राष्ट्रपति ने ठीक कहा है कि आज हमारी अशांति विश्व की अशांति से अलग नहीं है। सभी जगह एकसा कुहराम मचा है। संसार में सर्वत्र पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का नग्न नृत्य दीख रहा है - जीवन पिस रहा है। प्रजातंत्रवाद और स्वेच्छाचारी ताना शाही में भीषण द्वन्द मचा है। असल में आज संसार की शक्तियाँ एक महानाश के नाटक में जुटी हैं। "प्रगतिशील और प्रगति-विरोधक शक्तियाँ संघर्ष के नजदीक आती जा रही हैं और हम युद्ध के भयानक खड्ड की ओर बहुत तेज रफ्तार से जा रहे हैं।" कांग्रेस के इस अधिवेशन का सब से बड़ा संदेश यह है। और इसलिये सारे देश की सम्मिलित शक्ति द्वारा साम्राज्य वाद का विरोध करें, यही हमारा कर्तव्य है। इसके लिये सारे राष्ट्र को जागरूक बनाना होगा और इसीलिये कांग्रेस ने जनता-सम्पर्क (Mass-contact) का प्रस्ताव स्वीकार किया है।

फिलहाल तो कांग्रेस के सामने चुनाव का मसला है। सारे देश में लगभग १००० उम्मेदवार कांग्रेसकी ओर से खड़े हुए हैं। चुनाव में कांग्रेस की विजय होगी, यह तो निर्विवाद है क्योंकि कांग्रेस की लड़ाई सिद्धान्तों की लड़ाई है। कौंसिलों में उम्मीदवार भेजकर कांग्रेस की नीति जबर्दस्ती लादे हुए नवविधान को विफल करना है, जिसका विरोध हम शुरू से कर रहे हैं। पर यह तो अस्थायी कार्यक्रम है। वास्तव में कांग्रेस का असली ध्येय 'पूर्ण स्वराज्य' है जिसके लिये यह वर्षों से लड़ रही है और तबतक लड़ती रहेगी, जब तक वह मिल न जाय।

चीन में अन्तर्विद्रोह के चिन्ह —

अभी फिर चीन की राजनैतिक परिस्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हुआ है। कुछ दिनों पहले खबर मिली थी कि चीन के प्रधान मन्त्री जनरल चियांग-काई-शेक को विद्रोहियों ने कैद कर लिया था। और फिर यह भी मालूम हुआ कि वे छोड़ दिये गये हैं।

चीन के राष्ट्रपति लिन-सेन हैं और मार्शल चियांग-काई-शेक चीन के प्रधान मन्त्री और प्रधान सेना-नायक हैं। किन्तु चियांग-काई-शेक का प्रभाव चीन में सबसे अधिक है। अभी के विद्रोह के विषय में ऐसा कहा जाता है— कि उत्तरी चीन में आजकल 'कम्युनिज्म' का प्रचार बढ़ रहा है। इस बात को न तो चीन की सरकार पसन्द करती है— और न साम्राज्यवादी जापान। इसी प्रवृत्ति को दबाने के लिये चियांग-काई-शेक ने मार्शल चियांग-सुई-लियांग को उत्तर में भेजा था। पर, कहा जाता है कि लियांग के दल ने विद्रोह

कर दिया और उन्होंने 'कम्युनिस्टों' से मैत्री कर ली और फ़कन प्रदेश में भेजे हुये दल ने तो स्वयं जनरल चियांग-काई-शेक को ही कैद कर लिया और यह दावा पेश किया कि जापान से युद्ध करने की घोषणा कर दी जाय। यह भी खबर उड़ी थी कि चीन की सरकार ने सेना को वेतन नहीं दिया था इसलिये उन्होंने विद्रोह किया था पर अब यह खबर निराधार साबित हो चुकी है। वास्तव में विद्रोह का असली कारण तो लोग यह बताते हैं कि चियांग-सुई-लियांग की जापान के प्रति शत्रुता है। और वह जापान से युद्ध छिड़ाना चाहता है। जापान के प्रति उनकी वैर-भावना है, यह बात उनके व्यक्तिगत जीवन के इतिहास से भी स्पष्ट है। "चियांग-सुई-लियांग मंचूरिया के सुप्रसिद्ध सेना-नायक चांगसोलिन के पुत्र हैं और चांगसोलिन जिस बम दुर्घटना के शिकार हुये थे-- वह जापानियों की कार्रवाही थी, इसलिये उनका जापान के विरुद्ध होना स्वाभाविक है।" इसके अलावा जापान ने उनकी अनुपस्थिति में मंचूरिया पर अपना अधिकार कर लिया था- इसलिये भी वे जापान के प्रबल शत्रु हैं। विद्रोह तो शान्त हो चुका है-और सुना है चियांग-सुई-लियांग ने अपनी गल्ती के लिये क्षमा मांग ली है पर उत्तरी चीन में कम्युनिज्म की लहर बढ़ रही है -और क्या परिस्थिति उत्पन्न होगी - यह नहीं कहा जा सकता।

रेल और मोटर-बस---

मोटर-बस और रेलों की प्रतिस्पर्द्धा की ओर व्यापारिक-जनता का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित हो रहा है! यह प्रतिस्पर्द्धा अब ही होती हो - और पहले न होती हो ऐसा मान लेने का तो कोई आधार नहीं, पर इस प्रश्न की तरफ आज जो खास दृष्टि जाती है उसका कारण तो यह है कि गत ५-६ वर्षों में रेलवे-कम्पनियों को बड़ा घाटा हुआ। घाटे की भीषणता इससे प्रकट की जाती है कि ६ वर्षों में रेलवे-कम्पनियों ने वह सारी पूंजी व्यय कर दी--जो उन्होंने ६ वर्षों से पहले 'रिजर्व' के नाम से एकत्रित की थी। और किसी-किसी कम्पनी को तो 'डिप्रीसियेशन' पूंजी में से भी घाटा देना पड़ा है! रेलवे कम्पनियों की तरफ से सरकार का ध्यान भी इस घाटे की तरफ गया है-- क्योंकि बराबर सरकार की आय में ह्रास हो रहा है! घाटे के कारणों का विश्लेषण कर रेलवे कम्पनियों की ओर से यह कहा गया है कि बढ़ती हुई बस सर्विस की प्रतिस्पर्द्धा घाटे का सबसे प्रमुख और बड़ा कारण है! सरकार ने इस बात को किस आधार पर मान लिया है यह तो हम नहीं कह सकते पर यह सब कोई जानते हैं कि सरकार के स्वार्थ भी रेलवे के साथ जुटे हैं। सरकार ने इस विषय की जांच के लिये एक Railway Enquiry Committee स्थापित की है किन्तु इसमें भी ऐसा कोई सदस्य नहीं है जो भारतीय जनता की कठिनाइयों को पूरी तरह समझे। और बस सर्विस की वृद्धि को रोक देने का भी सरकार पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही है। इस विषय में सरकार ने अगस्त १९३६ में एक मोटर व्हीकल्स एक एमेंडमेंट बिल भी एसेम्बली में उपस्थित किया है---जिसमें कई ऐसे एमेंडमेंटों की शिफारिस की गई है---जिनसे स्पष्ट ही मोटर सर्विस को धक्का पहुँचेगा। सरकार की यह स्वार्थ-नीति---जिसके कारण मोटर-बस सर्विस को एक गहरा धक्का लगेगा अवश्य ही अनुचित है!

हम यह नहीं कहते कि रेलवे कम्पनियों का घाटा कम न हो---पर इसके लिये बिना सच्चा विश्लेषण किये ही मोटर-बस के हितों को नाश करना ठीक

नहीं! रेलवे का यह कहना निराधार ही-सा है कि मोटरों के कारण उनकी आय में कमी होती जा रही है- क्योंकि मोटरों का होना ही इसका कारण नहीं है बल्कि आय में कमी होने का कारण तो यह है कि रेलवे कम्पनियों ने अपने किराये की दरें नहीं घटाई— जब कि चीजों के दाम बराबर घटते गये। अब भी किराये की दर कम न कर वे सरकार के पक्ष का अनुचित लाभ उठाकर मोटर जैसी सुविधापूर्ण सर्विस को नष्ट कर किराये की ऊंची दरों का एकाधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार की नीति से देश के व्यापारियों को और प्रजा की बड़ी हानि होगी। व्यापारिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की प्रक्रिया को अपने राजकीय अधिकारों के बल से रोककर एक उद्योग को—जिसमें करोड़ों की देशी पूंजी लगी है— और हजारों आदमियों को रोजगार मिला है नुकसान पहुंचाना सरकार की अदूरदर्शिता है जिसके नुकसानों की ओर शीघ्र ही उसका ध्यान जाना चाहिये। सही तरीका तो हमारी समझ में यह है कि रेलवे कम्पनियों को अपनी दर में कमी करनी चाहिये जिससे जो ट्रैफिक उनके द्वारा होना सम्भव है वह उनको मिले, तथा खर्च में भी कमी करनी चाहिये। देश के सभी व्यापारिक-संघ-संस्थाओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है- और सबकी ओर से सरकार के पास पत्र भेजे जा रहे हैं कि यह नीति स्वदेशी-हितों के विरुद्ध है। आशा है सरकार इस पर पूर्ण विचार कर अपना निष्पक्ष निर्णय करेगी!

कलकत्ते की सड़कों पर——

दान की महिमा अपरम्पार है। हमारे नैतिक जीवन में इस कहावत की प्रतिध्वनि हुआ करती है। भारतीयों की दानशीलता का परिचय इस देश की सभ्यता के इतिहास में कई बार मिलता है। सच्चे दान का नैतिक महत्व हम मानते हैं- पर जिस देश में जीवन के संघर्ष पूर्ण कार्य-कलाप से विमुख हो लोग दान मांगने को व्यवसाय समझ कर आलसी और निकम्मी बन जाते हैं तो अवश्य उस देश के दुर्भाग्य पर रोना पड़ता है।

कलकत्ते की सड़कों पर चलते हुए जब हम हजारों भिखारियों को पड़े देखते हैं तो एकबारगी ही हम जीवन के रोदन की कल्पना कर कांप उठते हैं। आज हमारे देश में विकट आर्थिक समस्याएं उपस्थित हैं अन्य देशों की तुलना में हमारी प्रतिदिन की आय नगन्य है। और हजारों हृष्ट पुष्ट शरीर वाले युवक और अधेड़ देशवासी भी पैसे-पैसे की भीख मांग कर पेट भर लेते हैं- मेहनत व मजदूरी न कर भीख के आधार पर पड़े रहते हैं। राष्ट्र का यह अभिशाप क्या कारुणिक नहीं है? भिखारियों की यह समस्या सबको खलती है। दृढ़ आधार पर यह अनुमान किया गया है कि कलकत्ते में ही ४००० भिखारी हैं—जिनकी निम्न प्रकार से गणना की जा सकती है——

कोढ़ी भिखारी	१०००
अंधे	४००
अति निर्बल	२००
अन्य रोगों से रोगी	४००
स्वस्थ शरीरवाले	१०००
	४०००

सोचने की बात है कि १००० स्वस्थ व्यक्ति भी जिनमें छोटी ऊमर के युवक भी सम्मिलित हैं—भीख पर आश्रित हैं। इन लोगों को अवश्य ही उपार्जन के दूसरे कामों में लगना चाहिये। ऐसे लोगों के भीख

मांगने के विरुद्ध कानून का आश्रय भी लिया जा सकता है। पर आश्चर्य और खेद है कि अभी तक इस समस्या को मिटाने में कुछ भी प्रयत्न नहीं हो रहा है। बम्बई, मदरास, लाहोर इत्यादि शहरों में इस दिशा में सुधार करने के लिये कई रचनात्मक कार्यों का सहारा लिया गया है—और उन शहरों में इस समस्या की भीषणता कम करने में सफलता भी मिली। पर कलकत्ते मे न तो सरकार की तरफ से कुछ हुआ है और न कारपोरेशन की तरफ से ही कुछ किया गया है। इस वर्ष कार्पोरेशन ने इस विषय के लिये एक कमीटी तो नियुक्ति की है—पर आवश्यकता तो वास्तविक कार्य की है। जो भिखारी रोगी हैं उनकी चिकित्सा के लिये समुचित प्रबन्ध करना चाहिये और उनको उन्हीं स्थानों में रखना चाहिये जहां चिकित्सा का प्रबन्ध हो—और जो स्वस्थ हैं उनको काम काजमें लगाना चाहिये।

गत वर्ष इस विषय में कलकत्ते के कुछ नागरिकों की एक कमीटी बनी थी और उसकी रिपोर्ट के अनुसार इसके लिये रु० ७००००) का प्रारम्भिक खर्चा और रु० १,२००००) का वार्षिक खर्च का अनुमान किया गया था। अवश्य ही अकेला कारपोरेशन इस बड़े खर्च को सहन नहीं कर सकता—और सरकार को इसमें मदद करनी चाहिये। एक बार प्रारंभ करने की जरूरत है फिर तो जनता की सहानुभूति मिलेगी—ऐसी पूर्ण आशा है! उक्त कमीटी के Brochure के एक अंश को हम यहां उद्धृत करते हैं जिससे उसकी योजना समझ में आ जायगी।

"Thus by organising the 'Refuse' a National Infirmary, Children's Home, a leper Colony and a work house, we can take right off the streets about one thousand five hundred beggars with a total capital outlay of Rs. 70000 and a recurring expenditure of Rs. 1,20,000 not a very considerable amount to spend in order to rid Calcutta of this appaling nuisance.

अर्थात

इस तरह से रिफ्यूज (शरण गृह), राष्ट्रीय रोगी सेवा भवन, शिशु-निवास, कोढियों के रहने के घरों और उद्योगशाला की सुव्यवस्था कर हम रु० ७००००) की मूल पूंजी और १,२०००० के चालू खर्च से कलकत्ते के बाजारों से १५०० भिखमंगों की संख्या कम कर सकते है। कलकत्ते की इस भयावह आपत्ति को मिटाने के विचार से यह रकम आवश्य ही कुछ नहीं है।

आशा है हमारे पाठक इस समस्या पर गहरी तौर से विचार करगे।

चुनाव—

इस समय देशभर में चुनाव की हलचल मची हुई है और चारों ओर से नव-विधान के अनुसार संगठित होनेवाली व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़े किये जा रहे हैं। हमारे समाज में से भी कई उम्मीदवार खड़े हुए हैं यद्यपि उनकी संख्या आशापूरित नहीं है। कलकत्ते में भी बंगाल कौंसिल आफ स्टेट के लिये श्रीयुत बाबू सुरपतसिंहजी दूगड़ बंगाल गैर-मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर खड़े हुए थे पर खेद है कि बहुत देर से चुनाव के लिये खड़े होने के कारण उनको सफलता

नहीं मिली—क्योंकि मताधिकारियों से दूसरे उम्मीदवार पहले ही अपने पक्षमें वोट देने की प्रतिज्ञा करा चुके थे।

श्री बाबू नवकुमारसिंहजी दूधोड़िया भी बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल (अपर चैम्बर) के लिये प्रेसीडेन्सी डिविजन कान्स्टीट्युएँसी से खड़े हुए हैं। आप हिन्दू नेशनेलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार हैं। आप बंगाल के प्रतिष्ठित जमींदार हैं। हमें आशा है कि अवश्य आप का प्रयत्न सफल होगा।

धन्यवाद—

पाठकों को इस अङ्क के मुख पृष्ठ पर एक परिवर्तन दिखाई देगा कि श्रीयुत गोपीचंदजी चोपड़ा का नाम संपादकों में नहीं रहा है। गत ८ अंकों के संपादन में जिस परिश्रम और लगन के साथ आपने कार्य किया था—उसके लिये हम आपके आभारी हैं—और आशा है आपका नाम न रहते हुए भी हमको बराबर आपसे सहयोग मिलता रहेगा।

Reg. No. C 1668.

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं भंवरचन्द बोथरा द्वारा
२८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता से प्रकाशित।

वर्ष ७ संख्या १० फरवरी १९३७

सच्चा जैनत्व है समभाव और सत्य दृष्टि जिनका जैन शास्त्र क्रमशः अहिंसा तथा अनेकान्त दृष्टि के नाम से परिचय कराता है। अहिंसा और अनेकान्त दृष्टि—ये दोनों आध्यात्मिक जीवन के दो पंख (पर) हैं अथवा दो प्राणप्रद फेफड़े हैं। एक आचार को उज्ज्वल करता है तब दूसरा दृष्टि को शुद्ध और विशाल बनाता है।...जीवन की तृष्णा का अभाव और एक देशीय दृष्टि का अभाव, यही सच्चा जैनत्व है। आज सच्चे जैनत्व और जैन समाज इन दो के बीच जमीन आसमान का अन्तर है।

—पण्डित सुखलालजी।

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— विजयसिंह नाहर, बी० ए०
भँवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

शुभ सम्मति

श्रीयुत बी०, एल० सराफ, बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०

मंत्री, मध्य प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ने 'ओसवाल नवयुवक' के विषय में लिखा है :-

"राष्ट्रीयता के मूल मंत्र को साथ लेकर चलने वाले जातीय पत्रों का जीवन सार्थक, चिरस्थायी, तथा वांछिनीय कहा जा सकता है। इसी तरह का जीवन है इस पत्र का! सुधार के तथा उन्नति के लिये पत्र के नवयुवकोचित हृदय में लहरें उद्वेलित हो रही हैं। जातीय सुधार की भित्ति जहाँ राष्ट्रीय है, वहाँ उस जातीय सुधार का हामी हर एक व्यक्ति चाहे वह उस जाती का हो या नहीं, हृदय से अह्वान करना अपना क्षति समझता है क्योंकि केवल एक संस्था द्वारा ही इस बृहत राष्ट्र का उद्धार होना नितांत कष्टसाध्य है, प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है।

पत्र की विचारधारा स्फूर्ति प्रदान करनेवाली है। सुधार के विचारों में क्रियात्मकता लाने की लालसा पत्र के हृदय में बहुत उत्कट है। जाति के जीवन-मरण के प्रश्नों पर जो प्रकाश डाला गया है, उस ओर क्रियात्मक कार्यक्रम द्वारा इन प्रश्नों का हल होना आवश्यक है। बजाय इसके कि हजारों लाखों रुपयों का खर्च मुकदमेंबाजी में होवे, जाति के इस मुखपत्र को पुष्ट करने का कार्य कई गुना अधिक पुन्य प्रदान कर सकेगा।

जैन जाति तथा वर्ग में अन्य वर्गों का भ्रातृत्व स्थापित हो, इस ओर भी पत्र काफी प्रयत्नशील है। विचार प्रवर्तक कुछ लेख भी हमारे पूर्व परिचित पं० सुखलालजी तथा पं० दरबारीलालजी की धारावाही लेखनी से निकले हैं—पत्र का कष्ट तथा प्रयास सराहनीय है। इस सुधार के बिगुल बजाने वाले नवयुवक को ईश्वर उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करे यही हमारी सदभावना है।

लेख-सूची

[फरवरी, १९३७]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१—'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः ।=) रहेगा।

४—पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता-परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:—

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	४०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	१३)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] फरवरी, १९३७ [संख्या १०

क्यों ?

श्री दिनेशनन्दिनी चोरड़िया

यदि प्रेम को प्रकट करने में यौवन की माधुरी है, तो तारक-बालाएँ क्यों सदियों से मौन तड़पती हैं ?

यदि प्रेम को गुप्त रखने में जीवन की पूर्णता है तो पपीहा पिउ की पुकार से क्यों विश्व के सामूहिक विरह को जाग्रत कर रुला देता है ?

— चाँद से

वर्तमान शिक्षा-पद्धति

[श्री छोगमल चोपड़ा बी० ए०, बी० एल०]

संवाद पत्रों के पाठकों को मालूम होगा कि पिछले २—३ महीनों में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के वार्षिक उत्सवों पर कई प्रख्यात व्यक्तियों के भाषण (Convocation addresses) हुए थे। अपने अपने अनुभव के अनुसार ही सबने भाषण दिये थे। किसी ने वर्तमान शिक्षा पद्धति को अच्छा बतलाया, किसी ने उसकी त्रुटियाँ बतलाई, किसी ने शिक्षा-व्यवस्था का आमूल परिवर्तन करने को कहा, किसी ने औद्योगिक शिक्षा का महत्व बतलाया और किसी ने समाजहितकर शिक्षा के साथ-साथ भारत की अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये कहा। पर "नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नं"—सब का एक राय होना सम्भव भी नहीं; तो भी सबकी राय में एक बात का स्पष्ट इशारा मिलता था कि वर्तमान उच्च शिक्षा में किसी ऐसी वस्तु का जरूर अभाव है जिसके कारण आज शिक्षितों में बेकारी बढ़ती जा रही है - आर्थिक समस्या विकट रूप से दिखाई दे रही है। विषय गम्भीर है- समस्या गुरुतर है। इसका समाधान एक की चेष्टा से होना कभी सम्भव नहीं। सामूहिक मनोभाव में परिवर्तन होने से ही शिक्षा व्यवस्था का यथोचित संस्कार या सुधार, परिवर्तन या परिवर्द्धन हो सकेगा।

भारतीय संस्कृति, शिक्षा-दीक्षा सर्वदा सात्विक भाव को प्राधान्य देती है। संतोष ही समस्त सुख का कारण है, और संतोष तब ही सम्भव है, जब लोभ का प्राबल्य घटाया जाय। तृष्णा को नियन्त्रित न करने से ही समस्त प्रकार का अनर्थ उत्पन्न होता है। मनुष्य चराचर विश्वका एक उच्च कोटि का प्राणी है। विकास के हिसाब से मनुष्य जीव मात्र में सबसे उच्च श्रेणी में है। मनुष्य भव से ही जीव मुक्ति को पहुँचता है। मनुष्यों में ही समाज व्यवस्था है। यद्यपि प्रत्येक जीव अपनी अपनी शक्ति से आत्मविकास के लिये उद्यम करता है और इस कार्य्यक्रम में वह संपूर्ण स्वतंत्र है, तथापि समाज-स्थित जीव स्वेच्छा से अपनी स्वतंत्रता को आंशिक रूप से सामाजिक व्यवस्था के पारतंत्र्य के आधीन कर देता है। प्रत्येक जीव आत्म-विकास या मुक्ति-साधन के लिये सम्पूर्ण स्वतंत्र होते हुए भी उस स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता में नहीं परिणत कर सकता। पाश्चात्य राजनीति में भी प्रत्येक मनुष्य कुछ हद तक सम्पूर्ण स्वतंत्र हैं पर समाज की विधि व्यवस्था उन्हें भी माननी पड़ती है, इसलिये परतंत्र भी हैं। स्वच्छन्दता तो केवल प्राकृतिक नियमों को मानती है। केवल प्रकृति के वश ही जो प्राणी चलता है, वह अन्त में निरंकुश बन जाता है और अनेक आपदाओं को खींच लाता है। यह बात ठीक है कि व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है और मुक्ति प्रत्येक प्राणी का ध्येय है तथा उसे पाने के लिये प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र भी अवश्य है। परन्तु ध्येय के संधान में लगा हुआ मनुष्य भूल न कर बैठे, उच्छृङ्खल न हो जाय, इसलिये उसपर निरीक्षण करना समाज का

कर्तव्य है। और स्वतंत्रता की तरफ जाता हुआ जीव लक्ष्यच्युत न हो, इसके लिये समाज का होना जरूरी है। समाज का दायित्व इसीलिये बहुत भारी है। मुक्तिकामी जीव सदा स्वेच्छा से इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्भूत रहकर ही आत्मिक विकास के पथपर गमन करता है। आत्म विकास के उच्च सोपान पर आरूढ़ मनुष्य भी पदस्खलन द्वारा नीचे न गिर जाय, यह निम्न सोपान-स्थित मनुष्य भी देख सकता है और समाज-व्यवस्था एक समष्टि का नियम होने से, उच्च स्थानारूढ़ मनुष्य की जैसे निम्न स्थानवाले देख भाल कर सकते हैं, वैसे ही निम्न स्थान वालों की भी उसके समस्थल, उच्च स्थल या निम्न स्थलवासी सब देख भाल कर सकते हैं। जो समाज अपने मुक्ति पथ के यात्रियों की जितनी ही अधिक निगरानी कर सकता है—जिस समाज की व्यवस्था समाजान्तर्गत प्रत्येक जीव की देख भाल के लिये सम्पूर्ण व निरपेक्ष है, वह उतना ही उच्च समाज कहलायगा। जो समाज अपने अङ्गीभूत व्यक्तियों को स्वच्छन्दाचरण से रोक नहीं सकता, वह उतना ही दुर्बल समझा जायगा। अतः समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखते हुए भी, समष्टि के हित को, समष्टि के नियमों को हृदयंगम कर लेना चाहिये और व्यक्ति के इस प्रकार के विकास में शिक्षा की सहायता सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

समाज व्यवस्था के सम्यक् संरक्षण के साथ २ आत्मिक विकास के साधनों को आयत्त करना ही प्रकृत शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये। जो शिक्षा आत्मिक विकास में सहायक नहीं, जो शिक्षा सामाजिक उन्नति में बाधक हो, वह प्रकृत शिक्षा नहीं कहला सकती।

वर्तमान में जो शिक्षा, प्राथमिक, माध्यमिक या उच्च शिक्षा के नाम से अभिहित है, क्या वह वास्तव में मनुष्य के आत्मविकास के लिये साधन स्वरूप है ?

समाज के दो मुख्य कर्त्तव्य हैं (१) समाज को बलिष्ठ व उन्नत बनाना और (२) प्रत्येक व्यक्ति के धार्मिक भाव को दृढ़ कर, धार्मिक उन्नति करना।

समाजोन्नति तब ही होगी, जब समाज में सुव्यवस्था हो, समाज के मनुष्यों में कलुषित भावों को दूर कर सुविचार की धारा प्रवाहित हो, भ्रातृभाव, मैत्रीभाव का प्रसार कर हिंसा, द्वेष, कलह, क्रोध, मान, माया, लोभ को दूर किया जाय, तथा समाज का प्रत्येक व्यक्ति निरोग, बलवान और सुशील हो, इस तरफ ध्यान रखा जाय। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये देश के स्वार्थ का बलिदान न हो, एक समाज से और एक राष्ट्र से दूसरे समाज और दूसरे राष्ट्र की संपूर्ण मैत्री हो। किसी प्रकार लोभ के वश किसी की हिंसा न की जाय, अनेकों को दुःखी कर एक अपनी थैली न भरे, समाज में आर्थिक व्यवस्था ऐसी रहे जिसमें समस्त प्रजा शांति व संतोष पूर्वक रहे। विश्वव्यापी प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने के लिये व्यक्ति, जाति, समाज व देश में सब अपने-अपने कार्य्य से, वचन से और भावनाओं से दूसरों के लिये भयानक परिस्थिति न उत्पन्न करें। प्राचीन जैन विधि के अनुसार केवल मुनि-महाराज ही नहीं, प्रत्युत सब कोई यथाशक्य "जयंचरे, जयंचित्ते, जयं भासे, जयं सए", तथा समस्त कार्य्यों में संयम, सावधानी, और सद्विवेक से काम लें।

समाजोन्नति के पथ पर चलने से धर्मोन्नति का पथ सहजमें ही प्राप्त हो जायगा। सद्विचार व सद्वर्तन के प्राबल्य से ही धर्म की उन्नति होगी। धर्म की

उन्नति द्वारा ही आत्मविकास का उत्कर्ष होगा और लक्ष्य-स्थल सहज में ही प्राप्त हो जायगा।

अब देखना चाहिये कि हमारी शिक्षा में समाज व धर्म की उन्नति का बीज निहित है या नहीं ? आत्म-विकास की समस्त सामग्रियाँ मिलती हैं या नहीं ?

वर्त्तमान जड़वाद के मोहग्रस्त व्यक्ति कहेंगे कि धर्मोन्नति व आत्मविकास एक काल्पनिक व अनिश्चित ध्येय है, सांसारिक सुख-भोग की समस्त सामग्री मिल जाय, ऐसी शिक्षा ही पर्याप्त है। उच्च दार्शनिक तत्वों के पीछे तो भारत अवनति के गड्ढे में पड़ गया। आत्मविकास जीवन का चरमलक्ष्य नहीं होना चाहिए।' इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य मोहग्रस्त व्यक्तियों को भारत की साधना, भारत की संस्कृति बुरी लगती होगी। परन्तु धीर चित्त से विचारने से स्पष्ट मालूम होगा कि जड़वाद के प्रधान केन्द्र, वर्तमान तथाकथित सभ्य जातियों में सच्चा सुख कहां है ? उनकी विद्या-बुद्धि सब विश्व-ध्वंसकारी सामग्री की खोज में लगी है। ईर्षा, द्वेष, लोभादि का प्राबल्य, दुर्बल का पीड़न, धनिकों की मनमानी, यही वहां की वर्तमान सभ्यता का नग्न चित्र है। परलोक, ईश्वर सदाचार, त्याग, वैराग्य, संतोष, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य्य, संयम इन सब से वह अपरिचित है। "खावो, पीवो, मस्त रहो" वाली नीति का सार उन्हें पसन्द है। इन्द्रियों का सुख-भोग ही ध्येय है। विषयोपभोग ही सुख-सार है। पर भोग की लालसा सहज में ही निर्वासित नहीं होती, तृष्णा की अग्नि बढ़ती ही जाती है, यह बात अब मालूम होने लगी है। क्रिया की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। प्रकृति के नियमों के अनुसार अब पाश्चात्य जाति भी सच्चे सुख के लिये लालायित है। आज हमारा अवसर है। भारत को अब अपने पुराने त्याग-वैराग्य, संयम और तप की शिक्षा का पाठ पुनः पढ़ाना होगा; पुराने आदर्शों को उत्थापित कर फिर आज उसे जगत की समस्त जातियों का शिक्षा केन्द्र, तीर्थस्थल बनाना होगा।

हमारी शिक्षा बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी बनानी होगी। सांसारिक उन्नति के साधनों के जानते हुए भी समाज में अधिक संख्यक लोग जिस वैज्ञानिक प्रणाली के कारण बेकार होते हैं, जिसके सहारे प्राकृतिक स्वाभाविक वृत्ति का लोप होकर कृत्रिम साधनों द्वारा लाखों करोड़ों का वृत्ति-छेद होता है, उसे सिर्फ आपत्काल में ही व्यवहार के लिये सुरक्षित रखना होगा। ब्रह्मास्त्र या पशुपत्य अस्त्र विशेष अवसर पर ही काम में लाया जाता है। साधारण अवस्था में उनका प्रयोग लोकध्वंसकर ही होता है अतः हमारे छात्रवर्ग को आर्थिक शिक्षा के साथ-साथ स्वधर्म में दृढ़ आस्थावान बनानेवाली शिक्षा में भी पारंगत बनाना होगा। त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनिराजों के वचनों पर आस्था व प्रतीति रखने की शिक्षा देनी होगी। बाल्यकाल से ही धर्मभाव, प्रेम, त्याग, संयम, और स्नेह के भाव हृदय में अंकुरित करने होंगे। धर्मविहीन शिक्षा को विषवत् छोड़ना होगा। सादगी के जीवन को ही उच्च आदर्श मानना होगा। अपरिग्रही और अहिंसक ही सच्चा सुखी, ब्रह्मचारी ही सच्चा बली है, यह भावना हृदय में डाल देनी होगी।

वैज्ञानिक साधनों का उपयोग अपनी पुरानी संस्कृति की उत्कर्षता दिखलाने के लिये करना होगा। हमारी शिक्षा का स्रोत नयी धाराएँ प्रवाहित करेगा। दान और दया, त्याग और वैराग्य, संयम और तप, की सच्ची व्याख्या, सच्चा आदर्श स्थापित करना होगा। हमारे शिक्षित युवक यूरोप-अमेरिका के समस्त पूर्व पुरुषों से परिचित हों, और स्वदेश के महा-पुरुषों

को नहीं जानने, यह हालत असहनीय है। घर को जान कर, पीछे पर को जानना उचित है। घरके खजाने का हिसाब लगा लेने से दूसरे के वैभव का माप करना सहज होगा। जैन गणितज्ञ को असंख्य व अनंत के परिमाप से मालूम होगा कि पूर्व महा-पुरुषों की दृष्टि कितनी विशाल थी। जैन युवको! ओसवाल नवयुवको। भारतीय युवको! जरा अपनी अमूल्य रत्न-राजि से परिचित होइये, तुलनात्मक दृष्टि से अपनी संस्कृति का प्रकृष्ट परिचय स्वयं कीजिये और दूसरों को कराइए। उच्च शिक्षा की सार्थकता तब ही पूर्ण होगी।

त्याग

[श्री पूर्णचन्द्र जैन एम० ए०, 'विशारद']

रवि! जला निज स्वर्ण-तन रे!
विश्व को कर चिर-प्रभा-मय;
जगत् निद्रा त्याग देखे
बलि सदा है सजग करती।
पिघल निज कण-कण गला रे!
देर क्यों है? मेघ! रस भर;
लुप्त धूमिल आवरण हो,
तप्त-भू फिर दिखे हँसती॥१॥
स्नेहमय री वात्तका! जल
विपम पीड़ा से न डर री!
भेद तम, तव किरण चमके
ठोकरों से बच, बढे जग।

× × ×

वेदना!—चिर-सहचरी वह!—
त्याग! तू चिर-बन्धु बन रे!
सङ्ग पा इनका, अरे हृद!
चल निडर; कुछ तो दिखा मग॥२॥

भगवान् महावीर के प्रति

[श्री बी० एल० सराफ, बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस०,]

मंत्री, मध्यप्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

समाज के तत्कालीन हवनकुण्ड की प्रचण्ड हुताशन तो नरमेध के वास्ते भी तैयार थी। यज्ञ के अनर्थकारी टीकाकारों ने गीता की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा या देख कर भी उसका महत्व न समझा। मूक जीवों के कलेवर से ही सन्तुष्ट होने की भावना अपनी चरम सीमा पर थी। वैशाली मल्ल, शाक्य, कौशल, मगध और मिथिला जैसे गण-राज्यों तथा प्रजातंत्र-शासनों के होते हुए भी समाज में वैषम्य बढ़ रहा था। मनुष्य को हृदय लगाने में बाधाभूत अपने को श्रेयस्कर समझनेवाले प्राणियों की अनृत भावना उद्दण्डता में सिर उठाये हुए थी। सत्यता के ऊपर आवश्यकता से अधिक आवरण था जो उसे प्रकाशित ही नहीं होने देता था। सब इस ढकी हुई आडम्बरित वस्तु को ही नमन करने लग गये थे। सत्यता और मोक्ष की राह की ओर दौड़ लगानेवाले अपनी धुन में मस्त थे। केवल तपस्या भले ही मोक्ष सम्पादन न करा सके, निरा ज्ञान भी उस अनन्त के साथ सम्बन्ध जोड़ने को पर्याप्त न हो, केवल दृश्यमान खोखली भक्ति और चन्दन-चर्चन भी अक्षय सत्य के साथ में साक्षात् कराने में समर्थ न हो, जीवों के प्राणों पर पैर रख उनके अस्थि मांस से पुष्ट तथा समृद्धि-शाली होने की वासना भले ही अमोक्षकर हो, पर अपनी दौड़ कम कर खड़े हो पीछे देखने का इन धावकों को अवकाश नहीं था। यदि ऐसे समय में प्रकृति ने स्वतः त्रस्त हो अवतार के लिये आवाज उठाई तो स्वाभाविक ही था। यदि प्रकृति की पुकार पर त्रिशला--नन्दन-और शुद्धोधन कुमार के दर्शनों ने कुण्डग्राम्य और कपिलवस्तु की त्रासोन्मुखी प्रजा को पुनीत किया तो क्या आश्चर्य ?

आत्मान्वेषण या सत्यान्वेषण के दुर्गम पथ के उभय पथी विघ्न बाधाओं के बीच में भी अपने को भूले नहीं, यद्यपि थोड़ा अन्तर भले ही रहा। एकने यदि तात्कालिक मात्रा द्वारा चिकित्सा की तो दूसरे ने शाश्वतिक प्रयोगों का उपयोग किया। एक यदि अनिवर्ज्य पथानुगामी हुए तो दूसरे 'क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया' पर चल कर वहां जन समूह को ले जाने में प्रयत्नशील हुए। विश्व को दुखों से छुड़ाने का दोनों ने निष्कपट प्रयास किया। एक ने यदि अचल ब्रह्मचर्य व्रतधारण द्वारा मानव जीवन की अन्तिम दुर्बलता को तिलांजलि दे दी और उस पर विजयी हुए, तो दूसरे ने उसके शरीर में होते हुए भी उसमें सम्मोह को स्थान नहीं दिया। एकने व्यवहार को भी अप्रधान कराते हुए मनसाकृत कर्म में ही हिंसा देखी तो दूसरे ने मंशा के पैमाने को तिरस्कृत करते हुए कार्यफल मात्र में हिंसा देखी।

निविड़ आकुलित तिमिर युग के अवसान के बाद, प्रभात पत्नी उषा ने जगद्वन्द्य सिद्धार्थ-सूनु शान्तमूर्ति महावीर के अवतरित होने पर अपने मुखारविन्द पर

प्रसन्नता प्राप्त लालिमा प्रदर्शित की, तो क्या आश्चर्य ? यदि इन विभूतियों के सिद्धान्तों और कृतियों ने विश्व-विजय की तो क्या आश्चर्य ?

भगवान न केवल अहिंसा के ब्रह्मास्त्र को लेकर अवतीर्ण हुए थे किन्तु जीवमात्र की समानता को प्रत्यक्षीभूत करने आये थे। विचारवैषम्य द्वारा होने वाले विरोध के शमन को स्याद्वाद जैसी विभूति के साथ भगवान ने दर्शन दिया था।

भगवान वर्धमान का अहिंसा और विश्वशांति का पाठ अज्ञान और कर्तव्य के छिपाने का विधान मात्र नहीं था। उसका जन्म नाथवंशी युद्धवीर क्षत्रिय-कुल-पुंगव के परीक्षित और विक्रान्त हृदय में हुआ था।

जिनेन्द्र की तपोपूत आत्मा ने वास्तव में इन्द्र-वायु अग्नि-भूति जैसे गणधर, श्रेणिक, बिम्बसार और अंगेश कुणिक, अजातशत्रु, कौशल रक्षक प्रेसेनजित ही नहीं किन्तु जेष्ठा, चन्दना चेलना इत्यादि धर्माङ्गनाओं के हृदयों को भी आलोकित किया तथा विश्व शांति और भ्रातृत्व फैलाने को दीक्षित किया था।

"न गच्छेज्जैन मन्दिरं' के शमन करने की शक्ति सौम्यमूर्ति जिनराज ! तुम्हारे हाथ ही में है। अर्थवाद की ओर क्षिप्रगति से दौड़ने वाले संसार को रुकाये वगैर विश्व कल्याण हो ही नहीं सकता। पर इसका सिहरा तुम्हारे जैसों के सिर पर ही बांधा जा सकता है। सिद्धान्तों की दिग्विजय की वाञ्छा जिनके हृदयों में उद्वेलित रहती है उनका शौर्य्य आज कल की जैन समाज के हृदयों में प्राप्त कराना तुम्हारी ही कृपा पर अवलम्बित है।

भगवन् ! तुम्हारे द्वारा प्रचारित धर्म में भगवान बुद्ध की प्रश्न अवहेलना को स्थान नहीं। प्रभु ईसाकी दया तुम्हारे जैसी तपस्या निष्णात नहीं। वस्तु निरूपण में बात बात में युद्ध होने की आवश्यकता को तुम्हारे सापेक्षवाद ने सदा के लिये दूर कर दिया। प्राणी मात्र से जहां भ्रातृत्व हो सकता है वहां राष्ट्र की स्वातन्त्र्य लिप्सा और एक उद्देश्याधिकृत बन्धुत्त्व का प्रश्न उठाने की आवश्यकता ही नहीं। वह तो स्वभाव से ही उस में गर्भित है किन्तु वहां राजनीति की ग्रन्थियाँ खोलने वाला कर्मयोगी गांधीत्व नहीं।

असिधारी हाथ कृपाणरिक्त होते हुए भी विश्व नायकत्व सफलता पूर्वक कर सकते हैं, इसका तुम से बढ़कर और कौन उदाहरण हो सकता है ? निरतिशय क्रान्ति के युवराज का हृदय इतनी अबाध शान्ति से शासित हो यह भारतवर्ष के ही भाग्य और जलवायु की विचित्रता है।

क्षत्रिय के नृशंस, दयाविहीन और कर्कश हृदय मे विश्व शांति की कल्लोल प्राणी दया का अविरल स्रोत, राज्य लिप्सा से ओतप्रोत वक्ष स्थल से मानव समता की आवाज, अपञ्चेन्द्रिय जीवों को भी उद्धार का संदेश, कैसा विचित्र विरोध है ?

तुम्हारे सुन्दर शरीर-सम्पत्ति युत नव हृदय में रुक्ष भयङ्कर, तप-निगृहीत, किन्तु स्वभाव में सरल आत्म-संयम है। देवांगनाओं के मधुर हास्य तथा प्रलोभनों में भी मदन पर रुष्ट हो उसे दहन करने की शिवशक्ति की आवश्यकता नहीं। बिना भाग तथा तलवार के मदन विजय ही नहीं विश्व विजय करने वाले अति-वीर को क्यों न बोधिसत्त्व आदर की दृष्टि से देखते ? कुसीनारा के निर्वाण पथ-गामी ऋषि ने यदि तुम्हें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कह कर विभूषित किया, तो इससे कम बुद्ध भगवान जैसे तुम्हारे प्रति और क्या कह सकते थे ? हृदयों को द्रवित करनेवाले और बरबस आँसू बहा देने वाले उपसर्गों के बीच में भी शांति और

क्षमा के अविचल अवतार, यदि तुम्हारी तपस्या पूर्ववत बनी रही तो क्या आश्चर्य ? यदि विश्व के सबसे बड़े शान्ति के अवतार कहकर तुम्हारा आव्हान किया जाय तो क्या अत्युक्ति ?

तुम्हारे अखंड ब्रह्मचर्य ने यदि देवांगनाओं को लज्जित किया तो तुम्हारे चरित्र की पवित्रता की और किस साक्षी की आवश्यकता ? समकालीन दो महर्षियों में केवल दुर्धर्ष तथा निष्कलंक तपस्या ही तुमको समवशरण में आकाश आसन दिलाने को अलं थी।

तुम्हारे पंच कल्याणकों में यदि दैवी हर्ष न हो तो और किन आत्माओं के आगमन में आनन्द दुन्दुभी निनादित की जायगी ?

तुम्हारे अहिंसा और त्याग व्रत ने यदि शेर–बकरी को एक घाट पानी दिया और समवशरण में खिरनेवाली वाणी का लाभ देकर उन्हें मोक्षोन्मुख बनाया तो इसमें क्या आश्चर्य ? बालसुलभ लीला में ही मदमद कुञ्जर को बद्ध कर दिया और तत्व ज्ञान के सिंहनाद द्वारा यदि अभयता का संदेश प्राणीमात्र को तुमने भेजा, तब गजराज के चिन्ह द्वारा तुम्हारे संकेतित होने में क्या अनौचित्य ? तुम्हारे सिंहगर्जन में मांस भोजी जीव की भक्षणप्राप्त आनंद लिप्सा का दम्भ नहीं, वहाँ प्राणियों को भयभीत करने का घोर निनाद नहीं। तुमने वास्तव में सिंह के नाम में पवित्रता ला दी जिसके बिना सिंह के रूप में मोहकता ही नहीं। उसके सामने हंसते हंसते अपने को मिटा देने की इच्छा ही नहीं हो सकती। तुम भले ही धर्म के आदि संस्थापक न हो पर जिस अमर स्फूर्ति के तुम पिता हो वह अमर स्फूर्ति तो तुम्हें आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के पास तक पहुंचा देती है।

तुम्हारी तपस्या द्वारा दिलाये गये अधिकार छिनाये जाने लगे। तुम्हारे द्वारा खोले गये मोक्ष द्वार अब फिर मुद्रित होने लगे। मनुष्यों के हृदयों में फिर वही संकुचित चित्तता वास करने लगी। प्रचार और विकास का धर्म फिर रत्न खचित मन्दिरों से बाहर आने में शंकित होने लगा। नारी जाति के प्रति तुम्हारी पवित्र और सम्मान भावना का दुरुपयोग काम-लिप्सा तृप्ति के रूप में पुरुष और स्त्री समाज को न जाने किस बीहड़ पथ की ओर ले जा रहा है। मनुष्य को मनुष्य मानने की रसायन तुम्हीं तक परिमित थी। आत्मवाद की फिर अनावश्यकता प्रतीत होने लगी। और द्रव्यवाद का सिंहासन फिर दृढ़ होने लगा जब कि अद्रव्यवान सतृष्ण नेत्रों से केवल जीवनधारणार्थ भोजन के लिये हाथ फैलाये सामने खड़े हुए हैं। अहिंसा का असली रूप फिर अननुकरणीय कहा जाने लगा। बुद्ध भगवान की मृतमांस-भक्षण मीमांसा में फिर मोहकता आने लगी।

महानिर्वाण के समय पावापुरी में छोड़ी हुई तुम्हारी प्रतिनिधि ज्योति यदि इस युग को आलोकित न कर सकी; उपसर्गों पर आंसू बहा देने वाले यदि साधारण परिषहों से भागने का प्रयत्न करने लगे तो तुम्हें आमन्त्रित करने का और कौन अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है ?

अतएव हे वीतराग ! हे विश्व शान्ति के अवतार, अहिंसा, भ्रातृत्व और सत्यशोध में अग्रणी, तथा सामाजिक क्रान्ति के जनक मुक्तदेव दूत ! हे गरीबों और पतितों की सम्पत्ति! हे त्रिशला-त्रास-त्राता, इस पुन्य-भूमि को तुम्हारी पुनीत पद-रज चूमने का फिर अवसर दो।

आंखों की रक्षा

[श्री जेठमल भंसाली एम० बी०, कलकत्ता]

सुन्दर होना कौन नहीं चाहता ? यह मनुष्य की अमर आकांक्षा है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि सुन्दर होना मनुष्य का कर्त्तव्य भी है। और सुन्दर शरीर के लिये सुन्दर आंखों का होना अनिवार्य है, इसमें किसको सन्देह हो सकता है ? आजकल बहुत कम लोगों की आंख जैसी चाहिये वैसी सुन्दर होती हैं, और इसका कारण यह है कि हम आंखों के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। बच्चे के जन्म दिन से लेकर मृत्यु तक आंखों के विषय में पूरी सावधानी रखने की जरूरत है। और तद्विषयक मोटी-मोटी बात जानना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

शिशुकाल –

इस समय में बच्चे की आंखें बहुत कोमल होती हैं। जरा-सी गल्ती होने से आंखें निकम्मी हो सकती हैं। माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि बच्चे की आंख में जहाँ जरा भी दोष देखें, तुरंत उसकी उचित व्यवस्था करें।

जन्म से लेकर दो महीने तक बच्चे की आंखों में पानी, कीचड़ या पीप आदि बिल्कुल न होना चाहिये। यदि ऐसा हो तो उसका निदान आंखों के विशेषज्ञ डाक्टर से तुरन्त करवा लेना चाहिये। देरी करने या असावधानी करने से आंखें चली जाती हैं।

दो महीने बाद बच्चा खिलौने या रोशनी आदि को एक दृष्टि से ध्यानपूर्वक देखने लगता है। यदि वह इस प्रकार न करे तो समझना चाहिये कि उसकी आंखों में दोष है एवं उसका निदान अवश्य होना चाहिये।

बच्चे की आंखों के बीच का कोइया (Pupil) एक दम काला दीखना चाहिये। यदि वह सफेद, भूरा या सुनहरी रंग का दीखे तो यह आंख की भीतरी बीमारी का चिन्ह है जिसका शीघ्र निदान होना जरूरी है।

बहुत से बच्चों में यह आदत पायी जाती है कि वे तिरछे, टेढ़े देखने लगते हैं। कुछ दिनों तक यह आदत जारी रहने से आंखों की मांसपेशियां भी वैसी ही हो जाती हैं एवं जबतक आपरेशन से वे ठीक न की जाय, तबतक वैसी ही बनी रहती है। एवं यह भी देखने में आया है कि जिस परिवार में एक बच्चे की यह आदत हो जाती है, उस परिवार के कई बच्चों की यही तिरछे देखने की आदत बन जावेगी। माता-पिता को इस आदत पर खास ध्यान देना चाहिये एवं इसका इलाज तुरन्त करवाना चाहिये।

बच्चे को टट्टी लगना तो आजकल की साधारण-सी बात समझी जाती है। यदि बच्चे के पतले दस्त दो-एक दिन में ठीक न हों तो सावधान हो जाना चाहिये एवं उसका इलाज अनुभवी चिकित्सक से शीघ्र करवाना चाहिये नहीं तो थोड़े ही दिनों में बच्चा अन्धा हो जावेगा क्योंकि इस बीमारी में बच्चा अपने भोजन के सार (चर्बीवाले अंश) को पचा नहीं सकता एवं इसके फलस्वरूप आंखें अन्धी हो जाती हैं।

बाल्यकाल—

शिशुकाल से निकल कर जब बच्चा बाल्यकाल में पैर रखता है, तब तो आंखों के विषय में और भी ध्यान देने की जरूरत है। इसी ऊमर में बच्चा पढ़ना-लिखना-सीखता है। पढ़ने-लिखने पर उसका भविष्य निर्भर करता है। इस समय में स्कूल मास्टर एवं माता-पिता का खास कर्त्तव्य है कि वे उसकी आंख की पूरी निगरानी रखें। इस समय में यदि थोड़ा-थोड़ा दबाव (strain) भी आंखों पर कई दिनों तक पड़ता रहे, तो आंखें निकम्मी हो जाती है, देखने की शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जाती है। जब वह पढ़-लिख कर संसार-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है, तो चश्मा नं० ५ लगाने लगता है।

स्कूल मास्टर एवं मा-बाप को हरदम ख्याल रखना चाहिये कि बच्चे की आंखों पर दबाव (strain) तो नहीं पड़ रहा है।

दबाव के लक्षण

(१) सिर में दर्द होना।

(२) शाम के वक्त आंखों में थकावट मालम होती है एवं आंखे आकार में भी चौड़ी मालुम पड़ती है।

(३) पढ़ने के समय कई कई अक्षर धुंधले दीखने लगते है, एवं जब बच्चा हाथ से आंख रगड़ता है तब फिर साफ दीखने लगते हैं।

(४) आंखों में जलन या लाली और सूजन आ जाना।

(५) आंख की ढकनियों के किनारों पर छोटे छोटे दाने (Styes) हो जाते हैं।

यदि बच्चा एक तरफ झुक कर पढ़े या लिखे या ब्लेकबोर्ड की तरफ देखते समय या दूर के पदार्थों को देखने के समय आंखे बन्द सी कर ले या पढ़ने के समय पुस्तक बहुत ही आंखो के नजदीक रखे तो समझना चाहिये कि उसकी आंखो पर दबाव पड़ रहा है। इसके लिये चश्मे की बहुत जरूरत है। जो बालक पढ़ने लिखने में पिछड़ा रहे तो समझना चाहिये कि उसकी आंखे ठीक नहीं है*। स्कूल मास्टर एवं मा-बाप को इन लक्षणों पर पूरा ध्यान देना चाहिये, नहीं तो थोड़े ही दिनों में आंखे खराब एवं निकम्मी होने का बहुत डर रहता है।

अब प्रश्न यह है कि आंखो पर दबाव क्यों पड़ने लगता है और इसके कारण क्या हो सकते हैं ? आंखो पर दबाव पड़ने के कारण :—

(१) शरीर का स्वस्थ न रहना—

आंख शरीर का एक खास अंग है। इसलिये शरीर में यदि कोई बीमारी है तो उसका असर आंखों पर जरूर आवेगा। लिखने पढ़ने के समय आंख की मांसपेशियां (muscles) काम करती हैं जो समूचे शरीर के कमजोर होने से कमजोर हो जाती हैं। यदि इस प्रकार की कमजोर मांसपेशियां रहते हुए भी पढ़ने लिखने का काम किया जाय तो बहुत ही नुकसान पहुंचेगा। इसलिये यह जरूरी है कि जिस बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा न हो उसका पढ़ना लिखना एक दम बन्द करवा देना चाहिये। एवं पहले उसका पूरा पूरा निदान एवं इलाज होना चाहिये। जब शरीर पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो जावे, तब पढ़ाना चाहिये। ताजी साफ हवा में रहना, ताकत की दवाओं का सेवन आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

---

* लेखक का यह कथन ठीक नहीं जँचता क्योंकि पढ़ाई में पीछे रहने का कारण केवल आँखों का खराब होना ही नहीं कहा जा सकता। अन्य कारण भी हो सकते हैं।—संपादक

(२) दृष्टि दोष—

स्कूल भेजने के पहले बच्चे की आंखों की परीक्षा करवा लेनी बहुत जरूरी है। काफी दूरी पर से बच्चे को दीवाल-घड़ी दिखानी चाहिये एवं पूछना चाहिये—कितना बजा है ? यदि वह ठीक बता सके तो समझना चाहिये उसकी दूर की दृष्टि ठीक है। इसके पश्चात् आंखों से एक फीट की दूरी पर से सुई में डोरा पिरोने को कहना चाहिये। यदि वह ऐसा कर सके तो समझना चाहिये उसकी नजदीक की दृष्टि भी ठीक है। जो लड़का इन दो साधारण परीक्षाओं में पास हो जाय उसको स्कूल भेज देना चाहिये। यदि आंखों में दोष पाया जाय तो चश्में आदि द्वारा उसकी आंखें ठीक करवा कर तब स्कूल भेजना चाहिये। यदि आंखों में दोष रहने पर भी चश्मा व्यवहार न किया जाय एवं पढ़ना लिखना जारी रखा जाय तो आंखे दिन प्रति दिन खराब होती जावेंगी एवं स्कूल की पढ़ाई में आगे बढ़ना बच्चे के लिये बहुत मुश्किल हो जावेगा।

हरेक स्कूल में आंख परीक्षा करने वाले अक्षरों का चार्ट रहना चाहिये एवं बच्चे को स्कूल में भर्ती करने के समय इस चार्ट से आंख-परीक्षा करनी चाहिये। यह मामूली सी बात है एवं हरेक मास्टर इसे थोड़ी सी मेहनत से सीख सकता है। इस चार्ट की सब से छोटी लाइन को बच्चा २० फीट की दूरी से पढ़ सकता है। दोनों आंखों से अलग-अलग इस चार्ट को पढ़ाना चाहिये। इससे दूर की दृष्टि के दोष का पता लग जाता है। पास की नज़र की परीक्षा करने के लिये एक फुट दूरी से उससे सुई में डोरा पिरोवाना चाहिये या पुस्तक के छोटे हरफ पढ़वाने चाहिये।

इस प्रकार की परीक्षा करने के बाद यदि उसकी आंखों में दोष दीखे तो उस बच्चे के माता-पिता या संरक्षक को इसकी सूचना दे देनी चाहिये एवं जब तक उस बच्चे की आंख चश्मे आदि से ठीक न की जाय, उसे पढ़ना या लिखना न सिखाना चाहिये। जब उसकी आंखे ही खराब हैं तो पढ़ लिख कर होगा ही क्या ? हम एक बच्चे को स्कूल मास्टर के हाथ सोंपते हैं जो उसका भविष्य-निर्माण करने की जिम्मेवारी लेता है। मास्टर का यह खास कर्त्तव्य है कि वह बच्चे के स्वास्थ्य एवं आंखों पर विशेष ध्यान रखे। एवं जहां भी उसमें खराबी देखें तुरंत उसको मिटाने का उपाय करें। जो मास्टर सिर्फ पढ़ाने ही में अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझते है, बड़ी भूल करते हैं। भावी राष्ट्र की नींव इन्हीं बच्चों पर खड़ी की जावेगी, अतएव मास्टरों का कर्त्तव्य बड़ा जबर्दस्त है।

(३) चमकीले पदार्थ—

सूर्य की रोशनी के आंखों पर पड़ते ही वे चकाचौंध हो जाती हैं। इस प्रकार की चमक का आंखों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। हमें इस चमक से आंखों को बचाना चाहिये।

देखने के काच पर या खूब सफेद चमकदार पालिशवाली चीजों पर जब सूर्य का या अन्य चमकीले पदार्थ का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो आंखों पर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आंखों को ऐसे प्रतिबिम्ब से बचाना चाहिये। खास कर स्कूल के कमरों में तो इस प्रकार के चमकीले पालिशदार पदार्थ कभी भी न रहने पावें। डेस्क या टेबिल दरवाजे या खिड़कियों के सामने न होनी चाहिये। ऐसी खुली खिड़की या दरवाजे के सामने मुंह रहने से सूर्य की किरणें आंखों पर पड़ती हैं, जो बहुत खराब है। बहुत बच्चों की आदत होती है कि वे रोशनी को आंखों के सामने

रख कर पढ़ा करते हैं। इससे रोशनी सीधी आंखों पर पड़ती है।

रोशनी या लैम्प पीछे की तरफ होना चाहिये एवं उसकी रोशनी बांये कंधे के ऊपर से होकर किताब पर पड़नी चाहिये। इस प्रकार की रोशनी से आंखों पर बिल्कुल दबाव नहीं पड़ता।

(४) कमरे में अन्धकार का होना-

अन्धेरे में पढ़ना अच्छा नहीं। इसमें आंखों पर बहुत जोर पड़ता है। देखा गया है कि बहुत से विद्यार्थी संध्या के समय पढ़ा करते हैं। ज्यों-ज्यों अन्धकार बढ़ता जाता है, वे किताब को आंखों के नजदीक लेते आते हैं। इस प्रकार की आदत यदि बहुत दिनों तक जारी रहे तो थोड़े ही अर्से में आँखें खराब हो जाती हैं। खास कर स्कूल के कमरों में तो काफी रोशनी होनी ही चाहिये ताकि विद्यार्थी अच्छी तरह से पढ़ सकें। जिस समय वर्षा आदि के कारण कमरों में अन्धकार रहे, उस समय स्कूल में छुट्टी कर देनी चाहिये।

(५) अक्षरों का आकार एवं कागज की चमक—

छोटे बच्चे को बहुत बड़े हरूफ दिखाने या पढ़ाने चाहिये। ज्यों-ज्यों ऊमर बढ़ती जावे त्यों-त्यों अक्षर भी छोटे किये जायें। हरेक अक्षर के बीच में काफी जगह होनी चाहिये। कागज या पट्टी बहुत चमकदार न होनी चाहिये क्योंकि चमकदार होने से सूर्य की रोशनी उस जगह पर पड़ने से उसका प्रतिबिम्ब आंखों पर पड़ता है जो नुकसान पहुंचाता है।

(६) पुस्तकों को पढ़ने का ढग—

किस प्रकार बैठ कर पुस्तकें पढ़नी चाहिये, यह जानना बहुत जरूरी है। बहुत से विद्यार्थी किताबों पर झुक जाते हैं। पुस्तक पढ़ने के समय एकदम सीधा बैठना चाहिये। सिर्फ सिर जरा सा आगे की तरफ झुका हुआ रहना चाहिये। कमर भी एकदम सीधी रहनी चाहिये। झुक कर बैठने से आंखों पर दबाव तो पड़ता ही है पर कमर भी टेढ़ी हो जाती है और कमर-दर्द शुरू होजाता है।

(७) ब्लैक बोर्ड—

अच्छी रोशनी वाले कमरे में विद्यार्थी से ब्लैक-बोर्ड की दूरी २० फीट से ज्यादा की न होनी चाहिये। यदि कमरे में थोड़ा अन्धकार हो तो दूरी २० फीट से भी कम होनी चाहिये। ब्लैक बोर्ड उस जगह रहना चाहिये जहां रोशनी काफी हो। मास्टरों को उचित है कि वे हरूफ मोटे-मोटे लिखें ताकि सबसे पीछे बैठने वाला विद्यार्थी भी आसानी से आंखों पर बिना दबाव पड़े, देख सके।

बहुत दफे देखा गया है कि बच्चे खेल कूद में अपनी आंखों को चोट पहुंचा लेते हैं। जैसे दिवाली के मौके पर आतिशबाजी खेलते समय, या गुल्लीडंडा खेलते समय। जहां तक सम्भव हो बच्चों को ऐसे खेलों से बचाना चाहिये।

युवावस्था—

आंखों का महत्त्व युवावस्था में तो सुविधा और सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत बढ़ जाता है। नेत्रों के सौन्दर्य पर न जाने कितने कवियों की कविता अमर है— कितने प्रेमियों का हृदय निछावर है। अत: आंखों का खूब सावधानी से संरक्षण करना चाहिये।

यह तो मानी हुई बात है कि मनुष्य जवानी में तो

खुद अपनी आंखों की रक्षा करता है। जो मनुष्य सोना, लोहा आदि धातुओं का काम करते हैं या जो मकान आदि बनाने का काम करते हैं उनको ऐसे चश्में पहनने चाहिये जिससे मौके पर आंखों की रक्षा हो सके। यदि आंख के अन्दर कोई पदार्थ जैसे बालू का अंश चला भी जावे तो आंख को रगड़ना न चाहिये ? रगड़ने से आँख की कोमल झिल्ली (Cornea) में घाव होने का डर रहता है। बालू गिरने पर आँख को सिर्फ बन्द कर लेनी चाहिये। ऐसा करने से आंसू ज्यादा परिमाण में तैयार होंगे जिससे बालू बह कर निकल जावेगी। इससे यदि कुछ भी न हो तो किसी आंख के डाक्टर से चिकित्सा करवानी चाहिये। बालू निकलवाने के हेतु अपने इष्ट-मित्र का भी विश्वास न करना चाहिये क्योंकि आपके मित्र इस काम को करने के लिये अपने गन्दे हाथ, रुमाल आदि गन्दी चीजें काम में लावेंगे जो सूक्ष्म कीटाणुओं से भरी रहती है। ये ही सूक्ष्म कीटाणु आंखों में प्रवेश कर जावेंगे।

सूर्य की तेज किरणें आंखों को काफी नुकसान पहुंचाती हैं। इसलिये जब सूर्य खूब जोर का चमकता हो उस समय नीले या गहरे हरे रंग के चश्में व्यवहार करने चाहिये।

यहां हिन्दुस्तान में मोतियाबिन्द की बीमारी (Cataract) बहुत ज्यादा होती है एवं इसका कारण सूर्य की अति गरमी है। आप देखेंगे कि राजपूताना एवं पंजाब में जहां सूर्य-ताप बहुत जोर का रहता है, यह बीमारी बहुत ज्यादा देखने में आती है।

बुढ़ापा—

बुढ़ापे में यह देखा जाता है कि छोटे अक्षर पढ़ने में दिक्कत होने लगती है। इस ऊमर में मोतियाबिन्द की बीमारी तो बहुतों को होती है। इसमें आँख के बीचवाले काले कोइये में एक सफेद टिकड़ी-सी जम जाती है जिसके कारण देखने की शक्ति धीरे-धीरे लोप हो जाती है। बहुत से अनाडी लोग जो अपने को इस बीमारी का खास चिकित्सक कह कर लोगों को ठगा करते हैं, इस टिकड़ी को एक मोटी सुई के द्वारा उस कोइये के सामने से हटा देते हैं जिससे रोगी को दीखने लगता है परन्तु वही टिकड़ी थोड़े दिनों के अन्दर दूसरे प्रकार के उपद्रव पैदा करती है एवं उससे आँख जन्मभर के लिये खराब हो जाती है। परन्तु आँख के विशेषज्ञ डाक्टर आपरेशन द्वारा इस टिकड़ी को आँख के बाहर निकाल देते हैं एवं आँख एकदम ठीक हो जाती हैं। फिर जन्म भर किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहती। इस बीमारी के होने पर थोड़े से रुपयों के लोभ में पड़ कर अपने को हरेक आदमी के हाथ न सौंपना चाहिये। यह आँख का काम है। यदि आप इन्द्र धनुष के नांई रंग आदि देखें; खास कर चमकीले पदार्थों के इर्द-गिर्द एवं इसके साथ-साथ दृष्टि भी कम होती जावे, सिर दर्द भी होने लगे तो अच्छे कुशल डाक्टर से इसका निदान करवा लेना चाहिये; देरी करना ठीक नहीं। थोड़े से दिनों की देरी में आँखें एकदम नष्ट हो जाती हैं।

यदि इस ऊमर में आँखों से पानी ज्यादा गिरता हो या आँखों में कीच ज्यादा रहता हो तो इसका निदान एवं इलाज होना चाहिये। इस कीच के अन्दर सूक्ष्म कीटाणु भरे रहते हैं जो मौका पाकर आपकी आँखों को एकदम निकम्मी बना देंगे।

सिनेमा का आँखों पर प्रभाव—

बहुत से लोग सिनेमा या टाकी-घरों में जाते हैं।

एवंसाधारण लोगों की यह धारणा है कि इससे आंखें खराब हो जाती हैं। यों अति तो हरेक काम में बुरी है, परन्तु यदि मनुष्य हफ्ते में एक बार इसे देखे तो कोई विशेष आंखों पर प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु निम्न लिखित शर्तों का होना जरूरी है—

(१) पर्दे से आपकी कुर्सी की दूरी कम से कम २० फीट होनी चाहिये।

(२) जिनकी आँखें खराब हो या जिनको दूर की चीजें साफ न दीखती हों, उनको बिना अपनी आंखों को चश्मे आदि से ठीक कराये सिनेमा में न जाना चाहिये।

(३) फिल्म बहुत लम्बी न होनी चाहिये। दो ढ़ाई घण्टे से ज्यादा नहीं बैठना पड़े। सारी रात के प्रोग्राम वाले खेलों में तो भूल कर भी न जाना चाहिये।

(४) सिनेमा का पर्दा हिलना डुलना बिल्कुल न चाहिये।

आंखें शरीर में सबसे महत्व का अंग है—सारे जीवन का आनन्द आँखों के पीछे है। संसार में रहते हुए मनुष्य अपने आस—पास के बाह्य सौन्दर्य के निरीक्षण का आकांक्षी होता है। इस प्रकार नेत्र उसके दुःख दर्द को भूलाने में सहायक होते हैं - सचमुच आँखें ईश्वर की सबसे बड़ी देन है और मनुष्य का कर्तव्य है कि हर तरह से उनकी रक्षा करे। *

---

* यह लेख Care of the Eyes नामक पैम्फलेट जो Association for the prevention of blindness, Bengal, के द्वारा प्रकाशित हुआ है, के आधार पर लिखा गया है।—लेखक
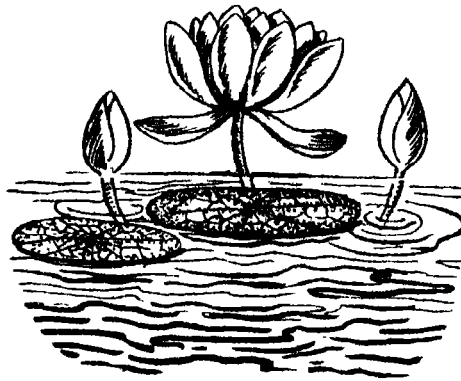
शहीद का मठ

[श्री रामकुमार "स्नातक" विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, हिन्दीप्रभाकर]

श्रीयुक्त रामकुमारजी हमारे पाठकों के सुपरिचित कवि है। उनकी कविता में भाषा और कल्पना के लालित्य के साथ-साथ एक मनोहर ओज और हृदयाकर्षण की शक्ति है। सहज मनोभाव का सरल सुन्दर चित्रण उनके काव्य की एक विशेषता है। लेखक की यह कविता कुछ लम्बी है- पर आदि से अंत तक एक बार पढ़ कर पाठक कविता की 'रणभेरी' से अवश्य आह्लादित हो उठेंगे। --सं०

करता हुआ भ्रमण जा पहुँचा, विजन प्रान्त के मध्य कभी।
उत्सुकतायुत लगा देखने, इधर उधर के दृश्य सभी॥
भव्यस्तूप हुआ अवलोकित, खड़ा हुआ कुछ अन्तर पर।
जिज्ञासा जागी अनुगामी चरण हुए मन के सत्वर॥१॥

देखा द्वार देश पर जाकर अङ्कित था "शहीद का मठ"।
गौरव टपका पड़ता था एवं होता उत्साह प्रगट॥
यद्यपि भग्न शिखर था लेकिन गौरव था साकार अखण्ड।
नहीं भग्न कर सकता उसको कभी काल का चक्र-दण्ड॥२॥

निज कर्त्तव्य पूर्ण कर कोई वीर यहां लेता विश्राम।
मृत्यु स्वयं करती है जिसका आकरके दासी का काम॥
शान्तिमयी बन जाती है इस थल की प्रकृति महा उद्दाम।
इस खँडहर थल पर वारे जा सकते देवों के सुखधाम॥३॥

इन्हीं खँडहरों में सदियों से छिपी वीर की गुण गाथा।
इसे मरण कहदें या जीना नहीं समझ में है आता॥
विजयलक्ष्मी जब कि वीर को स्वयं मुदित हो वरती है।
मृत्यु स्वयं प्रातः सायं आ खड़ी आरती करती है॥४॥

यहां अहो! चिरशान्ति यही तो जीवन का अन्तिम विश्राम।
हा! आलस्य और तन्द्रा को कहते हैं हमतो आराम॥
इस प्रकार से चिन्तन करते अन्दर जबकि प्रवेश किया।
आभा अवलोकन हित मठ को जबकि अग्रदिशि लक्ष्य दिया॥५॥

उस समाधि में युत समाधि था सोता कोई साधक वीर।
वह समाधि थी मानो उसकी दिव्यकीर्ति का शुभ प्राचीर ॥
थी समीप ही भित्ति एक कुछ अक्षर उसपर खुदे हुए।
थे मिटे हुए, कुछ घटे हुए अरु मृतिकागण से अटे हुए ॥६॥

नहीं स्वर्णलिपि किन्तु कहीं उनकी समता थी कर सकती।
जो कि कान्ति उनमें थी भासित कहां स्वर्ण में भर सकती ?
प्रतिपादित था अहो ! वीरभाषा में उसमें जो सिद्धान्त।
पाठक ! उसे सुनाते हैं हम जो होगा सुखकर एकान्त ॥७॥

इस नश्वर जग में हे प्रियवर ! कहाँ भव्यता का है वास।
जय पाती सर्वत्र अशुचिता कर नित शुचिता का उपहास ॥
हंस रूप में बकुलवृन्द विचरण करते सानन्द सहास।
हाय ! मरालावलि कल मानससर को तज फिर रही उदास ॥८॥

सुख समझे बैठा है फँस कर माया ममता के फन्दे।
मुक्ति कहाँ है हे मानव ! ये उलझीले गोरख धन्धे ॥
मुक्ति-मनीषा यदि मन में है बन कर्तव्यी भावुक वीर।
उठ, शहीद बन कर तू प्यारे हरदे देश जाति की पीर ॥९॥

परहित रख न सका जो रण में समुद हथेली पर निज शीश।
कैसे वह निर्बल, दीनों की पा सकता है शुभ आशीष ॥
अश्वारोही बनकर जिसके व्रण से बही न शोणित-धार।
इस भूतल पर सचमुच है वह कायर, गीदड़, भू का भार ॥१०॥

युद्धाङ्गण के विकट व्यूह में खेल गया जो जानों पर।
विजयलक्ष्मी आ बसती है उसके तीर कमानों पर ॥
यदि लोहित की लोहित आभा चमकी नहीं कृपाणों पर।
धिक् ! तेरी तलवारों पर है धिक ! तेरे इन बाणों पर ॥११॥

अरे ! मृत्यु का त्रास ? मृत्यु तो अचल शान्ति की चेरी है।
यही चाँदनी है प्यारे ! तू समझा जिसे अंधेरी है ॥
इस जग के अगणित क्लेशों से नर होता है जब लाचार।
यही सेविका बनती है तब उसका करने को उपचार ॥१२॥

इससे भय कैसा ? यह तो है सरिता शीतल वारिस्रवा।
मृत प्रायों की मात्र यही तो है पियूष समान दवा ॥

जा पूछो प्रल्हाद बाल से मरने का अनुपम आह्लाद।
राय हकीकत से जा पूछो शीश कटाने का सुख स्वाद ॥१३॥

गोविन्दसिंह के भोले बच्चों की क्या नहीं कथा है याद।
वीर तुझे यह बन्दी गृह ही बना सकेगा चिर-आज़ाद ॥

जौहर का उल्लास पूछलो रजपूती बालाओं से।
जो फूलों की सेज त्याग कर जा भेंटीं ज्वालाओं से ॥१४॥

भीष्म पितामह से जा पूछो प्यारे! इसका अगम रहस्य।
अर्जुन के गाण्डीव-बाण से पूछो इसका मूल्य वयस्य ॥

शिवा, प्रताप तथा सांगा से पूछो तो जाकर यह बात।
कितनी मीठी मृत्यु-व्यथा है जो परहित मरते हैं तात! ॥१५॥

नाद यही उद्घोषित होगा मृत्यु वास्तविक जीवन है।
जीवन मरण, मरण जीवन है, आत्मा अमर, क्षणिक तन है ॥

वारिरूप धारण कर नभ से यदि न बरसते कहीं पयोद।
शस्यश्यामला कैसे होती भूमिथली एव च समोद ॥१६॥

भूमिगर्भ में बीज न यदि निज का अस्तित्व मिटा देता।
अन्नराशि से कहो कहां फिर यह संसार पटा होता?

हलकर्षण की तीव्र व्यथा का यदि न मेदिनी सह लेती।
कहो कहाँ से फिर इतने उत्तम फल हमको यह देती ॥१७॥

पुष्प-गुच्छ बलिदानी बनकर अर्पण करे न यदि निज गात्र।
फल द्वारा क्या तरु बन सकता माली की सेवा का पात्र? ॥

दधीचि मुनि की हड्डी से अगर न बनता वज्र कड़ा।
हा! इस पृथ्वीतल पर प्रसृत होता पापाचार बड़ा ॥१८॥

चन्दन से भी मूल्यवती है उस शिवि के चरणों की खेह।
एक कबूतर की रक्षाहित दे सकते जो अपनी देह ॥

हरिश्चन्द्र! तुम धन्य धन्य हो, धन्य धन्य हे कौशलराज!
अबतक तेरी कीर्ति रागिनी प्रमुदित गाता देव जमाज" ॥१९॥

उपसंहार

मत पूछो शहीद की महिमा, मत पूछो तुम उनका त्याग।
उनके ही बलिदानों से तो है पृथ्वी का अटल सुहाग ॥

५

तज देंगे वे जान न लेकिन तज सकते वे आन कहीं।
अस्त समय भी सूर्य देख लो तजता निज लालिमा नहीं ॥२०॥

उनके ही बलिदानों से तो देश, राष्ट्र की भित्ति खड़ी।
उनके ही तो रुधिर, हाड़ से इतनी गहरी नींव गड़ी ॥
कहो विजयलक्ष्मी के क्या उन देशों को दर्शन होते ?
निज अस्तित्त्व न यदि बलिवेदी पर चढ़ कर शहीद खोते ॥२१॥

मेकस्विनी, मेज़िनी जैसों से ही पश्चिम फूला आज।
पीटर से बालक शहीद हो रखते उसकी गौरव-लाज ॥
अब भी तो कासाबिआनका का किस्सा है सबको याद।
सागर, पवन हिलोरों में गूंजा था जिसका विजयी नाद ॥२२॥

अरे ! शहीद कहाँ दुनिया में कहो मृत्यु से डरता है ?
देख शहीदी-शान काल भी उसका पानी भरता है ॥
डर कर अहो ! मृत्यु से ही हम कर न सके नव-आविष्कार।
चन्द्रलोक जाने को प्रस्तुत मृत्युञ्जय पश्चिम-संसार ॥२३॥

व्योमयान, अरु विद्युच्छक्तिमयी ये सारे यन्त्र विधान।
कहीं भीरु, कायर कर सकते क्या ऐसा विस्तृत विज्ञान ?
हम गुलाम होकर भी इतना रखते हैं प्राणों का मोह ?
उन्हें देखलो जो स्वतन्त्र होकर भी इतने बने विमोह ॥२४॥

स्वर्ग हेतु जपलो तुम माला गायत्री भी करलो कण्ठ।
इतने में जा पहुँचेंगे विज्ञान द्वार से वे वैकुण्ठ ॥
अरे तपस्वी ! व्यर्थ साधना, व्यर्थ सभी ये जप, तप, ध्यान।
सच्चा बलिदानी पा सकता, सत्य समझ, सच्चा निर्वाण ॥२५॥

देवी, देवों के गुलाम बन चाहे हम होवें मुदमान।
किन्तु कहाँ इन बातों से है हुआ बताओ देशोत्थान ?
रक्तवारि से सिञ्चित यदि हम कर न सके निज कानन कक्ष।
धिक् वीरत्व हमारा, धिक् ये युगलबाहु, यह पापी वक्ष ॥२६॥

उठ शहीद ! निज हुङ्कारों से घन को दे गर्जन शिक्षा।
अन्यायी को सिखला निज कुर्बानी से तर्जन शिक्षा ॥
मिटा स्वयं को, जग को दे अन्यायों की वर्जन शिक्षा।
प्रलय द्वार से सिखला जग को नव्य सृष्टि सर्जन शिक्षा ॥२७॥

कवि के प्रति

प्रौढ़ा, वासकसज्जा, मुग्धा को तज अबतो हे कवि धीर।
ऐसी रच कविता उठ जावे फिर अर्जुन का वह धनु-तीर॥

चित्रकार के प्रति

अरे चितेरे! जरा खींच दे रणचण्डी की वह तस्वीर।
जिसकी कर पूजा शहीद जाते हैं रणसागर के तीर॥२८॥

गायक के प्रति

हे गायक! तू बहुत गा चुका सरस भैरवी और विहाग।
अबतो गा दे शक्तिमयी वह मारू बाजे का रण-राग॥
लैला मजनू के किस्सों से अब न देश को कर बर्बाद।
गोरा बादल की ललकारों की दिलवादे सबको याद॥२९॥

युवकों के प्रति

फूली कहाँ फूल की क्यारी बिना खाद के हे माली!
बिना प्रभञ्जन बहे व्योम से हटती नहीं घटा काली॥
उसी देश की खरी दिवाली, उसी देश की सच्ची ईद।
धर्म हितार्थ जहाँ पर अपने तन को तजते रहे शहीद॥३०॥

अन्तिम कामना

क्या न कभी भारत के बच्चे सुन पावेंगे यह सन्देश?
क्या अपने वैभव से भूषित होगा कभी न भारत देश॥
पुनः प्रणाम किया उस मठ में सोनेवाले सैनिक को।
पुनः दर्श की लिये लालसा चला कार्यवश मैं घर को॥३१॥

इस कहानी में पढ़िये

लेखक की ओजभरी लेखनी से चित्रित

जौहर की ज्वाला में जगमगाता हुआ राजस्थानी ललना का सौन्दर्य–उससौन्दर्य की समाधि पर कर्त्तव्य की आमरण साधना !

भस्मीभूत सौन्दर्य

[श्री दुर्गाप्रसाद झूंझनूवाला, बी० ए०,]

(१)

काजल के समान काला रात्रि का भयानक अन्धकार चित्तौड़ के दुर्ग पर पड़ रहा था। चारों ओर सुनसान था। चित्तौड़ की गलियों में मानों भूतों का आवास सा हो रहा था। किन्तु इस समय भी हृदय को दोलायमान करती हुई आत्मा की अशान्ति राणा को विचलित कर रही थी। ध्यानमग्न महाराणा सीसोदिया वंश की कुलदेवी का स्मरण कर रहे थे। राणा का हृदय भक्ति भाव से तल्लीन हो रहा था। इसी भावावेश में राणा के मुख से ये शब्द निकले—

"मां, मां, तुम्हारी सन्तान का क्या अपराध है? चित्तौड़ के वंश-गौरव को नष्ट कर देने ही का तो तुम्हारा विचार नहीं है? मुझे क्षमा करो, मां!" राणा का कंठ गद् २ हो उठा। आखोंके कोने से आंसू झांकने लगे। महापराक्रमी राणा के मुख से कांपते हुए शब्द निकले—"सिंह के सन्तानों की यह दुर्दशा! और वह भी निरन्तर हमारी रक्षा के लिये तुम्हारे बैठे रहते हुए, मां! चित्तौड़ के राजवंश की लज्जा तो तुम्हारे हाथ ..."

राणा का कंठ भर आया। वे इसके आगे क्या कह रहे हैं, यह समझ में नहीं आ रहा है। केवल उनके दोनों होठ कम्पित से हो रहे हैं।

देवी की मूर्ति विकरालता धारण करने लगी। एक धीमी किन्तु अखण्ड ज्योति मन्दिर में जग उठी। राणा को एक मेघ-गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा—

"राणा, मैं भूखी हूं।"

राणा की आंखें खुल गईं। उन्होंने देखा, सामने कुल देवी की विकराल मूर्ति मानो संहार का साक्षात स्वरूप धारण किये हुए खड़ी है। उसके एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे हाथमें खप्पर था। किन्तु यह क्या? मां का खप्पर खाली। राणा देवी के उस संहार-रूप को एवं उसके खप्पर को खाली देख कर कांप उठे। उनके मुख से कांपता हुआ स्वर निकला—"मां, अभी भी तुम्हे सन्तोष नहीं हुआ। आज भी तुम्हारा खप्पर खाली ही है, मां!"

"मैं भूखी हूं। मुझे मेरा भक्ष्य दे।" गम्भीर

गर्जन के स्वर में ऐसा कहते हुए देवी ने मानो राणा के हृदय को वेधने के लिये अपना त्रिशूल उठाया। वह संहारक शस्त्र देवी की भुजाओं में नाच रहा था।

"मेरा बलिदान चाहती हो, मां!"– राणा भक्ति-भाव से उठ खड़ा हुआ। त्रिशूल की नोक से अपनी छाती को लगा कर उन्होंने कहा–"मां, मां, मेरे हृदय को छेद डाल! रणभूमि में आठ-आठ हज़ार राजस्थानी वीरों के आत्म-बलिदान पर भी आज तेरा खप्पर खाली है! उस खप्पर को भरने के लिये मैं तयार हूं, मां! अगर तेरा त्रिशूल मेरी बलि नहीं ले सका, मां, तो मैं "कमल-पूजा" प्रारम्भ करूंगा। अपने हाथ से अपना मस्तक उतार कर तेरे चरणों में रख दूंगा, मां और···।"

"मैं तो चाहती हूं राजकुल की बत्तीस हज़ार ललनाओं का बलिदान। राणा, मैं भूखी हूं। मुझे मेरी बलि दे। चित्तौड़ और चित्तौड़ के सूर्यवंश की रक्षा तभी होगी।"

इन शब्दों को सुन कर राणा संभल भी नहीं पाये थे कि वह तेज-पुंज प्रकाश मन्दिर में से लुप्त हो गया। वही रात्रि का घोर अन्धकार छा गया। थोड़ी दूर पर वेदी का दीपक टिम-टिमा रहा था। हवा की लहरों में नाचती हुई इसकी क्षीण किरण-राशि अन्धकार को भेदन करने की चेष्टा कर रही थी। किन्तु वह स्वयं ही मिट जानेवाली एक ज्योति थी।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार से महाराणा बाहर निकले। उनके राजदुर्ग में ब्राह्म मुहूर्त के नगारे बज रहे थे। राणा की गम्भीर मुखमुद्रा पर विषाद की भयंकर छाया दृष्टिगोचर हो रही थी।

× × ×

प्रातःकाल हुआ। वातावरण में ताज़गी नहीं थी। हृदय में उत्साह नहीं था। दरबार ठसाठस भरा हुआ था। रात्रि का भयंकर दृश्य राणा की आंखों के आगे अब भी वर्तमान था। एक ही प्रश्न था–खूनी अलाउद्दीन की सेना को कैसे परास्त किया जाय! राणा ने गत रात की बात दरबारियों से कही। दरबारियों ने कहा–राणा को भ्रम हुआ होगा। कुलदेवी के मन्दिर में राणा पुनः दरबारियों के साथ गये। मन्दिर के गुम्बज़ में से मानो यह गम्भीर आवाज़ मन्दिर में गूंज उठी "राणा, मैं भूखी हूं। मुझे चाहिये राजकुल की बत्तीस हज़ार ललनाओं का बलिदान। बलिदान··· बलिदान···राणा, बलिदान! मेरे खाली खप्पर को भर दे, राणा! चित्तौड़ की कुलदेवी नारी-रक्त की प्यासी है···।"

दरबारी लोग भय से थर्रा उठे। अब क्या होना चाहिये- सबके हृदय में एक नवीन ही उथल-पुथल मच रही थी।

(२)

वह पद्मिनी के रूप का प्यासा था। पद्मिनी के रूप की ख्याति सारे भारतवर्ष में थी। किन्तु, वह महारानी थी चित्तौड़ की। वह सम्राज्ञी थी एक ऐसे देश की जहां के वीर अपनी आन पर जान देना एक खेल समझते थे। वह महिषी थी एक ऐसी जाति की जो अपने महाराणा के लिये अपने प्राणों को कुछ समझती ही नहीं थी। उसके लिये श्रेष्ठ थी केवल अपनी इज्ज़त, अपनी प्रतिष्ठा केवल मेवाड़ी कहलाने का गौरव! उन्हें छेड़ना आग से खेलना था–सिंह के मुंह में हाथ डालना था। किन्तु अलाउद्दीन–वह दम्भी था। भारत की सैनिक शक्ति उसके हाथ में थी। उस समय वह भारत का सम्राट था। उसने अपनी शक्ति से उस छोटे से पहाड़ी किले को जीत कर पद्मिनी

भूमि की सम्मान-रक्षा में रणशय्या पर सो चुके थे। किन्तु उस समय क्या था। चिड़िया हाथ से निकल चुकी थी। महाराणा कुशल पूर्वक दुर्ग में पहुंच चुके थे। दुर्ग का द्वार बन्द हो चुका था। अलाउद्दीन हाथ मलता ही रह गया।

वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा। उसने एक भयंकर इरादा किया। उसकी क्रोधोन्मत्त आत्मा से यह प्रतिध्वनि निकल रही थी "अभिमानिनी, चित्तौड़ दुर्ग के टुकड़े-टुकड़े हो जायंगे, मेवाड़ केवल खंडहर में परिणत हो जायगा, राजस्थान मेरी विध्वंस-लीला से कांप उठेगा, चित्तौड़ की भूमि के चप्पे-चप्पे को उड़ा कर भी मैं तुझे अपनी बनाऊंगा! आह! क्या पद्मिनी के सम्मान का मूल्य केवल इतना ही था!

× × ×

दूसरे दिन मेवाड़ के दुर्ग में राज्योत्सव था। महाराणा के बारह कुंवर थे। उस दिन युवराज को तिलक किया गया। मेवाड़ के छत्र चामर का—सीसौदिया वंश के राजसिंहासन का सम्मान उसे सौंप दिया गया। चार दिन राजसिंहासन का उपभोग करके उसने अपने आधीन वीरों के साथ केशरिया बाना धारण किया। वह पिल पड़ा शत्रु की सेना पे। प्रचण्ड पराक्रम दिखा कर युवराज और उसके वीर अपनी माता की सम्मान-रक्षा में रणभूमि में सो गये।

इस प्रकार एक के बाद एक ग्यारह कुंवरों ने अपना बलिदान दे दिया।

(४)

बारहवें कुंवर ने महाराणा से कहा—"पिताजी, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं तुर्कों को ज़रा मेवाड़ी वीरता का नमूना दिखा आऊं।"

"अजय, अपने जीतेजी मैंने अपने हृदय के टुकड़े ग्यारह ग्यारह पुत्रों को हँसते हँसते अलाउद्दीन की कोपाग्नि की भेंट चढ़ा दिया। इतना सब देखते हुए भी मैं आज जी रहा हूं केवल चित्तौड़ की सम्मान-रक्षा के लिये! किन्तु अजय··· चित्तौड़ की एक मात्र आशा तू है। मातृभूमि का सम्मान एक मात्र तेरे हाथ में है। बेटा, तेरे पराक्रम में मुझे सन्देह नहीं है। देवी के खप्पर में मैं अपने बारहवें और अन्तिम पुत्र का भी बलिदान दे सकता हूं पर ···पर······"

"पिताजी!··"

"बेटा, अजय, चित्तौड़ और राणावंश की रक्षा का भार मैं तुझे सौंपता हूं। इसकी रक्षा करनी ही होगी। · भस्मीभूत चित्तौड़ की प्रलयज्वाला में से तुझे बच कर निकल जाना ही होगा, बेटा!"

"किन्तु अजय अपने पिता के साथ युद्ध-भूमि में जावेगा ही। मेवाड़ के राणा का वशज कभी कायर की भांति युद्ध से पीठ दिखा कर नहीं जा सकता है, पिताजी!"

"किन्तु, बेटा, मेवाड़ की लज्जा जो तेरे हाथ में है। मातृभूमि की लज्जा तो बचानी ही होगी, अजय! चित्तौड़ के भविष्य के लिये तुझे जीना ही होगा।"

"···आह! पिताजी! मेवाड़ के गौरव! क्या यह आपकी आज्ञा है!"

"पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है"—राणा की आवाज़ भर्राई हुई थी।

"·····पिता की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।··· किन्तु, पिताजी, अजय कायर की तरह नहीं भागेगा। पिताजी, विश्वास रखिये। अजय अपने पिता का सच्चा पुत्र है। अजय की नसों में सीसौदिया वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा है। अजय के हृदय में राजस्थानी वीरों का साहस और उन्माद है। पिताजी,

में शत्रु की सेना के बीच से शत्रुओं को अपने पराक्रम का मजा चखाते हुए जाऊंगा। विश्वास रखिये, पिताजी, शत्रु मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता है। अलाउद्दीन को अजय की खाक भी नहीं मिलेगी।"

"जाओ, बेटा, चित्तौड़ की रणदेवी तुम्हारी रक्षा करे।"

अजय ने भक्तिभाव से पिता के चरणों में सिर नवाया।

× × ×

खूनी अलाउद्दीन की सेना चित्तौड़ को घेरे हुए पड़ी थी। पद्मिनी के पीछे वह पागल सा हो रहा था। फिर चित्तौड़ के राजकुमारों के पराक्रम ने तो उसके रोम रोम में आग सी लगा दी थी। क्रोध की इस ज्वाला में उसने चित्तौड़ को विध्वंस कर देने की प्रतिज्ञा की थी।

रात्रि का गहरा अन्धकार हो रहा था। आकाश में बादल हो रहे थे। बादलों की गर्जन और बिजली की कड़क से सबके दिल कांप रहे थे। ऐसे ही समय अकस्मात वज्राघात के समान अजयसिंह और उसके शूरवीर योद्धा चित्तौड़ के गुप्तद्वार की राह शत्रु की सेना पर टूट पड़े। शत्रु की सेना असावधान थी। सब कुछ अव्यवस्थित था। ऐसे समय में अजय के आक्रमण ने भारी काम किया। भयानक कोलाहल मचा। अलाउद्दीन के छक्के छूट गये। अजय अपने साथी योद्धाओं के साथ शत्रुओं की छाती को चीरता हुआ निकल गया। तुर्कों ने उसका पीछा किया किन्तु छूटा हुआ तीर क्या कभी वापिस आ सकता है? अजय सही सलामत केलवाड़ा पहुंच गया। अलाउद्दीन के सिपाही हाथ मलते वापिस लौट आये।

(५)

"प्रिये, चित्तौड़ की कुलदेवी का खप्पर खाली है। वे नारीरक्त की प्यासी हैं। उनकी आज्ञा है कि उन्हें चित्तौड़ के राजवंश की बत्तीस हजार ललनाओं का बलिदान चाहिये। प्रिये, आज चित्तौड़ का राज्य-सिंहासन कंटकाकीर्ण हो रहा है। एक-एक करके अपने ग्यारह पुत्र और सहस्रों योद्धा रणदेवी की भेंट चढ़ा दिये गये। किन्तु फिर भी देवी की प्यास नहीं बुझी। उनका खप्पर खाली ही रहा। अब देवी की आज्ञा की पूर्त्ति के बिना कल्याण नहीं दिखाई पड़ता। प्रिये, अब मेवाड़ के बचे हुए वीरों के लिये सिवा केसरिया बाने के और कोई उपाय नहीं सूझता। किन्तु स्त्रियों का क्या होगा? क्या देवी की आज्ञा पूर्ण होगी।"

"नाथ, मेवाड़ की क्षत्राणियां मरने से नहीं डरतीं! हमारे लिये जौहर प्रस्तुत है। मेवाड़ की मातृभूमि की सम्मान-रक्षा के लिये यदि आप केशरिया बाना धारण करके युद्ध में प्राण त्यागने जा रहे हैं तो मेवाड़ की वीरांगनाओं को जौहर की ज्वाला में जल मरते कुछ भी कष्ट नहीं होगा। प्राणेश्वर, कुलदेवी की प्यास अवश्य बुझेगी। उनका खाली खप्पर मेवाड़ की ललनाओं के रक्त से भरा जायगा। किन्तु मेवाड़ की दर्पशीला नारियां अपना सम्मान शत्रुओं के हाथों बेच कर अपनी मातृभूमि के यश में कलङ्क का टीका कभी नहीं लगा सकतीं। आप प्रसन्न हूजिये, महाराणा! खुशी मन से जौहर की तैयारी कीजिये। आपके समक्ष ही हम नारियां हंसते हंसते अपने आपको अग्नि के अर्पित कर देंगी। फिर आप केशरिया धारण करके अपनी मातृभूमि की सम्मान रक्षा में अपनी बलि देते हुए राजस्थानी वीरों के सुयश को सारे संसार में फैला दीजिये।"

"शाबाश, प्रिये, तुमने चित्तौड़ की महारानी के

योग्य ही उत्तर दिया है। अब इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। कल प्रातः काल जौहर का आयोजन होगा।"

"अहा ! हम लोगों के लिये यह मंगल का दिन है। आज बहुत दिनों के बाद हम नारियों को यह शुभ अवसर मिला है। आज हम अबलायें संसार को यह दिखा देंगी कि किस प्रकार राजस्थान की नारियां आत्म-सम्मान और देश-सम्मान के लिये अपने को हमते हंसते अग्नि के अर्पित कर सकती हैं। यह हमारे लिये गौरव का दिन है।"

× × ×

चित्तौड के राजमहल में भयानक अग्नि की लपटें उठ रही हैं। इस ज्वाला में घी की आहुतियां दी जा रही हैं। चन्दन की सुगन्धि चारों ओर फैल रही है। चित्तौड़ की वीराङ्गनायें सुसज्जित होकर यवनों के हाथ से अपनी शील-रक्षा के निमित्त मृत्यु को सहर्ष आलिङ्गन करने के लिये प्रस्तुत हो रही हैं। कुलदेवी की प्रार्थना के बाद पद्मिनी ने महाराणा से कहा - "नाथ, बिदा दो। अब स्वर्ग में मिलेंगे।" भीमसिंह ने आंखों में छलछलाते हुए आंसुओं को बरबस रोका। यह मंगल का दिन था, विषाद का नहीं। चित्तौड़ का यह दिन गौरव की विभूति से विभूषित था।

"जय अम्बे, जय अम्बे" की तुमुल ध्वनि के बीच चित्तौड़ की देवियों ने सहर्ष अग्नि की ज्वाला में अपने को समर्पित कर दिया। धधकती हुई अग्नि-शिखाओं में प्रवेश करती हुई वीरांगनाओं को उनके पति, पुत्र और पिता आनन्द से देख रहे थे। उनके हृदय का दुःख भी जौहर की ज्वाला में जल कर भस्म हो रहा था।

(६)

चित्तौड़ दुर्ग का द्वार खोल दिया गया। केशरिया बाना पहने हुए सहस्रों वीर "हर हर महादेव" की आवाज के साथ अलाउद्दीन की फौज पर टूट पड़े। अजब समां था। प्राणों की ममता छोड़ कर लड़नेवाले मेवाड़ी वीरों ने गज़ब का युद्ध किया। यवन सेना के छक्के छूट गये। किन्तु अलाउद्दीन की असंख्य सेना से मुट्ठी भर राजस्थानी वीर कब तक लड़ सकते थे। मातृभूमि की रक्षा में सभी वीर रणभूमि पर सर्वदा के लिये सो गये।

इस विध्वंस-लीला के बाद सुलतान अलाउद्दीन पद्मिनी से मिलने के लिये चित्तौड़ के खुले हुए दर्वाजे से दुर्ग के अन्दर घुसा। किन्तु वहां के भीषण दृश्य को देखते ही उसकी आत्मा कांप उठी। भगवान वैश्वानर की प्रचण्ड ज्वाला में चित्तौड़ का राजदुर्ग एवं उसका सारा सौन्दर्य भस्मीभूत हो चुका था। जिस सौन्दर्य की ज्वाला में सुलतान का हृदय जल रहा था, वही केवल मुट्ठी भर राख की ढेरी में परिणत हो गया। चित्तौड़ की सिंहिनियों ने अपने प्राण दे दिये किन्तु अपने सम्मान को उस जौहर की ज्वाला के सदृश ही अक्षय कर दिखाया।

सौन्दर्य की यह ख़ाक सुलतान की विवशता पर हँस रही थी !

महायुद्ध से सन् १९३१ तक पाश्चात्य देशों की 'करेंसी' स्थिति

[श्री पन्नालाल भण्डारी बी० ए०, बी० कॉम०, एल-एल० बी०]

[श्रीयुक्त भंडारीजी की 'करेन्सी' सम्बन्धी लेख माला का पहला लेख गतांक में प्रकाशित हो चुका है। यह दूसरा लेख है—जिसमें विद्वान् लेखक ने सन् १९३१ तक के पाश्चात्य करेन्सी-संकट का बड़े स्पष्ट ढंग से विवेचन किया है, जिसके बिना हमारे देश की करेन्सी स्थिति का समझना भी मुश्किल है। आशा है, पाठक बराबर इन लेखों को पढ़ते जायगे।—सम्पादक।]

महायुद्ध आरम्भ होने के पहले संसार का प्रत्येक अग्रगण्य देश स्वर्णमान को मानता था। महायुद्ध छिड़ते ही लड़ाई में भाग लेने वाले और मध्यस्थ देशों की आर्थिक स्थिति उलट-पुलट हो गई और करेन्सी प्रणाली भी इस झटके से मुक्त नहीं रह सकी। युद्ध में सोना जीवन-मरण का साधन समझा जाता है और उस समय उसके आयात-निर्यात पर सरकार का अंकुश रहता है। ऐसी परिस्थिति में स्वर्णमान का जीवित रहना कठिन जान पड़ा और शनैः २ स्वर्ण-मान के भार से इन देशों को मुक्त होना पड़ा। करेन्सी के बदले में सोना देना स्थगित कर दिया गया।

अमेरिका पर प्रकृति की भारत की नांई महान कृपा है। यह देश कृषि और उद्योग से भरा पूरा होने के कारण स्वावलम्बी है। महासमर में कुछ समय तक अमेरिका मध्यस्थ ही रहा। डॉलर के पुजारी ने धन कमाने का सुन्दर अवसर देख कर लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। उसने यूरोप के देशों को मदान्ध युद्ध-रथ के पहियों में तेल डालने के लिये ऋण देना शुरू किया ताकि रथ की रफ्तार और बढ़े। अमेरिका ने यह नहीं सोचा कि संसार का रवैया असमतौल हो रहा है; देशों के भौगोलिक नक्शे पल-पल में बदले जा रहे हैं। ऋण लेने वाले की अन्त में क्या स्थिति होगी, संसार की आर्थिक-व्यवस्था पर क्या असर होगा इत्यादि प्रश्नों को अमेरिका ने शान्ति के साथ नहीं विचारा। यूरोप के घमासान युद्ध में मानों यह सुदूर देश भी चका-चौंध हो गया था।

युद्ध में लड़नेवाले और मध्यस्थ रहने वाले देशों की उत्पादन शक्ति एकांगी हो जाती है। युद्ध-सामग्री के सिवाय और कुछ उत्पन्न करना असम्भव-सा हो जाता है। चार वर्ष के भयानक युद्ध ने संसार की उत्पादन शक्ति का रवैया बिल्कुल बदल दिया था। अनेक देशों के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। इसलिये सन् १९१८ तक संसार की उत्पादन व्यवस्था में काफ़ी रद्दो बदल हो गया। और वरसाइल की सन्धि के पश्चात् संसार के देशों में संकुचित राष्ट्रीयता का दौर-दौरा होने लगा। आर्थिक स्वावलम्बन भी इस राष्ट्रीयता का एक अंग माना गया था जिसके कारण आयात-निर्यात करोंकी राष्ट्रीय दीवारें खड़ी हो गई थीं। बस, यहीं से करेन्सी के झमेलों का श्रीगणेश हुआ जो बाद में चल कर इतना पेचीदा हो गया कि उसकी गुत्थियों को सुलझाना बड़ा कठिन हो गया।

हर एक देश ने यह प्रयत्न किया कि उसके माल

का विदेशी बाज़ार विस्तृत हो और विदेशी माल का बाजार उस देश में संकुचित होता चले। इस उद्देश्य के कारण से सर–गरमी से स्पर्धा होने लगी। अधिकाधिक माल खपाने की गरज़ से देशी कीमतों को विदेशी माल की कीमतों से कम करने की हरचन्द कोशिश की गई। करेन्सी को इस उद्देश्य-पूर्ति का साधन बनाया गया। इसके पश्चात् ग्रेट-ब्रिटेन और अमेरिका की करेन्सी नीति ही संसार की करेन्सी-नीति का माप-दण्ड हो गया, इसलिये हम पाठकगण के सामने इन दोनों देशों की करेन्सी का विवरण रक्खेंगे ताकि सन १९३१ के पश्चात् का करेन्सी-चित्र देखने में सुभीता हो।

रण-क्षेत्र से लौटनेके बाद अग्रगण्य देशों ने अपनी-अपनी आर्थिक व्यवस्था को दृढ़ बनाने का प्रयास शुरू किया। जिन चीजों का भाव-मान (Price level) युद्ध के समय ऊंचा था, वह अब गिरने लगा तथापि युद्ध के पहले के भाव-मान (Pre-war Price level) से अब भी वह कई गुना अधिक था। ग्रेट-ब्रिटेन में अमेरिका की अपेक्षा भाव-मान ज्यादा गिर गया क्योंकि अमेरिका स्वर्ण-मान-स्थित था और ग्रेट–ब्रिटेन नहीं। परिणाम स्वरूप संसार के बाजार में बनिस्पत अमेरिका-करेन्सी के ब्रिटिश करेन्सी अधिक देनी पड़ती थी। पर सन् १९२२ तक यह अन्तर नहीं सा हो गया।

ग्रेट-ब्रिटेन संसार का बाज़ार है। जब तक यह देश स्वर्ण-मान स्थित न था, तब तक अन्य देशों का उसकी साख पर विश्वास नहीं जमा। अर्थ विभाग के अधिकारी स्वर्ण-मान को अपनाने के लिये उत्सुक थे। भाग्यवश अमेरिका और ग्रेट-ब्रिटेन के भाव-मान ने सन् १९२५ में यह स्थिति पैदा भी कर दी। ग्रेट-ब्रिटेन में युद्ध के पूर्व की सममूल्यदर (Parity) के हिसाब से स्वर्ण-मान स्थिर हो गया। बस, ग्रेट-ब्रिटेन की यही बड़ी भूल थी जो आगे चल कर हानिकारक साबित हुई। ग्रेट–ब्रिटेन का भाव-मान इस समय तक नीचा था। यह तो सर्व विदित है कि यह देश कच्चे माल के आयात पर और पक्के माल के निर्यात पर जीवित है। ऐसी सूरत में वहां के निर्यात व्यापारी माल सस्ता बेच सकते थे किन्तु स्वर्ण-मान स्थिति होने के कारण भाव-मान एक दम ऊंचा हो गया क्योंकि मजदूरी, सूद इत्यादि खर्च सोने के हिसाब से बढ़ गये। व्यापारी इस ऊंचे खर्च को मज़दूरी और सूद-भाव नीचा करने से घटा सकता था, पर मज़दूरों का संगठन होने के कारण और पाउण्ड-स्टर्लिंग की कीमत नियमित रखने के परिणाम स्वरूप साख संकुचित हो गई। इन दोनों का फल यह हुवा कि चीजों को उत्पन्न करने का खर्च बढ़ गया। निर्यात व्यापार कम हो गया - बेकारी बढ़ने लगी।

सन १९२९ में अमेरिका आर्थिक संकट का शिकार हो चुका था। ग्रेट-ब्रिटेन स्वर्ण-मान-स्थित होने के कारण कई देशों की अमानत रखता था। ग्रेट-ब्रिटेन ने जर्मनी, आस्ट्रिया और दक्षिण अमेरिका को कर्ज़ दे रक्खा था, जिसके चुकने की उम्मीद निकट भविष्य में नहीं थी। अन्य देशों को यह शंका थी कि शायद ऐसी परिस्थिति में ग्रेट-ब्रिटेन स्वर्ण-मान से मुक्त हो जाय। उसी समय मे कमीटी (May Committee) ने ग्रेट-ब्रिटेन की आर्थिक-स्थिति पर रिपोर्ट प्रकाशित की जिसकी रुख ने संसार की शंका को और भी पुष्ट कर दिया। बस, फ्रांस और अमेरिका ने अपनी अपनी अमानतें या ऋण इङ्गलैण्ड से खींचना शुरू किया। ऐसी सूरत में ग्रेट–ब्रिटेन को स्वर्ण-मान

स्थगित कर देना था, ताकि पाउन्ड की कीमत घट जाती और लेनदारों को ऐसे समय में अपनी पूंजी लेने में हानि होती। पर यह उचित नहीं समझा गया। शुरू में कर्ज लेकर ऋण दिया गया। रेमसे-मेक-डोनेल्ड इस वक्त प्रधान-मंत्री थे। इस विषय पर अपने साथियों से उनका मतभेद होने से गवर्नमेन्ट ने इस्तीफा पेश कर दिया। नेशनल-गवर्नमेन्ट पाउन्ड की रक्षा के लिये चुनी गयी, पर विदेशों की स्वर्ण-पाउन्ड की मांग इतनी बढ़ गई कि उसकी रीढ़ टूट गई। सन १९३१ में बैङ्क-आफ इङ्गलैण्ड ने स्टर्लिङ्ग के बदले में सोना देना स्थगित कर दिया।

सिक्का-सम्बन्धी स्थिति अमेरिका की अच्छी थी। युद्ध के पश्चात अमेरिका की यह नीति रही थी कि भाव-मान को स्थिर रक्खा जाय। वैसे कृषि और उद्योग में मशीन का अधिकाधिक उपयोग होने से चीजों का दर कम होता था, किन्तु बेङ्कों ने उसी अनुमान पर साख बढ़ाना जारी रक्खा। इसका फल यह हुवा कि उद्योगों में लाभ कई गुना बढ़ गया। उद्योग सम्बन्धी शेयरों के भाव कई गुने ऊंचे हो गये। सट्टे का दौर दौरा बढ़ा और शेयरों की कृत्रिम कीमत होने लगी। ऐसी सूरत में अमेरिका ने अपनी पूंजी विदेश में न भेज कर घर पर ही अधिक लाभ की शोध में लगाई। इतना ही नहीं विदेशों ने भी इस बहती गंगा में हाथ धोना चाहा। अतएव यूरोप से पूंजी का बहाव अमेरिका की ओर मुड़ा। अन्त में सन १९२९ में शेयर के भावों की कृत्रिमता का भण्डा फोड़ हुआ। सिवाय विकट परिस्थिति (crisis) के इसका और फल क्या होता ? अमेरिका अब तक संसार का आकर्षण केन्द्र हो गया था। इस क्राइसिस का फैलाव संसार भर में हुआ और दुनिया अभी तक उस चंगुल से न छूट पाई। और अभीतक अमेरिकाकी करेन्सी नीति में परिवर्तन नहीं हुवा।

महायुद्ध के पश्चात यूरोपके अन्य देशों में करेन्सी की हालत शोचनीय थी। युद्ध ने इन कई देशों की आर्थिक व्यवस्था को जर्जरित कर दिया था। साधारणतया कीमतों की वृद्धि ही लगभग सन १९२४ तक उनकी करेन्सी नीति का मुख्य अंग रहा। जर्मनी इस दौड़ में बाजी मार रहा था। जर्मनी ने प्रेस को ही सिक्का धन (नोटस्) का निर्निमेश झरना समझ रक्खा था। सन १९१९ में जर्मनी का भाव-मान, युद्ध से पहले के भावमान से चार गुना अधिक था। सन् १९२२ में ३४० गुना, पर १९२३ मेंकई लाख गुना हो गया। जिस कागज़ पर नोट छापा जाता था, नोट की कीमत उससे भी कम आंकी जाती थी। सन् १९२७ में रायश नामक सिक्का जारी किया गया जिसकी कीमत स्थिर रखने की व्यवस्था की गई। अब युद्ध से पहले के भाव-मान से ३७ प्रतिशत ही अधिक इस समय का भाव-मान रह गया।

जर्मनी ने अपनी आर्थिक स्थिति के ढांचे का पुनर्निर्माण करने की ठानी किन्तु पूंजी के अभाव में पगु था। अमेरिका को मुख्य साहूकार बनाया गया। शनैः शनैः 'रेशनलाइजेशन' के कारण सन् १९२८ तक जर्मनी की आर्थिक व्यवस्था सुधर गई थी। अमेरिका ने सन् १९२८ में जर्मनी से अपना हाथ खींच लिया। ढांचा डांवाडोल होकर गिरने लगा। जर्मनी तब तक रेशनलाइजेशन की चरम सीमा पर पहुंच गया था। रेशनलाइजेशन में मजदूरी कम हो जाती है, किन्तु पूंजी का भार बढ़ जाता है। जब तक कि माल काफी तादाद में उत्पन्न न हो 'रेशनलाइजेशन' किये हुये उद्योग बजाय लाभ के हानि पहुंचाते हैं। जर्मनी की

मशीनों को चलाने के लिये ग्रेट-ब्रिटेन, डच और स्वीजरलेन्ड ने ऋण दिया किन्तु सूद का वजन बहुत था। विदेशों में स्पर्धा का सामना नहीं हो सकता था। जर्मनी अब अधिकतर दलदल में फँस गया। लेकिन जर्मनी-निवासी हिम्मत वाले हैं। मजदूरी एकदम घटा दी गई और विदेशों में माल खपाना फिर शुरू किया। किन्तु सन् १९३१ में जर्मनी ऋण के भार से बहुत दब गया-मानो अन्तिम सांस ले रहा हो। हूवर मोरेटोरियम (Hoover Moratorium) * घोषित किया गया जिसके द्वारा जर्मनी को ऋण चुकाने की अवधि और बढ़ा दी गई। व्यापार तो विश्वास पर है। इस अस्थायी औषधि ने ठीक काम नहीं किया। नाजी-वाद और साम्यवाद को अब स्वतंत्र क्षेत्र मिल गया था। लोगों की कठिनाइयों से उन्होंने फायदा उठाना शुरू किया। पाश्चिमिक साहूकार देशों को चाहिये था कि अब युद्ध ऋण और रेपेरेशन (reparation) का सवाल तय कर लेते। वातावरण तैयार हो गया था। ग्रेट-ब्रिटेन यह चाहता था। फ्रांस आनाकानी करता था और अमेरिका ने युद्ध-ऋण और रेपरेशन में अन्तर बनाकर संसार में करेन्सी की और भी काली घटायें चढ़ा दी।

फ्रांस में भी मूल्य-वृद्धि (इन्फ्लेशन) रही, किन्तु अधिक नहीं। इस देश की आर्थिक-स्थिति अच्छी थी। सन् १९२८ में यह देश भी स्वर्ण-मान स्थित हो गया किन्तु ग्रेटब्रिटेन की भूल से इसने लाभ उठाया। फ्रैंक (फ्रान्स का कानूनी सिक्का) की कीमत युद्ध-पूर्व कीमत से पांचवा हिस्सा रक्खी गई। इटली ने भी इस सिद्धान्त का अनुकरण किया।

इस प्रकार युद्ध के पश्चात् हम दो प्रकार की नीति पाते हैं (१) युद्ध से पहले की पैरीटी (Pre-war Parity) के हिसाब से स्वर्ण-मानस्थित होना (२) सिक्के का सोने के हिसाब से मूल्य कम कर देना। किन्तु कुछ भी हो पाश्चिमिक अग्रगण्य देश सन् १९२८ तक किसी न किसी रूप में स्वर्ण-मान-स्थित हो चुके थे। यह स्वाभाविक था कि सोने की मांग अब बढ़ती। भाग्यवश दक्षिण अफ्रिका की खदानों में सोना कसरत से निकलना प्रारम्भ हो गया। किन्तु युद्ध के पश्चात् भाव-मान ऊँचा होने के कारण सोने का उपयोग एवं मांग अधिकतर बढ़ गई थी। व्यापार इतना बढ़ गया था कि अधिक सोना उत्पन्न होते हुए भी कम मालूम होने लगा। इस कठिनाई को केन्द्रीय बैङ्कों ने बड़ी चतुरता से पार किया। सिक्के का चलन बन्द किया गया और रिजर्व का अनुपात भी कम कर दिया गया।

महायुद्ध के पश्चात् संसार की आर्थिक-व्यवस्था में दो जहरीले कीड़े लग गये थे जो आर्थिक-समतौलना की रीढ़ को शनैः शनैः खा रहे थे। वे थे युद्ध-ऋण और रेपेरेशन। अमेरिका और फ्रांस इन कीड़ों के अधि-प्राता थे। अन्य यूरोपीय देशों को केवल ऋण या रेपे-रेशन ही नहीं देना पड़ता था किन्तु सूद भी, जिसकी तादाद असहनीय थी। साहूकार देशों ने यह रकम सिवाय सोने के अन्य रूप में लेने से इन्कार कर दिया। संसार में सोना तो सीमित है। दो ही देशों में बहुत कुछ सोने का इकट्ठा हो जाना अन्य देशों की करेन्सी नीति को अस्थिर कर देना था। अमेरिका सन् १९२४ से सन् १९२७ तक इस सिद्धांत को मान कर यूरोपीय देशों को वापिस ऋण देता रहा। सन् १९२८ में अमेरिका में ही पूंजी की मांग एक दम

* ऋण चुकाने की बढ़ी हुई अवधि।

बढ़ गई, इसलिये यह ऋण स्थगित कर दिया गया। सन १९२९ के संकट ने तो मानो इस ऋण-प्रणाली पर अन्तिम सील मार दी। सन् १९३१ तक अमेरिका में यूरोप से बहुत कुछ सोना चला गया। क्रेडिट कम हो गया, फलतः भाव-मान तेजी से गिरता गया। फ्रांस के सिक्के के १९२८ में निश्चित होने के कारण, फ्रांस की पूंजी, जो विदेशों में थी, वापिस फ्रांस में आने लगी। सन् १९२७ से १९२९ तक फ्रांन्स का सोना-रिजर्व दुगुना हो गया। इन कारणों के सिवाय अन्य देशों की करेन्सी-स्थिरता में शंका और राजनैतिक ऊथल-पुथल के फलस्वरूप भी सोना अमेरिका और फ्रांस में जमा होने लगा।

ऐसी स्थिति में ग्रेट-ब्रिटेन जैसे ठोस देश में भी स्वर्ण-मान डगमगाने लगा। स्वर्ण-मान स्थित रहने पर निर्यात-व्यापार के विध्वंस होने की समस्या खड़ी हो गई। क्योंकि सोने के हिसाब से ग्रेट-ब्रिटेन का माल मंहगा पड़ने लगा। अमेरिका और फ्रांस ने जो सोना अपने यहां जमा किया उसको करेन्सी के काम में न लेकर तिजोरियों में रख छोड़ा। इन देशों को यह भय था कि उनके माल की कीमत ऐसा करने से दूसरे देशों की करेन्सी के हिसाब से बढ़ जायगी। अन्य देशों में भाव गिरने के कारण इन देशों ने सोने पर अपना चंगुल और भी सख्त कर दिया।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महायुद्ध के पश्चात् संसार की आर्थिक व्यवस्था में असमतौलता आ गई थी। करेन्सी-नीति और आर्थिक-व्यवस्था के बीच में खाई इतनी चौड़ी हो गई कि संसार को उसके फलस्वरूप अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं। सन् १९३१ के बाद करेन्सी नीति में झमेला और बढ़ गया जिसका विवेचन आगामी लेख में किया जायगा।

अमृत की खेती

मैं भी कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करने में लज्जा) की हरिस, मन की जोत, और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बल है और यह योगक्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हल को मैं नित्य निरन्तर निर्वाण की दिशा में चलाया करता हूँ।

मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से कृषक को अमृत फल मिलता है, और वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

—भगवान् बुद्ध

रजत पट पर..........

श्री श्यामसुन्दर पन्ड्या 'सुशील'

....हम देखते हैं, मानव कहलानेवाले प्राणी की सुन्दर आकृति, चलती, फिरती और हँसती। कला के क्षेत्र में हमें जीवन की झांकी मिलती है, नियति की सुन्दर सृष्टि का दिग्दर्शन होता है, उसे हम देखते हैं और विस्मय विमुग्ध हो जाते हैं!

आज सवाक्-युग का बोलबाला है; कभी मूक युग की भी तूती थी। आज से कुछ वर्षों पहले मूक चित्रपट ही दिखाये जाते थे। संसार को उन्हीं चित्रों द्वारा 'कुछ' समझाया जाता था। मूक युग को एक दिन सवाक् के सन्मुख पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी...... और......? पर, आज भी मूक युग की महत्ता को समझनेवाले हैं—किन्तु अधिक नहीं। किसी कला-मर्मज्ञ का यह मत है कि सवाक् चित्रकला की दृष्टि से पूर्णतया सफलता नहीं प्राप्त कर सकते- उसमें कुछ कृत्रिमता आ जाती है। यह है भी ठीक। सवाक् चित्रों द्वारा शब्द-बद्ध क्रियाओं का ही प्रदर्शन किया जा सकता है। किन्तु उस स्थिति पर जहाँ कि हमें अपनी वाणी एक कोने में रखनी पड़ती है—हम सवाक् चित्रों से क्या आशा रख सकते है! मौन अभिव्यक्ति मानव की वह मानसिक चरम सीमा है जहाँ चल कर हृदय को जवाब का बरदान मिल चुका होता है। मानव की वह उन्नत अवस्था क्या सवाक् चित्रों में प्रदर्शित की जा सकती है? "नहीं"; और निश्चय ही नहीं। फिर भी सवाक् युग ने हमें बहुत कुछ समझाया है।

चित्र आज अनगिनत निकलते हैं। कुछ अच्छे, कुछ बुरे। सवाक्-युग को अवतरित हुए अभी दस वर्ष से ऊपर नहीं हुए! इसी बीच भारत के कुछ कलाकारों की कृतियाँ देख 'भौचक्' रह जाना पड़ता है। वैसे देखा जाय तो आज भारत अपनी गोद में सैकड़ों कम्पनियाँ लिये हुए है। उन 'कुछ' ने न केवल भारत को, किन्तु समस्त संसार को बहुत कुछ सिखाया-समझाया है। उनकी क्षमता को प्रत्येक कलाकार मानता है।

कुछ भारतीय चित्र तो इतने सफल हैं, कि मानव की हृद्-तन्त्री के तारों को एक बारगी ही झकोर डालने की उनमें शक्ति है। भारतीय-चित्र जनता को कुछ क्षणों के लिये रुला कर अपनी वास्तविकता की स्वीकृति ले लेते हैं। आज भारतीय 'फिल्म' संसार की सर्वोत्कृष्ट कृति "देवदास" है *।

एक दोष है! आज के निर्माता जनता के पीछे जाते हैं। उसकी मांग के अनुसार चित्र बनाते हैं। वे बड़े गर्व से उन चित्रों को 'सेन्सर' के श्री चरणों में रख जनता के सन्मुख मनो-रञ्जन के लिये रखते हैं। यह (चित्रपट) कला वास्तव में सर्वोत्कृष्ट कला है। इसमें जीवन है। इसके द्वारा मानव के ढीले तारों को बड़ी आसानी से झनझनाया जा सकता है, उसे इसकी ओट से सुमार्ग पर लाया जा

---

* यह लेखक का अपना मत है। आवश्यक नहीं है कि हम या हमारे पाठक इससे सहमत ही हों।—सम्पादक।

सकता है, साथ ही उसका—मानव का—मनोरञ्जन भी किया जा सकता है। यही इसका मुख्य उद्देश्य है। किन्तु क्या आजकल के सभी निर्माता इसके समर्थक हैं ?

प्रायः समस्त जनता (समालोचकों को छोड़ कर) मनोरञ्जन के लिये ही चित्र देख लिया करती है। इसलिये मनोरञ्जन को मनोरञ्जन के वास्तविक रूप ही में प्रदर्शित किया जाना चाहिये। आज कुछ कम्पनियों ने उसके विकृत रूप को अपनाया है। मनोरञ्जन करनेवाली भोली गरीब एवं अशिक्षित जनता के सन्मुख तो वैसे ही चित्र रखने चाहिये जिसमें वह—जनता—मनोरञ्जन का सत्य स्वरूप देखे, कुछ सीखें तथा अपनी वास्तविकता समझें। जनता की रुचि को सुन्दर या असुन्दर सांचे में ढालना इन्हीं 'फिल्म' देवताओं पर निर्भर है। अच्छा हो वे अपना ध्येय बदल संसार के हित में अपना हित समझें।

'सिनेमा' एक ऐसी आकर्षक कला है जिससे नीच से नीच व्यक्ति की भी प्रवृत्तियों में परिवर्तन हो सकता है। भारतीय-समाज की नीचतम बुराइयों का दिग्दर्शन कराने का यह सर्वोत्कृष्ट साधन है। पुस्तकादि से केवल शिक्षित समाज ही लाभ उठा सकता है—अशिक्षित नहीं। किन्तु इस कला द्वारा अपढ़ जनता भी बहुत कुछ समझ सकती है और लाभ उठा सकती है। हमें इसे अपनाना चाहिये—और प्रेम से अपनाना चाहिये—किन्तु सुसंस्कृत रूप में।

इस कला का क्षेत्र विस्तृत है। किन्तु यह क्षेत्र बहुत कम सभ्य है। डिग्रियाँ प्राप्त कलाकार भी बहुतेरे हैं। पर डिग्रियाँ उन्हें मनुष्यता नहीं समझा सकी—वे अपढ़ से भी हीन श्रेणी के हुए। आज हमें चाहिये संयमी, मनुष्यता को समझनेवाले—कलाकार !

मानव के नाम को सार्थक करनेवाली उन्हीं आत्माओं द्वारा निर्मित—सुन्दर, कलापूर्ण, शिक्षाप्रद, एवं मनोरञ्जक कृति ही भोली, गरीब, शिक्षित एवं अशिक्षित जनता देखना चाहती है……और उसी पूर्व-परिचित:……

…रजत पट पर

हमारे आधुनिक जीवन पर दृष्टिपात

[श्री माणिकचन्द बोकड़िया 'कुसुम']

वह भी समय था, जब हम साहसी थे, निर्भीक थे, सुखी और वैभवशाली थे। सच्चाई और ईमानदारी की अविरल धारा हमारे हृदय में बहा करती थी। हम स्वावलम्बी थे, अपने पैरों पर खड़े होना हमारे लिये एक गौरव का विषय समझा जाता था। प्रत्येक कार्य्य को चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो, हम अपने हाथों से ही करते थे। किसी कार्य के लिये दूसरों का मुंह ताकना हमारे लिये एक अपमान का विषय था आलस्य को तो हम जानते ही न थे और आजकल की बुरी प्रथाएँ हम में न थी। आजकल की तरह जीवन-विपरीत विलासिता मे हम डूबे हुये न थे. हमारा सादगी का जीवन कितना सुन्दर, कितना अनूठा, कितना उज्वल था ? हम कितने सुखी थे उस समय ! कितना आनन्दमय था हमारा जीवन जिसकी स्मृति मात्र से आज हम आनन्द-विह्वल हो जाते हैं।

परन्तु जब हम आजकल के हमारे आधुनिक जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, उसके एक एक पहलु की बिखरी हुई बुराइयों को देखते हैं, तो हम सन्न हो जाते हैं।

हमारा हृदय कांप उठता है, सारा शरीर रोमांचित हो जाता है, आत्मा रो उठती है, आंखों में आंसू छल-छलाने लगते हैं ? हमारा ह्रास, हमारी अवनति, हमारा गिरा हुआ आदर्श देखकर कौन ऐसा युवक होगा जिसके मन में स्वाभिमान की आग न सुलग उठे। हमारा पौरुष आज कहां है ? क्यों हम आज इस तरह शक्ति-हीन हो गये ? हमारे मन में क्या कुछ भी पौरुष का अंश न रहा ? आज भी यदि हम अपने बुजुर्गों की जीवनियाँ पढ़ें तो क्या हमारे मनमें उनकी वीरता की छाप न जमेगी ? जिनकी वीरता का परिचय आज भी राजस्थान का गौरवमय साहित्य हमारे कानों में भर रहा है ! राजस्थान के इतिहास के अमर पत्रों में आज उनकी गुण गरिमा स्वर्णाक्षरों में अंकित है। प्राचीन समय मे हम कितने साहसी थे, हममें कितना वीरत्व था ? जान को हथेलीपर रख कर हम खेला करते थे ?

आज तो रात्रि के विषम अन्धकार में भी कल्पना की भयंकर मूर्तियां हमारे सामने घूमने लगती हैं, सूखे पत्तों की थोड़ी सी खड़खड़ाहट हमें यमराज के दूतों का आह्वान मालूम होता है। यह है हमारा आजका वीरत्व यहां पर यह स्वाभाविक प्रश्न उठे बिना नहीं रहता कि आज हम में से वह शौर्य्य कहाँ लुप्त हो गया जिसके लिये हम रो रहे है ? क्या उस समय हमारे पूर्वजों के चार-चार हाथ पैर थे, जिसके कारण वे अपना नाम अमर कर गये ? नहीं, जितने हाथ पैर उस समय उनको ईश्वर ने दे रखे थे, उतने ही आज हमको भी नसीब है, तो फिर क्या कारण है कि हम आज पौरुष हीन समझे जाते है ?

जब हम बच्चे थे, अपनी अपरिपक्व अवस्था में हिलोरें ले रहे थे, विकास शक्ति के प्रथम प्रांगण में खेल रहे थे, उस अमूल्य समय में हमारे माता-पिता ने हमारे बड़े बूढ़ों ने हमको शिक्षा से दूर रखा, वीरत्व की जगह हम में कायरता कूट कूट कर भर दी गई। जब हम नहीं डरते थे तो जबर्दस्ती डरा धमका कर हमारे कच्चे हृदय में भय की भावना बैठा कर हमको अपने वास्तविक शौर्य्य से अलग कर दिया गया। हमारी उस बाल्यावस्था में भी हम स्वतन्त्र न रह सके, हमारे ऊपर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। हमको अपने प्रति ही इतना अविश्वास है कि माता पिता पुत्र को बाहर नहीं निकालते। बचपन में शिक्षा न पाकर आज हमारा व्यक्तित्व हममें ही घृणा कराता है। दूसरों की क्या कहें ?

हमारे जीवन के पीछे एक ऐसा कीड़ा लगा हुआ है जो हमको मिटाने के लिये जी जान से हमारी जड़ काट रहा है, वह कीड़ा है विलासिता ? विलासिता ने आज हमको इस तरह जकड़ रखा है कि उसके पंजों से निकलना हमारे लिये कितना कठिन हो रहा है ? वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो विलासिता ही एक ऐसी बात है जो जी जान से हमको अवनति के गड्ढे में ढकेल रही है। हमारा आज का सामाजिक जीवन शक्ति-हीन है। उसके विचार से आज की विलासिता अक्षम्तव्य है। हमारे बड़े बूढ़ों, हमारे बुजुर्गों ने, जो सम्पत्ति अपने दिन-रात के अथक परिश्रम से खून को पसीने की तरह बहा कर उपार्जन की थी, उसको पाकर आज हम मुक्त हस्त हो पानी की तरह बहा रहे हैं, पैर-पैर पर तो हमें पान सिगरेट की जरूरत पड़ती है, सेण्ट, लोशन, लेवेण्डर, इत्र, साबुन इत्यादि तो हमारे लिये रोजाना व्यवहार करना रजिस्टर्ड हो गया है और न जाने कितने ही ऐसे तरल और ठोस द्रव्य हमारे धन को गारत करने में तुले हैं। सामाजिक जीवन के इतने आन्दोलित होते हुए भी आज की सभ्य समाज में कभी ठोस, जैसा चाहिये वैसा, कार्य नहीं हो सका। इस दिशा में भी हम पूर्वजों से कितने पीछे हैं ? जहाँ हमें हमारे लिये विद्यालयों, व्यायाम-शालाओं, सभा-समितियों की जरूरत है वहाँ पर हम एक पैसा भी खर्च करना नहीं चाहते। इनके चंदे के लिये यदि सौभाग्यवश कोई आ भी जाता है तो हमारे पेट पर साँप लोट जाता है, मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगती हैं। बाध्य होकर छिपने के लिये उत्तारू होना पड़ता है। चाहे हमारा धन अदालतों के दरवाजे खट-खटाने में स्वाहा हो जाय, फाटके की उदरपूर्त्ति में चाहे हम दानेदाने को मोहताज हो जाय, बाईजी के नाच-मुजरे में चाहे कुलशीला साध्वी-स्त्रियों के गहने और कपड़ों से हाथ धोना पड़े, दूसरों की प्रतिस्पर्द्धा में चाहे हमारा नामोनिशान ही न रहे परन्तु उनके लिये हमारे हृदय में उतना क्षोभ नहीं होता, जितना थोड़ा-सा भी चन्दा देने में। जिस विलासिता को हम आज एक आराध्य देवी की तरह मान कर उपासना कर रहे हैं वही एक दिन हमको सर्वनाश की राख के ढेर के नीचे दफनाये बिना न रहेगी।

ऐक्य और संगठन-शक्ति की जगह आज हममें ईर्षा और कलह आरूढ़ हो रही हैं। यदि आज हममें संगठन होता तो हम अपने को एक दूसरे ही वातावरण में पाते, इस विकृत अवस्था में आज न रहना पड़ता, परन्तु इस 'जयचन्दी' प्रथा ने— जिसने हमारी मातृभूमि आर्य्यावर्त्त को गारत कर डाला और सदियों तक गुलामी की जंजीर में रहने के लिये आबद्ध किया, एक दिन हमारी समाज को भी भस्म करने से बाज न

आवेगी—जल तो वह रहा ही है। जिसका उदाहरण यह है—शायद आज भी ओसवालमात्र, आबाल-वृद्ध-वनिता उस झगड़े के संस्मर्ण से कांप उठता है जो कई वर्षों पहले "श्री संघ विलायती" के नाम से हमारे समाज के प्रांगण में आ चुका था जिसमें भाई-भाई लड़े, पिता-पुत्र अलग हो गये, सगे-सम्बन्धियों को स्नेह-सरिता से किनारा लेना पड़ा। इस सामाजिक महासमर से जितनी क्षति हुई, जितना ह्रास हुआ, वह अवर्णनीय है। जितना व्यय हमने इस कलहरूपी महायज्ञ में किया उतना यदि हम अपनी सगठन शक्ति में लगाते तो आज हमारी काया पलट हो जाती। हम भी उन समाजों में स्थान पाते जो आज उन्नतावस्था मे हैं।

समय प्रगतिशील है। सारे समाज आज अपनी-अपनी आशा लतिकाओं के साथ उन्नत पथ की ओर बढ़ रहे हैं, सभी जातियों में एक होड़ सी लग रही है ? क्या हमको उचित है कि हम यों हीं चुपचाप मौन धारण कर बैठे रहें। नहीं, हमको चाहिये हम भी अपने अदम्य उत्साह से उन्नत पथ की ओर अग्रसर हों, हमारे उत्साह के अगम पथ में जो रोड़े आवें उनको हटा दें, समाज के प्रांगण में जो कुरीतियाँ हों उनको उखाड़ फेंके। हम युवक हैं, तरुण हैं, समाज हमारी ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहा है। हमको उचित है, हम उसकी आशा को पूर्ण करने की कोशिश करें, और करें अपनी अवरुद्ध शक्ति का वह प्रकाशन जिसमें हमें स्वयं अपने जीवित होने का अनुभव हो।

अनोखा न्याय

[श्री गंगाप्रसाद शर्म्मा बी० कॉम०]

विविध विलास-सामग्रियों से सुसज्जित गगन-चुम्बी अट्टालिका में अठखेलियाँ करनेवाले रसिक ! देख, सामने उस जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी में वह चिथड़े पहिने हुए कौन बैठा है ? शायद तेरी मदभरी आँखें तुझे उसका परिचय नहीं लेने देती, नहीं तो तू रो पड़ता !

सुरम्य वाटिका में प्रभात के मनोहर, मन्द, सुगन्धित समीर को झंकृत करती हुई सुमधुर स्वर-लहरी के साथ हिलोरें लेनेवाले दीवाने ! सुन, तेरे बगीचे की दीवार के पास वह कौन रह-रह कर धीमे स्वर से कराह रहा है ? शायद तेरे संगीत-प्रेमी कान इस करुण-संगीत को सुनना नहीं चाहते, नहीं तो तू सिहर उठता !

ग्रीष्म ऋतु की झुलसा देनेवाली आतप में, यौवन की खुमारी में - अन्धा होकर प्रकृति की कृतियों को विकृत करते हुए आखेट के पीछे जी भर कर परिश्रम कर लेने पर अपनी वीरता पर इतरानेवाले उन्मत्त अश्वारोही ! ठहर, उस खेत में वह कौन अस्थिपंजर क्षीणकाय, अभागा यह अद्भुत साधना -- अपने ही में अपने आपको छिपा लेने का प्रयास - कर रहा है ? शायद तेरी मतवाली बुद्धि में विवेक नहीं रहा, नहीं तो तेरा गर्व नष्ट हो गया होता !

विश्व में विपरीतताओं का जाल बिछा कर यह रहस्यमय क्रीड़ा करनेवाले चतुर खिलाड़ी ! बता तो दे, यह तेरा कैसा न्याय है ? शायद तू इस पहेली को समझाना नहीं चाहता, नहीं तो तेरी सत्ता आत्म--तिरस्कृत हो जाती !

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धन सिह महनोत बी० काम]

गताङ्क से आगे

(१५)

सुशीलकुमार के पिता प्रोफेसर लाला जगदीश प्रसाद यद्यपि शिक्षित थे, अच्छी और बुरी का विवेचन बड़ी बुद्धिमत्ता पूर्वक करते थे, पर फिर भी पूरे दुनियावी थे। इधर आस पास में उनके 'अपना' कहलानेवाला कोई न था। एक सुशील ही उनके बुढ़ापे की लकड़ी, उनका एक मात्र सहारा, आंखों का तारा था। उसी के लिये वे आज वृद्धावस्था में भी नौकरी कर रहे थे। यों तो उन्होंने चालीस पचास हजार रुपया इकट्ठा कर लिया था, पर उनकी एकान्त कामना थी कि वे अपने पुत्र को लखपती बना कर मरें। सुशील को सुखी बनाना ही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था।

सुशील के विचार और कार्यों को देख कर उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचा। उनके मनमें एक प्रकार का वैराग्य सा छा गया। वे सोचने लगे कि जिसके लिये वे अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर और अन्तिम अवस्था पर ध्यान न देकर दिन रात परिश्रम करते हैं, जब उसका ही यह हाल है, तब उनको ही इस टटे बखेड़े से क्या करना है? अगर यही वृद्धावस्था ईश्वर भजन में लगाई जाय तो परलोक में बहुत कुछ मिल सकता है।

प्रोफेसर साहब प्रेमालु भी बहुत थे। उनका विचार था कि अगर वे जिन्दा रहे तो बी० ए० पास करने के बाद सुशील का बड़ी धूम धाम से विवाह करेंगे और एक सुन्दर सी पतोहू घर में लायंगे। वे बहुधा स्वप्न देखते कि यह उजड़ा हुआ घर तो तभी बसेगा जब एक नन्हा सा सुन्दर सलोना बालक उनकी गोदी में बैठ कर उनकी मूंछें उखाड़ने की कोशिश करेगा। पर उनके ये सब स्वप्न सुशील के कार्यों की रिपोर्ट अपने मित्र राधाकान्त से पाकर कपूर के सदृश उड़ गये।

जब राधाकान्त ने लिखा कि सुशील पढ़ना छोड़ कर उनके साथ ही शिवपुरी चला आया है और अब पुत्र वियोग से पीड़ित शीला को उसकी बहुत जरूरत है, तब जगदीश प्रसाद को असह्य कष्ट हुआ था। उनका विचार था कि जब सुशील एम० ए० पास कर लेगा तब अधिकारियों से अनुनय विनय कर उसे वे अपने स्थान पर नियुक्त करवा देंगे और स्वयं पेंशन प्राप्त करेंगे। लेकिन अब उनकी नजर में सुशील का भविष्य अन्धकारमय हो गया था। किन्तु अब चारा ही क्या था?

जब राधाकान्त ने शिवपुरी के कृषक-संगठन से डर कर सुशील को उनके पास मधुपुर भेज दिया तब तो वे और भी डरे कि कहीं सुशील मधुपुर में ही उस तरह का कोई उत्पात न आरम्भ कर दे। उन्हें भय था कि उसे मधुपुर में गिरफ्तार होते देर न लगेगी! अब वे इसी चिन्ता में पड़े कि क्या किया जाय?

उन्होंने साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों को काम में लाकर सुशील को बहुत समझाया, पर सब व्यर्थ हुआ।

यद्यपि वे विद्या में, बुद्धि में सुशील से कई गुने अधिक बड़े थे, लेकिन सुशील के तर्कों का, जिसमें एक नग्न सत्य थी, वे उत्तर न दे सकते थे। अन्त में उन्होंने उसे 'मार्ग' पर लाने का प्रयत्न छोड़ दिया और एक पराजित व्यक्ति की तरह सब भार दैव पर छोड़ कर निश्चिन्त से हो गये।

शिवपुरी से अक्सर कई नवयुवक आकर सुशील से मिलते और उसके स्थापित किये हुए सगठन को दृढ़तर बनाने के उपाय पूछा करते। सुशील भी प्राणपण से उन्हें मदद देता। एक दिन शिवपुरी का एक युवक अपने साथ एक अपरिचित अधेड़ व्यक्ति को लाया। शिवपुरी के सब कार्यकर्ताओं को सुशील करीब करीब पहचानता था। इस नवागन्तुक अधेड़ व्यक्ति को उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने उस युवक से पूछा "ये कौन हैं?"

वह युवक बोला "ये शङ्करपुर के रहनेवाले हैं। वहां के जमींदार दीनानाथ बाबू बड़े अत्याचारी हैं। किसानों पर चाहे जो बीते, चाहे अकाल हो या सुकाल, उन्हें तो अपने लगान वसूल करने का ही ध्यान रहता है। 'बेगार-प्रथा' को लेकर इन छोटी जाति वालों पर इतना अत्याचार किया जाता है कि सुन कर छाती फटती है। साथ ही उच्च जाति वाले इन अछूतों पर इतना अत्याचार किया करते हैं कि अन्याय भी सुन कर सकुचा जाय। उस पर भी इन लोगों में परस्पर इतनी फूट है कि आये दिन सिर-फुटौवल होती रहती है। अभी थोड़े दिन हुए जमींदार बाबू के वृद्ध प्राईवेट सेक्रेटरी के मर जाने पर उनके स्थान पर एक नये बाबू आये हैं। उन्होंने ही एक गुप्त संगठन सभा कायम की है। लेकिन गुप्त रूप से कार्य करने से कार्य भली प्रकार हो नहीं पाता और अपने कई निजी कारणों की वजह से वे बाबू प्रकाशित रूप से इन लोगों के साथ मिल कर कोई कार्य नहीं कर सकते। इन लोगों ने आप के शिवपुरी के संगठन के बारे में सुना है और इसीलिये शङ्करपुर के लोगों ने इनको आपको शङ्करपुर ले जाने के लिये शिवपुरी भेजा था। अब मैं इन्हें आपके पास यहाँ लाया हूँ।"

सुशील तो स्वयं ही किसी ऐसे ही अवसर की ताक में था। निठल्ले बैठे बैठे मधुपुर में उसका जी नहीं लगता था। उसने उसी दिन अपने पिता की आज्ञा प्राप्त कर शङ्करपुर जाने का विचार किया। पहले तो जगदीश प्रसाद ने उसे थोड़ा बहुत समझाया, पर फिर यह सोच कर कि आज्ञा न मिलने पर भी यह युवक-हृदय रुकेगा नहीं, आज्ञा दे दी। साथ ही यह भी सोचा कि मधुपुर से शंकरपुर में इसके गिरफ्तार होने का कम डर है।

सुशील कुमार ने उसी दिन शिवपुरीवाले युवक को कुछ आवश्यक बातें समझा कर बिदा किया और स्वय कुछ आवश्यक वस्तुएँ साथ लेकर उस व्यक्ति के साथ शङ्करपुर को चल पड़ा।

जिस समय सुशील शङ्करपुर में जमीदार के भवन के सामने से होकर निकला, उसने देखा कि बाबू राधाकान्त और गोपालचन्द्र तथा उनका परिवार कहीं जाने के लिये उद्यत है। उसने एकदम दौड़ कर बाबू राधाकान्त और गोपालचन्द्र को प्रणाम किया। फिर चाची सरलादेवी को प्रणाम किया। सबने उसकी और उसके पिता की कुशल मंगल पूछी। चाची ने पूछा, "सुशील, तुमने पढ़ना छोड़ कर भारी भूल की। अब तुम्हारी तबियत निठल्ले बैठे बैठे कैसे लगती होगी?"

सुशील नम्रता पूर्वक बोला, "चाची, निठल्ला कहाँ हूँ? आजकल पहले से भी अधिक कार्य है। आपही के उपदेशों पर चलता हूँ। सच्ची और ठोस देश सेवा में हाथ लगा रखा है! बड़े चाचा (राधाकान्त) आपको मेरे कार्यक्रम का हाल सुनावेंगे।"

बाबू राधाकान्त ने संक्षेप में सुशील के शिवपुरी के कारनामे कह सुनाये। फिर गोपालचन्द्र ने सुशील से पूछा,

"आज यहाँ तुम्हारा अचानक कैसे आना हुआ सुशील?"

सुशील बोला, "चाचाजी, अब मेरा तो कार्य ग्राम ग्राम घमना ही है। पर क्या मैं जान सकता हूँ कि आप सब लोगों का यहाँ पधारना कैसे हुआ ?"

गोपालचन्द्र ने शीलादेवी की बीमारी का हाल और उन सब लोगोंका कलकत्ते से शिवपुरी आना तथा जमींदार-पुत्र मदनमोहन के साथ विमला का विवाह निश्चित होना आदि सारा हाल कह सुनाया।

शीलादेवी अभी तक भीतर अपनी बहन के पास थीं, इसलिये सुशील उन्हें न देख सका था। अब जब वे बाहर आईं, सुशील दौड़ कर उनके पैरों से लिपट गया और आंसू बरसाता हुआ बोला,

"मां, मुझे तुमने ऐसा पराया समझ लिया कि इतनी बीमार होने पर भी मुझे अपने कुशल समाचार से वञ्चित रखा।"

इस मातृ-हीन बालक के इस प्रेम को देख कर सबके हृदय उमड़ आये। शीला भी आँसू बरसाती हुई गद्‌गद कंठ से बोली, "तुझे पराया समझूं बेटा ! नहीं, सुशील, मेरे लिये जैसा प्रकाश वैसा तू। पर बेटा, तुम लोगों के इन कर्त्तव्यपूर्ण हृदयों में हम लोगों की माया-ममता को स्थान कहां ?"

शीलादेवी की इस करुणापूर्ण बाणी को सुन कर कमला का प्रेमपगा हृदय रो उठा। उसके हृदय में मोह और कर्त्तव्य में द्वन्द्व होने लगा। सुशील की भी यही अवस्था हुई। सुशील को देख कर कमला को जो आनन्द हुआ, वह शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकता। उसने सुशील को थोड़ा अलग ले जाकर धीरे धीरे कहा,

"सुशील, इस समय मैं तुम से अधिक बातें नहीं कर सकती। मेरे हृदय के भावों को तुम्हारा हृदय आप से आप समझ जायगा। पर मुझे तुम से एक अत्यन्त गोपनीय बात कहनी है। खबरदार और किसी के कान में वह बात न पड़े। भाई, तुम मेरे हृदय हो। इसीलिये तुमसे वह बात कहने में मैं नहीं सकुचाती। यहां जमींदार बाबू का जो प्राइवेट सेक्रेटरी है, तुम उसका पता लगाना कि वह असल में कौन है ? सुशील, उसकी ठीक वही आंखें, वही चेहरा, वही चाल-ढाल और सब कुछ वही है। केवल लम्बी और घनी दाढ़ी मूंछें उनके नहीं थी। और चेहरे में भी थोड़ा बहुत फर्क है। पर मेरी आंखें ऐसी नहीं कि उन्हें पहचानने में भी धोखा खा जाय। इसलिये तुम इस बात का पूरा पता लगाना और मुझे शिवपुरी खबर भेजना।"

यद्यपि कमला ने सुशील को इस ढङ्ग से अलग ले जाकर बातें की थी कि किसी को कोई शक न हो। लेकिन फिर भी दो तेज आंखें बराबर कमला का अनुसरण कर रही थी। पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि ये आंखें किसकी थीं ?

अब सब लोगों के चलने की तैयारी हो गई थी। सुशील भी विमला से यह कह कर कि "विमला बहन, मिठाई तैयार रखना" और सब को प्रणाम कर सबके देखते देखते उस मनुष्य के साथ चल कर वह सबकी आंखों से ओझल हो गया।

(१६)

दीनानाथ बाबू कुर्सी से उठते हुए बोले, "आइये लालाजी। आज आपके लिये एक खुशखबरी है। आपके मदनमोहन का विवाह बाबू राधाकान्त की छोटी भतीजी विमला से ठीक कर दिया गया है। इसी अगली तृतीया को विवाह कर दिया जायगा। लड़की बड़ी चतुर और सुन्दर है। साक्षात लक्ष्मी का रूप है। मेरी समझ में तो मदनमोहन के योग्य इसके सिवाय कोई लड़की ही नहीं है।"

लाला हरदयाल ने जबसे राधाकान्त को देखा, समझ लिया था कि जरूर कुछ दाल में काला है। अब जब स्वयं

दीनानाथजी से यह खबर सुनी तो सारे मन्सूबों पर पानी फिर गया। फिर भी साहस सञ्चय कर बोले,

"नहीं, यह बात तो नहीं है। हमारे जमींदार विजयशंकर की लड़की अनुपमा अपने मदनमोहन के लिये विमला से भी कहीं अधिक उपयुक्त है। अनुपमा के समान सुन्दर और शिष्ट कन्या मिलना बड़ा कठिन है।"

दीनानाथ बाबू मुंह सिकोड़ कर बड़ी घृणापूर्वक बोले, "ऊँह! आप भी किसकी बात करते हैं लालाजी! अजी, सैकड़ों अनुपमा हमारी विमला रानी के सामने पानी भरती है। मैं यह मानता हूँ कि अनुपमा सुन्दर है, लेकिन आपने विमला को देखा नहीं, नहीं तो ऐसी बातें न करते। विमला आपसे और हमसे भी ज्यादा पढ़ी लिखी है। लेकिन फिर अनुपमा भी तो हमारी ही है। मेरे लिये तो जैसा मदनमोहन वैसा ही प्रकाशचन्द्र।"

लालाजी को फिर कुछ कहने का साहस न हुआ। वे चुपचाप दीनानाथ बाबू का मुंह देखने लगे। प्रकाशचन्द्र के जेल जाने और विवाह करने से अस्वीकार करने की बात दीनानाथजी न जानते हों ऐसी बात नहीं थी। उन्होंने कल स्वयं राधाकान्त से सब हाल सुना था और मन ही मन बड़े प्रसन्न भी हुए थे। पर दीनानाथ बाबू बड़ी मीठी छुरी थे। ऊपर से मीठी बातें करना उन्हें खूब आता था।

थोड़ी देर और बैठ कर लालाजी मदनमोहन की खोज में चले। मदनमोहन इस समय उसी बगीचे में बैठा अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा विमला के स्वर्गोद्यान में विचरण कर रहा था। लालाजी को रास्ते में क्रान्तिचन्द्र मिले। क्रान्तिचन्द्र ने लालाजी को देख कर दूर ही से प्रणाम किया और फिर पास आकर धीरे से बोले,

"कहिये लालाजी, अनुपमा जाल में फसी या नहीं?"

लालाजी को एक तो दीनानाथ बाबू की बातों से यों ही दुःख हो रहा था, उस पर क्रान्तिचन्द्र के मुख से यह शुष्क, नीरस और नग्न सत्य सुन कर उनमें क्रोध और भय दोनों ही का सञ्चार हो आया। उन्होंने अपने भाव को यथाशक्य छिपा कर पूछा,

"आप भी कैसी बातें करते हैं सेक्रेटरी महाशय? बताइये इस समय मदनमोहन कहां मिलेंगे?"

क्रान्तिचन्द्र अपनी बड़ी मूंछों पर ताव देते हुए बोले, "लालाजी, याद रखिये, संसार में केवल स्वार्थ-साधन ही सबसे बड़ा पाप है। अगर मनुष्य केवल स्वार्थ-परता में ही निरत रहे तो फिर उसमें और पशु में भेद ही क्या रह जाता है? अपना पेट तो कुत्ता भी भरा करता है। जाइये, मदमोहन बगीचे में बैठे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

लालाजी के उत्तर की प्रतीक्षा न कर क्रान्तिचन्द्र वहां से चले गये। लालाजी को क्रान्तिचन्द्र की बातें सुन कर इतना क्रोध आया कि अगर उनका वश चलता तो वे उसे कच्चा ही चबा जाते। आज तक किसी ने भी लालाजी के मुंह पर इस तरह का उपदेश देने का साहस न किया था। वे मन ही मन यह कहते हुए मदनमोहन के पास चले कि इसमें पाप की क्या बात है? स्वार्थ साधन तो उस समय पाप हो सकता है जब किसी दूसरे की हानि पहुँचे। लेकिन जब किसी अन्य की कोई हानि नहीं होती, तब स्वार्थ साधन किस प्रकार पाप हो सकता है? अनुपमा का विवाह मदनमोहन के साथ करवा देने में कौनसा पाप है? प्रकाश उससे विवाह करना ही नहीं चाहता और मदनमोहन उसके लिये मरता है। मदनमोहन को अयोग्य जान कर तथा उससे घूस लेकर भी और विजशङ्कर की मित्रता से अनुचित फायदा उठा कर भी अगर अनुपमा और मदनमोहन का सम्बन्ध ठीक करा दूं, तो भी पाप से पुण्य ही अधिक होगा। विश्वासघातकता कुछ अंशों में पाप है अवश्य, पर एक सच्चे प्रेमी को उसकी प्रेमिका का दिला देना भी तो कम पुण्य नहीं है। इतना भी पाप पुण्य का विवेचन नहीं कर सकता और चला उपदेश देने। याद रख, लालाजी ने तेरे जैसे सैकड़ों चराये हैं।

मदनमोहन लालाजी को देख कर हँसता हुआ बोला, "आइये, आइये, लालाजी, खूब आये। यार सच कहता हूँ, क्या बढ़िया मसाला मिला है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस पढ़ने की ऐसी तैसी। मैं तो अब मधुपुर नहीं जाने का।"

लालाजी मुंह बना कर बैठते हुए बोले, "रहने दो बचा। मैं खूब जानता हूँ उस बढ़िया मसाले को। कलकत्ते का सड़ा हुआ फूल है। यह सड़ा हुआ फूल पाकर ही इतनी शेखी बघार रहे हो। धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि पर। वह गुलाम बना कर न छोड़े तो मुझे कहना।"

मदनमोहन ठठाकर हँसता हुआ बोला, "गुलाम बनाकर? बस!! अजी माशूक का गुलाम बनने में जो मज़ा है, वह आप क्या जानें? वह तो गुलाम बनाना छोड़ कर अगर प्राण भी लेना चाहे तो मंजूर है। बस, केवल अपने पास बनाये रखे।"

लालाजी उठते हुए बोले, "अबे जा नामर्द। अनुपमा के पांव की बराबरी भी यह कलकत्ते की छोकड़ी नहीं कर सकती। अनुपमा को पाकर तुम कृतार्थ हो जाते पर तुम्हारा भाग्य वैसा कहाँ? थोड़ी सी चटक मटक देखी और लुभा गये। अब भी समय है, चेत जाओ। मैंने तुम्हारे लिये रास्ता साफ कर रखा है। अनुपमा देवी है, उसे पाकर तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा।"

मदनमोहन भी उठ कर बोला, "जानता हूँ लालाजी, कि जो शान्ति, जो उत्साह अनुपमा के प्रेम में प्राप्त हो सकता है, विमला के सहवास में वह नहीं मिल सकता। इस चटक मटक और उस शान्त शिष्ट के अन्तर को भी खूब पहचानता हूँ, पर लालाजी, बैठे बिठाये आफत मोल लेना भी मुझे कम पसन्द है। अनुपमा के साथ विवाह होना अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पिताजी विजयशंकर बाबू पर खूब अप्रसन्न हैं। वे कभी वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करेंगे। विमला को प्राप्त कर मैं शायद सन्तुष्ट हो सकूंगा। ऐसी हालत में अनुपमा को प्राप्त करने की कोशिश कर पिताजी का कोपभाजन बनने की मेरी इच्छा कदापि नहीं है। आपने मेरी प्रार्थनानुसार मेरे लिये जो प्रयत्न किया, उसके लिये मैं आपका बहुत आभारी हूँ।"

लालाजी को और कुछ कहने की इच्छा न हुई। वे मन ही मन मदनमोहन को गालियां देते हुए अपने उसी खच्चर नामधारी टट्टू पर सवार होकर गौरीपुर की ओर रवाना हुए। रास्ते भर वे यही चिन्तन करते चले कि अब अनुपमा के योग्य दूसरा वर और कौन है, जिसके लिये वे विजयशङ्कर से शिफारिश कर सकें। गांव में घुसते ही उन्हें नन्दलाल मिला। रुपये-पैसों के मामलों के सिवा नन्दलाल पर लालाजी का अगाध विश्वास था। उन्होंने उसे सारी घटना सविस्तार सुना कर पूछा,

"अब ऐसा और कौन लड़का है, जिसको इस संकटावस्था में बाबू विजयशङ्कर पसन्द कर सकें।"

नन्दलाल हँसता हुआ बोला, "और जिसे आप बाबू विजयशङ्कर को सुभा कर अकेले ही सारा यश और अर्थ लूट सकें।"

लालाजी किञ्चित भ्रूक्षेप कर बोले, "अरे यार, कैसी बातें करते हो? क्या आज तक भी तुम्हें किसी मामले में सूखा रखा है?"

नन्दलाल भी ऐसा कच्चा बना हुआ न था जो लालाजी के इन सूखे आश्वासनों में आ जाता। वह हँस कर बोला, "पहिले यह बताइये कि अगर वह लड़का, जिसे मैं आपको बतलाता हूँ, बाबू विजयशङ्कर को पसन्द आ गया तो मुझे कितना मिलेगा?

नन्दलाल की इस धृष्ठता पर लालाजी मन ही मन बड़े अप्रसन्न हुए, पर अपना काम निकालने में वे बड़े चतुर थे। बोले, "यार, आज तुम्हें हो क्या गया है जो ऐसी बातें करते हो? क्या आज से पहले भी कभी तुम सूखे टरका

दिये गये हो ? जो मुझे मिलेगा, उसमें से तुम्हें भी मिल ही जायगा।"

नन्दलाल किञ्चित गम्भीर होकर बोला, "आप जो कहते हैं सो बिल्कुल ठीक है। लेकिन लालाजी, अगर मेरा पेट आप से बड़ा नहीं तो छोटा भी बहुत कम है। उसकी भूख भी सहज ही नहीं बुझती।"

लालाजी जानते थे कि नन्दलाल सहज ही माननेवाला जीव नहीं है। अतः बहुत इधर उधर कर चुकने पर मामला पच्चीस रुपये पर तय हो गया। नन्दलाल आवश्यकता से अधिक गम्भीर होकर बोला,

"गणेशगांव, जो यहां से करीब तीस मील उत्तर है, के जमींदार बाबू प्रभाशंकरजी को तो आप जानते ही होंगे। अजी वे ही प्रभाशंकरजी, जिन्होंने गत प्लेग में गांव-गांव घूम कर मुफ्त दवाइयां बांटी थी और गरीबों की सेवा की थी। उनके दो लड़के हैं। बड़ा लड़का दयाशंकर और छोटा गौरीशंकर है। दयाशंकर पांच बार परीक्षा देकर भी मेट्रिक पास नहीं कर सका। अब पढ़ना छोड़ कर घर पर ही रहने लगा है। शादी दोनों ही भाइयों की हो चुकी थी। लेकिन आज लगभग पन्द्रह दिन हुए दयाशंकर की स्त्री की मृत्यु अचानक हार्ट-फेल हो जाने के कारण हो गई। लोग तो कहते हैं कि दयाशंकर ने किसी कारणवश लड़ाई हो जाने से अपनी स्त्री को विष देकर मार डाला। लेकिन मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता। जमींदार बाबू प्रभाशंकरजी अपने पुत्र दयाशंकर से सदा अप्रसन्न रहते हैं क्योंकि दयाशंकर को जरा शराब का ज्यादा शौक है। पर ये सब तो अमीरों के चोचले हैं। दयाशंकर सुन्दर और बलिष्ठ युवक है और अनुपमा के बिल्कुल योग्य है।"

और भी कुछ देर इधर-उधर की बातें कर लालाजी अपने घर की ओर चले और नन्दलाल अपने घर की ओर।

नहाने और खाने से निवृत्त होकर लालाजी बाबू विजयशंकर के यहां पहुँचे। विजयशंकर बाहर बरामदे में ही कुर्सी डाल कर बैठे हुए थे। एक दूसरी कुर्सी पर श्यामसुन्दर बैठे हुए कह रहे थे,

"आजकल के युवक क्या 'युवक' हैं ? वे तो हम बूढ़ों से भी गये बीते हैं। न कुछ जोश है और न जवानी। ढीले हाथ पैर लिये अपनी करुणापूर्ण मूर्त्ति का प्रदर्शन करते हुए इधर-उधर फिरा करते हैं। अपने बदन को साजने संवारने में अवश्य कुछ प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं। आप जो प्रकाश के जेल जाने की बात सुना रहे हैं, मुझे तो विश्वास ही नहीं होता, बाबूजी। कालेज का नामधारी युवक होकर और अपने बाल सवारना भूल कर वह किस तरह जेल जाने का साहस कर सका होगा ? अगर वाकई उसने ऐसा किया है तो युवकों पर नष्ट हुई मेरी श्रद्धा फिर हरी होने लगेगी।"

यों तो श्यामसुन्दर की बातें बाबू विजयशंकर को अच्छी लगा करती थीं, पर आज वे प्रकाश की प्रशंसा नहीं सहन कर सके। मुंह फेर कर लालाजी से बोले,

"आइये लालाजी। क्या खबर है ? आपने तो बड़ी देर लगाई।"

लालाजी विचित्र प्रकार से मुंह बना कर बोले, "क्या बताऊँ बाबूजी, यह आपके मित्र राधाकान्त कहीं पीछा छोड़ें तब तो। मदनमोहन के साथ राधाकान्त अपनी भतीजी का विवाह इसी अगली तृतीया को होना निश्चित करके आज ही पीछे शिवपुरी गये हैं। सच झूठ की तो भगवान जाने पर ऐसा सुनने में आया है कि केवल आपका अपमान करने के इरादे से बहुत कुछ दे लेकर राधाकान्त ने बाबू दीनानाथ को इस बात पर राजी किया है कि वे मदनमोहन का विवाह अनुपमा के साथ न कर इसी अगली तृतीया को उनकी भतीजी के साथ कर दें। आप ही सोचिये उनको इतनी शीघ्रता करने की सिवा इसके कि आपका अपमान हो और क्या आवश्यकता हो सकती थी ? वाह रे राधाकान्त !"
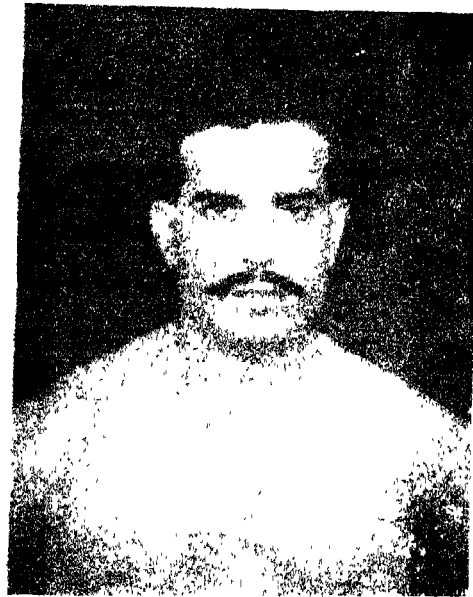
बाबू विजयशंकर लगभग यही समझ बैठे थे कि मदन-मोहन के साथ विवाह पक्का हो जायगा और लालाजी ने भी ऐसी ही दृढ़ता के साथ विजयशंकर को विश्वास भी दिलाया था। लेकिन अब जब विजयशंकर ने यह खबर सुनी, सन्न रह गये। कानों पर विश्वास न हुआ। राधाकान्त के साथ मित्रता तो विपत्ति के इस प्रथम झोंके से ही टूट चुकी थी, अब उस रिक्त स्थान पर शत्रुता अपना अधिकार जमाने लगी। वे सोचने लगे,

"मेरी राधाकान्त से ऐसी किस दिन की शत्रुता थी? मुझे क्या मालूम था कि वह मित्र के भेष में ऐसा प्राणघातक शत्रु है? इसका और मेरा ऐसा किस जन्म का बैर था? यह किसने सोचा था कि मेरी एक मात्र अनुपमा के विवाह में इस प्रकार विडम्बना से सामना करना पड़ेगा? पर रहो राधाकान्त, इस अपमान का बदला अगर न चुकाया तो मेरा नाम विजयशंकर नहीं।"

लाला हरदयाल बड़ी उद्विग्नता दिखलाते हुए बोले, "केवल सोच करने भर से काम नहीं चलने का बाबूजी! मदनमोहन के साथ सगाई होने का तो अब कोई उपाय न रह गया। लेकिन अपनी नाक बनाये रखना भी तो जरूरी है। अब यह सोचिये कि और कहां विवाह किया जा सकता है?"

विजयशङ्कर उसी प्रकार निराशा भरे स्वर से बोले, "लालाजी, ऐसा जान पड़ता है कि इस लग्न पर विवाह होना अनुपमा के भाग्य में ही नहीं लिखा है। मुझे तो अब ऐसा कोई योग्य वर नजर नहीं आता, जिसके साथ इतना शीघ्र विवाह कर दिया जाय। आप ही बताइये कि मैं क्या करूं?

लालाजी इधर उधर देख कर बोले, "गणेशगांव के जमींदार प्रभाशंकरजी का बड़ा लड़का दयाशंकर इस समय खाली हुआ है। लगभग पन्द्रह दिन हुए उसकी स्त्री हार्ट फेल हो जाने से चल बसी है। यद्यपि प्रभाशंकरजी इतना शीघ्र विवाह करना स्वीकार करने में हिचकेंगे, लेकिन वे कुछ लालची हैं। खैर, अपनी बात रखने के आगे रुपये का कोई सवाल ही नहीं है। और फिर, मैं वह सब ठीक कर लूंगा। उस विषय में आपको चिन्ता करने की जरा भी जरूरत नहीं है। अब रही लड़के की योग्यता की बात। सो लड़का सुन्दर है, बलिष्ठ है। खान्दान भी आपकी बराबरी का है। हां, जरा पढ़ा लिखा कम है। पर उससे क्या? मदनमोहन भी ऐसा कोई विशेष पढ़ा लिखा तो है नहीं। फिर पढ़ करके दया-शंकर को कोई नौकरी तो करनी है नहीं। घर भी ईश्वर की दया से भरा पूरा है। मुख्य प्रश्न तो यह है कि हमारी अनुपमा का विवाह दयाशंकर के साथ इसी लग्न में हो जाय।"

विजयशङ्कर को एक बार फिर अपने कंधे हल्के होते हुए प्रतीत हुए। इस कार्य में लालाजी को इतना परिश्रम करते देख उन्हें लालाजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे लालाजी के कन्धे पर हाथ रख कर बोले,

"लालाजी, आपका मेरे प्रति इतना स्नेह देख कर और मेरे कार्य के लिये आपको इतना परिश्रम करते देख कर मैं सचमुच आपका हृदय से आभारी हूँ। लीजिये, मैं सारा अधिकार आपके हाथ में सौंप कर निश्चिन्त होता हूं। आप जैसा उचित समझें कीजिये। मेरी मान रक्षा मित्र होने के नाते आपकी मानरक्षा है। मेरी अनुपमा आपकी भी पुत्री तुल्य है। आप के ऊपर यह भार रख कर मैं आज एक प्रकार से निश्चिन्त सा हो गया हूँ। अगर आप उचित समझें तो गणेशगांव के जमींदार के यहां सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।"

इतना कह कर बाबू विजयशंकर भीतर चले। जब वे रमादेवी के पास पहुँचे तो वहां का दृश्य देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि रमादेवी क्रोधित हो रही हैं और उनके सामने निरुपमा को आगे किये हुए नत सिर अनुपमा खड़ी है। उन्होंने आश्चर्य के साथ यह भी देखा

कि लड़कियों के चेहरों पर वह भाव नहीं है, जो बहुधा अपराध करने पर पाया जाता है। आज उनके चेहरों पर एक प्रकार की दीप्ति है, जो आत्मविजय से प्राप्त हुआ करती है। यों तो रमादेवी स्वभाव से ही कड़ी हैं, पर उनके चेहरे पर जो कड़ापन झलक रहा है, वह बहुधा उनके स्वाभिमान को ठेस लगने से उत्पन्न हुआ करता है। विजयशंकर के कुछ कहने के पहले ही रमादेवी उनकी ओर फिर कर बोलीं,

"बस अब यही बाकी था। अब इसमें सन्देह नहीं कि घोर कलिकाल आ गया है। पुत्रियां अपने विवाह के विषय में स्वयं वाद-विवाद करें और वह भी गुरुजनों से! इससे बढ़ कर और क्या आश्चर्य और दुख हो सकता है?"

विजयशंकर को कुछ क्षण तक तो कुछ भी न समझ पड़ा। वे हतबुद्धि की तरह रमादेवी की ओर ताकते रहे। कुछ क्षण बाद उन्हें रमादेवी के शब्दों का तात्पर्य मालूम हुआ। लेकिन एकाएक उन्हें अपने कानों पर विश्वास न आया। वे यह सोच भी नहीं सके थे कि उनकी विनयशीला अनुपमा इतनी उद्दण्डता और लज्जा हीनता पूर्वक अपने ही विवाह के विषय में अपनी माता से विवाद कर सकती है। उन्होंने एक बार दोनों लड़कियों की ओर देखा और फिर रमादेवी की ओर। रमादेवी बोलीं,

"आपकी अनुपमा का कहना है कि आप क्यों उसका विवाह इतना शीघ्र करने के लिये वृथा हैरान हो रहे हैं? उसका कहना है कि भारतीय ललनायें केवल एक बार अपना पति वरण किया करती हैं, फिर चाहे उसमें कितने ही दोष क्यों न हों। वह कहती है कि आपने ही तो उसे सावित्री-सत्यवान की कथा बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ पढ़ाई है। अन्तर केवल इतना ही है कि सत्यवान को सावित्री ने स्वयं चुना था और अनुपमा के लिये प्रकाश को आपने चुना था। उसका कहना है कि वह मन ही मन प्रकाश को वरण कर चुकी और अब अन्य पति वरण करने की अपेक्षा वह मृत्यु को हजार गुना अच्छा समझती है। साथ ही उसका दावा है कि वह प्रकाश के लिये दो साल ही क्या आजन्म अविवाहित रह सकती है। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि वह सिवा प्रकाश के और किसी के साथ विवाह नहीं करेगी। खुश होइये कि आज आपको कन्या को ऊँची शिक्षा देने का फल हाथों हाथ मिल गया। अरे, हम भी कन्या थीं। हमारा भी विवाह हुआ था। बिना अग्नि को साक्षी किये, बिना सात फेरे खाये कोई कन्या कैसे अपना पति वरण कर सकती है, यह बात हम तो स्वप्न में भी न सोच सकती थीं। इन पढ़ी लिखी आजकल की छोकरियों को तो देखो। आये दिन भावुकता को आदर्श समझ कर न जाने कितना अनर्थ कर बैठती हैं?"

विजयशंकर के नेत्र स्वतः ही लड़कियों की ओर उठ गये। इस समय उनमें 'प्रश्न' था और था कड़ापन। भ्रू कुछ कुञ्चित थे और नेत्र कुछ आरक्त।

निरुपमा हाथ जोड़ कर अत्यन्त मन्द स्वर में नीचे नेत्र किये हुए फिर रमादेवी से बोलीं,

"माताजी, यह हम लोगों का गुरुजनों से वाद विवाद नहीं किन्तु अत्यन्त नम्र आत्म-निवेदन है।"

अब अनुपमा के लिये इस जगह खड़ा रह कर सांस लेना भी अत्यन्त कठिन हो गया। वह धीरे से मुड़ी और बरामदे की ओर चल दी।

विजयशंकर ने बज्र गम्भीर स्वर में पुकारा, "अनुपमा।"

अनुपमा जहां थी वहां ही खड़ी हो गई।

विजयशंकर बाहर जाने के लिये उद्यत होकर बोले, "अनुपमा, माता पिता अपनी पुत्री के लिये वर चुनने में अधिक अनुभवी होते हैं। तुम अभी उस अनुभव से परे हो। पुत्री के लिये माता पिता की आज्ञा मानना प्रथम कर्त्तव्य है, वर चुनना गौण है। सावित्री ने पिता की आज्ञा से वर चुना था। तुम्हारे लिये वर चुनने में अगर मैंने भूल

को तो विवाह न हो जाने तक उस भूल को सुधारने का अधिकार भी मेरे ही पास सुरक्षित है। तुम समझदार हो। भावुकता में पड़ कर अपने पैरों पर आप कुठाराघात न करना। वह और जमाना था जब भारतीय ललनायें अपने पति स्वयं चुना करती थी। पर समय बदलता रहता है। अब वह जमाना है जब सम्भ्रान्तकुल–ललनायें अपने विवाह के विषय में बोलने का भी कोई अधिकार नहीं रखतीं। अतः अपने अधिकार से बाहर जाना तुम्हें शोभा नहीं देता। मैं तुम्हारे लिये जो कुछ निर्णय करूंगा, वह निर्णय तुम्हारे अपने निर्णय से अधिक सुन्दर, अधिक हितकर और अधिक अनुभव के आधार पर होगा। जाओ, तुम्हें अपने लिये चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जाओ, खाओ, खेलो और मौज करो।"

इतना कह कर बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बाबू विजयशंकर बाहर चले आये। उन्होंने आकर देखा कि लालाजी घर चले गये थे और श्यामसुन्दर बैठे हुए ऊँघ रहे थे।

(क्रमशः)
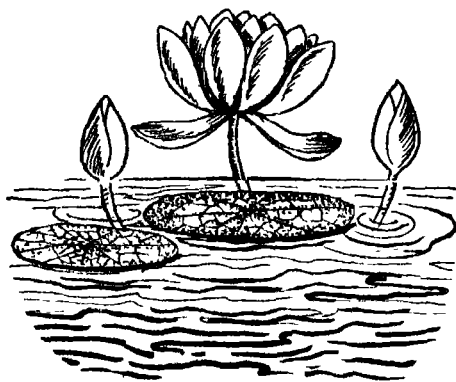
भगवान् महावीर और चण्डकौशिक

[श्री नयनमल जैन, जालौर]

कोलाहलमय था वह कानन, खगसमूह के कूजन से।
मधुर-ध्वनि अनिगत थी होती, अलियों के उस गुञ्जन से ॥ १ ॥
महा भयंकर पशु जंगल में, इधर उधर तब फिरते थे।
जल के सोते गिरि-शृङ्गों से, कलकल करते गिरते थे ॥ २ ॥
प्रातःकाल था, रवि-रश्मियें, मधुर ज्योति फैलाती थीं।
स्वच्छ सलिल से क्रीड़ा करके, मन ही मन इठलाती थीं ॥ ३ ॥
बीहड़ बन में वीर प्रभुवर, शान्तभाव से जाते थे।
हिलडुल करके लता-द्रुमादि, उनको शीश नवाते थे ॥ ४ ॥
शनैः शनैः मध्यान्ह हुआ औ, रवि ने पकड़ा अति बल जोर।
हुआ तप्त सारा भूमण्डल, हाहाकार मचा सब ओर ॥ ५ ॥
एक पास के ढीले पर वे, ध्यानमग्न हो खड़े हुए।
पांव जलाती थी पृथ्वी पर, जरा न विचलित देव हुए ॥ ६ ॥
कुछ ही क्षण में एक छेद से, काल भयंकर निकला सांप।
लगा मारने फुफकारें वह, गई मेदनी सारी कांप ॥ ७ ॥
विकलित हुए चराचर वन के, विषमय उन फुफकारों से।
पर जरा न सहमे त्रिशलानन्दन, उसके दुर्व्यवहारों से ॥ ८ ॥
देख अटलता हुआ वह क्रोधित, रम्य विपिन विध्वंस किया।
हाय ! दुष्ट ने बिना विचारे, भगवन् को झट डंस लिया ॥ ९ ॥
प्रभु के कोमल अङ्गुष्ठ से, हुई प्रवाहित पय-धारा।
गया सर्प का दर्प सभी औ, कहा "नाथ ! मैं अब हारा" ॥ १० ॥
देख तेजमयी मूर्त्ति उनकी, पद-पद्मों में लिपट गया।
लगे उठाने वीरप्रभु पर, चरणों में वह चिपट गया ॥ ११ ॥
कहा वीर ने नम्रभाव से, "पूर्व-जन्म को याद करो।
बार बार यों क्रोधातुर हो, मत जीवन बर्बाद करो" ॥ १२ ॥
कालान्तर में प्रभु-सेवा की, सर्प-जन्म उपयुक्त हुआ।
वीर प्रभु की दयादृष्टि से, पापों से वह मुक्त हुआ ॥ १३ ॥

जैन—साहित्य—चर्चा

आनन्द श्रावक का अभिग्रह

[श्री श्रीचंद रामपुरिया बी० कॉम०, बी० एल०]

"भगवान् महावीर के गृहस्थ शिष्यों में आनन्द श्रावक का नाम प्रसिद्ध है और उसके अभिग्रह के विषय में जैन सूत्रों में जो प्रत्याख्यान मिलता है—उसके विषय में अभी जैन-साहित्य के विद्वानों में मतभेद है। श्रीयुक्त रामपुरियाजी—जिनको सदा जैन-साहित्य के अध्ययन की चाव और लगन रहती है—ने इस लेख में उक्त अभिग्रह का विवेचन किया है, जिससे पाठकों को उनकी अध्ययनशीलता का पता लगेगा। श्रीयुक्त रामपुरियाजी ने इस लेख में कई प्रश्न भी किये हैं—जिनका उत्तर अवश्य ही हमें आशा है, विद्वान लोग देंगे।—"

—सं०—

श्वेताम्बर जैनों के सूत्र साहित्य के सातवें अंग 'उवासगदसाओ' में 'भगवान् महावीर के गृहस्थ उपासकों के शील व्रत, विरमण, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास, श्रुतपरिग्रह, प्रतिमाओं तथा उनकी इस लोक की और परलोक की ऋद्धियों आदि का वर्णन है। महावीर के गृहस्थ उपासकों पर आयी हुई विपदाओं और उस समय भी उनके धर्म में स्थिर रहने आदि की बातें आई हैं।' 'उवासगदसाओ' सूत्रके प्रथम अध्ययन में आनन्द श्रावक के जीवन का उसके व्रत आदि अंगीकार करने का वर्णन है।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम के बाहर दूइपलासया चैत्य में आकर उतरते हैं। आनन्द यह सुन कर भगवान् के दर्शन के लिए जाता है। भगवान् के उपदेशामृत को पान कर आनन्द हर्षित हो उठता है। भगवान् के प्रवचनों में उसे श्रद्धा, प्रीति और रुचि होती है और वे उसे यथार्थ मालूम होते हैं। आनन्द भगवान् का अनुयायी बन जाता है और उन से पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप गृहस्थ-धर्म स्वीकार करता है। श्रद्धा और व्रत स्वीकार करने के बाद आनन्द एक अभिग्रह भी लेता है। इस लेख में इस अभिग्रह के सम्बन्ध में कुछ चर्चा और कई प्रश्न किए जाते हैं। आनन्द अभिग्रह का प्रमुख अंश निम्न लिखित शब्दों में है :—

'नो खलु मे, भन्ते कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए *वा अन्नउत्थिय देवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि* वा वन्दित्तए वा नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेणं आलवत्तिए वा संलवत्तिए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, नन्नत्थ रायाभियोगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकन्तारेणं।"

उपरोक्त पाठ का अर्थ निम्न प्रकार किया जाता है—

"हे भगवान्! राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग, देवताभियोग, गुरुनिग्रह और वृत्तिकांतार इन ६ प्रसंगों को छोड़ कर आज से मुझे अन्य तीर्थिकों, अन्य तीर्थिक देवताओं और अन्य तीर्थिकों द्वारा परिग्रहितों को वंदन-नमस्कार करना नहीं कल्पता, बिना पहिले बोलाए आलाप-संलाप करना या उनको अशन, पान, खादिम, स्वादिम देना नहीं कल्पता।"

आनन्द श्रावक के अभिग्रह का ऊपर में जो पाठ दिया गया है, उस से भिन्न पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, जिसमें 'अन्न उत्थिय परिगाहियाणि' के आगे 'चेइयाइं' या 'अरिहंत चेइयाइं'—ये शब्द भी मिलते हैं। इन शब्दों को स्वीकार करने से उपरोक्त अर्थ में भी 'अन्य तीर्थिकों द्वारा परिग्रहित' के बाद 'चैत्य' या 'अरिहंत चैत्य' ऐसे शब्द और जुड़ जाते हैं।

कई एक विद्वान् लेखकों ने 'चेइयाइं' और 'अरिहंत चेइयाइं' इन शब्दों को क्षेपक माना है और इसीलिए अभिग्रह का अर्थ लिखते समय इन शब्दों का अर्थ नहीं किया है। प्रसिद्ध विद्वान् डा० हॅारनोल द्वारा अनुवादित 'उवासगदसाओ' सूत्र के पृ० ३५ फुट नोट ८६ में "चेइयाइं" या 'अरिहंत चेइयाइं" शब्दों पर निम्नलिखित नोट दिया हुआ है—

"The words cheiyaim or arihanta-cheiyaim, which the Mss. here have, appear to be an explanatory interpolation, taken over from the commentary, which says 'the objects for reverence may be either Arhats (or great saints) or cheiyas. If they had been an original portion of the text there can be little doubt but that they would have been cheiyani. The difference in termination, pariggahiyani, cheiaim, is very suspicious........"

प्रतियों में जो 'चेइयाइं' या 'अरिहंत चेइयाइं' शब्द हैं वे टीका पर से लिए हुए हैं और मूल पाठ को स्पष्ट करने की दृष्टि से जोड़े गये मालूम होते हैं। टीका में लिखा है कि श्रद्धा के पात्र या तो अर्हत(या बड़े मुनि) या चेइया हो सकते हैं। यदि ये मूल पाठ में होते तो इस में जरा भी संदेह नहीं कि वे चेइयानि होते। 'परिगहियाणि चेइयाइं'—इसमें विभक्तियों का अन्तर विशेष शंका जनक है।

इस तरह प्रसिद्ध विद्वान डा० हॉरनोल के मतानुसार ये शब्द क्षेपक हैं। विभक्तियों का अंतर इस बात का प्रमाण है कि ये शब्द बाद में जोड़े गये हैं।

मूल पाठ को पढ़ने से एक अन्य तरह से भी डा० हॉरनोल की मान्यता की पुष्टि होती है। 'अन्नउत्थिए, अन्नउत्थिय देवयाणि' इन शब्दों के बाद 'चेइयाइं' की तरह ऐसे शब्द नहीं हैं जो उन शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करें और यह बतलावें कि अन्य यूथिक या अन्य यूथिक देव कौन थे। इस परिस्थिति में केवल परिगहियाणि शब्द के बाद ही अर्थ को स्पष्ट करने वाले शब्दों का होना शंका उत्पन्न करता है और उसके बाद में जोड़े जाने की संभावना को पुष्ट करता है।

इस तरह दो कारणों से ये शब्द बाद में जोड़े गये मालूम देते हैं। उनके बाद में जोड़े जाने के सम्बंध में और कोई प्रमाण है या नहीं, यह एक प्रश्न है जो विद्वानों के उत्तर की अपेक्षा रखता है।

कई एक प्रतियों में 'परिगहियाणि' शब्द के बाद

'चेइयाइ' या 'अरिहन्त चेइयाइ' न होकर 'चेइयाणि'१ या 'अरिहंत चेइयाणि' है२। डा० हॅार नोल ने 'टरमीनेशन' के सम्बन्ध जो बात उठाई है वह 'चेइयाणि' होने से हल होती है या नहीं यह भी विचारणीय है।

'अन्नउत्थिए' का अर्थ अभयदेव सूरी कृत टीका में इस तरह किया है -जैन यूथ को छोड़ कर अन्य यूथ, तीर्थ या संघ जिनका हो वे चेराकादि कुतीर्थिक३ अन्नउत्थिय देवयाणि का अर्थ चार्वाकादि 'अन्ययूथिक' देवता हरिहरादि को४ अन्न उत्थिय परिग्गहियाणि वा५ अन्ययूथिक द्वारा परिगृहित चैत्यों को—अर्हत् प्रतिमा को यथा भौतों६ द्वारा परिग्रहित वीरभद्र और महाकाली७ की प्रतिमाओं को। पी० एल० वैद्य द्वारा अनुवादित उवासगदसाओ में भी इसका अर्थ 'Temples and places belonging to other sects. अर्थात् अन्य तीर्थिकोंके मंदिर और स्थान' ऐसा किया है।८ इस प्रकार टीका के सहारे से अभिग्रहका अर्थ 'हे भगवान! राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग, देवताभियोग, गुरु निग्रह और वृत्तिकांतार इन ६ प्रसंगों को छोड़ कर आज से मुझे अन्य तीर्थिक-चर्राकादिकों को अन्य तीर्थिक देवता हरि हर आदि को और अन्य तीर्थिकों द्वारा परिग्रहित प्रतिमा या अर्हत्प्रतिमा का वंदन नमस्कार करना नहीं कल्पता, बिना पहिले बोलाए आलाप संलाप करना या उन को अशन, पान, खादिम स्वादिम देना नहीं कल्पता"—ऐसा होता है।

अब प्रश्न यह होता है कि यदि हरिहरादि देवों से मतलब विष्णु आदि देवों से है तब इस अभिग्रहका अर्थ युक्ति संगत और प्रसंग अनुकूल बैठता है या नहीं? अन्य मतावलम्बियों को नमस्कार वंदन न करने का उनसे बिना बोलाए आलाप संलाप न करने का तथा अशनादि न बहराने का अभिग्रह अर्थ दृष्टि से ठीक मालूम देता है, अन्य तीर्थ के देवों से और अन्य परिग्रहित प्रतिमा या अर्हत् प्रतिमा को वंदन नमस्कार नहीं करूंगा। अभिग्रह का इतना अंश भी अर्थ दृष्टि से ठीक हैं, पर अभिग्रह के शेषांश के विषय में कुछ शका उठती है। 'मैं अन्य तीर्थिक के देव हरिहरादि से और अन्य तीर्थिको द्वारा परिगृहित अरिहन्त प्रतिमा या प्रतिमा से बिना बोलाए बोलूगा नहीं और न उनको अशनपानादि दूंगा"- अभिग्रह का इतना अंश अर्थ-शून्य नजर आता है। प्रतिमा जैसा जड़ पदार्थ या हरिहरादि जैसे स्वर्गासीन देव कैसे किसी से पहिले बात करेंगे या कैसे उनसे कोई बात करेगा या कैसे उनको कोई अन्नादि द्रव्य देगा यह समझ में नहीं आता। निर्जीव पदार्थों के बोलने की या उनसे बातचीत करने की बात जितनी निरर्थक है उतनी ही उनको अन्नादि देने की बात भी अर्थ-शून्य है। इससे यह साफ मालूम देता है कि अन्य तीर्थिक के देव और

१—उपासकदशांग सूत्र-श्री अमोलकऋषि द्वारा अनुवादित

२—भ्रम विध्वंसनम्—पृ० ५२

३—अन्नउत्थिए व त्ति जैनयूथाद्यदन्ययूथ सङ्घान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थः,तदस्ति येषां तेऽन्ययूथिकाश्चरकादि कुतीर्थिका:

४—अन्य यूथिक दैवतानि वा हरिहरादीनि

५—अन्य यूथिक परिगृहीतानि वा चैत्यानि (अर्हच्चैत्यानि) अर्हत्प्रतिमालक्षणानि, यथ भौतपरिगृहीतानि वीरभद्र महाकालादीनि।

6—A low class of Brahman temple priests P. 35 note 96.

7—Two forms of shiva P. 35 note 96

8—Uasagadasao edited by P. L. Vaidya notes 222-12. 50

अन्य तीर्थिक परिग्रहित शब्दों की व्याख्या कुछ और ही है। यह अर्थ क्या हो सकता है—यह विचारणीय बात है। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के स्व० विद्वान् आचार्य श्रीमद् जय महाराज ने इसका खुलासा इस तरह किया है—

'अरिहन्त चैत्य' का अर्थ अरिहन्त के साधु हैं और 'देव' से अभिप्राय प्रसिद्ध विष्णु और महेश से नहीं है। परन्तु देव से अर्थ सुजेष्टा के पुत्र शिव (महादेव) से है जिसका उल्लेख 'स्थानांग स्थान' ९ में है।*

चैत्य और देव की इस व्याख्या को स्वीकार करनेसे अभिग्रहका अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है और टीका की व्याख्या को स्वीकार करने से जो अर्थ दोष आता है उसका भी परिहार हो जाता है। जयाचार्य को स्वीकार करने से अभिग्रह का अर्थ ऐसा होता है 'मैं अन्य तीर्थिकों को, अन्य तीर्थिक के देव जैसे सुजेष्टा के पुत्र शिव आदि को तथा अन्य तीर्थिकों द्वारा अपनाए गये भ्रष्ट जैन साधु जमालि आदि को—बन्दन नमस्कार नहीं करूँगा आदि।" सुजेष्टा का पुत्र उस समय विद्यमान होने से तथा चेइयाइं शब्द का अर्थ प्रतिमा न मान कर भ्रष्ट साधु मानने से उनके द्वारा बिना बोलाए उनसे बातचीत न करने और उनको अन्न-पान आदि न देने का अभिग्रह अर्थ दृष्टि से ठीक जच जाता है। इस तरह जो दोष टीका की व्याख्या से उत्पन्न होता है, वह दोष इस व्याख्या का स्वीकार करने से दूर होता है।

'चैत्य' शब्द का अर्थ साधु भी हो सकता है इसका प्रमाण उपरोक्त आचार्य ने इस प्रकार दिया है। उववाई सूत्र में अम्बड़ श्रावक के अभिग्रह का उल्लेख है। अम्बड़ इस तरह अभिग्रह धारण करता है कि मैं अरिहंत और अरिहंतक चैत्य के सिवा और किसीको बन्दन नमस्कार नहीं करूँगा।

यहाँ यदि 'चैत्य' शब्द का अर्थ प्रतिमा किया जायगा तो अरिहंत और अरिहंतकी प्रतिमा के सिवा और किसी को वन्दन नमस्कार न करने का अभिग्रह होने से अम्बड़ जैन साधु तकको वंदन नहीं कर सकेगा। नमस्कार मंत्र के अरिहंत पद में साधु पद का समावेश नहीं किया जा सकता क्योंकि सब साधु अरिहंत नहीं होते इसलिये ये दोनों पद भिन्न होने से यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि अरिहंत शब्द में ही साधुओं का समावेश हो गया है अतः साधुओं को नमस्कार करने का अपवाद रखने की कोई आवश्यकता न थी। अम्बड़ ने अभिग्रह लेते समय मन में सोचा होगा कि मैं जैन-साधुओं को भी वंदन नहींकरूँगा यह असम्भव बात है। यहाँ भी 'चैत्य' शब्द का अर्थ साधु मानने से यह उलझन सुलझ जाती है और अम्बड़

* चैत्य इहां प्रतिमा हुवै, तो बोलावै केम।
वलि आपै अशणादि किम, न्याय विचारो एम ॥६॥
कोई कहै तसु देवनैं, किम बोलावै ताय।
वलि अशणादिक किम दिये, निमल सुणों तसु न्याय ॥७॥
पुत्र सुजेष्टा नु कह्यो, महादेव तसु देव।
नवमैं ठाणैं अर्थ मैं, ते वीर थकां स्वयमेव ॥८॥
चेडाराजानी सुता, तेह सुजेष्टा जांण।
तिस कारण तसु देव ते, विद्यमान पहिचाण ॥९॥
तेहनें बोलावै नहीं, वलि नहीं आपै आहार।
वलि चैत्य मुनि अरिहन्तना, भ्रष्ट थया तिण वार ॥१०॥
ते अन्यतीर्थिक में जई मिल्या, अन्य तीर्थिक पिण तास।
ग्रहण किया निजमत विषै, अन्य तीर्थिक गृहित विमास॥११॥
नहीं बोलावूं तेहनैं, वलि नहीं आपूं आहार।
अभिग्रह ए आनन्द लियो, वारूं न्याय विचार ॥१२॥
-प्रश्नोत्तर तत्वबोध पृ० २८—२९ तथा प्रश्नोतर प्रश्न पृ० ४४

की प्रतिज्ञा का अर्थ दोषशून्य और स्पष्ट हो जाता है। अम्बड़ श्रावक के अभिग्रह की तरह ही आनंद श्रावक के अभिग्रह में चैत्य शब्द का अर्थ साधु करना चाहिए।*

स्व० श्री अमोलक ऋषिजी ने भी चैत्य शब्द का अर्थ साधु किया है। 'अन्न उत्थिय परिग्गहियाणि' का अर्थ अन्य तीर्थिकों द्वारा ग्रहण जैन के चैत्य साधु भ्रष्टाचारी ऐसा किया है जो श्रीमद् जयाचार्य के अर्थ से बिलकुल मिलता है। देव शब्द की व्याख्या धर्मदेव शाक्यादि साधु किया है। यह व्याख्या यद्यपि श्रीमद् जयाचार्य की ऊपर दी हुई व्याख्या से भिन्न है तो भी इतना अवश्य स्पष्ट है कि देव शब्द किन्हीं वर्तमान व्यक्ति को संकेत कर लिखा हुआ है। यह अर्थ विद्वानों के लिये विचारणीय है।

आनंद ने अभिग्रह लेते समय ६ प्रकार के आगार रखे हैं।

१—राजाभियोग—राज के आदेश;
२—गणाभियोग— परिवार के आदेश;
३—बलाभियोग- बलवंत की परवशता में,
४—देवताभियोग - देवता की परवशता में,
५—गुरु निग्रह— बड़ों के आदेश,
६—वृत्तिकांतार— अटवी कांतार के विषे।

इन छः आगारों में प्रथम ५ का अर्थ तो सभी को उपरोक्त लिखित ही स्वीकार है परंतु ६ ठे आगार के सम्बंध में मतभेद है। टीकाकार अभयदेव सूरि ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है— वृत्तिः जीविका, तस्याः कान्तारमरण्यं तदिव कान्तारं क्षेत्र कालो वा निर्वाहाभाव इत्यर्थः "घोर जंगल की तरह जीविका के लिए कठिन क्षेत्र या काल का आना वृत्तिकान्तार कहलाता है" निर्वाह न होना इसका तात्पर्य है—अर्थात् निर्वाह अभाव। श्रीमद् जयाचार्य ने इसका अर्थ अटवी कांतार न विषे कारणे ऐसा किया है— जैसे 'अने छठो "वित्ती कन्तार" ते अटवी आदिक ने विषे अन्य तीर्थी आव्या छै। तो एने अनेरा लोक वंदना करे, दान देवे छै। तो तेहना कथ्या थी लज्जाइंकरी वंदना पिण करे दान पिण देवे। ए लज्जाइं देवे वंदना करे ते पिण परवश छै।[1]"

अमोलक ऋषिजी ने इसका अर्थ— इस प्रकार किया है— "कन्तार अटवी में पड़े हुए या दुर्भिक्षादि विपत्ति में पड़े हुए को देने का आगार है"।[2]

उपरोक्त अर्थों में से वृत्तिकांतार का कौन-सा अर्थ अधिक संगत हो सकता है और व्याकरणादि की दृष्टि से भी कौन-सा अर्थ ठीक होगा- इस प्रश्न पर निष्पक्ष विद्वान् लेखक प्रकाश डालें तो अत्युत्तम हो।

* कोई कहै अम्बड कह्युं, अरिहन्त विण अवलोय।
वलि अरिहन्तनां चैत्य विन, नथी बंदवा मोय ॥१॥
प्रथम उपाङ्ग विषै इसो, आख्यो श्री जिनराय।
ते अरिहन्त नां चैत्य कुंण, तसुं उत्तर कहिवाय ॥२॥
अरिहन्त तो धुरपद विषै, प्रतिमा चैत्य कहाय।
तो मुनिवर नहीं बंदवा, अन्य वर्ज्या तिण न्याय ॥३॥
मुनिपद तो है पंचमों, ते धुरपद में नहीं आय।
तिण कारण अरिहन्त नां, चैत्य मुनी कहिवाय ॥४॥
जिन प्रतिमां जिन सारसी, तुम्ह कहो तिण न्याय।
प्रतिमा तो धुरपद हुई, मुनि धुरपद नहीं आय ॥५॥
अरिहन्त तो ए देव हैं, अरिहन्त चैत्य सु संत।
तेह गुरु ए देव गुरु, विना न अन्य बदंत ॥६॥
प्रश्नोतर तत्त्वबोध अम्बडाधिकार पृ० २७

[1] भ्रम विध्वंसनम् पृ० ५४

[2] उपासक दशा सूत्र पृ० २६

इस अभिग्रह में तीन कार्य न करने की प्रतिज्ञा ली गई है (१) वन्दन नमस्कार (२) आलाप संलाप और (३) आहारादि देने की। इसपर टीकाकार लिखते हैं—वंदन नमस्कार की प्रतिज्ञा मिथ्यात्व आदि दोष की वृद्धि के कारण को ध्यान में रख कर की गयी है[1]। आलाप-संलाप न करना शंकादि उत्पन्न होने की दृष्टि को लेकर है[2]। धर्म बुद्धि से देने का निषेध है, करुणा से दिया जा सकता है[3]। इस प्रकार टीका की दृष्टि से यह अभिग्रह एक धार्मिक महत्व को लिए हुए है।

बाइस सम्प्रदाय के आचार्य श्रीमद् जवाहरलालजी ने विवेचन करते हुए लिखा है - 'यह सब कार्य श्रावकों के धर्म से विरुद्ध और मिथ्यात्व के पोषक हैं इसलिये इन्हीं कार्यों के न करने का आनन्द ने अभिग्रह लिया था।' इस प्रकार इनके अनुसार भी यह अभिग्रह धार्मिक दृष्टि से ही लिया गया था। आपके मत में अन्तर केवल इतना ही है कि आहार का देना यदि भक्ति-भाव से हो तब ही वह धर्म विरुद्ध और मिथ्यात्व का पोषक होता है। यदि अनुकम्पा लाकर किया जाय तो नहीं जैसा कि आपके निम्नलिखित वाक्य से प्रकट है "इस पाठ में आनन्द श्रावक ने अन्य यूथिक को गुरु बुद्धि से दान देने का त्याग किया है, करुणा से दान देने का त्याग नहीं किया है। ··· यहाँ टीकाकार ने मूल पाठ का आशय बतलाते हुए अन्य यूथिक को गुरु बुद्धि से ही दान देने का निषेध बतलाया है अनुकम्पा से नहीं। ······"

१ तद्भक्तानां मिथ्यात्वस्थिरीकरणादिदोषप्रसङ्गादित्यभिप्रायः।

२ यतस्तेतप्ततरायोगोलककल्पाः खल्वासनादिक्रियायां नियुक्ता भवन्ति, तत्प्रत्ययश्च कर्मबन्ध स्यात्। तथालापादेः सकाशात्परिचयेन तस्यैव तत्परिजनस्य वा मिथ्यात्वप्राप्तिरिति। प्रथमालप्तेन त्वसम्भ्रमं लोकापवादभयात् को दृशस्त्वम् इत्यादि वाच्यमिति।

३ अयचनिषेधो धर्मबुध्यैव, करुणया तुदद्यादपि।

श्रीमद् जवाहरलाल ने टीका का आधार लिया है। यहाँ टीकाकार ने निम्नलिखित बात कही है—"अयं च निषेधो धर्म बुद्ध्यैव, करुणयातु दद्यादपि" जिसका अर्थ इस प्रकार होता है:— यह जो अन्य यूथिक को दान देने का निषेध है, वह धर्म बुद्धि से (धर्म समझ कर देने से) है। करुणा से दिया जा सकता है।

यहाँ श्री जवाहरलालजी ने धर्म बुद्धि से मतलब गुरु बुद्धि से किया है जो उपरोक्त दिये हुए वाक्यों से तथा निम्न वाक्य से साफ प्रकट होता है - "अर्थात् यह जो अन्य यूथिक को दान देने का निषेध है यह धर्म बुद्धि (गुरु बुद्धि) से ही समझना चाहिए अनुकम्पा से नहीं, अनुकम्पा करके अन्य यूथिक को भी दे सकते है। यहाँ टीकाकार ने ······ गुरु बुद्धि से ही दान देने का निषेध बतलाया है।" इस पर से यह साफ प्रगट होता है कि आचार्य महोदय ने धर्म बुद्धि और गुरु बुद्धि को एक ही समझा है, यद्यपि ये दोनों भिन्न-भिन्न चीजें हैं। आचार्य महोदय का यह अर्थ कहाँ तक युक्ति संगत है और अपरापर विरोधी है या नहीं, यह भी विचारणीय है।

आचार्य महोदय का मत है कि भक्ति-भावसे देने में मिथ्यात्व का पोषण और धर्म का विरोध है, पर अनुकम्पा से देने में पुण्य है। इस प्रकार अधार्मिक कृत्य में भी पुण्य का संचय माना गया है—शास्त्रीय प्रमाणों से क्या इसका कोई पोषण मिल सकता है? विद्वानों से निवेदन है कि ऐसे शास्त्रीय प्रमाणों को वे शुद्ध पाठ और शुद्ध अर्थ के साथ प्रकाशित करें।

इस विषयपर उपरोक्त आचार्य ने आगे जाकर यह विवेचन किया है—"कोई अज्ञानी यह कुतर्क करते हैं कि अन्य यूथिक को दान देना यदि पुण्य का कारण है

तो अन्य यूथिक को बंदन नमस्कार करना पुण्य का कारण क्यों नहीं ? उन लोगों से कहना चाहिए कि अनुकम्पा दान, अनुकम्पा लाकर दिया जाता है इस लिए इसमें पुण्य है क्योंकि अन्य तीर्थों पर अनुकम्पा करना भी पुण्य का ही कारण है परंतु बंदन नमस्कार करना नहीं क्योंकि वंदन नमस्कार पूज्य बुद्धि से किया जाता है और अन्य तीर्थों में पूज्य बुद्धि रखना समकित का अतिचार है इसलिए अन्य यूथिक को बंदन नमस्कार करना पुण्य नहीं। आनंद श्रावक ने अन्य यूथिक को जिस प्रकार पूज्य बुद्धि से बंदन नमस्कार करने का त्याग किया था उसी तरह पूज्य बुद्धि से उन्हें दान देने का भी त्याग किया था; अनुकम्पा दान का नहीं, ……।"

अब प्रश्न यह उठता है कि बंदन नमस्कार और आहार देने का त्याग यदि गुरु बुद्धि (पूज्य बुद्धि) से था तब क्या आलाप-संलाप करने का त्याग भी इसी दृष्टि से था। 'गुरु बुद्धि से आलाप-संलाप नहीं करूंगा' इसका क्या अर्थ होगा।

उपासक दशा सूत्र में सकडाल पुत्र का अध्ययन आया है। सकडाल पुत्र पहले गोशालक का अनुयायी था, बाद में वह महावीर का अनुयायी हो गया। यह सुन कर गोशालक उसके पास आया। उसने सकडाल पुत्र के सामने भगवान महावीर की बहुत प्रशंसा की। इस पर सकड़ाल पुत्र ने गोशालक से कहा मैं तुम्हें धर्म और तप समझ कर तो नहीं परंतु तुमने महावीर की प्रशंसा की है इसलिए अन्नादि देता हूं।" आनंद श्रावक के अभिग्रह, तथा उसी तरह अन्य श्रावकों के अभिग्रह तथा सकड़ाल पुत्र के उपरोक्त कथन और वार्तालाप से यह साफ प्रतीत होता है कि उस समय अन्य तीर्थिक आदि को देने में पाप समझा जाता था। आचार्य श्री जवाहरलालजी ने धर्म बुद्धि से जो गुरु बुद्धि का अर्थ निकाला है वह सकडाल पुत्र के वाक्य के साथ किस प्रकार जच सकता है। सकडाल पुत्र साफ कहता है कि यह देना धर्म और तप की दृष्टि से नहीं है।

इस अभिग्रह की दृष्टि एक और भी हो सकती है, जो युक्ति संगत होने के सथ-साथ स्वाभाविक भी मालूम देती है। उस समय भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के मत प्रवर्तकों में पारस्परिक खूब विरोध चलता था। एक मतप्रवर्तक दूसरे मतप्रवर्तक के अनुयायी को अपनी ओर आकर्षित कर उसे अपनी सम्प्रदाय में दीक्षित करना अपनी विजय और गौरव समझता था। साधारण जन अध्यात्म की बातों को न समझ बाहरी बातों और शब्दाडम्बरों में आकर धर्म परिवर्तन करते ही रहते थे। सच्चे धर्म को जान लेने और उसे अंगीकार कर लेने पर भी झट से बिना समझे और दूसरे के बहकावे में आकर छोड़ देने की अकल्याण और पापकारी मनोवृत्ति को रोकने की दृष्टि से ही ऐसे अभिग्रह जारी किये गये थे। सच्चे धर्म को समझ कर अङ्गीकार कर लेने के बाद असत् संगति से बचने के उपाय स्वरूप ही ऐसे अभिग्रह लिए जाते थे। बंदन नमस्कार, आलाप-संलाप, आहारादि का दान सत्पात्रको उद्देश्य कर ही था अत: असत्पात्रों के प्रति इन कार्यों की मनाई अनुदारता का भाव नहीं कहा जा सकता। अक्रियाशीलता या बाह्याडम्बर की पूजा और सत्कार करना अप्रत्यक्ष रूप से उनका पोषण करना होता है। इन बाह्याडम्बरों से अपने सम्पूर्ण विरोध को प्रदर्शित करने के लिए महावीर ने अपने श्रावकों को ऐसी प्रतिज्ञाएं दिलाई थीं, यह सम्भव है।

विद्वानों से मेरा निवेदन है कि इस लेख में उठाए गये मेरे प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दें और यह विवेचन खूब ही निष्पक्षता और महावीर के समय के वातावरण को ध्यान में रखते हुए करें।

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपथ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

गरीबी

जीवन-मरण के प्रश्नों के सिलसिले में गरीबी का प्रश्न तो महा भयंकर है। यह वह प्रश्न है—जिसके नाम भर से हम अपनी दुरवस्था पर काँप सकते हैं ? जिसको सुलझा लेने से जीवन में उलझन रह ही न सकेगी ? आप समझते हैं और मानते भी हैं कि हमारा समाज धनी है, कम से कम गरीब नहीं ? पर ऐसा मानने का क्या आधार ! केवल इतना ही कि आप की आँखें गरीबी के घरों तक न पहुंची ! आप की धर्मप्रियता असली धर्म का फलित अर्थ न समझी ! आपकी सामाजिक सहानुभूति मर्माहत दरिद्रनारायण की मूक वेदना के प्रांगण में न उतरी ?

जीवन में पगपग पर तो गरीबी का अभिशाप फुफकार रहा है—और न जाने आज की आशा किस क्षण में निराशा बन जायगी ? गरीबी—आर्थिक दुरवस्था में समाज का व्यक्ति-व्यक्ति का सौन्दर्य—दब गया है ! ऐसी अवस्था में धर्म, साहित्य, समाज की अवस्था क्या होगी ? उसका बुढ़ापा आज हम देखते हैं—चरमता बाकी है। आप समाज के नाम पर बड़े-बड़े काम करते हैं, समझते हैं, समाज आपका ऋणी है। पर किस लिये ? उसका भारी घाव तो भरा नहीं ! गरीबी के प्रश्न को छोड़ कर समाज की भलाई के सारे काम निष्प्रयोजन हैं क्योंकि जीवन से पहले अस्तित्व चाहिये। और गरीबी के दांतों से अस्तित्व का बचना··· ? इसी गरीबी का अधिक जागरूक प्रश्न युवकों की बेकारी है। उद्योग-धन्धों की व्यवस्था करना जरूरी है ? व्यापार में दलालो से कब तक आपका काम चलेगा ? उपयुक्त साधनों के अभाव में एक ओर आप की प्रतिभा-सम्पन्न युवक शक्ति पड़ी है, दूसरी ओर गरीबी बढ़ कर समाज के जीवन का गला दबाने बैठी है। एक ही प्रश्न पर जीवन का निपटारा !

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री शुभचिन्तक जैन-समाज, सादड़ी (मारवाड़)

उक्त संस्था के मन्त्रीजी ने हमारे पास निम्न पत्र प्रकाशनार्थ भेजा है -- जिसको प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष है कि गोडवाड के युवकों में भी जागरूकता की लहर उत्पन्न हो रही है।

गोडवाड जैन-युवक सम्मेलन की आवश्यकता

"सादड़ी से शुभ-चिन्तक जैन-समाज का एक डेप्यूटेशन महावीरजी नाडलाई, नाडोल के तीर्थ करता हुआ ता० ६ जनवरी को वरकाणा तीर्थ पहुँचा। ता० ७ को श्री वरकाणा पार्श्वनाथ भगवान के मेले के दिन धर्मशाला में दो पहर के समय श्रीयुत सरदारमलजी साहब बाबागांववालों के सभापतित्व में गोडवाड जैन संघ की एक सार्वजनिक सभा की गई जिसमें जाति-सुधार के विषय में कई अच्छे-अच्छे भाषण व गायन हुए। सभा की उपस्थिति करीब तीन-चार हजार की थी, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये गये।

(१) एम० एन० त्रिपाठी, बम्बई की ओर से प्रकाशित गुजराती-इङ्गलिश डिक्सनेरी में 'मारवाड़ी' शब्द का अर्थ जो धोखेबाज, मक्खीचूस, लुच्चा बदमाश किया गया है उसका और हिज मास्टर्स वायस कंपनी की बनाई हुई ग्रामोफोन रेकार्डस, जिनमें भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के विषय में अण्डबण्ड बनाया गया है, उसका—यह सभा घोर विरोध करती है। और इसके विषय में तार आदि जरूरी कार्यवाही करने का सम्पूर्ण अधिकार इस सभा की ओर से श्रीमान् सभापति महोदय को दिया जाता है।

(२) गोडवाड प्रान्त की वर्त्तमान दशा को देखते 'श्री गोडवाड जैन-युवक सम्मेलन' जैसे बने वैसे शीघ्रातिशीघ्र करना निश्चित करती है जिसका उद्देश्य संगठन आदि सामाजिक सुधार करने का है, किन्तु साथ ही साथ यह सभा यह भी जरूरी समझती है, कि राजनीतिक विषयों, विधवा विवाह धार्मिक मतभेदों व पक्षपातपूर्ण झगड़ों से सम्मेलन बिल्कुल दूर रहेगा। और ऐसे झगड़े डालनेवाले सज्जनों को सूचित किया जाता है कि वे इस सम्मेलन में पधारने का कष्ट कदापि न उठावें। गोडवाड की समस्त जैन-संस्थाओं, युवकों व सुधार-प्रेमी सज्जनों से प्रार्थना की जाती है कि कृपया सम्मेलन की तारीख नियम व किस प्रकार करना आदि विषयों में अपनी-अपनी अमूल्य सलाह व विचार नीचे लिखे पते पर अत्यन्त शीघ्र भेजने की कृपा करें।

आपका निवेदक—

हीराचन्द परमार

सेक्रेटरी, श्री शुभचिन्तक जैन समाज, सादड़ी

साहित्य-संसार

[सौरभ—रचयिता श्री दुर्गाप्रसाद झूंझनूंवाला, बी० ए० व्यथित। प्रकाशक—श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, ७३ ए चासा धोबा पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता। भूमिका-लेखक—श्री कालीप्रसादजी खेतान, बार-एट-लॉ—एफ० आर० एस० ए०. साइज—डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ १२२, छपाई और गेट-अप सुन्दर एवं आकर्षक मूल्य १।) प्रथमावृत्ति]

सौरभ

जिस प्रकार वेदना,-कविता का प्राण है उसी तरह कल्पना उसकी अमर सहचरी। वेदना हृदय में काव्य—जो मूलतः रसात्मक है—की अवगुण्ठित मधुरिमा—उसकी रसातिरेकमय अनुभूतियाँ उत्पन्न करती है। और कल्पना-जीवन के विभिन्न पहलुओं में उसका रंग भरती है। वेदना हृदय का वह आकुल स्पन्दन है—जिसकी करुणामय ध्वनि—कल्पना में मुखरित होती है। और दोनों के योग से कविता की सृष्टि! आज भारतीय-जीवन में एक महाभयानक वैषम्य उत्पन्न हुआ है जिसकी छाया इस युग की ललित-कला में मूर्तरूप से आवासित है। इसलिये आज का सच्चा काव्य तो जीवन का रोदन है—पर उसका महत्व इसी में है कि रोदन में भी आजका कवि कल की आशापूर्ण भव्यता देखता है। अपनी जीवनानुभूति के गीत गा-गा कर कवि अपने हृदय को शान्त करता है और उन्हीं दुःखों से उद्वेलित परन्तु मूक हृदयों में अपने भव्य दर्शन का वेदनाशील सौन्दर्य पहुँचाता है। आज के काव्य का यही उद्देश है- यही उसकी सफल साधना!

श्रीयुत दुर्गाप्रसाद झूंझनूवाला—जिनकी कविताएँ पाठक 'नवयुवक' के गत अंकों में पढ़ते रहे हैं—उपरोक्त विश्लेषण की दृष्टि से आधुनिक कवि हैं। उनके हृदय में पीड़ा की पुकार स्वाभाविक थी—पर उसको व्यक्त करने की प्रेरणा अवश्य दूसरे सुप्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से हुई है।

वेदना इनके काव्य का प्राणबिन्दु है—जिस प्रकार वह उनके जीवन का मधुर लक्ष्य। कवि जीवन की घनीभूत पीड़ा की खुमारी में कैसे लिपट गया है, जब वह कहता है—

'जीवन सजल शूलमय हो।'

कवि इस भाव को अधिक स्पष्ट करना चाहता था इसलिये उसने कल्पना का सहारा लिया।

"...... ... . " ....

हृदय विधा जग को मधु दे रे,
कर सुरभित जग के उपवन को
तेरा पन्थ धूलिमय हो।

इसी वेदना का सौरभ 'सौरभ' की सारी कविताओं में फैला हुआ है। बाहर निकल कर या निकलना चाहते हुए भी कवि इस खुमारी को अलग नहीं कर सकता—वह तो उसके हृदय में बैठी है?

दृश्यमान् सुख के वातावरण में भी कवि कह उठता है—

आती है उस दिन की स्मृति जब,
हृदय-व्यथा से भर जाता तब,
× × ×
कुछ भी हो, यही कामना—
रोकर मैं विश्व रुलाऊँ,

जिनमें काव्योपेत सहृदयता नहीं है वे अवश्य कवि की आकांक्षा से चिढ़ेंगे, पर कवि तो सबको उस सौन्दर्य-भूमि में ले जाना चाहता है—जहाँ अभिन्नता की भूमि में विश्व-जीवन 'चिर दुखिया की झोली में' स्नेह का दान पावेगा, जहाँ जीवन का कलाकार अपने इष्ट के चरणों में—मेरी समझ में जीवन से अलग और क्या इष्ट हो सकता है—पहुँच कर विश्व के अधिकार-शून्य व्यक्ति की तरह कह उठता है—

'है बची वेदना मेरी,
अनुताप दुखी जीवन का'

इन कविताओं में एक और भाव भी मुख्यरूप से हृदय को आकर्षित करता है। उस भाव की भूमिका पर कवि ने जो चित्र रचे हैं—उनमें जिस प्रकार उसका हृदय उलझा है - वैसे ही, सहृदय पाठकों का भी—इसमें सन्देह नहीं है। यह है कवि का अतीत प्रेम—वह अतीत प्रेम जो आज भी कवि के व्यथित जीवन के एकाकी क्षणों में अद्भुत उल्लासमय 'मधु उत्सव' करता है।

लेखक का यह पहला प्रयास होने के कारण कहीं-कहीं भाव और छन्दों के दोष, तथा भावों का विरोध भी रह गया है पर वह इतना नहीं है कि कविता के रस-परिपाक में बाधा उत्पन्न हो? इन सरस करुणोद्वेलित कविताओं को पढ़ कर हमें जो रसास्वादन हुआ है उसके लिये हम लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई देते हैं। मेरे परम मित्र श्री रघुनाथप्रसादजी सिंहानिया ने इन मूक-भाव लहरियों को जनता के सामने ला कर हिन्दी की जो सेवा की है, उसका, आशा है, हिन्दी जनता उचित सम्मान करेगी।

भँवरमल सिंघी।

चिट्ठी-पत्री

तिरुन्यान संबन्दरवाले निन्दापूर्ण रिकार्ड

हिज मास्टर्स वायस कम्पनी द्वारा तिरुन्यान संबन्दर नाम के जो चार ग्रामोफोन रिकार्ड निकले हैं—और जिनमें जैनधर्म पर अनुचित आक्षेप किये गये हैं, उनके प्रति चारों ओर से जैन संस्थाओं द्वारा घोर विरोध प्रदर्शित किया जा रहा है। कलकत्ते की श्री ओसवाल नवयुवक समिति ने इस विषय में निम्न

प्रकार सरकार से पत्र-व्यवहार किया है।

श्री ओसवाल नवयुवक समिति
२८, स्ट्रांड रोड, कलकत्ता
२९ जनवरी सन् १९३७

दी चीफ सेक्रेटरी
मदरास गवर्नमेंट
मदरास

प्रिय महोदय,

मुझे समिति की कमीटी द्वारा आपको यह सूचित

करनेके लिये कहा गया है कि उसका ध्यान हिज मास्टर्स वायस कम्पनी द्वारा निकाले हुए 'तिरुन्यान संबन्दर' नाम के ग्रामोफोन रिकार्डों के विषय की ओर आकृष्ट हुआ है जिसमें, सुना है, कि जैनधर्म और उसके पूज्य तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ और श्री महावीर के जीवन की हँसी-मजाक उड़ा कर निन्दा की गई है। अगर यह बात सच है, तो यह बहुत बुरी बात है।

कमिटी को यह विश्वास नहीं होता कि जैन तीर्थंकरों और जैनधर्म के बारे में इस प्रकार के निंदापूर्ण ग्रामोफोन रिकार्ड एक जिम्मेदार कम्पनी द्वारा निकाले गए हों और सरकार की दृष्टि उन पर न पड़ी हो।

कमिटी ने अपनी सभा में सर्वसम्मति से यह पास किया है कि सरकार और कम्पनी का ध्यान इस ओर आकर्षित होना चाहिये। और यदि हमारे पास आई हुई रिपोर्ट सच है तो उपरोक्त रिकार्ड अवश्य ही जब्त कर लिये जाने चाहिये। और कम्पनी को चाहिये कि उसने इस प्रकार के निन्दापूर्ण प्रकाशनों द्वारा सारे जैन समाज की भावना पर जो कुठाराघात किया है—उसके लिये समुचित रूप से प्रायश्चित्त करे और क्षमा माँगे।

भवदीय—

सागरमल सेठिया

उपमन्त्री

निम्न लिखित व्यक्तियों को इस पत्र की प्रतिलिपि भेजी गई हैं:--

(१) हिज एक्सेलेन्सी गवर्नर आफ् मदरास के प्राईवेट सेक्रेटरी
(२) गवनमेंट ऑफ् मदरास के ला-मेम्बर
(३) ,, ,, ,, के होम-मेम्बर
(४) इंसपेक्टर जनरल ऑफ् पुलिस, मदरास
(५) पुलिस-कमिश्नर, मदरास
(६) कानूनी सलाहकार, मि० ई० एंड्राईलोबो, मदरास
(७) श्री मारवाड़ी जैनमंडल, ४१०, मिंटस्ट्रीट, मदरास
(८) भारत सरकार के ला-मेम्बर, नई दिल्ली
(९) ,, ,, होम-मेम्बर ,,
(१०) रायबहादुर सेठ भागचंदजी सोनी एम० एल० ए०, अजमेर
(११) ग्रामोफोन कम्पनी लिमिटेड, डमडम

उपरोक्त पत्र के उत्तर में उक्त ग्रामोफोन कम्पनी ने जो पत्र-समिति के मन्त्री के नाम भेजा है—वह निम्न प्रकार है—

३३, जेसोर रोड

डमडम

ता० २ फरवरी सन १९३७

प्रिय महोदय,

तामिल प्रहसन—'तिरुन्यान संबन्दर'

हमारे द्वारा निकाली हुई उपरोक्त चूड़ियों के सम्बन्ध में आपने जो मदरास गवनमेंट के चीफ सेक्रेटरी के नाम ता० २६ जनवरी को पत्र भेजा है—उसकी एक गश्ती प्रतिलिपि हमें भी मिली है।

यह जान कर हमें बड़ा दुःख है कि हमारे उपरोक्त रिकार्डों के प्रकाशन से जैन समाज को बड़ा आघात पहुँचा है, इसके लिये हम इस पत्र द्वारा खेद प्रकट करते हैं, यदि भूल से भी हमने उनकी भावना को पीड़ित किया है। दक्षिण भारत के अपने रिकार्डिंग प्रतिनिधि द्वारा हमें यह विश्वास मिला है कि वास्तव में उसमें कोई ऐसी आपत्ति-जनक बात नहीं है किन्तु उसमें उन्हीं घटनाओं का समावेश हुआ है जो कि विभिन्न धार्मिक और साहित्यिक पुस्तकों के पौराणिक वर्णनों में मिलती हैं।

तथापि सदा हमारा यह सिद्धान्त रहा है कि इस प्रकार की सामग्री का रिकार्डिंग न किया जाय जिसमें धार्मिक और राजनैतिक विरोध का विषय हो। अतः हमने यह निश्चय किया है कि उपरोक्त निन्दापूर्ण रिकार्डों को हम अपने कैटेलॉग से निकाल देंगे। इसलिये यह घटना बिल्कुल संतुष्टतापूर्वक समाप्त हुई समझी जानी चाहिये।

भवदीय—

ग्रामोफोन कम्पनी लिमिटेड

रिकार्डिङ्ग विभाग

संपादकीय

हमारा सामाजिक और सार्वजनिक जीवन

जनमत की ऐसी धारणा है कि समाचार पत्रों का सबसे बड़ा सेवा कार्य—उनका उद्देश्य और सच्ची उपयोगिता यह है कि मानव-जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक और सार्वजनिक पहलुओं पर दृष्टिपात कर उसकी बुराइयों से जनता को सचेत करें और भलाइयों के प्रति आकृष्ट करें; क्योंकि मनुष्य को अपने जीवन की जिम्मेदारियाँ अवगत कराने से अधिक महत्वपूर्ण कार्य दूसरा कोई नहीं हो सकता जिसमे समाचारपत्रों की उपयोगिता को विस्तृत क्षेत्र मिले। व्यक्ति, जाति और राष्ट्र के जीवन में आज जो खामी है उसको भरने के लिये-भरवाने की प्रेरणा उत्पन्न करने के लिये—अधिक से अधिक शक्ति की आवश्यकता है। इस शक्ति का जन्म कहां से होगा और किस प्रकार होगा, यह प्रश्न विवेक की दृष्टि से जीवन से बाहर का नहीं है। और इस का उत्तर भी हमें वहीं ढूंढना चाहिये; वहीं मिलेगा। जरूरत केवल इतनी ही है कि हम मनुष्य में उस सच्ची शक्ति का विकास कर सकें जो उसको प्राप्त है पर उसकी अवज्ञा से अकर्मण्यता के आवरण में छिप गई है। एकबार मनुष्य को उस आत्म शक्ति का परिज्ञान कराना आवश्यक है-जिसके विश्वास पर वह आगे चलने का साहस करे—कठिनाइयों पर विजय पाने को उछलने लगे और अपने व्यक्तित्व का सामाजिक और नैतिक महत्व समझें—समझ कर उसमें विश्वास करे। आज के नेता, सुधारक, कवि, लेखक और सम्पादक सब के सामने यही एक समस्या है - विभिन्न कलाओं की एक ही साधना।

सामाजिक जीवन की चर्चा छेड़ते ही पगपग पर कठिनाइयों का अनुभव करता हुआ इस युग का विचारक घबरा सा उठता है। सामाजिक जीवन की विकृति ने उसके प्रति अनावश्यकता की भावना उत्पन्न कर दी है। एकबार ठोकर खा कर फिर कोई जान बूझ कर उस मार्ग में नहीं जाना चाहता—उसके नाम से भी वह चिढ़ता है। वास्तव में, हमारे बढ़ते हुए अज्ञान ने समाज की कल्पना इतनी ही विगहर्णीय कर दी है; आज तो मनुष्य सब तरह से स्वतंत्र हो जाना चाहता है-अपनी स्वच्छन्द गति को वह समाज के कठोर नियमों और प्रतिबन्धों से बंधवाना नहीं चाहता हृदय की कोमल वृत्तियों पर वह द्वेष, कलह और स्वार्थ द्वारा सृजित समाज व्यवस्था का अंकुश नहीं सहन कर सकता। पर क्या समाज के बंधारण को नहीं मान कर ही मनुष्य जीवन की साधना में पार उतर जायगा और क्या समाज में रह कर वह और उसका व्यक्तित्व सार्थक नहीं हो सकेगा, वास्तव में बात तो यह है कि *सामाजिक रुग्णता की अतिशयता ने* उसके दृष्टिकोण में अतिरंजना उत्पन्न कर दी है। नहीं तो यह बात तो माननी हीं पड़ेगी कि अपने आप में संपूर्णता

का अनुभव करते हुए भी व्यक्ति समाज के बाहर अपूर्ण ही है। जिस प्रकार सामाजिक जीवन व्यक्ति की शक्तिका विस्तृत प्रकाश है--उसी प्रकार वह उस शक्तिका उद्भावक और प्रकाशक भी। आगे न बढ़ कर केवल इतना समझने से ही काम चल जायगा कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व और बल का सच्चा भान कराने के लिये भी समाज का संगठन अनिवार्य रूप से स्पृहणीय है। व्यक्ति की आत्म प्रतीति, उस के गुणों और अवगुणों की परीक्षा के लिये भी समाज की स्थिति ग्राह्य है। मनुष्य की मानवता की अभिव्यक्ति समाज से भिन्न नहीं हो सकती; समाज की स्थिति में मूक व्यक्तित्व को भी वाणी का वरदान मिलता है। और सच पूछिये तो सामाजिक जीवन की उन्नति तो व्यक्ति के बल का प्रमाणपत्र है क्योंकि व्यक्ति के जीवन से बाहर सामाजिक जीवन की कोई कल्पना हो ही नहीं सकती। इतने विश्लेषण के बाद यह मान लेने में तो किसी को आपत्ति नहीं होगी कि समाज की स्थिति आवश्यक है और सामाजिक जीवन वाञ्छनीय। पर आज सामाजिक जीवन के प्रति जो इतना रोष--इतनी घृणित उदासीनता दिखाई देती है-- उसके कारण ढूंढना आवश्यक है। बिना कारण के कोई वस्तु हो नहीं सकती! अवश्य आज के सामाजिक जीवन में कोई ऐसी बात है जिसके कारण वह घृणोत्पादक हो गया है। बहुत से लोग कह सकते हैं कि आज तो पाश्चात्य सभ्यता का उद्दाम युग है और वह सभ्यता व्यक्ति में केन्द्रित है--उसके विचारों की अनुवर्तिनी है। हम जो आज सामाजिक जीवन के नाम से दूर भागते हैं या भागना चाहते हैं, यह उसी सभ्यता का फल है। पर हमें तो प्रसिद्ध लेखक स्टीवेन्सन का यह कथन ही अधिक सत्यान्वित मालूम पड़ता है कि बहुत लोगों की सामाजिक उदासीनता समाज की आन्तरिक बुराई का दूरान्वित परिणाम है। उस बुराई को दूर करने में साधारणतया व्यक्ति की शक्ति छोटी और सीमित है। ऐसा कई बार देखा जाता है कि बुराई को दूर करने में अपने को असमर्थ पा कर भी व्यक्ति बुराई को सह नहीं सकता, वह उस वस्तु से ही जिसमें बुराई हो--मुंह मोड़ लेना है। आज हमारे सामाजिक जीवन के दीवाले का यही हाल है। हमारे सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ कैसी हैं और क्या चाहती हैं? इसको सब जानते हैं!

समय हमारा सबसे बड़ा साथी है--जो हमारे कार्यों को बटोरता चलता है और आवश्यक समीक्षा करता ही रहता है। पर मित्र के साथ अमित्रता करने से हम जरा भी नहीं हिचकते—समय की मांग पर हम विचार नहीं करते। यह तो बहुत दूर की बात हो गई। आज तो हम 'यह जमाना कलियुग का है।' कह कर समय पर समय की दुरवस्था का आरोप करते हैं। इसका साफ अर्थ क्या है, यह हम नहीं समझते और हमारे जैसे कितने ही होंगे? समय के विरुद्ध चल कर हम गिर गये-- गिरते जा रहे हैं, पर यह धृष्टता हम में आज भी है कि 'प्राचीनता किसी भी तरह की हो उसमें सत्य की संपूर्णता, ज्ञान की अविकलता और एकान्तिक श्रेष्ठता है, और हमारे गिरने का कारण आज की आधुनिक हवा है।' धृष्टता के आगे बुद्धि और विवेक की क्या चले? नींद जिसको आयी हो उसको जगाया जा सकता है-- पर जो जाग कर भी सो रहा है उसे जगाना बड़ा मुश्किल है।

हमें अपनी सामाजिक दशा पर कुछ विचार करना था, कुछ निष्कर्ष निकालना था—इसीलिये यह विषय शुरु किया था। हमने गतांक के सम्पादकीय अग्रलेख में यह दिखलाने की कोशिस की थी कि हमारा सामा-

जिक जीवन तो कुछ है ही नहीं और उस सम्बन्ध में यह स्थापित करना चाहा था कि बिना महान क्रांति के, यह उस अंधकार में से नहीं निकाला जा सकता जिसमें रह कर वह अपने आपको भूला हुआ है। हमारी समाज व्यवस्था आज अपने पवित्र उद्देश्यों से गिर चुकी है। जिसका जन्म समाज के संगठन. संगठित हितों की रक्षा के लिये किया था वह आज स्वयं असंगठन और विच्छेद का कारण है—उसके कारण सारा समाज अशांति के वातावरण में जल रहा है।

समाज का प्रत्येक नियम, रीति-रिवाज समयानुकूल आवश्यकता को लेकर बनते हैं और परिवर्तनशील समय की गति के साथ उनमें उचित परिवर्तन करना ही उनके जीवित रखनेका साधन है। सामाजिक व्यवस्था इस दृष्टिकोण से मूलतः गत्यात्मक है। समय और वस्तु में जब प्रयोजन-विरोध उत्पन्न हो जाता है तब उस वस्तु की सत्य-प्रेरणा का लोप हो जाता है। समय के साथ-साथ घटना पर विस्मृति का आवरण चढ़ता जाता है। जाति और वर्ग की भेद व्यवस्था किसी समय शायद सामाजिक जीवन की रीढ़ थी पर आज तो वह अन्दरूनी बुराईयों के कारण टूट चुकी है। वर्ग युद्ध ने आज देश की राजनैतिक स्थिति शोचनीय बना दी है, और सामाजिक जीवन को तुरंत इसका सुधार करना चाहिये।

बड़े आश्चर्य की बात है कि आज समाज व्यवस्था व्यक्तियों के जीवन से अलग कोई एक दैविक वस्तु हो गई है। अन्दर ही अन्दर कुंठित होता हुआ व्यक्ति का जीवन बाहर से अर्थहीन सामाजिक प्रतिबन्धों से लदा हुआ है। संसार में आर्थिक संकट का कोलाहल मचा है—हमारे समाज में भी यह फैल रहा है। अधिकांश व्यक्तियों की आर्थिक शक्ति संकीर्ण हो गई है पर तब भी सामाजिक जीवन की जड़ स्थिरता ने उसको शक्ति से बाहर काम करने के लिये ज्ञात और अज्ञात रूपसे विवश कर रखा है। यह देख कर कितना करुण-संताप मिलता है। व्यक्ति अपना सुख चाहता है, अपने समाज की उन्नति भी देखना चाहता है—पर साथ ही मानवता के नाते वह अपनी सार्वजनिक स्थिति को भी नहीं भूलना चाहता। अनेक तरह से छोटे छोटे दायरों में बंधा हुआ व्यक्ति भी एक से अधिक बार सार्वजनिक जीवन की पुकार पर सम्हल उठता है। व्यक्ति और समाज की वह बन्धन भावना अवश्य घातक है—जिससे सार्वजनिक जीवन को धक्का पहुंचे। असल में ये तीनों भाग अलग अलग होते हुए भी एक ही वस्तु में अंगीभूत है। व्यक्ति की जो विभूति व्यक्तित्व और समाज में प्रकाशित होती है—वह सार्वजनिक क्षेत्र में प्रकट होने के पहले तक पूर्ण रूप से विकसित हुई नहीं मानी जाती। क्योंकि मनुष्य की भावना और कर्त्तव्य का सबसे ऊंचा सोपान वह है जहाँ वह अपने को सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में लगा कर उस सर्वात्मा की अखंड ज्योति की साधना समझे जिसका वह स्वयं एक क्षुद्र भाग है। यही सार्वजनिक जीवन का महत्व है।

भारत का इतिहास उन वीर विभूतियों की अमर गाथाओं से भरा है जिन्होंने सार्वजनिक कार्यों की प्रेरणा से अपने जीवन की परवाह न की। सार्वजनिक सेवा ही मनुष्य की मानवता का प्रतीक समझा जाता था। शताब्दियां बीत गई—युग परिवर्तन हो गया; पर आज भी भारत में सार्वजनिक जीवन का महत्व है, लेकिन कहना न होगा कि इसमें भी सामाजिक संकीर्णता की तरह सेवा भाव कम और व्यक्तिगत स्वार्थों की प्रवृत्ति

अधिक हो गई जिसके कारण आज कई लोगों की धारणा में सार्वजनिक व्यक्ति दया और घृणा का पात्र हो गया है। जीवन की वास्तविक कष्टमय परिस्थितियों से घबरा कर आजीविका-उपार्जन का परिश्रम न कर धन और कीर्ति का लोभी सार्वजनिक नेता आज अपने स्वार्थों के जाल में भोली जनता को फंसाता है: यह कल्पना कैसी है! कारण इसका यह है कि ऐसी परिस्थिति वर्तमान है। आज सच्चे सार्वजनिक सेवकों की संख्या नगण्य है। सार्वजनिक नेता के नाम से अभीहित कितने ही स्वार्थी धोखेबाजों का भण्डा-फोड़ आये दिन होता रहता है। इन घटनाओं पर कितने दिन तक परदा डाला जा सकता है? यही कारण है कि आज सार्वजनिक व्यक्ति के प्रति लोक की सहानुभूति और विश्वास कितना कम है? ऐसे सेवकों की नीति से सार्वजनिक जीवन को बड़ा धक्का पहुंचा है-- और पहुंच रहा है। इस प्रकार की दुष्ट-प्रवृत्ति बन्द होनी चाहिये।

आजकल देश भर में चुनाव का शोरगुल मचा है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस जैसी महान सार्वजनिक संस्था के उम्मीदवारों की विजय अवश्यम्भावी है और इसलिये नाम के भूखे धनियों ने अपने धन के बल पर कांग्रेस की उम्मेदवारी प्राप्त करना चाहा और आश्चर्य है कि कहीं कहीं वे ऐसा कर सके। जिसने कभी कांग्रेस की सेवा नहीं की, जिसने गरीबी को कभी गले नहीं लगाया, जिसको उच्च प्रासादों में कांग्रेस की नीति का भान नहीं, वही कांग्रेस का उम्मीदवार हो— तो क्या आश्चर्य है यदि लोगों का विश्वास कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के प्रति नष्ट होता जाय। इस महान् संस्था की बात के बाद अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के विषय में कहना व्यर्थ लेख को बढ़ाना होगा। यह स्थिति राष्ट्र के लिये बड़ी भयानक है।

जहां लोगों में सार्वजनिक जीवन का प्रचार हो रहा है और होना चाहिये, वहीं उसमें से इन बुराइयों को अवश्य दूर करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार के कामों से मनुष्य का व्यक्तित्व तो गिरता ही है पर राष्ट्र की सफलता भी दूर होती जाती है।

सार्वजनिक जीवन के प्रति अपने समाज की उदासीनता हमें सदा खलती है। क्या हमारे समाज में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो राष्ट्र के महान सेवकों की पंक्ती में खड़ा हो सके पर बात तो यह है कि हमारा समाज इस ओर से बिल्कुल उदासीन है। हमारे बालकों को सार्वजनिक तो क्या, सामाजिक जीवन की भी शिक्षा नहीं मिलती? सार्वजनिक जीवन की महत्ता की ओर हमें ध्यान देना चाहिये। इस जीवन से अलग रह कर हम देश सेवा और मानव सेवा से तो विमुख होते ही हैं—पर इससे हमारा व्यक्तित्व भी अन्धकारमय होता जाता है। हम व्यक्ति हैं और व्यक्तित्व का प्रकाश चाहते हैं, इसलिये हमें सामाजिक और सार्वजनिक प्राणी बनना ही पड़ेगा।

—(भँ० सिं०)

टिप्पणियां

"निरुन्यान संवन्दर"

हिज मास्टर्स वायस कम्पनी द्वारा निकाले हुए उक्त नाम के चार ग्रामोफोन रिकार्डों के विषय में आजकल जैन-समाज में काफी हलचल मची हुई है। इन रिकार्डों में तामिल भाषा का एक प्रहसन उतारा गया है जिसमें भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर के

विषय में कई ऊटपटांग बातें कही गई हैं। इसमें जैन-धर्म और उसके मत-प्रवर्त्तकों के जीवन पर भीषण आक्षेप किये गये हैं।

धार्मिक असहिष्णुता का इससे बढ़ कर और क्या उदाहरण हो सकेगा कि जिसमें इतिहास और मनुष्यता का भी अपमान किया गया है। आश्चर्य है कि इस प्रहसन के लेखक ने उस समय की धार्मिक, ऐतिहासिक, और राष्ट्रीय परिस्थितियों का जरा भी खयाल न कर १५०० वर्ष पीछे होनेवाले 'सम्बन्दर' को भी भगवान महावीर का समकालीन बना दिया है। इसके अतिरिक्त भगवान महावीर और पार्श्वनाथ को भी एक समय में बतला कर लेखक ने अपनी महान मूर्खता का परिचय दिया है।

व्यक्तियों में फैली हुई इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति और धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही आज संसार के विचारकों की दृष्टि में मजहब का नाम अपवित्र हो गया है। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि आज के प्रगतिशील युग मे भी ऐसे विवेकशून्य व्यक्ति हे जिनकी कुत्सित स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति के कारण मानवता के साँस लेने की जगह पर जहरीली हवा का प्रसार हो रहा है। इसी प्रकार की पारस्परिक धार्मिक फूट होने के कारण आज यह देश अवनति की ओर दौड़ रहा है।

हम मानते है कि जैनियों को प्रहसन के लेखक और रिकार्डों को निकालनेवाली कम्पनी का घोर तिरस्कार करना चाहिये। यह कर्त्तव्य है। इस प्रकार के दुस्साहस का प्रतिवाद करना आवश्यक है। पर इसके साथ ही यह भी समझना आवश्यक है कि इस प्रकार के दुस्साहस का मौका देने का कारण स्वयं हमारी कमजोरी है। हमारी शक्ति और प्रतिभा आज टुकड़ों-टुकड़ों में बँट गई है—जिसके कारण हमारा बल कम हो गया है। यह स्थिति अच्छी नहीं है और जल्दी से जल्दी जैन-समाज को आपसी कलह और भेदभाव को मिटा कर अपना संगठन करना चाहिये। क्या जैन-समाज अपने प्राचीन संगठन, अपनी प्राचीन उदारता, अपनी अदम्य शक्ति और मनोबल, अपने धन और गौरवपूर्ण साहित्य का इतिहास भूल गया है? या भूल जायगा। क्या उस समय भी इस प्रकार के रिकार्ड निकालने की किसी की हिम्मत हो सकती थी। सच तो यह है कि हम आज अपने पैसे और अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। हमें अपने साहित्य का पुनरुद्धार करना चाहिये, उसका सम्पूर्ण अन्वेषण कर चारों ओर उसका प्रचार करना चाहिए जिससे जनता को हमारे प्राचीन जौहर और हमारे सत्य-निष्णात सिद्धान्तों की सर्वमान्यता का पता लगे।

हमें विश्वास है कि शीघ्र ये चूड़ियाँ जब्त कर ली जायेंगी।

माघ महोत्सव

सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान, और सम्यक् चरित्र द्वारा आत्मोत्कर्ष की शिक्षा देनेवाला जैन धर्म आज भिन्न भिन्न शाखा और सम्प्रादायों में बँटा हुआ होने पर भी मूल सिद्धान्तों के प्रतिपादनमे अभिन्न है। धर्म-स्थापक भगवान महावीर के सूत्र-संचालन में आबद्ध सारे ही सम्प्रदाय अक्षय सत्य, अहिंसा, अचौर्य और ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते है। अतः इस दृष्टि से जैन धर्म के सभी संप्रदाय एक ही सत्य धर्म की मान्यता करते हैं। केवल व्यवहार और क्रिया का थोड़ा थोड़ा भेद है।

श्वेताम्बर जैन समाज मे श्री तेरापंथी सम्प्रदाय ने

गत १५०-२०० वर्षों में प्रचार और संगठन की दृष्टि से काफी कार्य किया है। माघ महोत्सव-जो प्रतिवर्ष माघ सुदी ७ को उस स्थान पर होता है जहां श्री पूज्य आचार्यजी महाराज विराजते हों,-इसका परिचायक है। इस प्रकार का महान वार्षिक महोत्सव अन्य किसी भी सम्प्रदाय में नहीं होता। कहना न होगा कि साधु संस्था के संगठन और शिक्षा दिक्षा, की दृष्टि से यह महोत्सव बड़ी लाभ दायक प्रथा है। "यह आचार्यों की दूरदर्शिता का ही फल है कि प्रत्येक वर्ष समस्त साधु साध्वियों के काय कलाप, आचार व्यवहार योग्यता आदि के निरीक्षण के लिये चातुर्मास के बाद माघ महीने में जहां आचार्य महाराज विराजते हों, वहां समस्त साधु-साध्वियां भी आकर श्री पूज्य आचार्यजी महाराज के दर्शन कर उनको अपने अपने धर्म कार्य का परिचय देते हैं"। एक आचार्य के नेतृत्व में ४००-५०० साधु साध्वियोंका रहना उनके निर्दिष्ट मार्ग में चलना इस युग में बड़ी भारी महत्ता का काम है। इसमें कोई संदेह नहीं।

"इस माघ महोत्सव के मौके पर अशक्त साधु साध्वियों के सिवाय सारे साधु साध्वियाँ माघसुदि ७ तक पहुंच जाते हैं। उसी दिन या उसके लगभग ही भावी चातुर्मास में कहाँ कहाँ, किन किन साधु सतियों को प्रचारार्थ भेजा जायगा यह आचार्य महाराज श्रावकों के अर्ज तथा अन्यान्य बातों को विचार कर स्थिर करते है।" जहाँ आज भाई-भाई में कलह, पिता पुत्र में कलह, स्वजन जाति में कलह होती है वहाँ इस प्रकार का वृहद् सगठन अवश्य एक स्पृहणीय बात है।

क्या व्यक्तिगत, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या सार्वजनिक—जीवन के सभी क्षेत्रों में अनुशासनकी अनिवार्य आवश्यकता है। इस युग की सफलता संगठन पर निर्भर है और संगठन को दृढ़ बनाये रखनेवाली चीज अनुशासन है। जिसकी वाणी में हमें अपने हितों की रक्षा का पूरा विश्वास है, जिसको हम अपना नेता या मार्ग-सूचक मान लें, उसकी आज्ञा पालन करना और उसके अनुशासन में रहना हमारा परम कर्त्तव्य है। आज विश्व के राजनीतिक क्षेत्र में हिटलर और मुसोलिनी का नेतृत्व जो इतना अपूर्व हो रहा है, उसके कारण उनके सिद्धान्तों की जो बलवान् प्रेरणा फैल रही है, उसका कारण संगठन और अनुशासन-बल ही है। आज प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक धर्म में संगठन की आवश्यकता है।

हमें तेरापंथी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की बहस नहीं करनी है। हम तो संप्रदायातीत धार्मिक चर्चा भी नहीं कर रहे हैं, केवल हमें तो इस प्रकार की संगठन-शक्ति के प्रति श्रद्धा है और इसीलिये माघ महोत्सव के विषय में इतना लिखा है। वैसे हम तो यह चाहते हैं कि समस्त जैन समाज का एक संगठित महोत्सव हो जिसमें हम स्वयं अपने समाज की स्थिति पर विचार करें, एवं संगठित शक्ति द्वारा उसको बाहरी आघातों से बचावें। 'संघे शक्ति कलियुगे।'

ओसवाल महासम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन

परम सौभाग्य का विषय है कि श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन कलकत्ता में होना निश्चित हो गया है। गत २-३ महीनों से यह चर्चा चल रही थी कि सम्मेलन के गत अधिवेशन को हुए एक वर्ष से ऊपर होने को आया है और अभीतक उसके लिये निमन्त्रण कहीं से नहीं आया। इसके सम्बन्ध में सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्रीयुत राय साहब कृष्णलालजी बाफणा बी० ए० बड़ा

कष्ट उठा कर अजमेर से डेपुटेशन लेकर कलकत्ते पधारे थे। आपने यहाँ सम्मेलन के अधिवेशन का महत्त्व और उपयोगिता इतने सुन्दर ढंग से समझाई कि कलकत्ते का उत्साही ओसवाल समाज अपनी जाति के संगठन और उन्नति के लिये तुरन्त इस बात पर राजी हो गया कि सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन कलकत्ते में किया जाय।

अबतक सम्मेलन के प्रति जनता में जो इतनी उदासीनता रही, उसके कारणों में सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया जाता है कि अबतक सम्मेलन ने किया ही क्या है ? अनेक लंबे-चौड़े प्रस्तावों की फाइल बनाने से क्या होता है ?' यदि सचमुच लोगों की यह आपत्ति है तो हम इसे स्वीकार करते हैं, पर हम पूछते हैं कि इस बात का श्रेय या बुराई किसको दिया जाय। समाज के ही संगठन का नाम तो सम्मेलन है--फिर यह कैसे सम्भव है कि समाज तो उदासीन हुआ बैठा रहे और चाहे कि सम्मेलन कुछ करे। समाज के व्यक्तियों की शक्ति ही तो सम्मेलन की शक्ति है - फिर क्या आश्चर्य है कि व्यक्तियों का सहयोग न पाकर सम्मेलन शिथिल हो रहा है। किसी बात की बुराई देखने और उसकी शिकायत करने का अधिकार मनुष्य को तभी हो सकता है जब वह स्वयं इसके सुधारने के लिये तैयार हो। उसके छिद्रान्वेषण का तभी महत्व है।

यह बात तो अब सभी मानने लगे हैं कि महासम्मेलन जैसी केन्द्रीय संस्था की बड़ी अवश्यकता है। सारे भारतवर्ष में फैले हुए ओसवालों को एक साथ संगठित कर उन में पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति की भावना उत्पन्न करना समाज के लिये सब से बड़ी आवश्यकता है। बहुत बार कहा जा चुका है पर यह कहना अब भी अप्रासंगिक न होगा कि हमारे समाज में संगठन की बड़ी भारी कमी है जिसके कारण कई अन्यान्य बुराइयाँ भी बढ़ती जा रही हैं। संगठन प्राप्त करने में सारे प्रश्नों के निपटारे की उपलब्धि सन्निहित है। समाज के जीवन मरण के प्रश्नों--जो 'नवयुवक' के पृष्ठों में बराबर निकलते रहे हैं - के ऊपर विचार कर उनका उचित रीति से सुलझाने के लिये हमें एक बड़ी भारी सामूहिक कार्य-शक्ति की जरूरत है। इतना कहना ही काफी होगा कि प्रत्येक दृष्टि से आज संगठन की आवश्यकता है।

कहना न होगा कि उक्त प्रकार के सामाजिक संगठन के लिये सम्मेलन द्वारा ही सबसे अधिक सफल कार्य हो सकता है। असल में हमारे यहां पहले जो पंचायत संस्था का रिवाज था, बस सम्मेलन भी उसीका रूपान्तर है। एक दफा पंचायत द्वारा बड़ी सुन्दर रीति से सामाजिक व्यवस्था की जाती थी पर कालान्तर में स्वार्थ और संकीर्णता की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाने के कारण और उसमें नवजीवन न रहनेके कारण, वह आधुनिक विवेकशील व्यक्तियों को आकृष्ट नहीं कर सकी। पचायतें जब सामाजिक संगठन की पोषक न होकर, उसके विच्छेदका कारण हो चली; तब समाज में उनका अस्तित्व निर्जीव सा हो गया। पर संगठन के लिये कोई संस्था तो होनी चाहिये। पाठकों को यह समझने में विलम्ब न होगा कि सम्मेलन इसी आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

हमें सम्पूर्ण आशा है कि कलकत्ते के भाइयों ने जिस उमंग और उत्साह के साथ सम्मेलन को निमंत्रित किया है, उतनी ही दिलचस्पी के साथ वे सम्मेलन के कार्यों में भाग लेकर अपने सजीव विचारों का परिचय देंगे। सम्मेलन को सफल बनाने की सब प्रकार की

सुविधाएँ कलकत्ते में मौजूद हैं; वास्तव में सम्मेलन के लिये कलकत्ते से बढ़कर दूसरा कोई स्थान नहीं हो सकता था। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि महा-सम्मेलन का यह अधिवेशन सम्मेलन को चिरस्थायी बनाने में सबसे अधिक सफल होगा। और इस प्रकार समाज के संगठन और सुधार का काम खूब आगे बढ़ सकेगा।

विश्वास है कि कलकत्ते के धनीमानी वृद्ध महानु-भाव एवं उत्साही युवक वर्ग अपने पूर्ण परिश्रम और सहयोग द्वारा सम्मेलन के प्रबन्ध और कार्यवाही में भाग लेकर कलकत्ते जैसे बड़े नगर—जिसमें सब प्रान्तों के ओसवालों का निवास है—का सम्मान रखेंगे।
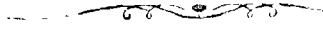
वर्ष ७ संख्या ११ मार्च १९३७

अहिंसा की मुख्यता चारित्र में है; सत्य की मुख्यता ज्ञान में है। चारित्र जगत् में अहिंसा सम्राज्ञी है और सत्य मन्त्री है। वहाँ अहिंसा सम्राज्ञी सत्यरूपी मन्त्री से सलाह लेकर शासन करती है। जब कि ज्ञान जगत् में सत्य पति है और अहिंसा पत्नी है। पति कमाई करता है, पत्नी को सौंपता है, पत्नी उसका ऐसा उपयोग करती है जिससे दोनों आनन्दित होते हैं। इसी प्रकार सत्य कमाई करता है और अहिंसा को सौंपता है, अहिंसा उसका ऐसा उपयोग करती है जिससे दोनों की रक्षा होती है। इस प्रकार ये दोनों, धर्म के ऐसे अविच्छेद्य अंग हैं जिनको अलग-अलग बतलाया तो जा सकता है, परन्तु किया नहीं जा सकता। एकके बिना दूसरे की गुजर नहीं है।

—पण्डित दरबारीलालजी

वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।=)

सम्पादकः— विजयसिंह नाहर, बी० ए०
भँवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

लेख-सूची

[मार्च, १९३७]

ओसवाल नवयुवक के नियम

१ – 'ओसवाल नवयुवक' प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा।

२—पत्र में सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक आदि सभी विषयों पर उपयोगी और सारगर्भित लेख रहेंगे। पत्र का उद्देश्य राष्ट्रहित को सामने रखते हुए समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना होगा।

३—पत्र का मूल्य जनसाधारण के लिये रु० ३) वार्षिक, तथा ओसवाल नवयुवक समिति के सदस्यों के लिए रु० २।) वार्षिक रहेगा। एक प्रति का मूल्य साधारणतः।=) रहेगा।

४ – पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखादि पृष्ठ के एक ही ओर काफ़ी हासिया छोड़ कर लिखे होने चाहिएं। लेख साफ़-साफ़ अक्षरों में और स्याही से लिखे हों।

५—लेखादि प्रकाशित करना या न करना सम्पादक की रुचि पर रहेगा। लेखों में आवश्यक हेर-फेर या संशोधन करना सम्पादक के हाथ में रहेगा।

६—अस्वीकृत लेख आवश्यक डाक-व्यय आने पर ही वापिस भेजे जा सकेंगे।

७—लेख सम्बन्धी पत्र सम्पादक, 'ओसवाल नवयुवक' २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता तथा विज्ञापन-प्रकाशन, पता–परिवर्त्तन, शिकायत तथा ग्राहक बनने तथा ऐसे ही अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पत्र व्यवस्थापक—'ओसवाल नवयुवक' २८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता के पते से भेजना चाहिये।

८—यदि आप ग्राहक हों तो मैनेजर से पत्र-व्यवहार करते समय अपना नम्बर लिखना न भूलिए।

विज्ञापन के चार्ज

'ओसवाल नवयुवक' में विज्ञापन छपाने के चार्ज बहुत ही सस्ते रखे गये हैं। विज्ञापन चार्ज निम्न प्रकार हैं:–

कवर का द्वितीय पृष्ठ	प्रति अङ्क के लिए	रु० ३५)
,, ,, तृतीय ,,	,, ,, ,,	३०)
,, ,, चतुर्थ ,,	,, ,, ,,	५०)
साधारण पूरा एक पृष्ठ	,, ,, ,,	२०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	,, ,,	१३)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	,,	८)
,, चौथाई कालम	,, ,,	५)

विज्ञापन का दाम आर्डर के साथ ही भेजना चाहिये। अश्लील विज्ञापनों को पत्र में स्थान नहीं दिया जायगा।

व्यवस्थापक—ओसवाल-नवयुवक

२८, स्ट्राण्ड रोड़, कलकत्ता

श्रीयुत डाक्टर बख्तावरमलजी कोठारी एम० बी० बी० एस०, जोधपुर

श्रीयुत कोठारी जोधपुर के विंढम हॉस्पिटल में एसिस्टेंट सर्जन हैं। आपने बम्बई यूनिवर्सिटी से [illegible] की एम० बी० बी० एस० परीक्षा विशेष योग्यता के साथ पास की है। एक सफल डाक्टर होने के साथ साथ श्रीयुत कोठारी में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों की भी तीव्र पर्यालोचन-शक्ति है। आप मिलनसार उत्साही युवक हैं तथा आपके सामाजिक विचार उन्नत एवं परिष्कृत हैं। हमारी शुभेच्छा है कि श्रीयुत कोठारी इसी प्रकार रुचि के साथ समाज के कार्य में हाथ बटाते रहें।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] मार्च, १९३७ [संख्या ११

संसार

[श्री जवाहिरलाल जैन एम० ए० 'विशारद']

(१)

कैसा अद्भुत है संसार ?
किसने पाया इसका पार ।

(२)

जीवन सागर में आती हैं,
चली क्षितिज से लहर अपार ।
ठुमक, ठुमक गिरती उठती सी,
बढ़ती जनु शिशुता साकार ।।
मुख पर भोलापन हंसता है ।
आशा-आलोक खेलता है ।
कण में तव विश्व झलकता है ।
लोक दिखता सपनों का हार ।
कैसा अद्भुत है संसार ।।

(३)

ज्यों इस ओर फैलती आतीं,

बढ़ता जाता ज्यों आकार।

बलखाती इठलाती हैं त्यों,

दिखलातीं अभिनव व्यापार॥

यौवन का वेग छलकता है।

अङ्ग एक-एक उछलकता है।

मदका नहिं भार सँभलता है।

विश्व दिखता सब सुख का भार।

कैसा अद्भुत है संसार॥

(४)

जीर्ण शीर्ण उत्साह-हीन सी,

टकरातीं आकर इस पार।

छींटे-छींटे हो मिल जातीं,

जल में खो आकार—प्रकार॥

शैशव तम में जा छिपता है।

यौवन मुँह मोड़े हँसता है।

जरा असहाय तड़पता है।

नष्ट हो जाता सब व्यापार।

कैसा अद्भुत है संसार॥

(५)

जीवन-सागर में आती है

चली क्षितिज से लहर अपार।

कालवायु से प्रेरित जाती

चली क्षितिज के फिर उस पार।

रुपये का मूल्य

(श्री भंवरमल सिंघी बी० ए०, साहित्य रत्न)

कहना नहीं होगा कि मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ विदेशी या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व बहुत बढ़ गया है। अब वह जमाना नहीं रहा कि मनुष्य अपनी माँग अपनी ही उत्पन्न की हुई वस्तुओं से पूरी कर ले। इस समय कोई भी ऐसा देश नहीं जिसका व्यापारिक क्षेत्र अपने देश तक ही सीमित हो। वास्तव में भूमि, जलवायु, श्रम, उत्पत्ति आदि की विशेष सुविधाओं के कारण प्रत्येक देश के कुछ मुख्य व्यवसाय हो गये हैं और उन चीजों के लिये दूसरे देशों को उस देश का मुखापेक्षी होना ही पड़ता है। ऐसी ही परिस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ मालूम पड़ता है। पाट (Jute) की आवश्यकता दूसरे देशों में भी है पर विशेष प्राकृतिक सुविधाओं के कारण यह मुख्यतः हमारे देश का ही व्यवसाय है। यहां पर अवश्य याद रखना चाहिये कि प्राकृतिक सुविधाएँ ही सब कुछ नहीं हैं—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभालाभ पर राजनैतिक परिस्थितियों का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में कपड़े के व्यवसाय के लिये प्राकृतिक सुविधाएँ तो बहुत हैं—(एक समय था भी जब भारत कपड़े के व्यवसाय में सबसे अधिक बढ़ा चढ़ा था) पर विदेशी शासकों की सहानुभूतिपूर्ण स्वदेशी व्यापार नीति न होने के कारण इस व्यापार को ऐसा धक्का लगा कि यह उस धक्के के प्रभाव से आजतक न संभला।

विदेशी व्यापार के जन्म के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान का प्रश्न भी आ जाता है। मामूली सी बात है कि एक देश दूसरे देशों को माल भेजता है और मंगाता भी है। पहले का निर्यात (Export) और दूसरे को आयात (Import) कहते हैं। इनमें भी प्रत्यक्ष आयात या निर्यात और अप्रत्यक्ष आयात या निर्यात का भेद किया जाता है। पहले आयात और निर्यात को बराबर करने से भुगतान का प्रश्न ठीक बैठ जाता था। परन्तु ज्यों-ज्यों विदेशी व्यापार बढ़ता गया, आयात-निर्यात में विषमता होने लगी और इस विषमता (Balance of Trade) का भुगतान करने की समस्या खड़ी हुई। यह तो जानी हुई बात है कि सब देशों में एक सा सिक्का नहीं है कि जिससे उस सिक्के के द्वारा लेनदेन चुकती कर दिया जाय। अमेरिका का डालर भारत के किस काम का और भारतीय रुपया इङ्गलैण्ड में किस अर्थ का ? ऐसी स्थिति में स्वर्ण द्वारा यह काम लिया गया—प्रत्येक सिक्के की कीमत सोने द्वारा मापी गई और इस प्रकार जिस सिक्के की जितनी मांग होती उतना ही सोना भेज कर यह काम समाप्त होता था और सच्चे स्वर्णमान (Gold Standard) की हालत में सोने के आयात-निर्यात से अपने आप विनिमय की दर पर नियन्त्रण रहता था। पर जब ऐसी परिस्थिति हो जाय कि दो देशों में स्वर्णमान न हो तब

स्वर्ण द्वारा विदेशी विनिमय का नियमन नहीं हो सकता। उस हालत में दो देशों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वस्तुओं की कीमतों के द्वारा सिक्कों का पारस्परिक मूल्य निश्चित होता है। उदाहरण के लिये हिन्दुस्तान में एक रुपये के १० सेर गेहूं आते हैं और इंगलैंड में एक पौंड के १५० सेर गेहूं आते हों तो यह समझा जायगा कि एक पौंड की विनिमय दर १५ रुपये है। किन्तु इस रीति के नियमन में बिल्कुल सही कीमत सूचक अंकों (Index Numbers) के संकलन की आवश्यकता है जो होना बड़ा मुश्किल काम है। वास्तव में अब तो सिक्के और विनिमय की जटिलता इतनी बढ़ गई है कि यह हालत भी नहीं रही। आजकल तो बहुत से देशों में सिक्के का विनिमय दर कृत्रिम ढंग से नियंत्रित किया जाता है। इसमें रहा हुआ उद्देश्य यह है कि प्रत्येक देश अपनी अपनी व्यापारिक उन्नति में दत्तचित्त है।

विनिमय के प्रश्न ने आजकल संसार के व्यापार पर एक बहुत बड़ा कब्जा कर रखा है। प्राकृतिक साधनों के स्थान में विनिमय के घटने बढ़ने का सारा उत्तरदायित्व प्रत्येक देश की सरकार के हाथों में है। ऐसी हालत में यह स्पष्ट है कि जिस देश में स्वायत्त शासन न हो, विदेशी लोग शासन करें--वहां विनिमय का प्रबन्ध विदेशी शासक अपने देश के हितों की दृष्टि से ही करेंगे शासित देश के हितों की उन्हें परवाह नहीं होगी। विनिमय का यह साधारण सिद्धान्त है कि विनिमय दर की घटती से देश के निर्यात व्यापार में वृद्धि होती है, आन्तरिक कीमतें बढ़ती हैं, व्यापार में वृद्धि होती है और ऊंची दर से निर्यात में कमी, आयात में बढ़ती, आन्तरिक कीमतों में कमी और स्वदेशी उद्योग धन्धों को हानि होती है। इसके लिये एक उदाहरण की आवश्यकता होगी। आजकल हमारे रुपये की स्टर्लिङ्ग-विनिमय दर १ शि० ६ पें० है। यदि इसको १ शि० ४ पें० कर दी जाय तो हमारे देश को बड़ा लाभ होगा। हमारे निर्यात व्यापार (Export) में वृद्धि होगी। यहां हम जो चीज १ रु० में बना पाते हैं वह इंगलैंड में १ शि० ६ पें० (जहाज भाड़ा, ड्यूटी वगैरह का विचार इस समय छोड़ दिया है) में बिकेगी पर यदि विनिमय १ शि० ४ पें० हो तो वह १ शि० ४ पें में बिकेगी अर्थात् सस्ती हो जायगी। सस्ती चीज की मांग सदा अधिक होती है और उससे निर्यात व्यापार की वृद्धि होती है। इस विषय में हम अधिक तो आगे लिखेंगे पर यहां तो सिद्धान्त की चर्चा करते हुए इतना लिख दिया। वैसे ही विनिमय की दर ऊंची होने से विदेशी चीजें हमारे देश में सस्ती बिकेगी और घरेलू उद्योगधन्धों को धक्का पहुंचेगा। पहले जब पूर्ण स्वर्णमान की स्थिति थी तब तो ऐसा हो ही नहीं सकता था क्योंकि ज्योंही एक देश का निर्यात बढ़ा तो उस देश में सोने का आयात होता था और सोने के योग से देश में सिक्के की प्रचुरता होती थी और कीमतें बढ़ जाती थी और फिर उसमें निर्यात के स्थान में आयात होना शुरू होता था। इस प्रकार सारी परिस्थिति बदल कर ठीक होती थी पर अब जब विनिमय का नियन्त्रण एक मात्र सरकार की नीति पर ही अवलम्बित है, विनिमय का जाल बहुत घना हो गया है। आजकल तो विनिमय दर को निश्चित स्तर से बिना अपनी मर्जी के ऊंचे-नीचे होने का सरकार मौका ही नहीं देती। इस काम के लिये Exchange Equalisation Fund की रचना कर काम लिया जाता है जिसके द्वारा विदेशी विनिमय के क्रय विक्रय से निश्चित दर को नियन्त्रित रखा जाता है।

आजकल हमारे देश में रुपये के मूल्य को कम करने अर्थात् विनियम-दर को घटाने का प्रश्न खूब जोरों से चल रहा है। इस सम्बन्ध में आजकल वैसी ही परिस्थिति हो रही है जैसी सन् १९२६ में हो रही थी। इस समय जनता और सरकार के बीच में एक बड़ा विरोध चल रहा है। सदा की तरह सरकार १ शि० ६ पे० की दर को पकड़ बैठी है—और जनता देश की आर्थिक निर्बल परिस्थिति दिखा कर १ शि० ४ पे० का प्रस्ताव करना चाहती है। इस सम्बन्ध में यहाँ विचार करना समयानुकूल और रुचिकर होगा।

भारतीय सिक्के और विनिमय के गत सौ वर्षों के इतिहास के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारी विदेशी सरकार ने सदा ऊँची विनिमय दर का पक्ष समर्थन किया है। समय-समय पर नियुक्त किये हुए कमीशनों और कमीटियों जिसमें विदेशी लोग ही अधिक होते आये हैं की रिपोर्ट का बहाना लेकर सरकार ने ऊँची विनिमय दर को ही भारत के हितों के लिये ठीक समझा। और जनता की मांग को अनुपयुक्त बता कर बार-बार ठुकराया गया। इस बात की ओर से सरकार ने सदा आँख बन्द रखी कि भारत के हितों को यहाँ के ही लोग अधिक समझ सकते हैं या विदेशी लोग ?

इधर ३-४ वर्षों से यह प्रश्न कुछ ठंढा सा दीखता था पर अभी जब फ्रांस, हालैण्ड, स्विजरलैण्ड और इटली ने अपने-अपने देश के सिक्के का मूल्य कम कर दिया तो यह प्रश्न स्वभावतः ही उठा कि इसका प्रभाव भारत की आर्थिक अवस्था पर भी अवश्य पड़ेगा। कहना न होगा कि यही सब से अच्छा मौका था कि रुपये का मूल्य कम कर दिया जाता—पर बार-बार जनता की कठिनाइयों का अनुभव करते हुए भी सरकार ने ऐसा होने देने से इन्कार कर दिया।

मैंने ऊपर एक स्थान पर कहा है कि विनिमय दर के ऊँची होने के कारण देश के निर्यात व्यापार को धक्का पहुंचता है—और यह कथन भारत के गत १० वर्षों के निर्यात के आंकड़ों से सत्यसिद्ध होता है। सन् १९२६ से ही हमारे निर्यात व्यापार में कमी होती गई—और सन् १९३१ में स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। इस विषमता से बचने में सरकार को स्वर्ण सम्बन्ध-त्याग तथा उसके कारण होनेवाले स्वर्ण प्रवाह से सहायता मिली। और सन् १९३१ से १ शि० ६ पे० की दर के निर्वाह में स्वर्ण-निर्यात की बड़ी सहायता मिली है। कई विद्वानों की ऐसी भी सम्मति है कि स्वर्ण निर्यात का कारण ही ऊँची विनिमय दर है।

पर यह धारणा गलत है क्योंकि स्वर्ण निर्यात से चाहे ऊँचे विनिमय के नियमन में सहायता मिली हो पर वह उसका कारण नहीं है और स्पष्ट ही विनिमय दर के कम होते ही स्वर्ण निर्यात और बढ़ जाता। इस विषय में मैं अपने विचार 'भारतीय स्वर्ण निर्यात की समस्या' * शीर्षक, लेख में बता चुका हूं।

* "जिन लोगों की यह धारणा है कि बढ़ते हुए सुवर्ण निर्यात का मूल कारण विनिमय की ऊँची दर है, उनकी विचार धारा इसलिये दोष-युक्त है कि वह कुछ तथ्यों को छोड़ कर चलती है। भारतीय मुद्रा नीति के इतिहास का अनुशीलन करनेवाला प्रायः प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वास्तविकता की दृष्टि से १ शिलिंग ६ पेंस की दर हमारे यहाँ सन १९२४ से चली आ रही है फिर सुवर्ण सम्बन्ध त्यागने से पहले हमारे देश से सोने का निर्यात क्यों नहीं हुआ ? उस समय तो प्रत्येक वर्ष हम कुछ करोड़ों का सोना उल्टा खरीद रहे थे। ऊँची विनिमय दर का सुवर्ण निर्यात पर प्रभाव

आजभी कीमतोंकी कमी के कारण हमारे देश में किसानों की वही हालत है जो सन् १९३१ में थी। अभी तक भी हमारे यहाँ की कच्ची चीजों की लागत और कीमतों का सम्बन्ध ठीक हुआ ही नहीं। बराबर घटती हुई कीमतों से किसानों की गरीबी इतनी बढ़ गई है कि उनके जीवन में कोई आशा, कोई उत्साह नहीं रहा। आज वे अपनी करूण कहानी किससे कहें--कह नहीं सकते! कड़ी से कड़ी मेहनत कर रद्दी से रद्दी और कम से कम खाना—वह भी यदि मिल सके—उनके भाग्य का निपटारा है। यही उसके जीवन की फिलासफी, उसके जीवन की कल्पना! इधर मूल्यों की कमी ने उत्पादन का क्षेत्र चौपट कर दिया है उधर पेट के सवाल ने घर की बचत को होम दिया।

दूसरी ओर भारतीय व्यवसाय का क्षेत्र भी सूख रहा है। कीमतों के बिना बढ़े किसान कैसे उत्पादन करे? बाहर (Market) ही नहीं-खरीददार ही नहीं तो कैसे काम चले? अभी मालूम हुआ है कि आजकल जर्मनी में भारत के व्यापार को बड़ी हानि हो रही है। नीचे हम तीन वर्षों के जर्मनी में भारतीय-व्यापार के आँकड़े दे रहे हैं जिससे सारी स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

अवश्य पड़ा, पर हम उसको स्वर्ण निर्यात का कारण नहीं कह सकते।······वास्तव में सुवर्ण निर्यात का कारण तो यह है कि सुवर्ण की बहिर्गत दर तो बढ़ गई और अन्तर्गत दर नहीं बढ़ी। ऊँची दर का लाभ उठाने के लिये सोना दूसरे देशों को भेजा जा रहा है।"

—दैनिक आज ता॰ ५ और ६ दिसम्बर सन १९३५

जर्मनी का भारतीय व्यापार

	१९३३	१९३४	१९३५
निर्यात	८७००००००	९४००००००	१११००००००
आयात	१५४००००००	१३४००००००	१२१००००००

(सब रकमें मार्कस मे दी गई हैं)

इस कोष्ठक से यह भलीभाँति मालूम हो जाता है कि ऊँची विनिमय दर के कारण जर्मनी में भारत के माल की खपत दिन प्रतिदिन कम हो रही है और भारत में जर्मनी का माल अधिक क्षेत्र पा रहा है

रिजर्व बैंक एक्ट के पास होने के समय में भी विनिमय का प्रश्न मुख्य रूप से जनता की दृष्टि में था और एक्ट के प्रोएम्बल में यह कहा गया है कि जब तक विश्व की मुद्रानीति अव्यवस्थित और अस्पष्ट है तब तक भारतीय मुद्रा नीति का आधार निश्चित नहीं किया जा सकता, किन्तु ज्यों ही कोई अन्तर्राष्ट्रीय नीति स्पष्ट और स्थिर होगी, रुपये की नीति भी स्थिर कर दी जायगी।

अभी फ्रांस की सरकार ने अपने सिक्के का जो मूल्य कम कर दिया है, फ्रांस, अमेरिका और इटली तीनों के बीच में विनिमय का जो समझौता हुआ है इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि विनिमय की अंतर्राष्ट्रीय स्थिरता की ओर सबका उद्देश्य है (An International Gesture towards Economic recovery) ऐसी परिस्थिति में यह नितान्त सामयिक और आवश्यक है कि रुपये के विनिमय मूल्य पर पुनर्विचार होकर वर्तमान आवश्यकता के अनुसार उसका मूल्य कम कर दिया जाय। बड़े आश्चर्य और दुख की बात है कि सरकार भारतीय हितों के इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना नहीं चाहती।

इस प्रकार की शोचनीय अवस्था अन्य देशों में भी थी—पर देश के हितों की दृष्टि से विनिमय का नियमन कर इस समस्या को हल कर दिया गया। जैसे इंगलैण्ड, फ्रांस, बेलजियम स्विजरलण्ड हालैण्ड इत्यादि देशों में। फ्रांस और इटली विनिमय दर को कायम रखनेके पक्षपाती थे पर अन्त में घबरा कर उन्हें भी विनिमय दर छोड़ ही देनी पड़ी। सैद्धान्तिक सत्य है कि जिस देश को आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक करना पड़ता है उसको विनिमय की नीची दर से बहुत लाभ होता है—और हमारे देश में सदा निर्यात ही अधिक होता है। इसके अलावा हमारे देश को हर वर्ष ५० या ६० करोड़ रुपये का भुगतान भी विदेशों को करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में रुपये का मूल्य अधिक होने से हमारे देश में सब तरह से नुकसान हो रहा है।

आज जब चारों ओर से विनिमय का मूल्य कम किया जा रहा है, उसका अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव हमारे देश के व्यापार पर भी पड़ रहा है—और पड़ेगा। संसार की वर्त्तमान परिस्थिति से यह भान होता है कि इस समय सिक्के का मूल्य कम करना—An International gesture towards Economic recovery. है जैसा स्विजरलैंड के Delegate ने कहा था। इस समय लगभग सभी देशों ने सिक्के का मूल्य कम कर दिया है---यह बात हम नीचे की तालिका से देखेंगे।

देशका नाम	महायुद्ध से पूर्व की विनिमय दर	सन् १९३६ के सितम्बर-अक्टूबर की दर
बेलजियम	१ पौं०=२५ २०७ फ्रैंक	१ पौं०=२९ ७९ फ्रैंक
फ्रांस	१ पौं०=२५०·२०७ फ्रैंक	१ पौं०=१०५ फ्रैंक
इटली	१ पौं०=२५·२०७ लिरा	१ पौं०=९२ लिरा
जापान	१ येन=२ शि० ० ९/१६ पें०	१ येन=१ शि० २ ३/३२ पें०
हालैंड	१ पौं०=१२·०८६७ फ्लोरिन	१ पौं०=९ ३५ फ्लोरिन
संयुक्त राष्ट्र एमेरिका	१ पौं०=४ ८७४४ डालर	१ पौं०=४·९२ डालर
भारतवर्ष	१ रु०=१ शि० ४ पें०	१ रु०=१शि० ६ पें०

संसार के व्यापार के क्षेत्र में विनिमय और तज्जन्य व्यापारिक परिस्थिति की दृष्टि से भारत का क्या स्थान है यह उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है। श्रद्धेय प्रो० भडारकर जैसे स्पष्टवादी अर्थ शास्त्रज्ञ ने बिल्कुल ठीक कहा है कि—"योरपीय देशों का अपने सिक्कों की कीमत घटाने का यह निश्चय योरप के साथ भारत के निर्यात-व्यापार पर विशेष अंकुश का काम करेगा। इस समय भारत के वैदेशिक व्यापार का लेखा उसके बहुत खिलाफ है। अब उसकी हालत और भी बदतर हो जायगी। हिन्दुस्तान इस बात के लिये चिल्ला रहा था कि उसके सिक्के की कीमत और भी घटाई जाय क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी उन बाजारों में—जहां उसका माल बिकता था, अब भारत को नीचा दिखा कर अपना माल बेच रहे हैं। भाव बढ़ने की कोई सम्भावना तो अभी बहुत दिन तक नहीं दिखाई देती और चीजों की कीमतें ऐसे पैमाने

पर आकर रुक गई हैं कि उसे स्थिर ही कहना चाहिये। इस देश में चीजों के बनाने या पैदा करने का खर्च मात्र भी आजकल कीमत से नहीं वसूल होता। योरपीय देशों का सिक्कों की कीमत घटाना स्थिति को बदतर बना देता है—इससे भारत में बेरोजगारी बढ़ेगी, कर्ज का भार ज्यादा हो जायगा और अगर संसार के व्यापार में कुछ गर्मी आई तो हिन्दुस्तान उससे फायदा न उठा सकेगा।"

लागत और कीमतों की असगति जो हमारे सामने आज सबसे बड़ी समस्या है-के बारे में मैं अपने विचार 'आज' में प्रकाशित कर चुका हूं। वह यों है "अर्थ शास्त्र के सभी विद्वानों ने लिखा है कि भारतीय उत्पादकों के हित के विचार से एक शिलिंग ६ पेंस की विनिमय दर ऊँची है इससे सबसे बड़ी हानि यह हो रही है कि हमारी लागत तो वैसी ही है और कीमत घट रही है। विश्वव्यापी अर्थ संकट के प्रभाव के साथ-साथ भारतीय अर्थ संकट का एक मूल कारण यह भी है कि भारत में सन् १९२५ से ऊँची विनिमय दर के कारण कीमतें तेजी के साथ घटती गईं। स्टर्लिंग से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी देश में कीमतें इतनी तेजी के साथ नहीं घटी। डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रेलिया आदि देशों ने स्टर्लिङ्ग के साथ अपने सिक्के का संबंध तो स्थापित किया पर विनिमय की दर स्वाभाविक और नीची रखी जिसके कारण उनके थोक भाव में कमी नहीं हुई।"

इस प्रकार की समस्या के कारण एक ओर हमारे कानों में किसानों की करुण कहानी गूंज रही है, दूसरी ओर कल कारखानों वाले व्यवसाइयों की पुकार मच रही है कि वे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र में विनष्ट हो रहे हैं जिसके प्रभाव से बेकारी का अरण्यरोदन अलग सिर पर झूम रहा है। यह मौका था कि सिक्के की नीति को सुधार कर भारतीय विषम परिस्थिति का सुधार हो जाता और अन्य देशों की तरह यहां भी रुपये के मूल्य को कम कर बहुत से संकटों से बच जाते। पर अब तो एक से अधिक बार सरकार की ओर से यह स्पष्ट उत्तर मिल चुका है कि सरकार अपने सिक्के की नीति को किसी भी तरह परिवर्तित करने को जरा भी तैयार नहीं है चाहे भारतीय जनता उससे सन्तुष्ट हो या असन्तुष्ट। चारों ओर से जब सिक्के का मूल्य कम किया जा रहा है तो फिर इङ्गलैण्ड का माल कहाँ खपेगा और इसके लिये market रखना विदेशी गवर्नमेण्ट का मुख्य कर्त्तव्य है। अतः वह शायद ऐसा करती है। बात इसमें भी कुछ आगे की मालूम होती है। भारतीय कृषकों की क्रयशक्ति बराबर घट रही है जिससे लंकाशायर के विक्रेताओं ने भी यह चाहा कि सिक्के का मूल्य कम हो जावे जिससे भारतीय कृषकों को उसकी पैदा की हुई चीजों के अधिक दाम मिले और उसकी क्रयशक्ति में वृद्धि हो। जब तक उनकी क्रयशक्ति की वृद्धि न होगी तब तक भारतीय आर्थिक सुधार की कल्पना आकाश कुसुमवत् होगी। श्री गेविन जोन्स ने ठीक ही कहा है कि बिना सिक्के का मूल्य कम किये बेकारी का प्रश्न भारत में मिट ही नहीं सकता।

इंगलैंड के पूंजीपतियों और मिल मालिकों के स्वार्थों को छिपा कर सरकार का यह कहना कैसे मानें कि वह Ratio इसलिये कम नहीं करती कि उससे बजट की स्थिति डाँवाडोल हो जायगी। क्या तीन चार करोड़ के ज्यादा खर्च होने की कल्पना से झिझक कर समस्त भारत के हितों का ही चौपट कर देना स्वार्थपरता और अदूरदर्शता न होगी? नये विधान द्वारा

सरकार को जो आर्थिक संरक्षण Financial Safeguards) मिले हैं उनसे भी और रिजर्व बैंक एक्ट की धाराओं के अनुसार भी किसी तरह सिक्के की नीति सरकार से बदलाई जा सके यह असंभव है। वाइसराय की स्वेच्छा पर इस प्रश्न का निपटारा अवलंबित है और अभी कुछ दिन पहले इंडियन चेम्बर आफ कामर्स के सदस्यों से उन्होंने यह साफ-साफ कह दिया है कि चाहे कुछ भी हो सिक्के की नीति में परिवर्तन नहीं होता दीखता है। ऐसी ही घटनाओं के आधार पर किसी विद्वान् ने लिखा था कि गवर्नर जनरल का निर्णय (Discretion) किन्हीं विशेष स्वार्थों के गुप्त संकेत पर अवलंबित होगा। *

इस महत्वपूर्ण किन्तु उलझे हुए विषय की जानकारी चारों ओर फैलनी चाहिये और सब तरफ से सरकार पर इसके लिये दबाव डालना आवश्यक है कि भारतीय समस्या को भारतीय हेतुओं के विचार से सुलझावें। आज भारत के अर्थशास्त्री, व्यापारी, और जनता सब एक मत से चाहते हैं 'रुपये का मूल्य जल्दी से जल्दी कम होना चाहिये।'

* "It is this unseen Hand that will be the "Discretion" of the Governor General in the granting or with-holding his consent to such changes in the R. B. Act as may be proposed by private Members, with a view to altering the monetary policy of the Bank"

—Reserve Bank Act Number, Indian Finance

प्रतीक्षा

[श्री दिलीप सिंघी]

कहाँ जाकर छिप गये, वसन्त !

युग बीत गये प्रतीक्षा करते-करते, एक बार तो आकर अपनी सौन्दर्य-विभूति का दर्शन करा जाते, देखो तो तुम्हारे वियोग में प्रकृति की सभी दिव्य-दुहितायें कैसी झुलस गई हैं—रसहीन, सौन्दर्य-विहीन, क्षीणकाय !

जीवन-आधार ! कितनी तपश्चर्या और चाहते हो ? यह उत्तर देने के लिए ही सही, एक बार तो आकर अपना पूर्ण स्वरूप दिखा जाओ ।

कालीदास के काव्यों में तुम्हारी कान्ति और ओजस् की कल्पना की थी ! तब से तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा और भी तीव्र हो गई है ।

तुम्हारे लावण्य की ललित लालिमा की एक झांकी के लिए कब से ये नेत्र लालायित हैं ! जीवन की सन्ध्या हो चली है, आज भी आशा है, हृदयदेव, कि एक न एक दिन आओगे, पर, मालूम नहीं तबतक यह जीवन-दीप बुझ जाय ।

जरा सोचो तो वसन्त ! तुम्हारे बिना सारे भूमण्डल पर शुष्कता, कठोरता, क्रूरता का कैसा रौरव नृत्य हो रहा है !

पुष्पों का परार्थी पराग !
शिशुओं की सुखकर मुसकान !
वीरों की मर मिटने की तमन्ना !
युवक–हृदय का व्योम-विहार !

ये सब आज तुम बिना मृतप्राय: हो गये हैं । जहाँ दृष्टि पड़ती है, कृषकाय शिशु या रोगग्रस्त बुजुर्ग ही से संसार भरा मालूम होता है, वसन्त ! एक बार तो आकर इस यौवन-शून्य-जीवन में रस संचार कर जाओ ।
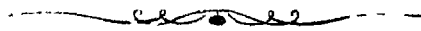
मातृ-भाषा का महत्त्व

[श्री जनार्दनराय नागर बी० ए०, 'साहित्य रत्न']

श्रीयुक्त जनार्दनजी का यह विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित करते हुए हमें परम हर्ष है। जन्म से गुजराती होते हुए भी इस लेख के लेखक हिन्दी के एक उदीयमान प्रतिष्ठित लेखक हैं। आपकी कहानियाँ, समालोचनाएँ, लेख और गद्यकाव्य विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं।

सर्वसम्मति से हिन्दी अब राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई है। यह इस बात का प्रमाण है कि हमारी राष्ट्रीयता अभी जीवित है। मातृभाषा या राष्ट्रभाषा को छोड़कर कोई भी देश अपनी राष्ट्रीयता, संस्कृति और ज्ञान सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता। मातृभाषा के महत्व का झरना लेखक की पंक्ती-पंक्ती में प्रवाहित हुआ है और स्थान-स्थान पर उनका भाषा लालित्य भी दिखाई देता है। —सम्पादक

प्राचीनवादियों की बात एक ओर रख कर यह कहा जा सकता है कि यह सदी नये नये विचारों की माता है। बीसवीं सदी की अनेक आकर्षक विभूतियों में से एक यह भी मनोहर विचार-विभूति है, कि प्रतिदिन जीवन के अस्तित्व के लिये ही नहीं, जीवन के लोलुप विलास के लिए भी मरमिटनेवाली जातियों के स्वार्थी हृदयों का आये दिन महासम्मेलन हो। विश्व-भ्रातृत्व के रम्य, गूढ़ और उत्थानोत्पादक आदर्श को एक जीती-जागती वास्तविकता बनाने के लिये आजकल समस्त—विश्व के समाज विशारद एक साम्राज्य, एक संस्कृति तथा एक भाषा के स्वप्न देखने लगे हैं। इसे उत्साही मस्तिष्क आजकल की सर्वश्रेष्ठ विचारधारा कह कर उत्फुल्ल हो सकता है और यदि देखा जाय, तो सिद्धान्त की सीमा तक मानव-जाति का एक रंग में रंग जाना, किसे बुरा लगेगा? कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे छिन्नभिन्न मानवता को एक ज्योति में उज्ज्वल और प्रकाश भूत होते देखकर दुःख होगा? कहना नहीं होगा, बीसवीं सदी की सभ्यता सभ्य सांसारिकता का सभ्य प्रदर्शन मात्र है। जिस प्रकार व्यापार-क्षेत्र में सभ्य और संस्कृतिमय राष्ट्र नये-नये मानवतापूर्ण (!) सिद्धान्तों का आविष्कार कर अपनी तिजोरी भरने में दत्त-चित्त हैं, उसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में अपना सिक्का जमाने के लिये ही यह भी कहा जाने लगा है, कि छिन्नभिन्न मनुष्य जाति के लिये अब गले लगाकर झूला झूलने का समय है।

परन्तु एक क्रियाशील दार्शनिक की दीर्घ दृष्टि यह बात मानते हुए हिचकती है। वैचित्र्य रूप-रंग ही में निखर कर मानव-जाति की एक आश्चर्यकारिणी विशेषता नहीं बना; उसकी जड़ें आत्मा के वृक्ष को फला-फुला कर परमात्मा तक पहुंची हैं। अद्वैतवादी अपनी विशिष्ट मनोवृत्ति के बल से सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता का अनुभव कर सकते हैं, प्रेम के अनादि कल्पित निराकार सर्वव्याप्त स्वरूप का चित्र योगी खींच

सकते हैं; परन्तु सर्वसाधारण जनता अथवा जीवात्मा के लिये ये मनोरम आदर्श--सैद्धान्तिक स्वप्न--श्रवणगम्य कल्पनाएँ ही है। उसे अपने साधारण साधना-मार्ग से घसीटकर असाधारण राजपथ पर ला खड़ा करने की चेष्टा करना केवल असफल विकलता के सिवाय और क्या होगा ? सन्देशदाता सन्देश सुनाकर समझता है, उसका कार्य समाप्त हो गया; उपदेशक उपदेश देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्रुति समझता है, देवदूत अपने विराट् हृदय की सद्भावनाएं तत्पर मानव-जाति के लड़खड़ाते हुए चरणों में समर्पित कर अपने दिव्य धाम की राह लेता है; परन्तु इन तीनों में से एक ने भी अभी तक मानव-मानस के रहस्य का उद्घाटन कर उसे रहस्य हीन नहीं किया है। मनुष्य की जन्मगत विभिन्नता ही मनुष्य के मनकी यह विशेषता है। वह सर्वत्र अपनापन देख सकता है; समझ सकता है; उसे वास्तविकता के स्वरूप में प्रतीत कर सकता है; परन्तु अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट नहीं कर सकता। जिस दिन मनुष्य ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मिटा दिया, उस दिन इस संसार का अस्तित्व नष्ट हो जायगा। इसमें किसी को सन्देह नहीं होगा। धर्म-ग्रन्थों में अपनपा खोकर दिव्य और अमर बनने के जो मार्ग बताये गये है, वे सब मनुष्य के अस्तित्व को नष्ट नहीं करते; वरन् उसे अधिक स्थायी और शास्वत करते हैं। कहना इतना ही है कि व्यक्ति होते हुए भी मनुष्य समष्टि का अंग रहता है। इस ओर इशारा करने का हमारा यही तात्पर्य था कि *जो विश्व में सर्वतोमुखी एकदेशीयता का सूर्योदय देखा* चाहते हैं; वे सर्वदा निराश ही बने रहेंगे। विश्व-रचना का मूल ही अनेक-रूपता है।

अतः अन्य विश्व-जनीन समस्याओं के साथ में जो विश्व-भाषा की कल्पना के चारुचित्र खींच रहे है, उन्हें कम से कम अपनी असाधारण और अनुपम विचार-शक्ति को दूसरी अधिक वास्तविक और उपयोगी समस्या को सुलझाने के लिये प्रेरित करना चाहिये। विशाल हृदय और भू-मण्डल की प्रदक्षिणा करनेवाले विचार भी व्यक्तिगत उन्नति के जरिये ही सामूहिक उन्नति कर सकते हैं। विराट् सूक्ष्म का दूसरा रूप है, जिसे हम निस्संकोच भ्रान्ति कह सकते हैं। अन्यथा विराट् की रक्षा और उन्नति के लिये इस संसार की जटिल व्यष्टिगत रचना की आवश्यकता ही नहीं है। किसी दार्शनिक का यह कहना कि 'वह ईश्वर है' सर्वथा ठीक है; उसका यह कहना कि "चराचर भूत ईश्वर है" सुन्दर सूक्ति हो सकता है; क्योंकि दार्शनिक का चराचर भूत होना ही चराचर ईश्वरत्व का लक्षण है। गणित के "दो और दो मिलकर चार होते हैं" नियम के अनुसार दर्शन शास्त्र की इस विचार-प्रणाली के अनुसार मातृ-भाषा की क्षेत्र-व्यापकता ही विश्व-भाषा का लक्षण हो सकता है।

कुछ भी हो; विश्व-भाषा का स्वतन्त्र सृजन हो ही नहीं सकता। कोई न कोई मातृ-भाषा विश्व-भाषा का स्वरूप लेकर हमें कुछ काल तक भ्रान्ति-पूर्ण संतोष की मधु घूंटें पिला सकती है और आए दिन पिलाती रहती है। आज अंग्रेजों की मातृ-भाषा को विश्व-भाषा की संज्ञा दी जा रही है और एक सूट-पेण्टधारी पराधीन भारतीय युवक इसी प्रयत्न के बूते पर उसे *भारत की राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए उछल कूद मचाया* करता है। परन्तु ईश्वर की सत्ता को यह स्वीकार नहीं है। उसने भारतीय को भारतीयत्व दिया है; और अंग्रेज को अंग्रेजीपन ! अतः जहां तक यह 'स्व'

और 'पन' का अस्तित्व नष्ट न किया जाए, वहां तक उस महापुरुष के सब प्रयत्न वृथा हैं। और हिन्दी अंग्रेजी, वा फ्रेन्च, इन में से किसी को समस्त विश्व की मातृ-भाषा बनाने के लिए हाय तौबा मचाना अपने अमूल्य समय का गला घोंटना है।

इन सब बातों के लिखने का यह उद्देश्य है, कि मातृ-भाषा की समस्या को ही सर्वोत्कृष्ट और महत्वनीय सिद्ध किया जाए। लेखक यह अच्छी तरह जानता है, कि अधिकांश में हम बहुत बातों को भ्रम में ऊंची और अधिक आवश्यक समझ लेते हैं। विश्व-भाषा के साथ-साथ एक आदर्शयुत युवक विश्व-राष्ट्र, विश्व-धर्म और विश्व-साम्राज्य आदि बातों को मनुष्य जातिकी बिलबिलाती हुई आवश्यकताएँ समझ कर अपनी समस्त शक्ति उन पर केन्द्रीभूत करता रहता है; परन्तु 'युटोपिया' को लिखे हुए आज सैकड़ों वर्ष हो गये, स्वर्गीय राज्य की झलक न तो दिखाई दी और न दिखाई देगी। योगशास्त्र के अविष्कार को आज हम उतना ही *प्राचीन समझ सकते हैं, जितना* सृष्टि के इस जीवन की जन्म घड़ी को, परन्तु सर्वसाधारण न तो योग-रंजित बन पाया और न बन पाएगा। दार्शनिकों ने अपने अनुभव से जान लिया, मनुष्य का अन्तःकरण उन्नति की पिपासा पूर्ण मनोवृति का माया-जाल है; प्रतिपल उन्नति की लालसा ही जीवन की लालसा बन कर आनन्द और तज्जनित सुख की कल्पना बन गई है; परन्तु सर्वसाधारण में विरोधी प्रवृतियों की अभिव्यंजना उसी तरह होती आई है, जिस प्रकार सूर्योदय और सूर्यास्त की अभिव्यंजनएँ प्रातःकाल और संध्या। तात्पर्य यह कि *अनादिकाल से मनुष्य का ध्येय अपनी उन्नति करना* है। यही उन्नति मातृभाषा के निर्माण का मूल है।

यों तो 'भाषा' का अपना कोई महत्व नहीं है। हिन्दी-भाषा से हिन्दू हृदय और हिन्दू-मगज़ निकाल लिया जाए, तो कोरी वर्णमाला में क्या रक्खा है? यह हो सकता है कि संस्कृत को देव-वाणी कहने वाले उसकी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षरोच्चारण को चक्रों से उत्पन्न नाद का कम्पन कह कर इस कथन को अपवाद सिद्ध कर दें; परन्तु यह कथन उस अपवाद से इतना पराभूत न होगा, जितना "क्रमागत ह्रास का नियम" आधुनिक वैज्ञानिक खेती-विषयक खोजों से। 'ज्ञान' का लम्बा-चौड़ा लक्षण करनेवाले यह कह कर सन्तुष्ट हो सकते हैं कि "समझ ही ज्ञान है।" इसी समझ को हम वर्णमाला के अक्षरों के विविध संयोग से प्रगट करते हैं। यदि यह समझ उस संयोग-वियोग से निकाल ली जाए, तो तोते के "सीता-राम" की भांति उस भाषा में क्या रह जाएगा? निश्चय ही कुछ नहीं। अतः यह सुझाने की आवश्यकता नहीं है कि मानव-जाति ने अपने हृदय की भावनाओं, और अपने मस्तिष्क की कल्पनाओं को व्यंजित करने के लिए और दूसरों की कल्पनाओं और भावनाओं को समझने के लिए नाम-संकेतों का निर्माण मात्र कर लिया है। भाषा-तत्व-विशारद भली प्रकार जानता है, अतः नाम-संकेतों का निर्माण क्यों, कैसे और कब से होना प्रारम्भ हुआ आदि अनेक बातों का इतिवृत्त लिख कर हम लेख को बढ़ाना नहीं चाहते, परन्तु इतना तो अवश्य है, कि नाद-संकेत की बात "विश्व-मातृ-भाषा" की समस्या को जड़मूल से ही नहीं उखाड़ देगी, वरन् मातृ-भाषा के अस्तित्व की आवश्यकता भी प्रमाणित कर देगी। जिस नाद-संकेत पर मानव-*जाति ने अपनी भाषा का निर्माण किया है*, वह नाद-संकेत-प्रणाली विश्व के प्रत्येक मनुष्य के लिए ग्राह्य

नहीं हो सकती। भौगोलिक बाधा इस सार्वभौम ग्रहण में आपत्तिरूप है। यह तो ठीक है, कि मनुष्य जहाँ कहीं भी बस जाता है, वहाँ वह वैसा हो जाता है, परन्तु इस दलील से हम इस भौगोलिक बाधा की समस्या को हल नहीं कर सकते। इस असमर्थ निराशा के कारण भी दूर नहीं हैं। जिस स्थान पर मनुष्य जा बसता है, उसे वह अपना बना लेता है, चाहे फिर वह स्थान घना जंगल ही क्यों न हो। यह "जा बसना और अपना बना लेना" हीं मातृत्व की स्वर्गीय भावना का प्रतिष्ठापन है। मातृ-भाषा में जिस मातृत्व की मीठी, रम्य और महान् भावना सुरभित होती है, वह यही है। परन्तु यह कब होगा? जीवन के पूरे दस-बारह वर्ष तक भारतवष में रह कर, फिर श्रीमान् "अ" को अफ्रिका के हबशियों के साथ रख देने से मातृत्व-भावना की स्थापना न हो सकेगी। केवल "अ" महोदय हबशियों की भाषा में गति-विधि प्राप्त कर लेंगे। इस लेख का लेखक स्वयं गुजराती है, मातृ-भाषा के एक विशेष अर्थ को लेते हुए वह यह कह सकता है, कि मेवाड़ में रहते हुए वह मेवाड़ी बोलचाल में समझ भर लेता है। हिन्दी में भले ही उसको अभ्यास, अध्यवसाय और अनुशीलन से अधिकार मिल गया हो, परन्तु यू० पी० के निवासी की भाषा के समान वह भी ठोस मातृत्व भावना से हीन है ही। एक लेख का एक पृष्ठ देख कर ही बाबू श्यामसुन्दर-दासजी ने जान लिया कि हिन्दी मेरी मूल मातृ-भाषा नहीं है। यद्यपि मेरे लेख पत्रिकाओं में छपते हैं, मैं निरन्तर लिखता रहता हूँ, मेरे गुजराती भाई मुझे गुजराती-भाषा से कोरा समझते हैं और मैं भी उनसे शुद्ध, टकसाली बोलचाल की गुजराती में बातें नहीं कर सकता—यहाँ तक कि लिखने में हिन्दी जितनी शीघ्रता, शुद्धता और प्रवाह-बद्धता से लिख सकता हूं, उतनी गुजराती नहीं, तथापि मातृत्व की जन्मगत प्रतिष्ठापना के कारण वह अनिर्वचनीय, अदृश्य और अस्पष्ट कोई एक मार्मिक विशेषता मुझ में नहीं है, जो हिन्दी को मेरी वैसी मातृ-भाषा बना दे, जैसी गुजराती है। परन्तु हिन्दी को मैं अपनी मातृ-भाषा मानता हूं—वह राष्ट्र-भाषा के ही रूप में और इस लेख में मातृ-भाषा के इसी आदरणीय और व्यापक अर्थ को केन्द्रीय अर्थ रख कर आगे चलूंगा। इन बातों से मेरा यही तात्पर्य था, कि मातृ-भाषा की रग-रग में कोई ऐसी दिव्य अदृश्य शक्ति और भावना प्रवाहित होती रहती है, जो दूसरी भाषाओं में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ जननी की पावन प्रातःस्मरणीय मूर्त्ति ही ठीक होगी जिसके रहस्यपूर्ण गर्भालय में पनप कर हमने सुन्दर और प्रकाशपूर्ण संसार की ज्योति देखी, उसके दूध की मधुमय शिराएँ पीकर हम उस आध्यात्मिक प्रेम की शिक्षा भी पा लेते हैं। "मातृवत् परदारेषु" की सम्पूर्ण साधना कर लेने के बाद भी यदि एक योगी स्वप्न में भी अपनी जननी के दर्शन पा जाए, तो जिस प्राकृतिक अनुराग की पावन स्फूर्तिमय विद्युत उसके रोम २ में प्रवाहित होगी, ठीक वैसी ही वात्सल्य भावना के समान कोई दिव्य अनुभूति हमें हमारी मातृ-भाषा की महिमामयी मूर्त्ति देख कर होती है। यह नैसर्गिक सम्बन्ध विश्व-रचना के अनन्त रहस्यों में से एक है। यदि इसके लिए बाल की खाल निकालने का युग-लम्बित प्रयत्न किया जाए, तो भी परिणाम कुछ नहीं मिलेगा। आज की वैज्ञानिक दुनिया जहाँ विज्ञान के नशे में मस्तिष्क की प्रत्येक रक्त-वाहिनी नाड़ी की कसरत किया चाहती है, वहाँ थक-थका कर वह निसर्ग के चरणों में

स्वायत समर्पण भी करती रहती है। प्रकृत-मानव-विज्ञान वादियों की दृष्टि में संकेतवाद की समस्या आदत और अभ्यास से भले ही सुलझती हुई दिखाई दे, परन्तु किसी निरीक्षणवादी को ध्यान पूर्वक देखने के बाद पता लग जाएगा, कि जन्मगत भाषा की अभिव्यंजनात्मक सरलता तो उसमें ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल सकती। जन्म देनेवाली माता का प्रेम, उस प्रेम से, जो दूसरी महिला के हृदय से मिलता है, एक ऐसी महत्ता लिए हुए है, एक ऐसी निसर्गता लिए हुए है, जो उसमें नहीं होती है, इसी प्रकार जन्मगत भाषा के सीखने, उसमें परिपूर्णता प्राप्त करने और सम्पूर्ण अभिव्यंजन की सुगमता की सिद्धि प्राप्त करने में जो सरलता और नैसर्गिकता रहती है, वह विदेशी भाषा के सीखने में सहस्रांश में भी नहीं रहती। यों तो अभ्यास से क्या नहीं होता? अभ्यास से मनुष्य जहर खाता रहता है।

स्पष्ट लिखनेवाले को यह लिखते हुए कदाचित ही हिचक पैदा हो, कि यही नैसर्गिक अन्तर मातृ-भाषा और राष्ट्रभाषा में भी उपस्थित है। गुजराती के समान ही एक बम्बई निवासी की हिन्दी हो जाय, यह अभ्यास से सुगम है, परन्तु हिन्दी में गुजरातीपन' आयेगा या नहीं, यह प्रश्न एक छोटी सी समस्या बन सकता है। परन्तु इतना तो अवश्य है, कि अंग्रेजी के समक्ष हिन्दी में उस 'शुंछे' पूछनेवाले गुजराती के लिये "क्या है" पूछना उतना ही सरल होगा, जितना कठिन "what is it?" पूछना हो सकता है। सच पूछा जाय, तो मातृ-भाषा और राष्ट्रभाषा में व्यापकता का ही अन्तर है। जिस प्रकार घर की जन्मदात्री और कल्पित भारतमाता में जितना अन्तर है, उसी प्रकार उतना ही अन्तर इन दोनों में है। सच पूछा जाय, तो भारतमाता अपनी ही माता की सुघर, मनोहारी, पूज्य, वंद्य और विशाल मूर्ति के सिवाय और क्या है? नदी-नद, वन-पर्वत आदि-आदि प्राकृतिक साजों से भरे पूरे भूखण्ड को जननी-जन्मभूमि कह कर मातृत्व की दीर्घ पूजा करना अपनी माता की आत्मा को विराट् करना है। जिस प्रकार समाधि में सुध-बुध भूले हुए योगी को समस्त ज्योतिर्मय जीवन के असंख्य भूतों का "आत्मवत् सर्वभूतेषु" और कण कण में स्वयं सत्ता का व्यापक दर्शन होता है। उसी प्रकार "मेरी मातृभूमि" "मेरी गरीब दीना भारत मां!" कहने से उस एक देह में बद्ध मातृत्व के सच्चे वास्तविक दर्शन होते हैं। जिस किसी की माता के शरीर का नाश हो जाय, उसे घबरा कर रोने की क्या आवश्यकता है? उसके लिये तो वह कभी मरती ही नहीं। अपने नश्वर शरीर से मुक्त होकर वह जगज्जननी का प्रकाशमय स्वरूप धारण कर स्वर्गादपि गरीयसी बन जाती है। जो अपनी मातृ-भूमि और उस भूमि की भाषा की प्यार के भावों से पूजा नहीं कर सकते, वे निश्चय ही अपनी जननी को भी प्यार नहीं करते। अतः राष्ट्र-भाषा ही को सच्ची मातृ-भाषा मान कर हम अब आगे बढ़ना चाहते हैं। परन्तु प्रश्न करने में पटु पाठक पूछ सकते हैं, कि माता को भारतमाता कह कर ही मातृ-भाषा को राष्ट्र-भाषा कह देना तो कोई संतोषप्रद न्याय नहीं है।

अपनी बोलचाल को मातृभाषा कर देना और बात; अन्यथा मातृ-भाषा का वास्तविक अर्थ राष्ट्र-भाषा ही हो सकता है। अपनी उस बोलचाल को, जो जन्मगत वाचा है, साहित्य-धनी कर देने से ही उसे सर्वदेशीय भाषा कह देना भी मन-तरंग के सिवाय कुछ नहीं है। भारतवर्ष में गुजराती, बंगाली और

पञ्जाबी अपने-अपने साहित्य-भाण्डार के साथ राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर आसीन होने के लिये व्याकुल थीं; परन्तु हिन्दी के सार्वभौम स्वीकार ने उनकी इन मनोकामनाओं पर तुषार पटक दिया है। इसका कारण सामूहिकता का प्रभाव है। हिन्दी अधिकांश भारत-वासियों की भाषा है। साथ ही अन्य विशेषताओं ने उसे राष्ट्र-भाषा के पद पर बिठा दिया है। अतः संकीर्ण अर्थ को दृष्टि मे रख कर मातृ-भाषा की महत्ता पर विचार करना ठीक प्रतीत नहीं होता। सामूहिकता के उपरान्त जातीयता की समस्या हमें राष्ट्र-भाषा ही को मातृ-भाषा मानने के लिये विवश करती है। भारतवर्ष तो संसार की इस भाषा-समस्या का विचित्र अपवाद है; अन्यथा समस्त जाति की भाषा ही को मातृ-भाषा कहते हैं। यदि मनन-पूर्वक विचार किया जाय तो भारत की ढेरों प्रान्तिक भाषाएँ मातृ-भाषा की संज्ञा के योग्य नहीं ठहरतीं। ये सब की सब एक ही भाषा के उदर से निकल कर अपनी-अपनी विचित्रताओं के साथ आज हमारे सामने उपस्थित हैं। विशाल भूखण्ड, जो भौगोलिक अनेकरूपता का अनूठा प्रदर्शन है, इतनी बोलचालों से भरा हो तो वह आश्चर्य का विषय नहीं हो पड़ता। हम भारत की मातृ-भाषा संस्कृत या हिन्दी इन दो में से एक को—मान सकते हैं। अन्य कही जाती भाषाएँ इस गौरव-मय पद पर हमारी दृष्टि में उपविष्ट नहीं हो सकतीं। अतः हम इस लेख में जहाँ कहीं मातृ-भाषा की ओर संकेत करेंगे, हिन्दी ही से हमारा तात्पर्य होगा। संस्कृत के दिन बीत चुके। हम यहां पर राष्ट्रभाषा विचार के पूर्व-निश्चित प्रश्न को हल न कर और उसे उसी प्रकार स्वीकार कर, जिस प्रकार समस्त राष्ट्र ने स्वीकार किया है—आगे बढ़ते हैं।

मातृ-भाषा की उन महान् विशेषताओं अथवा महत्ताओं में सबसे प्रथम महत्ता है, किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व। मातृ-भाषा ही को हम किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व का मूल मान सकते हैं। यह महत्ता कदाचित उपहासास्पद प्रतीत हो; परन्तु देखा जाय तो यही महत्ता मातृ-भाषा की प्रथम और अन्तिम महत्ता है। मातृ-भाषा के न होने से कोई भी राष्ट्र राष्ट्र रूप में अपना संगठन ही नहीं कर सकता। उसमें राष्ट्रीयत्व आ ही नहीं सकता। मानव-जाति की प्रतिदिन की अस्तित्व-लड़ाई की मुख्य ढाल मातृ भाषा है। मनुष्य ने जहां अपने निर्माण से एक अनन्त अगोचर अनुपम शक्ति की निपुणता का प्रदर्शन किया है, वहां उसे चिरस्थायी बनाने के लिये भी जिस शस्त्र का सहारा लिया है, वह अपनी जातीय वाचा ही है। हिल मिल कर रहना, काम करना, अपने अन्तःकरण की गाथा को दूसरे के सामने कह सुनाना और प्रत्युत्तर मे उसकी मर्म कहानी को सुनकर सहानुभूति प्रगट करना ही मानवता का लक्षण कहा गया है। यद्यपि यह लक्षण बांचने में अत्यन्त साधारण है, तथापि इसकी अद्वितीयता का उज्ज्वल और अकाट्य प्रमाण पड़ोसी-भाव का जनन है। मनोविज्ञान का विद्यार्थी अपने को आदर्शवादी नहीं कहता। आदर्शवाद एक सजीव कल्पनावाद के सिवाय उसके लिये एक चिरसेवित स्वप्नवाद भी हो पड़ा है। वह तो मन की ठोस प्रवृत्तियों पर मुग्ध है; उनकी आपस की उलझन, आपस के विरोध और ऐक्य के अध्ययन में ही वह इतना दत्तचित्त है, कि अध्यात्म की सम्भावना ही उसे नहीं दिखती। परन्तु जब वह सर्वसाधारण से अपनी स्थिर दृष्टि हटा कर एक असाधारण मानवी की ओर देखता है, तब आश्चर्य चकित हो उठता है। यह असाधारणता

मनुष्य का मनुष्य के लिये वह त्याग है, जो सामाजिक स्वातन्त्र्य का रूप लेकर हमारे ज्ञान की एक अजस्र धारा बन गया है यद्यपि समाज-शास्त्रज्ञ समाज के अस्तित्व को मन की प्रवृत्तियों के वहन ही के लिये समझ कर उसे मनुष्यों के आपस के हेलमेल की एक व्यवस्थित परिपाटी कह सकता है, परन्तु जिस अध्यात्म की ओर हमने इशारा किया है, वह परोक्ष रूप से समाज की नींव बन कर हमारी जातीयता का रूप लिये हुये है। मन को हमारी समस्त समस्याओं का मूल मानना आज की सभ्य, संस्कृत और विशिष्ट सदी की बलिहारी पूर्ण सूझ की एक विशेषता है, परन्तु कम से कम भारत का लेखक अन्धा होकर इस ज्ञान गरिमा में फूल नहीं सकता। मन ही सब कुछ नहीं है। हमारी सभ्यता ने एक बार नहीं, कितनी ही बार, संसार को चांदनी पर खड़े होकर सन्देश दिया है, मन तो मानवीपन की एक पराधीनता मात्र है। स्वाधीनता तो आत्मा में रम जाना है। यह आत्मा में रमना ही हमारे भारतीय जीवन का रहस्य है; अतः हमारा समाज-विधान भी आत्मा के दृष्टिकोणों से भरा पड़ा है। हमारी जातीयता के जिस स्वरूप को देख कर योरप का जाति-विज्ञान वेत्ता हंस पड़ता है, वह उसका खरा स्वरूप न समझने के कारण ही। हमारे सामाजिक विधान की शक्ति किस विद्युत् यन्त्र से उत्पन्न होती है, उसका इतिवृत देना इस लेख का विषय नहीं है; केवल हमें तो राष्ट्र के अस्तित्व का अर्थ स्पष्ट करना है। और इसी लिये हमने मनुष्य की समाज-आवश्यकता को दिखा कर उसे भली भांति स्पष्ट कर दिया। मानव-जाति का अस्तित्व उसके सामाजिक संगठन में है। इसे हम कितनी ही नवीनताओं से गूँथ कर "राष्ट्रीयता" कह सकते हैं।

५

इसी सामाजिक परिपूर्णता की अमरता के लिए मातृ-भाषा की शरण लेनी पड़ती है। मनुष्य आज विज्ञान के आविष्कार कर ऐंठता फिरता है। वह समझता है, उसका काले बालों से आच्छादित मस्तक उन प्रबल--स्वयंभू शक्तियों से भरा है, जिससे वह प्रतिदिन अपना गौरव-निर्माण कर रहा है। वह सोचता है, वह धीरे-धीरे चारों ओर प्रसारित फलित प्रकृति को अपने अधीन कर रहा है और इस विजय-भ्रान्ति के उल्लास और उन्माद में वह यह भूल रहा है, कि उसके विजय की बागडोर वह महान वैज्ञानिक अपने ही हाथों में लिए बैठा है। यह बागडोर है--एक मनुष्य की मातृ-भाषा। जिस बल पर हम मातृ-भाषा को सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण समस्या सिद्ध करना चाहते थे, वह यही बल है। इसे कोई कल्पना की उड़ान न समझ ले। मातृ-भाषा को यदि हम जातीयता का मूल मानते हैं, तो इस तत्व को कवि-कल्पना कह कर भुलाया नहीं जा सकता।

जैसे हम लिख आये हैं, राष्ट्रीय-अस्तित्व ही मातृ-भाषा की महिमा है वैसे ही हम यह भी कह सकते हैं, कि राष्ट्रीय-अस्तित्व से हमारा तात्पर्य है, किसी भी जाति की उन मूल – ईश्वर–निर्मित विशेषताओं की चिर रक्षा। राष्ट्रीय विशेषताओं की रक्षा की ओर ध्यान देते रहना मानव-जाति की दीर्घ-दृष्टि का एक अकाट्य उदाहरण है। वह अपने अस्तित्व के लिए इसे अनादि काल से आवश्यक और अनिवार्य समझती आई है। आज समय के फेर से कतिपय भ्रान्तियों से भरे दार्शनिक-मस्तिष्क इस रक्षा की प्रवृत्ति को मानव-जाति के कल्याण के लिए हानिकर समझता है, -एक अनोखी विपदा समझ कर वह थर्रानेवाली वाणी में "हम सब ईश्वर की सन्तान हैं" कह कर एकरूपता का सन्देश

देता है, परन्तु प्रकृति की बुद्धि इस साहसी और उमंग तरंग से तरंगित दार्शनिक के आवेग और आवेश से हीन है। उसने इसे मानव-जाति का "धर्म" तक कहने की सूझ दी है। ईश्वरीय नियमों में से एक यह नियम भी है कि मानव जाति का अलग-अलग झुण्ड अपनी प्राकृतिक विशेषताओं की अन्त तक सम्पूर्ण रक्षा करे। इसके विपरीत चलने से जो संघातक परिणाम हुए हैं वे आज इतिहास की घटनाओं के रूप में हमारे सामने हैं।

जातीय विशेषताओं से हमारा तात्पर्य किसी जाति के उन प्राकृतिक दृष्टिकोणों से है, जो उसका जीवन-विज्ञान बन गये हैं। उदाहरणार्थ भारतवासियों की जातीय विशेषता है, जीवन का वह आध्यात्मिक दृष्टि-कोण, जो उसके प्रतिदिन के जीवन को निसर्ग के संगीत- ताल पर प्रवाहित करता है। यही दृष्टिकोण भारत की वैसी विशेषता है, जो उसे हजारों युगों से जीवित रक्खे हुए है। हमारे ऋषियों ने इसी की नींव तैयार कर हमारा जातीय भवन-निर्माण किया है। इसकी रक्षा न होने से आज सभ्यता का जो व्यभिचार भारत में फैलता हुआ दिखता है, वह भारत के विनाश का प्रथम चिह्न है। इसका एक मात्र कारण भारत का मातृ-भाषा को भूल जाना है। वह दिन दूर नहीं है, जिस दिन भारत आज की दुनिया के अन्य राष्ट्रों के समान दुकानदारी कर दो-तीन सदियों के बाद काल के रहस्यपूर्ण गर्भ में समा जाएगा।

भारत की यह एकमात्र विशेषता भारतवर्ष का सर्वस्व है। जहाँ तक भारतीय बालक अपनी भाषा के द्वारा अपनी इस विशेषता के संसर्ग में रहा वहाँ तक राष्ट्र का पुनर्निर्माण सम्भावित होता रहा, परन्तु आज मातृ-भाषा को दीवार को तोड़ कर वह एक ऐसे प्रवाह में बहता जा रहा है, जिसका कोई स्थायी लक्ष्य ही नहीं है। और किसी भी मनुष्य के लिए अपने जीवन का एक लक्ष्य बांधना कितना आवश्यक है, यह बताने की आवश्यकता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का जीवनोद्देश्य से बद्ध होना उसके विकास का सहायक है, उसी प्रकार किसी भी जाति का जीवनो-द्देश्य से संपन्न रहना उसके विकास के लिए आवश्यक है। संसार में परमात्मा ने मनुष्य को साधना के लिए ही बनाया है। उसकी यह साधना अपनेपन की रक्षा करते हुए अपना स्वरूप पहिचान लेना है। यों तो सृष्टि-रचना का उद्देश्य ही समझ में नहीं आता। कोई इसे ईश्वर की अनोखी सूझ कहता है, कोई इसे उसका लीला विस्तार कहता है, कोई इसे उसकी प्रेम विह्वलता मानता और कोई इसे जटिल गोरखधन्धा मानता है। परन्तु इतना तो अवश्य है, कि इस गोरख-धन्धे का भी कुछ न कुछ लक्ष्य है। यदि लक्ष्य-हीनता ही इस विचित्र, सुन्दर रहस्यभरी सृष्टि का लक्ष्य है, तो हमारा उद्देश्य उस लक्ष्य-हीनता की प्राप्ति ही होना चाहिये। चाहे फिर इस लक्ष्य-हीनता को मुक्ति कहिये, निर्वाण कहिये, ज्ञान की स्थिर प्रज्ञावस्था कहिये।

यही लक्ष्य प्राप्ति जातीय विशेषता का मूल कारण है। यह तो निश्चित है कि प्रत्येक दिखाई देनेवाले प्राणी का अन्तिम उद्देश्य-आदर्श और लक्ष्य एक ही है। चाहे आज के सभ्य मानवी प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य भिन्न-भिन्न माने। परन्तु हमें तो कम से कम वर्त्तमान मनुष्य के अगणित उद्देश्यों में भी एकरूपता दिखती है। आज कुछ लोग मानव-जाति को प्रकाश की ओर बढ़ते हुए देखते हैं, वास्तव में यह प्रकाश 'आनन्द और सुखपूर्वक जीवन बिताना' भर है। "आनन्द" से समाधि का अनहद आनन्द न समझ

लेना चाहिये, "सुख" से शान्तिमय सौख्य की भ्रान्ति होनी न चाहिये। आनन्द का अर्थ आज का मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि ही समझता है और सुख उस सन्तुष्टि-अवस्था की अमरता। इसी एक उद्देश्य ने आज की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को जन्म दिया है। हमें यहां इस 'जन्म' पर लिखने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना ही कहना है—चाहे कैसा ही लक्ष्य मनुष्य अपने सामने रक्खे, उसे उस ओर बढ़ने के लिए अपनी इसी जन्मगत विशेषता के सहारे आगे बढ़ना पड़ेगा। अन्यथा लक्ष्यवेध होना तो दूर रहा, वह स्वयं विनाश का लक्ष्य बन जाएगा।

मातृ-भाषा मुर्गी के समान इस राष्ट्रीय विशेषता को पनपाती तथा उसकी रक्षा करती रहती है। यह बात मानने से हम इन्कार करते हैं, कि प्रत्येक मनुष्य अपना लक्ष्य अपने आप ही बनाता है। वास्तव में हमारा लक्ष्य तो ईश्वर द्वारा निर्मित है। जीवन व्यतीत करने के भिन्न-भिन्न तत्वों को हम लक्ष्य मानकर भ्रान्ति में पड़े आ रहे हैं। हमारा एक लक्ष्य है और वह है—हमारा सच्चा स्वरूप पहिचानना। यह स्वरूप चाहे ज्योतिर्मय हो वा अन्धकार पूर्ण, इससे हमें कोई लगाव नहीं। भारतवर्ष ने इस अन्तिम तत्व को प्रत्येक समस्या की कसौटी बना रक्खा है। आत्म-ज्ञान और उसकी साधना ही उसकी यह कसौटी है, जो जीवन के कञ्चन की परीक्षा करती रहती है। हम यह नहीं कहते कि भारत का यह जातीय लक्ष्य समस्त संसार के लिये है। चाहे अंग्रेज-जाति अपना जातीय लक्ष्य धन कमा कर मजे में रहना ही माने; परन्तु उसके इस लक्ष्य की रक्षा करने की शक्ति उसकी अंग्रेजी भाषा में है - हिन्दी में नहीं। अब भारतीयता की रक्षा करना अंग्रेजी के बस, अधिकार और बूते की बात नहीं है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे, कि मातृ-भाषा इस जातीय विशेषता की रक्षा कैसे करती है? इसके लिये हमें प्रकृति-जैसी वह स्थूल आंखों से हमें दिखती है—की ओर दृष्टिपात करना होगा। भूगोल-विद्या पर्य्यटन-अटन के लिये वा व्यापार क्षेत्र के ज्ञान के लिये ही आवश्यक नहीं है। उसकी आवश्यकता तो मानवजाति के विकास के लिये है। यह बात नवीन और क्रान्तिकारिणी है; परन्तु आश्चर्यप्रद नहीं। विश्व की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे पर अवलम्बित है। सहयोग और सहकारिता सृष्टि के संचालन का एकमात्र रहस्य है। परन्तु मनुष्य जितना प्रकृति के अधीन है, उतनी प्रकृति मनुष्य के आधीन नहीं है। प्रकृति के बिना मनुष्य का विकास—लक्ष्यवेध हो ही नहीं सकता। इसी प्रकृति ने मनुष्य को दो बेड़ियों से जकड़ रखा है। एक है बाह्य जीवन की शृङ्खला और दूसरी है आन्तरिक जीवन की मेखला। यही दो बेड़ियाँ मातृ-भाषा की आवश्यकता सिद्ध कर, उसे जातीय रक्षा की प्राण-वाहिनी अन्नपूर्णा प्रमाणित करती हैं। इस रूपक का अर्थ यही है, कि भारत में रहनेवाले मनुष्य विशेष प्रकार की भौगोलिक और प्राकृतिक विशेषताओं से बंधे हैं। ये प्राकृतिक विशेषताएँ प्रत्येक देश के साथ-साथ बदली हुई हैं—भिन्न-भिन्न हैं। इन विशेषताओं का महत्व शरीर बंधारण से लगा कर जीवन की आन्तरिक और बाह्य समस्याओं तक व्याप्त है। इन्हीं विशेषताओं के ऊपर मानव-जाति का एक समूह अपने चिरकल्पित ध्येय की ओर अग्रसर होने के लिये अपने विविध पथ निर्मित करता है। इस पथ-निर्माण के लिये जिस महाशक्ति

की आवश्यकता आ पड़ती है, वह अनन्त महत्वनीय शक्ति है, मातृ-भाषा के चिर अभिव्यंजन से जनित विद्युत। इस विद्युत-प्रवाह का अन्वेषण कर हम वृथा पृष्ठ रंगना नहीं चाहते। केवल इतना ही कहना पर्य्याप्त समझते हैं, कि यदि मनुष्य ने अपने भावों, विचारों और कल्पनाओं के लिये अपनी एक विशिष्ट और भिन्न अभिव्यंजना-प्रणाली का निर्माण न किया होता, तो कदापि संभव न था, कि मनुष्य जाति के विराट अस्तित्व-युद्ध का संचालन हो सकता "वसुधैव कुटुम्बकम्" से मतलब कांजी घर वा धर्मशाला से नहीं है। इसी प्रकार मोक्ष-प्राप्ति से तात्पर्य अपना विनाश नहीं है। अपनी प्रकृति जनित विशेषता के विपरीत चलना अपनी सामर्थ्य, अपनी शक्ति को निर्बल बनाना है। जहांतक मातृ-भाषा के द्वारा एक देश आपसी सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक व्यवहार किया करता है वहां तक वह सब प्रकार की पराधीनताओं से मुक्त रहता है। जिस देश ने दूसरे की आधीनता स्वीकार की—उसने परोक्ष रूप से उस "दूसरे" की सब प्रकार की व्यवस्थाओं को स्वीकार कर लिया। सिकंदर के विजय को भारत की पराजय न गिनने का अर्थ यह है कि यूनानी राष्ट्रीयता का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीयता पर न पड़ा। इसका दूसरा अर्थ है भारत ने यूनानीपन को स्वीकार न किया। पर मातृभाषा का नाश कर अंग्रेजी शासकों ने हमारी भारतीयता नष्ट कर दी।

यहां जातीय विशेषता जातीय सभ्यता और संस्कृति की नींव है। सच बात तो यह है, कि यह प्राकृतिक कौशल ही राष्ट्रीयता की सुन्दरता है; शक्ति है; जीवन है। यह सौन्दर्य, यह जीवन, यह शक्ति मातृ-भाषा के स्तन से दूध पीकर अमर बनी रहती है। यही अमरता हमारे विकास की आशा है। स्थिर लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिये प्रत्येक राष्ट्र के लिये प्रकृति ने तीन विधान दिये हैं। एक सभ्यता, दूसरा संस्कृति और तीसरा राष्ट्रीयता। राष्ट्रीयता का अर्थ उसका महत्व और उस की रक्षा का अवलम्ब हम गत पैरों में समझा चुके हैं। और मातृ-भाषा की दूसरी महत्ताएँ आगे समझावेंगे।

(क्रमशः)

परिचय

[श्री दुर्गाप्रसाद झुंझनूवाला बी० ए० "व्यथित"]

ऊषा की पहली लाली में,
ले निर्बल कन्धों पर भार,
चले जा रहे, अरे, कौन तुम
शान्त तपोवन से सुकुमार ?

शीत-घाम-वर्षा पतझड़ में,
श्रम-कण में हो कर भी लीन,
करते रहते अथक परिश्रम—
साहस नित्य अनूप नवीन।

कृष तन, चिन्ता की ज्वाला से
जलता रहता हिय दिन-रात,
किन्तु वही है शान्त मुखाकृति,
अनुपम धैर्य अमल अवदात।

छोटी सी कुटिया में बिखरा
पड़ा दैन्य; अतुलित सन्ताप,
सरल हास में, किन्तु, छिपाते
रहते नित्य करुण अनुताप !

क्षुधा-ताप से हो उत्पीड़ित
रोते हैं बालक असहाय;
अरे, फटे चिथड़े हैं तन पर—
बने आज कितने निरुपाय !

पैदा करते इतना, फिर भी
कर पाते न उदर की पूर्ति,
अरे, कौन तुम, सहन-शीलता
और निराशा की प्रतिमूर्ति ?

कृषक—आह ! दुखिया किसान के
जीवन का है ही क्या मोल !
क्या परिचय उसका, जो मिलता
दैन्य-निराशा से जी खोल !

देता, किन्तु, वही जगती को
जीवन-धारण का सामान,
मिटा विश्व-सुख-हित अपना सुख
करता जीवन का बलिदान।

पूछ रहे उसका तुम परिचय,
क्या दे--तुम्हीं कहो, धीमान;
बिना खिले मिट गया कुसुम जो,
देता जग उसको क्या मान !

अपने लिये मिटाता पर को
जग; है फिर भी मान अतोल,
मिटा रहा जो पर-हित जीवन—
दे वह परिचय भी क्या बोल !

हमारे सामाजिक जीवन का एक करुण चित्र !
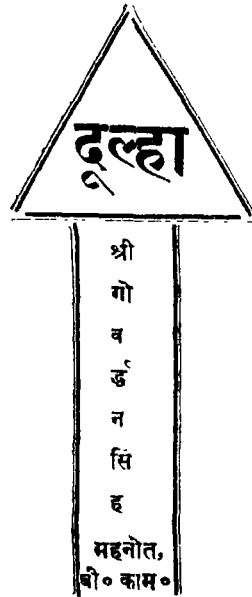
अभी प्रतिमा १० वर्ष की थी ! माता के इन वचनों को समझ न सकी कि हिन्दू लड़की केवल एकही बार दूल्हा ठीक करती है और वह भी स्वनिर्वाचित नहीं। जीवन की आकांक्षाओं का बलिदान देकर भी वह समझ नहीं सकी इसका रहस्य !!

प्रतिमा इस समय १० वर्ष की है। अपने कई बड़े छोटे भाई-बहनों की साथ वह भी बड़ी होती आ रही है। भाई तो सब गांव के स्कूल में पढ़ने जाते हैं और वह अपनी बहनों के साथ घर पर ही एक बंगाली बाबू से पढ़ती है। जब और बहनों की ओर तिरस्कार भरी दृष्टि से देखकर बंगाली बाबू कहते हैं कि प्रतिमा सबसे अधिक तेज जेहन और बुद्धिमान है और वह सबसे अच्छा दूल्हा पावेगी, उस समय प्रतिमा गर्व से फूल उठती है और 'मास्टर साहब, यह किताब तो मैंने कब की खत्म कर दी; अब दूसरी पढ़ूंगी' कह कर अपनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करने लगती

है। लेकिन मास्टर साहब के मुंह से दूल्हे का नाम सुन कर उसे बहुधा अपने बचपन की एक बात का स्मरण हो आता है। बचपन की कई घटनाओं के साथ-साथ इस बात को भी वह कभी नहीं भूल सकती। उस समय वह यही ४-५ वर्ष की होगी। जब वह किसी बात के लिये हठ करती या किसी कारणवश रोने लगती तो उसकी मां बड़े प्यार से उसे गोद में उठा कर कहती, 'मेरी प्रतिमा बड़ी अच्छी लड़की है; यह और लड़कियों की तरह नहीं रोया करती; मैं इसके लिये बड़ा अच्छा दूल्हा मंगाऊंगी।" फिर उसकी मां उसके बाबूजी को पुकार कर कहती, 'अजी आप बाजार जायं तो मेरी प्रतिमा के लिये एक अच्छा सा दूल्हा ले आइयेगा।' उसके बाबूजी उसको मां की गोद से अपनी गोद में लेकर पूछते, 'क्यों बेटी, कैसा दूल्हा चाहिये।' घर की बूढ़ी महराजिन के सिखाये हुये के अनुसार प्रतिमा हाथों से इशारे करती हुई अपनी तोतली आवाज में उत्तर देती, "हाथी जैछा मोता, ऊँथ जैसा लंबा" और अपने बाल पकड़ कर बतलाती, "और ऐछा काला।' बाबूजी हंसते हुए कहते, "अच्छा बेटो, ऐसा ही लावेंगे पर आज हमारे पास पैसा नहीं है, पैसा मिलने पर लावेंगे।" प्रतिमा तुरन्त अपनी जेब से मां का दिया हुआ पैसा निकाल कर बाबूजी के हाथ में देती और कहती, "यह लो पैछा, अब जरूर लाना।" जब तक बाबूजी बाजार से लौट कर नहीं आते, वह बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करती और अपने ऊँट से लंबे दूल्हे के रहने के लिये अपनी गुड़ियों का पिटारा सजाती। लेकिन जब बाबूजी खाली हाथ लौट कर आते और कहते, "भई, आज का बाजार बड़ा तेज रहा, आज एक पैसे में दूल्हा नहीं मिल सका, कल लावेंगे" उस समय प्रतिमा निराश हो जाती और कहती, "अच्छा, लाओ मेरा पैछा।"

बचपन की इस बात को याद कर प्रतिमा अब हंसती है। अब वह समझने लगी है कि दूल्हा हाथी और ऊंट की तरह नहीं बल्कि बाबूजी की तरह दाढ़ी मूछ वाला व्यक्ति होता है और वह एक पैसे में नहीं बल्कि कई हजार रुपयों में आता है। उस समय की समझ में और इस समय की समझ में केवल इसी एक बात में समानता है कि दूल्हा तब भी मोल आता था और दूल्हा अब भी मोल आता है। बाबूजी अक्सर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा करते हैं "मेरी प्रतिमा बेटो सबसे अच्छा पढ़ती है, इसके विवाह में पूरे दश हजार रुपये खर्च करूंगा, ऐसा दूल्हा लाऊंगा राजा सा और इस छुटकी का विवाह तो हजार रुपये में ही किसी बनिये से कर दूंगा।" प्रतिमा इसका अर्थ यों निकालती कि राजा सा दूल्हा दश हजार में आता है, बनिया दूल्हा एक हजार में आता है और डाक्टर दूल्हा शायद तीन हजार में और वकील दूल्हा शायद पांच हजार में। लेकिन इन सब बातों से प्रतिमा ने एक बात बिल्कुल ठीक और सत्य समझ ली थी कि लड़कियों के लिये अगर सबसे अधिक जरूरी, आकर्षक और बेशकीमत चीज कोई है तो वह दूल्हा है। कभी-कभी वह सोचती कि इसी प्रकार दूल्हे को भी दुल्हन एक बहुत जरूरी और सबसे अधिक अभिलिप्सित वस्तु होती होगी।

लेकिन कल उसकी इस विचार सरिता में एक नई धारा प्रकट हुई है। भोजन के वक्त उसने अपनी मां को बाबूजी से यह कहते सुना कि प्रतिमा के मामा के यहां से एक चिट्ठी आई है, जिसमें लिखा है कि मनोरमा के दुल्हे ने इस समय मनोरमा से विवाह करने से इन्कार कर दिया है और कहता है कि जब दो वर्ष बाद वह पूरे बीस वर्ष का हो जायगा और

मनोरमा पूरी पन्द्रह की हो जायगी तब शादी करने में उसे कोई उज्र न होगा। प्रतिमा के बाबूजी ने जवाब दिया कि मनोरमा का दूल्हा बड़ा समझदार और होनहार लड़का है और वह ठीक ही कहता है कि कच्ची उम्र में विवाह न करना चाहिये। रात में बड़ी देर तक प्रतिमा को नींद न आई, वह सोचती रही कि विवाह करने में और दूल्हा-दुल्हन की उम्र के कच्ची पक्की होने में क्या सम्बन्ध है? बहुत विचार करने पर भी उसे यह बात समझ में न आई। उसे मनोरमा के दूल्हे पर बड़ा क्रोध आया और साथ ही उसकी नासमझी पर दया भी आई। मनोरमा के भाग्य पर भी उसे तरस आया पर यह बात उसकी समझ में न आ सकी कि मनोरमा इस नासमझ दूल्हे को छोड़ कर दूसरा दूल्हा क्यों नहीं लेती? बड़ी देर के बाद प्रतिमा को नींद आई। जब वह आज सबेरे उठी, तब भी यही विचार उसके दिमाग में चक्कर लगा रहा था। उसने छूटते ही मां से पूछा, "मां अगर मनोरमा का यह दूल्हा अभी मनोरमा से विवाह करना नहीं चाहता तो वह अपने बाबूजी से दूसरा दूल्हा लाने को क्यों नहीं कहती?"

उसकी मां उसकी सरलता पर हंस कर बोली, "अरे इतनी बड़ी होकर भी तुझ में समझ न आई। मनोरमा क्या कोई ईसाई या मुसलमान लड़की है जो बार-बार दूल्हे बदला करेगी? वह हिन्दू लड़की है और हिन्दू लड़की केवल एक ही बार दूल्हा ठीक करती है।"

प्रतिमा और भी हैरत में पड़ी। उसे समझ में न आया कि हिन्दू लड़की केवल एक ही बार दूल्हा क्या करे? उसे हिन्दू लड़की होने की अपेक्षा ईसाई या मुसलमान लड़की होना अधिक अच्छा लगा।

(२)

अब प्रतिमा ११ वर्ष की है। वह इस समय अपनी मां और भाई-बहनों के साथ अपने मामा के यहाँ मनोरमा के विवाह में आई हुई है। उसके बाबूजी विवाह से ठीक एक दिन पहले आवेंगे। बहुत कहने सुनने पर मनोरमा के दूल्हे ने दो वर्ष की जगह केवल एक वर्ष ठहर कर विवाह करना स्वीकार कर लिया था। अब विवाह केवल पन्द्रह दिन बाद होनेवाला था। यहाँ आने पर प्रतिमा ने कई बार कई व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न तरीके और अलग-अलग लहजे में अपनी मां से तथा परस्पर यह बात कहते हुए सुना कि मनोरमा का दूल्हा प्रमोद बड़ा वैसा है और उसने इन कई शर्तों पर यह विवाह करना स्वीकार किया है कि वह पुरानी व्यर्थ रूढ़ियों का पालन न करेगा और शुद्ध स्वदेशी कपड़ों का व्यवहार करेगा और दुल्हन की ओर से भी ऐसा ही होना चाहिये। १० वर्ष की प्रतिमा और ११ वर्ष की आज की प्रतिमा के विचारों में बड़ा अन्तर हो गया था और वह अब बहुत सी नई बातें समझने लगी थी। वह जान गई थी कि दुल्हन दूल्हे को नहीं लाती है बल्कि दूल्हा दुल्हन को ले जाता है। इस घर को, इन माता-पिता को, इस परिचित प्यारे वातावरण को छोड़ कर उस राजा या बनिया दूल्हे के साथ एकदम नवीन वातावरण में जाकर रहना पड़ता है। अब प्रतिमा दूल्हे के साथ जाने के विचार पर ही एक बार सिहर उठती है। अब भी उसे मनोरमा पर तरस आता है, लेकिन दूल्हा न मिलने के लिये नहीं, बल्कि दूल्हे के साथ जाने के लिये। अब वह इस बात का विचार नहीं करती कि मनोरमा विवाह करने से इन्कार क्यों नहीं करती, क्योंकि वह अपनी मां से सुन चुकी है कि मनोरमा एक हिन्दू

लड़की है और हिन्दू लड़कियां केवल एक ही बार दूल्हा बनाती हैं और वह भी स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं, बल्कि इस मामले में बिल्कुल मां-बाप के आधीन रहती हैं। एक बार प्रतिमा ने मां से पूछा था कि अगर बाबूजी का पसन्द किया हुआ दूल्हा उसके पसन्द न आवे तो क्या हो-- पर मां की घुड़की खाकर वह चुप हो रही थी।

प्रतिमा के बाबूजी एक धनी रईस हैं। आलीशान इमारत है, गाड़ी है, घोड़े हैं, बीसियों नौकर हैं और है दश-पन्द्रह हजार की वार्षिक आय। उनका नाम है चन्द्रलाल। चन्द्रलाल यद्यपि घर की प्राचीन मर्यादा को अक्षुण्ण रखने में सदा तत्पर रहते हैं, पर फिर भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे शिक्षित होने के कारण कई प्राचीन छोटी-मोटी प्रथाओं के उल्लङ्घन को मामूली ठोकर लगने की तरह सह लेते हैं। कई बातों में वे सुधारक कहलाने का भी दम भरते हैं। लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाने के वे पक्षपाती हैं। कानून बन जाने के बाद शारदा एक्ट का दिल से पालन करना चाहते हैं। औरतों के गहनों कपड़ों में मामूली सुधार करने के पक्षपाती हैं। औसर आदि जैसी कुप्रथाओं को, जो समाज के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा बहिष्कृत हो चुकी हैं, ये भी नहीं मानते। अपने भवन को नये ढङ्ग से सजा रखा है और उसका नाम रखा है 'चन्द्रनिवास'। प्रतिमा को तथा उसकी अन्य बहनों को एक सुशिक्षित बंगाली बाबू द्वारा हिन्दी, अंग्रेजी और गणित की शिक्षा दिलाते हैं। बंगाली बाबू का कहना है कि अगर यही प्रगति जारी रही तो प्रतिमा २ वर्ष में मेट्रिक की परीक्षा में बैठ सकेगी।

मनोरमा के पिता भी खूब मालदार हैं - पर बिल्कुल पुरानी तबीयत के आदमी। नई रोशनी को वे जुगनू की चमक और नये विचारों को पागल दिमाग की उपज बतलाते हैं। बिल्कुल पुराने ढंग से एक पुराने मकान में रहते हैं। लड़कियों को पढ़ाना वे अपने पैरों में आप कुठाराघात करना बतलाते हैं। मनोरमा को इसीलिये उन्होंने वर्णमाला और हिन्दी की पहली पोथी को छोड़ कर और कुछ नहीं पढ़ाया है—इतना भी इसलिये पढ़ाया है कि जिसमें मनोरमा शादीगमी के समाचार वक्त पड़ने पर पढ़ सके। १२ वर्ष की उम्र होने के पहले-पहले लड़कियों का विवाह कर देना इनकी निगाह में बहुत जरूरी है। इसीलिये आज से पांच साल पहले अपने बहनोई चन्द्रलाल की मारफत मनोरमा की सगाई इन्होंने प्रमोद से कर दी थी। प्रमोद के पिता भी एक अच्छे छोटे-मोटे रईस थे और चन्द्रलाल की तरह नयी रोशनी के हामी थे। प्रमोद को उच्चतम शिक्षा दिलाना वे अपना कर्तव्य समझते थे। लेकिन विवाह आदि के मामलों में दूल्हा-दुल्हन स्वयं कुछ हस्तक्षेप करें यह बात उन्हें बिच्छू के डंक की तरह असह्य थी। गत साल जब प्रमोद ने विवाह करने से अस्वीकार किया, तब वे बड़े बिगड़े। प्रमोद को बहुत धमकाया, डराया। लेकिन जब वह किसी तरह न माना तब हार कर चुप हो रहे। मनोरमा के पिता को भी प्रमोद का यह व्यवहार अत्यन्त बुरा लगा। अगर बात सहज होती तो वे सगाई छोड़ देते, पर ऐसा करने से लोक-हसाई का डर था। लाचार एक वर्ष और ठहर जाना ही संगत समझा। अब जब प्रमोद ने कई नये शर्त्त पेश की तो ये बड़े उछले कूदे। पर नवीन भारत का युवक हृदय न झुका, लाचार खून का घूट पीकर शर्त्तें मंजूर करनी पड़ी।

प्रतिमा अब ये सब बातें देखती थी, सुनती थी और समझती थी। कभी विवाह उसे सुखप्रद जान

पड़ता तो कभी हौआ। बहुत सोचने विचारने पर भी यह बात उसकी समझ में न आती कि उसके परोक्ष में उसके लिये जो दूल्हा मां बाप ठीक करते हैं, अगर वह उसके पसन्द न आया तो उसे वह क्यों न छोड़ दे। माता पिता के इस अधिकार के प्रति कई बार उसका मन विद्रोह कर उठता। उन युवक हृदयों के प्रति, जो इन प्राचीन बातों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करते हैं, उसके हृदय में स्वतः एक श्रद्धा उत्पन्न होने लगी। प्रमोद के प्रति भी उसके हृदय में एक श्रद्धा, एक आकर्षण पैदा हुआ। वह अधीरता से मनोरमा के विवाह के दिन की बाट देखती रही।

अंत में वह दिन भी आ गया। प्रमोद आडम्बर शून्य शुद्ध स्वदेशी कपड़े पहने मीठी मोहक मुस्कुराहट लिये हुये प्रतिमा की नजरों के सामने आया। इस सुन्दर सौम्य उज्ज्वल मूर्त्त को देख कर प्रतिमा को न जाने कैसा लगा। आज पहले पहल विवाह के दुखद स्वरूप को भूल कर उसके हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्दप्रद भाव का उदय हुआ। उसे लगा कि विवाह करना जीवन का आवश्यक अंग है। घर के सभी व्यक्ति विवाह के कार्यों में व्यस्त रहे। चार दिन तक बड़ी धूमधाम, बड़ी चहल-पहल मची रहा, लेकिन प्रतिमा के हृदय में जैसे कोई स्थान खाली हो गया। उसे प्रत्येक क्षण प्रमोद की सौम्यमूर्ति का ध्यान रहता और वह महसूस करने लगी कि उसे भी ठीक इसी तरह के सकल सूरत वाले एक दूसरे प्रमोद की जीवन सगी के रूप में आवश्यकता है। जहां और लोग आनन्द मना रहे थे, वहां प्रतिमा अन्यमनस्क की तरह बैठी रहने लगी। उसे मनोरमा से एक प्रकार की ईर्ष्या हुई। वह सोचती कि क्या मेरे माता पिता भी मेरे लिये ऐसी सुन्दर दूल्हा खोज सकेंगे? इन चार दिनों में जब जब प्रमोद रस्म पूरी करने अन्तःपुर में आता, प्रतिमा बराबर उसके समीपतर होने का प्रयत्न करती। लेकिन प्रमोद ने केवल एक बार मधुर मुस्कान के साथ उससे उसका परिचय पूछा था। अब भी जब दूल्हा दुल्हन को लेकर चला गया है और फिर पहले की तरह ही शान्ति छा गई है, प्रमोद के वे मधुर शब्द प्रतिमा के कानों में, उसके हृदय मन्दिर में बराबर गूंज रहे हैं। दूल्हे के साथ जाते समय जब मनोरमा खूब रोई धोई, तब प्रतिमा को एक बार फिर मनोरमा की समझ पर तरस आया था। वह न समझ सकी कि इतने सुन्दर देवोपम दूल्हे को पाकर भी मनोरमा कसाईखाने में जानेवाली गाय की तरह क्यों आंसू बहा रही है? दिल में एक अजीब याद, एक अजीब भाव लिये हुये अपने बाबूजी के साथ प्रतिमा अपने घर आई।

(३)

अब प्रतिमा की उम्र १६ वर्ष की है। किशोरावस्था बीत कर उसके शरीर पर अब यौवन के चिन्ह प्रस्फुटित होने लगे हैं। प्रमोद की सौम्य मूर्त्त की याद वह अभी तक नहीं भूली है। इस याद को लेकर उसने न जाने हवा में कितने महल बनाये हैं, नारी जीवन की कितनी किलेबन्दियां की हैं। यद्यपि वह यह बात जानती है कि उसके लिये एक योग्य वर खोजने में उसके पिता अथक परिश्रम कर रहे हैं, पर फिर भी उस दिन की वह बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करती है, जिस दिन प्रमोद सा सौम्य और देवोपम वर पाकर वह कृतार्थ हो जायगी। यह सब सोचती विचारती हुई भी उसके हृदय में यह भय बराबर बना रहा है कि कहीं पिता द्वारा चुना हुआ दूल्हा उसके मनके अनुकूल न हुआ तो क्या होगा। जीवन मिट्टी हो जायगा, जन्म लेना

वृथा हो जायगा। उस जीवन से मरना ही अधिक सुन्दर होगा। यद्यपि इन दो वर्षों में उसने हिन्दू संस्कृति की कई पुस्तकों पर मनन किया है, इस संस्कृति की महत्ता और गभीरता की वह कायल हो गई है, लेकिन केवल इसी एक बात में—माता-पिता द्वारा वर निर्वाचन में और मनोनुकूल न होने पर भी उसी एक ही दूल्हे से आजीवन चिपटे रहने के विधान में—वह हिन्दू संस्कृति से सहमत होती हुई डरने लगी। इस बात को लेकर उसे एक हिन्दू लड़की की अपेक्षा एक ईसाई या मुसलमान लड़की का जीवन अधिक निरापद जान पड़ा। बगाली मास्टर के बहुत जोर देने पर उसके बाबूजी ने उसे इस वर्ष मेट्रिक की परीक्षा में बैठने की इजाजत दे दी है और वह एक चित्त होकर उसीकी तैयारी में संलग्न है।

एक दिन एकाएक उसके बाबूजी ने उसकी मां के पास आकर संतोष की एक सांस ली और बोले, "आज कहीं पूरे एक वर्ष की दौड़ धूप के पश्चात् कार्य सफल हुआ है। जालिमपुर के नगर सेठ के लड़के नरेन्द्र से प्रतिमा की सगाई निश्चित हो गई है। लाखों की जायदाद है। सुन्दर स्वस्थ लड़का है। जरा पढ़ने में कुछ कम है। अगले वर्ष मेट्रिक में बैठेगा। क्या बताऊं—पूरे वर्ष भर में कहीं जाकर यह खान्दान हाथ आया है। केवल यही एक कमी है। अब तुम्हारी क्या राय है?"

प्रतिमा की मां—मनोरमा के पिता की बहन—की निगाह में पढ़ने का कोई खास महत्व न था। हल्की होकर बोली, "भगवान् को धन्यवाद दीजिये। ऐसा सुन्दर घराना बड़े मुश्किल से हाथ आता है। लड़के को पढ़ कर कोई नौकरी तो करनी नहीं। मेरी राय में आप यह सुवसर हाथ से न जाने दें।"

प्रतिमा भी वहीं बैठी थी। यह बात सुन कर सन्न रह गई। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे उसका भय मूर्त्तिमान होकर उसके आगे आ खड़ा हुआ है। वह सोचने लगी कि क्या उसके सभी हवाई किले नष्ट हो जायंगे? क्या उसकी सारी आशा-लताओं पर तुषारापात हो जायगा? क्या उसकी यह सारी शिक्षा, यह सारा विकाश यों ही जायगा? उसकी इस शिक्षा का मूल्य, उसके भावुक हृदय की कीमत कौन समझ सकेगा? ओह भगवान्, उसके किन पूर्व कर्मों का यह फल उदय हुआ है? कौन उसे इस विपत्ति में उचित परामर्श देगा? एकाएक प्रतिमा के हृदय में प्रमोद का सौम्य चित्र उदय हुआ। कुछ आशा बन्धी कुछ धैर्य हुआ। इधर जालिमपुर के नगरसेठ के लड़के के साथ प्रतिमा का विवाह एक वर्ष बाद होना निश्चय हो गया।

प्रतिमा यथा समय मेट्रिक की परीक्षा में बैठी। समय पर रिजल्ट निकला। प्रतिमा विश्वविद्यालय भर में सर्व प्रथम हुई। चारों ओर से प्रतिमा के पास बधाइयों के पत्र आने लगे। वह भी उत्तर में धन्यवाद के पत्र भेजने लगी। प्रमोद ने भी बधाई लिख भेजी। उत्तर में कांपते हाथों और धड़कते हृदय से प्रतिमा ने धन्यावाद सहित उत्तर लिख भेजा अत्यन्त नम्र भाषा में, अत्यन्त बाधित भावना लिये हुये। पत्र के अंत में उसने उत्तर पाने की आशा प्रकट की थी। प्रमोद का उत्तर यथा समय मिला। इधर से फिर पत्र गया उधर से फिर उत्तर आया। इसी प्रकार बराबर पत्र आने जाने लगे। प्रमोद भी इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठा। विश्वविद्यालय भर में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। उत्साह बढ़ा और दिल खुला। पत्रों का आवागमन जोरों पर हुआ। प्रतिमा की तरह ही प्रमोद भी

भावुक हृदय का व्यक्ति था। अपने विवाह से पहले उसने कल्पना का संसार तैयार किया था। कभी-कभी उसे भी यह भय होता था कि मनोरमा अगर उसके मनोनुकूल न निकली तो क्या होगा। लेकिन वह पुरुष था, उसे इस बात का गुमान था कि वह मनोरमा को विवाह हो जाने के पश्चात भी अपने अनुकूल बना लेगा। लेकिन उसकी यह आशा स्वप्नवत सिद्ध हुई। उसने मनोरमा को पढ़ाने की, उसको सुधारने की लाख चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुई। पुराणवाद में मनोरमा इतनी आगे बढ़ी हुई थी, रूढ़ीवाद उसके हड्डी और मांस में भी इस कदर समाया हुआ था कि उसको नवीनता का जामा पहनाना अगर असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य था। प्रमोद निराश हो गया। उसके हवाई महल भूमिसात हो गये। उसका भावुक हृदय मनोरमा के रहते हुये भी किसी महिला मित्र का एकान्त अभाव अनुभव करने लगा। उसे किसी ऐसे रमणी रत्न की आवश्यकता थी, जिसके चरणों पर वह अपनी भावुकता का अर्घ्य चढ़ा सके, साहित्य की उड़ान में जिसके साथ उड़ सके। प्रतिमा ने उसके इस अभाव की पूर्ति की। परिवर्त्तन के प्रवाह में, नवीनता के जोश में और अभाव की पूर्णता में दोनों बह चले। साहित्य की उड़ान में दोनों ने न जाने कितनी-कितनी दूर की दौड़ लगाई? एक पत्र में अचानक प्रतिमा ने प्रमोद को लिख भेजा कि वह जालिमपुर के नगरसेठ के लड़के के विषय में पता लगा कर सविस्तर उसे लिख भेजे। प्रमोद ने इसके उत्तर में लिखते हुए लिखा "तुमने नरेन्द्र का पता लगाने के लिये लिखा, लेकिन यह जान कर तुम्हें आश्चर्य होगा कि वह मेरा संबंधी है। उसके जैसा लंपट, दुराचारी इस पृथ्वी के हृदय पर शायद ही कोई हो। वह शराबी है, जुएबाज है, परस्त्रीगामी है तथा और भी न जाने क्या-क्या है। लेकिन तुम उसके विषय में क्यों पूछती हो?" इस वर्णन को पढ़ कर प्रतिमा को मरणान्तक कष्ट हुआ। माता-पिता से इस विषय में कुछ कहने का कष्ट उठाना उसने व्यर्थ समझा, क्योंकि उसे मां के ये शब्द अभी तक ज्यों के त्यों याद थे कि हिन्दू लड़की केवल एक ही बार दूल्हा ठीक करती है। यद्यपि इस निर्णय की कोई जिम्मेदारी प्रतिमा पर न थी - पर इस विषय में उसकी कोई दलील नहीं सुनी जा सकती क्योंकि वह एक हिन्दू लड़की है। पत्रों का आवागमन उसी प्रकार जारी रहा। एक दूसरे की दुख कथा सुनते-सुनाते रहे। पत्रों ही पत्रों में दोनों में प्रणय स्थापित हुआ। दोनों ने आजन्म एक दूसरे का चित्र अपने हृदयों में स्थापित रखने की सौगन्धें खाई। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे कहीं भी रहेंगे, किसी भी परिस्थिति में रहेंगे, एक दूसरे के होकर रहेंगे, समाज का कोई भी विधान, संसार की कोई भी शक्ति उनके इस हार्दिक सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकती।

(४)

यथा समय प्रतिमा का विवाह हुआ। प्रमोद भी आया था। आंखों ही आंखों में दोनों में बातें हुई थी। इस समय प्रतिमा जालिमपुर में अपने जालिम पति के पास है। प्रमोद के पत्र नहीं आते, क्योंकि नरेन्द्र को पसन्द नहीं है। प्रतिमा भी पत्र नहीं देती क्योंकि मनोरमा को पसन्द नहीं है। दोनों ही उदासीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। तपस्या कर रहे हैं अपने-अपने प्रणयी से दूर रह कर—वियोगाग्नि में जल-जल कर—मानों हिन्दू समाज के लिये प्रायश्चित कर रहे हैं।

सिल्यूलाइड का खिलौना

[श्री पूर्णचन्द्र जैन, एम० ए० 'विशारद']

उस सिल्यूलाइड के खिलौने के एक-एक कर सारे अंग क्षत-विक्षत हो चुके थे। एक टांग बिलकुल ग़ायब हो गई थी। आंखों की जगह के काले धब्बों के मिट जाने के कारण चेहरा अन्धा दिखाई देता था। एक हाथ के, कुहनी तक के भाग का कहीं पता नहीं था। पेट से गले तक एक दरार सी हो गई थी। गालों में खड्डे पड़ गये थे, फिर भी उनका गुलाबी रंग नहीं छूटा था।

अब उसमें बैठ रहने की शक्ति न थी। वह उसे छोड़ता और वह उधर लुढ़क जाता था।

वह मिट्टी का छोटा-सा चबूतरा बनाता और उस पर उसे बैठाता, उसके सामने फूल रखता, उसके खेलने के लिये खिलौने जमा करता मानो उसकी भांति वह - सिल्यूलाइड का आदमी -- भी खिलौनों का प्रेमी है!

उस खिलौने में उसके लिये न मालूम क्या आकर्षण था?

भोजन करने बैठता तो वह उसकी गोद में रहता, सोता तो वह उसके सिरहाने रहता, चलता तो उसे अपनी छाती से चिपका कर अथवा हाथ में झुलाते हुए।

उस दिन उसकी मा ने समझा था, "अब बबुआ को दूसरा खिलौना दूंगी।"

उसने उसके सो जाने के पश्चात् चुपचाप उसको छिपा दिया था।

पर, उसने जागते ही सिरहाने की ओर नज़र की, वहां उसका साथी नहीं था-- चीख़ उठा--सच्चा प्रेमी भी कदाचित् विरह की तीव्र वेदना में इतना दुखी नहीं होता!

आंखों के आंसू, गालों पर दौड़ती हुई रक्ताभा, कण्ठ से निकली हुई सिसकियां और हाथ-पैरों का फेंकना-- सब यह प्रकट करते थे कि उसके हृदय में सिल्यूलाइड के खिलौने के लिये अटूट प्रेम-स्रोत है, उसके पाने के लिये उसके हृदय में अटल आग्रह है, उससे मिलने के लिये उसके अंग-अंग में आतुरता है।

काश, बालक की यह आतुरता, यह आग्रह, यह प्रेम जीवन भर स्थिर रहता!

टूटे-फूटे खिलौने पर रीझने और उससे सन्तुष्ट रहनेवाले बालक-हृदय की भांति, युवक-हृदय और वृद्ध-हृदय भी एक वस्तु पर भागनेवाला न होकर स्थिर-प्रेम से युक्त होता। विरूप दिखनेवाले खिलौने के प्रति उस बालक-हृदय का जो आकर्षण था वैसा ही आकर्षण और वैसी ही आसक्ति किसी वेदना-विदग्ध देव-हृदय के प्रति युवक-हृदय और वृद्ध-हृदय की भी होती?
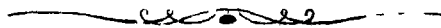
ओसवाल वस्ती–पत्रक

[श्री अगरचंद नाहटा]

कई मास पूर्व बीकानेरस्थ बड़े उपाश्रय के यति मुकनचन्दजी के संग्रह का अवलोकन करते हुए प्रस्तुत वस्ती पत्रक प्राप्त हुआ था। यह विशेष प्राचीन नहीं है केवल ८८ वर्ष पूर्व सोजत निवासी सेवग (भोजक) कस्तूरचन्द के संग्रह कर लिखाया हुआ है, ऐसा इसकी पुष्पिका से प्रगट होता है।

प्राचीन जैनज्ञान-भाण्डागारों में ऐसे फुटकर पत्र पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुआ करते है जिनमें हमारी जाति से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी बातें नवीन ज्ञातव्य मिलती हैं, अगर उन सब को संग्रहित कर परिशीलन किया जाय तो शृङ्खलाबद्ध जातीय इतिहास तैयार हो सकता है। हमारे संग्रह में भी ऐसे कई पत्र है जिनमें ओसवाल श्रीमालों की उत्पत्ति, गृहसंख्या, वंश वृक्ष, अमुक गच्छानुयायी आदि विवरण लिखे हुए हैं। उदाहरण के तौर पर श्रीमाल और महत्तिआण जाति का गृहसंख्या विषयक पत्र जिसका अमुक अंश "ओसवाल नवयुवक" के वष ७ अं० ६ में प्रकाशित हुआ है जिससे लुप्त-अस्तित्व जाति के प्राचीन गौरव और कालचक्र के प्रभाव की अच्छी झांकी होती है।

प्रस्तुत वस्ती पत्रक अपूर्ण और अनुमानिक ही ज्ञात होता है परन्तु फिर भी तथ्य के सन्निकट ही है क्योंकि संग्रह एक ऐसे व्यक्ति का किया हुआ है जो कि भ्रमणशील और ओसवालों से घनिष्ट सम्बन्धवाली "सेवग" जाति का था। यह जाति जिन मन्दिरों की सेवा और ओसवालों के अतिरिक्त किसी से याचना नहीं करती है। पूर्वकाल में जैन संस्कार संपन्न होते हुए भी खेद का विषय है कि जैनों की कमजोरी के कारण धर्म परिवर्त्तन की वेगवती धारा में अधिकांश प्रवाहित हो गए।

श्री जोधपुर का २२ परगणा की विगति :—

१—जोधपुर ४५ हजार घर की वस्ती १४४४ गाम २००० ओसवाल घर ३०० घर श्रावगी

२—नागोर १४ हजार घर की वस्ती ७५७ गाम ७०० घर ओसवालां का

३—फलोधी ८४ गाम। ४००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

४—पोकरण ८४ गाम। ४००० घर की वस्ती ६० घर ओसवालां का ६०० महेसर्यां का

५ सिव ८४ गाम। हजार घर की वस्ती १०० घर ओसवालां का

६ महेवो जसोल १४० गाम। ३००० घर की वस्ती ३०० घर ओसवालां का

७—पंचभद्रो ४००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का (२७ लखपती)

८—सिवाणौ १४० गाम १५०० घर को वस्ती ३०० घर ओसवालां का

९—जालोर ५५५ गाम ४००० घर की वस्ती १००० घर ओसवालां का

१०—साचोर ८४ गाम १५०० घर की वस्ती २०० घर ओसवालां का

११—वाली ३६० गाम ३००० घर की वस्ती ३०० घर ओसवालां का २०० घर पोरवालां

१२ पाली ११००० घर की वस्ती २७०० घर ओसवाल

१३—भादराजन ८४ गाम १००० घर की वस्ती २०० घर ओसवाल

१४—सोभूत ३६० गाम ४००० घर की वस्ती १००० घर ओसवाल

१५—बीलाडो ४००० घर की वस्ती ८०० घर ओस०

१६—जेतारण १४० गाम ४००० घर की वस्ती ७०० घर ओसवाल

१७—मेडतौ ३६० गाम ६००० घर की वस्ती १००० घर ओसवाल

१८—परवतसर २१० गाम ३००० घर की वस्ती ८० घर ओसवाल

१६—मारोट २१० गाम ३००० घर की वस्ती १०० घर ओसवाल

२०—डीडवाणौ ६००० घर की वस्ती १०० घर ओसवाल

२१—सँवर आधी ६००० घर की वस्ती २० घर ओसवाल ७०० श्रावगीयांरा

२२—दौलतपुरौ ४१ गाम १००० घर की वस्ती १०० घर ओसवाल

२३—कौलियौ ३५ गाम १५०० घर की वस्ती १०० घर ओसवाल

२४—अजमेर ३६० गाम २००० घर की वस्ती १००० घर ओसवाल

२५-किसनगढ़ २१० गाम ६००० घर की वस्ती १००० घर ओसवाल

२६ बीकानेर २७०० गाम १४००० घर की वस्ती २७०० घर ओसवाल

२७—जेसलमेर ४०० गाम ६००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवाल

२८—उदैपुर ७००० गाम १५००० घरकी वस्ती १५०० घर ओसवाल

२६—जावद ३६० गाम ४००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवाल

३०-मंदसोर ४०० गाम ५०००० घर की वस्ती १४०० घर ओसवाल

३१—प्रतापगढ़ ७३०० गाम ६०० घर की वस्ती २०० घर ओसवाल

३२—रतलाम ४०० गाम ३०००० घर की वस्ती २६०० घर ओसवाल

३३—उज्जीण ३६० गाम ८०००० घर की वस्ती २००० घर ओसवाल

३४—मेदपुर ३६० गाम १३००० घर की वस्ती ४०० घर ओसवाल

३५- खाचरोद ३० गाम ६००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवाल

३६—वडनगर २०० गाम ५००० घर की वस्ती ४०० घर ओसवाल

३७—धार पवारांकी ४०० गाम ८०० घर की वस्ती ५० घर ओसवाल

३८—इन्दोर ३०० गाम ६०००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

३६—रामपुरौ ३०० गाम ६००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

४०—भाणपुरौ १०० गाम ४००० घर की वस्ती ८० घर ओसवालां का

४१—कोटौ ६००० गाम ५०००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

४२—बूंदी ७५७ गाम ८००० घर की वस्ती ६० घर ओसवालां का

४३—सौपुर ३६० गाम ६००० घर की वस्ती ६० घर ओसवालां का

४४—झालरापाटण (छावणी) ४००० गाम १००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

४५—भूपाल ७०००० गाम ६०००० घर की वस्ती १०० घर ओसवालां का

४६—भेलसां ६०० घर की वस्ती ५० घर ओसवालां का

४७—सागर वस्ती ५०००० घर की वस्ती ११ घर ओसवालां का

४८—भूबलपुर ४०००० घर की वस्ती ३० घर ओसवालां का

४९—नागपुर ८० ००० घर की वस्ती २०० घर ओसवालां का

५०—अमरावती ३०००० घर की वस्ती ५० घर ओसवालां का

५१—रायपुर २०००० घर की वस्ती ६० घर ओसवालां का

५२—हैदराबाद ९००००० घर की वस्ती १००० घर ओसवालां का

५३—पूनौ ३००००० घर की वस्ती १५०० घर ओसवालां का

५४—ममोई ६००००० घर की वस्ती २००० घर ओसवालां का (दुकान)

५५—सूरत ३००००० घर की वस्ती ६०० घर ओसवालां का

५६—अहमदाबाद १००००० घर की वस्ती २००० घर ओसवालां का

५७—वडौदौ ६०००० घर की वस्ती २००० घर जैनी श्वेतांबर

५८—पाटण १५०० (०) घर की बस्ती १७०० घर ओसवाल प्रमुख

५९—पालणपुर ६००० घर की वस्ती १७०० घर ओसवालां का

६०—इन्डर ४००० घर की वस्ती १२०० घर ओसवालां का

६१—अैमदनगर २००० घर की वस्ती १०० घर ओसवालां का

६२—वीसलपुर ८००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

६३—भावनगर १२००० घर की वस्ती २०० घर ओसवालां का

६४—गोगाविदर ४००० घर की वस्ती २५ घर ओसवालां का

६५—पालीताणौ ४००० घर की वस्ती २०० घर ओसवालां का

६६—जूनौगढ ९००० घर की वस्ती ३०० घर ओसवालां का

६७—नवौनगर १५००० घर की वस्ती ५०० घर ओसवालां का

६८—मांडवी २५००० घर की वस्ती २००० घर ओसवालां का

६९—राधणपुर ४००० घर की वस्ती ३०० घर ओसवालां का

७०—लीबडी ५००० घर की वस्ती ६०० घर ओसवालां का

७१—वडवाण ३००० घर की वस्ती ३०० घर ओसवालां का

७२—संखेसरौजी ३५० घर की वस्ती ३० महाजनांरा

सेवग गौडीदासजी का सेवग किस्तूरचद वासी सोमा (त) के लिखाई है सं० १६०५ मिती पोस वदि ९

(पत्र २ मुकनजी यति—समग्रह, बीकानेर)

इस पत्र में यह महत्व है कि परगनों की ग्रामसंख्या गृह-संख्या और उसके बाद ओसवालों की गृह संख्या दी है।

ओसवालों की गृहसंख्या के अतिरिक्त प्रसंगोपात सरावगी, पोरवाड़, माहेश्वरी आदि जातियों का भी उल्लेख कर दिया है। ओसवालों की गृहसंख्या में अंशतः प्रकाश पड़ता है क्योंकि इसमें समग्र प्रान्तों का विवरण नहीं है जैसे सिन्ध, पञ्जाब, बगाल आदि कई उल्लेखनीय प्रान्तों का तो नामोनिशान भी नहीं आया और जिन प्रान्तों का है वह भी अपूर्ण। पर फिर भी लेखक को जहाँ का मालूम था, लिख देने से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व का है।

वर्त्तमान में मूलचन्द बोहरा लिखित "ओसवाल समाज की परिस्थिति" नामक ग्रन्थ के पृ० २०३-२१६ में संक्षिप्त "डिरेक्टरी" दी गई है किन्तु वह भी अपूर्ण है। अतः महासभा और कानफ्रेन्स आदि उत्तरदायित्व-पूर्ण संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि इस ओर ध्यान देकर पूरी डिरेक्टरी निर्माण करे।

समाज की युवक शक्ति

राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी का भाषण

जैन-समाज भूतकाल में बड़ा प्रभावशाली था। ४० करोड़ जैन पृथ्वीपर थे जैनों में कई राज्याधिकारी और वाणिज्य-व्यवसाय में उच्च पद पर थे। जैनों के बहुत बड़े तत्व 'विश्व-बन्धुत्व' और 'अहिंसा' केवल जैनों के ही नहीं वरन अखिल मनुष्य-जाति के गौरवास्पद और मान्य हैं। जैनों के ध्येय इतने बड़े हैं कि ज्यों-ज्यों विज्ञान की तरक्की होती जायगी त्यों-त्यों इन ध्येयों की महत्ता का संसार स्वागत करते चला जायगा। हमें ही हमारे ध्येयों की भूल पड़ने से हमारी यह स्थिति होती जा रही है। धर्म के उद्देश्य कितने ही उच्च हों मगर उनका अनुकरण बराबर न किया जाय तो धर्म की या ध्येयों की खामी नहीं है किन्तु पालनेवालों की। यही कारण है कि जो समाज लक्ष्मीवान् था वो ही आज गिरी दशा को प्राप्त हुआ है। लक्ष्मी के साथ मानवीय ध्येयों का पालन न करने से समाज में धार्मिक, नैतिक और सामाजिक शिथिलता होती गई उसका परिणाम यह हुआ कि समाज एक खण्डहर या गिरे मकान सा हो गया है। हमारी संख्या दिन ब दिन कम होती जा रही है। ४० करोड़ में से अब हम १२॥ लाख सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी में रहे हैं। इन १२॥ लाख की छान की जाय तो ५॥ लाख स्त्रियाँ हैं जिनमें १॥ लाख विधवा स्त्रियाँ है याने स्त्रियों में एक सौ में से २६ विधवायें हैं बाकी ८ लाख मर्दों में १ लाख वृद्ध और २ लाख बालक हैं। बाकी कुल ४ लाख तरुणों पर सारे समाज का भार है याने प्रत्येक युवक को २ व्यक्तियों के भरण-पोषण का भार तो आता ही है। इस संगठन के कार्य में हमें नवयुवकों की पूरी आवश्यकता है। क्योंकि संसार के इतिहास में प्रत्येक देश वा समाज का उत्थान नवयुवकों द्वारा ही हुआ है। किसी कवि ने कहा है कि "नवयुवक राष्ट्रीय शरीर की आत्मा हैं" यह बात अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। नवयुवकों का जीवन राष्ट्रीयता की शक्ति है, धर्म का दीपक है—समाज का सहारा है और सफलता की कुञ्जी है—साथ ही नवयुवकों के नेतृत्व को ऐसे अनुभवियों की जरूरत है कि वे समयानुसार प्रवृत्तियों का विचार करते हुये उन्हें मार्गदर्शक होकर राह बतावें। "नवयुवक" इस बात को न भूलें कि उनसे बड़ी उम्रवालों को भी वे साथ लेकर चलें। जनरल जब आर्डर देता है तब वह सब उम्र का ही खयाल करके नेतृत्व करता है। अगर यह ख्याल न रखें तो छोटी उम्र के लोग आगे निकल जायँगे और उनसे बड़ी उम्र के पीछे रह जायँगे। और समाज का जीवन समन्वित न हो सकेगा।

सुधारणा की आवश्यकता —

जग की सुधारणा के साथ जो समाज अपना संगठन करके सुधार नहीं करता, वह पीछे रह जाता है। अब पुरातन रूढ़ियों के लकीर के फकीर रहने से काम नहीं चलेगा, संसार के परिवर्त्तन में हमें भी परिवर्त्तन करना पड़ेगा। हमें इस परिवर्त्तन में सबसे प्रथम कार्य यह करना आवश्यक है कि हम समाज की शक्तियों को संगठित एवं जागृत करें। इस जागृति में शिक्षा की आवश्यकता है। जैन-समाज—जो ज्ञान का भण्डार समझा जाता था जिसमें महान् ज्ञानी पुरुष हुये हैं, आज वही समाज अज्ञान एवं अन्धकार के गहरे गर्त्त में पड़ा हुआ है। जैन-समाज में बहुत कम व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिन्हें जैन धर्म के सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान हो। हमारा-ख्याल तो यह रहता है कि हम व्यापारी समाज को तो टूटी-फूटी हिन्दी या महाजनी ही व्यवहार के लिये काफी है। मगर अब यह समझ काम नहीं देती। अगर हम अपने समाज की उन्नति करना चाहते हैं तो हमको विद्वान् बनना चाहिये।
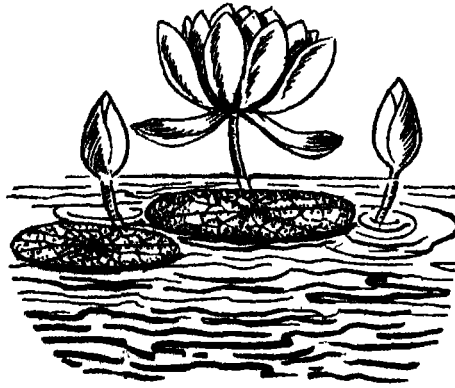
गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धन सिंह महनात, बी० कम]

(क्रमागत)

(१७)

सुशील कुमार को ग्राम्य संगठन का पर्याप्त अनुभव हो चुका था। लेकिन सकरपुर में उसे बड़ी विचित्र परिस्थिति का सामना करना पड़ा। शिवपुरी के कृषक संकरपुर के कृषकों से लाख दर्जे अधिक सुखी थे। उनके दुःखों की सुनवाई मधुपुर महाराज के दरबार में होती थी। वे प्रजावत्सल मधुपुर महाराज की प्रजा थे। लेकिन सकरपुर वाले जमीन्दार दीनानाथजी की प्रजा थे। जमींदार बाबू के यहां प्रजा के दुःखों की सुनवाई होने को शायद पर्याप्त जगह न थी। बहुधा फरियादी धक्के देकर बाहर निकाल दिये जाते थे। दीनानाथजी स्वभाव से ही बहुत अत्याचारी हों, यह बात न थी। उनके गुमाश्तों और कारिन्दों ने उनके दिल में यह बात बैठा दी थी कि ये किसान बड़े मटमुर्दे होते हैं। जमींदार को लगान देने में ढीला करना इनकी मनोवृत्ति में शामिल है। जमींदार को ये यमराज के समान समझते हैं। इस मामूली मारपीट के तो ये रोटी पानी के समान आदी हो गये हैं। अगर इन्हे इस प्रकार दूर दूर न रखा जाय तो ये जमींदार के शरीर पर भी चढ़ बैठने में संकोच न करें। इन्हीं सब बातों के दिल में बैठ जाने से दीनानाथ बाबू सारा काम काज करिन्दों के हाथों में देकर इस ओर से एक प्रकार से उदासीन से हो गये थे। इसके पश्चात जब कभी कोई कृषक फरियादी बनकर इनके पास पहुंचा या किसी कृषक समुदाय ने करिन्दों के अत्याचारों का विरोध किया तो दीनानाथ बाबू ने इसे सिवाय उनकी बदमाशी और उनकी स्वाभाविक जमींदार–विरोधी प्रवृत्ति के और कुछ न समझा। धीरे धीरे दीनानाथजी का यह विचार पक्का होता गया कि परिस्थिति डंडों ही से काबू में रखी जा सकती है। दीनानाथजी के इन्हीं विचारों और उदासीनता के कारण गरीब कृषकों की दशा ढोरों से भी गयी बीती हो रही थी। दीनानाथजी स्वभाव से ही विलास-प्रिय व्यक्ति थे। अपनी सुख से प्रवाहित जीवन-धारा में बाधा पड़ने के डर से वे कारिन्दों के किसी काम में हस्तक्षेप करना एक बड़ी भारी आफत बैठे बिठाये मोल लेना समझ कर कुछ न बोलते थे। उनकी इस तटस्थ नीति से कारिन्दों को कोई डर न रह गया और वे निरंकुश होकर गरीब कृषकों पर मनमानी करने लगे। सकरपुर के वृद्ध स्कूल मास्टर ने सुशील कुमार के कान में डरते डरते यहां तक कह डाला कि उन्होंने अपनी उन निस्तेज आंखों से गांव के अच्छे अच्छे पटेलों को उन तुच्छ वेतन भोगी कारिन्दों के यहां पानी भरते और वर्तन मलते देखा है। जमींदार बाबू के यहां फरियाद करने का आशय डंडे खाना है। और इन गये बीते कृषकों में इतनी ताकत कहां कि वे जमींदार बाबू के विरुद्ध महाराज मधुपुर के यहां फरियाद करें। मास्टर साहब ने जब बहुत सतर्क होकर और इधर उधर देख कर यहां तक कह डाला कि कृषकों की आपसी लड़ाईयों से ये नर पिशाच जमींदार-कारिन्दे यहां तक अनुचित फायदा उठाते हैं कि एक का पक्ष लेकर दूसरे को दबाने में ये नर-पशु इन भोले भाले कृषकों की बहु

में भी धोखा खा सके। इसलिये तुम इस बात का पूरा पता लगाना और मुझे शिवपुर खबर भेजना।" यद्यपि यहां के निवासियों से मिलने और यहां की दशा का पता लगाने में व्यस्त रहने के कारण वह इस विषय में अधिक कुछ न सोच सका था, पर एक क्षण के लिये भी वह इस बात को भूला नहीं था। वह बड़ी उत्सुकता से क्रान्तिचन्द्र के आने की प्रतीक्षा करता रहा।

सन्ध्या हो जाने पर क्रान्तिचन्द्र वहां आये। चेहरा हृदय का प्रतिबिम्ब है। हृदय के भावों का प्रतिबिम्ब चेहरे पर पूर्णरूप से पड़ता है। क्रान्तिचन्द्र का सौम्य और रोबीला चेहरा देख कर सुशील बड़ा प्रभावित हुआ। उसने अनुभव किया कि इस व्यक्ति के हृदय में सत्यता और दृढ़ता ठस-ठस कर भरी हुई है। कमला से वह अनेक बार उसके पति आनन्दकुमार के विषय में सुन चुका था। आज क्रान्तिचन्द्र को सामने देखते ही उसकी दृढ़ धारणा हो गई कि यह व्यक्ति ही आनन्दकुमार है।

उचित शिष्टाचार और कुशल प्रश्न के पश्चात सुशील बोला, "क्रान्तिचन्द्रजी, आपकी आज्ञानुसार मैं उपस्थित हू। मनसा वाचा कर्मणा मैं यहां की जनता की सेवा करने को तत्पर हूं। यद्यपि मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि मुझमें कौन सी योग्यता देख कर आपने मुझे इस इतने बड़े उत्तर-दायित्व पूर्ण कार्य के लिये चुना, पर फिर भी अपनी क्षुद्र और नगण्य शक्ति और बुद्धि के अनुसार मैं आपके पथ-प्रदर्शन में रह कर जनता का कार्य करूंगा। मैंने यहां के कतिपय निवा-सियों तथा वृद्ध स्कूल-मास्टर साहब से यहां की अवस्था सुनी तो मेरा हृदय दहल उठा। उन सब लोगों से यह भी मालूम हुआ कि यहां की दुरवस्था के प्रति अब जो यह थोड़ा बहुत असन्तोष दिखाई देने लगा है, कुछ लोगों में अब जो यह नवीन जीवन दिखाई देने लगा है, वह केवल आपके सदुत्साह और सच्ची सेवा-भावना का फल है। आपने यहां की दुरवस्था का अनुभव किया है और आप स्वयं एक उत्तरदायित्व-पूर्ण जगह पर कार्य कर रहे हैं, अतः यह स्वाभाविक है कि आपको यहां की दशा का वास्तविक ज्ञान दूसरों से अधिक हो। आप मुझे उस अवस्था से परिचित कराने की कृपा करें।"

क्रान्तिचन्द्र धीर-गम्भीर किन्तु शिष्टाचार-पूर्ण स्वर में कहने लगे, "सुशीलकुमारजी, सबसे पहले मैं यह कह देना चाहता हू कि अब आपको और मुझको एक साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर कार्य करना है, अतः इतने अधिक शिष्टाचार से काम नहीं चलने का। परस्पर केवल मित्रता का बर्ताव ही अधिक उपयुक्त होगा। अब मेरे कुछ कहने के पहले आप यह बताइये कि अभी तक आपको यहां की दुरवस्था सम्बन्धी क्या-क्या बातें मालूम हुई हैं ?"

सुशील ने, उसे वृद्ध मास्टर साहब तथा अन्य कतिपय सज्जनों से जो कुछ मालूम हुआ था, कह सुनाया।

क्रान्तिचन्द्र उसी प्रकार गम्भीर रह कर कहने लगे, "आपको जो कुछ कहा गया है, वह बिल्कुल ठीक है। उससे अधिक दुरवस्था का चित्र मैं और क्या खींचू ? यह सत्य है कि किसानों की, गरीब ग्रामीणों की दुरवस्था का कारण अनेक अंशों में उनकी सामाजिक कुरीतियां भी हैं, पर इस राजनीतिक अन्याय और अत्याचार से वे इतने अधिक पिस गये हैं कि उनको यह कहना कि वे अपनी सामाजिक दशा को सुधारें, मुझे हास्यास्पद जान पड़ता है। "राजनीतिक" शब्द का अर्थ वहीं तक है जहां तक कि ग्रामीणों का सम्बन्ध शासक वर्ग से है। मेरे कहने का यह आशय कदापि नहीं कि राजनीतिक सुधारों के फेर में पड़े रह कर उनके सामाजिक सुधारों की तरफ ध्यान ही न दिया जाय। बिना सामाजिक उन्नति के तो ये ऊँचे उठ ही नहीं सकते। मेरा आशय यह है कि दोनों ही सुधार के कार्य एक साथ हों, पर पहले इनको इन कारिन्दों तथा अन्य शासक वर्ग के हौवे से कम से कम इतना अभय और निडर बना दिया

बेटियों का सतीत्व रिश्वत के रूप में लेकर अपनी पाशविक वृत्ति को चरितार्थ करते हैं, तो सुशील कुमार का हृदय हिल उठा। उन्हें केवल शिवपुरी के कृषकों की ही दशा का अनुभव था, जिन्हें सबसे बड़ा दुःख यही था कि फसल न होने पर भी मालगुजारी समय पर देनी पड़ती थी। लेकिन यहां के कृषकों की दशा देखकर सुशील की आंखें खुल गईं। उसे मालूम हुआ कि कितना जबर्दस्त कार्य-क्षेत्र उसके सामने है। जिम्मेदारी के ख़याल से एकबार सुशील सिहर उठा। लेकिन सुशील की कर्त्तव्यशीलता बड़ी जबर्दस्त थी। वह भी कमर कस कर इस अत्याचार से, इस अन्याय से लड़ने को तयार हो गया।

जमींदार दीनानाथ बाबू किसानों को मटमुर्दे, नालायक समझते थे, परन्तु वास्तव में संकरपुर के किसान बड़े राजभक्त, बड़े स्वामिभक्त थे। इतने सताये जाकर भी, इतने डंडे खाकर भी, सकरपुर के कृषक कहते थे कि दीनानाथ बाबू देवता पुरुष हैं। उन्हें तो केवल उनके आस पास रहने वाले व्यक्तियों ने बिगाड़ रखा है। ये व्यक्ति उन तक हमारी फरियाद पहुंचने ही नहीं देते। अगर हमारी फरियाद पहुंचे तो दीनानाथ बाबू अवश्य हमारा दुःख दूर करने में दत्तचित्त हों क्योंकि वे स्वभाव से ही दयालु हैं। वे तो हमारे मालिक हैं, मा बाप हैं, और हम उनके सेवक हैं, बच्चे हैं। उन्हें अधिकार है कि वे हमें मारें या रखें। लेकिन ये कारिन्दे रूपी पिशाच हमारे लिये असह्य हैं। ये हमारे लिये कुग्रह के समान हैं। गौरीपुर गांव के जमींदार विजयशंकर बाबू भी हमारे जमींदार बाबू के समान बड़े ही जमींदार हैं, लेकिन वे कारिन्दों के भरोसे सारा काम नहीं छोड़ते। पुत्रवत अपनी प्रजा की फरियादें सुनते हैं। अगर इसी प्रकार हमारे जमींदार भी प्रजा की फरियाद स्वयं सुनने लगें तो संकरपुर भी स्वर्ग हो जाय। बस, यही एक खामी है, नहीं तो दीनानाथ बाबू सरीखे लाखों में एक मिलते हैं।

संकरपुर के स्कूल-मास्टर साहब जितने वृद्ध थे, उतने ही अनुभवी भी थे। उन्होंने सुशील को बताया कि ये किसान बड़े मिलनसार होते हैं। जब हम इनमें मिलकर रहें, अपने आप को इनका विश्वास पात्र बनावें, तब इनके जौहर खुलते हैं। फिर ये ही मटमुर्दे किसान हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहते हैं। अगर ये किसान मिल कर रहते तो आज आप को और हमको ग्राम्य संगठन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यों तो ये भोले भाले जीव स्वभाव से ही मिल कर रहनेवाले हैं, पर शिक्षा की कमी और रूढ़ियों की बहुतायत के कारण ये मिल कर रह नहीं सकते। अजी, सच पूछो तो इनकी आपसी फूट का और एक जबर्दस्त कारण है। उसे चाहे आजकल की भाषा में राजनीतिक कहो, या कुछ मनुष्य रूपी पशुओं की नारकीय पाशविकता कहो। ये कारिन्दे तथा अन्य प्रभावशाली कहलाने वाले व्यक्ति इनमें परस्पर फूट डलवा देते हैं केवल अपनी पाशविक वृत्तियां चरितार्थ करने के लिये। अगर आप सच्चे दिल से इन कृषकों का भला चाहते हैं तो इनमें 'ऐक्य' का प्रचार कीजिये। यही भावना उत्पन्न हो जाने पर इनमें सच्चा संगठन हो जायगा।

संकरपुर के नामी पहलवान कंचनसिंह का अखाड़ा बड़ी सुन्दर जगह में बना हुआ था। उसके चारों ओर एक बड़ा-भारी अहाता तथा रहने योग्य कुछ मकान और एक सुन्दर बगीचा था। यहीं सुशील को ठहराया गया था। जगह बिल्कुल एकान्त में थी और इस काम के लायक थी। यद्यपि संकरपुर की अवस्था सुन कर सुशील अपनी बहुत बड़ी जिम्मेदारी का अनुभव करने लग गया था, परन्तु फिर भी कमला के कहे हुए ये शब्द वह न भूला था "यहां जमींदार बाबू के जो एक प्राइवेट सेक्रेटरी हैं, तुम उनका पता लगाना कि वह असल में कौन हैं। सुशील, उनकी ठीक वेही आंखे, वही चेहरा, वही चाल ढाल और सब कुछ वही है। केवल लम्बी और घनी दाढ़ी मूंछें उनके नहीं थी और चेहरे में भी थोड़ा बहुत फर्क है। पर मेरी आंखें ऐसी नहीं कि उन्हें पहचानने

जाय कि अपने समाज सुधार के लिये इन्हें अवसर और साहस मिले। बिना इनमें परस्पर ऐक्य स्थापित हुये समाज सुधार का काम अत्यन्त कठिन होगा; और यह एकता ये कारिन्दे अपनी कूट-नीति के कारण स्थापित होने नहीं देते। अतः सबसे जरूरी और प्रथम कोई काम अगर हमारे आगे है तो वह कारिन्दों तथा अन्य शासकवर्ग और ग्रामीणों के पारस्परिक सम्बन्ध में सुधार करना है। बिना जमींदार की सहानुभूति और सहायता प्राप्त किये कार्य्य यह अत्यन्त दुष्कर है। अतः हमें इस प्रकार कार्य करना पड़ेगा, जिसमें जमींदार हम लोगों को उनके मार्ग का रोड़ा न समझे। 'सांप मरे और लाठी न टूटे' इसी सिद्धांत के अनुसार कार्य करना पड़ेगा। मैं तो 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' के सिद्धान्त का पक्षपाती हूं। बिना कूटनीति के इन नर-पिशाचों से आप पार न पा सकेंगे। आप, मैं तथा अन्य दो चार गांव के प्रमुख व्यक्ति इकठ्ठे होकर अपने कार्यक्रम की रचना करेंगे। आप स्नान, भोजन इत्यादि जरूरी कार्यों से छुट्टी पा लीजिये, फिर हम सब यहीं बैठ कर अपने कार्यक्रम के विषय में विचार करेंगे।

स्नान, भोजन के पश्चात् सब लोग फिर उसी स्थान पर एकत्रित हुए। पहलवान कंचनसिंह, स्कूल के वयोवृद्ध मास्टर साहब, पटेल जनार्दन और पटवारी रामचन्द्र, कान्तिचन्द्र, सुशील तथा अन्य दो चार व्यक्ति ये ही सब वहां उपस्थित थे। सबसे पहले कान्तिचन्द्र बोले,

"आप सब अनुभवी और वयोवृद्ध सज्जन यहां उपस्थित हैं। क्या यह अच्छा न होगा कि आप सब अपने-अपने अनुभव कह सुनायें और फिर हम लोग अपने कार्यक्रम पर बिचार करें। ऐसा करने से कार्यक्रम स्थिर करने में बहुत सहूलियत होगी और आप सबके अनुभवों की जानकारी हो जाने से हम अधिक सुन्दर रचनात्मक कार्यक्रम स्थिर कर सकेंगे।"

सबसे पहले पहलवान कंचनसिंह जरा आगे खिसक कर बोले, "निःसन्देह यह सुंदर विचार है। लेकिन बाबूजी, हमारे अनुभव बड़े कडुवे हैं। हमारा स्वास्थ्य कितना गिर गया है और स्वास्थ्य गिर जाने से मानसिक पतन कितना अधिक हुआ है, यह कोई कहने की बात नहीं, अनुभव करने की बात है। यह सब हमारी शिक्षा का प्रभाव है। मद-सेवन आदि कुरीतियों का भी कम असर नहीं पड़ा है। आप सब लोगों को यह मालूम ही है कि मैं इस व्यायामशाला के संचालन के साथ-साथ वैद्य का कार्य भी किया करता हूँ। गरीबों में मुफ्त औषधि वितरण करता हूँ, हां, धनवानों से जरूर पैसा लेता हूँ। आज लगातार कई वर्षों से मैं यह कार्य करता रहा हूँ। अतः मेरा इस विषय का अनुभव आपके कार्यक्रम की रचना में शायद सहायता पहुंचावे। मधुपुर राज्य की तरफ से जहां एक हजार मनुष्यों की आबादी है, वहां एक-एक डाक्टर रखनेकी योजना है। इसी योजना के अनुसार बड़े-बड़े जमींदारों को भी डाक्टर रखना पड़ता है। हां, उसका आधा खर्चा जमींदारों को रियासत से मिल जाता है। हमारे यहां भी एक डाक्टर है। लेकिन हमारे दुर्भाग्य से वह मुसलमान है। धार्मिक अन्धविश्वास के कारण कितने ही ग्रामीण तो मुसलमान के हाथ की दवा लेने की अपेक्षा मर जाना अधिक पसन्द करते हैं। उधर डाक्टर साहब समझते हैं कि सकरपुर की जनता का रोग निवारण करने का एकमात्र अधिकार उन्हीं को है। अगर दूसरा कोई उपचार करने लगता है तो आप उसके जानी दुश्मन बन जाते हैं। बिचारे महादेवगिरी ने इन पटवारी रामचन्द्रजी के मामा का इलाज किया था। किसी का मरना जीना तो भगवान के हाथ है। महादेवगिरि के लाख प्रयत्न करने पर भी पटवारीजी के मामा चल बसे। बस उनका मरना था कि डाक्टर साहब ने महादेवगिरि पर मुकदमा दायर कर दिया। यह अभियोग लगाया गया कि बिना किसी अधिकार या सनद के अभियुक्त ने रोगी का इलाज किया और अभियुक्त का अपर्याप्त औषधिज्ञान तथा अनधिकार चेष्टा से ही रोगी के प्राण गये। अतः अभियुक्त को उचित

सजा देकर आइन्दः के लिये यह नजीर उपस्थित कर दी जाय कि कोई इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा न करे। बिचारे महादेवगिरि ने हजार प्रयत्न कर अदालत को यह सुझाने की असफल चेष्टा की कि औषधि-वितरण तथा रोगियों का इलाज करना उसका परम्परागत पेशा है। उसके पिता, दादा और परदादा सब यही कार्य करते रहे हैं। रोगी का मरना और जीना तो भगवान के हाथ की बात है। डाक्टर की तरह डिग्रीधारी व्यक्तियों से भी रोगी तो मरते ही हैं और शायद अधिक संख्या में मरते हैं। लेकिन बिना कोई सनद या सार्टि-फिकेट प्राप्त किये महादेवगिरि का इस विषय में कुछ बोलना भी अदालत को अनधिकार चेष्टा मालूम हुई। परिणाम यह हुआ कि महादेवगिरि को एक हजार रुपया जुरमाना या बदले में नौ महीने सपरिश्रम कारावास का दण्ड सुना दिया गया। बिचारे के पास एक हजार रुपये देने को कहां था? अतः नौ महीने कड़ी कैद की सजा भुगत कर, आज पन्द्रह दिन हुये, छूट कर आया है। इस सजा का फल यह हुआ कि और भी दो चार व्यक्ति जो इसी प्रकार परम्परागत आयुर्वे-दिक उपचार करते रहे हैं, अपना पेशा छोड़ बैठे। मैंने भी इस अनधिकार चेष्टा से लगभग हाथ खींच ही लिया है। उधर डाक्टर साहब का एकाधिपत्य हो गया है। फीस की मात्रा प्राइवेट रूप से बढ़ा दी गई है। हिन्दू रोगियों पर आपकी बड़ी वक्रदृष्टि रहती है। खूब निश्चयात्मक रूप से तो नहीं कह सकता पर ऐसा सुनने में आया है कि हिन्दू रोगियों से आप फीस भी कुछ अधिक मात्रा में लेते हैं। इधर आपके इलाज का यह हाल है कि आपकी दवा से अस्सी प्रतिशत की दशा में कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता। हां, चीराफाड़ी के मौके पर आपकी फुर्त्ती देखने काबिल है। चटपट आस्तीनें चढ़ा कर और सामने एक सफेद कपड़ा लटका कर चाकू और कैंची से काम लेना आपको खूब याद है। आप विश्वास तो न करेंगे पर मैं आप से सच कहता हूं कि इन डाक्टर साहब के आने के बाद ही यहां ये दो चार हाथ पैर कटे हुये मनुष्य दिखाई देने लगे हैं। पहले कटे हाथ पैर के यहां कोई भी मनुष्य नहीं थे। लेकिन एक मजेदार बात और सुन लीजिये। जब स्वयं डाक्टर साहब के कुनबे का कोई बीमार पड़ जाता है, तब उनकी घबड़ाहट देखने काबिल होती है। अभी पारसाल ही उनका नौ दस वर्ष का एक लड़का छत से गिर पड़ा था। पैर की एक हड्डी खिसक गई। अब डाक्टर साहब बड़े घबड़ाये। विवश होकर मालिश द्वारा हड्डी बैठाने के लिये उन्होंने मुझे बुलाया। मैंने उनसे कहा कि आपने जैसे राजाराम के लड़के के हाथ की हड्डी खिसक जाने से उसका हाथ काट डाला था, उसी प्रकार अपने बच्चे का पैर भी काट डालिये, मुझे यह अनधिकार चेष्टा करने को क्यों वृथा बुलाया है? अब तो डाक्टर साहब बड़े पशोपेश में पड़े। मेरी उन्होंने बड़ी मिन्नतें की और कहा कि आपको तो मालिश करने का पूरा अधिकार है क्योंकि आप पहलवान हैं और आपकी शारिरिक ताकत ही आपकी सनद है। मैंने दिल में कहा कि अपना मतलब पूरा करने को मनुष्य अपने पक्ष में बड़ी-बड़ी दलीलें पेश कर सकता है। फिर यह सोच कर कि अगर कुत्ता काट खाता है तो उसे पीछा नहीं काटा जाता, मैंने उनके लड़के की हड्डी बड़ी महनत से चार पांच दिन में बैठा दी। अधिक क्या कहूं? सक्षेप में यही समझ लीजिये कि यह डाक्टर बीमारी मिटाने वाला नहीं बीमारी फैलाने वाला है।"

अब वयोवृद्ध अनुभवी स्कूल मास्टर साहब सतर्क होकर कहने लगे, "मैं अपने अनुभव बीसियों बार आप लोगों से कह चुका हूं। आज भी सुशील कुमारजी को मैं बहुत कुछ कह चुका हूं। इस समय में केवल ग्रामीण शिक्षण पद्धति और उसके परिणाम के विषय में ही अपने अनुभव बतला-ऊंगा। अगर सच पूछो तो मेरा यही अनुभव सबसे जबर्दस्त है क्योंकि यह अनुभव प्राप्त करने में मैंने अपना इतना लम्बा

जीवन लगा दिया है। मेरे इस अनुभव से शायद आप लोगों के रचनात्मक कार्यक्रम में बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

आजकल ग्रामों में जो ये छोटे-छोटे स्कूल खुले हुये हैं, और खोलने के जो प्रयत्न हो रहे हैं, इससे लाभ होना तो दूर रहा बड़ी भारी हानि हो रही है। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि अगर मेरे विचार से इस शिक्षा से हानि हो रही है तो फिर मैं क्यों इस हानि फैलाने में आज तक जानबूझ कर योग देता रहा? इसका उत्तर यह है कि पेट भरने के लिये अन्य मार्ग न मिलने से मैं आज तक यह कार्य करता रहा। 'पेट पापी होता है', अतः मैं क्षम्य हू। हां, तो अब मैं आपको बताता हू कि कैसे इन ग्रामीण स्कूलों से हानि हो रही है। ग्रामीणों के लिये यह तो एक प्रकार से असम्भव है कि वे अपने पुत्रों को स्थानीय स्कूल की चौथी क्लास पास करने के बाद शहर में भेज कर हाईस्कूल या कालेज की शिक्षा दिलावें। अतः कालेज की शिक्षा से क्या हानि लाभ होते हैं, इस विषय पर कुछ कहने का यहां कोई प्रयोजन नहीं है। ग्रामीण स्कूलों में बहुधा चौथी क्लास तक पढ़ाई होती है और पढ़ने वाले होते हैं या तो कृषकों के लड़के या ग्रामीण बनियों के लड़के। पहले, दूसरे और तीसरे दरजे में कितने लड़के पढ़ते हैं, इस बात को जाने दीजिये। चौथे दरजे में हर साल करीब चार या पांच लड़के पास होते हैं। इसीसे ग्राम की शिक्षा की वास्तविक प्रगति का पता चलता है। चौथी क्लास पास करके ये ग्रामीण छोकरे क्या प्राप्त कर लेते हैं यह मुझे आज तक समझ में न आया। चौथे दरजे तक पढ़ कर इनकी दिमागी शक्तियां विकसित होती हैं, यह कहना अपने आप की हंसी उड़ाना है। यह शिक्षा किसानों के छोकरों के तो किसी काम नहीं आती। कुछ वर्षों में वे सब कुछ भूल जाते हैं और जरूरत पड़ने पर फिर अंगूठा चिपकाने को तैयार रहते हैं। अगर वे इस शिक्षा को उपयोग में लाना चाहें तो सबसे जबर्दस्त उपयोग यही होता है कि शहर आकर वे तोता मैना, सारंगा सदावृक्ष, देवर भौजाई आदि घासलेटी पुस्तकें ले आते हैं और ग्राम में उसका प्रचार कर स्वयं पतित होते हैं और दूसरों को पतित करते हैं। अब रहे बनियों के लड़के सो ये चौथे दरजे तक पढ़ कर भोले ग्रामीणों को ठगने में और भी चतुर बन जाते हैं या वही तोता लेकर पनघट पर जा पहुचते हैं। मतलब यह है कि इस प्रकार की शिक्षा से कोई लाभ नहीं होता। किसानों के लड़के अधिक निकम्मे और जाहिल बन जाते हैं, बनियों के लड़के अधिक ठग और उद्दण्ड हो जाते हैं। शुद्ध वातावरण पतित होने लगता है। शहर के रहनेवाले ग्रामसेवक चिल्लाते हैं कि मदरसा खोल दिया गया बड़ी-बड़ी कठिनाइयां झेल कर, फिर भी अशिक्षित, मूर्ख ग्रामीण अपने लड़कों को मदरसे में पढ़ने भेजते ही नहीं। भेजें क्या? जब वे देखते हैं कि उनके लड़के मदरसे में जाकर 'दुबिधा में दोनों गये, माया मिली न राम' वाली स्थिति में जा पड़ते हैं, तब अपने लड़कों को उन मदरसों में भेजने की मूर्खता क्यों करें? अब आप पूछेंगे कि तब क्या करना चाहिये। मेरा कहना यह है कि यह शिक्षा उस दशा में फलदायक हो सकती है, जब साथ में कुछ व्यवहारिक शिक्षा भी दी जाय। कृषकों के लड़कों को खेती-बाड़ी में उन्नति करने के उपाय बताये जांय। उन्नत बीज, उन्नत खाद और आधुनिक विज्ञान का उपयोग करना उन्हें बताया जाय। खेती-बाड़ी सम्बन्धी कुछ हिसाब उन्हें बताया जाय, तो कुछ उपयोग हो सकता है। सबसे अधिक आवश्यक तो यह है कि साथ में बच्चों को कुछ ऐसी धार्मिक शिक्षा दी जाय, जो उनके सामाजिक जीवन को ऊंचा उठाने में काम आय, जो उनकी सरलता को द्विगुणित करे।"

पटवारी रामचन्द्र खांस कर कहने लगे,

"मैं हूं तो वैश्य, जिन्हें आप अपनी बोलचाल की भाषा में बनिया कहते हैं, पर सच्ची बात कहने में अगर मुझे बनियों के विरुद्ध भी बोलना पड़े तो मुझे इसमें कोई संकोच नहीं

है। श्रम-विभाजन की नीति के अनुसार प्राचीन काल से रुपये का लेन-देन हम लोगों का कार्य रहा है। रुपये के निरन्तर संसर्ग में रहने के कारण ही शायद हम लोगों में स्वार्थपरता, छल-कपट और कायरता आदि दुर्गुण आ गये हैं। जो भी हो, मुझे तो आप लोगों को वर्त्तमान दशा का दिग्दर्शन कराना है। हमारा और कृषकों का सम्बन्ध इस समय बहुत कटु हो गया है, उस पर तुर्रा यह कि दोनों का काम एक दूसरे के बिना नहीं चलता। सम्बन्ध कटु हो जाने में अधिक दोष हम लोगों का है। स्वार्थपरता और लालच ने हम लोगों को अधिक ब्याज लेने के लिये उकसाया। किसानों को उनकी सामाजिक रूढ़ियों और जमींदारी अत्याचार के कारण रुपये की बहुत अधिक आवश्यकता हुई। उन्होंने अधिक सूद पर रुपया लेना आरम्भ किया। प्रकृति की अस्थिरता से जैसी चाहिये वैसी फसलें न हुई। वे रुपया न चुका सके। ब्याज अपनी चौबीस घण्टे प्रति दिन की दौड़ से बढ़ता ही गया। कृषक सदा के लिये ऋणी हो गये। सामाजिक रूढ़ियां और जमींदार का अत्याचार घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। कृषक अधिकाधिक पिसते चले गये। अन्त में अब वह समय आ पहुचा, जब वे गले तक ऋण में डूब गये हैं। बोने को पास में बीज तक नहीं। बीज है तो बैल नहीं। भरपेट खाना पाते हैं या नहीं, यह तो बात ही दूसरी है। साथ ही यह मत समझ लीजिये कि हम बनिये अच्छी दशा में हैं। नहीं, हमारी दशा भी हमारी ही भूलों के कारण बिगड़ गई। कितना ही रुपया डूब गया। परस्पर का सम्बन्ध कटु हो जाने से एक दूसरे का विश्वास नहीं रहा। अब जो रुपया पास में है, उसका उपयोग कैसे हो, यह एक समस्या खड़ी हो गई। लेन-देन करने का हृदय में इस अविश्वासपूर्ण और डांवाडोल परिस्थिति में साहस नहीं। जब रुपया कहीं उपयोग में नहीं आता तो हमको हमारा उदर पोषण मूलधन में से करना पड़ता है। इस प्रकार धीरे-धीरे हम भी अर्थहीन होते जा रहे हैं। अतः अब इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि परस्पर का सम्बन्ध सुधारा जाय। बनियों को उचित ब्याज पर रुपया देने के लिये समझाया जाय। कृषकों को ईमान्दारी के साथ रुपया चुकाने को समझाया जाय। मेरी राय में तो 'ऐक्य' ही सबसे बड़ी चीज है। सब बोहरों को एकत्रित कर एक सहकार संस्था कायम की जाय और बड़े व्यवस्थित और सुचारु रूप से रुपयों का देन लेन किया जाय। संस्था की नींव परस्पर की सदृइच्छा और विश्वास पर डाली जाय तो काम चल सकता है अन्यथा नहीं।"

पटेल जनार्दन बहुत नम्रतापूर्वक धीरे-धीरे कहने लगे,

"मैं आप सब लोगों की तरह बुद्धिमान और पढ़ा लिखा नहीं हूं। फिर भी आप लोगों की सत्संगति में रहने से अच्छे और बुरे का कुछ ज्ञान हो गया है। हम किसानों को इन जमींदार-कारिन्दों से कितना कष्ट मिलता है, इसकी कहानी आप सब लोग लगभग सुन ही चुके हैं। उनके अमानुषिक अत्याचारों की दर्दभरी कहानी सुना कर मैं आप लोगों का हृदय बार-बार नहीं दुखाना चाहता। मुझे तो केवल यह कहना है कि हमारी सामाजिक विकृत रूढ़ियां और हमारा मानसिक अधःपतन हम पर कारिन्दों के इस अत्याचार में सहायक होते हैं। हमारे उत्थान और संगठन के लिये हमारे सामाजिक जीवन को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करना कितना आवश्यक है, इसको समझाने की पर्याप्त क्षमता मुझ में नहीं है। यों तो हमारा सारा ही सामाजिक जीवन बाल-विवाह, बहु विवाह वृद्ध विवाह, मृतक भोज आदि अगणित कुरीतियों से विकृत हुआ पड़ा है, लेकिन हमारी कितनी अधिक अधोगति हो गई है, आपको इसका अनुमान कराने के लिये हमारे रोजमर्रा के जीवन के एकाध पहलुओं का विहगावलोकन करवा देता हूं। हम उस वर्ग के व्यक्ति हैं, जहां विद्या की कोई कीमत नहीं, परिश्रम ही सब कुछ है। हमारा घर वह घर है जहां पुरुष और स्त्री सबको परिश्रम करना पड़ता है।

बिना परिश्रम किसी को रोटी नहीं मिलती। हमारे सामाजिक जीवन में भावुकता और आदर्श को कोई स्थान नहीं है। भावुकता, आदर्श और विद्या से वंचित होकर हमारा पुरुषवर्ग स्त्रियों के सामाजिक अधिकार और उनकी इज्जत को भूल गया। जहां यह दशा उपस्थित हो जाती है वहां स्वाभाविकतया ही स्त्रियों पर अत्याचार होने लगते हैं। पुरुष स्त्री को अपने पैर की जूती के समान समझने लगा। परस्पर सद्भाव का बिल्कुल अभाव हो गया। स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार होने लगे। वे पशुओं की तरह पीटी जाने लगी। इस बीमारी को जड़ से नाश करनेका उपाय इस अशिक्षित समाज को कैसे सूझता? बीमारी को दबा रखने के लिये यह व्यवस्था कर दी गई कि अधिक अत्याचार होने पर स्त्री अपने पति का परित्याग कर किसी अन्य की पत्नी बन सकती है। इस व्यवस्था से यह रोग दबने की बजाय बढ़ गया। क्योंकि इस व्यवस्था से पुरुष को स्त्री के अधिकार और इज्जत का खयाल हो सो तो हुआ नहीं। हां, अलबत्ता यह हुआ कि स्त्री पुरुष में परस्पर जो थोड़ा बहुत विश्वास और सद्भावना थी, वह भी उठ गई। अब स्त्री केवल एक मजदूरनी और कामपिपासा शान्त करने की वस्तु रह गई। इतना अधिक अविश्वास बढ़ गया है कि अब स्त्रियों को केवल कांसी और पीतल के गहने पहनने को दिये जाते हैं। अगर सोना और चांदी का गहना कहीं मिलेगा तो पुरुषों के शरीर पर। उधर स्त्रियां इतनी बेपरवाह और उद्दण्ड हो गई हैं कि वे घरका काम भी मन लगा कर नहीं करतीं। करें कैसे? वे तो घर को घर नहीं केवल डेरा मात्र समझती हैं। आज यहां, तो कल किसी और जगह जा रहेंगी। ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर वे सतीत्व का मोल क्या समझ सकती हैं? इस पतित वातावरण के रहते हुये ये कारिन्दे तथा अन्य गुण्डे किस आसानी से हमारी बहू बेटियों का सतीत्व हरण करते हैं, यह सोच कर बाबूजी, छाती फटी जाती है। न पुरुष मन लगा कर कार्य करते हैं और न स्त्रियां। अब बताइये हमारा उत्थान हो तो कैसे? सुशील बाबू के समान कितने ही त्यागी नवयुवकों की आवश्यकता है जो जनता के उत्थान में अपने आप को अर्पण कर दें। परन्तु ऐसी त्यागशील देवियां भी चाहिये जो हमारे स्त्री समाज में घुस कर सेवा कार्य करें। उन्हें विश्वास, सद्भाव और सतीत्व का पाठ पढ़ावें। बिना स्त्रियों को सुधार का पाठ पढ़ाये हमारा सामाजिक उत्थान अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।"

और भी दो एक वयोवृद्ध सज्जनों ने अपने-अपने अनुभव बताये। इसके बाद कान्तिचन्द्र बोले, "निःसन्देह आप लोगों के अनुभव बड़े कटु किन्तु हमारे कार्य के लिये अमूल्य हैं। आज बहुत रात बीत गई है। कल फिर हम लोगों को यहीं एकत्रित होना होगा। भाई सुशीलकुमारजी को शिवपुरी का सगठन करने से ग्राम्य-सगठन का अच्छा अनुभव हो चुका है। मेरा उनसे प्रार्थना है कि वे आप सब लोगों के अनुभवों के आधार पर एक योजना बनावें। उस योजना पर हम सब कल विचार करेंगे और यथाशीघ्र कार्य आरम्भ कर देंगे। सुशीलकुमार भी थके हुए होंगे, अतः अब इन्हें विश्राम करने दिया जाय।"

एक-एक कर सब उपस्थित सज्जन अपने घर चले गये। किन्तु कान्तिचन्द्र को सुशील ने रोक लिया और अपने ही साथ रात्रि बिताने का अनुरोध किया।

जैन—साहित्य—चर्चा

भगवान महावीर और उनका समय

[श्री जुगलकिशोर मुख्तार]

शुद्धिशक्त्योः परा काष्ठां योऽवाप्य शान्तिमन्दिरः ।
देशयामास सद्धर्म्मं महावीरं नमामि तम् ॥

महावीर-परिचय

जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विदेह-(विहार-) देशस्थ कुण्डपुर * के राजा 'सिद्धार्थ' के पुत्र थे और माता 'प्रियकारिणी' के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, जिसका दूसरा नाम 'त्रिशला' भी था और जो वैशाली के राजा 'चेटक' की सुपुत्री + थी। आपके शुभ जन्म से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की तिथि पवित्र हुई और उसे महान् उत्सवों के लिये पर्वका सा गौरव प्राप्त हुआ। इस तिथि को जन्म समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था, जिसे कहीं-कहीं 'हस्तोत्तरा' (हस्त नक्षत्र है उत्तर में—अनन्तर—जिसके) इस नाम से भी उल्लेखित किया गया है, और सौम्य ग्रह अपने उच्चस्थान पर स्थित थे, जैसा कि श्रीपूज्यपादाचार्य के निम्न वाक्य से प्रकट है—

> चैत्र-सितपक्ष फाल्गुनि
> शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम् ।
> जज्ञे स्वोच्चस्थेषु
> ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥
>
> —निर्वाणभक्ति।

तेजःपुञ्ज भगवान् के गर्भ में आते ही सिद्धार्थ राजा तथा अन्य कुटुम्बी जनों की श्रीवृद्धि हुई—उनका यश, तेज, पराक्रम और वैभव बढ़ा माता की प्रतिभा चमक उठी, वह सहज ही में अनेक गूढ़ प्रश्नों का उत्तर देने लगी, और प्रजाजन भी उत्तरोत्तर सुख शान्ति का अधिक अनुभव करने लगे। इससे जन्मकाल में आपका सार्थक नाम 'श्रीवर्द्धमान' या 'वर्द्धमान रक्खा गया। साथ ही. वीर, महावीर, और सन्मति जैसे नामों की भी क्रमशः सृष्टि हुई, जो सब आपके उस

---

* श्वेताम्बर सम्प्रदाय के कुछ ग्रन्थों में 'क्षत्रियकुण्ड' ऐसा नामोल्लेख भी मिलता है जो संभवतः कुण्डपुर का एक मोहल्ला जान पड़ता है। अन्यथा, उसी सम्प्रदाय के दूसरे ग्रन्थों में कुण्डग्रामादि रूप से कुण्डपुर का साफ उल्लेख पाया जाता है। यथाः—

"हत्थुत्तराहि जाओ कुण्डग्गामे महावीरो ।" आ० नि० भा०

यह कुण्डपुर ही आजकल कुण्डलपुर कहा जाता है।

× कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में 'बहन' लिखा है।

समय प्रस्फुटित तथा उच्छलित होनेवाले गुणों पर ही एक आधार रखते हैं *।

महावीर के पिता 'णात' वंश के क्षत्रिय थे। 'णात' यह प्राकृत भाषा का शब्द है और 'नात' ऐसा दन्त्य नकार से भी लिखा जाता है। संस्कृत में इसका पर्याय रूप होता है 'ज्ञात'। इसीसे 'चारित्रभक्ति' में श्रीपूज्य-पादाचार्य ने "श्रीमज्ज्ञातकुलेन्दुना" पद के द्वारा महावीर भगवान को 'ज्ञात' वंश का चन्द्रमा लिखा है, और इसीसे महावीर 'णातपुत्त' अथवा 'ज्ञातपुत्र' भी कहलाते थे, जिसका बौद्धादि ग्रन्थों में भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार वंश के ऊपर नामों का उस समय चलन था—बुद्धदेव भी अपने वंश पर से 'शाक्यपुत्र' कहे जाते थे। अस्तु; इस 'नात' का ही बिगड़ कर अथवा लेखकों या पाठकों की नासमझी की वजह से बाद को 'नाथ' रूप हुआ जान पड़ता है। और इसीसे कुछ ग्रन्थों में महावीर को नाथवंशी लिखा हुआ मिलता है, जो ठीक नहीं है।

महावीर के बाल्यकाल की घटनाओंमें से दो घटनाएँ खास तौर से उल्लेख योग्य हैं—एक यह कि, संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों को तत्वार्थ-विषयक कोई भारी सन्देह उत्पन्न हो गया था, जन्म के कुछ दिन बाद ही जब उन्होंने आपको देखा तो आपके दर्शनमात्र से उनका वह सब सन्देह तत्काल दूर हो गया और इसलिये उन्होंने बड़ी भक्ति से आपका नाम 'सन्मति' रक्खा ×। दूसरी यह कि, एक दिन आप बहुत से राजकुमारों के साथ बनमें वृक्ष-क्रीड़ा कर रहे थे, इतने में वहाँ पर एक महाभयंकर और विशालकाय सर्प आ निकला और उस वृक्ष को ही मूल से लेकर स्कन्ध पर्यन्त वेढकर स्थित हो गया जिसपर आप चढ़े हुए थे। उसके विकराल रूप को देखकर दूसरे राजकुमार भयविह्वल हो गये और उसी दशा में वृक्षों पर से गिरकर अथवा कूदकर अपने-अपने घर को भाग गये। परन्तु आपके हृदय में ज़रा भी भय का संचार नहीं हुआ—आप बिलकुल निर्भयचित्त होकर उस काले नाग से ही क्रीड़ा करने लगे और आपने उस पर सवार होकर अपने बल तथा पराक्रम से उसे खूब ही घुमाया, फिराया तथा निर्मद कर दिया। उसी वक्त से आप लोक में महावीर' नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों * घटनाओं से यह स्पष्ट जाना जाता है कि महावीर में बाल्यकाल से ही बुद्धि और शक्ति का असाधारण विकाश हो रहा था और इस प्रकार की घटनाएँ उनके भावी असाधारण व्यक्तित्व को सूचित करती थीं। सो ठीक ही है—

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"।

तीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर महावीर संसार-देह-भोगों से पूर्णतया विरक्त हो गये, उन्हें अपने आत्मोत्कर्ष को साधने और अपना अन्तिम ध्येय प्राप्त करने की ही नहीं किन्तु संसार के जीवों को सन्मार्ग में लगाने अथवा उनकी सच्ची सेवा बजाने की एक विशेष लगन लगी—दीन दुखियों की पुकार उनके हृदय में घर कर गई—और इसलिये उन्होंने, अब और अधिक

---

* देखो, गुणभद्राचार्यकृत महापुराण का ७४ वां पर्व।

× संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मान्तरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः ॥
तत्संदेहगते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥
—महापुराण, पर्व ७४ वां।

* इनमें से पहली घटना का उल्लेख प्रायः दिगम्बर ग्रन्थों में और दूसरी का दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के ग्रन्थों में बहुलता से पाया जाता है।

समय तक गृहवास को उचित न समझ कर, जंगल का रास्ता लिया, संपूर्ण राज्य वैभव को ठुकरा दिया और इन्द्रिय-सुखों से मुख मोड़कर मंगसिर वदि १० मी को 'ज्ञात खंड' नामक वन में जिनदीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के समय आपने संपूर्ण परिग्रह का त्याग करके आकिंचन्य (अपरिग्रह) व्रत ग्रहण किया, अपने शरीर पर से वस्त्राभूषणों को उतार कर फेंक दिया + और केशों को क्लेश समान समझते हुए उनका भी लौंच कर डाला। अब आप देह से भी निर्ममत्व होकर नग्न रहते थे, सिंह की तरह निर्भय होकर जंगल-पहाड़ों में विचरते थे और रात दिन तपश्चरण ही तपश्चरण किया करते थे।

विशेष सिद्धि और विशेष लोकसेवा के लिये विशेष ही तपश्चरण की जरूरत होती है—तपश्चरण ही रोम रोम में रमे हुए आन्तरिक मल को छांट कर आत्मा को शुद्ध, साफ, समर्थ और कार्यक्षम बनाता है। इस लिये महावीर को बारह वर्षतक घोर तपश्चरण करना पड़ा खूब कड़ा योग साधना पड़ा तब कहीं जाकर आपकी शक्तियों का पूर्ण विकास हुआ। इस दुर्द्धर तपश्चरण की कुछ घटनाओं को मालूम करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु साथ ही आपके असाधारण धैर्य, अटल निश्चय, सुदृढ़ आत्म-विश्वास, अनुपम साहस और लोकोत्तर क्षमाशीलता को देखकर हृदय भक्ति से भर आता है और खुदबखुद (स्वयमेव) स्तुति करने में प्रवृत्त हो जाता है। अस्तु; मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति तो आपको दीक्षा लेने के बाद ही हो गई थी परन्तु केवल ज्ञान-ज्योति का उदय बारह वर्ष के उग्र तपश्चरण के बाद वैशाख सुदि १० मी को तीसरे पहर के समय उस वक्त हुआ जब कि आप जृम्भका ग्राम के निकट ऋजुकूला नदी के किनारे, शाल वृक्ष के नीचे एक शिला पर, षष्ठोपवास से युक्त हुए, क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ थे—आपने शुक्ल ध्यान लगा रक्खा था—और चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र के मध्य में स्थित था। जैसा कि श्रीपूज्यपादाचार्य के निम्न वाक्यों से प्रकट है:—

ग्राम-पुर खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषाकरान् प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानैर्द्वादशवर्षाण्यमरपूज्यः ॥ १० ॥
ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुमसंश्रिते शिला पट्टे।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृम्भकाग्रामे ॥११॥
वैशाखसितदशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चंद्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ १२ ॥
—निर्वाणभक्ति।

इस तरह घोर तपश्चरण तथा ध्यानाग्नि-द्वारा, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय नाम के घातिकर्म मल को दग्ध करके, महावीर भगवान ने जब अपने आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, और वीर्य नाम के स्वाभाविक गुणों का पूरा विकास अथवा उनका पूर्ण रूप से आविर्भाव कर लिया और आप अनुपम शुद्धि, शक्ति तथा शान्ति की पराकाष्ठा को पहुँच गये, अथवा यों कहिये कि आपको स्वात्मोपलब्धि रूपी सिद्धि की प्राप्ति हो गई, तब आपने सब प्रकार से समर्थ होकर ब्रह्मपथ का नेतृत्व ग्रहण किया और संसारी जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देने के

+ कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में इतना विशेष कथन पाया जाता है और वह संभवतः साम्प्रदायिक जान पड़ता है कि वस्त्राभूषणों को उतार डालने के बाद इन्द्र ने 'देवदूष्य' नाम का एक बहुमूल्य वस्त्र भगवान् के कन्धे पर डाल दिया था, जो १३ महीने तक पड़ा रहा। बाद को महावीर ने उसे भी त्याग दिया और वे पूर्ण रूप से नग्नदिगम्बर अथवा जिनकल्पी ही रहे।

लिये—उन्हें उनकी भूल सुझाने, बन्धनमुक्त करने, ऊपर उठाने और उनके दुःख मिटाने के लिये—अपना विहार प्रारम्भ किया। अथवा यों कहिये कि लोकहित-साधन का जो असाधारण विचार आपका वर्षों से चल रहा था और जिसका गहरा संस्कार जन्मजन्मान्तरों से आपके आत्मा में पड़ा हुआ था वह अब संपूर्ण रुकावटों के दूर हो जाने पर स्वतः कार्य में परिणत हो गया। अस्तु।

विहार करते हुए आप जिस स्थानपर पहुंचते थे और वहां आपके उपदेश के लिये जो महती सभा जुड़ती थी और जिसे जैनसाहित्य में 'समवसरण' नाम से उल्लेखित किया गया है उसकी एक खास विशेषता यह होती थी कि उसका द्वार सबके लिये मुक्त रहता था, कोई किसी के प्रवेश में बाधक नहीं होता था पशुपक्षी तक भी आकृष्ट होकर वहां पहुंच जाते थे, जाति-पाँति छूआछूत और ऊँचनीच का उस में कोई भेद नहीं था, सब मनुष्य एक ही मनुष्यजाति में परिगणित होते थे, और उक्त प्रकार के भेदभाव को भुला कर आपस में प्रेम के साथ हिल मिलकर बैठते और धर्मश्रवण करते थे मानों सब एक ही पिता की सतान हों। इस आदर्श से समवसरण में भगवान् महावीर की समता और उदारता मूर्तिमती नजर आती थी और वे लोग तो उसमें प्रवेश पाकर बेहद सतुष्ट होते थे जो समाज के अत्याचारों से पीड़ित थे, जिन्हें कभी धर्म-श्रवण का, अपने विकास का और उच्च संस्कृति को प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता था अथवा जो उसके अधिकारी ही नहीं समझे जाते थे। इसके सिवाय. समवसरण की भूमि में प्रवेश करते ही भगवान् महावीर के सामीप्य से जीवों का वैरभाव दूर हो जाता था, क्रूर जन्तु भी सौम्य बन जाते थे और उनका जाति-विरोध तक मिट जाता था। इसीसे सर्प को नकुल या मयूर के पास बैठने में कोई भय नहीं होता था, चूहा बिना किसी सकोच के बिल्ली का आलिंगन करता था, गौ और सिंही मिलकर एक ही नांद में जल पीती थी और मृग-शावक खुशी से सिंह-शावक के साथ खेलता था। यह सब महावीर के योग-बल का माहात्म्य था। उनके आत्मा में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी, इसलिये उनके संनिकट अथवा उनकी उपस्थिति में किसीका वैर स्थिर नहीं रह सकता था। पतञ्जलि ऋषि ने भी, अपने योगदर्शन में, योग के इस माहात्म्य को स्वीकार किया है; जैसा कि उसके निम्न सूत्र से प्रकट है :—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

जैनशास्त्रों में महावीर के विहार-समयादिक की कितनी ही विभूतियों का अतिशयों का वर्णन किया गया है परन्तु उन्हें यहाँ पर छोड़ा जाता है। क्योंकि स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है:—

देवागम- नभोयान- चामरादि- विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

— आप्तमिमांसा।

अर्थात्—देवों का आगमन, आकाश में गमन और चामरादिक (दिव्य चमर, छत्र सिंहासन, भामण्डलादिक) विभूतियों का अस्तित्व तो मायावियों में—इन्द्रजालियों में—भी पाया जाता है, इनके कारण हम आपको महान् नहीं मानते और न इनकी वजह से आप की कोई खास महत्ता या बड़ाई ही है।

भगवान् महावीर की महत्ता और बड़ाई तो उनके मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और अन्तराय नामक

कर्मों का नाश करके परम शान्ति को लिये हुए शुद्धि × तथा शक्ति की पराकाष्ठा को पहुंचने और ब्रह्मपथ का—अहिंसात्मक मोक्षमार्ग का—नेतृत्व ग्रहण करने में है—अथवा यों कहिये कि आत्मोद्धार के साथ-साथ लोक की सच्ची सेवा बजाने में है। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र के निम्न वाक्य से भी प्रकट है:—

त्वं शुद्धिशक्त्योरुदयस्य काष्ठां
तुलाव्यतीतां जिन शांतिरूपाम्।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता
महानितीयत् प्रतिवक्तुमीशाः ॥ ४ ॥
—युक्त्यनुशासन।

महावीर भगवान् ने लगातार तीस वर्षतक अनेक देश-देशान्तरों में विहार करके सन्मार्ग का उपदेश दिया, असंख्य प्राणियों के अज्ञानान्धकार को दूर करके उन्हें यथार्थ वस्तु-स्थिति का बोध कराया, तत्त्वार्थ को समझाया भूलें दूर कीं, भ्रम मिटाए, कमजोरियाँ हटाईं, भय भगाया, आत्म विश्वास बढ़ाया, कदाग्रह दूर किया, पाखण्डबल घटाया, मिथ्यात्व छुड़ाया, पतितों को उठाया, अन्याय-अत्याचार को रोका, हिंसा का विरोध किया, साम्यवाद को फैलाया और लोगों को स्वावलम्बन तथा संयम की शिक्षा देकर उन्हें आत्मोत्कर्ष के मार्ग पर लगाया। इस तरहपर आपने लोक का अनन्त उपकार किया है।

भगवान का यह विहार काल ही उनका तीर्थ-प्रवर्तनकाल है, और इस तीर्थ-प्रवर्तन की वजह से ही वे 'तीर्थंकर' कहलाते हैं। आपके विहार का पहला स्टेशन राजगृही के निकट विपुलाचल तथा वैभार पर्वतादि पंच पहाड़ियों का प्रदेश जान पड़ता है * और अन्तिम स्टेशन पावापुर का सुन्दर उद्यान है। राजगृही में उस वक्त राजा श्रेणिक राज्य करता था, जिसे बिम्बसार भी कहते हैं। उसने भगवान की परिषदों में—समवसरण सभाओं में—प्रधान भाग लिया है और उसके प्रश्नों पर बहुत से रहस्यों का उद्घाटन हुआ है—श्रेणिक की रानी चेलना भी राजा चेटक की पुत्री थी और इस लिये वह रिश्ते में महावीर की मातृस्वसा (मावसी) + होती थी। इस तरह महावीर का अनेक राज्यों के साथ में शारीरिक सम्बन्ध भी था। उनमें आपके धर्म का बहुत कुछ प्रचार हुआ और उसे अच्छा राजाश्रय मिला है।

विहार के समय महावीर के साथ कितने ही मुनि-आर्यिकाओं तथा श्रावक-श्राविकाओं का संघ रहता था। इस संघ के गणधरों की संख्या ग्यारह तक पहुंच गई थी और उनमें सबसे प्रधान गौतम स्वामी थे, जो 'इन्द्रभूति' नाम से भी प्रसिद्ध हैं और समवसरण में

× ज्ञानावरण-दर्शनावरण के अभाव से निर्मल ज्ञान दर्शन को आविर्भूतिका नाम 'शुद्धि' और अन्तराय कर्म के नाश से वीर्य लब्धि का होना 'शक्ति' है।

* आप जृम्भका ग्राम के ऋजुकूला तट से चलकर पहले इसी प्रदेश में आये हैं। इसीसे श्रीपूज्यपादाचार्य ने आपकी केवल ज्ञानोत्पत्ति के उस कथन के अनन्तर जो ऊपर दिया गया है आपके वैभार पर्वतपर आने की बात कही है और तभी से आपके तीस वर्ष के विहार की गणना की है। यथा:—

"अथ भगवान्सम्प्रापद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्ये।
चातुर्वर्ण्य-सुसंघ तत्राभूद् गौतमप्रभृति ॥१३॥
"दशविधनगाणामेकादशधोत्तर तथा धर्मं।
देशयमानो व्यहरत् त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१५॥
—निर्वाणभक्ति।

+ कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थानुसार 'मातुलजा'—मामूजाद बहन।

मुख्य गणधर का कार्य करते थे। ये एक बहुत बड़े ब्राह्मण विद्वान् थे जो महावीर को केवल ज्ञान की संप्राप्ति होने के पश्चात् उनसे अपने जीवादिक विषयों का सन्तोषजनक उत्तर पाकर उनके शिष्य बन गये थे और जिन्होंने अपने बहुत से शिष्यों के साथ भगवान से जिनदीक्षा ले ली थी। अस्तु।

तीस वर्ष के लम्बे विहार को समाप्त करते और कृतकृत्य होते हुए, भगवान महावीर जब पावापुर के एक सुन्दर उद्यान में पहुँचे, जो अनेक पद्मसरोवरों तथा नाना प्रकार के वृक्षसमूहों से मण्डित था, तब आप वहाँ कायोत्सर्ग से स्थित हो गये और आपने परम शुक्लध्यान के द्वारा योगनिरोध करके दग्धरज्जु-समान अवशिष्ट रहे कर्म रजको—अघातिचतुष्टय को भी अपने आत्मा से पृथक कर डाला, और इस तरह कार्तिक वदि अमावस्या के अन्त में, स्वाति नक्षत्र के समय, निर्वाण पदको प्राप्त करके आप सदा के लिये अजर, अमर तथा अक्षय सौख्य को प्राप्त हो गये *। इसीका नाम विदेहमुक्ति, आत्यन्तिक स्वात्मस्थिति, परिपूर्ण सिद्धावस्था अथवा निष्कल परमात्मपद की प्राप्ति है। भगवान महावीर ७२ वर्ष की अवस्था में अपने इस अन्तिम ध्येय को प्राप्त करके लोकाग्रवासी हुए। और आज उन्हींका तीर्थ प्रवर्त रहा है।

इस प्रकार भगवान महावीर का यह संक्षेप में सामान्य परिचय है, जिसमें प्रायः किसी को भी कोई खास विवाद नहीं है। भगवज्जीवनी की उभय सम्प्रदाय-सम्बन्धी कुछ विवादग्रस्त अथवा मतभेद वाली बातों को मैंने पहले से ही छोड़ दिया है। उनके लिये इस छोटे से निबन्ध में स्थान भी कहाँ हो सकता है? वे तो गहरे अनुसंधान को लिये हुए एक विस्तृत आलोचना-निबन्ध में अच्छे ऊहापोह अथवा विवेचन के साथ ही दिखलाई जाने के योग्य हैं। अस्तु।

* जैसा कि श्रीपूज्यपाद के निम्न वाक्य से प्रकट है:—

"पद्मवनदीर्घिकाकुलविविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥ १६ ॥
कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं सम्प्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥ १७ ॥"

—निर्वाणभक्ति।

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपंथ भी जड़ से हिल गये हैं---तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ? - जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या— पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?—मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये।—सम्पादक।]

संगठन

संगठन की बातें हम लोग बहुत करने लगे हैं ! कई कहते हैं 'संगठन' सुनते-सुनते हमारे कान पक गये हैं। क्या सचमुच यह हमारा सौभाग्य है ? हम कितने संगठित हैं ? हमारी संगठित शक्ति क्या है ? आँसू बहा कर हम पूछते हैं—हमारी संगठित शक्ति क्या है ? क्या कोई उत्तर देगा ?...यदि हम संगठित हैं तो केवल लड़ने में—विच्छेद में ! पार्टीबन्दी या साम्प्रदायिकता में है हमारे संगठन की इति श्री।

व्यक्ति के विवाह पर हम लड़ते हैं---बाल की खाल निकालने में हम लड़ते हैं, किसी की मैत्री हमारी अमैत्री का कारण होती है—आत्मतोष और सहन-शीलता के शिक्षक धर्म के पवित्र नाम पर हम लड़ते हैं। फिर प्रश्न होता है—संगठन ? जातियों के संगठन का इतिहास क्या आपने नहीं पढ़ा ? संगठित जीवन की शक्ति और स्वच्छता का क्या आपने कभी अनुभव नहीं किया ? मौका आता है, चला जाता है और आवेगा ? पर आपकी वही लड़ाई !!

विद्वानों के लिये सुवर्ण सुयोग

'अनन्त का गोरख धंधा'

उपरोक्त विषय पर शास्त्रीय विवेचन पूर्ण निबन्ध चाहिये !

१००) रु० का पारितोषिक

'अनन्त' के विषय में एक ऐसे विस्तृत विवेचनात्मक निबन्ध के लिखे जाने की जरूरत है जिससे अनन्त का गोरखधन्धा पूरी तौर से सुलझ जाय, नाना प्रकार के अनन्तों तथा अनन्त के शास्त्रीय प्रयोगों को सहज ही में समझा जा सके और जैनागमों अथवा प्राचीन जैन-ग्रन्थों के 'अनन्त' विषयक सम्पूर्ण कथनों की संगति बैठ जाय। जो विद्वान् महाशय इस गोरखधन्धे को सुलझाने के लिये उक्त प्रकार का प्रमाण सहित सर्वोत्तम निबन्ध लिखेंगे उन्हें रु० १००) नगद बतौर पारितोषिक अथवा सत्कार के भेंट किये जावेंगे।

निबन्ध हिन्दी में, फुलस्केप साइज के ८० पेज अथवा ८ फार्म से कम का न होना चाहिये, उसमें नाना प्रकार के अनेक उदाहरणों को ले करके 'अनन्त' के शास्त्रीय प्रयोगों का स्पष्टीकरण भी रहना चाहिये और वह कागज़ के एक तरफ़ हाशिया छोड़ कर लिखा जाना चाहिये तथा ३० सितम्बर सन् ३७ तक नीचे लिखे पते पर पहुँच जाना चाहिये। आगत निबन्धों की जांच कम से कम तीन विद्वानों की एक कमेटी द्वारा होगी और उसके निर्णय के अनुसार जो निबन्ध ठीक और सर्वोत्तम समझा जायगा उसी पर उक्त पारितोषिक दिया जायगा। पारितोषिक के बाद निबन्ध को छपाने आदि का अधिकार पारितोषिक - दाता को होगा। निबन्ध की कोई कापी जो एकबार जाँच कमेटी के सामने रक्खी जायगी वह लेखक को वापिस नहीं हो सकेगी।

जो विद्वान् इस अभीष्ट निबन्ध का लिखना प्रारम्भ करें उन्हें उसकी सूचना मुझे जरूर दे देनी चाहिये, जिससे यथावश्यकता उन्हें इस विषय में कोई जरूरी सूचनायें दी जा सकें। समाज के सिद्धान्त शास्त्रियों को इस निबन्ध के लिखने के लिये खास तौर से आगे आना चाहिये और इसे जैन शासन की सेवा का एक मुख्य अंग समझना चाहिये।

वीरसेवा मन्दिर,
सरसावा जि० सहारनपुर

जुगलकिशोर मुख्तार

नोट - समाज के दूसरे पत्र-सम्पादकों को भी यह विज्ञप्ति अपने-अपने पत्रों में देने की कृपा करनी चाहिये।

हमारी सभा संस्थाएँ

भुसावलमें श्री जैन युवक परिषद् का महोत्सव

भुसावल में ता० ३० तथा ३१ जनवरी को श्री० जैन साधु-सम्मेलन एवं आचार्य पद महोत्सव अनेक दूर-दूर के स्थानों से हजारों की संख्या में पधारे हुए जैन स्त्री-पुरुषों की उपस्थिति में बड़े ही धूमधाम एवं समारोह के साथ मनाया गया। जैन साधु एवं साध्वियां भी काफी संख्या में थीं। ता० ३० जनवरी को सवेरे ६॥ बजे से ७॥ बजे तक जैन नवयुवकों की प्रभात फेरियां निकाली गईं। इसके पश्चात् परमत्यागी मुनि युवाचार्य श्री आनन्द ऋषिजी तथा सेसमलजी महाराज आदि के "मनुष्य-जीवन की श्रेष्ठता एवं कर्त्तव्य" पर प्रभावशाली व्याख्यान हुए।

उसी दिन दोपहर को २ बजे से श्री० जैन युवक परिषद् युवक हृदय सम्राट् एवं परम उत्साही, राष्ट्रहितैषी मुनि श्री०धनचन्द्रजी महाराज की अध्यक्षता में बड़े उत्साह एवं समारोह के साथ हुई। ये वही मुनि हैं जो कि शुद्ध खद्दर-धारी—कांग्रेस भक्त हैं और जिन्होंने फैजपुर कांग्रेस में पधार कर अनेक उत्साही समाज सुधारक नेताओं से देश की समस्याओं पर वार्त्तालाप किया था। वहां पर कांग्रेस स्वागताध्यक्ष के कैम्प पर आपका ओजस्वी भाषण भी हुआ था। अतएव जैन साधु समुदाय में देश-प्रेम का आप अनुपम आदर्श रखते है—जो कि वास्तव में प्रशंसनीय है। भिन्न २ जैन पाठशालाओं के आये हुए विद्यार्थियों के मंगलाचरण एवं गायन के पश्चात् परिषद् का कार्यक्रम शुरू हुवा। सर्व श्री० बिहारीलालजी पंजाबी पंचकूला, सेठ सूरजमलजी धूलिया, श्री० चिम्मनसिंहजी लोढा ब्यावर, श्री० गेंदमलजी देशलहरा द्रुग (सी० पी०) श्री० रतनलालजी मुणोत लासल गांव आदि प्रसिद्ध समाज सुधारक महानुभावों के समाज सुधार एवं नवयुवकों के कर्त्तव्य आदि उपयोगी विषयों पर ओजस्वी भाषण हुए। इसके पश्चात् युवक परिषद् के अध्यक्ष युवक हृदय सम्राट् श्री० मुनि धनचन्द्रजी महाराज का समाज के धनिकों एवं पूंजिपतियों को जोरदार शब्दों में सम्बोधन करते हुए युवक कर्त्तव्य पर बड़ा ही प्रभावशाली एवं सारगर्भित भाषण हुए। मुनिजी ने कहा कि जब तक जैन समाज के पूंजीपति अपनी स्वार्थ-अन्धता नहीं त्यागेंगे वहां तक इस समाज का मुख उज्ज्वल होना बहुत मुश्किल है। इन पूंजीतिपतियों ने बड़े २ पदधारी मुनियों को भी अपने जाल में फँसा रक्खा है। जहाँ कहीं इन लोगों को कंठी डोरा, आदि पहने किसी शरीर को देखा तो चटही पदवीधारी जैन मुनि गरीबों से प्रेम करना छोड़ कर उनकी ओर सहज ही हर प्रकार से मान-सन्मान आदि करके खुश

करने की कोशिश करते हैं। प्रिय युवको ! अब आप लोगों को इस तरह की ज्यादतियां शीघ्र ही समाज से हटा देनी चाहिये। आप युवकों में बहादुरी का खून भरा हुवा है अतएव यह हमेशा याद रक्खो कि

प्रण 'ठाना संग्राम का, फिर कैसा विश्राम'।
पीछे तो हटना नहीं, सिंह उसी का नाम !!

वीरबहादुर ! इस वीर प्रतिज्ञा के उपासक बन कर मैदान में आ जावो और इन धनीमानी धर्मान्ध लोलुप जैन जनता के नेताओं को अपनी नेता गिरी से विदाई दो। और साफ २ शब्दों में कह दो कि अब आपकी हमें कोई जरूरत नहीं। इतने दिन हम आप लोगों की गुलामी करते रहे। बन्धुओ ! अपने बिछड़े हुए जैन भाइयों को अपने में मिलाने की भरसक कोशिश करो। और भगवान् महावीर के झण्डे के नीचे आकर अपना वीरता पूर्ण-बहादुरी का जीवन बना कर जैन जनता का पराक्रम फिर से एक बार दुनियां में चमका दो।" अध्यक्ष महोदय मुनि श्री का आधुनिक काल को लेकर वीरतापूर्ण भाषण इतना क्रान्ति जनक था कि बीच २ में उत्साही नवयुवकों के हियर २ के नारे लग रहे थे तथा हजारों की तादाद में जनता सुन कर मुग्ध हो गई एवं प्रशंसा युक्त शब्द हर एक के मुख से निकल रहे थे—आधुनिक जैन मुनियों में इनके राष्ट्रीय सुधारक विचार आदर्श, प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय थे।

श्री मारवाड़ी जैनमंडल, मदरास

उक्त मंडल की ओर से समस्त जैन संघों और संस्थाओं को यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि तिरुन्यान सम्बन्दर वाले आपत्तिपूर्ण ग्रामोफोन रिकार्डों के सम्बन्ध में गवर्नमेंट द्वारा निम्न आर्डर मिल गया है। इसके साथ ही समस्त संघ और संस्थाओं से भी हमें जो सहायता और सहयोग मिला था—उसके लिये हम उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं। सारे जैन-अजैन पत्र पत्रिकाओं को भी मंडल धन्यवाद देता है कि उसने इस आवश्यक विषय को उचित जोर के साथ प्रकाशित किया। सरकार के भी हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने जैन समाज की भावनाओं को उकसाने वाले इस मामले में तुरन्त हस्तक्षेप करने की कृपा की।

विनीत
देवीचन्द सागरमल जैन
मंत्री

उक्त विषय में मदरास गवर्नमेंट का निम्न आर्डर प्रकाशित हुआ है—

FORT. ST. GEORGE FEB. 9. 1937
G. O. No. 299 Public (General)

No. 3—In exercise of the powers conferred by section 19 of the Indian Press (Emergency Powers) Act 1931 (XXIII of 1931) The Governer In Council hereby declares to be forfeited to His Majesty all copies where-ever found of the book-let in *Tamil* entitled "Thirugnana Sambandar" written by one S. Narayana Ayyar of Madras and of the set of Four Double-Sided Cramaphone Records in tamil bearing Nos. N. 8422, N. 8423. N. 8424 and N. 8425, produced by his Masters' Voice Gramaphone Company, embodying the subject matter of the said booklet, ond all other documents containg *copies of translati-*

ons of or extracts from the said booklet or Gramaphone Records on the ground that they contain matter which tends to promote feelings of enmity and hatred between different classes of His Majesty's Subjects and are consquently of the nature described in Sub-Section (1) of Section 4 of the said act as emboided by section 16 of the Criminal Law Amendment Act, 1932 (XXIII of 1932.)

(Sd) BRACKENBURY,
Chief Secretary

डालमिया एजूकेशन फंड

श्रीयुत रामकृष्णजी डालमियां ने मारवाड़ी तथा अग्रवाल समाज के विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के लिये जो १०००) प्रतिमास चार वर्षों तक व्यय करने का निश्चय किया था उसके अनुसार कमिटी ने उक्त समाज के विद्यार्थियों से आवेदन पत्र मांगे थे। कमिटी ने निश्चय किया था कि इस रकम में से प्रायः १५०) प्रतिमास तो भारत में ही शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों के लिये खर्च किया जाय बाकी से तीन विद्यार्थियों को उच्च वैज्ञानिक शिक्षा पाने के लिये विदेशों में भेजा जाय। भारतीय विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों से जो आवेदनपत्र मिले उनमें से कमिटी आठ विद्यार्थियों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रायः १२५) मासिक की सहायता दे रही है। किन्तु विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करने वाले विद्यार्थियों से जो आवेदन पत्र मिले हैं, कमिटी की दृष्टि में वे पर्याप्त नहीं हैं।

इसलिये इसके द्वारा सूचना दी जाती है कि मारवाड़ी तथा अग्रवाल समाज के जो विद्यार्थी उच्च-वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शिक्षा पाने के लिये विदेश जाना चाहें वे ३१ मार्च १९३७ तक निम्नलिखित पते पर आवेदन करें। कमिटी ने इस समय तीन विद्यार्थियों को नीचे लिखे विषयों में से किसी भी विषय की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजने का निश्चय किया है। पेपर, सीमेण्ट, लेदर, रबर, तथा ऐक्चुअरी। केवल वे ही विद्यार्थी आवेदन करें जिन्होंने ऊंचे नम्बरों से किसी भी विश्वविद्यालय की बी० एस० सी० परीक्षा पास की हो। बी०, ए० पास विद्यार्थी भी आवेदन कर सकते हैं जिन्होंने इन्टरमीडियट परीक्षा साइन्स लेकर पास की हो। उपरोक्त विषयों के अलावा यदि कोई विद्यार्थी किसी अन्य विषय के लिये भी जाना चाहें तो कमिटी उस पर भी विचार कर सकती है। हवाई जहाज के चालक की शिक्षा प्राप्त करने के लिये इच्छुक विद्यार्थी जो भविष्य में पाइलट का कार्य्य ही करना चाहते हों आवेदन कर सकते हैं। छपे हुये आवेदन पत्र निम्नलिखित पते से मिलेंगे।

वेणीशंकर शर्म्मा
मंत्री
१२५ हरिसन रोड
कलकत्ता।

साहित्य-चर्चा

बीमा और वाणिज्य—

[सम्पादक—श्रीयुक्त एम० आर० बांसल बी० एस० सी०, प्रकाशक दी इन्स्योरेंस एंड सोसाइटी, ४६, स्ट्रांडरोड, कलकत्ता—वार्षिक मूल्य ३) मात्र]

हमारे जीवन की प्रश्न संकुलता के साथ ही आधुनिक व्यापार में भी कितनी ही नयी-नयी समस्याएँ बढ़ रही हैं जिनके कारण साधारण व्यक्ति के लिये आधुनिक व्यापार की गुत्थियाँ सुलझाना कठिन प्रतीत होता है। जहाँ हिन्दी में पत्रों की संख्या बढ़ रही है, ऐसे पत्रों की कमी अभी भी महसूस होती है जिसमें वर्तमान व्यापार व्यवसाय के विषय में वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। इसी कमी की पूर्ति के लिये बीमा और वाणिज्य का प्रकाशन शुरू हुआ है पत्र में कई व्यापारिक समीक्षाएँ पठनीय होती है—आशा है अनुभव और जन सहयोग के द्वारा भविष्य में पत्र खूब उपयोगी, सिद्ध होगा। इस प्रकाशन के लिये हम प्रकाशक को बधाई देते हैं।

पृष्ठ संख्या और गेटअप को देखते हुए वार्षिक मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है।

मारवाड़ी (द्वितीय वर्ष का नववर्षांक)—

[मारवाड़ी छात्र संघ का त्रैमासिक मुख पत्र। संपादक—श्रीयुक्त वेणीशंकर, शर्मा बी० ए०, बी० एल०, प्रकाशक—मारवाड़ी छात्र संघ, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य कलकत्ते के लिये १), बाहर के लिये २)]

अपनी धनाढ्यता और व्यापार-कुशलता के लिये मारवाड़ी समाज संसार में प्रसिद्ध है। व्यापारिक-कुशलता तो उनकी जन्मगत विशेषता है, इसलिये भारत के व्यापार-क्षेत्र में उनकी प्रतिष्ठा है; पर धनी और दानी होते हुए भी, मारवाड़ी भाई शिक्षा और साहित्य में बहुत पिछड़े हुए हैं। कहना न होगा जीवन की पूर्णता के लिये यह भी नितांत आवश्यक है। थोड़ा संतोष यह देख कर होता है कि अब हमारे मारवाड़ी समाज में शिक्षा और साहित्यिक पत्र और पुस्तकों की ओर भी रुचि होने लगी है।

हमारे सामने सहयोगी 'मारवाड़ी' के द्वितीय वर्ष का नववर्षांक है। पत्र की छपाई, सफाई और गेट-अप एकबारगी ही दृष्टि आकर्षित करते हैं। पत्र की वृहत् पृष्ठ संख्या त्रैमासिक पत्र के नववर्षांक के अनुरूप ही है। लेखों का चयन सुन्दर हुआ है—व्यापारिक समाज का पत्र होने के कारण अधिकांश लेख व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। हम सम्पादक और प्रकाशक दोनों को ऐसी सुन्दर सुपाठ्य सामग्री देने के लिये अनेक धन्यवाद देते हैं और चाहते हैं—पत्र दीर्घायु होकर समाज और राष्ट्र का सच्चा सेवक बने।

सम्पादकीय

सन् १६३७-३८ का बजट और सरकार की जनविरोधी अर्थनीति

गत ता० २७ फरवरी सन १६३७ को व्यवस्थापिका सभा में भारत सरकार का सन् १६३७-३८ का आयव्यय अनुमान-पत्र (बजट) उपस्थित किया गया था। इस बार भी व्यापारी और कृषक-वर्ग की आवश्यकताओं तथा अत्यन्त नाजुक हितों का सरकार ने अपनी संकीर्ण नीति द्वारा ऐसा जबर्दस्त उल्लंघन किया है, कि भारत की आशाएँ मिट ही सी गई हैं। इस प्रकार की बार-बार होनेवाली घटनाओं से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि सरकार अपना राज्यकीय उत्तरदायित्व केवल इतना ही समझती है कि किसी तरह से बजट की लीपापोती कर इंगलैंड और इङ्गलैंड-निवासियों के स्वार्थों का संरक्षण किसी तरह कर लिया जाय।

गत वर्ष का बजट पेश करते हुए अर्थसचिव ने इस अनुमान पर जनता को झूठा सन्तोष दिलाया था कि आगामी वर्ष में ६ लाख की बचत होगी! पर आज हमारे सामने १ करोड़ ६७ लाख का घाटा उपस्थित है—इस घाटे के कारणों में चुंगी, इनकमटैक्स तथा मुद्रा विभाग की घटी विशेष रूप से उल्लिखित की जाती है। चीनी और वस्त्र के आयात कर की घटती भी इसका कारण है, ऐसा कहा जाता है। आय-कर में ३८ लाख की घटी के मुख्य कारण दो कहे जाते हैं—एक तो यह कि चीनी के स्टाक में वृद्धि होने के कारण घटी हुई कीमतों से चीनी के व्यापारियों की आय कम हो गई और स्वभावतः आय-कर में भी फर्क पड़ गया। दूसरा यह कि ग्रामीणों के ऋण सम्बन्धी कई प्रकार के कानून बन जाने से महाजनों को व्याज-उपलब्धि में कमी हुई और अतः आय-कर भी कम मिला। यह तो हुआ गत वर्ष के घाटे का कच्चा लेखा।

इस वर्ष के नये बजट के विषय में भी दो बातों पर विशेष जोर दिया गया है। ३ करोड़ ४२ लाख के घाटे का अनुमान पहले से ही कर लिया गया है। सरकार की निगाह में बर्मा का पृथक्करण और नवविधान द्वारा मिलनेवाले प्रांतीय-स्वराज्य (Provincial Autonomy) के कारण उपरोक्त घाटा होगा, यह अनुमान है। इस घाट की पूर्ति के लिये सरकार ने १ करोड़ ८४ लाख रुपया रिजर्भ फंड से लेने की घोषणा की है और बाकी के १ करोड़ ५८ लाख का घाटा पूरा करने के लिये सरकार ने निम्न प्रस्ताव किये हैं जो शीघ्र काम में आना शुरू हो जायँगे।

(१) भारतीय कारखानों की चीनी पर एक्साइज

ड्यूटी १।–) से बढ़ा कर २) फी हंडरवेट (एक हंडरवेट लगभग ५६ सेर के होता है) कर दी जाय।

(२) चाँदी पर =) से बढ़ा कर ≡) प्रति औंस (१६ औंस आधा सेर के बराबर होता है) चुंगी कर दी जाय।

इन दो क्रियात्मक परिवर्तनों से सरकार का अनुमान है कि १६५ लाख की आय अधिक हो जायगी और संभावित घटी की पूर्ति हो सकेगी। संक्षेप में इस वर्ष के बजट की यही रूपरेखा है।

इस प्रकार के प्रघातपूर्ण बजट की समालोचना चारों ओर से की गई है—की जा रही है - और की जायगी। जनहित विरोधी इस वर्धमान कर का प्रतिवाद अवश्यम्भावी है। पर प्रश्न तो यह है कि क्या सरकार पर इस देशव्यापी विरोध का कुछ भी असर पड़ेगा ? सफेद हाथी के ऐशोआराम में क्या तनिक भी कमी की जायगी या की जा सकती है ? सरकार की अप्रत्यक्ष रूप से वैदेशिक अर्थनीति का हम वर्षों से पर्यालोचन कर रहे हैं—पर आज तक क्या कभी भी सरकार से हमें अपने हितों की रक्षा का उचित सहारा मिला है। आन्तरिक कीमतों की घटी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत की व्यापारिक दुरवस्था क्या आज की बात है ? कितनी बार हमने पुकार-पुकार कर कहा और कितनी बार हम निराश हुए। बड़ी लंबी कहानी है। जहां कहीं सरकार के 'अंग्रेजी' हितों का प्रश्न आ जाता है-- वहां पराधीन भारतीयों की भीषण से भीषण कठिनाइयों पर भी आंख मींच ली जाती है। सेना विभाग का खर्चा सदा से बढ़ता चला आ रहा है—कई देशों की अपेक्षा वह आवश्यकता की दृष्टि से बहुत बड़ा है—असहनीय है पर दिल की करुण चीत्कार किस तक पहुंचा आवे ? कृष्णकन्हैया कहां हैं--जिसके पास आज यह गोकुल अपनी फरियाद कर सके। इस पर लिखते हुए अपनी 'जीवन कहानी' में पंडित नेहरू कितने क्षुब्ध हो उठते हैं--"हमारी रक्षा के नाम पर स्थापित फ़ौजी सर्विसों का हाल तो और भी रहस्यमय और भयंकर है। हम न तो उनकी आलोचना कर सकते हैं, न उनके बारे में कुछ कह सकते हैं क्योंकि ऐसे मामलों में हम समझते ही क्या हैं ? हमारा काम तो सिर्फ मोटी-मोटी तनख्वाह चुकाते रहने का है-- बिना चूं-चपड़ किये।" क्या अनावश्यक कारणों से उत्पन्न हुआ बजट का यह घाटा रक्षा विभाग के ४५ करोड़ के अनावश्यक खर्चे में कमी कर नहीं पूरा किया जा सकता था ? पर यदि २०००) की तनख्वाह १८००) रह जाय तो अंग्रेजी सिपाही को भारत की रक्षा के लिये प्राण देने का क्या मजा आया ?

चीनी के व्यवसाय को संरक्षण मिले अभी थोड़े ही दिन हुए हैं - पर इस अल्पकाल में भी इस व्यापार ने जितनी उन्नति कर ली है वह मंगल-सूचक है। पर आश्चर्य है कि सरकार ने इस उन्नति का स्वागत न कर उल्टा गला घोंटने का प्रयास किया है। आर्थिक संरक्षण के इतिहास में यह बिल्कुल अजीब घटना है कि संरक्षित व्यवसाय को इतने अल्प समय में ही चौपट कर दिया जाय। स्वयं अर्थ-सचिव के शब्दों में इस करवृद्धि के कारण चीनी के कई छोटे-मोटे कारखाने बन्द हो जायंगे—और बड़े-बड़े कारखानों को आर्थिक कठिनाई महसूस होगी। बाजार की मंदी के कारण मिलवालों को पहले ही घाटा हो रहा था फिर यह सरकारी आक्रमण तो व्यापार को पीस देने का काम करेगा। मिलवाले शायद चीनी की कीमत बढ़ा कर इस विपत्ति का सामना करें—जिसके

कारण चीनी जैसा आवश्यक खाद्य भी गरीब जनता के लिये महंगा हो जायगा। पर जिनको अज्ञात स्वार्थ और बजट की ऊपरी लीपापोती से ही काम है, उनको इतनी दूरदर्शिता का ख्याल भी क्यों हो? स्वदेशी उद्योग-धंधों के प्रति अर्थ सचिव की नृशंसता की हद हो गई जब उसने यह कहा कि सन् १९३०-३१ में सरकार को शक्कर के आयात कर से १०-११ करोड़ की आमदनी होती थी—पर अब वह बन्द सी हो गई है। इस पर खेद प्रकट कर अर्थ मंत्री ने अपने अन्धे अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया है। दो आने से बढ़ा कर चांदी की चुंगी ≡) कर दी गई है। अज्ञात रूप से यह ऊँची विनिमय दर को नियंत्रित करने की अग्र योजना है। विनिमय दर की कमी की मांग पर ध्यान देना तो दूर चांदी का यह कर बढ़ाना सरकार की एक नई स्वार्थ पूर्ण चाल है।

नव वर्ष के बजट की सभी मदों की समीक्षा दी इंडियन चेम्बर ऑफ कामर्स ने इस प्रकार की है—"इंडियन चैम्बर ऑफ कामर्स की कमेटी प्रस्तावित बजट की आयोजनाओं पर, जिसमें करदाताओं को सुबिधा देने के बजाय प्रमुख भारतीय उद्योग-धंधों पर अतिरिक्त बोझ लाद दिया गया है, अत्यन्त निराशा प्रकट करती है। कमेटी अर्थ सचिव के भाषण के उस अंश के विषय में विशेष खेद प्रकट करती है जिसमें टैक्स देनेवालों के भार को कम करने अथवा भारतीय उद्योगों की सहायता करने की जगह केवल बजट को लीपापोती कर के बराबर किया गया है। अर्थसचिव ने संरक्षित, भारतीय उद्योग धंधों की प्रतियोगिता में बाहर से आनेवाली वस्तुओं के घटते हुए आयात कर की बारम्बार शिकायत की है। कमेटी को दुख है कि गाँवों की कर्ज समस्या के निवारण को आमदनी की कमी का कारण बताया जाता है बरन उसकी सम्मति में तो कृषकों की क्रय शक्ति को बढ़ाने से ही ग्रामोद्योग की उन्नति हो सकेगी। कमेटी की राय में बजट की सारी कमी केवल केन्द्रीय शासन में फेर-फार के कारण हुई है। जनता की मांग को ठुकरा कर फौजी खर्चे में लगातार कमी के बजाय बढ़ती ही हो रही है एवं भविष्य में और भी अधिक बढ़ने की आशंका है। कमेटी चीनी की एक्साइज ड्यूटी में बढ़ती का तीव्र विरोध करती है, क्योंकि वर्तमान नीची दरों को देखते हुए यह अतिरिक्त भार इस उद्योग के लिये विशेष अनिष्टकारी होगा। अर्थसचिव ने स्वयं ही चीनी की मीलों के कम नफे के कारण उनसे अदा होनेवाले इनकमटैक्स में कमी का उल्लेख किया है। कमेटी को यह जान कर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि चीनी के उद्योग की उन्नति का स्वागत करने के बजाय अर्थसचिव ने उसकी उपेक्षा की है। यह भावना आगामी टैरिफ बोर्ड के सन्मुख बद-गुमानी पैदा कर सकती है। कमेटी अर्थसचिव का यह विवाद कि बढ़ता हुआ निर्यात व्यापार सिद्ध करता है कि—"रुपये का मूल्य अधिक नहीं है"—कदापि स्वीकार नहीं कर सकती, बरन उसकी राय में करेंसी पालिसी का पुनर्विचार हो बिना लगातार स्वर्ण निर्यात हुए व्यापार-समतुलन स्थापित कर सकता है। कमेटी करेंसी पालिसी के पुनर्विचार के लिये एवं स्वर्ण निर्यात पर अधिक ड्यूटी लगा कर उसके द्वारा भीतरी साख बढ़ाने के लिये विशेष जोर देती है। कमेटी अर्थ-सचिव के प्रस्तावित बजट पर, जिसमें कि राष्ट्रीय आर्थिक उन्नति के साधारण तत्त्वों पर भी ध्यान नहीं दिया गया है, अत्यन्त शोक प्रकट करती है।"

बजट की समीक्षा का सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग तो यह है कि जनता के हित और

उन्नति के कार्य के लिये कुछ भी खर्च प्रस्तावित नहीं है। जब जनता करों के भार से लदी है—देश का अधिकांश जन-समूह अशिक्षा के अंधेरे में टकरा रहा है, व्यापार-व्यवसाय नष्ट हो रहे हैं, उस समय सरकार की उपरोक्त-बजट व्यवस्था क्या किसी भी देश के लिये शोभाप्रद हो सकती है ? पर हम तो सरकार की नीति के शिकार मूक पशु हैं।

टिप्पणियाँ

धर्म और समाज

जिस जीवन में धर्म और समाज दोनों की मधुर पूर्णता है वह प्राणी सुखी है; ऐसा कई लोग कहते हैं। पर ऐसा कहनेवाले और भी अधिक हैं कि धर्म और समाज दोनों का कर्त्तव्य-क्षेत्र अलग-अलग है। इस विवाद की दार्शनिक चर्चा हमें नहीं करनी है--न उसके लिये समय है। सक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि जीवन की पूर्णता का अनुभव करनेवाला हृदय—जिसका धर्म और समाज जीवन से परे नहीं है—इन दोनों की भेद-भित्ति को नहीं समझ सकता पर जो इतना भावुक नहीं है—जो जीवन में पूरा घुल नहीं चुका है, वह इन दोनों को अलग ही मानेगा। कोई भी दृष्टि स्वीकार करें—पर एक के नाम पर दूसरे का विरोध क्यों ?

जैनधर्म शाखा और सम्प्रदायों में बँटता-बँटता छिन्न विछिन्न हो चुका है और दुर्भाग्य तो यह है कि टूटने का वह दारुण चक्र अभी चल ही रहा है। एक-एक सम्प्रदाय का अपना एक-एक धर्म हो गया है और प्रत्येक सम्प्रदाय में कट्टर पंथियों की संख्या भी है। विश्व-जीवन के गगन-मंडल पर खुली हुई आँखें इस कट्टर धार्मिकता (?) की ओर देखते ही विकलित हो उठती है। धर्म के नाम पर रुधिर बहानेवाली यह कट्टरता जैसे अभी तक अपनी पूरी बलि नहीं ले चुकी है। पर क्या वह धर्म है जिसके नाम पर लड़ाई होती है ? क्या दुनिया में कोई ऐसा धर्म पनपा है या मौजूद है कि जो लड़ाई का आदेश देता है। फिर धर्म के नाम पर यह आये दिन का समाज-विद्रोह क्यों ? यह ज्वाला क्यों ? वास्तव में जिसके लिये लड़ाई होती है वह धर्म नहीं, धर्माभास है। अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सर्वधर्म सम्मेलन में कहा था कि "साम्प्रदायिकता की सीमा में जकड़ कर निष्प्राण हुआ धर्म केवल धर्म की ओट में सांसारिकता का ही कुत्सित रूप है।"

वास्तव में सामान्य सांसारिक व्यक्ति के जीवित होने के नाते विभिन्न सापेक्षिक सम्बन्ध हैं—और जिस प्रकार विभिन्न उद्देश्यों को लेकर उनका जन्म हुआ—उसी तरह विभिन्न तरीकों से उनका संचालन भी जरूरी हैं। वैसे समाज का जीवन मनुष्य के बहुत कुछ बाह्य से सम्बन्ध रखता है—और धर्म उसके अन्तर से। पर बाह्य और अन्तर के योग और सहयोग के बिना पूर्णता कैसी ?

इस समय यह आवश्यक है कि मनुष्य चाहे जो धर्म पाले पर मनुष्य होने के नाते वह समाज और मानवता के नाते दूसरे धर्म का विरोध या लड़ाई क्यों करे ? जहाँ सारे राष्ट्र और सारी मानवता का प्रश्न है वहाँ धर्मों में सहिष्णुता अवश्य चाहिये। धर्म में असहिष्णुता की कल्पना तो हो ही नहीं सकती। इसी असहिष्णुता और अमानवता के कारण विवेकशील व्यक्ति धर्म के नाम से चिढ़ता है।

अभी गत मास में ब्यावर में तेरापंथी संप्रदाय के पाट महोत्सव के अवसर पर ब्यावर के ओसवाल बंधुओं में जो मनमुटाव और सामाजिक बहिष्कार की परिस्थिति देखी, वह आंसू बहा कर देखी जा सकी। स्थानकवासी और तेरापंथी—दोनों जैन सम्प्रदायों में किसी मामूली घटना को लेकर इतनी पारस्परिक अशांति बढ़ गई कि ब्यावर के स्थानकवासियों ने तेरापंथियों के साथ बेटी-व्यवहार तक का बहिष्कार कर दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि सम्प्रदाय भावना ने मनुष्यत्व तक को ठुकरा दिया। हमें इसकी बहस नहीं कि किसका प्रथम दोष था पर जिसका भी दोष हो, हम तो उसी की निंदा करते हैं। कोई भी, जिसको सच्चे जैनत्व का मान है, अनेकान्त का अभिमान है, इस मनोवृत्ति का पोषण नहीं कर सकता। हमें इस घटना पर पक्ष-विपक्ष बना कर निर्णय नहीं करना है—हम तो भविष्य के लिये समाजके शुभचिन्तकों से अनुरोध करते हैं कि ऐसी परिस्थिति न उत्पन्न करें, यदि उत्पन्न हो जाय तो उसको मिटाने का प्रयास करना चाहिये।

इस घटना के सम्बन्ध में लिखते हुए हम कुछ शब्द पैम्फलेटबाजी के दुरुपयोगके विषय में कहते हैं। ब्यावर में पैम्फलेटों द्वारा यह साम्प्रदायिक अग्नि और भी ज्यादा भड़काई गई थी। हमें आश्चर्य है कि परमात्मा ने जिनको समझने का ज्ञान और लिखने की शक्ति दी है, वह भी ऐसे विषैले कांडों में भाग लेते हैं। कही सुनी बात कभी शांत भी हो जाती है—पर लिपिबद्ध हो जाने पर उसका प्रचार और स्थायित्व अधिक बढ़ जाता है। 'ब्यावर' में 'झलक' नामका कोई पाक्षिक निकलता है—उसने एक विशेषांक निकाल कर इस सामाजिक-द्वन्द्व में खूब योग दिया। हमें संदेह है कि ऐसे पत्रों से हमारे जीवन को रंचक भी तुष्टि मिलेगी। हम तो दिल से ऐसे साम्प्रदायिक पत्रों का विरोध करते हैं।

कलकत्ते में सर्व-धर्म सम्मेलन

१६ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध धर्म-ऋषि श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन और विचारों का जिन्होंने अनुशीलन किया है वे जानते हैं कि इस महान् ऋषि के जीवन में धर्मों का पारस्परिक विरोध मिट कर सत्य और समता का समुज्ज्वल उद्भावन हुआ था। एक सदी के पश्चात् उन्हीं की वर्षगांठ के उपलक्ष में कलकत्ते के नागरिकों ने गत सप्ताह में ता० १ मार्च से ८ तक एक सर्व धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया था—जिसमें विभिन्न प्रान्तों और विदेशों के प्रतिनिधि भी काफी संख्या में सम्मिलित हुए थे। कई समयानुकूल और सारगर्भित व्याख्यान हुए तथा उत्सव की शोभा दर्शनीय थी।

जैन धर्म के सिद्धान्तों पर माननीय श्री छोगमलजी चोपड़ा बी० ए० बी० एल० का भाषण हुआ था - जिसमें आपने जैन धर्म के सार्वभौमिक, सर्वमान्य, एवं उदार सिद्धातों का बोधगम्य रीति से प्रतिपादन करते हुए यह दिखलाया था कि जैन सिद्धान्तों पर आश्रित जीवन-प्रणाली कर्म का क्षय कर जीवन को मोक्ष प्राप्त कराती है।

ता० ७ को श्री तेरापंथी सभा, कलकत्ता ने सम्मेलन में आये हुए समस्त डेलीगेटों को प्रीतिभोज के लिये निमन्त्रित किया था—श्री राय बद्रीदासजी बहादुर के बगीचे में यह प्रीतिभोज बड़ी धूम से हुआ बतलाते हैं।

प्रान्तीय एसेम्बलियों के निर्वाचन में हमारा स्थान

आगामी पहली अप्रेल से जिस नवीन संघ-शासन का कार्य प्रारम्भ होगा, उसकी जरूरतों के अनुसार संगठित विभिन्न प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचनों की देश-व्यापी धूम रही। इस अवसर पर कांग्रेस को जो अपूर्व विजय प्राप्त हुई—वह इस बात की द्योतक है कि जनता के हृदय में उसकी सच्ची सेवाओं का गहरा अनुभव है। हमारे समाज के भी कई सज्जन कांग्रेस के टिकट पर ही विजयी हुए हैं। यह बात कई दफा कही जाती है कि ओसवाल समाज के सज्जन देश के सार्वजनिक और राजनैतिक क्षेत्र में अधिक भाग नहीं लेते, यह लक्षण अच्छा नहीं है। गत निर्वाचनों में हमारे समाज के जिन सज्जनों को सफलता मिली है— उनमें उल्लेखनीय ये हैं—

(१) श्री सेठ अचलसिंहजी, आगरा
(२) श्री दीपचंदजी गोठी, बेतूल
(३) श्री सुगनचंदजी लूणावत, धामनगांव
(४) श्री पुखराजजी कोचर, हिंगनघाट
(५) श्री राजमलजी ललवानी, जामनेर
(६) श्री पी० ए० नेमानी, नासिक
(७) श्री जमनालालजी चोपड़ा, रायपुर
(८) श्री खुशालचंदजी खजान्ची चांदूर
(९) श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
(१०) श्री भगवानजी खेमजी ओसवाल

हम उपरोक्त सज्जनों को तथा अन्य जो सज्जन सफल हुए हैं उन सब को बधाई देते हैं और आशा है कि वे अपने इन पदों पर रहते हुए राष्ट्र और समाज की सेवा पर कटिबद्ध रहेंगे।

बीमा कम्पनियों की बाढ़

भारतवर्ष के व्यापारिक क्षेत्र में आजकल बीमा कम्पनियों की बाढ़-सी आ गई है। आज से १० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में बीमा की कुल ६० कम्पनियां थीं— जिसकी जगह आज लगभग २०० कम्पनियां काम कर रही हैं। भारत में बीमा-व्यापार की प्रेरणा पाश्चात्य देशों से मिली थी—यह तो निर्विवाद है। शायद यही कारण है कि अभी तक भी भारत में विदेशी कम्पनियों को अधिक व्यापार मिलता है।

गत सप्ताह में कलकत्ते में भारतीय-बीमा कम्पनी कान्फरेन्स का चतुर्थ अधिवेशन बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायी सेठ वालचन्द हीराचन्द के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ था। आजकल एसेम्बली के सामने एक इन्स्योरेन्स बिल प्रस्तावित है जिसके अनुसार बीमा-सम्बन्धी एक्ट में बहुत कुछ सुधार होने की सम्भावना है। सेठ वालचन्द हीराचन्द ने इसी बिल के विषय में ज्ञातव्य और ध्यान देने लायक बातें बतलाई। इन्स्योरेन्स व्यापार की वर्त्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रख कर व्यापार-पटु सभापति ने कई महत्वपूर्ण अनुमतियाँ दी है—जिनमें निम्न मुख्यतः महत्वपूर्ण हैं—

(१) आगामी कुछ वर्षों के लिये कोई नई बीमा-कम्पनी—भारतीय या विदेशी—भारत में व्यापार न कर सके। इसका कारण यह है कि अभी ही भारत में जरूरत से ज्यादा बीमा-कम्पनियाँ मौजूद हैं।

(२) स्वदेशी व्यापार के हितों की दृष्टि से यह

आवश्यक है कि प्रस्तावित बिल में इस विषय का एक परिवर्त्तन कर दिया जाय कि कोई भारतीय और विशेष कर कोई भारतीय व्यवसायी उस कम्पनी में बीमा न करावे जो स्वदेशी न हो।

ये दोनों प्रस्ताव बहुत आवश्यक और समयानुकूल हैं।

अपनी बात

ता० १२—फरवरी, ३७ को अपने घर—जयपुर जाने का विचार था। पर एकाएक यह भी विचार हो गया कि, राजपूताने के दो-चार स्थानों में जाकर 'नवयुवक' का प्रचार किया जाय तथा उधर के युवक-मित्रों से सलाह-मसविरा भी किया जाय। इधर ता० १७ को ब्यावर में श्री तेरापन्थी सम्प्रदाय का पाट महोत्सव भी होनेवाला था। यह सोच कर कि इस मौके पर विभिन्न प्रान्तों के कई हजार स्त्री-पुरुष एकत्रित होते हैं सबसे पहले यहीं जाने का निश्चय किया। ब्यावर में ५ दिन ठहर कर 'नवयुवक' का प्रचार किया। धार्मिक महोत्सव का समय होने के कारण लोगों से अधिक बातचीत करने का मौका तो न मिल सका पर परम उत्साही निम्नलिखित मित्रों की सहायता से लगभग ६० ग्राहक बन गये।

१—श्री मालचन्दजी बोथरा, लाडनू

२ श्री तिलोकचन्दजी रामपुरिया बी० ए०, बी० एल०, कलकत्ता

३ श्री महताबचन्दजी खारैड़ 'विशारद', जयपुर

४—श्री भंवरचन्दजी बोथरा, ब्यावर

इन मित्रों की सहायता और परिश्रम के लिये मैं उनका आभार मानता हूं।

ब्यावर से मैं जोधपुर चला गया क्योंकि मेरे मित्र श्रीयुक्त मंगलमलजी महता का विशेष आग्रह था। श्रीयुक्त महता ने अपनी वार्षिक परीक्षा में केवल १०-११ दिन बाकी रहते हुए भी जितना सहयोग दिया—वह मैं कह नहीं सकता। साथ ही श्रीयुक्त कपूरचन्दजी मेहता बी० ए० और श्री कुशालसिंहजी कोठारी बी०काम० के भी पूर्ण सहयोग मिलने का परिणाम है कि केवल २ दिन के प्रयास में मैंने ४० ग्राहक बना लिये – तथा कई सज्जनों ने वादे कर लिये हैं। अतएव मैं उनको धन्यवाद देता हूं, वहां से अजमेर होता हुआ मैं जयपुर आ गया। जयपुर में भी भाई श्री महताबचन्दजी खारैड और श्री सौभाग्यमलजी श्रीश्रीमाल बी० ए० के सहयोग से २५-३० ग्राहक बनाये जा सके। कुल दौरे में लगभग १५० ग्राहक बनाये गये हैं। जिन सज्जनों ने ग्राहक बनने की कृपा की और जिन मित्रों ने अपने समय और शक्ति से 'नवयुवक' की सेवा की, उन सब के लिये मुझे कृतज्ञता प्रकाश करते हुए हर्ष है।

१०-१२ दिन के इस छोटे से भ्रमण में मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि हमारे समाज की धर्म और शिक्षा-विषयक अवस्था बड़ी निराशा पूर्ण है – पर हर्ष भी है कि अनेक जगह प्रभात की आशा-किरणें प्रकाशित हो रही हैं। सबसे बड़ी बात तो यह देखी कि समाज-सेवकों को अभी हमारे समाज में बड़ा कठिन मार्ग तय करना है। कहा जाता है कि अशिक्षा ही हमारी इस दयनीय दशा का कारण है - पर मेरा अनुभव है कि शिक्षित, यहां तक की ग्रेजुएट भी उस गुलाम-शिक्षा के उपासक मात्र हैं जिनके सामने अभी तक क्षण प्रतिक्षण बदलता हुए राष्ट्र और समाज के जीवन की पौ नहीं फटी है। समाज-सेवक को ऐसे शिक्षित एक भिखारी की कल्पना से देखते हैं पर क्या यह

स्वयं उनकी दयनीयता पर तरस नहीं है। अच्छे-अच्छे वकीलों का भी यह हाल देखा कि 'नवयुवक' जैसे राष्ट्र-प्रेमी जातीय पत्रों के लिये वर्ष में ३) का दान (दान शब्द प्रकृत रूप से इसके लिये उपयुक्त तो नहीं है) करने में अपने को घाटे और बेसमझी की प्रतिमूर्त्ति समझते हैं। पर ऐसे लोगों पर तरस खाना ही ठीक है।

अशिक्षा के नाम पर बहुत कुछ कहा जाता है और कहा भी जाना चाहिये, पर कोई-कोई अशिक्षित (आज की परिभाषा में हम उन्हें ऐसा कह सकते हैं) तो सचमुच समाज का इतना दर्द लिये बैठे हैं कि अवसर पाते ही वह वेदना का विस्फोट हो उठता है। ऐसे लोगों से मिलकर आशा हरी हो उठती है कि सच्चे परिश्रमी कार्यकर्ता अभी भी बहुत कुछ कर सकते हैं। समाज की संस्था के लिये वे बड़ा त्याग कर सकते हैं—पर संस्था के जीवन के लिये दौड़ भाग करना हमारे शिक्षित ग्रेजुएट अपनी महत्वाकांक्षा के स्वप्न-संसार में अपनी शिक्षा का अपमान समझते हैं। क्या यही हमारे भविष्य के सूत्रधार होंगे ? मैं थोड़ा विषयान्तर हो गया हूं—पर इन अनुभवों का सम्बन्ध इस दौरे से था अतः इनका यहाँ लिखा जाना प्रसंग-प्रतिकूल न होगा। केवल इतना और कि इस प्रकार की परिस्थिति में उमंग भरे हृदयवाला युवक भी एक बार सहम उठता है।

(भँवरमल सिंघी)

Reg. No. C 1668.

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, [illegible] पा.. स्ट्रीट में मुद्रित एवं भंवरचन्द बोथरा द्वारा
२८ स्ट्रैण्ड [illegible] से प्रकाशित।

वर्ष ७ संख्या १२

एप्रिल १९३७

नहीं कषाय उपशांतता, नहीं अंतर्वैराग्य ।
सरलपणुं न मध्यस्थता, ए मतार्थी दुर्भाग्य ॥

जिसकी क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषाएँ नहीं घटी हैं—मन्द नहीं पड़ी हैं, जिसके अन्तरंग में वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ है, जिसके आत्मा में गुण ग्रहण करने—रूप सरलता नहीं है, और इसी प्रकार जिसकी दृष्टि सत्यासत्य की तुलना करने के लिये पक्षपात रहित नहीं है, वह मत-पक्षपाती जीव बड़ा ही अभागी है । अर्थात् उसका भाग्य ऐसा नहीं है जो जन्म-जरा-मरण का नाश करनेवाले मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर सके ।

—श्रीमद् राजचन्द्र ।

वार्षिक मूल्य ३)

एक प्रति का ।=)

सम्पादक:— { विजयसिंह नाहर, बी० ए०
भंवरमल सिंघी, बी० ए०, साहित्यरत्न

श्रीयुक्त सर सिरेमलजी बाफणा
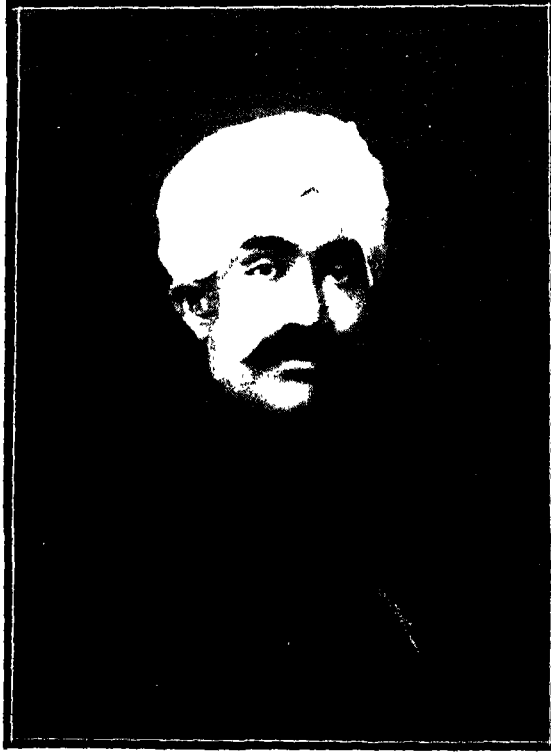
श्रीयुत बाफणा साहब केवल ओसवाल समाज में ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। बी० एस-सी०, एल-एल० बी० की उपाधि प्राप्त कर आपने अपनी तीव्र योग्यता, सतत कार्यकुशलता एवं अविश्रान्त परिश्रम से जिस प्रकार इन्दोर राज्य के प्रधान मंत्री का पद प्राप्त किया है, वह उदाहरणीय है। भारतीय शासन-नायकों में श्रीयुत बाफणा का स्थान बड़ा आदरयुक्त है। गत वर्ष आप भारत सरकार की ओर से जेनेवा में 'लेबर कान्फ्रेंस' में भेजे गये थे। आपकी महान प्रतिभा पर प्रसन्न होकर ही इन्दोर नरेश ने आपको अनेक उपाधियां बख्शी हैं। राज्यकीय उत्तरदायित्व के साथ साथ श्रीयुत बाफणाजी स्वाध्यायी विद्वान् भी हैं। हमारी हार्दिक मनोकामना है कि आप देश और समाज की सेवा में भी उत्तरोत्तर आगे बढ़ें।

ओसवाल नवयुवक

"सत्यान्नाऽस्ति परो धर्मः"

वर्ष ७] एप्रिल, १९३७ [संख्या १२

प्रश्नोत्तर

[श्री भँवरमल सिंघी]

ज्ञान-व्योम की झिरमिर झिरमिर में जब मेरी स्नेह कोकिला कूजती है—कूजती है और प्रेम का तत्व चिरन्तन-ज्योति में भरा बता कर पंख फड़फड़ाती है, उस समय तू मेरे पास क्यों नहीं आता ?

—"मेरा आना तो अपना आना है, ज्ञान पंखों की फड़फड़ाहट नहीं चाहिये।"

इस अ-कवि हृदय की मूक आह पर रीझ कर, तूने मेरी विहान-भैरवी को इस तरह ठुकरा दिया—स्वाति-प्रेमी पपीहा जिस तरह लबालब भरे जलाशय को ?

—"यह आह ही असली स्नेह-रागिनी का स्वर-संचय है, इसमें प्रेमाभिमान की भैरवी नहीं है।"

पुजारी की रंग-बिरंगी, पीताम्बरी पूजा तुझे आकृष्ट न कर सकी—आकृष्ट न कर सकी वह संगीत-पूजा की महफिल ?

—"यह तो भक्ति का व्यापार है—चिरस्नेह—मलय संसर्गित रागिनी तो निद्रित है।"

मेरी इस दीर्घ-पिपासा पर कुछ भी तो दया हो ! कृषक की डब-डबाई हुई आँखों के इस रोदन में हो क्या है ?

—"इस ज्योति-विलसित रोदन में उसका जीवन समाया है ! उस प्रेमाश्रु की ज्योति तो श्रद्धापूर्ण साधना की दीप-शिखा है।"

धर्म का सच्चा स्वरूप-'सत्यं, शिवं, सुन्दरं'

[विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

[गत मास के प्रथम सप्ताह में श्री रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में कलकत्ते में सर्व-धर्म-सम्मेलन हुआ था। उसमें सभापति के पद से श्री रवि बाबू ने धर्म की वास्तविकता पर जो भाषण दिया था, वह कई दृष्टियों से मनमोहक है। इस भाषण में उनकी विशिष्ट अनुभवपूर्ण विचारशक्ति के साथ उनकी मुग्धकारी काव्याभिव्यक्ति का जो सुन्दर सम्मिलन हुआ है वह अत्यन्त आल्हादकारी है।

आज धर्म के स्वरूप पर रूढ़ियों और अविवेक का इतना घना परदा पड़ गया है, कि उसकी ओट में अनन्त, असीम सत्य की दीर्घ ज्योति कलुषित हो रही है। आज धर्म के नाम पर कट्टर साम्प्रदायिकता की अग्नि धधक रही है! यह स्थिति भयंकर है। इस प्रश्न पर कविवर के विचार पठनीय हैं। भाषण की मूल भाषा अंगरेजी है। हम पाठकों के सामने यह अनुवाद उपस्थित करते हैं, आशा है वे इसका पूर्ण लाभ लेंगे। —सम्पादक]

मुझे आप से न कोई नई बात कहनी है, न किसी गूढ़ तथ्य का विवेचन करना है। मैं तो केवल एक कवि हूं और उस नाते मुझे जीवन और जगत् से प्रेम है। किन्तु प्रेम द्वारा जो एक अन्तर्दृष्टि मिलती है, उसके कारण शायद मेरा यह कहना अनुचित न हो कि कभी-कभी मेरे हृदय में मानव जाति की मूक भावनाओं का अनुराग उदय हुआ है, और उसकी 'अनन्त' की दबी हुई आकाँक्षा का अनुभव भी मुझे हुआ है। मुझे प्रतीति है कि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जिनको सांसारिक आमोद-प्रमोद के जेलखाने में उत्पन्न होकर कभी उस जेल की अनुभूति का सौभाग्य नहीं मिलता, जो इस बात से अनभिज्ञ हैं कि उनके नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद ऐसी अदृश्य भित्तियाँ खड़ी कर देते हैं जो न केवल उनकी स्वच्छन्दता का ही बध करती है, किन्तु जिनके कारण उनकी आकांक्षा का भी लोप हो जाता है।

जीवन की स्वच्छन्दता का अनुमान इसी से किया जाता है कि हमको अपने जीवन में असीम और अनन्त की कितनी परितृप्ति हुई। एक तंग कमरे में, चाहे जीवन को सुखमय बनाने वाले सभी उपादान उपलब्ध हों, अनन्त और अप्राप्त के प्रति हमारी जिज्ञासा का अन्त नहीं हो सकता। क्या बाह्य संसार में और क्या अपनी अनुभूतिमय भावनाओं के जगत् मे हम अनन्त के लिये छटपटाते रहते हैं।

पूर्णता का आदर्श

किन्तु असीम का अधिक निकट का दर्शन तो हमारी घनीभूत चेतनता मे प्राप्त होता है जिसको हम तभी पा सकते हैं जब हम पूर्णता के किसी भी आदर्श के अन्तिम महत्व का अनुभव कर सकें— जब कि हमको अपने जीवन के किसी तथ्य की उपलब्धि में उस अपरिमित सत्य का ज्ञान हो जाय जो उसको स्वर्गीय आनन्द प्रदान करती है। और मानव के मन में

सदा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की अपरिमित भूख लगी रहती है।

मानव–इतिहास इस बात का प्रमाण है कि अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य असीम और अनन्त की अपनी-अपनी परिभाषा के अनुसार उस चिरन्तन सत्य की खोज में लगा रहा है— और बराबर उसके जीवन के आदर्श बदलते रहे, पर अन्तिम परायण उसने आज तक स्वीकार न की। अनेक प्रयोगों के बाद मनुष्य ने इस तथ्य की अनुभूति कर ली है कि जीवन की पूर्णता का अर्थ केवल जीवनकाल की वृद्धि से नहीं है—बल्कि जीवन की पूर्णता का अर्थ तो अनन्त सौंदर्य की ब्रह्मानंदमयी अनुभूति में है।

सत्यं, शिवं, सुन्दरं का साम्राज्य

जीवन के अनेकरूपी तथ्यों से अधिक गहन और विशाल जो एक चिर सत्य है, उसकी चिर शिवता और सुन्दरता की भावना प्राप्त कर चुकने पर हम बिल्कुल एक दूसरे ही वातावरण में आ गये हैं जो चर जगत् के जीवन लोक से भिन्न है। लेकिन हमको इस ऊँचे साम्राज्य की कुञ्जी प्राप्त किये अभी अधिक दिन नहीं हुए हैं। अनंतकाल से मानव का हृदय एक ऐसे परम सत्य की अज्ञात अनुभूति कर रहा है, जिसमें भौतिक जीवन की अपेक्षा उसका अधिक विश्वास और श्रद्धा है। इस सत्य का केवल धूमिल प्रकाश ही उसके भौतिक जीवन में प्रसारित होता है। इसी श्रद्धा के बल पर मनुष्य कभी-कभी उस चिर सत्य, सुन्दर और शिव की प्राप्ति के लिये मृत्यु – अर्थात् अपने भौतिक जीवन के अवसान से भी अभिसार करने को उद्यत हो जाता है। इस बात से यह प्रकट होता है कि जीवन स्वातंत्र्य और उस अनंत के लोक में अपने को मिटा देने की निर्मोहता की मनुष्य के हृदय में बड़ी गहरी प्रेरणा होती है—जिसमें मिलकर वह अपने को उस सत्य के निकट पहुँचा हुआ समझता है—जो विशुद्ध प्रेम की भावना के साथ उसको विश्वात्मा की समक्षता प्राप्त करा देता है।

आत्म-प्रवंचित मानव

वह दुखपूर्ण घटना हमारे इतिहास में कई बार दिखाई देती है जब कि शक्ति का प्रेम, जो वास्तव में स्व–मोह है, मनुष्य के धार्मिक जीवन पर अधिकार कर लेता है क्योंकि उस अवस्था में जिस साधन द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा को स्वतंत्र कर सकता है वही स्वयं उस स्वतंत्रता का शत्रु हो जाता है। सब प्रकार के बन्धनों में, उन बन्धनों का, जिन पर धार्मिकता का आवरण चढ़ जाता है, टूटना बहुत मुश्किल है और सब प्रकार के बंदी-गृहों में, सबसे भयानक वे शृंखलाएं हैं जिनके द्वारा मनुष्य की आत्मा अहंकार से पुष्ट आत्म प्रवंचना द्वारा निर्मुक्त बना रखी है।

निष्कपट रूप से जो स्वार्थ की साधना की जाती है, उसकी खुलावट में उसी प्रकार रक्षा का साधन है – जिस प्रकार ऐसी जगह पर पड़ा हुआ मल का ढेर जहाँ धूप और हवा के लिये पूरी खुली जगह है। जब साम्प्रदायिकता की सीमाओं में जकड़ कर धर्म निष्प्राण हो जाता है, उस समय अपनी सर्वोत्तम भावना को नष्ट कर मनुष्य निर्लज्जता से अपने को महान प्रमाणित करने की धृष्टता करता है वह धृष्टता धर्म की ओट में केवल सांसारिकता का नग्न स्वरूप है। भौतिक स्वार्थों पर आश्रित सांसारिकता भी इतनी बुरी तरह हृदय को संकीर्ण नहीं बनाती जितना धर्म की ओट में छिपा हुआ मनुष्य का नार्कीय स्वरूप।

अब मैं इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूं कि वह आध्यात्मिक सत्य क्या है जिसकी प्राप्ति के लिये संसार के समस्त धर्मों की उद्भावना हुई।

सांध्य गगन का अति शांत और गंभीर सौन्दर्य हमको दिखलाई देता है, यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि इन नक्षत्ररूपी धधकते हुए अग्निकुण्डों से ही दुर्दमनीय भीषणता के साथ एक दूसरे के प्रति संघर्षात्मक विस्फोट होते हैं। किन्तु 'ईश वश्यम् इदं सर्वं'—इन सारी घटनाओं में एकता और समता की एक ही रहस्यात्मक भावना का प्रसार हुआ है जो बराबर विद्रोहात्मक अंशों को उस एकता में परिवर्तित करती है—जिसमें उत्पादन की शक्ति है—जो अत्यन्त विरोधीतत्वों में से भी अकथनीय शांति और सौन्दर्य का विकास करती है।

और यही महान् समता, यही सर्वकालीन 'हां'—यही परम सत्य है जो समय और स्थान के अन्धकार पूर्ण गह्वरों पर सेतु-बन्धन करता है, विरोध में एकता उत्पन्न करता है, अस्थिरता के स्थान पर पूर्ण समतुलित स्थिरता का न्यायोग करता है। इसी सर्वव्याप्त रहस्य को हम अध्यात्म का पूर्ण स्वरूप मानते हैं। इसी परम सत्य के मानवीय स्वरूप को संसार के विभिन्न महात्माओं ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है और अपने अनुगामियों के सामने विभिन्न धर्मों के नाम से इस अक्षय सत्य का स्वरूप प्रदर्शन किया है। सभी धर्मों का उद्देश्य शांति और नेकी है, सभी इस तथ्य के वाहक हैं कि मनुष्य के व्यवहार में सौन्दर्य हो, उसके चरित्र में नैतिक बल हो, और सभी समताओं में विशिष्ट महत्वाकांक्षा और विशिष्ट सफलता हो।

विवेकशून्य आदतें

किन्तु जब ये सभी धर्म अपने पवित्र उद्गम स्थल से दूर हो जाते हैं, उनमें प्रारम्भिक प्रगतिशील स्फूर्त्ति नहीं रहती, तथा धर्मान्धता और अहमन्यता पनपने लगती है, और वे धर्म यांत्रिक क्रियाओं की तरह खोखले विवेकशून्य क्रियाकाण्ड का स्वरूप ले लेते हैं और उनके आध्यात्मिक विवेक और प्रेरणा पर साम्प्रदायिकता का परदा पड़ जाता है, वे सिद्धांतों की हठ द्वारा ऐसे बाधक हो जाते हैं कि हमारे सामने समानानुभूति वाली मानवता की एकता के दर्शन नहीं होते हमारी प्रगति के मार्ग में वे अपने अविवेक और कट्टरता के द्वारा अवरोध पहुंचाते हैं। आखिरकार सभ्य जगत् को विवश होकर अपनी शिक्षा को धार्मिक कट्टरपंथियों के प्राणघातक प्रभाव से दूर रखना पड़ता है। आध्यात्मिक पवित्रता के आवरण में छिपी हुई इस धार्मिक कट्टरता के कारण ईश्वर के नामपर अधिक कलंक का आरोपण हुआ है बनिस्पत स्पष्टवादी नास्तिक वादियों के।

इसका कारण स्पष्ट है। जिस धर्म का आवरण पहन कर साम्प्रदायिकता चलती है, उसी धर्म को यह एक अति-भक्षक राक्षस की तरह भक्षण कर जाती है—धर्म की असली भावना को वह अन्दर ही अन्दर इस तरह चूस लेती है कि शीघ्र ही उसका पता नहीं चलता। धर्म की मरी चमड़ी को वह अपने आवरण के काम में लाती है—जिसमें वह अपनी अपवित्र युद्धेच्छा, साम्प्रदायिक गुरुडमवाद, और दूसरों के धर्मों के तत्वों की विषम घृणावृत्ति का पोषण करती है।

जब किसी खास धर्म की साम्प्रदायिक मान्यताओं के पुजारियों से यह पूछा जाय कि उन्होंने अपने भाइयों के साथ ऐसा अमानुषी व्यवहार क्यों किया जिससे

समस्त मानवता की भावना पर व्याघात पहुंचा है तो वे दृष्टि-व्यामोह करने के लिये तुरन्त अपने कुछ ऐसे शास्त्रों का उद्धरण करने लगते हैं—जो प्रेम, न्याय, पवित्रता और मनुष्य की ईश्वरीयांशिकता की शिक्षा देते है। यह देख कर हँसी आती है कि वे इस बात को भूल जाते है कि वे उद्धरण स्वयं उनके दिमाग की दोषपूर्ण प्रवृत्तियों की खिल्ली उड़ाते है। अपने धम की रक्षा करते हुए वे एक ओर तो प्राचीन काल में उत्पन्न हुए बाह्य क्रियाकाण्ड को मूठ-मूठ सर्वकालीन महत्ता देकर धर्म पर कायिक जड़वाद का आक्रमण होने देते है और दूसरी ओर नैतिक न्यायान्याय से परे जन्म या समानता की घटना पर आश्रित अपने विशेषाधिकारों द्वारा प्राप्त अपनी ही ईश्वर पूजा को सत्य कहकर वे मानसिक भौतिकता का व्यामोह होने देते है। केवल एक ही धम का ऐसा पतन नहीं है बल्कि न्यूनाधिक रूप मे सभी धर्मों का यह हाल है। जिनके कुत्सित कार्यों का इतिहास भाइयों के रुधिर से लिखा है और उन पर लदी हुई अशिष्टताओं की उस इतिहास पर छाप लगी है।

आत्मा की मुक्ति

मानव इतिहास के अनुशीलन द्वारा यह बात प्रकट हो गई है कि वही धर्म जिनका उद्देश्य आत्मा की मुक्ति का मार्ग बताना था, मनुष्य की स्वातन्त्र्य मूलक भावनाओं का विच्छेद करनेवाले सिद्ध हुए। जिस सत्य की उद्भावना मनुष्य जाति को नैतिक और भौतिक क्षेत्रों में पशुत्व के अन्धकारपूर्ण प्रदेश से निकाल कर उन्नति की ओर अग्रसर करने को हुई थी, वह अयोग्य हाथों में पड़ कर दुख का कारण हो गई। हम देखते हैं कि इसी धर्मान्धता के कारण हमारा ज्ञान अन्धा हो गया है—और भावनाओं का लोप हो गया। इसमें हमारी शिक्षा-संस्कृति की किसी और निर्बलता का दोष नहीं है। यह तो बिल्कुल ऐसी ही बात है जैसे विज्ञान द्वारा प्रतिपादित सत्य का उपयोग यदि अनुचित कार्यों के लिये किया जाय, तो हम उसकी विध्वंशकारिता से डरने लगते हैं। मानव ने बड़े दुख के साथ इस बात का अनुभव किया है कि सभ्यता की महान् से महान कृतियाँ विकृत हो जाती है, धर्म के अभिभावक पडे, और पादरी भी सर्वनाशकारी आक्रमण करनेवाली तामसी शक्तियों, तथा दासत्व की शृङ्खलाएँ बांधने में योग देते हैं। नृशंस शक्ति की इस प्राणघातक प्रगति में विज्ञान का सहयोग देख कर तो मानव दहल ही जाता है।

किसी सम्प्रदाय में जन्म लेकर अथवा उसके अनुयायी होकर जब हम यह समझ लेते हैं कि हमने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है, तो यह सोच कर हमारे हृदय को पूर्ण शान्ति मिलती है कि अब ईश्वर के विषय में अधिक चिन्तन की आवश्यकता नहीं। फिर तो केवल इस बात की जरूरत रहती है, कि ईश्वर के विषय में जिन लोगों की तात्त्विक धारणाएँ सौभाग्य या दुर्भाग्य से हमारे विपरीत हैं उनके सिर तोड़ने को तैयार रहें। साम्प्रदायिक रूप में अपने ईश्वर की यह धारणा मान कर हम समस्त वास्तविक जगत् में अनन्त का आश्चर्य मिटा कर केवल अपने ही अपने को देखते हैं। जीवन में ईश्वरत्त्व का सच्चा स्वरूप भूलकर जब हम केवल ईश्वर के नाम में अन्धविश्वास रखते हैं, तभी यह बुराई सभव होती है।

किसी भी सम्प्रदाय विशेष का पवित्र महात्मा इस बात को लेकर गर्व करता है कि उसको ईश्वर की ज्योति-प्राप्त है। भक्त का हृदय इस लिये कोमल है कि उसके जीवन और आत्मा पर ईश्वर का स्नेहाधिकार है।

जिस वस्तु पर हमारा अधिकार हो, वह अवश्य हमसे छोटी होनी चाहिये, इसलिये कट्टर सम्प्रदायपंथी इस गुप्त विश्वास का पोषण करता है कि ईश्वर उसके और उसके अनुयायियों के लिये ही निर्मित वस्तु है। इसी तरह से अति प्राचीन मनुष्य जातियों का भी यह विश्वास है कि उनके पूजा-पाठ तथा उत्सव-महोत्सव देवों को खुश करने में बहुत उपयोगी है।

आत्मा का बन्दीगृह

इस प्रकार प्रत्येक धर्म जो आत्मा की मुक्ति का उद्देश्य लेकर प्रारम्भ होता है, एक विशाल बन्दीगृह बन जाता है। धर्म-स्थापक के त्याग और निवृत्ति पर आश्रित होकर उदय हुआ धर्म धीरे-धीरे उसके पंडे पुजारियों के हाथों में पड़ कर प्रवृत्तिमय संस्था का स्वरूप धारण कर लेता है। जो विश्व-धर्म का दावा करता है वही वाद-प्रतिवाद का मुख्य केन्द्र हो जाता है। अवरुद्ध-गति से बहती हुई नदी की धारा की तरह मानव की शुद्ध भावना कई तरह के सड़े हुए विचार-रूपी वृक्षों से रुकती है, और उसकी धारा कई छोटे-छोटे छिछले तालाबों में विभाजित हो जाती है जिनसे केवल विकारोत्पादक कोहरा उत्पन्न होता है। ऐसी धार्मिक भावना केवल रूढ़िबद्ध यांत्रिक भावना है जिसमें धर्मान्धता ही है, आध्यात्मिकता का नाम भी नहीं जिसका कारण यह है कि—निर्बल मस्तिष्कों पर धर्म के नाम से अविवेक के भूत का कब्जा हो जाता है।

सत्य-दर्शन

रामकृष्ण परमहंस जैसे महात्मा सत्य का असली स्वरूप पहचानते हैं अनन्त रूपों में दीखती हुई वास्तविकता को पहचानने की उनमें शक्ति है, लेकिन उनके साधारण अनुगामी विरोधी धर्मादेश और साधनों का सम्मिलन करने में असमर्थ हैं। धर्म में अनन्त सत्य का दर्शन कर मुक्त होने के बदले, उनकी भीरु कल्पना को कट्टरता और दबा लेती है, तथा पण्डित और पादरियों के हाथों उसकी ऐसी छीछालेदर होती है कि प्रारम्भकर्त्ता को उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

पूर्ण सत्य की खोज

यदि सचमुच आप सत्य के पुजारी हैं, तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि पूर्ण सत्य की खोज कीजिये, अनन्त सौन्दर्यमयी सत्य को ढूंढ़ने की चेष्टा कीजिये। रूढ़ियों के दृढ़ जालों में फंसे हुए छूंछ धार्मिक प्रतीकों के फेर में पड़ कर सन्तुष्ट न होइये। महात्माओं की आध्यात्मिक उच्चता के उस शुद्ध स्वरूप का हमें सत्कार करना चाहिये जो सब धर्मों के महात्माओं में समानरूप से प्रस्थापित है; जिसकी प्रेरणा से वे मनुष्य को व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक और सामाजिक अहमत्व से मुक्त करने की आकांक्षा करते हैं, परन्तु जहाँ रूढ़ियों का दौरदौरा है, जहाँ धर्म आपस में एक दूसरे के सिद्धान्तों और अधिकारों पर कुठाराघात करते हैं। उस भूमि की ओर विवेकशील मनुष्य का लक्ष्य नहीं होना चाहिये।

मेरा उद्देश्य समस्त मानव-समाज के लिये पूजा के एक सामान्य आदर्श की प्रतिष्ठापना करना नहीं है। अक्सर कट्टर साम्प्रदायिकता के नाम पर मानव-समाज के बीच छोटी-छोटी बातों को लेकर, और कभी-कभी अकारण भी जो लोग बड़े-बड़े उपद्रव रचा करते हैं, उन्हें यह याद दिलाना ठीक होगा कि काव्य की तरह धर्म भी भावना मात्र नहीं है, वह अभिव्यक्ति है। ईश्वर की आत्माभिव्यक्ति सृष्टि की अनेक रूपता में निहित है, और अनन्त के प्रति हमारी भावना की

अभिव्यक्ति भी अविश्रान्त, अमर व्यक्तित्व की अनेकरूपता में होनी चाहिये। जब कोई धर्म समस्त मानव-समाज पर अपने सिद्धान्तों की धाक जमाना चाहता है तो वह अपने उच्चासन से गिर जाता है। उसमें अत्याचार की भावना व्याप्त हो जाती है और उसका स्वरूप साम्राज्यवाद से मिलता-जुलता हो जाता है। यही कारण है कि आज दुनिया के अधिक देशों में धार्मिक मामलों से फासिस्टवाद की नृशंसता मनुष्य की भावनाओं को कुचल रही है।

अपने ही धर्म को सर्वकालीन और सार्वभौमिक सत्य कहने की प्रवृत्ति उन्हीं लोगों में होती है जिन पर साम्प्रदायिकता का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका है। यह सुन कर उनको कष्ट होता है कि अपने स्नेह—वितरण में ईश्वर उदार है—और मनुष्य के साथ उसकी सन्देश-प्रणाली इतिहास की किसी तंग गली में ही समाप्त नहीं हो जाती। यदि कभी संसार में साम्प्रदायिक कट्टरता की बड़ी भीषण बाढ़ आ जाय तो जनता को धार्मिक कोलाहल से बचाने के लिये ईश्वर दूसरा नूह उत्पन्न करेगा।

मैं आपको इस उपेक्षित तथ्य पर ले आना चाहता हूं कि मानव स्वभाव की मूल वृत्तियों में ही धर्म का सच्चा स्वरूप निहित है और इसलिये धर्म की परीक्षा भी इन्हीं वृत्तियों के आधार पर की जानी चाहिये। जहां धर्म इस आवश्यकता का उल्लंघन कर विवेक का गला घोंटने लगता है, वहां वह अपना औचित्य नष्ट करता है। मध्यकालीन भारत के महान् रहस्यवादी कवि कबीरदास के निम्न शब्दों के साथ मैं यह विवेचन समाप्त करता हूं—"रत्न तो धूल में छिपा है और हम सब उसको ढूंढ़ते हैं; कोई पूर्व में, कोई पश्चिम में; कोई जल में, कोई पत्थरों में; पर कबीरदास तो उसके सत्यस्वरूप का मंगल गान करते हैं—और उसको अपने हृदय के अंचल में समेट रखता है।"

अनुवादक—श्री भँवरमल सिंघी

युवक

[श्री होमवती देवी]

> इस लेख की लेखिका हिन्दी की उदीयमान लब्धप्रतिष्ठ कवियत्री और लेखिका हैं। आपकी रचनाएँ "विशाल भारत" इत्यादि पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। इनके भाव प्रौढ़ और भाषा ललित है। विदेशी शिक्षा-प्रणाली के कारण आजकल हमारे देश में युवक और युवतियों का जीवन जिस प्रकार विलासिता और अकर्मण्यता की ओर बढ़ रहा है, वह दर्दनाक है। इस लेख में श्रीमती होमवती देवी जी ने इसी समस्या पर प्रकाश डाला है। —सम्पादक।

न जाने कितनी आशा, कितना माधुर्य, कितना विश्वास और कितनी उमंग इस तीन अक्षर के नाम "युवक" में भरी हुई है ? जननी सोचती है, मेरे हृदय के रस द्वारा सींचा गया अङ्कुर पनप गया, लहलहा उठा, अब वह अबोध नहीं; सब कुछ समझता है। अब मैं निराशा, दुख, और उद्विग्नता को हृदय से निकाल फेंकूँगी, अब तो आशा, उत्साह और आनन्द से दिन बीतेंगे। तब मैं उसकी चिन्ता करती थी; अब वह हमारी चिन्ता करेगा। पिता सोचता है पुत्र युवक हो गया, उसकी नसों में-प्रत्येक नाड़ी में नया रक्त लहरा रहा है; मेरी जितनी शक्ति क्षीण हो चुकी है यह उसकी पूर्ति करेगा। मुझे अब किसका डर ? मेरा युवक पुत्र मेरे माथे का बहुत कुछ भार हल्का कर देगा। पत्नी सोचती है -- मेरा वीर पति हँसता-खिलता और प्रसन्न चित्त जब घर में आयेगा तब गृहकार्य-सम्बन्धी उत्पन्न हुई समस्त क्लान्ति क्षण भर में काफूर हो जायेगी। इन्हीं से तो मेरा मान है, यही तो मेरी मर्यादा के स्तम्भ हैं, स्वर्ग का सुख भी इन पर न्योछावर है। बहिन... वह नन्हीं बालिका युवक भाई को देख कर फूली नहीं समाती भला किसमें इतना साहस है जो उसकी ओर कठोर दृष्टि से ताक भी ले ? उसका युवक भाई कठोरता से देखनेवाले की आँखें न निकाल लेगा; उसका रक्त ही तो पी जायेगा। किन्तु किन्तु वास्तव में क्या यह सारी उमंगें—समस्त कल्पनाएँ पूरी उतर जाती हैं ? इस पर विश्वास कैसे हो ? जब हम अपने गृह-जीवन में समस्त आकांक्षाओं के केन्द्र अपने युवकों के भाव, उनका व्यवहार, उनके जीवन में बढ़ती हुई विलासिता और हृदय को कुचल देनेवाले अभिमान तथा विरक्ति को उनके स्वभाव में पाते हैं तब हृदय तिलमिला उठता है, आशाएँ चूर-चूर हो जाती हैं, उमंगें धूल में समा जाती हैं, केवल रह जाता है पश्चात्ताप और घोर निराशा।

हमारे युवक जब घर से बाहर अपने चार मित्रों में बैठेंगे तब उनकी उदारता, मिलनसारी और हँसमुख होने का प्रमाण सहज ही मिल जायेगा। परन्तु घर के अन्दर उनकी तुनुक-मिजाजी, विरक्ति और माथे की सलवटें देख कर क्या बोलने तकका साहस

भी किसी में रह जायेगा ? माता थाली परस लाने का आदेश बहू को करके पुत्र का मुंह ताकने लगेगी। बहिन भाई के मस्तिष्क में उठती हुई गर्मी को पंखे की सहायता से दूर करने का यत्न करने लगेगी, बिचारी बहू मन ही मन अपना आधा खून भय से ही सुखा डालेगी—कहीं थाली में परसने से कोई चीज रह न जाये, मिर्च तो सब्जियों में अधिक नहीं पड़ गई—नमक कम न हो गया हो ? पूरियाँ पतली और मुलायम हैं या नहीं ? और पिता वह बिचारे आँख बचावा देकर चुपचाप बाहर खिसक गये। कहीं उनकी बढ़ती हुई निराशा की अग्नि में पुत्र के क्रोध की आहुति न पड़ जाय—घर में कलह न हो उठे और फिर पुत्र के मान में भी कमी न आ जाय।

उपर्युक्त पंक्तियों में अङ्कित की हुई घटनाएँ—नित्य ही अधिकांश रूप में हमारे बहुत से घरों में घटित होती रहती हैं जो केवल देखने और समझने से ही सम्बन्ध रखती है। सब तो नहीं, लेकिन बहुत से युवक पढ़ लिख कर अपने को—गृह-जीवन सुखी बनाने के अयोग्य साबित कर देते हैं। पता नहीं यह हमारे संस्कारों का दोष है या शिक्षा का ? मेरे विचार से तो हमारी आधुनिक शिक्षा ही हमें कायर, साहसहीन और निकम्मा बना रही है। शिक्षा का प्रभाव युवकों पर ही नहीं, अपितु हमारी पढ़ी लिखी बालिकाओं पर भी अच्छा नहीं पड़ रहा। वह भी पढ़ लिख कर घर-गृहस्थी सुचारु रूप से चलाने में अयोग्य बनती जा रही हैं। कन्याओं पर, युवकों से भी अधिक बुरा प्रभाव आजकल की शिक्षा का पड रहा है। पढ़ लिख कर वह यही चाहने लगती हैं, कि उनका शरीर मैला न हो, साड़ी पर दाल-तीवन का धब्बा न पड़ जाये—यहां तक कि बच्चों को भी पति या घर के अन्य प्राणी ही रख लिया करें तो बहुत अच्छा रहे। और वह सदा विद्यार्थी जीवन की नाईं आफ़िस और हुकूमत का ही स्वप्न देखा करें।

जब युवक विद्यार्थी-जीवन मेंअथवा होस्टलों में रहते हुए होते हैं, तब वह अपनी महत्वाकांक्षाओं को इतने गहरे रंग में रंग डालते हैं कि वास्तविक जीवन में आकर वह ऊब उठते हैं और अपने जीवन को बहुत से तो भारस्वरूप भी समझ बैठते है। थोड़ी सी आय में तो जीवन बिताना उनके लिये असम्भव हो ही उठता है और अधिक आय इस बेकारी के जमाने में केवल कल्पना से भी दूर की बात है। और तब वह न इधर के रहते है न उधर के। उनकी दशा ठीक "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" जैसी हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक बात और उनकी झुंझलाहट को बढ़ा देती है। वह है विलासिता। हमारे युवक जब पढ़-लिख कर अपने भावी जीवन की कल्पना करने बैठते हैं तब वह किसी यूरुपियन साहब से कम नहीं होती। भावी पत्नी के रूप में तो वह नित्य ही शायद विलायती बीबियों या सिनेमा स्टारों के चित्र बनाया ही करते हैं। और फिर जब वह अपने वास्तविक जीवन में आकर आंखें खोलते है, तब वही रूढ़ियों के भार से लदा हुआ वातावरण देख कर झुंझला उठते हैं। जिस सुन्दरी का चित्र वह आज तक बनाते रहे, उसके स्थान पर एक भोली-भाली लज्जा के भार से दबी हुई बालिका को देखकर मन कुढ़ जाना सम्भव भी है ही। परन्तु यदि वह चाहे तो थोड़े दिनों के प्रयत्न से ही किसी सीमा तक गृह जीवन को सुखमय बना सकते हैं। परन्तु बहुतों में वैसी क्षमता होती ही नहीं और वह यहां भी अयोग्य ही दीख पड़ते हैं।

ऊपर लिखी हुई पंक्तियों के विरुद्ध जो अपने

जीवन को सात्विकता के सांचे में स्थिति के अनुसार ढाल सकते हैं —वह शान्ति से जीवन पथ को पार कर डालने के योग्य बन जाते हैं।

यह सब लिखने से मेरा आशय यह कदापि नहीं है कि हमारे युवक रूढ़ियों के समर्थक बन जायं—या समाज में घुसी हुई बुराइयों का विरोध न करें—जैसे कि पर्दा-प्रथा को मिटाना, स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना इत्यादि। सुधार हमारे युवकों पर ही निर्भर है। परन्तु इस ओर कोई मन लगावे तभी तो। फिर भी देश में आजकल एक लहर सी दौड़ रही है और कहीं-कहीं कुछ सुधार के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं परन्तु बहुत धीमी चाल से। जब तक प्रत्येक घर का सुधार न हो जायगा, तब तक समाज सुधार होना सम्भव नहीं जान पड़ता।

पहले युवकों को अपनी चाल-ढाल, दृष्टि और व्यवहार को सरल और सात्विक बनाने का यत्न करना चाहिये। तभी जाति और देश तथा समाज का कल्याण होगा।

कितने खेद का विषय है कि देश में इतना हाहा-कार हो रहा है फिर भी हमारी सरकार की नींद नहीं टूटती और हमारे युवक रही-सही शक्ति को आजकल की व्यर्थ की शिक्षा में गंवाकर बेकारी का जीवन बिताने के लिये बाध्य हो रहे हैं।

वह शिक्षा किस काम की जो सदाचार से दूर ले जाये और आर्थिक समस्या का हल न करके जीवन को भार बना दे!

जितना व्यय अपने युवकों पर हम तन पेट काट-काट कर उन्हें शिक्षित बनाने के लिये कर रहे हैं, उसका आधा भी तो वसूल होने की आशा नहीं; इसके अतिरिक्त कि एक सूट-बूट धारी युवक बेकारी का भार सर पर लाद कर हमारे सामने आकर खड़ा हो जाय।

यह सोचने और समझने की बात है कि हमारे युवक जीवन की कठिनाइयों को समझने के स्थान पर उन पर जानबूझ कर पर्दा डाल देने का यत्न करते हुए व्यथ की आवश्यकताएं और फिजूलखर्ची बढ़ा लेते हैं। विलासिता का जीवन बाहरी तड़क-भड़क है, जिसका अन्त हमें लेकर डूब सकता है। और सादगी एवं सात्विकता का जीवन हमारी आवश्यकताओं को सीमित रखते हुए हमें शान्ति की ओर ले जायगा।

लेख बहुत लम्बा हो जाने के डर से मैं अब यहीं समाप्त किये देती हूं, फिर कभी अन्य बातों पर प्रकाश डालने का यत्न करूंगी।

आशा है कि मेरे युवक भाई ठंडे हृदय से इसे पढ़ कर सोचेंगे कि क्या यह सब झूठ है? और भविष्य में सरलता, साहस और पवित्रता के सहारे अपने जीवन को उन्नत बनाने का यत्न करेंगे।

परिवर्तन

[श्री दुर्गाप्रसाद झुंझनूंवाला बी० ए० "व्यथित"]

नीरव में अलख जगाने दे।
जाती जीवन-वेला प्रति-पल,
मिटने का साज सजाने दे!

जीवन का स्वर्णिम शुभ प्रभात,
यौवन का मादक मलय-वात;
खेले, क्रीड़ा-रत रहे, सजनि,
लय का सङ्गीत सुनाने दे!

खेला जग खिल-खिल बचपन में,
गौरव से पीड़ित यौवन में,
जीवन-सन्ध्या—बुझती किरणें—
प्रभु-पद में प्रीति लगाने दे।

प्रमुदित कलियाँ पा स्पर्श सुलभ,
उच्छ्वसित प्रकृति, कार्याकुल जग;
अब शान्त सत्वगुण-आभा से
सन्ध्या का भाल सजाने दे!

शैशव का मधुमय हास नहीं,
यौवन का चंचल लास नहीं;
थकता जीवन, सब शिथिल अङ्ग,
विश्राम अचल अब पाने दे।

गौरवमय था जग में विकास,
अब उस विकास का करुण हास,
री, जीवन का यह परिवर्तन—
इसमें खिलने, मिट जाने दे !

तेरी ये गीली सी आँखें !
क्यों करुण, सजनि, मधु की पाँखें ?
यह तो जग की, री, शून्य बिभा,
यह ज्योति अचल बुझ जाने दे !

मिटता कुसुमों का सरल हास,
खिलतीं कलियाँ, मधुमय विकास,
मुसकाता जीवन का प्रभात—
ऊषा, आशा चिर आने दे !

मुंदतीं मृदु पलकें निशि अज्ञात,
खुलेंगे लोचन स्वर्ण-प्रभात,
सृजन में यह विश्रान्ति, सुभग
नव-जीवन-ज्योति जगाने दे !
प्रातः फिर स्वर्णिम आने दे !

पंचायत के पुनर्संगठन की आवश्यकता

[श्री माणिकचन्द सेठिया]

[गत ता० १७ मार्च को श्री ओसवाल नवयुवक समिति के तत्वावधान में कलकत्ते के समस्त ओसवालों का प्रीति-भोज हुआ था। उस अवसर पर हमारे उत्साही सहयोगी श्रीयुक्त माणिकचन्दजी सेठिया ने पंचायत व्यवस्था के संगठन पर जो विचार पूर्ण भाषण दिया था, उसकी सभी ने प्रशंसा की थी। पंचायत का इस प्रकार का संगठन अत्यावश्यक है— और उसके लिये समुन्नत अनुभवपूर्ण विचारधारा की आवश्यकता है। श्रीयुक्त सेठियाजी ने यह भाषण देकर एक श्लाघ्य कार्य किया है।—संपादक।]

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध—जो स्वभावतः मिले हुए है—पर विचार करते हुए समाज शास्त्र के अनुशीलन ने मनुष्य को इस तथ्य पर पहुंचा दिया है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व तो प्रधान है ही और रहेगा भी, पर कितने ही सामान्य गुणों और आवश्यकताओं के कारण वह अमुक समाज, संगठन और संस्था का भी अंग है। अपनी इस स्थिति का उसको सापेक्षिक ज्ञान भी होता है और बल भी। संगठन बना कर रहने की भावना मनुष्य में स्वभावजात भी है और स्थिति-परिस्थिति के अनुकूल भी। बचपन से ही जहाँ व्यक्ति को अपनी रक्षा का ख्याल होता है—वहीं दूसरी ओर उसको यह भी विश्वास रहता है कि वह एक ऐसे विराट् का सूक्ष्म है—जहाँ उसकी रक्षा, उन्नति, और मार्ग—दर्शन की जिम्मेदारी बहुतों पर है। इधर जीवन-संग्राम की परिस्थिति में ज्यों ज्यों कठिनता बढ़ती गई, यह भावना और भी बलवती होती गई। यहाँ यह भी समझ लेना उचित होगा कि मनुष्य अपने उपार्जन-काम में

लेखक

जैसे एक से दूसरे का, और दूसरे से तीसरे का सहयोग चाहता है, वैसे ही उस उपार्जित द्रव्य के उपभोग और उपभोग की महत्ता दर्शाने केलिये भी एक समाज चाहता है। इन दोनों भावनाओं ने मिल कर संगठन रूप से समाज को जन्म दिया। परंतु समाज की व्यवस्था और चालू नियम ऐसे बन्धन-स्वरूप हो जावें कि वह व्यक्ति की अपनी उन्नति में अनुचित रूप से बाधा पहुंचावें तो उस अवस्था में व्यक्ति और समाज में विरोध उत्पन्न हो जाता है।

आज संसार में मानवता को बाँटने के लिये न जाने कितने समाज बने हुए हैं और इनके सामाजिक नियम ऐसे बन गये हैं कि इनके बाहर की बात विचारना कोरी कल्पना के सिवाय कुछ भी नहीं है। आज तो परिस्थिति यह है कि किसी भी व्यक्ति का जीवन अपने समाज के जीवन से बाहर कुछ भी मूल्य नहीं रखता। इसलिये यह आवश्यक है कि सामाजिक संगठन जितना सुन्दर होगा उतना ही समाज के व्यक्तियों का जीवन निर्मल, सुन्दर और सुखमय होगा।

वैसे तो जाति और संगठन दोनों एक ही वस्तु हैं, पर उत्पत्ति की दृष्टि से हमारी जाति की यह विशेषता है कि उसका आरम्भ ही संगठन से हुआ है। इस संगठन में इतनी शक्ति थी कि क्षत्रिय जाति के दायरे से बाहर निकल कर हम इस जाति में सम्मिलित हुए और इस संगठन को इतनी सुन्दरता से चलाया कि थोड़े ही समय में अपनी जाति का प्रभाव अन्य सभी जातियों पर जम गया। हमारी जाति ओसवाल जातिके नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुई। हमारी जाति के व्यक्ति का जीवन इतना उच्च रहा कि उसका सदा हमें गर्व है। इस संगठित जाति का इतिहास इतना गौरवपूर्ण है कि इसकी व्याख्या पाँच मिनिट के समय में नहीं की जा सकती।

समय परिवर्तनशील है। यह किसी के साथ एक सा नहीं रहता। हमारे संगठन में भी रुकावट आ गई। हम ओसवाल जाति के नाते एक है, यह बात होने पर भी हम में प्रान्तीय भाव अधिक जागृत होने लगे, जिससे हमारा संगठन प्रान्तीयता में बँट गया। इसके बाद साम्प्रदायिक भेद भी बढ़ते गये। हमारे लिये महावीर तो एक ही है, परन्तु उनके उपदेश को अपने जीवन में उतारने के साधन भिन्न-भिन्न प्रकार से मानने से हम लोगों ने परस्पर तर्क वितर्क में पड़ कर बिरादरी प्रेम को ढीला ही किया है। यहां तक कि हम अब तो एक सम्प्रदाय में भी एक नहीं हैं और न प्रान्तीयता में भी एक। वर्तमान स्थिति में हम धड़ों में बँटे हुए हैं और धड़े भी पार्टियों में विभक्त हैं और इन पार्टियों के पास एक दूसरी के वास्ते ऐसे अभियोगों का एक पुलिन्दा है जो भी बहुत वर्षों से उनके पास है। इन अभियोगों की उनके हिसाब से वृद्धि तो होती है, परन्तु उनको भी मालूम नहीं कि इन अभियोगों का निर्णय कब होगा और उनका निर्णय किससे करावेंगे। मैं तो समझता हूं कि अब इन अभियोगों को पेश करने की अवधि को तिमादी हुई समझ कर सन्तोष कर लेना उचित होगा, अन्यथा हम लोग बिखरते ही जावेंगे और इस बिखरी हुई अवस्था में हम कुछ उन्नति कर सकेंगे, इसकी तो कल्पना भी नहीं हो सकती। हमारी जाति इस समय दिशामूढ़ सी हो रही है और उसको एक दृढ़ नेतृत्व की आवश्यकता है। हमारे यहां पहले समाज की व्यवस्था को नियंत्रित करने के लिये एवं उत्पन्न विकार और अशान्ति को साफ कर प्रेम और एकता की रसधारा

बहाने के लिये पूर्वजों ने पंचायत नाम की संगठित संस्था कायम की थी। उसका ढीला ढांचा तो अभी भी मौजूद है। पर समयानुकूल परिवर्तन न होने के कारण तथा जनसाधारण की पहुंच से बाहर हो जाने के कारण वह अब कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो गई। मेरा मतलब यह नहीं है कि इसलिये पंचायत को उठा देना चाहिये, पर मैं तो इस पक्ष का हूं कि उसका होना जरूरी है—पर पुनर्संगठित रूप में।

मैं आज आप महानुभावों के समक्ष पंचायत संगठन की आवश्यकता के विषय में निवेदन करते हुए यह भी प्रकट कर देना चाहता हूं कि किस तरह से पंचायत संगठन किया जावे तथा इसकी रूप रेखा क्या हो ? मैं यह कहूंगा कि सर्व प्रथम तो सर्व-मत से होने वाले निर्णय की शैली के बदले बहुमत से किये गये निर्णय को मान्य किया जावे। सर्वमत से होनेवाले निर्णय अवश्य सुन्दर होते है और यह भी कौन कहता है कि जहां पर बहुमत की प्रधानता है, वहां पर सर्वमत से कोई निर्णय होता ही नहीं। परन्तु जहां सर्वमत ही लागू है, वहां कोई कार्य तो होता नहीं, और विरोध ही बढ़ता जाता है। वर्तमान संसार की सभी व्यवस्था बहुमत से होती है और वास्तव में यही पद्धति अब तो कार्यकारी और संगठन के लिये सहायक है।

हमारी छिन्न-विछिन्न अवस्था का यह समय ऐसा आकर उपस्थित हो गया है कि अब बिना विलम्ब किये हुए बहुमत को प्रधानता देकर अपनी पंचायतों का संगठन करना चाहिये। ग्राम और शहर वाले ग्राम और शहर पंचायत की व्यवस्था करें और नगर वाले नगर पंचायत की व्यवस्था ओसवाल जाति के नाते करें, प्रान्तीय और सांप्रदायिक हिसाब से नहीं और पंचायतों के पंचों का चुनाव वोट से किया जावे। वोट का अधिकार प्रत्येक ओसवाल स्त्री-पुरुष को हो। तीन-तीन वर्ष के बाद चुनाव करें। चुने हुए व्यक्ति अपने में से सभापति, मंत्री और कोषाध्यक्ष इत्यादि नियुक्त करें और किसी पंचायत में कितने पंच चुने जावें, इसका निर्णय उस गांव-शहर या नगर की गणना के अनुसार किया जावे। पांच वर्ष बाद प्रत्येक ग्राम या शहर की गणना होनी चाहिये और पंचायत की नियमावली पहले से ही बना ली जाय जिसके आधार पर पंचायत का कार्य किया जावे। आय का ऐसा सुगम नियम रहना चाहिये कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी दे सके। खर्चा एक मात्र नियमावली में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति में किया जावे। पंचायत का उद्देश्य समग्र रूप से जाति-संगठन, जातीय-मर्यादा की रक्षा और जाति सेवा हो।

आधुनिक काल में विभिन्न देशों में होनेवाली सामाजिक क्रांतियों ने रूढ़ियों से परे व्यक्ति का असली सौन्दर्य प्रकट कर दिया है। राज्यों की स्वेच्छाचारिता के अन्त की भी यही कहानी है। आज तो जनसत्तात्मक राज्य की मनोकामना है। जब शासन के प्रति व्यक्ति की यह भावना है तब फिर समाज के संगठन और सुव्यवस्था के सम्बन्ध में भी यदि उस के विचारों में युगान्तर हुआ है या हो रहा है तो क्या आश्चर्य ? जिस समय राज्य की शक्ति स्वेच्छाचारी अल्पसंख्यक धनिक वर्ग के हाथों में चली गई तो जनता के कष्टों की रणभेरी तुमुल नाद से बज उठी। जब पंचायत संगठन भी केवल निजी मानापमान की बातों पर डटे रह कर समाज को अशान्ति का घर बना कर भी शांत न रहने वाले कुछेक व्यक्तियों के हाथों में पड़ कर निष्प्राण हो गया है तो असली संगठन की कामना करनेवाले व्यक्तियों को इसके सुधार की आवाज उठानी पड़ती है।

दुर्भाग्य से हम पराधीन देश के निवासी हैं। ऐसी हालत में हम अपने हितों की रक्षा को अधिक आशा-शासन कर्ताओं से नहीं कर सकते। और यदि शासन सम्बन्धी यह शिकायत नहीं भी हो तो भी प्रत्येक जाति की जो ऐसी कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो दूसरी जगह उपलब्ध नहीं होती तथा जिनमें उस जाति के जीवन का मर्म छिपा है, उनकी रक्षा के लिये अवश्य एक संस्था की आवश्यकता है जो उपरोक्त योजनाओं के अनुसार चलाने से अवश्य उक्त विशेषता की रक्षा कर सकती है। आज हम देखते हैं कि समाज के बालक बालिकाओं के लिये शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं है, जातीय गौरव की रक्षा के साधन-केन्द्र नहीं है, समाज के दुखी और असहाय व्यक्तियों के लिये कोई सुनिश्चित परामर्श-मंडल नहीं है। महानुभावो! ये सब समाज की नितान्त आवश्यकताएँ हैं जिनका अनुभव हम करते हैं और हमारे वे दोस्त भी करते हैं जो किसी पारस्परिक द्वेष के कारण इस कार्य के सुधार की ओर आगे नहीं बढ़ते।

मेरी समझ में पंचायत का पुनर्संगठन उसी समय हो सकता है जब कि यह आमजनता की पंचायत हो, जब व्यक्ति-व्यक्ति को उसकी रचना में अधिकार हो। जो चीज समस्त जनता की है – जनता के हिताहित के लिये है, वह जनता का ही संगठन हो, और कुछ लोगों का मंडल न हो। मैं समाज के प्रत्येक व्यक्ति से प्रार्थना करूंगा कि जिन आचार्यों ने हमको जगह-जगह से एकत्रित करके एक जाति बनाई थी, उनकी दूरदर्शिता साहसशीलता और निस्वार्थ सेवाभाव को याद करके हम सब एक होकर रहें सब एक ही पंचायत के शासन में रहें और वह शासन ऐसा हो जिसमें हम सब साधारण से साधारण लोगों की वाणी हो। समाज के जीवन के लिये पंचायत का पुनर्संगठन आवश्यक है और अत्यन्त आवश्यक है। यदि समस्त समाज इस आवश्यकता को महसूस करता हो तो इसके पुनर्संगठन की सविस्तर योजना के लिये विचार किया जाना चाहिये। और यह काम मेरी समझ में सर्व-प्रथम कलकत्ते में ही होना चाहिये क्योंकि ओसवालों की वृहद संख्या और विभिन्न स्थानों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से यह स्थान सर्वोत्तम कहा जा सकता है और यहां पर किया हुआ संगठन जगह-जगह पर अपनाया जावेगा—और समस्त समाज का संगठन हो जायगा।

चायवाले के ललाट पर चन्दन लगा था पर उसके मन में.........??

चायवाला

[श्री पूर्णचन्द्र जैन एम० ए०, विशारद]

जनवरी का महीना था—जब सर्दी का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाता है और थर्मामीटर का पारा बहुत नीचे उतर आता है। कहते हैं कि ग्रीष्मकाल में दिन की और शीत में रात्रि की यात्रा बड़ी कष्टपूर्ण होती है। और वह तो रात्रि की अन्तिम घड़ी थी। भला शीतकाल की उस समय की यात्रा क्यों न बुरी लगती? पर, इस सामाजिक रूढ़िवाद, धार्मिक अन्धेर और राजनैतिक गुलामी के जमाने में, और सब से भी बढ़ कर बेकारी के जमाने में हमारे जैसे ग्रेजुएटों को बदतर से बदतर काम करना पड़े वह भी थोड़ा ही है।

हां तो, जनवरी के महीने में, कड़ी सर्दी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपने राम को भी स्टेशन पर ट्रेन की प्रतीक्षा करनी ही पड़ी। अजमेर का स्टेशन था। मालवा लाइन से उतर कर इधर देहलीवाली ट्रेन में बैठना था। ब्रिज को पार कर—चाहे ट्रेन आ रही हो या न आ रही हो, ब्रिज पार करके ही एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर आना चाहिए न!—इसीलिए—मेन प्लेटफार्म पर आये। कुली से पटी नहीं, इसीलिए सामान भी लादना पड़ा। खैरियत यह थी कि सामान इतना अधिक नहीं था कि कुली करना ही पड़े। पर सर्दी से हाथों को बचाये रखने के लिये सोचा था कि कुली हो जावे तो अच्छा है। और कुछ जंण्टिलमैनी का भी ख़याल था। ३०)-४०) का ओवर कोट, १०)-१५) के पेण्ट बूट आदि और इतनी पब्लिक के सामने बण्डल उठा कर चलना! पर ऊपर से पूरे बाबू दिखने पर भी अपने राम की रग-रग में अभी बाबूगिरी नहीं फैली थी। कुली ने पैसे विशेष मांगे और बण्डल स्वयं ही ले चल पड़े। ग़रज़ यह कि मेन प्लेटफार्म पर आ ही पहुंचे और जिधर से ट्रेन आनेवाली थी उधर नज़र गड़ा कर देखने लगे। ६-३४ पर गाड़ी आती थी और मेरी घड़ी में ६-३० हो चुके थे।

ठण्ड के मौसम की सुबह थी और हड्डियों में चुभ जानेवाली हवा चल रही थी। पर स्टेशन पर तो वही चहल पहल। ठेलेवाले और मुसाफिर, बीबियाँ और बच्चे, कुली और फ़र्स्ट, सेकण्ड क्लास में सफर करनेवाले साहब लोग (!) सब ही अपनी-अपनी चिल्ल-पों, भागा-दौड़ी, ले-दे और बिदा-भेंट में व्यस्त थे। आखिरकार गाड़ी आई और किसी डब्बे में से मुसाफिर निकले इसके पहिले ही प्लेटफॉर्म पर खड़े हुए मुसाफिर ट्रेन पर टूट पड़े। "अबे! इधर आ इधर, ओ कुली!", "अजी, चढ़ो तो कोनी, जगाँ रुक जासी!", "यू, टेक योअर सीट हेअर प्लीज, जस्ट लैट अस कम आउट, "अरे भाई! यह तो जनाना डब्बा है। कहां घुसे आते हो?" की अजीब चख-चख गूंज उठी। अपने राम भी बण्डल उठा अच्छी जगह की तलाश में, डब्बे की खिड़कियों से अन्दर देखने का व्यर्थ प्रयास करते, चल पड़े। एक दो जगह तो फाटक पर हाथ लगाने के पहिले ही अन्दर से कोई साहब बोल उठे, "No, vacancy। यहां जगह नहीं है।"

मन में सोचा कि नौकरी की फ़िराक़ में जाने पर ही सुनना पड़ता था "No, vacancy। जगह नहीं है।" अब गांठ का खर्च करें तब भी सुनते है "नो वेकेन्सी !" किसी तरह, पीछे ही पीछे पहुंच कर गार्ड के ब्रेकवान के पास जनाने डब्बे में नहीं !—जगह मिल ही गई। बण्डल को पहिले तो सीट पर ही रक्खा इस विचार से कि कोई आवेगा तो यह समझेगा कि यहां तो जगह रुकी हुई है और इस तरह बिना झंझट के चले जाने पर अपने राम फुल सीट पर लम्बी तानेंगे। (सुबह हो गई थी पर रात की खुमार निकल जाती तो अच्छा ही था।) पर बीसवीं सदी के लोग घाघ होते हैं घाघ ! एक दो कटे पतंग की तरह इस सिरे तक आ ही पहुँचे और पूछ बैठे "यह बण्डल किसका है?" अपने कान्शन्स (Conscience) ने झूठ बोलना अभी नहीं सीखा था—हालांकि यह सब जमाने के Struggle for Existence के लिये अत्यन्त आवश्यक है- और कह दिया कि "हमारा ही है।" बस फिर क्या था—वे तो फट पड़े ! दो चार सुना ही दी।

"तो आपका बण्डल भी सीट पर ही तशरीफ़ रखेगा !" कहते हुए उसे तो ऊपर खिसका दिया और आराम से एक दो महाशय बैठ गये।

हम भी बैठे रहे। आखिर सुबह लड़ाई कौन मोल लेता ?

५-१० मिनिट में जब जमाव जम गया तो सोचा चाय ही पीलें। अपने राम चाय के वैसे आदी नहीं हैं ! अफीम, भंग आदि का व्यसन तो उड़ता जाता है और चाय का नशा बढ़ता जाता है। बेचारे चौबों और ब्राह्मण पेटुओं की बड़ी खिल्ली उड़ती है, जब वे दो वक्त या एक वक्त नियमित रूप से एक-आध लोटा भंग चढ़ा, जाते हैं अथवा मेवाड़ी वीरों की जो रत्ती दो रत्ती अफीम की गोली गटक जाते हैं ! पर सिगरेट, सिगार,—१ नहीं १०-१० और चाहे जब—पीने और चाय के कप--बेगिनती और वक्त बेवक्त--चढ़ा जाने वालों को तो आजकल refined और सुधरे हुए समझा जाता है न !

इसीलिये समझिये या यों समझिये कि कुछ सर्दी से बचने की आशा से भी अपने राम ने चाय वाले को पुकारा। कई चाय वाले आये पर बोलते थे 'मुसलिम चाय !' हिन्दू-मुसलिम एकता के पक्षपाती तो थे पर इतनी हिम्मत नहीं थी कि 'मुसलिम चाय' के कप से चाय पी लेते चाहे वे कप भी उतने ही साफ और धुले धुलाये क्यों न हों जितने कि 'हिन्दू चाय' वाले के सकोरे।

अन्त में 'हिन्दू चाय' बोलता भी एक ठेलेवाला(!)—खोमचे वाला कह दीजिये !—आ ही गया। कप—नहीं एक सकोरा—तैयार करने को कह कर जेब टटोली तो पैसे नहीं ! चाय वाले से कहा, "भई पैसे तो हैं नहीं ! रुपये की चेंज देनी होगी।"

चाय वाले ने कहा, "चेंज तो नहीं है। खैर, चाय तो बना ली, यों ही चाय खराब हो, इससे अच्छा तो यह ही है कि आप ही इसे पीलें। पैसे आ जायंगे तब चेंज देकर रुपया ले जाऊंगा। एक आने का टोटा ही सही।"

अपने राम ने सोचा कि चाय वाला बड़ा भला आदमी है। एक आना छोड़ने को भी उद्यत है। आखिर, चाय तो पी ही ली।

अपने राम भी रुपये की चेंज लेने की फ़िक्र में थे। पर बगैर चीज दिये या एक दो पैसे काटे चेंज कोई देता न था। गाड़ी के रवाना होने में जब एक मिनिट

रह गया तब फिर चायवाला उधर आया। बोला, "बाबूजी चेंज ले ली हो तो पैसे दे दीजिये।"

मैंने कहा, "चेंज तो नहीं मिली, तुम लाये हो तो दे दो। नहीं तो अपने किसी साथी ठेले वाले से ले लो।"

उसने कहा, "लाइये, रुपया दीजिये, मैं पूछता हूं।"

पहिले तो उसने एक पास ही खड़े ठेलेवाले से पूछा, फिर अपनी जेब से दो चार रुपये की रेजगी निकाल कर गिनने लगा।

मैंने पूछा, "तुम्हारे पास ही जब पैसे थे तो इतनी देर क्यों की ?"

उसने कहा "अब हम ही पैसे न रखें तो आप जैसे पटें (?) कैसे ?"

चायवाले के ललाट पर चन्दन लगा था और ऐसा मालूम होता था कि वह बड़ा धर्मनिष्ठ है तथा ऐसी सर्दी में भी काम में जुटने से पूर्व बहुत सुबह ही पूजा पाठ से निवृत्त हो लेता है।

उसकी शकल को ग़ौर से देख कर मैंने पूछा, "तो क्या तुम यह समझते हो कि मेरे पास पैसे थे और उन्हें न देकर रुपये की चेंज लेना चाहता था ?"

चायवाला कुछ बोला नहीं। उसने मुझे पैसे लाकर दिये। उसी समय गाड़ी ने सीटी दी। मैंने पैसे गिने तो सवा चौदह आने दी!

ज़ल्दी से पूछा, "तीन पैसे कम क्यों ?"

चायवाला बोला, "वह ठेलेवाला मांग रहा है न ? उसे दे दूंगा।"

मैंने कहा, "भले आदमी, वह तो दूसरे मुसाफिर से मांगता है। मुझे तो मेरे तीन पैसे दे दे।"

चायवाले ने पास ही खड़े ठेलेवाले की ओर मुड़ कर पूछा, "क्यों जी, उनसे तीन पैसे नहीं लेने हैं ?"

चायवाले ने "अच्छा, यह लीजिये" कहते हुए अपने गल्ले में से कुछ पैसे उठाये। गाड़ी चल पड़ी थी। उसने ज़ल्दी से आकर हाथ में दो पैसे रख दिये। गाड़ी कुछ तेज़ हो रही थी। मैं पुकारा, "तीन पैसे दो न!"

पर, वह चायवाला तो दूर होता जा रहा था। कुछ उसने आगे बढ़ने का प्रयत्न भी किया पर फिर वहीं ठहर गया और अपने पैसे संभाल जेब में डालने लगा।

चायवाले के छापे तिलक का मूल्य तो मुझे अब मालूम हुआ। भारतवासियों का कितना नैतिक पतन हो गया है ? बात यह एक पैसे के चले जाने की नहीं है! प्रश्न तो मन में यह उठता है कि मनुष्य मनुष्य से यदि इसी प्रकार छल-दम्भ कर अपना पेट भरने लगे तो क्या होगा ? जिस भारतवर्ष में पराये के सम्पत्ति-भण्डार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था और कामिनी-कांचन से सदा नाता तोड़ने का प्रयत्न किया जाता था वहीं के त्रिपुण्डधारी, धर्मात्मा दिखनेवाले व्यक्ति इस प्रकार पैसे को ठगने का व्यापार करें! कैसी बिडम्बना है ?

अपने राम ने भी दुनिया से चौकन्ना रहने का एक सबक़ और पढ़ा। और यह निश्चय कर लिया कि यदि किसी से कोई चीज़ ख़रीदना चाहें तो उससे चेंज़, चीज़ आदि जो कुछ लेना है वह लेकर फिर दाम परखावें।

मातृ-भाषा का महत्व

[श्री जनार्दनराय नागर बी० ए० 'साहित्यरत्न']

(क्रमागत)

मातृ-भाषा की दूसरी महत्ता है, किसी देश की संस्कृति की रक्षा और उसका निर्वाह करना। संस्कृति की रक्षा करना जातीय जीवन की साधना के इतिहास की रक्षा करना है। कुछ लोग इस इतिहास की रक्षा करना अनावश्यक समझते हैं, परन्तु उनकी सूझ बहुतों को मुबारक नहीं है। 'इतिहास की रक्षा करना स्वतंत्रता की रक्षा से भी महत्त्वनीय है।' इस वाक्य में संस्कृति की रक्षा की महत्ता की गाथा ही गाई गई है। वास्तव में संस्कृति ही के बल पर पुनर्निर्माण सम्भव है। अन्यथा मृत प्राय: जाति के लिए उठ कर अपनपा संभालना कठिन और दुष्कर हो जायगा। समाज-शास्त्र के निर्माणकर्त्ता ने संस्कृति की रक्षा के फलों को खा-खा कर ही अपने भव्य आदर्शों की कल्पनाएँ की हैं। सामाजिक क्रान्ति का आधार संस्कृति का स्फूर्ति-पूरक गीत है। गौरव की कहानी सैनिक को झूमते हुए रणवाद्यों से कहीं अधिक उत्तेजित करती है। सरस्वती के तीर पर सामगान की अखण्ड ध्वनि को सुन कर किस आर्य हृदय में भूकम्प न आएगा, यमुना की मेड़ों पर बसे हुए छितरे कुञ्जों को देख कर, किस में प्रेम का उन्माद न छाएगा? संस्कृति का गीत जातीय गीत है। संस्कृति को नष्ट कर जाति अपने सर्वस्व को समुद्र में डुबो देती है।

इस संस्कृति की रक्षा मातृ-भाषा के हाथ में है क्योंकि संस्कृति के गीत के चरण मातृ-भाषा के अक्षरों और संकेतों से निर्मित होते हैं। इसका अर्थ यह है कि जातीय-साहित्य ही संस्कृति की रक्षा कर सकता है—सकता है क्या ?—करता है। परन्तु जातीय साहित्य मातृ-भाषा में रचित साहित्य ही है। आज अंग्रेजी के प्रसार से भारतीय साहित्य के दर्शन उसमें होने लगे हैं। समय के फेर से प्रत्येक युवा भारतीय अंग्रेजी साहित्य के वर्द्धन में योग देकर धन और यश कमाना चाहता है। परन्तु जितना भी साहित्य अंग्रेजी में पैदा हुआ है, उससे अंग्रेजों को भारत की संस्कृति और सभ्यता के दिग्दर्शन में भले ही सहायता मिली हो। परन्तु भारत की प्रतिपल बिलीन होती हुई भारतीयता की रक्षा में तनिक भी मदद नहीं मिल सकती। यह माना कि शिक्षित समाज ही किसी देश के ज्ञान और विज्ञान का प्रतिनिधित्व प्रदर्शित करता है, परन्तु उन्नति की यथार्थता तो व्यष्टिगत होती है। चाहे महात्मा गांधी और रहस्यवादी रवीन्द्र भारतीय हृदय और आत्मा के अवतार रूप मान लिए जाएँ, चाहे हम सब उनके अस्तित्व को जातीय सम्मान, गौरव और पौरुष के चिन्ह मानें, चाहे वे आज दुनिया के सामने भारत का नाक ऊँचा रखते हों, परन्तु भारत की सामूहिक उन्नति के प्रतिनिधि वे नहीं हो सकते।

जहां तक भारत के कोने में स्थित गांव की फूस की एक झोंपड़ी में रहनेवाला प्राणी सच्चा भारतीय न बन जाए, वहां तक भारतवर्ष अपने आपको उन्नत और 'भारत' नहीं कह सकता। "एक गांधी की हड्डियों में जाग्रति सत्य और अहिंसा के प्रणवमंत्र के गुञ्जन से समस्त पैंतीस करोड़ के हृदयों में उसी महामत्र का अहर्निशि जाप हो रहा है" यह कहना कल्पनाजन्य है। संस्कृति और आदर्श का चोली दामन का सम्बन्ध है। आदर्श का व्याप्त ग्रहण ही संस्कृति का स्वरूप है। "आत्मा अमर है" वाले ज्ञानादर्श की व्याप्त आराधना, साधना और दर्शन से जब समस्त राष्ट्र का जीवन अभ्यस्त हो जाता है, तब "अमर आत्मा" का आदर्श किसी राष्ट्र की गौरवप्रेम संस्कृति कहला सकेगा। वड्‌जवर्थ को प्रकृति से प्रेरणाएं मिलीं—वैसी प्रेरणाएँ मिलीं जो हमारे कवियों को भी मिला करती हैं—परन्तु वे अंग्रेजों की राष्ट्रीय संस्कृति न हो सकी। गोस्वामी तुलसीदासजी को प्रकृति से जो प्रेरणाएँ मिलीं, वे मानस के रूप में राष्ट्रीय संस्कृति का इतिहास बन गयी। कारण यही है कि अंग्रेजों ने अपने कवि की प्रेरणाओं को जातीय जीवन की साधना का अभ्यास नहीं बनाया; तब तुलसी ने पूर्व-अभ्यस्त संस्कृतियों ही को राष्ट्र के समक्ष रखा। तुलसीदास का महत्व जितना महाकवि की भांति स्वीकार-योग्य है, उससे कहीं अधिक माननीय और स्वीकृति-योग्य महत्व राष्ट्रोद्धारक की तरह है। कविसम्राट्‌ तुलसी राष्ट्र के संस्कारक भी हैं। इसीलिए उनकी रामायण भारत की वाणी हो पड़ी है। शेक्शपियर के नाटक मानवता के यथार्थ प्रदर्शन होने के कारण भावात्मक विनोद के साधन हैं तब तुलसी का प्रबन्ध काव्य संस्कृति का गीत होने के कारण राष्ट्र की रीढ़ है। मनो-विनोद की सामग्री प्रस्तुत करना इतना गहन और महत्वनीय कार्य नहीं है, जितना किसी जाति को उसकी संस्कृति की रक्षा कर उठा देना है।

परन्तु यदि "रामायण" फ्रेंचभाषा में लिखी गई होती तो ? तो निस्संदेह वह हमारे काम की न रहती। अंग्रेजी पढ़े लिखे रामायण का अनुवाद पढ़ कर उसे एक ओर रख देते। आज वास्तविक भारत जिस ग्रन्थ का प्रतिदिन पारायण कर काव्यानन्द के साथ-साथ जीवनानन्द भी प्राप्त कर रहा है—न करता। जिस जाति को अपनी संस्कृति की रक्षा करनी हो, उसे मातृ-भाषा की रक्षा और उन्नति करने की आवश्यकता है। भारतवर्ष की यह दशा अंग्रेजी का प्रताप है। जहां हम संसार के संसर्ग में आये, वहीं अपनापन भूलते गये। अंग्रेजी ने हमें इङ्गलैण्ड दिखाया। तपोवनी भारतीय इङ्गलैण्ड की रोचकताएँ देख कर अपनी कुटिया भूल गया। आए दिन तपोवन नष्ट हो गये—कुटिया की जगह बंगलों ने ले ली। पंजाब के कविवर इकबाल के एक गीत का चरण है—"क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं जहां से, बाकी बचा है अब तक नामोनिशां हमारा" इसका उत्तर है—यह नामोनिशां संस्कृति के बल पर चला आ रहा है। भारत में अभीतक अंग्रेजी का प्रचार कम है—इसलिए यह नामोनिशां बच रहा है। नहीं तो इकबाल यही कहते—'क्या बात है कि नामोनिशां मिटा हमारा ?' उस परिस्थिति में उत्तर स्पष्ट हो जाता—'संस्कृति का विनाश !" जिस प्रकार माता बच्चे को प्यार से बड़ा बना कर संसार में जीने और रहने योग्य बना देती है, उसी प्रकार मातृ-भाषा के द्वारा सुरक्षित होकर संस्कृति किसी राष्ट्र को, अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए लक्ष्य की ओर पहुंचा देती है।

संस्कृति की रक्षा शिक्षित समाज नहीं कर सकता। वह उसके मर्म की रक्षा कर सकता है। वह उसके अपवादों को दूर कर, उसे जातीय जीवन के योग्य बना देता है। परन्तु जौहरी के रत्नों की रक्षा गोदरेज की तिजोरी ही करती है। यह तिजोरी साधारण जन-समाज है। अथवा समाज का यथार्थ स्वरूप ही संस्कृति को धारण कर सकता है। इसीलिए हमारे समाज-सुधारक कवियों ने अपने अमर ग्रन्थों की रचना बोलचाल की भाषा में ही की है। हमारे महान् देवदूतों ने अपनी ज्ञानेश्वरी संस्कृति को सीधी सादी जनसाधारण की भाषा ही में गा सुनाया है। तात्पर्य यह कि जनसाधारण की भाषा होने से मातृ-भाषा संस्कृति की रक्षा ही नहीं करती, उसे सर्व-ग्राह्य कर राष्ट्र के जीवन को अमर भी बना देती है। संस्कृति और राष्ट्र के अन्योन्य सम्बन्ध को संसार के प्रत्येक देश के महाविचारकों ने समझा है और अपने-अपने दिव्य कामों में उसका उपयोग किया है। जिस प्रकार शृंगार के स्थायी भाव के लिए प्राकृतिक वासन्ती उद्दीपनों की आवश्यकता है, राष्ट्र को संस्कृति के उद्दीपनों की जरूरत पड़ती है। भारत को आज उसकी संस्कृति का नशा पिला दीजिये कल उसकी आत्मा में ऋषियों का तपोबल हिलोरें मार उठेगा और फिर उसे एक पल भी पराधीन रखना किस देवता के बस में है ?

जिन्होंने मानव जाति के सामाजिक इतिहास का अध्ययन किया है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं, कि संस्कृति जीर्ण समाज के लिए संजीवनी बूटी है। "हम ऐसे थे आज क्या हो गये!" कितने सीधे और सादे शब्द है ? परन्तु उनमें जो ज्वाला भरी है—वह हमारी अकर्मण्यता को भस्म कर देती है। समाज के उत्थान के लिए किसी को अधिक विकल होने की उस समय आवश्यकता है, जिस समय उस सुधारक को संस्कृति से जड़ा हुआ राष्ट्र का राज-पथ प्राप्त न हो। अन्यथा उसे निश्चय ही ध्यान रखना चाहिये, संस्कृति अपना जादू एक न एक दिन बताएगी। मातृ-भाषा और संस्कृति में जो संबंध है, वह साहित्य का सम्बन्ध है। यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, कि किन कारणों से दूसरों की भाषा में अपनी असंख्य वर्षों से साधित संस्कृति की रक्षा नहीं हो सकती।

संस्कृति के विरुद्ध जो आवाज़ उठाते हैं, वे विश्व में एक राष्ट्रीय समाज का स्वप्न देखते हैं। परन्तु उनका क्रियात्मक-विश्ववादी की नज़रों में कोई मूल्य नहीं हो सकता।

मातृ-भाषा की तीसरी महत्ता है, सभ्यता की रक्षा करना। सभ्यता और संस्कृति में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। संस्कृति के क्रियात्मक रूप को सभ्यता का स्वरूप कह सकते हैं। मातृ-भाषा जब राष्ट्रीयता की रक्षिका है, संस्कृति की पोषिका है, तब सभ्यता उससे अलग रह कर पनप और पोषित हो नहीं सकती। संस्कृति को क्रियात्मक स्वरूप देने के लिए मातृ-भाषा का जितना अधिक आश्रय लेना पड़ता है, उतना और किसी वस्तु का नहीं। हमारे विचार से सभ्यता के लिए मातृ-भाषा की प्राणवत आवश्यकता होती है। भारतीय सभ्यता की रक्षा के लिए अंग्रेजी का आश्रय धूप के लिए समुद्र का तलवा ढूंढ़ने जैसी बात होगी। अब एक बात और है। सभ्यता की रक्षा करने की ही क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर भी वही है, जो संस्कृति की रक्षा के लिए दिया गया है।

सभ्यता समाज का चलता स्वरूप है। अतः उसका महत्व और भी अधिक है। प्रतिदिन के जीवन में राष्ट्रीय अपवाद न आ जाए, राष्ट्रीय शील, दैन्य और

मर्यादा का नाश न हो जाए, इसके लिये सभ्यता के प्रकाश की आवश्यकता है। सभ्यता में संस्कार, आदर्श और राष्ट्रीयता—ये तीनों परिमाग में मिलकर समाज का संचालन करते रहते हैं। संसार का मनुष्य मरणाधीन प्राणी है। जिन्होंने मस्तिष्क का कोना-कोना छान कर आदर्शों की सृष्टि की और फिर उनको समाज में क्रियात्मक स्वरूप देकर, उन्हें संस्कार का वेश पहनाया - वे सब अमर पट्टा लिखा कर नहीं आये थे। सभ्यता उनके परिश्रम को अक्षुण्ण रखकर उनके बताये हुए आदर्शों को समय-समय पर उपस्थित करती रहती है। जिस प्रकार महासागर में दौड़ते हुए स्टीमर के लिए दिशादर्शक यंत्र की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सभ्यता की आवश्यकता समाज के लिए होती है। अपनी सभ्यता को अपने देश में अपने समाज में प्रचलित करने के लिये विदेशी भाषा का आश्रय लेने की कल्पना करना तक मूर्खता है।

समाज, संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्रीयता की रक्षा तथा उनका युग-युग तक अविश्रान्त निर्वाह करने के उपरान्त मातृ-भाषा प्रतिदिन के जीवन के लिए अधिक महत्वनीय है। राष्ट्र के विचारों, भावों और कल्पनाओं का प्रभाव मनुष्य पर कितना पड़ता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति के दुर्भेद्य रहस्यों में यह भी एक महान् रहस्य है, कि मनुष्य जिस देश में जन्म लेता है, उस देश के वायुमण्डल और वातावरण ही उसके मन की कृपा बन जाते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसमें किसी को तनिक भी सन्देह होने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। हमारा प्रतिदिन का जीवन हमारे सामाजिक, धार्मिक और संस्कृतिपूर्ण जीवन के अनुसार व्यवस्थित होता है। संस्कार के अनुसार ईश्वर की नियामक सत्ता विश्व के अलग-अलग भागों में मनुष्य को जन्म देती है। जहां तक मनुष्य के मन में भौतिक जड़ता की प्रबलता रहेगी, वहां तक वह ऐसे भूखण्ड में जन्मेगा, जहां उसे उस जडता को आध्यात्मिक चैतन्य में बदलने की सुविधायें प्राप्त हों। गीता में कृष्ण ने भ्रष्ट योगी के लिए जो श्री पूर्ण वचन कहे हैं, वे प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू हो सकते हैं। परमत्मा की साधना करना अथवा अपने संकीर्ण आत्मतत्व को विराट् परमात्म-तत्व में परिवर्तित करना ही यदि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य हो तो यह बात निर्विवाद है, कि उसे प्रकृति वैसा ही जन्म और वायुमण्डल देती रहती है, जो उसके कृत्य कर्मों के फल-रूप और उन्नति के उपयुक्त हो। ह्रासवाद को माननेवाले एक अनूठी कल्पना की तरंग में बह जा रहे हैं। अन्यथा संसार नीचे से ऊपर की ओर और ऊपर से नीचे की ओर जा रहा है। हम विकासवाद और ह्रासवाद की उलझनमय समस्या में पड़ कर अपने बिन्दु को भूलना नहीं चाहते। चाहे विकास मानिये वा ह्रास, मनुष्य एक न एक दिन अपने लक्ष्य पर पहुंचेगा ही। चाहे फिर वह अपने लक्ष्य से पुनः परावर्तित यात्रा प्रारम्भ कर दे। कम से कम लेखक का तो यह विश्वास है, कि ईश्वर प्रत्येक को अपने पास बुलाना चाहता है - प्रत्येक अनेक जन्मों में अपने मन के तार खोल कर आत्मा लोक से ज्योतिर्मान प्रदेश में प्रवेश करना चाहता है।

प्रतिदिन के अनुभवों से ही यह स्पष्ट हो जाता है। यह लड़ाई मन की लड़ाई है। मन स्वयं धोका है, स्वयं रण-भूमि है; स्वयं कारण और स्वयं मुक्त है। पराजय भी होती है, तो मन की विजय होती है तो मन की। हमारा जीवन मन के रूपक, मन से बंधा और बना है। आत्मा को जान-पहचान लेने के बाद

तो जीवन होता ही नहीं। 'मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षये' में जीवन के इसी रहस्य का मर्म समझाने की चेष्टा की गई है। जीवन-मुक्त को हम मन-मुक्त कह सकते हैं।

परन्तु जहां तक मन-मुक्तावस्था प्राप्त नहीं हुई है, वहां तक तो राष्ट्रीयता भी है-संस्कृति भी है-समाज भी है—सारांश में जीवन और उसके ठाठ-सभी कुछ हैं। और जहां तक जीवन है, वहां तक याद है, विचार है—कल्पनाएँ हैं। जहां तक इनकी मनुष्य में विद्यमानता है, वहां तक मातृ-भाषा का सम्बन्ध भी ठीक वैसा ही है, जैसा शरीर और प्राण का आपस का सम्बन्ध। अतः प्रतिदिन के उदय और अस्त होनेवाले जीवन के लिये मातृ-भाषा की कैसी आवश्यकता है —यह बताने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष के दुर्भाग्य से आज भारतवर्ष का अपना सामाजिक जीवन नहीं रहा। विश्व-विद्यालय में पढ़नेवाले छात्र और छात्रायें भारतीय ग्रामीण छात्र और छात्राओं से उतनी ही भिन्न हैं, जितनी जमीन आकाश से। ऐसा शायद ही कोई कुटुम्ब हो, जिसमें जीवनकी विरूपता न आ गई हो। बाप अधकचरा है; तो बेटा सम्पूर्ण पश्चिमीय रंग से रंजित! यह सब मातृ-भाषा को ठुकराने ही के कारण।

अंग्रेजों को संसार सभ्य कहता है, परन्तु मैं उनको बर्बरों के भी सम्राट् कहता हूं। मुसलमानों ने शुद्ध भारतीयता की बेलि में अपनी संस्कृति, सभ्यता और मनोवृत्तियों का जहर सींचना प्रारम्भ किया; परन्तु वे हृदयहीन न थे। उन पर भारत के जीवन का प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप भारतीयता की थोड़ी बहुत रक्षा हो सकी। अंग्रेजों ने आकर कुछ भी बाकी न रखा। जिस दिन कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की नींव पड़ी, उसी दिन भारत के विनाश की भी नींव पड़ी। सरल कुटिलता हीन भारतवासी अपनी उदारता के बश और अपने ही रोग से पीड़ित यह विपद् घटना देख न सके। कोई करता भी तो क्या करता? पतन की घनी रात्रि का आगमन हो रहा था। इस आंग्ल-शिक्षा ने जो कसर थी पूरी कर दी। मेकॉले ने इस बात को समझा था; उसने कहा—"आज हमने भारत को जीत लिया!" सब आश्चर्य चकित रह गये। भारत के एक प्रान्त पर साधारण-सा अधिकार प्राप्त कर एक कॉलेज की स्थापना कर फिर कहीं किसी देश को जीता गया है? परन्तु मेकॉले ने ठीक कहा था। अंग्रेजी शिक्षा ने भारत विजय का कार्य आरम्भ कर दिया जो आज जाकर सम्पूर्ण हो चुका है। नादिरशाह, तैमूरलंग आदि खूनी थे—मानवी रक्त की हसरतों के दीवाने थे। धन की लालसा ने उन्हें डाकू बना दिया था; परन्तु अंग्रेज तो साम्राज्य के लोलुप थे। उन्होंने देखा, किसी राष्ट्र की जड़ों में विष सींच देने से उस वृक्ष की नस-नस में विष का प्रभाव फैल जाएगा। और उसकी जीवनी शक्ति विषाक्त होकर वृक्ष का प्राणान्त कर देगी। अंग्रेजी-भाषा के रक्त मिले विष ने मातृ-भाषा की संजीवनी को विषधारा में बदल दिया; फलस्वरूप आज भारत धन, हृदय, मन और मस्तिष्क—सभी में पतित और पिछड़ा हुआ है। वह दिन दूर नहीं है, जब यह भयंकर कंकाल भस्म की ढेर हो जाएगा।

प्रतिदिन के जीवन की सुन्दरता के साथ-साथ मातृ-भाषा राष्ट्र की जीवनी-शक्ति है। यह भारतवर्ष के साथ किये गए प्रयोग से स्पष्ट है। इस विषय में अधिक लिखने की यहाँ अब और आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मातृ-भाषा की महत्ता सार्वभौमिक है। क्या राष्ट्रीयता की रक्षा में, क्या समाज और संस्कृति की रक्षा में, मातृ-भाषा के आशीर्वाद प्रत्येक पशु-पंछी कीट-पतंग वृक्ष-फूल आदि सभी में अमृत की तरह भरे पड़े हैं। जीवन की समस्या का मीमांसक चाहे जीवन के उस अद्वितीय प्रकाशपूर्ण पहलू को विसर जाए; परन्तु जीवन को मुग्ध दृष्टि से देखनेवाला कवि-कलाकार और साहित्यवेत्ता इस बात को नहीं भूल सकता। जो सौंदर्य उसकी आत्मा की आंखें देखती हैं, जो आनन्द उसकी आत्मा प्रतीत करती है—जो तत्व वह सत्यरूप में ग्रहण करती है, वह हाड़चाम के मनुष्य शरीर ही से नहीं। वह चराचर जड़-चेतन प्रकृति से घिरे हुए मानव से। 'मानव' कह देने से हमारे सामने हाथ-पैरवाले सार्थक ध्वनि में बोलनेवाले द्विपदा मनुष्य की कल्पना हो आती है; परन्तु साहित्यकार और प्रेमी को मानव कहने से चराचर में व्याप्त मानवता की कल्पना दिखती है। हम मानवता को दया, क्षमा, त्याग बन्धुभाव और प्रेम में मानते हैं। वह मानवता को ईश्वरत्व की आभा और उसकी अनन्त सौंदर्य गरिमा में मानता है। साहित्यकार का जीवन-लक्षण दो जून पेट भरना ही नहीं है, वह आत्मा और शरीर का सम्मिलित कार्य-नियमन है। अतः वह मातृ-भाषा को अपने देश के मनुष्यों की भाषा ही से सीमित नहीं रखता। मातृ-भाषा से उसका अर्थ है फूलों, तितलियों, लहरों, उद्घोषों, ध्वनियों आदि की भाषा भी। और सचमुच देखा जाए, तो जो भाव, विचार और कल्पना मनुष्य में उठती हैं, वे, उस भूखण्ड की प्रसरित प्रकृति की मूक प्रेरणात्मक प्रतिध्वनियों के अलावा और कुछ नहीं हैं। अतः साहित्य का खरा सौन्दर्य मातृ-भाषा का सौन्दर्य है। रवी बाबू की गीतांजलि चाहे कितनी ही अच्छी अंग्रेजी में लिखी हो, परन्तु वह बंगला की गीतांजलि नहीं हो सकती। 'राम चरित मानस' जैसी हिन्दी में है, वैसी गुजराती में नहीं हो सकती।

अतः मातृ-भाषा राष्ट्र के बाह्य और आन्तरिक स्वरूप की नियामक, निर्माता और रक्षक है। राष्ट्र के उद्धार की जिनको लगन है, जो चाहते हैं, कि उनकी मातृ-भूमि का उद्धार हो—उनको चाहिये कि वे अपनी मातृ-भाषा का उद्धार करें। मातृ-भाषा का उद्धार जीवन का नवनिर्माण कर देगा। संस्कृति की कविता राष्ट्रीय गौरव के कीर्ति-स्तम्भ दिखा कर जर्जर राष्ट्र की रगों में नवीन क्रान्ति का रक्त भर देगी। लुप्त सभ्यता का पुनः नवप्रभात होगा और मुर्झाया राष्ट्र-हृदय विकसित हो उठेगा।

प्रकृति का प्रकाश

[श्री बी० एल० सराफ बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस०]

अन्त में हम जाग ही उठे। कुछ-कुछ अन्धकार था। ऊषा के मुख से उदासी की लम्बी श्वासें निकल रहीं थी अतएव थोड़ी-थोड़ी ठण्ड भी लग रही थी। उजेला भी समीप था किन्तु भगवान् विवस्वान का प्रभातकालीन उजेला नहीं, केवल टिमटिमाते हुए दीपक का। दीपक! हमारी चिन्तित और आमोदभरी विचित्र जीवन-रात्रि बहुत कुछ इसके ही साथ बीतती है। अन्धकार में जागने पर हमारा वही सहारा है। पर दिन हो आने पर भी कभी-कभी यह जलता हुआ दिखाई देता है। हमें इस दीपक से प्रेम हो गया है।

भगवान् भास्कर की शुभ्र किरणमाला, पक्षियों की बोली, प्रातःकाल की मन्द वायु का सुगन्धि-आप्लावित संदेश और जंगल के वृक्ष, हमें जगाने नहीं आते। यह उनका कर्त्तव्य तो है क्योंकि ये स्वाभाविक हैं—स्वच्छन्द हैं। हम तो वृक्ष नहीं, पक्षी भी नहीं किन्तु उनसे उन्नत जीव हैं। क्या इसी कारण पक्षीगण हमारे पास आने की इच्छा तक नहीं करते और प्रायः भयभीत रहा करते हैं। क्या हमारी उत्क्रान्ति भीति प्रद है?

यदि उनकी इच्छा ऐसी है तो यही सही! वे न आवें, पर उनकी कृपा के पात्र बनने के लिये, हम तो पक्षी नहीं हो सकते, हमें ईश्वर की विशिष्ट सृष्टि होने का सौभाग्य प्राप्त है हम कोई साधारण वस्तु नहीं। हम उनसे उन्नत है! वर्त्तमान हृदयहीन परिस्थिति में रहते हुए भी हम भावपूर्ण शिष्टता दिखा सकते हैं, निर्दयी होते हुए भी दयाशील हो सकते हैं, शास्त्रज्ञ पण्डित होकर भी विवाह विरोधी हो सकते हैं, सभ्यता के प्रबल प्रवाह में बहते हुए भी अपना ध्यान रख सकते हैं पर पक्षी नहीं हो सकते। क्या आवश्यकता है कि जीवन संगीत की मधुरिमा में झूलते-झूलते गहरी निद्रा में सोई हुई आँखें वृक्षों और पक्षियों के कलरव से ही जाग्रत हों, और विश्व की ओर भी देखें। राष्ट्रसंघ भी तो हमें पक्षी बनने की सलाह नहीं देता, उसका अनुशासन भी तो नहीं कि हम पक्षी हो जावें—हम वृक्ष हो जावें। निःशस्त्रीकरण समिति यदि हमें स्वावलम्बी और साथ ही पर-दुःख-कातर बनाने का प्रयत्न भी बतलाती है तो हम माने ही क्यों? परमुखा-पेक्षी कौन नहीं? ज्ञानी तथा त्यागी होते हुए भी इस युग के सभ्य-संसार के सहचारी तथा धन के भिखारी होने में ही ईश्वर हमारा कल्याण करेगा।

पहाड़ों की अनुपम सुखमा में कर्कशता है, दिवाकर में असहनीय आतप और दाहकता है, जल की शान्ति में भी शक्ति का आवेश और सर्वकालीन विकारग्रस्त संचालन है, प्रकृति की सजीव मोदकता के भीतर वृक्षों और दुर्धर्ष चट्टानों का संचय है।

मनुष्यो! संसार के ऐश्वर्य का सौंदर्य और मूल्य अबतक भी तुम नहीं समझ सके। तुम प्रायः अपने घरों में और हवेलियों में अधिक रहा करते हो इस कारण शायद तुम्हारा शरीर भय का घर हो गया है।

बाहर आने पर भी तुम्हारे चारों तरफ घर ही रहा करता है। बृहत् काय पर्वतों को देखते समय तुम्हारा घर कहता है यह अरक्षित वनस्थली भयंकरतापूर्ण हैं। आदित्य का दर्शन होते हुए ही तुम्हारा घर कहता है आतप अधिक है, बाहर न जाइये। फिर तुम्हें गिरि-मालाएँ; अंशुमाली, और प्रकृति क्यों न भयंकर दिखे? पक्षीगण कह रहे हैं कि प्रकृति की गोद में आओ यह बिना घर का घर कितना रम्य है। विरोध का यहाँ नाम भी नहीं क्योंकि हमारा जीवन तो संगीत-मय है और संगीत में विरोध कैसा? वहाँ कर्कशता कैसी? इससे हमारा क्रीड़ा-क्षेत्र ही अपना घर बनाओ और वहाँ हमारे साथ ही रहा करो। पर यहाँ दीपक को धन्यवाद देने का अवसर न रहेगा, क्योंकि यहां जागृति स्वयं प्राप्त है दीपक की टिमटिमाहट में बीता हुआ बन्द जीवन—उन्नत सृष्टि का ठेका लेकर पला हुआ एकांगी जीवन, प्रकृति की इन निर्बन्ध लहरों में कब खेलेगा!

चाह

[श्री दिलीप सिंघी]

पुष्पलता! कलियों की उठती हुई उमंगों और चढ़ते हुए रंग पर तुझे नाज़ है! इसलिए ही न कि आजकी ये तेरी कुमारिकायें कल की युवतियाँ बन संतप्त मानव-जीवन में कुछ पराग, कुछ शीतलता का संचार करेंगी! त्यागिनी! जीवन को इस दृष्टिकोण से देखना तूने किससे सीखा? कैसी अगम्य सी प्रतीत होती हो!

प्रतिदिन अपना सारा वैभव लुटा देने में ही किस अपूर्व आनन्द का आभास होता है?

लतिके! ऐसी मन में आती है कि तेरे मूक प्रेम की एक पाषाण-प्रतिमा बना उसे पूजा करूँ।

शारीरिक ज्ञान

[श्री डाक्टर बी॰ एम॰ कोठारी, एम॰ बी॰ बी॰ एस॰]

(५)

मनुष्य-देह के सुन्दर ढांचे की रचना तो हो चुकी; अब रहा उसकी गति-विधि का वर्णन। आज-कल के सभ्य और आधुनिक जीवन में जितना कार्य यंत्र से चलता है, उतना और किसी mechanism का उपयोग नहीं है। परन्तु इस प्रचलित प्रणाली के सिद्धान्तों की उत्पत्ति भी मनुष्य-देह की उदाहरणीय रचनाओं से है। हमारी देह में असंख्य motors काम कर रहे हैं और उनका सकुशल कार्य्य मनुष्य-रचित motors से कहीं सफल और करामाती है। रात-दिन, जन्म से लगा कर मृत्यु तक बिना accident के सफलतापूर्वक काम करते रहना क्या आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत होता है। इनमें एक प्रकार की बिजली जैसे force से शक्ति का संचालन होता है, मगर न तो कभी Spark-plug trouble, न short circuit अथवा Fuse का ही झगड़ा है। इस पर तारीफ यह है कि न तो यह कभी अपनी importance ही जताते हैं, न कभी हैरान ही करते हैं। मगर हैं स्वतन्त्रता के पक्के पुजारी; न तो हम इन्हें काम करने से रोक सकते हैं, न हम कुछ हुक्म ही चला सकते हैं। इनकी सफल गति, अलौकिक शक्ति और सहयोग पर ही हमारा जीवन निर्भर है।

इन motors का नाम है muscles, और इनकी संख्या करीब ४१० है। यह दो प्रकार के हैं—Voluntary अर्थात् हमारी इच्छा के आधीन हैं, और Involuntary, जो अपना कर्त्तव्य बिना किसी दखल के किये जाते हैं। यह प्रबन्ध कितना आवश्यक है, वर्ना Vital organs जैसे Heart, lungs इत्यादि के muscles को सोते में कौन regulate करता ?

खाना खाते समय हाथ को रोटी थाली से मुंह तक ले जानी पड़ती है। इस action में अंगुलियां, कलई, कुहनी, forearm और arm सब ही को भाग लेना पड़ता है। इनके muscles की गति अगर Co-ordinated और Purposeful न हों तो सम्भव है कि रोटी ठीक जगह पर न पहुंचे। मुंह के पास ही तो नाक है। मगर नहीं, इन Voluntary muscles का इतना उत्तम Co-ordination है कि अंगुलियों से रोटी अच्छी तरह पकड़ लिये जाने पर ही कलई और कुहनी का movement सीधे मुंह की ओर होगा।

इन muscles के Fibres लाल और सफेद होते हैं। इनके छोटे (Contraction) होने से ही movement पैदा होता है। खून की नलियां fuel लाती हैं, जिसके जलने से शक्ति उत्पन्न होती है और फलस्वरूप जो जहरीली ashes बनती हैं वे आराम (inactivity) के समय veins के द्वारा हटाली जाती हैं। इन विषैले

पदार्थों के संग्रहित हो जाने से muscles में Cramps होते हैं।

अब इन muscles के संचालन का वर्णन शेष रहा। Brain-cells ज्ञान-तन्तुओं द्वारा इन पर शासन करते हैं। इन cells के समूह को Centres बोलते हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं जो एक विशेष कार्य ही करते हैं—जैसे Breathing और Vasomotor centres इत्यादि। इन्हें special centres कहना चाहिये। यह अपने Fields of activity के साथ ज्ञान-तन्तुओं द्वारा सम्बन्धित हैं। इन nerves के कर्त्तव्य में भी विभाग किया हुआ है। कुछ sensory हैं जो आवाज दर्द सुगन्ध इत्यादि feelings को इन centres के पास interpretation के लिये ले जाते हैं। motor वे हैं जो glands और muscles को काम करने के लिए उत्साहित करते हैं। मगर दोनों indirectly सम्बन्धित अवश्य हैं; जैसे sensory nerves शेर की आवाज की खबर Brain को देती है; वहां पर एक पल में निश्चय हो जाता है कि बचने का सरल उपाय वृक्ष पर चढ़ जाना है, बस instantaneously पैरों के muscles को motor nerves द्वारा दौड़ कर वृक्ष पर चढ़ जाने की आज्ञा मिल जाती है। यह हुआ Conscious action। इस act में Receiving और Despatch दोनों ही Offices में काम हुआ। मगर कुछ acts ऐसे होते हैं जिनमें Brain को सोचने की कुछ तकलीफ नहीं करनी पड़ती है, जैसे खाना देखते ही मुंह में पानी भर आता है। यह है Reflex act। बच्चे में अधिकतर ऐसे ही acts होते हैं, मगर Nerve cells के education अथवा schooling हो जाने पर Complex acts किये जा सकते हैं। आदत डालने का अर्थ है इन cells को किसी विशेष प्रकार की training देना। अच्छे discipline से इन cells को अत्यन्त सुघड़ और चमत्कारिक बना सकते हैं। तब ही तो बचपन में अच्छी आदतें बनाने पर इतना जोर दिया जाता है। मोटर चलाना वैसे तो प्रारम्भ में बड़ा कठिन प्रतीत होता है, परन्तु इन cells को अच्छी शिक्षा मिलने पर वे इतनी दक्ष हो जाती हैं कि कुछ Practice के बाद बातों में लगे हुए होते भी मोटर ठीक तरह चला लेना अत्यन्त सरल हो जाता है।

आनन्दमय जीवन

[श्री मनोहरसिंहजी डांगी, एम० आई० सी० एस०, आई० बी० के०]

सभी मनुष्य सुखी और आनन्दमय जीवन की इच्छा रखते हैं; सांसारिक पदार्थ प्राप्त होने से सुख अथवा आनन्द मिलेगा, ऐसा बहुत लोग मानते हैं। किन्तु सच पूछा जाय तो धन आदि प्राप्त होने पर भी सुख दूर-दूर ही भागता है। जिनके पास पर्याप्त धन, प्रासाद, नौकर आदि उपस्थित है, वे भी दुःख के नाम पर रुदन किया करते हैं, यह मालूम हो रहा है। धन या रहने का स्थान न होने पर भी मस्त, आनंदी, निश्चित और सुखी कई मनुष्य होते है। सुख की प्राप्ति का आधार धन या संसार के अन्य पदार्थों पर नहीं है। शांतिमय जीवन व्यतीत करने की आदत प्राप्त करने मे ही सुख प्राप्त होता है और शांत जीवन सत्य मार्ग के अवलम्ब से प्राप्त होता है। जो मनुष्य सत्य मार्ग से चलते हैं, वे ही सदा शांत व गम्भीर होते हैं।

पवित्र जीवन बिताना, मन के ऊपर संयम रखना और हृदय विशुद्ध रखना यह मनुष्य का कर्तव्य है। आवेश चिंता और भय को त्याग देना चाहिए। आत्म-बल प्राप्त करके शांति का अनुभव करने की इच्छा करनी चाहिए। इस शांति को जो मनुष्य प्राप्त करते हैं उनमें सद्गुण-राशि देदीप्यमान बन कर रहती है। महात्मा पुरुषों के समागम में आने से मालूम होता है कि वे कैसे शांत, गम्भीर और आनन्द युक्त होते हैं। धन और वैभव के प्रभाव में भी उनका चित्त व्यग्र नहीं होता। वे सदैव आनन्द में मस्त रहते हैं। इन महापुरुषों की संगति से मनुष्यों को शांति मिलती है और उनमें सद्गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

जिनमें शान्ति का लेश नहीं है उनमें कितनी भी प्रबल शक्ति होने पर भी वह बन्ध्या रहती है। अशांत मनुष्य की शक्ति व्यर्थ में क्षीण हो जाती है। व्यवहार के छोटे-छोटे कार्यों में विघ्न उपस्थित हो जाने से जिनका चित्त व्यग्र बनता है, क्रोध से पूर्ण होता है और शांति विहीन हो जाता है उनमें आत्मबल का प्रभाव होता है और जो कुछ दैहिक बल हो, उसका भी क्षय होता है। ऐसे मनुष्य निर्बल माने जाते हैं। इनका प्रभाव अन्य लोगों पर कुछ भी नहीं होता। लोभ व पाप के फंदे में फंस कर जो मनुष्य आगे विपत्ति प्राप्त होने पर क्रोधवश हो जाते है और अपने को भूल जाते हैं वे हतबल होकर दुःखी होते हैं। जिनका अपने स्वभाव पर स्वामित्व नहीं रहता उनका प्रभाव अन्यों पर कैसे पड़ेगा? सहज बात में उत्तप्त होने के स्वभावयुक्त मनुष्य निजी बल को खो देते हैं। धर्मिष्ठ और सद्गुणी मनुष्य ही अपने को वश में रख सकते हैं और अपने आवेशों को रोक कर अपने मनो-विकारों की ओर पूर्णतया दृष्टि रख सकते हैं। जो मनुष्य वासनाओं को काबू में रख सकते हैं, उन्हीं के वश में मन धीरे-धीरे आकर दास सदृश रहता है और शांति उन्हीं की दासी बनती है। अतएव सुखी जीवन की प्राप्ति के लिए शान्त स्वभाव बनाना चाहिए।

अपने आप पर जिनका स्वामित्व नहीं रहता, मनो-विकारों के अधीन बन कर अपनी तृष्णा की तृप्ति में ही फंसे रहते हैं, पापमय सुखों के पीछे दौड़ते रहते हैं, उनके भाग्य में सुखी, शान्त और विजयी जीवन का आनन्दानुभव असम्भव है। शान्ति का वास्तविक स्वरूप उनके लिए सदैव अगम्य रहेगा चाहे वे शान्त जीवन बिताने की इच्छा क्यों न प्रदर्शित करते हों। किन्तु वह इच्छा केवल भौतिक ही है। हृदय की शांति उनको कभी मिलने की नहीं।

आत्मबल युक्त मनुष्य यथार्थ शान्ति का अनुभव कर सकता है। संसार की वासनाओं को अङ्कुश में रखने से ही आत्मबल प्राप्त होता है। जो यथार्थ में शान्ति को प्राप्त करता है उसको कभी शोक या पश्चात्ताप करने का अवसर प्राप्त होता ही नहीं। ऐसे मनुष्य कभी अधर्माचरण करते नहीं या संसार की कामनायें उनको फंसाती नहीं। दुःख, शोक, कष्ट उनको सहन करना होता नहीं। आत्माभिमान या स्वाभिमान के लिए उन्हें कोई अनुचित कार्य करना पड़ता नहीं। वे केवल सत्य मार्ग से चलते हैं; कपट को छोड़ कर और सभी व्यवहार चलाते हैं।

सत्य के साथ में ही शांति का निवास होता है। शांतिमय जीवन रहने से ही सुख मिलता है। मन और इन्द्रियां जिसके वश में नहीं हैं उसके सभी कार्यों में विघ्न उपस्थित होते हैं। जिनकी शांत प्रकृति है वे सरलता से अपने कार्य पूर्ण कर सकते हैं। सुख और कर्त्तव्य इन दोनों में सत्यशील और सरल मनुष्य भेद नहीं मानता। वह जो कर्त्तव्य करता है उसमें ही सुख का अनुभव करता है। जो मनुष्य इन्द्रिय जन्य सुखों और क्षणिक भोग-विलासों के दास बन बैठे हैं, उनको ही कर्त्तव्य कर्म करते हुए दुःख होता है।

जिनको क्षणिक सुख भोगने की इच्छा है उनको शान्ति मिलनी असंभव है। ऐसे मनुष्य विषयांध होते हैं और अपने विषयों की प्राप्ति के लिए अधर्माचरण करने को भी प्रवृत्त हो जाते हैं। इन अधर्मी पामरों को शांति या सुख मिलता नहीं। क्षणिक सुख प्राप्त होने पर भी अन्त में दुःख में गिरना पड़ता है। मनुष्य अपने आवेशों और विकारों का त्याग करने से ही यथार्थ सुख और शान्ति का अनुभव कर सकता है। आवेश और विकार मनुष्य के सुख और शान्ति के घातक हैं। श्रेष्ठ सद्गुणों को धारण करके सत्य मार्ग पर चलने का निश्चय करना यही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है और इसीसे शान्ति लाभ अवश्य मिलता है।

संसार में कोई कार्य कठिन नहीं है। उस कार्य को सिद्ध करने का मार्ग हस्तगत कर लेना चाहिए। मार्ग जान कर उसी मार्ग से प्रयत्न करने पर कार्य सिद्धि होती है। जो मनुष्य अपने मन को अङ्कुश में रख कर अहर्निश उसी को शान्त रखने के लिए, आत्म-बल प्राप्त करने के लिए और गम्भीर बनाने के लिए यत्नशील रहता है वह निःसन्देह सुख और यथार्थ शान्ति का लाभ कर सकता है मनको वश में रख कर मनुष्य जितना आत्मसंयम सिद्ध करता है, सुखी जीवन का अनुभव उसको उसी प्रमाण में मिलता है। प्रति दिन आत्मसंयम का अभ्यास करना चाहिए। स्वकीय निर्बलता को जान कर उसको दूर करना चाहिए। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, वैसे ही आत्मबल, शान्ति और सुख का अनुभव होता रहेगा। यह लाभ मिलते ही उसकी स्थिति में परिवर्त्तन हो जायगा। वह अधिक सुखी और बलवान बनेगा और अपने यथार्थ में कर्त्तव्य का यथार्थ में पालन कर सकेगा।

मनुष्य जितना पवित्र, आत्म-संयमी और दृढ़-निश्चयी बनता है उतना उसको सुख, शांति, और निर्भयता का लाभ होता है। मन-संयम से जीवन मुक्ति हो सकती है। शरीर त्याग के समय पर भी शांति रह सकती है। मनको वश में रखने के लिए प्रथम अपने विचारों को अङ्कुश में रखने की आदत डालनी चाहिए, कर्त्तव्यों का सूक्ष्म रूप से अवलोकन करना चाहिए। कुविचारों की ओर दुर्लक्ष करना चाहिए। धर्म कार्यों को करने की इच्छा होते ही उनको शीघ्र कर लेना चाहिए। गुप्त रखने योग्य बात को प्रकट कर देने की इच्छा होते ही उसको तुरन्त ही दबा कर उस बात का स्फोट न करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए। अपने कर्त्तव्य, विचार और इच्छाओं को वश में रखने की आदत हो जाने से मन भी दासवत बन जाता है। मन की गूढ़ समस्याओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपने मन का स्वभाव मालूम हो जाता है। इस प्रकार मन को वश में रखने का अभ्यास हो जाने से आत्म-ज्ञान से आत्मबल प्रकटता है। आत्मबल प्रकट हो जाने से फिर शान्ति दूर रह नहीं सकती। आत्मज्ञान बिना मानसिक सुख दूर का दूर ही रहता है।

जो मनुष्य काम क्रोधादि आवेशों के वश में रहते हैं, अल्प-अल्प बातों पर भी क्रोधाविष्ट हो जाते हैं वे पवित्र आत्मज्ञान प्राप्त कर नहीं सकते। जहां पर शांति है वहां ही आत्मज्ञान रहता है। निर्बल मनुष्य अपने को वश में रख नहीं सकते। वे अपने मन की तरंग के अनुसार अपना मार्ग बारंबार बदलते हैं। जैसे कोई मस्तानी घोड़े पर बैठ कर उसको वश में रखने का बल न होने पर भी लगाम छोड़ देता है, और जैसे वह घोड़ा ऐसे सवार को दुर्दशा में गिरा देता है वैसे ही मन को वश में रखने की जिनमें सामर्थ्य नहीं है ऐसे निर्बल मनुष्यों की अत्यन्त दुर्दशा होती है। उनको प्रतिक्षण विपत्ति, दुःख, शोक में ग्रस्त होने की संभावना होती है। परन्तु चतुर अश्वारोही अश्व को दौड़ाते-दौड़ाते अपने इच्छित मार्ग से ले जाता है, जहां चाहे वहां खड़ा रखता है, ऐसे ही जो मन के स्वामी बने हैं, वे मन की प्रेरणानुसार कुपथ को ग्रहण नहीं करते किन्तु मन को अपने इष्ट और श्रेय के मार्ग में ले जाते हैं। उसको अङ्कुश में रख कर सत्यमार्ग से आत्मज्ञान के मार्ग में ले जाते हैं और सुख, शांति, सामर्थ्य और आनन्द का लाभ कर सकते हैं।

सुखी रहने के लिए मन को प्रथम ही वश में लाना चाहिए, शान्ति प्राप्त करने के लिए मन को दासवत् बना देना चाहिए। शान्ति के अभाव में सुख नहीं मिलता; मन वशीभूत होने से ही शांति मिलती है। भयभीत, निर्बल, और चिन्ताग्रस्त मनुष्यों के दुःखी हृदयों में शांत जीवन से ही शान्ति उत्पन्न होती है। शान्त मनुष्य ही निर्बल मनुष्य को बल दे सकते हैं। आपत्काल में शांत मनुष्य ही दूसरों को सांत्वना और धैर्य दे सकता है। आत्मबलशाली मनुष्य दूसरों का सहायभूत बन सकता है। निर्बलता का त्याग करने पर ही दूसरों को साहाय्य देने का अधिकार प्राप्त हो सकता है।

गांव की ओर

[श्री गोवर्द्धन सिंह महनोत, बी० कॉम]

गताङ्क से आगे

(१८)

बिस्तर पर बैठ कर सुशील बोला, "कान्तिचन्द्रजी, आप क्षमा करेंगे अगर मैं आपका विस्तृत परिचय पूछूं।"

कान्तिचंद्र जरा मुस्कुरा कर बोले, "वाह, इसमें क्षमा मांगने की क्या जरूरत है? मेरा नाम कान्तिचन्द्र है और यहां के जमींदार बाबू दीनानाथजी के वयोवृद्ध सेक्रेटरी के स्वर्गवासी हो जाने पर मैं उस पद पर नियुक्त किया गया हूँ।"

सुशील भी कुछ मुस्कुरा कर बोला, "आपका यह परिचय तो जब से मैंने आपका नाम सुना तभी से जानता हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप कहां के हैं, किसके लड़के हैं, आपका परिवार इस समय कहां है और परिवार में कौन-कौन व्यक्ति हैं, यहां नियुक्त होने से पहले आप क्या करते रहे, किस वसीले से इधर आना हुआ आदि। अगर आपको कोई विशेष आपत्ति न हो तो मुझे अपनी ये सभी बातें बताने की कृपा कीजिये।"

कान्तिचन्द्र कुछ क्षणों तक बड़ी गौर से सुशील के चेहरे की ओर देखते रहे, फिर बड़े धीरे-धीरे बोले, "सुशील बाबू, मेरा सविस्तर परिचय आपके लिये कोई विशेष महत्व का नहीं। केवल आपका अमूल्य समय नष्ट होगा। इससे अच्छा तो यह होगा कि आप और मैं मिल कर अपने प्रस्तुत ग्रामोद्धार के मसले पर विचार करें और उसे हल करने की कोई सूरत खोज निकालें। व्यर्थ की बातों में समय बिताना मेरी राय में अच्छा नहीं।"

सुशील अत्यधिक गम्भीर होकर बोला, "आपका कहना उचित है। समय का सदुपयोग होना ही चाहिये। लेकिन मेरे हृदय में आपका परिचय जानने के लिये बहुत उत्सुकता है। ग्रामोद्धार के मसले को हल करने के लिये तो जीवन भर ही उद्योग करना है। पर अगर आपको अपना परिचय बताने में कोई विशेष आपत्ति न हो तो मैं क्यों न पूछूं? परिचय से प्रेम और विश्वास बढ़ता है। आपको और मुझको एक साथ रह कर कार्य करना है, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि एक दूसरे का परिचय प्राप्त करें। बिना परिचय प्राप्त हुए जो मित्रता होती है, वह रेल में हुई मित्रता के समान अस्थायी होती है।"

कान्तिचन्द्र भी बड़े गम्भीर होकर बोले,' 'सुशीलकुमार, मेरा परिचय पूछने में आपका जो विशेष अभिप्राय है, उसे मैं उसी समय से समझता हूँ, जब कमला ने आपको अलग ले जाकर कुछ कहा था। आपके स्वभाव, शक्ति और उद्देश्य पर मेरा पूर्ण विश्वास और सद्भाव है। मैं इस बात को आपसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं समझता कि मैं ही आनन्द-कुमार हूँ। कमला मेरी ही अभागी पत्नी है। आपके शिवपुरी के संगठन के विषय में जब से मैंने सुना, आपके प्रति एक आकर्षण, एक श्रद्धा मेरे हृदय में पैदा हो गई। मैं स्वयं किसी

एक ऐसे मित्र की खोज में था, जिससे दिल की सभी बातें खुल कर कहूँ, अपने जीवन का रहस्य जिसे बताऊँ। अपने रहस्य को वर्षों से पेट के भीतर छिपाये रखने से मेरा पेट फूलने-सा लगा था। मनुष्य के लिये एक ऐसे संगी का होना अनिवार्य है, जिससे वह अपने सुख-दुःख की सभी बातें कर सके। यह एक कहावत है कि एक से दो तो मिट्टी के भी अच्छे होते हैं। फिर आप और मैं तो मनुष्य हैं हाड़ मांस के बने हुए। अभी मैं नहीं कह सकता कि आपके और मेरे विचारों में कितना अन्तर है, फिर भी मुझ में अगर मनुष्य को पहचानने की कुछ भी शक्ति प्राप्त है, तो उस शक्ति के सहारे मैं इस बात को विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आप से मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा, प्रत्युतः भलाई ही होगी।"

सुशील बड़ी तत्परतापूर्वक बोला, "आनन्दकुमारजी, इस बाबत आप खातिर— जमा रखें। मेरे द्वारा स्वप्न में भी आपका अनिष्ट नहीं हो सकता। बहन कमला को मैं अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता हूँ। आपका अनिष्ट कर क्या मैं उसका अनिष्ट करूँगा? मुझे तो यह सोच कर अत्यधिक प्रसन्नता है कि बहन कमला के दुर्दिन अब खत्म होने को आये।"

क्रान्तिचन्द्र उसी प्रकार गम्भीर मुद्रा बनाये हुए बोले, "सुशील बाबू, सबसे पहले तो मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मुझे आप आनन्दकुमार न कह कर क्रान्तिचन्द्र ही कहें, क्योंकि वह नाम अभी तक निरापद नहीं है। यह तो आपको मालूम ही होगा कि मुझे २० वर्ष सपरिश्रम कारावास की सजा मिली थी और मैं जेल तोड़ कर भाग निकला था। अतः आप स्वयं ही विचार कर सकते हैं कि एक फरार और छद्मवेशी कैदी को उसके असली नाम से पुकारना कहाँ तक निरापद हो सकता है? अनुकूल समय न आने तक मुझे गुप्त रहना है और यही कारण है कि मैं अपना परिचय छिपाये हुए गुप्त रूप से यहां रहता हूँ।"

सुशील किंचित् लज्जित होकर बोला, "वाकई में मुझसे गलती हुई, आप क्षमा करें। अब मैं इस विषय में बहुत सावधानी रखूंगा। लेकिन मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ, धृष्टता क्षमा करें। आपको जेल से भागे इतना लम्बा अरसा हुआ, लेकिन आपने बहन कमला की, जो आपकी वियोगाग्नि में निरन्तर जल रही थी, कोई सुधि क्यों न ली? क्या आपको उसकी याद न रही? अथवा उसका कोई अपराध हुआ?"

क्रान्तिचन्द्र जरा बेचैनी अनुभव करते हुए बोले, "ओह, बड़ा दुखदायी प्रश्न है सुशील बाबू। कमला को भूलूं! उस कमला को, जो मेरे जीवन का अवलम्ब और मेरी प्रेरक-शक्ति है। उस कमला को भूलूं, जिसकी यादमात्र ही सदा मुझे कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर करती रही है। कमला का अपराध! ओह, अपराधी तो मैं हूँ उसका, जिसने उसके विचारों की कभी कद्र न की। सबसे बड़ा अपराध तो मेरा यह है कि मैंने अपने रहस्यमय कर्त्तव्य पथ को कभी कमला से जाहिर न किया। मैंने उसके आगे अपने कार्यों की कैफियत देना सदा अर्थहीन समझा। मेरा और कमला का जीवन सूत्र एक साथ गुंथा है, इस बात को जानते हुए भी इसको अनुभव करने की कोशिश न की। इतना सब होते हुए भी मैं कमला को कभी भूला नहीं। अपने कर्त्तव्य की प्रेरणा के साथ-साथ वह कमला ही की पुण्य और प्रियस्मृति थी, जिसने मुझे द्विगुणित उत्साह और होशियारी के साथ जेल से भागने में समर्थ किया। जेल से भागने से लेकर आजतक मैंने जो कष्ट सहे हैं, वे निःसन्देह असह्य और दहलाने वाले हैं, लेकिन कमला की याद ने मुझे उन कष्टों को फूल के समान सह लेने की शक्ति दी। मैं कमला को कभी भूला नहीं। कई बार छद्मवेष में कलकत्ता जा कर मैं कमला को देख आया हूं। एक बार अलबर्ट हाल में चन्द्रावती देवी का 'सहशिक्षा' पर व्याख्यान था। कमला और विमला दोनों वहां

गई थीं। मैं भी कमला को देखने के इरादे से वहां गया था। एकाएक कमला की निगाह मुझ पर पड़ गई। यद्यपि इन दाढ़ी मूछों के कारण वह तुरन्त मुझे पहचान न सकी, पर वह जल्दी ही पहचान लेती, अगर मैं वहां से हट न आता। दूसरी जगह खड़ा रह कर मैंने देखा कि फिर कमला का जी व्याख्यान में न लगा। उसकी आंखें निरन्तर पुरुषों की भीड़ में मुझे खोजती रहीं। सुशील, मैं कमला का कभी नहीं भूल सकता। केवल अनुकूल अवसर न आने तक मैं अपने आपको उस पर प्रकट नहीं कर रहा था। अब सम्भव है, शीघ्र ही वह अवसर आयगा, जब कमला और मैं फिर एक साथ रहेंगे।"

जब हमारी भावुकता में ठेस लगती है तो हम शून्य में ताकने लगते हैं, दिल में विचारों की इतनी तरंगे एक पर एक इतनी जल्दी आने लगती है कि हम किसी तरंग विशेष को उस तरंग समुदाय से अलग नहीं कर सकते। ऐसा जान पड़ता है कि जैसे हम कुछ विचार ही नहीं रहे हैं। सुशील जितना कर्त्तव्यशील था, उतना ही भावुक भी था। कई व्यक्तियों को यह कहते देखा गया है कि जो व्यक्ति भावुक होते हैं, वे कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं हो सकते। लेकिन दरअसल ऐसा नहीं है। भावुकता तो कर्त्तव्यशीलता का एक आवश्यक अंग है। युवक हृदय जितने अधिक भावुक होते हैं, उतने ही कर्त्तव्यशील भी अधिक होते हैं। वृद्ध पुरुषों में भावुकता और कर्त्तव्यशीलता दोनों ही कम देखे गये हैं। भावुकता में आकर तो युवक बड़े बड़े कार्य कर डालते हैं। हां, तो कान्तिचन्द्र की भावुकता पूर्ण दर्दभरी बातें सुन कर सुशील को न जाने कैसा सा लगा। वह कुछ देर के लिये अन्यमनस्क सा होकर खिड़की के बाहर अंधेरे में देखने लगा।

कुछ देर बाद इस सन्नाटे को कान्तिचन्द्र ने ही तोड़ा। वे बोले, "सुशील बाबू, आप मेरी रामकहानी सुना चाहते हैं। अच्छी बात है, मैं आपको सुनाऊंगा। मेरी रामकहानी यद्यपि वैसी कोई असाधारण नहीं, बल्कि संसार के एक हजार और एक मनुष्यों की जीवन गाथा की तरह ही है, फिर भी कुछ रहस्यमयी अवश्य है। आज बातों ही बातों में रात बहुत बीत गई। अब कुछ सो रहिये क्योंकि कल बहुत कार्य करना है। मेरी कहानी फिर कभी फुरसत के वक्त सुना दूंगा।

सुशील ने इसमें कोई आपत्ति न की और लेट गया।

(१६)

आजकल जेलों में राजनीतिक कैदियों को जितनी सुविधायें प्राप्त हैं, उतनी तो क्या उनका शतांश भी उन दिनों नहीं थी। साधारण अपराधियों से भी बढ़ कर उनके साथ सख्ती की जाती थी। यह जेल का एक नियम है कि कैदियों को अपने कपड़े त्याग कर जेल के खास कपड़े पहनने पड़ते हैं। इसी नियम के अनुसार जेल में प्रवेश करते ही प्रकाश को भी वही जेल के खास कपड़े पहनने को दिये गये। प्रकाश सिवा खद्दर के अन्य कपड़े पहनता न था। अतः उसने उन कपड़ों को पहनने से इन्कार कर दिया। पहले तो उसे जेल के सिपाहियों ने डांटा डपटा और पीटने तक की भी धमकी दी। लेकिन कोई फल न होता देख उन्होंने उसे जेलर के सामने उपस्थित किया।

जेल ने जरा मुंह बना कर, आंखें चढ़ा कर, डपट कर पूछा, "क्यों रे जेल के कपड़े क्यों नहीं पहनना चाहता ?"

प्रकाश को जेलर की इस असभ्य भाषा और अपमान जनक बर्त्ताव पर बड़ा क्रोध आया। लेकिन क्रोध को दबा कर प्रकाश चुप रहा। घृणा उसके चेहरे पर खेल रही थी।

जेलर फिर गुर्राया, "चुप क्यों है ? जबाब क्यों नहीं देता ? ये जेल के कपड़े तुझे लेने ही पड़ेंगे।"

प्रकाश ने अत्यन्त ग्लानि प्रकट करते हुये उत्तर दिया "आपने क्या भद्रता के साथ बोलना कभी सीखा ही नहीं है ? अगर आपके स्थान पर कोई यूरोपियन होता तो वह बड़ी भद्रता से व्यवहार करता, लेकिन दुर्भाग्य से आप हमारे

ही देशवासी हैं। पैसे के लिये मनुष्य कितना पतित हो जाता है, यह आपको देख कर सहज में अनुमान किया जा सकता है। मुझे जेल के खास कपड़े पहनने में कोई एतराज नहीं, अगर वे खद्दर के बने हुये हों।"

शायद आज तक जेलर को किसी ने उसी के मुंह पर ऐसा करारा जबाब न दिया था। वह क्षण भर के लिये सन्न रह गया। शायद वह अपने अधःपतन की गहराई का अनुमान लगा रहा था। फिर एक सिगरेट सुलगा कर बोला,

"मुझे यहां अपराधियों से वास्ता पड़ता है, भद्र लोगों से नहीं। आप अपनी भद्रता की पोशाक उसी अदालत में छोड़ आये हैं, जहां आपको सजा सुनायी गई है। खैर, इस बहस से मुझे कोई मतलब नहीं। मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि जेल में आने के पश्चात् यह अनिवार्य है कि आपको यहां के कपड़े पहनाये जांय। यह श्वसुरालय तो है नहीं कि आपकी सुविधाओं का ध्यान रखा जाय। अगर इस प्रकार की सुविधाओं की आवश्यकता थी तो आपने जेल आकर भारी भूल की।"

प्रकाश बोला, "आपके उपदेश के लिये हार्दिक धन्यवाद। लेकिन याद रखिये यह सुविधावाद नहीं, सत्याग्रह है।"

जेलर धुंआ छोड़ कर बोला, "भाई, बैठे बैठाये आफत मोल लेने को मैं बुद्धिमानी नहीं समझता। उसी जगह सत्याग्रह का उपयोग है, जहां दूसरों पर उसका कुछ असर पड़े। जेल में सत्याग्रह करके कष्ट पाने से क्या फायदा? ये कपड़े न पहनने से तुम्हें एक एकान्त तहखाने में रख दिया जायगा, और भी न जाने क्या-क्या कष्ट दिये जायगे। बुद्धिमानी से विचार कर कार्य करो। नादानी करना अच्छा नहीं।"

प्रकाश जरा सिर ऊंचा कर बोला, "दुःख है कि आप अभी तक एक सत्याग्रही को न पहचान सके।"

सत्याग्रही प्रकाश से अधिक बहस करना निरर्थक समझ कर जेलर ने उसे तहखाने में रखने का हुक्म दिया। यह तहखाना जेलर के आफिस के नीचे जमीन काट कर बनाया गया था। चारों ओर की दीवालें नमी के कारण गीली हो रही थीं। उन पर दीमकों ने बड़ी सुन्दर चित्रकारी कर रखी थी। यह तहखाना लगभग १८ फीट लंबा और ८ फीट चौड़ा था। एक तरफ कोने में टट्टी पेशाब के लिये एक कमोड रखा हुआ था, जो २४ घंटे में एक बार साफ किया जाता था। स्नान करने का कोई प्रबन्ध न था। तहखाने में एक विशेष प्रकार की जी मतलाने वाली बदबू आ रही थी। उस तहखाने की विशेषताओं को उसमें रहने वाला ही भली प्रकार जान सकता है। उसमें पैर रखते ही प्रकाश एक बार कांप उठा, लेकिन कर्त्तव्यशीलता इस कंपकपी को भला कब ठहरने दे सकती थी। बहुत शान्तिपूर्वक वह तहखाने में जाकर बैठ जायगा।

प्रकाश को ओढ़ने बिछाने के लिये तीन काले कम्बल, जो शायद ऊंट के बालों के बने हुए थे, दिये गये। खाने पीने के लिये एल्यूमिनियम का एक थाली और एक कटोरी दी गई। पाखाना जाने और स्नान करने के लिये भी यही कटोरी काम में लाई जाती है। बस ये तीन कम्बल और थाली कटोरी ही प्रकाश की इस तहखाने में सपूर्ण जायदाद थी।

प्रकाश को उस तहखाने में बन्द होने के करीब दो घण्टे के बाद एक 'फालतू' (ordinary) कैदी आकर उसके खाने के लिये थोड़ा सा कंकर मिला भात और दुर्गन्ध युक्त दाल तथा गोभी के पत्तों और आलू के छिलकों की तरकारी रख गया। यहां यह कह देना ठीक होगा कि जो साधारण अपराधी होते हैं उन्हें ये राजबन्दी 'फालतू' कैदी कहा करते हैं। राजबन्दियों के लिये खाना बनाने, पाखाना साफ करने, उनके वार्डों को झाड़ने बुहारने आदि सभी काम ये फालतू कैदी ही किया करते हैं। हां, तो उस खाने को देख कर स्वतः ही प्रकाश की नाक भौं चढ़ गई। लेकिन वही कर्त्तव्यशीलता का नशा, जो सब इन्द्रियों पर एक छत्र राज्य करने लगता है, विजयी रहा। ज्यों-त्यों कर प्रकाश ने

कुछ खाया और पानी पीकर अपनी कम्बलों पर जा लेटा। एक बार नजर घुमा कर उसने अपने चारों ओर देखा। उसे ऐसा लगा कि जैसे वह सारे संसार में अकेला ही रह गया है। 'अकेलेपन' का इतना कड़ा अनुभव उसे आज तक कभी न हुआ था। उसका दिल बैठने लगा। उसे लगा कि गोया वह सदेह ही उस परिचित संसार को छोड़ कर अन्यत्र चला आया है। आह! यदि उसे उस परिचित संसार का एक भी प्राणी मिल जाता! उसने एक बार फिर आशाभरी नज़र घुमाई। ओह! वह कितना प्रसन्न हुआ, उसे कितनी जीवनप्रद आशा प्राप्त हुई, जब उसने अपने कई परिचित मित्रों को अपने सन्निकट ही अपने-अपने कार्यों में मशगूल पाया। बीबी, मकड़ी अपने ताने बाने में लगी हुई थी, दीमकदेवी अपनी चित्रकारी में तल्लीन थी, छबीली चीटी अपनी उसी नाजोअदा से इधर उधर दौड़ रही थी, सहेली छिपकलियाँ भी एक दूसरी को पकड़ने में व्यस्त थीं, मूसे मियां भी कभी-कभी इधर-उधर ताक लिया करते थे, इसके अलावा सुन्दरी मक्खियां और भलेमानस चिमगादड़ भी अपनी-अपनी दिनचर्या में लगे हुये थे। इन सबके कार्यों को देखने में आज प्रकाश को इतना आनन्द और आकर्षण प्राप्त हुआ कि बड़ा तल्लीन होकर उन्हें देखने लगा। देखते देखते उसे ऐसा लगने लगा कि जैसे वह इन जन्तुओं के दिल की बातें समझता है। उसे लगा कि जैसे वह भी उन्हीं जन्तुओं में से एक है। उनके सुख दुःख में जैसे उसका हिस्सा है। उनकी आशा निराशा में जैसे उसकी आशा निराशा संबद्ध है। अंधे चिमगादड़ की दौड़ से जब बड़ी महनत से बनाया हुआ मकड़ी का भवन नष्ट हो जाता तो उसे चिमगादड़ पर बड़ा गुस्सा आता लेकिन दूसरे ही क्षण जब दीवाल से टकरा कर चिमगादड़ के सिर में चोट लगती तो उसका हृदय उसके प्रति सहानुभूति से भर जाता। इसी प्रकार जब कोई छिपकली किसी मक्खी को उदरस्थ कर बैठती तो मक्खी के दुर्भाग्य पर प्रकाश का हृदय रो उठता, लेकिन दूसरे ही क्षण जब कोई मक्खी बड़ी चालाकी से किसी छिपकली को झांसा देकर उड़ जाती तो प्रकाश का हृदय छिपकली के बुद्धूपन पर हंस उठता। इस निर्जन तहखाने में यही प्रकाश की सुख दु.ख की दुनिया थी।

(क्रमशः)

यह धर्म है कि धर्मान्धता?

(श्री फूलचन्द बाफणा)

क्या वह धर्म है जिसके नाम पर अनेकों बार धर्मयुद्ध के नाते भयंकर मानवसंहार हुआ; जिसके नाम पर शहीदी (Martyr) के लिये रक्त की नदियां बहीं; जिसके नाम पर मुसलमानी जमाने में सिक्ख गुरुओं व सिक्खों और हिन्दुओं के अगणित संख्या में सिर से धड़ जुदा किये गये; जिसके नाम पर हिन्दू साम्राज्य के समय में अनार्यों को नाना प्रकार से सताया गया; जिसके नाम पर बौद्ध राजाओं ने अपने से इतर धर्म-वालों में त्राहि-त्राहि मचा दी; जिसके नाम पर हिन्दू हिन्दू में एक पंथ दूसरे सम्प्रदाय से भिड़ा; जिसके नाम पर मुसलमानों में भी शियाओं ने सुन्नियों का और सुन्नियों ने शियाओं का कचूमर निकालने में कसर नहीं रखी; जिसके नाम पर पुरुषों ने अपने निर्दोष स्त्री बच्चों के प्राण लिये; जिसके नाम पर मन्दिर मस्जिद के निमित्त व साधारण-साधारण नाचीज बातों के लिये कलकत्ता, बम्बई, कानपुर व लाहौर के शहीदगंज जैसे मारामारी व काटाकाटी के दाढ़ी चोटी संघर्ष खड़े किये गये; जिसके नाम पर प्रायः सभी तीर्थों को कलह का धाम बनाया और कोर्ट कचहरियों में लाखों रुपयों का द्रव्य पानी की तरह बहाया; जिसके नाम पर ईश्वर व मूर्त्तिपूजा (जैसे आस्तिक-नास्तिक व द्वैत-अद्वैत के झगड़े, दिगम्बर-श्वेताम्बर मुठभेड़, स्थानक-वासी-मन्दिरमार्गी—तेरापंथी संग्राम व आर्यसमाजी—सनातनी कुश्तंकुश्ता) और मुँहपति के नाम से महा-भारत खड़े कर अपने सत्यानाश का आमंत्रण दिया जाय; जिसके नाम पर धर्माचार्य अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के वेश व क्रिया (प्रत्येक धर्म के धर्माचार्य की जुदी-जुदी पोशाक है व पृथक्-पृथक् क्रियाकाण्ड की रीतियां हैं) के लिये और उनके अनुयायी हज़ारों प्रकार के भाँति-भाँति तिलक व टीकों (प्रत्येक संप्रदाय अपना पृथक्-पृथक् भाँति का तिलक निकालता है) के लिये—अपने सच्चे व दूसरों के झूठे बतला कर (वास्तव में पोशाकें युनीफार्म की तरह हरएक की पहचान के लिये और तिलक भी ट्रेडमार्क की भाँति अपनी-अपनी टुकड़ी की पहिचान के लिये ही जुदे-जुदे मुकर्रर किये गये थे) आपस में मुर्गे लड़ावें; जिसके नाम पर धर्माचार्य आपस में नोटिसबाजी कर राग द्वेष का अमृत रस अपने अनुयायियों को पिला कर उन्हें धर्म के नाम पर उलटी सीधी पट्टी पढ़ा कर अपने अपने पृथक्-पृथक् पक्ष खड़े कर छोटी-छोटी बातों के लिये भी 'अपनी बात कहीं चली न जाय' इस मतलब से व्यूह रचना कर एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष पर आक्र-मण करावे; जिसके नाम पर यूरोप में भी रोमन कैथो-लिक, प्रोटेस्टेन्ट और नार्मन व सैक्सन इतने लड़ चुके हैं कि धर्म के नाम पर सर्वत्र नरकावास का दृश्य निर्माण किया गया था; जिसके नाम पर स्वयं ईसा-मसीह के निर्दयता से प्राण लिये थे; जिसके नाम पर

क्रूजेड की लड़ाइयाँ हुईं जो कि धर्मयुद्ध के नाम से प्रख्यात हैं – उनमें भी न जाने कितने ही प्राणियों ने अपने अमूल्य जीवन की बलि दी है जिनकी कि गिनती करना भी असंभव है; जिसके नाम पर इस भाँति ईसवी सन् के प्रारम्भ काल से प्रायः पन्द्रह सौ वर्ष तक धर्म के नाम पर इसी प्रकार सतत खून का प्रवाह यूरोप में चालू रहा है और भारत में आज भी समय-समय पर धर्म के नाम पर प्रचण्ड ज्वालामुखी फट निकलते हैं।

क्या धर्म उसे कहा जाय जिसके नाम पर कलकत्ते की काली व भारत की चामुण्डा आदि अनेक देवी-देवताओं के आगे प्रतिवर्ष करोड़ों निरपराधी भैंसे व बकरे आदि पशुओं की बलि दी जाती है और क्या मुसलमानों का धर्म भी इसी में है कि ईद को बकराईद नाम दे कर असंख्य बकरों को हलाल किया जाय ? क्या यही धर्म है कि करोड़ों पशुओं को कटवा कर उनकी चर्बी के उपयोग से तैयार किये हुए भभकेदार विदेशी कपड़ों, और अरबों रेशम के कीड़ों को उबलते हुए पानी में तड़फा-तड़फा कर उनके प्राण लिवा कर उनके रेशम से तैयार किये हुए चटकीले-भड़कीले रेशमी व मखमल के कपड़ों के बिना (अन्य शुद्ध कपड़े खद्दर आदि सादे कमकीमती व पवित्र कपड़े धार्मिक कार्यों में काम में लाना शोभाजनक न माना जाकर) अट्ठाई उत्सव मंदिरों की शोभा आदि धार्मिक कार्यों की शोभा फीकी (धार्मिक महान कार्य और कपड़े सादे ही !) समझी जाय ? धार्मिक भोजों में विदेशी शक्कर का, जो कि हड्डियों द्वारा साफ की जाती है, उपयोग करके भी, 'ज्यौनार कर धर्म कमाया' ऐसा समझा जाय ? इस प्रकार धर्म के नाम पर निर्दोष गूंगे प्राणियों का रक्त बहाना व अन्य जीव जंतुओं को परमधाम भेजना ही धर्म है ?

क्या वह धर्म है जिसके नाम पर (वाममार्गी आदि कुछ पंथों में) अनेक भोली भाली, सती साध्वी स्त्रियों का सतीत्व लूटना ही धर्म का मुख्य उद्देश्य समझा जाता है और अपनी स्वयं की मां बहिन के साथ व्यभिचार सेवन करने वाला उत्कृष्ट यानि सर्वश्रेष्ठ धर्मधोरी माना जाता है ? अरे क्या यह भी कोई धर्म है ?

क्या धर्म इसी में है कि जिस समय किसी धर्म के अनुयायियों का उनमें फैली हुई बेकारी, अशिक्षा व अगणित सत्यानाशी कुरीतियों के कारण सर्वनाश हो रहा हो, उस समय उनके प्रत्येक प्रकार के उत्थान के लिये पैसा खर्च न कर नये-नये मन्दिरमठ उपाश्रय खड़े करने के लिये, ऐसे-ऐसे हवन करने के लिये कि जिनमें लाखों मन घी जलाया जावे, बड़े-बड़े जाप-जप में, अट्ठाई उत्सव आदि उत्सवों में, धर्माचार्यों के मान में, मन्दिरों की प्रतिष्ठा में, बड़े-बड़े भोज (स्वामी-वात्सल्य आदि) करने के लिये, उपधान उजमणे व पालीतने की नवाणु टोलियाँ करने के लिये, बड़े-बड़े संघ निकालने में, तीर्थ यात्रा के लिये स्पेशलों पर स्पेशलें छोड़ने में, मणोबंध घी बोलने में इत्यादि इत्यादि कार्यों में से पृथक्-पृथक् प्रत्येक कार्य में बड़े महान आडम्बर व धूमधाम (सादगी व सरलता से व कम खर्च में धार्मिक कार्य हो भी कैसे ! के साथ धर्म के नाम करोड़ों रुपया खर्च किया जाय ? यदि आज सी ही दुर्दशा किसी धर्म की चालू रही तो उसके अनुयायियों का मटियामेट होना निश्चय ही है। जब किसी धर्म के माननेवाले ही न रहेंगे तो वह धर्म ही कैसे टिक सकेगा ? किसी धर्म के अनुयायियों के नष्ट हो जाने के पश्चात् उसके अरबों खरबों के खर्च से निर्माण किये हुए विशाल मन्दिर व बड़े-बड़े धर्मस्थानक ही किस काम के जब कि उनके पूजनेवाले व संभालने

वाले ही न रहेंगे ? क्या विना पैसे धर्म कमाया ही नहीं जा सकता ? क्या धर्म पैसों से ही मोल मिलने वाली वस्तु है ? क्या कम ख़र्च से भी उपर्युक्त धार्मिक कार्य नहीं किये जा सकते ? क्या धनाढ्य ही धर्म मोल लेकर मोक्ष जा सकेंगे और क्या गरीब बिना पैसे धर्म न कमा सकने के कारण मोक्ष से विमुख रह जावेंगे ?

धर्म के नाम पर क्या नहीं हुआ व हो रहा है ? भयंकर रक्तपात हो, व्यभिचार हो, स्थान-स्थान पर फूट का बीजारोपण हो, पशुवध हो, कुपात्रदान (संडे-मुष्टण्डे धूर्त्तों जो मौका पाकर हमारी समाज में लुच्चागिरी, लफंगाई व चोरी-जारी करें) किया जाय, और अरबों खरबों के द्रव्य का व्यर्थ खर्च कर पानी किया जाय—और तिस पर भी तुर्रा तो यह है कि ये हो सब धर्म के नाम पर ! इतना होने पर भी ऐसे कार्यों को (जो ज़माने की आवश्यकता की अवगणना कर उसकी रुख़ के ख़िलाफ किये जाँय) 'धर्म की ऊँची भावना कहा जाय यह कितना हास्यास्पद है ! धर्म के नाम पर धर्म की ऊँची भावना मान कर ऐसे बीभत्स काण्ड रचे जाने का कारण क्या ? कारण ? कारण और क्या, कारण यही धर्मान्धता ! धर्मान्धता !! धर्मान्धता !!! और यह धर्मान्धता प्रकटी कैसे ? यह प्रकटी मानव जाति के धर्माचार्यों व उनके पिट्ठू और हमारी समाज में अपने को कट्टर धर्मात्मा कहलानेवाले धर्मधोरी महाशयों की पोपलीला के मायावी जाल के कारण, उनके घोर पाखण्ड के कारण और हमारी अन्धश्रद्धा के कारण।

इस पापिणी (धर्मान्धता) से हमारा छुटकारा कैसे हो ? जिन कारणों से इसकी उत्पत्ति हुई उनको दूर करने से इसके जन्मदाताओं (हमारे धर्मान्ध व ज़िद्दी धर्माचार्यों व उनके अन्धभक्त 'कट्टर धर्मात्मा' कहलानेवालों) की झूठी पक्षापक्षी में न फँस कर, उनके मायावी जाल से मुक्त होने से, उनकी पोपशाही मिटाने से और हमारी अंधश्रद्धा को सदा के लिये बिदा देकर बुद्धिवादी बनने से अर्थात् रूढ़ीचुस्तवाद को त्याग कर व किसी के भड़काने पर भड़काए न जाकर अपनी स्वयम् की बुद्धि से काम लेना सीख कर 'मेरी सो ही सच्ची बाकी सब झूठी' ऐसा मानना छोड़ कर 'मेरी सो ही सच्ची नहीं पर सच्ची सो ही मेरी' इस कथन का पालन करने के लिये हर समय कटिबद्ध रहने से।

जब हम हठवाद छोड़ कर बुद्धिवादी बनेंगे तो हमें अपने आप भान हो जायगा कि 'धर्मान्धता' धर्म नहीं है। हाँ, तो धर्म क्या है ? मनुष्यत्व, कर्त्तव्य, फर्ज, ये सब धर्म के दूसरे नाम है। धर्म है अहिंसा, सत्य व शील धारण करने में; मन-वचन-कर्म से शुद्ध होने में; क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय छोड़ राग द्वेष रहित बनने में; निर्व्यसनी बन कर प्रत्येक प्रकार के सद्गुण ग्रहण कर सदाचारी बनने में और धर्म है हर प्रकार से स्वतंत्र बनने में यानि अपनी इच्छाओं के वश में न रह कर अथवा अपनी इन्द्रियों के पराधीन न रह कर उन्हें अपने वश में करने से। सत्य धर्म यही है। यह डंके की चोट कहा जा सकता है कि बिना इन सभी सद्गुणों के कोई धर्म 'धर्म' नाम धराने का अधिकारी नहीं हो सकता। वास्तव में धर्म कोई बुरा नहीं है क्योंकि धर्म कभी बुराई नहीं सिखा सकता किन्तु अन्धश्रद्धा के नशे में उन्मत्त होकर धर्मान्ध बन कर उसके अनुयायियों ने ही उसे कलंकित कर रखा है।

सत्य धर्म तो उपर्युक्त वर्णन किया हुआ गुणमय

धर्म ही है, किन्तु इस धर्म में दीक्षित होने के पहले हमें पक्षपात के चश्मे छोड़ देने होंगे। जैसे कि चीज एक ही है किन्तु भिन्न-भिन्न रंगवाले कांचवाले चश्मे पहनने से वह वस्तु भी वैसे ही रंग की दिखलाई देती है जैसे कि—लाल चश्मा पहनने से सब चीजं लाल ही लाल व हरा चश्मा पहनने से सब वस्तुयें हरी ही हरी दिखलाई देती हैं। यदि हम पक्षपात के चश्मे को छोड़ कर धर्मान्धता की संकुचित मनोवृत्ति को सदा के लिये तिलांजलि देकर, हठवाद को छोड़ कर बुद्धिवादी बन कर यह (ऊपर वर्णन किया गया गुणमय सत्यधर्म) सीधा-सादा सत्य समझ जांय; केवल समझ ही न जायँ किन्तु उसको कार्यरूप में परिणित करने लग जावें तो मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि हमारा उद्धार समीप ही है। धर्मान्धता का क्षय और सत्यधर्म की जय, यही हमारा उद्देश्य हो।

हार

[श्री कुंवर के० लोढ़ा, "कौल"]

बाले ! कैसा अनुपम हार !
बताओ लोगी क्या उपहार ;
इसीमें लय मेरा संसार
मिलेगा इससे निर्मल प्यार।

गूंथे हैं यह कैसे फूल
मनोहरता के हैं सब कूल;
नहीं मैं सकता इनको भूल
बिंधेंगे हिय के सारे शूल।

होगा जीवनानुपम संचार
बहेगी जिसमें वह नवधार;
हटेगा मुझ से अब वह भार
गया हूं अब तक जिससे हार।

होगी इससे नैया पार
पड़ी जो अब तक थी मझधार;
बनेगा, यही एक आधार
बाले ! गूंथा ऐसा हार।

आनन्द श्रावक का अभिग्रह

[जैनाचार्य श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज]

[फरवरी के अंक में हम श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया का 'आनन्द श्रावक का अभिग्रह' शीर्षक लेख प्रकाशित कर चुके हैं। प्रस्तुत लेख उसीका प्रत्युत्तर है। इस लेख को प्रकाशित करते हुए हम यह अवश्य प्रकट कर देना चाहते हैं कि यदि श्री रामपुरिया के लेख की भावना और दृष्टिकोण को ही समझ कर यह लेख और भी संयत और गम्भीर लिखा जाता तो श्रेष्ठतर होता। श्री रामपुरिया के लेख में केवल जिज्ञासु के प्रश्न थे—किसी सम्प्रदाय की मत पुष्टि नहीं। वास्तव में ऐसे विषयों पर बहुत गम्भीर और विशाल दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। आशा है विद्वान लेखक और पाठक इस बात पर ध्यान देंगे। —सम्पादक]

'ओसवाल नवयुवक' फरवरी सन्, ३७ संख्या १० में 'जैन-साहित्य-चर्चा' के स्तम्भ में श्री श्रीचंदजी रामपुरिया बी० काम०, बी० एल० ने भगवान श्री महावीर स्वामी के गृहस्थ उपासक आनन्द श्रावक के अभिग्रह की चर्चा की है। वह चर्चा ही प्रस्तुत लेख की मुख्य चर्चा रहेगी। चर्चा का मुख्य सूत्र यह है—

'नो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पमिइं अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिय देवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा नन्नत्थरायाभियोगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिगाहेणं वित्तिकंतारेणं'।

(आगमोदय समिति प्र० उपा० अ० १ प० १२)

रामपुरियाजी 'अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाइं' पद के लिये लिखते हैं—'कई एक विद्वान् लेखकों ने 'चेइयाइं' और 'अरिहंतचेइयाइं' इन शब्दों को क्षेपक माना है, और इसी लिये अभिग्रह का अर्थ लिखते समय इन शब्दों का अर्थ नहीं किया है'— महानुभाव? किसी के अर्थ न करने मात्र से कोई सूत्र क्षेपक सिद्ध नहीं हो जाता है। ऐसे तो कई साम्प्रदायिक विद्वानों में सूत्र ग्रन्थों के विषय में भी नवीन-प्राचीन का भेद है। पर साम्प्रदायिक विद्वानों के नहीं मानने मात्र से मौलिक सूत्र अमौलिक नहीं होते। अमौलिकता के लक्षण तो कुछ और ही होते हैं और उनको बहुश्रुतगीतार्थ लोग ही जान सकते हैं, हर एक नहीं।

डा० हॉरनोल द्वारा अनुवादित इस उपासक दशा सूत्र की इंगलिश टिप्पणी का उल्लेख करते हुए उनका लिखना है,--'परिग्गहियाणि चेइयाइं'—इसमें विभक्तियों का अन्तर विशेष शंकाजनक है'। विभक्तियों का अन्तर क्या है? यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। व्याकरण के वैकल्पिक नियमों से बने हुए एक विभक्ति के दो तीन या इससे अधिक रूप क्या अर्थान्तर के कारण हो जाते हैं? 'चेइयाइं' और 'चेइयाणि' में स्वरूप भेद जरूर है, पर विभक्ति का अन्तर जरा भी नहीं। प्राकृत भाषा के नपुंसक लिंग की पहली और दूसरी विभक्ति के बहुवचन में- चेइयाइं-चेइयाइँ-चेइयाणि ऐसे तीन रूप होते है। स्वरूप भेदों का प्रयोग करना वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। विद्वान् वक्ता इस बात का ध्यान जरूर रखता है कि उसके वाक्य में विभक्ति-भेद न हो। विभक्ति-भेद ही अर्थ भेद का कारण हो जाता है। स्वरूप भेद से ही विभक्ति-भेद या अर्थ-भेद नहीं होता। काव्य-साहित्य में 'अनुप्रासालङ्कार'- तुकबंदी कुछ महत्व रखती है; पर वह सर्वत्र स्वीकारनी ही चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है। इसका फलितार्थ यह हुआ कि देवयाणि—परिग्गहियाणि के जैसे चेइयाणि भी होना ही चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है चेइयाइं भी हो सकता है। इसमें विभक्ति का अन्तर नहीं, स्वरूप का अन्तर है। यह बात प्राकृत के प्राथमिक अभ्यासी भी भली प्रकार जान सकते हैं। डा० हॉरनोल की टिप्पणी भी संभावना मात्र है, न कि निश्चयात्मक। ऐसी अनिश्चयात्मक टिप्पणी को मान कर अति प्राचीन सूत्रों को भी केवल अपने मत की पुष्टि के लिये ही क्षेपक मान लेना न्याय-संगत नहीं है।

वे लिखते हैं 'मूलपाठ को पढ़ने से एक अन्य तरह से भी डॉ० हारनोल की मान्यता की पुष्टि होती है—'अन्नउत्थिए, अन्नउत्थियदेवयाणि इन शब्दों के बाद चेइयाइं की तरह ऐसे शब्द नहीं हैं जो उन शब्दों के अर्थ स्पष्ट करें, और यह बतलावें, कि अन्य यूथिक या अन्य यूथिक देव कौन थे। इस परिस्थिति में केवल परिग्गहियाणि शब्द के बाद ही अर्थ को स्पष्ट करने-वाले शब्दों का होना शंका उत्पन्न करता है, और उसके बाद में जोड़े जाने की सम्भावना को पुष्ट करता है'— महानुभाव! यदि इस सम्भावना को काम में लाया जाय, तो वर्तमान जैन आगमों में सैकड़ों ऐसे स्थान प्राप्त होंगे, जो क्षेपक रूप से स्वीकारे जा सकें। इसी सूत्र में इसी स्थान में परिग्गहियाणि के बाद के शब्दों को यदि अर्थ स्पष्टक मान कर क्षेपक माने जायँ, तो 'अन्नउत्थियदेवयाणि और अन्नउत्थिय परिग्गहि-याणि' पद भी क्षेपक की कोटी में क्यों नहीं माने जायें? क्योंकि 'अन्नउत्थिय' कहने से ही अन्नउत्थिय देव-याणि परिग्गहियाणि का अर्थ भी परिगृहीत हो जाता है। अन्नउत्थिय का प्रस्तावोचित अर्थ है जैन संघ से अन्य धर्मावलम्बियों का संघ — फिर वे देव हों, या भ्रष्ट चैत्य हों, या फिर अन्य कोई क्यों न हो? सबका समावेश हो जाता है। अरिहंत चेइय को अर्थ स्पष्टक मान कर क्षेपक की संभावना करना और देवयाणि को मौलिक मानना कहां का न्याय है? विद्वान् पाठक स्वयं सोचें! किसी खास कारण के बिना प्राचीन, अतिप्राचीन प्रतियों के संगत पाठ को इस प्रकार जब-रदस्ती से क्षेपक बता देना कहाँ तक ठीक है?

फिर वे लिखते हैं -'कई एक प्रतियों में चेइयाइं या अरिहत चेइयाइं न होकर चेइयाति या अरिहंत चेइयाति हैं'— महोदय! पहले के दो रूप तो प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार ठीक हैं ही। पर बाद के दो

रूपों को भी यदि प्राचीन अति प्राचीन प्रतियों में पाते हैं तो वे भी वैकल्पिक स्वरूप ही समझने चाहिये। अर्धमागधी भाषा में ऐसे कई एक प्रयोग मिलने भी हैं। ग्रन्थ लेखक लहिये मुद्रणमशीन के टाइप भी तो नहीं हैं जो उनकी लिखी हुई प्रतियां सब एकसार ही हों। संभव है, चेइयाइं-चेइयाति के पहले अरिहंत पद कहीं छूट गया हो, और इसी प्रकार इं के बदले ति, या ति के बदले इं लिखा गया हो। लहियों के लिये कहावत भी है 'नकल नवेशी अकल नदारद'— और ऐसे निरक्षर भट्टाचार्यों से 'मक्षिका स्थाने मक्षिका का' न्याय चरितार्थ हुआ हो यह स्वाभाविक है। मन्दिर मूर्तियों में नहीं माननेवालों को जरूर ऐसे लेख कुछ सहारा दे देते हैं पर विद्वानों का अन्वेषण इससे सीमित नहीं होता। चेइयाइं और चेइयाति में भी अर्थ भेद नहीं-विभक्ति भेद नहीं सिर्फ स्वरूप भेद है। दोनों का अर्थ है अरिहंतों के मन्दिर या मूर्तियां ? *

रामपुरियाजी का यह लिखना 'अन्य मतावलम्बियों को नमस्कार वन्दन न करने का, उनसे बिना बोलाए आलाप संलाप न करने का, अशन आदि न बहराने का अर्थ अर्थदृष्टि से ठीक मालूम होता है। अन्य तीर्थ के देवों से, अन्य परिगृहीत प्रतिमा या अर्हत् प्रतिमा को वन्दन नमस्कार नहीं करूंगा। अभिग्रह का इतना अंश भी अर्थदृष्टि से ठीक है, पर अभिग्रह के शेषांश के विषय में शंका उठती है, मैं अन्यतीर्थिक के देव-हरिहरादि से और अन्य तीर्थिकों द्वारा परिगृहीत अरिहंत प्रतिमा या प्रतिमा से बिना बोलाये बोलूंगा नहीं और न उनको अशन पानादि दूंगा' अभिग्रह का इतना अंश अर्थशून्य नजर आता है। प्रतिमा जैसे जड़ पदार्थ या हरिहरादि जैसे स्वर्गासीन देव कैसे किसी से पहले बात करेंगे या कैसे कोई कोई उनको अन्नादि द्रव्य देगा ?। यह समझ में नहीं आता। महोदय ! जब तक साम्प्रदायिक दृष्टि से इसका अर्थ किया जायगा तब वह अर्थ जरूर निरर्थक और अर्थशून्य ही होगा। अभिग्रह के जितने अंश में संगत अर्थ घट सके उतने अंश में संगत अर्थ घटा देना यह तो बुद्धिमत्ता, जहां नहीं घटता है वहां जबरन् घटाने की चेष्टा करके असांगत्य पैदा करना अनुचित है। अभिग्रह के जिस शेषांश के लिये शंका उठाई गई है, वह मन्दिर-मूर्ति में नहीं माननेवालों की साम्प्रदायिकता का कारण हो सकता है।

टीकाकार भगवान् अभयदेव सूरिजी महाराज अपनी टीका में लिखते हैं—

> 'तथा पूर्वं-प्रथममनालप्तेन सता अन्य तीर्थिकैः तानेव 'आलपितुं वा' सकृत्संभाषितुं 'संलपितुं वा' पुनःपुनः संलापं कर्त्तुं +++ तथा 'तेभ्यः' अन्य यूथिकेभ्योऽशनादि दातुं वा सकृत् अनुप्रदातुं वा पुनःपुनरित्यर्थः अयं च निषेधो धर्म बुद्ध्यैव करुणया तु दद्यादपि
>
> (आगमोदय स० प्र० उ० अ० १—पृ० ६२)

अर्थात्—फिर अन्य तीर्थिकों से पहले बिना बोलाये नहीं बोलूंगा। उन्हीं से बारम्बार नहीं बोलूंगा। फिर उन—अन्य यूथिकों को अन्नादि नहीं दूंगा बारम्बार नहीं दूंगा। यह निषेध धर्मबुद्धि से ही है; करुणा से तो दे भी सकता है।

इस टीका में अलाप-संलाप—अशनादि देने का सम्बन्ध अन्य तीर्थिकों से ही है। न कि देवताओं से या चैत्यों से। ऐसी अवस्था में शंका उठाना ही निर्मूल है।

महाशय ! सैन्धव नमक को भी कहते हैं और

*—'चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बे' इति हैमानेकार्थ कोशे।

सिन्धुदेश में पैदा हुए घोड़े को भी। भोजन के प्रस्ताव में सैन्धव का अर्थ घोड़ा करना और सवारी के प्रस्ताव में नमक की डलिया करना जैसे असंगत माना जा सकता वैसे ही अन्य तीर्थिक देवों से और अन्य-तीर्थिक परिगृहीत अरिहंत की प्रतिमाओं से आलाप-संलाप और आहारपानी के सम्बन्ध में अर्थ करना। जहां जो अर्थ घटित होता है उसी में उसको घटाने से टीका में कोई असंगति नहीं आती। अरिहंत चैत्यों को मन्दिर मूर्तियों को माननेवाले श्वेताम्बर यही मानते हैं और ऐसा ही अर्थ करते है। यह आर्थिक मान्यता अव्यावहारिक या अनुचित जरा भी नहीं, विचारें।

आगे चल कर वे लिखते हैं—'तेरापंथी सम्प्रदाय के स्व० विद्वान् आचार्य श्रीमद् जय महाराज ने इसका खुलासा इस प्रकार किया है—अरिहंतचैत्य का अर्थ अरिहंत के साधु हैं और देव से अभिप्राय प्रसिद्ध विष्णु महेश से नहीं परन्तु देव से अर्थ सुजेष्ठा के पुत्र शिव (महादेव) से है। जिसका उल्लेख स्थानांग स्था० ६ में है। जयाचार्य तेरापंथी थे, मन्दिर मूर्तियों में मानते नहीं थे। उपासक दशांग सूत्र में सिर्फ यही एक स्थान मन्दिर मूर्तियों का प्रतिपादक था। यह बात जयाचार्य के मत के विरुद्ध थी, उन्होंने शायद इसीलिये देवताओं और प्रतिमाओं से आहार-पानी आलाप संलाप का सम्बन्ध जोड़ कर 'देवयाणि' पद का अर्थ स्थानांग सूत्र का नाम लेकर सुज्येष्ठा के पुत्र सात्यकि नाम के विद्याधर को महादेव रूप से बताया मालूम देता है। स्थानांग सूत्र में नवमें ठाणे में कहीं पर भी यह बात नहीं बताई है कि सुज्येष्ठा का लड़का महादेव था। हां, भाविसिद्धों को सूचित करने-वाले सूत्र नं० ६९२ में बतलाया गया है कि—

एस णं अज्जो! कण्हे वासु देवे—१ रामे बल देवे-२ उदये पेढाल पुत्ते-३ पुट्टिले ४ सतते गाहावती-५- दारुते नितंठे-६ सच्चती नितंठी पुत्ते-७ सावित बुद्धे अम्मडे परिव्वायते-८ अज्जाविणं सु पासा पासावा-चिज्जा-६ आगमेस्साते उसप्पिणीते चाउज्जामं धम्मं पन्नवतिता सिज्झिहंति जाव अंतं काहिंति।

(आगमो० ठाणाङ्ग ठा० ९ सू० ६९२)

इस सूत्र में सातवें नंबर में सुज्येष्ठा नाम की निग्रन्थी के पुत्र सात्यकि का नाम तो जरूर आया है। पर उनको महादेव नहीं बताया। टीकाकार ने इसकी सम्बन्ध-कथा भी लिखी है—उसमें कहीं भी; वह महादेव था ऐसा वर्णन नहीं किया, उल्टा लिखा है कि—

ततोऽसौ सर्वांस्तीर्थकरान् वन्दित्वा नाट्यं चोप-दर्श्याभिरमते स्मेति। (पृ० ४५८)

अर्थात्—श्रीतीर्थंकर भगवानों का दर्शन कर वह क्रीड़ाओं को दिखाता हुआ आनन्द करता था। इस टीका और मूल सूत्र से तो वह सम्यक्त्वी साबित होता है और भाविसिद्धों की गणना में गिना जाता है। जयाचार्य ने यह बात कहां से लिखी, रामपुरियाजी स्पष्ट करें। इतना होने पर भी क्या जयाचार्य का मत ठीक है? नहीं। क्योंकि—'अन्नउत्थिय देवयाणि' पद है, वह बहुवचन प्रयोग है—सुज्येष्ठा का लड़का महादेव एक है। बहुवचन का प्रयोग करने से वचनभेद होगा जो अनुचित है। सुज्येष्ठा का लड़का भगवान श्रीमहा-वीर-भक्त था। अतः वह अन्ययुथिक भी नहीं था। सूत्रकार की पूज्य कोटि में भी वह नहीं था, जो बहु-मान के खातिर ही उसके लिये बहुवचन का प्रयोग करते। 'अरिहंत चेइयाणि'—पद का अर्थ उन्होंने जमालि आदि को लेकर किया है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवान् महावीर देव के और जमालि आदिकों के सिद्धान्तभेद हो जाने पर वे अरिहंत के

साधु ही नहीं रहे। न जमालि आदि अपने को अरिहंत के साधु बताते थे। उनके लिये तो 'अन्नउत्थिय' पद ही काफी था। जयाचार्य को मानने पर भी ऊपर की शंकायें बनी ही रहती हैं।

रामपुरियाजी उववाइ सूत्र से अम्बड़ के अभिग्रह की बात लिख कर शंका करते हैं कि—'अरिहंत के चैत्य को छोड़ कर मैं किसी को वन्दन नमस्कार नहीं करूंगा, ऐसा अम्बड ने अभिग्रह लिया और यदि चैत्य का अर्थ प्रतिमा ही होता है, तो क्या जैन साधुओं के वंदन का भी अंबड़ ने त्याग किया था??' अरिहंत पद के ग्रहण से साधुओं का ग्रहण नहीं होता, क्योंकि नमस्कार मंत्र में दोनों पद भिन्न हैं'।—क्यों जी? चैत्य शब्द का अर्थ साधु करते हो तो सिद्ध, आचार्य, और उपाध्याय पद के लिये आपने क्या सोचा है? नमस्कार मन्त्र में क्या पांचों पद भिन्न नहीं हैं? जब पांचों पद भिन्न हैं, तो क्या अम्बड़ ने तीन पदों को वन्दन नहीं करने का नियम लिया था? यदि अरिहंत और साधु पद के ग्रहण मात्र से पांचों पदों का ग्रहण हो जाता है तो जिस न्याय से आप दो में पांचों को ग्रहण करेंगे उसी न्याय से एक में पांचों का ग्रहण होगा।

आगे चल कर उन्होंने लिखा है—'स्व॰ श्री अमोलख ऋषिजी ने भी चैत्य शब्द का अर्थ साधु किया है'—महाशय! अमोलख ऋषिजी मन्दिर मूर्ति में नहीं माननेवाले स्थानकवासी सम्प्रदाय के नेता थे। चैत्य शब्द का अर्थ मन्दिर मूर्ति उनकी कल्पना में नहीं आ सकता था—इस विषय में जो हालत जयाचार्य की थी वही इनकी है।

रामपुरियाजी के लिखे अनुसार अमोलख ऋषिजी ने देव शब्द की व्याख्या यदि 'धर्म-देव-शाक्यादि साधु' की है तब तो एक और घोटाला पैदा हो जायगा। देव के लिये उठी हुई शंकाओं का तो जैसे तैसे समाधान कर लिया पर अब वैसी ही शंकायें धर्म के लिये भी होंगी कि धर्म के साथ आलाप संलाप और अन्नादि का आदान-प्रदान कैसे होगा? क्या धर्म कोई मूर्त है जो ये बातें होंगी?

रामपुरियाजी फिर लिखते हैं—'जयाचार्य की व्याख्या से अमोलख ऋषिजी की व्याख्या भिन्न है। तो भी इतना स्पष्ट है कि देव शब्द किन्हीं वर्तमान व्यक्ति को संकेत करके लिखा है'—महाशयजी! यदि देव शब्द वर्तमान व्यक्ति को लेकर ही सूत्रकार ने लिखा होता तो—उसका स्पष्ट नाम ही लिखते कि अमुक देव भूत व्यक्ति के सम्बन्ध में आनन्द ने अभिग्रह लिया था। सूत्रों में जहां कहीं वर्तमान व्यक्ति के लिये कहना होता है, उसका स्पष्ट नाम लिखा रहता है। यहां वैसा नहीं किया गया इससे भी स्पष्ट है कि किसी वर्तमान व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि टीकाकार ने यह बात परिगृहीत देवों के लिये ही सूचित की है। इस अभिग्रह के सम्बन्ध में जो असामंजस्य पैदा किया गया है वह सूत्र के अर्थ की खीचड़ी बना देने से ही हुआ है। टीकाकार को मान लेने पर किसी प्रकार का असामंजस्य नहीं रहता है।

वृत्तिकान्तार के सम्बन्ध में टीकाकार का मत ही द्रव्य क्षेत्र काल-भाव की दृष्टि से सर्वथा ठीक है। जयाचार्य का मत गणाभियोग से ही सिद्ध हो जाता है। लोक समुदाय की किसी भी प्रेरणा से हुए काम को 'गणाभियोग सिद्ध कार्य' माना जा सकता है और इस तरह लोक लाज कुछ अलग अर्थ नहीं रखती। ऐसा होने पर 'वृत्तिकान्तार' नाम का आगार ही निरर्थक हो जायगा। अमोलख ऋषिजी का मत एक अंश में टीकाकार से मिलता जुलता ही है।

दयापात्र प्राणियों को दया बुद्धि से आहारादि देने में पुण्य ही होता है। इसमें एकान्त पाप कहना निरामोह है। सकडालपुत्र और गोशाले का उदाहरण सर्वथा अप्रासंगिक है। सकडालपुत्र से गोशाला दया का पात्र होकर नहीं मिला था, बल्कि एक सम्प्रदाय का प्रवर्तक नेता रूप से मिला था। उसको देना-धर्म की दृष्टि से नहीं प्रत्युत गृहागत अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का कर्तव्य है इस दृष्टि से हुआ था। धर्म या तप का न होना स्वाभाविक है। धर्म सद्गुरु को सद्गुरु की बुद्धि से देने पर ही होता है यह बात कौन नहीं मानेगा ? धर्म आत्मा से कर्म की निर्जरा से संबन्ध रखता है और पुण्य शुभ कर्मो के आश्रव से। इस फर्क को जान लेने पर दयापात्रों को दया की बुद्धि से आहारादि दान के देने पर पुण्य होता है ऐसा सुनने पर बहकना नहीं चाहिये।

इस लेख के सारांश रूप में आनन्द का अभिग्रह इस रूप में था कि राजाभियोग से, गणाभियोग से, बलाभियोग से, देवाभियोग से, गुरु की आज्ञा से, और वृत्तिकान्तार की परिस्थिति से भिन्न अवस्था में अन्य-तिर्थिकों को गुरु बुद्धि से वन्दन-नमस्कार नहीं करूंगा, उनसे पहले आलाप-संलाप नहीं करूंगा, धर्म-बुद्धि से अन्न पानी भी नहीं दूंगा—दया के पात्रों को दया बुद्धि से कोई निषेध नहीं। साथ ही उन छः आगारों को छोड़ कर अन्य तीर्थिकों के देवों को और अन्य तिर्थिकों द्वारा परिगृहीत * जिन मन्दिरों को और मूर्त्तियों को भी वन्दन-नमस्कार नहीं करूंगा।

यहां पर यह लेख समाप्त होता है। रामपुरियाजी के लेख को लेकर ही इस में चर्चा की गई है। किसी संप्रदाय की निन्दा करना इस लेख का कतई ध्येय नहीं है। यदि इसी प्रकार की शंकायें और पैदा की जायेंगी तो यथा साध्य उत्तर दिया जायगा। इस लेख के सम्बन्ध में यदि कोई लिखना चाहें आनन्द से लिख सकते हैं।

---

* 'अरिहंत चेइयाइ'—पद का अर्थ जिन प्रतिमा और जिनमन्दिर कई लोगों को असंगत मालूम देता है। परन्तु जिन प्रतिमाओं की प्राचीनता से और मन्दिरों के खण्डहरों की प्राचीनता से ही आज जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध हो रही है। महंजोदडो के टीले से निकली हुई जैन-मूर्तियों को देख कर ही तो वे लोग प्रश्न कर बैठते हैं—क्या ऋग्वेद से पहले का जैनधर्म है ?' जो कल तक अधिक से अधिक पार्श्वनाथ स्वामी से ही जैनधर्म की प्राचीनता स्वीकारते थे। वह टीला पांच हजार वर्ष पहले का माना जाता है। पांच हजार वर्ष पहले क्या अजैन लोग जैन प्रतिमाओं को मानते होंगे, सुज्ञ पाठक विचारें। डॉ० होरनोल की आड़ लेकर 'अरिहंत चेइयाइं' पद को उड़ा देनेवाले जैन इतिहास के प्रति अन्याय नहीं करते क्या ?

हमारे समाज के जीवन मरण के प्रश्न

[आज, जब सारे संसार में, एक सिरे से दूसरे तक क्रान्ति की लहरें उठ रही हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक विचार और प्रत्येक मान्यता की तह में घुस कर उसकी जांच की जा रही है, जब कि बड़े-बड़े साम्राज्य और बड़े-बड़े धर्मपंथ भी जड़ से हिल गये हैं—तब, हम कहां खड़े हैं ? किस ओर जा रहे हैं ?—जीवन की ओर, अनन्त यौवन की ओर ? या—पतन और मृत्यु की ओर ?

आप समाज के हितचिन्तक हैं ?— मानव-जाति के विकास में विश्वास रखते हैं ? तो, आइये। इस स्तम्भ में चर्चित समस्याओं पर अपने विचार हमें प्रकाशनार्थ भेज कर इनको सुलझाने में, अन्धकार में से टटोल कर रास्ता निकालने में, समाज की मदद कीजिये ।—सम्पादक ।]

संगठन

(२)

आज हमारे संगठन में शिथिलता आकर हमारे जीवन की गति अवरुद्ध हो गई है ! समाज के हृदय की धड़कन बन्द सी हो रही है ! क्या इसका कोई उपाय होगा या हो सकता है ? इस पुकार पर कौन वीर हैं—जिनका खून उबलता है ? हमारे पंच नामधारी मुखिया किधर हैं ? संगठन की दिशा में या संगठन का संदेश पहुंचानेवाले युवकों के विरोध में ? किससे पूछें—कौन इसका उत्तर देता है ?

संगठन के अभाव में हम आज अपने समाज की महान् विभूतियों को भूले बैठे हैं ? हमें अपनी प्रतिष्ठित गौरव-मूर्तियों का परिचय नहीं, हमें अपने विद्वानों के समागम का लाभ नहीं ? पंचायत, संप्रदाय, धड़े, पार्टी आदि के विभिन्न नामों से हमारा भयंकर विच्छेद हो चुका है ! अब......?? क्या कोई ऐसी भी वस्तु होगी कि जो सम्मेलन, संगठन, समागम और सहयोग की भावना उत्पन्न करे—विच्छेद, असंगठन और फूट का पुलिन्दा जलकर राख हो जाय ! समाज के भले के लिये बस, अब तो एक ही साधन है, एक ही उपाय......संगठन !!

हमारी सभा संस्थाएँ

श्री ओसवाल नवयुवक समिति, कलकत्ता

वार्षिक प्रीति-सम्मेलन एवं प्रीति-भोज

प्रेषक—श्री कन्हैयालाल मणौत मंत्री

समिति का वार्षिक प्रीति-सम्मेलन ता० २५-३-३७ मिति फाल्गुन सुदी १ शनिवार को स्थानीय दादाजी के बगीचे में श्रीयुक्त विजयसिंहजी नाहर बी० ए० की अध्यक्षता में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। वैसे समिति की नियमावली के अनुसार प्रत्येक वर्ष प्रीति-सम्मेलन तो किया ही जाता है, पर इस वर्ष प्रीति-सम्मेलन के साथ साथ उतने ही महत्व का दूसरा आयोजन भी था और वह था समस्त ओसवालों का प्रीति भोज।

गत वर्ष भी समिति के प्रीति-सम्मेलन के अवसर पर हल्का (Light)प्रीति-भोज किया गया था और उस समय समाज-हितैषी महानुभावों ने यह सदिच्छा प्रकट की थी कि यदि यही Light refreshment पूरी सहल का रूप धारण करे और फिर से सब भाई एक जगह बैठ कर भोजन करें तो कितना आनन्द उत्सव हो, और पुराने भेद-भाव को भूल कर पुनः पारस्परिक सद्भावना को लेकर विराट् जातीय समागम का शुभावसर प्राप्त हो। जन साधारण की इस मनोकामना को देख कर तथा ऐसे सामाजिक सम्मेलनों (Social gatherings) की एक खास उपयोगिता महसूस करते हुए इस बार सम्मेलन के साथ बृहद् प्रीति-भोज का आयोजन भी समिति की ओर से किया गया था।

समिति के सदस्यों ने बड़े उत्साह के साथ यह प्रस्ताव स्वीकार किया था और इस जातीय अनुष्ठान के कार्य में वे प्राणपण से जुट गये थे। जातीय समारोह की सद्कामना के विचार से समिति का यह विश्वास था कि इसमें समस्त सज्जन एक अत्यन्त उपयोगिता महसूस करते हैं और इसलिये यह कार्य बड़े विराट् रूप में होगा, पर ज्यों-ज्यों प्रीति-भोज का प्रस्ताव ओसवालों की गद्दियों में फैलता गया त्यों-त्यों अप्रत्यक्ष रूप से विरोध की लहर भी बढ़ती गई। वास्तव में हमारे मुखियाओं और उनके अनुगामियों की धारणा में प्रीति-भोज का सामाजिक रूप और पकड़ गया था। प्रकट और अप्रकटरूप से सभी लोग इस विचार की सराहना करते रहे—पर विरोध का

कारण तो यह था कि १५-२० वर्ष से जो सहलें बन्द हो रही हैं--उसके कारण पारस्परिक द्वेष से व्यक्तियों में एक दूसरे के सामने मुखातिब होने तक का साहस नहीं रहा, फिर जन सहयोग का यह कार्य किस तरह किया जाय। उनके दिमाग में यही जाला फैल रहा था कि वे जिस काम को नहीं सुलटा सक रहे थे, उसे युवक लोग इस तरह आसानी से कर देंगे--पर समिति की ओर से मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि समिति का उद्देश्य किसीका विरोध करने का नहीं था। उसे तो केवल इस उपयोगी कार्य को पूर्ण करना था और प्रसन्नता है कि उसने वही किया। इस अवसर पर लगभग १००० महानुभावों की उपस्थिति हुई थी। और इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह आयोजन एक बड़ी-भारी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। कलकत्ते की ओसवाल जन संख्या के खयाल से उपस्थितों की संख्या कम मालूम देगी फिर भी यह काम बिना किसी भी ओर से विरोध उपस्थित हुए हुआ और आम तौर पर सभी तरफ से आन्तरिक सहानुभूति और हार्दिक सहयोग के शब्द आए।
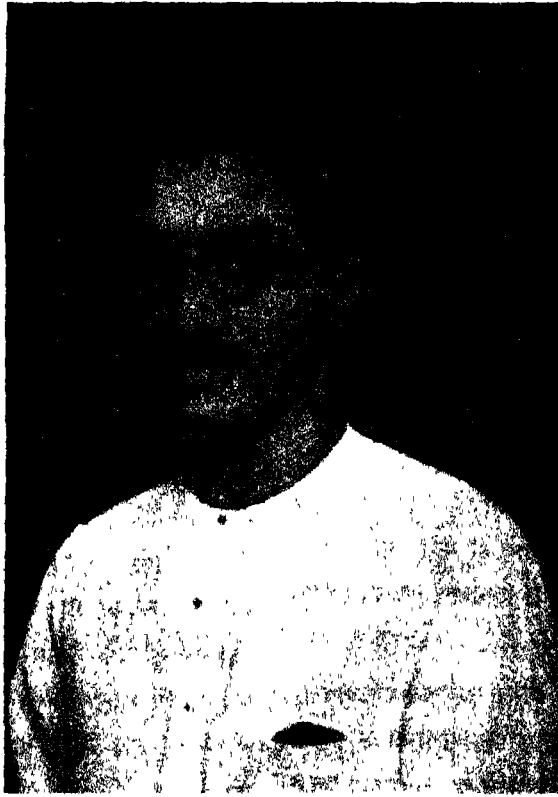
श्री विजयसिंहजी नाहर

इस वर्ष का प्रीति सम्मेलन आपके सभापतित्व में सम्पन्न हुआ था।

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने कोई विरोध नहीं आया, फिर भी साहस और आत्मावलंबित कार्य-शक्ति के अभाव में कई लोगों ने अपने मस्तिष्क से एक सुदर्शन चक्र अवश्य निकाला और समिति के काम में परदे के भीतर रह कर बाधा डालने का प्रयत्न किया। कई लोगों को यह पत्थर पकड़ाया गया कि समिति ढाये, पांचों, और दस्सों को अपने साथ मिलाना चाहती है। इस सम्बन्ध में तो केवल इतना ही कहना है कि समिति के सामने न तो यह प्रश्न आया था और न समिति को इस बात पर कोई खास निश्चय करने की आवश्यकता ही पड़ी थी। फिर भी प्रसन्नता की बात है कि लोगों में अब समयानुकूल खुद विचार करने की ताकत आ गई है, अतः उन लोगों का वह चक्र और दूर न जाकर वहीं कट गया। समिति ने तो समस्त ओसवालों को निमंत्रित किया था--अर्थात् जो भी अपने आप को ओसवाल समझता हो, वह सम्मिलित हो सकता था।

प्रायः १५-२० वर्ष पहिले जो सहलें हुआ करती थीं,

उनका चन्दा लम्बी फड़दियों से होता था, इसलिए पहले और पीछे का सवाल रहता था। नाम ऊपर नीचे आ जाने से भी व्यर्थ झगड़ा मच जाया करता था। इसी कारण से एक लिस्ट की जगह दो लिस्टें साथ-साथ होने लगी और फिर तो रुपये एक गोल चौक पर भराए जाने लगे जिससे की छोटे बड़े का कोई ख्याल ही न रहा। चन्दे भरने में भी स्वेच्छा को जितना स्थान नहीं था, उतना दबाव चौथाव का था, इसलिए ये सहलें धनियों की चीजें हो गयी थी। बिना उनकी सहानुभूति और अग्र-सहयोग के उनको करने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था क्योंकि इन सहलों में जो आर्थिक टूट रहती थी, वह उनके बिना पूरी नहीं हो सकती थी। साधारण जनता का उसके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं था। समिति ने चिट्ठे की प्रथा को उठा कर केवल रसीदों से चन्दा उठाना शुरू किया। आगे-पीछे कम बेसी का कोई सवाल न था। जिसकी इच्छा हो वह एक पाई से लेकर अधिक से अधिक अपनी इच्छा अनुरूप चन्दा भर सकता था। इससे चन्दे का सम्बन्ध केवल गद्दियों में न रह कर जन साधारण आदि व्यक्तियों के साथ तक हुआ। प्रीति-भोज में सभी जगह के और सभी वय के लोग सम्मिलित हुए थे।

प्रीति-सम्मेलन की कार्यवाही ठीक ४॥ बजे से आरम्भ की गयी थी। श्रीयुक्त माणिकचन्दजी सेठिया ने 'पंचायत के पुनर्संगठन' पर सारगर्भित भाषण * दिया। पंचायत का आदर्श रूप क्या है वह किस ढांचे पर खड़ी की जानी चाहिए और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उसमें कितना स्थान देना चाहिए, आदि प्रश्नों पर आपने इस भाषण में अच्छा प्रकाश डाला। श्री मोतीलालजी नाहटा ने 'समाज से' शीर्षक सुन्दर कविता पढ़ कर सुनाई। श्रीयुक्त कन्हैयालाल मणौत ने विनोदात्मक लेख पढ़ा जिसमें उन्होंने कुछ रंग के छींटे डाले। श्रीयुक्त सन्तोषचन्दजी बरड़िया बी० ए० ने समिति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए प्रीति-सम्मेलन और प्रीति-भोज की महत्ता पर अच्छा भाषण दिया। बाद में श्रीयुक्त सिद्धराजजी ढड्ढा का भाषण हुआ। आपने युवकों को नए उत्साह के साथ आगे बढ़ते देख कर प्रसन्नता प्रकट की और समाज की दब्बू मनोवृति की आलोचना की। इसके बाद संगीत हुआ। बाद में सभापतिजी का भाषण हुआ। आपने युवकों के साहस की प्रशंसा की और युवकों में उत्पन्न हुई जागृति को उज्वल भविष्य का परिचायक बतलाया। अन्त में धन्यवाद देकर सम्मेलन विसर्जित हुआ। इसके पश्चात् प्रीति-भोज शुरू हुआ। प्रीति-भोज की सारी व्यवस्था का भार बाबू श्री० खींवकरणजी बांठिया के ऊपर था और आपने बहुत ही सुन्दर व्यवस्था की थी। समिति इसके लिए आपकी आभारी है।

समिति के प्रीति-सम्मेलन और प्रीति-भोज में जो आय-व्यय हुआ उसका पूरा हिसाब आगामी अंक में प्रकाशित कर दिया जायगा। जितनी आय हुई थी, उसी माफिक समिति ने प्रीति-भोज की व्यवस्था की थी, न बचत का खयाल था और न टूट का। पर ठीक प्रीति-भोज के अवसर पर ही जो चन्दा प्राप्त किया गया था उसके कुछ रुपयों को बचत में समझना चाहिए। आज तक सामूहिक जितनी भी सहलें हुई हैं उनमें प्रायः कुछ न कुछ टूट ही रही है। यह समिति का सौभाग्य है कि पहले प्रीति-भोज में ही उसने यह आदर्श खड़ा कर दिया है कि बड़े-से-बड़ा आयोजन भी सुव्यवस्थापूर्वक किया जाय तो उसमें कोई टूट नहीं रह सकती।

* सम्पूर्ण भाषण अन्यत्र प्रकाशित किया गया है।
—सम्पादक।

सम्पादकीय

युवक क्या कर सकते हैं ?

आजकल आमतौर से यह शिकायत की जाती है कि युवकों ने सारे समाज, राष्ट्र और संसार के सुधार, उन्नति, संगठन, और लोक-निर्माण का ठेका ले लिया है--यह बात सत्य होते हुए भी कहनेवाले की ओर से इसमें एक व्यंग की अन्तर्स्थिति रहती है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा, ऐतिहासिक अन्वेषण, और राजनैतिक,--आर्थिक गुलामी की प्रबल वेदना तथा रूढ़ियों की निरर्थकता के योग से आजकल युवक-शक्ति ने समाज और राष्ट्र की गतिसंचालन का कार्य ले लिया है और इसलिये जिन लोगों के हाथ में पहले ये अधिकार थे, उनसे अब अपहरण कर लिये जाने पर स्वभावतः ही उनका विरोध होना जरूरी है। जिसको आदमी अपना गौरव समझता है, उसको वह आसानी से छोड़ नहीं सकता- चाहे उस गौरव की वास्तविक विभूतियाँ उसके रूढ प्रयोगों और अयोग्य हाथों में जर्जरित होती चली जावें। हम मानते हैं कि वृद्धों के अनुभव विशाल हैं, उनके हाथों में साधनों की कमी नहीं, उनमें बहुतों का प्रभाव भी कार्यकारी है, पर केवल इनके होने से ही तो किसी संस्था, समाज या राष्ट्र का उद्धार नहीं हो जाता ? जरूरत है तो इस बात की, कि वृद्धों में इनका उचित उपयोग करने की तत्परता हो, अपनेको समाज के सेवक मान कर सबी भलाई की चेष्टा की जाय, और व्यक्तियों के पारस्परिक वैमनस्य को सामाजिक अन्तर्द्रोह, या शिथिलता का कारण हरगिज नहीं बनाया जाय। जब समाज में रूढ़ियों की कसौटी पर रचे हुए अपराध सामाजिक विच्छेद और व्यावहारिक बहिष्कार का रूप ले लें-- या इनका उग्र स्वरूप समाज की सारी सामूहिक क्रियात्मक शक्तियों को नष्ट कर दे, तो इनका पुनर्निमाण तो होता ही है; युवकों का हस्तक्षेप तब घृणा और असहयोग की वस्तु क्यों हो ? युवक लोग न तो समाज से बाहर के हैं, न समाज के विरोधी। तब उनके कार्यों में अग्रगण्य व्यक्ति धोखे और दिशा-मूढ़ता का सन्देह क्यों करें ? सच्चे युवक का तो धर्म ही कार्य करते रहना है-- वह किसी भी प्रकार की शिथिलता को सहन नहीं कर सकता। यदि वृद्ध समाज के हित के इन कामों को करते रहते या करते रहें तो युवकों को अग्रगण्य होने का शौक नहीं- पर जब वे ऐसा नहीं करते तो युवकों के कार्य रुक नहीं सकते। और यह संभव भी कैसे ? चारों तरफ आज समाज की स्थिति इतनी विकल हो गई है कि जीवन संग्राम में वह सहायक होने के बदले कठिनाइयाँ और व्यवहारिक आपत्तियाँ उत्पन्न करती है। जीवन संग्राम की दृष्टि से वृद्धों का अस्तित्व ही क्या ? वृद्ध अपने जीवन

संग्राम से कई वर्षों पहले निपट चुके—जब अन्दरूनी और बाहरी प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्तियाँ इतनी तीव्र, इतनी कठिन न थीं। उस समय की विजय से वे अपने को सुरक्षित मान कर शिथिल हो सकते हैं—और हो ही रहे हैं, पर जिनको अभी जीवन के ५० वर्ष पूरे करने हैं, जिनको सारा संग्राम लड़ना है, वह सामाजिक संगठन की शिथिलता और व्यक्तियों की अकर्मण्यता का पोषण एक क्षण मात्र भी नहीं कर सकते। यदि एक तरफ तो वृद्ध यह चाहें कि वे खुद समाज के नेता बने रहें—उनकी राय और सहयोग के बिना कोई कार्य उठाया ही न जाय, और दूसरी ओर वे खुद किसी काम को करें नहीं या कर न सकते हों तो यह स्थिति हमको शांति के लिये अगम्य प्रतीत होती है। यह मानना भूल है कि युवक वृद्धों का विरोध करते हैं, परन्तु यह ठीक है कि युवकों की कर्मशीलता और वृद्धों की शिथिलता तथा पारस्परिक वैमनस्य की प्राचीनता के कारण विरोध हो जाता है।

कलकत्ते में अभी गये महीने में श्री ओसवाल नवयुवक समिति के प्रीति-सम्मेलन के अवसर पर समस्त ओसवालों के एक बृहत् प्रीति भोज का भी आयोजन किया गया था। कलकत्ते में १५ वर्ष पहले होली के अवसर पर समस्त ओसवालों की 'सेलें' हुआ करती थी जिनमें १५-२० हजार आदमियों की उपस्थिति होती थी। समाज के संगठन का वह एक विशाल आयोजन होता था; पर कालान्तर में आपस की फूट और धड़ेबाजी, और कई बार व्यक्तिगत व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण समाज का वह संगठन टूट गया! धड़े और पार्टियों के ये अभियोग इतने बढ़ गये—और बढ़ते चले गये कि फिर किसी भी पंच या मुखिया का साहस नहीं होता था कि वह चिट्ठा प्रारम्भ करे। इस बार समिति का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और सामाजिक संगठन--जो समिति का मुख्य उद्देश्य है--की सद्भावना से समिति ने समस्त ओसवालों को प्रीतिसम्मेलन के अवसर पर प्रीतिभोज में सम्मिलित होने को निमंत्रित कर दिया। इस आयोजन के अवसर पर हमें समाज के बृद्धों और मुखियाओं की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को अधिक निकट से देखने का अवसर मिला। 'चीज अच्छी है, और करने योग्य है!' इतना सब ने कहा, पर उनका सहयोग नहीं मिला और जिनका मिल सकता था--उनका भी नहीं मिलने दिया गया। खैर, प्रीतिभोज तो होना था--और हो गया, पर उन लोगों के मन में रह ही गई कि जो काम वृद्धों और मुखियाओं का था, वह युवकों को करने दिया गया—युवक जैसे समाज का अछूत अंग हो। हमें परम सन्तोष है कि समिति ने यह काम कर युवकों पर किये गये व्यंग का समुचित उत्तर दिया है।

इस वर्णन से पाठक युवक और वृद्धों के कार्यभेद की प्रवृत्ति से जानकार हो गये होंगे। ऐसी घटनाएँ समाज में आये दिन होती रहती हैं। वृद्ध तो कुछ कर नहीं सकते—क्योंकि बहुत कर चुके—और अब करने का रस नहीं। जिस रूप में जो कार्य वर्षों पहले हुआ था, उसमें वे परिवर्त्तन नहीं कर सकते, और बिना परिवर्तन के उसको करने के लिये न साधन है, न सहानुभूति।

समाज के युवक बन्धुओ! यह एक ही घटना नहीं है, न मालूम ऐसी कितनी घटनाएँ हो रही हैं—और होती आवेंगी; आपको तो सदा सेवा और बलिदान, शक्ति और सहनशीलता, विरोध-सहन और दृढ़ता के साथ जीवन के मैदान में घुसते जाना चाहिये। समाज के कहे जानेवाले मुखिया और वृद्ध आपको सहयोग

दें या न दें, आपको तो एक मार्ग पर चलते रहना है कार्य-कार्य-कार्य ! शिथिलता और असहयोग उन्हें शोभा दे सकता है पर आपको नहीं ! यदि उनकी ओर से समाज के सच्चे संगठन, सुधार, या अन्य परिष्कारों के लिये कोई प्रस्ताव आता है तो आप दौड़ कर उनके साथ हो जाइये, अपनी मेहनत से उसे सफल बनाइये। यदि वे कोई कार्य नहीं करते, या नहीं होने देते, या ऐसा काम करते हों जो समाज को रसातल में ले जानेवाला हो, तो उसकी परवाह न कर अपना मनोनीत कार्य करते जाइये। विरोध से हार कर तो आप कोई काम कर ही नहीं सकते, क्योंकि विरोध किस काम में नहीं होता ? पर आप विरोध की ओर न जावें, आपको तो केवल यही देखना होगा कि जिस काम पर आपने हाथ डाला है, वह वास्तव में समाज के लिये उपयोगी या आपके खुद के लिये वास्तव में उपयोगी है या नहीं ?

इस समय समाजों की कायापलट हो रही है और युवक लोग इस कायापलट के नाटक के प्रधान अभिनेता हैं। वे ही भविष्य में समाज के वृद्ध और मुखिया होंगे, इसलिये उन्हीं पर भविष्य निर्भर है। कल जो समाज के मुखिया बनेंगे, उनका आज कार्यकर्त्ता बनना जरूरी है। यदि युवकों के लिये यह प्रश्न है कि वे क्या कर सकते हैं—तो वृद्धों के लिये पहले यह प्रश्न है कि वे स्वयं क्या कर सकते हैं—या उन्होंने क्या किया है ? जिसने खुद काम किया है या कर सकता है—वह कभी दूसरे की शक्ति का ओछा अनुमान नहीं करता। हमारी समझ में नहीं आता कि समाज और व्यक्तित्व के नाते युवकों और वृद्धों में क्या अन्तर है ? समाज के ऐसे काम भी आते रहते हैं कि युवकों का सहयोग माँगा जाता है, तब क्या युवक भी हाथ खींच कर नहीं कह सकते कि वृद्ध क्या कर सकते हैं ? संसार की क्रान्तियां और आन्दोलन दिखा चुके हैं कि यदि युवकों में सेवा और बलिदान की सच्ची भावना है, आत्म-निर्भरता और साहसशीलता है, विरोध-सहिष्णुता और कार्य-कुशलता है, तो ऐसा कोई काम नहीं है जो युवक न कर सकते हों; ऐसा कोई कार्य नहीं, जो युवकों द्वारा न हुआ हो। इतने पर भी 'युवक क्या कर सकते हैं ?'—वाला व्यंग सुन कर हमारी छाती फटी जाती है ? युवक-शक्ति की इतनी विगहर्णीय समालोचना ? इन व्यंग करनेवालों से क्या कोई यह नहीं पूछता कि युवकों ने क्या नहीं किया—और वे क्या नहीं कर सकते ? क्या उनके क्रोध ने देशों को नहीं उलट डाला ? उनके हास्य-रुदन ने इतिहास नहीं रच डाले ? उनकी शक्ति पर राष्ट्र नहीं जग-जमाये या नहीं जगमगा रहे हैं ? क्यों नहीं हम वृद्धों से ही पूछें कि आपने ही युवकपने में जो कार्य किया था, वह वृद्ध होकर क्यों नहीं करते ? देखें, उनके पास इसका क्या उत्तर है ? युवावस्था में जो कार्य नहीं हो सका, वह वृद्धावस्था में क्या होगा। यह मुखियाओं की फिजूल की लड़ाई है, यदि वे खुद कार्य नहीं कर सकते, तो युवकों को भी क्यों नहीं करने देते ? जिस समय युद्ध में निराश हुए सेनानायक ने यह कहा था—'Revive the youth of this country and I have won.' उस समय यह व्यंग करनेवालों ने उसकी जबान क्यों न रोक ली ? 'युवक क्या कर सकते हैं ?' इसका उत्तर इस लेखमें नहीं दिया जा सकता। इसका उत्तर तो जातियों और राष्ट्रोंके इतिहाससे मिलेगा ? या मिलेगा सेवा और बलिदान की ओजपूर्ण कहानियों में ?

टिप्पणियां

समाज सुधार

सभी मानते हैं कि वर्तमान युग परिवर्तन और उलटफेर का जमाना है जिसमें नित्य नई-नई समस्याएं हमारे सामने आती हैं और ध्यान बँटाती रहती हैं। युग की प्रेरणाओं में एक स्वाभाविक बल होता है---जिसके जोर का मुकाबिला करना कट्टर से कट्टर रूढ़िवादी के लिये भी कठिन होता है। इसमें तो कोई शक नहीं कि अब हमारा रूढ़िवाद हमें बुरी तरह खल रहा है, कारण हम जमाने की रफ्तार में पैर रख नहीं सकते और लड़खड़ाने लगते हैं। रूढ़िवाद ने केवल हमारी मानसिक वृत्तियों को ही संकीर्ण बनाया हो या सदा से विवेक पर आश्रित रहे हुए धर्म में इसके कारण जड़ता पैदा हुई हो सो ही बात नहीं है, परन्तु इससे तो हमारे खाने पीने के साधनों की समस्या भी इतनी उलझ गई है कि बिना गहरा प्रयत्न किये इसका सुलझना मुश्किल है। अर्वाचीन घटनाओं का इतिहास भी इस बात का तो साक्षी है कि प्रगति की वर्द्धमान शक्तियों के सामने अभी तक रूढ़िवाद जो कायम रहा है, वह केवल पूंजी के बल पर! समाज, धर्म और राजनीति---इन तीनों में पूंजी के विष ने ही रूढ़िवाद को जीवित रखा है। और इसी कारण साधारणतया ये तीनों पूंजी के गुलाम हैं! पूंजीपतियों की स्वेच्छाचारिता ने उनकी निजी सुविधाओं के रूप में रूढ़िवाद की असली बुराइयों और कठिनाइयों पर परदा डाल रखा है। इस समय सुधार का अर्थ इसी परदे को दूर करना होना चाहिये। रूढ़िवाद और कट्टरता की व्यावहारिक कठिनाइयों को वाणी मिलनी चाहिये! इसलिये पूंजीपतियों को साथ लेकर सुधार की आशा करना आमतौर से सफल नहीं हो सकता। वैसे कुछ पूंजीपति भी ऐसे हो सकते हैं कि जिनकी इस सुधार में पूरी सहानुभूति हो।

समाज-सुधार के प्रश्न को लेकर अभीतक हमारे समाज में पूरी चहल-पहल नहीं हुई है। हमें तो इस विषय में दो ही कारण अधिक जोरदार दीखते हैं—एक तो हमारे यहाँ सुधार भावना की गलतफहमी, और दूसरे सुधार का स्वाभाविक विरोध!

पहली बात सुधारकों के प्रति कही जा सकती है और दूसरी बात उन लोगों के लिये जिनके लिये सुधार की बांग मारी जाती है। पाठक जानकार होंगे कि हम लोगों में सुधार की भावना आजकल केवल विवाह, उत्सव, बाजागाजा आदि वस्तुओं के कतिपय अंगों तक ही सीमित है। हमारा कहना यह नहीं कि इनका सुधार न हो, पर इतना निवेदन अवश्य है कि बाल-विवाह या वृद्धविवाह रोक लेने अथवा विधवा विवाह के प्रचार करने से ही न तो सुधार की इतिश्री समझनी चाहिये और न उससे यह आशा ही करनी चाहिये कि वह जीवन की गति को बदल देगा। पाठक हमारी निस्संकोचता के लिये क्षमा करेंगे कि इन बातों को लेकर सुधार आजकल एक फैशन हो गया है,

और यह फैशन की भावना एक ओर तो उनको खुद को दम्भी और यशेच्छु बनाती है और दूसरी ओर सुधार का नाम कलङ्कित करती है। वास्तव में सुधार का आदि और अन्त व्यक्ति ही है। अपने को सुधारा हुआ मान कर दूसरे को सुधारने की मनोकामना मे विवेक और सचाई कायम नहीं रह सकती। समाज-सुधार की भावना रहे, पर समाज में व्यक्तिकी मूल स्थिति को न भूला जाय। हमारी समझ में तो वही सुधारक सफल होता है जो अपने ही कृत्यों और विचारों का छिद्रान्वेषी होकर पूर्णता की ओर बढ़ता रहे; लेकिन हाँ, अपने अनुभवों को वह समाज के सामने पूरी जिम्मेवारी और खुलावट के साथ रखता जाय। इन अनुभवों में सचाई रहेगी और इसलिये ये सुधार का असली कार्य कर सकेंगे।

जैसा हमने ऊपर कहा है, दूसरी कठिनाई सुधार का स्वाभविक विरोध ! इस विषय मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि विरोध को हटाना या कम करना अदूरदर्शता है ! विरोध की आशंका से कार्य न करना असफलता और डरपोकता है ! हमारे आचार्यों ने सदा इस बात को दोहराया है कि 'सांच को आंच नहीं।' जिस कार्य में मनुष्य का अपना विश्वास है--विवेक जिसको पुष्ट करता है, वह कभी नहीं रोकना चाहिये चाहे विरोध का पर्वत ही खड़ा हो। पहाड़ को हिलाया न जा सके तो उसकी टक्करों से अपने को झुमझूम लेना तो हो सकता है। इस प्रकार की पराजय ही विजय का संकेत है। सौभाग्य से हमारे समाज में बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह की घटनाएँ बहुत ज्यादा नहीं होतीं और अब तो और भी दिन ब दिन कमती होती जा रही हैं, इस हालत में हमारे तथा कथित सुधारक वर्ग की सबसे बड़ी जिम्मेवारी शुष्क प्रचार-कार्य में नहीं है, वरन् उन तथ्यों को अपने जीवन में उतार लेने में। विरोध उनके कार्यों की परीक्षा है—जिसमें सफल होना या हार जाना उनकी भावना पर निर्भर है। आज का समाज-सुधार तो विशाल दृष्टि, प्रफुल्ल मुक्त-जीवन, सम्प्रदायातीत स्फूर्तिप्रद धर्म, व्यक्तिगत विवेक और निर्णय बुद्धि, एवं स्वतन्त्र शिक्षा का निर्माण करना है और इस निर्माण-शाला का केन्द्र व्यक्ति हो।

तलवार के जोर पर शासन

कांग्रेस की विजय के साथ ज्योंही देश में चुनाव का संघर्ष शान्त हुआ कि मन्त्रित्व का प्रश्न विवाद-केन्द्र हो गया। जिन प्रान्तों में कांग्रेसी सदस्यों की बहुसंख्या थी, वहां कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के चुने जाने का प्रश्न स्वाभाविक था। कांग्रेस द्वारा मन्त्रित्व पद की स्वीकृति के विषय में नेताओं में दो दल हो गये थे। राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू मन्त्रित्व-ग्रहण के घोर विपक्षी थे, पर इस पक्षापक्ष की विषम परिस्थिति में राजनीति के क्षेत्र से लौटे हुए महात्मा गान्धी ने एक मार्ग निकाल कर परिस्थिति शांत करना चाहा। उनकी राय में गवर्नरों से यह विश्वास लेकर कि कौंसिल शासन के वैधानिक कार्यों में वे हस्तक्षेप नहीं करेंगे, कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल होने देना चाहिये। गांधीजी का यह प्रस्ताव विवेकपूर्ण होने पर भी उनकी अदूरदर्शिता पर प्रकाश डालता है। इस प्रस्ताव की शर्तों पर कांग्रेसी नेताओं ने गवर्नरों से सलाह मसविरा किया, पर इन शर्तों की मन्जूरी की जरा भी गुंजाइश नहीं थी। कांग्रेस ने अन्त में अब अपना मन्त्रिमण्डल रखना अस्वीकार कर दिया है—और विभिन्न पार्टियों द्वारा सर्वत्र प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल निर्वाचित हो चुके हैं।

इस महीने की पहली तारीख से भारत की राजनीति में किये जानेवाले सुधारों का पुलिन्दा कुछ

गया है, और संघ-शासन के नाम से नई नीतियों का अवलम्बन किया जा रहा है। प्रान्तीय शासन की स्वतन्त्रता की ओट में नये विधान ने भारतीय जनता की स्वाधीनता के विरुद्ध और कड़ी शृङ्खलायें बाँध दी हैं। पिछले कितने दिनों में हम यह बात देख चुके हैं कि इस विधान में भारत के सच्चे हितों की एक भी बात नहीं रखी गई है—और हर तरह से इसमें यही प्रयास किया गया है कि भारतवासियों की गुलामी और भी बढ़ा दी जाय। ऐसी हालत में यह आशा भी करना भूल थी कि गवर्नरों से वैधानिक हस्तक्षेप न करने का आश्वासन मिल जायगा। यह बात नहीं है कि विधान में गवर्नरों के लिये इस प्रकार के आश्वासन देने की गुञ्जाइश न हो, पर विधान-रक्षा के प्रान्तीय अधिष्ठाता गवर्नर लोग कब यह चाहेंगे कि इस प्रकार का आश्वासन देकर वे कांग्रेस को जनता के हितों में वैधानिक रूप से बढ़ने का मौका दें।

वास्तव में, हमारी लड़ाई तो पूर्ण स्वतन्त्रता की है—और इसलिये यह बात कभी ठीक नहीं होती कि मंत्री पद पर रह कर हमारे कांग्रेसी प्रतिनिधि गवर्नर के मुखापेक्षी होते। जो विधान अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नई प्ररूपणा लेकर अवतरित हुआ—और जिसकी बागडोर साम्राज्यवादी प्रतिनिधियों के हाथों में है उसका सहयोग करने की नीति कांग्रेसीदल द्वारा कभी की अस्वीकृत कर दी गई है। पद ग्रहण करना एक तरह से साम्राज्यवाद का सहयोग होता। जिस विधान को केवल तोड़-मरोड़ कर फेंक देना ही कांग्रेसी नीति है, उसके अन्तर्गत मंत्री पद स्वीकार करना कहाँ तक ठीक था?

गवर्नरों से आश्वासन न पाने की सूचना पाकर महात्मा गान्धी को अन्त में यही वक्तव्य छोड़ना पड़ा है कि गवर्नरों के इस निश्चय से यह स्पष्ट हो गया है कि भावी शासन विधान द्वारा की हुई हुकूमत केवल तलवार की नोक पर नाचेगी और कांग्रेसी दलों को इसका विरोध करने केलिये उत्साह से संगठन की वृद्धि करनी चाहिये। इस समय सबसे अधिक महत्व का प्रश्न तो यह है कि कांग्रेस अधिकाधिक जनता के निकट आती जाय—और इस प्रकार देशव्यापी संगठन कर उस महान् अहिंसात्मक स्वातन्त्र्य संग्राम के लिये सन्नद्ध रहे—जो एक न एक दिन अवश्य शुरू होगा।

हमारे समाज में विवाह का प्रश्न

विवाह और स्त्री-पुरुष के प्रेम की शास्त्रीय चर्चा में न पड़ कर हम यह बात मान लेते हैं कि विवाह का प्रश्न सब जगहों, सब समाजों और सब काल में समान महत्व का है। स्त्री-पुरुष की विभिन्न रचना, उनका आवयविक भेद, एक दूसरे के प्रति भावनापूर्ण आकर्षण, और सभ्यता और संस्कृति के मूल में रही हुई गृहजीवन की पूर्णता की कल्पना—इत्यादि बातों का ही प्रेरणात्मक योग शायद विवाह की आदि भित्ति हुआ हो। आरम्भ और विकास की परिस्थितियाँ पूरी तरह न जानते हुए भी पाठक यह तो खूब जानते होंगे कि विवाह युवक और युवती के जीवन में (वास्तव में विवाह की यही आयु है, वैसे आजकल तो ६० वर्ष के 'पितामह' भी 'पीले हाथ' करने को तैयार रहते ही हैं) सर्वोपरि गम्भीरता और महत्ता का विषय है। यह प्रश्न चाहे आजकल कितना ही मामूली समझा जाने लगा हो, विवाह के विषय में माता पिता और युवक-युवतियों की पूर्ण जानकारी न होने के कारण, अन्दर ही अन्दर न जाने आज कितना क्लेश उत्पन्न हो रहा है।

आजकल हमारे घरों में वैवाहिक जीवन की दुर-

वस्था देख कर किसका हृदय न कांप उठेगा ? पती और पत्नी, सासू और बहू, ननद और भौजाई के पारस्परिक वैमनस्य पर कौन नहीं तिलमिला उठेगा ? स्त्री और पुरुष में एक दूसरे के प्रति प्रेम के स्थान में परेशानी, सासू और बहू में एक दूसरे के प्रति प्रेम और श्रद्धा के स्थान में अविश्वास और असहनशीलता, ननद और भौजाई में एक दूसरे के प्रति प्रफुल्लकारी सम्मिलन के स्थान में ईर्षालुता और चिड़चिड़ापन देख कर किसको घृणा न होगी ? हम रात दिन इन कठिनाइयों का अनुभव करते हैं और अन्दर ही अन्दर कुंठित होकर स्वास्थ्य होम कर रहे हैं। मोटे रूप में हमारे सामने आज विवाह के विषय में, अपने समाज से लगते हुए निम्न प्रश्न हैं जिन पर हम बहुत संक्षेप में विचार करना चाहते हैं।

(१) बाल विवाह, (२) वृद्ध विवाह (३) अयोग्य विवाह (४) विवाह पद्धति।

(१) बाल विवाह के प्रश्न पर हम बहुत अधिक महत्व नहीं देते, क्योंकि हमारे समाज में ऐसे विवाह बहुत कम होते हैं, और आज जितने होते हैं, वे भी दिन प्रति दिन कम हो रहे हैं। इस प्रकार के विवाह के विपरीत बहुत दफा सामाजिक आन्दोलन हो चुके हैं —बल्कि, सरकार द्वारा भी इस विषय में नियम बन गया है और अब इसकी चर्चा न तो उतनी आवश्यक ही है और न समयानुकूल ही। पाठकों से छिपा नहीं है कि बेसमझ कच्ची ऊमर में बालकों का विवाह कर देने से शारीरिक और नैतिक दोनों तरह से समाज और राष्ट्र की हानि होती है। जीवन की जिम्मेवारियों को न समझने वाले युवकों के लिये विवाह केवल भोग लिप्सा का साधन मात्र रहता है, और वे शरीर और मन की शक्तियां क्षीण हो जाने पर जीवन यात्रा में अपने आपको असफल पाते हैं। भावी संतति और गृह जीवन पर इसका क्या असर होता है—सो पाठकों ने अपनी आंखों से जरूर देखा होगा। यह बालविधवाओं की समस्या का भी एक कारण है।

(२) वृद्धविवाह—हमारी समझ में यह समस्या बालविवाह से अधिक गहरी और आवश्यक है। आज भी इस बीसवीं सदी के युग में, न जाने कितनी अबोध बालिकाएँ, पूंजी के बल पर वृद्धों के हाथों में पड़ चुकी हैं- पड़ रही हैं। गरीबी के शिकार बेसमझ मातापिताओं ने न जाने अपनी कितनी प्यारी युवतियों को आठ-आठ सन्तान वाले पितामहों के नृशंस अरमानों की बलिवेदी पर होम दिया है। बालविधवाओं की बढ़ती हुई संख्या का यही सबसे बड़ा कारण है। इन पतिविहीना बालिकाओं की समस्या अवश्य रोमांचकारी है। और इसका उपाय वृद्ध-विवाह की घातक प्रथा को रोकना है; जिससे आजकल समाज में विधवा विवाह का जो प्रश्न सामने आ रहा है, उसकी आवश्यकता ही न हो। जब तक यह प्रथा रुक नहीं जायगी, तब तक यह प्रश्न भी सामने रहेगा। ऐसी विधवाओं के लिये जो न अनजान ही हैं, और न पूर्ण जानकार ही, शांत वैधव्य, तपस्या और ब्रह्मचर्य की बांग मारना एक बात है, समाज और घरों में उसके लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना दूसरी बात। हमारा पूछना है कि आज जो परिस्थिति वर्तमान है, उसमें क्या ऐसा वातावरण है ? यह आवश्यक है कि इन विधवाओं की दशा पर करुणा होनी चाहिये। आश्चर्य है कि जिस वृद्धवर्ग के लोग इन निरीह बालिकाओं को वैधव्य पलाने में इतने दृढ़ हैं, वे स्वयं अपनी भोग-लिप्सा को शान्त न रख कर छोटी-छोटी बालिकाओं को आपन्न परिस्थिति में डाल देते हैं। यह कहाँ का न्याय है ? इस पर समाज का ध्यान जाना चाहिये।

(४) अयोग्य विवाह का प्रश्न ही हमारी इस टिप्पणी का प्रमुख विषय है, क्योंकि इस विषय पर अभी तक काफी प्रकाश नहीं पड़ा है। शिक्षा और बाह्य संसर्ग के कारण आये दिन हमारे युवकों से अयोग्य विवाह की उनकी निजी कठिनाइयाँ एवं स्व-पर-अनुभव हम सुनते हैं। इस प्रकार की कठिनाइयों के कारण भीतर-भीतर हमारे युवक समाज की भावनाएँ पसीज रही हैं, उनको बाहर लाने का साधन नहीं उपलब्ध होता।

अयोग्य विवाह से हमारा मतलब उस विवाह से है - जहाँ स्त्री और पुरुष में स्वास्थ्य और सौंदर्य की अनुरूपता न हो, शिक्षा और संस्कृति की समता न हो, विचार और भावनाओं की साधना एक न हो, समर्पण और सहनशीलता का निवास न हो। इस प्रकार का अनमेल और विच्छेद वैवाहिक जीवन में कटुपन ला देता है। हमारे एक युवक ने कुछ इस प्रकार लिखा था "मेरी पत्नी मानसिक आयु (mental age) में मुझ से बहुत छोटी है इसलिये हमारा विवाह अयोग्य बन्धन है और समझ में नहीं आता कि सामाजिक विधान इसमें कहां तक जिम्मेवार है ?" यह शिकायत एक युवक की नहीं है, वरन् अप्रकटरूप से न जाने कितने युवकों की यही परेशानी है ! विवाह प्रेम और आनन्द का सम्बन्ध है—पर यदि जान-बूझ कर विवाह की परिस्थितियाँ ऐसी कर दी जायं कि वह आनन्द की जगह जीवन की गति में एक प्रतिबन्ध जान पड़े, तो वहाँ विवाह का असली उद्देश्य नहीं रहता। हमने अपनी आँखों से ऐसी घटनाएँ देखी हैं कि जिसमें ऐसे युवक और युवतियों का सम्बन्ध हो गया है जिनके विचार और प्रवृत्तियाँ ठीक एक दूसरे के विपरीत हैं। ऐसी हालत में क्या आमतौर से यह आशा भी की जा सकती है कि वह वैवाहिक सम्बन्ध आनन्द उत्पन्न करेगा या विवाह का उद्देश्य पूर्ण करेगा। एक और उन्नत विचार-धारा वाले सुसंस्कृत ग्रेजुएट का सम्बन्ध ऐसी अशिक्षित और अभावुक युवती के साथ हो जाता है जिसने केवल रूढ़ियों की शिक्षा पाई है; दूसरी ओर एक शिक्षिता सुशील लड़की का विवाह ऐसे क्रूर दुराचारी और अशिक्षित युवक के साथ हो जाता है जिसने केवल विवाह और प्रेम को भोग तक ही सीमित जाना है—जो असली स्त्री-सुलभ सौन्दर्य की स्वर्गीयता को अणुमात्र भी नहीं पहचानता। यह विवाह या दाम्पत्य प्रेम है या रूढ़ियों और रुपये का खिलवाड़ ? युवक और युवती को पढ़ा लिखा कर भी माता-पिता विवाह ठहराने की कसौटी उनके गुणों और जीवन की अनुरूपता पर नहीं करते—करते हैं केवल धन और मकान की फिकर ! हमें ऐसी युवतियों के विषय में भी मालूम है कि जिनके शिक्षित पिता ने भी धन के लोभ में उनको ऐसे दुराचारी मूर्ख युवक के साथ कर दिया है कि जिन्होंने केवल उनके सौन्दर्य का खिलवाड़ किया है—और कभी उन्होंने युवती के हृदय तक पहुँचने का प्रयास नहीं किया। आज ऐसी युवतियाँ पीड़ित हैं और कल मर जाने का ताज्जुब नहीं। युवकों की तो ऐसी घटनाएँ अनेक हैं। अनुरूप पत्नी न मिलने से न जाने कितने युवकों का गार्हस्थ्य-जीवन विषमय हो गया है; न जाने कितनों के घर बिगड़ गये हैं ? अनेक भावपूर्ण कर्मशील युवकों का जीवन जो अपाहिज-सा प्रतीत होता है, उसका मुख्य कारण यही है। समाज को पूरी तरह से इस विषय में दत्तचित्त हो जाना चाहिये।

इस खराबी के मूल में विवाह-पद्धति विशेषरूप से कारणभूत है। आजकल हमारे समाज में युवक-युवती के विवाह की सारी जिम्मेवारी केवल माता-पिता पर अवलम्बित है। यह नीति अनुदार है। जिस-सम्बन्ध में

स्त्री-पुरुष को जीवन निकालना होता है— जिससे उनके जीवन की गतिविधि का सृजन होता है उसमें उनकी राय और अभिज्ञता जरा भी न लेना अनुचित है। मैं इस बात का विरोधी नहीं हूँ कि माता-पिता अपनी सन्तान की बुरा नहीं चाहते, और वे जो कुछ करते हैं वह अच्छा ही करते हैं। पर मेरी स्पष्टता तो यह है कि निजी जीवन के विषय में और अपनी प्रवृत्तियों के विषय में व्यक्ति स्वयं सबसे ज्यादा भला बुरा सोच सकता है, और इसलिये युवक-युवतियों को विवाह के लिये अनुरूप संगी चुनने या स्वीकार करने और न करने का विकल्प दिया जाना चाहिये। यदि इस विषय में अंधाधुन्धी की गई तो समाज में जो वैवाहिक अनाचार आज थोड़े रूप में है, वही कल बढ़ता जायगा। और गार्हस्थ्य-जीवन की मधुर कल्पना केवल स्वप्नवत् रह जायगी। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विवाह पद्धति ऐसी खर्चीली न रहे कि जिससे योग्य वर वधू के चुनाव में बाधा हो—या पूंजी के पीछे विवाह को व्यापार का रूप दिया जाय। क्या हम आशा करें कि समाज के समझदार माता-पिता इस विषय में ध्यान देंगे।

यह वर्ष समाप्त हो गया !

इस वर्ष के साथ नवयुवक का यह सप्तम वर्ष समाप्त हो रहा है और इस अवधि में पत्र ने जो प्रगति की है, उससे हमारे पाठक और लेखक सुपरिचित हैं। इस अवसर पर हमें अपनी सफलता के लिये कृतज्ञता प्रकाश करनी है। सबसे पहले हम अपने ही आप के कृतज्ञ हैं। हम युवक हैं, और यह युवकों का पत्र है।

सहयोग, सहानुभूति और सहायता के लिये हम अपने कृपालु पाठकों और समस्त समाज के कृतज्ञ हैं, कि जिन्होंने पत्र को अपना कर अपनी उदारता और गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है।

दो वर्ष की विवश निद्रा के पश्चात् गत मई मास में हमने प्रभाती पुकारी थी, और परमात्मा की कृपा से बार बार अनेक कठिनाइयों के आते हुए भी हमने उसी उत्साह और जिंदादिली के साथ कार्य किया है जिसके साथ हमने नववर्ष की प्रभाती गाई थी। पत्र के बारह अंक पाठकों के सामने हैं और प्रत्येक के पास अपनी अपनी सम्मति होगी। जिन लोगों ने हमें अपनी सम्मति बता कर यह विश्वास दिलाया है कि इस पत्र ने ओसवाल समाज के दीर्घ अभाव की पूर्ति कर दी है, उनके इस उत्साह दान के लिये हम आभारी हैं। युवक का काम तो कार्य को करते जाना है। विरोध और कठिनाइयों की उसको परवाह नहीं है, जब तक कि हम में और हमारे सहयोगियों में युवकों का रक्त संचारित है।

इस वर्ष में हमने कोशिस करके पाठकों को अच्छी से अच्छी सामग्री देना चाहा है। पर फिर भी चुनाव से हम असन्तुष्ट ही हैं। पाठक क्षमा करेंगे, इसका कारण हमारी अल्पज्ञता तो है ही, पर साथ ही यह भी कि लेखकों से हमें पूर्ण सहयोग नहीं मिल सका। आर्थिक दृष्टि से भी पत्र को काफी घाटे का सामना करना पड़ा है। पर सौभाग्य का विषय है कि युवकों ने इसे अपने बल पर ही चलाने का निश्चय कर रखा है। विश्वास है कि आगामी वर्ष में हम पाठकों की अधिक से अधिक सेवा कर सकेंगे।

'ओसवाल नवयुवक' अखिल ओसवाल समाज का एक ही मासिक पत्र है जो ओसवालों के उन प्रश्नों पर बराबर प्रकाश डालता रहता है जिन से वे भारतीयता और मानवता के अधिक निकट आ सकें। यह

जमाना विश्वैक्य और विश्वसमता का है और इस लिये यह पूछा जा सकता है और पूछा गया है कि क्या जातीय पत्रों का अस्तित्व जमाने की गति के विपरीत नहीं है ? हम यह नि.संकोच स्वीकार करते हैं कि आज जाति और सम्प्रदाय की भावना तिरस्कृत की जाती है। पर हमें इतना ही निवेदन करना है कि ऊपर की आपत्ति तभी समीचीन हो सकती है, यदि जातीय पत्र जातीयता का विष-वपन करें। पर यदि जातीय नामवाले पत्र भी इस उद्देश्य से चलें कि जातीयता का ऐसा विकास कर सकें कि वह राष्ट्र और संसार की प्रगति में एकरूप हो कर मिल जावें तो जातीय पत्रों का उद्देश्य किसी भी तरह हेय नहीं कहा जा सकता। 'ओसवाल नवयुवक' का उद्देश्य जाति सेवा है पर राष्ट्रहित को सामने रखते हुए। एक सज्जन ने हमसे पूछा था कि यदि राष्ट्रहित का उद्देश्य आपका भी है, तो फिर स्वतंत्र मासिक निकाल कर क्यों शक्ति का ह्रास किया जाय ? हिन्दी में 'हंस' 'विशालभारत' आदि मासिक चलते ही हैं, उन्हें ही अपना लिया जाय। आपका सहयोग पा कर वे अधिक सुविधाएँ प्रदान कर सकेंगे, तथा पत्रों की अनावश्यक संख्या वृद्धि न होगी।" यह प्रश्न सिद्धान्तवादियों का है—और सिद्धान्त की सीमा तक ही ठीक भी है। व्यवहार में इस बात की आवश्यकता है कि जातीय पत्र विभिन्न जातियों की भावनाओं को इतना विकसित कर दें कि वह राष्ट्रीय एकता को अनुभव अपने आप करने लगें। फिर चाहे सामान्य पत्रों को ही रखा जाय। जब तक संकीर्ण भावनाओं में से निकल कर जातियाँ राष्ट्रीयता के समस्थल पर नहीं आ जावें, तब तक जातीय पत्रों की आवश्यकता है ही। कोई यदि यह कहे कि ट्राम जैसी सुविधापूर्ण सस्ती सवारी के होते हुए गाड़ियाँ या रिक्षाएँ क्यों बढ़ाई जाय तो उसको यही उत्तर देना पड़ेगा कि संकीर्ण छोटी-छोटी गलियों में से निकाल कर ट्राम तक लाने का काम तो रिकशाओं द्वारा ही हो सकता है। यदि रिकशा का साधन न हो तो वे लोग ट्राम तक पहुंच नहीं सकते, जिनमें आम सड़क पर आने की शक्ति ही न हो। आम सड़क पर ट्राम चलती है, क्या इसीलिये गलियों में भी रिकशा न चले ? यही हाल जातीय पत्रों का है, उनकी सफलता और समीचीनता इसी में है कि उनके पाठकों में धीरे-धीरे उदारता का प्रादुर्भाव होता जावे। 'ओसवाल नवयुवक' के विषय में हमारी कल्पना यही है। न इसे ओसवालपने का एकांगी मोह है—न इसे किसी मत, सम्प्रदाय या पार्टी का पोषण करना है; इसका सर्वोपरि उद्देश्य तो उन समस्याओं पर प्रकाश डालना है जिनके कारण आज ओसवाल जाति इतनी अनुदार, इतनी संकीर्ण, इतनी पिछड़ी हुई और इतनी निर्बल है ! हमें उनको शक्तिशाली बनाना है कि जिससे वे राष्ट्र के साथ कंधा लगा सकें, उनको उदार होने की इसलिये जरूरत है कि वे अपनी जातीयता को भारतीयता का अंग मानने लगें। उनमें जागृति इसलिये उत्पन्न करनी है कि वे कर्मशील बनें।

इस वर्ष पत्र से यदि पाठकों को किसी भी तरह का असन्तोष रहा है तो विश्वास है कि आगामी वर्ष में वह भी न रहेगा पर शर्त यह है कि पूर्ण उत्साह के साथ आप का सहयोग मिलता रहे।

व्यवस्थापक की ओर से

निम्नांकित संख्या के महानुभावों का चन्दा इस अङ्क से समाप्त हो रहा है। यदि अप्रेल मास के अन्त या मई मास के प्रथम सप्ताह तक उनका चन्दा या इस सम्बन्ध में कोई सूचना न मिली तो हम मई का नववर्षाङ्क ३।) की वी० पी० से उनकी सेवा में भेजेंगे। आशा है कृपालु ग्राहक या तो ३) मनीआर्डर से भेज देंगे अन्यथा वी० पी० छुड़ा कर 'ओसवाल नवयुवक' को व्यर्थ के व्यय से बचावेंगे।

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १९, २०, २१, २२, २३, २४ २५, २६, २७ २८, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०. १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०. १३१, १३२. १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९ १४०, १४१ १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७. १४८, १४९, १५०. १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९ १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१ १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४. २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१८, २१९. २२०, २२१, २२२, २२४, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २५२, २५५, २६०, २६४, २६५, २६६, २६८, २६९, २७१, ३२५, ३२८, २७३, २७६, २७८, २९२, ३१०, ३१४, ३२०, ३२३, ३२४, ३२७, ३३०, ३२६, ३२२, ३४१, ३४२, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५७, ३६४, ३६८, ३६९, ३८२, ३८४, ४०२, ४२४

Reg. No. C 1068

भगवतीप्रसादसिंह द्वारा न्यू राजस्थान प्रेस, ७३ ए चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट में मुद्रित एवं पंवरचन्द बोथरा द्वारा
२८ स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता में प्रकाशित।